हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,
सिद्धान्तवारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि एम, आर, ए, एस
तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

द्वादश भाग

[विद्रु—परमाणुव]

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XII

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prachyavidyamaharnava,
Siddhanta-varidhi, Sabda-ratnakara, Tattva-chintamani, M.R.A.S.,
Compiler of the Bengali Encyclopaedia; the late Editor of Bangiya Sahitya Parishad
and Kayastha Patrika; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja
Archaeological Survey Reports and Modern Buddhism;
Hony. Archaeological Secretary Indian Research Society;
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal, &c. &c. &c.

Printed by [illegible] at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu,
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

[illegible]

हिन्दी

विश्वकोष

(द्वादश भाग)

निद्रा (स० स्त्री०) निन्द्यते इति निदि कुत्सायां इति रक्, नलोपश्च (निन्देर्नलोपश्च । उण २।१७)। स्वप्न नींद। पर्याय—शयन, स्वाप, संवेश, सुप्ति और स्वपन। कालाग्निरुद्रस्वरूपी शिवयोगिनी हैं रातको ये योग द्वारा लोगोंको आच्छन्न किये रहती हैं।

"कालाग्निरुद्ररूपी च निद्रा वा शिवयोगिनी।

सर्वलोकाः समाच्छन्ना यया योगेन रात्रिषु॥" (तन्त्र

नैयायिकोंके मतसे स्वप्नवाहोमें मनःप योग होनेसे निद्रा होती है। पातञ्जलदर्शनमें इसे मनको एक वृत्ति बतलाया है।

जिसमें सभी मनोवृत्तियां लीन हो जाती हैं उस अज्ञानका अवलम्बन कर जब मनोवृत्ति उदित रहती है तब उसे निद्रा वा सुषुप्ति कहते हैं।

वस्तुतः निद्रा भी एक प्रकारकी मनोवृत्ति है। प्रकाश-स्वभाव सत्त्वगुणके आच्छादक तमोगुणकी उद्रेक अवस्थाको ही हम लोग निद्रा कहते हैं। ज्ञान का अज्ञान पदार्थ ही निद्रावृत्तिका आलम्बन है। जब तमोमय अर्थात् अज्ञानमय निद्रावृत्तिका उदय होता है, तब सर्वप्रकाशक सत्त्वगुण अभिभूत रहता है। सुतरां उस समय किसी प्रकारका वस्तुका प्रकाश नहीं रहता। यही कारण है, कि लोग कहते हैं—मैं निद्रित था, सुझे कुछ भी ज्ञान न था। यथार्थमें उस समय किसी विषयका ज्ञान नहीं रहता सो नहीं, उस समय अज्ञान विषयका ज्ञान अवश्य रहता है। उसी अज्ञानविषयक ज्ञानके रहनेके कारण निद्राभङ्गके बाद उस समयकी अज्ञानवृत्तिका स्मरण किया करते हैं। निद्राके समय अज्ञानमय वा तमोमय वृत्ति अनुभूत रहती है, इस कारण नींद टूटने पर उसका स्मरण होता है और उसी स्मरण द्वारा निद्राका वृत्तित्व माना जाता है।

मनकी पांच प्रकारकी वृत्तियां हैं, यथा—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प निद्रा और स्मृति। ये पांच प्रकारकी वृत्तियां अभ्यास और वैराग्य द्वारा रोकी जाती हैं। वेदान्तपण्डित निद्राको सुषुप्ति बतलाते हैं। सुषुप्ति देखो।

मन जब रजः सत्त्व और तमोगुणसे अभिभूत होता है तब निद्रा आती है। तमोगुणका कार्य अज्ञान है। इस निद्राकालमें अज्ञानात्मक-ज्ञान होता है अर्थात् उस समय अज्ञानविषयक ज्ञान हो रहता है और कुछ भी नहीं।

निद्राका विषय आयुर्वेदमें इस प्रकार लिखा है—मानवसमूहको स्वभावतः ही प्रतिदिन चार अभि लाषाएं रहती हैं। आहारेच्छा पानेच्छा निद्रा और सुरतस्पृहा। जब निद्रा आ पहुंचती है तब उसका वेग रोकनेसे जृम्भा, मस्तक और अङ्गका गुरुत्व, शरीरमें वेदना और तन्द्रा होती है तथा खाया हुआ पदार्थ नहीं पचता।

दिनको निद्रा हितकर नहीं है क्योंकि कफकी वृद्धि होती है। किन्तु ग्रीष्मकालमें दिवा निद्रा उतना दोषा

वह नहीं है। ग्रीष्मकालके सिवा अन्य ऋतुओंमें दिवा-निद्रा निषिद्ध है। जिनका प्रतिदिन दिवा-निद्राका अभ्यास है वे यदि उसका परित्याग करें, तो वायु, पित्त और कफ ये त्रिदोष कुपित हो जाते हैं। जो सब मनुष्य व्यायाम वा स्त्री-प्रसंगसे दुर्बल अथवा पथ पर्यटनसे क्लान्त हो गये हों तथा जो अतीसार, शूल, श्वास, पिपासा, हिक्का, वायुरोग, मदात्यय तथा अजीर्ण आदि रोगोंमें ग्रस्त हों अथवा जो क्षीण देह, क्षीण कफ, शिशु, वृद्ध और रातमें जगे हों उनके लिए दिवा-निद्रा हितकर है जिनको दिवा-निद्रा और रात्रि-जागरणका अभ्यास पड़ गया हो, उनके रात्रि-जागरण और दिवा-निद्रामें कोई दोष नहीं होता।

भोजन करनेके बाद सोनेके लिए अवश्य जाना चाहिए। इससे वायु और पित्त नष्ट होता है, कफकी वृद्धि तथा शरीरकी पुष्टि होती है और मन प्रफुल्ल रहता है। भोजन करनेके बादसे कम दो दण्ड बाद निद्राको जाना चाहिए। जो खानेके साथ ही सोनेको जाते हैं उनके स्वास्थ्यमें हानि पहुंचती है।

यथासमय निद्रा लेनेसे धातुकी समता और आलस्य विनष्ट होता है, शरीरकी पुष्टि होती है तथा बल, वर्ण, उज्ज्वलता, उत्साह और जठराग्नि प्रदीप्त रहती है। सोनेके समय खट्टा-नीबूके पत्र चूर्णको मधुके साथ मिला कर लेहन करनेसे वायुकी प्रसरताका गुण बन्द हो जाता है, सुतरां वायुके सङ्कोचनके कारण निद्रा आती है।

जब मनुष्योंके मन, कर्मेन्द्रिय और बुद्धीन्द्रिय विश्रान्त-भावका अवलम्बन करती हैं और सभी विषय-कर्मोंकी निवृत्ति हो जाती है तभी मनुष्य निन्द्राभिभूत हो जाते हैं। मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा और निन्द्रा प्रत्येक एक दूसरेसे विभिन्न है। पित्त और तमोगुणकी अधिकतासे मूर्च्छा; पित्त, वायु और रजोगुणकी अधिकतासे भ्रम; वायु, कफ और तमोगुणकी अधिकतासे तन्द्रा तथा कफ और तमोगुणकी अधिकतासे निन्द्रा होती है। जिससे इन्द्रिय विषयग्रहणकी शक्तिसे रहित हो जाय, और देहकी गुरुता, जृम्भन, क्लान्ति-बोध और निद्राकर्षितकी तरह अनुभूत हो, उसे तन्द्रा कहते हैं। निद्रा और तन्द्रामें फर्क यह है, कि निद्राके बाद जागनेसे क्लान्ति दूर हो जाती है और तन्द्राभिभूत व्यक्तिको जागरणावस्थामें भी क्लान्ति दूर नहीं होती। (भावप्रकाश)

सुश्रुतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—हृदय चेतनाका स्थान है। जब वह अज्ञानसे आवृत्त हो जाता है, तब प्राणीको निद्रा आती है। निन्द्रा वैष्णवी-शक्ति है। यह सभी प्राणीको अभिभूत करती है। जब संज्ञा-वहा शिराएं तमःप्रधान श्लेष्मासे आवृत होती हैं, तब तामसी नामक निन्द्रा पहुंचती है। मृत्युके समय जो निन्द्रा आती है उसे अनवबोधिनी निन्द्रा कहते हैं। तमोगुणविशिष्ट व्यक्तियोंको दिन और रात दोनों समय, रजोगुणविशिष्टको अकारण और सत्त्वगुणविशिष्ट व्यक्तियोंको अर्द्ध रात्रिमें निद्रा आती है। श्लेष्माका क्षय और वायुकी वृद्धि होनेसे अथवा मन वा शरीरके तापित होनेसे निद्रा नहीं आती। हृदय ही सब प्राणियोंका चेतनाका स्थान है, यह पहले ही कहा जा चुका है। वह हृदय जब तमोगुणसे अभिभूत होता है, तब देहमें निद्रा प्रवेश करती है। तमोगुण ही एकमात्र निद्राका कारण है और सत्त्वगुण बोधका हेतु अथवा स्वभावको ही इनका प्रधान हेतु कह सकते हैं। जाग्रत् अवस्थामें जो सब शुभाशुभ विषय अनुभूत होते हैं, निद्राके समय जीवात्मा रजोगुणविशिष्ट मन द्वारा उन सब विषयोंको ग्रहण करती है। इन्द्रियोंके विफल होनेसे तथा अज्ञानताकी वृद्धि होनेसे जीवात्माके निद्रित नहीं होने पर भी उसे निद्रित-सी कह सकते हैं।

वर्त्तमान युरोपीय वैज्ञानिकोंका कहना है कि प्राणिगण जिस स्वाभाविक अचेतन अवस्थाके वशवर्त्ती हो कर बाह्यज्ञानशून्यावस्थामें कालयापन करते हैं और जिस अवस्थाके बाद ही कार्यकारिणी शक्ति प्रबल वेगसे पहलेकी अपेक्षा आनन्द और सामर्थ्यके साथ लगी रहती है उसी अवस्थाका नाम निद्रा है। जिस प्रकार किसी यन्त्र वा कलके लगातार व्यवहार द्वारा क्षय प्राप्त हो जाने पर उसमें जब तक उस कल वा यन्त्रके उपादानका संयोजन नहीं होता, तब तक वह उद्देश्य कर्मका अनुपयोगी रहता है; ठीक उसी प्रकार हस्त पदादिके कार्य द्वारा हम लोगोंके देहाभ्यन्तरस्थ भिन्न भिन्न यन्त्रोंका

क्षय होते रहने पर भी जब तक उसका कोई परिपोषण नहीं होता, तब तक वे सब यन्त्र अकर्मण्य हो रहते हैं और उन यन्त्रोंमें आश्रित जीवदेह बहुत जल्द ही कार्य्यक्षम हो कर अन्त नाश धारण करती है। इसी कारण प्राणिजगत्‌की रक्षाके लिये करुणामय परमेश्वरने निद्राकी सृष्टि की है। कारण जीवगणके जाग्रत् अवस्थामें कर्म्म करनेसे उनके जिन सब यन्त्रों और कोषोंका क्षय होता है, निद्रित होनेसे उन सब यन्त्रों और कोषोंके निष्कर्म्म अवस्थामें रहनेके कारण उनका क्षय या व्यय होना बन्द हो जाता है। इसके अलावा निद्रासे पूर्वभुक्त आहार द्वारा विनष्ट कोषका अभाव पूर्ण हो जाता है। इसी कारण निद्राका विशेष आवश्यक है। पृथिवी जिस प्रकार रात्रि और दिवा इन दो अवस्थाओंके अधीन है और जिस प्रकार इन दो अवस्थाओंके आगमन का भी निर्दिष्ट समय अवधारित है उसी प्रकार जीव-देह निद्रित और जाग्रत् अवस्थाके अधीन है और उन दो अवस्थाओंके आगमनका भी समय निर्दिष्ट है। निर्जनता और अन्धकारके लिये रात्रि ही मनुष्य और अन्य प्राणियोंके पक्षमें निद्राका उपयुक्त समय है। किन्तु कई जगह इसका विपरीत देखा जाता है जैसे-प्रजापति मच्छ दिनके समय, इक्लमच्छ नामक कीट सन्ध्याके समय और मत्कोट रात्रिमें कार्य करते हैं। पक्षियोंमें उल्लू और अन्यान्य दो एक पक्षियोंके सिवा सभी पक्षी दिनमें काम करते हैं और रातको सोते हैं। मांसभोजी प्रायः सर्व्वभुक् हिंस्र जन्तु दिनमें सोते हैं और रातको आहार की तलाशमें विचरण करते हैं।

साधारणतः निद्राके दो कारण लिखे हैं, एक मुख्य और दूसरा उसका सहयोगी। मुख्य कारण यह है, जाग्रत् अवस्थामें परिश्रम करके सभी इन्द्रियां क्लान्त हो जाती हैं, सर्वेन्द्रियका कर्त्ता मस्तिष्क है जो विश्रामके सिवा और कोई कार्य नहीं करता है। निद्रा सिर्फ मस्तिष्कका विश्राम अवस्था है, इसीसे उस क्लान्ति द्वारा निद्राका आविर्भाव होता है। किन्तु अधिक समय मानसिक और शारीरिक अत्यधिक परिश्रम निद्राका विघ्नजनक होता है। निद्राके सहायकारी कारणोंमेंसे जो मस्तिष्कको उत्तेजित नहीं करते अथवा जो मस्तिष्क क्षोभजनक बातोंकी बार बार आवृत्ति करते, वे ही निद्राके पोषक हैं। जैसे, अन्धकार और निर्जनता साधारणतः निद्राके उद्दीपक हैं और जिनका किसी शहर या नगर रास्तेके पास कहीं कोलाहलपूर्ण स्थानमें रहनेका अभ्यास है वे उन निर्जन और निस्तब्ध स्थानोंमें कभी भी नहीं सो सकते। पूर्वोक्त दो अन्यान्य कारणसमूह मनको उसके कार्यक्षेत्रसे आकर्षण और उसकी इच्छा शक्तिकी क्षमताको कम कर देते हैं, जिससे निद्रादेवीका आगमन अनिवार्य हो जाता है। निद्रा आनेके कुछ पहलेसे ही आलस्य भाव पहुंच जाता है और मनोयोगका अभाव देखनेमें आता है। इन्द्रियां बाह्य दृश्य पदार्थोंका अस्तित्व ग्रहण नहीं कर सकती और उस समय निर्जनता तथा निस्तब्धता अत्यन्त प्रिय हो जाती है। निद्रा आनेके समय हम लोगोंकी धारणाशक्ति कम हो जाती है, शरीरमें आलस आ जाता है, आंखें बन्द हो जाती हैं, कान यद्यपि कुछ काल तक शब्दका अस्तित्व समझ सकते हैं पर उसका पर्यालोचन नहीं कर सकते और वह शब्द किसी दूर स्थानोंमें हो रहा है ऐसा अनुभव करते हैं। उसी समय हम लोग घोर निद्रामें अभिभूत हो जाते हैं। निद्राकी प्रथमावस्थामें इन्द्रिय और बुद्धि शक्ति सबसे पहले अचेतन हो जाती है। कल्पना और अन्यान्य छोटी छोटी शक्तियां बहुत देर तक सचेतन रहती हैं। निद्रावस्थाको तीन भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। निद्रा सबसे पहले अत्यन्त गाढ़, पीछे उसमें कुछ चैतन्य मिश्रित और सबसे अन्तमें जाग्रत् अवस्थाके आगमनकी प्रतीक्षामें सचेतनभाव धारण करती है। साधारणतः निद्रा और चैतन्यके मध्यवर्ती एक समय देखा जाता है। उस समयमें निद्राका आवेग बहुत कम हो जाता है इसीसे उस समय निद्रित व्यक्तिको सहजमें जगा सकते हैं। वयस, अभ्यास प्रकृति और क्लान्तिके अनुसार मनुष्यकी निद्राका विभिन्न तारतम्य देखा जाता है। भ्रूण मातृगर्भमें प्रायः चिर निद्रामें अभिभूत रहता है। भूमिष्ठ होने पर वह पहले कुछ दिनों तक गाढ़ी निद्रामें सोता है। विशेषतः नवजातप्रसूत सन्तान स्तन्य पानेका समय छोड़ कर अधिकतर सभी समय निद्रित रहती है। पीछे शरीरके

पूर्णत्वके लिये जब तक क्षयकी अपेक्षा पुष्टिका भाग अधिक आवश्यक है, तब तक अधिक निद्राका प्रयोजन पड़ता है। यौवनावस्थामें शरीरमें क्षय और वृद्धि दोनों ही प्रायः समान रहनेसे निद्राका भाग बहुत कम हो जाता है। लेकिन वृद्धकालमें साधारणतः पोषण-शक्तिके अभावके कारण उसके पूरणके लिये अधिक निद्राकी जरूरत पड़ती है। स्त्रियोंकी निद्रा पुरुषोंसे बहुत कम है। नीरोग मनुष्यको ८ घण्टेसे अधिक समय तक नहीं सोना चाहिए।

यथार्थमें ऐसा देखा जाता है कि स्थूलकाय मनुष्य क्षीणकायकी अपेक्षा अत्यन्त निद्राप्रिय है। अभ्यासके अनुसार भी निद्राकी कमी बेशी देखी जाती है। जनरल एलियट २४ घण्टेके मध्य ४ घण्टेसे अधिक नहीं सोते थे। विख्यात आध्यात्मिक शास्त्रवेत्ता डाक्टर रीड एक समयमें दो दिनका भोजन खा लेते और दो दिन तक सोये रहते थे। फिर अभ्यासके वशमें आ कर निर्दिष्ट समयमें निद्रित और जागरित होनेकी कथा सभी स्वीकार करते हैं।

मिष्टर डरहमने एक कुत्तेकी खोपड़ी काट कर मस्तिष्क द्वारा यह स्थिर किया है कि—(१) मस्तिष्कको ऊपरी शिरा स्फीत हो कर मस्तिष्क पर दबाव डालती है इसीसे निद्रा आती है, यह भूल है। कारण निद्राके समय वे सब शिराएं कुछ भी स्फीत नहीं होतीं। (२) निद्राके समय मस्तिष्क दूसरे समयकी अपेक्षा अधिक रक्तशून्यावस्थामें रहता है। मस्तिष्कको ऊपरी शिराओंमें केवल रक्तका परिमाण घटता है, सो नहीं, रक्तकी गति भी मन्द हो जाती है। (३) निद्रावस्थामें मस्तिष्कमें रक्तकी गति इस प्रकार सम्पादित होती है कि उससे मस्तिष्ककी झिल्ली पुष्टता लाभ करती है।

यहां पर अत्यधिक निद्रा वा उसका विपरीत भाव जिस अवस्थामें देखा जाता है उसके दो एक उदाहरण नहीं देनेसे वह समझमें नहीं आ सकता। इसीसे यहां पर दो एक उदाहरण उद्धृत करते हैं। भिन्न जातीय पुस्तकमें अभ्यास द्वारा निद्रा कई एक सप्ताह वा मास तक किसी व्यक्तिमें स्थायी रहते देखी जाती है। डाक्टर कारपेण्टर-ने दो रोगियोंका इसी प्रकार उल्लेख किया है। फरासी डाक्टर ब्लाश्चेटने सम्प्रति इसी प्रकारके तीन रोगियोंका उल्लेख कर उनमेंसे एकके विषयमें लिखा है कि यह रोगी स्त्री है। १८ वर्षकी अवस्थामें यह ४० दिन, २० वर्षकी अवस्थामें ५० दिन और २४ वर्षकी अवस्था लगातार एक वर्ष सोती थी। इस समय उसके सामनेका एक दांत उखाड़ कर उसी छेद हो कर दूध वा मछली का शिरवा मुखमें दिया जाता था और उसीसे उसकी जीवनरक्षा होती थी। वह उस समय गतिहीन और अज्ञानावस्थामें रहती थी। उसकी नाड़ीकी गति बहुत मन्द थी, निश्वास प्रश्वास दुर्ज्ञेय था, मलमूत्रादि कुछ भी नहीं होता था और समूचा शरीर लावण्यमय और सुस्थ रहता था। इस निद्राको स्वाभाविक निद्रा नहीं कहते, यह निद्रा कष्टजनक है।

फिर कोई कोई मनुष्य सम्पूर्ण निद्राशून्यावस्थामें अथवा अल्प तन्द्रावस्थामें बहुत दिन तक रहते देखा गया है। सम्पूर्ण निद्राशून्यावस्था भावी पीड़ाज्ञापक है। ऐसी अवस्थामें दीर्घकालव्यापी ज्वर, मस्तिष्कका प्रदाह, सस्फोटज्वर इत्यादि पीड़ाएं उत्पन्न होती हैं। दीर्घकाल अनिद्रावस्थामें रहनेसे बीच बीचमें प्रलाप और अचेतनावस्था भी पहुंच जाती है। यदि इस प्रकार जागरित रहनेका कोई विशेष कारण न रहे, तो रोगी शीघ्र ही उत्कट पीड़ाग्रस्त होता है। साधारणतः पक्षाघात, संन्यास वा उन्मादरोग उन्हें आक्रमण करता है।

स्वल्प-निद्रा इस प्रकार पीड़ाज्ञापक नहीं है। साधारणतः जो सब मनुष्य कार्यमें लगे रहते हैं, जिनका मस्तिष्क बहुत चालित होता है अथवा जो अर्थकष्टता-भोग करते हैं वे ही ऐसे स्वल्प-निद्रालु होते हैं। फिर जो बहुत दिनोंसे वात, चर्मरोग, मूत्ररोग, पेटकी पीड़ा और मूर्च्छा रोगसे आक्रान्त हैं, उनकी भी निद्रा बहुत कम हो जाती है।

इस अनिद्रावस्थाको दूर करनेमें अनिद्राके कारणकी चिकित्सा करनी होती है। उक्त रोगी जिस घरमें रहे, उस घरमें निर्मल वायुके आने जानेका रास्ता रखे। घर यदि अधिक गर्म हो तो उसकी उष्णताको कम कर दे। रोगी जिस शय्या पर सोवे, वह गर्म न हो। उस रोगीको वे सब चिन्ताएं न आने दें जो उसके मनको

अत्यन्त आह्लाद, अवसाद और विरक्त करती है। इस समय सुलाय देना उचित है।

आयुर्वेदके मतसे ग्रीष्मऋतुके सिवा अन्य सभी ऋतुओंमें दिवा-निद्रा निषिद्ध है। किन्तु बालक, वृद्ध, क्षीण स्त्रीजनित क्षम, अतिकोप अथवा मद्यपानसे उन्मत्त व्यक्तिके लिये। सवारी वा पथश्रमसे श्रान्त अथवा अन्य कर्म द्वारा क्लान्त वा अजीर्ण व्यक्तिके लिए अथवा जिनका मेद, मांस कफ, रस और रक्त क्षीण हो गया हो उनके लिए अथवा अजीर्ण रोगीके लिये दिवा निद्रा निषिद्ध नहीं है, लेकिन वे भी इच्छासे अधिक समय तक न सोवें। रातमें जितना समय जग गये, दिनमें उससे आधे समय तक सो सकते हैं। दिवानिद्रा देहके विकार उत्पन्न करनेवाला अत्यन्त अहित कर्म है। दिवाभागमें निद्रित व्यक्तिको कभी सुखवृद्धि नहीं होती तथा उससे सब दोषोंका प्रकोप दिखला पड़ता है।

दोषका प्रकोप होनेसे कास, श्वास, प्रतिश्याय मस्तकका भार, अङ्गमर्द, अरुचि, ज्वर और अग्निमान्द्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं, इसी कारण रात्रिजागरण और दिवा-निद्राका त्याग एकमात्र कर्त्तव्य है। रातमें परिमित रूपसे सो सकते हैं। परिमित निद्रासे देह निरोग और सबल बनी रहती है लावण्यकी वृद्धि होती है, मन प्रफुल्ल रहता है तथा सौ वर्ष परमायु होती है। निद्राको वशमें कर लेनेसे दिनको वा रातको कभी वा सोते रहनेसे शरीरमें कोई हानि नहीं पहुँचती।

निद्रानाश।—वायु, पित्त, मनस्ताप, क्षय वा अभिघातके कारण निद्रा नाश होती है। इन सब दोषोंके विपरीत क्रिया करनेसे वो शान्त होता है। निद्रानाश होनेसे शरीरमें तेल लगावे। इस समय गात्रविलेपन और संवाहन हितकर है। शालिधान्यका अन्न, गोधूम पिष्टक, इक्षुरसयुक्त मधुर और स्निग्धद्रव्य भोजन, दुग्ध वा मांसरसयुक्त भोजन, रातमें द्राक्षा शक्कर वा गुड़द्रव्यका भोजन और कोमल तथा मनोहर शय्या और आसन आदिका व्यवहार करना कर्त्तव्य है। निद्राकी अधिकता होनेसे वमन, संशोधन, लङ्घन और रक्तमोक्षण करे तथा मनको भी व्याकुल करते रहें जिससे नींद न आवे। कफ वा मेदविशिष्ट अथवा विषाक्त व्यक्तियोंके लिए रात्रि-जागरण और तृष्णा, शूल, हिक्का, अजीर्ण और अतीसाररोगमें दिवा निद्रा हितकर है। इन्द्रियोंका विषय अर्थात् शब्दस्पर्शादिका ज्ञान न होना, शरीरकी गुरुता, जृम्भण क्लान्ति और निद्रामें कातरता ये सब तन्द्राके लक्षण हैं। तमोगुणके वातश्लेष्माके साथ मिलनेसे तन्द्रा और श्लेष्माके साथ मिलनेसे निद्रा होती है। (सुश्रुत शारीरस्थान ४ अ०)

जिस समय देही आत्मा तमसे आक्रान्त रहती है उस समय निद्रा आ जाती है। सत्त्वगुणके प्राबल्य होनेसे ज्ञान होता है, इस समय अन्तरात्मा विश्राम करती है, इसी कारण इसे निद्रा कहते हैं। अन्तरात्मा इस समय मायाके वा दोनों भ्रूके मध्यस्थलमें लीन रहती है। निद्रारहित व्यक्ति—

"अधोमिथ्या दरिद्रस्य परप्रेष्यकरस्य च।
परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च॥"

सुखसुप्त—

"सुखं स्वपित्यनृणवान् व्याधिमुक्तश्च यो नरः।
सावकाशस्तु यो भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न सङ्गतः॥"

(गरुड़-नीतिसार)

दरिद्र, पराधीन परदाररत क्या कभी सुखसे सो सकता है? जिन्हें किसी प्रकारका ऋण नहीं है, जो व्याधिमुक्त हैं जो विशेष परिश्रम नहीं करते और स्वच्छन्द भोजन करते हैं वे ही सुखसे सोते हैं।

धर्मशास्त्रके मतसे एक प्रहर रात्रिके बाद भोजनादि करके निद्राको जाय और चार दण्ड रात रहते निद्राका परित्याग करे। निर्जन पवित्र स्थानमें मनोहर शय्या पर सोनेसे नींद बहुत जल्द आती है। सोनेके पहले सिरहानेमें एक लोटा जल भरके निम्नलिखित वैदिक वा गारुड़ मन्त्रसे रक्षा करना मङ्गलप्रद है।

"शुची देशे विविक्ते तु गोमयेनोपलिप्तके।
प्रागुदक्प्रवणे चैव संविशेत्तु सदा बुधः॥
माङ्गल्यं पूर्णकुम्भं च शिरःस्थाने निधापयेत्।
वैदिकैर्गारुडैर्मन्त्रै रक्षां कृत्वा स्वपेत्ततः॥"

(आह्निकतत्त्व)

अपने घरमें पूर्वकी ओर मस्तक करके सोना चाहिये। आयुष्कामी व्यक्ति दक्षिणकी ओर मस्तक रख

कर भी सकते हैं। प्रवासिव्यक्तिको पश्चिमकी ओर मस्तक रख कर सोना चाहिए। उत्तरकी ओर मस्तक रख कर सोना अतिशय दूषणीय है। पूर्वकी ओर सिराहना करके सोनेसे धन-प्राप्ति, दक्षिणकी ओर आयुवृद्धि, पश्चिमको ओर प्रबल चिन्ता और उत्तरको ओर सिराहना करके सोनेसे मृत्यु होती है।

निद्रा जानेके पहले विष्णुको प्रणाम करना अवश्य कर्त्तव्य है। इन सब स्थानोंमें कदापि सोना न चाहिये, शून्यालय, निर्जन घर, श्मशान, एक वृक्ष, चतुष्पथ, महादेवगृह, पथरीली जमीनके ऊपर, धान्य, गो, विप्र, देवता और गुरुके ऊपर। इसके अलावा भग्नशयन और अशुचि हो कर अथवा आर्द्र वासमें वा नग्नावस्थामें, खुले शिरसे, खुले मैदानमें तथा चैत्यवृक्षके तले सोना मना है। (आह्निकतत्त्व)

निद्राकर (सं॰ त्रि॰) निद्रायाः करः। निद्राकारक, सुलानेवाला।

निद्राकरम् (सं॰ क्ली॰) सुनिषण्णक शाक, एक प्रकारका साग।

निद्राकर्षण (सं॰ क्ली॰) निद्रायाः आकर्षणः। निद्राका आकर्षण, निद्रालुता।

निद्राकारिन् (सं॰ त्रि॰) निद्रा-कृ णिनि। निद्राकर, निद्राकारक, सुलानेवाला।

निद्राकाल (सं॰ पु॰) निद्रायाः कालः। निद्राका काल, सोनेका समय।

निद्राकुल (सं॰ त्रि॰) निद्रायाः आकुलः। निद्रातुर, निद्रापीड़ित।

निद्राकृष्ट (सं॰ त्रि॰) निद्रया आकृष्टः। आगतनिद्र, जिसे नींद आ गई हो।

निद्राक्रान्त (सं॰ त्रि॰) निद्रया आक्रान्तः। निद्राकुल, निद्रातुर।

निद्रागत (सं॰ त्रि॰) निद्रांगतः। निद्रित, जो सो गया हो।

निद्रागार (सं॰ पु॰) निद्राया आगारः। निद्रागृह, सोनेका कमरा।

निद्रागौरव (सं॰ क्ली॰) निद्राबाहुल्य।

निद्राग्रस्त (सं॰ त्रि॰) निद्रया ग्रस्तः। निद्राकुल, निद्रातुर।

निद्राजनक (सं॰ त्रि॰) निद्राकर, सुलानेवाला।

निद्राण (सं॰ त्रि॰) नि-द्रा क्त, तस्य न, ततो णत्वं। निद्रागत, जो सो गया हो। पर्याय—निद्रित, शयित।

निद्रादरिद्र (सं॰ पु॰) निद्राय, दरिद्रः अभावः। १ निद्राका अभाव, नींदका नहीं होना। २ एक संस्कृतज्ञ कवि।

निद्रान्वित (सं॰ त्रि॰) निद्रया अन्वितः। निद्रित, निद्रागत, सोया हुआ।

निद्राभङ्ग (सं॰ क्ली॰) नींद टूटना।

निद्राभाव (सं॰ पु॰) निद्राया अभावः। १ निद्राका अभाव, नींद नहीं पड़ना। २ योगनिद्रा।

निद्रायमान (सं॰ त्रि॰) जो नींदमें हो, सोता हुआ।

निद्रायोग (सं॰ पु॰) निद्रा और गहरी चिन्ता।

निद्रारि (सं॰ पु॰) नेपालनिम्ब, चिरायता।

निद्रालु (सं॰ त्रि॰) निद्रातीति निद्रा-आलुच् (स्पृहि गृहीति। पा ३।२।१५८) १ निद्राशील, सोनेवाला। (स्त्री॰) निद्रा देयत्वेनास्त्यस्या इति निद्रा वाहुलकात् आलु। २ वार्त्ताकु, बैंगन, भंटा। ३ वनवर्वरिका, वनतुलसी। ४ नली नामक गन्धद्रव्य।

निद्रावस्था (सं॰ स्त्री॰) निद्राया अवस्था। निद्रित अवस्था।

निद्राविमुख (सं॰ त्रि॰) अनिद्र, जागरूक।

निद्रावृक्ष (सं॰ पु॰) निद्राया वृक्ष इव। अन्धकार।

निद्राविघ्न (सं॰ पु॰) निद्राका उपक्रम वा इच्छा।

निद्राशाला (सं॰ स्त्री॰) निद्रागृह, सोनेका कमरा।

निद्राशील (सं॰ त्रि॰) निद्रालु, सोनेवाला।

निद्रासंजन (सं॰ क्ली॰) निद्रां संजनयतीति संजन-णिच्-ल्युट्। १ श्लेष्मा, कफ, कफकी वृद्धिसे निद्रा आती है।

निद्रित (सं॰ त्रि॰) निद्राऽस्य सञ्जातः, निद्रा तारकादित्वादितच्। निद्रागत, सुप्त, सोया हुआ।

निद्रोत्थित (सं॰ त्रि॰) निद्रासे उत्थित, जो सो कर उठा हो।

निधड़क (हिं॰ क्रि॰ वि॰) १ विना किसी रुकावटके, वेरोक। २ विना सङ्कोचके, बिना हिचकके, विना आगा पीछा किये। ३ निःशङ्क, वेखटके, बिना किसी भय या चिन्ताके।

निधन (सं० पु० क्ली०) नि-धा-ल्युट्। १ मरण। २ नाश। ३ जन्मस्थानसे आठवाँ स्थान। ज्योतिषके मतमें इस स्थानसे नदीपार, अत्यन्त वैषम्य, दुर्ग, शस्त्र, आयु और सङ्कटका विचार किया जाता है। यदि जन्मके चौथे स्थान पर सूर्य हों और उस पर शनिकी दृष्टि हो, तो जिस दिन निधनस्थान पर उन ग्रहोंकी दृष्टि होगी, उसी दिन मृत्यु अवश्य होगी।

निधनस्थान पर सूर्यादि ग्रहोंके रहनेसे निम्नलिखित फल मिलते हैं—

यदि जन्मके आठवें स्थान पर सूर्य हो और वह ग्रह सूर्यके उच्च अथवा स्वीय ग्रह हो, तो वह रविग्रह शुभदाता होता है, उच्च स्थान न हो कर यदि अन्य स्थान हो, तो मान्द्यरोगकी सम्भावना है। सूर्य अपनेसे उच्च अथवा अपने गृहमें रह कर जिसके जन्मसे अष्टम स्थानगत होंगे उसकी ज्वरसे मृत्यु होगी। उन दो स्थान छोड़ कर अन्य स्थानमें रहनेसे कष्ट, यातना वा दुःखसे मृत्यु होती है। रविके अष्टम स्थानमें रहनेसे अस्त्राघात, सर्प अथवा ज्वर इन तीनोंमेंसे किसी एक द्वारा स्वजन्मभूमि पर मृत्यु होगी। जन्मसे आठवें स्थान पर चन्द्रके रहनेसे उसे काश, शोथ और ज्वर होता है देहका निम्नभाग क्षय हो जाता है तथा उसकी जलमें मृत्यु होती है। जन्मसे आठवाँ स्थान यदि पापग्रहसे देखा जाय और उस स्थान पर चन्द्र रहे, तो वह थोड़े ही दिनोंके मध्य यमराजका मेहमान बनता है। फिर वह अष्टम स्थान यदि चन्द्रका अपना अथवा शुक्रका वा बुधका घर हो और वह चन्द्र यदि पूर्ण हो, तो क्षय और पित्तरोगकी उत्पत्ति होती है। जन्मसे आठवें स्थान पर मङ्गलके रहनेसे अस्त्र द्वारा अग्नि अथवा राजविचारसे और अकस्मात् कुष्ठ, क्षय, चर्म वा अश्मरी इनमेंसे किसी एक रोगसे आक्रान्त हो कर उस जन्ममें मृत्यु होती है। बाद मरनेके उसे नरक होता है। यदि जन्मसे अष्टमस्थान पर मङ्गल रहे और वह मङ्गल दुर्बल अथवा स्वीय नीचराशिस्थ हो तो वह मनुष्य अत्यन्त भयानक दुष्ट व्रण, अतिसार अथवा ज्वर हो कर किसी निन्दित स्थानमें मरता है। जन्मसे अष्टम राशिमें यदि बुध रहे और वह यदि शुभग्रहका क्षेत्र हो तो [illegible] उसकी मृत्यु होती है। किन्तु वह अष्टमस्थान यदि पापग्रहका क्षेत्र हो, तो शूल, पाद अथवा अङ्ग वा उदरके किसी प्रकारके रोगसे पीड़ित हो कर राजभवनमें उसकी मृत्यु होती है। शुभ-बुध यदि अष्टम स्थान पर हो, तो श्रेष्ठ तीर्थ स्थान पर मरण होता है और वह बुध यदि पापग्रहके साथ मिले हो तथा शत्रुग्रहगत हो, तो मनुष्य [illegible] मरता है। बृहस्पति अपने घरमें किंवा शुभग्रहके घरमें रह कर यदि जन्मकी अष्टमराशिमें हो, तो होश रहते किसी पुण्यतीर्थमें उसका देहावसान होता है और यदि वह स्थान बृहस्पतिका स्वीय ग्रह वा शुभग्रहका ग्रह न हो, तो भी मरते समय उसे होश रहता है। जन्मके अष्टमस्थानमें शुक्रके रहनेसे मनुष्य उत्तमाचारी, राजसेवक, मांसप्रिय और सुबुद्धि होता है तथा उसके दोनों नेत्र स्थूल होते हैं। अन्तिम समय किसी तीर्थमें उसकी मृत्यु होती है। जन्मसे अष्टम स्थानमें शनिके रहनेसे मनुष्य शोकाभिभूत, [illegible] कम्प वा मूत्ररोगाक्रान्त हो विदेशमें अथवा किसी नीच जाति द्वारा निधनको प्राप्त होता है। शनिके अष्टम घरमें रहनेसे मानव दुःखभोगी हो कर देशान्तरवासी होता है। या तो चोरोंसे नीच लोगोंके हाथ या मित्रोंसे उसकी मृत्यु होती है।

राहुके अष्टम स्थानमें रहनेसे प्रबल [illegible] ही उसका मरण होता है तथा वह रोगी, पापकर्मनिरत, गम्भीरस्वभाव, चोर, कृश, कापुरुष और धनवान् होता है। (फलितज्योतिष)

४ ताराविशेष। जन्मनक्षत्रसे सातवाँ, सोलहवाँ और तेईसवाँ नक्षत्र। यह निधन तारा दूषणीय माना गया है। दोषशान्तिके लिये तिल और काञ्चन दान देना चाहिये।

'[illegible] निधने तिलकाञ्चनम्।'

(ज्योतिस्तत्त्व)

५ विष्णु। ६ कुल, खानदान। ७ कुलका अधिपति। ८ पाँच अवयव वा सात अवयवयुक्त सामका अन्तिम अवयव। (त्रि०) निर्गतं धनं यस्य। ९ धनहीन, निर्धन, दरिद्र।

निधनकाम (स० क्ली०) सामभेद।

निधनक्रिया (सं॰, स्त्री॰) निधनस्य क्रिया। मृतव्यक्ति का सत्कार, अन्त्येष्टि क्रिया।

निधनता (सं॰ स्त्री॰) निधनस्य भावः, नि-धन-तल्-टाप्। दरिद्रता, कंगाली।

निधनपति (सं॰ पु॰) प्रलयकर्त्ता, शिव।

निधनवत् (सं॰ त्रि॰) निधनं विद्यते यस्य निधन मतुप्, मस्य वः। १ मरणयुक्त। (क्ली॰) २ निधनावयवयुक्त सामभेद।

निधनी (हिं॰ वि॰) निर्धन, धनहीन, दरिद्र।

निधमन (सं॰ पु॰) निम्बवृक्ष, नोमका पेड़।

निधा (सं॰ स्त्री॰) निधीयते धार्यते बन्धनेनानया नि-धा-अ। १ पाशसमूह। २ निधान। ३ अर्पण।

निधातव्य (सं॰ त्रि॰) नि-धा-तव्य। स्थापनीय।

निधान (सं॰ क्ली॰) निधीयतेऽत्र नि-धा आधारे ल्युट्। १ निधि। २ आधार, आश्रय। ३ लयस्थान, जहां सभी वस्तु लीन हों। ४ अप्रकाश। ५ स्थापन।

निधान—एक कवि। ये अली अकबरखां-महम्मदोके सभापण्डित थे। कविताशक्तिकी विशेष पराकाष्ठा दिखा कर इन्होंने 'शालिहोत्र' नामक हिन्दी भाषामें एक अपूर्व वैद्यकग्रन्थकी रचना की। ये १७५१ ई॰में विद्यमान थे। कवि प्रेमनाथ और पण्डित गुमानजी मिश्र इन्हींके समसामयिक थे।

निधि—एक कवि। ये १६०० ई॰में विद्यमान थे। बाराणसीके राजपण्डित ठाकुर प्रसाद त्रिपाठीने अपने बनाये हुए 'शृङ्गार-संग्रह' ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

निधि (सं॰ पु॰) निधीयतेऽस्मिन्निति नि-धा-कि। १ नलिका नामक द्रव्यविशेष। २ समुद्र। ३ जीवकौषधि, जीवक नामकी दवा। ४ आधार। यथा—गुणनिधि, जलनिधि इत्यादि। ५ विष्णु।

जब प्रलयकाल आता है, तब सभी विष्णुमें लीन हो जाते हैं। विष्णु सभीके आश्रय स्वरूप हैं, इसी कारण निधिशब्दसे विष्णुका बोध होता है। ६ चिरप्रनष्टस्वामिक भूजातधनविशेष, गाड़ा हुआ खजाना। मिताक्षरामें लिखा है, कि पृथ्वीमें गड़ा हुआ धन यदि राजाको मिले, तो उनका आधा ब्राह्मणादिको दे कर आधा उसे ले लेना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मण यदि पावें, तो उसे सब ले लेना चाहिये। क्योंकि इस प्रकारके ब्राह्मण जगत्‌के प्रभु हैं। यदि राजा और विद्वान्‌को छोड़ कर अपण्डित ब्राह्मण वा क्षत्रिय आदि पावें, तो राजाको उन्हें छठां भाग दे कर शेष ले लेना चाहिये। यदि कोई निधि पा कर राजाको संवाद न दे, तो राजाको उसे दण्ड देना चाहिये और सारा खजाना ले लेना चाहिए।

(मिताक्षरा)

यदि कोई मनुष्य निधि पावे और वह निधि खास उसीकी है, ऐसा प्रमाण दिखावे, तो राजाको छठां भाग वा बारहवां भाग ले कर उसे शेष निधि लौटा देनी चाहिये। ७ कुबेरके नौ प्रकारके रत्न। पर्याय—शेवधि, सेवधि।

"पद्मोऽस्त्रियां महापद्मः शंखो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च वर्चोऽपि निधयो नव॥"

(हारावली)

पद्म, महापद्म शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्च ये नौ प्रकारकी निधियां हैं। मार्कण्डेयपुराणमें आठ प्रकारकी निधियोंका उल्लेख है। यथा—

"पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याधिदेवता।
तदाधाराश्च निधयः स्तान्मे निगदतः शृणु॥"

(मार्कण्डेयपु॰ ६८ अ॰)

पद्मिनी नामकी विद्याकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं। ये सब निधियां उन्हींको आश्रित हैं। पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील और शङ्ख ये आठ प्रकारकी निधियां है। जहां ऋद्धिका आविर्भाव है इनका भी आविर्भाव वहीं है और वहां बहुत जल्द सब प्रकारकी सिद्धियां लाभ होती हैं। देवताओंको प्रसन्नता तथा साधुओंकी सेवा, इन्हीं दो उपायोंसे यह निधि प्राप्त होती है।

पद्मनिधि—यही निधि प्रथम निधि और समयको अधिकृत है। पुत्र और पौत्रादि क्रमसे इस निधिका भोग होता है। पुरुष यदि इस निधिसे अधिष्ठित हो, तो वह दाक्षिण्यसार, सत्त्वाधार और परमभोगशाली होता है। यह निधि सत्त्वगुणमें अधिष्ठित है। इसके प्रभावसे मनुष्य सुवर्ण, रौप्य और ताम्रादि जितने धातुएं हैं

रत्नोंका भोग करता और क्रय विक्रय करता है।

महापद्मनिधि—यह भी सत्त्वगुणका आधार है। इसके अधिष्ठानसे सभी मनुष्य सत्त्वगुणप्रधान होते हैं और सर्वदा पद्मरागादि रत्न प्रवाल और मुक्तादिका भोग तथा उन सब रत्नोंका क्रय विक्रय करते हैं। पुत्र पौत्रादिक्रमसे इस निधिका भोग होता है।

मकरनिधि—यह तमःप्रधान है। जिसके पास यह निधि है वह व्यक्ति सत्त्वप्रधान होने पर भी तमःप्रधान होता है तथा बाण, खड्ग, ऋष्टि, धनु और चर्म इनका भोग करता है। राजाके साथ भी उसको मित्रता होती है।

कच्छपनिधि—यह निधि भी तमःप्रधान है, इसी कारण जिसके पास यह निधि रहती है, उसका स्वभाव भी तमःप्रधान होता है। वह मनुष्य पुरुषपरम्परासे वस्तु छानसम्बन्धी अनेक प्रकारके व्यापारमें प्रवृत्त रहता है। किसी पर उसका विश्वास नहीं होता। जिस प्रकार कच्छप अपना सारा अङ्ग संहरण करता है, उसी प्रकार वह भी आयत्तचित्त हो कर जनताके चित्तको संहरणपूर्वक आत्मभाव छिपाये रहता है। वह मनुष्य विनाशके भयसे कोई वस्तु किसीको नहीं देता और आप भी उसका भोग नहीं करता। वह वस्तु जमीनमें गाड़ रखता है।

मुकुन्दनिधि—यह निधि रजोगुणप्रधान है। इस निधिकी दृष्टि होनेसे स्वभाव भी रजोमय होता है। वह मनुष्य वीणा वेणु, मृदङ्ग आदिका उपभोग करता तथा गायक और नर्त्तकोंको वित्त देता है। बन्दी, सूत, मागध और नाविकोंको रातदिन भोज्यवस्तु देता और आप भी उनके साथ भोग करता है। कुलटा तथा इसी प्रकारके अन्यान्य व्यक्तियोंके प्रति उसकी आसक्ति होती है। यह निधि जिसको भजना करती है वह एकका ही सङ्गी होता है।

नन्दनिधि—यह निधि रज और तमोगुणविशिष्ट है। इसकी दृष्टि होनेसे मनुष्य धनवान् होता तथा वह तरह तरहके धनरत्नादिका भोग और क्रय विक्रयादि करता है। वह मनुष्य स्वजन, आगत, अभ्यागत सबोंको आश्रय देता है। वह जरा-सा भी अपमान सह नहीं सकता। कोई उसके पाससे निष्फल लौट नहीं पाता, और स्तवोंको वह मुंह माँगा दान देता है। उस व्यक्तिको पत्नी भी सौन्दर्यशालिनी होती है तथा उसके अनेक सन्तान होती हैं। सात पीढ़ी तक इस निधिका भोग होता है। इस निधिके अधिपति होनेसे जीवन-काल तक सुखसे समय व्यतीत करते हैं।

नीलनिधि—यह निधि सत्त्व और रजःप्रधान है। जिसके प्रति इसकी दृष्टि पड़ती है उसका स्वभाव भी सत्त्व और रजःप्रधान होता है। वह मनुष्य तरह तरहके वस्त्र, कपास धान्यादि, फल पुष्प मुक्ता, विद्रुम, शङ्ख और शुक्तिका भोग करता है। इन सब द्रव्योंमें उसका जरा भी अनुराग उत्पन्न नहीं होता। उसका अधिकांश समय तड़ाग, देवालय आदि संस्थापनमें बीतता है। यह निधि तीन पीढ़ी तक रहती है।

खर्वनिधि—यह निधि रज और तमोमय है। जिसके पास यह निधि है उसका स्वभाव भी रजः और तमोमय होता है। यह निधि केवल एक पीढ़ी तक रहती है। इस निधिका अधिपति स्वयम्भोजन करता तथा केवल अपनेको ही अच्छे अच्छे व्यवहारोंसे सजाना पसन्द करता है। दूसरेकी बात तो दूर रहे, अपनी स्त्री और बच्चोंको भी कुछ नहीं देता है। यह पद्मिनी देवी इन सब निधियोंके ऊपर अपना आधिपत्य फैलाए हुई है। (मार्कण्डेयपु० ६८ अ०)

८ पौरव भीम नृपविशेष। ये राजा [illegible]के पुत्र थे। ब्रह्मपुराणादिमें ये निरामित्र नामसे प्रसिद्ध हैं। ९ महादेव, शिव। १० ऋषियोंका कल्पमूल पाकयुत वेद। निधिगौर देवी। ११ नौ की संख्या।

निधिगोप (सं० पु०) निधिस्वरूपोपायभूतपाठो वेदस्य गोपयति, गुप-अण्। वह जो वेद वेदाङ्गमें पारगत हो कर गुरुकुलसे आया हो।

निधिनाथ (सं० पु०) निधीनां नाथः। निधियोंके स्वामी, कुबेर। पर्याय—निधीश, निधीश्वर, निधिप्रभु।

निधिनाथ (सं० पु०) एक संस्कृतज्ञ पण्डित। इन्होंने न्यायपारस पद नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

निधिप (सं० पु०) निधिं-पा-क। धनेश्वर, कुबेर।

निधिपति (सं० पु०) निधीनां पति। कुबेर।

निधिपा (सं० पु०) यक्षाधिपति ।

निधिपाल (सं० पु०) यक्षेश्वर, कुबेर ।

निधिमत् (सं० वि०) धनयुक्त, जिसके पास धन हो ।

निधिराम कविचन्द्र—एक विख्यात कवि । ये विष्णुपुरके राजा गोपालसिंहके सभा-पण्डित थे । इन्होंने बङ्गलाभाषामें संक्षिप्त रामायण और महाभारत तथा श्रीमद्भागवतके आधार पर गोविन्दमङ्गल, दाताकर्ण आदि कई एक छोटे बड़े ग्रन्थ लिखे हैं ।

निधिराम गुप्त—एक सुभावजात बङ्गाली कवि । इनका प्रकृत नाम रामनिधि था । १६६३ शकको वैद्यवंशमें ये उत्पन्न हुए थे । ईष्ट इण्डिया-कम्पनीके अधीन ये काम करते थे । १७५६ शक अर्थात् १८३४ ई०में ८४ वर्षकी अवस्थामें इनका देहान्त हुआ ।

निधिराम शर्मा—एक ग्रन्थकार । इन्होंने 'आचारमाला' नामक एक संस्कृत ग्रन्थ बनाया है ।

निधिवास (निवास)—१ अहमदनगरके अन्तर्गत एक महकूमा । इसके उत्तरमें गोदावरी नदी निजामराज्यकी सीमा निर्देश करती है, पूर्वमें शिवगांव, दक्षिणमें नगर और पश्चिममें राहुड़ी है । क्षेत्रफल ४७७१३८ एकड़ है । इसमें १८० ग्राम लगते हैं । १८१८ ई०में यह अंगरेजोंके शासनाधीन हुआ ।

कहते हैं, कि प्राचीन हिन्दू राजाओंके समय निधिवास अत्यन्त समृद्धिशाली था । यहां अनेक सुसभ्य मनुष्य रहते थे । १४८० से १६३६ ई० तक यह नगर निजामशाही राजाओंके राज्यभुक्त था । १६३६ ई०में यह मुगलसम्राट् शाहजहान्‌के हाथ लगा । १८वीं शताब्दीमें शिवाजीके पौत्र शाहुने यौतुकमें यह स्थान प्राप्त किया । १७५८ ई० तक यह नगर यथार्थमें महाराष्ट्रोंके ही अधीन रहा । अधिवासिगण इस नगरको निवास कहते हैं ।

१८०१-१८०३ ई०में होलकर इसी नगरके मध्य हो कर पूना जाते आते थे जिससे यहांके लोग विशेष क्षतिग्रस्त हो गये थे । पीछे १८०६ ई० तक दुर्दान्त भीलजाति इस देशमें लूटमार मचाती रही । उसी साल दुर्भिक्ष भी पड़ गया, इन सब कारणोंसे देश जनशून्य और हतश्री हो पड़ा । अन्तमें १८१८ ई०में जब यह अंगरेजोंके हाथ लगा, तबसे यहां चारों ओर शान्ति विराजने लगी ।

किसी किसीका कहना है, कि १६०५ ई०में मालिक अम्बरने 'निवास'को दिल्लीके अधीन कर लिया, लेकिन इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं मिलता । यहां 'मिथावनी' नियम प्रचलित था । कुल खजानाको 'तंखा' या 'कमाल' और एक ग्राममें जितनी जमीन पड़ती थी, उसके क्षेत्रफलको 'रकबा' कहते थे । ग्यारह ग्रामोंमें 'मुण्डबन्दी' नियमानुसार मालगुजारी वसूल होती थी । निवासमें तरह तरहके कर वसूल किये जाते थे, जिससे लोग बहुत तंग आ गये थे ।

इस प्रदेशमें निवास, शोनाई, घन्दा आदि बारह शहर हैं । यहां तथा आसपासके शहरोंमें बहुसंख्यक तांती रहते हैं । प्रतिवर्ष यहांसे हाथके बुने हुए कपड़ेकी रफ्तनी होती है । धांगड़ लोग एक प्रकारका कम्बल तैयार करते हैं ।

अहमदनगरसे औरङ्गाबादका रास्ता इसी शहर हो कर गया है । इसके अलावा एक दूसरा रास्ता निवासके सिङ्गरकेश होता हुआ पैठानको चला गया है ।

२ उक्त महकूमेका एक सदर । यह अक्षा० १८ ३४´ उ० और देशा० ७५´ पू०के मध्य अहमदनगरसे ३५ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है । यह एक दातव्य चिकित्सालय है । यह शहर १८७७ ई०में बसाया गया है । निवासके पश्चिम प्रायः आध पावकी दूरी पर एक प्रस्तर-स्तम्भ देखनेमें आता है जिसका घेरा ४ फुटसे कम नहीं होगा । ऐसा अनुमान किया जाता है, कि यह मन्दिरका भग्नांश है और ध्यानदेवका स्तम्भ कहलाता है । प्रवाद है, कि ध्यानदेवने इसी स्तम्भ पर टेक दे कर भगवद्गीताकी रचना की थी (१२७१-१३०० ई०में) । स्तम्भ एक घरके बीच मट्टीमें गड़ा हुआ है । मट्टीके ऊपर इसकी लम्बाई प्रायः ४२ फुट है । इसका निचला भाग चिपटा और ऊपर तथा नीचेका भाग गोल है । जहां चिपटा है, वहां एक शिलालिपिमें दो संस्कृत पद और ७ छन्द लिखे हुए हैं । *

१२९० ई०में महाराष्ट्रकवि ध्यानेश्वरने निवासमें

* See Bom Gaz Vol XVII, p 729.

प्रवाद है, कि चौराधिकाने कष्णमें जब मणिमुक्ताके अल-ङ्कार माँगे थे, तब उन्होंने मायायोगसे मणि और मुक्ता-से वृक्षको सृष्टि की थी। इसी अपरिमेय और अमूल्य निधिके कारण यह निधुवन नामसे मशहूर है। श्रीकृष्ण-ने मक्खन खा कर पेड़में हाथ पोंछा था, ऐसा प्रवाद है और वे श्रीराधिकाका नूपुर ले कर एक पेड़ पर छिप रहे थे, इस कारण कुछ पेड़ोंमें नूपुराकृतिके फल देखे जाते हैं। यह वन नारायणभट्टसे आविष्कृत चौरासी वनके अन्तर्गत है।

निधृति (सं० पु०) हरिणपुत्रभेद, हरिणके एक पुत्रका नाम।

निधेय (सं० वि०) नि धा-यत्। स्थाप्य, स्थापन करने योग्य।

निधौली—युक्तप्रदेशके एटा जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। फर्रुखाबादके नवाबके राजस्व-कर्मचारी खुमानसिंहने यहां एक दुर्ग बनवाया था जिसका खंडहर आज भी नजर आता है। यह स्थान नील और रूईके कारबार-के लिये प्रसिद्ध है।

निध्यान (सं० क्ली०) नि-ध्यै-ल्युट। १ दर्शन, देखना। २ निदर्शन।

निध्रुव (सं० पु०) गोत्र प्रवर्त्तक ऋषिभेद।

निध्रुवि (सं० वि०) नितरां ध्रुवति ध्रु स्थैर्ये क्वि। १ स्थैर्यान्वित, स्थिरतायुक्त, जिसमें चञ्चलता न हो। (पु०) २ एक काश्यप। कात्यायनके ऋग्वेदानुक्रमणिकाके मतसे ये नवम मण्डलके ६३ सूक्तके ऋषि थे।

निध्वान (सं० पु०) ध्वन शब्दे नि-ध्वन-घञ्। शब्दमात्र।

निनङ्क्षु (सं० वि०) नष्टुमिच्छुः नश सन्, 'मस्जिनशो-र्झलि' इति नुम्। नाश करनेमें इच्छुक।

निनद (सं० पु०) नि-नद अप् (नौगदनदपठस्वनः। पा ३।३।६४) १ शब्द, आवाज। २ रवतुल्यशब्द, सरसराहट।

निनन्दु (सं० स्त्री०) मृतवत्सा, मरा हुआ बछड़ा।

निनय (सं० स्त्री०) नम्रता, नीताई, आजजी।

निनयन (सं० क्ली०) नि-नी-ल्युट। १ निष्पादन। २ प्रणीताके जलको कुशसे यज्ञकी वेदी पर छिड़कनेका ...

निनरा (हिं० पु०) न्यारा, अलग, जुदा, दूर।

निनर्तराज (सं० पु०) ऐक्ष्वाकुवंशके एक पुत्रका नाम।

निनर्द (सं० पु०) नि नर्द भावे-घञ्। वेदशब्दका उच्चारणभेद।

निनाद (सं० पु०) नि-नद भवे घञ्। शब्दमात्र, आवाज।

निनादित (सं० वि०) निनाद अस्य सञ्जातः तारकादि-त्वादितच्। शब्दित, ध्वनित।

निनादिन् (सं० वि०) नि नद-णिनि। निनादकारी, शब्द करनेवाला।

निनान (हिं० वि०) १ बिलकुल, एकदम, घोर। २ निकृष्ट, बुरा।

निनार (हिं० वि०) निनारा देखो।

निनारा (हिं० वि०) १ भिन्न, न्यारा जुदा, अलग। २ दूर, हटा हुआ।

निनावाँ (हिं० पु०) जीभ, मसूड़े तथा मुंहके भीतरके और भागोंमें निकलनेवाले महीन महीन लाल दाने जिनमें छरछराहट और पीड़ा होती है।

निनावी (हिं० स्त्री०) १ वह वस्तु जिसका नाम लेना अशुभ या बुरा समझा जाता हो। २ चुड़ैल, भुतनी।

निनाह्य (सं० पु०) नीचैर्नाह्या भूमौ निखननीयः नि-नह कर्मणि ण्यत्। भूमि पर खननीय माणिक।

निनित्सु (सं० पु०) निन्दितुमिच्छुः, निन्दि-सन्-उ, वेदे निपातनात् साधुः। निन्दा करनेमें इच्छुक, जो निन्दा-यन करना चाहता हो।

निनिभि (Nineveh)—ऐतिहासिक जगत्‌में एक अत्यन्त प्राचीन नगर। यह टाइग्रीस नदीके पूर्व किनारे और वर्त्तमान मुसल राजधानीसे दूसरे किनारे अवस्थित था। १८वीं शताब्दीके पहले यहां आसिरीय राजाओंकी राज-धानी थी। उस समयके वाणिज्यकी उन्नति, गृहादिका सौन्दर्य और कारुकार्य देखनेसे मालूम पड़ता है कि एक समय यह समृद्धिशाली नगर था। उस समय इसकी लम्बाई और चौड़ाईका विस्तार आठ मील था। राजधानी दुर्गसे सुरक्षित थी और बहुसंख्यक वणिक्, व्यवसायकी कामनासे यहां रहते थे। जब योनस् इस-रायलके राजा जेरोबोयमसे आदिष्ट हो कर यहां आये थे,

इस समय नगर संस्थित बाजारमें तीन दिन लगी थी। इसके बाद दियदोरस सिकुलस (Diodorus Siculus) जिस समय यहां आए, उस समय इसकी चहुंसीमा ८० मील थी और सीमान्तप्रदेश १०० फुट ऊंचे प्राचीरसे घिरा था। उस विस्तृत प्राचीरके बीच बीचमें कुल १५०० बुर्ज थे। प्राचीरके प्रशस्त विषयमें उनका यह भी कहना है, कि उसके ऊपर तीन गाड़ी एक साथ अच्छी तरह जा सकती थीं। ६०० ई० सन्‌में यहांके अधिवासी राज आर्दिनेपल्‌ सके राजत्वकालमें प्रदत्त अनेक अनुशासन लिपियां पाई जाती हैं। उन अनुशासनोंमें अधिकांश अभी यूरोपखण्डमें विद्यमान हैं।

६०६ ई० सन्‌में यहांके मादिकान, इजिप्ट, सिडिया, आर्मेनिया आदि स्थानों के राजाओं ने मिल कर इस नगर पर आक्रमण किया था। निनिभिराज असुर इनिबीने राजप्रासादमें आग लगा कर सपरिवार जीवन विसर्जन किया। इसी समयसे निनिभिके अधःपतनका सूत्रपात आरम्भ हुआ, यहांके अधिवासी असुर निनो और उनकी सहधर्मिणी अस्तिं‌तु बेलोदककी तथा उन्हीं को ज्ञिराद्भूतचित, उस्तर, निसंश, निनिप, बल, अय और हिय नामक देवताओं की पूजा करते थीं। इनके पुस्तकागारमें कोषाकार अक्षरों में लिखित कितनी हुई अनेकों अनुशासनलिपि पाई गई है। उस समय इनका धर्म, विज्ञान, भाषा और शिल्प प्रथाको आदि-कौतिकों को थी।

यह नगर इतना तहस नहस हो गया कि इसका विषय पढ़नेसे ही आश्चर्य जाना पड़ता है। रिमव साहबने इस स्थानके परिदर्शन कालमें अनुमान किया था, कि यहां तादाद १०००० शिलालिपियां हो थी। वर्त्तमान समयमें अस्तिकाष्ठ,ण खोद कर और कुछ भी प्राचीन नगरका स्मृतिचिह्न रह न गया है।

निनीषा (स० स्त्री०) नेतुमिच्छा नी-सन्-अप टाप। एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जानेकी इच्छा।

निनीषु (स० त्रि०) नेतुमिच्छु,-नी सन्-उ। नयनेच्छु, ले जानेका अभिलाषी।

निनौना (हि० क्रि०) झुकाना, नवाना, नीचे करना।

निनौरा (हि० पु०) नाना या नानीका घर। वह स्थान जहां नानानानीका वास हो।

निन्दक (स० त्रि०) निन्दति तच्छील निदि कुत्सायां ण्वुल्‌ (निन्दहिंसेति। पा ३।२।१४६) निन्दाकारी, दूसरो के दोष या बुराई कहनेवाला।

"न भारः पर्वता भारा न भारः सप्तसागराः।
निन्दका हि महाभारा भारा विश्वासघातकः ॥"
(कर्मलोचन)

पृथ्वीके लिए पर्वत या सप्तसागर भार नहीं है, किन्तु विश्वासघातक या निन्दक महाभार है। पृथ्वी इनका भार सहन नहीं कर सकती।

निन्दतम (स० त्रि०) निन्द निन्दार्हं तम इष्ठतम वध। निन्दितवस्तु।

निन्दन (स० क्ली०) निदि कुत्सायां भावे ल्युट्‌। निन्दा, बुराईका वर्णन।

निन्दनीय (स० त्रि०) निदि-अनियर। १ निन्द्य निन्दा करने योग्य, बुरा कहने लायक। २ गर्ह्य, बुरा।

निन्दा (स० स्त्री०) निन्दनमिति निदि-अ, (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) १ अपवाद, दुष्कृति, बदनामी, कुत्सा ि। पर्याय—निन्दन, अवर्ण, आक्षेप, निर्वाद परीवाद, अपवाद, उपक्रोश, जुगुप्सा, कुत्सा, गर्हण विक् क्रिया।

जहां गुरुका परीवाद अथवा निन्दा होती हो, उस जगह खड़ा नहीं रहना चाहिये, अगर खड़ा रहे भी तो दोनों कान मूंद ले। निन्दा और परीवादमें प्रभेद यह है, कि जो दोष उसमें नहीं हैं, वे सब दोष उस पर लगा कर दूसरेके सामने कहनेको निन्दा और जो दोष वास्तवमें हैं उसके कथनको परीवाद कहते हैं। कुल्लूकने अपनी व्याख्यामें कहा है, कि विद्यमान दोषके अभिधानको परीवाद और अविद्यमान दोषके अभिधान को निन्दा कहते हैं।

देवता और द्विज आदिकी निन्दा महापापजनक है। इसका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

शिव और विष्णुके भक्त, ब्राह्मण, राजा, पिता गुरु, पतिव्रता स्त्री, यति भिक्षु, ब्रह्मचारी और देवता इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। करनेसे जब तक चन्द्र सूर्य रहेंगे, तब तक कालसूत्र नामक नरकका भोग होता है। वहां दिवारात्र दीप्मा, मूत्र और पुरीष

पर सोना पड़ता है। कीड़े मकोड़े उसके अंग प्रत्यंग खाते हैं और इससे वह बहुत व्याकुल हो कर चीत्कार करता है।

देवादिदेव शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सीता, तुलसी, गङ्गा, वेद, सभी व्रत, तपस्या, पूजामन्त्र, मन्त्र प्रद गुरु इन सबकी जो निन्दा करते हैं, वे विधाताकी परमायुके अर्द्धकाल तक अन्धकूप नरकमें पतित होते हैं और सर्पसमूहसे भक्षित हो कर घोर शब्द करते हैं।

जो हृषीकेशको अन्य देवताओंके साथ समान मानते हैं और राधा तथा तदङ्गजा गोपियों और सद्‌ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, वे अवट नामक नरकमें सदाके लिये वास करते हैं। इस नरकमें रह कर उन्हें श्लेषा, मूत्र और पुरीष खाना पड़ता है।

परनिन्दा मात्र ही दूषणीय है, इस कारण पर निन्दाका त्याग करना सर्वतोभावसे उत्तम है। केवल अपनी निन्दा करनेसे यश प्राप्त होता है।

(ब्रह्मवैवर्त्त पुराण श्रीकृष्णजन्म० ४०।४१ अ०)

कौर्म्म उपपुराणमें लिखा है, कि जो वेद, देव और ब्राह्मणकी निन्दा करते हैं उनका मुख देखनेसे पाप होता है। अपनी प्रशंसा, वेदनिन्दा और देवनिन्दाका यत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये।

जहां पर सज्जनोंकी निन्दा होती हो, उस स्थान पर किसी हालतसे ठहरना न चाहिए और यदि ठहर भी जाय तो चुप रहना ही उचित है। साधुनिन्दकके मतानुसार भूल कर भी न चलना चाहिए।

निन्दाकर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-अप्, निन्दाया करः। अपवादक, निन्दा करनेवाला, दूसरेके दोष या बुराई कहनेवाला।

निन्दान्वित (सं० त्रि०) निन्दया अन्वितः। निन्दायुक्त, निन्दित, बुरा।

निन्दावादार्थ (सं० पु०) निन्दारूपोऽर्थवादः। मीमांसकोंके मतानुसार अर्थवाद भेद।

निन्दार्ह (सं० त्रि०) निन्दनीय, निन्दाके योग्य।

निन्दास्तुति (सं० स्त्री०) निन्दया स्तुतिः। व्याजस्तुति, निन्दाके बहाने स्तुति।

निन्दित (सं० त्रि०) निन्दा-अस्य जाता, इति। निन्दायुक्त, जिसे लोग बुरा कहते हैं। पर्याय—धिक्‌कृत, अपध्वस्त, सिभर्त्सित।

"मधु पश्यति मूढ़ात्मा प्रपात नैव पश्यति।
करोति निन्दितं कर्म्म नरकान्न बिभेति च॥"

(देवीभाग० ४।७।४८)

शास्त्र और लोकाचारमें जो विहित नहीं है, उसे निन्दित कहते हैं। अहितभोजन और ब्राह्मणकर्तृक शूद्रका प्रतिग्रह ये सब निन्दित शब्दवाच्य हैं।

निन्दितव्य (सं० त्रि०) निन्द-तव्य। निन्दनीय।

निन्दितृ (सं० त्रि०) निदि, कुत्सायां तृच्। निन्दाकारक, दूसरोंके दोष या बुराई कहनेवाला।

निन्दिन् (सं० त्रि०) निन्द इनि। निन्दाकारी।

निन्दु (सं० स्त्री०) निन्द्यतेऽप्रजस्त्वेनासौ निदि कुत्सायां औणादिक उ। मृतवत्सा, वह औरत जिसके सन्तान हो कर मर मर जाती हो।

निन्द्य (सं० त्रि०) निन्द-यत्। १ निन्दनीय, निन्दा करनेयोग्य। २ दूषित, बुरा।

निन्द्यता (सं० स्त्री०) निन्द्यस्य भावः निन्द्य-तल्-टाप्। निन्दनीयता, दूषणीयता।

निन्यानबे (हिं० वि०) १ नब्बे और नौ, जो संख्यामें एक कम सौ हो। (पु०) २ नब्बे और नौकी संख्या, ९९।

निप (सं० पु० क्ली०) नियतं पिबत्यनेन नि पा घञर्थे क। १ कलस। (पु०) नीप पृषोदरादित्वात् साधुः। २ कदम्बवृक्ष।

निपसति (सं० स्त्री०) नीचा पसतिः। घोड़ोंकी दाहिनी बगलकी तरह हड्डियोंमेंसे दूसरी हड्डी।

निपट (हिं० अव्य०) १ विशुद्ध, खाली, निरा। २ नितान्त, एकदम, बिलकुल।

निपटना (हिं० क्रि०) निबटना देखो।

निपट निरञ्जनस्वामी—एक कवि। इनका जन्म १५९३ ई०में हुआ था। शिवसिंहके मतसे ये तुलसीदासकी जैसे निष्ठावान्‌ धार्मिक थे। 'शान्त-सरसी' और 'निरञ्जन' नामक दो ग्रन्थोंके सिवा इनके बनाये हुए और भी छोटे छोटे हिन्दीपद्य ग्रन्थ पाये जाते हैं।

निपटाना (हिं० क्रि०) निबटाना देखो।

निपटारा (हिं० पु०) निबटारा देखो।

निपटाना (हि० पु०) निबटाना देखो।

निपटेरा (हि० पु०) निबटेरा देखो।

निपठ (सं० पु०) निपठनमिति नि-पठ अप् (नौ गदनद पठस्वनः। पा ३।३।६४) पाठ, अध्ययन।

निपठित (सं० त्रि०) नि पठ-क्त। जो पढ़ा गया हो।

निपठितिन् (सं० त्रि०) नि पठितमनेन इष्टादित्वात् कर्त्तरि इनि। कृतपाठ, जो पढ़ा गया हो।

निपतन (सं० क्ली०) नि-पत-ल्युट्। निपात, अधःपतन, गिराव।

निपतित (सं० त्रि०) नि पत क्त। पतित, गिरा हुआ।

निपत्यरोहिणी (सं० स्त्री०) निपत्य रोहिणी रोहितवर्णा स्त्री सद्रश। निपत्यरोहितवर्णा स्त्री।

निपत्या (सं० स्त्री०) निपतन्त्यस्यामिति, नि पत क्यप्, ततष्टाप्। (संज्ञायां समजनिषदनिपतेति। पा ३।३।९९) १ युद्धभूमि। २ पिच्छिलभूमि मोटो चिकनी जमीन ऐसी भूमि जिस पर पैर फिसले।

निपरण (सं० क्ली०) निश्चित परणं प्रीतिः नि पृ प्रीतौ भावे ल्युट्। प्रीत्यभाव, प्रीतिका अभाव।

निपलाश (सं० त्रि०) निपतित पलाश यस्य। निपतित पत्र।

निपाक (सं० पु०) नियमेन पचनमिति नि-पच-घञ्। पाक।

निपात (सं० पु०) नि-पत भावे घञ्। १ पतन, पात, गिराव। २ मृत्यु, क्षय, नाश। ३ अधःपतन। ४ विनाश। ५ शाब्दिकोंके मतसे वह शब्द जिसके बननेके नियमका पता न चले अर्थात् जो व्याकरणमें दिए नियमोंके अनुसार न बना हो।

निपातन (सं० क्ली०) निपात्यतेऽनेनेति नि पत-णिच करणे ल्युट्। १ मारण, वध करनेका काम। २ गिरानेका काम। ३ अधोनयन। पर्याय—अवपात, निपातन। ४ व्याकरणके लक्षण द्वारा अनुत्पन्नपदसाधन, व्याकरणके नियमके प्रतिकूल, व्याकरणका पदसिद्ध करनेके लिये सूत्रोक्त जो सब नियम हैं, उनका अतिक्रम कर पदसाधन।

जो सब पद व्याकरणके लक्षण द्वारा साधित नहीं होते हैं वह पद निपातप्रयुक्त सिद्ध हुए हैं।

निपातप्रयुक्त पदसिद्ध करनेमें किसी किसी वर्णका आगम और कहीं वर्णविकार अथवा वर्णनाश करना होता है।

निपातना (हि० क्रि०) १ गिराना, नीचे गिराना। २ नष्ट करना, काट कर गिराना। ३ वध करना, मार गिराना मारना।

निपातनीय (सं० त्रि०) नि-पत णिच् अनीयर्। गिराने उपयुक्त, वध करने योग्य।

निपातित (सं० त्रि०) नि पत-णिच्-क्त। अधोनीत, जो नीचे फेंक दिया गया हो।

निपातिन् (सं० पु०) निपातः अस्त्यस्य इनि। १ महादेव। ये सभीका निपात अर्थात् नाश करते हैं, इस कारण इनका यह नाम पड़ा है। (त्रि०) २ गिरानेवाला फेंकनेवाला, चलानेवाला। ३ घातक, मारनेवाला।

निपाती (हि० वि०) निपातिन् देखो।

निपाद (सं० पु०) निकृष्टो न्यग्भूतो पादोयस्य। निम्न प्रदेश।

निपान (सं० स्त्री०) निपीयतेऽस्मिन्निति। नि पा आधारे ल्युट्। १ कूप के पास दीवार घेर कर बनाया हुआ कुण्ड या छोटा कुंआ गड्ढा। इसमें पशुओं आदिके पीनेके लिए पानी इकट्ठा रहता है। २ गो-दोहन पात्र, दूध दुहनेका बरतन। ३ तालाब, गड्ढा, गर्त्ता।

"परकीय निपानेषु न स्नायाच्च कदाचन।

निपानकर्त्तुः स्नात्वा च दुष्कृतांशेन लिप्यते॥"

(मनु ४।२०१)

'निपिबन्त्यस्मिन्नतो पेयं निपानं तडागादि'

(मेधातिथि)

यहां पर निपान शब्दका अर्थ जलाशय मात्र है। दूसरेके निपानमें कदापि स्नान नहीं करना चाहिये, करनेसे निपानकर्त्ताका चौथाई पाप स्नानमें लगा जाता है। नि पा भावे-ल्युट्। ४ निःशेष पान।

निपानी—बम्बई प्रदेशके बेलगाम जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १६° २४' उ० और देशा० ७४° २९' पू० बेलगाम शहरसे ४० मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ११६२९ है। यह नगर १८१८ ई०में अंगरेजोंमें

हुआ। २ निश्चल, अटल। ३ विनीत, नम्र। ४ एकाग्र लगा। ५ गुप्त, छिपा हुआ। ६ निश्चिन्त, सुला। ७ अस्तमप्राप्त, अस्त होनेके निकट। ८ बन्द किया हुआ। ९ निश्चित, स्थिर, अनुद्विग्न, धीर, शान्त। १० पूर्ण, भरा हुआ।

निभ (सं० पु०) प्रकाश, व्याज।

निमकी (हिं० स्त्री०) १ नीबूका अचार। २ घीमें तली हुई मैदेकी नोनदार नमकीन टिकिया।

निमकौड़ी (हिं० स्त्री०) निबकौरी देखो।

निमखार—अयोध्याके अन्तर्गत सीतापुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २७° २०´ ३३´´ उ० और देशा० ८०° ३१´ ३०´´ पू०के मध्य सीतापुर शहरसे २० कोस दूर गोमती नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। यह एक पवित्र तीर्थ है। यहां अनेक मन्दिर और पुष्करिणी है। प्रवाद है, कि जब रामचन्द्रजी रावणको मार कर सीताको साथ लिए अयोध्याको लौट रहे थे तब ब्रह्महत्या पापसे मुक्त होनेके लिए उन्होंने इसी स्थान पर स्नान किया था।

निमखेरा—मध्यभारतमें भूपावरके ठाकुरशासनाधीन भील एजेन्सीके अधीन एक छोटा राज्य। यह विन्ध्य पर्वतके पास अवस्थित है। सर जान मैलकमके बनाए बन्दोबस्तके समयसे तिरला ग्रामके मुखिया वा प्रधान सरदार धाराराजको वार्षिक १००) रु० करस्वरूप दे कर वंशपरम्परासे इस राज्यका भोग कर रहे हैं। धारा और सुलतानपुरमें यदि कहीं चोरी हो वा डाका पड़े तो उसके दायी मुखिया ही हैं। मुखिया भील जातीय हरियासिंह यहांके प्रसिद्ध सरदार थे। कुछ दिन हुए उनकी मृत्यु हो गई।

निमगांव—भीमानदीके तीरवर्ती एक क्षुद्र जनपद। यह खेड़ासे ६ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। इस ग्रामके उत्तर एक छोटे पहाड़के ऊपर खण्डोबाका एक मन्दिर है। १८वीं शताब्दीके शेष भागमें गोविन्दराव गायकवाड़ने यह मन्दिर बनवाया था। चैत्रमासकी पूर्णिमाको इस मन्दिरमें एक मेला लगता है जिसमें लगभग पांच हजार मनुष्य समागम होते हैं। मन्दिरके खर्चके लिये बहुतसी निष्कर जमीन दी गई है।

निमग्न (सं० त्रि०) नितरां मग्नः नि-मस्ज-क्त। १ जलादिमें मग्न, डूबा हुआ। २ तन्मय।

निमच—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत मन्दसोर जिलेका एक शहर और छावनी। यह अक्षा० २४° २८´ उ० और देशा० ७४° [illegible] पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग २१५८८ है, जिनमेंसे ६१८० मनुष्य शहरमें और १५४०८ छावनीमें रहते हैं। १८१० ई०के ग्वालियरमें अंगरेज और सिन्धियाके बीच एक सन्धि हुई। सन्धिकी शर्तके अनुसार दौलतराव सिन्धियाने सेनाओंका पड़ाव स्थान और कुछ जमीन प्रदान की। इसके बाद एक और सन्धि हुई जिसमें अंगरेजोंको और भी कई एक स्थान मिले। जब सोभागय [illegible] देशोंमें लड़ने जायेंगे, तब उनके परिवारादिके रहनेके लिये यहां एक छोटा दुर्ग बनाया गया था। वर्त्तमान समयमें इसमें अस्त्रशस्त्रादि रखे जाते हैं।

यह स्थान समुद्रतलसे १४११ फुट ऊंचा है। जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है। किसी समय भी यहां न तो अधिक गरमी ही पड़ती और न ठंढ। यहां एक कारागार, डाकघर, स्कूल और चिकित्सालय है।

निमचा—अवगाम और उदयगिरिपहाड़की जातिसे भिन्न एक असभ्य जाति। ये लोग भारतवर्षीय वर्कस पर्वतके दक्षिण ढालुवें स्थान पर रहते हैं। इनकी प्रचलित भाषाके साथ भारतवर्षीय भाषाकी विशेष समानता है। किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि लेटिन भाषाके साथ भी इनकी भाषा बहुत कुछ मिलती जुलती है।

निमझड़ा (हिं० पु०) ऐसा समय जिसमें कोई काम न हो, अवकाश, फुरसत, छुट्टी।

निमज्जक (सं० त्रि०) समुद्र आदि जलाशयोंमें डुबकी लगानेवाला, गोता मार कर समुद्र आदिके नीचेकी चीजोंको निकाल कर जीविका चलानेवाला।

निमज्जथु (सं० पु०) नि-मस्ज अथुच्। १ शयन, सोना। २ निमज्जन, स्नान। ३ निद्रा, नींद।

निमज्जन (सं० क्ली०) निमज्ज्यतेऽस्मिन्निति, नि-मस्ज आधारे ल्युट्। अवगाहन, डूब कर किया जानेवाला स्नान।

निमज्जित (सं० त्रि०) १ मग्न, डूबा हुआ। २ स्नात, नहाया हुआ।

निमटना (हिं० क्रि०) निपटना देखो।

निमटाना (हिं० क्रि०) निबटाना देखो।

निमटाना—खेतमें कितनी फसल हुई है, उसे स्थिर करनेका एक प्रकारका नियम। कापटेन रावर्टसन * इसी उपायसे शस्यका परिमाण स्थिर करते थे। किसी एक शस्यपूर्ण खेतसे तीन तरहके ऐसे पौधे लिए जाते थे जिसमें एकमें उत्तम दूसरे मध्यम और तीसरेमें सामान्य रकम लगी रहती थी। तीनों पौधोंके अनाजको गिन कर उसका औसत निकाला जाता था। पीछे खेतके पौधे गिने जाते थे। पौधोंकी संख्या जितनी होती थी, उससे शस्यसंख्यामें गुना करनेसे खेतके शस्यका परिमाण निकल जाता था। रावर्टसन साहबने कहा है, कि उत्तर भारतवर्ष, खान्देश और गुजरातमें यह प्रथा प्रचलित थी। शिवाजीके पिता शाहजीके प्रधान कर्मचारी दादाजी कोण्डदेवने १६४५ ई०में पूनामें जब बन्दोबस्त किया, तब उन्होंने इसी नियमका अवलम्बन किया था।

निमटेरा (हिं० पु०) निबटेरा देखो।

निमतोर—राजपूतानेमें निमच और झालरापाटन जिस राजपथ पर अवस्थित है, उसी राजपथ पर यह छोटा ग्राम भी बसा हुआ है। सम्भवतः निमतोर शब्द निमतला या निमजर शब्दका अपभ्रंशमात्र है।

इस ग्राममें ३ मन्दिर हैं जिनमेंसे एक बहुत प्राचीन कालका है और उसमें रूपमूर्त्ति स्थापित है। दूसरे मन्दिरमें प्रकाण्ड शिवलिङ्ग है और उसके चारों ओर मनुष्यके मुख खुदे रहनेके कारण शिवलिङ्गने चतुर्मुख धारण किया है। प्रवाद है, कि यह मन्दिर और रूप स्वर्गसे अवतीर्ण हो कर पहले नाना स्थानोंमें भ्रमण करते हुए अन्तमें गुजरातसे यहां आए और तभीसे इसी स्थान पर रहने लगे हैं। रूपकी गति मन्द होनेके कारण मन्दिर कुछ पहले पहुंचा था। यह प्रवाद सुन कर ऐसा अनुमान किया जाता है, कि सबसे पहले मन्दिर बनाया गया और पीछे रूपमूर्त्ति स्थापित हुई। मन्दिर भी एक हजार वर्ष पहलेका बना होगा ऐसा प्रतीत होता है।

निमद (सं० पु०) स्पष्टरूपसे और मन्दभावसे उच्चारण।

* East-India Paper, iv. 420.

निमदारी—पूना जिलेका एक छोटा ग्राम। यह जुन्नारसे ६ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां रेणुकादेवीकी एक वेदी है। चैत्रमासकी पौर्णमासीको वार्षिक मेला लगता है।

निमन्त्रक (सं० पु०) नि-मन्त्र ण्वुल्। निमन्त्रकारी, वह जो न्योता देता हो।

निमन्त्रण (सं० क्ली०) निमन्त्र्यते इति, नि-मन्त्र-ल्युट्। १ आह्वान, किसी कार्यके लिए नियत समय पर आनेके लिए ऐसा अनुरोध जिसका अकारण पालन न करनेसे दोषका भागी होना पड़ता है। २ भोजन आदिके लिये नियत समय पर आनेका अनुरोध, खानेका बुलावा, न्योता। श्राद्धादि कार्यके एक दिन पहले वेदज्ञ ब्राह्मणको श्राद्धमें खानेके लिए आना पड़ता है, इसीको निमन्त्रण कहते हैं। निमन्त्रण और आमन्त्रणमें यह भेद है, कि निमन्त्रणका पालन न करने पर दोषका भागी होना पड़ता है और आमन्त्रणका पालन न भी किया जाय, तो कोई पाप नहीं है।

'आप यहां भोजन करें' इस प्रकारके आह्वानका नाम निमन्त्रण और 'आप यहां शयन करें' इसका नाम आमन्त्रण है। सोना वा नहीं सोना अपनी इच्छाके ऊपर निर्भर है, लेकिन निमन्त्रित हो कर यदि निमन्त्रणका पालन न किया जाय, तो पापभागी होना पड़ता है।

यदि ब्राह्मणको निमन्त्रण दे कर उनका यथाविधि पूजन न किया जाय, तो निमन्त्रणकारी तिर्यक्‌योनिमें जन्म लेता है। यदि भ्रमप्रमादवशतः निमन्त्रित ब्राह्मणकी पूजा न करे, तो उन्हें यत्नपूर्वक प्रसन्न करके भोजनादि कराना चाहिये।

"आमन्त्र्य ब्राह्मणं यस्तु यथान्यायं न पूजयेत्।
अतिकृच्छ्रासु घोरासु तिर्य्यग्योनिषु जायते ॥" (यम)

यमके मतानुसार ब्राह्मण यदि एक जगह निमन्त्रित हो कर दूसरी जगह खाने चले जांय, तो वे नरकका भोग कर चण्डालयोनिमें जन्म लेते हैं।

"आमन्त्रितस्तु यो विप्रः भोक्तुमन्यत्र गच्छति।
नरकाणां शतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥" (यम)

इस श्लोकमें 'आमन्त्रित' ऐसा पद प्रयुक्त हुआ है,

इससे मालूम पड़ता है, कि आमन्त्रण और निमन्त्रणका कभी कभी एक ही अर्थ होता है। यदि ब्राह्मण एकसे निमन्त्रित हो कर दूसरेका पुनः निमन्त्रण ग्रहण करे अथवा एक जगह भोजन करके दूसरी जगह भोजन करे, तो उसके सब पुण्य नष्ट होते हैं।

"पूर्वं निमन्त्रितोऽन्येन कुर्यादन्यप्रतिग्रहम्।
भुक्त्वाहारोऽथवा भुङ्क्ते सुकृतं तस्य नश्यति॥"
(देवल)

यदि निमन्त्रित ब्राह्मण निमन्त्रणमें न आवें, तो वे नरकगामी होते हैं।

"आमन्त्रितश्चिरं नैव कुर्य्याद्विप्रः कदाचन।
देवतानां पितॄणाञ्च दातुरन्नस्य चैव हि।
चिरकारी भवेद्द्रोही पच्यते नरकाग्निना॥"
(आदित्यपु०)

निमन्त्रण ग्रहण कर ब्राह्मणको पथगमन, भारवहन, हिंसा, कलह और मैथुन कार्य नहीं करना चाहिये। यदि करे, तो पापभागी होना पड़ता है।

ऋतुकालमें स्त्रीगमनकी अवश्य कर्त्तव्यता रहने पर भी यदि निमन्त्रण ग्रहण किया जा चुका हो, तो मैथुन नहीं कर सकते। मिताक्षराके मतानुसार निमन्त्रित होने पर भी ऋतुकालमें स्त्रीगमन विधेय है। पर हां, मैथुन निषेध ऋतुभिन्न कालको जानना चाहिये।

निमन्त्रणके ये सब विधि और निषेध जो कहे गये, वे केवल श्राद्ध विषयमें काम आते हैं। (निर्णयसिन्धु)

पूर्व समयमें श्राद्धकालीन ब्राह्मणको निमन्त्रण दे कर उनके सामने पितृगणका श्राद्धकार्य किया जाता था। लेकिन अभी ब्राह्मणके गुणहीन होनेसे कुशमय ब्राह्मणकी स्थापना करके श्राद्धविधिका अनुष्ठान होता है। रघुनन्दनने भी निमन्त्रणका विषय इस प्रकार लिखा है—

ब्राह्मणको निमन्त्रण करके श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध करूंगा ऐसा स्थिर हो जाने पर एक दिन पहले ब्राह्मणको प्रणाम करके निमन्त्रण देना चाहिये। जो ब्राह्मण निमन्त्रण ग्रहण करके उसका पालन नहीं करते वे पापभागी होते हैं। लेकिन आमन्त्रणका पालन नहीं करनेमें पाप नहीं है। निमन्त्रण और आमन्त्रणमें केवल इतना ही फर्क है।

पूर्व दिनमें यदि किसी विशेष कार्यवश ब्राह्मणको निमन्त्रण न दे सके, तो उस दिन भी निमन्त्रण दे सकते हैं।

आपस्तम्बने निमन्त्रण शब्दका ऐसा अर्थ लगाया है—

आगामी दिन मैं श्राद्ध करूंगा, इससे आप निमन्त्रणीय हैं, इस प्रकारका प्रथम निवेदन और मैं आपको निमन्त्रण देता हूं, यह द्वितीय निवेदन है। इस प्रकारके निवेदनको ही निमन्त्रण कहते हैं।

निमन्त्रणपत्र (सं० क्ली०) आह्वानपत्र, वह पत्र जिसके द्वारा किसी पुरुषको भोज उत्सव आदिमें सम्मिलित होनेके लिये अनुरोध किया गया हो।

निमन्त्रित (सं० त्रि०) नि मन्त्र क्त। आहूत, जिसे न्योता दिया गया हो।

निमन्यु (सं० त्रि०) क्रोधरहित, जिसे गुस्सा न हो।

निमय (सं० पु०) निमीयते विनिमीयते नि मि-अच्। (एरच्। पा ३।३।५६) विनिमय, बदला।

निमराणा—राजपूतानेके मध्य अलवार राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २७° ५८' उ० और देशा० ७६° २३' पू० अलवार शहरसे ४४ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग २९१२ है। १४६० ई०में यह शहर दूपरायसे बसाया गया है। १८०३ ई०में राजाने मराठोंको अपने यहां आश्रय दिया था, इस कारण बाद लेकने यह स्थान अलवारके अधीन कर दिया। पीछे १८२१ ई०में बहुत अनुनय विनय करनेके बाद इसका कुछ अंश राजाको लौटा दिया गया। १८६८ ई०में निमराणा अलवारको जागीर कायम की गई और यह भी स्थिर हुआ कि इन्हें वार्षिक ३०००) रु० करस्वरूप देने होंगे। राज्यकी आय ९८०००) रु०की है। यहां एक वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल है।

निमरी (हिं० स्त्री०) मध्यभारतमें होनेवाली एक प्रकारकी कपास बरडी, बंगई।

निमरद—एक प्रसिद्ध असपादेश राजा। ईसाइयोंके धर्मग्रन्थ (बाइबल)में लिखा है, कि ये बाबिल, एरेक, आक्काद, कालन और सैनिअर देशके अधिपति थे। इसमें लिखा गए हैं, कि ये बाबिलन देशके एक शासनकर्ता थे। इनके अधिकृत स्थानका नाम था इरेक जिसे आजकल

उत्तरमें इन्दौर और धारराज्य, पश्चिममें इन्दौर और खान्देश जिला, दक्षिणमें खान्देश, अमरावती और अकोला जिला तथा पूर्व में होशङ्गाबाद और बैतूल है।

इस ज़िलेका उत्तरस्थ स्थानसमूह छोटी छोटी गिरिमालाओंसे शोभित रहनेके कारण यहाँ समतल भूमिका बिलकुल अभाव है। इस कारण इस प्रान्तमें खेतीबारी कुछ भी नहीं होती। उत्तर-पूर्वांशमें बहुत दूर तक परती ज़मीन पड़ी हुई है। इसके सिवा इस अंशकी सभी ज़मीन साधारणतः अनुर्वर नहीं है। ज़िलेके दक्षिणांशमें ताप्ती नदीकी तीरस्थ भूमि अपेक्षाकृत उर्वरा है, पश्चिमांशकी ज़मीनमें भी अच्छी फसल लगती है। किन्तु नर्मदा नदीकी उत्तरीतरस्थ भूमि अधिकांश उर्वर होने पर भी परती पड़ी हुई है, क्योंकि इस प्रान्तमें मनुष्योंका वास बहुत कम है। नर्मदा और ताप्ती नदीकी तीरस्थ भूमि १५ मील विस्तृत एक पहाड़ द्वारा विभक्त है। यह सतपुरा पहाड़ नामसे प्रसिद्ध है। इस पहाड़के शिखर पर समतल भूमिसे ८५० फुट ऊपर आशीरगढ़ नामक दुर्ग और एक गिरि-पथ है। उत्तरभारतसे दक्षिणभारतमें आनेके लिये बहुत दिनोंसे यही रास्ता प्रशस्त गिना जाता था। ज़िलेका अधिकांश स्थान पहाड़ और जङ्गलसे परिपूर्ण है। अधित्यकाओंका यहाँ कहीं भी नहीं मिलता, किन्तु चांदगढ़ और पुनासाके निकटवर्ती जङ्गलमें बोंडेकी घास दिखनेमें आती है। निमार ज़िलेमें जितने जङ्गल हैं उनमेंसे पुनासा नामक जङ्गल सबसे बड़े रकबेमें है। इसी जङ्गलोंमें बहुमूल्य झाड़ पाये जाते हैं। चांदगढ़ परगनेमें भी विस्तृत अरण्य है। ये सब अरण्य व्याघ्रके आवास भूमि हैं, किन्तु ये मनुष्य पर आक्रमण नहीं करते। इनके सिवा यहाँ भालू, चीता, जङ्गली सूअर आदि अनेक प्रकारके हिंस्र जन्तु तथा हिरण, बारसिंघ प्रभृति भांति भांतिके निरीह जन्तु एवं वनकुक्कुट आदि नाना जातीय पक्षी देखनेमें आते हैं।

इतिहास।—हैहयराजगण पूर्वकालमें माहिष्मती (वर्त्तमान महेश्वर)में रह कर प्राय: निमारका शासन करते थे। पीछे ब्राह्मणोंने उन्हें राज्यच्युत किया। उन ब्राह्मणों द्वारा नर्मदा नदीके किनारे मान्धाता नामक स्थानमें शिवपूजा प्रवर्तित हुई। पीछे असीरगढ़के चौहानराजपूत और हिन्दू टेकरियोंके उपासक हुए। पीछे प्रमार राजपूतोंने असीरगढ़ पर अपना अधिकार जमाया। इस वंशके ताक नामक एक शाखाने ८वीं शताब्दीसे ले कर १२वीं शताब्दी तक असीरगढ़का शासन किया। चांदकवि उन्हें हिन्दूवीर बतला गये हैं। इस समय निमारमें जैनधर्म बढ़ा चढ़ा था। बावनगजा और मान्धाताके निकटवर्ती स्थानोंमें अनेक मनोहर जैनधर्म मन्दिर आज भी विद्यमान हैं। १२८१ ई०में मुसलमानोंने जब दाक्षिणात्य पर आक्रमण किया था, उस समय चौहानवंशीय राजपूत असीरगढ़के राजा थे। मुसलमानोंने उन्हें परास्त कर एक किया और सभी को मार डाला। इस समय उत्तर निमार भील जातीय अन्यराजाके शासनाधीन था। उनकी राजधानी आजकल भी भीमगढ़, मान्धाता और सियामी नामक स्थानमें देखी जाती है। फिरिस्ता कहता है कि इस समय दक्षिण निमारमें आसा नामक गोपवंशीय एक राजा थे। उन्होंने जो दुर्ग प्रस्तुत किया वह उनके नामानुसार असीरगढ़ कहलाया। कहनेका तात्पर्य यह कि जिस समय मुसलमानोंने इस राज्य पर आक्रमण किया उस समय यह राज्य जो चौहान और भीलराजाओंके शासनाधीन था इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

प्रायः १३८० ई०में उत्तरनिमार मालवके स्वाधीन मुसलमानराज्यके अन्तर्गत हुआ और माण्डूमें राजधानी बसाई गई। १३७० ई०में मालिकराजा फरूकीने दिल्लीके सम्राट्से दक्षिण निमार प्राप्त किया। तदनन्तर उनके पुत्र नसीर खांने असीरगढ़ अधिकार करके बुरहानपुर और जैनाबाद नगर बसाया। १३९९ ई०से १६०० ई० तक खान्देशके फरूकीवंशने प्रायः ग्यारह पीढ़ी तक बुरहानपुरमें राज्य किया। किन्तु गुजरात और मालववासियोंके आक्रमणसे बुरहानपुर अनेक बार विध्वस्तप्राय हो गया। १६०० ई०में निजाम अकबरने असीरगढ़ पर चढ़ाई करके फरूकीवंश[illegible] शिव राजा बहादुर खांसे निमार और खान्देश जीत लिया। अब वहाँ उत्तरनिमारको बीजागढ़ और रविड़या नामक दो

जिलोंमें विभक्त करके उसे मालवसूबाके अधीन किया। दक्षिण-निमार खान्देशसूबाके अन्तर्भुक्त हुआ। राजपुत्र दानियाल जब दाक्षिणात्यके शासनकर्त्ता हुए, तब वे बुर्हानपुरमें रह कर राजकार्यकी पर्यालोचना करते थे। अन्तमें १६०५ ई॰में इसी स्थान पर उनकी मृत्यु हुई।

अकबर और उनके वंशधरोंकी कौशलपूर्ण उन्नत-शासनप्रणालीके गुणसे निमार उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। इस समय समस्त भूमि सुनियमसे जोती जाती थी। मालव और दाक्षिणात्यके मध्यवर्त्ती स्थानोंमें व्यवसायिगण पण्य द्रव्य ले कर जाते आते थे। १६७० ई॰में मराठोंने पहले पहल जो खान्देश पर आक्रमण किया था उसमें बुर्हानपुर तक प्रायः सभी देश लूट गये थे। पीछे प्रति वर्ष फसलके समय मराठे यहां आ कर राज्यमें स्थान स्थान पर लूटपाट मचाया करते थे और १६८४ ई॰में उन्होंने बुर्हानपुर नगर भी लूटा। १६६० ई॰में मराठोंने समस्त उत्तर निमारको लूटपाट द्वारा उत्सन्नप्राय कर दिया। तब १७१६ ई॰मे मुगल लोग उन्हें चौथ और सरदेशमुखी देनेको बाध्य हुए। इसके ४ वर्ष बाद आसफजाहके दाक्षिणात्यका शासनभार ग्रहण करने पर भी वे बहुत दिनों तक मराठोंको चौथ आदि देते आ रहे थे। किन्तु इस पर भी मराठालोग सन्तुष्ट न हुए और नाना प्रकारके उत्पात मचाने लगे। अन्तमें १७४० ई॰की सन्धिके अनुसार पेशवाने उत्तरनिमार प्राप्त किया। पन्द्रह वर्ष पीछे असीरगढ़ और बुर्हानपुर छोड़ कर समस्त दक्षिण निमार उनके हाथ लगा और १७६० ई॰में उन्होंने बुर्हानपुर और असीरगढ़को भी जीत लिया। १७७८ ई॰में काणापुर और बेरिया परगना छोड़ कर अवशिष्ट निमार जिला सिन्धिया महाराजके राज्यभुक्त हुआ और होलकरने भी अवशिष्ट प्रान्तनिमार द्वारा स्वराज्यके कलेवरकी वृद्धि की। १८वीं शताब्दी तक यह राज्य इसी प्रकार शान्ति उपभोग करता आ रहा था। किन्तु उस समयसे ले कर १८१८ ई॰तक आक्रमण, लूटपाट आदिसे यह तहस नहस हो गया। १८०३ ई॰में आसाइके युद्धमें अंगरेज गवर्मेण्टने दक्षिण-निमार प्राप्त किया, किन्तु वह सिन्धियाराजको दिया गया। पीछे १५ वर्ष तक होलकरके कर्मचारी, पिण्डारी और सिन्धियाके विपक्ष नायक, गुमाश्ता आदि द्वारा यह राज्य नियत आक्रान्त और क्षतिग्रस्त होता गया। अन्तमें शेष पेशवा बाजीरावने १८१८ ई॰में सर जन मकोमके निकट आत्मसमर्पण किया। इस समय नागपुरके पूर्वतन राजा अप्पासाहबके असीरगढ़में आश्रय लेनेसे अंगरेजोंने उस गढ़को अधिकारमें कर लिया। १८२४ ई॰में सिन्धियाके साथ जो सन्धि हुई उसमें अवशिष्ट समस्त निमार अंगरेज शासनाधीन हुआ। १८५४ होसङ्गाबाद जिलेके कुछ परगने निमार जिलेमें मिला दिये गये और १८६० ई॰में सिन्धियाके विनिमय द्वारा जैनाबाद, माञ्जरोद परगना और बुर्हान-पुरनगर अंगरेजोंने लाभ किया। पीछे वृटिशराजने होलकर महाराजको १८६५ ई॰में कसरावद, धरगांव, वरवाई और मण्डलेश्वर प्रदान कर उनसे दाक्षिणात्यके कतिपय परगने ग्रहण किये।

निमार जब पहले पहले अंगरेजोंके दखलमें आया, उस समय यह जिला प्रायः जनशून्य था। शान्तिस्थापन का सुवन्दोवस्त होनेसे ही अनेक कृषिजीवी यहां पुनः लौट कर आने लगे। यहां तक कि कप्तान (पीछे सर जेम्स) आउट्रमके यत्नसे यहांके दुर्दान्त भीलोंने भी शान्तभाव धारण किया।

पहले पहल यहांकी अंगरेज-शासनप्रणाली सफलता लाभ कर न सकी। पीछे १८४५ ई॰में करविभागके सम्बन्धमें नूतन बन्दोवस्त हो जानेसे निमार जिला पहलेकी तरह उन्नतिपथ पर जाने लगा। १८५७ ई॰में सिपाहीविद्रोहके उपस्थित होने पर भी यहांके लोग प्रभुभक्ति दिखानेसे जरा भी विमुख न हुए थे। इस समय तांतियातोपी बहुसंख्यक सेनाको साथ ले जिलेके मध्य हो कर गुजरे और पीपलोद, खाण्डवा तथा मुगलगांवके पुलिसघर वा थानाको जला डाला। किन्तु इस जिलेका एक भी मनुष्य उनकी सेनामें न मिला था।

इस जिलेमें २ शहर और ८२२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या प्रायः ३२८६१५ है। यहांका उत्पन्न द्रव्य ज्वार, जुन्हरी, तिल, चना और तेलहन अनाज है। यहां अफीम और रूईका विस्तृत वाणिज्य होता है। पेट-

इण्डियन पेनिनसुला रेलवे जिसके मध्य हो कर गई है इस कारण यहां वाणिज्यको विशेष सुविधा है। १८६४ ई०से निमार प गवर्मेंटके अधीन एक स्वतन्त्र जिलेके रूपमें शासित होता आ रहा है। एक डिपुटी कमिश्नर, उनके सहकारी कार्याध्यक्षों और तहसील-दारों द्वारा शासनकार्य सम्पन्न होता है।

निमारका जो प्रदेश जङ्गलरहित है उसका जलवायु स्वास्थ्यकर नहीं है। किन्तु नर्मदा और ताप्तीकी उपत्यका भूमिमें अधिक और मई मासमें अधिक गरमी पड़ती है। महामारी और ज्वर यहांका प्रधान रोग है। विद्याशिक्षामें यह जिला बढ़ा चढ़ा है। यहां हाई स्कूल, १ इङ्गलिश और ३ वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, ८१ प्राइमरी स्कूल तथा २ प्राइमरी बालिका स्कूल है। विद्याविभागमें वार्षिक ३२०००) रु० खर्च होते हैं।

२ मध्यभारतके इन्दोरराज्यके उत्तरका एक जिला। यह अक्षा० २१ २२ से २२ १२ उ० और देशा० ७५ २० से ७६ १० पू० नर्मदा नदीके उत्तरमें अवस्थित है। भूपरिमाण १८७१ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय २२७११० है। इसमें खरगोन, महेश्वर और बड़वाह नामके तीन शहर और १०६१ ग्राम लगते हैं। जिलेकी आय ८ लाख रुपयेसे अधिककी है।

निमाल—पञ्जाबमें बन्नू जिलान्तर्गत [illegible] तहसीलका नगर। यह खटकपहाड़के पूर्वमें अवस्थित है।

निमि (स० पु०) १ अत्रिके औरस दत्तात्रेयके एक पुत्रका नाम। २ कौरववंशीय भाविनृपभेद, कौरव वंशके भावि राजाका एक नाम। ३ द्वापरयुगीय यदुवंशीयनृपभेद द्वापर युगके एक राजा जो यदुवंशमें उत्पन्न हुए थे। ४ मिथिलाके प्रजापिता इक्ष्वाकु वंशीय नृपभेद। इनका विवरण विष्णुपुराणादिमें इस प्रकार लिखा है,—

राजा इक्ष्वाकुके निमि नामक एक पुत्र था। इन्होंने मिथिलाका विदेहवंश चलाया। एक बार महाराज निमिने सहस्रवार्षिक यज्ञ करानेके लिए वशिष्ठजीको बुलाया। वशिष्ठजीने कहा, 'मुझे देवराज इन्द्र पहलेसे ही पञ्चशत वार्षिक यज्ञमें वरण कर चुके हैं। अतः तब तकके लिए आप प्रतीक्षा करें। इन्द्रका यज्ञ कराके मैं आपका यज्ञ कराऊँगा।' वशिष्ठकी यह बात सुन कर निमि चुप हो रहे। वशिष्ठजी भी समझ गए कि राजाने मेरी बात स्वीकार कर ली है, इसलिए इन्होंने इन्द्रका यज्ञ आरम्भ कर दिया।

वशिष्ठके चले जाने पर निमिने गौतमादि ऋषियोंको बुला कर यज्ञ प्रारम्भ किया। इन्द्रका यज्ञ हो जाने पर वशिष्ठजी निमिके यहां बहुत जल्दीसे चले और यज्ञस्थलमें पहुंच कर उन्होंने देखा कि निमि गौतमको बुला कर यज्ञ कर रहे हैं। इस पर उन्होंने निद्रामग्न राजा निमिको शाप दिया, 'तू मेरी अवज्ञा करके गौतम द्वारा यज्ञ करा रहा है इस कारण तू देहहीन होगा और तुम्हारा यह शरीर न रहेगा।'

पीछे राजाने वशिष्ठको शाप दिया, 'आपने बिना कारण मुझे स्वप्नमें शाप दिया है। इस कारण आपका भी यह शरीर न रहेगा।' इतना कह कर राजाने अपना शरीर छोड़ दिया। निमिके शापसे वशिष्ठदेवका तेज मित्रावरुणके वीर्यमें प्रविष्ट हो गया। अनन्तर एक दिन उर्वशीको देख कर मित्रावरुणका वीर्य नीचे गिर पड़ा। उसी वीर्यसे वशिष्ठने दूसरा शरीर धारण किया।

निमि राजाकी वह मृत देह अति मनोहर तैल और गन्धद्रव्योंमें रखी गई थी, इस कारण जरा भी विकृत न हुई थी। यज्ञकी समाप्ति पर जब देवताओंने यज्ञभाग ग्रहण किया, उस समय ऋत्विकोंने यजमानको वर देनेके लिए देवताओंसे प्रार्थना की। अनन्तर देवताओंने वर ग्रहण करनेके लिए निमिसे कहा तब वे बोले, 'मुझे इससे बढ़ कर और कुछ भी दुःख नहीं है कि, शरीर और आत्माका परस्पर वियोग होता है। इसी कारण मैं पुनः शरीर धारण करनेकी इच्छा नहीं रखता, केवल एक यही इच्छा है कि मैं सबकी आंखों पर वास करूं।' देवताओंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उनको मनुष्यों की आंखों की पलक पर जगह दी। राजाके कोई पुत्र न रहनेके कारण मुनियोंको डर हुआ कि शायद कहीं अराजकता न फैल जाय इस कारण वे उस मृतदेहको अरणीसे मथने लगे। कुछ देर बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम जनकदेहसे उत्पन्न होनेके

कारण जनक रखा गया। मथनेसे ये उत्पन्न हुए थे, इस लिए इनका दूसरा नाम मिथि भी था।

(विष्णुपु० ४ अंश ५ अ०)

मनुसंहिताकी टीकामें कुल्लूकने लिखा है, कि निमि अपने अविनयके कारण विनष्ट हुए थे। भागवत और मत्स्यपुराण आदिमें भी इनका विवरण लिखा है। रामायण उत्तरकाण्डके ५५ अध्यायमें लिखा है, कि निमि देवताओंके वरसे वायुभूत हो कर प्राणिसमूहके नेत्रो पर अवस्थान करते हैं, इसीसे मानवके निमेष हुआ करता है। ५ निमेष, आँखोंका मिचना।

निमिख (हिं० पु०) निमिष देखो।

निमित (सं० त्रि०) नि-मि-क्त। समदीर्घविस्तार परिमाणयुक्त, जिसकी लम्बाई और चौड़ाई समान हो।

निमित्त (सं० क्ली०) नि-मिद-क्त, संज्ञापूर्वकत्वात् न त्वम्। १ हेतु, कारण। २ चिह्न, लक्षण। ३ शकुन, सगुण। ४ उद्देश्य, फलकी ओर लक्ष्य।

निमित्तक (सं० क्ली०) निमित्त संज्ञायां कन्। १ निमित्त कारण। २ चुम्बन। ३ निमित्त, कारण। (त्रि०) ४ जनित, उत्पन्न, किसी हेतुसे होनेवाला।

निमित्तकारण (सं० क्ली०) निमित्तं कारणम्। कारणभेद, वह जिसकी सहायता वा कर्तृत्वसे कोई वस्तु बने। नैयायिकोंके मतसे कारण तीन प्रकारका है—समवायिकारण, असमवायिकारण और निमित्तकारण। घटोत्पत्तिके प्रति कुलालदण्ड, चक्र, सलिल और सूत्रादि निमित्तकारण है।

निमित्तकाल (सं० पु०) विशेष काल।

निमित्तकृत (सं० पु०) निमित्तं स्वकृतेन शुभाशुभशकुनं करोतीति कृ-क्विप्। काक, कौवा। कौवेके शब्दसे शुभाशुभ जाना जाता है, इसीसे इसे निमित्तकृत् कहते हैं।

निमित्ततस् (सं० अव्य०) निमित्त-तस्। कारण व्यतीत, कारण भिन्न।

निमित्तत्व (सं० क्ली०) निमित्त-त्व। कारणत्व, प्रयोजककर्तृत्व।

निमित्तधर्म (सं० पु०) निष्कृति, प्रायश्चित्त।

निमित्तमात्र (सं० क्ली०) निमित्त मात्रच्। हेतुमात्र, कारणमात्र।

"मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।" (गीता)

निमित्तवध (सं० पु०) निमित्तेन रोधादिहेतुना वधः। रोधादि निमित्त गवादिवध। बंधो हुई अवस्थामें यदि गाय मर जाय, तो बाँधनेवालेको प्रायश्चित्त करना होता है।

"रोधने बन्धने चापि योजने च गवां रुजः।
उत्पाद्य मरणं चापि निमित्ती तत्र लिप्यते॥"

(प्रायश्चित्ततत्त्व। प्रायश्चित्त देखो।

निमित्तविद् (सं० पु०) निमित्तं शुभाशुभलक्षणम् वेत्तीति विद् क्विप्। दैवज्ञ, गणक, ज्योतिषी।

निमित्तिन् (सं० त्रि०) निमित्तमस्त्यस्य इनि। १ निमित्तयुक्त कार्य। २ वधकर्तृभेद। कर्त्ता, प्रयोजक, अनुमन्ता अनुग्राहक और निमित्ती ये पाच प्रकारके वधकर्त्ता हैं। प्रायश्चित्त देखो।

निमिन्धर (सं० पु०) एक राजपुत्र, एक राजकुमारका नाम।

निमिय (सं० त्रि०) नियम द्वारा सिन्चित किया हुआ।

निमिष (सं० पु०) नि मिष घञर्थे क। १ चक्षुर्निमीलनरूप व्यापार, आँखका मिचना, पलकोंका गिरना। २ तदुपलचित कालभेद, उतना काल जितना पलक गिरनेमें लगता है, पलक मारने भरका समय। ३ परमेश्वर। ४ सुश्रुतोक्त नेत्रवर्त्माश्रित रोगभेद, सुश्रुतके अनुसार एक राग जो पलक पर होता है।

निमिष-क्षेत्र (सं० क्ली०) नैमिषारण्य।

निमिषित (सं० क्ली०) नि सिष-क्त। १ नेत्रव्यापारभेद, आँखका मिचना। (त्रि०) २ निमीलित, मिचा हुआ।

निमीलन (सं० क्ली०) निमिलत्यनेनेति नि-मील करणे ल्युट्। १ मरण, मौत। २ निमेष, पलक मारना। ३ पलक मारने भरका समय, पल, क्षण। ४ अविकाश।

निमीला (सं० स्त्री०) नि मील भावे स्त्रियां अ। १ नेत्रमुद्रण, आँखका मूंदना। २ निद्रा, नींद।

निमीलिका (सं० स्त्री०) निमीलयतीति नि-मील णिच्-ण्वुल्, टापि अत इत्वं। १ व्याज, छल। २ निमीलन, आँखकी झपक।

निमीलित (सं० त्रि०) नि-मील-क्त। १ मुद्रित, बंद, ढका हुआ। २ मृत, मरा हुआ।

निमीश्वर (स० पु०) जिनेश्वरभेद।

निमु पारख—अंगरेज गवर्नर जनरलका १६८० ई०में सूरतमें कम्पनीके अंगरेजी अधिवासको उठा ले गये, उस समय उन्होंने यहांके वणिक निमु पारखके साथ एक सन्धि की "निमु-पारख और ब्राह्मणगण अपने घरमें इच्छानुसार धर्मकी उपासना कर सकते हैं, कोई उसमें छेड़ छाड़ नहीं कर सकता। अंगरेज पोतध्वज या अन्य पुर्तगीजोंको अथवा कोई मुसल मान उनको चतुःसीमाके मध्य रख कर शारीरिक अथवा उनके ऊपर किसी प्रकारका अत्याचार नहीं कर सकता, करनेसे उसे अवश्य उसको ओरसे उचित दण्ड मिलेगा। वे अपने जातीय प्रथाके अनुसार व्यवसाय कर सकते हैं और विवाहके समय धूम धामसे बारात भी ले जा सकते हैं। बलपूर्वक कोई ईसाई नहीं बनाया जायगा और न वे उनकी इच्छाके विरुद्ध किसी कार्यमें नियुक्त ही किये जायेंगे।'

निमुहां (हिं० वि० जिसे बोलनेको मुंह न हो, न बोलने वाला, चुपका।

निमृष (स० त्रि०) नितरां मोषणीय, जो हमेशा मोषणी के योग्य हो।

निमूल (स० त्रि०) निर्गत मूल यस्य। १ मूलरहित। निर्मूल। २ प्रकाशन।

निमृक्ति—वम्बई प्रदेशके अन्तर्वर्ती ग्रामविशेष। यह अक्षा० २१ ३५ १० उ० और देशा० ८१ ६´पू०के मध्य अवस्थित है।

निमेद (स० पु०) निमीयते परिमीयते इति मा माने नि-मद् यत्नदयेद्। (अग्नोपद। पा ३।१।८०) (इत्यादि। पा ३।३।१२) १ निमेष, आंखोंका बदला। (त्रि०) २ परिवर्त्तनीय बदलने योग्य।

निमेष (स० पु०) निमिषति नि मिष भावे घञ्। १ पलक-स्पन्दनकाल, पलक मारने भरका समय उतना काल जितना पलकोंके उठ कर फिर गिरनेमें लगता है पल। पर्याय—निमिष दृष्टिनिमीलन।

अग्निपुराणमें लिखा है कि पलक मारने मारनेके समयको निमेष कहते हैं। दो निमेषको एक त्रुटि और दो त्रुटिका एक लव होता है। २ पलकका गिरना, आंखका झपकना। ३ सुश्रुतोक्त रोगविशेष आंखका एक रोग जिसमें आंखें फड़कती हैं। नेत्ररोग देखो। ४ महाभारतोक्त यक्षविशेष, एक यक्षका नाम।

निमेषक (स० पु०) निमेष-कन्। १ पलकोंका गिरना। २ खद्योत, जुगनू।

निमेषकृत् (स० स्त्री०) निमेष करोतीति कृ क्विप् तुक् च निमिषं निमेषमात्रकालं यावत् स्फुरणकार्य यस्याः। विद्युत्, बिजली। निमेषकालके मध्य विद्युत्का स्फुरण होता है, इसीसे विद्युत्को निमेषकृत् कहते हैं।

निमेषण (स० क्ली०) नि मिष-ल्युट्। चक्षुरुन्मीलन, निमिष-कालव्यापारभेद।

निमेषरुच (स० पु०) निमेषेण निमेषकाल व्याप्य रोचते दीप्यते रुच क्विप्। खद्योत, जुगनू।

निमोची (स० स्त्री०) राक्षसविशेष।

निमोना (हिं० पु०) चने या मटरके पिसे हुए हरे दानोंको कढ़ी समानके साथ घीमें भून कर बनाया हुआ रसेदार व्यञ्जन।

निमौनी (हिं० स्त्री०) वह दिन जब ईख पहले पहल काटी जाती।

निम्न (स० त्रि०) निकृष्टा म्ना अभ्यासः मीमनस वा निकृष्ट म्नातीति म्ना-क। १ नीच, नीचा पर्याय—गभीर, गम्भीर, गभीरक। (पु०) २ अनमित्रपुत्र, अनमित्र के एक पुत्रका नाम। इनके दो पुत्र थे, सत्राजित् और प्रसेन।

निम्नग (स० त्रि०) निम्न-गम ड। अधोगामी, नीचे जानेवाला।

निम्नगत (स० त्रि०) निम्न गतः। जो नीचेकी ओर गया हो।

निम्नगा (स० स्त्री०) निम्न गच्छतीति निम्न-गम-ड, स्त्रियां टाप। नदी दरया।

निम्नदेश (स० पु०) नम्रदेश, निम्नभाग नीचेका हिस्सा।

निम्ब (स० पु०) निम्बति सेचने पच, अमरोदेरर्न्यात् मः। (उणादि सूत्र) प्रसिद्ध नीम। संस्कृत पर्याय—अरिष्ट, सर्वतोभद्र हिङ्गुनिर्यास, मालक पिचुमर्द पत्रक्षत् पूयारि अर्कप, अर्कपाद शूकमालक, कीटक, विस्रम्,

निम्बक, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], पारिभद्रक, काकफल, कीटक, [illegible], [illegible], [illegible]; [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], निम्बक, [illegible] [illegible]।

नीमका [illegible] पेड़ [illegible] [illegible] होता और [illegible] है। [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाता है। [illegible] [illegible] रहता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है। [illegible] [illegible] [illegible] होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] करता है। [illegible] [illegible] होता है और [illegible] [illegible] कहलाता है। इसकी लकड़ी अच्छी समाई भिन्न [illegible] होती है तथा किवाड़, गाड़ी, नाव आदि बनानेके काममें आती है। इसकी टहनियां दातुनके लिये बहुत तोड़ी जाती हैं।

राजनिघण्टुके मतसे इसका गुण—शीत और [illegible] लघु, कफ, व्रण, कृमि, [illegible], शोथ और [illegible], [illegible] और [illegible] है।

भावप्रकाशके मतसे—शीतल, लघु, ग्राही, कटुपाक, अग्निवातकर, अहृद्य, श्रम, तृष्णा, कास, ज्वर, अरुचि और कृमिनाशक, पित्त, कफ, छर्दि, कुष्ठ, हृल्लास और मेहनाशक।

नीमकी पत्तियां नेत्रको हितकर, कृमि, पित्त, विष, सब प्रकारकी अरुचि और कुष्ठनाशक, वातल और कटुपाकी होती है।

नीमफलका गुण—रसमें तिक्त, पाकमें कटु, भेदक, स्निग्ध, लघु, उष्ण और कुष्ठ, गुल्म, अर्श, कृमि और मेहनाशक।

राजवल्लभके मतसे निम्ब तैलका गुण—कुष्ठ, [illegible] और कृमिनाशक।

राजनिघण्टुके मतसे तैलगुण—कटुत्व, कृमि, कुष्ठ, कफ, [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

([illegible]) [illegible]

निम्ब—[illegible] [illegible] एक [illegible] [illegible]। [illegible]

निम्बक (सं० पु०) [illegible]। १ निम्ब, नीम। २ [illegible]।

निम्बगाम—[illegible] एक [illegible] ग्राम।

निम्बतरु (सं० पु०) १ मन्दार, [illegible] [illegible]। २ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। ३ [illegible]।

निम्बदेव—एक संस्कृत [illegible]। ये [illegible] [illegible] [illegible] पुत्र थे। [illegible] [illegible] [illegible] था।

निम्बपञ्चक (सं० क्ली०) पञ्चनिम्ब।

निम्बबीज (सं० क्ली०) निम्बस्य बीजं। नीमका बीज।

निम्बरजस (सं० पु०) निम्बतरु, नीमका पेड़।

[illegible] (सं० पु०) महानिम्ब।

निम्बर्गी—बीजापुर जिलेके इण्डी तालुकमें २७ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। इस ग्रामके उत्तर-पश्चिम भागमें नारायणके लिये बनाया हुआ एक मन्दिर है। मन्दिरका दरवाजा ठीक पश्चिमकी ओर है। इसका प्राङ्गन बड़ा है। भीतरमें नारायणकी मूर्त्ति और एक लिङ्ग प्रतिष्ठित है। कहते हैं, कि ११८० ई०में [illegible] नामक किसी शिल्पकारने उक्त मन्दिर बनवाया था।

मन्दिर-निर्माणके विषयमें किम्वदन्ती है, कि चमारकी एक गाय बच्चा जननेके बादसे दो पहरको गायब होने लगी। बहुत तलाश करनेके बाद एक दिन उसने देखा कि एक साँपके बिलमें गायका दूध गिरता है। यह देख चमारने दूसरे दिनसे उसे घरमें ही बाँध रखा, बाहर न होने दिया। बाद रातको उसे स्वप्न हुआ कि 'उस वल्मीकके ऊपर एक मन्दिर बनाओ और नौ मास तक उसका द्वार बन्द रखो।' तदनुसार चमारने उसी स्थान पर एक मन्दिर बनाया और नौ मास तक दरवाजा बन्द रखा। बाद नौ मासके दरवाजा खोलने पर उसने देखा कि एक लिङ्ग और सीतारामकी मूर्त्ति अर्द्धसमाप्त अवस्थामें वर्त्तमान है।

निम्बबीज (सं० पु०) १ राजादनीवृक्ष, खीरिनी, खिरनीका पेड़। २ नीमका बीया।

निम्बाक (सं० पु०) कोपकका कागजी नीबू।

निम्बादित्य—वैष्णवसम्प्रदायके निम्बार्कमतके प्रवर्त्तक। यह एक विख्यात पण्डित और साधु पुरुष थे तथा वृन्दावनके समीप ध्रुव पहाड़ पर रहते थे। यहीं पर इनके शिष्योंने इनके मरने पर मठ स्थापित की। वैष्णवोंका यह एक पवित्र तीर्थ-स्थान माना जाता है। इनके पिताका नाम जगन्नाथ था। जगन्नाथने इनका नाम भास्कराचार्य रखा था। बहुतसे लोग इन्हें सूर्यके अंशसे उत्पन्न बतलाते थे। इसका कारण यह था, कि ये सूर्यके बड़े भारी भक्त थे। इनका दूसरा नाम नियमानन्द भी था। भक्तोंके मानकी रक्षा करनेके लिए नारायणने सूर्यरूपमें आविर्भूत हो उनकी प्रार्थना पूरी की थी। इस विषयमें एक किंवदन्ती इस प्रकार है,—

किसी समय एक दण्डी (किसीके मतसे जैन संन्यासी) इनके समीप पहुँचे। दोनोंमें शास्त्रीय विचार होने लगा। सूर्यास्त हो रहा था, निम्बादित्यने आगन्तुक अतिथिकी क्लान्ति दूर करनेके इरादेसे कुछ खाद्य सामग्री रक्खी थी और उनसे खानेको कहा। किन्तु सूर्यास्तके उपरान्त उनका भोजन करनेका नियम नहीं था। इस पर भास्कराचार्यने सूर्यकी गति रोक रखी और जब तक उनका खानपान तथा भोजनकार्य शेष न हो गया, तब तक सूर्यदेव उनकी प्रार्थना और भक्तिसे प्रेरित हो निकटस्थ एक निम्बवृक्ष पर छिपे रहे। सूर्यदेवने उनकी आज्ञाका पालन किया था, इस कारण भास्कराचार्य तभीसे निम्बार्क वा निम्बादित्य नामसे प्रसिद्ध हुए।

मृत्युके बाद उनके प्रधान शिष्य श्रीनिवासाचार्य उनके उत्तराधिकारी हुए। इनके बनाए हुए ग्रन्थ कृष्णस्तवराज, गुरुपरम्परा, दशश्लोकी वा सिद्धान्तरत्न, मध्वमुखमर्दन, वेदान्ततत्त्वबोध, वेदान्तपारिजातसौरभ, वेदान्तसिद्धान्तप्रदीप, स्वधर्माध्वबोध, ऐतिह्यतत्त्वसिद्धान्त आदि कई एक ग्रन्थ मिलते हैं।

निम्बार्क (सं० पु०) १ निम्बादित्य। २ निम्बादित्यका चलाया हुआ वैष्णव सम्प्रदाय।

निम्बार्कशिष्य—विष्णुगीता और संन्यासपद्धति नामक ग्रन्थके रचयिता।

निम्बू (सं० स्त्री०) निमि पिबति स बहवोर्भावात् सा। नीबू। संस्कृत पर्याय—निम्बूक, अम्लजम्बीर, दन्ताघातशोधन, वह्निसार, वह्निबीज, दीप्य, वह्नि, दन्तशठ, जम्बीरक, अम्ल, रोचन, जम्बीर, शोधन, दीपक।

विशेष विवरण नीबू शब्दमें देखो।

निम्बूक (सं० पु०) अम्लजम्बीरवृक्ष, कागजी नीबू।

निम्बूकपानकम् (सं० क्ली०) निम्बुरस नीबूका शरबत।

निम्बूकपानक (सं० क्ली०) पानीयभेद। एक भाग नीबूके रसमें छः भाग पानीका जल डाल कर उसमें शक्कर और मिर्चका चूर्ण मिला देते हैं। इसीको निम्बूकपानक कहते हैं। यह बहुत सुगन्धित होता है।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—अम्ल, वातनाशक, अग्निदीपक और रुच्य है तथा समस्त आहारमें पाचकका काम करता है।

निम्ब—धारवारसे ८ मील उत्तरमें अवस्थित एक ग्राम। इस ग्रामसे १३ मील दक्षिण पश्चिममें श्रीदत्तात्रेयका ईंटोंका बना हुआ एक मन्दिर है। महाकृष्ण महन्त बना इन सालोंमें करीब १०० वर्ष हुए, मन्दिरका निर्माण किया है। इसको ऊँचाई १० फुटसे कम नहीं होगी। मन्दिरके मध्य खम्भोंके बीचमें एक कुआर है। बारह गोलाकार स्तम्भ और चार चतुष्कोणाकृति स्तम्भ

के ऊपर छत टिकी हुई है। कुठारमें दत्तात्रेय और दश अवतारकी छवि अङ्कित है। श्राद्धादि कर्मके लिए यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है।

निम्रुच् (सं० स्त्री०) नि-म्रुच-क्विप्। नितरां गमन, लगातार चलते रहना।

निम्लुप्ति (सं० स्त्री०) निर्मुक्ति। अस्तगमन।

निम्लोच (सं० पु०) नि-म्लुच-घञ्। अस्तमय, सूर्यका अस्त होना।

निम्लोचनी (सं० स्त्री०) वरुणकी नगरीका नाम जो मानसोत्तर पर्वतके पश्चिम है।

निम्लोचा (सं० स्त्री०) एक अप्सराका नाम।

निम्लोचि (सं० पु०) सात्वतवंशीय भजमानके एक पुत्रका नाम।

नियत (सं० त्रि०) नि-यम-क्त। १ संयत, कृतसंयम, नियम द्वारा स्थिर, बंधा हुआ। २ स्थिर, ठहराया हुआ, ठीक किया हुआ, मुकर्रर। ३ नियोजित, स्थापित, प्रतिष्ठित, मुकर्रर, तैनात। ४ आसक्त। (पु०) ५ महादेव, शिव। ६ गन्धक।

नियतमानस (सं० त्रि०) नियतं मानसं येन। संयतेन्द्रिय, जितमानस, जिसने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया हो।

नियतव्यवहारिककाल—ज्योतिःशास्त्रोक्त पुण्यकालविशेष, ज्योतिषमें पुण्य, दान, व्रत, श्राद्ध, यात्रा, विवाह इत्यादिके लिए नियत समय।

कालमान नौ प्रकारके माने गए हैं, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र, पित्र्य, दिव्य, प्राजापत्य (मन्वन्तर), ब्राह्म (कल्प) और बार्हस्पत्य। इनमेंसे ऊपर लिखी बातोंके लिए तीन प्रकारके कालमान लिए जाते हैं—सौर, चान्द्र और सावन (संक्रान्ति, उत्तरायण, दक्षिणायन आदि पुण्यकाल सौर कालके अनुसार नियत किए जाते हैं। तिथि, करण, विवाह, क्षौर, व्रत, उपास और यात्रा इत्यादिमें चान्द्र काल लिया जाता है। जन्म, मरण (सूतक), चान्द्रायण आदि प्रायश्चित्त, यज्ञ दिनाधिपति, मासाधिपति, वर्षाधिपति और ग्रहोंकी मध्यगति आदिका निर्णय सावनकाल द्वारा होता है।

नियतात्मा (सं० त्रि०) नियतः आत्मा येन। संयतेन्द्रिय, अपने ऊपर प्रतिबन्ध रखनेवाला, अपने आपको वशमें रखनेवाला।

नियताप्ति (सं० स्त्री०) नियता निश्चिता आप्तिः। नाटकमें प्रारब्ध कार्यकी अवस्थाभेद, नाटकमें अन्य उपायोंको छोड़ एक ही उपायसे फल प्राप्तिका निश्चय।

अपायाभावसे निर्द्धारित जो एकान्त फलप्राप्ति है, उसीको नियताप्ति कहते हैं। उदाहरण—राजाने कहा, देवीके अनुग्रहके सिवा और कोई उपाय नहीं देखता हूं। यहां पर कार्यसिद्धि सम्पूर्णरूपसे दैवसिद्धिके ऊपर निर्भर है। दैवके प्रसन्न होने पर निश्चय ही फलकी प्राप्ति होगी, इस प्रकारकी फलप्राप्तिको नियताप्ति कहते हैं।

नियताहार (सं० त्रि०) नियत आहार येन। परिमिताहारी, थोड़ा खानेवाला।

नियति (सं० स्त्री०) नियम्यतेऽनया नि यम करणे क्तिन्। १ भाग्य, दैव, अदृष्ट। २ नियम, बन्धेज। ३ स्थिरता, मुकर्ररी, ठहराव। ४ अवश्य होनेवाली बात, बन्धी हुई बात। ५ पूर्वकृत कर्मका परिणाम जिसका होना निश्चय होता है। ६ जड़, प्रकृति। ७ चतुर्दशधारिणी देवयोषितोंकी अन्यतमा स्त्री।

नियती (सं० स्त्री०) नियम्यते कालो यया, नि यम क्तिच्, बाहुलकात् ङीप्। दुर्गा, भगवती।

नियतेन्द्रिय (सं० त्रि०) नियतानि इन्द्रियानि येन। संयतेन्द्रिय, इन्द्रियदमनशील, इन्द्रियको वशमें रखनेवाला।

नियन्तव्य (सं० क्ली०) नि-यम तव्य। नियमनीय, दमन योग्य, शासन योग्य।

नियन्ता (हिं० पु०) नियन्तृ देखो।

नियन्त्रण (सं० क्ली०) नि-यन्त्रि-ल्युट्। प्रतिबन्ध दूरीकरण, एकत्र स्थापनार्थ व्यापारभेद।

नियन्त्रित (सं० त्रि०) नि-यन्त्रि क्त। १ अबाध, अनर्गल। २ कृतनियम। ३ प्रतिबन्धादि द्वारा एकत्र स्थापित, नियमसे बंधा हुआ, कायदेका पाबंद।

नियन्तृ (सं० त्रि०) नियच्छति अश्वादीनिति नि-यम तृच्। १ नियमकारी, नियम बांधनेवाला, कायदा बांधनेवाला। २ विधायक, कार्यका चलानेवाला। (पु०)

३ यमनियमचारी, योग करनेवाला, यागिक। ४ विष्णु, भगवान्। ५ विषय, नियम पर चलनेवाला शासक।

नियम (सं॰ पु॰) नियमनमिति नि-यम-अप्। १ प्रतिज्ञा, अङ्गीकार। २ विधि या निश्चयके अनुकूल प्रतिबन्ध, परिमिति, रोक थामन्दी। [illegible] वस्तुओंके परिमाण बांधनेको नियम कहते है—जैसे द्रव्यनियम, विनयनियम, उपानहनियम, ताम्बूलनियम, आहारनियम, वस्त्रनियम, पुष्पनियम, वाहननियम, शय्यानियम इत्यादि। ३ शासन, दबाव। ४ परम्परा, बन्धा हुआ क्रम, दस्तूर। ५ व्यवस्था पद्धति, विधि कायदा कानून, जाब्ता। ६ निश्चय। ७ ऐसी बातका निर्धारण जिसके होने पर दूसरी बातका होना निर्भर किया गया हो, शर्त। ८ योगाङ्गविशेष। पातञ्जल दर्शनमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

यम नियम, आसन और प्राणायाम आदि योगके आठ अङ्ग हैं। योगाभ्यास करनेमें पहले पहले यम नियमादिका साधन करना होता है। पहले यम, पीछे नियम है अर्थात् यम नामक योगाङ्गके सिद्ध हो जाने पर नियमयोगाङ्गका अनुष्ठान किया जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच प्रकारके कार्योंका नाम यम है। यमयोगाङ्गका अनुष्ठान करके नियमयोगाङ्गका साधन करना पड़ता है। इसीसे संक्षेपमें यमयोगाङ्गका विषय लिखा जाता है। पहले अहिंसा-नुष्ठान है केवल प्राणिवध नहीं करनेसे ही अहिंसा-नुष्ठान सिद्ध होता है सो नहीं, किसी उपायसे वा किसी समयमें प्राणियोंको कायिक, वाचिक वा मानसिक किसी प्रकारका कष्ट नहीं देनेसे ही अहिंसा-नुष्ठान सिद्ध होता है। इस अहिंसानुष्ठानकी पराकाष्ठा प्राप्त करनेसे चित्त निर्मल रहता है। अहिंसानुष्ठानके बाद सत्यानुष्ठान है। सत्यनिष्ठ होनेसे चित्त शीघ्र ही योगशक्ति लाभ करनेके योग्य हो जाता है। इसके बाद अस्तेय है। इसके साथ ब्रह्मचर्यका करना आवश्यक है। ब्रह्मचर्यका मूल अर्थ वीर्यधारण है। शरीरमें धातुधातु यदि पुष्ट रहे, विकृत, स्खलित वा विकम्पित न हो, अचल, अटल वा स्थिरभावसे रहे तो सभी बुद्धीन्द्रिय और मनकी शक्ति बढ़ती है। चित्तकी प्रज्ञाशक्तिकी भी वृद्धि होती है। ब्रह्मचर्यके साथ अपरिग्रहरतिका अवलम्बन करना होता है। लोभपूर्वक द्रव्यग्रहणका नाम परिग्रह है। केवल देहयात्रा निर्वाहके वा शरीररक्षाके उपयुक्त द्रव्योपकारको परिग्रह नहीं कहते। इस प्रकार अनुष्ठान करनेका नाम अपरिग्रह है। इस अपरिग्रहसे चित्तमें योगोपयुक्त संस्कारका बीज उत्पन्न होता है। अहिंसादि पांच प्रकारके यमसाधित देह और आत्मामें विच्छिन्न नहीं होते।

यमयोगाङ्गमें दृढ़ हो जानेसे नियम नामक योगाङ्गका अनुष्ठान करना होता है।

शौच, सन्तोष, तपस्या स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान इन पांच प्रकारकी अनुष्ठित क्रियाओंका नाम नियम है। शौच दो प्रकारका होता है—बाह्य और आभ्यन्तर। जल, मिट्टी, गोबर आदिसे शरीरको साफ रखना बाह्यशौच है। करुणा मैत्री, भक्ति आदि सात्त्विक वृत्तियोंको धारण करना आभ्यन्तर शौच है। इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे शरीर और मन विशुद्ध हो जाता है तथा अन्तर नामक चित्तका या आध्यात्मिक तेजमें शुद्धता और प्रसन्नता आ जाती है।

सन्तोष, तुष्टि ; (जितना परिश्रमसे जो लाभ हो उसीमें परितुष्ट रहना चाहिए) कुछ दिन तक इस योगाङ्गका अनुष्ठान करनेसे सन्तोषचित्तमें दृढ़ हो जाता है। तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान—यथापूर्वक शास्त्रोक्त व्रत नियमादिके अनुष्ठान करने का नाम तपस्या है। प्रणव आदि ईश्वरवाचक शब्दके जप अर्थात् मन्त्रका स्वरपूर्वक उच्चारण और अध्यात्म शास्त्रके अर्थानुसन्धानमें रत रहनेका नाम स्वाध्याय है। भक्तिपूर्वक ईश्वरार्पितचित्त हो जो कार्य किया जाता है, उसे ईश्वर प्रणिधान कहते हैं। इन तीन प्रकारकी क्रियाओंका नाम क्रियायोग है। बिना तपस्याके योग सिद्ध होनेकी सम्भावना नहीं। क्योंकि मनुष्यके चित्तमें अनादिकालकी विषयवासना और अविद्या बद्धमूल हो पड़ी है। बिना तपस्याके उसका दूर होना सम्भव नहीं है। चित्तमें वासनाके रहनेसे योग हो नहीं सकता। इस वासनानाशके लिए तपस्या अवश्य विधेय है। इन सब

नियारा (हिं० वि०) १ पृथक्, अलग, जुदा। (पु०) २ सुनारों या जौहरियोंके यहांका कूड़ा करकट।

नियारिया (हिं० पु०) १ चतुर मनुष्य, चालाक आदमी। २ मिली हुई वस्तुओंको अलग अलग करनेवाला। ३ वह जो सुनारों या जौहरियोंको राख, कूड़ा करकट आदिमेंसे माल निकालता हो।

नियुक्त (सं० वि०) नि-युज-क्त। १ अधिकृत, अधिकार किया हुआ। २ नियोजित, लगाया हुआ। ३ प्रेरित, तत्पर किया हुआ। ४ अवधारित, स्थिर किया हुआ, ठहराया हुआ। ५ लगाया हुआ, जोता हुआ, तैनात, मुकर्रर।

नियुक्ति (सं० स्त्री०) मुकर्ररी, तैनाती।

नियुत् (सं० पु०) नि-यु कम णि क्विप् तुक्। वायुका अश्व। (वैदिक)

नियुत (सं० क्ली०) नियूयते बहुसंख्या प्राप्यतेऽनेनेति, नि-यु-क्त। १ लक्ष, एक लाख। २ दश लक्ष, दश लाख। नियुत शब्दका प्रायः दश लक्षमें ही व्यवहार हुआ करता है।

नियुत्वतीय (सं० वि०) नियुत्वतः इदं नियुत्वत् छ। वायुदेवताके हविः आदि।

नियुत्वत् (सं० पु०) नियुतोऽश्वाः सन्त्यस्य मतुप्—मस्य वः। वायु, हवा।

नियुत्सा (सं० स्त्री०) भरतवंशीय प्रस्तार राजाकी स्त्रीका नाम।

नियुद्ध (सं० क्लो०) नि युध-क्त। बाहुयुद्ध, हाथाबाहीं, कुश्ती।

नियुद्रथ (सं० वि०) नियुत् नियोजितो नियतो वा रथो यस्य। जानेके लिये नियोजित रथ।

नियोक्तव्य (सं० क्लो०) नि-युज-तव्य। नियोगार्ह, नियोजित करने योग्य।

नियोक्ता (हिं० पु०) १ नियोजित करनेवाला, लगानेवाला। २ नियोग करनेवाला।

नियोक्तृ (सं० वि०) नि युज-तृच्। नियोक्ता देखो।

नियोग (सं० पु०) नि युज-घञ्। १ प्रेरण, कार्यमें प्रवृत्त करना। २ इष्टसाधनत्वादि बोधन द्वारा प्रवर्त्तन। ३ अवधारण। ४ आज्ञा। ५ निश्चय। ६ अपुत्रभ्रातृ-पत्नीपुत्रार्थ नियोजन, पुत्र उत्पादन करनेके लिए निःसन्तान भौजाईके साथ संभोग।

नियोगविधिका विषय मनुने इस प्रकार लिखा है। यदि अपने स्वामीसे कोई सन्तान उत्पन्न न हो, तो स्त्री अपने देवर अथवा पतिके और किसी गोत्रजसे सन्तान उत्पन्न करा सकती है। रातको मौनावलम्बनपूर्वक स्वामी वा गुरु कर्त्तृक नियुक्त व्यक्ति विधवा स्त्रीसे केवल एक सन्तान उत्पन्न कर सकता है। किसी किसी आचार्य-का मत है, कि एक सन्तान द्वारा नियोजकका नियोग उद्देश्य फलीभूत नहीं हो सकता, इस कारण वह स्त्री और नियोजित व्यक्ति दो सन्तान तक उत्पन्न कर सकते हैं। नियोजित ज्येष्ठ वा कनिष्ठ भ्राता यदि शास्त्रानुगामी न हो कर नियोगविधिका उल्लङ्घन करे, तो उसे प्रायश्चित्त करना होता है। (मनु ८ अ०) पर कलिमें यह रीति वर्जित है।

नियोगी (सं० वि०) नियोगोऽस्यास्तीति नियोग-इनि। १ नियोगविशिष्ट, जो नियोग किया गया हो, जो लगाया या मुकर्रर किया गया हो। पर्याय—कर्मसचिव, आयुक्त, व्यापृत। २ जो किसी स्त्रीके साथ नियोग करे।

नियोगकर्त्तृ (सं० वि०) नियोगस्य कर्त्ता। कर्ममें नियुक्तकारी, काममें लगानेवाला, मुकर्रर करनेवाला।

नियोगपत्र (सं० क्ली०) नियोगस्य पत्रम्। वह पत्र जिसमें किसी मनुष्यकी नियुक्तिका विषय लिखा रहता है।

नियोगविधि (सं० पु०) विधीयते इति वि धा-कि, नियोगस्य विधिः। किसी कार्यमें नियुक्त करनेकी प्रथा।

नियोगार्थ (सं० पु०) नियुक्त करनेका उद्देश्य।

नियोग्य (सं० वि०) नियोक्तुमर्हः, नि-युज-ण्यत्। नियो-गार्ह, नियोग करने योग्य।

नियोजक (सं० पु०) नियोजयति नि-युज-णिच-ण्वुल्। नियोगकारी, काममें लगानेवाला, मुकर्रर करनेवाला।

नियोजन (सं० क्ली०) नि-युज-ल्युट्। १ नियोग। २ प्रेरणा, किसी काममें लगाना, तैनात या मुकर्रर करना। ३ प्रवर्त्तन, उत्तेजना, उसकाना।

नियोजित (सं० वि०) नियुक्त किया हुआ, लगाया हुआ, मुकर्रर, तैनात।

नियोज्य (सं० वि०) नियोक्तुमशक्यः, नि-युज-अशक्यार्थे ण्यत् प्रत्ययेन साधुः। १ नियोगार्ह, नियोग करने योग्य, जो नियुक्त करने काबिल हो।

नियोद्धा (सं० पु०) नियुध्यति इति नि-युध्-तृच्। १ कुक्कुट, मुर्गा। २ बाहुयुद्धकारी, मल्लयोद्धा, कुश्ती लड़नेवाला, पहलवान।

नियोद्धृ (सं० पु०) नियोद्धा देखो।

निष्का (सं० स्त्री०) अर्धपलपरिमाण, एक परिमाण जो करौंकि छठे भागके बराबर होता है।

निर् (सं० अव्य०) निर्-क्षिप, न दीर्घ। १ निश्चय। २ अत्यय। ३ आदेश। ४ अतिक्रम। ५ भोग। ६ निषेध। निर् एक उपसर्ग भी है जो शब्दादिके पहले रह कर अर्थ प्रकाश करता है, यथाक्रम उसका उदाहरण लिखा जाता है। १ निष्कृष्ट। २ निर्णीत। ३ निर्देश। ४ निष्क्रान्त। ५ निर्भोग। ६ निषिद्ध। ७ निषेध।

निरंश (सं० पु०) निर्गतो अंशो यस्मात्। १ सूर्यभुज्यमान राशिकी प्रथम राशिका तीसवाँ भाग, राशिके भोगकालका प्रथम और शेष दिन, संक्रान्ति। (त्रि०) निर्गतो भागो यस्य। २ भागरहित जिसे उसका भाग न मिला हो।

पतित, उसका पुत्र और क्लीव आदि निरंशक अर्थात् भागहीन हैं, इन्हें सम्पत्तिका भाग नहीं मिल सकता केवल प्रतिपालनके लिए कुछ दे देना चाहिए। ३ बिना अक्षांशका।

निरबेरन (हिं० वि०) १ खाली खालिस, बिना मेलका। २ स्वच्छ साफ।

निरक्ष (सं०) निर्गता अक्षस्तदुन्नति यस्मात्। यत्रोन्नति भूमध्यदेश, निरक्षदेश पृथ्वीको उत्तरार्द्ध और दक्षिणार्द्ध दो भाग करनेमें जिस रेखा द्वारा भाग करते हैं वही वृत्त और उसके ऊपरवाले देशोंको निरक्षदेश कहते हैं। निरक्षदेशमें रात और दिन बराबर होता है। पूर्वमें भद्राश्ववर्ष और यमकोटि, दक्षिणमें भारतवर्ष और लङ्का, पश्चिममें केतुमालवर्ष, रोमक, उत्तरकुरु और सिद्धपुरी निरक्षदेश कहे गए हैं। सूर्य इन सब देशोंको विषुवरेखा हो कर जाते हैं इसीसे दिन और रातका मान बराबर होता है।

निरक्षर (सं० त्रि०) १ अक्षरशून्य। २ जिसने एक अक्षर भी न पढ़ा हो, अनपढ़, मूर्ख। जैसे—निरक्षर भट्टाचार्य—पण्डित बना हुआ मूर्ख।

निरक्षरेखा (सं० स्त्री०) नाड़ीमण्डल निरक्षवृत्त, क्रान्तिवृत्त।

निरखना (हिं० क्रि०) देखना, ताकना।

निरगुनिया (हिं० वि०) निर्गुणी देखो।

निरगुन (हिं० वि०) जिसमें गुण न हो या जो गुणी न हो, अनाड़ी।

निरग्नि (सं० पु०) निर्गतोऽग्निः श्रौतस्मार्ताग्निकार्यं यस्मात्। श्रौत और स्मार्त अग्निसाध्यकर्मरहित ब्राह्मण वह ब्राह्मण जो श्रौत और स्मार्त विधिके अनुसार अग्निकर्म न करता हो।

निरग्नि ब्राह्मणको हमेशा यथोदिष्ट श्राद्ध विधिका अनुष्ठान करना चाहिए। साग्निकब्राह्मण यदि अग्निका परित्याग करे, तो उसे पुत्र हत्याके समान पाप लगता है। मनुने अग्नि परित्यागको उपपातक बतलाया है।

निरङ्कुश (सं० त्रि०) निर्गतोऽङ्कुशः प्रतिबन्धको यस्य। १ प्रतिबन्धशून्य जिसके लिये कोई अंकुश या प्रतिबन्ध न हो। २ अनिवार्य जो निवारण करनेयोग्य न हो। ३ स्वच्छन्द, बिना डर दाबका, बेकहा।

निरङ्ग (सं० त्रि०) निर्गतं अङ्गं यस्य। १ अङ्गहीन, जिसे अङ्ग न हो। २ केवल, खाली जिसमें कुछ न हो, जैसे यह दूध निरंग पानी है। (क्ली०) ३ रूपक अलङ्कारका एक भेद। रूपक दो प्रकारका होता है, एक अभेद, दूसरा ताद्रूप्य। अभेद रूपकके भी फिर तीन भेद माने गये हैं सम अधिक और न्यून। इनमेंसे 'सम अभेद रूपक'के तीन भेद हैं, यथा—सङ्ग या सावयव निरङ्ग या निरवयव और परम्परित। जहाँ उपमेयमें उपमानका इस प्रकार आरोप होता है कि उपमानके और सब अङ्ग नहीं आते, वहाँ निरवयव या निरङ्गरूपक होता है—जैसे "रे मन मौंद न चैन किए निजघर में कुछ और न भावे, सौंपनको पद में समता करिके हिय काम मवोस बनावै।" यहाँ मनमें केवल बाताका आरोप है, उसके दूसरे दूसरे अङ्गों या सामग्रियोंका कथन नहीं है। निरङ्ग या निरवयव रूपक भी दो प्रकारका माना गया है पहला शुद्ध और दूसरा मालाकार। ऊपरमें जो उदाहरण लिखा गया है वह शुद्ध निरवयवका है क्योंकि उसमें एक उपमेयमें एक ही उपमानका

(गेममें लताका) आरोप हुआ है। मालाकार निरवयव उसे कहते हैं जिसमें एक एक उपमेयमें अनेकों उपमानोंका आरोप हो। जैसे—"भँवर सँदेहकी भछेह आपरत यह, गेह त्यों अनम्रताको देह दुति हारी है। दीपको निशान, कोटि कपट प्रधान जामें, मान न विश्राम द्रुम ध्यानकी कुठारी है। कहै तोष हरि स्वर्गद्वार बिघन धार, नरक अपारको विचार अधिकारी है। भारी भयकारी यह पापकी पिटारी नारी क्यों करि विचारि याहि भाखें सुख प्यारी है।"

यहां एक स्त्री उपमेयमें संदेहका भंवर, अविनयका घर इत्यादि बहुतसे आरोप किये गये हैं।

निरङ्ग (हिं० वि०) १ विवर्ण, बेरङ्ग, बदरंग। २ उदास, फीका, बेरौनक।

निरङ्गुल (सं० त्रि०) निर्गतमंगुलिभ्यः, अच्, समासान्तः। अंगुलिसे निर्गत, जिसे उंगली न हो।

निरचू (हिं० वि०) निश्चिन्त, खाली, जिसे फुरसत मिल गई हो, जिसने छुट्टी पाई हो।

निरजल (हिं० वि०) निर्जल देखो।

निरजिन (सं० क्ली०) निर्गतमजिनात्। अजिनसे निर्गत, जिसे चमड़ा न हो।

निरजी (हिं० स्त्री०) संगतराशोंकी महीन टांकी जिससे संगमर्मर पर काम बनाया जाता है।

निरजोस (हिं० पु०) १ निचोड़। २ निर्णय।

निरजोसी (हिं० वि०) १ निर्णय करनेवाला। २ निचोड़ निकालनेवाला।

निरञ्छन (सं० क्ली०) वह चिह्न या निशान जो मापनेकी रेखामें किया जाता है।

निरञ्जन (सं० त्रि०) निर्गतं अञ्जनं कज्जलं तदिव मलं अज्ञानं वा यस्मात्। १ कज्जलरहित, बिना काजलका २ दोषरहित, बिना गुनाहका। ३ मायासे निर्लिप्त। (पु०) ४ योगिविशेष। ५ परमात्मा। ६ महादेव।

निरञ्जनदास—हिन्दीके एक कवि। ये अनन्दपुरके निवासी थे। इनके पिताका नाम बसन्त और गुरुका पीताम्बर था। संवत् १७८५ इनका कविताकाल कहा जाता है। इन्होंने एक पुस्तक रची है जिसका नाम हरिनाममाला है।

निरञ्जनयति - भंगवन्नाम-माहात्म्य-ग्रहके रचयिता।

निरञ्जना (सं० स्त्री०) निर्गतम् अञ्जनमिव अन्धकारो यत्र टाप्। १ पूर्णिमा। २ दुर्गाका एक नाम।

निरञ्जनी—एक उपासक सम्प्रदाय। कहते हैं, कि इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक नित्यानन्दस्वामी थे। उन्होंने निरञ्जन निराकार ईश्वरकी उपासना चलाई थी, इससे उनके सम्प्रदायको निरञ्जनीसम्प्रदाय कहने लगे; किन्तु आजकल निरञ्जनी साधु रामानन्दके मतानुसार साकार उपासना ग्रहण करके उदासी वैष्णवोंमें हो गए हैं। वे कोपीन पहनते तथा तिलक और कण्ठी धारण करते हैं। मारवाड़में इनके अखाड़े बहुत हैं। ये लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि उच्च श्रेणीके मनुष्योंका अन्न ग्रहण करते हैं, इसीसे रामानन्दी या साधारण धर्मनिष्ठ वैरागी इनके हाथका भोजन नहीं करते।

इनके मन्दिरमें सीतारामकी मूर्त्ति, शालग्रामशिला, गोमतीचक्र आदि प्रतिष्ठित हैं।

निरत (सं० त्रि०) नि-रम-क्त। नियुक्त, किसी काममें लगा हुआ, तत्पर, लीन, मशगूल।

निरति (सं० स्त्री०) नितरां रतिः, नि रम-क्तिन्। १ अत्यन्त रति, अधिक प्रीति। २ लिप्त होनेका भाव, लीन होनेका भाव।

निरतिशय (सं० पु०) निर्गतोऽतिशयो यस्मात् नितरां अतिशयो वा। अत्यन्तातिशय, स्वापेक्षद्वारा अतिशय शून्य परमेश्वर।

परमेश्वरमें निरतिशय ज्ञान है, वे सर्वज्ञ हैं अर्थात् उनमें सर्वज्ञताकी अनुमापक परिपूर्ण ज्ञानशक्ति विद्यमान है, अन्य आत्मामें वैसा नहीं है। उनका स्वरूप जब दूसरेको समझाना होता है, तब अनुमानकी सहायता लेनी पड़ती है। वह अनुमान प्रणाली ऐसी है कि उससे ज्ञात होता है कि सभी आत्माओंमें कुछ न कुछ अवश्य ज्ञान है, सभी आत्मा अतीत, अनागत और वर्त्तमान समझ सकती हैं। कोई तो अल्पज्ञ और कोई उससे अधिकज्ञ है। अतएव जिससे और अधिकज्ञ आत्मा नहीं है, जिसमें ज्ञानकी पराकाष्ठा है, उसी परमेश्वरमें सर्वज्ञबीज निरतिशय है। तदपेक्षा और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। (पात० द०)

निरत्यय (सं॰ त्रि॰) निर्गतोऽत्ययो यस्य। १ अत्यय शून्य, जिसका व्यय न हो। २ अपायाभाव, जिसका नाश न हो। ३ भावविरहित जिसे किसी बातका डर न हो।

निरदई (हिं॰ वि॰) निर्दय देखो।

निरधातु (हिं॰ वि॰) वीर्यहीन, शक्तिहीन, अशक्त।

निरधारना (हिं॰ क्रि॰) १ निश्चय करना ठहराना स्थिर करना। २ मनमें धारण करना समझना।

निरध्व (सं॰ त्रि॰) निष्क्रान्तोऽध्वानं, प्रादिसमासे अच् समासान्तः। रास्तेसे निष्क्रान्त, जो अपना रास्ता भूल गया हो।

निरना (हिं॰ वि॰) निरन्ना देखो।

निरनुक्रोश (सं॰ पु॰) निर्दयता, निष्ठुरता, बेरहमी।

निरनुक्रोशकारी (सं॰ त्रि॰) जो निर्दयताके काम करता हो बेरहम।

निरनुक्रोशता (सं॰ स्त्री॰) निर्दयता, निष्ठुरता, बेरहमी

निरनुक्रोशयुक्त (सं॰ त्रि॰) निर्दय, कठोर, बेरहम।

निरनुग (सं॰ त्रि॰) जिसके अनुगामी न हों, जो बिना नौकरका हो।

निरनुनासिक (सं॰ त्रि॰) निर्गत अनुनासिक अनु नासिकत्व यस्य। अनुनासिक भिन्न वर्णभेद, जिसका उच्चारण नासिकासे सम्बन्ध न हो।

निरनुयोज्यानुयोग (सं॰ पु॰) न्यायशास्त्रोक्त निग्रहस्थान यह चार प्रकारका है—छल, जाति, आभास और अवसरवचन।

निरनुरोध (सं॰ त्रि॰) अप्रीतिकर, निष्ठुर, कठोर।

निरन्तर (सं॰ त्रि॰) निर्गतम् अन्तरं यस्मिन् अन्तरात् १ निविड़, घना। २ लगातार, अविच्छिन्न, जिसमें या जिसके बीच अन्तर या फासला न हो, जो बराबर चला गया हो। इसलिये दो भेद हैं देशिको और कालिको इनमेंसे देशिक विच्छेदशून्य है। ३ अनवकाश जिसकी परम्परा खण्डित न हो, लगातार होनेवाला। ४ अपरिणाम, सदा रहनेवाला, बराबर बना रहनेवाला। ५ घन, घना गझिन। ६ अनन्तर्धान, जो अन्तर्धान न हो, जो दृष्टिसे ओझल न हो। ७ अभेद, जिसमें भेद या अन्तर न हो, जो समान या एक ही हो। ८ तात्पर्यरहित। ९ विना। १० अनालोच। ११ अस्मय। १२ अनन्त राज्य।

निरन्तर (हिं॰ क्रि॰ वि॰) सदा, हमेशा, बराबर।

निरन्तराभ्यास (सं॰ पु॰) निरन्तरः सततोऽभ्यासो यत्र कर्मधा॰। १ स्वाध्याय। २ सतत आवृत्ति।

निरन्तराल (सं॰ त्रि॰) १ अन्तरालशून्य। २ निरन्तर पास।

निरन्तरालता (सं॰ स्त्री॰) घनिष्ठ संग।

निरन्ध (हिं॰ वि॰) १ भारी अंधा। २ महा मूर्ख। ३ ज्ञानशून्य।

निरन्धस् (सं॰ त्रि॰) निरन्न, बिना अन्नका।

निरन्न (सं॰ त्रि॰) १ अन्नहीन, बिना अन्नका। २ निराहार, जो अन्न न खाए हो।

निरन्नता (सं॰ स्त्री॰) उपवास।

निरन्ना (हिं॰ वि॰) निराहार, जो अन्न न खाये हो।

निरन्वय (सं॰ त्रि॰) नास्ति अन्वयः सम्बन्धो यत्र। १ सन्तानरहित। २ स्वामिसमक्षताऽरूप सम्बन्धशून्य स्तेय भेद। ३ स्वामिसम्बन्धशून्य योग। ४ निःसंग।

निरप (सं॰ त्रि॰) जलहीन, बिना पानीका।

निरपत्रप (सं॰ त्रि॰) निर्गता अपत्रपा लज्जा यस्मात्। १ धृष्ट। २ निर्लज्ज, बेहया।

निरपराध (सं॰ पु॰) १ निर्दोषिता, अपराधहीनता, शुद्धता, दोषविहीनता। (त्रि॰) नास्ति अपराधो यस्य। २ निर्दोष, अपराधरहित, बेकसूर।

निरपराध (हिं॰ क्रि॰ वि॰) बिना अपराधके, बिना कोई कसूर किये।

निरपवर्त (सं॰ त्रि॰) १ जो लौटा न देता हो। २ जिसमें साधारणके द्वारा भाग नहीं।

निरपवाद (सं॰ त्रि॰) १ अपवादशून्य, जिसकी कोई बुराई न की जाय। २ निर्दोष बेकसूर। ३ जिसका कभी अन्यथा न हो।

निरपाय (सं॰ त्रि॰) अपायशून्य, जिसका विनाश न हो।

निरपेक्ष (सं॰ त्रि॰) निर्गता अपेक्षा यस्य प्रादिबहु॰। १ अपेक्षाशून्य, जिसे किसी बातकी अपेक्षा या चाह न हो, बेपरवा। २ जो किसी पर अवलम्बित न हो, जो

किसी पर निर्भर न हो। ३ आशाशून्य, जिसे किसी दूसरेकी आशा न हो। ४ जिसे कुछ लगाव न हो अलग। (क्ली०) ५ अनादर। ६ अवहेलना।

निरपेक्षा (सं० स्त्री०) निरपेक्ष स्त्रियां टाप्। १ अवज्ञा, परवा न होना। २ निराशा। ३ अपेक्षा या चाहका अभाव। ४ लगावका न होना।

निरपेक्षित (सं० वि०) १ जिसकी अपेक्षा या चाह न की गई हो। २ जिसके साथ लगाव न रखा गया हो।

निरपेक्षी (सं० वि०) १ अपेक्षा या चाह न रखनेवाला। २ लगाव न रखनेवाला।

निरबंसी (हिं० वि०) जिसे वंश या सन्तान न हो।

निरबिसी (हिं० स्त्री०) निर्विषी देखो।

निरभिभव (सं० वि०) १ अभिभवशून्य, अपराजेय, जो जीता न जा सके। २ जो अपमानित न हो।

निरभिमान (सं० वि०) नास्ति अभिमानं यस्य। १ अभिमानशून्य, अहङ्काररहित।

निरभिलाष (सं० वि०) अभिलाषरहित, इच्छाशून्य।

निरभीमान (सं० वि०) निरभिमान, अहङ्कारशून्य, अभिमानरहित।

निरभ्र (सं० वि०) १ अभ्र वा मेघशून्य, बिना बादलका। (अव्य०) २ मेघशून्य आकाशमें।

निरमण (सं० क्ली०) नियतं रमणं। १ नियत रति, अत्यन्त अनुराग। नि-रम-आधारे ल्युट्, नियतं रम्यत्यस्मिन्। २ नियताधार।

निरमर्ष (सं० वि०) १ अमर्षशून्य, धीर, जिसमें धैर्य हो। २ तेजोहीन, जिसमें तेज न हो।

निरमल—१ हैदराबादके अदीलाबाद जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ५४८ वर्गमील और जनसंख्या ४५५५१ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ११५ गांव लगते हैं जिनमेंसे १५ जागीर हैं। यहांकी आय एक लाखसे अधिककी है। यहां नहरके द्वारा पानी सींचनेका अच्छा इन्तजाम है जिससे धान अधिक पैदा होता है। गोदावरी नदी इसके दक्षिणमें पड़ती है।

२ उक्त तालुकका सदर। यह अक्षा० १९° ६´ उ० और देशा० ७८° २१´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या ७०५१ है। १७५२ ई०में यहांके राजाने निजाम सलावतजङ्ग पर जो बूसीके साथ औरङ्गाबादसे गोलकुण्डाको जा रहे थे, चढ़ाई कर दी। लड़ाईमें राजा मारे गए और इनकी सेना युद्धक्षेत्रसे भाग गई। यहां पुलिस आफिस, एक अस्पताल, डाकघर और एक स्कूल है।

३ बम्बई प्रदेशके थाना जिलेका बसीन तालुकान्तर्गत एक गांव। यह अक्षा० १९° २४´ उ० और देशा० ७२° ४७´ पू०के मध्य बसीनशहरसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या २४२ है। यह एक पवित्र स्थान माना जाता है। यहां प्रतिवर्ष को ११वीं नवम्बरको एक भारी मेला लगता है जिसमें बहुतसे हिन्दू मुसलमान, ईसाई और पारसी समागत होते हैं। मेला आठ दिन तक रहता है और तरह तरहकी चीजोंकी खरीद-बिक्री होती है। यहां आठ मन्दिर और एक गिर्जा घर भी देखनेमें आता है।

निरमसोर (हिं० पु०) एक ओषधि या जड़ी जिससे अफीमके विषका प्रभाव दूर हो जाता है। यह जड़ी पञ्जाबमें होती है। १८६८ ई०में यह लन्दननगरके महामेलेमें भेजी गई थी।

निरमाली—बम्बई प्रदेशके माहीकान्थ जिलेके अन्तर्गत एक छोटा राज्य।

निरमित्र (सं० वि०) निर्गतोऽमित्रो यस्य। १ शत्रुरहित जिसका कोई शत्रु न हो। (पु०) २ चौथे पाण्डव नकुलके पुत्रका नाम। ३ त्रिगर्त्तराजके एक पुत्रका नाम। ४ बार्हद्रथवंशीय भविष्यन्नृपभेद, अयुतायुके एक पुत्रका नाम। ५ दण्डपाणिके एक पुत्रका नाम। ६ एक ऋषि जो शिवके पुत्र माने जाते हैं। (मत्स्यपु०)

निरमोल (हिं० वि०) १ अमूल्य, जिसका मोल न हो। २ बहुत बढ़िया।

निरम्बर (सं० वि०) अम्बर या वस्त्रशून्य, दिगम्बर।

निरम्बु (सं० वि०) १ जलहीन, बिना पानीका। २ निषिद्ध जल। ३ जो जल न पीए, जो बिना पानीके रहे। ४ जिसमें बिना जलके रहना पड़े।

निरय (सं० पु०) निर्गतः अयो गमनं यत्र निर्-इ आधारे अच्। नरक, दोजख।

निरयण (सं० क्ली०) निर्-अय भावे ल्युट्। १ निर्गमन। करणे ल्युट्। २ निर्गमनोपाय। ३ अयनरहित गणना,

ज्योतिषमें गणनाकी एक रीति। सूर्य राशिचक्रमें हमेशा घूमता रहता है। जितने समयमें वह एक चक्कर पूरा कर लेता है, उतने समयको एक वर्ष कहते हैं। ज्योतिषकी गणनाके लिये यह आवश्यक है कि सूर्यके भ्रमणका आरम्भ किसी स्थानसे माना जाय। सूर्यके पथमें दो स्थान ऐसे पड़ते हैं जिन पर जब वह आता है तब रात और दिन समान होते हैं। इन दो स्थानोंमेंसे किसी एक स्थानसे गणनाका आरम्भ माना जा सकता है। लेकिन विषुवरेखा (सूर्यके मार्ग)के जिस स्थान पर सूर्यके आनेसे दिनमानकी वृद्धि होने लगती है उसे वासन्तिक विषुवत् कहते हैं। उस स्थानसे आरम्भ करके सूर्य मार्गको ३६० अंशोंमें विभक्त करते हैं। प्रथम ३० अंशोंको मेष, द्वितीयको वृष इत्यादि मान कर राशि विभाग द्वारा जो लग्नस्फुट और ग्रहस्फुट गणना करते हैं, उसे 'सायन' गणना कहते हैं।

परन्तु गणनाका एक दूसरा तरीका भी है जो अधिक प्रचलित है। ज्योतिषगणनाके आरम्भकालमें मेष-राशिस्थित अश्विनीनक्षत्रके आरम्भमें दिन और रात्रि मान बराबर स्थिर हुआ था। लेकिन अयनांश खसकता जाता है। इसलिए हरएक वर्ष अश्विनीनक्षत्र विषुवरेखाके कहाँ रहेगा, वहींसे राशिचक्रका आरम्भ और वर्षका प्रथम दिन मान कर जो लग्नस्फुट गणना की जाती है उसे 'निरयण' कहते हैं। भारतवर्षमें अधिकांश पञ्चाङ्ग निरयण-गणनाके अनुसार बनाए जाते हैं। ज्योतिषियोंमें 'सायन' और 'निरयण' ये दो पक्ष बहुत दिनोंसे चले आ रहे हैं। बहुतसे विद्वानोंके मतानुसार सायन मत ही ठीक है।

निरर्गल (सं० त्रि०) निर्गतमर्गलमिव प्रतिबन्धको यस्य। अनर्गल, प्रतिबन्धकशून्य जिसे कोई बाधा न हो।

निरर्थ (सं० त्रि०) निर्गतोऽर्थो यस्मात्। १ अर्थशून्य जिसका अर्थ न हो। २ व्यर्थ, निष्फल। ३ अभिधेयशून्य।

निरर्थक (सं० त्रि०) निर्गतोऽर्थो यस्य प्रातिपदिकार्थो वा कप्। १ निष्फल, बेफायदा। २ अर्थशून्य बेमानी। ३ न्यायमें एक निग्रहस्थान। ४ निष्प्रयोजन, व्यर्थ, बिना मतलबका। ५ काव्यदोषभेद, काव्यका एक दोष।

निरर्थता (सं० स्त्री०) निरर्थस्य भावः निरर्थ-तल् टाप्। अर्थशून्यता।

निरर्बुद (सं० क्ली०) १ नरकभेद, एक नरकका नाम।

निरव (सं० पु०) निर्+अव अभावे अच्। १ नीरव, शब्दका अभाव। निर्+अव अच्। २ निश्चय। ३ अवधारण। ४ निर्गतरवक।

निरवकाश (सं० त्रि०) निर्गतोऽवकाशो यस्य। १ अवकाशशून्य जिसमें अवकाश या गुंजायश न हो। (पु०) २ अनन्यत्र कार्यान्तरकर्त्तव्यताक कार्य।

निरवग्रह (सं० त्रि०) निर्गतोऽवग्रहः प्रतिबन्धो यस्मात्। १ स्वतन्त्र स्वच्छन्द, प्रतिबन्धरहित। २ जो दूसरेकी इच्छा पर न हो। ३ बिना विघ्न या बाधाका।

निरवच्छिन्न (सं० त्रि०) १ अनवच्छिन्न, जिसका सिल-सिला न टूटे। २ विशुद्ध, निर्मल। ३ निरन्तर, लगा-तार।

निरवद्य (सं० त्रि०) निर्गत अवद्य दोष, अज्ञान रागद्वेषादि वा यस्य। १ निर्दोष, अनिन्द्य, जिसे कोई बुरा न कहे। २ अज्ञानशून्य रागादिशून्य परमात्मा। स्त्रियां टाप्। ३ गायकीभेद।

निरवद्यपुरुषबलम—प्राचीन मन्दिरकी शिलालिपिके रचयिता। यह एक प्रधान मन्त्री थे। युद्ध और सन्धिका दारमदार इन्हींके ऊपर था।

निरवधि (सं० त्रि०) निर्गतोऽवधिर्यस्य। १ निरन्तर, लगातार, बराबर। २ असीम, अपार, बेहद। ३ सर्वदा, हमेशा।

निरवयव (सं० त्रि०) निर्गतोऽवयवो यस्य। १ अवयवशून्य, आकृतिरहित, निराकार न्यायके मतसे परमाणु और आकाशादि। २ सर्वांश अवयवशून्य ब्रह्म।

निरवरोध (सं० त्रि०) निर्गतः अवरोधः यस्य। अवरोधरहित, प्रतिबन्धरहित।

निरवलम्ब (सं० त्रि०) निर्गतोऽवलम्बो यस्य। १ अवलम्बनशून्य, आधाररहित बिना सहारेका। २ निराश्रय, जिसे कहीं ठिकाना न हो, जिसका कोई सहायक न हो।

निरवलम्बन (सं० त्रि०) निर्गतम् अवलम्बनं यस्य। निराश्रय, असहाय।

निरवशेष (सं० त्रि०) निर्गतोऽवशेषो यस्य। अवशेष-शून्य, समग्र, समूचा।

निरवशेषित (सं० त्रि०) निःशेषित, जिसका कुछ भी अवशिष्ट न हो।

निरवसाद (सं० त्रि०) निर्नास्ति अवसादो यस्य। अव-सादशून्य, जिसे दुःख या चिन्ता न हो।

निरवसित (सं० त्रि०) निर्-अव-सो-क्त। जिसके भोजन या स्पर्श से पात्र आदि अशुद्ध हो जायं, चाण्डाल आदि।

निरवस्कृत (सं० त्रि०) परिष्कृत, साफ किया हुआ।

निरवस्तार (सं० त्रि०) निर्नास्ति अवस्तार आस्तरणं यत्र। आस्तरणहीन, बिना बिछौनेका।

निरवहालिका (सं० स्त्री०) निर्-अव-हल-ण्वुल्, टापि अत इत्वं। प्राचीर, दीवार, घेरा।

निरवाना (हिं० क्रि०) निरानेका काम कराना।

निरवार (हिं० पु०) १ निस्तार, छुटकारा, बचाव। २ छुड़ाने या सुलझानेका काम। ३ निबटेरा, फैसला। ४ गांठ आदि छुड़ाना, सुलझाना। ५ निर्णय करना, निबटाना, तै करना।

निरविन्द (सं० क्लो०) पर्वतरूप-तीर्थभेद।

निरशन (सं० क्लो०) निर्-अश-ल्युट्, अशनस्य अभावः, अव्ययीभावः। १ अनशन, भोजनका न करना, लङ्घन, उपवास। (त्रि०) २ भोजनरहित, जिसने खाया न हो या जो न खाय। ३ जिसके अनुष्ठानमें भोजन न किया जाय, जो बिना कुछ खाए किया जाय।

निरष्ट (सं० त्रि०) अश-व्याप्तौ क्त, छान्दसत्वात् पत्वम्। १ निराकृत, दूर की हुई, हटाई हुई। (पु०) निर्गतानि अष्टौ वयोव्यञ्जनानि यस्मात् डच् समासान्तः। २ चतु-र्विंशतिवर्षीय अश्व, वह घोड़ा जिसकी अवस्था चौबीस वर्षकी हो।

निरस (सं० त्रि०) निवृत्तो रसो यस्मात्। १ नीरस, रसहीन, जिसमें रस न हो। २ बिना स्वादका, बद-जायका, फीका। ३ निस्तत्व, असार। ४ रूखा, सूखा। ५ विरक्त। (पु०) रसस्य अभावः। ६ रसाभाव, वह जिसमें रस न हो।

निरसन (सं० क्लो०) निरस्यते क्षिप्यते इति निर्-अस-ल्युट्। १ प्रत्याख्यान, निराकरण, परिहार। २ वध। ३ निष्ठी-वन, थूक। ४ प्रतिक्षेप, फेंकना, दूर करना, हटाना। ५ खारिज करना, रद करना। ६ बहिष्कृत करना, निकालना। ७ नाश।

निरसा (सं० स्त्री०) निरस-टाप्। निःश्रेणिकातृण, कोद्धणदेशमें होनेवाली एक किस्मकी घास।

निरस्त (सं० त्रि०) निर्-अस्-क्त। १ प्रहितबाण, छोड़ा हुआ शर। २ त्वरितोदित, जल्दी निकाला हुआ। ३ अस्पष्ट-च्चारित, मुंहसे अस्पष्टरूपसे जल्दी जल्दी बोला हुआ। ४ निराकरणविशिष्ट, त्याग किया हुआ, अलग किया हुआ। पर्याय—प्रत्यादिष्ट, प्रत्याख्यात, निराकृत, धिक्कृत, विप्रकृत, प्रतिक्षिप्त, अपविद्ध। ५ निष्ठ्यूत, थूका हुआ उगला हुआ। ६ प्रेषित, भेजा हुआ। ७ वर्जित, रहित। ८ प्रतिहत, खारिज किया हुआ, रद किया हुआ। (पु०) भावे-क्त। ९ निष्ठीवन, थूक। १० विचारण, सोचनेकी क्रिया या भाव। ११ क्षेपण, फेंकनेकी क्रिया।

निरस्त्र (सं० त्रि०) निर्नास्ति अस्त्रं यस्य। अस्त्रशून्य, बिना हथियारका।

निरस्थि (सं० क्लो०) निर्गतं अस्थि यस्मात्। अस्थिहीन मांस, वह मांस जिससे हड्डी अलग की गई हो।

निरस्य (सं० त्रि०) १ निरसनीय, परिहरणीय, निरसन-के योग्य। २ खण्डनीय, खण्डन करने योग्य।

निरस्यमान (सं० त्रि०) १ दूरीक्रियमाण, अलग किया हुआ, निकाला हुआ।

निरहंकृत (सं० त्रि०) अभिमानशून्य, अहङ्काररहित।

निरहंकृति (सं० स्त्री०) निरहङ्कार, निरभिमान।

निरहंक्रिय (सं० त्रि०) नष्टाहङ्कार, जिसका घमण्ड चूर हो गया हो।

निरहंमति (सं० त्रि०) निरहङ्कार, अभिमानरहित।

निरहङ्कार (सं० त्रि०) निर्गतोऽहङ्कारो यस्य। १ अभि-मानशून्य, जिसे घमण्ड न हो। २ धनविद्यावस्त्रादि निमित्त आत्मोत्कर्ष, सम्भावनाहीन, अहङ्काररहित, निरभिमान।

निरहम् (सं० त्रि०) निर्गतमहमिति बुद्धिर्यस्य। अह-ङ्कारशून्य, अहंभावशून्य।

निरह्न (सं० पु०) निर्गतमह्नः टच् समा०। १ निर्गत दिन। (त्रि०) २ दिनसे निर्गत।

निरा (हिं॰ वि॰) १ विशुद्ध, बिना मेलका, खालिस। २ एकमात्र, केवल, जिसके साथ और कुछ न हो। ३ निपट, नितान्त।

निराई (हिं॰ स्त्री॰) १ निरानेका काम, फसलके पौधोंके आसपास उगनेवाले घास पातको दूर करनेका काम। २ निरानेकी मजदूरी।

निराक (सं॰ पु॰) निर्-अक बाहुलकात् भावे घञ्। १ पाक। २ स्वेद। ३ असत् कर्मफल।

निराकरण (सं॰ क्ली॰) निर्-आ-कृ भावे ल्युट्। १ निवारण, किसी बुराईको दूर करनेका काम। २ खण्डन युक्ति या दलीलको काटनेका काम। ३ प्रत्याख्यान, छाँटना, अलग करना। ४ मीमांसा सिद्धान्त। ५ शमन, निर्णय। ६ हटाना, दूर करना। ७ मिटाना रद करना।

निराकरिष्णु (सं॰ त्रि॰) निराकरोति तच्छील निर्-आ-कृ-इष्णुच्। निराकरणशील जो निवारण या दूर कर सके।

निराकरिष्णुता (सं॰ स्त्री॰) निराकरिष्णु भावे-तल्-टाप्। निराकरणशीलका भाव या धर्म।

निराकाङ्क्ष (सं॰ त्रि॰) निर्गता आकाङ्क्षा यस्य। आकाङ्क्षाशून्य, जिसे आकाङ्क्षा न हो।

निराकाङ्क्षा (सं॰ स्त्री॰) आकाङ्क्षाशून्यता, निस्पृहता, लोभ या कामना न होनेका भाव।

निराकाङ्क्षिन् (सं॰ त्रि॰) निराकाङ्क्ष अस्त्यर्थे इनि। निराकाङ्क्षायुक्त निस्पृह, जिसे कुछ इच्छा न हो।

निराकार (सं॰ पु॰) निर्गत आकारो देहादि रूप स्वरूप यस्मात्। १ परमेश्वर, ब्रह्म।

"साकारश्च निराकारः सगुणो निर्गुणः प्रभुः।
सर्वाधारश्च सर्वेशः स्वेच्छारूपो भवाऽधरम्॥
तेजःस्वरूपो भगवान् निराकारो निराश्रयः।
निर्लिप्तो निर्गुणः साक्षी स्वात्मारामपरात्परः॥"

(ब्रह्मवैवर्तपु॰ गणपतिख॰ ३ अ॰)

परब्रह्म निराकार है, वस्तुतः उसका कोई आकार नहीं है। ब्रह्म विषयक किसी तरहकी आलोचना करना विडम्बना मात्र है।

यह विषय वेदान्तमें इस प्रकार लिखा है,—निराकार और साकारबोधक दो प्रकारकी श्रुतियां देखनेमें आती हैं। जब श्रुतिके भी दो भेद हैं, तब ब्रह्म निराकार है या साकार यह किस प्रकार स्थिर किया जा सकता है? इस प्रकारकी आपत्तिमें ब्रह्म रूपादिरहित निराकार है, यही स्थिर करना कर्त्तव्य है, उन्हें रूपादिमत् अर्थात् साकार स्थिर करना ठीक नहीं। क्योंकि ब्रह्मप्रतिपादक इन सब शास्त्रोंको निराकार ब्रह्मने ही प्रतिपादित किया है। वे स्थूल, सूक्ष्म, ह्रस्व वा दीर्घ नहीं हैं; वे अशब्द, अस्पर्श, अरूप और अव्यय हैं। वे आकाश, नाम और रूपके निर्वाहक हैं, नाम और रूप जिनके अन्तर हैं, वे ही ब्रह्म हैं। वे दिव्य, मूर्त्तिहीन, पुरुष अर्थात् पूर्ण हैं, सुतरां बाहर और भीतरमें विराजमान हैं। वे अपूर्व अनपर, अनन्तर और अबाह्य हैं। यही आत्मा ब्रह्म है और सबकी अनुभूतस्वरूप है। इन सब शास्त्रोंसे निष्प्रपञ्च ब्रह्मात्मभावका बोध होता है और तदनुयायी निराकार ब्रह्मप्रधान है तथा साकार ब्रह्मबोधक शास्त्रादि उपासनाविधि प्रधान है, ऐसा अवधारित होता है। फिर भी साकार और निराकार ये दो प्रकारकी ब्रह्मबोधक श्रुतियां रहने पर भी निराकार श्रुतिसे निराकार ब्रह्मके अवधारण और साकारबोधक श्रुति अर्थके प्रत्युत्तरमें लिखा है, कि जिस प्रकार सूर्यप्रकाश वा चन्द्रप्रकाश आलोकके आकाशमें व्याप्त रहने पर भी वह ऋजु और वक्रादिभाव प्राप्त अङ्गुलि आदि उपाधिके सम्बन्धसे ऋजु और वक्रादि भाव प्राप्तके जैसा होता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी पृथिव्यादि उपाधिके सम्बन्धसे पृथिव्यादिके आकार प्राप्तके जैसे होते हैं। अतएव उपासनाके लिये पृथिव्यादि उपाधि अवलम्बनपूर्वक ब्रह्मका जो आकार विशेष उपदिष्ट हुआ है, वह व्यर्थ वा निरर्थक नहीं है। वेदान्तका कुछ अंश सार्थक है और कुछ निरर्थक, सो नहीं। सभी वेदवाक्य प्रमाण रूपसे मान्य हैं।

उपाधियोगसे ब्रह्मकी उभय लिङ्गता—साकार और निराकार, दो प्रकारका रूप होना असम्भव है। पृथिव्यादि उपाधिसम्बन्धसे ब्रह्म तदाकार प्राप्तकी तरह नहीं होते, यह विरुद्धवत् होने पर भी यथार्थमें विरुद्ध नहीं है। क्योंकि जो उपाधिसमूहका निमित्त है वह वस्तुका धर्म नहीं है। वह अविद्याकृत है, उपाधिमात्र ही अविद्यासे उपस्थापित है। अनादिकी अविद्याके रहनेसे ही लौकिक व्यवहार और शास्त्रीय व्यवहार अवतरित हुआ है।

श्रुतिमें भी लिखा है, कि ब्रह्म निर्विशेष, एकाकार और केवलचैतन्य हैं। जिस प्रकार लवणपिण्ड अनन्तर, अवाह्य, सम्पूर्ण और रसघन है, उसी प्रकार यह आत्मा अनन्तर, अवाह्य, पूर्ण और चैतन्यघन अर्थात् केवलचैतन्य है। कहनेका तात्पर्य यह, कि आत्माके अन्तर बाहर नहीं है, चैतन्य भिन्न अन्य रूप या आकार नहीं है, वे निराकार, निरवच्छिन्न हैं, चैतन्य ही उनका सार्वकालिकरूप है। जिस प्रकार लवण-पिण्डके बाहर और भीतरमें लवणरस रहता है, दूसरा कोई रस नहीं रहता, उसी प्रकार आत्मा भी बाहर और भीतरमें चैतन्यरूपी हैं, उसमें चैतन्यके सिवा और कोई रूप नहीं है।

स्मृत्यन्तरमें विश्वरूपधर नारायणने नारदसे कहा था, 'तुम जो मुझे दिव्यगन्धादियुक्त अर्थात् मूर्त्ति विशिष्ट देखते हो, वह माया है। यह मुझसे ही सृष्ट हुई है। इस प्रकार जब तक मैं मायिकरूपधारी न होता, तब तक तुम मुझे पहचान नहीं सकते।'

ब्रह्मके दो रूप हैं, मूर्त्त और अमूर्त्त। परमार्थ-कल्पमें वे अरूप हैं। परन्तु उपाधिके अनुसार उनके मूर्त्त और अमूर्त्त है। मूर्त्तका अर्थ मूर्त्तिमत् अर्थात् स्थूल और अमूर्त्तका अर्थ सूक्ष्म होता है। पृथ्वी, जल और तेज ये तीनों ब्रह्मके मूर्त्तरूप हैं तथा वायु और आकाशद्वय अमूर्त्तरूप। मूर्त्तरूप मर्त्य मरणशील है और अमूर्त्तरूप अविनाशी। (वेदान्तद० ३।२ पु०) विशेष विवरण ब्रह्ममें देखो।

२ निर्गताह्वान। ३ आकाश। (वि०) ४ जिसका कोई आकार न हो, जिसके आकारकी भावना न हो।

निराकाश (सं० वि०) निर्नास्ति आकाशं यस्य। अव काशशून्य, पूर्ण।

निराकुल (सं० वि०) नितरां आकुलः। १ अत्यन्त आकुल, बहुत घबराया हुआ। २ अव्याकुल, जो क्षुब्ध या डावाडोल न हो। ३ अनुद्विग्न, जो घबराया न हो।

निराकृत (सं० वि०) निर्-आ-कृ-क्त। १ प्रत्याख्यात दूरीकृत, दूर की हुई, हटाई हुई। २ निरस्त, खंडन की हुई। ३ निवारित, रद्द की हुई, मिटाई हुई। ४ निर्णीत, स्थिर की हुई। ५ मीमांसित, विचारी हुई, सोची हुई।

निराकृति (सं० स्त्री०) निर्-आ-कृ क्तिन्। १ प्रत्याहार, निराकरण, परिहार। निर्गता आकृतिर्यस्मादिति। (वि०) २ आकृतिरहित, निराकार। ३ स्वाध्याय रहित, वेदपाठरहित। ४ पञ्चमहायज्ञके अनुष्ठानसे रहित। (पु०) ५ रोहितमनुपुत्र, रोहित मनुके पुत्र-का नाम।

निराकृतिन् (सं० वि०) निराकृतमनेन निराकृत-इनि (इष्टादिभ्यश्च। पा ५।२।८८) निराकरणकर्त्ता।

निराक्रन्द (सं० वि०) निर्नास्ति आक्रन्दः यस्य। १ जहां कोई पुकार सुननेवाला न हो, जहां कोई रक्षा या सहायता करनेवाला न हो। २ जो रक्षा या सहायता न करे, जो पुकार न सुने। ३ जिसकी पुकार न सुनी जाय, जिसकी कोई सहायता न करे।

निराक्रिया (सं० स्त्री०) १ बहिष्कारण। २ अस्वीकार। ३ प्रतिबन्ध।

निराखाल—सतारा जिलेकी एक कृत्रिम नदी। नीरा नदी तथा भीमा नदकी उपत्यकाका कुछ अंश सींचनेके लिये निराखाल काटी गई है। निकटवर्त्ती जिन सब नगरों और ग्रामोंमें जलकष्ट था वहां इसे दूर करनेके लिए गवर्नमेण्टने यह सत्कार्य किया है। यह नहर कटवानेमें लगभग आठ लाख रुपये खर्च हुए थे। १८६८ ई०में अनावृष्टिके कारण जब पूनामें दुर्भिक्ष पड़ा था, तब प्रधान प्रधान राजकर्मचारियोंने आ कर नहर काटनेका उपाय सोचा। भीमा और नीरा नदी के मध्य इन्दापुर इसके लिये उपयुक्त स्थान चुना गया। उसी स्थान पर नहर काटना उचित है, ऐसा सबोंने स्थिर किया। १८७६ ई०में दुर्भिक्षनिपीड़ित लोगोंको अन्नकष्ट-से मुक्त करनेके लिये ब्रिटिश साहबने उनसे खाल कटवाना शुरू कर दिया। नीरा नदीकी बाईं बगल हो कर निराखाल चली गई है। इसकी लम्बाई १०२ मील है। इस खालने पुरन्दर, भीमठाड़ी और इन्दापुर महकूमेके ८० ग्रामोंके मध्य लगभग २८०००० एकड़ जमीनको उर्वरा बना दिया है। जून माससे लेकर आधा अक्टूबर तक नीरा नदीका सब जल निराखाल हो कर बह नहीं सकता। दिसम्बरके शेष भाग तक भी नीरामें काफी जल रहता है।

कई जगह पहाड़के कारण निराघाटको गति टेढ़ी हो गई है। कोहाट, मालिमीर और निसगाव आदि स्थानोंमें पहाड़को काट कर सीधा रास्ता बना दिया गया है।

निराग (सं॰ वि॰) रागशून्य रागहीन।

निरागम (सं॰ वि॰) आगमहीन।

निरागस (सं॰ वि॰) निर्नास्ति आगः यस्य। निष्पाप, पापशून्य।

निराचक (सं॰ वि॰) आचकहीन।

निराचार (सं॰ वि॰) निर्गत आचारो यस्य। आचारशून्य, अनाचार।

निराजी (हिं॰ स्त्री॰) जुलाहोंके करघेकी वह लकड़ी जो पाई और तरौंछीको मिलानेके लिये दोनों सिरों पर लगी रहती है।

निराजीव्य (सं॰ वि॰) निरास्ति आजीव्य यस्य। जिसका जीविकोपाय कुछ भी न हो।

निराट (हिं॰ वि॰) एकमात्र, बिलकुल, निपट, निरा।

निराडम्बर (सं॰ वि॰) आडम्बरशून्य, आडम्बररहित।

निरातङ्क (सं॰ वि॰) निर्गत आतङ्को यस्य, यस्मात्। १ भयशून्य। २ रोगरहित, नीरोग।

निरातप (सं॰ वि॰) निर्गत आतपो यस्मात्। १ आतपशून्य। जिसमें ताप। २ रात्रि, रात।

निरातपा (सं॰ स्त्री॰) रात्रि रात।

निरात्मक (सं॰ वि॰) आत्मशून्य।

निरादर (सं॰ पु॰) आदरका अभाव अपमान।

निरादान (सं॰ पु॰) १ आदान या लेनेका अभाव २ एक बुद्धका नाम।

निरादिष्ट (सं॰ वि॰) जो समाप्त कर दिया गया हो।

निरादेश (सं॰ पु॰) १ सम्पूर्ण शोध, चुकताना, अदा करने या चुकानेका काम। (वि॰) २ आदेशशून्य।

निराधान (सं॰ वि॰) आधाररहित।

निराधार (सं॰ वि॰) १ अवलम्ब या आश्रयरहित, जिसे सहारा न हो या जो सहारे पर न हो। २ जो बिना अन्न आदिके हो। ३ जो प्रमाणोंसे पुष्ट न हो बेजड़ बुनियादका, जिसे या जिसमें जीविका आदिका सहारा न हो।

निराधि (सं॰ वि॰) निर्नास्ति आधिः रोगो यस्य। १ रोगशून्य नीरोग। २ चिन्ताशून्य, मानसिक पीड़ा रहित।

निरानन्द (सं॰ वि॰) १ आनन्दरहित, जिसे आनन्द न हो। २ शोकाकुल, शोकादिके कारण जिसका आनन्द नष्ट हो गया हो। (पु॰) ३ आनन्दका अभाव। ४ दुःख, चिन्ता।

निराना (हिं॰ क्रि॰) फसलके पौधोंके आसपास उगी हुई घासको खोद कर दूर करना जिसमें पौधोंकी बाढ़ न रुके, नींदना, निकाना।

निराङ्ग (सं॰ वि॰) निरङ्ग अङ्गरहित।

निरापद् (सं॰ स्त्री॰) १ आपद् या दुःखादि परिशून्यता, जिसे कोई खतरा न हो, जिसे कोई आफत या डर न हो। २ जिसमें किसी प्रकार विपत्तिकी सम्भावना न हो जिससे हानि या अनर्थकी आशङ्का न हो। ३ जहां अनर्थ या विपत्तिकी आशङ्का न हो जहां किसी बातका डर या खतरा न हो।

निराबाध (सं॰ पु॰) निर्गता आबाधा प्रतिबन्धो यस्मात्। १ यथाभावविशेष। (वि॰) २ आबाधाशून्य। ३ बाधाशून्य। ४ प्रतिबन्धशून्य।

निराभाखर (सं॰ वि॰) जो घमण्ड या अहङ्कार न हो।

निरामज्वर (सं॰ पु॰) पक्वज्वर।

निरामय (सं॰ वि॰) निर्गत आमयो व्याधिर्यस्मात्। १ रोगशून्य, जिसे रोग न हो, नीरोग, भलाचङ्गा, तन्दुरुस्त। पर्याय—वार्त्त, कल्प, नीरुज, पटु, उल्लाघ, अरुग्, अगद, निरातङ्क, अनातङ्क। २ उपद्रवशून्य। ३ रोगनाशक। (पु॰) ४ वनछागल, जंगली बकरा। ५ शूकर, सूअर। ६ राजपीठ, एक राजाका नाम। ७ महादेव, शिव। (स्त्री॰) ८ कुशल।

निरामर्द (सं॰ पु॰) महाभारतीय नृपभेद, महाभारतमें एक राजाका नाम।

निरामालु (सं॰ पु॰) १ कपित्थ, कैथका पेड़। २ वातू मेष, निसथी।

निरामिन् (सं॰ वि॰) निरतो रमणशील।

निरामिष (सं॰ वि॰) निर्गतमामिषमभिलाषो मांसाद्या मिषं वा यस्मात् प्रादिबहु॰। १ लोभशून्य, जिसमें लोभ

निरालोक (सं॰ त्रि॰) निर्गत आलोको यस्मात्। १ आलोकशून्य, अन्धकार। २ आलोकरहित, जिसमें प्रकाश निकल गया हो।

निरावर्ण्य (सं॰ त्रि॰) दृष्टिसे निवारित, दृष्टिमें रक्षणीय।

निरावलम्ब (सं॰ त्रि॰) निराधार, बिना सहारेका।

निराश (सं॰ त्रि॰) निर्गता आशा यस्य। आशारहित, जिसकी आशा न हो, नाउम्मेद।

निराशक (सं॰ त्रि॰) निराशकारो, निराश करनेवाला।

निराशङ्क (सं॰ त्रि॰) निर्नास्ति आशङ्का यस्य। आशङ्कारहित, जिसमें किसी बातका सन्देह न हो।

निराशता (सं॰ स्त्री॰) निराशस्य भावः, निराश-तल्-टाप्। निराशाका भाव या धर्म।

निराशा (सं॰ स्त्री॰) आशाका अभाव, नाउम्मेदी।

निराशित्व (सं॰ क्ली॰) निराशिनो भावः, निराशिन् त्व। आशाराहित्य, निराशाका भाव।

निराशिन् (सं॰ त्रि॰) हताश, नाउम्मेद।

निराशिष् (सं॰ त्रि॰) निर्गता आशीराशंसनं यस्य। १ आशीर्वादशून्य। २ दृढ़ वैराग्यवशतः विगततृष्ण, तृष्णारहित।

निराश्रम (सं॰ त्रि॰) निर्नास्ति आश्रमो यस्य। आश्रमरहित, आश्रमशून्य, विना आश्रय या सहारेका।

निराश्रय (सं॰ त्रि॰) निर्गत आश्रय आधारो अवलम्बनं वा यस्य। १ आश्रयरहित आधारहीन, बिना सहारेका। २ असहाय, जिसे कहीं ठिकाना न हो। ३ निर्लिप्त, जिसे शरीर आदि पर ममता न हो।

निरास (सं॰ पु॰) निर-अस भावे घञ्। १ प्रत्याख्यान, निराकरण, दूर करना। २ खण्डन। (त्रि॰) ३ निरासक।

निरासन (सं॰ क्लो॰) निर्, आस उपवेशने ल्युट्। १ निरसन, दूर करना। २ खण्डन। (त्रि॰) ३ आसनरहित।

निरास्वाद (सं॰ त्रि॰) निर्नास्ति आस्वादो यस्य। आस्वादहीन।

निरास्वाद्य (सं॰ त्रि॰) १ आस्वादरहित। २ सम्भोगरहित।

निराह्वानत् (सं॰ त्रि॰) आह्वानरहित, प्रार्थनाशून्य।

निराहार (सं॰ त्रि॰) निर्गत आहारो यस्य। १ आहाररहित, जो बिना भोजनके हो। २ निवृत्त आहार, जिसके अनुष्ठानमें भोजन न किया जाता हो। (क्लो॰) ३ आहारका अभाव।

निरिङ्ग (सं॰ त्रि॰) निश्चल, अचल।

निरिङ्गिणी (सं॰ स्त्री॰) नि-निर्भृतं जनं इङ्गति प्राप्नोतीति निर्-इङ्ग-इनि। ततो ङीप्। तिरस्करिनी, चिक, भिलमिली, परदा। पर्याय—प्रग्रगुण्ठिका, पटी, यवनिका।

निरिच्छ (सं॰ त्रि॰) निर्नास्ति इच्छा यस्य। इच्छाशून्य, जिसे कोई इच्छा न हो।

निरिन्द्रिय (सं॰ त्रि॰) निर्गतानि इन्द्रियाणि यस्मात्। १ इन्द्रियशून्य, जिसे कोई इन्द्रिय न हो।

"अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा।
उन्मत्तजड़मूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः॥"
(मनु॰ ९।२०१)

क्लीव, पतित, जन्मान्ध, जन्मबधिर, उन्मत्त, जड़, मूक और काना ये सब निरिन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियरहित हैं। निरिन्द्रियव्यक्ति पितृधनके अधिकारी नहीं हैं। २ जिसके हाथ, पैर, आंख, कान आदि न हों या कामके न हों।

निरिन्धन (सं॰ त्रि॰) इन्धनशून्य।

निरी (हिं॰ वि॰) निरा देखो।

निरीक्षक (सं॰ त्रि॰) निर्-ईक्ष-ण्वुल्। १ दर्शक, देखनेवाला। २ देखरेख करनेवाला।

निरीक्षण (सं॰ क्लो॰) निर्-ईक्ष- ल्युट्। १ दर्शन, देखना। २ देखरेख, निगरानी। ३ देखनेकी मुद्रा या ढंग, चितवन। ४ नेत्र, आंख। निरीक्षते निर्-ईक्ष ल्यु। (त्रि॰) ५ दर्शक, देखनेवाला।

निरीक्षमाण (सं॰ त्रि॰) निर्-ईक्ष-शानच्। जो देख रहा हो।

निरीक्षा (सं॰ स्त्री॰) निर्-ईक्ष-स्त्रियां अ। दर्शन, देखना।

निरीक्षित (सं॰ क्लो॰) निर्-ईक्ष-क्त। १ अवलोकित, देखा हुआ। २ देखा भाला हुआ, जांच किया हुआ।

निरीक्ष्य (सं॰ त्रि॰) दर्शनयोग्य, देखने लायक।

निरीक्ष्यमाण (सं॰ त्रि॰) निर्-ईक्ष-शानच्। दृश्यमान, जिसको देखते हों, जो देखा जाता हो।

निरीति (सं० त्रि०) निर्गता ईतिर्यस्य। ईतिरहित, अतिवृष्ट्यादिशून्य। अतिवृष्टि, अनावृष्टि मूषिक, पतङ्ग, पक्षी और निकटस्थित शत्रु राजा ये छः ईतिरहित हैं।

निरीश (सं० क्ली०) निर्गता ईशा यस्मात्। १ हलका फाल। (त्रि०) निर्गतो ईश ईश्वरो यस्य। २ ईश शून्य, जिसे ईश या स्वामी न हो, बिना मालिकका। ३ अनीश्वरवादी, नास्तिक, जिसकी समझमें ईश्वर न हो।

निरीश्वर (सं० त्रि०) निष्क्रान्त ईश्वरो यस्य। १ ईश्वर रहितवाद, जिस वादसे ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता। २ नास्तिक, अनीश्वरवादी।

निरीश्वरवाद (सं० पु०) निरीश्वरो वादः। निरीश्वर विषयक वाद, यह सिद्धान्त कि कोई ईश्वर नहीं है।

निरीश्वरवादिन् (सं० पु०) निरीश्वरोवादोऽस्यास्तीति इनि। नास्तिकवादी, जो ईश्वरका अस्तित्व न माने।

निरीष (सं० क्ली०) निर्गता ईषा यस्मात्। निरीश, हलका फाल।

निरीह (सं० त्रि०) निर्गता ईहा यस्य। १ चेष्टाशून्य, जो किसी बातके लिये प्रयत्न न करे। २ जिसे किसी बातकी चाह न हो। ३ विरक्त, उदासीन जो सब बातोंसे किनारे रहे। ४ तटस्थ, जो किसी बखेड़ेमें न पड़े। ५ शान्तिप्रिय, जो सबके साथ मेलसे रहता हो। (पु०) ६ विष्णु।

निरीहा (सं० स्त्री०) निरीह टाप्। १ चेष्टाविरोधि व्यापार, निश्चेष्टा, चेष्टाका अभाव। २ किसी चाहका न होना।

निरुआर (हिं० पु०) निरुवार देखो।

निरुआरना (हिं० क्रि०) निरुवारना देखो।

निरुक्त (सं० क्ली०) निर् वच क्त निःशेषेण उक्त। १ निर्वचन, छः वेदाङ्गोंमेंसे एक वेदका चौथा अङ्ग।

निरुक्त पांच प्रकारका है—वर्णागम, वर्णविपर्यय वर्णविकारनाश, धातु और उसका अर्थातिशययोग। वैदिक शब्दोंके निघण्टु की जो व्याख्या यास्क मुनिने की है उसे निरुक्त कहते हैं। इसमें वैदिक शब्दोंके अर्थोंका निश्चय किया गया है। यह पञ्चाध्यायात्मक है, जिनके नाम ये हैं—अध्ययनविधि, छन्दः प्रविभाग, छन्दविनियोग, उपलक्षित वर्णाङ्ग भूतकाव्य और उपदर्शित लक्षण। इन सब अङ्गोंमें वेदका अर्थ जाना जाता है इसीसे निरुक्त वेदका अङ्ग माना गया है। यह सभी अङ्गोंमें प्रधान है। क्योंकि इसमें अर्थ दिया गया है। अर्थ ही सर्वापेक्षा प्रधान है। कारण अर्थका बोध नहीं होनेसे कोई फल नहीं होता, वैदिक शब्दका अर्थ जाननेके लिये निरुक्त ही प्रधान है। इसमें तात्पर्यके साथ प्रायः सभी शब्दोंकी व्याख्या की गई है। अनिरुक्त अर्थात् निरुक्तसम्मत नहीं है, इस प्रकार शब्दार्थ व्याख्या करना उचित नहीं। निरुक्तसम्मत सभी शब्दार्थ की व्याख्या करनी होती है। इस प्रकार अर्थका परिज्ञान होनेके कारण यह प्रधान है। इसमें निम्नलिखित विषय प्रतिपादित हुए हैं—

नाम, आख्यात उपसर्ग और निपातलक्षण, भाव विकारलक्षण, नाम और आख्यातका यथाक्रम उपन्यस्त हो कर पक्ष और प्रतिपक्ष रूपमें उनका विचार कर अवधारण पदविभागपरिज्ञान प्रतिज्ञानभोक्षमें अन लक्षित पदार्थकी लिये आदि, मध्य और अन्त तथा अनेक अर्थ अतिविप्रकृष्टसन्नके याक्षिक परिज्ञान द्वारा देवतापरिज्ञानप्रतिज्ञा, अर्थप्रधान वा अनर्थज्ञानकारण, वेदवेदाङ्गाभ्युदय प्रयोजन निघण्टु समाम्नायविर चन, प्रकरणत्रयविभाग द्वारा नैघण्टु अप्रधान देवता विधान प्रविभागलक्षण, निर्वचन लक्षण द्वारा शब्दवृत्ति विपरीप्रदेश, वर्णप्राधान्यानुसारलोप उपधा विकार वर्णलोप और वर्णविपर्यय इन सब उपदेश द्वारा सामर्थ्यप्रदर्शनके निमित्त आदि, मध्य और अन्त लोप तथा उपधा विकार वर्णलोपविपर्यय आद्यन्तवर्ण-व्यापत्ति और वर्णोपजनन उदाहरणचिन्ता, अन्ताक्ष और अन्तवानुनिमित्त सम्प्रसारण और अक्षप्रसाद उभय प्रकृतिधातु भिन्न वर्णोपदेश भाविकप्रवृत्तिसे नैगम शब्दार्थ प्रसिद्धि, देश व्यवस्था द्वारा शब्दरूपप्रदर्शन, भिन्नलक्षण, विविध भाषा द्वारा तन्नपर्यायभेद, स ध्या स लिङ्ग और उदाहरण द्वारा नाम, आख्यात उपसर्ग और निपातके विभागानुसार नैघण्टु प्रकरणका अनुक्रम, अनेकार्थ शब्दके अनवगतसंस्कारका अनुक्रम, परोक्षकृत आध्यात्मिक मन्त्रलक्षण, स्तुति, आशीर्वाद, शपथ अभिशाप, अभिख्या परिदेवना, निन्दा और

प्रशंसादि द्वारा मन्त्राभिव्यक्तिहेतूपदेश; निदान परिज्ञान-व्याख्यापनके निमित्त अनादिष्टदेवतोपपरीक्षणके लिये अध्यात्मोपदेशका प्रकृतिमूलत्व ; इतरेतरजन्मत्व ; स्थान त्रयभेदसे तीनकी एकावस्था, महाभाग्यकृतके अनेक नामधेय प्रतिलम्भ ; उत्पत्तिके सम्बन्धमें पृथक् अभिधान; देवताओंका आकारचिन्तन, भक्तिसाहचर्य, संस्तव क्रम, सूक्तभाक्, हविर्भाक् और व्यञ्जनभाक् संवह ; पृथिवी, अन्तरीक्ष, द्युस्थान और देवताओंका अभिधेयभिधान तथा व्युत्पत्तिवाक्यका व्युत्युदाहरण; इन सबका निर्वाचनविचार और उपपत्ति अवधारणानुसार दैवतप्रकरणनिर्णय ; विद्यापारप्राप्त्युपायोपदेश और मन्त्रके अर्थनिर्वचन द्वारा देवताभिधान निर्वचनफल। निरुक्तशास्त्रमें यही सब विषय प्रतिपादित हुए हैं।'

अमरटीकाकार भरतने निरुक्त शब्दका अर्थ किया है, निश्चयरूपसे उक्त=निरुक्त।

हेमचन्द्रके मतसे पदभञ्जनका नाम निरुक्त है। ऋगनुक्रमणिकामें लिखा है, कि निरुक्त वेदव्याख्याका प्रधानतम उपकरण है। यह वैदिक अभिधान विशेष है। शाकपूणि, उर्णनाभ और स्थौलाष्ठिवी ये तीन प्राचीन निरुक्तकार हैं। यास्क इन सबके बहुत पहले हुए हैं। निरुक्तमें वेदमन्त्रकी यथारीति व्याख्या की गई है। यास्कने उक्त ग्रन्थमें नाम, संख्या, आख्यान, उपसर्ग और निपातकी सविशेष आलोचना की है।

किसीके मतसे निरुक्तके १२ अध्याय हैं। प्रथममें व्याकरण और शब्दशास्त्र पर सूक्ष्म विचार हैं। इतने प्राचीन कालमें शब्दशास्त्र पर ऐसा गूढ़ विचार और कहीं नहीं देखा जाता। शब्दशास्त्र पर दो मत प्रचलित थे, इसका पता हम लोगोंको यास्कके निरुक्तसे लगता है। कुछ लोगोंका मत था कि सब शब्द धातुमूलक हैं और धातु क्रियापदमात्र हैं जिनमें प्रत्ययादि लगा कर भिन्न भिन्न शब्द बनते हैं। यास्कने इसी मतका मण्डन किया है। इस मतके विरोधियोंका कहना था, कि कुछ शब्द धातुरूप क्रियापदोंसे बनते हैं, पर सब नहीं। क्योंकि यदि 'अश'से अश्व माना जाय, तो प्रत्येक चलने या आगे बढ़नेवाला पदार्थ अश्व कहलायगा। इसके उत्तरमें यास्क मुनिने कहा है, कि जब एक क्रियासे एक पदार्थका नाम पड़ जाता है, तब वही क्रिया करनेवाले और पदार्थको यह नाम नहीं दिया जाता। दूसरे पक्षका एक और विरोध यह था, कि यदि नाम इसी प्रकार दिए गए हैं, तो किसी पदार्थमें जितने गुण हों उतने ही उसके नाम भी होने चाहिए। इस पर यास्क कहते हैं, कि एक पदार्थ किसी एक गुण या धर्मसे एक नामको धारण करता है। इसी प्रकार और भी समझिए।

दूसरे और तीसरे अध्यायमें तीन निघण्टुओंके शब्दोंके अर्थ प्रायः व्याख्या सहित हैं, चौथेसे छठें अध्याय तक चौथे निघण्टुकी व्याख्या है। सातवेंसे बारहवें तक पांचवे निघण्टुके वैदिक देवताओंकी व्याख्या है। (त्रि०) २ निश्चयरूपसे कहा हुआ, व्याख्या किया हुआ। ३ नियुक्त, ठहराया हुआ।

निरुक्तकार (सं० पु०) निरुक्तः नामग्रन्थं करोतीति कृ-अण्। १ यास्क। २ शाकपूणि। ३ स्थौलष्ठिवी। ४ मेघदूतके एक टीकाकार। मल्लिनाथने इनका नामोल्लेख किया है।

निरुक्तकृत् (सं० पु०) निरुक्तं करोति कृ-क्विप तुक् च। निरुक्तकार।

निरुक्तज (सं० पु०) निरुक्तः नियुक्तः अस्यां पुत्रमुत्पादये यः सः अन्यस्तस्मात् जायते जन-ड। क्षेत्रज पुत्र।

निरुक्तवत् (सं० पु०) निरुक्तकार।

निरुक्ति (सं० स्त्री०) निर्-वच-क्तिन्। १ निर्वचन, किसी पद या वाक्यकी ऐसी व्याख्या जिसमें व्युत्पत्ति आदिका पूरा कथन हो। २ एक काव्यालङ्कार जिसमें किसी शब्दका मनमाना अर्थ किया जाय, परन्तु वह अर्थ सयुक्तिक हो। जैसे, रूप आदि गुण सों भरी तजि कै व्रज वनितान उद्धव कुब्जा वस भए, निर्गुण वहै निदान। तात्पर्य यह कि गुणवती व्रज वनिताओंको छोड़ कर 'गुणरहित' कुब्जाके वश होनेसे कृष्ण अब सचमुच 'निर्गुण' हो गए हैं।

निरुक्तिसञ्जित, (सं० स्त्री०) धर्मजिज्ञासाके लिये जो ऐकान्तिकी इच्छा होती है, उसीको बौद्धके मतसे निरुक्तिसञ्जित् कहते हैं।

निरुच्छ्वास (सं० त्रि०) १ सङ्कीर्ण, सँकरा, जहां बहुतसे

होम न पढ़ सके। २ जलाकीर्ण, जहां उपाहरण होम भी हो, वहां बड़े होने तकको जगह न हो। ३ आनन्दविहीन, दुःख।

निरुत्तर (स० त्रि०) १ उत्तररहित, जिसका कुछ उत्तर न हो, लाजवाब। २ जो उत्तर न दे सके जो कायल हो जाय।

निरुत्पात (सं० त्रि०) उत्पातहीन, उपद्रवशून्य।

निरुत्सव (स० त्रि०) निर्गलित उत्सवो यस्य। उत्सवहीन अनुष्ठानरहित।

निरुत्साह (स० त्रि०) उत्साहहीन, जिसे उत्साह न हो।

निरुत्सुक (स० त्रि०) निरागाभुत्सुक। १ अनुत्सुक। २ औत्सुक्यहीन। (पु०) १ रैवतक मनुके एक पुत्रका नाम।

निरुदक (स० त्रि०) जलहीन, जलाभाव।

निरुदकादि (स० पु०) पाणिनिगणसूत्रोक्त शब्दगणभेद। यथा—निरुदक, निरुपल, निर्मक्षिक, निर्मशक, निष्कालक, निर्दंश, दुस्तरीप, निस्तरीप, निस्तरीक, निराजिन उदजिन, उपाजिन।

निरुद्ध (स० त्रि०) नि-रुध-कर्मणि-क्त। १ रुका, रुका हुआ या कुपा। (पु०) २ योगमें पांच प्रकारकी मनोवृत्तियोंमेंसे एक, चित्तकी वह अवस्था जिसमें वह अपनी कारणीभूत प्रकृतिको प्राप्त हो कर निश्चेष्ट हो जाता है। इसका विषय पातञ्जलदर्शनमें इस प्रकार लिखा है—मनोवृत्ति दूर करनेका नाम योग है। मनकी वृत्तियां पांच प्रकारकी हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। यहां पर निरुद्ध वृत्ति ही वर्णनीय है, इस कारण क्षिप्त आदिका विषय विशेषरूपसे नहीं लिखा गया। मनकी अस्थिरता अर्थात् चञ्चलताका नाम क्षिप्त कहा है। मन कभी स्थिर नहीं रहता, कभी इधर कभी उधर हमेशा चलायमान रहता है। मन जब कर्त्तव्याकर्त्तव्यको भुला कर कामक्रोधादिसे अभिभूत हो जाता है, निद्रा तन्द्रादिके अधीन होता है तथा आलस्यादि विविध तमोमय अवस्थामें निमग्न रहता है तब उसे मूढ़ावस्था कहते हैं।

विक्षिप्त अवस्थाके साथ पूर्वोक्त क्षिप्तावस्थाका बहुत थोड़ा प्रभेद है। वह प्रभेद है केवल चित्तकी पूर्वोक्त प्रकारके चाञ्चल्यके मध्य कदाचित्स्थिरता। मनका चञ्चल स्वभाव होने पर भी बीच बीचमें वह भी स्थिर हो जाता है, उसी कादाचित्कस्थिरताका नाम विक्षिप्तावस्था है। चित्त जब दुःखजनक विषयका परित्याग कर सुखजनक वस्तुमें स्थिर रहता है, चिराभ्यस्त चञ्चलताका परित्याग कर चपलताके लिये निरुत्सुक होता है, तब उसकी ऐसी अवस्था विक्षिप्तावस्था कहलाती है।

एकाग्र और एकतान ये दो शब्द एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। चित्त जब किसी एक बाह्य वस्तु अथवा आभ्यन्तरीण वस्तुका अवलम्बन कर निवातस्थ निश्चल, निष्कम्प दीपशिखाकी तरह स्थिर या अवस्थित भावमें वर्त्तमान रहता है अथवा चित्तके रजस्तमो वृत्तिका अभिभूत हो जानेसे केवलमात्र सात्त्विकवृत्ति उदित रहती है अर्थात् प्रकाशमय और सुखमय सात्त्विक वृत्ति मात्र प्रवाहित रहता, तब उसकी ऐसी अवस्थाको एकाग्र अवस्था कहते हैं।

अब निरुद्ध अवस्थाका भी विषय जानना आवश्यक है। पूर्वोक्त एकाग्र अवस्थाकी अपेक्षा निरुद्धावस्थामें बहुत अन्तर है। एकाग्र अवस्थामें चित्तका कोई न कोई अवलम्बन अवश्य रहता है, किन्तु निरुद्धावस्थामें वह नहीं रहता। चित्त जब अपनी कारणीभूत प्रकृतिको पा कर हतशक्तिकी तरह निश्चेष्ट रहता है, उस समय उसके दग्धसूत्रकी तरह केवलमात्र संस्कारमात्र अव शेष रहने पर भी उसका किसी प्रकारका विसदृश परिणाम नहीं रहता। इस प्रकार चित्तकी अवस्था होनेसे उसे निरुद्धावस्था कहते हैं।

इन पांच प्रकारकी चित्तवृत्तियोंमेंसे एकाग्र और निरुद्ध अवस्थामें योग हुआ करता है। चित्तकी निरुद्ध अवस्था ही योग शब्दका प्रकृत या मुख्य अर्थ है।

निरुद्ध अवस्था सहजमें योगगम्य नहीं हो सकती। चित्तको निरुद्ध करनेमें पहले क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त अवस्थाको दूर करना होता है। उसके बाद एकाग्र और निरुद्ध अवस्था होती है।

चित्तकी निरुद्धावस्था होनेसे मनका नाश हो। मनका नाश होनेसे आत्मा द्रष्टृस्वरूपमें अ- है। (पातञ्जल० समाधिपा०) ...में अपेक्षा न

निरुद्धगुद (सं० पु०) क्षुद्ररोगविशेष, एक रोग जिसमें मलद्वार बंद सा हो जाता है। मलवेग धारण करनेसे वायु प्रतिहत हो कर गुह्यदेशमें आश्रय लेती है और मल निकलनेके प्रधान स्रोतको बन्द कर देती है। ऐसा करनेसे मल बहुत थोड़ा थोड़ा और कष्टसे निकलता है। इसीको निरुद्धगुदव्याधि कहते हैं। यह व्याधि बहुत कष्टकर है। (सुश्रुत) निरुद्धप्रकाश देखो।

मलवेगके धारण करनेसे कुपित अपानवायु मलवाही स्रोतको सङ्कुचित कर गुह्यद्वारको सूक्ष्म कर देती है, इसी कारण मल बहुत कष्टसे निकलता है। इस रोगमें वातघ्न तैल द्वारा परिषेक और निरुद्धप्रकाश रोगके जैसा चिकित्सा करनी चाहिये। (भावप्र०)

निरुद्धप्रकाश (सं० पु०) सेकृजात क्षुद्ररोगविशेष, एक रोग जिसमें मूत्रद्वार बन्द सा हो जाता है और पेशाब बहुत रुक रुक कर और थोड़ा थोड़ा होता है।

भावप्रकाशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—कुपित वायुसे सेढ्रचर्मका अगला भाग यदि बन्द हो जाय, तो द्वारका अल्पताप्रयुक्त मूत्रस्रोत रुक जाता है, इसीसे वेदना न हो कर पेशाब रुक रुक कर और थोड़ा थोड़ा होता है। इस प्रकारको वातजव्याधिको निरुद्ध-प्रकाश कहते हैं। इस रोगमें लोहेके दो मुंहवाले नल अथवा काठके नलको वा जतुको घृताक्त करके लिङ्गमें प्रविष्ट करते हैं और पीछे सूत तथा सूअरकी चर्बी और मज्जाद्वारा परिषेक करते हैं। वातनाशक द्रव्ययुक्त चक्रतैलका प्रयोग करनेसे भी निरुद्धप्रकाश रोग अच्छा हो जाता है। इस रोगमें तीन तीन दिनके बाद उत्तरो-त्तर स्थूल नलको लिङ्गमार्गमें प्रविष्ट करना चाहिए। ऐसा करनेसे उसका स्थान धीरे धीरे बढ़ जायेगा और पेशाब भी निकलने लगेगा। इस रोगमें स्निग्ध अन्नका प्रयोग हितकर है।

सुश्रुतके मतसे—जब पुंचिह्नका चर्म वायुयुक्त हो जाता है, तब वह मणिस्थानमें आश्रय लेता है और मणिचर्म द्वारा आच्छादित हो कर मूत्रस्रोतको रोक कुछ शब्द . इससे मणिस्थान तो विदीर्ण नहीं होता, क्योंकि यदि न रुक रुक कर और थोड़ा थोड़ा होता है। या आगे बढ़नेदप्रकाश कहते हैं।

उत्तरसे यास्क मुनि　　(सुश्रुत निदान स्थान १३ अ०)

निरुद्यम (सं० त्रि०) निर्नास्ति उद्यमः यस्य। उद्यमशून्य, निरुद्योग, जिसके पास कोई उद्यम न हो।

निरुद्यमता (सं० स्त्री०) निरुद्यम होनेकी क्रिया या भाव।

निरुद्यमी (सं० त्रि०) जो कोई उद्यम न करता हो, बेकार, निकम्मा।

निरुद्योग (सं० पु०) निर्नास्ति उद्योगः यस्य। निरुद्यम, जिसके पास कोई उद्योग न हो, बेकार, निकम्मा।

निरुद्योगी (सं० त्रि०) जो कुछ उद्योग न करे, निकम्मा, बेकार।

निरुद्विग्न (सं० त्रि०) निर्नास्ति उद्विग्नः यस्य। उद्वेग रहित, निश्चिन्त।

निरुद्वेग (सं० त्रि०) निर्नास्ति उद्वेगो यस्य। उद्वेग-शून्य, निश्चिन्त।

निरुपक्रम (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपक्रमो यस्य। उपक्रम-शून्य।

निरुपद्रव (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपद्रवोऽस्य। उपद्रव-रहित, जिसमें कोई उपद्रव न हो, जो उत्पात या उप द्रव न करता हो।

निरुपद्रवता (सं० स्त्री०) निरुपद्रवस्य भावः निरुपद्रव-तल्-टाप्। उपद्रवशून्यता, निरुपद्रव होनेकी क्रिया या भाव।

निरुपद्रवी (सं० त्रि०) जो उपद्रव न करे, शान्त।

निरुपद्रुत (सं० त्रि०) उपद्रवरहित।

निरुपधि (सं० त्रि०) शठताविहीन, जिसमें किसी प्रकारकी उपाधि न हो, जो उपद्रव न करता हो।

निरुपपत्ति (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपपत्ति यस्य। उपपत्ति-शून्य, जिसकी कोई उपपत्ति न हो।

निरुपपद (सं० त्रि०) उपपदरहित, उपपदहीन।

निरुपप्लव (सं० त्रि०) उपप्लवरहित, उत्पातरहित।

निरुपभोग (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपभोगः यस्य। उप-भोगरहित, उपभोगहीन, जिसका कोई उपभोग न हो।

निरुपम (सं० त्रि०) निर्न विद्यते उपमा यस्य। १ उपमा-रहित, तुलनारहित, जिसकी उपमा न हो, बेजोड़। (स्त्री०) २ गायत्री। (पु०) ३ राष्ट्रकूटके वंशके एक राजाका नाम। राष्ट्रकूट राजवंश देखो।

निरुपमा (सं॰ स्त्री॰) गायत्रीका एक नाम।

निरुपयोगी (सं॰ त्रि॰) जो उपयोगमें न आ सके, व्यर्थ, निरर्थक।

निरुपरोध (सं॰ त्रि॰) निर्गतः उपरोधः यस्य। उपरोधरहित, अपक्षपाती।

निरुपल (सं॰ त्रि॰) प्रस्तररहित, बिना पत्थरका।

निरुपलेप (सं॰ त्रि॰) निर्गतः उपलेपः यस्य। उपलेपरहित, प्रलेपशून्य।

निरुपसर्ग (सं॰ त्रि॰) उत्पातरहित, उपसर्गहीन।

निरुपस्कृत (सं॰ त्रि॰) १ पवित्र। २ स्वाभाविक, अकृत्रिम।

निरुपहत (सं॰ त्रि॰) १ अनाहत। २ शुभलक्षण। ३ अक्षत।

निरुपाख्य (सं॰ त्रि॰) निर्गता उपाख्या यस्मात्। १ असत्पदार्थ, जो बिलकुल मिथ्या हो और जिसके होनेकी कोई सम्भावना नहीं। २ जिसकी व्याख्या न हो सके। (पु॰) ३ ब्रह्म। ४ निःस्वरूप।

निरुपाधि (सं॰ त्रि॰) निर्गता उपाधि यस्य। १ उपाधिशून्य बाधारहित। २ मायारहित। (पु॰) ३ ब्रह्म। उपाधि तिरोहित होनेसे जीव ब्रह्म हो जाता है। एक चैतन्य सभी जीवोंमें विराजमान है। वह अनादि अनन्त ब्रह्मचैतन्य उपाधिभेदसे अर्थात् आधारदेहादिके भेदसे विभिन्न भावको प्राप्त हुए हैं। यथार्थमें वे अभिन्न हैं, विभिन्न नहीं।

उपाधिके अन्तर्हित होनेसे वे एक हैं, नहीं तो अनेक। जगत् सत्य, पाताल ये तीनों लोक ब्रह्मचैतन्यके आश्रित हो कर मायिकरूपमें देखे जाते हैं। क्योंकि एक, अखण्ड महान् और अविच्छिन्न चैतन्यमें आश्रित अज्ञानके प्रभावसे विश्वरूप इन्द्रजाल प्रकाश पाता है। इसी कारण विश्व मिथ्या है, केवल प्रकाशक चैतन्य ही सत्य है। इतना ही नहीं, उस चैतन्यमें जो जो भासमान हैं, सभी असत्य हैं, वे सब चैतन्याश्रित अज्ञानके विलास या विभ्रमके सिवा और कुछ नहीं है।

मणिरूपी ब्रह्माश्रित अज्ञान ब्रह्ममें या ब्रह्मको जगत् दिखाता है। इसलिये जगत् और ब्रह्म अभी विमिश्रित है। इसी कारण सभी पदार्थ पञ्चरूपी हैं। १ अस्ति—है, २ भाति—प्रकाश पाता है, ३ प्रिय—सुन्दर, उत्तम बढ़िया है, ४ रूप—यह एक प्रकार है, ५ नाम—यह अमुक वस्तु है। इन पञ्चरूपोंके प्रथमोक्त तीन रूप ब्रह्म हैं अवशिष्ट दो रूप जगत् अर्थात् अज्ञान विकार है। यह अज्ञान विकार या जगत् परमार्थतः सत्य नहीं है। इसीसे जगत् मिथ्या माना जाता है।

यह दृश्यमान् जगत् तात्त्विक सत्ताशून्य अथात् मिथ्या है। जिस प्रकार कोई ऐन्द्रजालिक माया द्वारा इन्द्रजाल की सृष्टि करता है उसी प्रकार महामायावी ईश्वरने भी बिना आधारके स्वेच्छा द्वारा जगत्‌की सृष्टि की है। उनकी वैसी इच्छाशक्ति ही माया कहलाती है। सत्त्व, रजः और तमोमयी मायाके एक होने पर भी गुणके प्रभेदसे वे विभिन्न हैं। उसी प्रभेदसे जीवेश्वरविभाग प्रचलित है। मायामें उपहित ईश्वर और अविद्यामें उपहित जीव है। उत्कृष्ट सत्त्वप्राधान्यमें माया और मलिनसत्त्व प्राधान्यमें अविद्या है। जीव केवल उपहित ही नहीं है अविद्याके वशमें भी है। आकाश एक ही है, किन्तु घटरूप उपाधिके घटाकाश और मठाकाश ऐसा प्रभेद हुआ करता है। उसी प्रकार एक अद्वितीय ब्रह्म होने पर भी मनुष्यादि उपाधिसे जीव और इस उपाधिके अपगत होनेसे वो ब्रह्म कहलाता है। जब वह सम्पूर्णरूपसे उपाधिरहित होता है, तब ही उसे निरुपाधि कहते हैं। जब तक अज्ञान या माया रहेगी तब तक निरुपाधि होनेकी सम्भावना नहीं। समस्त उपाधिके तिरोहित होनेसे ही जीव ब्रह्म होता है इसीसे निरुपाधि शब्दका अर्थ ब्रह्म कहा गया है। उपाधिशून्य होनेमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना होता है। जब तक उपाधि रहती है, तब तक ब्रह्ममें दृश्यमानता होती है। ज्योंही उपाधि चली जाती है त्योंही जीव ब्रह्मको साक्षात्कार करके ब्रह्म हो जाता है। (वेदान्तदर्शन) ब्रह्म देखो।

निरुपाय (सं॰ त्रि॰) निर्गतः उपायो यस्य। १ उपायरहित, उपायहीन, जिसका कोई उपाय न हो। २ जो कुछ उपाय न कर सके।

निरुपेक्ष (सं॰ त्रि॰) १ उपेक्षारहित, जिसमें उपेक्षा न हो। २ शठ, चातुर्यशून्य।

निरुप्त (सं० त्रि०) निर्-वप्-क्त। यज्ञादिके भाग भागमें पृथक् करके दिया हुआ।

निरुप्ति (सं० स्त्री०) निर्-वप्-क्तिन्। वह जो यज्ञादिके भाग भागमें पृथक् कर दिया जाता हो।

निरुवार (हिं० पु०) १ मोचन, छुड़ानेका काम। २ मुक्ति, छुटकारा, बचाव। ३ सुलझानेका काम, उलझन मिटानेका काम। ४ ते करनेका काम, निबटानेका काम। ५ निर्णय, फैसला।

निरुवारना (हिं० क्रि०) १ मुक्त करना, छुड़ाना २ निर्णय करना, फैसला करना, ते करना, निबटाना। ३ सुलझाना, उलझन मिटाना।

निरुष्णीष (सं० त्रि०) उष्णीषशून्य, शून्यमस्तक।

निरुष्मन् (सं० त्रि०) उष्मारहित, शीतल।

निरूढ़ (सं० त्रि०) निर्-रुह-क्त। १ उत्पन्न। २ प्रसिद्ध, विख्यात। ३ अविवाहित, कुंआरा। (पु० ४ शक्ति तुल्य लक्षण द्वारा अर्थबोधक शब्द। ५ पशुयागभेद, एक प्रकारका पशु-याग।

निरूढ़लक्षणा (सं० स्त्री०) निरूढ़ा शक्तितुल्या लक्षणा। लक्षणाभेद, वह लक्षणा जिसमें शब्दका गृहीत अर्थ रूढ़ हो गया हो अर्थात् वह केवल प्रसंग वा प्रयोजनवश ही न ग्रहण किया गया हो। जैसे, कर्मकुशल। यहां कुशल शब्दका मुख्य अर्थ है कुश उखाड़नेमें प्रवीण, लेकिन यहां लक्षण द्वारा वह साधारणतः दक्ष या प्रवीणके अर्थमें ग्रहण किया जाता है। लक्षणा देखो।

निरूढ़वस्ति (सं० स्त्री०) वस्तिभेद। कषाय वा क्षीर-तैलसे जो वस्तिका प्रयोग किया जाता है, उसे निरूढ़ वस्ति कहते हैं।

निरूढ़वस्तिके प्रयोगकी व्यवस्था सुश्रुतमें इस प्रकार लिखी है,—अनुवासन-प्रयोगके बाद आस्थापनका प्रयोग करे। अभ्यङ्ग और स्वेदका प्रयोग करके विष्ठा, मूत्र और वायुका वेग परित्यागपूर्वक मध्याह्नकालमें पवित्र घरमें ओषधियां अच्छी तरह रखे और विस्तीर्ण तथा उपाधान-रहित शय्या पर बाईं करवटसे सो जावे। रोगी भुक्तद्रव्यके परिपाकके बाद दक्षिण शक्थिको आकुञ्चित और वामशक्थि-को प्रसारित करे और प्रफुल्ल मनसे निस्तब्धभावमें रहे। पीछे बाएं पैरके ऊपर आंखें रख कर दाहिने हाथकी वृद्धाङ्गुलि और तर्जनीसे आंखोंको मूंद ले और बाएं हाथकी कनिष्ठा तथा अनामिकासे वस्तिके मुखके अर्द्ध-भागको सङ्कुचित कर मध्यमा, प्रदेशिनी और अङ्गुष्ठ नामक तीन उंगलियोंसे इसके अर्द्धमुखको ढक कर वस्ति-के मध्य औषध भर दे। औषध भरते समय वस्ति जिसमें अधिक आयत वा सङ्कुचित न हो जाय अथवा उसमें वायु रहने न पावे इस पर विशेष ध्यान रहे। ऐसी वस्तिमें जहां तक औषध भरी जायगी उसके अन्त भागको सूतेसे बांध दे। अनन्तर दाहिना हाथ उठा कर वस्तिको पकड़े। बाद बाएं हाथकी मध्यमाङ्गुलि तथा प्रदेशिनीसे आंख पकड़ कर अङ्गुष्ठ द्वारा उसके छत्राग्र मुखको ढक दे और छत्राग्र मलद्वारके मध्य ठूंस दे। रोटको समर्थतासे ले कर नेत्र-की कर्णिका तक सञ्चालित करके रोगीको स्थिर भावसे पकड़े रहे। बाएं हाथसे वस्ति पकड़ कर दाहिने हाथ-से प्रयोग करना पड़ता है। एक समय प्रयोग करनेका विधान है, जल्दी वा देरीसे काम नहीं लेना चाहिए। अनन्तर वस्तिको खोल कर एकसे ले कर तीस तक बोलने में जितना समय लगता है, उतने ही समयकी अपेक्षा कर रोगीको बैठने उठने कहे। औषधद्रव्यको निकालने-के लिये रोगीको उत्कट भावसे बैठावे। एक मुहूर्त-कालके मध्य निरूढ़द्रव्य बाहर निकल आवेगा। इस नियमसे दो तीन बार वस्तिके प्रयोगसे जब सम्यक् निरूढ़के लक्षण मालूम पड़ने लगे, तब फिर वस्तिप्रयोग-की जरूरत नहीं। निरूढ़का बढ़ना अच्छा नहीं, थोड़ा रहना ही अच्छा है। विशेषतः सुकुमार व्यक्तिके लिये सामान्य ही हितकर है।

वस्तिप्रयोगसे जिसकी मलवायु सामान्य वेगमें न निकले उसे दुर्निरूढ़ कहते हैं। इससे मूत्ररोग, अरुचि और जड़तादोष उत्पन्न होता है। वस्तिका प्रयोग करनेके साथ जिसका पुरीष पित्त, कफ और वायुक्रमसे निकल कर शरीर हलका मालूम पड़े, उसे सुनिरूढ़ कहते हैं। सुनिरूढ़ होने पर रोगीको स्नान और भोजन करावे। पित्त, श्लेष्मा वा वायुजन्यरोगमें यथाक्रमसे क्षीर, जूस वा मांसका रस पीनेको दे। मांस रस सभी दोषोंमें दे सकते हैं। दीप्ताग्निके अनुसार तीन भाग, वा अर्द्धभाग वा चौथाई भाग कम भोजन करावे। बाद

दोषके अनुसार स्नेहवस्तिका प्रयोग करे। आस्थापन और स्नेहवस्तिका सम्यक्‌रूपसे प्रयोग करनेसे मनकी तुष्टि, देहकी स्निग्धता और व्याधिका निग्रह ये सब लक्षण उत्पन्न होते हैं। जिस दिन आस्थापनका प्रयोग किया जायगा, उस दिन वायुसे विशेष अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। अतएव रोगीको उस दिन मांसरसके साथ अन्नभोजन कराके और अनुवासनका प्रयोग करे। ऐसे अग्निकी दीप्ति और वायुकी शान्ति जान कर स्नेहवस्तिका प्रयोग करना हितकर है। सुश्रुतमतमें यदि निरूहद्रव्य बाहर न निकल आवे, तो क्षारमूत्र वा अम्ल युक्त तीक्ष्ण निरूह द्वारा शोधन करे। निरूह द्रव्यके अधिक काल तक शरीरमें रहनेसे वायु बिगड़ जाती है जिससे विष्टम्भ, अरति, ज्वर, आनाह यहां तक कि मृत्यु भी हो जाया करती है। भोजन करनेके बाद आस्थापनका प्रयोग करना उचित नहीं है करनेसे उससे दोष कुपित हो कर विसूचिका वा दारुण आमरोग उत्पन्न हो जाते हैं। यही कारण है, कि अभुक्त अवस्थामें आस्थापनका प्रयोग बतलाया है।

दुग्ध, अम्लरस मूत्र, स्नेह क्वाथ रस, लवण, फल मधु शतपुष्पी सर्षप, वच, एलायची त्रिकटु, रास्ना सरल, देवदारु रजनी, यष्टिमधु, हिङ्गु, कुष्ठ, शोधनी-गणोक्त द्रव्यसमूह—कुट, मदन, मोथा, पाठकी जड़, चन्दन, कपूर, मकोय, मदनफल, अपचा, त्रायमाण, रसाञ्जन, बिल्वमज्जाका सार, अजवायन, पिप्पली, कुरज फल, मकोय, श्वेत कोल, शोणक, सपमक, मेद महामेद, ऋद्धि, वृद्धि और मधुलिका इन सब वर्गोंमेंसे जो जो द्रव्य मिले उन्हें निरूहमें प्रयोग करे। अपनी अपनी अवस्थामें निरूहमें जितना क्वाथका प्रयोग करे उसका पांचवां भाग स्नेह, पित्तमें छठा भाग और कफमें आठवां भाग मिला कर प्रयोग करना होता है। वातिकअवस्थामें चतुर्थ भाग स्नेह और उतना ही लवण देना उचित है।

मधु, गोमूत्र अम्ल, दुग्ध, अम्ल और मांसरस इनमें से जो आवश्यक समझे उसीका प्रयोग करे। कल्क, स्नेह और क्वाथका उल्लेख नहीं रहने पर भी युक्ति समझके कोई एक भी देवे। जो सब द्रव्य बतलाये गए हैं, उन्हें अच्छी तरह घोलना होता है।

निरूढ़ा (सं० स्त्री०) निरूढ़ स्त्रियां टाप्। १ लक्षणविशेष। (त्रि०) २ अविवाहिता, कुंआरी।

निरूढ़ि (सं० स्त्री०) निर् रुह्-क्तिन्। १ प्रसिद्धि। २ निरूढ़लक्षणा।

निरूप (सं० त्रि०) १ रूपहीन, निराकार। २ कुरूप, बदसूरत। (पु०) ३ वायु। ४ देवता। ५ आकाश। नीरूप देखो।

निरूपक (सं० त्रि०) निरूपयति निर्-रूप ण्वुल्। निरूपणकर्त्ता, किसी विषयका निरूपण करनेवाला।

निरूपकता (सं० स्त्री०) निरूपकस्य भाव निरूपक-तल् टाप्। आरूपसम्बन्धभेद।

निरूपण (सं० क्ली०) नि-रूप णिच् ल्युट्। १ आलोक। २ विचार, किसी विषयका विवेचनापूर्वक निर्णय। ३ निदर्शन। (त्रि०) निरूपयतीति नि-रूप-णिच्-ल्यु। ४ निरूपक, निरूपण करनेवाला।

निरूपम (हिं० वि०) निरुपम देखो।

निरूपित (सं० त्रि०) नि-रूप णिच् क्त। १ कृतनिरूपण, निरूपण किया हुआ जिसका निर्णय हो चुका हो। २ विचारित जिसका विचार हो चुका हो। ३ दृष्ट, जो देखा जा चुका हो।

निरूपिति (सं० स्त्री०) १ निरूपण, स्थिरमोचन। २ भाषादिका व्याख्यान।

निरूप्य (सं० त्रि०) दृष्ट, निरीक्षित, व्याख्यात।

निरूष्मन् (सं० त्रि०) उष्णरहित शीतल, ठण्डा।

निरूह (सं० पु०) निर् ऊह बाहे अच्। वस्तिभेद, एक प्रकारकी पिचकारी।

निरूहण (सं० क्ली०) स्थिरत्व, निश्चयका भाव।

निरूहवस्ति (सं० स्त्री०) निरूहवस्ति देखो।

निर्ऋति (सं० स्त्री०) निर्गता ऋति घृणा अशुभ वा यस्य। १ अलक्ष्मी, दरिद्रता। २ दक्षिण पश्चिम दिक्‌पति, नैऋतकोणकी स्वामिनी। ३ निरुपद्रव। ४ अधर्मकी पत्नी। ५ हिंसाके गर्भसे उत्पन्न अधर्मकी कन्या। ६ मृतमाता। ७ [illegible]। ८ विपत्ति। ९ मृत्यु। १० [illegible] एक रुद्रका नाम।

ऋग्वेदमें निर्ऋतिका अर्थ पापदेवता बतलाया है।

'परो निर्ऋत्या आचक्ष्व।' (ऋक् १०।१६४।१)

'निर्ऋत्या पापदेवतायाः दुर्भेद्यस्य।' (सायण)

पद्मपुराणमें इसका उपाख्यान इस प्रकार लिखा है। समुद्र मथनेमें पहले निऋति और पीछे लक्ष्मीकी उत्पत्ति हुई। उद्दालकके साथ निऋतिका विवाह हुआ।

जब निऋति उद्दालकके साथ गईं, तब उनका घर देख कर वह दुःखित हुई और उद्दालकसे बोली, 'यह स्थान मेरे रहने योग्य नहीं है। जहां सर्वदा वेदध्वनि होती हो तथा जहां देवता और अतिथिपूजा आदि सत्कार्य होते हों, वहां मैं वास नहीं कर सकती। जहां सब प्रकारके असत् कार्य होते हों, वही स्थान मेरे रहने लायक है।' इतना सुनते ही उद्दालक घरसे निकल गये। पीछे निऋति स्वामिविरहसे व्याकुल हो कर रहने लगी। जब लक्ष्मीको अपनी बहनके दुःखका हाल मालूम हुआ, तब वे नारायणके साथ वहां पहुँचीं। नारायणने निऋतिको समझा कर कहा, पीपलका वृक्ष मेरे अंशसे निकला है, इसी वृक्ष पर तुम वास करो। मन्दवारको लक्ष्मी यहां आवेंगी और उसी दिन तुम्हारी पूजा होगी। (पाद्मोत्तरखंड १६१ अ०)

संयमनीपुरीके पश्चिम भागकी दिक्स्वामिनीका नाम निऋति है। उनके अधिष्ठित लोकको निऋतिलोक कहते हैं। वहां पुण्यशील और अपुण्यशील दो प्रकारके लोग वास करते हैं।

जिन्होंने राक्षसयोनिमें जन्म ले कर भी परहिंसा, परद्वेष आदि कुकर्मोंको विषवत् छोड़ दिया है वे ही पुण्यशीलयुक्त हैं। जो नीच योनिमें जन्म ले कर शास्त्रोक्त नियमोंका प्रतिपालन करते, कभी भी अखाद्य-भोजन नहीं करते और न परस्त्रीगमन, परद्रव्यहरण आदि असत् कर्म ही करते, जो सर्वदा अच्छे अच्छे कर्मोंमें अपना समय बिताते, द्विजसेवा, देवसेवा तीर्थ-दर्शनादिमें लगे रहते हैं, वे ही सर्वविधि भोगसम्पन्न होकर उक्त पुरीमें वास करते हैं। म्लेच्छ होकर भी जो आत्महत्या नहीं करते और मुक्तिक्षेत्र काशीके सिवा जिनकी अन्य तीर्थोंमें मृत्यु होती है वे भी इस स्थानमें वास करते हैं।

दिक्पति निऋति पूर्वकालमें विन्ध्याचलके वनमें निर्विन्ध्या नदीके किनारे रहती थीं। पूर्वजन्ममें इनका नाम पिङ्गाक्ष था जो शबरोंके अधिपति कहे जाते थे। शबरश्रेष्ठ पिङ्गाक्ष बहुत बलवान् और सच्चरित्र मनुष्य थे। पथिकोंको विपद्से दूर करनेके लिये उन्होंने कितने सिंह, बाघ आदि मार कर पथको निरापद कर दिया था। व्याधवृत्ति उनकी उपजीविका होने पर भी वे हमेशा निष्ठुराचरणसे पराङ्मुख रहते और कभी भी विश्वस्त, सुप्त, वधाययुक्त, जलपानमें निरत, शिशु वा गर्भयुक्त जीव जन्तुको नहीं मारते थे। यह धर्मात्मा श्रमातुर पथिकको विश्रामस्थान, क्षुधातुरको आहारदान और दुर्गम प्रान्तरपथमें पथिकोंका अनुगमन कर उन्हें अभयदान देते थे।

पिङ्गाक्षके ऐसे आचरणसे यह प्रान्तरभूमि नगरके समान हो गई थी। कोई मनुष्य डरके मारे पथिकोंका मार्ग नहीं रोक सकता था। किसी समय निकटस्थ ग्रामनिवासी पिङ्गाक्षके चाचाको जब पथिकोंके महाकोलाहलका शब्द सुनाई पड़ा, तब वे उन्हें लूटनेके लिये आगे बढ़े और वहां जा कर सड़क पर डट रहे। दैवक्रमसे पिङ्गाक्ष भी उस दिन रातका शिकार खेलनेके लिए उसी जङ्गलमें गये थे और वहीं सो रहे थे।

इधर सुबह होनेके साथ ही पिङ्गाक्षके चाचाने अपने साथियोंसे चिल्ला कर कहा, 'पथिकोंको मारो, मारो, गिराओ, नंगा करो, सब असबाब छीन लो।' बेचारे पथिकगण बहुत डर गए और विनीत स्वरसे बोले, 'भाई! हम लोग तीर्थयात्री हैं, मत मारो, रक्षा करो। हमारे पास जो कुछ असबाब है, उसे हम लोग खुशीसे दे देते हैं, ले लो। हम लोग पथिक और अनाथ हैं, किन्तु विश्वनाथपरायण हैं। सुतरां वे ही हम लोगोंके रक्षाकर्त्ता हैं। किन्तु वे भी दूरमें हैं, यहां अभी हमारी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। हम लोग पिङ्गाक्षके भरोसे सर्वदा इस राह हो कर जाते आते थे, किन्तु वे भी इस जङ्गलसे बहुत दूरमें रहते हैं।' यह कोलाहल सुन कर दूरसे "मत डरो, मत डरो" ऐसा कहते हुए पथिकबन्धु पिङ्गाक्ष वहां आ धमके और कहने लगे, 'मेरे जीते जी ऐसा कौन माईका लाल है, जो मेरे प्राणतुल्य पथिकोंको मार कर उनका सर्वस्व हरण कर सके?' यह कठोर वचन सुन कर पिङ्गाक्षके चचाने अपने साथी दस्युगणसे पिङ्गाक्षको मार डालने कहा।

पिप्लाद ऋषिसे थे। इन्द्र इनके साथ बहुत अच्छे किसी तरह यातियोंको अपने आश्रममें जाने न पाए। पीछे मल्लपौन उनका अनुचर और सब काट डाला। बाद अश्वत्थामाने पिप्लादका शरीर छिन्न भिन्न हो गया और वे इस लोकसे चल बसे। इसी पिप्लादने दूसरे जन्ममें मैत्रेय नामसे जन्मग्रहण किया और वे द्विजपति हो कर मैत्रेयलोकमें रहने लगे। (कथासरि०)

निर्मंथ (सं० पु०) निर्-मथ-घञ्। घर्षण।

निरोघ (सं० पु०) १ चिरकालस्थायी, चिरसम्बन्धीय। परिपूर्ण, पूरा।

निरोद्धव्य (सं० त्रि०) नि-रुध-कर्मणि तव्य। १ बाहर रोक, रोकने योग्य। २ प्रतिरोधनीय।

निरोध (सं० पु०) नि-रुध-घञ्। १ नाश। २ गति आदिका प्रतिरोध, रुकावट, बन्धन। ३ अवरोध, घेरा। ४ योगशास्त्र विज्ञानवादीमत, योगमें चित्तकी समस्त वृत्तियोंका रोकना। इसमें अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता होती है। चित्तवृत्तियोंके निरोधके उपरान्त मनुष्यको निर्बीजसमाधि प्राप्त होती है।

निरोधक (सं० त्रि०) निरुणद्धि नि-रुध-ण्वुल्। निरोधकारक, रोकनेवाला।

निरोधन (सं० क्लो०) नि-रुध-ल्युट्। १ कारागारादिमें प्रवेश द्वारा प्रतिरोध, रोक रुकावट। २ पारेका सातवाँ संस्कार।

निरोधपरिणाम (सं० पु०) पातञ्जलोक्त परिणामविशेष। इसका विषय पातञ्जल दर्शनमें इस प्रकार लिखा है—

चित्तके क्षिप्तादि भूमिक परिणामका नाम व्युत्थान और कैवल्यप्राप्त निरुद्धभाव परिणामका नाम निरोध है। चित्तकी सम्प्रज्ञात अवस्था और असंप्रज्ञात अवस्था भी यथाक्रमसे व्युत्थान और निरोध कहलाती है। जब व्युत्थानके संस्कारोंका अन्त हो जाता है और निरोधका आरम्भ होनेको होता है, तब चित्तका थोड़ा थोड़ा सम्बन्ध दोनों ओर रहता है उसी अवस्थाको निरोधपरिणाम कहते हैं।

योगी संयम द्वारा विविध ऐश्वर्य वा अलौकिक क्षमताका आहरण कर सकते हैं सही किन्तु किस पदार्थ विषयके लिये किस प्रकारका संयम करना होता है, वह उनके पहले ही जानना आवश्यक है। कहाँ किस प्रकारका संयम करना चाहिए, किस संयम का क्या फल है, जब तक उसका बोध नहीं होता, तब तक उसका प्राप्त होना असम्भव है। सुतरां संयम सिखानेके पहले संयमके स्थानका निर्णय कर लेना होता है तथा विविध चित्तपरिणाम अर्थात् चित्तके भिन्न भिन्न विकारभावोंको प्रत्यक्षवत् प्रतीतियोग्य कर लेना पड़ता है। चित्तव्युत्थानके समय एकाग्रताके समय और निरोधके समय चित्तकी कैसी अवस्था रहती है, इस पर निपुणताके साथ विचार रखनी होती है। निरोध-कालकी चित्तावस्थाका जानना जितना आवश्यक है, व्युत्थानकालकी चित्तावस्थाके चित्तपरिणामका अनुसन्धान करना उतना आवश्यक नहीं है। निरोधपरिणामका यथार्थ स्वरूप क्या है? अर्थात् निर्बीजसमाधिके समय चित्तकी कैसी अवस्था रहती है, इसी पर विचार करना उचित है।

चाहे कोई संस्कार क्यों न हो, सभी चित्तके धर्म हैं और चित्त ही तदवस्थका धर्मी अर्थात् आधार है। चित्त जब विविध विषयाकारमें परिणत होता है, तब उसमें उसी उसी परिणामका संस्कार सञ्चित रहता है। चित्त जब केवलमात्र संप्रज्ञातस्थितिमें स्थित रहता है, समाधि वा एकताम होता है उस समय भी उसमें उसका संस्कार निहित रहता है। चित्त जब तक वृत्तिशून्य नहीं होता, तब तक उसमें संस्कार रहता है। एकाग्र वृत्ति जब अविद्यान्तरूपमें वा प्रवाहाकारमें उदित रहती है तब तदनुरूप संस्कार भी उसमें आबद्ध रहता है। क्योंकि संस्कार का लोप बिना निरोधपरिणामके निरोधित वा अभिभूत नहीं होता। पीछे वैराग्याभ्यास द्वारा जब व्युत्थानज संस्कार अभिभूत, तिरोहित और निःशक्ति अथवा विलीन हो जाता है तब वह निरोध संस्कार प्रबल वा पुष्ट हो कर विद्यमान रहता है। चित्त इसी समय पूर्वसञ्चित व्युत्थानज संस्कारसे असंपृक्त हो कर केवल निरोधसंस्कार ही धर रहता है। चित्तके ऐसी अवस्थामें रहनेको योगी लोग निरोधपरिणाम कहते हैं।

यह निरोध अवस्था भी परिणामविशेष है। इसकी

निरोधपरिणाम इस नामको भी अन्वर्थ जानना चाहिए। चित्त जब गुणमय अर्थात् प्रकृतिमय है, तब वह जब तक रहेगा, तब तक उसमें अविश्रान्त परिणाम होगा। क्योंकि प्रकृतिका यह स्वभाव है, कि वह क्षण काल भी बिना परिणत हुए रह नहीं सकती। सुतरां जिसे निरोध कहा है, यथार्थमें वह भी एक प्रकारका परिणाम है। कारण चित्त उस समय भी परिणत होता है या नहीं, वह उसके स्वरूपका ही अनुरूप है। तादृश स्वरूपपरिणामका दूसरा नाम स्थैर्य है। चित्त स्थिर हुआ है, ऐसा कहनेसे किसी प्रकारका परिणाम नहीं होता, ऐसा न समझ कर इस प्रकार समझना चाहिए कि विषयावगता वृत्ति नहीं होती, किन्तु स्वरूपका अनुरूपपरिणाम ही होता है। अब यह स्थिर हुआ कि स्थैर्य अथवा निर्वृत्तिक अवस्थाका नाम ही निरोध-परिणाम है। संस्कारके दृढ़ होनेसे ही उसके प्रभावसे निरोधपरिणामकी प्रशान्तावाहिता या स्थैर्यप्रवाह उत्पन्न होता है। (पातञ्जलद०)

निरोधिन् (सं० त्रि०) प्रतिबन्धक, रुकावट करनेवाला।

निरोध्यशालि (सं० पु०) वाधितशालि, एक प्रकारका धान।

निर्ख (फा० पु०) दर, भाव।

निर्ख-दारोगा (फा० पु०) मुसलमानोंके राजत्वकालका दारोगा जिसका काम बाजारको चीजोंके भाव या दर आदिकी निगरानी करना था।

निर्खनामा (फा० पु०) मुसलमानोंके राजत्वकालको वह सूची जिसमें बाजारको प्रत्येक वस्तुका भाव लिखा रहता था।

निर्खबंदी (फा० स्त्री०) किसी चीजका भाव या दर निश्चित करनेकी क्रिया।

निर्ग (सं० पु०) निरन्तर गच्छत्यत्रेति, निर्-गम-ड। देश।

निर्गत (सं० त्रि०) निर्-गम-क्त। बहिःप्राप्त, बहिर्गत, निकला हुआ, बाहर आया हुआ।

निर्गन्ध (सं० त्रि०) निर्नास्ति गन्धो यत्र। गन्धशून्य, जिसमें किसी प्रकारको गन्ध न हो।

निर्गन्धता (सं० स्त्री०) निर्गन्ध होनेको क्रिया या भाव।

निर्गन्धन (सं० क्ली०) निर्-गन्ध अर्दने भावे ल्युट्। १ निबर्हन। २ मारण।

निर्गन्धपुष्पी (सं० स्त्री०) निर्गन्धं गन्धशून्यं पुष्पं यस्य, ङीप्। शाल्मलिवृक्ष, सेमरका पेड़।

निर्गम (सं० पु०) निर्-गम-अप्। निःसरण, निर्गत, निकास।

निर्गमन (सं० क्ली०) निर्-गम-करणे ल्युट्। १ द्वार, दरवाजा। २ प्रतिहारी, द्वारपाल, ड्योढ़ीदार।

निर्गमना (हिं० क्रि०) निकलना।

निर्गर्व (सं० त्रि०) निर्नास्ति गर्वः यस्य। गर्वरहित, अहङ्कारशून्य, जिसे किसी प्रकारका गर्व या अभिमान न हो।

निर्गवाक्ष (सं० त्रि०) गवाक्षरहित, जिसमें झरोखा न हो।

निर्गुण (सं० पु०) निर्गता गुणा यस्मात्। १ सत्त्व, रज और तमोगुणातीत, जिसमें सत्त्व, रज और तमोगुण न हो, परमेश्वर। (त्रि०) २ विद्यादिशून्य, मूर्ख, जड़। ३ गुणरहित, जिसमें ज्या न हो, जैसे निर्गुण धनु। (ब्रह्म देखो)

निर्गुणता (सं० स्त्री०) निर्गुणस्य भावः, निर्गुण-भावे तल्, टाप्। गुणहीनता, निर्गुण होनेको क्रिया या भाव।

निर्गुणत्व (सं० क्ली०) निर्गुण भावे-त्व। गुणहीनत्व, मूर्खत्व।

निर्गुणसाधु—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने भजनकीर्त्तन नामक एक ग्रन्थ बनाया है।

निर्गुणात्मक (सं० त्रि०) निर्गुण आत्मा यस्य कप्। निर्गुणस्वरूप, ब्रह्म।

निर्गुणिया (हिं० वि०) जो निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करता हो।

निर्गुणी (हिं० वि०) गुणोंसे रहित, जिसमें कोई गुण न हो, मूर्ख।

निर्गुणोपासना (सं० स्त्री०) निर्गुणस्य ब्रह्मणः उपासना। निर्गुण ब्रह्मकी उपासना। ब्रह्म देखो।

निर्गुण्ठी (सं० स्त्री०) निर्गता गुण्ठात् गुण्डनात् गौरादित्वात् ङीष्। १ निर्गुण्डी। २ निसोथ।

निर्गुण्ड—महिसुर राज्यके अन्तर्गत चितलदुर्ग जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० १४ १० उ० और देशा० ७६ ११' पू० होसदुर्ग शहरसे ७ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ११२ है। पूर्व समयमें यह गङ्गराज्यके अन्तर्गत था और यहाँ जैनियोंकी राजधानी थी। आज भी जो ध्वंस हुए पत्थर भारतके जैनियोंका नामक किसी राजाने इसे बनाया और इसका नाम नीलवती पाटन रखा।

निर्गुण्डी (सं० स्त्री०) निर्गत गुण्डा वेष्टन यस्या ङीष्। एक प्रकारका क्षुप। इसके प्रत्येक डंठलमें अरहरकी पत्तियोंके समान पाँच पाँच पत्तियाँ होती हैं जिनका ऊपरी भाग नीला और नीचेका भाग सफेद होता है। इसकी अनेक जातियाँ हैं। किसीमें काले और किसीमें सफेद फूल लगते हैं। फूल चावलकी बोरके समान मञ्जरीके रूपमें लगते हैं और केसरिया रंगके होते हैं। यह स्मरणशक्तिवर्द्धक, गरम, कड़वी, कसैली, चरपरी, हलकी, नेत्रोंके लिये हितकारी तथा शूल, सूजन, आमवात, कृमि, प्रदर, कोढ़, अरुचि, कफ और ज्वरको दूर करती है। औषधियोंमें इसकी बहुत व्यवहार होता है। हिन्दीमें इसे सम्हालू, सम्भालू वा सिन्धुवार कहते हैं। इसके संस्कृत पर्याय—शेफालिका, नील-निर्गुण्डी, सिन्दुक, नीलसिन्दुक, श्वेतसुरसा, भूतकेशी, इन्द्राणी, सुरसा, सिन्धुवारक, शीतसह, नीलमञ्जरी, वनजा, सुवहा और अर्थसाधक है।

निर्गुण्डीकल्प (सं० पु०) भैषज्यरत्नावलीउक्त औषध भेद। भैषज्यरत्नावलीके मतसे पिङ्गला ऋषिने इस औषधका प्रकाश किया। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—निर्गुण्डीका मूल ८ पल और मधु १६ पल दोनोंको एक साथ मिला कर घीके बरतनमें रखते हैं। पीछे उसमेंसे उसका मुख बन्द कर तथा अच्छी तरह लेप दे कर उसे धानके ढेरमें एक मास तक रख छोड़ते हैं। बाद चूर्ण गोमूत्र और गव्यादिके साथ कुछ दिन सेवन करनेसे सब प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं और पीछे बल, वीर्य तथा आयुकी वृद्धि होती है। एक मास तक सेवनसे शरीर कनकवर्ण सा होता, दृष्टि गरुड़-सी होती और सब रोग जाते रहते हैं। जो व्यक्ति एक वर्ष तक इसका सेवन करता है उसका शुभ्र यावज्जीवन एक सा बना रहता है और उसे जरावस्था मृत्युसे आगमनको रक्षा रहती है। गोमूत्रके साथ इसका सेवन करनेसे आँखोंकी ज्योति बढ़ती, कोढ़, गुल्म शूल, प्लीहा उदर आदि रोग दूर होते तथा शरीर पुष्ट बना रहता है।

निर्गुण्डीतैल—(सं० पु०) भैषज्योक्त औषधभेद, वैद्यकमें एक विशेष प्रकारसे तैयार किया हुआ निर्गुण्डीका तेल जो सब प्रकारके फोड़े फुंसियाँ अपची तथा गण्डमाला आदिको अच्छा करनेवाला माना जाता है।

निर्गूढ़ (सं० त्रि०) निर्गच्छेन गुहाते न क्रियते आत्मा यस्मिन् इति निर्-गुह अधिकरणे क्त। १ वृक्षकोटर। (त्रि०) २ सङ्गत। ३ नितान्त गूढ़ जो बहुत ही गूढ़ हो।

निर्गृह (सं० त्रि०) गृहशून्य, जिसके घर न हो।

निर्गौरव (सं० त्रि०) १ गौरवहीन अहङ्कारशून्य। २ सुशील, नम्र।

निर्ग्रन्थ (सं० पु०) निर्गतो ग्रन्थेभ्यः। १ क्षपणक। २ दिगम्बर। प्राचीनकालमें दिगम्बर जैनी कपड़ा नहीं पहनते थे, इसीसे वे दिगम्बर वा निर्ग्रन्थ कहलाए। अभी ब्रिटिश कानून और देशप्रथाके अनुसार वे कपड़े पहनने लगे हैं। इन लोगोंका कहना है कि मानव जब सम्पूर्ण निर्मम और स्पृहाशून्य होते हैं तब ही वे मुक्तिके योग्य हैं। अतएव प्रकृत संन्यासियोंको कपड़ा पहनना अनुचित है। जैन देखो। ३ मुनिभेद, एक मुनिका नाम। (त्रि०) ४ मूर्खतर, जुआ खेलनेवाला, जुआरी। ५ निर्धन, गरीब। ६ मूर्ख, बेवकूफ। ७ निःसहाय, जिसे कोई सहायता देनेवाला न हो। ८ निर्बुद्धिक।

निर्ग्रन्थक (सं० पु०) निर्ग्रन्थ एव स्वार्थे कन्। १ क्षपणक। (त्रि०) २ निष्फल, बेकाम। ३ परित्यक्त न सा छूटा हुआ। ४ असहायित जिसे कपड़ा न हो।

निर्ग्रन्थन (सं० क्ली०) ग्रन्थि खोलनेसे निर प्रति ग्रन्थ। मारना।

निर्ग्रन्थि (सं० त्रि०) ग्रन्थिशून्य, जिसमें गाँठ वा गिरह न हो।

निर्ग्रन्थिक (सं० पु०) निर्गतो ग्रन्थिः दशग्रन्थिर्यस्य। १ क्षपणक। (त्रि०) २ निपुण, होशियार। ३ दीन, जिसका टाप। ४ जैनसन्यासिनी।

निर्ग्राह्य (सं० त्रि०) निर्-ग्रह कर्मणि ण्यत्। जो निश्चयरूपसे ग्रहण करनेमें समर्थ हो।

निर्घट (सं० क्ली०) निर्गतो घटो यस्मात्। १ घटशून्य देश। २ राजकरशून्य हट्ट, वह हाट या बाजार जहां किसी प्रकारका राजकर न लगता हो। ३ बहुजनाकीर्ण हट्ट, वह हाट या बाजार जहां बहुतसे लोग हों। ४ घटाभाव।

निर्घण्ट (सं० पु०) निर्-घण्ट-दीप्तौ घञ्। निर्घण्टन, शब्द या ग्रन्थसूची, फिहरिस्त।

निर्घर्ष (सं० क्ली०) संघर्ष, मर्दन।

निर्घात (सं० पु०) निर्-हन-घञ्। १ वायु द्वारा अभिहत वायुप्रपतनजन्य शब्दविशेष, वह शब्द जो हवाके बहुत तेज चलनेसे होता है।

वायुसे वायु टकरा कर जब आकाशतलसे पृथिवी पर गिरती है, तब वही निर्घात कहलाता है। वह निर्घातदीप्त दिक् स्थित विहगोंसे जब शब्दित होता है, तब वह पापकर माना जाता है। सूर्योदयके समय निर्घात होनेसे वह विचारक, धनी, योद्धा, अङ्गना, वणिक् और वेश्यागणको तथा एक पहरके भीतर होनेसे शूद्र और पौरगणको निहत करता है। मध्याह्नके समय होनेसे राजोपसेवी व्यक्ति और ब्राह्मणगण कष्ट पाते हैं। तृतीय प्रहरमें निर्घात होनेसे वह वैश्य और जलदातृगणको तथा चतुर्थ प्रहरमें होनेसे चोरोंको पीड़ित करता है। सूर्यास्तमें होनेसे वह नीचोंको और रात्रिके प्रथम याममें होनेसे शस्यको, द्वितीय याममें होनेसे पिशाचगणको, तृतीय याममें होनेसे हस्ती और अश्वगणको तथा चतुर्थ याममें होनेसे पदातिकगणको नष्ट करता है। जिस दिशामें निर्घात आता है, पहले वही दिशा नष्ट होती है। (बृहत्संहिता ३८ अ०) जिस समय निर्घात होता हो, उस समय किसी प्रकारका मंगल कार्य करना निषिद्ध है। २ अस्त्रभेद, प्राचीन कालका एक प्रकारका अस्त्र। ३ बिजलीकी कड़क।

निर्घातन (सं० क्ली०) निर्-हनस्वार्थे णिच् भावे ल्युट्। सुश्रुतोक्त यन्त्रनिष्पाद्य क्रियाभेद। सुश्रुतके अनुसार शस्त्रचिकित्साकी एक क्रियाका नाम।

निर्घात्य (सं० त्रि०) निर्-हन ण्यत्। छेदनीय, छेदने-योग्य।

निर्घृरिणी (सं० स्त्री०) नदी, निर्झरिणी, सोता।

निर्घृण (सं० त्रि०) निर्गता घृणा दया वा यस्मात्। १ निर्दय, दयाशून्य, बेरहम। २ घृणाशून्य, जिसे घृणा न हो, जिसे गन्दी और बुरी वस्तुओंसे घिन न लगे। ३ जिसे बुरे कामोंसे घृणा या लज्जा न हो। ४ निन्दित, अयोग्य, निकम्मा।

निर्घोष (सं० पु०) निर्-घुष घञ्। १ शब्दमात्र, आवाज। (त्रि०) निर्नास्ति घोषो यत्र। २ शब्दशून्य, शब्द-रहित।

निर्घोषाक्षरविमुक्त (सं० पु०) समाधिभेदका नाम।

निर्चा (हिं० पु०) चंचु नामक साग।

निर्जन (सं० त्रि०) निर्गतो जनो यस्मात्। जनशून्य-स्थानादि, वह स्थान जहां कोई मनुष्य न हो, सुनसान।

निर्जर (सं० पु०) जराया निष्क्रान्तः। १ देवता। ये जरा अर्थात् बुढ़ापेसे सदा बचे हुए माने जाते हैं, इसी लिये इनका निर्जर नाम पड़ा है। (त्रि०) २ जरा-रहित, जिसे कभी बुढ़ापा न आये, कभी बुड्ढा न होने-वाला। (क्ली०) ३ सुधा, अमृत। सुधा पीनेसे बुढ़ापा जाता रहता है, इसीसे सुधाको निर्जर कहते हैं।

निर्जरसर्षप (सं० पु०) निर्जरप्रियः सर्षप। देवसर्षप वृक्ष।

निर्जरा (सं० स्त्री०) निर्जर-टाप्। १ गुडूची, गिलोय। २ तालपर्णी। ३ संचित कर्मका तप द्वारा निर्जरण या क्षय करना।

निर्जरायु (सं० पु०) निर्गतो जरायुतः। १ जरायुसे निर्गत। २ जरायुहीन।

निर्जर्जल्प (सं० त्रि०) जर्जरीभूत, पुराना, टूटाफूटा, बेकाम।

निर्जल (सं० त्रि०) निर्गतं जलं यस्मात्। १ जलशून्य (देशादि), बिना जलका, जलके संसर्गसे रहित। २ जिसमें जल पीनेका विधान न हो। (पु०) ३ वह स्थान जहां जल बिलकुल न हो।

निर्जलव्रत (सं० पु०) वह व्रत या उपवास जिसमें व्रती जल तक न पीए।

निर्जलैकादशी (सं० स्त्री०) निर्जला एकादशी। जेठ

पक्षकी एकादशी तिथि, जेठ सुदी एकादशी तिथि। इस दिन लोग निर्जल व्रत रखते हैं। इस दिन स्नान, आचमन आदि किसी काममें जलस्पर्श तक करना मना है। यदि कोई जलस्पर्श करे, तो उसका व्रतभङ्ग होता है। इस एकादशीके उदयकालसे ले कर दूसरे दिनके उदयकाल तक जल वर्जन करना होता है। निर्जला एकादशी करनेसे द्वादश एकादशीका फल होता है। दूसरे दिन सबेरे अर्थात् द्वादशीमें स्नान करके ब्राह्मणोंको जल और सुवर्णदान कर भोजन करना चाहिये। जो इस प्रकार नियमपूर्वक एकादशीव्रत करते हैं, उन्हें यमभय नहीं रहता है, अन्तकालमें वे विष्णुलोकको जाते और उनके निकट उद्धार पाते हैं। जो इस एकादशीको नहीं करते, वे पापात्मा, दुराचार और नष्ट होते हैं।

जो यह एकादशीव्रतविवरण भक्तिपूर्वक सुनते या कीर्तन करते हैं, वे दोनों ही स्वर्गको जाते हैं।

निर्जल व्रतविधि—इस व्रतमें पहले निम्नलिखित मन्त्रसे सङ्कल्प करके जलग्रहण करे। मन्त्र—

"एकादश्यां निराहारो वर्जयिष्यामि वै जलम्।
केशवप्रीणनार्थाय अत्यन्तरमेव च॥"

इस प्रकार सङ्कल्प करके एकादशीके दिन उपवास करे और रातको सुवर्णमय विष्णुमूर्त्तिकी स्थापना करके उन्हें दूध आदिसे स्नान करावे। अनन्तर यथाशक्ति पूजा करके रातको जागरण करे। दूसरे दिन प्रातः स्नानादि करके यथाशक्ति जलकुम्भ ब्राह्मणको इस मन्त्रसे दान दे। मन्त्र—

"देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक।
जलकुम्भप्रदानेन यास्यामि परमां गतिम्॥"
(हरिभक्तिविलास १५ वि०)

पारणा हो जाने पर जल और शर्करादिका दान करना कर्त्तव्य है।

निर्जागमक (सं० पु०) निर्झर्झर, भल्लूक श्रीर्ष, बहुत पुराना

निर्जित (सं० त्रि०) निर्-जि क्त। १ पराजित, जीता हुआ, जिसे जीत लिया हो। पर्याय—पराजित, पराभूत, विजित, जित। २ वशीभूत, जो वशमें कर लिया गया हो।

निर्जिति (सं० स्त्री०) निर्-जि क्तिन्। जय या वशीभूतकरण।

निर्जितेन्द्रियग्राम (सं० पु०) निर्जितानि इन्द्रियग्रामाणि येन। जितेन्द्रिय, यति।

निर्जिह्व (सं० त्रि०) निर्गता मुखाद्बहिर्गता जिह्वा यस्य। १ मुखसे बाहर करना। २ जिह्वाशून्य, जिसे जीभ न हो।

निर्जीव (सं० त्रि०) निर्गत जीव या जीवात्मा यस्य। १ जीवात्मारहित प्राणहीन मृतक, बेजान। २ अशक्त या उत्साहहीन।

निर्झर (सं० पु०) निर्-झॄ-अच्। १ पर्वतनिःसृत जलप्रवाह सोता। जगत्पाता जगदीश्वरने जीवोंकी भलाईके लिये ऐसे अद्भुत अद्भुत कार्योंकी सृष्टि की है, कि एक बार उन्हें देखनेसे ही भगवान्‌की अनन्त महिमाको अनन्तमुखसे गा कर भी परितृप्ति नहीं होती। निर्झर उन्हीं आश्चर्य पदार्थोंमेंसे एक है। कहीं एक भी जलाशय नहीं है वहां भी इस आश्चर्य जगन्नायक निर्झरसे निर्मल जल प्रबल वेगसे निकल कर जीवके प्रति ईश्वरकी अनन्त दया प्रकाश करता है। अंग्रेजीमें निर्झरको Spring कहते हैं। निर्झरकी उत्पत्तिका कारण जाननेके पहले यह स्मरण रखना आवश्यक है, कि तरलपदार्थ उच्चनीच असमान अवस्थामें स्थिर भावसे नहीं रह सकता। यदि एक बड़ा और सच्छिद्र दो मुंहे हुए नलके एक मुंहमें कुछ तरल पदार्थ डाल दिया जाय तो जब तक दोनों नलमें उस तरल पदार्थ समान ऊंचाई पर न आ जाय तब तक वह तरल पदार्थ स्थिर नहीं रह सकता। जब उस नलका तरल पदार्थ समान ऊंचाई पर आ जाता है, तब वह स्थिर रहता है। दूसरी बात यह है, कि जगदीश्वरने प्राणियोंके आप्यायनके लिये इस वृहत् पृथ्वीकी सृष्टि की है, जिसकी अन्तर्गत वस्तु प्रायः भिन्न भिन्न प्रकृतिविशिष्ट है। हम लोग मट्टीके ऊपर जो भ्रमण करते, सोते, नहाते और अन्यान्य कार्य करते हैं, उन्हें यदि गौर कर देखें तो यह स्पष्ट मालूम हो जायगा कि वह मट्टी भी भिन्न भिन्न धर्मविशिष्ट है। जो एक प्रकार अत्यन्त सच्छिद्र है, उसके मध्य हो कर जल बहुत आसानीसे आ जा सकता है और जो अर्द्ध छिद्रविशिष्ट है उसके मध्य जल

सहजमें आ जा नहीं सकता। इसी कारण वह कर्दम-में परिणत हो जाती है। तीसरी तरहकी मट्टीको निच्छिद्र कह भी दें, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। फलतः उसके मध्य हो कर जल नहीं जा सकता, जैसे पहाड़, कड़ी मट्टी, काली मट्टी इत्यादि।

यदि यह विषय ध्यानमें आ जाय, तो निर्झरका उत्पत्तिकारण सहजमें मालूम हो जायगा। वृष्टिपात वा तुहिनज जलसमूह जब पर्वतसे निकल कर प्रबल वेगमें नीचेकी ओर जाता है, तब उसमेंसे कुछ जल पृथ्वीके ऊपर बह कर समुद्र वा जलाशयमें गिरता और नदी उत्पादन करता है, कुछ जल वाष्पके रूपमें परिणत हो कर मेघ उत्पादन करता है और बचा खुचा जल मट्टीके नीचे जा कर सूख जाता है। किन्तु परमाणुका जब ध्वंस नहीं है, तब वह शोषित जलराशि कहां किस अवस्थामें रहती है? इसका तत्त्वानुसन्धान करनेसे यह साफ साफ जाना जाता है, कि पृथ्वी जिन भिन्न भिन्न स्तरोंसे बनी है, उक्त जलराशि भी उन्हीं स्तरोंको भेद कर एक ऐसे स्तरमें पहुँच जाती है जिसे वह और भेद नहीं कर सकती। सुतरां उक्त जलराशि वहांसे और नीचे नहीं जाती, बल्कि उसी दुर्भेद्य स्तर पर जमा रहती है। पीछे वह सञ्चित जल जितना ही बढ़ता जाता है, उतना ही उसके रहनेके लिये स्थानकी जरूरत पड़ती है। विशेषतः माध्याकर्षण उसे हमेशा केन्द्रकी ओर खींचता रहता है जिससे उक्त जलराशि पूर्वोक्त दुर्भेद्य स्तरके ऊपर ढालूकी ओर दौड़ती है। (भूमध्यस्थ जलस्रोतका प्रधान कारण भी यही है।) इस प्रकार गतिकी अवस्था में यदि उस जलस्रोतके सामने भी ऐसा ही दुर्भेद्य पदार्थ उपस्थित हो कर गतिको रोक दे और भूपृष्ठसे यदि जल अधिक परिमाणमें उस स्रोतके अनुकूल पहुँच जाय, तो वह प्रकाण्ड जलराशि इधर उधर न बह कर पृथ्वीको छेद करती हुए ऊपर पहुंच जायगी, इसीका नाम निर्झर वा झरना है। दुर्भेद्य स्तरके अवस्थानके अनुसार इस निर्झरके वेगका तारतम्य देखा जाता है अर्थात् उक्त दुर्भेद्य स्तर भूपृष्ठसे जितना नीचे होगा, निर्झरका वेग भी उतना ही बलवान् होगा।

पर्वत आदि उच्च स्थानसे जो जल भूगर्भमें प्रवेश कर पूर्वोक्त निर्झर उत्पादन करता है, उस निर्झरकी जलराशि भूपृष्ठसे प्रायः उतना ही उच्च स्थान तक जा कर गिरती है। युक्तिके अनुसार उस जलको उतना ही ऊंचा जाना उचित है, लेकिन नीचा होनेके कारण वह उतनी दूर नहीं जा सकता।

(क) निर्झरका जल जब मट्टीको भेद कर जाता है, तब उसका वेग कुछ मंद हो जाता है।

(ख) भूपृष्ठको भेद कर आकाशमुखी होनेसे वायु उसे रोकती है।

(ग) वह जल जब छिन्न भिन्न हो कर पृथ्वी पर गिरता है, तब पतित जलसमूहके उत्थित जलस्रोतकी तरह गिरते रहनेके कारण उक्त जलस्रोतकी गतिका ह्रास हो जाता है।

(घ) उत्थित जलस्रोतमें जो धातुज पदार्थ मिला रहता है वह भी उक्त स्रोतके वेगसे ऊपरकी ओर चढ़ जाता है जिससे उसका भार जलवेगके प्रतिकूल कार्य करता है।

(ङ) माध्याकर्षण भी ऊर्ध्वगामी पदार्थका चिर-प्रतिकूल है।

यदि ये सब कारण न होते, तो पार्वत्य प्रदेशका निर्झर बहुत ऊर्ध्वगामी होता। अल्पदूरस्थ दुर्भेद्यस्तर-प्रतिहत-निर्झर अधिक वेगवान् नहीं होता है।

कूआं खोदनेसे जो जल निकलता है, वह उक्त निर्झर उत्पादक मट्टीके मध्य प्रवाहित जलस्रोतके सिवा और कुछ भी नहीं है। जिस स्तर हो कर उक्त भूगर्भस्थ जलस्रोत सहजमें आ जा सके, वह स्तर जिस स्थानमें वा जिस प्रदेशमें जितना नीचे रहेगा, उस स्थानका कूप भी उतना ही गहरा होगा।

अभी राजप्रासाद वा सुन्दर सुन्दर उद्यानोंमें जो सब कृत्रिम निर्झर वा फुहारे देखे जाते हैं, वे स्वाभाविक निर्झरके अनुकरणसे निर्मित हैं। अलेकसन्द्रियावासी हायरोने ई० सन्के १२० वर्ष पहले जो अत्याश्चर्य निर्झरका निर्माण किया, उसकी निर्माणप्रणालीकी समालोचना करनेसे कृत्रिम निर्झरके विषयमें कुछ ज्ञान उत्पन्न हो सकता है। हायरोका कृत्रिम निर्झर वायु-प्रसारणगुण-मूलसे निर्मित है। उन्होंने निम्नोक्त उपायसे उसे बनाया।

एक पीतलकी बड़ी किश्ती या रिकाबीके मध्य भागमें एक छिद्र है और वह नलके द्वारा निम्नस्थित एक पात्रके ऊपरी भागमें दृढ़रूपसे लगा हुआ है। उस निम्नस्थ पात्रके तलदेशसे दोनों बगल हो कर दो नल उसके निम्नस्थित एक जलाधारके साथ संलग्न हैं। सर्वोपरि रिकाबीमें दक्षिणका नल और मध्यस्थित पात्रके साथ वाम दिकका नल संयुक्त है और उस मध्यस्थित पात्रके बीचमें एक छोटा वायुसञ्चारक नल है। इस प्रकार दक्षिण ओरके नल हो कर सबनिम्नस्थ पात्रमें जल प्रवेश करेगा और वहां वायुका दबाव पहुंचने पर वामभागस्थ नल द्वारा मध्यस्थित पात्रमें प्रवेश करता और उसके मध्यस्थ नल पर दबाव डालता है। दूसरी ओर उस पात्रको ऊपरी रिकाबीमें संलग्न नल द्वारा जल ऊपरकी ओर निर्झरके रूपमें गिरता है।

वायुका घर्षण आदि पूर्ववर्णित कारणसमूह यदि उस निर्झरके विरुद्ध कार्य न करता, तो यह जल उन दोनों पात्रके मध्यस्थित नलके व्यवधानानुसार ऊर्ध्वगामी होता। यथार्थमें वह उससे कम दूर तक ऊपर उठता है। इसके बाद नाना कालोंमें नाना प्रकारके निर्झर तैयार हुए हैं। अविराम निर्झरयन्त्र उसका प्रकार भेदमात्र है। फुहारा देखो।

भारतमें भी बहुत पहलेसे कृत्रिम निर्झर प्रस्तुत होता था। कालिदासने ऋतुसंहारमें इसे वारियन्त्र नामसे वर्णित है।

साधारणतः पार्वत्य प्रदेश ही स्वाभाविक निर्झरका स्थान है। कृत्रिम निर्झरका होना सभी जगह सम्भव है। बहुतसे राजप्रासाद वा सुन्दर सुन्दर हर्म्यके ऊपर नाना प्रकारकी खोदित मूर्त्तिके किसी न किसी स्थानसे उत्थित यह कृत्रिम निर्झर देखा जाता है।

पुराकालमें ग्रीकदेशीय अनेक नगरोंमें इस प्रकारके कृत्रिम निर्झर देखे जाते थे। योसेफसने लिखा है कि बाबिलनके अनेक स्थानोंमें इस प्रकारका निर्झर था और रायनरके निकटस्थ पैशाचमें मूर्त्तिके पदतल हो कर इस प्रकारका जलस्रोत प्रवाहित होता था। ग्रीसमें और भी अनेक कृत्रिम फुहारे थे और आज भी कहीं कहीं देखे जाते हैं। पम्पियनगरका ध्वंस जहां तक दि अनेक घर भी निर्झरसे सुशोभित थे। मैंसम नगरकी चित्रशालिकामें बहुतसी 'ब्रोञ्ज' निर्मित प्रतिमूर्त्तियां विद्यमान हैं जिनके कृत्रिम उपायसे निर्झरके आकारमें जलस्रोत प्रवाहित होता है। रटलोमें आजकल अनेक शोभायुक्त निर्झर प्रवाहित हैं जिनसे वहांके अधिवासियोंकी शिल्पनिपुणताका परिचय मिलता है। ये सब निर्झर नाना वर्णोंमें चित्रित और अति विशाल हैं तथा नाना प्रकारकी मूर्त्तियोंसे शोभती हैं। चित्रकर, सूत्रधार और राजमिस्त्रियोंने इन सब निर्झरोंको बनानेमें कौशल, बुद्धि और नैपुण्यका यथेष्ट परिचय दिया है। पारी शहर आदि स्थानोंमें भी बहुत पहलेसे कृत्रिम निर्झर बनानेकी प्रथा प्रचलित थी।

लन्दन नगरमें जलका कोई अभाव नहीं होनेके कारण वहां तक निर्झरका उतना आदर नहीं था। लेकिन दर्शन और विज्ञानकी उन्नति तथा सभ्यताके विस्तारके लिये अभी नाना स्थानोंमें निर्झरका प्रचार हो गया है।

वैद्यकके मतसे निर्झरका जल लघु, पथ्य, दीपन और कफनाशक माना गया है।

पर्वतके तलदेशसे जो जल निकलता है उसे भी निर्झर कहते हैं। इसका जल रुचिकर, कफनाशक, दीपन, लघु, मधुर, कटुपाक और शीतल होता है। २ सूर्याश्व, सूर्यका घोड़ा। ३ तुषानल। ४ हस्ती, हाथी।

निर्झरिणी (सं॰ स्त्री॰) निर्झर-अस्त्यर्थे इनि ङीप्। १ नदी, दरया।

निर्झरिन् (सं॰ पुं॰) निर्झरोऽस्त्यस्येति निर्झर इनि। गिरि, पहाड़।

निर्झरी (सं॰ स्त्री॰) निर-झृ-अच् गौरादित्वात् ङीप्। निर्झर, पर्वतसे निकला हुआ पानीका झरना, सोता, चश्मा।

निर्णय (सं॰ पुं॰) निर्णयनमिति निर्-नी-अच्। १ पक्षपात, औचित्य और अनौचित्य आदिका विचार कर के किसी विषयके दो पक्षोंमेंसे एक पक्षको ठीक ठहराना, किसी विषयमें कोई सिद्धान्त स्थिर करना। इसका पर्याय निश्चय, निर्णय और निचय है। २ विचार। पर्याय— तर्क, सुधा, चर्चा। ३ न्यायदर्शनोक्त षोडश पदार्थके अन्तर्गत पदार्थभेद।

वादी और प्रतिवादी इन दोनोंका किसी विषयमें यदि वाक्यसंशय उपस्थित हो, तो उसमें न्यायप्रयोग करना चाहिए अर्थात् तुम जो कहते हो वह इस कारणसे प्रकृत नहीं है, इस प्रकार न्यायप्रयोग करना होता है। उस वाक्यके प्रति दोषोद्भावन और पीछे उन दोषोंका उद्धार करनेसे जो एक पक्षका अवधारण होता है, उसका नाम निर्णय है। इसी प्रकार निर्णय विचारको जगह जानना चाहिए। एक विषय ले कर आपसमें विचार चल रहा है, उस विचार-विषयके एक पक्षके अवधारण का नाम निर्णय है। जो निर्णीत होगा, उसमें किसी प्रकारका दोष न रहे, दोषदुष्ट होनेसे उसे निर्णय नहीं कह सकते। ४ मीमांसकोक्त अधिकरणका अवयवभेद, मीमांसामें किसी सिद्धान्तसे कोई परिणाम निकालना।

विषय, अविषय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, निर्णय और सिद्धान्त ये सब अधिकरण हैं। तत्त्वकौमुदीमें निर्णयका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

सिद्धान्त द्वारा जो सिद्ध है अर्थात् जो विचार्य विषय सिद्धान्तवाक्य द्वारा सिद्धान्तीकृत हुआ है वैसे वाक्यके तात्पर्यावधारणका नाम निर्णय है। ५ विरोधपरिहार, चतुष्पाद व्यवहारके अन्तर्गत शेष पाद, वादी और प्रतिवादीको बातोंको सुन कर उसके सत्य अथवा असत्य होनेके सम्बन्धमें कोई विचार स्थिर करना, फैसला, निबटारा। आपसमें कोई विवाद उपस्थित होनेसे राजाके पास नालिश को जाती है। वादी, प्रतिवादी और साक्षियोंकी सब बातें सुन कर राजप्रतिनिधि जो निश्चय कर देते हैं, उसीको निर्णय कहते हैं।

व्यवहारशास्त्र चतुष्पाद है और निर्णयपाद उसका शेषपाद है। राजाके पास इसका अभियोग लानेसे, वे जो इसकी निष्पत्ति कर दें, वही निर्णय है।

जब आपसमें कोई विवाद उपस्थित हो, तब राजाको चाहिए कि उसकी मीमांसा कर दें। साक्षिगण प्रतिज्ञा वा शपथ करके जो कुछ कहें और वादी-प्रतिवादी भी जो कहें, राजा भलीभांति उसे सुन लें; पीछे जिसका दोष निकले, उसे धर्मशास्त्रानुसार दण्ड दें। वीरमित्रोदयमें इसका विशेष विवरण लिखा है।

प्रमाण, हेतु, चरित, शपथ, नृपाज्ञा और वादिसम्प्रति पत्ति द्वारा निर्णय आठ प्रकारका है।

निर्णयको जगह यदि शास्त्रीय विवाद उपस्थित हो, तो वहां युक्तिका अवलम्बन करके निर्णय करना होता है, कारण शास्त्रविरोधमें न्याय ही बलवान् है।

"धर्मशास्त्रविरोधेतु युक्तियुक्तो विधिः स्मृतः।
केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो हि निर्णयः॥
युक्तिहीनविचारे हि धर्महानिः प्रजायते॥"
(वीरमित्रोदयधृत वचन)

निर्णयन (सं० क्लो०) निर्-नी-भावे ल्युट्। निर्णय।

निर्णयपाद (सं० पु०) निर्णयात्मको पादः भागविशेषः। चतुष्पाद व्यवहारके अन्तर्गत व्यवहारविशेष।

निर्णयोपमा (सं० पु०) एक अर्थालङ्कार। इसमें उपमेय और उपमानके गुणों और दोषोंकी विवेचना की जाती है।

निर्णाम (सं० पु०) नितरां नामः नमनम्। नितरां नमन, अत्यन्त नमन।

निर्णायन (सं० क्लो०) निर्-नी-णिच् ल्युट्। निर्णयका कारण। २ गजापाङ्गदेश, निर्याण, हाथीको आंखका बाहरी कोना।

निर्णिक्त (सं० त्रि०) निर्-णिज-क्त। १ शोधित। २ अपगत ताप।

निर्णिज् (सं० पु०) निर्-निज-क्विप्। १ रूप। (त्रि०) २ शोधक।

निर्णिज (सं० त्रि०) निर्-निज क। निर्जित, जीता हुआ, जिसे जीत लिया हो।

निर्णीत (सं० क्लो०) निर्-नी-क्त। कृतनिर्णय, निर्णय किया हुआ, जिसका निर्णय हो चुका हो। पर्याय—निन्य, सत्व, ससुत, इरुक, प्रतीच्य, अपोच्य।

निर्णेक (सं० पु०) निर्-निज-घञ्। नितरां शुद्ध, अत्यन्त शुद्ध।

निर्णेजक (सं० पु०) निर्-निज-ण्वुल्। रजक, धोबी।

निर्णेजन (सं० क्लो०) निर्-निज भावे ल्युट्। १ शुद्धि। २ प्रायश्चित्त। ३ चालन। ४ धावन।

निर्णेतृ (सं० त्रि०) निर्-नी-तृच्। निश्चयकर्त्ता, विवादको निबटा देनेवाला।

निर्णेय (सं० त्रि०) निर्णय योग्य।

निर्वाद (सं० पु०) स्थानान्तरकरण, निर्वासन।

निर्दयिन् (सं० वि०) १ जिसको दमन करनेवाला। २ दमनहीन।

निर्दग्ध (सं० वि०) १ जो अच्छी तरह दग्ध हो। २ जो दग्ध नहीं हो।

निर्दग्धिका (सं० स्त्री०) निर्दिग्धिका देखो।

निर्दट (सं० त्रि०) निर्दय पृषोदरादित्वात् साधु। १ निर्दय, कठोर बेरहम। २ परनिन्दाकारी दूसरेके दोष या बुराई कहनेवाला। ३ निष्प्रयोजन, जिससे कुछ अर्थ सिद्ध न हो। ४ तीव्र, तेज। ५ मत्त मतवाला।

निर्दड (सं० त्रि०) १ निर्दट, कठिन। २ निर्दय कठोर बेरहम। ३ निष्प्रयोजन, बेकाम।

निर्दण्ड (सं० त्रि०) निर्गतो दण्डो यस्य प्रादिबहु०। १ सर्वप्रकार दण्डार्ह, जिसे सब प्रकारके दण्ड दिये जा सकें। २ दण्डहीन जिसे दण्ड न दिया जाय। (पु०) ३ शूद्र, जिसे सब प्रकारके दण्ड दिये जा सकते हैं।

निर्दम्भ (सं० त्रि०) दम्भहीन जिसे दम्भ या अभिमान न हो।

निर्दय (सं० त्रि०) निर्गता दया यस्मात्। दयाशून्य, निष्ठुर बेरहम।

निर्दयता (सं० स्त्री०) निष्ठुरता, बेरहमी।

निर्दलन (सं० क्ली०) निर् दल भावे ल्युट्। निर्दलनका भाव या क्रिया।

निर्दर (सं० क्ली०) निर्-दृ अप्। १ गुफा, कन्दरा। २ निर्झर। ३ दृढ़का निर्यास। (त्रि०) निर्गतो दरो यस्मात्। ४ सार। ५ कठिन। ६ निर्भय।

निर्दशन (सं० क्ली०) १ दशनरहित। २ विदारण।

निर्दश (सं० त्रि०) निर्गतानि दशदिनानि यस्य। अशौच कालात् पश्चात् जिसका दस दिन बीत गया हो।

निर्दशन (सं० त्रि०) निर्गतानि दशनानि यस्य। दशन शून्य, बिना दांतका।

निर्दस्यु (सं० त्रि०) दस्युहीन, दस्युरहित।

निर्दहन (सं० पु०) निरतां दहति निर् दह ल्यु। १ भल्लातक, भिलावेंका पेड़। २ भल्लातकका बीज। निर्गतो दहनो अग्निर्यस्य। ३ अग्निशून्य।

निर्दहनी (सं० स्त्री०) निर् दह णिच् ल्युट् ङीप्। मूर्वा लता, चुरनहार, मुर्रा, मरोड़फली।

निर्दातृ (सं० त्रि०) निर् दा तृच्। १ छेदक। २ दाता। ३ शोधक।

निर्दाह (सं० त्रि०) अग्निदग्ध।

निर्दिग्ध (सं० त्रि०) निर् दिह क्त। १ मोटा। २ मांसल, मोटा ताजा।

निर्दिग्धिका (सं० स्त्री०) निर्दिग्धका देखो।

निर्दिष्ट (सं० त्रि०) निर् दिश-क्त। १ निश्चित, जिसका निश्चय कर दिया गया हो, ठहराया हुआ। २ आदिष्ट, जिसको आज्ञा दी गई हो।

निर्देश (सं० पु०) निर् दिश भावे घञ्। १ आज्ञा, हुकुम। २ कथन। ३ किसी पदार्थको बतलाना। ४ निश्चित करना या ठहराना। ५ उल्लेख, जिक्र। ६ वर्णन। ७ नाम लेना। ८ वेतन।

निर्देष्टृ (सं० त्रि०) निर्दिशतीति निर् दिश-तृच्। निर्देशकर्त्ता।

निर्दैन्य (सं० त्रि०) दीनता रहित।

निर्दोष (सं० त्रि०) निर्गतो दोषो यस्मात्। १ दोष रहित, जिसमें कोई दोष न हो, बेऐब, बेदाग। २ जिसने कोई अपराध न किया हो बेकसूर।

निर्दोषता (सं० स्त्री०) निर्दोष होनेकी क्रिया या भाव, अकलङ्कता शुद्धता दोषविहीनता।

निर्दोषी (हिं० वि०) जिसने कोई अपराध न किया हो बेकसूर।

निर्द्रव्य (सं० त्रि०) १ द्रव्यहीन। २ दरिद्र।

निर्द्रोह (सं० त्रि०) १ द्रोहरहित, मित्र। २ निरीह।

निर्द्वन्द्व (सं० त्रि०) निर्गतो द्वन्द्वात्। १ जिसका कोई विरोध करनेवाला न हो, जिसका कोई द्वन्द्वी न हो। २ जो राग द्वेष मान अपमान आदि द्वन्द्वोंसे रहित या परे हो। ३ स्वच्छन्द बिना बाधाका।

निर्धन (सं० त्रि०) निर्गतं धनं यस्य। १ धनशून्य, दरिद्र कङ्गाल। (पु०) २ [illegible]।

निर्धनता (सं० स्त्री०) निर्धन-तल् टाप्। निर्धन होनेकी क्रिया या भाव, गरीबी, कङ्गाली।

निर्धर्म (सं० त्रि०) निर्गतो धर्मात्। धर्म रहित जो धर्मसे रहित हो।

निर्धार (सं० पु०) निर् धृ णिच् भावे घञ्। निर्धारण ठहराना या निश्चित करना।

निर्धारण (सं० क्लो०) निर्-धृ णिच् भावे ल्युट्। १ न्यायके अनुसार किसी एक जातिके पदार्थोंमेंसे गुण या कर्म आदिके विचारसे कुछको अलग करना। जैसे, काली गौएं बहुत दूध देनेवाली होती हैं। यहां 'गो' जातिमेंसे अधिक दूध देनेवाली होनेके कारण काली गौएं पृथक् की गई हैं। २ ठहराना या निश्चित करना। ३ निश्चय, निर्णय।

निर्धारना (हिं० क्रि०) निश्चित करना, निर्धारित करना, ठहराना।

निर्धारित (सं० त्रि०) निर्-धारि-क्त। १ निर्धारण विषय। २ निश्चित, ठहराया हुआ।

निर्धार्त्तराष्ट्र (सं० त्रि०) धार्त्तराष्ट्र-शून्य, धृतराष्ट्रपुत्र शून्य ऐसा स्थान।

निर्धार्य (सं० त्रि०) निधार्य्यते स्थिरो क्रियते वा निश्चि-यते निर्-धृ-ण्यत् वा धारि ण्यत्। १ निर्धारण कर्म, सामान्यसे पृथक् करण। २ निश्चय। ३ निश्चयकर्मकर्त्ता। (क्लो०) ४ अवश्य निर्धारण।

निर्धूत (सं० त्रि०) निर्-धू-क्त। १ खण्डित, टूटा हुआ। २ परित्यक्त, जिसका त्याग कर दिया हो। ३ निरस्त, फेंका हुआ, छोड़ा हुआ। ४ भर्त्सित, जिसकी निन्दा की गई हो। ५ धोया हुआ।

निर्धूम (सं० त्रि०) धूमरहित, जहां या जिसमें धुआं न हो।

निर्धौत (सं० त्रि०) निर्-धाव-कर्मणि क्त। प्रक्षालित, धोया हुआ, साफ किया हुआ।

निर्ध्मापन (सं० क्लो०) निर्-ध्मा-णिच् भावे ल्युट्। सुश्रुतोक्त शल्योद्धारणार्थ व्यापारभेद।

निर्नमस्कार (सं० त्रि०) निर्नास्ति नमस्कारो यस्य। नमस्कार या प्रणामरहित।

निर्नर (सं० त्रि०) नररहित, मनुष्यशून्य।

निर्नाथ (सं० त्रि०) नाथशून्य, बिना मालिकका।

निर्नाभि (सं० त्रि०) १ नाभिशून्य, जिसे ढोंढ़ी न हो।

निर्नायन (सं० क्लो०) १ स्थानान्तरितकरण, दूसरी जगह ले जाना। २ बहिष्करण, निर्वासन।

निर्नायिन् (सं० त्रि०) निर्नायन देखो।

निर्निमित्त (सं० त्रि०) अकारण, बिना वजह।

निर्निमेष (सं० त्रि०) १ पलकशून्य, जो पलक न गिरावे। २ जिसमें पलक न गिरे। (क्रि० वि०) ३ बिना पलक झपकाए, एकटक।

निर्निरोध (सं० त्रि०) अनिवार्य, अप्रतिहत।

निर्नीड़ (सं० त्रि०) निर्गतं नीड़ं यस्मात्। नीड़रहित, आश्रयशून्य, बिना घरका।

निर्फल (हिं० वि०) निष्फल देखो।

निर्बन्ध (सं० पु०) निर्-बन्ध भावे घञ्। १ अभिनिवेश, आग्रह। २ जिद, हठ। ३ रुकावट, अड़चन।

निर्बन्धनीय (सं० क्लो०) विवाद, लड़ाई, झगड़ा।

निर्बन्धिन् (सं० त्रि०) बहुत अकड़ी कामका।

निर्बन्धु (सं० त्रि०) बन्धुरहित, बन्धुहीन।

निर्बर्हण (सं० क्लो०) निर्-बर्ह-भावे ल्युट्। १ निब-र्हण, मारण। (त्रि०) २ दलहीन, कमजोर।

निर्बल (सं० त्रि०) बलहीन, कमजोर।

निर्बलता (सं० स्त्री०) कमजोरी।

निर्बहना (हिं० क्रि०) १ पार होना, अलग होना, दूर होना। २ कामका चलना, निभना, पालन होना।

निर्बाचन (सं० पु०) निर्वाचन देखो।

निर्बाण (सं० पु०) निर्वाण देखो।

निर्बाध (सं० त्रि०) निर्गता बाधा यस्मात्। १ अप्रति-बन्ध। २ निरुपद्रव। ३ विविक्त। ४ निष्काश्य। (पु०) ५ मज्जभागभेद।

निर्बाधिन् (सं० त्रि०) ग्रन्थियुक्त, स्फीत।

निर्बुद्धि (सं० त्रि०) निर्नास्ति बुद्धिर्यस्य। बुद्धिहीन, जिसे बुद्धि न हो, मूर्ख, बेवकूफ।

निर्बुष (सं० त्रि०) निर्गतं बुषं यस्मात्। तुषरहित, बिना भूसीका।

निर्बुसीकृत (सं० त्रि०) तुषरहित, बिना भूसीका।

निर्बोध (सं० त्रि०) निर्नास्ति बोधो यस्य। जिसे हिता-हितका ज्ञान न हो, अज्ञान, अनजान।

निर्भक्त (सं० त्रि०) १ अविभक्त। २ जो बिना भोजन किए ग्रहण किया गया हो।

निर्भट (सं० त्रि०) निर्-भट-अच्। दृढ़, मजबूत।

निर्भर्त्सना (सं० स्त्री०) अलक्तक, लाक्षा, अलता।

निर्भय (सं० त्रि०) निर्गतं भयं यस्मात्। १ भयरहित,

जिसे कोई डर न हो, बेखौफ। (पु०) २ रौच्यमनुके पुत्रभेद, पुराणानुसार रौच्यमनुके एक पुत्रका नाम। ३ योद्ध अश्व, बढ़िया घोड़ा।

निर्भयता (हि० स्त्री०) १ निडरपन, निडर होनेका भाव। २ निडर होनेकी अवस्था।

निर्भयरामभट्ट—प्रतापशाहके पुत्र और अभयदूरोत्सव कालनिर्णय नामक दो संस्कृत ग्रन्थोंके रचयिता।

निर्भयानन्द—हिन्दीके एक कवि। इनका कविताकाल सं० १८१६ कहा जाता है। इन्होंने शिवविवाहको कुछ पुस्तकें बनाई हैं।

निर्भर (सं० त्रि०) निःशेषेण भरो भारो यत्र। १ बहुत ज्यादा। २ युक्त, मिला हुआ। (पु०) ३ वेतनशून्य भृत्य वह सेवक जिसे वेतन न दिया जाता हो, बेगार।

निर्भर्त्सन (सं० क्ली०) नितरां भर्त्सनम् निर्-भर्त्स ल्युट्। १ निन्दा, बदनामी। २ अलक्तक अलता। ३ भर्त्सन, तिरस्कार, डांट डपट। ४ अभिभव। ५ भर्त्सन।

निर्भर्त्सना (सं० स्त्री०) १ तिरस्कार, डांट डपट, बुरा भला कहना। २ निन्दा, बदनामी।

निर्भर्त्सित (सं० त्रि०) निर्-भर्त्स-क्त। अपमानित, जिसकी निन्दा की गई हो। पर्याय—निन्दित, धिक्कृत अपध्वस्त।

निर्भाग्य (सं० त्रि०) निर् निकृष्ट भाग्य यस्य। मन्द भाग्य, मूढ़।

निर्भाज्य (सं० त्रि०) अविभाज्य जो भागयोग्य न हो।

निर्भिन्न (सं० त्रि०) निर्-भिद्-क्त। १ विदलित, प्रस्फुटित। २ भग्न, विकसित।

निर्भिन्नविनिष्ट (सं० पु०) घुटिका।

निर्भीक (सं० त्रि०) भयरहित, निधड़क, बेडर, निडर।

निर्भीकता (सं० स्त्री०) निर्भीक होनेकी क्रिया या भाव।

निर्भीत (सं० त्रि०) निर् भी क्त। भयरहित, निडर।

निर्भुग्न (सं० त्रि०) जिसका एक छोर मोड़ा हुआ हो।

निर्भूति (सं० स्त्री०) तिरोभाव अन्तर्धान, गायब होना।

निर्भृति (सं० त्रि०) निर्गता भृतिर्यस्य। वेतनशून्य कर्मकार, बेगार।

निर्भेद (सं० पु०) १ विदारण, फाड़ना। २ विभाजन।

निर्भेदिन् (सं० त्रि०) भेदकारी।

निर्भेद्य (सं० त्रि०) विभेदयोग्य।

निर्भोग (सं० त्रि०) भोग या उपभोगरहित सुखहीन।

निर्भ्रम (सं० त्रि०) १ भ्रमरहित जिसमें कोई सन्देह न हो। (क्रि० वि०) २ निःसन्देहतासे, बेडर, बेखटके, बिना खटकेके।

निर्भ्रान्त (सं० त्रि०) १ भ्रमरहित, निश्चित, जिसमें कोई सन्देह न हो। २ जिसको कोई भ्रम न हो।

निर्मक्षिक (सं० अव्य०) मक्षिकायाः अभाव। १ मक्षिका का अभाव। निर्गतो मक्षिका यस्मात्। २ मक्षिकाशून्य देश। ३ तदुपलक्षित निर्जनदेश, निभृतस्थान।

निर्मज्जन (सं० क्ली०) १ नीराजन, आरती करना। २ सेवा।

निर्मद् (सं० त्रि०) निर्-मद क्विप्, पिदे पृषोदरा दित्वात् साधुः। नितान्त युक्त।

निर्मण्ड (सं० स्त्री०) मण्डहीन।

निर्मत्कुण (सं० त्रि०) मत्कुणशून्य, जहां खटमल न हो।

निर्मत्सर (सं० त्रि०) मत्सररहित, अहङ्कारहीन।

निर्मत्स्य (सं० त्रि०) मत्स्यहीन, जहां या जिसमें मछली न हो।

निर्मथ (सं० पु०) निर्मथ्यतेऽनेन निर् मथ-करणे-घञ्। अग्निमन्थनदारु, अरणि, जिसे रगड़ कर यज्ञोंके लिये आग निकालते हैं।

निर्मथन (सं० क्ली०) १ मन्थन, मथना। २ अग्निमन्थनदारु, अरणि।

निर्मथ्या (सं० स्त्री०) १ नलिका नामक गन्धद्रव्य। (त्रि०) २ जो मथने लायक न हो।

निर्मद (सं० त्रि०) निर्गतो मदो दानजलं यस्मात्। १ निरभिमान। २ दर्पशून्य। ३ दानजलशून्य।

निर्मदा (सं० स्त्री०) नलिका गन्धद्रव्यविशेष।

निर्मनस्क (सं० त्रि०) अमनस्क।

निर्मनुज (सं० त्रि०) निर्गता मनुजा यत्र। मनुष्यशून्य, निर्जन।

"यः प्रातःरुत्थाय विधाय नित्यं
निर्माल्यमीशस्य निराकरोति ।
न तस्य दुःखं न दरिद्रता च
नाकालमृत्युर्न च रोगमात्रम् ॥"
(नारदपञ्च०)

हरिभक्तिविलासमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—

अरुणोदयके समय यदि निर्माल्य परिष्कार न किया जाय, तो वह शल्यस्वरूप, एक घड़ीके बाद महाशल्य, एक पहरके बाद अति शल्य और उसके बाद वज्रप्रहार-तुल्य हो जाता है। एक घड़ीके बाद क्षुद्रपातक, मुहूर्त्त-के बाद महापातक, चार घड़ीके बाद अतिपातक, तीन मुहूर्त्तके बाद महापातक और उसके बाद ब्रह्मवधतुल्य पाप होता है। इस पापकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्त विधेय है। अर्द्ध मुहूर्त्तके बाद सहस्र जप, मुहूर्त्तके बाद डेढ़ हजार जप, तीन मुहूर्त्तके बाद दश हजार जप और एक प्रहरके बाद पुरश्चरण करना होता है। इसीसे उक्त पापका नाश होता है। प्रहर बीत जाने पर जो पाप होता है, वह प्रायश्चित्त करने पर भी दूर नहीं होता।

निर्माल्या (सं० स्त्री०) निर्माल्यते इति निर्-मल ण्यत् तत टाप्। स्पृक्का, असवरग।

निर्मित (सं० त्रि०) निर्-मा-क्त। कृत-निर्माण, रचित, बनाया हुआ।

निर्मिति (सं० स्त्री०) निर-मा भावे-क्तिन्। निर्माण करण।

निर्मुक्त (सं० पु०) निर्-मुच-क्त। १ मुक्तकञ्चुक सर्प, वह साँप जिसने हालमें केंचुली छोड़ी हो। (त्रि०) २ जो मुक्त हो गया हो, जो छूट गया हो। ३ जिसके लिए किसी प्रकारका बन्धन न हो।

निर्मुक्ति (सं० स्त्री०) निर-मुच्-क्तिन्। १ सम्पूर्ण-स्वाधीनताप्राप्ति, मुक्ति, छुटकारा। २ मोक्ष।

निर्मुट (सं० क्ली०) निर्गतं मुटं यस्मात्। १ कर-शून्य हट्ट, जिस बाजारमें चुंगी न ली जाती हो। २ वनस्पतिविशेष, एक प्रकारकी लता। ३ खर्पर, खपड़ा। ४ वह वृक्ष जिसमें बहुत फूल लगे हों। ५ सूर्य। ६ धूर्त्त, शठ, खल।

निर्मूल (सं० त्रि०) निर्गतं मूलं यस्य। १ मूलरहित, जिसमें जड़ न हो, बिना जड़का। २ जिसकी जड़ न रह गई हो, जड़से उखाड़ा हुआ। ३ जिसका कोई आधार, बुनियाद या अमन्नियत न हो, बेजड़। ४ जो सर्वथा नष्ट हो गया हो, जिसका मूल ही न रह गया हो।

निर्मूलक (सं० त्रि०) निर्मूल देखो।

निर्मूलन (सं० क्ली०) निर्मूलं कृतो णिच्-भावे ल्युट्। १ उत्पाटन, उखाड़ना। २ निर्मूल करना या होना, विनाश।

निर्मेव (सं० त्रि०) मेवशून्य, बिना बादलका।

निर्मेध (सं० त्रि०) मेधाशून्य, जिसे अक्ल न हो।

निर्मृजस् (सं० अव्य०) निर्-मृज 'ईश्वरे तोसुन्कसुनौ' इति सूत्रेन तुमर्थे कसुन्। निर्माज्जन करना।

निर्मृष्ट (सं० त्रि०) निर्-मृज-क्त। प्रोञ्छित, पोंछा हुआ।

निर्मोक (सं० पु०) नितरां मुच्यते इति निर्-मुच-घञ्। १ सर्पत्वक्, साँपकी केंचुली। पर्याय—अहिकोष, निल्वयनी, कञ्चुक। २ मोचन, छुटकारा। ३ त्वक्मात्र शरीरके ऊपरकी खाल। ४ पुराणानुसार सावर्णि मनुके एक पुत्रका नाम। ५ तेरहवें मनुके सप्तर्षियोंमें-से एकका नाम। ६ आकाश। ७ सन्नाह, कवच, जिरह-बकतर।

निर्मोक्तृ (सं० त्रि०) निर्-मुच-तृच्। १ निर्मोचन-कारी, मुक्त करनेवाला। २ संशयछेदक। (पु०) ३ स्वतन्त्रता, मुक्ति।

निर्मोक्ष (सं० पु०) नितरां मोक्षः। १ त्याग। २ पूर्ण-मोक्ष, जिसमें कुछ भी संस्कार बाकी न रह जाय।

निर्मोचन (सं० क्ली०) निर्-मुच्-णिच्-ल्युट्। मुक्ति, मोक्ष।

निर्मोच्य (सं० त्रि०) निर्-मुच्-ण्यत्। मुक्ति पाने योग्य।

निर्मोह (सं० त्रि०) निर्गतः मोहो यस्मात्। १ मोह-शून्य, जिसके मनमें मोह या ममता न हो। (पु०) २ रैवतमनुका पुत्रभेद, रैवत मनुके एक पुत्रका नाम। ३ सावर्णिमनुका पुत्रभेद, सावर्णि मनुके एक पुत्रका नाम।

निर्मोहनी (हिं॰ वि॰) निर्दय जिसके चित्तमें ममता या दया न हो कठोर हृदय।

निर्मोही (हिं॰ वि॰) जिसके हृदयमें मोह या ममता न हो, निर्दय कठोर हृदय।

निर्म्लुचा (सं॰ स्त्री॰) निर्-म्ला-तुन्, स चार्थो खन् पृषोदरादित्वात् साधु। आमिषभक्ष्य पोपयिभेद।

निर्युक्ति (सं॰ स्त्री॰) नियुक्ति देखो।

निर्यत्न (सं॰ त्रि॰) निर्गत यत्नो यस्य। यत्न-शून्य आलसी जो अपने लिए कुछ भी उपाय न करे।

निर्यन्त्रण (सं॰ क्ली॰) निर्-यन्त्र-ल्युट्। १ निर्यातन। (त्रि॰) २ यन्त्रणाशून्य बाधारहित। ३ निरर्गल। ४ उच्छृङ्खल।

निर्याण (सं॰ क्ली॰) निर्याति अनेनेति निर्-या करणे ल्युट्। १ गजापाङ्गदेश हाथीकी आंखका बाहरी कोना। भावे ल्युट्। २ मोक्ष, मोक्ष मुक्ति। ३ बाहर निकलना। ४ यात्रा, रवानगी, विशेषतः सेनाका युद्धक्षेत्रकी ओर अथवा यात्रीका तीर्थकी ओर प्रस्थान। ५ वह सड़क जो किसी नगरके बाहरकी ओर जाती हो। ६ अदृश्य होना, गायब होना। ७ शरीरसे आत्माका निकलना। ८ पशुओंके पैरमें बांधनेकी रस्सी।

निर्यात (सं॰ त्रि॰) निर्-या-क्त। निर्गत, निकला हुआ।

निर्यातक (सं॰ त्रि॰) निर्यात निर्याणं अभिव्याप्य तत्करोति णिच्-ण्वुल्। निर्वासक, नष्ट करनेवाला।

निर्यातन (सं॰ क्ली॰) निर् यत-णिच्-ल्युट्। १ वैर शुद्धि, प्रतीकार, बदला चुकाना। २ प्रतीकार। ३ प्रतिदान। ४ न्यासमर्पण, गच्छित द्रव्यका लौटा देना। ५ मारण मार डालना। ६ ऋणादिका शोधन ऋण चुकाना।

निर्याति (सं॰ स्त्री॰) १ निर्गमन, प्रस्थान, रवानगी। २ मृत्यु।

निर्याद (सं॰ त्रि॰) पैशद्यक कषाय, निर्यास। निर्यास देखो।

निर्यात्र (सं॰ त्रि॰) निर् याति कर्मणि यत्। १ शोधनीय, चुकाने योग्य। २ प्रतिदेय देने योग्य।

निर्यादव (सं॰ त्रि॰) यादवशून्य स्थान, यादवरहित।

निर्याम (सं॰ पुं॰) निर्-यम्-घञ्। पोतवाह, नाविक, मल्लाह, मांझी।

निर्यास (सं॰ पुं॰-क्ली॰) निर्-यस घञ्। १ कषाय। २ क्वाथ, काढ़ा। ३ वृक्षों या पौधोंमेंसे आपसे आप अथवा उनका तना आदि चीरनेसे निकलनेवाला रस। ४ गोंद। ५ दूध बहना या झरना। ६ मस्तक दूध। ७ लासा।

निर्यासिक (सं॰ त्रि॰) निर्यासस्य अदूरदेशाः तत्र ठक्। निर्यासकके निकट देशादि।

निर्याली (सं॰ पुं॰) शालोटवृक्ष।

निर्युक्ति (सं॰ स्त्री॰) अनु योग, युक्तिहीनता।

निर्युक्तिक (सं॰ त्रि॰) निर्गता युक्ति यस्मात् बहु। युक्तिरहित, युक्तिहीन, बिना युक्तिका।

निर्यूथ (सं॰ त्रि॰) यूथभ्रष्ट, दलसे पृथक्, बिछड़ा हुआ।

निर्यूष (सं॰ पुं॰) निर्गतो यूषः। निर्यास, गोंद।

निर्यूह (सं॰ पुं॰) निर्-वह क पृषोदरादित्वात् साधुः। १ मत्तवारण। २ नागदन्त। ३ हस्तिदन्तके सदृश निर्गत द्वार पीढ़िकाका बाहमेद, दीवारमें लगाई हुई वह लकड़ी आदि जिसके ऊपर कोई चीज रखी या टगाई जाय। ४ शेखर। ५ आपीड़, सिर पर पहननेकी कोई चीज। ६ द्वार, दरवाजा। ७ क्वाथ, काढ़ा।

निर्योग (सं॰ पुं॰) अलङ्कार, साज।

निर्योगक्षेम (सं॰ त्रि॰) चिन्ताविरत, योगक्षेमचिन्ता विहीन।

निर्लक्षण (सं॰ त्रि॰) निर्गत लक्षण यस्य। १ शुभलक्षणशून्य, अच्छे लक्षणोंका। २ अप्रसिद्ध, तुच्छ।

निर्लक्ष्य (सं॰ त्रि॰) लक्ष्यहीन, जो निगाह पर न पड़े।

निर्लज्ज (सं॰ त्रि॰) निर्गता लज्जा यस्य। लज्जाहीन, बेशर्म, बेहया।

निर्लज्जता (हिं॰ स्त्री॰) निर्लज्ज होनेका भाव, बेशर्मी, बेहयाई।

निर्लिंग (सं॰ त्रि॰) १ जिसका कोई निश्चित चिह्न या लिंग न हो। २ जिसका लिङ्गसाधन नहीं होता हो।

निर्लिप्त (सं॰ त्रि॰) निर्-लिप्-क्त। १ सम्बन्धशून्य,

जो कोई सम्बन्ध न रखता हो, बेलोस। २ निरपेक्ष, राग द्वेष आदिसे मुक्त, जो किसी विषयमें आसक्त न हो।

निर्लुञ्चन (सं० क्लो०) निर्-लुन्च-भावे ल्युट्। वितुषीकरणादि, लूटमार करनेका काम।

निर्लुण्ठन (सं० क्लो०) निर्-लुठि-भावे ल्युट्। अपहरण, लूटना।

निर्लेखन (सं० क्लो०) निर्-लिख-भावे ल्युट्। १ किसी चीज पर जमी हुई मैल आदि खुरचना। २ वह वस्तु जिससे मैल खुरची जाय।

निर्लेप (सं० त्रि०) निर्गतः लेपो यस्मात्। १ लेपशून्य, विषयों आदिसे अलग रहनेवाला। २ पापशून्य। ३ परिणामके कारण संयोगादि शून्य।

निर्लोभ (सं० त्रि०) जिसे लोभ न हो, लालच न करनेवाला।

निर्लोभी (हिं० वि०) निर्लोभ देखो।

निर्लोमन् (सं० त्रि०) निर्गतं लोम यस्य। लोमरहित, जिसके रोएं न हों।

निर्लोह (सं० क्लो०) १ बोल नामक गन्धद्रव्य। २ व्याघ्रनख नामक गन्धद्रव्य।

निर्ल्वयनी (सं० स्त्री०) नितरां लोयते संलीनो भवति, निर्-ली-ल्युट, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कञ्चुक, जामा, चोलक। २ सर्पत्वक्, केंचुली।

निर्वंश (सं० त्रि०) जिसके आगे वंश चलानेवाला कोई न हो, जिसका वंश नष्ट हो गया हो।

निर्वंशता (सं० स्त्री०) निर्वंश होनेका भाव।

निर्वक्तव्य (सं० त्रि०) निर्-वच तव्य। निर्वाच्य, प्रकाश न करने योग्य।

निर्वचन (सं० क्लो०) निर्-वच-भावे ल्युट्। १ निरुक्ति, किसी पद या वाक्यकी ऐसी व्याख्या जिसमें व्युत्पत्ति आदिका पूरा कथन हो। (त्रि०) २ प्रसिद्ध, मशहूर। निर्गतं वचनं यस्य। ३ वचनशून्य, मौनावलम्बन। ४ वक्तव्यताशून्य, जिसमें बोलनेके लिये कुछ भी न रह गया हो।

निर्वण (सं० त्रि०) निर्गतो वनात् असंज्ञायां णत्वम्। वनसे निष्क्रान्त, जंगलसे निकला हुआ या जंगलसे बाहर।

निर्वपण (सं० क्लो०) निर्-वप-भावे ल्युट्। १ दान। २ अन्नादिका संविभाग।

निर्वयणी (सं० स्त्री०) निर्ल्वयनी, सांपकी केंचुली।

निर्वैर (सं० त्रि०) निर्गतो वरो वरुणमस्य। १ निर्लज्ज, बेशर्म, बेहया। २ निर्भय, निडर। ३ सार, कठिन।

निर्वरुणता (सं० स्त्री०) वरुणके अधिकारसे विमोचन।

निर्वर्णन (सं० क्लो०) निर्-वर्ण-भावे ल्युट्। दर्शन।

निर्वर्त्तित (सं० त्रि०) निर्-वृत-णिच्-कर्मणि-क्त। निष्पादित।

निर्वर्त्य (सं० त्रि०) निर्-वृत-णिच्-कर्मणि-यत्। निष्पाद्य, व्याकरण परिभाषित कर्मभेद।

निर्वहण (सं० क्लो०) निर्-वह-भावे ल्युट्। १ नाट्योक्ति, समाप्ति। २ निर्वाह, गुजर, निबाह।

निर्वहित (सं० त्रि०) विभक्त, अलग करनेवाला।

निर्वाक् (सं० त्रि०) वाक्यहीन, जिसके मुंहसे बात न निकले, जो चुप हो।

निर्वाक्य (सं० त्रि०) वाक्यहीन, जो बोल न सकता हो, गूंगा।

निर्वाच (सं० त्रि०) १ वहिर्भाग, वाह्य। २ निर्गत।

निर्वाच्य (सं० त्रि०) निर्वचनीय।

निर्वाण् (सं० त्रि०) निर्-अव-अञ्च् क्विप्। निर्गत, निकाला हुआ।

निर्वाण (सं० क्लो०) निर्-वा-क्त। (निर्वाणोऽवाते। पा ८।२।५०) अवाते इति छेदः। १ गजमज्जन। २ विनाश। ३ निर्वृत्ति। ४ शान्ति। ५ समाप्ति। ६ विष्णु। ७ नाभिदेशमें जपनेयोग्य प्रणवपुटित और मातृकापुटित-स्वाभिलषित मूलमन्त्र। ८ वाणशून्य। ९ अस्तगमन। १० संगम। ११ विश्रान्ति। १२ निश्चल। १३ शून्य। १४ विद्योपदेश। १५ मुक्ति। दर्शनमें यही अर्थ सब जगह लिया गया है।

अमरकोषमें मुक्तिवाचक आठ विशेष शब्दोंका उल्लेख है,—अमृत, श्रेयः, मोक्ष, अपवर्ग, निःश्रेयस, मुक्ति, कैवल्य और निर्वाण।

उपनिषद्के मतानुसार प्रत्यगात्म ब्रह्मके सम्यग्ज्ञान-द्वारा अमृत लाभ होता है। श्रेयः (मुक्ति) और प्रेयः (अभ्युदय) इन दोनों मार्गोंका सम्यक् विचार कर जो

और व्यक्ति हैं वे महोमार्गका ही अवलम्बन करते हैं। सांख्यदर्शनकार कपिलका कहना है, कि प्रकृति और पुरुष इन दोनों तत्त्वोंके भेदज्ञान द्वारा दुःखत्रयका ध्वंस और मोक्षलाभ होता है। गौतमने अपने न्यायदर्शनमें लिखा है, कि प्रमाण प्रमेयादि षोडश पदार्थोंके सम्यक् ज्ञान द्वारा दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्याज्ञानके उत्तरोत्तर अपायसे अपवर्ग लाभ होता है। द्रव्य गुण कर्मादि षट्-पदार्थोंके सम्यक्‌ज्ञान द्वारा निःश्रेयसाधिगम होता है। वैशेषिक दर्शनकार कणादका भी यही मत है। पातञ्जलदर्शनके मतसे—योग द्वारा जीवात्माके परमात्मामें लय होनेका नाम मुक्ति है। मीमांसक सम्प्रदायोंमेंसे किसी किसीका कहना है, कि नित्यसुखसाक्षात्कारका नाम मुक्ति है। वैदान्तिक लोग कहते हैं, कि आत्मविषयक ज्ञान द्वारा अविद्याका ध्वंस और ब्रह्म लाभ होता है। फिर बौद्ध लोगोंका कहना है, कि अतीव अद्भुत धर्मसमूहकी समृद्धि द्वारा भवका उपशम, राग, द्वेष और मोहका क्षय तथा निर्वाण लाभ होता है।

मुक्तिवादग्रन्थमें लिखा है कि प्राचीन लोग सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य साष्टि और निर्वाण इन पांच प्रकारकी मुक्तियोंको स्वीकार करते हैं। निम्नलिखित श्लोकमें श्रीवत्सने सायुज्य मुक्तिका विषय व्यक्त किया है।

"सायुज्यमृच्छति मरुत्व महाभिजनाय
त्वां वसुधेव [illegible] मम [illegible]।
मृगपतिभावहरणमत्स्यमिषाम्य
श्रीवोहवे नमति मानमितानि नाथः॥"

(नैषध ११।११७)

इस प्रकार सालोक्य सामीप्य और साष्टि मुक्तिका विषय विभिन्न ग्रन्थोंमें वर्णित है।

निर्वाणमुक्तिका विषय विष्णुपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

एक दिन मायामोहावतार बुद्ध लाल वस्त्र पहने, आंखोंमें सुरमा लगाए असुरोंके निकट गए और मधुर स्वरसे कहने लगे—हे असुरगण! यदि निर्वाण, मुक्ति या स्वर्गकी तुम लोग कामना करते हो, तो पशु-हिंसा आदि कोई दुष्कर्म न करो, क्योंकि इससे कोई फल नहीं निकलता है। इस संसारको विज्ञानमय समझो। पण्डितोंने भी कहा है, कि यह जगत् अनाधार है, भ्रमसङ्कटमें सर्वदा परिभ्रमण करता है और राग आदि दोषोंसे दूषित है।

निर्वाण शब्दका व्यवहार चाहे किसी समयमें क्यों न आरम्भ हो यह शब्द मुक्ति अर्थमें ही बौद्धदर्शनमें कई जगह व्यवहृत हुआ है और वस्तुतः निर्वाण बौद्धोंका मुक्तिव्यञ्जक पारिभाषिक शब्द है। मुक्ति कहनेसे जो लोग जो समझते हैं, वह निर्वाण शब्दसे भी प्रकटरूपमें जाना जा सकता है। जिस तरह ईन्धनके अभावमें अग्नि निर्वाण हो जाती है उसी तरह काम, क्रोध मोह संस्कार इत्यादिके उच्छेदसे सत्ता वा अस्तित्वका विलोप होता है। सत्ताका निरोध ही निर्वाण है। कतिपय बौद्ध ग्रन्थोंमें निर्वाण शब्दका अर्थ विशदरूपसे वर्णित है। नीचे कुछ एक ग्रन्थोंका मत उद्धृत हुआ है—

१। अश्वघोषने बुद्धचरितकाव्यमें लिखा है—

"[illegible]।
[illegible] दुःखनिवर्त्तते॥"

(बुद्धचरित)

निर्वाण पुनर्जन्मका निवर्त्तक है। संस्कारसमूहका क्षय नहीं होनेसे जन्मान्तरका उच्छेद नहीं होता। सुतरां संस्कारसमूहके क्षयका नाम निर्वाण है।

२। आर्य नागार्जुनने माध्यमिकसूत्रमें लिखा है—

"[illegible]॥"

(माध्यमिकसूत्र)

भवसन्ततिके उच्छेदका नाम निर्वाण है। भव शब्दका साधारण अर्थ संसार है क्योंकि इसका प्रकृत अर्थ है कायिक, वाचिक और मानसिक कर्मजनित संस्कार। जब लोग जिस प्रकार अपने यत्नसे जाल प्रस्तुत कर उसमें स्वयं आबद्ध हो जाता है, उस लोग भी उसी प्रकार पूर्व संस्कारके वशसे अपने संसारको खड़ा कर उसमें नाना प्रकारके बन्धनोंसे आबद्ध हो गए हैं। संस्कारके क्षय द्वारा संसारका उच्छेद साधन ही निर्वाण है।

३। रत्नकूटसूत्रमें उक्ति इस प्रकार है—

"रागद्वेषमोहक्षयात् परिनिर्वाणम्॥" (रत्नकूटसूत्र)

राग, द्वेष और मोहके क्षयका नाम निर्वाण है। अग्नि

जिस प्रकार इंधनके अभावमें निर्वाण हो जाता है, उसी प्रकार राग, द्वेष और मोहके क्षय होनेसे जीवका आत्माभिमान लुप्त हो जाता है। अहङ्कारके ममकारका ध्वंस होनेसे ही निर्वाणलाभ होता है।

४। वज्रच्छेदिका ग्रन्थमें बुद्धने लिखा है।

'इह हि सुभूते बोधिसत्त्वयानसम्प्रस्थितेन एवं चित्तमुत्पादयितव्यं सर्वे सत्त्वा मयानुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वापयितव्या ॥' (वज्रच्छेदिका)

निर्वाण पदार्थके अनुपधि अर्थात् प्राप्त होनेसे संस्कारादि कुछ भी नहीं रहते।

५। बोधिचर्यावतारग्रन्थमें शान्तिदेवने लिखा है—

"सर्वत्यागश्च निर्वाणं निर्वाणार्थि च मे मनः ॥"

सर्वत्याग अर्थात् संसार, सुख, दुःख, आत्माभिमान इत्यादि सभी त्यागोंका नाम निर्वाण है।

६। रत्नमेघ ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है,—

"तृष्णया विप्रहाणेन निर्वाणमिति कथ्यते ॥"

(रत्नमेघ०)

तृष्णाको सम्यक् निवृत्तिका नाम निर्वाण है। यह संसार अनाधार और कल्पित है, इस मिथ्या संसारके साथ अपना सम्बन्ध रखनेकी प्रबल इच्छाका नाम तृष्णा है। उस तृष्णाके क्षय होनेसे ही संसारका उच्छेद, आत्माभिमानका विलय और निर्वाणलाभ होता है।

७। अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितामें लिखा है—

"निरोधस्य निर्वाणस्य विगमस्यैतत् सुभूतेऽधिवचनं यदुत गम्भीरमिति।" (अष्टसाहस्रिका०)

निरोध निर्वाण और विगम ये सभी समार्थक हैं और इनका अर्थ अत्यन्त गम्भीर है। अपनापन और संसारके अपायका नाम निर्वाण है और जिस अवस्थामें संसार भी नहीं है, मैं भी नहीं हूं, वही अवस्था अति दुर्बोध और गम्भीर है।

८। प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्रमें लिखा है—

'बोधिसत्त्वस्य प्रज्ञापारमितामाश्रित्य विहरति चित्तावरणः।
चित्तावरणनास्तित्वात् अत्रस्तो विपर्यासातिक्रान्तो निष्ठनिर्वाणः ॥"

बोधिसत्त्वका चित्तावरण परमार्थज्ञानका अवलम्बन कर अवस्थित है। चित्तावरणके अभावमें विपर्यासका अभाव और निर्वाणलाभ होता है। संसार मिथ्या है, मैं मिथ्या हूं, आन्तर और बाह्य जगत् एक महाशून्य मात्र है, इसी ज्ञानका नाम परमार्थज्ञान है। परमार्थज्ञानके अनुशीलनसे संसाराभिमान और आत्माभिमानरूप विपर्यासका ध्वंस और निर्वाणका लाभ होता है।

९। शतक ग्रन्थमें लिखा है—

'धर्मं समासतोऽहिंसां वर्णयन्ति तथागताः।
शून्यतामेव निर्वाणं केवलं तदिहोभयम् ॥"

बौद्धगण अहिंसाको ही धर्म और शून्यताको निर्वाण मानते हैं। जिस अवस्थामें संसारका ध्वंस हुआ है, उस लोगोंका अस्तित्व भी लुप्त हुआ है, उस अवस्थामें कौन रहता है? यदि लौकिक भाषामें कहा जाय, तो अवश्य ही यह स्वीकार करना होगा कि उस अवस्थामें केवल शून्यतामात्र अवशिष्ट रहती है। यही शून्यता निर्वाण है।

१०। माध्यमिकवृत्तिकामें चन्द्रकीर्त्तिने इस प्रकार लिखा है,—

शून्यताके ज्ञान द्वारा अशेष प्रपञ्चके उपशमरूप नैरात्म्य लाभ होता है। प्रपञ्चके अभावमें विकल्पकी निवृत्ति, कर्मक्लेशका क्षय और जन्मका उच्छेद होता है। अतएव सर्व प्रपञ्चको निवर्तक शून्यता ही निर्वाण कहलाती है।

उक्त मतोंकी पर्यालोचना करनेसे जान पड़ता है कि निर्वाणकालमें अपनापन और संसारका लोप होता है। संसारसमूहके क्षय होनेसे ही अपनापनका लोप होता है और मेरे साथ संसारका जो सम्बन्ध था वह भी विच्छेद हो जाता है। उस समय मेरे लिए संसारका अस्तित्व और अभाव दोनों ही समान हैं। निर्वाणके समय न संसार ही रहा और मैं ही। मेरा अस्तित्व फिर कभी भी नहीं होगा, संसारके साथ मेरा पुनः सम्बन्ध नहीं होगा और इस प्रकार मेरे पुनर्जन्मकी निवृत्ति हुई। मेरा और संसारका चरमध्वंस हुआ। मैं और संसार दोनों ही शून्यतामें निमग्न हुए। यही शून्यता निर्वाण है।

अब यह देखना चाहिए, कि शून्यता कौन-सी वस्तु है। माध्यमिकसूत्रमें नागार्जुनने इसके विषयमें जो बुद्धवाक्य उद्धृत किया है वह इस प्रकार है—

"अनक्षरस्य धर्मस्य श्रुतिः का देशना च का ।
श्रूयते देश्यते चापि समारोपादनक्षरः ॥"

जो पदार्थ किसी अक्षर द्वारा प्रकाश नहीं किया जाता, उस दुर्ज्ञेय पदार्थके सम्बन्धमें क्या विवरण दिया जा सकता है? अक्षर क, ख, ग इत्यादि अक्षर द्वारा प्रकाश नहीं किया जाता। उसका भी जो विवरण दिया गया वह भी पारमार्थिक पदार्थमें मिथ्या अक्षर-का आरोप करके।

वह शून्यता पदार्थ अत्यन्त दुर्बोध है। वह न तो भावपदार्थ है और न अभावपदार्थ। शून्यता नामक ऐसी कोई वस्तु ही नहीं जिसे हम लोग निर्वाणके समय प्राप्त कर सकते हैं। इस संसार वा अपनापनका ध्वंस वा अभाव भी शून्यता नहीं है। यदि शून्यता नामक कोई द्रव्य वा भाव पदार्थ रहता तो उसका ही उपभोग होता। सुतरां उस शून्यताके अधिगममें निज निर्वाणका लाभ नहीं हो सकता था। संसार अथवा अपनापनके अभावको ही किस प्रकार शून्यता कह सकते? संसार और मैं दोनों ही मिथ्या पदार्थ हैं; क्योंकि इनका पारमार्थिक अस्तित्व कभी भी न था। अतः मिथ्याभूत पदार्थकी विनाशीकताकी तरह उनका अभाव किस प्रकार होगा? रत्नावलीग्रन्थमें लिखा है,—

"न चाभावोऽपि निर्वाणं कुत एवास्य भावता ।
भावाभावपरामर्शक्षयो निर्वाणमुच्यते ॥" (रत्नावली)

निर्वाण (शून्यता) जब अभावपदार्थ नहीं है, तब उसे किस प्रकार भावपदार्थ कह सकते? भाव और अभावज्ञान का क्षय ही निर्वाण नामसे प्रसिद्ध है। भाव और अभाव पदार्थ परस्पर सापेक्ष है किन्तु जिस पदार्थके अधिगममें निर्वाण लाभ होता है वह किसीका भी सापेक्ष नहीं है। सुतरां निर्वाण वा शून्यता भावपदार्थ भी नहीं है और न अभावपदार्थ ही है। वह निर्वाण वा शून्यता अनिर्वचनीय पदार्थ है। जिन्होंने निर्वाण लाभ किया है वे भाव और अभावपदार्थके अस्तित्व तथा नास्तित्वसे अतीत हो गये हैं। उनकी अवस्थाका किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

इस शून्यता वा निर्वाणके सम्बन्धमें नीचे कुछ मत उद्धृत किये गए हैं।

१। [illegible] माधवाचार्यने बौद्धदर्शन-के मतकी समालोचना करते हुए कहा है कि अस्ति नास्ति, उभय और अनुभय ये चतुष्कोटिविनिर्मुक्त पदार्थ ही शून्यता है।

२। समाधिराजसूत्रमें लिखा है कि अस्ति और नास्ति दोनों ही मिथ्या है, शुद्धि और अशुद्धि ये भी कल्पित हैं। सुतरां पण्डित लोग उभय अन्तका त्याग कर मध्यमें भी नहीं रहते। वे निर्वाणलाभ कर अस्ति और नास्तिके अतीत तथा उदासीन हो जाते हैं।

३। नागार्जुनने कहा है, कि अल्प बुद्धिके लोग अस्तित्व और नास्तित्वका अनुभव करते हैं। किन्तु धीर मनुष्य अस्तित्व और नास्तित्वके उपशमरूप शिव-को उपलब्ध करते हैं। शून्यता पदार्थ "है" ऐसा नहीं कह सकते और "नहीं है" ऐसा भी नहीं कह सकते।

४। रत्नावलीग्रन्थमें इस विषयमें इस प्रकार लिखा है,—जो 'नहीं' अर्थात् संसार और मैं, ध्वंसरूप अभावपदार्थको ही शून्यता मानते हैं वे दुर्गतिको प्राप्त होते हैं और जो नहीं मानते वे भाव और अभावके अतीत शून्यताको लाभ कर सुगति और मुक्ति पाते हैं।

५। ललितविस्तरग्रन्थमें यों लिखा है,—इस संसारमें कोई पदार्थ "है" ऐसा नहीं कह सकते और "नहीं है" ऐसा भी नहीं कह सकते। जो कार्य-कारणकी परम्पराके अवगत हैं वे अस्ति और नास्तिसे अतीत हो कर निर्वाण लाभ करते हैं।

६। रत्नाकरसूत्रमें लिखा है,—यह विश्व सदा शून्य है। जिस प्रकार अन्तरीक्षमें शकुनका पद चिह्न लाभ नहीं हो सकता, उसी प्रकार इस महाशून्यमें भी कोई पदार्थ विद्यमान नहीं है। पदार्थोंमेंसे किसीकी भी स्वभाव वा अन्य निरपेक्ष सत्ता नहीं है, सुतरां वे किस प्रकार दूसरे पदार्थोंके जन्य वा जनक हो सकते?

७। रत्नमेघसूत्रमें लिखा है, कि पदार्थसमूह आदि और अन्तमें शून्यस्वभाव है। इनका कोई आधार वा स्थिति नहीं है। ये सब असार और मायामात्र हैं। ये पदार्थ सभी आकाशके सदृश निर्लेप हैं।

८। पञ्चशतिका प्रज्ञापारमितासूत्रमें लिखा है,—जो पदार्थ अन्य पदार्थोंके सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ है,

उसकी उत्पत्ति हो नहीं हुई है, ऐसा जानना चाहिए। उस पदार्थके स्वभाव वा स्वाधीन सत्ता नहीं है। जिसे अन्य निरपेक्ष सत्ता नहीं है, उसे शून्य कह सकते हैं और जिसने शून्यता उपलब्ध की है, वह कभी भी संसारमें मत्त नहीं रह सकता।

८। बुद्धदेवने स्वयं इस शून्यताका विषय जो वर्णन किया है, वह इस प्रकार है,—

"निर्वाण' यह गम्भीर पदार्थ शब्द द्वारा प्रकाशित हुआ है, किन्तु कोई भी निर्वाण लाभ नहीं कर सकता। 'अनिर्वाण' यह भी एक शब्द है और इसे भी कोई लाभ नहीं कर सकता। शून्य पदार्थको भी निर्वाण कहते हैं और प्रपञ्चको निवृत्ति भी निर्वाण कहलाती है। निर्वाणको पदार्थका कैसा ही लक्षण क्यों न कहें, उसके साथ जीवका ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध नहीं हो सकता। क्योंकि जीवकी प्रकृत सत्ता नहीं है। अतः उसने निर्वाण 'लाभ" किया, ऐसा किस प्रकार कह सकते। निर्वाण कोई भावपदार्थ नहीं है, अतः उसकी प्राप्ति भी असम्भव है। संसार और मैं दोनों ही मिथ्या पदार्थ हैं और इन दोनोंकी मिथ्या प्रतीति द्वारा प्रपञ्चका उपशम हुआ सही, लेकिन परमार्थतः जो था वही रहा। वही पारमार्थिक पदार्थ निर्वाण है। नीचे निर्वाणलाभकी प्रणाली संक्षेपमें दी जाती है,—

यह संसार दुःखमय है। जन्मलाभ करके जरा-शोकपरिदेव-दुःख-दौर्मनस्य इत्यादि द्वारा जीव रात दिन सन्तप्त रहता है। मृत्युसे भी इस सन्तापकी चिर-निवृत्ति नहीं होती, क्योंकि मृत्युके बाद ही पुनर्जन्म-लाभ होता है। जब तक कर्मका सम्पूर्ण क्षय नहीं हो जाता, तब तक जन्ममरणप्रवाह अव्याहतभावसे होता रहता है। बुद्धने कहा है—

"न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटीशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालञ्च फलन्ति खलु देहिनाम्॥"

शतकोटिकल्पमें भी कर्मका क्षय नहीं होता। काल और पात्रके प्राप्त होनेसे ही जीवोंको कर्मफल मिलता है।

कर्मफलानुसार जीव नरक, तिर्यक, प्रेत, असुर, मनुष्य और देव इन छः लोकोंमें जन्म ले कर छः प्रकार-की गतिको पाता है। इन सब लोकोंमें जन्म ले कर भी कभी अण्डज, कभी स्वेदज, कभी जरायुज और कभी उपपादुक योनिमें जन्म होता है।

जिस प्रकार कुम्भकारका चक्र अन्तर्निहित शक्ति प्रभावसे लगातार घूमता रहता है, जीव भी उसी प्रकार अपने अपने कर्मफलसे इस संसारचक्रमें बराबर परि-भ्रमण करता है। फिर जिस प्रकार किसी कांचकी शीशीमें कुछ भौंरोंको डाल कर शीशीका मुंह बन्द कर देनेसे कोई भौंरा ऊपरमें, कोई नीचे और कोई बीचमें घूमता रहता है, एक भी उससे निकलने नहीं पाता, उसी प्रकार जीवगण अपने कर्मफलसे इस संसारचक्रके मध्य कभी नरक, कभी तिर्यक्, कभी मनुष्य आदि लोकोंमें जन्मग्रहण करते हैं, कोई भी उससे छुटकारा नहीं पाता।

"सर्वे अनित्या अकामा अध्रुवा न च शाश्वताऽपि न कल्पाः।"

(ललितविस्तर)

संसारके सब पदार्थ अनित्य, अकाम, अध्रुव, अशाश्वत और कल्पित हैं।

संसाररूप महाविद्यान्धकारगहनमें प्रक्षिप्त अज्ञान-पटलतिमिरावृतनयन प्रज्ञाचक्षुर्विरहित लोगोंको धर्मालोक प्रदान और सर्वदुःखसे प्रमोचनके लिए भगवान् बुद्धने निर्वाण-मार्गका उपदेश दिया है। उन्होंने कहा है,—

"धिग् यौवनेन जरया समभिद्रुतेन
आरोग्यधिग् विविधव्याधि पराहतेन।
धिग् जीवितेन पुरुषो न चिरस्थितेन
धिक् पण्डितस्य पुरुषस्य रतिःप्रसंगः॥
यदि जर न भवेया नैव व्याधिर्न मृत्यु
स्तथापि च महद्दुःखं पचस्कन्धं धरन्तो।
किं पुन जरव्याधिमृत्युनित्यानुबद्धाः
साधु प्रतिनिवर्त्य चिन्तयिष्ये प्रमोचम्॥"

(ललितविस्तर)

यौवनको धिक्, क्योंकि जरा इसके पीछे पीछे आती है; आरोग्यको धिक्, क्योंकि यह विविधव्याधि द्वारा परा-हत रहता है; जीवनको धिक्, क्योंकि यह चिरस्थायी नहीं है और पण्डित लोगोंकी संसारासक्तिको भी धिक्कार

है। यदि जरा, व्याधि या मृत्यु नहीं रहती तो भी इत्यादि पञ्चस्कन्ध धारण करनेमें लोगोंको अनन्त दुःख भोगना पड़ता। जरा व्याधि और मृत्युके साथ विना मुक्त लोगोंके दुःखको नाश और क्या करें जाय।

इस दुःखसमुद्रके परमध्वंसके लिये बुद्धदेवने प्रारम्भमें चतुरार्यसत्यका उपदेश दिया है।

"चत्वारि आर्यसत्यानि। यथा। दुःखं, समुदयो, निरोधो, मार्गश्चेति।" (धर्मसंग्रह)

दुःख दुःखका उदय या उत्पत्ति, दुःखका निरोध या निवृत्ति और दुःखनिरोधका उपाय या मार्ग ये चार आर्य हैं।

यह सबने सब रात दिन दुःखभोग करते हैं, तब दुःख पदार्थ क्या है, यह समझानेको कोई जरूरत नहीं। दुःखकी उत्पत्ति और निरोधका क्रम, ललित विस्तर, माध्यमिकसूत्र इत्यादि समस्त ग्रन्थोंमें विशदरूपसे वर्णित है। अश्वघोषके बुद्धचरितसे दुःखकी उत्पत्ति और निवृत्तिका क्रम नीचे उद्धृत हुआ है —

विविध प्रकारके दुःख और संसारनिदानका मूल अविद्या है। अविद्यासे कायिक वाचिक और मानसिक संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है। संस्कारसे विज्ञान, विज्ञानसे नामरूप, नामरूपसे षडायतन, षडायतनसे स्पर्श, स्पर्शसे वेदना, वेदनासे तृष्णा, तृष्णासे उपादान, उपादानसे भव, भवसे जाति और जातिसे जरा, मरण तथा शोक उत्पन्न होता है। अविद्याके निरोध द्वारा क्रमशः इन समुदायका निरोध होता है। अविद्यादि द्वादश पदार्थको प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।

उद्योत पोताने संसारका जो चित्र अङ्कित किया है उसकी प्रतिकृति एक चक्र है। इस चक्रके केन्द्रमें कपोतरूपी राग, सर्परूपी द्वेष और शूकररूपी मोह विद्यमान है। इन राग, द्वेष और मोह द्वारा ही संसारचक्र घूमता रहता है। संसारचक्रके नेमिदेशमें प्रतीत्यसमुत्पादकी द्वादश मूर्तियां अङ्कित हैं। प्रथम घरमें एक अन्धी स्त्री एक लकड़ीके सामने बैठी हुई है। दूसरे घरमें एक कुम्भकार लगातार एक चक्रको घुमा रहा है। तीसरे घरमें एक बन्दर अंजीर आमके वृक्ष पर कूद रहा है। चौथे घरमें एक नाव पर एक आदमी बैठा हुआ है। पांचवें घरमें एक मकानको प्रतिकृति अङ्कित है। छठे घरमें एक पुरुष और एक स्त्री बैठे हुए हैं। सातवें घरमें एक तीर एक मनुष्यके चक्षुमें प्रवेश कर रहा है। आठवें घरमें एक मनुष्य शराब पी रहा है। नवें घरमें एक लता वृक्षका टेक कर चढ़ी है। दसवें घरमें आलिङ्गनबद्ध दम्पति है। ग्यारहवें घरमें एक स्त्री सन्तान प्रसव कर रही है। बारहवें घरमें एक मनुष्य मुर्देको कंधे पर ले कर श्मशानकी ओर दौड़ रहा है। इस प्रतीत्यसमुत्पादचक्रके चारों ओर नरक, तिर्यक्, प्रेत, असुर, मनुष्य और देवलोककी प्रतिकृति है। इन छह लोकोंके मध्य मनुष्यलोक ही श्रेष्ठ है। क्योंकि बुद्धत्व या निर्वाण केवल मनुष्यलोकमें ही सम्भव है। अन्यान्य लोकोंमें सुख दुःखादिका भोगमात्र हुआ करता है। इस षड्लोकके चारों तरफ बुद्धोंकी प्रतिमूर्ति है। उन्होंने राग, द्वेष, मोह और अविद्यादिको जीत लिया है। उन्हें नरकादिमें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। उन्होंने भवचक्रको पार कर निर्वाणलाभ किया है।

अब यह देखा गया, कि अविद्यादिकी निवृत्ति द्वारा दुःखकी निवृत्ति और निर्वाणलाभ हुआ करता है। अब कौनसा उपाय है जिसका अवलम्बन करनेसे अविद्यादिका निरोधसाधन किया जा सकता है? बौद्धग्रन्थमें लिखा है, कि आर्य अष्टाङ्गका अनुगमन ही यह उपाय है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यग् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि इन आठ प्रकारके आर्यमार्गके अनुशासन द्वारा अविद्यादि निरोधका सोपान प्राप्त होता है। अविद्याका परमध्वंस कर सकनेसे ही बुद्धत्व या निर्वाणलाभ होता है।

उपरोक्त विषयका संक्षिप्तभाव नीचे लिखा जाता है। पहले प्राणातिपात, अदत्तादान, कामभिथ्याचार, मृषावाद, पैशुन्य, पारुष्य, सम्भिन्नप्रलाप, अभिध्या, व्यापाद और मिथ्यादृष्टि इन दश प्रकारके अकुशल कर्मपथोंका परिहार करना चाहिये।

महावस्तु ग्रन्थमें लिखा है, कि इन दश प्रकारके घोर अकुशल कर्मपथोंका त्याग करनेसे लोभ (राग), मोह और द्वेषका नाश होता है। इनके नाश होनेसे चतुर्विध कर्मपथका नाश होता है।

"चत्वारि धर्मपदानि । अनित्याः सर्वसंस्काराः । दुःखाः सर्वसंस्काराः । निरात्मनः सर्वसंस्काराः । शान्तं निर्वाणं चेति ।" (धर्मसंग्रह)

सभी पदार्थ अनित्य और दुःखदायक हैं। किसीमें भी स्वभाव वा अन्यनिरपेक्ष-सत्ता नहीं है, शान्ति ही निर्वाण है। इस प्रकार चतुर्विध भावना ही धर्मके चार पद हैं।

इन चतुर्विध धर्मपदका अनुशीलन करनेसे आर्याष्ट-मार्गमें प्रवेश लाभ होता है। सम्यक् दृष्टिसे ले कर सम्यक् समाधि पर्यन्त आठ आर्य मार्गोंके अनुसरण द्वारा अविद्यादि निरोधका द्वार प्राप्त होता है। तदनन्तर दान-पारमिता, शीलपारमिता, क्षान्तिपारमिता, वीर्यपारमिता, ध्यानपारमिता और प्रज्ञापारमिता ये छः प्रकारको पारमिता और प्रतीत्यसमुत्पादका सम्यक्ज्ञान लाभ होता है। इस प्रतीत्यसमुत्पादका ज्ञान उत्पन्न होनेसे अर्थात् दुःखका उत्पत्ति और निरोधका क्रम समझ सकनेसे अविद्यादिका विलय होना शुरू होता है। अविद्यादिके विनाश होनेसे बुद्धत्व वा निर्वाणलाभ होता है। इस समय जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु और दुःख इत्यादिका चिर उच्छेद हो जाता है। निर्वाण लाभके बाद फिर भवचक्रमें लौटना नहीं पड़ता, उस समय पवनापन और संसाररूप अग्नि चिर-कालके लिए बुझ जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है, कि यदि संसार और मैं दोनों ही मिथ्या हैं और शून्यता ही इस विश्वका प्रकृत स्वभाव है, तो किस प्रकार मैं, तुम, घट, पट इत्यादिका व्यवहार निष्पन्न होता है। शशविषाण, गगनकुसुम, वन्ध्यापुत्र इत्यादि द्वारा कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता, किन्तु "संसार" और "मैं" द्वारा अनेक कार्य हो रहे हैं, दुःखभोग भी बराबर चल रहा है। इस प्रश्नका उत्तर यही है कि बौद्धोंने सत्यद्वयकी अवतारणा की है नागार्जुनने निम्नलिखित सूत्रमें उस सत्यद्वयका उल्लेख किया है,—

"द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना।
लोकसंवृतिसत्यञ्च सत्यञ्च परमार्थतः।

(माध्यमिकसूत्र)

बौद्धोंकी धर्मदेशना सांवृतिक (व्यवहारिक) और पारमार्थिक इन दो प्रकारके सत्योंका आश्रय ले कर प्रवर्त्तित होती है। नागार्जुनने और भी कहा है,—

"व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थोन देश्यते।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते।"

(माध्यमिकसूत्र)

व्यवहारिक सत्यके आश्रय बिना परमार्थ सत्यका उपदेश नहीं दिया जा सकता और परमार्थ सत्यकी उपलब्धिके बिना निर्वाणलाभ नहीं होता।

सत्यद्वयावतारसूत्र, लङ्कावतारसूत्र, माध्यमिकसूत्र, इत्यादि ग्रन्थोंमें व्यवहारिक और पारमार्थिक सत्यको विस्तृत व्याख्या की गई है। यहां पर इतना कहना ही पर्याप्त होगा, कि सांवृतिक व्यवहारिक) सत्य द्वारा विचार करनेसे संसार और मैं ये दोनों मिथ्या नहीं हैं। किन्तु पारमार्थिक सत्य द्वारा विचार करनेसे यह संसार अनाधार, कल्पित और मिथ्या प्रतीत होगा। जब परमार्थ सत्यका सम्यक्ज्ञान हो जायगा, तब संसार और मैं दोनों ही मिथ्या हो जायगे और तभी निर्वाणलाभ होगा।

यह स्पष्ट देखा जाता है, कि निर्वाण कोई वस्तु नहीं है। संसार और मैं ये ही दो मिथ्या वस्तु हैं। मिथ्या साबित हो जाने पर भी प्रकृत जो था वही रहेगा। वही प्रकृत अवस्था ही निर्वाण है। इस कारण निर्वाण और शून्यता ये दोनों असंस्कृत पदार्थ माने गये हैं। चन्द्रकीर्त्तिने कहा है,—

जिस पदार्थका उत्पाद, स्थिति और विनाश है वही संस्कृत पदार्थ है निर्वाण वा शून्यताका उत्पाद स्थिति वा क्षय नहीं है। सुतरां यह असंस्कृत पदार्थ है। यहां तक निर्वाणलाभ, शून्यताप्राप्ति इत्यादि वाक्योंसे निर्वाण और शून्यताके लाभ और प्राप्तिको कथा कही गई है,किन्तु यदि सच पूछा जाय, तो उसका लाभ और प्राप्ति नहीं हो सकती। संसार और मैं इन दोनों मिथ्या पदार्थके मिथ्या हो जाने पर परमार्थतः जो पहले था, पीछे भी वही रहा। वही पारमार्थिक प्रकृत अवस्था निर्वाण है। उस प्रकृत अवस्थाका भगवान् बुद्धने आर्यरत्नकूटसूत्रमें निम्नलिखित भावसे वर्णन किया है—

"नात्र स्त्री न पुरुषो न सत्त्वा न जीवो न पुरुषो न

पुरुषो मितथा इमे सर्वधर्माः। ममत्व इमे सर्वधर्माः। विठपिता इमे सर्वधर्माः। मायोपमा इमे सर्वधर्माः। स्वप्नोपमा इमे सर्वधर्माः। निर्मितोपमा इमे सर्वधर्माः। उदकचन्द्रोपमा इमे सर्वधर्मा इति विस्तरः। ये इमां तथागतस्य धर्मदेशनां श्रुत्वा विमद् रागात् सर्व धर्मान् प्रजहन्ति विगतमोहात् सर्वधर्मान् प्रजहन्ति असमाधात् अनावरणात्। ते भाजनाधिकारेण चैतसा काल कुर्वन्ति ते कालगता समाना निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वान्ति।"

बुद्धने और भी कहा है,—

'प्रध्वमानार्चिष यथा पश्य सूर्येण वरिवर्तम्।
न विद्यते सोऽपि कश्चिद् यो नावगति सूर्यनाम्।'

निर्वाणके विषयमें दाक्षिणात्य बौद्धग्रन्थोंका मत उदीच्यमतसे पृथक् नहीं है।

विशुद्धिमग्ग ग्रन्थमें लिखा है,—

"लोकामिसङ्कमितिं नेव शुभाकारता।
विनावि सद्धदेव विरोधितमत्थि॥" (विसुद्धिमग्ग)
"पमुदि कामच प्रसन्न ते निब्बानमिति॥"
(विसुद्धिमग्ग)

निर्वाणमें निविष्टहृदय व्यक्तिको निरन्तर श्मशानाङ्गका सेवन करना उचित है। श्मशान बहुदुःखोंका आधार है। इस श्मशानके सेवन द्वारा साधक समझ सकेंगे, कि लोक और संसार मिथ्या है। जिन्होंने ध्यान और प्रज्ञाका लाभ किया है, वे ही निर्वाणके पास पहुंच चुके हैं। अविरत संसारके अनित्यताचिन्तन द्वारा परमार्थ ज्ञानलाभ होता है और तदनन्तर संसार तथा मैं ये दोनों मिथ्या भासित होते हैं। यही निर्वाण है।

धम्मपदग्रन्थमें लिखा है, क्षान्ति ही परम तप है तितिक्षा ही परम निर्वाण है। लोभके समान अग्नि, द्वेषके समान पाप नहीं। स्कन्धके समान दुःख शान्तिके समान सुख और क्षुधाके समान रोग नहीं है। संस्कारसमूह ही परम दुःख है। इन सबका ज्ञान हो जानेसे लोग परमसुखके आधार स्वरूप निर्वाणको लाभ करता है। इस द्वारा मारकुसुम जिस प्रकार छिन्न हो जाता है, उसी प्रकार मृत्युके आधिपत्यको छेदन करो। ऐसा करनेसे बुद्धप्रदर्शित निर्वाणरूप शान्तिमार्ग लाभ कर सकोगे। हे भिक्षु! इस देहरूप नौकाको सिञ्च डालो इसको हो जायगो। राग, द्वेष इत्यादिको छिन्न डालनेसे अर्थात् इनका त्याग करनेसे निर्वाणलाभ होगा।

इन सब वाक्योंसे प्रतीत होता है, कि निर्वाणलाभ करना दाक्षिणात्य बौद्धोंका भी परम उद्देश्य है। इस निर्वाण प्राप्तिके लिये उन्होंने भी प्राणातिपातादि दशविध अकुशल कर्मपथको परिहार और चतुरार्यसत्यके अनुसरणका उपदेश दिया है।

धम्मपदकी अट्ठकथामें लिखा है—

जो मनुष्य प्राणातिपात मृषावाद, अदत्तादान, परदारगमन, सुरापान इत्यादि कार्योंका अनुष्ठान करते हैं, वे इसी लोकमें आत्मोन्नतिका मूल विनष्ट कर डालते हैं।

धम्मपदके बुद्धवग्गमें लिखा है,—

दुःख, दुःखकी उत्पत्ति, दुःखका ध्वंस और दुःखनिरोधोपायक अष्टविध आर्यमार्ग, यह चतुरार्य सत्य ही श्रेयस्कर और उत्तम शरण है। इन्हींको शरणसे सब प्रकारके दुःख जाते रहते हैं।

परमत्थजोतिकाग्रन्थमें लिखा है,—"एत्थ पन सोतापत्तिमग्ग सब्बसो दिट्ठि-विचिकिच्छा पहानेन पठोमापायगमनो उपच्छेदा, परमो सोतापन्नो नाम होति। सकदागामि मग्ग भावेत्वा रागदोसमोहानं तनुकत्ता सकदागामि नाम होति। सकिदेव इम लोक अनागन्त्वा इम स पचत्त भावेत्वा पञ्चपेसविधिपहानेन अरहा नाम होति खीणासवो।" (परमत्थजोतिका)

चतुरार्यसत्यके अनुसारसे व्यक्ति दृष्टि विचिकित्सा प्रहाण द्वारा स्रोत आपन्न, राग, द्वेष और मोहके अल्प द्वारा सकृदागामी केवल एक बार संसारमें प्रत्यागत अपूर्व अनागामी और अन्तमें सर्वक्लेशके प्रहाण द्वारा क्षीणास्रव हो कर अर्हत्पद लाभ करते हैं। जिन्होंने दशविध अकुशल कर्मपथका त्याग किया है तथा अष्टाविध आर्यमार्गके अनुसरण द्वारा चतुरार्यसत्यको अच्छी तरह पा लिया है, वे ही जीवनको पवित्रता द्वारा संसार स्रोतको पार गये हैं और स्रोत-आपन्न नामसे प्रसिद्ध हैं। उन्हें इस संसारमें सात बार लौटना पड़ेगा, किन्तु उनका निर्वाण निश्चित है। नरकका द्वार उनके लिये निरवद्ध है। जिन्होंने राग, द्वेष और मोहका त्याग कर दिया

है, वे सकृदागामी कहलाते हैं। उन्हें इस संसारमें केवल एक बार आना पड़ता है, पीछे निर्वाणलाभ होता है। अनागामियोंको इस संसारमें एक बार भी लौटना नहीं पड़ता। वे अनेकों वर्ष शुद्धावास ब्रह्मलोकमें वास कर निर्वाणलाभ करते हैं। वाक्‌कर्मकाय शुद्ध षट्‌पारमिताप्राप्त अर्हत्‌गण देहत्याग मात्रसे ही निर्वाण लाभ करते हैं। अर्हत्त्व ही चरम और पूर्णपवित्रताकी अवस्था है। इस अवस्थामें धर्माधर्म, रागद्वेष इत्यादि निर्मूल हो जाते हैं। अर्हत्‌को पुनः इस संसारमें जन्मग्रहण नहीं करना पड़ता। उनकी देह मात्र अवशिष्ट रहती है, किन्तु उस देहमें पापादि प्रवेश नहीं कर सकते। उनका अस्तित्ववीज पहले ही शुष्क हो गया है और जीवन प्रदीप पहले ही बुझ चुका है, उनकी केवल देह रह गई है। कुछ समय बाद मृत्यु पहुंच कर उनकी देहको ध्वंस कर डालती है। वे निर्वाण लाभ कर अस्तित्व और नास्तित्वसे अतीत हो जाते हैं। अर्हत्त्व (बुद्धत्व) और निर्वाणमें अन्तर यह है, कि अर्हत्‌की अपनी सत्ता रहती है, किन्तु निर्वाणलाभ हो जाने पर सत्ताका नाश हो जाता है। निर्वाण और अर्हत्त्व (बुद्धत्व) इनमेंसे किसी अवस्थामें भी राग, द्वेष और मोह नहीं रहता। अर्हत्त्व (बुद्धत्व)को सोपाधिशेष निर्वाण और निर्वाणको अनुपधिशेष निर्वाण कह सकते हैं।

रामचन्द्रने भारती भक्तिशतक ग्रन्थमें लिखा है—

"सर्वे प्राणातिपातात् परधनहरणात् अब्रह्मादङ्गनाया
मिथ्यावादाच्च मद्यात् भवति जगति योऽकालभुक्तेर्निवृत्त·
सङ्गीतस्रक्‌सुगन्धाभरणविलसितादुच्चशय्यासनाद्
व्यासीद्धीमान् स एव त्रिदशनरगुरो त्वत्सुतो नात्र शंका॥
स्रोतापत्त्यादिमार्गान् सदवयवयुतान् घ्नन्ति रागादिदोषान्।
दोषास्ते छिन्नमूला हतभवगतयस्तत्फलैर्यान्तिशान्तिम्॥"
(भक्तिशतक)

पाश्चात्य पण्डितोंकी निर्वाणविषयक समालोचना।

किसी किसी ग्रन्थमें लिखा है,—निर्वाण "शान्ति और सुखका आलय है" और अन्यान्य ग्रन्थोंमें शून्यताके लयको निर्वाण बतलाया है। इस प्रकार परस्पर विरोधी मत देख कर १८६८ ई०में अध्यापक मेक्षमूलरने इन सब मतोंके परस्पर सामञ्जस्यके स्थापनकी चेष्टा की। उनका कहना है, कि सूत्रादि ग्रन्थोंमें बुद्धकी निज उक्ति है और उन सब ग्रन्थोंके मतमें आत्माके चिरशान्तिमें प्रवेशका नाम निर्वाण है। परवर्ती बौद्ध दार्शनिकों-ने कूटतर्कावलम्बन करके अभिधर्मादि ग्रन्थमें निर्वाणका जो लक्षण बतलाया है तदनुसार शून्यताके लयका नाम निर्वाण है।

१८७० ई०में अध्यापक चाइल्डर्सने निर्वाणविषयक परस्पर विरोधीमतसमूहकी एकवाक्यता प्रतिपन्न करते हुए कहा है, कि अर्हत्त्व (बुद्धत्व) और निर्वाण ये दोनों ही शब्द बौद्धदार्शनिकोंने निर्वाण अर्थमें व्यवहार किये हैं। अर्हत्त्व और निर्वाण प्रायः एकार्थवाचक होने पर भी उनमें कुछ प्रभेद है। अर्हत्त्व शान्ति और सुखका निदान है, किन्तु सत्ताका ध्वंस ही निर्वाण है। जहां पर बौद्धाचार्योंने निर्वाणको शान्तिका निकेतन बतलाया है, वहां पर निर्वाण शब्दसे अर्हत्त्व (बुद्धत्व)-का बोध होता है।

१८७१ ई०में जेम्स-डी·अलविस महोदयने निर्वाण·विषयक नाना गवेषणापूर्ण प्रबन्धमें अर्हत्त्व और निर्वाण·का परस्पर भेद बतलाते हुए बौद्धग्रन्थके परस्पर विरुद्ध वाक्यसमूहके सामञ्जस्यकी रक्षा की है। बौद्धग्रन्थोंमें उपधिशेष निर्वाण (अर्हत्त्व) और अनुपधिशेष निर्वाण दोनोंका वर्णन है।

महामति बार्नूफने निर्वाण, परिनिर्वाण और महा·परिनिर्वाण इन सब शब्दोंका अवलोकन कर उनके अर्थोंमें अभेद बतलाया है। किन्तु यथार्थमें वे सभी समार्थक हैं।

किसी किसी पाश्चात्य पण्डितने निर्वाण और सुखा·वतीको एक बतलाया है। फिर किसी किसीने कामावचर देवलोक और निर्वाण दोनोंको एक ही पदार्थ माना है। वस्तुतः निर्वाणका प्रकृत अर्थ नहीं मालूम होनेसे ही इस प्रकार अपसिद्धान्तकी कल्पना की गई है।

डाक्टर रीज डेभिड्‌सके मतानुसार चित्तकी पापशून्य स्थिर अवस्था ही निर्वाण है। पूर्णशान्ति, पूर्णज्ञान और पूर्णविशुद्धि ये सब अवस्थाके फल हैं।

सुप्रसिद्ध डाक्टर ओल्डेनबर्गने लिखा है, कि

'निर्वाण साक्षात्कार और अर्हत्त्वलाभ दोनों एक ही बात है। महायान सम्प्रदायके मतसे स्वर्ग और निर्वाण दो पद बोधिसत्त्वोंके अवलम्बनीय हैं। पुण्यबलके अनुष्ठान द्वारा सुखावतीमें पूर्ण सुखभोग किया जाता है और सम्यक् ज्ञानके अधिगममें संसारका उच्छेद और निर्वाण लाभ होता है। सत्ताका सम्यक् ध्वंस और संसारका सम्पूर्ण उच्छेद निर्वाणके विषयीभूत हैं।

हेमरेने अवदानमें लिखा है, कि निर्वाण शब्दका अर्थ सत्ताका ध्वंस है या नहीं, इस विषयमें बौद्धोंमें मतभेद है। जो कुछ हो, भविष्यत् जन्म, दुःख और कर्मका सम्पूर्ण उच्छेद ही निर्वाण है। उनका कहना है, कि श्यामवासियोंके मतसे निर्वाण सुखका एक स्थान है जहां उद्वेगादि कुछ भी नहीं है और जो अत्यन्त मनोरम तथा पवित्र है। बुद्धदेवने संसारके आदि और अन्तका निरूपण नहीं किया। बुद्धके मतानुसार यदि दृश्यमान जड़जगत् दुःखमय है तो उससे सम्पूर्ण विमुक्तिलाभ करना नितान्त प्रार्थनीय है। इस दुःखमय जगत्‌का उच्छेद ही निर्वाण है।

रेमरेण्ड बिलने चीन देशीय बौद्धमतकी समालोचना करते हुए लिखा है कि नागार्जुनकी महामूल शास्त्रटीकाके मतसे जो अनाद्य अविकल और शाश्वत जगत्‌के अतीत है और जिसके उत्पाद तथा निरोध नहीं है, उसीको निर्वाण कहते हैं। उनका सिद्धान्त यह है कि जो तीनों कालमें अविकृत रहता है और जो इन्द्रियोंसे परिच्छिन्न नहीं है इस प्रकारकी प्रत्यक्षातिरिक्त अवस्था ही निर्वाण है। उनके मत बुद्ध और समस्त प्राणीका सारमर्म यह कि उपाधिसे अतिरिक्त अवस्था ही निर्वाण है।

रेमरेण्ड ग्रन्थमें तिब्बतीय बौद्धमतकी आलोचना करते हुए कहा है, कि दुःखका ध्वंस ही निर्वाण है। क्योंकि चतुरार्यसत्यका तत्त्वानुसन्धान करनेसे देखा जाता है कि सत्तामात्र ही दुःख है, अतएव निर्वाण शब्दका अर्थ सत्ताका ध्वंस है।

महामति ओल्डनबर्ग, रिज डेविड्स, मोनियर विलियम्स डाक्टर अलबरन आदि विद्वानोंने निर्वाणके विषयमें बहुत खोज की है।

तिब्बतीय भाषामें निर्वाण शब्दका अर्थ दुःखका चरम ध्वंस है।

चीनभाषामें निर्वाणवाचक 'मातु' शब्दका प्रयोग है। इस मातुशब्दसे सत्ताका ध्वंस और निर्वाण दोनोंका ही बोध होता है। उनलोगोंका तात्पर्य यह है, कि पुनर्जन्मरहित मृत्यु ही निर्वाण है।

निर्वाणका प्रादुर्भावकाल

भारतवर्षमें बुद्ध निर्वाणतत्त्वका आविष्कार कब हुआ है इसका निर्णय करना बहुत कठिन नहीं है। भगवान् बुद्ध ही इस तत्त्वके प्रथम प्रवर्त्तक हैं, इसमें सन्देह नहीं। संसार मिथ्या है यह शिक्षा है इस मतका उन्होंने ही सबसे पहले जनतामें प्रचार किया और अपने जीवनमें उसका अद्भुत दृष्टान्त दिखला दिया। ढाई हजार वर्ष पहले बुद्धदेवने बोधिद्रुमका आश्रय ली, अतएव निर्वाणतत्त्वका वयःक्रम कमसे कम ढाई हजार वर्ष है।

बौद्धोंका कहना है, कि मूल प्रज्ञापारमिता महाकाश्यपकी बनाई हुई है। महाकाश्यप बुद्धके शिष्य थे। प्रज्ञापारमिता ग्रन्थमें निर्वाणतत्त्व और अविद्याकी सुन्दर तथा विशद व्याख्या मिलती है।

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता द्वितीय बोधिसत्त्वके समयमें रची गई। ई०सन्‌से १०० वर्ष पहले द्वितीय बोधिसत्त्वकी प्रतिष्ठा हुई। इस अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितामें निर्वाणतत्त्वका जैसा विशद विवरण लिखा है, उससे सहजमें अनुमान किया जाता है कि उस समय निर्वाणमत जनसाधारणमें बहुत दूर तक विस्तृत था।

बुद्धचरितकाव्यके रचयिता अश्वघोष ई०सन्‌की १म या २य शताब्दीसे पहले विद्यमान थे। चीनपरिव्राजक युएन चुवङ्गने ६७१ ई०में भारतवर्षसे लौटते समय अश्वघोषको प्राचीन कवि बतलाया है। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि अश्वघोष कनिष्कके धर्मोपदेष्टा थे। उनका बुद्धचरितकाव्य ५वीं शताब्दीमें भारतमें चीनभाषामें और ७वीं या ८वीं शताब्दीमें तिब्बतीय भाषामें अनुवादित हुआ। इस बुद्धचरितकाव्यमें निर्वाण और अविद्याकी जैसी सुन्दर व्याख्या देखी जाती है उससे जान पड़ता है, कि अश्वघोषके समयमें भी निर्वाणतत्त्व लेकर विशेष समालोचना चलती थी।

सुप्रसिद्ध ललितविस्तर ग्रन्थ ईसाजन्मसे बहुत पहलेका लिखा हुआ है। यह पहली शताब्दीको चीन

निर्वाह (सं० पु०) निर्-वह घञ्। १ कार्यसम्पादन। २ किसी काम या परम्पराका चला चलना, किसी बातका जारी रहना, निबाह। ३ किसी बातके अनुसार बराबर आचरण, पालन। ४ समाप्ति, पूरा होना।

निर्वाहक (सं० त्रि०) निर्-वह-णिच्-ण्वुल्। निष्पादक, किसी कामका निर्वाह करनेवाला।

निर्वहण (सं० क्ली०) निर्-वह-स्वार्थे णिच् ल्युट्। निर्वाहण, नाटकोंमें प्रस्तुत कथाकी समाप्ति।

निर्वाहिन् (सं० त्रि०) निर्वाह अस्त्यर्थे-इनि। धारणशील।

निर्वाहित (सं० त्रि०) निर्-वह-णिच्-क्त। सम्पादित, निष्पादित।

निर्विकल्पक (सं० त्रि०) निर्गतो विकल्पो ज्ञातृज्ञेयत्वादि विभागो विशेष्यविशेषणतासम्बन्धो वा यस्मात्, ततो कप्। १ वेदान्तोक्त ज्ञातृज्ञेयत्वादि विभागशून्य समाधिभेद, वेदान्तके अनुसार वह अवस्था जिसमें ज्ञाता और ज्ञेयमें भेद नहीं रह जाता, दोनों एक हो जाते हैं। २ न्यायके मतसे अलौकिक आलोचनात्मक ज्ञानभेद, न्यायके अनुसार वह अलौकिक आलोचनात्मक ज्ञान जो इन्द्रियजन्य ज्ञानसे बिलकुल शून्य होता है। बौद्ध शास्त्रोंके अनुसार केवल ऐसा ही ज्ञान प्रमाण माना जाता है।

निर्विकल्पसमाधि (सं० पु०) निर्विकल्पः समाधिः। समाधिभेद, एक प्रकारकी समाधि जिसमें ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता आदिका कोई भेद नहीं रह जाता और ज्ञानात्मक सच्चिदानन्द ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता।

वेदान्तसारमें इसका विषय यों लिखा है—समाधि दो प्रकारकी है, सविकल्प और निर्विकल्प। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इन तीनोंका ज्ञान रहने पर भी अद्वितीय-ब्रह्म वस्तुमें अखण्डाकारसे आकारित चित्तवृत्तिके अवस्थानका नाम सविकल्पसमाधि है। इस सविकल्प अवस्थामें जिस प्रकार मृण्मय हस्तिसे हस्तिका ज्ञान रहते भी मट्टीका ज्ञान होता है, उसी प्रकार द्वैतज्ञान रहते भी अद्वैत ज्ञान होता है। जब ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय ये तीन विकल्प ज्ञानके अभावमें हों, अद्वितीय ब्रह्म वस्तुमें एक हो कर रहें, अखण्डाकारमें आकारित चित्तवृत्तिका अवस्थान हो, तब ऐसी अवस्था होनेसे निर्विकल्पसमाधि होती है। इस समय ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता ये सब एक हो जाते हैं, ज्ञानात्मक सच्चिदानन्द ब्रह्मके सिवा और कुछ भी नहीं रहता। जिस प्रकार जलमें लवणखण्ड मिलानेसे जलाकारमें आकारित लवणके लवणत्वज्ञानके अभावमें केवल जलका ज्ञान होता है, उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्माकारमें आकारित चित्तवृत्तिका ज्ञान रहते हुए भी अद्वितीय ब्रह्मवस्तुमात्रका ही ज्ञान होता है।

इस समाधिकी तुलना योगकी सुषुप्ति अवस्थाके साथ की जाती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और सविकल्पसमाधि ये सब इसके अङ्ग हैं।

निर्विकार (सं० पु०) प्रकृतेरन्यथा भावः विकारः निर्गतो यस्मात्। १ विकाररहित, वह जिसमें किसी प्रकारका विकार या परिवर्त्तन न हो, परमात्मा। (त्रि०) २ विकारशून्य, जिसमें कोई विकार या परिवर्त्तन न हो।

निर्विकारवत् (सं० त्रि०) निर्विकारः विद्यतेऽस्य, मतुप्, मस्य व। अपरिवर्त्तनीय, जो परिवर्त्तनके योग्य न हो, सदा एक-सा रहनेवाला।

निर्विकाश (सं० त्रि०) अस्फुट, विकाशरहित।

निर्विघ्न (सं० त्रि०) १ विघ्नरहित, जिसमें कोई विघ्न न हो। (क्रि० वि०) २ विघ्नका अभाव, बिना किसी प्रकारके विघ्न या बाधाके।

निर्विचार (सं० त्रि०) निर्गतो विचारो यत्र। १ विचाररहित। (पु०) २ पातञ्जलदर्शनोक्त सूक्ष्मविषयक समापत्तिरूप समाधिभेद।

सवितर्क और निर्वितर्क समाधि द्वारा सूक्ष्मविषयक सविचार और निर्विचार समाधिका निर्णय होता है।

सविचार और निर्विचार समाधिका विषय सूक्ष्म और उसकी सीमा प्रकृति है। इन्द्रिय तन्मात्र और अहङ्कार इनकी मूल प्रकृति है। ये सब क्रमपरम्पराके अनुसार प्रकृतिमें जा कर परिसमाप्त हो जाते हैं।

निर्मल चित्त जब किसी एक अभिमत वस्तुमें तन्मय हो जाता है, तब उसे सम्प्रज्ञातयोग कहते हैं। यह

सम्प्रज्ञातयोग सविकल्प, समाधि आदि नामोंसे पुकारा जाता है। इस समाधिके चार प्रकारके भेद कल्पित हुए हैं, सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार। स्थूल आलम्बनमें तन्मय होनेसे वह सवितर्क और निर्वितर्क तथा सूक्ष्मके आलम्बनमें तन्मय होनेसे सविचार और निर्विचार कहलाता है। चित्त जब स्थूलमें तन्मय रहता है, तब यदि उसके साथ विकल्पज्ञान रहे, तो उस तन्मयताको सवितर्क और यदि विकल्पका ज्ञान न रहे, तो उसे निर्वितर्क कहते हैं।

चित्त चाहे जिस किसी पदार्थमें अभिनिविष्ट हो, पहले नाम पीछे सङ्केत-स्मृति और उसके पीछे वस्तुके स्वरूपमें पर्यवसित होता है। जैसे घट शब्द कहनेसे पहले घ-अ+ट अ इन चार वर्णोंका बोध होता है, पीछे कम्बुग्रीवादिके जैसा वस्तुविशेषके साथ उसका जो सङ्केत है उसका स्मरण होता है और सबसे पीछे घटाकारकी चित्तवृत्ति निष्पन्न होती है या नहीं? यदि होती है, तो यह ठीक जाना गया कि प्रत्येक तन्मयतामें उक्त आनुपूर्विक ज्ञानत्रयका सञ्चार है। फिर ऐसा भी होता है, कि घट देखनेके साथ अथवा घट शब्दके सुननेके समय कम्बुग्रीवादिमद्वस्तु और उसके साथ घटशब्दका सङ्केतज्ञान तथा घ-अ+ट-अ इन चारों वर्णोंका ज्ञान अथवा घटाकार नामका ज्ञान अति शीघ्र उत्पन्न हो कर क्रमशःउत्पन्न ज्ञान लुप्त हो जाता है। केवल घटाकार ज्ञान या घटाकार मनोवृत्ति विद्यमान रहती है। अतएव जहां स्थूल आलम्बनका नामज्ञान और सङ्केतज्ञान रहता है वहां सवितर्क और जहां सङ्केतज्ञान या नामज्ञान नहीं रहता, केवल अर्थमात्र ज्ञान रहता है वहां निर्वितर्क होता है। मान लो, चित्त यदि सूक्ष्ममें तन्मय हो और उसके साथ यदि नामज्ञान और सङ्केतज्ञान रहे, तो सवितर्क कहलाता और यदि नामज्ञान तथा सङ्केतज्ञान न रहे, केवल तत्त्व कलेवरमूर्ति स्फुरित हो, तो उस अवस्थाको निर्वितर्क कहते हैं। सविचार और निर्विचार भी इसका नामान्तर है। इसका आलम्बनीय विषय सूक्ष्म वस्तु है। सूक्ष्म वस्तुके मध्य पहले पञ्चभूत, तदपेक्षा सूक्ष्म तन्मात्र और इन्द्रिय है। इन्द्रियसे भी सूक्ष्म अहं तत्त्व है, पीछे महत्तत्त्व और प्रकृति। यही योगकी चरम सीमा है। परमात्मयोग इससे भी सूक्ष्म और स्वतन्त्र है। जिन सब समाधियोंका विषय कहा गया वे सबीजसमाधि हैं। सबीजसमाधिके मध्य सवितर्क-समाधि ही निकृष्ट और निर्विचार समाधि सबसे श्रेष्ठ है। इस निर्विचार योगका अच्छी तरह अभ्यास हो जानेसे ही चित्तका अकल्मितिप्रवाह दृढ़ हो जाता है। उस समय कोई दोष या किसी प्रकारका क्लेश अथवा कोई मालिन्य नहीं रहता। सर्वप्रकाशक चित्तसत्त्व नितान्त निर्मल होता है और आत्मा भी उस समय विशुद्ध होती है। निर्विचारयोगके सम्यक् आयत्त होने पर निर्मल प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इस निर्विचारप्रज्ञाके साथ अन्य किसी प्रज्ञाकी तुलना नहीं होती। इन्द्रियजनित प्रज्ञा या अनुमानजात अथवा शास्त्रज्ञानजनित प्रज्ञा कोई भी निर्विचारप्रज्ञाके सम-कक्ष नहीं है। क्योंकि उल्लिखित प्रज्ञाएँ वस्तुका एक-देश या सामान्याकारमात्र ग्रहण करती हैं विशेष तत्त्व ज्ञान नहीं सकतीं। किन्तु निर्विचार नामक योगज प्रज्ञा क्या सूक्ष्म क्या विप्रकृष्ट क्या व्यवहित सभी प्रकाश करती है। इसका कारण यह है कि बुद्धि पदार्थ महान् सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक है। उसको सर्वदा ही रज और तमोगुणने आवृत्त रखती है। इस समस्तरूप रज और तमके अपनीत होनेसे बुद्धिकी सर्वप्रकाशकत्व शक्ति आपसे आप प्रादुर्भूत होती है। यही कारण है, कि निर्विचारप्रज्ञाके साथ किसी प्रज्ञाकी तुलना नहीं होती। (पातञ्ज०१।४०) विशेष विवरण समाधि शब्दमें देखो।

निर्विविक्त (स० त्रि०) नितान्त विविक्तिका अभाव। निःसन्देह।

निर्विवेक (स० त्रि०) अज्ञान जड़, मूर्ख, बेवकूफ।

निर्वितर्क (स० त्रि०) निर्गतो वितर्को यस्मात्। १ वितर्कशून्य। (पु०) २ पातञ्जलदर्शनोक्त समाधि भेद। निर्विचार देखो।

निर्वितर्कसमाधि (स० स्त्री०) योगदर्शनके अनुसार एक प्रकारकी सबीज समाधि जो किसी स्थूल आलम्बनमें तन्मय होनेसे प्राप्त होती है और जिसमें उस आलम्बनके नाम और सङ्केत आदिका कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल उसके आकार आदिका ही ज्ञान होता है।

निर्विद्य (सं० त्रि०) निर्नविद्यते विद्या यस्य। १ विद्याहीन, मूर्ख, जो पढा लिखा न हो।

निर्विधित्स (सं० त्रि०) १ कार्य करनेमें अनिच्छुक। २ आसक्तिविहीन।

निर्विन्ध्य (सं० त्रि०) निर्गतः विन्ध्यात्। १ विन्ध्यपर्वत निःसृत, जो विन्ध्यपर्वतसे निकली हो। स्त्रियां टाप, २ विन्ध्यपर्वतसे निकली हुई एक नदीका नाम।

निर्विभेद (सं० त्रि०) अभिन्न, भेदरहित।

निर्विमर्श (सं० त्रि०) चिन्ताहीन, विमर्शशून्य।

निर्विरोध (सं० त्रि०) विरोधहीन, अविवादी, निरीह, शान्त।

निर्विरोधिन् (सं० त्रि०) निर्विरोध अस्त्यर्थे इनि। निरीह, शान्त, निर्विवादी।

निर्विवर (सं० त्रि०) १ छिद्रशून्य, बिना छेदका। २ अविराम, नियत।

निर्विवाद (सं० त्रि०) कलहशून्य, जिसमें कोई विवाद न हो, बिना झगड़ेका।

निर्विवित्सु (सं० त्रि०) जो जानना नहीं चाहता हो।

निर्विवेक (सं० त्रि०) विवेचनारहित, अविवेकी, जो किसी बातकी विवेचना न कर सकता हो।

निर्विवेकता (हिं० स्त्री०) निर्विवेक होनेका भाव।

निर्विशङ्क (सं० त्रि०) शङ्कारहित, निर्भय, निडर।

निर्विशङ्कित (सं० त्रि०) शङ्काहीन, भयरहित।

निर्विशेष (सं० क्लो०) निर्गता विशेषो यस्य। १ सर्व-देशकाल विशेषरहित परब्रह्म। (त्रि०) २ विशेषरहित, तुल्यरूप।

निर्विशेषण (सं० क्लो०) पार्थक्यहीनता, अभेदत्व।

निर्विशेषत्व (सं० क्लो०) १ विशेषणरहित, परब्रह्म। (त्रि०) २ विशेषणरहित।

निर्विशेषवत् (सं० त्रि०) निर्विशेष तुल्य।

निर्विष (सं० त्रि०) निर्गतं विषं यस्मात्। १ विषरहित, जिसमें विष न हो। (पु०) २ जलसर्प, पानीका साँप।

निर्विषङ्ग (सं० त्रि०) आसक्तिरहित।

निर्विषय (सं० त्रि०) अगोचर, जो इन्द्रियग्राह्य नहीं है।

निर्विषा (सं० स्त्री०) निर्विष-टाप्। तृणभेद, एक प्रकारकी घास। पर्याय—अपविषा, निर्विषी, विषहा, विषापहा, विषहन्त्री, विषाभावा, अविषा, विषयं रि । गुण—कटु, शीतल, कफ, वात और असृद्दोषनाशक। निर्विषी देखो।

निर्विषी (सं० स्त्री०) अमवर्गकी जातिकी एक घास जो पश्चिमोत्तर हिमालय, काश्मीर और मलयगिरिमें अधिकतासे होती है। इसकी जड़ अतीसके समान होती है जिसका व्यवहार साँप-बिच्छू आदिके विषोंके अतिरिक्त शरीरके और भी अनेक प्रकारके विषोंका नाश करनेके लिए होता है।

डाक्टर एफ. हैमिल्टनका कहना है, कि नेपालमें जो एकोनाइट मिलती है वह चार जातियोंमें विभक्त है,—१ सिंगिया विष, २ विष, ३ विषम और ४ निर्विषी।

वे कहते हैं, कि निर्विषीमें विष जातीय कोई वस्तु नहीं है। यह निर्विषी एकोनाइटविशेषकी जड़ है। मिष्टर कोलब्रूकका कहना है, कि यह निर्विषी विष-नाशक है और इससे शरीरका विष निकल कर लेहू साफ होता है। डाक्टर डायमक (Dr. Dymock)-के मतसे हिन्दू चिकित्सकगण एकोनाइटको निर्विषी नहीं कहते, बल्कि उसे लता मानते हैं जो विषनाशक है। हिन्दुओंका निर्विष शब्द निर्विषीसे भिन्न है। विषसे, जितने विष हैं सबका बोध होता है।

इससे साबित होता है, कि पुराकालमें निर्विषी नामक कोई निर्दिष्ट वृक्ष नहीं था। पर हाँ, जब एको-नाइट विषनाशक है और लतापत्ता-जात औषध प्रस्तुत हुई है, तब वही औषध निर्विषी कहलाती थी। आसामसे जो Costus root पाई गई थी, उसीको वहाँके अधिवासी निर्विषी कहते थे। हिमालयके मेष-पालकगण एक प्रकारकी एकोनाइट खाते हैं, उसमें कुछ भी विष नहीं है, वरन् वह बलकारक है। कोलब्रूकका कहना है, कि निर्विषी और जड़वार ये दोनों एक ही हैं। एनस्ली (Ainslie)-के मतसे हैमिल्टनवर्णित Nirbishie शब्द Nirbisi-से पृथक् है। उनका कहना है, कि Nirbisi शब्दका लेटिन नाम Curcuma Zedoaria है, किन्तु आधुनिक उद्भिद् विद्या-विद् इसे Delphinium denudatum बतलाते हैं। हिमालयके किसी

किसी स्थानके लोग ग्रैवेयक चौपायेके दूधको भी निर्विषी कहते हैं। Cynantus Lobatus नामक नेपालीय प्रजात निर्विषीके वृक्षके मूलको सिरमें पीस कर उसे वातके ऊपर लगानेसे वातरोग आरोग्य हो जाता है। मोड़ राज्यमें जो निर्विषी है उसके मूलका वे लोग रक्तवमनके समय व्यवहार करते हैं। हिमालय पर्वतका Delphinium denudatum पश्चिमभागमें उत्पन्न होता है। शिमलासे ले कर कुमायूं और हूण तक यह मूलोन नामसे प्रसिद्ध है। कहीं कहीं इसीको निर्विषी कहते हैं।

मीर मुहम्मद होसेनने ११८५ ई०में जद्वारका वर्णन किया है। इनमेंसे पहला वृक्ष सबसे उपकारी है। इसका आस्वाद पहले मीठा और पीछे तीता होता है। यह बाहरसे तो देखनेमें काला, पर भीतरसे बैंगनी रंगका भदता है। तिब्बत, नेपाल और कश्मीरमें द्वितीय और तृतीय प्रकारका वृक्ष पाया जाता है। चतुर्थ प्रकारका वृक्ष कुछ काला होता है और स्वादमें बहुत तीता। कहते हैं, कि दक्षिण प्रदेशमें पार्वत्यप्रदेशमें यह वृक्ष बहुत उत्पन्न होता है। सुतरां यह Delphinium or Aconitum जातिका नहीं है। पञ्चम प्रकारके वृक्षका नाम Antila है जो दक्षिण देशमें पैदा होता है। डाक्टर सुरेन शरीफका कहना है कि दक्षिण भारतके बाजारमें तीन प्रकारका जदवार मिलता है जो विभिन्न पदार्थ मिश्रित है और एकोनाइट जातिका है। इस प्रकार नाना स्थानोंमें नाना प्रकारकी निर्विषी देखनेमें आती है।

निर्विष्ट (स० त्रि०) निर्-विश-क्त। १ कृतभोग, जो भोग कर चुका हो। २ प्राप्तवेतन, जो अपनी तनखाह पा चुका हो। ३ कृतविवाह, जो विवाह कर चुका हो। ४ कृताग्निहोत्र, जो अग्निहोत्र कर चुका हो। ५ सेवित जो सेवा कर्मसे सेवित हो। ६ मुक्त, जो छोड़ दिया गया हो।

निर्वीज (स० पु०) निर्नास्ति बीजमस्य। १ बीजशून्य जिसमें बीज न हो। २ कारणरहित जो बिना कारणका हो। (पु०) ३ पातञ्जलोक्त समाधिविशेष, पातञ्जलके अनुसार एक समाधि।

सम्प्रज्ञात वृत्ति जब बन्द हो जाती है, तब असंनिरोध नामक समाधि होती है। तात्पर्य यह कि योगी लोग बहुत पहलेसे निरोध-अभ्यास करते आ रहे थे, अभी उसी अभ्यासके बलसे उनके चित्तका वह अवलम्बन भी निरस्त या विलीन हो गया। चित्त जिस बीजका अवलम्बन कर वर्तमान था, अभी वह भी नष्ट हो गया। इसी अवस्थाको निर्वीजसमाधि कहते हैं। जब निर्वीजसमाधि परिपक्व होगी, चित्त उसी समय अपनी चित्तभूमि प्रकृतिका आश्रय लेगा। प्रकृति भी स्वतन्त्र हो जायगी, सच्चिदानन्दमय परमात्मा भी प्रकृतिके बन्धनसे मुक्त हो जायेंगे। इस अवस्थामें मनुष्यको सुख, दुःख आदिका कुछ भी अनुभव नहीं होता और उसका मोक्ष हो जाता है।

निर्वीजा (स० स्त्री०) निर्वीज-टाप्। काबुलीद्राक्षा, किशमिश नामका मेवा।

निर्वीर (स० त्रि०) निर्गतो वीरो यस्मात्। वीरशून्य, मनुष्यहीन।

निर्वीरा (स० स्त्री०) निर्गतो वीरः पतिपुत्रो वा यस्याः। पतिपुत्रविहीन, वह स्त्री जिसके पति और पुत्र न हो।

निर्वीर्य (स० त्रि०) निर्गतं वीर्यं यस्मात्। वीर्यशून्य, जहां बल न हो।

निर्वीर्य (स० त्रि०) तेजहीन, बल या तेजरहित।

निर्वृक्ष (स० त्रि०) वृक्षशून्य, बिना पेड़का।

निर्वृत (स० त्रि०) निर्-वृ-क्त। सुस्थ, मग्न, सुखी।

निर्वृति (स० स्त्री०) निर्-वृ-क्तिन्। १ सुस्थिति, सुख सत्ता, आनन्द। २ मोक्ष। ३ अस्त। ४ शान्ति। (पु०) ५ विदूरथके पौत्र वृष्णिके पुत्र।

निर्वृत्त (स० त्रि०) निर्-वृत-क्त। निष्पन्न, जो पूरा हो गया हो।

निर्वृत्तशत्रु (स० पु०) द्वापरयुगके यदुवंशीय एक राजा।

निर्वृत्तात्मन् (स० पु०) विष्णु।

निर्वृत्ति (स० स्त्री०) निर्-वृत-क्तिन्। १ निष्पत्ति (त्रि०) निर्गता वृत्तिर्जीविका यस्य। २ जीविकारहित, जीविकाहीन।

निर्वेग (स० त्रि०) १ वेगरहित, बिना वेगका। २ धनरहित, बिना पैसेका।

निर्वेग (सं० त्रि०) गतिहीन, स्थिर।

निर्वेतन (सं० त्रि०) वेतनहीन, जो तनखाह नहीं लेता हो।

निर्वेद (सं० पु०) निर्-विद भावे-घञ्। १ स्वावमानना, अपमान। २ शान्तरसका स्थायिभाव। ३ परम वैराग्य। ४ वैराग्य। ५ खेद, दुःख। ६ अनुताप। (त्रि०) निर्गतो वेदो यस्मात्। ७ वेदरहित।

निर्वेदवत् (सं० त्रि०) निर्वेद-मतुप् मस्य वः। वेदद्वेषी।

निर्वेधिम (सं० पु०) सुश्रुतोक्त कर्णवेधन आकारभेद, सुश्रुतके अनुसार कान छेदनेका एक औजार।

निर्वेपन (सं० त्रि०) कम्पनहीन।

निर्वेश (सं० पु०) निर्-विश् घञ्। १ भोग। २ वेतन, तनखाह। ३ मूर्च्छन, मूर्च्छा। ४ विवाह, व्याह, शादी।

निर्वेशनीय (सं० त्रि०) भोग्य, लभ्य भोग करने योग्य, पाने लायक।

निर्वेष्टन (सं० क्लो०) नितरां वेष्टनमत्र। १ नाडोचोर, सूत्रवेष्टननलिका, जुलाहोंका एक औजार, ढरकी। (त्रि०) निर्गतं वेष्टं यस्मात्। २ वेष्टनरहित।

निर्वेष्टव्य (सं० त्रि०) १ प्रवेशनीय। २ परिशोभित। ३ पुरस्कार योग्य।

निर्वेष्टुकाम (सं० पु०) निर्वेष्टुं कामः यस्य, तुमोऽन्त-लोपः। विवोढुकाम, वह जो विवाह करना चाहता हो।

निर्वैर (सं० त्रि०) शत्रुभाववर्जित, मित्र।

निर्वैरिण (सं० क्लो०) शत्रुताहीन, द्वेषसे रहित।

निर्वोढृ (सं० त्रि०) वहनकारी, विभाग करनेवाला।

निर्वोध (सं० त्रि०) ज्ञानहीन, मूर्ख।

निर्व्यञ्जन (सं० त्रि०) व्यञ्जनहीन।

निर्व्यथ (सं० त्रि०) व्यथाहीन।

निर्व्यथन (सं० क्लो०) निर्-व्यथ भावे ल्युट्। १ छिद्र, छेद। २ नितरां व्यथन, निश्चयरूपसे पीड़न। (त्रि०) ३ व्यथाशून्य, जिसे तकलीफ न हो।

निर्व्यपेक्ष (सं० त्रि०) निरपेक्ष, वेपरवा।

निर्व्यलीक (सं० त्रि०) अकपट, सत्य, छलरहित।

निर्व्याकुल (सं० त्रि०) व्याकुलताशून्य, स्थिरचित्त।

निर्व्याघ्र (सं० त्रि०) व्याघ्रपरिशून्य, जहां बाघका डर न हो।

निर्व्याज (सं० त्रि०) १ अकपट, छलरहित। २ बाधाहीन।

निर्व्याधि (सं० त्रि०) व्याधिशून्य, रोगमुक्त, नीरोग, चंगा।

निर्व्यापार (सं० त्रि०) निर्गतो व्यापारो यस्मात्। व्यापारशून्य, बिना कामकाजका।

निर्व्यूढ (सं० त्रि०) निर् वि वह-क्त। १ निष्पन्न। २ समाप्त। ३ सुसम्पन्न। ४ स्थिर, अप्रतिद्वन्द्व।

निर्व्यूह (सं० पु०) निर्यूह पृषोदरादित्वात् साधुः। निर्यूह, नागदन्तिका, दीवारमें लगाई हुई वह लकड़ी आदि जिसके ऊपर कोई चीज रखी या बनाई जाय, खूंटी। (त्रि०) २ व्यूहरहित सैन्यादि।

निर्व्रण (सं० त्रि०) १ व्रणरहित, जिसे फोड़ा न हो। २ अक्षत, जिसे घाव न हो।

निर्व्रत (सं० त्रि०) व्रतयमहीन, व्रताचारशून्य।

निर्व्रस्क (सं० त्रि०) १ उन्मूलित, उखाड़ा हुआ। २ ध्वंसप्राप्त, नाश किया हुआ।

निर्ह्लयनी (सं० स्त्री०) सर्पत्वक्, सांपकी केंचुली। निर्ह्लयनी देखो।

निर्हरण (सं० क्लो०) निश्चयेन हरणं, निर्-हृ-ल्युट्। १ शवदाह, शवको जलानेके लिये ले जाना। २ दहन, जलाना। ३ नाशन, नाश करना।

निर्हरणीय (सं० त्रि०) निःसारणयोग्य, अलग करने योग्य, बाहर करने लायक।

निर्हर्त्तव्य (सं० त्रि०) अपसारितकरण योग्य, हटाने योग्य।

निर्हस्त (सं० त्रि०) १ हस्तशून्य, बिना हाथका। २ कर्मादिमें अपारग। ३ लोकबलहीन।

निर्ह्राद (सं० पु०) निर्-ह्रद घञ्। शब्दभेद।

निर्हार (सं० पु०) निर्-हृ-घञ्। १ मलमूत्रादित्याग। २ मृतदेहको दाहार्थ बहिर्नयन, शवको जलानेके लिए ले जाना। ३ यथेष्ट विनियोग। ४ उत्पाटन, जड़से उखाड़ना। ५ नाश, बरबादी। ६ खजाना, पूंजी।

निर्हारक (सं० त्रि०) निर्हरति बहिर्गमयति निर्-हृ-ण्वुल्। शवको जलानेके लिए घरसे बाहर ले जानेवाला।

निर्हारिन्ड (स० स्त्री०) निर्हारमयन, पाखाना।

निर्हारिन् (स० पु०) निर्हरति दूर गच्छति निर्-हृ णिनि। १ दूरगामिगन्ध, वह गन्ध जो बहुत दूर तक फैले। (त्रि०) २ निर्हरणकर्त्ता, शवको जलानेके लिये ले जानेवाला।

निर्हिम (स० अव्य०) हिमस्याभावः अव्ययीभाव। १ हिमाभाव। निर्गत हिम यस्मात्। (त्रि०) २ हिमशून्य।

निर्हृत (स० त्रि०) अपहृत, हटाया हुआ, निकाला हुआ।

निर्ह्रस्व (सं० त्रि०) मूलसे लाया हुआ।

निर्हृति (स० स्त्री०) अपमान, वह जो अपनी जगह से हटाया गया हो।

निर्हेतु (स० त्रि०) १ कारणहीन, जिसमें कोई हेतु या कारण न हो।

निर्ह्राद (स० पु०) नि-ह्राद-घञ्। शब्दभेद, पक्षी आदि का शब्द।

निह्रादिन् (स० पु०) शब्दयुक्त, ध्वनित।

निर्ज्ञान (स० पु०) निश्चयेन ज्ञान। नितान्त ज्ञान, सद्ज्ञान।

निर्हीक (स० त्रि०) निर्लज्ज, बेहया।

निल (स० पु०) एक राक्षसका नाम जो माली नामक राक्षसको वसुदा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ था और जो विभीषणका मन्त्री था।

निल—एक प्राचीन सेनाध्यक्ष। द्वितीय मल्लपुरमें इन्होंने अच्छा नाम कमाया था। पिपासीपुरके समयमें भी इन्होंने अपने बल, बुद्धि और साहसका अच्छा परिचय दिया था। निलाद्रिपुर देखो।

निलङ्ग—हैदराबाद राज्यके बीदर जिलेका एक तालुक। इसका भूपरिमाण ४१८ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ६८०००से है। इसमें ८८ ग्राम लगते हैं जिनमें २० जागीर हैं। यहांका राजस्व डेढ़ लाखसे कुछ ऊपर है।

निलन—१ तिब्बतका एक ग्राम। यह चुङ्गरा (Changra) जिलेको आख्या अथवा निलन् (Xilan) नदीके किनारे अवस्थित है। २ उत्तर भारतकी एक नदी। यह तिब्बत से निकल कर हिमालयको पार करती हुई भागीरथी अर्थात् गङ्गा नदीसे आ मिल गई है। अलकनन्दामें जो नदी दुगली नामसे बहती है, कोई कोई इसे भी निलन कहते हैं।

निलम्बूर—मन्द्राज प्रदेशके मलबार जिलेका कुरुम्बनाद तालुकान्तर्गत एक गांव। यह अक्षा० ११ १०´ उ० और देशा० ७६ १४´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ६००० है। यहां इमारती पेड़ तथा सागवान नामक एक प्रकारकी मजबूत लकड़ी पाई जाती है।

निलय (स० पु०) निलीयते अस्मिन्निति नि-ली-अच्। १ गृह, घर, मकान। २ निःशेषरूपसे लय, अदर्शन, नाश। ३ आश्रयस्थान।

निलयन (स० क्ली०) निलीयते अत्र नि-ली आधारे ल्युट्। १ गोह, पैठने या उतरनेका स्थान। २ स्नेहपन संश्रय।

निलवाल—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के गोहेलवार विभागका एक छोटा राज्य। यहांकी वार्षिक आय २४१०) रु० है जिसमेंसे वृटिश गवर्मेण्टको ३११) और जूनागढ़के नवाबको १६४) रु० करके देने होते हैं।

निलाम (हि० पु०) नीलाम देखो।

निलिम्प (स० पु०) लिम्पतीति नि लिप (गो विन्देति, पा ३।१।१३८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या श। देव, देवता।

निलिम्पनिर्झरी (स० स्त्री०) निलिम्पानां देवानां निर्झरी नदी। गङ्गा।

निलिम्पा (स० स्त्री०) नि-लिप-श, सुखादित्वात् नुम् स्त्रियां टाप्। १ गोपकी गाय। २ दोहनभाण्ड, दूध दुहनेका बरतन।

निलिम्पिका (स० स्त्री०) निलिम्पा एव स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। गोरसकी गाय।

निलीन (स० त्रि०) नितरां लीनः नि-ली-क्त। निःशेष रूपसे लीन, मग्न, अत्यन्त संलग्न।

निलीनक (स० त्रि०) निलीनस्य पक्षिदेशादि, इति आख्यादित्वात् क। निलीन पक्षिनिहाददेश प्रभृति।

निवच (स० पु०) यज्ञादिमें उच्चस्वर बोलनेका मन्त्रभेद, वह जोम या पद जो यज्ञ आदिमें उच्चस्वर किया जाय।

निवचन (स० क्ली०) निरुक्त वचन, वादितम्। निरुक्त वचन, निरुक्त वाक्य।

निवछार (हिं० स्त्री०) निछावर देखो।

निवड़िया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको नाव।

निवत् (सं० त्रि०) नि वेदे वति। १ निम्नगतादि, जो बहुत नीचेमें हो। (पु०) २ निम्नदेश, तराई।

निवता (सं० स्त्री०) १ निम्नगामी, वह जो नीचेको ओर जाता हो। २ पर्वतनिम्नादिकी ओर अवतरण, पहाड़ परसे नीचे उतरना।

निवदुङ्ग विठोवा—प्रसिद्ध मन्दिर जो पूना जिलेके नाना नामक विभागमें अवस्थित है। एक गोसाईं इसके प्रतिष्ठाता हैं। १८३० ई०में पुरुषोत्तम अम्बादाम नामक गुजरातके किसी धनीने ३०००) रु० खर्च करके इसका जीर्ण संस्कार किया। मन्दिरमें जो देवमूर्त्ति स्थापित है, वह निवदुङ्ग जङ्गलमें पाई गई थी। इसी कारण उक्त विठोवा देव निवदुङ्ग नामसे प्रसिद्ध हैं। मन्दिर बहुत प्रशस्त और मनोरम है। इसके चारों ओर एक बहुत लम्बा चौड़ा उद्यान है जहां मनुष्योंके स्नानोपयोगी एक प्रकाण्ड चहबच्चा भी विद्यमान है। संन्यासी और भिक्षुकोंके रहनेके लिये पश्चिम ओर मन्दिरमें संलग्न एक विशाल आश्रम है।

निवपन (सं० क्लो०) नि-वप-भावे-ल्युट्। १ पित्रादिके उद्देशसे दान। २ वह जो कुछ पितरों आदिके उद्देशसे दान किया जाय।

निवर (सं० क्लो०) नि-अन्तर्भूतण्यर्थे वृ-कर्त्तरि अच्। १ निवारक, निवारण करनेवाला।

निवरा (सं० स्त्री०) नितरां व्रियते-इति नि-वृ-अप्। अविवाहिता, कुमारी।

निवर्त्त (सं० त्रि०) प्रत्याहृत्त, लौटा हुआ।

निवर्त्तक (सं० त्रि०) प्रतिबन्धक, प्रत्याख्यात।

निवर्त्तन (सं० क्लो०) नि वृत-णिच् भावे ल्युट्। १ निवारण। २ क्षेत्रभेद, प्राचीनकालमें भूमिकी एक नाप जो २१० हाथ लम्बाई और २१० हाथ चौड़ाईकी होती थी। जो मनुष्य एक निवर्त्तन भूमि विष्णुको दान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जा कर आनन्द लूटते हैं। ३ साधन, सुसम्पन्नकरण। ४ पीछे हटाना या लौटाना।

निवर्त्तनस्तूप—एक बौद्ध स्तूप। छन्दक जब बुद्धदेवको रथ पर चढ़ा राज्यके बाहर दे आये, तब कपिलवस्तु लौटते समय जहां पर उन्होंने रथ रख कर विश्राम किया था, उसी स्थान पर यह स्तूप निर्मित है। चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्ग यह स्तूप देख गए हैं।

निवर्त्तनीय (सं० त्रि०) नि वृत-णिच् अनीयर्। भ्रमणशील, लौटने योग्य, पीछेकी ओर हटने योग्य।

निवर्त्तमान (सं० त्रि०) जो लौट रहा हो।

निवर्त्तयितव्य (सं० त्रि०) नि-वृत-णिच्-तव्य। निवारण योग्य।

निवर्त्तित (सं० त्रि०) नि-वृत णिच्-क्त। प्रत्याकृष्ट, जो लौटाया गया हो।

निवर्त्तितव्य (सं० त्रि०) नि वृत णिच्-तव्य। जिसको लौटा लाना उचित हो।

निवर्त्तितपूर्व (सं० त्रि०) जो पहले लौट गया हो।

निवर्त्तिन् (सं० त्रि०) १ संग्रामादिसे प्रत्यावृत्त, जो युद्धमेंसे भाग आया हो। २ निर्लिप्त। ३ जो पीछेकी ओर हट आया हो।

निवर्त्य (सं० त्रि०) १ प्रत्याहृत्त। २ निवारित। ३ पुनर्प्राप्त।

निवर्हण (सं० त्रि०) उत्सन्न, ध्वंस, हत।

निवसति (सं० स्त्री०) निवसत्यत्रेति, नि-वस-अति्च्। गृह, मकान।

निवसथ (सं० पु०) निवसत्यत्रेति, नि-वस आधारे अथच्। १ ग्राम, गांव। २ सीमा, हद।

निवसन (सं० क्लो०) न्युष्यतेऽत्र, नि-वस आधारे ल्युट्। १ गृह, घर, मकान। २ वस्त्र, कपड़ा।

निवसना (हिं० क्रि०) निवास करना, रहना।

निवस्तव्य (सं० त्रि०) नि-वस-तव्य। जीवनयात्रानिर्वाहयोग्य।

निवह (सं० पु०) नितरामुह्यते इति नि-वह पुंसीति घ। १ समूह, यूथ। नितरां वहतीति पचाद्यच्। २ महावायुके अन्तर्गत वायुविशेष, सात वायुओंमेंसे एक वायु। फलितज्योतिषमें सात वायु मानी गई हैं जिनमेंसे प्रत्येक वायु एक वर्ष तक बहती है। निवह वायु भी उन्हींमेंसे एक है। वह न तो बहुत तेज चलती है और न धीमी। जिस वर्ष यह वायु चलती है, कहते हैं कि उस वर्ष कोई सुखी नहीं रहता।

निवाई (हिं० वि०) १ नवीन, नया। २ विलक्षण अनोखा।

निवाकु (सं० त्रि०) नि-वच बाहुलकात् कुक्। निय-वचनशील।

निवाज (फा० वि०) कृपा करनेवाला, अनुग्रह करने वाला।

निवाज—१ हिन्दीके एक कवि। ये तिकवांपुरके निवासी और जातिके जुलाहे थे। इनकी शृङ्गाररसकी कविता अच्छी होती थी।

२ हिन्दीके एक कवि। ये जातिके ब्राह्मण और अन्तर्वेदनिवासी थे। महाराज छत्रसाल बुन्देला पन्ना नरेशके दरबारमें ये रहते थे। आजमशाहकी आज्ञासे इन्होंने शकुन्तलानाटकका संस्कृतसे हिन्दीमें अनुवाद किया था।

३ एक हिन्दी-कवि। ये बुन्देलखण्डके ब्राह्मण थे और भगवन्तराय खीची मामोपुरवालेके यहां रहते थे।

निवाजिश (फा० स्त्री०) १ कृपा, मेहरबानी। २ दया।

निवाड़ (हिं० स्त्री०) निवार देखो।

निवाड़ा (हिं० पु०) १ छोटी नाव। २ नावको एक क्रीड़ा जिसमें उसे बीचमें ले जा कर चक्कर देते हैं नावर।

निवाड़ी (हिं० स्त्री०) निवारी देखो।

निवात (सं० स्त्री०) नितरां वाति अवहरणम् नि-वा-क्त अधिकरणे-क्त। १ आश्रय, निवास घर। निहतो वातो यस्मिन्। २ अवात, वातशून्य। (पु०) ३ अभेद्य वर्म, कवच जो हथियारसे छिद न सके। ४ निवातक।

निवातकवच (सं० पु०) १ दैत्यविशेष, एक असुर जो हिरण्यकशिपुका पौत्र और संह्लादका पुत्र था। निवातं अभेद्यं कवचं येषामिति। २ दानवविशेष।

महाभारतमें लिखा है, कि देवद्रोही अमितवीर्य प्रायः तीन करोड़ दानव थे जो निवातकवच कहलाते थे। पुराण आदि ग्रन्थोंमें लिखा है, कि निवातकवचोंने अपनी बाहुबलसे देवेन्द्र आदि अमरवृन्दको कई बार पराभव किया था और देवगण भी उनसे डरा करते थे। कठोर तपस्याके प्रभावसे उन्होंने ब्रह्माको सन्तुष्ट कर वर पाया था, कि वे निवातकवच समुद्रकुक्षिमें वास करेंगे और देवताओंसे कभी पराभूत न होंगे। उनकी अभिलषित समुद्रकुक्षि और वहांकी विचित्र विमान सौन्दर्यकी पहले देवराज इन्द्रके आसनाधीन थी। पीछे ब्रह्माके वरसे गर्वित हो कर उन्होंने देवराजको पराजित किया और वहांसे उन्हें निकाल भगाया।

वीरश्रेष्ठ अतीव पराक्रमी धनञ्जय जब दुर्योधनके षड्यन्त्रसे अपने चार भाइयोंके साथ वनमें वास करते थे, उस समय वे महादेवको प्रसन्न कर उनके वरप्रभावसे अस्त्र सीखनेके लिये स्वर्ग गये थे। वहां देवराज, चित्रसेन और अन्यान्य बहुत से अस्त्रविद् देव, यक्ष और गन्धर्वोंने अर्जुनको अस्त्रविद्या सिखाई। दिव्यास्त्रप्रयोग पुनः पुनः प्रयोग और उपसंहार, अस्त्रादि द्वारा अस्त्रका पुनः उद्दीपन और पराक्रमसे अभिभूत निज अस्त्रका उद्दीपन ये पांच प्रकारको अस्त्र चलानेकी विधि जब अर्जुनको अच्छी तरह मालूम हो गई, तब इन्द्र आदि देवताओंने उन्हें सन्तोष चित्तसे अनेक प्रकारके दिव्यास्त्र दिये। इसी समय अर्जुनने जब गुरुदक्षिणा देनेकी इच्छा प्रकट की तब इन्द्रने उन पर निवातकवचोंको मारनेका भार सौंप दिया।

तदनन्तर देवतुल्य वीर्यवान् अमरकुमार धनञ्जय दिव्य विमान पर चढ़ कर जहां निवातकवच रहते थे वहां पहुंच गए। दानवगण अर्जुनको चर्म, शस्त्र और शतघ्नियोंसे युक्त हो कर लौहमुद्गर, मुषल, पट्टिश आदि नाना प्रकारके अस्त्र और बहुत उच्च पत्थर अपने अपने हाथोंमें लिये उन पर टूट पड़े। निवातकवच ऐसे मायावी थे कि उनके मायायुद्धमें अर्जुनको अनुचर अम्बकाओंको भी रणसे पीठ दिखानी पड़ी थी। जो कुछ हो, अर्जुनने बहुत चालाकीसे उन दुर्धर्ष दानवोंको एक एक कर युद्धमें मार डाला और इस प्रकार देवताओंका मनोरथ सिद्ध किया।

(महाभारत वनपर्व १६८–१७१ अ०)

भागवतमें लिखा है, कि रसातलमें निवातकवच रहते थे।

निवान (हिं० पु०) १ नीची जमीन जहां सोड़, कीचड़

या पानी भरा रहता हो। २ जलाशय, बड़ा तालाब, झील।

निवाना (हिं० क्रि०) नीचेकी तरफ करना, झुकाना

निवान्यवत्सा (सं० स्त्री०) निव पाता अन्यस्याः वत्सः अन्यवत्सो यस्याः। निवान्या देखो।

निवान्या (सं० स्त्री०) नितरां वाति गच्छति यातत्वेन नि वा-क, निवः पाता अन्यः परकोयो वत्सो यस्याः मृतवत्सा गाभी, वह गाय जिसका बछड़ा मर गया हो और दूसरे बछड़ेको लगा कर दूही जाती हो।

निवाप (सं० पु०) नितरामुप्यते इति नि-वप-घञ्। १ मृतोद्देश्यक दान मृत व्यक्तिके उद्देशसे जो दान किया जाता है उसे निवाप कहते हैं। पर्याय—पितृदान, पितृतर्पण, निवपन, पितृदानक। २ दान। न्युप्यते बीजमस्मिन्निति। ३ खेत।

निवापक (सं० पु०) बीजवपनकारी, वह जो बीज बोता हो।

निवापिन् (सं० त्रि०) निवपतीति नि-वप-णिनि (नन्दग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। पा ३।१।१३४) १ निवापकारी दाता। २ वपनकर्त्ता, बोनेवाला।

निवार (सं० पु०) नि वृ भावे घञ्। निवारण, बाधा। नीवार देखो।

निवार (हिं० स्त्री०) १ पहियेके आकारका लकड़ीका वह गोल चक्कर जो कुएँकी नींवमें दिया जाता है और जिसके ऊपर कोठीकी जोड़ाई होती है, जामवट, जमवट। (पु०) २ मुन्यन्न, तिन्नीका धान, पसही। ३ एक प्रकारकी मूली जो बहुत मोटी और स्वादमें कुछ मीठी होती है, कड़ुई नहीं होती। (फा० स्त्री०) ४ बहुत मोटे सूतकी बुनी हुई प्रायः तीन चार अङ्गुल चौड़ी पट्टी जिससे पलंग आदि बुने जाते हैं, निवार, निवाड़।

निवारक (सं० त्रि०) निवारयतीति नि-वारि-ण्वुल्। १ निवारणकारी, रोकनेवाला, रोधक। २ दूर करनेवाला, मिटानेवाला।

निवारण (सं० क्ली०) नि वृ-णिच्-करणे ल्युट्। १ रोकनेकी क्रिया। २ निवृत्ति, छुटकारा। ३ हटाने या दूर करनेकी क्रिया।

निवारणीय (सं० त्रि०) नि-वृ-णिच् अनीयर्। निवारणयोग्य, रोकने या हटाने लायक।

निवारन (हिं० पु०) निवारण देखो।

निवार-बाफ (फा० पु०) निवार बुननेवाला।

निवारित (सं० त्रि०) नि-वृ-णिच्-क्त। कृतनिवारण, निषिद्ध, जिसका निषेध किया गया हो।

निवारी (हिं० स्त्री०) १ जूहीकी जातिका एक फूलनेवाला झाड़ या पौधा जो जूहीके पौधोंसे बड़ा होता है। इसके पत्ते कुछ गोलाई लिये लम्बोतरे होते हैं और बरसातमें इसमें जूहीकी तरहके छोटे सफेद फूल लगते हैं। ये फूल आमके मौरकी तरह गुच्छोंमें होते हैं और इनमेंसे मनोहर सुगन्ध निकलती है। यह चरपरी, कड़वी, शीतल, हलकी और त्रिदोष, नेत्ररोग, मुखरोग तथा कर्णरोग आदिको दूर करनेवाली मानी गई है। २ इस पौधेका फूल।

निवाला (फा० पु०) उतना भोजन जितना एक बार मुँहमें डाला जाय, कौर, लुकमा।

निवाश (सं० पु०) यन्त्र वा गीतादिका चलित शब्द।

निवास (सं० पु०) नि वस आधारे घञ्। १ गृह, घर। २ आश्रय। ३ वास, रहनेका स्थान। ४ वस्त्र, कपड़ा।

निवासक (सं० त्रि०) निवासस्य अदूरदेशादि, निवासचतुरर्थ्यां क। तत्सन्निकृष्ट देशादि।

निवासन (सं० पु०) बौद्धोंकी वस्त्रविशेष।

निवासस्थान (सं० पु०) १ रहनेका स्थान, वह जगह जहां कोई रहता हो। २ घर, मकान।

निवासिन् (सं० त्रि०) नि-वसतीति नि-वस णिनि। निवासकर्त्ता, रहनेवाला, बसनेवाला, वासी।

निवास्य (सं० त्रि०) १ वासयोग्य, रहने लायक। २ वस्त्राच्छादित, कपड़ेसे ढका हुआ।

निविड़ (सं० त्रि०) नितरां विड़ति संहन्यते नि-विड़-क। १ नीरन्ध्र, गहरा। २ सान्द्र, घना, घनघोर। पर्याय—निरवकाश, निरन्तर, निर्विरोष, नीरन्ध्र, बहुल, दृढ, गाढ़, अविरल। ३ नत-नासिकायुक्त, जिसकी नाक चिपटी या दबी हुई हो।

निविड़ता (हिं स्त्री०) वंशी या इसी प्रकारके किसी और बाजेके स्वरका गम्भीर होना जो उसके पांच गुणोंमेंसे एक गुण माना जाता है।

निविद् (सं० स्त्री०) नि-विद् बाहुलकात् क्विप्। १ वाक्य। २ वेदमन्त्रके यज्ञविषयमें प्रयुज्यमान मन्त्रपदभेद। ३ स्तुति प्रस्ताव।

निविद्धान (सं० क्ली०) निविद् धीयते ऽस्मिन् धा आधारे ल्युट्। ऐकाहिक शस्त्रादि, जब यज्ञ आदि जो एक ही दिनमें समाप्त हो जाय।

निविद्धानीय (सं० त्रि०) निविद् सम्बन्धीय वैदिक मन्त्र संयुक्त।

निविरीस (सं० त्रि०) नि-नता नासिका यस्य, विरीसच् (वैदिक निपातनात्। पा ५।२।३२) १ नत-नासिकायुक्त, जिसकी नाक चिपटी या दबी हो। २ सान्द्र, घना। (स्त्री०) ३ नत नासिका, चिपटी नाक।

निविवृक्ष (सं० त्रि०) निवारयितुमिच्छुः, जो रोकना या हटाना चाहता हो।

निविष्ट (सं० त्रि०) नि विश क्त। १ चित्ताभिनिवेश युक्त, जिसका चित्त एकाग्र हो। २ एकाग्र। ३ आविष्ट, लपेटा हुआ। ४ प्रविष्ट, घुसा या घुसाया हुआ। ५ आबद्ध, बांधा हुआ। ६ स्थित, ठहरा हुआ।

निविष्टि (सं० स्त्री०) नि-विश-क्तिन्। औरस गर्भ, आवासस्थान।

निवीत (सं० क्ली०) निवीयते स्मेति नि-व्ये आच्छादने क्त, ततो सम्प्रसारण। १ आच्छादन वस्त्र, ओढ़नेका कपड़ा, चादर। इसका पर्याय प्रावृत है। २ कण्ठलम्बित यज्ञसूत्र, यज्ञका वह सूत जो गलेमें पहना जाता है। ३ निहत।

निवीतिन् (सं० त्रि०) निवीतमस्त्यस्य इनि। निवीत युक्त जिसने यज्ञसूत्र धारण किया हो। जिसके गलेमें यज्ञसूत्र मालाकी तरह लटकता रहता है उसीको निवीती कहते हैं। जिसका बायाँ हाथ यज्ञसूत्रके बाहर रहता और यज्ञसूत्र दाहिने कन्धे पर रहता है उसे प्राचीनावीती और जिसका दाहिना हाथ यज्ञसूत्रके बाहर रहता और यज्ञसूत्र बायें कन्धे पर रहता है उसे उपवीती कहते हैं।

निवीर्य (सं० त्रि०) वीर्यहीन, जिसमें वीर्य या पुरुषत्व न हो।

निवृत् (सं० स्त्री०) वाजसनेयोक्त छन्दोभेद, वह प्रकारका छन्द जिसमें गायत्री आदि आठ प्रकारके छन्दोंके प्रतिपादमें एक एक अक्षर कम रहता है।

निवृत (सं० त्रि०) निव्रियते आच्छाद्यते स्मेति नि-वृ-क्त। १ निवीत, चादरसे ढका हुआ। २ परिवेष्टित, घिरा हुआ।

निवृत्त (सं० क्ली०) नि-वृत भावे क्त। १ निवृत्ति, मुक्ति, छुटकारा। २ यज्ञभेद, चित्त विषयमें उपरम। ३ प्रस्थान। ४ निवृत्तिपूर्वक धर्म। (त्रि०) ५ छूटा हुआ। ६ विरत, जो अलग हो गया हो। ७ जो लौटा या मुड़ा हो, वापस।

निवृत्तवृष (सं० क्ली०) शुक्ररोगभेद।

निवृत्तसन्ताप (सं० क्ली०) निवृत्त सन्तापं यस्य। सन्तापविहीन।

निवृत्तसन्तापनीय (सं० क्ली०) निवृत्त सन्ताप यस्य तस्मै हितं छ। रसायनभेद।

> "यथा निवृत्तसन्तापा मोदन्ते दिवि देवताः।
> तथौषधीरिमाः प्राप्य मोदन्ते भुवि मानवाः॥"
> (सुश्रुत चिकि० ३० अ०)

इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—देवगण जिस प्रकार सन्तापशून्य हो कर स्वर्गमें विचरण करते हैं, मानवगण भी उसी प्रकार निम्नलिखित औषधादि सेवन करनेसे देवगणकी तरह सन्तापशून्य हो कर पृथ्वी पर विचरण कर सकते हैं। इनके सेवनसे मनुष्यका शरीर कुमारके समान और बल सिंहके समान हो जाता है।

इस रसायनका सेवन ७ प्रकारके मनुष्योंके लिए अकर्तव्य है, यथा—अनात्मवान् (अजितेन्द्रिय) अलस, दरिद्र, प्रमादी, व्यसनी, पापकारी और भेषजापमानी। इन सब मनुष्योंको अज्ञानता अनारम्भ अस्थिरचित्तता, दरिद्रता, अनायत्तता अधार्मिकता और औषधकी अप्राप्ति इन सब कारणोंसे निवृत्तसन्तापनीय रसायनका सेवन दुर्घट होता है।

इस रसायनमें अठारह औषधियां हैं जो सोमरसके समान वीर्ययुक्त मानी जाती हैं। इनके नाम ये हैं—अजगरी, श्वेतकपोती, कृष्णकपोती, गोनसी, वाराही, कन्या छत्रा अतिच्छत्रा, करेणु, अजा, चक्रका, आदित्यपर्णिनी, ब्रह्म

सुवर्चला, आवणी, महाश्रावणी, गोलोमी और महावेगवती। इनमेंसे जो सब औषध क्षीरहीन मूलविशिष्ट हैं, उनके प्रदेशनीप्रमाणके तीन काण्ड सेवन करने होते हैं। श्वेतकपोतीका पत्र समेत मूल सेवन विधेय है। क्षीरवती औषधियोंका क्षीर कुडव परिमाणमें एक समयमें सेवन करना चाहिए। गोनसी, अजागरी और कृष्णकपोती इनको खण्ड खण्ड कर एक मुष्टि परिमाण ले चार दूधमें सिद्ध करे, पीछे उस दूधको उठा कर एक ही बारमें पी लेना चाहिए। चक्रकाका दुग्ध एक बार पेय और ब्रह्मसुवर्चला महारात्र सेवनीय है। इस निदानसन्तापनीय रसायनके सेवनसे मनुष्यकी आयु बढ़ती है और वह दिव्य शरीर धारण कर नभस्थलमें अमोघसङ्कल्प हो विचरण करता है।

निम्नलिखित लक्षण द्वारा सब औषध स्थिर की जाती हैं। निष्पत्र, कनकतुल्य आभायुक्त, दो अङ्गुल परिमित मूलविशिष्ट, सर्पकी तरह आकार और अन्तभाग लोहितवर्ण, ऐसे लक्षणको औषधको श्वेतकपोती; द्विपत्र, मूलजात, अरुणवर्ण, कृष्णवर्ण मण्डलविशिष्ट, दो अरत्निप्रमाण दीर्घ और गोनसके समान होनेसे उसे गोनसी; क्षीरयुक्त, सलोम, मृदु और इक्षुरसके समान रसविशिष्ट होनेसे उसे कृष्णकपोती; कृष्णसर्प स्वरूप और कन्दसम्भव होनेसे उसे वाराही और एक पत्र, अत्यन्त वीर्यवान्, अञ्जनप्रभ तथा कन्दजात लक्षणविशिष्ट औषधको श्वेतकपोती कहते हैं। इन सब औषधियोंसे जरा और मृत्यु निवारित होती है। मयूरके लोमकी तरह बारह पत्रविशिष्ट, कन्दजात और स्वर्णवर्ण क्षीरविशिष्ट औषधको कन्या, द्विपत्र, हस्तिकर्ण, पलाशके समान पत्र और प्रचुर क्षीरविशिष्ट तथा गजाकृति कन्दको करेणु; अजाके स्तनके समान कन्द, सक्षीर, चन्द्र या शङ्खकी तरह श्वेत और पाण्डुर तथा सुवर्णचक्रके सदृश औषधिको अजा, श्वेतकर्ण विचित्र पुष्पविशिष्ट, काकादनीके जैसे क्षुद्र वृक्षको चक्रका कहते हैं। इन औषधोंके सेवन करनेसे जरामृत्युका नाश होता है। मूलविशिष्ट, कोमल रक्तवर्ण पञ्चपत्रविशिष्ट और सर्वदा सूर्यका अनुवर्ती होनेसे उसे आदित्यपर्णिनी, कनक-सा आभाविशिष्ट, सक्षीर और ऐरावतसे पद्मिनीके समान तथा वर्षाके समयमें जो चारों ओर प्रसारित हो ऐसी औषधिको ब्रह्मसुवर्चला, अरत्निप्रमाणवृन्त, द्वि-अङ्गुलपरिमित पत्र, नीलोत्पलसदृश पुष्प एवं अञ्जनसन्निभ फल होनेसे उसे आवणी और इन्हीं सब लक्षणोंको, पर उससे अधिक कनकवर्ण क्षीर और पाण्डुवर्णविशिष्ट औषधिको महाश्रावणी कहते हैं। गोलोमी और अजलोमी औषधि रोमविशिष्ट और कन्दयुक्त होती है। मूलजात, हंसपदी लताकी तरह विच्छिन्नपत्रविशिष्ट अथवा सर्वतोभावसे शङ्खपुष्पोंके सदृश अत्यन्त वेगविशिष्ट और सर्पनिर्मोकतुल्य औषधको वेगवती कहते हैं। यह औषध वर्षाके अन्तमें उत्पन्न होती है।

इन सब औषधियोंको निम्नलिखित मन्त्रसे अभिमन्त्रण कर उखाड़ना होता है। मन्त्र यों है—

"महेन्द्ररामकृष्णानां ब्राह्मणानां गवामपि ।
तपसा तेजसावापि प्रशाम्यध्वं शिवाय वै ॥"

अश्राद्धीन, अलस, कृतघ्न और पापकारी आदिको ये सब औषध दुष्प्राप्य हैं। देवताओंने पानावशिष्ट अमृतसोममें अथवा सोमतुल्य इन सब औषधियोंमें और चन्द्रमें निहित किया है।

औषधि-प्राप्तिके स्थान—देवसुन्द नामक ह्रदमें और सिन्धुनदीमें वर्षाके अन्तमें ब्रह्मसुवर्चला नामक औषधि; उक्त दो प्रदेशोंमें हेमन्तके शेषमें आदित्यपर्णिनी और वर्षाके प्रारम्भमें गोनसी; काश्मीर प्रदेशके क्षुद्र मानस नामक दिव्य-सरोवरमें करेणु, कन्या, छत्रा, अतिछत्रा, गोलोमी, अजलोमी और महाश्रावणी नामकी औषधि मिलती है। कौशिकी नदीके दूसरे किनारे पूर्वकी ओर तीन योजन भूमि तक वल्मीक व्याप्त है। इस वल्मीकके ऊपरी भाग पर श्वेतकपोती उत्पन्न होती है। मलय और नलसेतु नामक पर्वत पर वेगवती औषधि पाई जाती है। इन सब औषधियोंका कार्त्तिक पूर्णिमामें सेवन विधेय है।

जिसके अत्युच्च शृङ्ग पर देवगण विचरण करते हैं उस सोमगिरि और अर्बुदगिरि पर सब प्रकारकी औषधियां मिलती हैं। इसके अलावा नदी, पर्वत, सरोवर, पवित्र अरण्य और आश्रम सभी जगह इन सब औषधियोंका अनुसन्धान करना कर्त्तव्य है; क्योंकि यह वसुन्धरा

मेंसे अपह रणकार्य करती है। (प्रसुप्त भिक्षु० इ० अ०)

निवृत्तात्मन् (स० त्रि०) निवृत्त विषयेभ्य उपरतः आत्मा मनःकरण यस्य। १ विषयरागशून्य, जो विषयवासनासे रहित हो (पु०) २ विष्णु।

निवृत्ति (स० स्त्री०) नि-वृत-क्तिन्। १ निर्वृत्ति, मुक्ति छुटकारा। पर्याय—उपरम, विरति, अपरति, उपरति, आरति। २ न्यायमतसिद्ध यत्नभेद। ३ बौद्धोंके अनुसार मुक्ति या मोक्ष। बौद्धोंको निवृत्ति और ब्राह्मणोंका मोक्ष एक ही है। निवृत्ति या निर्वाण शब्दका अर्थ पुनर्जन्मसे मुक्ति लाभ करना है। ५ मन्त्र देव विशेष। ६ तीर्थविशेष। यहां विजयनगरके प्रसिद्ध राजा नरसिंह वर्द्धनने बहुत दान पुण्य किए थे। ७ एक जनपद। यह बौद्धके उत्तर और बङ्गदेशके पश्चिम निराटराज्यके समीप अवस्थित है। यहां नदियोंके पानीसे बिधे बहुत लम्बा चौड़ा मैदान है। इसका दूसरा नाम मत्स्य है क्योंकि यहां मछलियां बहुत पाई जाती हैं। किन्तु इस स्थानके निवासी अभी पहाड़ी और जङ्गली लोग रहते हैं, वही अब साधारणतः उस नामसे प्रसिद्ध हैं। इसका प्रधान नगर नर्मदातट, लाक्षण और चौरङ्ग या विहारिका है। दूसरा नगर गुरा नदीके किनारे बसा हुआ है और यहाँका एक मुसलमान शासक कर्त्ताके दखलमें है। यहांके अधिवासी पशुओंकि अपरि सभ्य और मूर्ख हैं। अवन्याश्रित स्थानमें जाति विभागकी कोई सुव्यवस्था नहीं है।

निवृत्तात्मन् (स० त्रि०) निवृत्तिः आत्मा स्वरूप यस्य। निर्विष, वर्जक, सन्यासी।

निवेदक (स० त्रि०) निवेदयतीति नि विद-णिच्-ण्वुल्। निवेदनकारी, निवेदन करनेवाला, प्रार्थी।

निवेदन (स० क्ली०) निविद्यते विज्ञाप्यतेऽनेनेति नि विद ल्युट्। १ आवेदन, विनय, विनती, प्रार्थना। २ समर्पण।

निवेदनीय (स० त्रि०) नि-विद-णिच् अनीयर्। निवेदनार्ह, निवेदन करने योग्य।

निवेदयितृ (स० पु०) निवेदयतुमिच्छुः नि-विद् णिच् तृन् ततो स। निवेदन करनेमें इच्छुक।

निवेदित (स० त्रि०) नि विद-णिच् क्त। १ ज्ञापित-निवेदन किया हुआ। २ ज्ञापित, सुनाया हुआ, कहा हुआ। ३ अर्पित, चढ़ाया हुआ, दिया हुआ।

निवेदी (स० त्रि०) नि-वेद अस्त्यर्थे इनि। निवेदनकारी, प्रकाशक।

निवेद्य (स० त्रि०) नि विद-ण्यत्। निवेदनयोग्य, ज्ञापनीय, जताने लायक।

निवेश (स० पु०) नि विश-घञ्। १ विन्यास। २ शिविर, डेरा। ३ सजाव, विवाह। ४ प्रवेश। ५ घर, या मकान।

निवेशन (स० क्ली०) निविशन्त्यस्मिन्निति नि विश अधिकरणे ल्युट्। १ घर, घर, मकान। २ नगर। ३ प्रवेश। नि विश णिच् भावे ल्युट्। ४ स्थापन। ५ स्थिति। ६ विन्यास। (त्रि०) ७ प्रवेशक।

निवेशवत् (स० त्रि०) निवेशः विद्यते यस्य, मतुप्, मस्य व। विन्यासयुक्त।

निवेशित् (स० त्रि०) आश्रयप्राप्त, प्रविष्ट अवस्थित।

निवेशनीय (स० त्रि०) नि-विश-अनीयर्। प्रवेशार्ह, प्रवेशयोग्य।

निवेशित (स० त्रि०) नि विश-णिच् क्त। १ स्थापित। २ विन्यस्त। ३ प्रवेशित।

निवेश्य (स० त्रि०) नि-विश-ण्यत्। १ निवेशनीय, प्रवेश योग्य। २ स्थापनीय।

निवेष्ट (स० पु०) १ आच्छादन आवरणवस्त्र, वह कपड़ा जिससे कोई चीज ढांकी जाय। २ सामभेद।

निवेष्टन (स० क्ली०) वस्त्र द्वारा आच्छादन, कपड़ेसे ढांकनेकी क्रिया।

निवेष्टव्य (स० त्रि०) नि-विष्ट-तव्य। निवेष्टनीय, ढांकने योग्य।

निवेष्य (स० क्ली०) नि-विष-भावे यत्। १ व्याप्ति। (पु०) २ व्यापक देवभेद। ३ आवर्त्त, पानीका भंवर ४ नीहारजल, कुहासेका पानी। ५ वनस्तम्भ। ६ वज्र। (त्रि०) ७ व्यापित, फैला हुआ।

निव्याधिन् (स० पु०) नितरां विध्यति हन्ति शत्रून् नि-व्यध-णिनि। १ रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम। (त्रि०) २ नितान्त व्याधक।

निष्कुह (स० स्त्री०) अभिनिवेश, निरन्तर चेष्टा, लगातार परिश्रम।

निश् (सं० स्त्री०) नितरां श्यति तनूकरोति व्यापारान्, शो-क्विप्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ रात्रि, रात। २ हरिद्रा, हलदी।

निशंक (हिं० वि०) १ जिसे किसी बातकी शंका या भय न हो, निर्भय, निडर, बेखौफ। (पु०) २ एक प्रकारका नृत्यविशेष।

निशङ्कपुरकूरा—भागलपुर जिलेका एक परगना। क्षेत्रफल ४४५८०६ एकड़ या लगभग ६९६५ वर्गमील है। इस परगनेमें कुल १६८ जमींदारी लगती है। यहांकी अधिकांश जमीन उर्वरा है, अतः प्रति साल काफी अनाज उपजता है।

इस परगनेके मध्य दुर्गापुरका राजवंश बहुत प्रसिद्ध है इस वंशके आदिपुरुष एक पमार राजपूत थे जिनका नाम हसनमसिंह था। अपने भाई मधुके साथ ये पश्चिम तिरहुतके दारानगरसे आ कर यहां बस गए थे। पहले ये दोनों भाई दरभङ्गा नरेशके यहां नौकरी करते थे।

एक दिन वर्षाका समय था, दोनों भाई राजाकी देहरवामें नियुक्त थे। कुछ समय बाद राजाने उन्हें विश्राम करनेका आदेश दिया। वहांकी स्थानीय भाषामें विश्राम शब्दके लिये 'ओय लो' शब्द व्यवहृत होता है। किन्तु 'ओय' नामक पूर्व दिशामें एक जागीर थी। मालूम पड़ता है, कि वर्त्तमान उत्तरखण्ड ही उस समय 'ओय' नामसे प्रसिद्ध था। दोनों भाइयोंने 'ओय लो' शब्दका दूसरा ही अर्थ लगा लिया। वे इसका प्रकृत अर्थ जानते हुए भी इसे न समझ सके। अतः उन्होंने कुछ स्वजातियोंको साथ ले निर्दिष्ट 'ओय' नामकी जीतनेके लिये कदम बढ़ाए। केवल 'ओय' जीत कर वे शान्त न रह सके, समूचा निशङ्कपुर परगना उन्होंने अपने कब्जेमें कर लिया। बाद यहां पर स्थायी आवासभूमि बसा कर मधु दिल्लीके बादशाहसे सनद पानेके लिये दिल्ली गए। किन्तु वहां जा कर वे मुसलमानी धर्ममें दीक्षित हुए। जब वे लौट रहे थे, तब उनके अनुचरोंने जो उनके मुसलमानी धर्म ग्रहण करने पर बहुत क्रोधित थे, उन्हें मार डाला। मधुपुरसे १८ मील दक्षिण लदारोवाटमें उनका शिरच्छेद हुआ था। घोड़ा उनका बहुत सुशिक्षित था, अत वह मस्तकहीन देहको लिये सुपुलके पश्चिम-दक्षिणमें अवस्थित नौहाटा ग्राममें पहुँच गया। लदारोवाटमें उनकी कब्रके ऊपर एक मन्दिर बनाया गया जहां एक फकीर वास करता है। इसके भरण पोषणके लिये ४० बीघा निष्कर जमीन दी गई है। मधुके वंशधर मुसलमान हैं। ये लोग नौहाटामें रहते हैं।

निशठ (सं० पु०) बलदेवपुत्रभेद, पुराणानुसार बलदेवके एक पुत्रका नाम।

निशमन (सं० क्ली०) नि शम-णिच्-ल्युट्। १ दर्शन, देखना। २ श्रवण, सुनना।

निशल्या (सं० स्त्री०) क्षुद्रदन्तीक्षुप।

निशा (सं० स्त्री०) नितरां श्यति तनूकरोति व्यापारानिति नि-शो-क-टाप्। १ रात्रि, रात,। पर्याय—रात्री, रजनी, शर्वरी, वक्रभेदिनी, घोरा, श्यामा, याम्या, दोषा, तुङ्गी, भौती, शताची, वासवा, उषा, वासतेयी, तमा, निट्। २ हरिद्रा, हलदी। ३ दारुहरिद्रा। ४ फलित ज्योतिषमें मेष, वृष, मिथुन आदि छः राशियां।

निशाकर (सं० पु०) निशां करोतीति निशा-कृ-ट। १ चन्द्रमा। २ कुक्कुट, मुरगा। ३ कर्पूर, कपूर। ४ महादेव। ५ एक महर्षिका नाम।

निशाकरकलामौलि (सं० पु०) निशाकरस्य चन्द्रस्य कला मौलौ यस्य। शिव, महादेव।

निशाखातिर (हिं० स्त्री०) प्रबोध, तसल्ली, दिलजमई।

निशाख्या (सं० स्त्री०) निशाया आख्या यस्याः। निशाह्वा, हरिद्रा, हलदी।

निशाचर (सं० पु०) निशायां रात्रौ चरतीति निशा-चर-ट। १ राक्षस। २ शृगाल, गीदड़। ३ पेचक, उल्लू। ४ सर्प, सांप। ५ चोर, चोर। ६ भूत। ७ चोरक नामक गन्धद्रव्य। ८ चक्रवाक पक्षी। ९ बिड़ाल, बिल्ली। १० वल्गुलिका पक्षी, बादुर। ११ महादेव। १२ एक संस्कृत कवि। १३ नेपाली भटेउर पक्षी। (वि०) १४ रात्रिचर मात्र, जो रातको चले, कुलटा, पिशाच आदि।

निशाचरपति (सं० पु०) निशाचराणां-भूतानां पतिः, ६ तत्। १ प्रमथपति, शिव, महादेव। २ रावण।

निशाचरी (सं० स्त्री०) निशाचर ङीप्। १ कुलटा। २ राक्षसी। ३ केशिनी नामक गन्धद्रव्यविशेष। ४ अभिसारिका नायिका।

निशाचम (स ॰ पु॰) निशायां चर्मेव आवरकत्वात्। अन्धकार, अँधेरा।

निशाचारी (स ॰ पु॰) १ शिव। २ निशाचर।

निशाच्छद (स ॰ पु॰) गुग्गुलभेद।

निशाजल (स ॰ स्त्री॰) निशोद्भव जल अव्ययदर्शी इति। १ हिम, पाला। २ ओस।

निशाट (स ॰ पु॰) निशायां रात्रौ अटतीति अट् अच्। १ पेचक, उल्लू। (त्रि॰) २ निशाचर, रातको फिरने वाला।

निशाटक (स ॰ पु॰) निशायां अटति, निशायाम् अटनम् अटतीति वा अट-ण्वुल्। १ गुग्गुलु गूगल। (त्रि॰) २ रात्रिचर, रातको विचरण करनेवाला।

निशाटन (स ॰ पु॰) निशायां अटतीति अट-ल्यु। १ पेचक, उल्लू। (त्रि॰) २ निशाचर जो रातको विचरण करे।

निशात (स ॰ त्रि॰) शो तिजाने नि-शो-क्त (शाच्छोरन्यतरस्याम्। पा ७।४।४१) इति सूत्रेण इकाराभाव आत्वम्, तीक्ष्णीकृत तेज किया हुआ।

निशातिक्रम (स ॰ पु॰) निशाका अतिक्रमण, रात्रिका अवसान।

निशातेल—आयुर्वेदोक्त तैलविशेष, भैषज्यमें एक प्रकारका तेल। यह सेर भर कड़वे तेल जूहीके पत्तोंका चार सेर रस, आठ तोले पीसी हुई हल्दी और चार तोले गन्धकके मेलसे बनता है। यह तेल खाजके रोगोंके लिये विशेष उपकारी है।

निशात्यय (स ॰ पु॰) निशाका अत्यय। निशावसान प्रभात, सबेरा।

निशाद (स ॰ पु॰) निशायां अत्ति भक्षयतीति निशा अद-अच्। १ निषाद। (त्रि॰) २ रात्रिभोजिमात्र, केवल रातको खानेवाला।

निशादर्शिन् (स ॰ पु॰) निशायां पश्यतीति दृश णिनि पेचक, उल्लू।

निशादि (स ॰ स्त्री॰) निशाका आदियंश। साय, सन्ध्या।

निशापतल—आयुर्वेदोक्त नेत्रौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तिल चार सेर, बकुल हरिद्रा, अमलतासका दूध, सैन्धव, चित्तामूल, गुग्गुल, कुटकी शाक, करवीरका मूल सब मिला कर एक सेर, जल १६ सेर। इससे भगन्दररोग जाता रहता है।

निशाधीश (स ॰ पु॰) निशाका अधीश। निशापति।

निशान (स ॰ स्त्री॰) नि-शो भावे ल्युट्। तीक्ष्णकरण, तेज करना।

निशान (फा॰ पु॰) १ चिह्न, लक्षण। २ वह लक्षण या चिह्न जिससे किसी प्राचीन या पहलेकी घटना अथवा पदार्थका परिचय मिले। ३ किसी पदार्थका परिचय करानेके लिये उसके स्थान पर बनाया हुआ कोई चिह्न। ४ किसी पदार्थसे अंकित किया हुआ अथवा और किसी प्रकारका बना हुआ चिह्न। ५ शरीर अथवा और किसी पदार्थ पर बना हुआ स्वाभाविक या और किसी प्रकारका चिह्न। ६ वह चिह्न जो अपढ़ मनुष्य अपने हस्ताक्षरके बदलेमें किसी कागज आदि पर बनाता है। ७ ध्वजा पताका, झंडा। ८ पता, ठिकाना। ९ वह चिह्न या लक्षण जो किसी विशेष कार्य या पहचानके लिये नियत किया जाय। १० समुद्रमें या पहाड़ों आदि पर बना हुआ वह स्थान जहां लोगों को मार्ग आदि दिखानेके लिये कोई प्रदीप किया जाता हो।

निशानकोना (हि ॰ पु॰) उत्तर और पश्चिमका कोण।

निशानची (फा॰ पु) वह जो किसी राजा, सेना या दल आदिके आगे झंडा ले कर चलता हो, निशान बरदार।

निशानदिही (हि ॰ स्त्री॰) निशानदेही देखो।

निशानदेही (फा॰ स्त्री॰) आसामीको सम्मन आदिको तामीलके लिए पहचनवानेकी क्रिया, आसामीका पता बतलानेका काम।

निशानपट्टी (फा॰ स्त्री॰) चेहरेकी बनावट आदि अथवा उसका वर्णन, हुलिया।

निशानबरदार (फा॰ पु॰) वह जो किसी राजा, सेना या दल आदिके आगे आगे झंडा ले कर चलता हो, निशानची।

निशानवाला—शतद्रुके पूर्व और मोहरासिके बीच यह मिश्र स्थापित किया। ये लोग जाट जातिके थे और 'दल' या दलबल आगेका निशान पताका ले आगे थे इस कारण इनका नाम निशानवाला पड़ा। शतद्रुनदीके

दूसरे किनारे ये लोग बहुत लूट मार मचाते से और लूटका माल ले कर बहुत दूर भाग जाते थे। एक दिन इन लोगोंने समृद्धशाली मोरटनगर पर आक्रमण किया और उसे लूटा। लूटमें इन्हें असंख्य धनरत्न हाथ लगे जिन्हें ले कर वे अपने प्रधान अड्डा अम्बालाको चले गए। यहीं पर इनका अस्त्रशस्त्र और खाद्यादि रहता था। इनके अधीन बहुत सेना थी। मझतसिंह-के मरनेके बाद मोहरसिंहने इस दलका कर्तृत्व ग्रहण किया। मोहरकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई। इन-के मरते समय रणजित्सिंह शतद्रुके दूसरे किनारे तक पहुँच गए थे। मृत्यु-सम्वाद सुनते ही उन्होंने अपने दीवान मोखमचांदको एक दल सेना साथ दे दस्यु-दलको नष्ट करनेका हुकुम दिया। रणजित्सिंहकी सेनाने निशानवालोंको वहांसे निकाल भगाया। उनके पास जितने धनरत्नादि थे वे सब मोखमचांदके हाथ लगे

निशाना (फा० पु०) १ वह जिस पर ताक कर किसी अस्त्र या शस्त्र आदिका वार किया जाय, लक्ष्य। २ मट्टी आदिका वह ढेर या और कोई पदार्थ जिस पर निशाना साधा जाय। ३ किसी पदार्थको लक्ष्य बना कर उसकी ओर किसी प्रकारका वार करना। ४ वह जिस पर लक्ष्य करके कोई व्यंग्य या बात कही जाय।

निशानाथ (सं० पु०) निशायाः नाथः ६ तत्। १ चन्द्र, निशापति। २ कर्पूर, कपूर।

निशानारायण (सं० पु०) एक संस्कृत कवि।

निशानी (फा० स्त्री०) १ वह चिह्न जिससे कोई चीज पहचानी जाय, निशान। २ स्मृतिके उद्देश्यसे दिया अथवा रखा हुआ पदार्थ, वह जिससे किसीका स्मरण हो, स्मृतिचिह्न, यादगार।

निशान्त (सं० क्लो०) निशाम्यते विश्रम्यतेऽस्मिन्निति, नि शम-अधिकरणे क्त। १ गृह, घर, मकान। २ रात्रि-का अन्त, पिछली रात। ४ प्रभात, तड़का। (त्रि०) नितरां शान्तः। ३ नितान्त शान्त, बहुत शान्त।

निशान्तीय (सं० त्रि०) निशान्तस्य अदूरदेशः निशान्त उत्करादित्वात् छ। निशान्त सन्निकृष्ट देशादि।

निशान्ध (सं० पु०) १ फलित ज्योतिषमें एक प्रकारका योग। यह योग उस समय पड़ता है जब सिंह राशि-में सूर्य हो। कहते हैं, कि इस योगमें पड़नेसे मनुष्य-को रतौंधी होती है। (त्रि०) २ रातका अन्धा, जिसे रातको न सूझे, जिसे रतौंधी होती हो।

निशान्धा (सं० स्त्री०) निशायां अन्धयति उपसंहरति आत्मानमिति अन्ध अच् टाप्। १ जतुकालता। २ राजकन्या।

निशान्धी (सं० स्त्री०) निशान्धा देखो।

निशापति (सं० पु०) निशायाः पतिः। १ निशाकर, चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

निशापुत्र (सं० पु०) निशायाः पुत्र इव। नक्षत्र आदि आकाशीय पिण्ड।

निशापुर—१ खोरासनका एक जिला। यह मेशिदके दक्षिणमें अवस्थित है।

२ उक्त जिलेका एक शहर। यह अक्षा० ३६° १२´ २०´´ उ० और देशा० ५८° ४८´ २७´´ पू०के मध्य अव-स्थित है। पेशदादीय वंशोद्भव तापामुर अथवा तैमूर नामक किसी युवराजने यह नगर बसाया गया है।

पहले अलेकसन्दरने इसे जीत कर तहस नहस कर डाला था। पीछे अरबों और तुर्कोंने इस पर अपना अधिकार जमाया। १२२० ई०में चेङ्गीज खांके पुत्र कुलीन खांने इसे अपना कर आस पासके प्रायः २० करोड़ निरपराध लोगोंकी हत्या कर डाली। तभीसे मुगल, तुर्क और उजबक जातिने कई बार इस पर चढ़ाई की।

निशापुरसे ४० मील पश्चिममें एक उपत्यका है जहां रत्नकी बहुतसी खानें हैं। इसके सिवा पहाड़ पर और भी कितनी खानें देखनेमें आती हैं।

निशापुष्प (सं० क्लो०) निशायां रात्रौ पुष्प्यति विकस-तीति पुष्प-विकासे अच्। कुमुद, उत्पल, कोईं।

निशाप्राणेश्वर (सं० पु०) निशायाः प्राणेश्वरः। निशापति।

निशाबल (सं० पु०) निशाया रात्रौ बलं यस्य। मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, धन और मकर ये छः राशियां जो रातके समय अधिक बलवती मानी जाती हैं।

फलित ज्योतिषमें दो प्रकारकी राशियां बतलाई गई हैं,—निशाबल और दिनबल। ऊपरकी छः राशियां निशा-बल और शेष सभी राशियां दिनबल मानी जाती हैं। कहते हैं, कि जो काम दिनके समय करना हो, वह

निमपक्ष राशियोंमें चोर जो काम रातके समय करना हो, वह रात्रिबल राशियोंमें करना चाहिए।

निशाभङ्गा (स ० स्त्री०) निशा हरिद्रा तदभङ्गो यस्याः। कुम्भकुम्भी नामक पौधा।

निशाभाग (स ० पु०) निशाया भागः। रात्रि, रात।

निशामणि (स ० पु०) निशायाममणिरिव। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

निशामन (स ० क्ली०) नि-शम-णिच् ल्युट्। १ दर्शन, देखना। २ आलोचन, विचार। ३ श्रवण, सुनना।

निशामय (स ० पु०) पित्त, सफाईव।

निशामिश्र—सुपद्माकारवर्ष एक टीकाकार।

निशामुख (स ० क्ली०) निशायाः मुख इव तत्। प्रदोष काल, गोधूलीका समय।

निशामृगा (स ० स्त्री०) चन्द्रमूला।

निशामृग (स ० पु०) निशायोगेमा मृगः। शृगाल, गीदड़।

निशायिन् (स ० त्रि०) निद्राभत, सोया हुआ।

निशारण (स ० क्ली०) नि-शृ भिसायां ल्युट्। १ मारण, मारना। निशायाः रणम्। २ रात्रियुद्ध। ३ रात्रि मन्द।

निशारत्न (स ० क्ली०) निशायाः निशायां वा रत्नमिव। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

निशारस (स ० पु०) १ तालविशेष, ताल प्रकारके उपाय तालोंमेंसे एक प्रकारका ताल। द्रुत, लौह, चच्चर, सिंहन, चतुरश्रम, निशारस और प्रतिताल ये सात उपाय ताल हैं। इनमें दो लघु और दो गुरु मात्राएं होती हैं। इनका व्यवहार प्रायः वाचनदार्थ गीतोंके साथ होता है। (त्रि०) २ नितान्त हिंसक, बहुत अधिक हिंसा करनेवाला।

निशार्द्धकाल (स ० पु०) रात्रिका प्रथमार्द्ध अर्थात् प्रथम दो याम।

निशावन (स ० पु०) निशावत् अन्धकारजनक वन यत्र। शणपट्ट सनका पौधा।

निशावसान (स ० क्ली०) निशायाः अवसानं। रात्रिका अवसान, रातका अन्तिम भाग, तड़का।

निशाविहार (स ० पु०) निशायां विहारो यस्य। राक्षस।

निशाहृन्द (स ० क्ली०) निशायाः वृन्दं समूहं। रात्रिगण, रात्रिसमूह।

निशावेदिन् (स ० पु०) निशां निशापरिमाण वेत्ति वेद यति वा विद वा वेद-णिनि। कुक्कुट, मुरगा।

निशास्ता (फा० पु) १ गेहूं को भिगो कर उसका निकाला और जमाया हुआ सत या गूदा। २ मांड़ी, कलफ।

निशाहस (स ० पु०) निशायां हसति पुष्पविकाशेन हसति, वा निशायां हसो विकाशो यस्य। कुमुद, कुमोदिनी।

निशाह्वा (स ० स्त्री०) निशायां शाखो यस्या। शेफालिका, सिंदुआर, निर्गुंडी।

निशाह्वा (स ० स्त्री०) निशाया आह्वा अभिधानं यस्याः। १ हरिद्रा, हल्दी। २ मालवदेशमें प्रसिद्ध जतुका नामको लता।

निशि (स ० स्त्री०) १ रात्रि, रजनी, रात। २ हरिद्रा, हलदी।

निशिकर (स ० पु०) चन्द्रमा, शशि।

निशिका (स ० स्त्री०) स्वर्णजोंक।

निशिचर (हि ० पु०) निशाचर देखो।

निशित (स ० त्रि०) नि-शो-क्त (शाच्छोरन्यतरस्याम्। पा ७।४।४१) १ शाणित, सान पर चढ़ा हुआ, तेज, चोखा। (क्ली०) २ लौह, लोहा।

निशिता (स ० स्त्री०) नि-शो क्त, टाप। निशीथ, रात्रि, रात।

निशिति (स ० स्त्री०) नि-शो क्तिन्-क्तिन्, ततो टत्वम्। तमजात, उत्तेजना, दिखावा।

निशिथ (स ० पु०) ध्रीवा (रात्रि) के एक पुत्रका नाम।

निशिदिन (हि ० क्रि०-वि०) सवदा, रातदिन, सदा।

निशिनाथ (हि ० पु०) निशानाथ देखो।

निशिनायक (हि ० पु०) निशानाथ देखो।

निशिपति (हि ० पु०) निशापति देखो।

निशिपाल (स ० पु०) १ चन्द्रमा। २ एक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें भगण जगण सगण नगण और रगण होता है।

निशिपालक (स ० क्ली०) १ छन्दोभेद, एक वर्णवृत्तका नाम। निशिपाल देखो। (पु०) २ निशिपालक प्रहरि भेद, वह द्वारपाल जो रातको पहरा देता है।

निशिपालिका (सं० स्त्री०) छन्दभेद, देखो।

निशिपुष्पा (सं० स्त्री०) निशि पुष्पाणि विकसन्ति यस्याः, [illegible]। शेफालिका, निर्गुण्डी, सिंदुवार।

निशिपुष्पिका (सं० स्त्री०) निशिपुष्पा स्वार्थे कन्। शेफालिका, निर्गुण्डी।

निशिपुष्पी (सं० स्त्री०) शेफालिका, सिंदुवार।

निशिवासर (हिं० पु०) रातदिन, सदा, हमेशा, सर्वदिन।

निशिबिन्—एक प्राचीन नगर। यह पारस्य और रोम इन दो साम्राज्योंके सीमान्त पर तथा मारदीन और [illegible] इन दोनोंके बीचमें अवस्थित है। पहले यह स्थान दृढ़ प्राचीर और दुर्गद्वारा सुरक्षित था। रोम और पारस्यवासियोंने कई बार इस प्राचीन नगरको अधिकार करनेकी चेष्टा की थी, किन्तु एक बार भी वे कृतकार्य न हुए। यह नगर और दुर्ग मोटी मोटी ईंटोंकी दीवारसे घिरा था और प्रत्येक दो दीवारके मध्यभागमें मट्टी भर कर मिलाया गया था। पारस्यराज शापुर ३३८, ३४६ और ३५० ई०में क्रमशः ६०, ८० और १०० दिन तक नगर घेरे रहे थे, लेकिन प्रति बार उन्हें निराश हो कर लौट जाना पड़ा था। अन्तमें ३६३ ई०में जोविअनके कौशलसे यह राज्य पारस्यराजके हाथ लगा था।

इस दुर्गके चारों ओर पर्वत है जहां बहुत कालसे बिच्छू और विषैले सांप पाये जाते हैं। कहते हैं, कि पारस्यराजने ६० दिनोंसे ३ मास तक इस नगरको घेरे रखा था, उस समय बिच्छूके काटनेसे कितने पारसीक सैनिकोंकी मृत्यु हुई थी। यह देख कर पारस्यसेनापति बहुत कुपित हुए और उन्होंने एक हजार बड़े बड़े मट्टीके बरतनोंमें विषाक्त बिच्छू भर कर रातको उन्हें यन्त्रकी सहायतासे नगरमें फेंकवा दिया। बरतनके फूट जानेसे बिच्छू बाहर निकले और निद्रावस्थामें हो बहुतोंको काटा जिससे वे सबके सब पञ्चत्वको प्राप्त हुए। जो कुछ बच रहे, वे भयसे कोसों दूर भाग गए और दुर्गरक्षाको उनमें जरा भी शक्ति न रह गई। पीछे मुसलमानोंने दुर्गद्वारको तोड़ फोड़ कर भीतर प्रवेश किया और बचे हुए अधिवासियोंको मार कर दुर्ग दखल किया था। कहते हैं, कि पारस्यराजने नौशेरवानके राजत्वकालमें इस उपायसे नगरको जीता था।

वर्तमान समयमें नगरका वह प्राचीन गौरव नहीं है, [illegible] है। इसके चारों ओर [illegible] है, ये [illegible] हैं। यहां [illegible] जाते हैं, किन्तु [illegible], [illegible] है। [illegible] मात्र [illegible] है।

निशान्त (सं० पु०) निशाम्यति अत्र नि-शम-क्त। [illegible] (शब्दरत्नावली। [illegible]) १ गृहद्वार, घरका द्वार। २ शान्ति, शम। ३ रात्रिका शेषभाग, प्रभात, [illegible] शुद्धान्त।

निशीथिनी (सं० स्त्री०) निशीथः अस्त्यस्याः [illegible] ङीप्। रात्रि, रात।

निशीथिनीनाथ (सं० पु०) निशीथिन्याः नाथः। १ चन्द्रमा। २ कपूर।

निशीथ्या (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

निशुम्भ (सं० पु०) नि शुम्भ हिंसायां घञ्। १ वध, हत्या। २ हिंसन, मारना। ३ मर्दन। ४ असुरविशेष। इसका विवरण वामनपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

कश्यपके दनु नामक एक स्त्री थी। इनके गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए, शुम्भ, निशुम्भ और नमुचि। ये तीनों इन्द्रसे भी अधिक बलवान् थे। नमुचि इन्द्रके हाथसे मारे गए। पीछे शुम्भ और निशुम्भ वीरतर हुए और [illegible] कर देवताओंके साथ लड़नेको तैयार हो गए। युद्धमें देवताओंकी हार हुई और उन्होंने दानवोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। शुम्भ और निशुम्भ जब त्रैलोक्यके अधिकारी हुए, तब देवगण इधर उधर छिपने लगे। देवताओंके पास जितने श्रेष्ठ रत्नादि थे उन्हें दानवोंने अपने हाथमें ले लिया। शुम्भ और निशुम्भने एक दिन रक्तबीज नामक एक दानवको इधर उधर भटकते देख कर उससे कहा, 'तुम क्यों इस प्रकार शोकभावसे विचरण करते हो?' रक्तबीजने जवाब दिया, 'मैं महिषासुरका सचिव हूं। विन्ध्यपर्वत पर कात्यायनीदेवीने महिषासुरको मार डाला है। देवीके भयसे चण्ड और मुण्ड नामक दो महावीर जंगलमें छिप कर रहते हैं।' यह सुन कर शुम्भ और निशुम्भने प्रतिज्ञा की,

'हम लोग महिषासुरके निहन्ता देवीका अवश्य आराधन करेंगे।' उसी समय नर्मदा नदीसे चण्ड और मुण्ड निकल कर शुम्भ और निशुम्भके पास चले गये। उन्होंने मिल कर सुग्रीव नामक एक दूतको विन्ध्यपर्वत पर देवीके निकट भेजा। देवीके पास पहुंच कर दूतने उनसे कहा, 'संसार भरमें शुम्भ और निशुम्भ सबसे वीर हैं और तुम भी त्रिलोकके मध्य सुन्दरी हो। हम दोनोंमेंसे तुम्हें जो पसन्द आवे उसीके गलेमें वरमाला डाल दो।' यह सुन कर देवीने कहा, 'तुम्हारा कहना यथार्थ सत्य है, लेकिन मैंने एक भीषण प्रतिज्ञा की है, वह यह है कि, जो मुझे संग्राममें जीत सकेगा उसीको मैं वरमाला पहनाऊंगी।' दूतने आ कर यह वृत्तान्त दानवराजसे कह सुनाया। इस पर दानवराजने देवीको पकड़ लानेके लिए धूम्रलोचनको भेजा। धूम्रलोचन ज्यों ही दल-बलके साथ देवीके पास पहुंचा, त्यों ही देवीने एक हुङ्कार दी जिससे वह ससैन्य भस्म हो गया। बाद दानवश्रेष्ठ शुम्भने अति प्रचण्ड सेनाके साथ चण्ड मुण्डको भेजा। वे भी देवीके साथ युद्धमें कहांके कहां ढेर हो रहे।

चण्ड मुण्डके मारे जानेके बाद तीस कोटि अक्षौहिणी सेनाके साथ रक्तबीज भेजा गया। रक्तबीज देवीके साथ घमसान युद्ध करने लगा। रक्तबीजके शरीरसे जब एक बिन्दु रक्त जमीन पर गिरता था, तब उसीसे सहस्र एक दूसरा रक्तबीज उससे उत्पन्न हो जाता था। पर वे एक एक करके देवीके अमित तेजसे मरने लगे। अन्तमें रक्तबीज भी मारा गया। विशेष विवरण रक्तबीजमें देखो।

बाद निशुम्भ स्वयं युद्धक्षेत्रमें पधारे। उन्होंने देवीका अलोकसामान्य रूपलावण्य देख कर कहा, 'कोमलांगि! तुम्हारी देह बहुत कोमल है, अतः तुम मुझे अपना पति करो।' इस पर देवीने गर्वित वाक्यमें उत्तर दिया, 'जब तक तुम मुझे युद्धमें पराजय नहीं करोगे, तब तक मैं तुम्हें अपना पति बना नहीं सकती।' फिर क्या था, दोनोंमें युद्ध होने लगा। क्रमशः देवीके हाथसे निशुम्भ भी मारा गया। पीछे शुम्भकी भी यही दशा हुई। इस प्रकार दानवोंके निहत होने पर देवगण फूले न समाए और सब कोई मिल कर उनकी स्तुति करने लगे। इन्होंने भी फिरसे स्वर्गराज्य प्राप्त किया और देवीकी कृपासे देवताओंका दुर्दिन जाता रहा, उन्होंने भी शान्तभाव धारण किया। (वामनपु० १९–२० अ०)

मार्कण्डेयपुराणके मध्य देवीमाहात्म्य अर्थात् चण्डीमें इन निशुम्भ दानवका विषय लिखा तो है लेकिन इनकी उत्पत्तिका विषय कहीं भी देखनेमें नहीं आता। चण्डीमें इनका विषय जो लिखा है वह इस प्रकार है,—पुराकालमें निशुम्भ और शुम्भ नामक दो भाई असुरोंके अधिपति थे। वे देवताओंके राज्य, यहां तक कि यज्ञका हविर्भाग भी, बलपूर्वक ग्रहण करने लगे। नितान्त निपीड़ित हो देवताओंने देवी भगवतीकी शरण ली। इस समयसे देवी मनोहर रूप धारण कर रहने लगीं। एक दिन शुम्भ और निशुम्भके भृत्य चण्ड और मुण्डने ऐसा अलौकिक रूप देख कर शुम्भ और निशुम्भसे कहा, 'महाराज! हमने हिमालय पर एक कामिनीको देखा। उसका जैसा रूप था वैसा संसार भरमें किसीका भी नहीं है। आपके पास त्रिभुवनमें जितनी अच्छी अच्छी चीजें हैं सभी तो हैं, लेकिन वैसी कामिनी नहीं है। अतः निवेदन है कि आप उसे अपनी स्त्री बना लें।' यह सुन शुम्भ और निशुम्भने सुग्रीव दूतको देवीके पास भेजा। देवीने दानवराजकी कथा सुन कर कहा,—

"यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥" (चण्डी)

जो मुझे संग्राममें जीत सकेगा और मेरा दर्प नाश करनेमें समर्थ होगा अथवा जो मेरे समान बल रखता होगा वही मेरा भर्ता होगा, दूसरा नहीं। शुम्भ निशुम्भ देवताओंसे भी बलशाली हैं। अतएव मुझे जय करना उनके जैसे वीरपुरुषोंके लिए साधारण योग है। यदि वे मुझसे विवाह करना चाहते हों, तो मुझे लड़ाईमें जीत कर ग्रहण करें। सुग्रीवने यह वृत्तान्त जब दैत्यराज शुम्भ-निशुम्भसे आ कर सुनाया, तब उन्होंने पहले धूम्रलोचनको, पीछे चण्डमुण्ड और रक्तबीजको देवीसे विग्रह करनेके लिये भेजा। जब ये दलबलके साथ देवीके हाथसे मारे गये, तब निशुम्भ स्वयं वहां पहुंचे और जब तक देवीसे लड़ते रहे। अन्तमें वे भी युद्धमें निहत हुए। निशुम्भके मारे जाने पर शुम्भके भी सिर पर काल नाचने लगा। वह

उसी समय युद्धक्षेत्रमें आ खड़ा हुआ और देवीके हाथसे मारा गया। (मार्कण्डेयपु० चण्डी) वामनपुराणमें लिखा है कि, रक्तबीज और चण्डमुण्ड महिषासुरके अमात्य थे, किन्तु चण्डीमें इसका कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आता। शुम्भ देखो।

मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत चण्डीमें एक दूसरे निशुम्भासुरका उल्लेख है। शुम्भनिशुम्भकी मृत्युके बाद देवताओंने जब देवीको स्तुति की, तब देवीने उन्हें वर दिया था, 'वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाइसवें युगमें शुम्भ और निशुम्भ नामक अत्यन्त बलवान् दो असुर जन्म ग्रहण करेंगे। मैं नन्दगोपगृहमें यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हो कर उनका नाश करूंगी।'

"वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदा गर्भ सम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥"

(मार्कण्डेयपु० ८१।३६-३७)

निशुम्भन (सं० क्लो०) नि-शुम्भ हिंसायां भावे ल्युट्। वध, मार डालना।

निशुम्भमर्दिनी (सं० स्त्री०) निशुम्भं मर्दयति मृद्-णिनि, ततो ङीप्। दुर्गा।

निशुम्भशुम्भमथनी (सं० स्त्री०) निशुम्भं शुम्भञ्च मथ्नोति, मन्थ-ल्युट् न लोपः, ततो ङीप्। दुर्गा।

निशुम्भिन् (सं० पु०) निशुम्भो मोहनाशोऽस्त्यस्येति इनि, वा नि-शुम्भ-णिनि। १ बुद्धविशेष, एक बुद्धका नाम। पर्याय—हेरम्ब, हैरुक, चक्रसम्बर, देव, वज्रकपाली, शशिशेखर, वज्रटीक। (त्रि०) २ नाशक, नाश करनेवाला।

निश्नथ (सं० त्रि०) गत, उपनीत, लाया हुआ।

निश्रम (सं० त्रि०) नियम्य सम्बध्य हरति नि-ग्रन्थ बाहुलकात् भक् वेदे सम्प्रसारं ततो पृषोदरादित्वात् साधुः। नियम्य, साज लगाया हुआ।

निशेश (सं० पु०) निशाया ईशः। चन्द्रमा।

निशैत (सं० पु०) निशायामपि एतं ईषद्गमनं यस्य। वक, बगुला।

निशोत्सर्ग (सं० पु०) निशाका अपनयन, प्रभात, तड़का।

निशोथा (सं० स्त्री०) श्वेत त्रिवृत्, सफेद निशोथ।

निशोपगाय (सं० पु०) वह जो रातमें विश्राम करता हो।

निश्कुला (सं० त्रि०) अपने कुलसे निकली हुई।

निश्चक्षुस (सं० त्रि०) चक्षुहीन, अंधा।

निश्चत्वारिंश (सं० त्रि०) निर्गतः चत्वारिंशतः ग्रहणात् ड। चत्वारिंशत् संख्यासे निर्गत, जिसमें चालीसकी संख्या न हो।

निश्चन्द्र (सं० त्रि०) १ चन्द्रमारहित। २ जिसमें चमक न हो।

निश्चन्द्रभ्र (सं० पु०) औषधभेद, एक प्रकारका अभ्रक। यह दूध, ग्वारपाठा, आदमीके मूत्र, बकरीके लेह आदि कई पदार्थोंमें मिला कर और सौ बार उनका पुट दे कर तैयार किया जाता है। कहते हैं, कि यह पद्मरागके समान हो जाता है। यह वीर्यवर्द्धक, रसायन और ज्वरनाशक माना जाता है।

निश्चप्रच (सं० त्रि०) निश्चितञ्च प्रचितञ्च मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। निश्चित और प्रचित वस्तु।

निश्चय (सं० पु०) निश्चीयतेऽनेनेति निर्-चि-अप् (ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८) १ निःसंशयज्ञान, ऐसी धारणा जिसमें कोई सन्देह न हो। पर्याय-निर्णय, निर्णयन, निश्चय, संशयका अपर ज्ञान। किसी वस्तुका संशय होनेसे उसका एक पक्ष स्थिर करनेका नाम निश्चय है। २ विश्वास, यकीन। ३ निर्णय। ४ बुद्धिकी असाधारण वृत्तिभेद। ५ दृढ़ सङ्कल्प, पक्का विचार, पूरा इरादा। ६ अर्थालङ्कारभेद, एक अर्थालङ्कार जिसमें अन्य विषयका निषेध हो कर प्रकृत वा यथार्थ विषयका स्थापन होता है। उदाहरण—

'वदनमिदं न सरोजं नयने नेन्दीवरे एते।
इह सविधे मुग्धदृशो मधुकर न मुधा परिभ्राम्य॥"

(साहित्यद० १० परि०)

यह वदन पद्म नहीं है, ये दो नीलोत्पल नहीं हैं—चक्षु हैं, हे मधुकर! इस कामिनीके समीप तुम वृथा क्यों परिभ्रमण करते हो। यहां पर पद्म और नीलोत्पल इन दो अन्य विषयोंका निषेध करके प्रकृत विषयका स्थापन हुआ। अतएव यहां निश्चयालङ्कार हुआ।

निश्चयरूप (सं० त्रि०) निश्चितका भाव वा आकृतियुक्त।

निश्चयात्मक (सं॰ त्रि॰) अपना दिल, जो बिलकुल निश्चित हो, ठीकठीक।

निश्चयात्मकता (सं॰ स्त्री॰) निश्चयात्मक होनेका भाव, यथार्थता अथ दिग्गता।

निश्चयित् (सं॰ त्रि॰) निश्चीत, स्थिर किया हुआ विचारा हुआ, ठीक किया हुआ।

निश्चर (सं॰ पु॰) एकादश मन्वन्तरीय सप्तर्षिभेद, एकादश मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक।

निश्चल (सं॰ त्रि॰) निर्-चल-अच्। १ स्थिर, जो अपनी जगहसे न हिले डुले। २ अचल, जो अपने स्थानसे न हटे। ३ अचञ्चलमनस्क, विपरीत भावनारहित।

निश्चलता (हिं॰ स्त्री॰) स्थिरता, दृढ़ता, निश्चल होनेका भाव।

निश्चलदासस्वामी—एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार। उन्होंने प्रभाकर नामक पञ्चदशीकी एक टीका लिखी है।

निश्चला (सं॰ स्त्री॰) निश्चल टाप्। १ शालपर्णी। २ पृथिवी। ३ नदीविशेष, एक नदीका नाम।

निश्चलाङ्ग (सं॰ पु॰) निश्चलमङ्गं यस्य। १ बक, बगुला। २ पर्वत प्रभृति। (त्रि॰) ३ अङ्गरहित, जो हिलता डोलता न हो।

निश्चायक (सं॰ त्रि॰) निश्चिनोतीति निर्-चि-ण्वुल्। निश्चयकर्त्ता, जो किसी बातका निश्चय या निर्णय करता हो।

निश्चारक (सं॰ पु॰) निश्चरतीति निर्-चर-ण्वुल्। १ वायु हवा। २ स्वच्छन्द। ३ पुरीषका उत्सर्ग नामका रोग जो अतिसारका एक भेद है। यह बच्चोंको प्रायः होता है और इसमें बहुत दस्त आते हैं।

निश्चित (सं॰ त्रि॰) निर् चि-कर्मणि-क्त। १ जिसके सम्बन्धमें निश्चय हो चुका हो, ते किया हुआ। २ जिसमें कोई परिवर्त्तन या हेर बदल न हो सके। (स्त्री॰) ३ नदीभेद एक नदीका नाम।

निश्चिति (सं॰ स्त्री॰) निर्-चि क्तिन्। अवधारण, निश्चय करना।

निश्चित (सं॰ पु॰) समाधिभेद योगमें एक प्रकारकी समाधि।

निश्चिन्त (सं॰ त्रि॰) निर्गता चिन्ता यस्मात्। चिन्ता रहित, जिसे कोई चिन्ता या फिक्र न हो, बेफिक्र।

निश्चिरा (सं॰ स्त्री॰) नदीभेद, एक नदीका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें है।

निश्चीयमान (सं॰ त्रि॰) निर्-चि कर्मणि शानच्। निश्चय विषय।

निश्च्यव (सं॰ क्ली॰) निश्च्यवेव पुरुषम्। दन्तधाव, मिस्सी।

निश्चेतन (सं॰ त्रि॰) निर्गता चेतना यस्मात्। १ चेतनारहित, चैतन्यशून्य, बेहोश, बदहवास। २ जड़।

निश्चेतस् (सं॰ त्रि॰) निर्गतं चेतः यस्मात्। चेतना रहित, बेसुध।

निश्चेष्ट (सं॰ त्रि॰) निर्गता चेष्टा यस्मात्। १ चेष्टा रहित चेष्टाहीन बेहोश, अचेत। २ अचल, अटल। ३ निश्चल, स्थिर।

निश्चेष्टा (सं॰ स्त्री॰) चेष्टाराहित्य बेहोशी।

निश्चेष्टाकरण (सं॰ क्ली॰) निश्चेष्टा चेष्टाराहित्य क्रियते अनेन कृ करणे ल्युट्। १ कामबाणभेद, कामदेवके एक प्रकारके बाणका नाम। २ मनःशिलादिघटित औषधभेद, वैद्यकमें एक प्रकारकी औषध जो मैनसिलसे बनाई जाती है।

निश्चोर (सं॰ त्रि॰) दस्यु या चोर वर्जित स्थान, जहाँसे चोर डाकुओंका पकड़ा भगा दिया गया हो।

निश्च्यवन (सं॰ पु॰) १ वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम। २ महाभारतके अनुसार एक प्रकारकी अग्नि। ३ च्युतिहीन।

निश्छन्द (सं॰ त्रि॰) निर्गतं छन्दो वेदो यस्य। वेदाध्ययनहीन, जिसने वेद न पढ़ा हो।

निश्छल (सं॰ त्रि॰) निष्कपट, छलरहित, सीधा।

निश्छिद्र (सं॰ त्रि॰) निर्गतं छिद्रं यस्मात्। छिद्रशून्य जिसमें छेद न हो।

निश्छेद (सं॰ त्रि॰) अविभाज्य, गणितमें वह राशि जिसका किसी गुणकके द्वारा भाग न दिया जा सके।

निश्र (सं॰ त्रि॰) निश्र असाधो बाहुलकात् नक्। अभाषित।

निश्नात (सं॰ त्रि॰) दक्षपद, मान्न पहनाया हुआ।

निश्रम (सं॰ पु॰) आवासश्रमि परिश्रम, किसी कामके न थकना अथवा न घबराना

निश्रयणी (सं॰ स्त्री॰) सोपान, सीढ़ी।

निश्राविन् (सं॰ त्रि॰) अधःपतनशील, जिसका नाश हो।

निश्रोक (सं॰ त्रि॰) सोपान, सीढ़ी।

निश्रेणिकाढ्य (सं॰ पु॰) एक प्रकारकी घास जो रस-हीन और गरम होती तथा पशुओंको कमजोर बना देती है।

निश्रेणी (सं॰ स्त्री॰) १ सोपान, सीढ़ी, जीना। २ मुक्ति। ३ खजूरवृक्ष, खजूरका पेड़।

निश्रेयस (हिं॰पु॰) १ मोक्ष। २ दुःखका अत्यन्त अभाव। ३ कल्याण।

निश्वस्य (सं॰ त्रि॰) निश्वासयुक्त। दीर्घ निश्वासका परित्याग करना, आह भरना।

निश्वास (सं॰ पु॰) नि-श्वस भावे घञ्। बहिर्मुख श्वास, नाक या मुँहके बाहर निकलनेवाला श्वास, प्राणवायुके नाकके बाहर निकलनेका व्यापार। पर्याय—पान, एतन।

निश्वाससंहिता (सं॰ स्त्री॰) निश्वासाख्या संहिता। शिवप्रणीत शास्त्रविशेष, शिवजीका बनाया हुआ एक शास्त्रका नाम। ब्राह्मणोंके अनुरोधसे उन्होंने यह संहिता लिखी है। इसमें पाशुपती दीक्षा और पाशुपत योग वर्णित है।

निश्शक्त (सं॰ त्रि॰) निर्बल, जिसमें शक्ति न हो।

निश्शङ्क (सं॰ त्रि॰) १ निर्भय, निडर, बेखौफ। २ सन्देहरहित, जिसमें शंका न हो।

निश्शील (सं॰ त्रि॰) बेमुरौवत, बदमिज़ाज, बुरे स्वभाव-वाला।

निश्शीलता (सं॰ स्त्री॰) दुष्ट स्वभाव, बदमिजाजी।

निश्शेष (सं॰ त्रि॰) जिसका कुछ अवशिष्ट न हो, जिसमेंसे कुछ भी बाकी न बचा हो।

निषकपुत (सं॰ पु॰) राक्षस, निशाचर, असुर।

निषकर्ष (सं॰ पु॰) स्वरसाधनकी एक प्रणाली। इसमें प्रत्येक स्वरका दो दो बार अलापना पड़ता है। जैसे सा सा रे रे ग ग म म प प ध ध नि नि सा सा। सा सा नि नि ध ध प प म म ग ग रे रे सा सा।

निषक्त (सं॰ पु॰) जनक, पिता, बाप।

निषङ्ग (सं॰ पु॰) नितरां सजन्ति शरा यत्र। नि सन्ज अधिकरणे घञ्। १ तूनीर, तूण, तरकश। २ खड्ग। ३ प्राचीन कालका एक बाजा जो मुँहसे फूंक कर बजाया जाता था।

निषङ्गथि (सं॰ पु॰) नि-सन्ज-अथिन्। १ आलिङ्गन। २ धनुष धारण करनेवाला। ३ रथ। ४ स्कन्ध, कन्धा। ५ तृण, घास। ६ सारथि। (त्रि॰) ७ आलिङ्गक, आलि-ङ्गन करनेवाला।

निषङ्गधि (सं॰ पु॰) निषङ्गः खड्गः धीयतेऽस्मिन् धा-आधारे कि। खड्गविधान, म्यान।

निषङ्गी (सं॰ त्रि॰) निषङ्गोऽस्त्यस्य इति इनि। १ धनुर्धर, तीर चलानेवाला। २ खड्गधारी, खड्ग धारण करनेवाला। ३ नितान्त सङ्गयुक्त। ४ तूनीरयुक्त। (पु॰) ६ तूनीर, तरकश। ७ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

निषण्ण (सं॰ त्रि॰) निषीदतिस्मेति नि-षद-गत्यर्थेति क्त निष्टातस्यन (रदाभ्यां निष्ठातो न पूर्वस्य च दः। पा ८।२।४२) उपविष्ट, शयित, स्थित, अवलम्बनकारी।

निषण्णक (सं॰ क्ली॰) निषण्ण संज्ञायां कन्। सुनिष-ण्णक शाक, सुसनी नामका साग।

निषत्ति (सं॰ स्त्री॰) नि-सद्-क्तिन्। निषदन, स्थिति।

निषत्नु (सं॰ त्रि॰) नि-सद बाहुलकात् त्नु। निषण्ण, स्थित।

निषद् (सं॰ स्त्री॰) निषीदन्त्यस्यां नि-सद्-आधारे क्विप्। १ यज्ञदीक्षा। २ वेदवाक्यविशेष। भावे क्विप्। ३ उपसदन। नि-सद्-कर्त्तरि-क्विप्। ४ उपवेष्टा।

निषद (सं॰ पु॰) निषीदन्ति षड्जादयः स्वरा यत्र, नि-सद बाहुलकात् अप्। १ निषादस्वर। २ स्वनामख्यात नृपविशेष, एक राजाका नाम।

निषदन (सं॰ क्ली॰) निषीदत्यत्र नि-सद्-आधारे ल्युट्। १ गृह, घर। २ उपवेशन स्थान, बैठनेकी जगह। (पु॰) निषीदति पापकमत्र, ल्युट्। ३ निषाद।

निषद्या (सं॰ स्त्री॰) निषीदन्त्यस्यामिति नि-सद-क्यप्। (संज्ञायां समजनिषदेति। पा ३।३।९९) १ पण्यविक्रयशाला, वह स्थान जहां कोई चीज बिकती हो, हाट। २ हट्ट, हाट। ३ क्षुद्र खट्वा, छोटी खाट।

निषद्यापरीषत (सं॰ पु॰) ऐसे स्थानमें जहां स्त्री पशु आदिका आगम हो न रहना—शेष यदि इष्टानिष्टका

उपसर्ग हो, तो भी धर्मी चित्तको चलायमान न करना। (जैन)

निषद्वर (सं॰ पु॰) निषीदन्ति विषणासमन्ति अस्मिन् पद्वेति नि-सद-ष्वरच् (नौ सदेः। उण् ३।१२८) ततो "वदिरप्रतीः" इति षत्वम्। १ कर्दम, कीचड़, चहला। निषद्वरी उपवेष्टा भट। २ प्रधान उपवेष्टा।

निषद्वरी (सं॰ स्त्री॰) निषद्वर स्त्रियाम् ङीप्। रात्रि, रात।

निषध (सं॰ पु॰) १ पर्वतभेद, एक पर्वतका नाम। मेरुके उत्तर पूर्व सागर तक विस्तृत हिमगिरि है, हिमगिरिके उत्तर हेमकूट है। यह भी समुद्र तक पहुंचा हुआ है। इसी हेमकूटके उत्तरमें निषध पर्वत अवस्थित है। भागवतमें इस पर्वतके विषयमें इस प्रकार लिखा है—इलावृतवर्षके उत्तर उत्तरादि दिक्क्रमसे क्रमशः नीलगिरि, श्वेतगिरि और शृङ्गवान्गिरि है। ये तीनों पर्वत यथाक्रमसे रम्यक वर्ष हिरण्मयवर्ष और कुरु वर्षकी सीमाके रूपमें कल्पित हुए हैं और पूर्वकी ओर विस्तृत हैं। इसी तरह इलावृतवर्षके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय नामके तीन पर्वत हैं।

(भागवत ५।१६ अ॰)

२ रामचन्द्रके वंशज कुशके पौत्र। ३ महाराज जनमेजयके पुत्रका नाम। ४ देशभेद, एक प्राचीन देशका नाम। ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है, कि यह जनपद विन्ध्याचल पर अवस्थित था। किसी किसीके मतसे यह वर्त्तमान कमायूंका एक नाम है और दमयन्ती पति नल यहींके राजा थे। ५ निषधदेशके अधिपति। ६ निषादस्वर। ७ कुरुके एक लड़केका नाम। (त्रि॰) ८ कठिन।

निषधनाम (सं॰ पु॰) निषधदेशवासी जातिविशेष। निषाद देखो।

निषधाधिप (सं॰ पु॰) निषधदेशके राजा।

निषधाधिपति (सं॰ पु॰) निषधराज, राजा नल।

निषधाभास (सं॰ पु॰) आक्षेप, अलङ्कारके पांच भेदोंमेंसे एक।

निषधावती (सं॰ स्त्री॰) विन्ध्यपर्वतजात नदीविशेष। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार एक नदीका नाम जो विन्ध्यपर्वतसे निकलती है।

निषधाश्व (सं॰ पु॰ स्त्री॰) कुरुके एक पुत्रका नाम।

निषाद (सं॰ पु॰) निषद्यति पापमस्मिन्नधोमायां यद्वा निषीदति पापमत्र, नि सद्-आधारे अधिकरणे वा घञ्। १ अनार्यजातिभेद। आर्यजातिके भारतवर्ष आनेके पहले यह जाति यहांके भिन्न भिन्न भागोंमें वास करती थी। इस जातिके लोग शिकार खेलते, मछलियां मारते, डाका डालते और इसी तरहके पापकर्म किया करते थे, इसीसे इनका नाम निषाद पड़ा है। २ वर्णसङ्कर जातिविशेष। इसका विवरण अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—जिस समय राजा वेणकी जांघ मथी गई थी, उस समय उसमेंसे काले रङ्गका एक छोटा-सा आदमी निकला था। यही आदमी इस वंशका आदिपुरुष था। धीवर इन लोगोंकी पारिभाषिक उपाधि है। मनुके मतसे इस जातिकी उत्पत्ति ब्राह्मण पिता और शूद्रा मातासे हुई है।

"ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते॥"

(मनु १०।८)

यह निषादजाति पारशव नामसे प्रसिद्ध है। विवाहित शूद्रकन्या और ब्राह्मणसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वही निषाद कहलाती है। ब्राह्मण यदि शूद्रकन्यासे विवाह करे तो उससे उत्पन्न सन्तान निषाद कहलायगी या नहीं, इस सन्देहको दूर करनेके लिए कुल्लूक भट्टने ऐसा लिखा है,—

'ऊढायां शूद्रकन्यायां निषाद उच्यते।

(कुल्लूक मनु १०।८)

याज्ञवल्क्यके टीकाके मतसे भी यह जाति ब्राह्मण पिता और शूद्रकी माताके गर्भसे उत्पन्न हुई है।

"विप्रान्मूर्द्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम्।
अम्बष्ठः शूद्र्यां निषादो जातः पारशवोऽपि वा॥"

(याज्ञवल्क्य १।९१)

मिताक्षरा आदिके मतसे ये लोग मछली मार कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, इसीसे इनका दूसरा नाम धीवर पड़ा है। ये लोग क्रूर और पापी माने गये हैं। ३ भूमिविशेषका नाम। मि॰ कारीलने निषाद को वर्त्तमान बरार बतलाया है, किन्तु यह ठीक प्रतीत

नहीं होता। नल राजाके राज्यका नाम भी निषाद नहीं है, निषध है। मालूम पड़ता है, कि महाभारतोक्त उत्तरपश्चिम निषादसे हिसार और भाटनर जिलेका बोध होता है।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है, कि पूतसलिला गङ्गाको पूर्वाभिमुखी शाखा ह्लादिनी नदी निषाद देश होती हुई पूर्वसागरमें गिरी है। गरुड़पुराणमें इस प्रकार लिखा है,—यह निषाद जाति "विन्ध्यशैलनिवासक" है अर्थात् ये लोग पहले विन्ध्यगिरिके निकटवर्ती स्थानोंमें वास करते थे और यही स्थान जहां तक सम्भव है कि महाभारतोक्त निषादभूमि नामसे उक्त हुआ है। महाभारतके वनपर्वमें विनशनका जो उल्लेख है उसके दक्षिण पश्चिममें एक छोटा राष्ट्र है जो लुप्त सरस्वतीके किनारे बसा हुआ है। सम्भवतः किसी निषादवंशीय राजाने यह राज्य बसाया होगा। रामायणोक्त शृङ्गवेरपुरमें इस निषाद-राज्यकी राजधानी थी। शृङ्गवेरपुर देखो। ४ कल्पभेद। निषीदन्ति षड्जादयः स्वरा यत्र नि-सद्-घञ्। ५ सङ्गीतके सात स्वरोंमेंसे अन्तिम और सबसे ऊंचा स्वर। नारदके मतसे यह स्वर हस्तिस्वरके समान है। इसका उच्चारण-स्थान ललाट है, लेकिन व्याकरणके मतानुसार दन्त। इस स्वरका वर्ण वैश्य है।

सङ्गीतदर्पणके अनुसार इस स्वरको उत्पत्ति असुरवंशमें हुई है। इसकी जाति वैश्य, वर्ण विचित्र, जन्म पुष्करद्वीपमें, ऋषि तुम्बरु, देवता सूर्य और छन्द जगती है। यह सम्पूर्ण जातिका स्वर है और करुण रसके लिये विशेष उपयोगी है। इसकी कूट तान ५०४० है। इसका वार शनि और समय रात्रिके अन्तको ८ दण्ड २४ पल है। इसका स्वरूप गणेशजोके समान, वर्ण कृष्ण-श्वेत और स्थान पुष्करद्वीप माना गया है। इसकी श्रुति उग्रा और क्षोभिनी है। मन्द्रस्थानमें मूर्च्छना मत्सरी और मध्यस्थानमें अपहृता है। तारस्थानमें लोचना है। आभावरी और मल्लारी ये दो रागिणियां निषादवर्जिता हैं। नारदपुराणके मतसे यह स्वर निःसन्तान है।

निषादकर्षु (सं॰ पु॰) देशभेद, एक देशका प्राचीन नाम।

निषादवत् (सं॰ पु॰) निषादोऽस्त्यस्य मतुप्, मस्य व। १ निषादस्वर। (त्रि॰) २ निषादस्वरयुक्त।

निषादित (सं॰ क्ली॰) नि-सद णिच्-क्त। १ निषदन, बैठनेकी क्रिया। (त्रि॰) कर्म णि क्त। २ उपवेशित, बैठा हुआ।

निषादिन् (सं॰ पु॰) निषीदत्यवश्यमिति नि सद णिनि। १ हस्तिपक, हाथीवान, महावत। (त्रि॰) २ उपविष्ट, बैठा हुआ।

निषिक्त (सं॰ त्रि॰) नि सिच्-क्त। १ नितान्तसिक्त। (क्ली॰) २ शुक्रजात गर्भ, वीर्यसे उत्पन्न गर्भ।

निषिक्तपा (सं॰ त्रि॰) निषिक्तं पातीति वेदे निपातनात् साधुः। १ गर्भ रक्षा-कर्त्ता, गर्भको रक्षा करनेवाला। २ सोमपानकर्त्ता, सोमपान करनेवाला।

निषिद्ध (सं॰ त्रि॰) निषिध्यते स्मेति नि-सिध्-क्त। १ निषेधविषय, जिसका निषेध किया गया हो, जिसके लिये मनाही हो, जो न करनेके योग्य हो।

पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें निषिद्धकर्मका विषय इस प्रकार लिखा है,—

ब्राह्मणोंके लिए व्याकर्षण, गव्यविक्रय, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, अर्थके लिये शुश्रुषा, कुटिलता, कुपोद और वृषलीगमन आदि कार्य निषिद्ध हैं। ये सब निषिद्ध कर्मान्वित ब्राह्मण वैदिक और तान्त्रिक कार्यके योग्य नहीं हैं। कर व्यतीत प्रतिग्रह, युद्धमें पलायन, याचकके प्रति कातरता, प्रजाका अपालन, दान और धर्ममें विरक्तता, स्वराष्ट्रकी अनपेक्षा, ब्राह्मणका अनादर, अमात्यका असम्मान और उनके काम पर निगाह न रखना तथा भृत्योंके प्रति परिहास आदि कार्य क्षत्रियोंके लिए निषिद्ध हैं। धनलोभसे मिथ्या मूल्यकथन, पशुओंका अपालन, सम्पदसत्त्वमें यज्ञानुष्ठान नहीं करना, ये सब कार्य वैश्योंके लिए तथा धनसञ्चय और दशविधकर्म शूद्रोंके लिए निषिद्ध बतलाए गए हैं। (पद्मपु॰ स्वर्गख॰ २७ अ॰)

अश्वत्थवृक्षमें खाना और उसे छेदना तथा पोपल और वटवृक्षका काटना मना है। शास्त्रोंमें जिन सब वर्णोंके जो कार्य नहीं बतलाए गए हैं, वे सभी कार्य निषिद्ध हैं। निषिद्ध कर्मका अनुष्ठान करनेसे निरयभागी होना पड़ता है। २ निवारित, दूषित, खराब, बुरा।

निषिद्धधात्री (सं० स्त्री०) आयुर्वेदमतसे वर्जित धात्री। सन्तानादिके पालनमें निम्नलिखित स्त्रियों को धात्री नहीं बनाना चाहिए। शोकाकुला, क्षुधिता परिश्रान्ता, व्याधियुक्ता, बहुप्रसवा अथवा अतिवृद्धा, चपला अङ्गहीना, अतिशय कृशाङ्गी, गर्भिणी, ज्वर-पीड़िता और जिसके स्तन लम्बे तथा ऊँचे हों (ऐसा स्तन होनेसे बालकका मुख बड़ा होता है और बड़ा स्तनसे बालकका मुख नाक ढक जाती जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है), अजीर्णभोजी, अपथ्यसेवी, दूषित कार्यमें आसक्ता, दुःखान्विता और अवशचित्ता इन सब दोषयुक्ता स्त्रीके स्तन पीनेसे बालक रोगग्रस्त होता है।

निषिद्धि (सं० स्त्री०) नि-सिध-क्तिन्। निषेध, मनाही।

निषूदन (सं० त्रि०) मारनेवाला।

निषेक (सं० पु०) निषिच्यते अभिषिच्यते इति नि-सिच-घञ्। १ जलादिका नितान्त सेचन। २ गर्भाधान। ३ रेत, वीर्य। ४ क्षरण, चूना, टपकना।

निषेकादिकृत् (सं० पु०) निषेकादि गर्भाधानादिक करोतीति कृ-क्विप्। गर्भाधानादि कर्त्ता।

निषेक्तव्य (सं० त्रि०) नि-सिच-तव्य। सेचनीय, सींचने योग्य।

निषेचन (सं० क्ली०) नि-सिच-ल्युट्। सेचन सींचना तर करना, भिगोना।

निषेचितृ (सं० त्रि०) नि-सिच-तृच्। सेचनकर्त्ता, सींचनेवाला।

निषेदिवस् (सं० त्रि०) नि-सद-क्वसु। निषण्ण, उपविष्ट, बैठा हुआ।

निषेद्धव्य (सं० त्रि०) नि-सिध-तव्य। निषेधनीय, निषेध करने योग्य मनाही लायक।

निषेद्धृ (सं० त्रि०) नि-सिध-तृच्। निषेधक, निषेध करनेवाला।

निषेद्ध्य (सं० त्रि०) प्रतिद्वन्द्विशून्य, जिसका दमन या रोकनेवाला कोई न हो।

निषेध (सं० पु०) नि-सिध-घञ्। १ प्रतिषेध, वर्जन, मनाही। २ निवृत्ति, बाधा, रुकावट। ३ विधिविपरीत ४ निवर्त्तन, वारण। निषिध्यतेऽनेन करणे घञ्। ५ अनिष्टसाधनतादि बोधक वेदादि वाक्यभेद। पुरुषको निवर्त्तक वाक्यका नाम निषेध है। जिस शास्त्रविधि द्वारा मनुष्य निवर्त्तित होती है, उसीको निषेध कहते हैं।

निषेधक (सं० त्रि०) नि-सिध-ण्वुल्। निवारक, रोकनेवाला।

निषेधन (सं० क्ली०) नि-सिध-ल्युट्। निषेध, निवारण, मना करना।

निषेधपत्र (सं० क्ली०) शास्त्रविधि, वह पत्र जिसके द्वारा किसी प्रकारका निषेध किया जाय।

निषेधविधि (सं० पु०) निषेधके अर्थमें विधि इष्टसाधन नास्तीति। अनर्थविषयमें इष्टसाधनताबोधक वाक्यभेद वह बात या आज्ञा जिसके द्वारा किसी बातका निषेध किया जाय।

निषेधित (सं० पु०) नि-सिध-णिच्-क्त। प्रतिषिद्ध, निवारित, जिसके लिये निषेध किया गया हो, मना किया हुआ।

निषेधिन् (सं० त्रि०) नि-सिध-णिनि। निषेधक, निषेध करनेवाला।

निषेधोक्ति (सं० स्त्री०) निषेधवाक्य।

निषेव (सं० त्रि०) १ निवारक, अनुरक्त। २ अभ्यासयोग्य। (स्त्री०) ३ सत्कर्ममें। ४ काम। ५ पूजा। ६ अनुसरण।

निषेवक (सं० त्रि०) १ अनुरक्त। २ पुनः पुनः एक स्थान पर आगमन या एक विषयमें अभिनिवेश।

निषेवण (सं० क्ली०) नि-सेव-भावे ल्युट्। १ सेवा। २ सेवन, व्यवहार।

निषेवणीय (सं० त्रि०) नि-सेव-अनीयर्। सेवायोग्य।

निषेवितृ (सं० त्रि०) नि-सेव-तृच्। निषेवक, सेवा करनेवाला।

निषेवितव्य (सं० क्ली०) नि-सेव-तव्य। सेवनीय, सेवाके योग्य।

निषेविन् (सं० त्रि०) अवलोकित, अनुरत, उपभोगी।

निषेव्य (सं० त्रि०) नि-सेव-भावे यत्। सेवनीय, सेवाके योग्य।

निष्क (सं० पु०) निषीदति शोभते निस्-कन् वा निष्क-अच्। १ सोनेका एक प्रकारका प्राचीन सिक्का या मोहर। भिन्न भिन्न समयोंमें इसका मान भिन्न भिन्न था।

पूर्व समयमें यज्ञोंमें राजा लोग ऋषियों और ब्राह्मणों-को दक्षिणामें देनेके लिए सोनेके समान तौलके टुकड़े कटवा लिया करते थे जो 'निष्क' कहलाते थे। सोनेके इस प्रकार टुकड़े करानेका मुख्य हेतु यह होता था कि दक्षिणामें सब लोगोंको बराबर बराबर सोना मिले, किसीको कम वा ज्यादा न मिले। पीछेसे सोनेके इन टुकड़ों पर यज्ञस्तूप आदिके चिह्न और नाम आदि बनाए या खोदे जाने लगे। इन्हीं टुकड़ोंने आगे चल कर सिक्कोंका रूप धारण कर लिया। उस समय कुछ लोग इन टुकड़ोंको गूंथ कर और उनकी माला बना कर गलेमें भी पहनते थे। भिन्न भिन्न समयोंमें निष्कका मान नीचे लिखे अनुसार था।

एक	निष्क	=	एक	कर्ष (१६ माशे)
,,	,,	=	,,	सुवर्ण ,,
,,	,,	=	,,	दीनार ,,
,,	,,	=	,,	पल (४ या ५ सुवर्ण)
,,	,,	=		चार माशे
,,	,,	=		१०८ अथवा १५० सुवर्ण

२ सुवर्ण, सोना। ३ प्राचीन कालमें चाँदीकी एक प्रकारकी तौल जो चार सुवर्णके बराबर होती थी। ४ वैद्यकमें चार माशेकी तौल। ५ सुवर्णपात्र, सोनेका बरतन। ६ हीरक, हीरा। ७ कण्ठभूषा, गलेका गहना।

निष्ककण्ठ (सं० पु०) १ सुवर्णालङ्कारविशिष्ट कण्ठ, सोनेके जेवरोंसे सजा हुआ गला। २ वरुणवृक्ष।

निष्कग्रीव (सं० त्रि०) जिसके गलेमें सोनेका अलङ्कार हो।

निष्कण्टक (सं० त्रि०) निर्गतः कण्टको यस्य। १ उपसर्गहीन। २ बाधारहित, जिसमें किसी प्रकारकी बाधा, आपत्ति या झंझट आदि न हो। ३ कण्टकहीन, जिसमें काँटा न हो। ४ शत्रुपरिशून्य, उपद्रवरहित।

निष्कण्ठ (सं० पु०) निर्गतः कण्ठः स्कन्धो यस्य। वरुणवृक्ष, वरुण नामका पेड़।

निष्कनिष्ठ (सं० त्रि०) कनिष्ठाङ्गुलिशून्य, जिसकी कनिष्ठाङ्गुलि कट गई हो।

निष्कन्द (सं० त्रि०) जो कन्द खाने योग्य न हो।

निष्कपट (सं० त्रि०) निश्छल, छलरहित, जो किसी प्रकारका छल या कपट न जानता हो।

निष्कपटता (सं० स्त्री०) निष्कपट होनेका भाव। निश्छलता, सरलता, सीधापन।

निष्कपटी (हिं० वि०) निष्कपट देखो।

निष्कम्प (सं० त्रि०) निर्गतः कम्पो यस्य। कम्पहीन, जिसमें किसी प्रकारका कंप न हो।

निष्कम्प (सं० पु०) गरुड़का पुत्रभेद, गरुड़के एक पुत्रका नाम।

निष्कम्भु (सं० पु०) देवसेनाधिपभेद, पुराणानुसार देवताओंके एक सेनापतिका नाम।

निष्कर (सं० त्रि०) करशून्य, वह भूमि जिसका कर न देना पड़ता हो।

निष्करुण (सं० त्रि०) निर्नास्ति करुणा यस्य। करुणाहीन, जिसमें करुणा या दया न हो, निर्दय, बेरहम।

निष्करूष (सं० त्रि०) परिष्कृत, साफ सुथरा।

निष्कर्म (सं० त्रि०) निर्नास्ति कर्म यस्य। कार्यविरत, जो कामोंमें लिप्त न हो।

निष्कर्मण्य (सं० त्रि०) अकर्मण्य, अयोग्य, निकम्मा।

निष्कर्मन् (सं० त्रि०) १ जो कर्मोंमें लिप्त न हो, अकर्मा। २ आलसी, निकम्मा।

निष्कर्ष (सं० पु०) निस्-कृष भावे घञ्। १ निश्चय, खुलासा। २ करार्थ प्रजापीड़न, राजाका अपने लाभ या कर आदिके लिए प्रजाको दुःख देना। ३ निःसारण, निकालनेकी क्रिया। ४ सारांश, सार, निचोड़।

निष्कर्षण (सं० क्ली०) निस्-कृष भावे ल्युट्। १ निष्कासन, निकालना, बाहर करना। २ निःसारण, बाहर निकालनेकी क्रिया।

निष्कर्षिन् (सं० पु०) मरुद्गणभेद, एक प्रकारके मरुत्।

निष्कल (सं० त्रि०) निर्गता कला यस्मात्। १ कलाशून्य, जिसमें कला न हो। २ निरवयव, जिसका कोई अङ्ग या भाग नष्ट हो गया हो। ३ नष्टवीर्य, जिसका वीर्य नष्ट हो गया हो। ४ नपुंसक। ५ सम्पूर्ण, पूरा, समूचा। (पु०) ६ ब्रह्म।

निष्कलङ्क (सं० त्रि०) १ कलङ्कहीन, जिसमें किसी प्रकारका कलङ्क न हो, निर्दोष, बेऐब।

निष्कलङ्कतीर्थ (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक तीर्थका

नाश। इसमें स्नान करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

निष्कलत्व (सं॰ क्ली॰) अविभाज्य होनेकी अवस्था, किसी पदार्थकी वह अवस्था जिसमें उसके और अधिक विभाग न हो सकें।

निष्कला (स॰ स्त्री॰) निर्गता कला यस्याः। रजोहीना स्त्री, वृद्धा स्त्री, बुढ़िया।

निष्कली (स॰ स्त्री॰) निष्कल-ङीष्। ऋतुहीना, अधिक अवस्थावाली वह स्त्री जिसका मासिकधर्म बन्द हो गया हो।

निष्कल्मष (स॰ त्रि॰) पापरहित, कलङ्कहीन, बेऐब।

निष्कषाय (स॰ त्रि॰) निर्गतः कषायः चित्तमलं यस्य। १ चित्तदोषशून्य, जिसके चित्तमें किसी प्रकारका दोष न हो, जिसका चित्त स्वच्छ और पवित्र हो। २ शुद्ध। (पु॰) ३ जिनभेद, एक जिनका नाम।

निष्कादि (स॰ पु॰) निष्क प्रभृति करके पाणिन्युक्त शब्द-गण। यथा—निष्क, पण, पाद, माष, वाह, द्रोण, षष्टि।

निष्काम (स॰ त्रि॰) निर्गतः कामो अभिलाषो यस्य। १ विषयभोगेच्छाशून्य, जिसमें किसी प्रकारकी कामना, आसक्ति या इच्छा न हो। २ कामनारहित, जो बिना किसी प्रकारकी कामना या इच्छाके किया जाय। शास्त्र और गीता आदिके मतसे ऐसा काम करनेसे चित्त शुद्ध होता और मुक्ति मिलती है।

निष्कामकर्म (स॰ क्ली॰) कामनारहित कार्य। जो सब कार्य आसक्तिपरिशून्य हो कर किया जाता है उसे निष्काम कहते हैं। गीतामें भगवान्ने अर्जुनको इसी निष्कामकर्मका उपदेश दिया था। ज्ञानयोग और निष्कामकर्म योग इन दोनोंमेंसे कौन श्रेष्ठ है, अर्जुनको जब यह सन्देह हुआ, तब उन्होंने भगवान्से पूछा था, 'भगवन्! ब्रह्मयोग वा ज्ञानयोग एवं निष्कामकर्म इन दोनोंमें यदि ज्ञानयोग ही श्रेष्ठ हो, तो मुझे घोर निष्काम कर्म मार्गमें क्यों भेजते हैं?' यह सुन कर भगवान्ने कहा था, 'अर्जुन! मैंने तुम्हें कोई विमिश्रित वाक्य नहीं कहा। तुमने बुद्धिदोषसे ऐसा समझा है। मैंने, जो यथायथ है वही तुम्हें उपदेश दिया है। पुनः ध्यान दे कर जो कुछ मैं कहता हूं, सुनो। जो कुछ भी तुम्हारे अन्तरमें मोह है वह दूर हो जायगा। इस जगत्में जो मनुष्य मङ्गलकी अभिलाषा करते हैं उनके लिए मैंने पहले ही वेदके साथ द्विविध निष्ठाका उपदेश दे दिया है। उन दो निष्ठाओंके नाम हैं ज्ञाननिष्ठा और निष्काम-कर्म निष्ठा। जो सांख्य अर्थात् आत्मविषयमें विवेकज्ञान-सम्पन्न हैं और ब्रह्मचर्य आश्रमके बाद ही समस्त कर्म आदिका परित्याग कर सकते हैं, जो वेदान्तविज्ञान द्वारा परमार्थतत्त्वका निश्चय करते हैं तथा जो परमहंस और परिव्राजक हैं उन्हींके लिए ज्ञाननिष्ठा है। ज्ञानयोगका अधिकारी न हो कर जो कर्मयोगका आश्रय लेते हैं उन्हें किसी आश्रमविशेषका नाम नहीं होता। अपितु उन्हें नरक-गामी होना पड़ता है। जो कर्मके अधिकारी हैं, पूर्वोक्त ज्ञानयुक्त नहीं हैं उन्हींके लिए कर्मयोग बतलाया गया है। अतएव निष्कामभावसे कर्मानुष्ठान किए बिना पुरुष कभी भी ज्ञाननिष्ठा नहीं पाते अर्थात् मनमें समस्त कर्मविरहित हो कर केवल ब्रह्मरूपमें नहीं रह सकते। क्योंकि निष्कामभावसे कर्म करते करते ही क्रमशः बुद्धि विशुद्ध होती है—तत्त्वज्ञानलाभके उपयुक्त हो जाती है, उसके बाद ही ज्ञाननिष्ठा हो सकती है। जो ब्रह्मचर्यके बाद ही बुद्धिविशुद्धि हो कर ज्ञाननिष्ठाके अधिकारी होते हैं उनकी पूर्वजन्मार्जित कर्मानुष्ठान द्वारा ही बुद्धि विशुद्ध होती है। सुतरां इस जन्ममें फिर कर्मानुष्ठानकी आवश्यकता नहीं रहती। तत्त्वज्ञानका उदय हुए बिना केवल कर्म परित्यागसे सिद्धि-लाभ नहीं होता। क्योंकि तत्त्वका ज्ञान नहीं होनेसे यदि समस्त क्रियाएं परित्याग की जांय, तो वह केवल बाहर की हस्तपदादि क्रियाके सम्बन्धमें ही सम्भव है। अन्तर की क्रिया कुछ भी परित्यक्त नहीं होती। कारण जब तक आत्मा अपनी समस्त कामनाओंको निःशेषरूपसे परित्याग न कर ले, तब तक क्षणकालके लिये भी कोई निष्क्रियभावमें नहीं रह सकता। क्योंकि सत्त्व, रज और तमोगुण द्वारा परिचालित हो कर चाहे भीतर वा बाहर कोई न कोई काम करना ही होगा। निष्क्रियभावमें रहना जब असम्भव हो जाता है, तब कार्यके-कारण स्वभावादि गुण रहनेसे काम भी निश्चय होगा। गुण जब बलपूर्वक काम करावेगा, तब निष्काम कर्मानुष्ठान ही मङ्गलजनक है। शास्त्रमें भी लिखा है, कि जो व्यक्ति, एक

और शिश्नादि कर्मेन्द्रियको बाहरमें संयत करके मन ही मन इन्द्रियके सभी विषय स्मरण किया करते हैं उन्हीं विमूढ़ात्मा व्यक्तियोंको मिथ्याचारी वा कपटाचारी कहते हैं। फिर जो कामनाको जीत कर मन ही मन इन्द्रियों-को आयत्त करके अनासक्तभावसे केवल बाहरमें ही कर्मेन्द्रिय द्वारा विहितकर्म करते हैं वे ही श्रेष्ठ हैं। अतएव हे अर्जुन! तुम भी फल-कामनाशून्य हो कर अपने जात्युचित जो सब कर्म हैं तथा जो नित्य और नैमित्तिक अर्थात् काम्य नहीं है उन सब कर्मोंको करो। तुम्हारे जैसे अधिकारीके लिये कर्म परित्यागको अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ कल्प है। विशेषतः तुम यदि हस्तपदादि समस्त बाह्येन्द्रिय क्रियाओंका एक ही काल-में परित्याग कर दो तो शरीर-यात्रा भी निर्वाह नहीं होगी, तुम्हें कर्मानुष्ठान करना ही होगा। यदि कर्म भिन्न रहना असम्भव हो, तो स्वधर्मोक्त निष्कामकर्मका अनुष्ठान ही विधेय है। यह निष्कामकर्मानुष्ठान करने से संसार बंधनमें फंसना नहीं पड़ता। क्योंकि निष्कामभावसे ईश्वरके लिये जो काम किया जाता है उसके सिवा अन्य कर्म द्वारा ही अर्थात् कामनामूलक कर्मानुष्ठान द्वारा ही लोगोंको संसार-बंधन हुआ करता है। किसी किसीका कहना है, कि निष्काम कर्म नहीं हो सकता। विष्णुके उद्देशसे या अन्य कोई कामना कर जो कर्मानुष्ठान किया जाता है उसे किस प्रकार निष्काम-कर्म कह सकते हैं! इस पर शास्त्रका कहना है, 'अकामो विष्णुकामो वा' विष्णु के उद्देशसे जो काम किया जाता है उसीको निष्कामकर्म कहते हैं। अत-एव हे अर्जुन! तुम भी समस्त कामनाओं वा आस-क्तियोंका परित्याग कर केवल ईश्वरार्थमें ही विहित क्रियाकलापका अनुष्ठान करो। ईश्वरके प्रसन्न होनेसे ही तुम्हारी कोई कामना-अधूरी रहने न पायगी।

पुराकालमें मनुष्य और उनके साथ साथ नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंकी सृष्टि कर प्रजापतिने कहा था, 'हे मनुष्य गण! अहरह इस नित्य नैमित्तिक कर्मानुष्ठान द्वारा तुम्हारी वृद्धि हुआ करेगी। इसी कर्मसे तुम्हारे सभी प्रकारके अभीष्ट सिद्ध होंगे। ये सब कार्य करनेसे देवता प्रसन्न होंगे और देवताओंके प्रसन्न होनेसे तुम्हारा कल्याण होगा। इस प्रकार तुम धीरे धीरे मुक्ति लाभ कर सकोगे। कारण उस कर्मस्वरूप यज्ञ द्वारा परितोषित हो कर देवगण तुम्हें नाना प्रकारके अभि-लषित भोग प्रदान करेंगे। अतएव उनके दिए हुए उन सब भोग्य द्रव्योंको यदि पुनः उन्हें समर्पण न कर केवल स्वयं भोग करोगे, तो तुम चोर कहलाओगे। वेदसे कर्मोंका उद्भव है। वेद परमात्मा ब्रह्मप्रतिष्ठित हैं। ब्रह्म जब सर्वव्यापक हैं, तब वे कर्ममें भी अनुस्यूत हैं। अतएव इस प्रकारका कर्मानुष्ठान करना तुम्हें अवश्य कर्त्तव्य है। जो इस प्रकार निष्कामकर्मका अनुष्ठान नहीं करते, वे अपनी आत्माका किसी प्रकार कल्याण नहीं कर सकते। अतएव निष्कामभावमें सब प्रकारके नित्यनैमित्तिक क्रियानुष्ठान करना तुम्हें सर्वतोभावसे उचित है। जो योगी वा आत्माराम हैं और एककालीन निःशेषरूपसे समस्त कामनाओं तथा वासनादिसे परि-शून्य हैं, उन्हें इस प्रकार कर्मानुष्ठान करनेका प्रयोजन नहीं।' आत्माराम व्यक्तिको किसी प्रकारका निष्काम-कर्म करना नहीं पड़ता, क्योंकि बुद्धिशुद्धि ही निष्काम कर्मका फल है। किन्तु जिसकी बुद्धि शुद्ध हो चुकी है, उन्हें निष्कामकर्म करनेकी आवश्यकता नहीं। लेकिन तुम लोगोंको अब भी चित्तशुद्धि नहीं हुई है। जब तक चित्तकी शुद्धि नहीं होती, तब तक तुम्हें निष्कामकर्म करना पड़ेगा। चित्तकी शुद्धिके लिये एक मात्र निष्काम कर्म द्वारा मोक्ष होता है। कुछ राजर्षि ऐसे हो गये हैं जिन्होंने निष्कामकर्म द्वारा ही बुद्धिशुद्धि करके ज्ञान-लाभ कर मोक्ष पा लिया है। फिर देखो, मेरा कुछ भी कर्त्तव्यकर्म नहीं है, तिस पर भी मैं विहित कर्मों-का अनुष्ठान किया करता हूं। इन्हीं सब कारणोंसे निष्काम कर्मका अनुष्ठान ही विधेय है। जब तक ज्ञाने-न्द्रिय और कर्मेन्द्रिय शम, दम आदि द्वारा निरुद्ध नहीं होती, तब तक कर्म करना पड़ेगा। यह कर्म यदि सकामभावसे किया जाय, तो उसका फल बन्धन अवश्य आती है। किन्तु वे सब कर्म यदि निष्कामभावसे अर्थात् फलाकांक्षारहित हो कर किए जांय, तो धीरे धीरे चित्तकी शुद्धि होती है और पीछे मोक्षलाभ होता है। कर्मानुष्ठान कर्त्तव्य इसी बुद्धिसे करना होता है। उस

कर्मके प्रति किसी प्रकारकी आसक्ति न रहे। यदि कुछ भी आसक्ति रह जाय, तो वह कर्म निष्कामकर्म नहीं होगा। वर्णाश्रमोचित ब्राह्मण क्षत्रिय आदि जिस वर्णका जो धर्मानुष्ठान विहित है, उसके अविरोधमें सब वर्णोंको वे सब धर्मानुष्ठान विधेय हैं। वे सब धर्मानुष्ठान आसक्ति-परिशून्य हो कर करने होते हैं। इस प्रकार कर्मानुष्ठान होनेसे चित्तकी शुद्धि होती है। ब्राह्मण ब्राह्मणोचित कर्मका और क्षत्रिय क्षत्रियोचित कर्मका अनुष्ठान करे। ब्राह्मण क्षत्रियका या क्षत्रिय ब्राह्मणका कार्य न करे, करनेसे वर्णाश्रम धर्ममें बाधा आ पड़ती है। अतएव आश्रमोचित कर्मोंको आसक्ति-परिशून्य हो कर करे, यही निष्कामकर्म है।'

निष्कामता (सं० स्त्री०) निष्काम होनेकी अवस्था या भाव।

निष्कामी (सं० त्रि०) निष्काम अस्त्यर्थे इनि। कामना शून्य जिसमें किसी प्रकारकी कामना या आसक्ति न हो।

निष्कारण (सं० त्रि०) निर्गतं कारणं यस्य। १ कारण-शून्य, बिना कारण, बेसबब। २ व्यर्थ, वृथा।

निष्कालक (सं० पु०) निष्कालयतीति निर्-कालि-ण्वुल्। घृताक्त केशलोमादि मूड़े हुए बाल या रोम आदि।

निष्कालन (सं० क्ली०) निर् कल मार्गे ल्युट्। १ चालन, चलानेकी क्रिया। २ मारण, मार डालनेकी क्रिया।

निष्कालिक (सं० अव्य०) कालिकस्याभावः अभावार्थे अव्ययीभावः। १ कालिकका अभाव। २ कालिमाहीन मैलशून्य, धवल।

निष्काश (सं० पु०) निर्गतः काशते शोभते प्रासादादौ निर् काश्-अच्। १ प्राकार आदिका बाहर निकला हुआ भाग, बरामदा। २ निष्काशन। ३ निःसारण।

निष्काशन (सं० पु०) निःसारण, निकालना बाहर करना।

निष्काशित (सं० त्रि०) निर्-काश णिच्-क्त। १ निष्कासित अवधारित, निकाला हुआ। २ निन्दित, जिसकी निन्दा की गई हो।

निष्कास (सं० पु०) १ निकालनेकी क्रिया या भाव। २ मकानका बरामदा।

निष्कासन (सं० पु०) निर्-कास-ल्युट्। निष्काशन, बाहर करना, निकालना।

निष्कासित (सं० त्रि०) निर्-कास णिच्-क्त। १ अविष्कृत, निकाला हुआ। २ निःसारित। ३ निर्गमित। ४ अर्पित। ५ निन्दित।

निष्किञ्चन (सं० त्रि०) नास्ति किञ्चन यस्य। अकिञ्चन, धनहीन, दरिद्र, जिसके पास कुछ न हो।

निष्किञ्चन—एक वैष्णव। भक्तमालमें इनका विवरण इस प्रकार लिखा है,—निष्किञ्चन हरिपाल एक ब्राह्मणके पुत्र थे। रात दिन वे विष्णुकी भक्तिमें लगे रहते और वैष्णवोंकी सेवा करना ही वे अपने जीवनका मुख्य व्रत या समझते थे। धीरे धीरे वैष्णवसेवामें उनका सर्वस्व जाता रहा, एक कौड़ी पासमें न बची। एक दिन इसी विषयकी चिन्ता करते करते इन्होंने किसी एक जङ्गलमें प्रवेश किया। वहां इन्होंने यह निश्चय कर लिया कि जो कोई इस राहसे गुजरेगा, उसका सर्वस्व लूट कर उसीसे वैष्णवकी सेवा करूंगा। इसी समय भगवान् रुक्मिणीके साथ वहीं हो कर द्वारका पर पहुंच गए। निष्किञ्चनने रुक्मिणीके अलङ्कार छीननेके लिए उन्हें पकड़ा और कहा, 'जननि! तुम अपने शरीरके सभी अलङ्कार अभी उतार कर दे दो।' कृष्ण कौतुक करनेके लिए उस समय कुछ दूर हट कर भाग गए। इधर रुक्मिणी अपनेको अकेली जान रोने लगी। निष्किञ्चनने तिस पर भी न माना, रुक्मिणीकी साड़ी और कङ्कण छीन लिए और बोले, 'माता! ये सब तुम्हारे वैष्णवोंकी सेवाके लिए लेता हूं, न कि अपना पेट भरनेके लिए।' इसी समय कृष्ण अपनी मूर्ति धारण कर वहां उपस्थित हुए। निष्किञ्चन उनकी स्तुति करने लगे। बाद 'मैं आपकी सेवामें अचल भक्ति हो' इतना कह श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये।

निष्किरीय (सं० स्त्री०) जातिविशेष।

निष्किल्बिष (सं० त्रि०) निर्गतं किल्बिषं यस्य। किल्बिषशून्य, पापरहित।

निष्कुट (सं० पु०) कुटात् गृहात् निष्क्रान्तः वा निस्-कुट-क। १ गृहसमीपस्थ उपवन, घरके पासका बाग, नजरबाग। २ क्षेत्रविशेष, खेत। ३ कपाट, किवाड। ४ अवरोध अन्तःपुर, जनानामहल। ५ पर्वतविशेष एक पर्वतका नाम।

निष्कुटि (सं० स्त्री०) निष्कुटी देखो।

निष्कुटिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कुमारकी अनुचरी एक मातृकाका नाम।

निष्कुटी (सं० स्त्री०) निष्कुटि-ङीप्। एला, इलायची।

निष्कुतूहल (सं० त्रि०) कुतूहलशून्य।

निष्कुम्भ (सं० पु०) निस्-कुम्भ-अच्। १ दन्तीवृक्ष। (त्रि०) निर्गतः कुम्भो यस्मात्। २ कुम्भशून्य।

निष्कुल (सं० त्रि०) निर्गतं कुलं अवयवानां समूहो यस्मात्। १ अवयवसमूहशून्य। २ सपिण्डादि कुलरहित।

निष्कुलीन (सं० त्रि०) कौलिन्यशून्य।

निष्कुषित (सं० त्रि०) निस्-कुष-क्त। १ निष्कासित। २ आकृष्ट। ३ निःसारित। ४ निस्त्वचीकृत। ५ छलविच्युत। ६ खण्डित। (पु०) ७ मरुद्गणभेद।

निष्कुह (सं० पु०) नितरां कुहयति, कुह विस्मापने अच्। वृक्ष-कोटर, पेड़का खोंड़रा।

निष्कृत (सं० त्रि०) १ मुक्त, छुटा हुआ। २ निश्चित, निश्चय किया हुआ। ३ मृत, मरा हुआ। ४ अपसारित, हटाया हुआ।

निष्कृति (सं० स्त्री०) निर्-कृ-क्तिन्। १ निस्तार, छुटकारा। २ निर्मुक्ति। ३ पापादिसे उद्धार। जो जानबूझ ब्राह्मणका वध करता है, उसकी निष्कृति नहीं है। ४ प्रायश्चित्त। ५ अग्निविशेष, एक अग्निका नाम।
(भारत ३।२१९।१४)

निष्कृप (सं० त्रि०) तीक्ष्ण, तेज, धारदार।

निष्कृष्ट (सं० त्रि०) निर्-कृष-क्त। १ सारांश। २ निश्चित।

निष्कैवल्य (सं० पु०) १ यज्ञिय स्तोमकारित शंसनात्मक शस्त्रभेद। २ शस्त्र द्वारा ग्रहणीय यज्ञपात्ररूप ग्रहभेद।

निष्कैवल्य (सं० त्रि०) केवलस्य भावः कैवल्यम्। निश्चितं कैवल्यं असहायत्वं यस्य। १ निश्चित केवलत्व। २ अन्यासहकारी, दूसरेको मदद नहीं पहुंचानेवाला। ३ निरपेक्ष। ४ निश्चितके वल्य। ५ मोक्षहीन।

निष्कोष (सं० पु०) निस्-कुष-घञ्। निष्कोषण, बहिर्निःसारण, बाहर निकालनेकी क्रिया।

निष्कोषण (सं० क्ली०) निर्-कुष-ल्युट्। अभ्यन्तरवयवका बहिर्निःसारण।

निष्कोषणक (सं० त्रि०) १ उत्तोलनयोग्य, उठाने लायक। २ उत्पाटनयोग्य, उखाड़नेयोग्य। ३ अभ्यन्तरावयवसे विच्छिन्न। ४ निःसारित, अलग किया हुआ।

निष्कोषितव्य (सं० त्रि०) निस्-कुष-तव्य। निष्कोषणयोग्य।

निष्कौरव (सं० त्रि०) निर्नास्ति कौरवः यस्य। कौरवशून्य, विना कौरवका।

निष्कौशाम्बि (सं० त्रि०) निर्गतः कौशाम्ब्याः, तत्पुरुषसमासे गोणत्वेन ह्रस्वः। कौशाम्बिनगरीसे निर्गत, जो कौशाम्बिनगरसे बाहर चला गया हो।

निष्क्रम (सं० पु०) निर्-क्रम-घञ्। १ गृहादिसे बहिर्गमन, घरसे बाहर निकलना। २ निष्क्रमणकी रीति, हिन्दुओंमें छोटे बच्चोंका एक संस्कार। ३ पतित होना। ४ मनकी वृत्ति। (त्रि०) ५ बिना क्रम या सिलसिलेका, बेतरतीब।

निष्क्रमण (सं० क्ली०) निर्-क्रम-ल्युट्। १ गृहादिसे बहिर्गमन, घरसे बाहर निकलना। २ दश प्रकारके संस्कारोंमेंसे एक संस्कार। जब बालक चार महीनेका होता है, तब निष्क्रमण किया जाता है।

शौनकने भी ऐसा ही कहा है।

"चतुर्थे मासि पुण्येऽह्नि शुक्रे निष्क्रमणं शिशोः।"
(शौनक)

किन्तु किसी किसी धर्मशास्त्रमें तृतीय मासमें भी निष्क्रमणका होना बतलाया है। यथा—

"मासे तृतीये शशिवृद्धिपक्षे क्षपाकरे शोभनगोचरस्थे।
उत्पातपापग्रहवर्जिते मे निष्कासनं सौख्यकरं शिशूनाम्॥"
(राजमार्तण्ड)

जन्मसे तृतीय मासमें बच्चोंका जो निष्क्रमण होता है, वह शुभप्रद माना गया है। निष्क्रमण प्रसङ्गका बृहस्पतिने ऐसा लिखा है,—

"अथ निष्क्रमणं नाम गृहात् प्रथम निर्गमः ।
भद्रायां कथ्यां स्मारायु श्रीकाम्य क्रियोः ॥"

(बृहस्पति)

बच्चोंका घरसे जो प्रथम निर्गमन या बाहर जाना होता है, उसीका नाम निष्क्रमण है। बच्चोंका यथोक्त विधानसे यदि वह निष्क्रमण कार्य न किया जाय, तो उनकी आयु और श्री भी नष्ट हो जाती है। यहां पर इस प्रकार अनिष्टफलश्रुति द्वारा निषेधविधि कही गई है अर्थात् यथोक्त विधानसे बच्चोंका निष्क्रमण अवश्य विधेय है। शास्त्रानुसार निष्क्रमणकार्य करनेसे सम्पत्तिवृद्धि और दीर्घायु प्राप्त होती है। यमने लिखा भी है,—

"तृतीये मासि कर्तव्यं शिशोः सूर्यस्य दर्शनम् ।
चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥" (यम ध)

शिशुको तृतीयमासमें सूर्यदर्शन और चतुर्थ मासमें अग्नि तथा चन्द्रदर्शन कराना है। गोभिलगृह्यसूत्रमें भी तृतीयमासमें निष्क्रमणका होना बतलाया है।

"जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्तस्य तृतीयायाम् ॥"

(गोभिल)

किसी किसी धर्मशास्त्रके मतसे तृतीय मासमें और किसीके मतसे चतुर्थमासमें निष्क्रमणका काल बतलाया है। इसमें परस्पर विरोध उपस्थित होता है। किन्तु ज्योतिःशास्त्रमें इसकी व्यवस्था इस प्रकार लिखी है,—

वामदेवियों को तृतीय मासमें और यजुर्वेदियों तथा अन्यदेवियोंके चतुर्थ मासमें निष्क्रमण करना चाहिये।

'मासे तृतीये (वि तु) छन्दोगानां वेदविदः
जन्मान्तरे तृतीये शुक्लतृतीयायामिति" (ज्योतिस्तत्त्व)

निष्क्रमणके विहित दिन,—रिक्तातिथ तिथि अर्थात् चतुर्थी, षष्ठी और चतुर्दशी भिन्न तिथि, शनि और मङ्गल भिन्नवार एवं आर्द्रा, अश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद और शतभिषा भिन्न नक्षत्र, कन्या, तुला, कुम्भ और सिंह लग्नमें तीसरे या चौथे मासमें बच्चोंका जो निष्क्रमण होता है वह प्रशस्त है।

भवदेव भट्टने सामवेदियोंके लिये निष्क्रमणका विषय इस प्रकार लिखा है,—शिशुको जन्म दिनसे तृतीय शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें प्रातःकाल स्नान करावे। पीछे दिनावसान होने पर, सायं सन्ध्या करनेके बाद स्नातशिशुका पिता चन्द्रमाकी ओर हाथ जोड़ खड़ा रहे। अनन्तर माता शिशुके अङ्गमें कुमारको ढक कर दक्षिणकी ओर अपने स्वामीके वामपार्श्वमें पश्चिमको मुख किए खड़ी रहे और शिशुका मस्तक उत्तरकी ओर करके पिताको समर्पण कर दे। इतना हो जाने पर माता स्वामीके पीछे हो कर उत्तरकी ओर चली जाय और चन्द्रमाकी ओर मुंह किये खड़ी रहे। इस समय पिताको निम्नलिखित मन्त्रका जप करना चाहिये—

मन्त्र—"प्रजापति र्ऋषिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्रो देवता कुमारस्य चन्द्रदर्शने विनियोगः। ओं यत्ते सुसीमे हृदयं हितमन्तः प्रजापतौ वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ।

प्रजापति र्ऋषिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्रो देवता कुमारस्य चन्द्रदर्शने विनियोगः। ओं यत् पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितं वेदामृतस्याहं नाम माहं पौत्रमघं रिषम् ।

प्रजापति र्ऋषिरनुष्टुप्छन्द इन्द्राग्नी देवते कुमारस्य चन्द्रदर्शने विनियोगः। ओं इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापती यथायं न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि।"

इन तीन मन्त्रोंका जप करके पिता पुत्रको चन्द्रदर्शन करावे, पीछे चन्द्रमाको अर्घ्य दे। अर्घ्यमन्त्र—

"क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम ॥"

सूर्यको अर्घ्य देना हो, तो इस मन्त्रसे दे—

"एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥"

बादमें पिता उसी प्रकार कुमारको उत्तर मुंह किए माताकी गोदमें दे दे। पीछे यथाविधि 'वामदेव्य' आदि द्वारा शान्तिकर्म करके गृहप्रवेश करे। अनन्तर अपर शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें सायं सन्ध्याके बाद पिता चन्द्राभिमुख हो कर जलाञ्जलि प्रदान करे। बादमें इस मन्त्रसे जलाञ्जलिका त्याग कर दे,—

मन्त्र— प्रजापति र्ऋषिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्रो देवता कुमारस्य चन्द्रदर्शने विनियोगः। ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितं तदहं विद्वांस्तत् पश्यन् माहं पौत्र

मधं ददम्।' पीछे प्रसन्नक दो बार जलाञ्जलि देनी पड़ती है।

इतना हो जाने पर शान्तिकार्य और अच्छिद्राव धारण करके गृहप्रवेश करे। (भरतभट्ट) ३ संसार सक्तित्यागान्तमें वनगमन, सांसारिक विषयवासनाके बाद वनको जाना।

निष्क्रमणिका (सं० स्त्री०) चार महीनेके बालकको पहले पहल घरसे निकाल कर सूर्य दर्शन कराना।

निष्क्रमणित (सं० त्रि०) निष्क्रमण सञ्ज तथैं तारकादित्वादितच्। सञ्जातनिष्क्रमण, जिसका निष्क्रमण संस्कार हो चुका हो।

निष्क्रय (सं० पु०) निष्क्रीयते विनिमीयतेऽनेनेति निर्-क्री-अच् (एरच्। पा ३।३।५६) १ भृति, वेतन, तनखाह। २ विनिमयद्रव्य, वह वस्तु जो बराबर मोलकी वस्तुसे बदला की गई हो। ३ विक्रय विक्री। ४ क्रय, खरीदना। ५ सामर्थ्य, शक्ति। ६ पुरस्कार, इनाम। ७ इन्द्रियोग। ८ निर्गमन। ९ प्रत्युपकार।

निष्क्रामण (सं० क्ली०) निर्-क्रम-णिच्-ल्युट्। निष्क्रमण देखो।

निष्क्रिय (सं० त्रि०) निर्गता क्रिया, ततो यत्वम्। क्रिया-व्यापार शून्य, जिसमें कोई क्रिया या व्यापार न हो।

"निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्॥"
(श्रुति)

आत्मा निर्गुण है, निष्क्रिय है, उसका कोई कार्य नहीं है।

"निष्क्रियस्य तदसम्भवात्।" (सांख्यद० १।४९)

आत्मा यदि निष्क्रिय हो, तो उसकी गति किस प्रकार हो सकती है? जो निष्क्रिय है उसकी गति असम्भव है। पूर्ण और सर्वव्यापक आत्माका कहीं भी प्रवेश और निर्गम नहीं है। आकाश क्या कभी कहीं जाता या आता है? जो परिच्छिन्न वस्तु है, उसीका प्रवेश और निर्गम होता है, दूसरेका नहीं। आत्माको यदि परिच्छिन्न मान लें, तो वह अपकृष्ट सिद्धान्त होगा, यह प्रमाणसे बाहर है।

श्रुतिमें आत्माकी परलोकगतिरूप क्रियाका उल्लेख है सही, किन्तु वह औपाधिक है, यथार्थ नहीं। आत्माकी लिङ्गशरीररूप उपाधि है, यह परलोकमें गमनागमन करती है। ऐसा देख कर श्रुतिने उपचारक्रमसे तदुपहित आत्माकी परलोकगतिकी वर्णना की है। सच पूछिये तो आत्मा कहीं भी नहीं जाती। जिस प्रकार घटके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेके बाद तदुपहित आकाश गया है ऐसा उल्लेख किया जाता है, उपयुक्त आत्माकी गतिको भी ठीक उसी प्रकार जानना चाहिए। अतएव आत्मा निष्क्रिय है।

निष्क्रियता (सं० स्त्री०) निष्क्रियस्य भावः, तल्-टाप्। निष्क्रिय होनेका भाव या अवस्था।

निष्क्रियात्मता (सं० स्त्री०) निष्क्रिय आत्मा यस्य, निष्क्रियात्मन्, तस्य भावः तल्-टाप्। निष्क्रिय स्वरूपता, निर्णयत्व, असवधानता।

निष्क्रीति (सं० स्त्री०) मुक्ति।

निष्क्रोध (सं० त्रि०) निर्नास्ति क्रोधः यस्य। क्रोधहीन, जिसे गुस्सा न हो।

निष्क्लेश (सं० त्रि०) १ क्लेशहीन, सब प्रकारके कष्टोंसे मुक्त। २ बौद्धमतानुसार दशों प्रकारके क्लेशोंसे मुक्त।

निष्क्लेशलेश (सं० त्रि०) निर्नास्ति क्लेशलेशः यस्य। क्लेशलेशशून्य, सब प्रकारके कष्टोंसे मुक्त।

निष्क्वाथ (सं० पु०) निःसृतः क्वाथो यत्र। मांसादिका क्वाथ, मांस आदिका रस, शोरवा। इसका पर्यायवाची शब्द रसक है।

निष्टक्मन् (सं० त्रि०) निर्-तक-सहने-क्वनिप्, ततो षत्वे साधुः। नितरां सहनशील।

निष्टक्वरी (सं० स्त्री०) निष्टक्मन्, वनोरच् इति ङीप्, रश्चान्तादेशः। नितान्त सहनशीला।

निष्टपन (सं० क्ली०) जलाना।

निष्टप्त (सं० त्रि०) १ उज्ज्वलीकृत, वार्निश दिया हुआ। २ उत्कृष्ट रसमयुक्त, अच्छी तरह पकाया हुआ।

निष्टर्क्य (सं० त्रि०) १ उधेड़ कर छुटकारा देना। २ तर्कका अयोग्य।

निष्टानक (सं० पु०) नितान्तस्तानकः शब्दभेदः, ततो षत्वं दुत्वञ्च। सव्यञ्ज शब्द, पानीको सो आवाज होना।

निष्टि (सं० स्त्री०) निस-समाभो-क्तिच्। दक्षकी कन्या और कश्यपकी स्त्री दितिका एक नाम।

निष्ठ्यो (स० स्त्री०) अदितिका एक नाम।

निष्ठुर (स० त्रि०) निस्-स्तृ-क्विप् भेदे बाहुलकात् उ ततो बत्व टुत्वञ्च। शत्रुओं का अभिभावक, शत्रु विजेता।

निष्ठर (स० पु०) निर्गत एलापत्री स्त्रेन्न। निष् गतार्थे स्यप् वा, (अव्ययात् त्यप्। पा ४।२।१०४) इत्यस्य 'निसो गते' इति वार्त्तिकोक्त्या त्यप्, ततो निसग षोप- धस्य टुत्वञ्च। १ चण्डालादि। २ म्लेच्छ जातिभेद म्लेच्छोंकी एक जातिका नाम जिसका उल्लेख वेदोंमें है।

निष्ठ (स० त्रि०) नितरां तिष्ठतीति नि स्था-क। १ स्थित, ठहरा हुआ। २ तत्पर, लगा हुआ। ३ जिसमें किसीके प्रति श्रद्धा या भक्ति हो।

निष्ठा (स० स्त्री०) नितरां तिष्ठतीति, नि स्था-क, ततो षत्वं स्त्रियां टाप् च। १ निष्पत्ति, इति, समाप्ति। २ नाश। ३ निर्वाणकी अन्तिम स्थिति, ज्ञानकी वह परमावस्था जिसमें आत्मा और ब्रह्मकी एकता हो जाती है। ४ निर्वहन, निर्वाह, गुजर। ५ धर्मादिमें श्रद्धा चित्तका जमना। धर्मादिविषयमें ऐकान्तिक अनुरागका नाम निष्ठा है। यह निष्ठा दो प्रकारकी है—ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा। ज्ञानियोंके लिये ज्ञाननिष्ठा और कर्मयोगियोंके लिये कर्मनिष्ठा ही प्रशस्त है। इस कर्मनिष्ठा द्वारा जगत्में प्रतिष्ठा होती है, ये निष्ठ व्यक्ति बहुत आपदाओंसे अपने धर्मकी रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। ६ धर्म, गुरु या बड़े आदिके प्रति श्रद्धा भक्ति, पूज्यबुद्धि। ७ अवधारण निश्चय। ८ व्याकरण-परिभाषित क्त, क्तवतु प्रत्यय। ९ स्थिति, अवस्था, ठहराव। नितरां तिष्ठन्ति भूतान्यत्र आधारे बाहुलकात् क। १० प्रलय कालमें सर्वभूतस्थितिके आधार विष्णु, जिनमें प्रलयके समय समस्त भूतों की स्थिति होती। ११ चिन्ता।

निष्ठागत (स० त्रि०) निष्ठां गतः, 'द्वितीयाश्रितातीतादिना द्वितीया तत्पुरुषः। निष्ठाप्राप्त।

निष्ठान (स० स्त्री०) नि-स्था-करणे ल्युट्। व्यञ्जन, चटनी आदि।

निष्ठानक (स० पु०) १ नागभेद, एक नागका नाम। निष्ठान भावे कन्। निष्ठान, व्यञ्जन, चटनी आदि।

निष्ठान्त (स० त्रि०) निष्ठा नाशोऽन्तो यस्य। नाशान्त वस्तु, जिसका नाश अवश्य हो, जो अविनाशी न हो।

निष्ठाय (स० त्रि०) निष्ठायुक्त।

निष्ठावत् (स० त्रि०) निष्ठा विद्यतेऽस्य, निष्ठा मतुप् मस्य व। निष्ठायुक्त, जिसमें निष्ठा या श्रद्धा हो।

निष्ठावान् (हिं० वि०) निष्ठावत् देखो।

निष्ठित (स० त्रि०) नि-स्था क्त। १ स्थित, दृढ़, ठहरा या जमा हुआ। २ निष्ठायुक्त, जिसमें निष्ठा हो। ३ सम्यक् ज्ञाता।

निष्ठेव (स० पु०) नि-ष्ठिव भावे घञ्, बाहुलकात् दीर्घः। ष्ठीवन, थूक।

निष्ठीवन (स० क्ली०) नि-ष्ठिव भावे ल्युट्, 'ष्ठिवुक्लमु- चमां शिति' दीर्घः या 'वर्णविकारादिनात् बाहुः। १ मुख द्वारा श्लेष्मादिका वमन थूक। पर्याय—निष्ठेव, निष्ठ्यूति, निष्ठीवन, निष्ठेवा। २ वैद्यकके अनुसार एक औषध। इस औषधको थूकने करनी पड़ती है, इसीसे इसका नाम निष्ठीवन पड़ा है। सेंधव, सोंठ, पीपर और मिर्चका चूर्ण बना कर उसे अदरखके रसमें मिलावें। बाद उसे कर मुंहमें रख कुछ काल तक रहने दें। ऐसा करनेसे हृदय, मन्या, पार्श्व, मस्तक और गलेसे कफ आशयोंसे निकलने लगता है और शरीर कुछ हलका मालूम पड़ता है। इसके सेवन करनेसे पर्वभेद ज्वर, मूर्च्छा निद्रा श्वास, गलरोग, मुख और आंखका भार, जड़ता, उत्क्लेद आदि रोग जाते रहते हैं। दोषके अनुसार विचार कर एक, दो, तीन या चार बार तक भी निष्ठीवन व्यवहार्य है। यह सान्निपातिक रोगको अति उत्कृष्ट औषध है।

(भैषज्यरत्नावली ज्वराधिकार)

निष्ठीविका (स० स्त्री०) निष्ठीवन।

निष्ठीवित (स० क्ली०) निष्ठीव करोति ततो निष्ठीव णिच् भावे-क्त। निष्ठीवनकरण, थूक फेंकनेकी क्रिया।

निष्ठुर (स० क्ली०) नि-स्था मद्गुरादयश्चेति उरच्। १ परोष वाक्य। (त्रि०) २ कठिन, कड़ा, सख्त। ३ कठोर, क्रूर, बेरहम।

निष्ठुरता (स० स्त्री०) निष्ठुरस्य भावः निष्ठुर-तल् टाप्। १ निष्ठुरका भाव, कठोरता, कड़ाई, सख्ती। २ निर्दयता क्रूरता, बेरहमी।

निष्ठुरिक (सं० पु०) नागभेद, एक नागका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें है।

निष्ठ्यूत (सं० त्रि०) नि-ष्ठिव-क्त ततो ऊट्। (च्छ्वोः शूडिति। पा ६।४।१९) १ क्षिप्त, फेंका हुआ। २ उद्गीर्ण, उगला हुआ, मुँहसे निकाला हुआ।

निष्ठ्यूति (सं० स्त्री०) नि-ष्ठीव-क्तिन्। निष्ठीवन, थूक

निष्ठेव (सं० पु०) नि ष्ठीव-घञ्। १ निष्ठीवन, थूक

निष्ठेवन (सं० क्ली०) नि ष्ठिव-भावे ल्युट्। निष्ठीवन, थूक।

निष्ण (सं० त्रि०) नि-स्ना-क, 'निनदीभ्यां स्नातेः कौशले' इति सूत्रेण षत्वं, षत्वे टुत्वं। कुशल, होशियार।

निष्णात (सं० त्रि०) नितरां स्नाति स्मेति नि-स्ना-क्त, ततो षत्वं, षत्वे टुत्वं (निनदीभ्यां स्नातेः कौशले। पा ८।३।८९) १ विज्ञ, किसी विषयका अच्छा ज्ञाता। २ निपुण, कुशल, चतुर। ३ पारगत, पूरा जानकार ४ प्रधान, श्रेष्ठ, मुखिया।

निष्पक्व (सं० त्रि०) नितान्तं पक्वम्। क्वथित, पकाया हुआ, उबाला हुआ।

निष्पक्ष (सं० त्रि०) पक्षपातरहित, जो किसीके पक्षमें न हो।

निष्पक्षता (सं० स्त्री०) निष्पक्ष होनेका भाव, पक्षपात न करनेका भाव।

निष्पङ्क (सं० त्रि०) पङ्कशून्य, निर्मल, साफ सुथरा।

निष्पतन (सं० क्ली०) निर्-पत-ल्युट्। निर्गमन, बाहर होना।

निष्पताकध्वज (सं० पु०-स्त्री०) राजाओंका पताकाशून्य दण्डविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका दण्ड जिसे राजा लोग अपने पास रखते थे। यह दण्ड ठीक पताकाके दण्डके समान होता था, अन्तर केवल इतना ही होता था कि इसमें पताका नहीं होती थी।

निष्पतिष्णु (सं० त्रि०) निर्-पत बाहुलकात् इष्णुच्, 'ततो षत्वं'। नितान्त पतनशील, गिरने योग्य।

निष्पतिसुता (सं० स्त्री०) निर्गतो पतिः सुतश्च यस्याः, ततो वाच्य षत्वं। अवीरा स्त्री, वह स्त्री जिसे स्वामी-पुत्र न हो, मुसम्मात।

निष्पत्ति (सं० स्त्री०) निर्-पद क्तिन्। १ समाप्ति, अन्त। २ सिद्धि, परिपाक। ३ नादकी अवस्थाविशेष, हठयोगके अनुसार नादकी चार प्रकारकी अवस्थाओंमेंसे अन्तिम अवस्था। चार अवस्थाओंके नाम ये हैं, आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति। ४ अवधारण, निश्चय। ५ मुक्तता, सदा। ६ मीमांसा। ७ निर्वाह, निबाह। ८ अनुपात (Ratio)।

निष्पत्र (सं० त्रि०) निर्गतं अन्य पार्श्वेन निःसृतं पत्रं शरपुङ्खो यस्य। १ जो मपुङ्खशर मृगका एक पार्श्व छेद कर दूसरा पार्श्व हो कर निकल जाय। २ जिसमें पत्ते न हो, बिना पत्तोंका।

निष्पत्रक (सं० त्रि०) निर्गतं पत्रं पर्णं यस्य कप्। १ पत्रशून्य, जिसमें पत्ते न हो। (पु०) २ करीरवृक्ष, करीलका पेड़।

निष्पत्रिका (सं० स्त्री०) निष्पत्र-क-टाप्, टापि अत इत्वम्। करीरवृक्ष, करीलका पेड़।

निष्पत्राकृति (सं० स्त्री०) निष्पत्र-डाच्-कृ-भावे-क्तिन्। अतिव्यथन, अत्यन्त कष्ट, भारी तकलीफ।

निष्पद् (सं० स्त्री०) निर्-पद-क्विप्। १ निर्गत, बाहर निकालना।

निष्पद (सं० त्रि०) १ पादहीन, बिना पहिए या पैरका। (क्ली०) निर्गतं पदं पादो यस्य, ततो षत्वम्। २ पाद-हीन यान, वह सवारी जिसमें पहिए आदि न हो।

निष्पदी (सं० स्त्री०) निर्गतः पादोऽस्यां पादोऽन्तलोपः, ततो कुम्भपद्यादित्वात् ङीष्, पद्भावः विसर्गस्य षः। १ पदहीना स्त्री, बिना पैरकी औरत।

निष्पन्द (सं० त्रि०) निर्गतः स्पन्दो यस्य। स्पन्दन-रहित, जिसमें किसी प्रकारका कम्प न हो।

निष्पन्दन (सं० त्रि०) स्पन्दनशून्य, कम्पनरहित।

निष्पन्न (सं० त्रि०) निर्-पद-क्त। १ निष्पत्तिविशिष्ट, जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो। २ सम्पन्न, जो समाप्त या पूरा हो चुका हो।

निष्पराक्रम (सं० त्रि०) सामर्थ्य हीन, कमजोर।

निष्परिकर (सं० त्रि०) १ जो युक्तहस्त नहीं हो। २ जो प्रस्तुत नहीं है, बिना किसी तैयारीका। ३ दृढ़सङ्कल्प-हीन।

निष्परिग्रह (सं० त्रि०) निर्गतः परिग्रहः यस्य। १

विषयादि संग्रहरहित जिसे कोई सम्पत्ति न हो। २ जो दान आदि न ले। ३ जिसके स्त्री न हो, रँडुआ। ४ अविवाहित, कुँआरा।

निष्परिच्छद (स० त्रि०) १ परिच्छदशून्य बिना कपड़े का। २ अनुचरशून्य, बिना नौकरका।

निष्परिदाह (स० त्रि०) जो दग्ध न हो सके, जो अग्नि से न जले।

निष्परीक्ष (स० त्रि०) जिसकी परीक्षा न हो।

निष्परीहार (स० त्रि०) जिसका परिहार न हो।

निष्परुष (सं० त्रि०) १ कोमल, जो रूखापन या कर्कश न हो। २ जो कर्कश या कठोर न हो।

निष्पवन (सं० क्लो०) निस्‌ पू भावे ल्युट्, ततो णत्वं। धान्यादिका निस्तुषकरण, धान आदिकी भूसी निकालना, छूटना, फटकना।

निष्पाण्डव (स० त्रि०) पाण्डवशून्य।

निष्पातृ (स० पु०) निर्गतो पादो यस्य, अथवा जिसको पैर न हो। निर्गतपादक।

निष्पाद (स० पु०) १ धनाज्यकी भूसी निकालनेका काम। २ बोड़ा नामकी तरकारी या फली। ३ मटर। ४ सेम।

निष्पादक (स० त्रि०) निर्‌-पद-णिच्‌-ण्वुल्‌। निष्पत्तिकारक, निष्पत्ति करनेवाला।

निष्पादन (स० क्लो०) निर्‌-पद णिच्‌-ल्युट्‌। निष्पत्तिकरण, निष्पत्ति करना।

निष्पादित (स० त्रि०) निर पद णिच्‌ क्त। १ सम्पादित। २ उत्पादित। ३ शोधित।

निष्पादी (स० स्त्री०) बोड़ा नामकी तरकारी या फली, लोबिया।

निष्पाद्य (स० त्रि०) निस्‌-पद णिच्‌-यत्‌। सम्पाद्य, निर्वाह करने योग्य।

निष्पान (स० क्लो०) नि-पीयतेऽस्मै पान, इस प्रकार पान जिसका कुछ भी बच न रहे।

निष्पाव (स० पु०) निष्पूयते तुषाद्यपनयनेन धान्यादिरनेन निर्‌-पू-णिच्‌ घञ्‌। १ धान्यादिका निस्तुषीकरण, धनाजको भूसी निकालनेका काम। पर्याय—पवन, पव, पूतीकरण। २ शर्पदको वायु धान्यको जिससे धानकी भूसी आदि उड़ाई जाती है। ३ राजमाष, लोबिया। ४ निर्विकल्प। ५ कड़ङ्गर, भूसी, पैरा। ६ श्वेतशिम्बी, सफेद सेम। भावप्रकाशमें निष्पाव, राज शिम्बी, वल्लक और श्वेतशिम्बिक एक पर्यायवाचक शब्द बतलाए गये हैं। गुण—मधुर, कषायरस, रूक्ष, गुरु, विपाक, शुक, वायुवर्धक, स्तन्य, पित्त रक्त मूत्र वायु और विदाहविकारजनक, चक्षुरोगमें, विष, कफ, शोथ और शुक्रनाशक है। ७ शिम्बीका परिमाण।

निष्पावक (स० पु०) निष्पाव एव स्वार्थे कन्‌। श्वेत शिम्बी, सफेद सेम।

निष्पावी (स० स्त्री०) निष्पाव-स्त्रियां ङीष्‌। शिम्बी विशेष, बोड़ा नामकी तरकारी या फली। यह दो प्रकारकी होती है हरितवर्णकी और शुभ्रवर्णकी। हरितवर्णके पर्याय—श्यामला, फलिनी, मधुपर्णिका, मधुपर्णी कपिशा, शिम्बी, गुच्छफला, विमलफलिका, निष्पावि और शिम्बिटा। श्वेताके पर्याय—पाण्डुशिम्बिका, मधुनिष्पाविका, कृष्णनिष्पाविका, धाम्या, गवगुच्छफला और शमना। गुण—कषाय, मधुर रस, कफवातघ्न, शोथ, दीपन और अतिसारघ्न।

निष्पिष्ट (स० त्रि०) नि पिष-क्त। चूर्णीकृत, चूर कियाहुआ।

निष्पीड़ (स० त्रि०) निस्‌-पीड़-घञ्‌। निष्पीड़न, निचोड़ना।

निष्पीड़न (स० क्लो०) निस्‌-पीड़-ल्युट्‌। निपीड़न, निचोड़ना, गीले कपड़ेको दबा कर उसमेंसे पानी निकालना।

निष्पीड़ित (सं० त्रि०) निस्‌-पीड़-क्त। जो निचोड़ा गया हो।

निष्पुलिकाश्चित (स० त्रि०) कर्पूर या देवभोग्य वालकको लक्ष्मणविशिष्ट।

निष्पुत्र (स० त्रि०) निर्गताः पुत्राः यस्य। अपुत्रक जिसके पुत्र न हो।

निष्पुराण (स० त्रि०) पुराणशून्य, पुरातनरहित, नया।

निष्पुरुष (स० त्रि०) पुरुषशून्य पुरुषहीन जहां आदमी न हो।

निष्पुलाक (स० त्रि०) निर्गत-पुलाकी यस्मात्‌। १

पुलाकरहित, जिसमें भूसी आदि न हो। (पु०) २ जैनभेद, आगामी उत्सर्पिणीके अनुसार १४वें अर्हत्का नाम।

निष्पेष (सं० पु०) निर्-पिष-घञ्। १ निष्पीड़न, निचोड़ना। २ निघर्षण, घिसना, रगड़ना। ३ चूर्णन, चूर करना। अभावार्थे अव्ययीभाव। ४ पेषणाभाव।

निष्पेषण (सं० क्ली०) निस्-पिष-ल्युट्। घर्षण, घिसना, पीसना।

निष्पौरुष (सं० त्रि०) पौरुषहीन, जिसमें पुरुषत्व न हो।

निष्प्रकम्प (सं० त्रि०) निर्गतः प्रकम्पो यस्य। १ प्रकम्पशून्य। (पु०) २ त्रयोदश मन्वन्तरीय सप्तर्षिभेद, पुराणानुसार तेरहवें मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एकका नाम।

निष्प्रकारक (सं० त्रि०) निर्गतः प्रकारकः यस्य। प्रकारकशून्य, निर्विकल्पक, जिसमें ज्ञाता और ज्ञेयमें भेद नहीं रह जाता, दोनों एक हो जाते हैं।

निष्प्रकाश (सं० त्रि०) निर्गतः प्रकाशः यस्मात्। प्रकाशहीन, जिसमें रोशनी न हो।

निष्प्रचार (सं० त्रि०) प्रचारशून्य, जो एक स्थानसे दूसरे स्थान पर न जा सके, जिसमें गति न हो।

निष्प्रताप (सं० त्रि०) प्रतापहीन, हेय, नीच।

निष्प्रतिक्रिय (सं० त्रि०) प्रतिक्रियारहित, प्रतीकारहीन, जिसका प्रतीकार न किया जाय।

निष्प्रतिग्रह (सं० त्रि०) प्रतिग्रहहीन।

निष्प्रतिघ (सं० त्रि०) प्रतिबन्धकशून्य, जिसमें कोई रोकटोक न हो।

निष्प्रतिद्वन्द्व (सं० त्रि०) प्रतिद्वन्द्वरहित।

निष्प्रतिपक्ष (सं० त्रि०) प्रतिपक्षशून्य, शत्रुहीन।

निष्प्रतिभ (सं० त्रि०) निर्नास्ति प्रतिभा यस्य। १ अज्ञ, नासमझ, नादान। २ जड़, मूर्ख। निर्गता प्रतिभा दीप्तिर्यस्य। ३ दीप्तिशून्य, जिसमें चमक दमक न हो।

निष्प्रतिभान (सं० त्रि०) भीरु, कापुरुष, कायर, निकम्मा।

निष्प्रतीकार (सं० त्रि०) प्रतीकाररहित, विघ्नशून्य।

निष्प्रतीप (सं० त्रि०) सम्मुखदृष्टि, उद्देश्यविहीन दृष्टि।

निष्प्रत्यूह (सं० त्रि०) निर्गतः प्रत्यूहः बाधा यस्य। भयरहित, निर्विघ्न, जिसमें कोई विघ्न न हो।

निष्प्रधान (सं० त्रि०) प्रधानशून्य, नेताहीन।

निष्प्रपञ्च (सं० त्रि०) प्रपञ्चशून्य, सत्स्वरूप।

निष्प्रपञ्चात्मन् (सं० पु०) शिव महादेव।

निष्प्रभ (सं० त्रि०) निर्गता प्रभा यस्य। प्रभाशून्य, जिसमें किसी प्रकारकी प्रभा या चमक न हो। पर्याय—विगत, अरोक।

निष्प्रभाव (सं० त्रि०) प्रभावरहित, सामर्थ्यहीन।

निष्प्रमाणक (सं० त्रि०) प्रमाणशून्य, जिसका कोई सबूत न हो।

निष्प्रयत्न (सं० त्रि०) यत्नहीन, उपायरहित।

निष्प्रयोजन (सं० त्रि०) निर्गतं प्रयोजनं यस्मिन्। १ प्रयोजनरहित, जिसमें कोई मतलब न हो। २ जिसमें कुछ अर्थ सिद्ध न हो। ३ निरर्थक, व्यर्थ। (क्रि० वि०) ४ बिना अर्थ या मतलबका। ५ व्यर्थ, फजूल।

निष्प्रवाण (सं० त्रि०) नितरां प्रकर्षेण उयते, निर्-प्र-वे-करणे ल्युट्। तन्त्रविमुक्त वास, जो कपड़ा अभी तुरत तांत परसे निकाला गया हो।

निष्प्रवाणि (सं० त्रि०) निर्गता प्रवाणी तन्तुवायशलाका अस्मादस्य वा। (निष्प्रवाणिश्च। पा ५।४।१६०) इति-निपात्यते। नूतनवस्त्र, नया कपड़ा। पर्याय—अनाहत, तन्त्रक, नवाम्बर, आहत, अहत, नववस्त्र।

निष्प्राण (सं० त्रि०) निर्गताः प्राणाः प्राणादयः यस्य। श्वासप्रश्वासादिशून्य, मुर्दा, मरा हुआ।

निष्प्रीति (सं० त्रि०) निर्नास्ति प्रीतिर्यस्य। प्रीतिशून्य, जिसमें प्रेम न हो।

निष्फल (सं० त्रि०) निर्गतं फलं यस्मात्। १ फलशून्य, जिसका कोई फल न हो। २ अण्डकोषरहित, जिसमें अण्डकोष न हो। (पु०) ३ धानका पयाल, पूला।

निष्फला (सं० स्त्री०) निर्गतं फलं यस्या टाप्। १ विगतरजस्का स्त्री, वह स्त्री जिसका रजोधर्म होना बन्द हो गया हो, पचास वर्षसे ऊपरकी स्त्री। पर्याय—निष्कली, निष्फली, निष्फला, विकली, विकला, ऋतुहीना, विरजा, विगतार्त्तवा। ५५ वर्षकी अवस्थासे स्त्रियोंका रजोधर्म होना बन्द हो जाता है, उस समयसे और कोई सन्तान जन्म नहीं लेती। इसी कारण उनका निष्फला नाम पड़ा है।

निःसृति (सं० पु०) पर्वतोंसे निष्कास करनेका समय। शास्त्रोक्तिके अनुसार जिस समय विभीषणने अपने साथ रामचन्द्रको वनमें ले गए थे उस समय उन्होंने रामचन्द्र को घोर घोर पर्वतोंसे बाहर यह मार्ग भी दिया था।

निःश्रेणी (सं० स्त्री०) १ निःश्रेणिका, छोटी सीढ़ी। २ खर्जूरा- कसोंठो, थांभ बकड़ी।

निःस्नेह (सं० त्रि०) निर्गत स्नेह यस्मात्। स्नेहरहित, जिसमें स्नेह न हो।

निःस्पन्द (सं० पु०) निर्-स्पन्द भावे घञ्, बाहुलकात् अत्वं। १ कम्प, अङ्ग चालिका निरन्ता। (त्रि०) निःस्पन्द यत्र। २ निस्पन्दयुक्त।

निःस्रुत (सं० त्रि०) नि-स्रिव-क्त, ततो अत्व सत्वम्। नितान्त पतित।

निःसन्धि (सं० त्रि०) निर्गतः सन्धिः सन्धानं यस्मात्, सुषामादित्वात् षत्वम्। सन्धिरहित।

निःषम (सं० अव्य०) निर्गता समा यस्मात्, निःशब्दसुषमदुःषमेति च सुषमादि अव्ययीभाव, ततो षत्वम्। समयातीत।

निःषामन् (सं० त्रि०) निर्गत साम यस्मात्, सुषामादित्वात् षत्वम्। सामशून्य।

निःषेध (सं० पु०) निस्-सिध-भावे घञ्, ततो सुषामादित्वात् षत्व। नितान्त सेध।

निस् (सं० अव्य०) निस्-क्विप्। उपसर्गभेद, एक उपसर्गका नाम। इस उपसर्गसे निम्नलिखित अर्थोंका बोध होता है। १ निषेध। २ निश्चय। ३ आधिक्य। ४ अतिक्रम। निर् और निस् ये दोनों उपसर्ग एक ही अर्थमें व्यवहृत होते हैं। निर् देखो।

निसम्बाध (सं० त्रि०) सम्बाधरहित।

निसत्त्व (सं० त्रि०) सत्त्वहीन।

निसत्त (हि० वि०) असमर्थ, कमजोर, दुर्बल।

निसतार (हि० पु०) निस्तार देखो।

निसबत (अ० स्त्री०) १ सम्बन्ध, लगाव, ताल्लुक। २ विवाह सम्बन्धकी बात, मँगनी। ३ अपेक्षा, तुलना, मुकाबला।

निसम्पात (सं० पु०) निरुद्ध सम्पातो सञ्चारो यत्र। निशीथ, दोपहर रात।

निसर (सं० त्रि०) निसरति नि-सृ-अच्। नितान्त साहस, बहुत चलनेवाला।

निसर्ग (सं० पु०) नि-सृज-घञ्। १ स्वभाव, प्रकृति। २ स्वरूप, आकृति। ३ सृष्टि। ४ दान।

निसर्गज (सं० त्रि०) निसर्गात् स्वभावात् जन-ड। १ स्वभाव जात, जो स्वभावसे उत्पन्न हो।

निसर्गायुस् (सं० स्त्री०) आयुर्विषयक गणनाभेद, एक प्रकारकी गणना जिससे किसी व्यक्तिकी आयुका पता लगाया जाता है। वृहज्जातक आदि ज्योतिषग्रन्थोंमें इसका विषय जो लिखा है वह इस प्रकार है,—

सबसे पहले आयुकी गणना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि मनुष्यकी आयुके ऊपर ऐहिक और पारत्रिक सभी कार्य निर्भर हैं। यह आयुगणना चार प्रकारकी है—अंशायु, पिण्डायु, निसर्गायु और जीवायु। इनमेंसे जिसका लग्न बलवान् है, उसके लिए अंशायुकी, सूर्यके बलवान् होनेसे पिण्डायुकी, चन्द्रके बलवान् होनेसे निसर्गायु की और जिसके लग्न, चन्द्र और रवि ये तीनों बलहीन हैं उनके लिए जीवायुकी गणना करनी होती है। आयुर्गणनामें ग्रहोंके उच्च और नीच राशि तथा उच्चांश और नीचांशका जानना आवश्यक है।

जिसके जन्मकालमें लग्न और चन्द्र दोनों ही बलवान् हों, उसको अंशायु और निसर्गायु दोनों प्रकारसे गणना की जाती है। गणना करके दोनों आयुके अंकोंको जोड़ दे। बाद योगफलको दोसे भाग दे कर जो कुछ उत्तर निकलेगा, वही उस मनुष्यकी आयु है, ऐसा जानना चाहिए।

जिसके जन्मकालमें चन्द्र और सूर्य दोनों ही बलवान् हों, उसके लिए भी पिण्डायु ही प्रशस्त है। पिण्डायु और निसर्गायुकी गणना करके दोनों अंकको एक साथ जोड़ दे और योगफलका अर्द्ध वर्ष, मास और दिन जितना होगा उसीको परमायु जानना चाहिए।

निम्नलिखित प्रकारसे निसर्गायुकी गणना करनी होती है। चन्द्रका आयुःपिण्ड ग्रहण करके उसमें १ का भाग दे और भागफलमें जितनी संख्या विकलादि पावेंगे, उसमें दिन और दण्डादिको चन्द्रदत्त निसर्गायु समझना चाहिये।

मङ्गलका आयुःपिण्ड ग्रहण करके उसे [illegible] गुणा करे।

गुणनफल जो होगा उसे २०से भाग दे कर जितनी कला विकला होगी, उतना ही दिन और दण्डादि बुधका निसर्गायु होगो।

रवि और शुक्रके आयुःपलको ग्रहण ३से भाग दे, भागफल जितना होगा, उतना ही दिन और दण्डादि रवि और शुक्रका निसर्गायुः होगा।

मङ्गलके आयुःपलमें २०का भाग दे कर भागफलमें जितनी कला विकलादि आवेगी, उतना ही दिन और दण्डादि मङ्गलकी निसर्गायु है।

बृहस्पतिके आयुःपलमें ३का गुना कर गुणनफल जो हो, उसे १०से भाग दे और भागफलमें जितनी कला विकला होगी, उतना दिन और दण्डादि बृहस्पतिका निसर्गायुः होगा।

शनिके आयुःपलको ग्रहण कर उसे दो जगह रखे। पीछे एक अङ्कको ६से भाग दे कर भागफल जो होगा उसमेंसे द्वितीय अङ्क घटावे। अब जितनी कला विकलादि बच रहेगी, उतना दिन और दण्डादि शनिका निसर्गायुः होगा।

आयुःपलकी इस प्रकार गणना की जाती है,—जन्मकालमें जो ग्रह जिस राशिके जितने अंशादिमें रहेगा उस ग्रहस्फुटको राशि अंश और कलादिके अङ्कमें उस ग्रहकी उच्च राशि और अंशके अङ्कको घटावे। अब घटावफल जो होगा उसे ३०से गुणा करे। गुणनफलको अंशाङ्कके साथ जोड़ दे। पीछे उस योग वा अंशको ६०से गुणा करके कलाङ्कके साथ योग करने पर जो अङ्क होगा उसी अङ्कसंख्याका नाम उस ग्रहका आयुःपल है।

यदि उस ६०से गुणित योग कलाङ्क छः राशिके कलाङ्क अर्थात् दस हजार आठ सौसे कम हो, तो उसे इक्कीस हजार छः सौसे वियोग करना होता है। अवशिष्टाङ्क जो रहेगा, उसीको उस ग्रहका आयुःपल जानना चाहिये।

अन्य प्रकारसे आयुःपलका निकालना—जन्मकालमें जो ग्रह जिस राशिके जिस अंशादिमें रहेगा, उस ग्रहस्फुटकी राशि अंशकलादिका अङ्क और उस ग्रहकी नीच राशि तथा अंशका अङ्क, इन तीनोंका अन्तर करनेसे जो बचेगा, उस राशिके अंशको ३०से गुणा करे। गुणनफलको अंशाङ्कमें जोड़ दे। पीछे उस योग या अङ्कको ६०से गुणा करे और गुणनफलको कलाङ्कके साथ योग कर जो योगफल होगा, उसीका नाम उस ग्रहका आयुःपल है। किन्तु उस नीचान्तरित राशिका अङ्क यदि छःसे न्यून हो, तो उसे राशिके अङ्कमें छः जोड़ दे और योगफलको पूर्व प्रक्रियाके अनुसार कला बनावे। जितनी कला होगी, वही उस ग्रहका आयुःपल है। दोनोंकी गणना प्रणाली तो भिन्न है, पर फल एक-सा होता है।

मङ्गल भिन्न ग्रहगण शत्रु वा अधिशत्रुके गृहमें हो, तो पूर्वोक्त प्रकारसे आयुःपल बना कर उसमेंसे तृतीयांश निकाल ले। इस प्रकार जो कुछ बचेगा, वही अङ्क उस ग्रहका आयुःपल होगा।

शुक्र और शनि भिन्न ग्रहोंके अस्तगत होनेसे पूर्वोक्त आयुःपलमेंसे उसका अर्द्धांश निकाल ले। इस प्रकार जो बचेगा वही आयुःपल होगा।

ग्रहगण शत्रुके घरमें रह कर यदि अस्तगत हो जांय, तो पहलेकी तरह अर्द्धांश निकाल लेना पड़ता है। शुक्र और शनिके शत्रुगृहस्थित हो कर अस्तमित हो जानेसे आयुःपलमेंसे उसका तृतीयांश वियोग करे। वियोगफल जो होगा, वही उस ग्रहका आयुःपल है।

इस प्रकार आयुःपलका स्थिर करके पूर्वोक्त प्रकारसे निसर्गायुःकी गणना करते हैं।

पिण्डायुः, निसर्गायुः और जीवायुः तीनों प्रकारकी गणनामें इसी प्रकारसे आयुःपल स्थिर कर उसके बाद गणना की जाती है।

निसर्गायुः गणनाके समय आयु-हानिकी गणनाकी प्रक्रिया करनी होती है। (राघवानन्द कृत विदग्धतोषिणी) पिण्डायुःकी गणनाका विवं। पिण्डायु शब्दमें देखो।

निसा (हिं॰ स्त्री॰) सन्तोष, तृप्ति।

निसाकर (हिं॰ पु॰) निशाकर देखो।

निसाचर (हिं॰ पु॰) निशाचर देखो।

निसाद (हिं॰ पु॰) भंगी, मेहतर।

निसान (फा॰ पु॰) १ निशान देखो। २ नगाड़ा, धौंसा।

निसाना (हिं॰ पु॰) निशाना देखो।

निशानो (हि॰ स्त्री॰) निशानी देखो।
निशापति (हि॰ पु॰) निशापति देखो।
निशार (सं॰ पु॰) नि-शृ-अच्। १ समूह। २ सफेदा या सोनापाठा नामका वृक्ष।
निशार (फा॰ पु॰) १ निछावर, सदका, उतारा। २ मुगलोंके शासनकालका एक सिक्का जो चौथाई रुपये या चार आने मूल्यका होता था।
निशारुक (सं॰ पु॰) मालव रागका एक भेद।
निशारना (हि॰ क्रि॰) बाहर करना निकालना।
निशाला (सं॰ स्त्री॰) बदरीफल बेरीका पेड़।
निशावरा (हि॰ पु॰) एक प्रकारका कबूतर।
निशि (हि॰ स्त्री॰) १ निशा देखो। २ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें एक नगण और एक गुरु होता है।
निशिकर (हि॰ पु॰) निशिकर देखो।
निशिदिन (हि॰ क्रि॰ वि॰) १ रातदिन आठो पहर। २ सर्वदा, सदा, हमेशा।
निशिनिशि (हि॰ स्त्री॰) अर्द्धरात्रि, निशीथ, आधी रात।
निशिन्दु (सं॰ पु॰) वृक्षविशेष निर्गुण्डी सम्हालू।
निशिवासर (हि॰ क्रि॰-वि॰) रातदिन, सब दा सदा।
निसोठो (हि॰ वि॰) जिसमें कुछ तत्त्व न हो निःसार, नीरस, थोथा।
निसुन्धार (सं॰ पु॰) निर्गुण्डीवृक्ष, सम्हालूका पेड़।
निसुन्द (सं॰ पु॰) असुरभेद प्रह्लादके भाई ह्रादके पुत्रका नाम।
निसूदक (सं॰ त्रि॰) निसूदयति नि-सूदि-ण्वुल्। हिंसक, हिंसा करनेवाला।
निसूदन (सं॰ क्ली॰) नि-सूद भावे ल्युट्। १ निहनन, हिंसा। २ वध। (त्रि॰) ३ नि-सूद-ल्यु। ३ हिंसा करनेवाला, मारनेवाला, नाश करनेवाला।
निसृत (हि॰ वि॰) निःसृत देखो।
निसृता (सं॰ स्त्री॰) नितरां सृता, नि-सृ क्त स्त्रियां टाप्। १ त्रिवृता, निसोथ। २ श्योनाकवृक्ष, सोना पाठा।
निसृताम्बष (सं॰ पु॰) कोष्णतालीमभेद।
निसृष्ट (सं॰ त्रि॰) नि-सृज-क्त। १ त्यक्त, परित्यक्त किया हुआ। २ प्रेरित, भेजा हुआ। ३ दत्त, दिया हुआ। ४ मध्यस्थ, जो बीचमें पड़ कर कोई बात करे। ५ छोड़ा हुआ जो छोड़ दिया गया हो।
निसृष्टार्थ (सं॰ पु॰) निसृष्ट: अर्थो यस्य प्रयोजन बहिरमिति। दूतविशेष एक प्रकारका दूत। दूत तीन प्रकारका माना गया है—निसृष्टार्थ, मितार्थ और सन्देशहारक। जो दोनों पक्षोंका अभिप्राय अच्छी तरह समझ कर स्वयं ही सब प्रश्नोंका उत्तर दे देता है और कार्य सिद्ध कर लेता है उसे निसृष्टार्थ कहते हैं। २ राजाके आयव्यय और शासनादिमें नियुक्त पुरुषविशेष वह मनुष्य जो राजाके आयव्यय और कृषि तथा वाणिज्य को देखरेखके लिए नियुक्त किया जाय। ३ पुरुष विशेष, सङ्गीत दामोदरमें लिखा है, कि जो मनुष्य धीर और शूर हो, अपने मालिकका काम तत्परताके साथ करे और अपना पौरुष प्रकट करे, उसे निसृष्टार्थ कहते हैं।
निसैनी (हि॰ स्त्री॰) सोपान, सीढ़ी, जीना।
निसेनी (हि॰ स्त्री॰) निसैनी देखो।
निस्तोक (सं॰ त्रि॰) नि-स्त क, स्तो भोग् भोग्याभाव था। मिताल्पक।
निसोत (हि॰ वि॰) जिसमें और किसी चीजका मेल न हो, शुद्ध निरा।
निसोत्तर (हि॰ पु॰) निसोथ देखो।
निसोथ (हि॰ स्त्री॰) सारे भारतवर्षके जङ्गलों और पहाड़ों पर होनेवाली एक प्रकारकी लता। इसके पत्ते गोल और नुकीले होते हैं और इसमें गोल फल लगते हैं। यह तीन प्रकारकी होती है—सफेद, काली और लाल। सफेद निसोथमें सफेद रंगके डालोंमें काला पन लिये बैंगनी रंगके और लालके पास कुछ लाल रंगके होते हैं। सफेद निसोथके पत्ते और फल कुछ लाल अपेक्षाकृत कुछ बड़े होते हैं और यह औषधमें बहुत अधिक गुणकारी मानी जाती है। वैद्य लोग इसका गुणाग अपेक्षा अच्छा समझते हैं। विशेष विवरण त्रिवृत शब्दमें देखो।
निसो (हि॰ स्त्री॰) एक प्रकारका रेशमका कीड़ा जिसे निसारो भी कहते हैं।
निसृष्ट—इसका आदमी इसे 'सप्तक मन्त्र' नाम बतलाया

है। यह इस्तक-वप नगर वर्त्तमान भवनगरके पास बसा हुआ था। अभी वह इग्रबल नाममे मशहूर है। वलभोवंशके १म ध्रुवसेनके प्रदत्त शासनमें इस ग्रामका उल्लेख है। पेरिप्लसने अपने ग्रन्थमें इस स्थानका 'अष्टक' नामसे वर्णन किया है।

निष्केवल (हिं० वि०) शुद्ध, निर्मल, बेमेल।

निस्तत्त्व (सं० त्रि०) निर्गतं तत्त्वं वास्तवं रूपं स्वरूपं वा यस्य। असत्पदार्थ, तत्त्वहीन, जिसमें कोई तत्त्व न हो।

निस्तनी (सं० स्त्री०) नितरां स्तनवदाकारोऽस्यस्या इति अच्, गौरादित्वात् ङोष्। १ वटिका, वटी, गोली। २ स्तनरहित स्त्री, वह औरत जिसे स्तन न हों।

निस्तन्तु (सं० त्रि०) पुत्रहीन, जिसको कोई सन्तान न हो।

निस्तन्द्र (सं० त्रि०) निष्क्रान्ता तन्द्रा यस्य। १ आलस्य रहित, जिसमें आलस्य न हो। २ तन्द्रारहित। ३ सुस्थ, सबल, बलवान्, मजबूत।

निस्तन्द्रि (सं० त्रि०) निर्गता तन्द्रिरालस्यं यस्य। आलस्यरहित, जिसमें आलस्य न हो।

निस्तब्ध (सं० त्रि०) नि-स्तम्भ क्त। १ नीरव, सन्नाटा, जरा भी शब्द न होना। २ निश्चेष्ट, जड़वत्। ३ स्पन्द रहित, जो हिलता डोलता न हो, जिसमें गति या व्यापार न हो।

निस्तब्धता (सं० स्त्री०) १ स्तब्ध होनेका भाव, खामोशी। २ सन्नाटा, जरा भी शब्द न होनेका भाव।

निस्तमस्क (सं० त्रि०) तमविहीन, अन्धकारशून्य, उजेला।

निस्तम्भ (सं० त्रि०) स्तम्भहीन, जिसमें खंभे न हो।

निस्तरण (सं० क्ली०) निस्तीर्यतेऽनेनेति निर्-तृ करणे ल्युट्। १ उपाय, निस्तार, छुटकारा। २ निर्गम, बाहर निकलना। ३ पारगमन, पार जानेकी क्रिया या भाव।

निस्तरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रेशमका कीड़ा। इस कीड़ेका रेशम बङ्गालके देशी कीड़ोंके रेशमकी अपेक्षा कुछ कम मुलायम और चमकीला होता है। इसके तीन भेद होते हैं—मदरासी, सोनामुखी और क्रमि।

निस्तरीक (सं० अव्य०) तरे देयः ईकः तरीकः तरीकस्या भावः, अभावे अव्ययीभावः। १ तैरनेके लिए आवश्यक महसूल देना। (त्रि०) २ तरीकशून्य, बिना बेड़ेका।

निस्तरोप (सं० त्रि०) तरं पाति पा-क, तरोपः निर्गत-स्तरोपः तस्मात्। नौकापालकशून्य।

निस्तर्क्य (सं० त्रि०) तर्कहीन, जिसकी कल्पना न की जाय।

निस्तर्त्तव्य (सं० त्रि०) दमित, जिसका दमन किया गया हो, जो जीता गया हो।

निस्तर्हण (सं० क्ली०) निर्-तृह-हिंसायां भावे ल्युट्। मारण, वध।

निस्तल (सं० त्रि०) निरस्तं तलं प्रतिष्ठा यस्य। १ वर्त्तुल, गोल। २ तलशून्य, बिना पेंदीका। ३ कम्पित, चलायमान। नितान्तं तलं। ४ तल, नीचे।

निस्तार (सं० पु०) निर्-तृ घञ्। १ निस्तरण। २ उद्धार। ३ पारगमन। ४ अभीष्टप्राप्ति।

निस्तारक (सं० पु०) नि-स्तृ-ण्वुल्। १ निस्तारकर्त्ता, बचानेवाला, छुड़ानेवाला। २ मोक्षदाता, मोक्ष देनेवाला।

निस्तारण (सं० क्ली०) निर्-स्तृ-ल्युट्। १ निस्तारकरण, बचाना, छुड़ाना। २ पारगमन, पार करना। ३ जय-करण, जीतना। ४ मुक्तकरण, छुटकारा देना।

निस्तारबीज (सं० क्ली०) निस्तारस्य संसारसमुद्र-समुत्तरणस्य बीजम्। संसारतरणकारण, पुराणानुसार वह उपाय या काम जिससे मनुष्यको इस संसार तथा जन्ममरण आदिसे मुक्ति हो जाय।

भगवान्‌के नामका स्मरण, कीर्त्तन, अर्चन, पाद सेवन, वन्दन, स्तवन और प्रतिदिन भक्तिपूर्वक नैवेद्य भक्षण, चरणोदकपान और विष्णुमन्त्रजप ये सब एकमात्र निस्तारबीज हैं अर्थात् उद्धारके एकमात्र उपाय हैं। महानिर्वाणतन्त्रमें भी निस्तारबीजका विषय इस प्रकार लिखा है—

"कलौ पापयुगे घोरे तपोहीनेऽति दुस्तरे।
निस्तारबीजमेतावद् ब्रह्ममन्त्रस्य साधनम्॥
साधनानि बहूक्तानि नानातन्त्रागमादिषु।
कलौ दुर्बलजीवानामसाध्यानि महेश्वरि॥"

(महानिर्वाणतन्त्र)

और पापयुक्त कलिकालमें जब लोग तपोहीन हो जायेंगे, तब ब्रह्ममन्त्र का साधन ही एकमात्र निस्तार बीज होगा। हे महेश्वरी ! नानातन्त्र और पागमादिमें जो कई प्रकारके साधन लिखे हुए हैं वे कलिकालमें दुर्बल लोगोंके लिये असाध्य हैं। अतएव भवसमुद्र पार करनेका ब्रह्ममन्त्र ही एकमात्र उपाय है।

निस्तितीर्षत् (स० त्रि०) निर्-तॄ-सन् शतृ। निस्ताराभिलाषी जो निस्तार होना चाहता हो।

निस्त्रिंशिर (स० त्रि०) निर्गतस्त्रिंशिरा यस्मात्। तिमिर शून्य, अन्धकारसे रहित या शून्य।

निस्तीर्ण (स० त्रि०) निर्-तॄ-क्त। १ परित्राण, जिसका निस्तार हो चुका हो। २ पार गया हुआ, जो तै या पार कर चुका हो।

निस्तुति (स० त्रि०) स्तुतिशून्य प्रश साहीन।

निस्तुष (स० त्रि०) निर्गता तुषा यस्मात्। १ वितुषी कृत, बिना भूसीका, जिसमें भूसी न हो। २ निर्मल। (पु०) १ गोधूम, गेहूं।

निस्तुषक्षीर (स० पु०) निस्तुष परिष्कृत क्षीर यस्येति। गोधूम, गेहूं।

निस्तुषरत्न (स० क्ली०) निस्तुष निर्मल रत्न। स्फटिक मणि।

निस्तुषित (स० त्रि०) निस्तुष क्रतो णिच्-क्त। भूसीहीन, जिसमें भूसी न हो।

निस्तुषीरत्न (स० क्ली०) स्फटिक मणि।

निस्तृणकण्टक (स० त्रि०) तृण और कण्टकपरिशून्य, जिसमें घास और कांटा न हो।

निस्त्रैंश (स० त्रि०) निर्गत त्रिंशो यस्मादिति। तैंतो रहित, जिसमें तीस न हो।

निस्त्रेह (स० त्रि०) स्नेहरहित, बिना चिकना, जिसमें तेल न हो।

निस्तोद (स० पु०) निस्-तुद-भावे घञ्। निताम्त व्यथन, बहुत दरद।

निस्तोदन (स० क्ली०) निस्-तुद-भावे ल्युट्। नितान्त व्यथन, निस्तोदन तकलीफ।

निस्तोय (स० त्रि०) तोयहीन, बिना पानी।

निस्त्रप (स० त्रि०) भयहीन, जिसे डर न हो।

निस्त्रप (स० त्रि०) लज्जाहीन, बेहया, बेशर्म।

निस्त्रिंश (सं० पु०) निर्गतस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्य ततो डच समासान्त। (संख्यायाऽतत्पुरुषस्य डच् वाच्य। पा ५।४।७३) इति वार्त्तिकोक्त्या डच्। १ खड्ग। २ मन्त्र भेद, तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका मन्त्र। (त्रि०) १ निर्दय, कठोर। ३ त्रिंशत्‌शून्य, जिसमें तीसका न पूरा न हो, ज्यादा हो।

निस्त्रिंशधारिन् (स० त्रि०) निस्त्रिंश धरतीति निस्त्रिंश धृ-णिनि। खड्गधारी, तलवार धारण करनेवाला।

निस्त्रिंशपत्रिका (स० स्त्री०) निस्त्रिंश खड्ग-इव पत्र मस्याः, कप्‌ टाप् इत्वम्। स्नुहीवृक्ष, थूहर।

निस्त्रिंशिन (स० त्रि०) निस्त्रिंश खड्गः धारकत्वे नास्त्यस्य इति इनि। खड्गधारी, तलवार धारण करनेवाला।

निस्त्रुटी (स० स्त्री०) निस्त्रुटी, बड़ी इलायची।

निस्त्रैगुण्य (स० त्रि०) निष्क्रान्तः त्रैगुण्यात्, त्रिगुणकार्यात् संसारात्। १ कामादिशून्य। २ संसारातीत, जो सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंसे रहित या अलग हो।

निस्त्रैपालुष्पिक (स० पु०) पञ्चकाष्ठ, धतूरेका पेड़।

निस्नाव (स० पु०) वह पानी जिसमें चावल को पका कर रख दिया हो।

निस्नेह (स० त्रि०) निर्गतः स्नेहः प्रेमतैलादि वा यस्य। १ प्रेमशून्य, जिसमें प्रेम न हो। २ तैलशून्य, जिसमें तेल न हो। (पु०) १ मन्त्रभेद तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका मन्त्र। ३ अतसीक्षुप, तीसीका पौधा।

निस्नेहफला (स० स्त्री०) निःस्नेह फल यस्याः। श्वेतकण्टकारी, सफेद भटकटैया, कटेरी।

निस्पन्द (स० त्रि०) निगतः स्पन्दो यस्य, बाहु० विसर्ग लोप। १ स्पन्दरहित, जिसमें कम्पन न हो। नि-स्पन्द-घञ्। २ स्पन्दन, कम्पन।

निस्पन्दतर (स० त्रि०) निस्पन्द-तरप्। अत्यन्त स्पन्दन रहित।

निस्पन्दता (स० त्रि०) निस्पन्दका भाव।

निस्पन्दिन् (स० त्रि०) निस्पन्दः अस्त्यस्येति इनि। निस्पन्दयुक्त।

निस्पृश् (सं० त्रि०) १ विश्वास्य। २ आदरनीय।

निस्पृह (सं० त्रि०) निर्गता स्पृहा इष्टाइष्टविषय भावना यस्य। स्पृहाशून्य, जिसे किसी प्रकारका लोभ न हो, लालच या कामना आदिसे रहित।

निस्पृहता (सं० स्त्री०) निस्पृह होनेका भाव, लोभ या लालसा न होनेका भाव।

निस्पृहा (सं० स्त्री०) १ अग्निशिखावृक्ष, कलिहारी नामक पेड़। २ असूल वनस्पती।

निस्पृही (हिं० वि०) निस्पृह देखो।

निस्फ (अ० वि०) अर्द्ध, आधा, दो बराबर भागोंमेंसे एक भाग।

निस्फीबंटाई (हिं० स्त्री०) वह बंटाई जिसमें आधी उपज जमींदार और आधी असामी लेता है, अधिया।

निस्बत (हिं० स्त्री०) निसबत देखो।

निस्यन्द (सं० पु०) नि-स्यन्द-भावे घञ्। १ स्यन्दन क्षरण। (त्रि०) निस्यन्दते इति कर्त्तरि अच्। २ क्षरणशील। 'निष्यन्द' इसके विकल्पमें षत्व होता है। (अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु। पा ८।३।७२) अनु, वि, अभि, नि इन सब उपसर्गोंके बाद स्यन्द धातुके विकल्पमें भी षत्व होता है, प्राणीका अर्थ होनेसे नहीं होता। यथा—निष्यन्द, निस्यन्द।

निस्रव (सं० पु०) नि-स्रु-अप्। १ भक्तमण्ड, भातका मांड़। २ अपक्षरण, वह जो बह या झड़ कर निकले, पसेव।

निस्राव (सं० पु० निस्राव्यते इति निस्र-णिच्-घञ्। १ भक्तसमुद्भवमण्ड, भातका मांड। पर्याय—मासर, आचाम। नि स्रु घञ्। २ द्रव, पसेव।

निस्राविन् (सं० त्रि०) जो क्षरणशील नहीं है, जो बहता नहीं है।

निस्व (सं० त्रि०) निर्गतं स्वं धनं यस्य। दरिद्र, दीन, गरीब।

निस्वन (सं० पु०) नि-स्वन-अप् (नौ-गद-नदपठस्वनः। पा ३।३।६४) शब्द, आवाज़।

निस्वान (सं० पु०) नि-स्वन-पक्षे घञ्। शब्द, आवाज़।

निस्वास (हिं० पु०) निःश्वास देखो।

निस्संकोच (हिं० वि०) सङ्कोचरहित, जिसमें सङ्कोच या लज्जा न हो, बेधड़क।

निस्संतान (हिं० वि०) सन्ततरहित, जिसे कोई सन्तान न हो।

निस्संदेह (हिं० क्रि०-वि०) १ अवश्य, जरूर, बेशक। (वि०) २ जिसमें सन्देह न हो।

निस्सरण (सं० पु०) १ निकलनेका मार्ग या स्थान। २ निकलनेका भाव या क्रिया, निकास।

निस्सार (सं० त्रि०) १ साररहित, जिसमें कुछ भी सार या गूदा न हो। २ निस्तत्त्व, जिसमें कोई कामकी वस्तु न हो।

निस्सारक (सं० पु०) प्रवाहिकारोग।

निस्सारित (सं० त्रि०) निकाला हुआ, बाहर किया हुआ।

निस्सीम (सं० त्रि०) निष्क्रान्ता सीमा यस्मात्, बाहुलकात् विसर्गस्य स। १ अवधिशून्य, जिसकी कोई सीमा न हो। २ बहुत अधिक।

निस्सूत (हिं० पु०) तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एक।

निस्स्वादु (हिं० वि०) १ जिसमें कोई स्वाद न हो। २ जिसका स्वाद बुरा हो।

निस्स्वार्थ (हिं० वि०) स्वार्थसे रहित, जिसमें स्वयं अपने लाभ या हितका कोई विचार न हो।

निहंग (हिं० वि०) १ एकाकी, अकेला। २ विवाह आदि न करनेवाला वा स्त्री आदिसे सम्बन्ध न रखनेवाला। ३ नंगा। ४ बेहया, बेशर्म।

निहंगम (हिं० वि०) निहंग देखो।

निहंगलाडला (हिं० वि०) जो मातापिताके दुलारके कारण बहुत ही उद्दण्ड और लापरवा हो गया हो।

निहंता (हिं० वि०) १ विनाशक, नाश करनेवाला। २ प्राणघातक, मारनेवाला।

निह (सं० त्रि०) निहन्ति नि-हन-ड। निहन्ता, मारनेवाला।

निहङ्ग—सिखोंके मध्य वैष्णव-सम्प्रदायविशेष। ये लोग नानक पर विश्वास रखते हैं सही, किन्तु अन्यान्य सिखोंके साथ इनकी कोई सदृशता देखी नहीं जाती। ये लोग अपने जीवनका ममता नहीं करते।

निहङ्ग शब्द संस्कृत निःसङ्ग शब्दका रूपान्तर है, इसमें सन्देह नहीं। उल्लकके उल्लिखित नामधारी वैष्णव विरक्त अर्थात् उदासीन हैं। ये लोग मठ बनाते

छोर दुआरे द्वारा विपद्-चेष्टा करते हैं। रातको ये छोर मकानमें रहते हैं और दिनको व्यक्तिविशेषके पर्यंकके ऊपर बैठकर मठका खर्च चलाते हैं। ये लोग कभी भी लब्ध आदि सामान्य भिक्षा ग्रहण नहीं करते। जन-समाजमें इनकी कद्र खास कभी रहती है। जनता निहंगोंके प्रति यथाविधि भक्ति और सम्मान दिखाती है। निहंग जैसे बहुत ही वयस्क होते हैं, तब उनके चेले अर्थात् अनुगत निहंग शिष्य मठमें ही उनका सत्कार करते हैं और एक रत्नमय वेदि निर्माण कर उसके ऊपर गुरुको हाथ रोपते और कई दिन तक उसमें बन्द रखते हैं।

निहत (स० त्रि०) १ नि-हन-क्त। मारा हुआ। २ नष्ट। ३ मारा हुआ जो मार डाला गया हो।

निहतौर—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलेकी नगीना तहसील-का एक शहर। यह अक्षा० २९° २०´ उ० और देशा० ७८° ४३´ पू०के मध्य बिजनौर शहरसे १५ मील पूर्वमें अवस्थित है। जन संख्या लगभग ११०४० है। यहां बहुत सुन्दर एक प्राचीन मस्जिद है। यहांकी आय ११००) रु०की है। यहां एक मिडिल स्कूल तथा बालक और बालिकाओंके लिए पाठशालाएं भी हैं।

निहत्था (हि० वि०) १ जिसके हाथमें कोई हथियार न हो। २ जिसके हाथमें कुछ न हो, खाली हाथ।

निहन्‌ (स० पु०) नि-हन्-क्विप्। हननकारी, मारने वाला।

निहनन (स० क्ली०) नि हन-ल्युट्। १ मारण, वध। निधन देखो।

निहन्त (स० त्रि०) नि-हन-तृच्। १ हननकर्त्ता मारने वाला। (पु०) २ महादेव। ये प्रलय और हनन करते हैं, इसीसे इनका नाम निहन्ता पड़ा है।

निहन्तव्य (स० त्रि०) नि-हन-तव्य। हननीय, मारने लायक।

निहव (स० त्रि०) निर्हत देखो।

निहर (हि० पु०) वह जमीन जो नदीके छोड़े तट जानेसे निकल आई हो, गंगावरार, कछार।

निहरिह (स० पु०) १ वह मनुष्य जिसका यह सिद्धान्त हो कि वस्तुओंका वास्तविक ज्ञान होना असम्भव है क्योंकि वस्तुओंकी सत्ता ही नहीं है। ऐसे लोग वस्तुओं-की वास्तविक सत्ता और उन वस्तुओंके यथार्थ ज्ञानका निषेध करते हैं। २ रूस देशका एक दल। यह पहले एक सामाजिक दल था जो प्रचलित वैवाहिक प्रथा तथा रीति रवाज और पैतृक शासनका विरोधी था किन्तु पीछे एक राजनैतिक दल हो गया और सामाजिक तथा राजनैतिक निरंकुश नियमोंका ध्वंसक और नाशक बन गया। ३ इस दलका कोई आदमी।

निहव (स० पु०) नि ह्वे अप्, ततो सम्प्रसारणम्। ('ह्व' सम्प्रसारणच। पा ३।३।७२) आह्वान।

निहाई (हि० स्त्री०) सोनारों और लोहारोंका एक औजार। इस पर वे धातुको रख कर हथौड़ेसे कूटते या पीटते हैं। यह लोहेका बना हुआ चौकोर होता है और नीचेकी अपेक्षा ऊपरको ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। नीचेकी ओरसे निहाईको एक काठके कुन्देमें जोड़ देते हैं जिससे यह कूटते या पीटते समय इधर उधर हिलती डोलती नहीं। यह छोटी बड़ी कई आकार और प्रकारकी होती है।

निहाका (स० स्त्री०) नियत जहाति भुवमिति नि-हा बहुली कन। (उण् ३।४४) १ गोधिका गोह नामक जन्तु। २ घड़ियाल।

निहानी (हि स्त्री०) १ एक प्रकारकी रुखानी जिसकी नोक कई अर्द्धाकार होती है और जिससे बारीक खुदाई का काम होता है, नहरन। २ एक नोकदार औजार जिससे हाथीकी जंजीरोंके बीचमें भरा हुआ रङ्ग खुरच कर साफ किया जाता है।

निहायत (अ० वि०) अत्यन्त, बहुत, अधिक।

निहार (स० पु०) नितरां ह्रियन्ते पदार्था येन नि हृ घञ्। १ नीहार, हिम, बरफ। २ ओस। ३ कुज्झटिका, कुहासा, पाला, कुहरा।

रात अथवा दिनको तृणपत्र और घास आदिके ऊपरी भाग पर जो जलकणापिण्ड जमा होते देखा जाता है, उसीका नाम निहार है। इसकी उत्पत्तिके विषय – मत नहीं है, भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न ...णित किया है। यूरोपमें किसी

पर लिखा है कि, 'यह नीहार एक प्रकारकी वृष्टि है। वायुके साथ जो जलीय वाष्प मिला रहता है उसमें किसी प्रकार ठण्ड लगनेसे वह घनीभूत हो कर छोटी छोटी बून्दोंमें वृष्टिकी तरह नीचे गिरता है।' किसीका कहना है कि, "शीतलताके कारण नीहार नहीं होता, नीहारसे ही शीतलताकी उत्पत्ति होती है।' कोई पदार्थविद्याविद् कहते हैं, कि शैत्य नीहार-उत्पत्तिका एक प्रधान कारण होने पर भी, जमीनसे हमेशा जो रस वाष्पाकारमें निकलता है, वह भी एक विशेष कारण है।" आधुनिक पण्डितगण इन समस्त मतोंका पोषण न करते हुए कहते हैं कि, 'यह विश्व-संसारस्थ समुदय वस्तु ही प्रतिक्षणमें तापविकीरण और ताप-ग्रहण करती है। इनमेंसे रातको तापग्रहणकी अपेक्षा तापविकीरणका भाग अधिक है। कारण तेजके आदिभूत सूर्यदेवसे दिवाभागमें सभी वस्तु बहुपरिमाण-में ताप ग्रहण करती हैं। किन्तु रातको उस प्रकार तापदायक द्रव्यके अभावके कारण द्रव्यमात्र ही तेज ग्रहणकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें तापविकीरण करता है। इसका फल यह हुआ कि सभी द्रव्य दिवाभागकी अपेक्षा रात्रिको अधिक शीतलता प्राप्त करते हैं। अत-एव नीहारकी उत्पत्तिके विषयमें वर्त्तमान मत यह है कि, 'सभी द्रव्य सन्ध्याके बादसे अधिक परिमाणमें तापविकीरणपूर्वक शीतलत्वको पाते हैं, इस कारण उसके निकटवर्त्ती स्थानोंका वायुसंश्लिष्ट जलीय वाष्प शीतल हो जाता है और क्रमशः घनीभूत हो कर निक-टस्थ द्रव्योंके ऊपर जम जाता है। कारण वायु जितनी ही उष्ण होती है, उतने ही इसके उपादान विश्लिष्ट हो जाते हैं और वाष्पधारणशक्ति उतनी ही प्रबल हो उठती है। किन्तु वायु जितनी शीतलता लाभ करती है, उसके अणु उतने ही घन सन्निविष्ट होने लगते हैं। सुतरां वाष्पग्रहणशक्ति उतनी ही कम हो जाती है। यही कारण है कि वायु जब ठंढी हो जाती है, तब अधिक परिमाणमें अपने जलीय वाष्पको उस अवस्थामें धारण नहीं कर सकती और उक्त वाष्प घनीभूत हो कर जलबिन्दुरूपमें वृक्षकी पत्तियों, घास, तथा और दूसरे दूसरे द्रव्यों पर जम जाता है। ऊपरसे गिरते समय उक्त जलकणासमूहको किसी शीतल द्रव्यके साथ स्पर्श होनेसे ही वह उसमें संलग्न हो जाता है। सञ्चित जलका नाम निहार है।' पूर्वोक्त जलबिन्दु सञ्चित न हो कर जब अपेक्षाकृत सूक्ष्मतम जलबिन्दुके रूपमें परिवर्त्तित हो जाता है, तब उसे कुहासा कहते हैं।

आकाशमें जिस दिन घोर घनघटा वा प्रबल वात्या नहीं रहती उस दिन उतना निहार जमा होते देखा नहीं जाता, सो क्यों? इसके कारणका अनुसन्धान करनेसे पूर्वोक्त मत और भी परिस्फुट वा दृढ़ हो सकता है। इसका कारण यह है कि उस दिन अधिक मेघ रहनेसे उसका तेजसमूह विकीर्ण हो कर भूपृष्ठ पर पतित होता है। सुतरां भूपृष्ठसे ताप विकीरण होनेका प्रतिबन्धक हो जाता है। इसी प्रकार प्रबल वेगसे वायु बहने पर गरम वायुके कारण तापविकीरणकार्य सुन्दर-रूपसे सम्पन्न नहीं होता। यही कारण है कि उस समय उतने परिमाणमें निहार देखा नहीं जाता। अरि-ष्टल और किसी किसी दार्शनिकका कहना है कि घोर मेघशून्य और प्रबल वात्याहीन रातको ही केवल निहार देखा जाता है। किन्तु डाक्टर वेल्स इस बातको स्वीकार नहीं करते। प्रबल वात्यासंयुक्त रातको मेघ नहीं रहनेसे अथवा घोर मेघाच्छादित रातको वायुकी गति अधिक नहीं रहनेसे घास प्रभृति द्रव्यके ऊपर जो निहार सञ्चित होता है उसे उन्होंने अपनी आंखोंसे देखा है। किन्तु घोर मेघ और प्रबल वायु-विशिष्ट रातको निहारका जमा होना कभी भी देखनेमें नहीं आता। उक्त डाक्टरके मतसे समय और स्थानके भेदसे उक्त निहारका न्यूनाधिक्य देखा जाता है। वृष्टि होनेके पीछे यथेष्ट निहारसञ्चार देखा जाता है किन्तु दीर्घकाल वृष्टि नहीं होनेसे उस प्रकार निहारसञ्चार नहीं होता। कभी कभी दिनको भी निहार देखा गया है। किसी किसी देशमें दक्षिण वा पश्चिम दिशासे जब वायु बहती है, तब निहार अधिक मात्रामें जमा होता है, किन्तु उत्तर वा पूर्व दिशासे बहनेसे उस प्रकार निहार नहीं देखा जाता। वसन्त और शरत्-कालमें जैसा निहारका गिरना सम्भव है, वैसा ग्रीष्म-कालमें नहीं। कारण पूर्वोक्त दोनों समयमें दिन और

रातकी वायुके तापका न्यूनातिरिक्त अन्योन्य कालकी अपेक्षा अधिक है। जिस दिन सबेरे अत्यन्त कुहासा छाया रहता है उसके पूर्व रात्रिको निहार अधिक परिमाणमें संचित देखा जाता है। हिमन्त और शीत ऋतु ही हमलोगोंके देशमें निहारपातका उपयुक्त समय है। इस समय रातको मेघादि रहनेसे निहार बहुत कम जमा होता है। किन्तु परवर्ती दिनमें वह निहार कुहासेके रूपमें परिणत हो जाता है।

फिर यदि आकाश निर्मल और वायु स्थिर रहे, तो मध्यरात्रिको और सूर्योदयके पहले निहार अधिक मात्रामें संचित देखा जाता है।

जिन सब द्रव्योंके ऊपर निहारसञ्चार होता है, उनका तथा तन्निकटस्थ वायुका उत्ताप नीहार-सञ्चार सूचक ताप (Dewpoint)-से कमी नहीं होनेसे उन सब द्रव्योंके ऊपर नीहार सञ्चार नहीं होता। एक ही समय वस्तुको एक ही अवस्थामें भिन्न भिन्न वस्तुओं पर पृथक् परिमाणमें नीहार संचित हुआ करता है। धातु द्रव्यके ऊपर अत्यन्त अल्पपरिमाणमें नीहार जमा होता है, किन्तु घास, कपड़े, पङ्क, कागज आदि तृण और ऊर्णा-के ऊपर निहार प्रचुर परिमाणमें संचित होता है। जितनी धातु हैं सभी बहुत कम तापविकीरण करती हैं, यही कारण है कि घास, कपड़े इत्यादि तापविकीरण-शक्तिसम्पन्न वस्तुओंके ऊपर अपेक्षाकृत अधिक परिमाणमें नीहार-सञ्चार होता है। फिर जो सब वस्तु आकाशके साथ साक्षात् सम्बन्धमें विद्यमान हैं, उनके ऊपर जैसा निहार जमा होता है, वैसा और किसी पदार्थके ऊपर जमा नहीं होता। समान तौलके दो रुईके गल्लेको ले कर उनमें एक रुईको किसी तख्तेके ऊपर और दूसरे रुईको तख्तेके नीचे रखो तथा इसी अवस्थामें खुले स्थानमें रातभर छोड़ दो। सबेरा होने पर दोनों रुईकी तौलमें फर्क पड़ जायगा। तख्तेके ऊपर जो गल्ला है, उसका आकाशके साथ सीधा सम्बन्ध होनेके कारण उस पर नीचेकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें निहार जम गया है।

दिवाभागमें नीहार सञ्चारके सम्बन्धमें मिस्टर वर्णर का कहना है कि 'पृथ्वीके रात्रि अथवा दिवा सभी समय और आकाशकी सभी अवस्थाओंमें तापविकीरणक्रिया सम्पन्न होती है। साधारणतः सूर्य जब दृष्टिपरिच्छेदक वृत्तके ऊपर अवस्थान करता है, तब पृथ्वीकी तापविकीरण और तापग्रहणशक्ति समान रहती है। जिन सब स्थानों पर सूर्यकी किरण लम्बभावमें नहीं गिरती, वे सब स्थान सूर्य और अन्यान्य पदार्थोंसे जो ताप ग्रहण करते, समय समय उससे अधिक तापविकीरण करते हैं; इसी कारण उन सब स्थानों पर सारा दिन निहार जमा होता रहता है।' डाक्टर हूकरने ठीक इसी प्रकार लिखा है, कि नेपालके पूर्व भागमें कहीं कहीं सुबहके १० बजेके पहले और तीसरे पहरके ४ बजेके बाद सूर्यका मुख नहीं देखा जाता। इन सब स्थानोंमें इतना अधिक ताप विकीरण होता है कि वहाँ निहार हमेशा गिरते देखा जाता है।

निहारिका (Nebulæ) (स० स्त्री०) आकाशका एक प्रकारका ज्योतिर्मय-विस्तृत पदार्थ, एक प्रकारका आकाशका पदार्थ जो देखनेमें धूँधले रंगके धब्बेकी तरह होता है। इसकी निर्दिष्ट आकृति नहीं है। दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा देखनेसे यह मेघ (निहार)-की आकृति सी मालूम पड़ती है, इसीसे इसका नाम निहारिका पड़ा है।

इसीमेंसे विस्तारित अवस्थामें निहारिकाका जो विषय है उसे देखनेसे सामान्यरूपसे ज्ञान हो जाता है। दूरवीक्षणकी सहायतासे देखा जाता है कि अत्यन्त छोटे छोटे अगण्य नक्षत्रमण्डलकी समष्टि ही निहारिका है। १६१२ ई०में सिमन मेरियसने एक निहारिकाका आविष्कार किया था। पूर्वाविष्कृत निहारिकासमूहसे बिलकुल पृथक् है।

१६१८ ई०में ज्योतिर्विद सिसाट्सने ठीक उसी प्रकार एक पदार्थका 'ओरियन' नक्षत्रपुञ्जके मध्य आविष्कार किया। हाइगेन्स साहबने १६५६ ई०में उसका विषय प्रकाशित किया, किन्तु उससे पहले जो इसका भी आविष्कार हो चुका था उसे वे नहीं जानते थे, इस कारण वे आह्लादसे अधीर हो उठे। निहारिकाका निकटवर्ती स्थान अति तमसाच्छन्न है, इस कारण उन्होंने समझा कि आकाशके मध्य हो कर स्वर्गका

ज्योतिर्मय राज्य उनकी निगाह पर पड़ा है।

१८वीं शताब्दीके मध्यभागमें केवल मात्र २०।२१ निहारिका देखी गई थीं। १७५५ ई०में फरासी ज्योतिर्विद लकैलो (Lacailli)ने इसके सिवा और भी ४२ निहारिकाओंका विवरण प्रकाशित किया। उन्होंने इस निहारिकाको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया।

१म श्रेणी,—दूरवीक्षण द्वारा देखनेसे ये सब प्रकृत निहारिकाके रूपमें देखी जाती हैं, अर्थात् कोई निर्दिष्ट आकार देखनेमें नहीं आता; २य श्रेणीको नक्षत्रमें रख सकते हैं और ३य श्रेणी निहारिकापदार्थपरिवेष्टित नक्षत्र है। एक दूसरे फरासी पण्डितने १०३से अधिक निहारिकाओंका आविष्कार किया।

इसके बाद हार्सलने निहारिकाका वर्त्तमान विवरण प्रकाशित किया। १७८६ ई०में उन्होंने रायल सोसाइटीमें हजार निहारिकाओंकी एक तालिका दी। १७८८ ई०में उन्होंने एक हजार और निहारिकाकी तथा १८०२ ई०में पांच सौकी एक दूसरी तालिका प्रदान की। आखिरी बारमें उन्होंने नक्षत्रमण्डलके पदार्थोंको बारह भागोंमें श्रेणीबद्ध किया। यथा,—

१। अनन्यसंयुक्त तारका (Insulated stars)।

२। युग्म-तारका (Binary stars) अर्थात् दो नक्षत्र एकत्र हो कर साधारण भारकेन्द्रके चारों ओर घूमते हैं।

३। त्रय वा ततोधिक तारका (Triple or multiple)।

४। गुच्छवद्ध तारका वा छाया-पथ (Milky way)।

५। नक्षत्रपुञ्ज।

६। नक्षत्र-गुच्छ (Clusters of stars)। इसमें और ४थी श्रेणीमें विभेद यही है कि इसकी आकृति गोलाकार और केन्द्रकी ओर क्रमशः घनीभूत होती है।

७। निहारिका।

८। नाक्षत्रिक निहारिका (Steller Nebulae)। उसके सामने ये सब अतीव दूरवर्त्ती नक्षत्र-श्रेणीके समान देखे जाते हैं।

८। शुभ्र निहारिका (Milky Nebulosity)—इस श्रेणीमें तारामाला निहारिकाको सदृश और शुभ्र निहारिका एकत्र देखी जाती है।

१०। निहारिका-नक्षत्र (Nebulous stars) नैहारिक वायुसे परिवेष्टित।

११। ग्रहसमस्वच्छोभूत निहारिका (Planetary Nebulae), इस श्रेणीकी निहारिका ग्रहगणकी तरह सम्पूर्ण गोलाकार, किन्तु क्षीण आलोक-विशिष्ट होती है।

१२। केन्द्रविशिष्टग्रह-निहारिका (Planetary nebulae with centres) शेषोक्त दृश्य देखनेसे सहजमें बोध होता है कि निहारिका दिनों दिन उज्ज्वल बिन्दुसे क्रमशः घनीभूत होती है।

१८११ ई०में उन्होंने रायल सोसाइटीमें निहारिकाकी तारकाकृतिप्राप्तिके सम्बन्धमें एक प्रबन्ध लिख भेजा जिसका सारांश इस प्रकार है,—निहारिका आकाशमण्डलमें विच्छिन्न अवस्थामें रहती हैं। इनके छोटे छोटे अंश परस्पर आकर्षणवशतः एकत्र हो कर पदार्थमें परिणत होनेकी चेष्टा करते हैं और क्रमशः एकत्र हो कर कठिन पदार्थमें परिणत हो गये हैं।

१८३३ ई०में छोटे हार्सलने उत्तर खमण्डलकी निहारिकाका अच्छी तरह पर्यवेक्षण कर उसका विवरण प्रकाशित किया। उस विवरणमें २३०६ निहारिकाओंकी कथा लिखी है, उनमेंसे ५०० का उन्होंने स्वयं आविष्कार किया। इसी प्रकार और भी कितने साहब इस विषयमें अनेक विवरण प्रकाशित कर गये हैं।

काण्ट (Kant) और लापलस (Laplace)-का मत है कि ब्रह्माण्डके सभी पदार्थ किसी एक समय वायवीय निहारिकावस्थामें थे। उस समय इनका ताप अत्यन्त अधिक था। पीछे क्रमागत ठण्ढा होते होते वे किसी निर्दिष्ट केन्द्रका स्थिर कर उसके चारों ओर घनीभूत होने लगे। अनन्तर उनकी गतिका आरम्भ हुआ। इस प्रकार हम लोगोंके सौरमण्डलकी सृष्टि हुई।

हम लोग केवल इसी विश्वजगत्‌के अस्तित्वसे अवगत हैं, इस प्रकार और भी अनेक विश्व हो सकते हैं, इसमें बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं।

सम्प्रति ज्योतिर्विदोंका कहना है, कि जितने पदार्थ हैं, वे सभी पहले विच्छिन्नावस्थामें असंख्य उल्काप्रस्तर (Meteorites) रूपमें वर्त्तमान थे। उस समय उनका उत्ताप उतना अधिक न था। परस्पर संघर्षण और

आकर्षणसे निहारिकाओंकी सङ्कोचन-वृद्धि हुई। सङ्कोचन-वृद्धि होनेसे उष्णावस्थारूपताका समर्थन बहुत ज्यादा हुआ करता है, इस कारण निहारिकाके क्रमशः उत्तप्त होने लगी है। तापकी किसी दिन वृद्धि होनेसे वे उज्ज्वलता पा कर नक्षत्ररूपमें परिणत होती हैं। निहारिकाके नक्षत्र होनेके बाद प्रकृतिके नियमानुसार वे ताप विकीरण करती हैं और तापविकीर्ण होनेसे क्रमशः अपेक्षाकृत शीतल होने लगती हैं, किन्तु नक्षत्ररूपमें परिणत होने पर भी, शरीरकक्षस्थ उत्ताप कियत्परिमाणमें बढ़ने लगता है। वह उत्ताप जिस परिमाणमें बढ़ता है उससे अधिक विकीरण द्वारा उत्ताप निकलता है। अतएव इसका फल यह होता है, कि यह नक्षत्र शीतल हो कर ग्रहरूपमें परिणत हो जाता है। ग्रहके साथ नक्षत्रका जैसा सम्बन्ध है नक्षत्रके साथ भी निहारिकाका ठीक वैसा ही सम्बन्ध है अर्थात् नक्षत्र ठंढा हो कर ग्रह हो जाता है।

निहारवधा (हि॰ पु॰) नरवधा देखो।

निहाल (फा॰ वि॰) जो सब प्रकारसे सन्तुष्ट और प्रसन्न हो गया हो, पूर्णकाम।

निहाल—हिन्दीके एक कवि। ये लखनऊ जिलेके निगोहा ग्रामके निवासी तथा जातिके ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं॰ १८२०में हुआ था। इनका कविताकाल सं॰ १८५० कहा जाता है।

निहाल—बरारके अन्तर्गत मेलघाटके आदिमवासी। इन लोगोंने अन्नहीन हो कर बरारके कोर्कुओंका दासत्व स्वीकार किया। इनकी आदिम मातृभाषा लोप हो गई है। आधुनिक निहालगण कोर्कु भाषाका अनुसरण करते हैं। कोर्कुओंके साथ निहालोंकी सम्प्रीति है। किन्तु ये लोग कोर्कुओंको नीच समझते हैं उनके साथ खान पान नहीं करते, यहां तक कि उनके साथ बैठते तक भी नहीं। पूर्व समयमें ये लोग गायोंको चुराया करते थे अभी खेती बारीमें लग गए हैं। ये लोग बड़े आलसी और निष्कर्मा होते हैं।

निहाल खाँ—अयोध्याके रायबरेली विभागके अन्तर्गत मजफ्फर खाँ तालुकसे १३ कोस उत्तर-पश्चिममें निहालगढ़ नामक एक ग्राम है जहां मौका दुर्ग आज भी दिखलाई पड़ता है। १०१५ ई॰में निहाल खाँ नामक एक व्यक्तिने उस दुर्गको बनवाया।

निहालगढ़—निहालखाँ देखो।

निहालगढ़ चकलाकपुर—अयोध्याके सुलतानपुर जिलेका एक शहर। यह सुलतानपुरसे १६ कोस पश्चिम लखनऊ जानेके रास्ते पर अवस्थित है।

निहालचा (फा॰ पु॰) छोटी तोशक या गद्दी जो बच्चोंके नीचे बिछाई जाती है।

निहालकोचन (फा॰ पु॰) वह खेमा जिसकी कनात दो भागोंमें बटी हो, आधी दाहिनी ओर आधी बाईं ओर।

निहालसिंह—पञ्जाबकेशरी रणजित्सिंहके पौत्र और महाराज खड्गसिंहके पुत्र। इनकी माताका नाम चाँदकुमारी था। १८३४ ई॰में ये अपने सेनापति मे॰ मतुराको और कोर्टको साथ ले पेशावर प्रवेश करनेके लिए अग्रसर हुए। उसी सालके मई मासमें इन्होंने पेशावर नगर और दुर्गको अपने कब्जेमें कर लिया। पीछे डेराइस्माइल खांके शासनकर्त्ता शाह नवाज खांको परास्त और राज्यच्युत किया तथा मरवत राज्य जीते तोलकदुर्ग छीन लिया। १८३७ ई॰में इनके विवाहके उपलक्षमें महाराज रणजित्सिंहने देशी राजाओं और अंगरेजी सेनापति तथा बहुतसे लोगोंको निमन्त्रण किया था। १८३९ ई॰में तीन मास राज्य करनेके बाद खड्गसिंह जब राज्यच्युत किये गए तब आप १८ वर्षकी अवस्थामें राजगद्दी पर बैठे।

साहसिकता, विचक्षणता और दूरदर्शिताके बलसे निहालसिंहने पञ्जाबके शासन पर सिक्का जमाया। अंगरेज जातिके ऊपर इनकी विशेष श्रद्धा न थी। उनके साथ युद्ध करनेकी कामनासे कई बार इन्होंने सेना इकट्ठी की थी, किन्तु गृहविवादके कारण एक बार भी इनका अभीष्ट फलीभूत न हुआ। मन्दीके राजाके विरुद्ध युद्धयात्रा करके इन्होंने उन्हें परास्त किया और कमलागढ़ दुर्ग पर अधिकार जमाया। १८४० ई॰में पिताके मरने पर जब ये उनकी दाहक्रिया करके लौट रहे थे तब कोज राजद्वार पर पहुंचनेके साथ इनके ऊपर गुम्बज गिर पड़ा और ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

ब्राह्मण पण्डित, बाबा, फकीर आदि पर इनका यथेष्ट विश्वास था। ब्राह्मणको छोड़ कर और किसीकी सलाह ये आदर नहीं करते थे।

निहालसिंह—अहलुवालिया मिस्लके सरदार फतेसिंहके ज्येष्ठ पुत्र। १८३७ ई०में पिताकी मृत्युके बाद ये राज-सिंहासन पर बैठे। इस समय कुछ गोंडि इनको हत्या करनेके लिए राजप्रासादमें छिप रहे और सुयोग पा कर गुप्तभावसे इन पर टूट पड़े, किन्तु वे इनका एक बाल भी बाँका कर न सके। १८३८ ई०में जब लार्ड आकलैण्ड पञ्जाब हो कर काबुल जा रहे थे, तब इन्होंने खाद्यादि द्वारा अंगरेजी सेनाको यथेष्ट सहायता की थी। काबुलयुद्धमें इन्होंने दो दल सेना भी भेजी थीं। १८४५ ई०में प्रथम सिख-युद्धके समय इनके चरित्र पर अंगरेजों-को सन्देह हो गया। क्योंकि इस समय इन्होंने रसद आदि दे कर उनकी सहायता न की। इस अपराधमें शतद्रुके दक्षिणस्थ वार्षिक ५६५०००) रु०को जो सम्पत्ति थी उसे अङ्गरेज गवर्मेण्टने छीन लिया। २य सिखयुद्धमें इन्होंने तन मन धनसे अङ्गरेजोंको सहायता पहुंचाई। इस प्रत्युपकारमें इन्हें 'राजा'-की उपाधि मिली थी। १८५२ ई०में ये धराधामको छोड़ परलोकको सिधारे।

मरते समय ये अपना सारा राज्य बड़े लड़के रण धीरसिंहको और विक्रमसिंह तथा सुचेतसिंह नामक शेष दो लड़केको एक एक लाख रुपयेकी जागीर दे गए।

निहाली (फा० स्त्री०) १ तोशक, गद्दी। २ निहाई।

निहाव (हिं० पु०) लोहेका घन।

निहिंसन (सं० क्ली०) नि-हिन्स भावे ल्युट्। मारण, वध।

निहित (सं० वि०) नि धा-क्त, धा स्थाने हि। 'दधातेर्हिः'। पा ७।४।४२) १ आहित, बैठाया हुआ। २ स्थापित, रखा हुआ। ३ निक्षिप्त, फेंका हुआ।

निहीन (सं० वि०) नितरां हीनः। नीच, पामर।

निहुंकना (हिं० क्रि०) झुकना।

निहुड़ना (हिं० क्रि०) निहुरना देखो।

निहुरना (हिं० क्रि०) झुकना, नवना।

निहुराना (हिं० क्रि०) झुकाना, नवाना।

निहोरना (हिं० क्रि०) १ प्रार्थना करना, विनय करना। २ कृतज्ञ होना, एहसान लेना। ३ मनाना, मनौती करना।

निहोरा (हिं० पु०) १ अनुग्रह, एहसान, उपकार। २ आश्रय, आधार, भरोसा, आसरा। ३ प्रार्थना, विनती। (क्रि० वि०) ४ निहोरेसे, कारणसे, बदौलत। ५ के लिये, वास्ते।

निह्नव (सं० पु०) निह्नुयते सत्यवाक्यमनेनेति नि-ह्नु अप. (ऋदो-रप्। पा ३।३।५७) १ अपलाप, अस्वीकार करना। पर्याय-निह्नुति, अपह्नुति, अपह्नव। २ निकृति, भर्त्सना, तिरस्कार। ३ अविश्वास। ४ गुप्त, गोपन, छिपाव। ५ शुद्धि, पवित्रता। ६ एक प्रकारका साम।

निह्नान (सं० क्ली०) नि-ह्नु-ल्युट्। निह्नव।

निह्नुत्ति (सं० स्त्री०) नि-ह्नु-क्तिन्। निह्नव।

निह्नुत (सं० वि०) छिपाया हुआ।

निह्नुति (सं० स्त्री०) गोपन, छिपाव, दुराव।

निह्राद (सं० पु०) नि-ह्रद-घञ्। शब्द, ध्वनि।

नी (सं० त्रि०) नयति नी-कर्त्तरि क्विप्। प्रापक।

नींद (हिं० स्त्री०) १ निद्रा, स्वप्न, सोनेकी अवस्था। निद्रा देखो।

नीक (सं० पु०) नीयते इति नी प्रापणे कन् (अजियुधू-नीभ्यो दीर्घश्च। उण् ३।४७) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम।

नीक (हिं० पु०) उत्तमता, अच्छापन, अच्छाई।

नीकर्षिन् (सं० वि०) प्रसारणयुक्त।

नीका (हिं० वि०) उत्तम, अच्छा, बढ़िया, भला।

नीकार (सं० पु०) नि-कृ-घञि घञ्. बाहुलकात् दीर्घः। (उपसर्गस्य घञ्य मनुष्येबहुलम्। पा ६।३।१२२) न्यक्कार, भर्त्सना, तिरस्कार।

नीकाश (सं० वि०) नितरां काशते इति नि-काश-अच्, ततो उपसर्गस्य दीर्घः। (इकः काशे। पा ६।३।१२३) १ तुल्य, समान। (पु०) २ निश्चय।

नीकुलक (सं० पु०) अक्षरभेद।

नीके (हिं० क्रि०-वि०) अच्छी तरह, भली भांति।

नीक्षण (सं० क्ली०) नीक्ष्यतेऽनेन नि-ईक्ष करणे ल्युट्। पाकादि परीक्षासाधन काष्ठभेद।

नीचो (अ० पु०) चमड़ो। सियो देखो।

नीच (सं० त्रि०) नियतमेव नीचैः विनोतीति चि ड। १ जाति गुण और कर्मादि द्वारा निकृष्ट, तुच्छ, क्षुद्र, अधम, हेठा। संस्कृत पर्याय—विवर्ण, पामर, प्राकृत, पृथग्जन, निहीन, अपसद, जाल्म, क्षुल्लक, इतर, अपकृष्ट, क्षुद्र, खल, पिशुन, क्षुद्रक। नीचोंकी संगति करना सर्वदा वर्जनीय है। २ वामन, जो ऊंचा न हो। पर्याय—वामन, खर्व, ह्रस्व। ३ निम्न, नीचे। (पु०) ४ चोरक नामक गन्धद्रव्य। ५ ग्रहादिका स्थानभेद।

जिस ग्रहको जो राशि उच्चस्थान होती है, उस ग्रहके उस उच्च स्थानसे गणनामें जो राशि सातवें स्थानमें पड़ती है, वह स्थान उस ग्रहका नीच स्थान होगा। उच्चांशकी जैसे गणना है, नीचांशकी भी ठीक उसी तरह है। यथा—रविका उच्चस्थान मेष है और मेषका सप्तम तुला है। अतएव नीचांश भी दश होगा। नीचांशके ठीक पहलेको सुनीचांश कहते हैं। इस स्थानमें जो ग्रहगण रहते हैं, वे नितान्त दुर्बल होते हैं। इसी प्रकार अन्य राशिके नीचांश और सुनीचांशकी गणना करके ग्रहोंका बलाबल देखना होता है।

पर उक्त नीच जाननेके लिये नीचे एक तालिका दी गई है।

ग्रहका नाम	उच्च राशि	नीच राशि	उच्चांशका भोगकाल	नीचांश-भोगका काल।
रवि	मेष	तुला	१० दिन	१० दिन।
चन्द्र	वृष	वृश्चिक	१।१।३० पल	१।१।३० पल।
मङ्गल	मकर	कर्कट	२८ दिन	२८ पल।
बुध	कन्या	मीन	८ दिन	८ दिन।
गुरु	कर्कट	मकर	५ मास	५ मास।
शुक्र	मीन	कन्या	२७दिन०।१२पल	२७दिन०।१२पल।
शनि	तुला	मेष	२० मास	२२ मास।
राहु	मिथुन	धनु	१२ मास	१२ मास।
केतु	धनु	मिथुन	१२ मास	१२ मास।

इसी प्रकार नीच राशि जाननी चाहिए। राशिके नीचस्थित होनेसे मन्दफल होता है। (फलितज्योतिष)

६ खल मनुष्य नीच मनुष्य, ओछा आदमी। ७ आकाशमें किसी ग्रहके अवस्थानका वह काल जो उच्चसे अधिक दूर हो। ८ दशार्ण देशके एक पर्वतका नाम।

नीचक (सं० त्रि०) नीच एव स्वार्थे कन्। वामन, खर्व, नाटा।

नीचकदम्ब (सं० पु०) नीचः कदम्बो यस्मात्। १ मण्डीर, मुण्डी। २ महाश्रावणिका।

नीचकमाई (हिं० स्त्री०) १ निन्द्य व्यवसाय, तुच्छ काम, ओछा काम। २ वह धन जो बुरे कामोंसे उपार्जन किया गया हो।

नीचका (सं० स्त्री०) नियतमेव नीचैः चलति प्रतिचलति, चल अनितादी अच्-टाप्। उत्तमा गौ, अच्छी गाय।

नीचकी (सं० पु०) नियतमेव नीचैः चलति चल प्रतिघातीति बाहुलकात् इनि। १ अस, भैंस। २ ऊपरी भाग। ३ जिसके पास अच्छी गाय हो।

नीचकुलिश (सं० स्त्री०) वैक्रान्त रत्न।

नीचैस् (सं० अव्य०) नीचैर्, इत्यव्यक्त टेः (अव्यय सर्वनाम्नामकच्प्राक् टेः। पा ५।३।७१) १ नीचैः, क्षुद्र। २ अल्प। ३ अधम। ४ नीच। ५ मन्द। ६ स्वल्प। ७ खर्व।

नीचग (सं० क्ली०) नीच निम्नदेशं गच्छतीति गम-ड। १ निम्नाभिमुख नीचेकी ओर जानेवाला पानी। २ फलितज्योतिषके अनुसार वह ग्रह जो अपनी उच्च स्थानसे सातवें पड़ा हो। (त्रि०) ३ निम्नगामी, नीचे जानेवाला। ४ पामर, ओछा। स्त्रियां टाप्। ६ नीचवर्गगामिनी स्त्री, नीचके साथ गमन करनेवाली स्त्री।

नीचगा (सं० स्त्री०) नीचग-टाप्। १ निम्नगा नदी। २ नीचवर्गगामिनी स्त्री, नीचके साथ गमन करनेवाली स्त्री।

नीचगामी (हिं० वि०) १ नीचे जानेवाला। २ ओछा। (पु०) ३ जल, पानी।

नीचगृह (सं० क्ली०) वह स्थान जो किसी ग्रहके उच्च स्थान या राशिसे गिनतीमें सातवां पड़े।

नीचता (सं० स्त्री०) नीचस्य भावः, नीच-तल्। १ नीचत्व, नीच होनेका भाव। २ अधमता, ओछाई, कमीनापन।

नीचत्व (सं० पु०) नीचता।

नीचभोज्य (सं० पु०) नीचैर्भोज्यः। १ पलाण्डु, प्याज (त्रि०) २ नीचभोज्यमात्र, अखाद्य।

नीचयोनिन् (सं० त्रि०) नीचा योनिरस्यस्य व्रीह्यादित्वात् इनि। नीच-जातियुक्त।

नीचवज्र (सं० पु०-क्ली०) नीचमनुत्कृष्टः वज्रम्। सं० क्रान्त मणि।

नीचा (हिं० वि०) १ जिसके तलसे उसके आसपासका तल ऊंचा हो, जो कुछ उतार या गहराई पर हो। २ जो ऊपरको ओर दूर तक न गया हो। ३ जो उत्तम और मध्यम कोटिका न हो, छोटा या ओछा। ४ जो तीव्र न हो, मध्यम, धीमा। ५ जो ऊपरकी ओर पूरा उठा न हो, झुका हुआ। ६ जो ऊपरसे जमीनकी ओर दूर तक आया हो, अधिक लटका हुआ।

नीचात् (सं० अव्य०) निकटाग्नीर्ष्विनोति बाहुलकात् डाति। नीच, क्षुद्र।

नीचामेढ्र (सं० त्रि०) अधोमुखलिङ्ग।

नीचायक (सं० त्रि०) नितरां निश्चयेन वा चिनोति नि-चि-ण्वुल्। नितान्त चायक, बहुत चाहनेवाला।

नीचावयस् (सं० त्रि०) न्यग्भावप्राप्त।

नीचाशय (सं० त्रि०) नीच आशयः यस्य। क्षुद्रचेता, तुच्छ विचारका, ओछा।

नीचिकी (सं० स्त्री०) नैचिकी, अच्छी गाय।

नीचीन (सं० त्रि०) न्यक् स्वार्थे ख अञ्चतेर्न लोपात् लोपे पूर्वाणो दवोः। न्यग्भूत, अधोमुख।

नीचू (हिं० वि०) जो टपकता न हो, जो न चुए।

नीचे (हिं० क्रि०-वि०) १ अधोभागमें, नीचेकी ओर, ऊपरका उलटा। २ अधीनतामें, मातहतीमें। ३ न्यून, घट कर, कम।

नीचैर्गति (सं० स्त्री०) नीचैः गतिः। १ मन्दगमन। २ निम्नगति।

नीचैस् (सं० अव्य०) नि-चि-डैस्, नेर्दीर्घश्च। (नौ-दीर्घश्च। उण् ४।१३) १ नीच। २ स्वैर। ३ अल्प। ४ अमुख।

नीचोच्चमास—चन्द्रमा २७ दिन १३ दण्ड १६ पल ५६ पलमें एक बार पृथ्वीके चारों ओर घूम आता है। इतने समयके मध्य चन्द्रकेन्द्रका एक बार परिभ्रमण सम्पन्न होता है। अंगरेजी ज्योतिषमें इसे Anomalistic month कहते हैं। 'नीच' (perigee) शब्दका अर्थ है पृथिवी और चन्द्रका गमनकालीन सर्वापेक्षा निकटवर्ती स्थान और 'उच्च' (apojee) शब्दका अर्थ पृथिवी और चन्द्रका सर्वापेक्षा दूरवर्त्ती स्थान। अतएव नीचोच्चमाससे उतने समयका बोध होता है जितनेमें चन्द्र 'नीच' और 'उच्च'-से गमन कर पुनः उसी स्थान पर लौट आता है। तिथिशब्द देखो।

नीचोच्चवृत्त (सं० क्ली०) वृत्तभेद, वह वृत्त जिसका केन्द्र किसी एक वृहत् वृत्तके मध्य भ्रमण करता है। (Epicycle)

नीचोपगत (सं० त्रि०) जो खगोलके निम्नभागमें अब स्थित हो।

नीच्य (सं० त्रि०) नीचि भवः न्यच् यत, नलोपाल्लोपे पूर्वाणो दीर्घः। निम्नभव, जो नीचे हो।

नीज (हिं० पु०) रस्सी।

नीजू (हिं० स्त्री०) रस्सी, पानी भरनेकी डोरी।

नीठ (हिं० क्रि०-वि०) नीठि देखो।

नीठि (हिं० स्त्री०) १ अरुचि, अनिच्छा। (क्रि०-वि०) १ ज्यों त्यों करके, किसी न किसी प्रकार। २ कठिनता-से, मुशकिलसे।

नीठो (हिं० वि०) अनिष्ट, अप्रिय, न सुहानेवाला, न भानेवाला।

नीड़ (सं० पु०-क्ली०) नितरां ईड्यते स्तूयते सुखप्रदत्वात् नि ईड-घञ्। १ पक्षिवासस्थान, चिड़ियोंके रहनेका घोंसला। इसका पर्याय कुलाय है।

जिस जातिकी चिड़िया जिस जिस ऋतुमें गर्भोत्पादन करती हैं ठीक उसी समय वे अपने अपने घोंसले बनानेकी फिक्रमें रहती हैं। इस घोंसलेको वे अकसर वृक्षकी ऊंची डालियों पर ही बनाते हैं। जब गर्भिणी चिड़ियाका डिम्बप्रसवकाल नजदीक आ जाता है, तब नर और मादा दोनों इधर उधरसे खर, पत्ते, घास फूस अपनी चोंचमें उठा लाते और किसी वृक्षके उच्चतम शिखर पर घोंसला बनाते हैं। यह घोंसला इस प्रकार बना होता है कि उसके बाहरी भाग पर हाथ रखनेसे कांटा चुभनेके जैसा मालूम पड़ता है, लेकिन जहां

मादा अंडा पारती है वह स्थान उसके अंडा एवं बच्चोंको अपेक्षा चिकना और कोमल होता है।
चील, कौवे आदिके घर भी ठीक इसी तरह होते हैं। बहुत-सी ऐसी चिड़ियां हैं जो पुरानी दीवारकी दरारमें घोंसला बनाती हैं। कठफोड़वा नामका पक्षी वृक्षके कोटरमें ही घर बनाना पसन्द करता है। यह पालित कुक्कुट, कपोत आदि पक्षी अपने अपने निर्दिष्ट स्थानमें घर, छत और भित्ति संलग्न होके नीड़ बनाते हैं। बया नामक पक्षीका घोंसला बड़ा ही अद्भुत होता है। यह घोंसला बाहरसे देखनेमें ठीक सुराहीके जैसा लगता है। इसके भीतरका अंशयुक्त और आवास स्थान बड़ी कारीगरीसे बना होता है। कहते हैं, कि बया पक्षी अपने घोंसलेमें जुगनू रख कर उसीसे दीयेका काम लेते हैं। अति क्षुद्र प्राणी फुलसुंघनी पक्षियोंके कोमल परसे अपना घोंसला ऐसे कौशलसे बनाता है कि उसे देख कर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। यह अपना घोंसला अमरूदके डालमें लटका कर बनाता है। भीतरी भाग और सभी पक्षियोंसे भी अधिक मुलायम होता है। बादुर कहां घर बनाता है, कोई नहीं जानता। यह प्रायः अमरूदादि या निर्जन खंडहरोंके कोटरोंमें अथवा किसी वृक्षकी डालीमें दिन-को लटका रहता है। काकातुआ आदि पार्वतीय पक्षी पर्वतकी दरारमें और वृक्षके ऊपर घर बनाते हैं। मर्कट आदि पश्चिमस्थ पर्वत पर अथवा जमीनमें गड्ढे बना कर रहते हैं। पत्तिया और उसके निकटवर्ती दोनों ही फिलिपाइन द्वीपपुंजमें और बोर्नियो द्वीपके उत्तर पश्चिममें एक जातिकी चिड़िया रहती है जो अपने जङ्गलमें मट्टी वा बालूके नीचे गड्ढा बना कर अंडा पारती है। भारतीय मयूर जातीय पक्षी आदिके नीड़ देखनेमें खराब लगते हैं, लेकिन भीतरका भाग मुलायम रहता है। अंडे देनेके समय वे तुरंत ही चिथड़े बटोर ला कर उसे और भी मुलायम बना लेते हैं। कभी कीचड़में अपने मनुष्यके सिरके बाल, परित्यक्त पशमादि अथवा छोटे छोटे पौधोंकी पत्तियां भी दिया करते हैं। इन नीड़का व्यास साधारणतः २से ३ फुट और ऊंचाई २से १० इंच तक होती है। पक्षियोंके लड़कपनमें पराङ्
के अपने और भी पालित हैं वे जन्मभूमि पर अपने प्रसन्न हो समय पर आदिके जैसा नीड़ बनाते हैं।

भारतमहासागरके एण्डामान, बोर्नियो और चीनदेशके समुद्र-उपकूलमें एक प्रकारकी अबाबील (Swallow) चिड़िया रहती है। यह पर्वतकी गुफामें अपने मुखकी लारसे ही नीड़ बनाती है जो चीन और यूरोपवासियोंका बड़ा ही उपादेय खाद्य है। यह मुखनिःसृत लार समुद्र उपकूल जात किसी पदार्थसे प्राप्त होती है। किन्तु डाक्टर अनुमान करते हैं कि यह लार समुद्रकीटकी मज्जाकी बनी होती है। जिलामेण्ट पं॰ कहते एक प्रकारकी मछलीके अण्डे या मत्स्यस्कुलवर्ती क्षुद्र जातीय मछलियोंको खा कर नीड़ बनाती है। इसकी आकृति चमचिमच-सी होती है। यह नीड़ प्रायः पर्वतमें ये अबाबील चिड़ियोंके मल और परसे आवृत रहता है। अन्याय लोग पर्वतमालासे नीड़ संग्रह कर उन्हें मल और परसे साफ करते हैं। उस समय यह नीड़ देखनेसे ठीक सफेद मोतीके जैसा चमकता है। यह ऐसा उपादेय होता है कि यूरोप और चीनवासी इसके गुण पर मोहित हो कर इससे शिरवा बनाते और बड़ी रुचिसे खाते हैं। यह मोतीके जैसा पदार्थ बिलकुल नीड़ाय है, अपने मीठेके विचारसे बिकता है और केवल धनी मनुष्य उसे खरीदते हैं।

धीमन्तालियोंका विश्वास है कि नीड़ खानेसे शरीर सर्वदा तुन्दरके जैसा बना रहता है। इस कारणसे प्रति वर्ष कई हजार मन ऐसा नीड़ संग्रह कर रखते हैं। यह नीड़ अन्वयरके प्रकारका होता है एक श्वेतवर्णका नीड़ और दूसरा कृष्णवर्णका। श्वेत वर्ण विशिष्ट नीड़ अधिक मोलमें बिकता है, मैं कई पौंड केवल ८ पौंडके नीड़ पाये जाते हैं। कृष्णवर्णका नीड़ यवद्वीपकी राजधानी बटेविया नगरमें बिकता है जहां उसे गला कर उम्दा सिरीस (आटेके जैसा पदार्थ) तैयार करते हैं। किसी किसीका कहना है कि इस जातिके नीड़को कुछ दिन तक गरम जलमें डुबोये रखनेसे उसका रंग अपने देशमें उतर जाता है। चेवलमहलमें, अब यह नीड़ अधिक संख्यामें पाया जाता है।

२ बड़मेका डंठरमोका स्थान। ३ पक्षियोंका अधिष्ठान

स्थान, रथके भीतर वह स्थान जिसमें रथी बैठता है।

"स भग्न नीड़: परिलुतकूबर: पपात भूमौ हतवाजिरम्बरात्"

(रामायण ३।५१।१८)

४ रथावयवभेद, रथके एक अङ्गका नाम।

नीड़क (सं० पु०-स्त्री०) नीड़े कायति प्रकाशते कै-क। खग, पक्षी, चिड़िया।

नीड़ज (सं० पु० स्त्री०) नीड़े जायते जन-ड। पक्षी, चिड़िया।

नीड़जेन्द्र (सं० पु०) गरुड़।

नीड़ि (सं० पु०) नितान्तं इलन्तत्व, नि-इल स्वप्ने-इन् लस्य ड। निवास, वासस्थान।

नीड़ोद्भव (सं० पु०-स्त्री०) नीड़े उद्भवति, उद् भू-अच् वा नीड़े उद्भवो यस्य। खग, पक्षी।

नीत (सं० त्रि०) नी-कर्मणि क्त। १ स्थापित। २ प्रापित। ३ गृहीत। ४ अतिवाहित। (पु०) ५ धान्य, धान।

नीति (सं० स्त्री०) नीयते संलभ्यन्ते उपायादय ऐहिकामुष्मिकार्था वास्यामनया, नी-अधिकरणे वा क्तिन्। १ शुक्रादि-उक्त राजविद्या। भावे-क्तिन्। २ प्रापण। ३ तदधिष्ठात्री देवीभेद। हरिवंश २५६ अ०में लिखा है—

"शिष्टाश्च देव्यः प्रवराः ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च।
प्रभा धृतिः क्षमाभूतिर्नीतिर्विद्या दया मतिः॥"

४ शास्त्रविशेष।

नीतिशास्त्र हिताहित विवेचनाका शास्त्र है। इसका अध्ययन करनेसे अच्छे बुरेका ज्ञान होता है। मानव जब दुर्नीतिपरायण होते हैं, तब जगत्में नाना प्रकारकी विशृङ्खलाएं उत्पन्न होती हैं। इसलिए सबसे पहले नीतिपरायण होना नितान्त प्रयोजन है। महाभारतके शान्तिपर्वमें नीतिशास्त्रका विषय इस प्रकार लिखा है—युधिष्ठिरने जब भीष्मदेवसे नीतिशास्त्रका विषय पूछा, तब उन्होंने कहा था कि सत्ययुगमें सृष्टिके कुछ दिन बाद सभी मनुष्य पापपथ पर चलने लगे। यह देख कर देवताओंने ब्रह्माकी शरण ली। भगवान् कमलयोनिने देवताओंको सम्बोधन करते हुए कहा, 'तुम लोग डरो मत मैं बहुत जल्द ही इसका उपाय कर देता हूं।' यह कह कर उन्होंने अचिरात् लक्ष अध्याययुक्त नीतिशास्त्रकी रचना की। इस शास्त्रमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चतुर्वर्ग; सत्त्व, रज और तम तीन गुण; वृद्धि, क्षय और समानत्व नामक दण्डज त्रिवर्ग; चित्त, देश, काल, उपाय, कार्य और सहाय नामक नीतिज षड्वर्ग; कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, कृषि, वाणिज्यादि, जीविकाकाण्ड, दण्डनीति, अमात्य, रक्षार्थ नियुक्त चर और गुप्तचरविषय, राजपुत्रका लक्षण, चरगणका विविधोपाय, साम, दान, भेद, दण्ड, उपेक्षा, भेदकारक मन्त्रणा और विभ्रम, मन्त्रसिद्धि और असिद्धिका फल, भय, सत्कार, वित्तग्रहणार्थ अधम, मध्यम और उत्तम तीन प्रकारकी सन्धि, चतुर्विध यात्राकाल, त्रिवर्गका विस्तार, धर्मयुक्त विजय और आसुरिक विजय, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल और कोष इस पञ्चवर्गके त्रिविध लक्षण, प्रकाश और अप्रकाश्य सेनाका विषय, अष्टविध गूढ़ विषय प्रकाश, हस्ती, अश्व, रथ, पदाति, भारवाही, चर, पोत और उपदेष्टा यह अष्टविध सेनाङ्ग, वस्त्रादि और अन्नादिमें विषयोग, अभिचार, अरि, मित्र और उदासीनका विषय, पथगमनका ग्रहनक्षत्रादिजनित समग्र गुण, भूमिगुण, आत्मरक्षा, आश्वास, रथादि निर्माणका अनुसन्धान, मनुष्य, हस्ती, अश्व और रथसज्जाका उपाय, विविधव्यूह, विचित्र युद्धकौशल, धूमकेतु आदि ग्रहोंका उत्पात, उल्कादि निपात, सुप्रणालीक्रमसे युद्ध, पलायन, अस्त्रशस्त्रका शाणप्रदान, अस्त्रज्ञान, सैन्यव्यसनमोचन, सैन्योंका हर्षोत्पादन, पीड़ा, आपत्काल, पदातिज्ञान, खातखनन, पताकादि प्रदर्शनपूर्वक शत्रुके अन्तःकरणमें भयसञ्चारण, चोर, उग्रस्वभाव, अरण्यवासी, अग्निदाता, विषप्रयोक्ता, प्रतिरूपकारी प्रधान व्यक्तिका भेद, वृक्षच्छेदन, मन्त्रादि प्रभावसे हाथियोंका बलह्रास, शङ्का उत्पादन और अनुरक्त व्यक्तिका आराधन तथा विश्वासजनन द्वारा परराष्ट्रमें पीड़ाप्रदान, सप्ताङ्गराज्यका ह्रास, वृद्धि और समता, कार्यसामर्थ्य, कार्यका उपाय, राष्ट्रवृद्धि, शत्रु मध्यस्थित मित्रका संग्रह, बलवान्का पीड़न और विनाशसाधन, सूक्ष्म व्यवहार, खलका उन्मूलन, व्यायाम, दान, द्रव्यसंग्रह, अभृतव्यक्तिका भरणपोषण, भृतव्यक्तिका पर्यवेक्षण, यथाकालमें अर्थदान, व्यसनमें अनासक्ति, भूपतिका गुण, सेनापतिका गुण, त्रिवर्गका कारण और गुणदोष, असत्

धर्मितत्त्व अनुगतोंके व्यवहारादिके प्रति श्रद्धा, अपना वासनापरित्याग, अनर्थविषयका त्याग, सत्यवस्तुकी रुचि, प्रकृत धर्म, अर्थ, काम और कामना त्यागके लिये दान अथवा, अक्षक्रीड़ा, सुरापान और स्त्रीसम्भोग चार प्रकार का कामज वाक्पारुष्य, उग्रता दण्डपारुष्य, पिशुन, आत्मत्याग और अर्थदूषण यह आठ प्रकारका क्रोधज कुल दश प्रकारका व्यसन, विविधपक्ष और यज्ञकार्य, चित्तविक्षेप, वैश्वदेव, अवरोध, कृषि आदि कार्यों का अनुष्ठान, नाना प्रकारका उपकरण, युद्धयात्रा, सुखी पात्र, अपना आसन, शत्रु और मित्रोंका उपार्जन तथा राज्यमें प्रतिस्थापन, साधुलोगोंकी पूजा और विद्वानोंके साथ आत्मीयता, दान और होमका परिज्ञान, माङ्गल्य-वस्तुका स्पर्श, शरीरका शृङ्गार, आहार, आस्तिकता, एक समका अवलम्बन कर अभ्युत्थान, सदा मधुर वाक्य, सामाजिक उत्सव, गृहकार्य, सभादिस्थानका प्रत्यक्ष और परोक्ष-व्यवहार अनुसन्धान, ब्राह्मणोंकी अदण्ड-नीयता, गुणानुसार दण्डविधान, अनुजीवियोंके मध्य ज्ञाति और गुणगत पक्षपात, पौरजनका रक्षाविधान, द्वादश राजमण्डलविषयक चिन्ता, बहत्तर प्रकारका शारीरिक प्रतिकार, देश, जाति और कुलका धर्म, धर्मादि मूल-कार्योंकी अपेक्षासे मायायोग, नौकानिमज्जनादि द्वारा नदीपथावरोध इन सब विषयोंका विस्तृत विवरण किया है।

अनन्तर ब्रह्माने इस नीतिशास्त्रकी रचना कर इन्द्र आदि देवताओंसे कहा, 'मैंने त्रिवर्गके स्थापन और लोगोंके उपकार साधनके लिए वाक्यके सारस्वरूप इस नीतिशास्त्रका उद्भावन किया है। इस नीतिशास्त्रके अध्ययन करनेसे निग्रह और अनुग्रह प्रदर्शनपूर्वक लोकरक्षा करनेकी बुद्धि उत्पन्न होगी। इस शास्त्र द्वारा जगत्के सभी मनुष्य दण्डप्रभावसे पुरुषार्थ पानेमें समर्थ होंगे, इसीसे इस नीतिका नाम दण्डनीति रखा जायगा।'

इस प्रकार महाप्रभावयुक्त नीतिशास्त्रके तैयार हो जाने पर पहले पहल महादेवने इसे ग्रहण किया। प्रजाकी आयुकी कमी देख कर उन्होंने इस नीतिशास्त्रको संक्षेपमें बनाया। वह शास्त्र दस हजार अध्यायोंमें विभक्त किया गया और वैशालाक्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ। पीछे भगवान् इन्द्रने उस शास्त्रको पाँच हजार अध्यायोंमें बना कर उसका नाम बाहुदन्तक रखा। अनन्तर बृहस्पतिने बाहुदन्तक ग्रन्थको संक्षिप्त कर तीन हजार अध्यायोंमें विभक्त किया जो पीछे बार्हस्पत्य नामसे मशहूर हुआ। अन्तमें शुक्राचार्यने इसीको एक हजार अध्यायोंका एक नीतिशास्त्र बनाया और उसका शुक्रनीति नाम रखा। यही शुक्रनीति अल्पायु मानवोंके पढ़ने योग्य है। इसके पढ़नेसे हिताहितका ज्ञान होता है।

(भारत शान्तिपर्व ५८ अ०)

कालिकापुराणमें नीतिका विषय इस प्रकार लिखा है,—

राजा सगरने महामुनि और्वको नीतिसम्बन्धमें बहुत सी बातें पूछते हुए कहा, 'मुनिवर ! आत्मा, पुत्र और भार्याके प्रति किस नीतिका प्रयोग करना उचित है उसे हमें अच्छी तरह समझा कर कहें।' इस पर और्वने उन्हें नीतिका इस प्रकार उपदेश दिया था,—

अपने आत्मज, तपोवृद्ध और वयोवृद्ध, अहङ्कारवर्जित, उदारचित्त, विषयासक्तोंको सेवा कर्तव्य है। अपने प्रतिदिन श्रुतिस्मृतिविहित विधिपथका आचरण करे। वे जो कुछ कहें, राजाको उचित है कि उसी समय ठीक कर डालें। शरीर एक रथ है। पञ्च कर्मेन्द्रिय उसके घोड़े हैं। आत्मा उसकी आरोही रथी है, ज्ञान घोड़ेका लगाम है और मन उसका सारथि है। अभी घोड़ेको विनीत करना होता है और सारथिको रथीके वश लगामको दृढ़ तथा शरीरमें ओज उत्पादन करना अवश्य विधेय है। रथी दुर्विनीत अश्व-चालित रथ पर चढ़ कर घोड़ोंके इच्छानुसार जाते जाते विपदमें पड़ता है। फिर रथीके अपायस्थ हो कर सारथिके इच्छानुसार अश्वचालना करने पर रथी यदि वीर भी रहे तो भी वह उसे रिपुके अधीन कर डालता है। अतः विजय लीन करते समय इन्द्रिय और मनको वशीभूत करें। ज्ञान जिससे दृढ़ रहे, अपने अपनी वही करना श्रेय है। ज्ञानरूप लगामके दृढ़ होने पर और सारथिके वशवर्ती रहने पर, विनीत अश्व ठीक मार्गमें चलेगा। इनमेंसे सभीको अपनी अपनी इन्द्रिय और मनको वशमें करके ज्ञानपथ पर रह कर आत्महितानुष्ठान विधेय है।

राजा ही है। राजाको उचित है, कि वे सुनीतिका शासन करें और अनीतिओंको दण्डविधानादि द्वारा सुपथ पर लावें। इसी कारण राजाओंको राजनीति-विशारद होना उचित है।

अग्निपुराणमें नीतिका विषय इस प्रकार लिखा है,—

'रामने लक्ष्मणको नीति विषयका जो उपदेश दिया था, वह इस प्रकार है,—

विनय ही नीतिका मूल है। शास्त्रनिश्चयके द्वारा विनयकी उत्पत्ति होती है। इन्द्रियविजयको ही विनय कहते हैं। इसी मनुष्यको विनीत भावमें रहना आवश्यक है। आत्मज्ञान, प्रज्ञा, धृति, दक्षता, सामर्थ्य, धारयिष्णुता, उत्साह, वाक्यसंयम, औदार्य, आपत्कालमें सहिष्णुता, प्रभाव, शुचिता, मैत्र, त्याग, सत्य, कृतज्ञता, कुल, शील और दम ये सब गुण सम्पत्तिके हेतु हैं।

इन्द्रियां मत्तहस्तीकी तरह स्वभावतः उद्दाम हो कर हृदयको विघूर्णित करती हैं और विषयरूप विशाल अरण्यकी ओर दौड़ती हैं। इस समय ज्ञानरूप अङ्कुश द्वारा उन्हें वश करना कर्त्तव्य है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करते वे प्रज्वलित अग्निकी शिखाओंमें दग्ध कर होते हैं। मद्य, अग्नि, जल और इन्द्रिय इनमें से किसी पर विश्वास न रखना चाहिए। विशेषतः इन्द्रियकी शक्ति और वेग सबसे अधिक है। योगसिद्ध परमर्षिगण भी सहसा इन्द्रियवेगसे विचलित होते देखे गए हैं। धैर्यरूप आलानमें ज्ञानरूप शृङ्खलसे जब तक नहीं बंधा जायगा, तब तक इन्द्रियरूप मत्तहस्तीको वशीभूत करना बिलकुल असाध्य है। इन्द्रियोंसे बुद्धि विचलित होती, मन चञ्चल बनता, हृदय चञ्चल हो जाता, आत्मा अवसन्न हो जाती, चैतन्य विच्छिन्न होता तथा प्राण विपन्न हो जाता है। अतएव जहां तक हो सके इन्द्रियहस्तीको वश करना सबका कर्त्तव्य है। इन्द्रियरूप दुर्दान्त हस्तीको वशीभूत करनेसे संसार यहां तक कि स्वयं ईश्वर भी वशीभूत और पराजित हो जाते हैं। ईश्वरको वशमें लानेसे निर्वाणरूप परमपद प्राप्त होता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान और मद इनका नाम अरि षड्वर्ग है। इस षड्वर्गका परिहार नहीं करनेसे सुख किसी कालमें मिल नहीं सकता। शास्त्रमें काम को विषाग्निस्वरूप माना है, क्योंकि इसकी ज्वाला, विष और अग्निसे भी भयानक है। नितान्त प्रशान्तचित्त और कामासक्तमें पतित होनेसे एकान्त अस्थिर होता है। इस संसारमें कामपरायण मनुष्योंका जैसा अधःपतन होता है, वैसा और किसीसे नहीं होता। अतएव ज्ञानरूप सुनीतिके बलसे कामासक्तको सुझाना एकान्त कर्त्तव्य है।

जितने प्रकारके शत्रु बतलाए गए हैं उनमेंसे क्रोध सबसे प्रधान शत्रु है। इसी कारण क्रोधको महारिपु कहा है। शरीरमें क्रोधके रहनेसे अन्य शत्रुका प्रयोजन नहीं पड़ता। क्रोध सारी वस्तुओंको विफल कर डालता तथा वस्तुओं को भी विकल करता है। क्रोध और विषधर अजगर दोनों ही एक पदार्थ हैं। सांप देखने पर मनुष्य जिस तरह डर जाते हैं उसी तरह वे क्रोधी व्यक्तियोंसे भी डरते और उद्विग्न होते हैं। क्रोधित व्यक्तिको हिताहितका ज्ञान नहीं रहता। बहुतसे मनुष्य क्रोधमें आ कर आत्महत्या तक भी कर डालते हैं। क्रोध साक्षात् कृतान्त-स्वरूप है। बहुतसे धर्म तमोगुणके प्रभा संसार या सृष्टिविनाशके लिए ही क्रोधका जन्म हुआ है। अतः क्रोधका त्याग करनेसे ही सुख मिलता है। जो क्रोधका त्याग नहीं करते, उन्हें हमेशा अशुभ और अशान्तिभोग करना पड़ता है। क्रोधी मनुष्य किसी समय शान्तिलाभ नहीं कर सकता। शान्ति नहीं होनेसे जीवन वृथा और विडम्बनामात्र है। काम कुछ कर क्रोधको आश्रय देना कभी उचित नहीं है। इसीसे हर एकको क्रोधका परित्याग करना चाहिए। विशेषतः जो राजपद पर प्रतिष्ठित हैं, उन्हें क्रोधका परिहार करना परमधर्म है। क्रोधी नरपति नरपति नामके अयोग्य है।

लोभका आकार प्रकार और क्षमतादि अतीव भीषण है। समस्त संसार मिल जाने पर भी उनकी परितृप्ति नहीं होती, लोभसे बढ़ कर और दूसरा महापाप है ही नहीं। लोभसे बुद्धि विचलित और विषयलिप्सा प्रादुर्भूत होती है। विषयलोलुप व्यक्तिको किसी लोकमें सुख नहीं। लोभी व्यक्ति सदा लुब्ध वस्तुकी खोजमें रहता है। सुख उसे छोड़ कर बहुत दूर चला जाता है। इस कारण लोभीका सुख आकाशकुसुमवत् और अप्रकल्पना

वत् एकान्त अलीक है। अतएव प्रत्येकको लोभका त्याग करना विधेय है।

मोहका नाम पूर्ण विकार है। अन्यान्य विकारके प्रतिकारकी सम्भावना है, किन्तु मोहविकारकी औषध या दवा कुछ भी नहीं है। एकमात्र सद्गुरु और सद्शिक्षा इसकी औषध है। मोहसे मृत्युकी सृष्टि हुई। अतएव मोहको दूर करना हरएकका धर्म है।

आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता और दण्डनीति इन विषयोंमें जो विशेष अभिज्ञ और क्रियावान् हैं, उन्हीं सब मनुष्योंके साथ राजा विनयान्वित हो कर यथायथ राजकार्यकी पर्यालोचना करें। आन्वीक्षिकीमें अर्थविज्ञान, त्रयीमें धर्माधर्म, वार्त्तामें अर्थानर्थ और दण्डनीतिमें न्यायान्याय प्रतिष्ठित है।

अहिंसा, सुनृतवाक्य, सत्य, शौच, दया और क्षमा इनका सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये। सतत प्रियवाक्यकथन, दूसरेका दुःख दूर करनेमें तत्पर, दरिद्रोंका भरणपोषण, दुर्बल और शरणागतोंकी रक्षा ये सब कार्य सर्वापेक्षा उपकारी हैं।

जो शरीर आधिव्याधिका मन्दिर है, जो आज या कल अवश्य ही विनष्ट होगा, जो मांस, मूत्र और पुरीषादि असार वस्तुकी समष्टि है, उस शरीरकी रक्षाके लिए किसी प्रकारकी दुर्नीतिका अवलम्बन करना सर्वतोभावसे निषिद्ध है।

अपने सुखके लिए किसीको कष्ट देना सङ्गत नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य पूजनीय सज्जनको अञ्जलि प्रदान करते हैं, कल्याणकामनासे दुर्जनके निकट उसी प्रकार वा उससे भी बढ़ कर अच्छी तरहसे अञ्जलिका विधान करें।

क्या साधु, क्या असाधु, क्या शत्रु, क्या मित्र अथवा दुर्जन या सुजन सभीको हमेशा प्रियवाक्यसे सम्भाषण करें। मिष्टवाक्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ वशीकरण और दूसरा नहीं है। शत अपराध भी मीठी बातोंसे उसी समय माफ हो जानेकी सम्भावना है। यह सब जान कर मीठी बातोंका प्रयोग सर्वदा करना उचित है। जो प्रियवादी हैं, वे ही देवता और जो क्रूरवादी हैं वे ही पशु हैं। भक्ति और आस्तिकतापूर्ण हृदयसे सर्वदा देवपूजा विधेय है। देवतावत् गुरुजनोंका और आत्मवत् सुहृदोंका सादर सम्भाषण करना उचित है। प्रणिपात द्वारा गुरुको, सत्य व्यवहार द्वारा साधुको, सुकृत कर्म द्वारा देवताओंको, प्रेम वा दान द्वारा स्त्री और भृत्यको तथा दाक्षिण्य द्वारा इतर मनुष्यको वशीभूत और अभिमुख करना चाहिए।

परकार्यकी अनिन्दा, स्वधर्मका प्रतिपालन, दीनों पर दया सर्वदा मधुरवाक्यका प्रयोग, अकृत्रिम मित्रका प्राण दे कर उपकार, गृहागत व्यक्तिको आश्रयदान, शक्तिके अनुसार दान, सहिष्णुता, अपनी समृद्धिमें अनुत्सेक, दूसरेकी उन्नतिमें अमत्सर, जिससे मनुष्यके हृदयमें चोट पहुंचे, ऐसी बातका न कहना, जिससे मनुष्यका किसी प्रकारका अनिष्ट होनेकी सम्भावना हो, ऐसे कार्यका न करना, जिससे इहलोक विनष्ट हो, ऐसे कार्यमें प्रवृत्त न होना, जिससे अपनी और दूसरेकी ग्लानि हो, ऐसे कार्यमें हाथ न डालना, मौनव्रतचरिष्णुता, बन्धुओंके साथ बहुसंयोग, स्वजन पर समदृष्टि ये सब कार्य व्यवहारनीति कहे गए हैं और यही महात्माओंका चरित्र है। (शान्तिपु० १५७-१५८ अ०)

आर्यजातिकी सामाजिक उन्नतिके साथ नीतिशास्त्रका समादर है, इसका यथेष्ट प्रमाण महाभारतसे मिलता है। अभी जो सब नीतिशास्त्र प्रचलित हैं उनमेंसे उशनाप्रणीत शुक्रनीति और कामन्दकप्रणीत कामन्दकीय नीतिसार प्रधान और प्राचीन हैं। इसके अलावा क्षेमेन्द्रविरचित नीतिकल्पतरु वा नीतिलता, लक्ष्मीपतिरचित नीतिगर्भित शास्त्र, विद्यारण्यतीर्थकृत नीतितरङ्ग, नीतिदीपिका, वेतालभट्टकृत नीतिप्रदीप, याहिवेदकृत नीतिमञ्जरी, शम्भुराजरचित नीतिमञ्जरी, नालकण्ठका नीतिमयूख, वररुचिकृत नीतिरत्न, चण्डेश्वरकृत नीतिरत्नाकर, सोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत, व्रजराज शुक्लरचित नीतिविलास, कर्मशङ्करकृत नीतिविवेक, घटकर्परकृत नीतिसार, मधुसूदनरचित नीतिसारसंग्रह, चाणक्यनीति, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि ग्रन्थ देखनेमें आते हैं।

नीति—हिमालयपर्वतके सन्निकटस्थ गढ़वाल जिलेके अन्तर्गत एक गिरिपथ। यह अक्षा० ३०° ४६ १०

अ० और देशा० ७८° ११´ १०" में अवस्थित है। कुमायूनसे तिब्बत तक जितने पथ हैं सभीसे यह उत्कृष्ट पथ है। इस पथसे हो करके भारतवर्षके साथ तिब्बत चीनतातार और मोङ्गदेशको वाणिज्यव्यवसायकी विशेष सुविधा हो गई है।

कप्तान वेबने सबसे पहले धौलीनदीके किनारे इस पथको स्थिर किया। धीरे धीरे इसी नदीके तट हो कर यह पथ उत्तरकी ओर चला गया। इस पथ हो कर थोड़ी दूर और उत्तरकी ओर चल कर यहांका स्वाभाविक दृश्य और वृक्षादि देखनेमें आते हैं। ये सब वृक्ष बहुत बड़े बड़े हैं पर उनका ऊपरी भाग बर्फसे ढका रहता है। वेब साहबने पहले जिस स्थान का वर्णन किया है वह इस नीतीके हिन्दूशास्त्रवर्णित विष्णुप्रयाग॰ सिवा और कुछ भी प्रतीत नहीं होता। हिन्दूशास्त्रमें जिन पञ्च महाप्रयागकी कथा लिखी है वह विष्णुप्रयाग उन्हींमेंसे एक है। इसके निकट धौली और अलकानन्दाकी त्रिवेणी है। उक्त अलकानन्दा नदीके किनारे विष्णुपादपद्मके निकट विष्णुगङ्गा नामसे प्रसिद्ध है। इस विष्णुप्रयाग तीर्थका माहात्म्य स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें वर्णित है।

इस पथ पर प्रायः १६८१२ हाथ ऊपर एक बड़ा गांव मिलता है। यहांके अधिवासी इस ग्रामको नीति कहते हैं। ग्रामके पूर्व-दक्षिणके पर्वतसे नीति नदी निकली है। इसकी उपत्यका भूमि भारत और इत्यादि तथा तुषारमण्डित गगनचुम्बी पर्वतसे घिरी है। गतिके पथ् अभ्यासमें नदीके समीप समतल भूमिमें खेती-बारी होती है। यहांके अधिवासी भोटीये देखनेमें लगते हैं। पर्वतवासी बड़े ही सरल और निर्भिमानी होते हैं। कृषिकार्यका भार केवल स्त्रियोंके ऊपर सौंपा रहता है। वर्ष भरमें चार मास ही उत्तम अन्नादि उपजाते हैं। शीतकालमें वे अपना आवास छोड़ निम्नदेशमें भाग जाते हैं पीछे ग्रीष्मके आरम्भमें पुनः अपने आवासमें लौट आते और बर्फसे ढके हुए घर आदिको बाहर निकाल लेते हैं। ग्रामीण भोटजातिके लोग सामान्यतः अल्प होते और उनका वासस्थान सर्वदा बर्फसे ढका रहता है। इन लोगोंका ऐसा स्वभाव है, कि वे किसी दूरवर्ती वस्तुके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखते और न उन्हें आमोद-प्रमोदकार्यमें आसक्त हो करते हैं।

ग्रामके उत्तर आबादी नहीं है। यहांका पर्वत केवल चूड़ाविशिष्ट है। दो शिखरोंके मध्य बड़े बड़े गड्ढे देखनेमें आते हैं। इस पथ हो कर जाने आनेकी सुविधाके लिए स्थान स्थान पर दो चूड़ाके ऊपर काठका पुल बना हुआ है। इस प्रदेशमें बोझ आदि ढोनेके लिए केवल बकरे और भेड़से काम लिया जाता है।

जून मासके आरम्भमें प्रातःकालको यहांका उत्ताप ३०° से ४०° तक और दोपहरको ७०° से ८०° तक देखा जाता है। इस समय प्रति रातको सामान्य वृष्टि और बर्फ पड़ती है। यहां हो के ही वायुका बड़ा प्रबल समय है।

दिनके तीन बजते न बजते शाम सा हो पड़ता है। इस समय पर्वतके ऊपर मेघराशि आ कर नाना वर्णोंमें रञ्जित होती और उन मेघके ऊपर तुषार तथा निम्नतम प्रदेशमें जल बरसता है। यद्यपि उपत्यका पर्वतावासका किञ्चित् दिखाई नहीं जाता, तो भी यहां उपत्यकाराशिमें भी शोभित शिखर अपूर्व आलोकमालासे विभूषित रहता है। जून मासमें प्रातःकालसे बर्फ गलने लगती है और तीन बजेके बादसे भारी तुषार पड़ता है। ग्रीष्मऋतुके आकाशमें उपत्यकाभूमि प्रायः बर्फसे ढकी रहती है। ग्रीष्मके आरम्भमें यह बर्फ गल कर नदीमें गिर कर उसके कलेवरको बढ़ा देती है।

इस नीति घाटका सर्वोच्च स्थान समुद्रपृष्ठसे १६८१४ फुट है। पर्वतसे प्रायः १०००० हाथ ऊपरमें वायुकी मात्रा कम रहनेके कारण श्वास आदि लेनेमें बहुत कष्ट मालूम पड़ता है। यहां तक कि निश्वास बन्द होनेके कारण प्राण निकलने निकलने पर हो जाते हैं। लेकिन भोटियापर्वतके वासियोंको इसका अभ्यास पड़ गया है, इस कारण उन्हें उतना कष्ट मालूम नहीं पड़ता। कप्तान वेब साहबका कहना है, कि यह स्थान ठीक घाट पर चढ़ने लायक और इसका प्राकृतिक दृश्य बड़ा आश्चर्य देखा है। इस स्थानसे तिब्बतदेश बहुत कम नजर आता है।

प्राचीनकालसे आज तक यह स्थान निरवच्छिन्न

नीहारसे ढका रहता है। इस समय उक्त गिरिपथ छोड़ कर पर्वत पर चढ़नेका और दूसरा स्वतन्त्र पथ नहीं है। कुमायुन पर्वतवासी कहते हैं, कि कई वर्ष हुए यहांके अपरापर गिरिपथ दुर्गम हो गए हैं। पहले जो स्थान तरु उद्भिदोंसे शोभित था अभी वह स्तूपाकार तुषारसे आच्छादित है।

भोटवासियोंका विश्वास है, कि पर्वतशिखरसे वायुके अल्प आघातसे प्रचुर निहाराशि स्खलित हो कर निम्नदेशमें गिर सकती है, इस आशङ्कासे वे बन्दूक या वाद्ययन्त्रका शब्द नहीं करते।

१८१८ ई०में कप्तान वेबने वाणिज्यके बहाने चीनके साथ सम्बन्ध स्थापन करनेके लिए नीतिके निकटवर्ती चीनराज-अधिकृत टेकनगरमें व्यवसाय करनेकी चेष्टा की थी लेकिन उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ।

नीतिघोष (सं० पु०) नीतिरेव नीत्यात्मको वा घोषो यस्य। १ वृहस्पतिका रथ। नीतेर्नयस्य घोषः ध्वनिः। २ नयध्वनि।

नीतिज्ञ (सं० त्रि०) नीतिं जनाति ज्ञा-क। नीतिवेदी, नीतिकुशल, नीतिका जाननेवाला।

नीतिप्रदीप (सं० पु०) १ नीतिरूप प्रदीप। २ ज्ञानलोक। ३ वेतालभट्टकृत एक नीतिग्रन्थ।

नीतिमत् (सं० त्रि०) प्राशस्त्येन नीतिर्विद्यतेऽस्य, मतुप्। प्रशस्त नीतियुक्त, सदाचारी।

नीतिमान् (हिं० वि०) नीतिपरायण, सदाचारी।

नीतिरत्न (सं० क्ली०) १ वह जिसमें नीतिकथारूप बहुमूल्य रत्न निहित है। २ वररुचि-कृत ग्रन्थविशेष, वररुचिका बनाया हुआ एक ग्रन्थ।

नीतिशाक्यामृत (सं० क्ली०) १ सहितवचनापूर्ण और ज्ञानगर्भ अमृतमय प्रसङ्ग। २ स्वनामख्यात ग्रन्थ।

नीतिविद्या (सं० स्त्री०) नीतिविषयक विद्या।

नीतिशास्त्र (सं० क्ली०) नीतीनां शास्त्रं। नीतिज्ञापक शास्त्रभेद, वह शास्त्र जिसमें मनुष्यसमाजके हितके लिए देश, काल और पात्रानुसार आचार-व्यवहार तथा प्रबन्ध और शासनका विधान हो। शोधनसुत्र, कामन्दक, पञ्चतन्त्र, नीतिसार, नीतिमाला, नीतिमयूख, हितोपदेश और चाणक्यसार संग्रह आदि ग्रन्थ नीतिशास्त्र नामसे प्रसिद्ध हैं। नीति देखो।

नीतिसङ्कलन (सं० क्ली०) ज्ञानगर्भ और नीतिविषयक प्रसङ्गमाला सन्निविष्ट ग्रन्थ।

नीतिसार (सं० पु०) नीतिरेव सारो यस्य। इन्द्रके प्रति वृहस्पति कर्तृक नीतिशास्त्रभेद। चाणक्यने इसीसे संग्रह करके चाणक्यशतक लिखा है।

नीथ (सं० पु०) नयति प्रापयतीति नी-कथन (हनिकुषि-नीरमिकाशिभ्य-क्थन्। उण् २।२) १ नियन्ता। २ प्रापयिता। नी-भावे क्थन्। ३ नयन। ४ स्तोत्र। ५ प्रापणहेतु, नयनहेतुभूत। (क्ली०) ६ जल।

नीध्र (सं० क्ली०) नितरां ध्रियते इति नि-धृ सुस्नाविभुजादित्वात् कः। १ वल्मीक, छाजनको ओलती। २ वन जङ्गल। ३ नेमि, पहियेका चक्कर। ४ चन्द्र, चन्द्रमा। ५ रेवतीनक्षत्र।

नीनाह (सं० पु०) नि-नह-भावे घञ्, बाहुलकात् दीर्घः। निबन्ध, बन्धन।

नीप (सं० पु०) नी-प (पानीविषिभ्यः पः। उण् ३।२३) बाहुलकात् गुणाभावः। १ कदम्बवृक्ष। २ भूकदम्ब। ३ बन्धूकवृक्ष, दुपहरिया। ४ नीलाशोकवृक्ष, अशोक। ५ देशभेद, एक देशका नाम। ६ गिरिका अधोभाग, पहाड़का निचला हिस्सा। ७ पारराजके पुत्र। ८ नीपका वंश।

नीप (अ० पु०) दो चीजोंको बांधने या गांठ देनेके लिए रस्सीका फेरा या फंदा।

नीपर (अ० पु०) १ लंगरमें बंधी हुई रस्सियोंमेंसे एक। २ उक्त रस्सीके बन्धनको कसनेके लिये लगा हुआ डंडा।

नीपराज (सं० पु०) राजकदम्बवृक्ष।

नीपातिथि (सं० पु०) कण्ववंशोद्भव एक ऋषि। इन्होंने ऋग्वेदके ८म मण्डलके ३४ सूक्तकी रचना की।

नीप्य (सं० त्रि०) नीपे गिरेधोभागे भवः, नीप-यत्। १ जो पर्वतके नीचे उत्पन्न हो। (पु०) २ रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम।

नीबू (हिं० पु०) १ मध्यम आकारका एक पेड़ या झाड़ जिसका फल खाया जाता है और जो पृथ्वीके गरम प्रदेशोंमें होता है, जम्बीर, कागजी नीबू। संस्कृत पर्याय-निम्बूक, अम्लजम्बीर, दन्ताघातशोधन, अम्लसार,

बहुकोष, दीप्त, वह्नि, दन्तशठ, जम्बीरज, जम्भ, रोचन, जम्बीर, शोधन और दोषघ्न।

राजनिर्घण्टके मतसे इसका गुण—अत्यन्त कटु, उष्ण, गुरु, आमवात, श्वास, कफरोग, कण्ठरोग और विच्छर्दिनाशक, वह्निवर्द्धक, कच्चा हितकर और पक्का पर अति रुचिकर होता है।

भावप्रकाशके मतसे—यह अम्ल, वातघ्न, दीपन, पाचन, लघु, कृमिसमूहनाशक, तीक्ष्ण, उदरस्थमलनाशक, वात, कफ, पित्त और शूलरोगमें हितकर, कण्ठमें रुचि और रोचक। त्रिदोष, वह्नि, क्षय, वातरोग और विषार्तमें उपकारक, मन्दाग्नि, बद्धगुल्म तथा विसूचिका रोगमें प्रयोज्य है। पकने पर यह फल मिष्ट, स्वादु, गुरु, वातपित्तनाशक, विषरोग और विष, कफ, उत्क्लेश और रक्तकारक, शोथ, अरुचि, तृष्णा और छर्दि, श्रम तथा क्षय होता है।

२ टाबानीबू। पर्याय—बीजपुर, फलपूरक, रुचक, मातुलुङ्ग, पूरक, मातुलुङ्गक, पूर, फलक, मातृदत्त, सुगन्धाढ्य, गिरिजा, पूतिपुष्पिका, बीजपूर्ण, अम्लकेशर, बीजक, देवदूत, वरशत्य और महाफलेन्द्री।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—स्वादु, अम्ल, दीपन, लघु, गुल्म, अर्शोघ्न, वातपित्त, कफ, जिह्वा, हृद्रोग, श्वास, कास, अरुचि, तृष्णा और शोथनाशक है।

इसकी छालका गुण—तिक्त, दुर्जर और कफवातनाशक है। इसका गूदा स्वादु, शीतल, गुरु, मधुर और पित्तनाशक होता है।

३ पातीनीबू। संस्कृत पर्याय—जीवफला, निम्बपाक और निम्बू।

वैद्यकके मतसे गुण—शीतल, अम्ल, वातघ्न, दीपन, पाचन, सुगन्धि, इसका रस वातप्रकोपक, रुचिकर, कृमि, उदररोग, क्षय, मन्दाग्नि, वात, पित्त, कफ, शूल, विसूचिका और बद्धगुल्म इन सब रोगोंका नाशक तथा विषमें हितकर और रुचिकर।

संस्कृत ग्रन्थमें नीबू शब्दसे नाना प्रकारकी जाति और जाति भेद बतलाये गए हैं। यह बहुत दिन पहलेसे ही भारतवर्षमें उत्पन्न होता आ रहा है और यहांसे ही मिडोपोटेमिया तथा मिडियामें और उसमें ग्रीसके लोगोंने जो यूरोपके प्रायः देशोंमें इसका प्रचार किया गया है। मिडियामें प्रथम आनेमें पहुंचनेके कारण यह Citrus Medica नामसे पुकारा जाता है। इस जातिका नीबू माहिंगोमतसे तीन प्रकारका है—सिमन, लाइम और साइट्रन। साइट्रनका बहिर्भाग वा छिलका बहुत मोटा, खुरदरा और मन्दा। लाइम देखनेमें कागजीनीबूके जैसा और इसका ऊपरी भाग चिकना होता है। सम्भवतः पूर्वोक्त जातिका आदिमस्थान पूर्व बङ्गालका पार्वत्य प्रदेश विशेषतः खासी और जयन्तिया पहाड़ माना जाता है। किन्तु ग्रीसके जातिके नीबू पूर्वोक्त स्थानसे बहुत उत्तर हिमालयके ही कई पहाड़ तक फैले हुए हैं।

मिष्टा रस—जान पड़ता है, कि यह सबसे जातीय नीबूके उत्पत्ति-स्थानसे बहुत दक्षिणमें है। सिमन बहुत दिन पूर्व चीनदेशके निकटवर्ती स्थानमें पहले पहल उत्पन्न होते देखा गया है। आसाममें नीबूके पेड़ बहुता यतसे मिलते हैं। लाइम मिष्ट और अम्लके भेदसे दो प्रकारका है।

चट्टग्राम, सीताकुण्ड, खसिया और गारो पहाड़ पर नीबू बिना खेतीका ही जङ्गलकी तरह उत्पन्न होता है। इसकी पत्तियां मोटे डण्ठलों और दोनों ओर पर नुकीली होती हैं तथा उनके ऊपरका रंग बहुत गहरा हरा और नीचेका हलका होता है। पत्तियोंकी लम्बाई तीन अङ्गुलसे अधिक नहीं होती। फूल छोटे छोटे और सफेद होते हैं जिनमें बहुतसे पराग-केशर रहते हैं। फल गोल या लम्बोतरे तथा कुमकुम होते हैं। साधारण नीबू स्वादमें खट्टे होते और खटाईके लिए ही खाये जाते हैं। मीठे नीबू भी कई प्रकारके होते हैं उनमेंसे जिनका छिलका नरम होता है और बहुत जल्दी उतर जाता है तथा जिनके रसकोषको खाने पचन हो जाते हैं वे नारङ्गीके अन्तर्गत गिने जाते हैं। साधारणतः नीबू शब्दसे खट्टे नीबूका ही बोध होता है। पश्चिमीय भारतमें यह ती बार फलता है—बरसातमें, वसन्तमें और जाड़े (अगहन पूस)में। अचारके लिए जाड़ेका नीबू ही अच्छा समझा जाता है क्योंकि वह बहुत दिनों तक रह सकता है। यहां नीबूके मुख्य भेद ये हैं—कागजी, जम्भीरी, बिजौरा और चकोतरा।

नीबूके पेड़से कभी कभी गोंद निकलता है। १८५५ ई०में मछलीपत्तनमसे मन्द्राज-महामेलेमें इसका गोंद भेजा गया था। इसके फलसे उत्तम सुगन्धित तेल बनता है। इङ्ग्लैंडमें जो जल प्रस्तुत होता है, यह इस तेलका एक प्रधान उपादान है। नीबूके छिलकेको दबा कर और बकयन्त्रकी सहायतासे भली भांति निचोड़ कर जो गन्धद्रव्य तैयार होता है, उसे सीट्राट कहते हैं।

नीबूका छिलका उष्ण, शुष्क और बलकारक होता है। इसके बीचका सारांश शैत्यगुणसम्पन्न और बीज, पत्ता तथा फूल उष्ण और शुष्ककारक एवं रस शैत्योत्पादक और सङ्कोचक होता है। किसी किसीका कहना है कि इस फलके सेवन करनेसे शरीरसे विषाक्त पदार्थ निकल जाता है। यदि किसीने अहितकर विष खाया हो, तो उसको नीबू कुछ अधिक परिमाणमें खिलानेसे पाकस्थलीमें एक प्रकारकी उत्तेजना होती है और विष निकल पड़ता है। गर्भावस्थामें खानेसे यह गर्भस्थ शिशुके श्वास प्रश्वासका दोष नष्ट करता है। नीबू द्वारा प्रस्तुत जल अवसादक और छिलका आमाशय पीड़ामें उपकारी होता है। चीनीके साथ इसका गूदा मिला कर एक प्रकारका खाद्य तैयार किया जाता है, किन्तु यह कुछ तिक्तस्वादविशिष्ट होता है।

इसे बङ्गालमें नेबू, बिजोरा, बेजपुरा और बड़ा नेबू, हिन्दीमें बिजौरा, निम्बूक, मधुकर्कटी चकोतरा और तुरञ्ज; पञ्जाबमें बजौरी, नीम्बू, गुजरातमें बिजोरा, तुरञ्ज और बालङ्ग; बम्बईमें बीजपूर, महालुङ्ग, लिम्बु, बिजोरी; महाराष्ट्रमें मवलुङ्ग, लिम्बू; तामिलमें एलुमिच्-चम्-पजहम् वा नार्त्तम् पजहम्; तैलङ्गमें निम्मपन्डू, मार-दव्व, माधिफल-पन्डु, पुल दव्व, बीजपुरम्; मलयमें गणपतिनारङ्ग, पारसीमें तुरञ्ज और अरबीमें उत्रुज, उत्रुरेज वा उतुरिञ्ज कहते हैं।

हिमालयके बाहर गरम देशोंमें गढ़वालसे चट्टग्राम तक और मध्य भारतके नाना स्थानोंमें कागजी-नीबूका पेड़ देखा जाता है। मिट्टीके भेदसे इसके पेड़ और फलमें भी विशेषता पाई जाती है। फलका आकार प्रधानतः गोल, छिलका उजलापन लिए हरा और पकने पर पीला दिखाई पड़ता है। सानभूममें इसके पत्ते चमड़ा साफ करनेके काममें आते हैं।

वैद्यलोग इस नीबूका इस्तेमाल किया करते हैं। उनके मतसे इसका गुण—पैत्तिक-वमननिवारक, शैत्यकर और पवननिवारक है। इसका जल अत्यन्त सुस्वाद और तृष्णानिवारक तथा टटका रस मशक दंशनमें विशेष उपकारी और जीर्णनाशक होता है।

नीम (हिं० पु०) १ पत्ती भाड़नेवाला एक पेड़ जिसकी उत्पत्ति हिंदुस्तानमें होती है और जिसकी पत्तियां डेढ़ दो बित्तेकी पतली सींकोंके दोनों ओर लगती हैं। ये पत्तियां चार पांच अङ्गुल लम्बी और अङ्गुल भर चौड़ी होती हैं। इनके किनारे आरीके तरह होते हैं। विशेष विवरण निम्ब शब्दमें देखो। (फा० वि०) २ अर्द्ध, आधा।

नीमबर (फा० पु०) कुश्तीका एक पेच। यह पेच उस समय काम देता है जब जोड़ पीछेकी तरफसे कमर पकड़ कर बाईं तरफ खड़ा होता है। इसमें अपना बायां घुटना जोड़की दाहिनी जांघके नीचे ले जाते हैं, फिर बाएं हाथको उसकी टांगोंमेंसे निकाल कर उसका बायां घुटना पकड़ते और दाहिने हाथसे उसकी मुट्ठी पकड़ कर भीतरकी ओर खींचते हैं। ऐसा करनेसे यह चित गिर पड़ता है।

नीमगिर्दा (फा० पु०) बढ़ईका एक यन्त्र जो रुखानी या पेचकशकी तरहका हो कर अर्द्धचन्द्राकार होता है। यह खरादनेके समय सुराही आदिकी गर्दन छीलनेके काममें आता है।

नीमच (हिं० पु०) बङ्गाल, उड़ीसा, पञ्जाब और सिंधकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। इसका मांस खानेमें अच्छा लगता है।

नीमचा (फा० पु०) खांड़ा।

नीमजां (फा० वि०) अधमरा।

नीमटर (हिं० वि०) जिसे पूरी विद्या या जानकारी न हो, अधकचरा।

नीमन (हिं० वि०) १ अच्छा, भला, नीरोग, चंगा। २ दुरुस्त, जो बिगड़ा हुआ न हो। ३ सुन्दर, अच्छा, बढ़िया।

नीमर (हिं० वि०) शक्तिहीन, बलहीन, दुर्बल।

नीमरजा (फा० वि०) १ थोड़ी बहुत रजामन्दी। २ कुछ प्रसन्नता।

नीमस्तीन (हिं॰ स्त्री॰) नीमास्तीन देखो।

नीमा (फा॰ पु॰) जामेके नीचे पहनने जामेका एक पह रावा। यह जामेके आकारका होता है पर न तो यह जामेके इतना नीचा होता है और न इसके बन्द बगलमें होते हैं। यह घुटनेके ऊपर तक नीचा होता है और इसके बन्द सामने हैं। इसकी आस्तीन पूरी नहीं होती है। इसके दोनों बगल सुराखियाँ होती हैं।

नीमावत (हिं॰ पु॰) वैष्णवोंका एक सम्प्रदाय।

नीमास्तीन (फा॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी फतुई या कुरती जिसकी आस्तीन आधी होती है।

नीयत (अ॰ स्त्री॰) आन्तरिक लक्ष्य, उद्देश्य, आशय, सङ्कल्प, इच्छा भाव।

नीर (स॰ क्ली॰) नयति प्रापयति आत्मात् आत्मान्तरमिति नी प्रापणे रक् (स्फायितञ्चि। उण् २।१३) वा निर्गत ईरो वस्मिय्येस्मात्। १ जल पानी। २ रस, कोई द्रव पदार्थ। ३ फफोले आदिके भीतरका चेप या रस। ४ सुगन्धवाला। (पु॰) ५ राजपुत्रभेद।

नीरक्त (स॰ त्रि॰) रक्तशून्य, वर्णहीन।

नीरङ्ग (स॰ त्रि॰) रङ्गशून्य, बिना रङ्गका।

नीरज (स॰ क्ली॰) नीरे जले जायते जन-ड। १ पद्म, कमल। २ कुष्ठौषधि। ३ मुक्ता, मोती। ४ जलजन्तु, उद्बिलाव। ५ ऊदबिलाव, पद्माक। ६ तृणविशेष एक प्रकारकी घास। ७ जलजातमात्र, जलमें उत्पन्न मात्र। (पु॰) ८ रजोगुणकार्य रागशून्य महादेव।

नीरजस् (स॰ त्रि॰) निर्गतं रजः धूलिः कुसुमपरागादिर्वा। १ निर्धूलि, जिसमें धूल न हो। २ परागशून्य, बिना परागका। ३ रजोगुणकार्य रागादिशून्य। (स्त्री॰) ४ अनार्तवा स्त्री, वह स्त्री जो वह यौवन जिसे रजोदर्शन न होता हो।

नीरजस्क (स॰ त्रि॰) निर्गतं रजो यस्य, ततो कप्। १ रजोशून्य। २ परागशून्य। ३ रजोगुणकार्य रागादिशून्य।

नीरजात (स॰ त्रि॰) नीरात् जायते जन ड। १ जलजात मात्र, जो जलसे उत्पन्न होता है। (क्ली॰) २ पद्मादि। इसके पद्मादि उत्पन्न होते हैं, इसीसे नीरजात शब्दसे पद्मादिका बोध हुआ है। एकमात्र जलसे ही प्रजाकी उत्पत्ति और रक्षा होती है। ३ जमचादि।

नीरत (स॰ त्रि॰) निर्गत रत रमण यस्मात्। विरत, रमणाभावयुक्त।

नीरद (स॰ पु॰) नीरं जलं ददातीति दा-क। १ मेघ बादल। २ मुस्तक, मोथा। (त्रि॰) ३ रदशून्य, दन्तहीन, बेदांतका। ४ जल देनेवाला।

नीरधर (सं॰ पु॰) बादल, मेघ।

नीरधि (स॰ पु॰) नीराणि धीयन्तेऽस्मिन् नीर धा कि (कर्मण्यधिकरणे च। पा ३।३।९३) समुद्र।

नीरनिधि (स॰ पु॰) नीराणि जलानि धीयन्तेऽत्रेति निर-धा-कि। समुद्र।

नीरन्ध्र (स॰ त्रि॰) निर्गतं रन्ध्रं छिद्रं यस्मिन्। १ छिद्ररहित जिसमें छेद न हो। २ घन घोकस।

नीरपति (स॰ पु॰) वरुणदेवता।

नीरप्रिय (स॰ पु॰) नीरं प्रियं यस्य। १ जलवेतस, जलबेत। (त्रि॰) २ जलप्रियमात्र, जिसे पानी बहुत प्यारा हो।

नीरम (हिं॰ पु॰) वह बीम जो जहाज पर बैठक उसकी स्थिति ठीक रखनेके लिये रहता है।

नीरवरा (स॰ क्ली॰) पद्म, कमल।

नीरव (स॰ त्रि॰) रवशून्य, स्तब्ध।

नीरवृक्ष (स॰ पु॰) जलमध्य वृक्ष।

नीरस (स॰ पु॰) निर्गतं रसो यस्य। १ दाड़िम, अनार। (त्रि॰) निर्गतो रसो यस्य। २ रसशून्य, जिसमें रस या गीलापन न हो। ३ शुष्क, सूखा। ४ जिसमें कोई स्वाद या मज़ा न हो, फीका।

नीरसन (स॰ त्रि॰) निर्गतं रसना यस्य। १ रसनाशून्य। २ बिना करधनी या कमरबन्द का।

नीरसा (स॰ स्त्री॰) निम्बवेविकावध, एक किसमकी घास।

नीराखु (स॰ पु॰) नीरस्य आखुः। उद्र, ऊदबिलाव। पर्याय—जलनकुल, जलबिडाल, जलशय, उद्र, जलाखु, नीरज, नकुल।

नीराजन (सं॰ क्ली॰) निर्, राज्, भावे ल्युट्। नीराजना दीपदान, आरती।

नीराजना (स॰ स्त्री॰) नितरां राजनं यत्र, निर्-राज णिच् युच्। नीराजन मान्य् उस्कम पदान मिपो बल न।

नीराजना वा । १ दीपादि द्वारा प्रतिमादि देवताका आरात्रिक, देवताको दीपक दिखानेकी विधि, आरती। तिथितत्त्वमें रघुनन्दनने इस प्रकार लिखा है—

"पिष्टप्रदीपाद्यैश्चूताश्वत्थादिपल्लवैः ।
ओषधीभिश्च मेध्याभिः सर्वबीजैर्यवादिभिः ॥
नवम्यां पर्वकाले तु यात्राकाले विशेषतः ।
यः कुर्यात् श्रद्धया वीर देव्या नीराजनं नरः ।
शङ्खभेर्यादि निनदैर्जयशब्दैश्च पुष्कलैः ॥
यावतो दिवसान् वीर देव्या नीराजनं कृतम् ।
तावत् कल्पसहस्राणि दुर्गालोके महीयते ॥" (तिथितत्त्व)

पिष्ट प्रदीपादि, चूताश्वत्थादि पल्लव, मेध्या, ओषधि आदि एवं सर्ववीज यवादि द्वारा भक्तिपूर्वक नवमी तिथि, पर्वकाल अथवा यात्राकालमें देवीकी आरती उतारनी चाहिए। इस समय शङ्ख, भेरी आदिका शब्द और जय-शब्दोच्चारण भी करना चाहिए। जो उक्त दिनोंमें देवीका नीराजन करता है, उसका कल्पसहस्र तक दुर्गालोकमें वास होता है। नीराजन पांच प्रकारसे किया जाता है—

"पंचनीराजनं कुर्यात् प्रथमं दीपमालया ।
द्वितीयं सोदकाब्जेन तृतीयं धौतवाससा ॥
चूताश्वत्थादिपत्रैश्च चतुर्थं परिकीर्तितम् ।
पंचमं प्रणिपातेन साष्टांगेन यथाविधि ॥"
(कालोत्तरतन्त्र)

पहले दीपमाला द्वारा आरती करनी चाहिए, पीछे उदकाब्ज अर्थात् पद्मयुक्त जल, उसके बाद धौतवस्त्र, चूताश्वत्थादि पल्लव और प्रणिपात द्वारा नीराजन करनेका विधान है। इसीको पञ्चनीराजन कहते हैं। आरात्रिक प्रदीप द्वारा नीराजन करना होता है, इस प्रदीपमें ५ वा ७ बत्ती बलती हैं।

"कुंकुमागुरुकर्पूरघृतचन्दननिर्मिताः ।
वर्त्तिकाः सप्त वा पंच कृत्वा वन्दापनीयकम् ॥
कुर्यात् सप्तप्रदीपेन शंखघंटादिवाद्यकैः ।
हरेः पंचप्रदीपेन बहुशो भक्तितत्परः ॥"
(पाद्मोत्तरख० १०७ अ)

कुङ्कुम, अगुरु, कर्पूर, घृत और चन्दन द्वारा सप्त या पञ्च वर्त्तिका निर्माण करनी चाहिए। पीछे शङ्ख, घण्टा आदि बाजा बजाना चाहिए। विष्णुविषयमें पञ्च प्रदीप द्वारा भक्तिपरायण हो कर आरती उतारनी चाहिए। हरिभक्तिविलासमें लिखा है, कि आरती करनेके पहले मूलमन्त्रसे तीन बार पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए और महावाद्य तथा जयशब्दपूर्वक शुभपात्रमें घृत वा कर्पूर द्वारा विषम वा अनेक वर्त्तिका जला कर नीराजन करना चाहिए।

"ततश्च मूलमन्त्रेण दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ।
महानीराजनं कुर्यात् महावाद्यजयस्वनैः ॥
प्रज्वालयेत्तदर्थंच कर्पूरेण घृतेन वा ।
आरात्रिकं शुभे पात्रे विषमानेकवर्त्तिकम् ॥"
(हरिभ० वि०)

पहले विष्णुके चतुष्पादतल और नाभिदेशमें दो बार पीछे मुखमण्डलमें एक बार और सब अङ्गोंमें ७ बार आरती उतारनी चाहिये।

अनेक वत्तियां बाल कर आरती करनेसे कल्पकोटि तक विष्णुलोकमें वास होता है।

"बहुवर्त्तिसमायुक्तं ज्वलन्तं केशवोपरि ।
कुर्यादारात्रिकं यस्तु कल्पकोटिं वसेद्दिवि ॥"
(स्कन्दपुराण)

पूजादि मन्त्रहीन वा क्रियाहीन होनेसे यदि पीछे नीराजन किया जाय, तो पूजा सम्पूर्ण समझी जाती है अर्थात् पूजादिमें जो सब अभाव है, वह नीराजनसे पूरा हो जाता है।

'मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यत् कृतं पूजनं हरेः ।
सर्वं सम्पूर्णतामेति कृते नीराजने शिवे ॥' (स्कन्दपु०)

देवताका नीराजन करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं। जो देवदेव विष्णुका नीराजन अवलोकन करते हैं, वे सप्तजन्म ब्राह्मण हो कर अन्तमें परमपद प्राप्त करते हैं।

"नीराजनञ्च यः पश्येत् देवदेवस्य चक्रिणः ।
सप्तजन्मनि विप्रः स्यादन्ते च परमं पदम् ॥"
(हरिभ० वि०)

देवताकी आरती दोनों हाथसे लेनी चाहिए, आरती अवलोकनमात्रसे भी अशेषपुण्य लिखा है। जो ऐसा करते हैं उनके कोटिकुल उद्धार पाते हैं और अन्तमें उन्हें विष्णुका परमपद प्राप्त होता है।

"पूर्वं नारात्रिकं कुर्वीत् स्नात्वाथ प्रयन्ततः ।
कुर्वन्ति बहुरूपाणि शान्ति विष्णोः परं पदम् ॥" ¦
(विष्णुधर्मो०)

१ शान्तिभेद, राजाको नीराजन शान्तिकार्य सम्पन्न करके युद्धमें जाना चाहिए।

इसका विषय बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—

भगवान् विष्णुके जागरित होने पर तुरङ्ग, मातङ्ग और मनुष्यों का नीराजन करना चाहिए। कार्त्तिक शुक्लपक्षकी पूर्णिमा, द्वादशी और अष्टमीमें अथवा आश्विनमासमें नीराजन नामक शान्ति करनी चाहिये। नगरके उत्तर-पूर्व दिक्‌स्थ प्रशस्त भूमि पर सोलह हाथ लम्बा और दश हाथ चौड़ा एक तोरण बनवावे। उसमें सर्ज, उदुम्बरशाखा और ककुभमय तथा कुशबद्ध एक शान्तिनिकेतन निर्माण करे। उसके द्वार पर अभिमन्त्रित मत्स्य, ध्वज और चक्रनिर्माण विधेय है। शान्तिपद और अश्वादिकी पुष्टिके लिए घोड़ोंके गलेमें प्रतिसरणमन्त्र द्वारा महातेज शालिधान्य कुट और सिद्धार्थ बांध दे एवं रवि, वरुण, विश्वदेव प्रजापति, इन्द्र और विष्णु सम्बन्धीय मन्त्रसे शान्तिगृहमें ७ दिन तक अश्वोंकी शान्ति करे। वे घोड़े पुण्याहमें यदि शङ्ख, तूर्यध्वनि और गीतध्वनि द्वारा विघ्नशून्य और पूजित हों, तो अश्व-शाला या अन्य प्रकारसे ताड़नीय नहीं होंगे। अष्टम दिनमें कुश और चीर द्वारा आच्छन्न आश्रमाग्निको तोरणके दक्षिण मुखसे उत्तर मुख वेदीके ऊपर रखे। चन्दन, कुष्ठ समङ्गा (मजीठ), हरिताल, मनःशिला, प्रियङ्गु, वच, दन्ती, अमृत, अञ्जन, हरिद्रा, सुवर्ण अग्निमन्थ, कटम्भरा, त्रायमाणा, सहदेवी, नीलवर्ण, पूर्णकोष, नागकुसुम, अशुमा, शतावरी, सोमराजी और पुष्प इन सब द्रव्योंसे कलश पूर्ण करके प्रचुर मधुपायस यावक प्रभृति नाना प्रकारके भक्ष्योंके साथ बलिका उपहार दे। खदिर, पलाश, उदुम्बर, काश्मरी या अश्वत्थ द्वारा यज्ञीय-काष्ठ बनावे। दिव्य पार्थिवोंके लिए स्वर्ण या रौप्य द्वारा स्रुक् निर्माण करना कर्त्तव्य है। राजा पूर्वकी ओर मुख करके व्याघ्रचर्म और दर्भके साथ अग्निके समीप बैठे। पीछे लक्षणयुक्त अश्व और श्वेत हस्तीको स्नान तथा दीक्षित करा कर चन्दन, नीलोत्पल, गन्धद्रव्य, माल्य और धूप द्वारा अभ्यर्चित करे और वाक्य द्वारा सान्त्वना तथा आश्वस्त करा, पुण्याह शब्द करते हुए उन्हें आश्रमतोरणके समीप लावें।

इस प्रकारसे लाये हुए अश्व यदि दक्षिणचरणको समुत्क्षेपण करके बैठ जाय, तो वह राजा बहुत शत्रुओंको विनाश करेंगे, ऐसा जानना चाहिये; किन्तु वे अश्व यदि डर जाय, तो राजाका अशुभ होता है।

पुरोहितके यथाविधि अभिमन्त्रण करके आज्य प्रदान करनेसे अश्व यदि उसे आघ्राण या आहार करे, तो राजा को जय होती है। किन्तु इसका विपरीत होनेसे फल भी विपरीत होता है। उदुम्बरकी शाखाको जलमें डुबो कर पुरोहित अश्व और नागसमन्वित सेना तथा अश्व सबको शान्तिपौष्टिक मन्त्र द्वारा स्पर्श करे। पीछे राजाके लिये आभिचारिक मन्त्रसे मृन्मयी शत्रु मूर्त्ति कर पुरोहित उसका वक्षः प्रतिकृतिनिर्माण पूर्वक शूल द्वारा उसका वक्षःस्थल छेद डाले और अभिमन्त्रण करके अश्वको प्रणाम करावे। बादमें राजा इस प्रकार नीराजित हो कर उत्तर पूर्वकी ओर गमन करे। उस समय चारों ओर नाना प्रकारकी माङ्गलिक ध्वनि होनी चाहिये। इस प्रकार शान्ति स्थापन करके राजा यदि युद्धयात्रा करे, तो वे निश्चय ही सारे शत्रुओंको जय कर सकते हैं।
(बृहत्संहिता ४४ अ०)

कालिकापुराणमें नीराजनशान्तिकी विधि इस प्रकार लिखी है,—

नीराजन शान्ति द्वारा अश्व गज आदिकी वृद्धि होती है। आश्विन मासकी प्रतिपदा तृतीया चतुर्थीको लिख पुरके ईशानकोणमें उत्तम स्थानका संस्कार करना चाहिये। पीछे पांचवें दिनमें मण्डप करना विधेय है।

राजा महालक्षित और मनोहर एक अश्वको ७ दिन तक गन्धपुष्प और वस्त्रादि द्वारा आराधना करे। षष्ठी आदिमें पूजा कर के उस अश्वको उस स्थानमें खड़ा करावें; उसके चेष्टानुसार शुभाशुभ जाना जाता है— अश्व उस स्थान पर उपस्थित हो कर यदि भाग जाय तो राजाका भय; अश्व नाच करे तो राजपुत्रकी मृत्यु। दांत अपनी प्रतिकूलाचरण करे, तो राजमहिषीकी मृत्यु। मुख, नाक, चक्षु आदिसे जिस ओर खड़ा हो कर शब्द

करे, उस घोड़ेके शत्रुओंका क्षय और यदि वह दक्षिण-पादके अग्रभागको राजाके सामने उठाये खड़ा रहे, तो राजा सब विपक्षियोंको पराजय करेंगे, ऐसा जानना चाहिये।

दशमी तिथिको प्रातःकालमें नीराजन करे। दैव-वशत: यदि उक्त तिथिमें कर न सके, तो दशमीके बाद द्वादशी तिथिमें नीराजना-शान्ति कर सकते हैं। इसमें भी यदि विघ्न पहुँच जाय, तो निजपुरके ईशानकोणमें षोड़शहस्त-परिमित स्थानके मध्य दशहस्त-परिमित विपुल तोरण निर्माण करे। ३२ हाथ लम्बा और १६ हाथ चौड़ा यज्ञमण्डल बनानेका विधान है। वेदीके उत्तरभागमें अत्युत्तम वेदी निर्माण करे। इस स्थान पर पुरोहितगण भाग संस्थापन करके पूजन और शाल, उदुम्बर अथवा अर्जुनवृक्षकी शाखाको मत्स्यसमुद्राङ्कित चक्र तथा ध्वज द्वारा विभूषित करें।

पुष्टि, शान्ति और सिद्धार्थ घोटकके गलदेशमें शालि-कुष्ठ और भल्लातक बांध दे। राजा वैष्णवमण्डलका निर्माण कर दिक्पाल आदिको पूजा करें। पुरोहितगण एक सप्ताह तक घृत तिल और पुष्पको एकत्र कर सूर्य, वरुण, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णुके उद्देशसे होम करें। धर्मार्थकामादि चतुर्वर्गको सिद्धिके लिये प्रत्येक देवके उद्देशसे सहस्र बार अथवा १०८ बार होम विधेय है। तदनन्तर मृण्मय ८ घटोंमें नाना प्रकारके पल्लव दे कर उन्हें स्थापन करना होता है। पुरोहित इन सब घड़ों-में मञ्जिष्ठा, हरिताल, चन्दन, कुष्ठ, प्रियङ्गु, मनःशिला, अञ्जन, हरिद्रा, श्वेतदण्डी आदि तथा भल्लातक, सह-देवी, शतावरी, बच, नागकेशर, सोमलता, सुगुप्तिका, तुल्य, करवीर, तुलसीदल आदि द्रव्योंको डाल दें। इस प्रकार करके ७ दिन तक पूजा और होम करना होता है। जब तक इस नीराजना-शान्तिका शेष न हो जाय, तब तक राजाको रात भर घरमें रहना उचित है। शान्तिके समय उन्हें यज्ञभूमिमें रहनेकी जरूरत नहीं और इतने समय तक किसी प्रकारका यानारोहण निषिद्ध है। सात दिन तक देवताओंको नाना प्रकारके नैवेद्य चढ़ाने होते हैं।

सातवें दिनमें खड्ग चर्म प्रभृतिसे विभूषित हो कर तोरण-प्रान्तमें सूर्यपुत्र रेमन्तका सूर्यपूजाविधानसे पूजन करें। इस समय राजाको होमकुण्डके उत्तरभागमें व्याघ्रचर्म पर बैठ कर अश्वको देखते रहना चाहिये। पुरोहित इस समय मन्त्रपूत अन्नपिण्ड उपस्थापित करें। यदि अश्व उस अन्नको खा ले अथवा सूंघ कर छोड़ दे, तो जानना चाहिये कि कार्यकी हानि होगी। पीछे पुरो-हित उदुम्बर, आम्र अथवा वकुलकी शाखाको घटजलमें डुबो कर शान्तिमन्त्रसे सेचन करे। इस प्रकार शान्ति-कार्यके शेष हो जाने पर राजा उस घोड़े पर सवार हो उत्तर पूर्वकी ओर सब प्रकारकी जाति और चतुरङ्गबलके साथ प्रस्थान करें। ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य-गण सावधान हो कर शुभाशुभ देखनेके लिये घोड़ेके पीछे पीछे चलें।

इस प्रकार एक कोस तक जानेके बाद राजा पूर्व-द्वार हो कर नगरमें प्रवेश करें। अनन्तर आचार्य प्रभृति-को यथोपयुक्त दक्षिणा दे कर विदा करें। इस तीथिमें यदि राजाके जाताशौच वा मृताशौच रहे, तो भी यह नीराजना उत्सव रुक नहीं सकता।

(कालिकापु० ८५ अ०)

नीराञ्जन (सं० पु०) १ दीपदान, आरती, देवताको दीपक दिखानेकी विधि। २ हथियारोंको चमकाने या साफ करनेका काम। ३ एक त्योहार जिसमें राजा लोग हथियारोंकी सफाई कराते थे। यह क्वार (कातिक)-में होता था जब यात्राकी तैयारी होती थी।

नीरिन्दु (सं० पु०) नि-ईर् कम्पने भावे-क्विप्, नीरा नितरां कम्पनेन इन्दन्ति सुभगेन शोभते ततो इदि-उण्। अश्वशाखोटवृक्ष, सिहोरका पेड़।

नीरुच् (सं० त्रि०) निश्चितं रोचते रुच्-क्विप्, रलोपे पूर्वाणो दीर्घः। नितान्त दीप्तिशील, जिसमें बहुत चमक दमक हो।

नीरुज् (सं० पु० स्त्री०) निर्-रुज् भावे क्विप्, रलोपे पूर्वाणो दीर्घः १ रोगाभाव। पर्याय—स्वास्थ्य, वार्त्त, अनामय, आरोग्य। (त्रि०) निर्नास्ति रुक् रोगो यस्य। २ पटु, चालाक, होशियार। पर्याय—उल्लाघ, वार्त्त, कल्य।

नीरुज (सं॰ त्रि॰) निर्गता रुजा रोगो यस्य, रलोपे पूर्वाको दीर्घ। १ रोगरहित, नीरोग। (क्ली॰) २ कुष्ठौषध। ३ कसीरो। (स्त्री॰) ४ रोगभेद, एक रोगका नाम।

नीरूप (सं॰ त्रि॰) निर्गतं रूपं यस्य, रलोपे पूर्वाको दीर्घ। रूपाभावविशिष्ट, रूपहीन, कुरूप।

नीरेणुक (सं॰ त्रि॰) निर्गत रेणु, पांशव स्मात्, रलोपे पूर्वाको दीर्घ। धूलिशून्य, जहां धूल न हो।

नीरोग (सं॰ त्रि॰) रुज भङ्गे, रोग, निर्गतो रोगो यस्य रलोपे पूर्वाको दीर्घ। रोगहीन, जिसे रोग न हो, चङ्गा, तन्दुरुस्त।

नीरोह (सं॰ पु॰) अङ्कुरित होना।

नील (सं॰ पु॰) नीलतीति नील अच्। १ स्वनामख्यात वर्ण, नीला रङ्ग, गहरा आसमानी रङ्ग। २ पर्वतभेद एक पहाड़का नाम। यह इलावृतवर्षके उत्तर रम्यक और हिरण्मयवर्षको सीमारूपमें अवस्थित है। इस पर्वतके दोनों पार्श्व लवणसमुद्र तक विस्तृत हैं। इसकी ऊंचाई दो हजार योजन है। (भाग॰ ५।१६।८) ३ वानरभेद, एक बन्दरका नाम। ४ नीली, नीलका पौधा। ५ निधिभेद, नवनिधियोंमेंसे एक। ६ लाञ्छन, धब्बा। ७ मङ्गलघोष मङ्गलका शब्द। ८ वटवृक्ष, बरगद। ९ भारतवर्षके दक्षिणस्थित स्वनामख्यात पर्वतभेद। १० इन्द्रनीलमणि, नीलम। इसके अधिष्ठातृदेवता शनि हैं। पर्याय—शौरिरत्न, नीलाश्म, नीलोपल, तृणग्राही, महानील, सुनीलक। गुण—तिक्त, उष्ण, कफ पित्त और वायुनाशक। शरीरमें धारण करनेसे शनि उन्हें सहाय देते हैं। जिसको शनिग्रह विरुद्ध हो उसको नीले रंग मणिका दान और धारण शुभावह है। उत्पत्ति और परीक्षादि विषय इन्द्रनील और नीलम शब्दमें देखो। ११ नागभेद, एक नागका नाम। १२ [illegible] द्वापरयुगके एक राजाका नाम। १३ नीलिनीके गर्भसे उत्पन्न अजमीढ़ राजाका एक पुत्र। १४ माहिष्मतीके एक राजा। इनकी कथा महाभारतमें इस प्रकार लिखी है—नील राजाके एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। अग्निदेव इस कन्या पर मोहित हो कर ब्राह्मणके वेशमें राजाके कन्या मांगने आए। कन्याका पाणिग्रहण कर अग्निदेवने राजाको वर दिया 'तुम शत्रुसे कभी भय नहीं करोगे। जो शत्रु तुम्हारे नगर पर आक्रमण करेगा, वह भस्म हो जायगा।' पीछे पाण्डवोंके राजसूययज्ञके अवसर पर सहदेवने माहिष्मती नगरीको घेरा और महाराज नीलके साथ घोर युद्ध किया। अपनी सेनाको भस्म होते देख सहदेवने अग्निदेवकी स्तुति की। अग्निदेवने प्रकट हो कर कहा, 'नीलके वंशमें जब तक कोई भी रहेगा, तब तक मैं बराबर इसी प्रकार रक्षा करूंगा।' अनन्तर अग्निकी आज्ञासे नीलने सहदेवकी पूजा की और सहदेव उनसे इस प्रकार अधीनता स्वीकार करा कर चले गए। (भारत २।३१ अ॰) १५ काचलवण। १६ तालीशपत्र। १७ विष। १८ गुणाङ्कके पञ्चोत्तरशत करणान्तर्गत स्वरभेद, गणितके १८ करणोंमेंसे एक। १९ यक्षभेद, एक यक्षका नाम। २० नीलवस्त्र, नीला कपड़ा। ब्राह्मणको नीलवस्त्र नहीं पहनना चाहिए यदि पहने, तो एक दिन उपवास कर पञ्चगव्यसे शुद्ध हो जाना चाहिए। यदि किसीके नीलकूपमें भी नीलका रस प्रवेश करे, तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंको तप्तकृच्छ्रका आचरण करना होता है। ब्राह्मणादि तीनों वर्ण यदि इस पौधेको लगावें तो उन्हें तीन बार कृच्छ्रचान्द्रायण करने होते हैं। स्त्रियां यदि क्रीड़ाके लिये वह नील वस्त्र पहनें, तो उसमें दोष नहीं लगता। किन्तु स्वामीके मरने पर यदि वे इस वस्त्रका परिधान करें तो उन्हें नरकवास होता है। कम्बल और पट्टवस्त्र यदि नीलरङ्गके हों, तो कोई दोष नहीं। ब्राह्मणको शुक्ल वस्त्र, क्षत्रियको रक्त वस्त्र वैश्यको पीतवस्त्र और शूद्रको नीलवस्त्र पहननेको लिखा है। अतएव इस विधानानुसार शूद्रोंके लिये नीलवस्त्र परिधान दोषावह नहीं है। २१ एक वर्षग्रह जिसके प्रवेश करनेसे पीतक वर्ष होते हैं। २२ नीलासनवृक्ष, पियासालका पेड़। २३ मञ्जुघोषका एक नाम। २४ एक संख्या जो दश हजार अरबकी होती है जो अङ्क की संख्या, १०००००००००००००। २५ वानरसेनापतिभेद। इस बन्दरने रामचन्द्रजीको सेतुबन्धनके समय काफी सहायता पहुंचाई थी।

नीलवर्णके पर्याय ये हैं—श्याम, मेचक, कृष्ण, [illegible]

बुध, वंशाङ्कुर, मरकत, इन्द्रनील, मणि, सूर्याश्म आदि २६ सारिका पक्षि। २७ कृष्णकुरण्टक, नीलीकट सरैया। २८ कृष्णनिगुण्डी। (त्रि०) २८ नीलवर्णयुक्त, नीलेरंगका, गहरे आसमानी रंगका।

नील (सं० क्ली०) वृक्षविशेष, एक पौधा जिससे नील रंग निकाला जाता है। इसका अंगरेजी, फारसी और जर्मन नाम इण्डिगो (Indigo) तथा लैटिन नाम इण्डिगोफेरा (Indigo ferra) है। नीलके पौधेकी ३००के लगभग जातियां होती हैं, पर जिनसे यह रंग निकाला जाता है वे पौधे भारतवर्षके हैं और ४० तरह के होते हैं।

जिस नीलसे रंग निकाला जाता है उसका वैज्ञानिक नाम Indigofera tinctoria है। इसे संस्कृतमें नीलका, भोटमें दसना, तुर्कीमें ओस्मा, सिन्धुप्रदेशमें जिल वा नीर, बम्बई-अञ्चलमें नोला, महाराष्ट्रमें नीलि, गुजरातमें गलि वा नील, तामिलमें नीलम्, तेलगुमें नीलमन्दु, कणाड़ामें नीली, ब्रह्ममें मेनाई, मलयमें नीलम्, अरबमें नीलाज और पारसमें नील्ह कहते हैं।

नीलके आदि इतिहासके विषयमें कुछ भी जाना नहीं जाता। प्राचीन उद्भिद्‌विद्याविशारदोंका कहना है, कि भारतवर्ष, अफ्रीका और अरबदेशमें यह जंगल अवस्थामें उपजता था। किन्तु जिस नीलसे रंग निकाला जाता है, (अर्थात् Indigofera tinctoria) वह पहले पहल किस देशमें उपजाया गया, उसका कोई निर्दिष्ट प्रमाण नहीं मिलता। कोई कोई कहते हैं, कि सबसे पहले नील गुजरातमें उपजाया जाता था, दूसरी जगह नहीं। डि कान्डोलीने लिखा है, कि संस्कृत कवियोंने जब 'नीलि' शब्दका व्यवहार किया है, तब निश्चय है, कि यह भारतवर्षका ही पौधा है। नीलरंग पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें प्रचलित था। नीलिवृक्ष (Indigofera tinctoria)के सिवा अन्यान्य वृक्षोंसे भी नीलरंग प्रस्तुत होता था। अतएव भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके पौधोंसे नील रंग निकाला जाता था।

नील शब्दका अर्थ काला है और कोई कोई काले अर्थमें भी व्यवहार करते हैं। इसी अर्थमें संस्कृत कविगण नीलमक्षिका, नीलपक्षी, नीलगो आदि अनेक शब्दोंका व्यवहार कर गये हैं।

१५वीं शताब्दीमें जब यहांसे नील यूरोपके देशोंमें जाने लगा, तबसे वहांके निवासियोंका ध्यान नीलकी ओर गया। सबसे पहले हालैंडवालोंने नीलका काम शुरू किया और कुछ दिनों तक वे नीलको रंगाईके लिए यूरोप भरमें निपुण समझे जाते थे। नीलके कारण जब वहां कई वस्तुओंके वाणिज्यको धक्का पहुंचने लगा, तब फ्रांस, जर्मनी आदि कानून द्वारा वे नीलकी आमदनी बन्द करनेको विवश हुए।

१६०८ ई०में ४र्थ हेनरी (Henry IV)ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि 'जो कोई नील रंगका व्यवहार करेगा, उसे प्राणदण्ड मिलेगा।' जर्मनीमें भी नीलका व्यवसाय बन्द कर देनेके लिये शक्त कानून पास हुआ था। इस प्रकार यूरोपमें सब जगह वायडकी खेती (Woad plantation)की अवनति होती देख नीलकी बन्द कर देनेकी बहुत कुछ चेष्टा की गई थी, किन्तु कुछ भी फल न निकला। थोड़े ही दिनोंके अन्दर भारतके नीलरंगने वहांके चिरप्रचलित रङ्गका स्थान दखल कर लिया।

रानी एलिजावेथके समयमें १५८१ ई०को नील और वायडसे प्रस्तुत रंगका समभावमें व्यवहार करनेकी अनुमति दी गई। पश्चात् कुछ कालतक फिर केवल नीलका ही व्यवहार होने लगा। कुछ दिनों तक अर्थात् सन् १६६० तक इङ्गलैण्डमें भी लोग नीलको विष कहते रहे जिससे इसका वहां जाना बंद रहा। पीछे २य चार्ल्सके समयमें बेलजियमसे नीलका रंग बनानेवाले सुशील नीलकर बुलाए गए जिन्होंने नीलका काम सिखाया। इष्ट-इण्डिया-कम्पनीने जब नीलके कामकी ओर ध्यान दिया, तब वह सूरत और बम्बईसे काफी नील भेजने लगी।

किसी किसीका कहना है, कि चन्दननगरमें फरासीसियोंकी एक कोठी थी। इसी कोठीसे नीलकी खेतीका पुनरभ्युदय हुआ था, किन्तु इससे उतनी उन्नति नहीं हुई। पीछे जब इष्ट-इण्डिया कम्पनीने देखा कि नीलके लिये फ्रांस और स्पेन उपनिवेशके लोगोंका वाट जोहना पड़ता है, तब वह बङ्गदेशमें नीलोत्पत्तिके लिये यथेष्ट उत्साह प्रदान करने लगी।

इस समय अमेरिकाके यूरोपीय अधिवासियोंने बहुतसे नानास्थानोंमें आ कर कोठियां खोलीं। धीरे धीरे भारतवर्षमें ऐसा उत्कृष्ट नील उत्पन्न होने लगा कि वह प्राप्य और क्रमशः स्रात कर गया और बहुत अधिकमें लिया जाने लगा। १७८६ ई०में सबसे पहले यशोरमें नीलकी खेती शुरू हुई।

१८१० ई०में भी गुजरातमें नील प्रस्तुत होता था। नगर और ग्रामोंके निकट नीलकोठीमें व्यवहृत पुरातन पात्रादि आज भी देखनेमें आते हैं।

प्रथमतः ईष्ट इण्डिया कम्पनी ठेकेदारोंको दादनी दे कर नीलकी खेती करनेमें उत्साह देने लगी। पीछे जब उसने देखा कि इसमें विलक्षण लाभ है तब (१८०२ ई०में) उसने रुपया देना बन्द कर दिया। १८०८ ई०में कम्पनीने नकद रुपयेसे नील खरीदनेके लिये एक कोठी खोली। यथार्थमें देखा गया कि यूरोपवासियोंके उत्साहसे ही पहले पहल इस देशमें नीलकी विस्तृत खेतीका आरम्भ हुआ है। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें आध सेर नील १।) से ले कर १) रु०में बिकता था।

१८३० ई०में नीलकी खेतीके लिए जमींदार और कोठीवालोंके साथ रुपयोंका सम्बन्ध अत्यन्त असन्तोषजनक और विविध झगड़ायुक्त हो पड़ा। अनेक स्थानोंमें जमींदार नील साहबोंको पत्तनीकी शर्त पर जमीन बन्दोबस्त देने लगे। वे फिर उस जमीनको रैयतके साथ बन्दोबस्त करने लगे। किन्तु प्रत्येक रैयतको ही अपनी जमीनमें नील उपजाना पड़ता था। कहीं तो स्थानीय जमींदार स्वयं द्वारा नीलकी खेती करा लेते थे। मार्शमेनने इस विषयमें एक प्रबन्ध लिखा जिसमें उन्होंने कहा है कि नीलकी खेतीके लिए प्रजाके प्रति अधिक अत्याचार होता था। प्रजाको एक तरह जमींदारके कीतदास कहनेमें भी कोई क्षति नहीं। उनका यह प्रबन्ध उस समयकी शोचनीय अवस्थामें विविध फलदायक हुआ था।

इस ओर ध्यान देना आवश्यक समझ कर १८३० ई०की ८वीं धाराके अनुसार कुछ कर्मचारी नियुक्त किये गए। वे लोग सत्यासत्यका अनुसन्धान कर सबमें उसकी खबर देने लगे। उस ५ ऐक्टके अनुसार ठेकेदार ठेकेके अनुसार कार्य करनेको बाध्य हुए, किन्तु जहां तक बल और कौशलसे काम लिया जाता था, वहां इस ठेकेके नियमानुसार कोई भी कार्य करनेको बाध्य नहीं था। १८३८ ई०में ८वीं धाराके अनुसार यह कानून तोड़ दिया गया। १८७६-७७ ई०में बिहारमें भी इस प्रकारका अन्याय व्यवहार आरम्भ हुआ था, किन्तु दुर्भिक्षके समयमें नीलकर साहबोंने प्रजासाधारणके प्रति विविध दया दरसायी; अतः गवर्मेण्टने इस विषयमें हस्तक्षेप न किया। केवल इतना ध्यान अवश्य रखा जाता था कि नियमके विरुद्ध कोई काम करने न पावे। वर्त्तमान समयमें इस सम्बन्धमें जो कानून प्रचलित है, उसका मर्म यह कि जो कोई इसका ठेका लेगा वह नियमके अनुसार करनेको बाध्य होगा। नहीं तो धाराके अनुसार उसे क्षतिपूरण देना पड़ेगा। बलपूर्वक कोई किसीसे नीलकी खेती करा नहीं सकता।

बीच बीचमें नील-व्यवसायियोंकी समिति बैठती है। उस समितिसे अनेक नियम बनाए जाते हैं। उन्हीं नियमोंके अनुसार वे कार्य करते तथा नीलकोठीके काम सम्पन्न करते हैं। गवर्मेण्टने जो नील परसे कर उठा दिया है, उससे दिनों दिन इस व्यवसायकी उन्नति होती देखी जाती है।

१८०१ ई० ? तक पहले नीलके विदेश भेजनेमें मन पीछे १) रु० कर देना पड़ता था। किन्तु उस समयसे नील प्रस्तुत करनेमें मन पीछे १) रु० और नीलकी पत्तियों पर एक टन (२७ मन ८ सेर)-से ऊपर होने पर भी तीन रुपये लगने लगे। धीरे धीरे ये सब कर उठा दिए गए हैं।

बङ्गालमें नीलकी खेती धीरे धीरे अमेरिका और वेष्टइण्डीज आदि स्थानोंमें फैल गई। जब मन्द्राजके अधिवासियोंका ध्यान उस ओर गया, तब वे भी बहुत यत्नपूर्वक इसकी खेती करने लगे। तिरहुतमें भी इसकी खेती होती है।

नीलकी खेती—भिन्न भिन्न स्थानोंमें नीलकी खेती भिन्न भिन्न ऋतुओंमें और भिन्न भिन्न रीतिसे होती है। मि० डब्लू एस रीडने अपने नीलकी खेती और कार्यविषयक पुस्तकमें लिखा है कि उत्तर बिहार

आदि उच्च स्थानोंमें नीलकी खेतीमें बहुत परिश्रम लगता है। वहां गृहस्थ लोग जमीनको पहले अच्छी तरह कुदालीसे कोड़ते हैं, पीछे उसमें नीलका बीज बो कर खाद डालनेके बाद चौकी देते हैं। चौकी देने पर भी यदि ढेला रह जाता है, तो उसे हाथसे फोड़ते अथवा बालक-बालिका मिल कर मुगरसे पीटती हैं।

निम्न बङ्गालमें जमीन प्रायः समुद्रसे बहुत कम ऊंची है। इस कारण वर्षाके समय वह वृष्टि और बाढ़में डूब जाती है। शरतृऋतुके आने पर जल सूखने लगता है। इसी समय इस देशमें नीलका बीया बोया जाता है। अतएव यहां उत्तर-विहार आदि स्थानोंके जैसा विशेष परिश्रम करना नहीं पड़ता। किन्तु जहांकी जमीन अपेक्षाकृत ऊंची है, वहां खेत जोत कर बीया बोया जाता है सही, लेकिन उत्तर-विहारके जैसा कुदालसे कोड़ कर वा ढेले फोड़ कर नहीं। यहां विशेष कर कातिक महीनेमें ही बीज-वपन होता है।

दक्षिण-विहारमें वर्ष भरमें दो बार बीया बोया जाता है। एक भाद्रमासमें वृष्टिके समय जिसे आषाढ़ीनील कहते हैं। आषाढ़ीनीलका भरोसा बहुत कम रहता है। कारण काफी तौरसे धूप और पानी नहीं मिलता जिससे बीया बरबाद हो जाता है। दूसरी बार इसके बुननेका कोई निर्दिष्ट समय नहीं है, वर्ष भरमें प्रायः सभी समय बीया जा सकता है। यहां कहीं तो फसल तीन ही महीने तक खेतमें रहती है और कहीं अठारह महीने तक। जहां पौधे बहुत दिनों तक खेतमें रहते हैं वहां उनमें कई बार काट कर पत्तियां आदि ली जाती है। पर अब फसलको बहुत दिनों तक खेतमें रखनेकी चाल उठती जाती है। उत्तर-विहारमें नील फागुन-चैतके महीनेमें बोया जाता है। गरमीमें तो फसलकी बाढ़ रुकी रहती है पर पानी पड़ते ही जोरके साथ टहनियां पत्तियां निकलती और बढ़ती हैं। अतः आषाढ़में पहला कलम हो जाता है और टहनियां आदि कारखाने भेज दी जाती तथा खेतमें खूंटिया रह जाती है। कलम काटनेके बाद फिर खेत जोत दिया जाता है जिससे बरसातका पानी अच्छी तरह सोखता है और खूंटियां फिर बढ़ कर पौधाके रूपमें हो जाती हैं। दूसरी कटाई फिर क्वारमें होती है। कहीं कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि जब चैत-बैसाखमें कुछ भी पानी नहीं पड़ता, तब कृषकगण बांसके डंडेमें एक तरफ जलपूर्ण बाल्टी और दूसरी तरफ कोई भारी चीज लटका कर कंधे पर चढ़ा लेते और खेतमें जाते हैं। जिस खेतमें पानी देनेकी आवश्यकता देखते, उस खेतको पानीसे सींच देते हैं। कहीं कहीं चमड़ेके थैलेमें पानी भर कर बैलको पीठ पर लाद देते और खेत ले जा कर वृष्टिका अभाव पूरा करते हैं। जो धनी गृहस्थ हैं, वे कहीं कुआं खोद कर ही काम चला लेते हैं। कारण चैतमासमें यदि वृष्टि बिलकुल न हो, तो जमीन फट जानेकी सम्भावना रहती है। ऐसा होनेसे बीज नष्ट हो जाते हैं और किसी तरह यदि पौधे उग भी जांय, तो पीछे वे तेजहीन हो जाते हैं। जब तक वृष्टि नहीं होती तब तक वे इसी प्रकार खेतको सींचते रहते हैं।

निम्नबङ्गालमें नील सब जगह कार्त्तिकमासमें बुना जाता है सही, पर इसकी कटाई भिन्न भिन्न समयमें होती है। एक प्रकारका ऐसा नील है, जो आषाढ़, श्रावण और कभी कभी भाद्र मासमें भी काटा जाता है। यह शारदीय नील आठ मास तक जमीनमें रहता है। कटाईके समय पहले निम्नस्थानका नील काटा जाता है। कारण बाढ़का डर बना रहता है। काटनेके बाद पौधोंको अंटियामें बांधते और बैलकी गाड़ी पर लाद कर कोठीमें पहुंचा देते हैं।

बङ्गाल छोड़ कर भारतवर्षके अन्यान्य स्थानोंमें भी यथेष्ट परिमाणमें नील उत्पन्न होता है। उन सब स्थानोंमें जिस प्रणालीसे नीलकी खेती होती है, वह उपरिउक्त प्रणालीसे विशेष विभिन्न नहीं है। पर स्थानविशेषसे विभिन्न समयमें बीजवपन और कटाई होती है। सुचतुर कृषकगण अनेक समय नीलके साथ साथ अन्य अनाज भी उपजाते हैं। निम्नबङ्गालमें कातिकमासमें नीलके साथ सरसों बोई जाती है। बम्बईप्रदेशमें नीलके साथ रूई, कंगनीदाना आदिकी खेती करते हैं।

प्रत्येक बीघेमें ४।५सेर नीलका बीया लगता है। कलिन साहबकी रिपोर्टसे जाना जाता है, कि बङ्गालमें प्रति बीघे प्रायः १५ रु०का नील उपजता है। नीलको

पर्यन्त प्रतिबन्धी पाट है। पहले जिन सब जमीनोंमें नील होता था उनके अधिकांश भागमें अभी पाट होने लगा है। विदेशकी रफ्तनी वस्तुओंमें ये ही दो सर्वप्रधान हैं। नीलको खेतीमें सुविधा यह है, कि इसमें पैसी मिलती है।

आसाम और ब्रह्मदेशमें भी नील उपजता है। पहले ब्रह्मदेशमें कोठीकी निकटस्थ जमीनके बतोयामें प्रजा बाध्य हो कर नील उपजाती थी। केवल बङ्गालमें नहीं बल्कि तमाम भारतवर्षमें नीलकी खेतीमें प्रजाको अधीन कर सुधरना पड़ता था। लेकिन अब वैसा नहीं है, नील उपजाना वा नहीं उपजाना प्रजाकी इच्छा पर है।

मन्द्राजके सब जिले, मैसूर और बड़ोदा जिला नीलका प्रधान स्थान है। इस प्रदेशमें कुछ विभिन्न उपायसे नील उपजाया जाता है। यहां इसकी दो प्रकारकी खेती होती है, प्रथम ग्रीष्मऋतुमें और द्वितीय वर्षामें। पहली प्रणालीमें जमीनमें थोड़ा पानी पड़ने ही खेत जोतने काबिल हो जाता है और तब बार दे कर चैत बैशाखमें बोया जाते हैं। इस प्रणालीमें वृष्टिके जलके ऊपर पूरा भरोसा करना पड़ता है। द्वितीय अर्थात् आर्द्र-प्रणालीमें वृष्टिके जलकी अपेक्षा नहीं करनी होती। पोखर अथवा और जलाशयके निकट बीजा बोया जाता है। उस जमीनमें तालाब आदिसे जल सींचनेकी जरूरत नहीं पड़ती। इस प्रणालीमें जमीन भी कम सींची जाती है। लेकिन बार बार पानीमें दिया जाता है। वहां बहुत खेतके पर्याप्त जलानेके लिये तीन चार दिन तक खेतमें छोड़ दिये जाते हैं। इससे मल मूत्रादिसे जमीनकी उर्वराशक्ति बढ़ती है। ३।४ दिन बाद ही बीज अंकुरना शुरु कर देता है। यदि कुछ विलम्ब हो जाय, तो एक बार जल सींचनेसे ही अंकुर निकल आवेगा। डहनियां निकल आनेके बाद प्रायः आठ दिन तक जल देना पड़ता है। तीन मासके बाद उसकी पहली कटाई और फिर तीन मासके बाद दूसरी कटाई होती है।

नीलके बीज उगानेके दो उपाय हैं। कटाईके बाद खेतमें जहां तहां जो दो चार पौधे रह जाते हैं, उनको कुछ काल रखा करें। पौधे फल लगने पर उसे संग्रह करके दूसरे वर्षके लिये रख छोड़ें। ये बीज सर्वोत्तम होते हैं और बोए जानेके तीन चार दिन बाद ही सबके सब उग जाते हैं, एक भी नष्ट नहीं होता। पूर्व समयमें बङ्गाल आदि देशोंमें इस भावसे उक्त बीज मिले जाते थे। बङ्गालके कोटचाँदपुरमें एक प्रकारका बीज उत्पन्न होता है जिसे 'देशी' कहते हैं। उस स्थानमें जहां ५।६ बार खेत जोत कर नील बोया जाता है, वहां उस देशी बीजकी जरूरत पड़ती है। किन्तु देशी बीजसे जो पौधे उत्पन्न होते हैं, उनकी कटाई देरीसे होती है। यशोर, पूर्णियामें देशी बीजके जो पौधे, लगते वे भी विलम्बसे परिपक्व होते हैं। किन्तु पटने और कानपुरके बीजसे उत्पन्न पौधे कुछ पहले ही कट जाते हैं। मन्द्राजी बीजसे तो और भी शीघ्र नील उत्पन्न होता है। किन्तु यह उतना सुविधाजनक नहीं है। उसका कारण यह है, कि नदीका जल जब तक परिष्कार नहीं हो जाता तब तक कोठीका काम शुरू नहीं होता है। किन्तु जिस समय मन्द्राजी बीजका नील होता है उस समय नदी बालुकामय रहती है। नीलबीजके मूल्यकी कुछ स्थिरता नहीं है। प्रति मनका दाम ८)से ले कर ४०) चालीस रुपये तक है। गया और उसके निकटवर्ती स्थानोंमें प्रति बीघे ६।० सेर बीजा बोया जाता है। जो सब नीलके पौधे सतेज नहीं होते, उन्हें बीजके लिये रख छोड़ते हैं। इस प्रकारके पौधेसे एकड़ पीछे प्रायः ६ मन बीज उत्पन्न होता है।

यद्यपि नीलकी खेती बहुत जल्दीमें और कम परिश्रमसे होती है, तो भी इसमें कभी कभी यथेष्ट विघ्न पड़ जाता है—(१) बैशाख जेठ मासमें अनावृष्टि होने पर अनेक समय पत्तियां झुलस जाती हैं। (२) जब कभी पौधे परिपक्व हो जाते, तब उनमें एक तरह लम्बा सफेद सा कीड़ा लगता है जो पौधेका यथेष्ट नुकसान करता है। इस कीड़ेके उत्पन्न होनेसे ही समझ लेना चाहिए कि नील काटनेका उपयुक्त समय आ गया। किन्तु ४।५ दिन यदि काटनेमें विलम्ब हो जाय, तो कीड़े पत्तियोंको बिलकुल काट गिराते हैं। (३) १८६२ ई० रस नामका एक प्रकारका कीड़ा नीलके पौधेमें देखा गया।

है। कभी कभी ऐसी नौबत आ जाती है, कि खेतका खेत उक्त कीड़ोंसे वृक्षहीन हो जाता है। (४) वृष्टि और शिलावृष्टिसे तथा कटाईके बाद पौधोंके जलमें भिगो जानेसे पत्तियाँ बरबाद हो जाती हैं जिससे सुन्दर रंग नहीं बनता। (५) अतिवृष्टि, अनावृष्टि दोनों ही इसकी अनिष्टकर है। (६) पौधोंके मतेज रहने पर भी यदि वे बहुत दिनों तक खेतमें छोड़ दिये जांय, तो वृष्टि आदिसे नष्ट हो जानेकी विशेष सम्भावना रहती है

युक्तप्रदेशमें तथा अयोध्याके गड़लो नामक स्थानमें एक प्रकारका कीड़ा उत्पन्न होता है जो नीलके पौधोंका परम शत्रु है। कभी कभी इतने जोरसे हवा बहती है, कि पौधोंके बिलकुल डंठल टूट जाते हैं, एक भी पत्ता रहने नहीं पाता। फलतः उससे रंग निकाला नहीं जा सकता। मन्द्राजमें पञ्चपाल, गोल्लपुरुगु और कम्बालीपुरुगु इत्यादि कीड़ोंसे पौधोंको विशेष क्षति होती है। वुद्धिटिगाल्लू नामक कीट १से ८ इञ्च तकके अङ्कुरको नष्ट कर डालता है। इस अवस्थामें यदि ये सब कीट देखे जांय, तो समझना चाहिए कि इस साल नील इतना ही तक शेष है। सिवेल साहब (E J Sewell) ने लिखा है, कि अङ्कुर निकल जानेके दो महीनेके अन्दर वुदिडें और आगुईमण्डल-पुठिगुलु नामक दो प्रकारका उत्पात होता है। पहलेमें पत्तियां बिलकुल सफेद हो जाती हैं और दूसरेमें काली हो कर जमीन पर गिर पड़ती हैं। सि० कफ साहब (C. kough) ने एक और नतन रोगका उल्लेख किया है। इसमें पत्तियों पर चकत्ता सा दाग पड जाता है और थोड़े ही दिनोंके मध्य पौधे मर जाते हैं।

सारे बङ्गालमें कितनी जमीनमें कितना नील उत्पन्न होता था, उसका निर्णय करनेके लिये सबसे पहले डाक्टर एच मैकान (Dr. H. Mocaun) ने चेष्टा की। स्थानीय कर्मचारियोंके विवरणसे उन्हें पता लगा था, कि १८७७-७८ ई०में प्रायः सात लाख एकड़ जमीनमें नील उपजाया जाता था। फिर १८८४-८५ ई०की गणनासे जाना जाता है, कि प्रायः तेरह लाख एकड़ जमीनमें नीलकी खेती होती थी। उस वर्षके उत्पन्न नीलकी परिमाण-संख्याके साथ तुलना करनेसे देखा जाता है कि १८७७-७८ ई०को विहारमें १८१०१६ एकड़ जमीनमें नील उपजता था और प्रत्येक एकड़में २० पौण्ड नील होता था। फिर निम्न बङ्गालकी ३४०३४० एकड़ जमीनमें नीलकी खेती होती थी और एकड़ पीछे १२ पौंड नील उत्पन्न होता था। १८८४-८५ ई०में विहार और निम्न बङ्गालमें किस हिसाबसे नील उपजता था सो ठीक ठीक मालूम नहीं। किन्तु टमास कम्पनीके विवरणसे जाना जाता है कि उपरि-उक्त कुछ वर्षों में क्रमशः ३८३२६०५ पौण्ड अर्थात् एकड़ पीछे ६ पौण्ड नील हुआ था। लेकिन डा० मैकनने जमीनका जैसा परिमाण दिया है, उससे अधिक परिमित स्थानमें नीलकी खेती होती थी। गत १८८९ ई०के विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि भारत भरमें कुल चौदह लाख एकड़ जमीनमें नीलकी खेती हुई थी और १५६४०१२८ पौण्ड नील विदेशमें भेजा जाता था। इस हिसाबसे प्रति एकड़ ११.१ पौंड नीलका होना साबित होता है। किन्तु भारतवर्षके व्यवहारके लिये २० लाख पौण्ड नील हरवक्त मौजूद रहता था। इससे यह ज्ञात होता है, कि बङ्गदेशमें एकड़ पीछे १२ पौण्ड और विहारमें २० पौण्ड नील उत्पन्न होता था।

नीलसे रंग निकालनेका उपाय।

नीलका रंग कोठीमें प्रस्तुत होता है। इस कोठीको लोग कनसार्न (Concern) कहते हैं। प्रत्येक कोठीमें यन्त्र रखनेके पात्रादि और दूसरे दूसरे आवश्यकीय द्रव्यादि तथा कुली, मजदूर और कर्मचारी रहते हैं। इन सब कर्मचारियोंके ऊपर एक अध्यक्ष रहता है। कार्याध्यक्षको सुदक्ष, बहुदर्शी और सर्वकार्य कुशल होना आवश्यक है। विशेषतः परिष्कार जलका संग्रह करना अध्यक्षका प्रधान कार्य है। कारण बिना परिष्कार जल और नीलपौधोंके कोठीका काम चल हो नहीं सकता। नीलसे रंग दो प्रकारसे निकाला जाता है। एक हरे और दूसरे सूखे पौधे।

१। हरे पौधेसे रंग निकालना।

नील प्रस्तुत करनेमें परिष्कार जलका संग्रह करना विशेष आवश्यक है। यही कारण है कि नदी वा प्रभूत जलपूर्ण जलाशयके समीप कोठी बनाई जाती है।

आवश्यक जलोत्तोलन यन्त्र द्वारा (pump) सर्वोच्च पात्रमें भी जल भर कर रख दिया जाता है। दस हजार घनफुट जल जिसमें समा सके ऐसे चहबच्चोंका रखना नितान्त आवश्यक है।

इन चहबच्चोंके अलावा छोटे छोटे और भी अनेक चहबच्चे रहते हैं। अंगरेजीमें इन चहबच्चोंको भाट्स (Vats) कहते हैं। इन सब चहबच्चोंको परस्पर सम्बन्ध रखनेके लिए नलकी जरूरत होती है। ये सब भाट मुख्य दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं, ष्टीपिं भाट (Steeping Vat) और बीटिं भाट (Beating Vat)। बड़े और छोटे चहबच्चोंका आकार कोठीके समान नहीं होता। नीलकी आमदनीके अनुसार विभिन्न कोठीमें विभिन्न आकारके चहबच्चे बने होते हैं। जिन सब कोठियोंमें १२ ष्टीपिं भाट रहते हैं, उनका परिमाण साधारणतः २४×१८×३ फुट होना चाहिए। ये सब चहबच्चे ईंट और सीमेण्टके बने होते हैं तथा ये कोठरीमें नहीं रहते हैं। इनके सामने थोड़े नीचे और भी कितने प्रशस्त और अच्छे गम्भीर चहबच्चे रहते जिन्हें बीटिं भाट कहते हैं। ष्टीपिं भाटके नीचे एक छेद रहता है। बाहरसे उसमें काठकी ठेपी लगी रहती है। उस छिद्रमें नल लगा कर ष्टीपिं भाटसे बीटिं भाटमें जोड़ दिया जाता है। पीछे उस ठेपीको खोल देनेसे ष्टीपिं भाटमें जो कुछ तरल रस रहेगा वह बीटिं भाटमें चला जायगा। इसी प्रकार बीटिं भाटके ऊपर नीचे भी कितने छेद होते जो नलके साथ संलग्न रहते हैं।

ष्टीपिं भाट (अर्थात् भिगोनेका पात्र) जिस लिये आवश्यक होता है, अच्छा तो पानीका विवरण देनेके पहले इसीका संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है। कटे हुए जो पौधे कोठीमें जितने मौजूद रहते हैं उन्हें इसी चहबच्चेमें दबा कर रख छोड़ते हैं और ऊपरसे पानी भर देते हैं। बारह चौदह घण्टे पानीमें पड़े रहनेसे उसका रस पानीमें उतर आता है और पानीका रंग धानी हो जाता है। पीछे ष्टीपिं भाटकी ठेपी खोल देनेसे वह पानी दूसरी भाटमें अर्थात् बीटिं भाटमें आता है। उस समय उस तरल पदार्थका वर्ण देख कर सहजमें कह सकते हैं, कि रंग कैसा होगा। यदि वह रस उज्ज्वल लिए कुछ पीला मालूम पड़े, तो जानना चाहिए कि नील बहुत उम्दा होगा। यदि वह मदीरा (Madira) के रंग-सा मालूम पड़े तो सुन्दर रंग कुछ विकृत और सब वर्ण मिश्रित तथा अस्वाभाविक गाढ़ा नील सा मालूम पड़े, तो मध्यम रंग और यदि मलीन लाल वर्ण दीख पड़े, तो रंग खराब हो गया है, ऐसा जानना चाहिये। बीटिं भाटमें पानीके साथ डेढ़ दो घण्टे तक वह लकड़ीसे हिलाया और मथा जाता है। मथनेका यह काम कभी हाथसे और कभी मशीनके सहारेसे भी होता है। दो ढाई घण्टे तक मथे जानेके बाद वह रस पहले गाढ़ा सब्ज वर्ण, पीछे वे गनिया और सबसे पीछे घोर नीलवर्णमें देखनेमें आता है। इस आलोड़न कार्यमें दो क्रियाएं निष्पन्न होती हैं, एक तो तरल पदार्थके ऊपर वायुमिश्रित अम्लजन क्रिया और दूसरी रंग प्रस्तुतकारी कणासमूहका पृथक् हो कर एक दानाकार धारण। रासायनिक पण्डितोंका मत है, कि आलोड़ित होनेके पहले उत्पन्न पदार्थ ठीक नीला (Blue) नहीं रहता वरं उसे सफेद नील या व्हाइट इण्डिगो कहते हैं।

अम्लजन वायुके साथ मिल कर यह नील रंगमें परिणत हो जाता है। रासायनिक प्रक्रिया द्वारा अम्लजन वायुके साथ मिल जाता है, इस कारण अन्यान्य उपायसे अम्लजनके साथ मिश्रित कर नील बनानेमें भी काम चल सकता है सफेद नील पानीमें घुल जाता है। लेकिन जब वह अम्लजन वायुके साथ मिल कर (ब्लू) रंगविशिष्ट नील हो जाता है तब पानीमें नहीं घुलता। मथनेके बाद पानी स्थिरताके लिये छोड़ दिया जाता है जिससे कुछ देरमें नील नीचे बैठ जाता और तब ऊपरका पानी नल द्वारा दूसरे चहबच्चेमें बहा दिया जाता है। यह पानी कभी कभी जमीनमें खादका काम करता है। इस पानीके निकल जाने पर वह जमा हुआ नील बाल्टीमें भर कर छलनीके ऊपर रख दिया जाता है, ऐसा करनेसे उसमें जितना कूड़ा करकट तथा पत्तियां रहता, सभी निकल जाती हैं।

पीछे एक नल हो कर सबे एक पात्रमें आता है। उस पात्रका नाम है पल्पभाट (Pulp Vat)। उसकी आकृति १५×१०×३ फुटकी होती है। उसीके ऊपर बायलर

पड़ता है। अब उस जमे हुए नीलको पुनः साफ पानीमें मिला कर उबालते हैं। उबाल जाने पर यह बासकी फट्टियोंके सहारे तान कर फैलाए हुए मोटे कपड़ेकी चांदनी पर ढाल दिया जाता है। चांदनी छननेका काम करती है। पानी तो निथर कर बह जाता है और साफ नील लेईके रूपमें लगा रहता है, यह गीला नील छोटे छोटे छिद्रोंसे युक्त एक सन्दूकमें, जिसमें गीला कपड़ा पड़ा रहता है, रख कर खूब दबाया जाता है जिससे उसकी सात आठ अंगुल मोटी तह जम कर हो जाती है। इसके कतरे काट कर धीरे धीरे सूखनेके लिए रख दिए जाते हैं। सुखने पर इन कतरों पर एक पपड़ी-सी जम जाती है जिसे साफ कर देते हैं। ये ही कतरे नील के नामसे बिकते हैं। इन कतरोंके ऊपर कोठीका मार्का दिया जाता है।

जब कतरे इसी तरह सूख जाते हैं, तब उन्हें एक कोठरीमें सजा कर रख देते हैं। इस घरका नाम स्वेटिंरूम है। यहां कतरे या गोलीके ऊपरके रंगको वर्माक्त करके उज्ज्वल करते हैं। इस घरमें गोलीको एक दूसरेके ऊपर इस प्रकार सजा कर रखते कि वह दीवार-सा दीख पड़ता है। बाद उसे कम्बल या भूसीसे ढक रखते हैं। घरके दरवाजेको खूब सावधानीसे बंद रखना पड़ता है। कारण अधिक वायुके लगनेसे गोली नष्ट हो जानेकी विशेष सम्भावना रहती है। प्रायः १५ दिन तक इस प्रकार रखनेसे नीलकी गोली वर्माक्त हो जाती है पीछे धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा करके उसे खोलते हैं, एकबारगी खोलनेसे गोलीके फट जानेकी सम्भावना रहती है। ऐसा करनेसे नीलकी उज्ज्वलता बढ़ती है।

नीलके कतरेको अच्छी तरह सूखनेमें तीन मास लगते हैं। बाद उसे एक बकसमें रख देते हैं। प्रायः एक दिनकी प्रस्तुत गोलीसे एक बकस भर जाता है।

२। सूखे पौधेसे रंग निकालना।

इस प्रणालीसे जो नील तैयार होता है, वह उतना अच्छा नहीं होता। तब इसमें सुविधा एक यही है कि कटाईके बाद जब इच्छा हो, तब उससे रंग निकाल सकते हैं। जिन्हें नीलकी कोठी नहीं है, दूसरेकी कोठी किराए पर ले कर रंग प्रस्तुत करते हैं, वे ही प्रायः इस उपायका अवलम्बन करते हैं। इस प्रणालीमें तथा प्रथमोक्त आर्द्र प्रणालीमें कोई विशेष पृथक्ता नहीं है। फर्क इतना ही है, कि प्रथम अवस्थामें नीलके पौधोंको न सुखा कर सड़नेके लिए रख देते हैं। पर इसमें पौधोंको सुखा लेते हैं जिससे पत्तियां झड़ कर गिर पड़ती हैं। ये सूखी पत्तियां एक मासके बाद सब्जवर्णसे नीलवर्ण लिए धूसरवर्णकी हो जाती हैं। पीछे टीपिंभाटमें सूखी पत्तियां डाल कर ऊपरसे ६ गुणा जल दे देते हैं। इस अवस्थामें क्रमागत हिलाते और मथते हैं। बहुत देर तक हिलनेके बाद पत्तियां नीचे बैठ जाती हैं। पीछे जल सब्जवर्णका हो कर बीटिंभाटमें जाता है और पूर्व नियमसे नील-रंग प्रस्तुत किया जाता है।

डाक्टर शर्ट (Dr. Shortt)-ने रंग निकालनेका इससे भी एक सहज उपाय बतलाया है। इस प्रणालीसे खेतसे लाया हुआ ताजा नील एकबारगी बायलरमें डाल दिया जा सकता है। पीछे जलसे सिद्ध करके काम चल जाता है। इस प्रकार सिद्ध करते करते इसमेंसे कुल रंग बाहर निकल आता है। सिद्ध करनेके समय काठके एक यन्त्रसे पत्तियोंको जलमें डुबो रखना चाहिए। बीच बीचमें इस पर विशेष ध्यान रहे कि पानी कब उबलना शुरू करता है। कारण उस समय आंच कम कर देनी पड़ेगी। जब इसका वर्ण कुछ लाल हो जाय, तब जानना चाहिए कि उबलना शेष हो गया। पीछे इसमेंसे क्वाथको बीटिंभाटमें डाल कर मथना होता है। इसमें सुविधा यही है, कि थोड़े ही समयके अन्दर कार्य सम्पन्न हो जाता है। बीटिंभाटसे इसको पल्प बायलर (Pulp Boiler)में ले जाना पड़ता है। अनन्तर पूर्व प्रणालीके अनुसार सभी कार्य होते हैं।

सम्प्रति मि० रिचार्ड अन्नफार्टसने रंग बनानेका एक नई तरकीब निकाली है। इसमें सब्ज, नील और नीलवर्ण नील प्रस्तुत होता है। नील पौधोंकी ताजी पत्तियोंको टीपिंभाटमें डाल कर ऊपरसे किसी वस्तुका दबाव दे देते हैं। पीछे जल पड़नेसे उसमेंसे रस निकल कर जलको नीला बना देता है। यदि ग्रीन-इण्डिगो प्रस्तुत करना हो, तो पौधोंके अच्छी तरह सड़नेके पहले यह

प्रक्रिया की जाती है और यदि इण्डिगोटीन बनाना हो, तो पत्तियां जितनी ही सड़ेंगी रंग उतना ही अच्छा होगा। बाकी सभी प्रक्रियाएं पहले सी हैं।

नील प्रस्तुत करनेमें बहुत खर्च पड़ता है। मिस्टर माइकी रिपोर्ट पढ़नेसे मालूम होता है कि कोठीके मन पीछे अर्थात् ८२ पौण्ड १० ई को मनमें २० रु० खर्च होते हैं। यदि नीलका पौधा अच्छा हो और नीलका दर मध्यम हो तो मन पीछे १०७) से लेकर ७५) रु० लाभ होते हैं।

इण्डु नील तापके संयोगसे वायुमें गल जाता है। यदि उसमें अधिक उत्ताप दिया जाय तो वह उज्ज्वल और धूममय शिखाविशिष्ट हो कर जलने लगता है। ० डिग्रीसे १०० डिग्री सेण्टिग्रेड तक ताप अक्सिजन इसके ऊपर कोई क्रिया नहीं करती। लेकिन यदि वह नील जलमें कुछ गीला बना दिया जाय, तो उससे उसके भीतर अक्सिजन देनेसे पहले वह मृदु वर्णका हो जाता है पीछे विशुद्धप्राय सा। वर्त्तमान रासायनिक पण्डितोंने विज्ञानशास्त्रमें नील (Indigo blue)का सांकेतिक चिह्न $C_8 H_5 NO$ or $C_{16} H_{10} N_2 O_2$ रखा है। जल, सुरासार, इथर (Ether) मृदु अम्ल (Dilute acid), क्षार (Alkali) इत्यादि द्रव्योंमें यह द्रव नहीं होता। गन्धक द्रावक (Sulphuric acid) के साथ द्रव हो कर एकप्रकार नील इण्डिगो (Extract of Indigo) प्रस्तुत होता है।

नील द्वारा रेशम, पशम, सूती कपड़े आदि रंगाए जाते हैं। कपड़े रंगानेके पहले इण्डिगोको अर्थात् नीलमोटोको अन्यान्य द्रव्योंके साथ मिला कर एक बर्त्तनमें घोलते हैं। विभिन्न प्रणालीसे विभिन्न द्रव्य मिश्रित किया जाता है। किसी प्रणालीमें चूना और फेरस सल्फेट (Ferrous sulphate $Fe SO_4$) मिश्रित किया जाता है। किसी प्रणालीसे कार्बोनेट आव पटास (Carbonate of Potash), भूसी (Brans) फिर किसी उपायसे जल और कार्बोनेट आव सोडा (Carbonet of Soda) इत्यादि व्यवहृत होता है। भारतवासी साधारणतः निम्नलिखित उपायसे रंग प्रस्तुत करते हैं। एक पौण्ड नीलका चूर्ण, तीन पौण्ड चूना और

चार पौण्ड कार्बोनेट आव-सोडा इन सबको जलमें घोल कर उसमें प्रायः ४ पौण्ड पानी मिलाते हैं। यदि ७।८ घण्टेके मध्य पचनक्रिया आरम्भ न हो तो फिर कुछ पानी और चूना मिलाना पड़ता है। ठण्ढे दिनमें अग्निका उत्ताप देनेसे यह नील बहुत जल्द व्यवहारोपयोगी हो जाता है। आजकल कई एक प्रणालीको छोड़ कर रंग बनानेकी और भी अनेक प्रणालियां हैं। इन सब प्रणालियोंसे इण्डिगोसे श्वेत इण्डिगो विभिन्न हो जाते हैं। (इसका रासायनिक चिह्न $C_8 H_6 NO$ or $C_{16} H_{12} N_2 O_2$ है।) इस श्वेत इण्डिगोमें अक्सिजन वर्त्तमान हाइड्रोजन वायुमें परिवर्त्तित होनेसे पुनः इण्डिगोटीन प्रस्तुत होता है। इस इण्डिगोसे वस्त्रादि गोतापन्न में रंगाया जाता है।

पहले जिस कपड़ेको रंगाना होता है उसे पूर्वोक्त प्रणालीके अनुसार प्रस्तुत रंगमें दस मिनट डाल दे। पीछे बार बार उसे रङ्गमें डुबोते रहें किन्तु यह काम निर्दिष्ट व्यवधानोंसे किया जाता है। क्योंकि सम्पूर्णरूपसे आर्द्र होनेके पहले यदि वह रंगपात्रसे बाहर उठ जाय, तो वायुस्थित अक्सिजनके साथ मिश्रित हो कर विभिन्न स्थानमें विभिन्न रंग हो जायगा। अतएव वस्त्रादिके अच्छी तरह भिन्न हो जाने पर अर्थात् इसके भीतर सर्वत्र श्वेत नीलका प्रवेश हो जाने पर उसे निचोड़ लेते और धूपमें सूखनेके लिये अलग फैला देते हैं। इस समय वायुस्थ अक्सिजन (Oxygen) उसमें हाइड्रोजन (Hydrogen) ग्रहण करके रंग प्रस्तुत करेगा। यह रंग वस्त्र रूप धारण करके चढ़ जायगा। अनन्तर श्वेत नीलमें हाइड्रोजनके बाहर हो जाने पर यह रंग नील हो कर वस्त्रखण्डके अभ्यन्तर प्रवेश करेगा जिससे कपड़ेका रंग भी घुल जायगा। यदि एक बारमें आशानुरूप रंग न चढ़े तो फिर उसे डुबा दे। पशमी कपड़ा रंगानेमें पहले उसे गरम जलमें सिद्ध कर लेते हैं। पीछे अन्य उष्ण जलमें सिद्ध कर रंगके बरतनमें डाल देते हैं। रंगानेके पहले नमकसे रंगके ऊपरका फेन फेंक देना पड़ता है। रंग बनानेमें थोड़े अम्लमिश्रित जलमें (Acidulated water) उसे धो लेना पड़ता है। यदि अधिक गहरा रंग बनानेकी जरूरत हो तो उसे फिर

फिटकरी अथवा वाइक्रोमेट आव पटाश (Bichromate of Potash) तथा टार्टरिक एसिड (Tartaric acid)में जलके साथ सिद्ध करना पड़ता है।

इससे पहले कहा जा चुका है, कि नील पौधेके अलावा वायड आदि अन्यान्य वृक्षोंसे भी इसी प्रकार रंग प्रस्तुत होता था। पहले अलकतरे (Coal tar)से नील रंग प्रस्तुत होता था। मन्द्राजके गैलनील (Nerium Indigo), बम्बई और राजपूतानेके बननील, परपूरिया, (Tephrosia Purpuria) और हिमालयका पहाड़ी जातियां वनवेरी वा पुष्पी (Marsdenia tinctoria)-से रंग प्रस्तुत करती थीं। यवद्वीपमें (M. Parviflora) और चीनदेशीय सियाउलियाउ (Isatis Indigotica) नामक वृक्षसे भी नील प्रस्तुत किया जाता है। इसके अलावा Gymnema Tingens एवं कैथाई (Acacia Bugta) इत्यादि वृक्षजात पत्तियोंसे बढ़िया नीलका रंग निकाला जाता था।

भारतवर्षके यवनके हाथमें आनेसे पहले करके बदलेमें फसलका कुछ अंश जमींदारको दिया जाता था। सम्राट् अकबरशाहने ही इस प्रथाको उठा कर नियमित करका बन्दोबस्त कर दिया। अकबरकी मृत्युके बाद तथा अंगरेजी अधिकारके पहले उक्त कर वसूल करते समय प्रजाके प्रति यथेष्ट अत्याचार किया जाता और कर मनमाना वसूल किया जाता था जिससे प्रजा तंग तंग आ गई थी। जब अंग्रेजोंका पूरा अधिकार भारतवर्ष पर हो गया, तब उन्होंने देखा कि इस प्रकारका कर-ग्रहणकी प्रथाका संस्कार होना आवश्यक है और जिससे एक ही बारमें मालिकके निकट खजाना पहुंच जाय, उस विषयमें लक्ष्य रखना कर्त्तव्य है। इस आशय पर उन्होंने खजानेके विषयमें बहुतसे नियम बनाए।

मि० मैकडनेलने बङ्गालकी नीलकी खेती तथा रैयती बन्दोबस्तके सम्बन्धमें लिखा है, कि इस देशमें नीलकी खेतीका बन्दोबस्त तीन प्रकारका था, यथा—जिराट, आसामीवर और खुसगी। जिराटीमें नीलकर स्वयं वेतनभोगी कृषकोंसे नील उपजाते थे। आसामीवर नियममें जमीन प्रजाके दखलमें रहती थी, प्रजा स्वयं इसमें नील उपजा कर जमींदारके यहां बेच डालती थी। किन्तु जमींदार बीघे प्रति निर्दिष्ट करसे कुछ भी बेशीका दावा नहीं कर सकते थे। खुसगीमें प्रजा अपनी इच्छाके अनुसार नील उपजाती थी। इस प्रथाके अनुसार प्रजा जमींदारसे किसी हालतमें बाध्य न थी।

मनुसंहितामें लिखा है, कि ब्राह्मणको नीलकी खेती कदापि नहीं करनी चाहिए।

नीलके बीजसे एक प्रकारका तेल निकलता है जो विशेषतः औषधके काममें आता है।

नीलका रस मृगी और स्नायविक रोगमें व्यवहृत होता है। यक्ष्माकाशमें तथा क्षतस्थानमें भी इसका प्रयोग देखा जाता है। रासायनिक प्रक्रियाकालमें नीलकी बहुत जरूरत पड़ती है।

अनेक प्रसिद्ध यूरोपीय डाक्टर नीलके अनेक गुण बतला गए हैं जिनमेंसे कुछ नीचे दिये जाते हैं।

दीर्घकालस्थायी मस्तिष्करोगमें देशीय चिकित्सक नीलरसका व्यवहार करते हैं। पेशाबके बन्द हो जाने पर नीलकी पत्तियोंकी पुलटिस देनेसे पेशाब उतर आता है। यह खनिज द्रव्यजात विषनिवारक, घोड़ोंका क्षतनाशक, उदराध्मान तथा पेशाबका सहकारी है। पशुओंके रोगमें नीलका रंग बहुत फायदामन्द माना गया है। विषको दूर करनेके लिये कहीं कहीं नीलकी जड़का काथ भी दिया जाता है। नीली और नीलिका देखो।

२ आजकल इस लोगोंके देशमें एक नया पेड़ आया है जिसे सम्वादपत्रमें नीलवृक्ष बतलाया है। इसे नीलवृक्ष इसलिये कहा है कि इसकी पत्तियां बिलकुल नीली होती हैं। इस पेड़का आदि उत्पत्तिस्थान अष्ट्रेलिया-देश है इसका नाम है यूकालिपटस (Eucalyptus)। वृक्षश्रेणीके मध्य विल्ववृक्ष जिस वंशके अन्तर्गत है, यह भी उसी वंशके अन्तर्गत माना गया है। उद्भिद्शास्त्रमें इस वंशको मारटासी (Myrtaceae) कहते हैं। इस नीलवृक्षके प्रायः १५० भेद हैं। यह खूब बड़ा होता है। यहां तक कि कहीं कहीं २०० हाथ तक ऊंचा देखा गया है। इससे बहुत अच्छे अच्छे तख्ते बनते हैं। पेड़मेंसे एक प्रकारका गोंद निकलता है जो मनुष्यके अनेक कामोंमें लगता है। इसकी पत्तियोंसे एक प्रकारका तेल बनता है। यह तेल दर्दके लिये महौषध है।

इसके पत्र और पुष्प देखनेमें बड़े ही सुन्दर लगते हैं। बङ्गाल देशमें इसकी बाढ़ बहुत जल्द होती है। नौ वर्ष वयसमें यह ६० हाथ और पचास वर्षमें १२० हाथ बढ़ जाता है। इस समय इसके तनेका घेरा ३० हाथ तक होता है। इस वृक्षसे जो तख्ते आदि बनाये जाते हैं, वे बहुत टिकाऊ होते और महोगनी काठकी तरह इसमें घुन नहीं लगते। इसकी लकड़ीको जलानेसे यथेष्ट पटाश (Potash) का क्षार पाया जाता है। जहां पर मलेरिया ज्वरका प्रादुर्भाव है, वहां इस वृक्षको लगानेसे सुनते हैं, कि दूषित वायु प्रशमित होती है। इसलिए किसी किसीने इसका नाम रखा है "ज्वरनाशक वृक्ष"। इसमें सर्दी रोग नाश करनेका भी गुण है। इस विषयमें सबसे पहले डाक्टर रैमजोने अनेक प्रमाण संग्रह कर यह स्थिर किया है, इसकी पत्तियोंको कुचलनेसे जो तैल निकलता है उसकी गन्ध कपूर सी होती है। यह पहले था कि पर इसमें भी व्यवहृत हुआ करता है। अजीर्ण, ज्वरामय और मज्जाके पुरातन रोग सर्दी, कृमि वात आदि नाना रोगोंमें इसका व्यवहार होता है। इसकी वायुनिवारक शक्ति भी विलक्षण है।

इटली और अलजिरिया आदि देशोंमें मलेरिया ज्वरका विलक्षण प्रादुर्भाव है। वहां हजारों ही अनेक नीलवृक्ष लगाए गए हैं और यह देखा गया है, कि इससे फल भी अच्छे निकले हैं। जहां बारहों मास मनुष्य कम्पज्वरसे पीड़ित रहता था, जहां घोड़ा बकरा तक कर पेट भरनेका आहार धारण करता था, जहां किसानोंको मानव्यथा दुःसाध्य हो गई थी, वहां आज इस नीलवृक्षके गुणसे सुस्वास्थ्य, सबल और सुवपुका जन्म होता है।

नील—हर्षवर्धके पौत्र राजा भोरचोलके गुरु। जब भोरचोल दाक्षिणात्यके अधीश्वर हो कर राज्यशासन करते थे, उस समय नीलने उन्हें वेदपारग ब्राह्मणको भूमिदान करने कहा था। उन्होंने भी उपदेश दिया था, यदि तुम अपने पूर्व पुरुषोंके स्वर्गलोक जानेकी आशा रखते हो, तो मेरे उपदेशानुसार कार्य करो। गुरुके कहनेसे राजाने 'परकेसरीचतुर्वेदी मङ्गलम्' नामक ग्राम ब्राह्मणोंको दान दिया था।

नील—काश्मीरके एक राजाका नाम। इन्होंने नीलपुराणकी रचना की। जब बौद्ध लोगोंने नीलपुराणोक्त कर्मादि बन्द कर दिए, तब काश्मीरमें हिमावर्षण होने लगा। अन्तमें इन्होंने चन्द्रदेव नामक किसी ब्राह्मणसे यज्ञ कराया जिससे हिमावर्षण बन्द हो गया।

नील—अफ्रिकाकी एक बड़ी नदीका नाम। अरबीयोंमें इसे नायल (Nile) कहते हैं। पृथिवी भरमें यह एक बहुत बड़ी नदी है। यह बहर-अल-अबियाद अर्थात् श्वेत नदी और बहर-अल-अजरक अर्थात् नीलनदीसे मिल कर भूमध्यसागरमें गिरती है। १८४६ ई०में अन्तोनी आबादीने आबिसीनियाके दक्षिण अक्षा० ७ ४९ उ० और देशा० ३४ ३८ पू०में इसका उत्पत्तिस्थान बतलाया था। किन्तु उनके परवर्ती भ्रमणकारियोंका कहना है कि उन्होंने नील नदीकी उपनदी उमाका नील नाम रखा था। उनके मतानुसार इसका उत्पत्तिस्थान और भी दक्षिणमें है। नील अपने नायेका क्रमसे जल ले कर अबिसिनिया, नुबिया, सेनार, कारो, कर्दोफान मरुस आदि देशोंको उर्वरा बनाती है। आस्सुआन नामक स्थानमें यह इजिप्टमें गिरती है।

इस स्थानसे भूमध्य सागरको ओर अक्षा० ३१-३० से ले कर अक्षा० ३० ३२ उ० तक प्रवाहित हो कर यह दो शाखाओंमें विभक्त हुई है। एक शाखाके ऊपर रोसेट्टा नगर बसा हुआ है। दूसरी शाखा डैमियेट्टा नगर होती हुई पश्चिमकी ओर चली गई है। प्रत्येक शाखाके इसके पूरब, सात मुहाने हैं। इस नदीमें ४ जलप्रपात हैं जिनमेंसे इजिप्ट और नुबियाके सीमान्त प्रदेशमें अवस्थित प्रपात सबसे प्रधान है। इसका वर्तमान नाम एल-बिरबो है। पुराकालमें यह फिलो (Philoe) नामसे प्रसिद्ध था।

ग्रीष्मकालमें नील नदीका जल बहुत कम पड़ जाता है। जुलाई मासके प्रारम्भमें सबसे पहले कायरो नगरमें जलवृद्धि दिखाई जाती है। वहां रोडा द्वीपके निकट इसकी जलवृद्धि नापनेके लिए एक स्तम्भ गड़ा हुआ है जिसे नीलामीटर कहते हैं। पहले ६।७ दिन तक बहुत धीरे धीरे जल बढ़ता है, पीछे इसकी क्रम वृद्धि कब कब होती है, जान नहीं पड़ता। इसके कुछ दिन

बाद ही यह बहुत बढ़ जाती है और २० अथवा ३० सितम्बरके मध्य जलवृद्धि चरमसीमा तक पहुंच कर रुक जाती है। पीछे धीरे धीरे घटने लगती है। इस प्रकार जलवृद्धिका कारण यह है, कि ग्रीष्मऋतुमें बहुत वर्षा होती है और वर्षाका जल नील नदी हो कर समुद्र में गिरता है। नील नदीकी जिस शाखाके ऊपर रोजेटा नगर बसा हुआ है, उसका विस्तार ६५० फुट और जिस पर डेमिएटा नगर है उसका विस्तार १०० फुटसे अधिक नहीं है। नील नदी और कायरोखालके बांधके मध्य एक मृण्मय स्तम्भ गड़ा हुआ है। वर्षाकालमें जल जितना ऊपर उठता है, इसकी ऊंचाई भी ठीक उतनी हो कर दी जाती है। इस स्तम्भको अरुसके अथवा कुमारी कहते हैं। जनसाधारण इससे नीलका जल मापा करते हैं। जब जल तीव्र वेगसे खाईमें प्रवेश करता है तब वह स्तम्भ स्रोतमें बह जाता है। प्रवाद है, कि इजिप्टके लोग प्राचीनकालमें स्रोतका वेग रोकनेके लिए प्रतिवर्ष कुमारीका बलिदान देते थे।

नीलक (सं० क्लो०) नीलमिव स्वार्थे कन्। १ काचलवण। २ वर्त्तलोह, बोदरी लोहा। ३ असनवृक्ष, पियासाल। ४ मटर। ५ भल्लातक, भिलावां। ६ कृष्णसारमृग। ७ नीलभृङ्गराज। नालेन वर्णेन कायति-कै-क। पु०) ८ भ्रमर, भौंरा। ९ बीजगणितमें अव्यक्त राशिका एक भेद।

नीलकण (सं० पु०) १ नीलमका एक टुकड़ा। २ दाढ़ी पर गोदे हुए गोदनेका विन्दु।

नीलकणा (सं० स्त्री०) कृष्णजीरा, कालाजीरा।

नीलकण्टक (सं० पु०) चातक पक्षी।

नीलकण्ठ (सं० पु०) नीलः नीलवर्णः कण्ठो यस्य। १ शिव। नीलकण्ठ नाम पड़नेका कारण—

अमृतोत्पत्तिके बाद भी देवताओंने समुद्र मथना छोड़ा नहीं, बल्कि वे और उत्साहपूर्वक मथने लगे। इस समय सधूम अग्निकी तरह जगन्मण्डलको आवृत करता हुआ कालकूट विष उत्पन्न हुआ। उसकी गन्धमात्रसे ही त्रिलोकस्थित लोग अचेतन हो पड़े। तब ब्रह्माके अनुरोधसे मन्त्रमूर्त्ति भगवान् महेश्वरने उस कालकूट विषको अपने गलेमें धारण कर लिया जिससे उनका कण्ठ कुछ काला पड़ गया। उसी समयसे शिवजी नीलकण्ठ नामसे प्रसिद्ध हुए। (भारत १।१८ अ०)

इसका विषय पुराणमें इस प्रकार लिखा है,—पुराकालमें देव और दैत्योंके बीच तुमुल संग्राम छिड़ा था। उस युद्धमें देवगण क्षमताहीन और सैन्यहीन हो कर नितान्त श्रीभ्रष्ट हो गये थे। यहां तक कि उनका स्वर्गराज्य भी शत्रुओंके हाथ जाने जाने पर हो गया था। तब शत्रुदमनका उपाय सोचनेके लिये उन्होंने मेरुपर्वतके ऊपरी भाग पर एक विराट् सभा की। उस सभामें चतुर्मुख ब्रह्माने देवताओंसे चक्री विष्णुके साथ परामर्श करनेको कहा। ब्रह्माके उपदेशानुसार देवगण व्याकुल हो कर विष्णुकी शरणमें पहुंचे। विष्णुने दैत्यहस्तसे उन्हें बचानेकी प्रतिज्ञा की और उनसे पहले दैत्योंके साथ सन्धिस्थापन करके समुद्र मथनेको कहा मन्दरपर्वत उसका मन्थनदण्ड और सर्पराज वासुकि मन्थनरज्जु बनाए गये। विष्णुने यह भी कहा था, "समुद्रमन्थन द्वारा जो अमृत उत्पन्न होगा उसे भक्षण कर पहले तुम लोग अमरत्व * लाभ करना। जब तक दैत्यगण समुद्र मथनेमें मदद नहीं देंगे, तब तक मथा नहीं जा सकता। क्योंकि वे लोग तुमसे लोगोंसे बल और पराक्रममें कहीं बढ़े हुए हैं।"

देवराज इन्द्र विष्णुके उपदेशानुसार सन्धिस्थापनके लिए दैत्यराज बलिके पास गए। बलिने उनका प्रस्ताव मंजूर किया, लेकिन उन्होंने भी अमृतका कुछ अंश चाहा। जब इन्द्रने अमृतका अंश देना स्वीकार किया, तब दैत्यगण देवताओंके साथ मिल कर दुग्ध-समुद्र मथनेको तैयार हो गये।

विष्णुके उपदेशानुसार दुग्ध-समुद्रके ऊपर औषधमूलक लताएं आदि फेंक कर मन्दरपर्वत और वासुकिकी सहायतासे दोनों पक्षने समुद्र मथना आरम्भ कर दिया। किन्तु अतलस्पर्शी समुद्रके ऊपर मन्दरपर्वत बहता तो नहीं था, बल्कि नीचेकी ओर धंसा जाता था जिससे समुद्र मथनेमें बड़ी असुविधाएं होती

* अमृतपानके पहले देवगण भी मनुष्यकी तरह कराल कालके गालमें फंसते थे।

थी। यह देख कर विष्णुने उसी समय कूर्म रूप धारण कर मन्दरपर्वतको अपनी पीठ पर ले लिया। पीछे देव और दैत्य आनन्दपूर्वक समुद्र मथने लगे।

समुद्र मथते मथते उन औषधको मथानोंसे, जो मथनेके पहले समुद्रके ऊपर फेंको गई थी, एक प्रकारका विष उत्पन्न हुआ जो समुद्रके ऊपर बहने लगा। उसको महाभयङ्कर गन्ध और तेज़ (थी) जिससे देव और दैत्य आकुल हो पड़े। यह व्यापार देख कर प्रभुने स्वर्ग, मर्त्य और पातालवासी सबके सब उस पतित पावन मृत्युञ्जय महादेवको शरणमें पहुंचे। शरणागतवत्सल आशुतोष प्राणियोंके क्षेम हुए कल्याणके लिए उस महाभयङ्कर विषको पी गए। जो अनादि और अनन्त हैं, अजर और अमर हैं, अजय और अजेय हैं, सामान्य विषसे उनका कोई अनिष्ट होनेको सम्भावना न थी। पर वे सर्वोपरि विभिन्नता भी उस महाभयङ्कर विषका धारण करनेमें बिलकुल समर्थ न हुए। उस महाभयङ्कर विषके परिपाक नहीं होनेसे वे अत्यन्त अन्तर्दाह अनुभव करने लगे। अन्तमें सर्पमालो हो कर उस विषने उनका गला नीलवर्णमें परिणत कर दिया। इसी कारण महादेव नीलकण्ठ नामसे प्रसिद्ध हुए। २ मयूर मोर। ३ पीतसार, पियासाल। ४ दात्यूह। ५ ग्रामचटक, गौरा पक्षी। इसके गलेके ऊपर काला दाग होता है, इसीसे इसे नीलकण्ठ कहते हैं। ६ पक्षिविशेष एक चिड़िया जो बित्तेसे लगभग बड़ी होती है। इसका कण्ठ और डैने नीले होते हैं। शेष शरीरका रंग कुछ ललाई लिए बादामी होता है। चोंच कुछ मोटी होती है। यह कीड़े मकोड़े खा कर जीता है, इसीसे वर्षा और शरत्कालमें उड़ता हुआ अधिक दिखाई पड़ता है। विजयादशमीके दिन इसका दर्शन बहुत शुभ माना जाता है। जब इसका दर्शन हो, तब नीचे लिखे मन्त्रसे प्रणाम करना चाहिए। यथा—

"नीलग्रीव शुभग्रीव सर्वकामफलप्रद।
पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोऽस्तु ते॥"

"[illegible] नीलकण्ठ सुनिपुणपुरुष [illegible] भुवि [illegible] प्रियोद्यमेव।
[illegible] दृष्टे प्राप्नुयात् [illegible] सकलाभीष्टसिद्धिमप्यवाप्नोति,"
(तिथितत्त्व)

यदि यात्रा, युद्ध, गमन अथवा किसी मनोरथ पूर्ण होनेके लिये किसीको पीठ पर नीलकण्ठका दर्शन करे, तो राज्यलाभ और शुभफल होता है। भस्म, अस्थि, केश, नख, रोम, और तुष पर बैठा हो कर देखनेसे दुःख प्राप्त होता है। यदि अशुभ स्थान (नीलकण्ठ)का दर्शन हो तो देवता और ब्राह्मणका पूजन तथा दान करे और पीछे सर्वौषधि जलसे स्नान करे।

नीलकण्ठमें यह समस्त भारतवर्ष, सिंहलद्वीप, दक्षिण चीन और उत्तर अफ्रिकामें देखा जाता है। ग्रीष्मका प्रादुर्भाव होनेसे यह हिमालयके उत्तर शीत प्रधान देशोंमें भाग जाता है। (स्त्री०) ७ मूलक, मूली। (त्रि०) ८ नीलग्रीवायुक्त, जिसका कण्ठ नीला हो।

नीलकण्ठ—नेपालके अन्तर्गत एक तीर्थ स्थान। भाद्र मासके वर्षा कालमें लगभग ८ दिन लगते हैं। यह अक्षा० २८ १९ उ० और देशा० ८६ ४´ पू०के मध्य अवस्थित है। परिभ्रमणकारी तुषार मासके दो बार अवस्थामात्र तक उसमें हिमके मध्य वर्षा पाया जाते हैं, दूसरे समय तुषार और वर्फसे अवश्य वर्षाका पाना आना बंद हो जाता है। यहां ८ प्रस्रवण हैं जिनमेंसे एक उष्ण है। सूर्यकुण्ड यहांसे एक मीलको दूरी पर है। इसके पास ही एक पहाड़ है जहांसे त्रिशूली नदीकी एक शाखा निकली है। स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें नीलकण्ठ माहात्म्य वर्णित है।

नीलकण्ठ—१ एक पण्डित। इन्होंने महावीरचरितको एक टीका और भूमिका लिखी है। इनके पिताका नाम मल्लोपाध्याय और पुत्रका नाम भवभूति था। २ अघोर-शतक रचयिता। ३ आश्वलायनश्रौतसूत्रके एक टिप्पणीकारक। ४ कुण्डमण्डपविधानके रचयिता। ५ कृष्णपूजाप्रयोगके रचयिता। ६ गोविन्दादिकोलाहल-स पर्व्व प्रणेता। ७ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने महाभारतको टीका रची है। कहते हैं, कि पञ्चतन्त्रको भोज रचीका बनाया हुआ है। ८ चिन्तनीपरिस नामक स कल चरितके प्रणेता। ९ दायभागके टीकाकार।

* किसी किसीके मतसे शाङ्कलिक सुधाने यह लिखा था।

१० नारायणगीताके रचयिता। ११ प्रकृतिविकार-कारिकासङ्कलनकारी। १२ वालार्कपद्धतिके रचयिता। १३ विवाहसौख्यवर्णनके प्रणेता। १४ वैराग्यशतक-नामक एक क्षुद्र संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। १५ शङ्कर-मन्दारसौरभके रचयिता। १६ एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने शब्दशोभा नामक एक व्याकरणकी रचना की। १७ श्राद्धविवेकके टीकाकार। १८ एक प्रसिद्ध पौरा-णिक। इन्होंने सौरपौराणिकमतसमर्थन नामक एक सुन्दर पुस्तककी रचना की। १८ स्वराङ्कुशभाष्यकार। २० एक विख्यात ज्योतिर्विद्। इनके पिताका नाम अनन्त और पितामहका नाम चिन्तामणि था। ये अनेक ग्रन्थ लिख गए हैं जिनमेंसे ये सब प्रधान हैं—गृह-प्रवेशप्रकरणटीका गोचरप्रकरणटीका, गृहकौतुक, गृह-लाघव, जैमिनिसूत्रटीका, सुबोधिनी, ज्योतिषकौमुदी, टोडरराज, ताजिक, तिथिरत्नमाला, दैवज्ञवल्लभ, प्रश्न कौमुदी, प्रश्नतन्त्र, मकरन्द, मुहूर्त्तचिन्तामणिटीका वर्ष तन्त्र, वर्षफल, विवाहप्रकरणटीका, संज्ञातन्त्र, सारणी-कोष्ठक। २१ रामभट्टके पुत्र। इन्होंने काशिकातिलक लिखा है। २२ कुण्डोद्योतके रचयिता। इनके पिताका नाम शङ्करभट्ट था। २३ महाभारत और देवी भागवतके एक विख्यात टीकाकार। दाक्षिणात्यमें इनका जन्म-स्थान था। इनके पिताका नाम रङ्गनाथ दैशिक, माताका लक्ष्मी और गुरुका नाम काशीनाथ तथा श्रीधर था। ये शैवसम्प्रदायभुक्त थे। रत्नजीके उत्साहसे ये देवी भागवतकी टीका लिखनेमें प्रवृत्त हुए थे।

नीलकण्ठक (सं० पु०) चटकपक्षी, चातक।

नीलकण्ठत्रिपाठी—एक विख्यात हिन्दी कवि। १७वीं शताब्दीमें कानपुर जिलेमें इनका जन्म हुआ था। कहते हैं, कि इनके पिता प्रतिदिन एक मन्दिरमें की देवी-मूर्त्ति का दर्शन और पूजन किया करते थे। पूजासे सन्तुष्ट हो कर देवीने एक दिन उन्हें दर्शन दिए और मनुष्यके चार मस्तक दिखलाए जो उनके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करनेको राजी हुए। यथासमय उनके चार पुत्र हुए जिनके नाम थे चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशङ्कर वा नीलकण्ठ। शेषोक्त व्यक्ति एक पुण्यात्माके आशीर्वादसे कवि हुए थे।

नीलकण्ठदीक्षित—एक विख्यात पण्डित। ये ख्यात-नामा अप्पयदीक्षितके भतीजे, आच्छादीक्षितके पौत्र और नारायण दीक्षितके पुत्र थे। इन्होंने आनन्दसागर-स्तव, नीलकण्ठविजयचम्पू, शिवतत्त्वरहस्य, चित्रमीमांसा अल-ङ्कार सतायधविवेक आदि ग्रन्थ लिखे हैं।

नीलकण्ठभट्ट—१ एक विख्यात स्मार्त्त। इन्होंने व्यवहार-मयूख नामक निबन्धकी रचना की। यह ग्रन्थ महाराष्ट्रीय आईन समझा जाता है। २ एक स्मार्त्त पण्डित। इन्होंने शुद्धिनिर्णय नामक ग्रन्थ लिखा है। अयोध्यामें इनका जन्मस्थान था। १८०२ ई०में ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए। ३ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इनके पिताका नाम रामभट्ट था। ये कौण्डिन्यगोत्रके थे और पाणिकावंश-में इनका जन्म हुआ था। ये तर्कसंग्रह दीपिकाप्रकाश बना गये हैं।

नीलकण्ठमिश्र—१ पर्यायार्णव नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ एक प्रसिद्ध हिन्दी कवि। इनका जन्म १६०० ई०में दोआबके बहुवांकी जिलान्तर्गत होलापुर ग्राममें हुआ था। ये व्रजभाषाके भी अच्छे कवि थे।

नीलकण्ठयतीन्द्र—यतीन्द्रप्रबोधिनी नामक धर्मनिबन्ध-कार।

नीलकण्ठरस (सं० पु०) रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषधभेद, एक रसौषध जिसके बनानेकी विधि इस प्रकार है—पारा, गन्धक, लोहा, विष, चीता, पद्मकाष्ठ, दारचीनी, रेणुका, वायविडंग, पिपरामूल, इलायची, नागकेशर, सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, आंवला, बहेड़ा और तांबा सम भाग ले कर दुगने पुराने गुड़में मिलावे और बाद चनेके बराबर गोली बनावें। इसके सेवन करनेसे काम, श्वास, प्रमेह, विषम-ज्वर, हिक्का, ग्रहणी, शोथ, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, मूढ़गर्भ और वातरोग आदि दूर हो जाते हैं। यह औषध ब्रह्मा-से आविष्कृत हुई है। इसके सिवा महानीलकण्ठरस नामक एक दूसरी औषध भी है।

महानीलकण्ठरसकी प्रस्तुत प्रणाली—तिमिपित्तमें भावित शोशा १ तोला, स्वर्ण १ तोला, रससिन्दुर १६ तोला, अभ्र २४ तोला इन सबको एक साथ मिला कर घृतकुमारी, ब्राह्मीशाक, सम्हालू, कचूर, मुण्डिरी, शत-मूली, गुड़च, तालमखाना, तालमूली, वृद्धदारक और

घोता इसकी मात्रा २४ । पीछे इसमें त्रिफला, त्रिकटु, सोंठ, चीता, इलायची, नागर जातिफल प्रत्येक का चूर्ण ८ तोला मिला कर २ रत्ती परिमाणकी गोली बनावे। इसके सेवन करनेसे वातरोग, ८० प्रकारके पित्तरोग और अन्य सभी रोग प्रशमित हो जाते हैं। इससे यथेष्ट आहार ग्रहण, कन्दर्प सदृशरूप, मेधावी, बलवान् प्राज्ञ, भीमके समान विक्रम और मेधावान् होता है। इसके सेवन करनेसे वन्ध्या नारीके भी सन्तान होती है। जबसे इस औषधका सेवन किया जाय तबसे २१ दिन तक मैथुनकर्म निषिद्ध है।

नीलकण्ठलिंगायत्—एक श्रेणीका जाति। बीजापुर जिले के अनेक नगरों और ग्रामोंमें इनका वास है। ये लोग दो भागोंमें विभक्त हैं, लिंगायत और पढ़सल लिंगायत। इन दो सम्प्रदायोंमें आपसमें खानपान और विवाहशादी नहीं चलती। लिंगोत सम्प्रदायको प्रथम सम्प्रदाय पतित समझता है। दूसरा उनके साथ न खाते पीते तक भी नहीं। लिंगायतोंकी ६ उपाधियां हैं। एक उपाधिवाले की पुत्रके साथ विवाह नहीं होता। घर में बैठ कर चरखा चलाते चलाते ये लोग निर्धन और पापकुकर्म हो गये हैं। इनका कद न उतना ऊंचा है और न नाटा। इनकी आंख बहुत नीचेमें और नाक चिपटी तथा लम्बी होती है। स्त्रियां घरके बाहर जाती और सभी काम काज करती हैं। ये पुरुषकी अपेक्षा बलवान् दीख पड़ती हैं। अन्यान्य देशीय लिंगायतोंकी नाईं ये लोग भी आपसमें कन्नड़ी भाषा बोलते हैं। ये लोग मांस मछली तो नहीं खाते किन्तु लहसुन प्याज खाते हैं।

पुरुष प्रतिदिन और स्त्रियां सोमवार और शुक्रवारको स्नान करती हैं। ये लोग तमाकू पीने और सुरती खानेके सिवा दूसरे किसी मादक द्रव्यका व्यवहार नहीं करते।

ये लोग दाढ़ी नहीं रखते और समूचा सिर मुड़ा लेते हैं। तथा महाराष्ट्रीका पहनावा पहनते हैं।

लिंगायत शब्दमें विशेष विवरण देखो।

नीलकण्ठशिंबा (सं॰ स्त्री॰) मधुरिका।

नीलकण्ठागमाचार्य—आगम मीमांसाभाष्यके रचयिता।

नीलकण्ठाक्ष (सं॰ क्ली॰) नीलकण्ठ महादेवस्तत्प्रियः अक्षो यस्य। १ रुद्राक्ष। नीलकण्ठ चक्षुरिव पक्षिविशेष अक्षिणी यस्य, समासे षच् समासान्तः। (त्रि॰) २ चञ्चलनयन अक्षियुक्त, जिसकी आंखें या नीलकण्ठ-की आंखें हों।

नीलकन्द (सं॰ पु॰) नीलः कन्दः मूलं यस्य। महिष कन्दभेद।

नीलकपित्थ (सं॰ पु॰) १ महाराजचूत, सुन्दर आम। २ नीलवर्णका कपित्थ।

नीलकमल (सं॰ क्ली॰) नीलं कमलं पद्मम्। नीलपद्म। पर्याय—उत्पल, नीलपङ्कज, नीलपद्म नीलाब्ज। गुण—शीतल, स्वादु सुगन्धि, पित्तनाशक रोचिकर मेह रक्त ध्न, देहदार्ढ्यकर और केशरंजक।

नीलकर (सं॰ पु॰) वह जो नील प्रस्तुत करता हो। नील करनेके व्यवसायके विषयमें ही एक बात पहले ही नील शब्दमें कही जा चुकी है। नील देखो। यहां इस विषयका कुछ विस्तारित विवरण देना आवश्यक है। गोरे गोरे नीलकरोंको ही यहां कहते थे। नीलकर साहबोंने नील उपजानेके लिए कुछ जमीन आसामीके साथ बना दी और कुछ खास करते रही जो जमीन वे खुदसे उपजाते थे उसमें उन्होंने बहुतसे आदमी नियुक्त किये। जो जमीन रैयतके अधीन थी, उसमें वे कृषकको पेशगी रुपये देते और उनसे एक अङ्गीकार पत्र इस प्रकार लिखा लेते थे, "इतनी जमीनमें नील उत्पन्न कर दूंगा, इसलिए इतने रुपये पेशगी लेता हूं। यदि दुरभिसन्धि-पूर्वक अन्यथा करूं तो आपका जो नुकसान होगा, उसे मैं उसकी क्षतिपूरा करनेमें बाध्य हूं।" एक वर्षसे ले कर दस वर्ष तक इस अङ्गीकार-पालनका नियम था। कृषकको प्रति बीघे दो रुपये दादनीमें दिये जाते थे। कृषकको जो जमीन उर्वरा और तथा अच्छी तरह जोती जाती थी उसी जमीनमें साहबके नौकर नील उपजानेके लिए चिह्न दे देते थे।

जितनी दादनी आसामीके अङ्गीकारसे लिखी जाती थी, नीलकरगण उसे बिलकुल चुका नहीं देते थे। जो कुछ देते थे, उसका भी कुछ अंश कोठीके नौकर हड़प कर जाते थे। १ आसर पचासिंक मनुष्य ही नीलकर

साहबोंके काममें नियुक्त होते थे वे मालिकके प्रियपात्र होनेके लिए उनके अभीष्ट साधनमें एक भो गर्हित कर्म-को उठा न रखते थे। कृषकगण अपनी इच्छाके अनुसार कोई फसल उपजा नहीं सकते थे। जब अन्य फसल उपजानेमें विशेष लाभ होनेकी सम्भावना रहती, तब बाध्य हो कर उन्हें बोना पड़ता था। जिस वर्ष नीलकी पत्तियां अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होती थीं, उस वर्ष उन्हें समुचित मूल्य भी नहीं मिलता था। सुतरां वे कभी भी एक बारकी दी हुई दादनीसे विमुक्त नहीं हो सकते थे। एक बारको दादनी लेने पर वह तीन चार पीढ़ी तक परिशोध नहीं हो सकती थी, इस महाजालमें नहीं फसनेके लिए यदि कोई चेष्टा भी करता था, तो उसकी जाति, मान, धन और प्राण सभी खो जानेकी सम्भावना हो जाती थी। बड़े बड़े ग्रामोंके सभी गृहस्थोंको यह दादनी लेनी ही पड़ती थी। जिनके हल और बैल नहीं रहते थे, उन्हें भी दूसरे लोगोंसे भूमि आबाद करा कर नील उत्पन्न करना पड़ता था। इसके अलावा नीलकरकी खास जमीनोंमें जो नील उपजता था उसकी बहुत कुछ काम भी इन बेचारे भोले भाले गृहस्थोंको कम तनखाहमें करना पड़ता था। फिर कोठीके व्यवहारके लिये उन्हें बांस पुआल आदि मुफ्तमें देने पड़ते थे।

सारे भारतवर्षमें नवद्वीप और यशोर जिलोंमें नीलकरका अत्याचार अपेक्षाकृत ज्यादा था। नीलकर साहबोंके दीवान, नायब, गुमास्ता, ताकोदगीर आदि भृत्यगण केवल मालिककी अभीष्ट-सिद्धिके लिए नहीं, बल्कि अपना मतलब भी निकालनेके लिये कृषकोंका सर्वस्व हरण कर लेते थे। जो सब नीलके पौधे कोठीमें लाए जाते थे, उन्हें कर्मचारिगण बिना कुछ लिये अच्छी तरह मापते नहीं थे। नीलपत्तियोंका हिसाब करते समय पुनः हाथ गरम किए बिना यथार्थ हिसाब नहीं करते थे। बेचारे कृषक जब तक अपने खेतसे अथवा गृहजात किसी द्रव्यसे उनका पेट भर नहीं देते थे, तब तक उनकी यन्त्रणा और क्षतिका पारावार नहीं। नीलकर साहब ये सब विषय जान कर भी नहीं जानते और सुन कर भी नहीं सुनते थे। नरहत्या, गोहत्या, गृहदाह इत्यादि जिस किसी कार्यका प्रयोजन होता था उसे वे असङ्कुचित चित्तसे कर डालते थे।

पूर्व समयमें नीलकर साहबगण प्रजाके प्रति जो अत्याचार करते थे वह किसोसे छिपा नहीं है। दीनबन्धु मित्रके नीलदर्पणमें, लङ साहबको वक्तृतामें और हरिश्चन्द्र मुखोपाध्यायके व्याख्यानोंमें उसका प्रकृष्ट चित्र प्रतिफलित है। १८३२ ई०की १०वीं मईको यशोर जिलेके नीलकर साहबोंने हस्ताक्षर करके गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेण्टिङ्क बहादुरके निकट एक आवेदन पत्र भेजा। उस पत्रके पढ़नेसे उनके अत्याचारकी कथा आप ही प्रकट हो जाती है। १८३० ई०में गवर्मेण्टने जो आईन निकाला, उसका प्रभाव खर्व करना ही इस आवेदनका उद्देश्य था। इसीसे उनकी दरख्वास्तमें एक जगह लिख दिया गया कि, 'इस आईनके द्वारा रैयतका विशेष मङ्गल हुआ है। नीलकर साहब प्रजाके अन्याय कार्योंमें किसी प्रकार प्रतिकारका उपाय न देख बलपूर्वक उन्हें दमन करते थे। इस आईन द्वारा उस नृशंस शासनसे प्रजा जो हमेशाके लिये विमुक्त हुई, इसमें सन्देह नहीं।' पीछे उन्होंने यह भी लिखा है कि, 'इस आईनके बलसे इस देशको कोठीके सत्त्वाधिकारी अथवा स्थानीय दुष्ट जमींदार, तालुकदार वा मण्डल और जनसाधारणकी उत्तेजनासे उत्तेजित हो कर कृषक स्वभावतः ही अबाध्यताका कर्म और दंगा फसाद करनेमें प्रवृत्त हुए हैं। फिर १८३० ई०में ५वें आईनकी ५वीं धाराके अनुसार यशोर जिलेकी दीवानी अदालतमें जितने मुकदमें दायर होते हैं, उनसे साफ साफ जाना जाता है, कि यशोर जिलेमें नीलकी खेतीका यथार्थरूपमें निर्वाह होता है। किन्तु जबसे ५वां आईन जारी हो गया है, तबसे प्रजा एकबारगी मुक्त होनेके लिये दरख्वास्त करती है।' इसके बाद हो फिर उन्होंने लिखा है, '१८३० ई०में कोई मुकदमा नहीं हुआ। परवर्ती १८३१ सालमें ५८,—३२ सालमें तेंतीस और—३३ ई०के जनवरी फरवरी मासके भीतर तेईस मुकदमें दायर हुए थे।' इससे सहजमें अनुमान किया जाता है, कि धीरे धीरे इस प्रकार अत्याचारकी संख्या बढ़ती ही

अभी आ रहते थे। अदालतमें साबित नहीं होनेसे ही अत्याचार असम्भव तब नहीं पहुँचता था यह बात ठीक नहीं है। अत्यन्त कष्टमें पीड़ित हो कर भी दरिद्र प्रजा विचारपतिके आश्रय लेनेको बाध्य होते थे।

१८२८ ई॰में जब प्रजाने पहले पहल आवेदनपत्र पेश किया, तब लार्ड वेण्टिङ्क बहादुरने इसकी याथार्थताका निरूपण करनेके लिये उनको बुलाया। पीछे आईन पास होनेके बाद उन्होंने वर्त्तमान आवेदनको आवश्यकताका विचार कर उत्तर दिया था कि नीलका मूल्य कम हो जानेसे गरीबके मजदूरोंको कष्ट हो कर हुआ है। नील बनानेमें बहुत रुपये खर्च होते हैं। सुतरां हम लोग पहलेकी तरह अब प्रजा (प्रजा)का उपकार नहीं कर सकते तथा उसके उनके जमीन को रुपये कर्ज दिए हैं उन्हें वसूल करनेके लिये दावा किया जाता है।' इनको वसूल करनेके लिये जितने प्रकारके अति ही अत्याचार किये गए थे, वह वर्णनातीत है तथा कितने लोगोंके घरबार भस्मीभूत हुए थे, उनको शुमार नहीं।

दादनप्रथाकी नीलकरके भस्मीभूत करनेके लिये अनेक प्रकारके आईन विधिबद्ध होने लगे। किन्तु दादन एडवान्सिंग व अदालतके लिये आज कोई विधि विधिबद्ध न हुई। गवर्मेण्टने निषेध कर दिया था, कि यूरोपवासी इस देशमें भूसम्पत्ति नहीं कर सकते, तो भी वे प्रजाओंको कब्जेमें लानेके लिये जमींदारोंसे अनेक ग्राम देशीय व्यक्तियोंके नाम पर इजारा लेते हैं। देशीय जमींदार जब उनकी कामना पूरा न करते थे तब घोर विवाद उपस्थित हो जाता था। जो दुर्बल जमींदार थे, उन्हें तो वे आयत्त कर डालते थे। समय समय पर साहबोंके कर्मचारिगण अदालतसे राजदण्ड भी पाते थे तो भी तत्कालीन दण्डविधि आईनके अनुसार अंग्रेजोंके जिला अदालतके विचाराधीन नहीं रहनेके कारण उन्हें कोई शारीरिक दण्ड नहीं मिलता था। इस कारण वे अपने अपनेकी सिद्धि लिये जमींदार तथा प्रजाको व्यतिव्यस्त करनेमें बाज नहीं आते थे। इस प्रकार कितने प्रजाओंने तो निपीड़ित हो कर अपने बालसाल छोड़ दिये और जो कुछ बच रही, वे उनके अधीनता हो कर रहने लगी।

१८५७ ई॰में सिपाहीविद्रोहके समय जब बहुतसे नीलकरोंको गवर्मेण्टने बागियोंके दमनार्थ मजिष्ट्रेटकी क्षमता दिये, तब प्रजाको उनका जोर और भी बढ़ गया।

दुर्भाग्य प्रजाके कष्टनिवारणके लिये टैम्पल एवं माइवस मिशनरियोंने चेष्टा करने लगी किन्तु कुछ भी उसका फलप्रकाशन न हुआ। नीलकर साहब तथा यूरोपीय राजपुरुष ये दोनों एक जातिके थे, एक धर्मके थे तथा आपसमें आहार-व्यवहार आदान-प्रदान चलता था, इस कारण यूरोपीय राजपुरुष उन्हें इस काममें मदद पहुँचाते रहते थे। जब तब देश भर इस प्रदेशकी जनताको अच्छी तरह मालूम हो गया कि नील आन्दोलनमें सब अंग्रेजका विचित्र कार्य है। अत यह निश्चय है कि प्रजा पर जुलुमका पहाड़ ही क्यों न टूट पड़े, तो भी गवर्मेण्ट प्रतिकूलके सिवा अनुकूल नहीं हो सकती। कालक्रमसे अनेक मनुष्य सुशिक्षित हुए और ब्रिटिशके नाना विभागोंमें इस देशके सुशिक्षित डिपटी-कलक्टर और पुलिसके कार्यमें शिक्षित तथा धर्मभीरु हाकिम नियुक्त होने लगे। वे लोग मजिस्ट्रेटका अभिप्राय प्रजाको समझाने लगे जिससे उनके हृदयके अमूलक संस्कार धीरे धीरे दूर होने लगा। इस समय बारासात जिलेके तत्कालीन मजिष्ट्रेट आश्लेइडेन साहब इडन साहब थे। जहाँ जब प्रजाओं और नील कोठी विवाद खड़ा हुआ तब वह मजिष्ट्रेटने एक परवाना निकाला जिसमें लिखा था कि, 'जमीनमें अपना होना प्रजाकी इच्छा पर निर्भर है। इसमें यदि कोई विघ्न डालेगा, तो वह राजदण्डसे दण्डित होगा।' प्रजाके हृदयके चित्त दिवसे आशाका जो अङ्कुर जगा था, वह इस परवानेके द्वारा बढ़ गया। १८५८ ई॰में भारतके प्रजाओंकी एक सभा हुई जिसमें यह स्थिर हुआ कि नीलकी खेती बिलकुल बन्द हो जाय। फलत: बहुत जल्द ही नीलकर और प्रजामें पुन: विवाद उपस्थित हुआ। उस समय बङ्गालके शासनकर्त्ता महोदय थे जे॰ पि॰ ग्राण्ट साहब बहादुर व लेफ्टेनेण्ट गवर्नर थे। उन्होंने नीलकरका यह विवाद नीलकरको प्रचलित प्रथाओंका तत्त्वानुसन्धान तथा इस कार्यको किसी निर्दिष्टसभासे निर्णय करनेके लिये १८६० ई॰का ११वां विधि प्रकाशित

को। प्रथमोक्त विषयनिष्पादनके लिये जितने मजिष्ट्रेट थे सब मिल कर यत्न करने लगे और शेषोक्त दोनों कार्य-के सम्पादनार्थ पांच कमिश्नर* नियुक्त हुए। कमिश्नरोंने नीलकार्य-प्रणालीमें जितने दोष थे सब लिख कर गव-र्मेण्टके पास भेज दिया। इस पर नीलकर साहब, जिन्हें अब पूर्व सी क्षमता न रही, प्रजाके विरुद्ध तरह तरहके मुकदमे दायर करने लगे। इन सब मुकदमोंमें यद्यपि अनेक कृषकोंका सब नाश हो गया, तो भी उनकी प्रतिज्ञा अटल हो रही। अब कोई भी नीलकी खेती करनेको अग्रसर न हुआ। थोड़े ही दिनोंमें नीलकरका सौभाग्यसूर्य अस्त हो गया। उनकी जितनी कोठियां और भूसम्पत्ति थी, सब बेच डाली गई। अब जो इने-गिने नीलकर साहब रह गये हैं, उन्हें पूर्व सा प्रभाव नहीं है।

नीलकलम्बी (सं॰ स्त्री॰) स्वनामख्यात लताविशेष, कालदाना।

नीलकाम्रक (सं॰ पु॰) महाराजचूत फल, सुन्दर आम।

नीलकाचोद्भव (सं॰ क्ली॰) काचलवण।

नीलकान्त—स्वनामख्यात पक्षिविशेष, एक पहाड़ी चिड़िया जो हिमालयके अञ्चलमें होती है। मसूरीमें इसे नीलकान्त और नैनीतालमें दिग्दल कहते हैं। इसका माथा, कण्ठके नीचेका भाग और छाती काली होती है। सिर पर कुछ सफेदी भी और पूंछ नीली होती है। कण्ठमें भी कुछ नीलेपनकी झलक रहती है। चोंच और दोनों पैर लाल होते हैं। इसकी लम्बाई २८ इञ्च, पूंछकी १८ इञ्च और डैनेकी ८ इञ्च होती है।

हिमालय पर्वतकी शतद्रु-उपत्यकासे ले कर नेपाल तक, आसामके नागापहाड़, श्याम, ब्रह्मदेश, आराकान आसी और तेनासेरिम तथा पूर्ववङ्गके पार्वत्य प्रदेशोंमें इस जातिके अनेक पक्षी देखे जाते हैं।

ये प्रायः तीनसे छः तक एक साथ घूमते हैं। मार्चसे ले कर जुलाई महीनेके अन्दर मादा वृक्ष पर एक साथ तीनसे पांच अण्डे पारती हैं।

* W. S Setonkar, President, R. Temple, W. F. Fergusou, Rev. J. Sale, Baboo Chaudra Nath Chatterjee.

कोई कोई इसी पक्षीको नीलकण्ठ कहते हैं। लेकिन नीलकण्ठ और नीलकान्त दोनों स्वतन्त्र पक्षी हैं। २ विष्णु। ३ मणिभेद, नीलम।

नीलकान्तशाह—मध्यभारतके नागपुर विभागस्थ चांदपुर जिलेके गोंड राजाओंके शेष राजा। ये अत्यन्त निठुर और विश्वासघातक थे। इसीसे सभी प्रजा इन्हें बुरी निगाहसे देखती थी। १७५६ ई॰में रघुजी भोंसलाने जब चांदा पर आक्रमण किया, तब किसीने भी नील-कान्तकी तरफसे अस्त्रधारण न किया। सुतरां विना रक्तपातके ही रघुजी इस जिलेके अधीश्वर हो गए। पीछे उन्होंने नीलकान्तशाहको कैद कर समस्त स्थान अपने अधिकारमें कर लिए।

नीलकायिक (सं॰ त्रि॰) १ नीलशरीरविशिष्ट, जिसका शरीर नीला हो। (पु॰) २ बौद्धदेवताभेद।

नीलकुन्तला (सं॰ स्त्री॰) नीला नीलवर्णाः कुन्तला यस्याः। पार्वतीकी एक सखिका नाम।

नीलकुरण्टक (सं॰ पु॰) नीलझिण्टी, नीली कटसरैया।

नीलकुसुमा (सं॰ स्त्री॰) नीलवर्ण झिण्टी, नीली कट-सरैया।

नीलकेशी (सं॰ स्त्री॰) नीलिकावृक्ष, नीलका पौधा।

नीलक्रान्ता (सं॰ स्त्री॰) नीलेन नीलवर्णेन क्रान्ता। विष्णुक्रान्ता, कृष्ण अपराजिता।

नीलक्रौञ्च (सं॰ पु॰) नीलः क्रौञ्चः। नीलबक, काला बगला, वह बगला जिसका पर कुछ कालापन लिए होता है। पर्याय—नीलाङ्ग, दीर्घग्रीव, अतिजागर।

नीलख्यात—नेपालके मध्यवर्त्ती एक ह्रद। इसका दूसरा नाम गोसाईंकुण्ड भी है। कहते हैं, कि देवगण जब अमृतकी आशासे समुद्र मथने लगे, तब पहले पहल विषकी उत्पत्ति हुई। उस विषको शिवजी पी गये और थोड़ी देर बाद ही वे यन्त्रणासे अचेत हो रहे। पीछे दुर्गाके मन्त्रबलसे वे होशमें तो आ गए, पर यन्त्रणा पूर्व-सी बनी रही। अनन्तर ज्वालाके निवारणके लिए निभृत तुषाराच्छादित स्थानमें उन्होंने त्रिशूलसे आघात किया जिससे तीन स्रोत उसी समय निकल आए। इन तीनों स्रोतोंके मिलनेसे एक ह्रद बन गया। इसी ह्रदका नाम नीलख्यात है। स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें इस

नीलगङ्गात या नीलगङ्गाके माहात्म्यका वर्णन है।

नीलगङ्गा (स • स्त्री•) नर्मदा, एक नदीका नाम।

नीलगञ्ज—१ पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत धर्मपुर और हवेली परगनेके मध्यस्थ एक ग्राम। यहां नीलको खेती होती है।

२ यशोरके अन्तर्गत एक ग्राम जो बांकड़ासे एक कोस दूर भैरवनदीके किनारे अवस्थित है।

नीलगर्भ (स • पु•) नीलो अश्विका। नीलवर्ण अश्वि।

नीलगर्भ (स • त्रि•) नील गर्भ यस्य। नीलगर्भा, जिसका गर्भस्थ भाग नीला हो।

नीलगाय (हि • स्त्री•) मृगजातीय जन्तुविशेष, नीला पन लिए भूरे रंगका एक बड़ा हिरन जो गायके बराबर होता है। इस जीवके हिन्दूशास्त्रमें उपोत्सर्ग-तत्त्वमें नीलवृष नामक किसी जन्तुका उत्सर्ग होता था और उसके अङ्ग शास्त्रोंमें बतलाए गए हैं। नीलवृष कहनेसे सामान्यतः नीलवर्णके सांड़का ही बोध होता है। किन्तु उक्त गुणयुक्त सांड़ अकसर देखनेमें नहीं आते, इस कारण आधुनिक स्मार्तिकारगण नीलवृष शब्द-से किसी प्रकृत जन्तुका नाम स्वीकार नहीं करते। स्मृति-तत्त्वमें लिखा है,—

"लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डरः।

श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलवृष उच्यते॥"

रक्तवर्ण शरीर, मुख और पुच्छ पाण्डुर, खुर और शृङ्ग श्वेतवर्ण ऐसे लक्षणाक्रान्त जीवका नाम नीलवृष है। उक्त लक्षणसे नीलवृषका बोध यह नीला होता है, ऐसा अनुमान नहीं किया जाता। नीलगाय नामक प्रसिद्ध मृगको नीलवृष भी कहते हैं जन्तु है वह देखनेमें लोहिताभ नीलवर्ण सा होता है और कुछ अंश इस जातिसे मिलता जुलता है। अतः यही नीलगाय पूर्वोक्त लक्षणाक्रान्त वर्णित नीलवृष है, इसमें सन्देह नहीं।

नीलगाय कहनेसे साधारणतः स्त्रीलिङ्गमें गवयोंका बोध होता है। श्राद्धादिमें उत्सर्गके लिये उसका प्रयो-जन होता है, गायका नहीं। इस कारण शास्त्रकारोंने नीलगायका उल्लेख न कर नीलवृषका ही उल्लेख किया है।

यह जन्तु देखनेमें हय सा और मृग जातिका होता है, किन्तु आकार आदिमें बहुत अन्तर पड़ता है। पुरुष जातीय नीलगायकी ऊंचाई ४ से ५ फुट और लम्बाई ६।७ फुट होती है, लेकिन स्त्रीजाति अपेक्षाकृत कुछ कम। दोनोंका वर्ण घोर धूसरसे मैला, पर नीचे गर्दन और पेट का अग्रभाग कुछ लालवर्ण युक्त होता है। मुख और मस्तक मृगके जैसा लेकिन बहुत कुछ घोड़ेसे सुरत भी मिलता जुलता है। इसके कान गायके से और दोनों सींग टेढ़े और ७ इंचके लगभग लम्बे होते हैं। नीलगायकी गर्दनमें अनुलोमविशिष्ट एक काले बालों का दाग है। इसके दोनों कान काले मध्य टेढ़ा और चारों ओर छूटा हुआ तथा दृढ़ होता है। छोटे छोटे काले बालों का केसर (अयाल) भी होता है। गलेके नीचे बड़े बालोंका एक छोटा गुच्छा सा होता है। देखनेमें यह जन्तु गाय और हिरन दोनोंसे मिलता जान पड़ता है। अश्वकी अपेक्षा इसके पैर कुछ ऊंचा, अथवा बाल गर्दनके जैसा और पुच्छ भी वैसा ही होता है। इसका ऊपरी भाग कुछ काले बालोंसे ढका रहता है। पैरके आगे काले और घने होते हैं। उदर और अधदेश प्रायः सफेद होता है।

यह जन्तु जङ्गलोंमें दल बांध कर चलता है। कभी चार, पांच या बीस एक साथ मिल कर इधर उधर भ्रमण करते हैं। भारतवर्षके मध्यप्रदेशमें महीसुर तक, पञ्जाब राज्य और राजपूतानेसे ले कर हिमालयपर्वतके नीचेकी पादभूमि तकके सभी स्थानोंमें इस प्रकारके जन्तु देखनेमें आते हैं। ये घने जङ्गलमें रह नहीं सकते, छोटे छोटे गुल्मविशिष्ट अथवा तृणहीन मैदानमें विचरण करते हैं। ये अत्यन्त सतर्क, द्रुतगामी और बलिष्ठ होते हैं। इनकी चाल इतनी तेज होती है, कि द्रुतगामी घोड़े पर सवार हो बहुत देर तक इनका पीछा करने पर भी बहुधा ये पकड़े नहीं जा सकते। नीलगाय पाली जा सकती है, किन्तु कभी कभी यह पालकको भी सींगसे आक्रमण करती है। आक्रमणके पहले यह सामनेके दोनों घुटनोंको जमीनमें टेक कर एक टकसे देखती और पीछे सामनेके जन्तु पर खूब जोरसे झपटती है।

यह घास छोटे छोटे पेड़की पत्तियां, चना और अनाजादि खा कर अपना पेट भरती है। यह ऊंटकी तरह चारा

पैर मोड़ कर विश्राम करती है, गायको तरह पार्श्व की ओर भार रख कर विश्राम नहीं करती। शिकारी चमड़े आदिके लिए इसका शिकार भी करते हैं। इसका चमड़ा बहुत मजबूत और पतला होता है। गलेके चमड़े की ढालें बनती हैं। पालित अवस्थामें यह साधारण गो जातिकी तरह गर्भवती होती और एक ही समयमें दो शावक जनती है।

ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है, कि ऋपाने जब अपने पिता प्रजापतिके भयसे रक्तवर्ण रोहित मृगीका रूप धारण किया, तब प्रजापतिने भयानक ऋष्यरूपमें उनका पीछा किया था। देवगण जब इस अत्याचारको रोक न सके, तब अपने अपने विराट् गुणको समष्टिसे उन्होंने रुद्रमूर्त्ति की सृष्टि की। रुद्रदेवने ऋष्यरूपी प्रजापतिको बाणसे बेध कर डाला। ऋष्यने काल (मृगशिरा पुरुष) रूप-में आकाशमें आश्रय लिया।

वह ऋष्य किस जातिका मृग था, उसका अभी निर्णय करना बहुत कठिन है। पूर्वकालीन मृगविशेष-का नाम वर्त्तमान समस्त मृगजातिके पर्यायरूपमें व्यवहृत हुआ है। ऐतरेयब्राह्मणभाष्यमें सायणाचार्यने ऋष्य शब्दसे मृगविशेषका नाम बतलाया है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें 'गोमृग' शब्दसे गो और मृगके सङ्कर भयानक वन्यपशुविशेषका अर्थ लगाया है। उक्त दो मृग ही नीलगाय प्रतीत होते हैं। ऐतरेयब्राह्मणमें प्रजापतिके आश्रययोग्य मृगरूपको ही अति बलिष्ठ, उग्र स्वभावयुक्त तथा द्रुतगामी नीलगाय बतलाया है। शब्दकल्पद्रुममें भी ऋष्यको नीलाङ्ग कह कर उल्लेख किया है।

भावप्रकाशमें लिखा है—

"ऋष्यो नीलाङ्गकश्चापि गवयो रोझ इत्यपि।
गवयो मधुरोवल्य स्निग्धोष्णः कफपित्तलः॥"

इससे यह भी जाना जाता है, कि ऋष्यका दूसरा नाम नीलाङ्ग भी था। अतः यह साफ साफ प्रमाणित होता है कि ऋष्य जातिका हरिण नीलगायके सिवा और दूसरा कुछ भी नहीं है। इस नीलवृष-जातिका हरिण बहुत प्राचीनकालमें इस लोगोंके देशमें प्रचलित था, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। वैद्यकके अनुसार नीलगायका मांस मधुर, रस बलकारक, उष्णवीर्य, स्निग्ध तथा कफ और पित्तवर्द्धक होता है।

नीलगारे—जातिविशेष। नीलरंग बनाना ही इनका प्रधान व्यवसाय है। बीजापुर जिलेके नाना स्थानोंमें इस जाति-के लोग रहते हैं। हन्दि और बीजापुरमें इनका प्रधान अड्डा है। साधारणतः शहर और बड़े बड़े ग्रामोंमें ही ये लोग देखनेमें आते हैं। किन्तु कर्णाटकके दक्षिणस्थ जिन जिन स्थानोंमें कपड़े बुननेकी प्रथा अधिक प्रच-लित है, उन्हीं सब स्थानोंमें ये लोग विशेषतः रहते हैं। इनका कुलगत कोई नाम नहीं है। स्थानके नामानुसार ये लोग अपना नाम रख लेते हैं। इनमें कोई सम्प्रदाय वा विभाग नहीं है, किन्तु शाखाएं अनेक हैं जिनमेंसे चित्रकूर और कदरनहल प्रधान है। नीलगारेगण देखने-में सुन्दर, मंझोले कदके, बलिष्ठ और बुद्धिमान होते हैं। स्त्रियां पुरुषोंकी अपेक्षा पतली और सुखी होती हैं। इनकी मातृभाषा कनाड़ी है। साधारणतः इस जातिके लोग मितभोजी, लेकिन रन्धनकार्यमें नितान्त अपटु होते हैं। इनमें से कितने ऐसे हैं जो लिङ्गायतों-की तरह मछली मांस नहीं खाते और न शराब ही पीते हैं। किन्तु लिङ्गायतोंके साथ इनके चरित्र और पोशाक-के विषयमें कोई विशेष प्रभेद देखनेमें नहीं आता। ये लोग सूती कपड़ोंको काले रंगसे रंगाते और बहुत कम खेती-बारी करते हैं। नील, चूना, केलेके पेड़की राख और तरवड़का बीज इन सबको मिला कर उक्त काला रंग बनाया जाता है। विदेशीय द्रव्योंकी आम-दनी हो जानेसे इनके व्यवसायमें बहुत धक्का पहुंचा है। नीलगारोंमेंसे अधिकांश ऋणजालमें फंसे हैं। विवाह और इसी प्रकारकी विशेष घटनामें ये लोग अकसर कर्ज ले कर ही काम चलाते हैं। शुद्ध लिङ्गायतसे ये नीच समझे जाते हैं। किन्तु उनके साथ धर्मशालामें एक पंक्तिमें बैठ कर खाने-पीनेमें कोई निषेध नहीं है। ये लोग लिङ्गायतकी एक शाखामें हैं और जङ्गमका विशेष आदर करते हैं। जङ्गम इनके गुरु होते और वे ही सब काम काज करते हैं। कोलापुरके अन्तर्गत सिदगेरि नामक स्थानमें जङ्गमका वास है। इनकी समाजनीति और धर्मनीति लिङ्गायतोंसे कुछ पृथक् है। ये लोग अपने लड़कोंको पढ़ाते लिखाते नहीं हैं तथा जातीय व्यवसाय छोड़ कर और कोई व्यवसाय नहीं करते।

कुछ मिला कर इनकी वर्त्तमान अवस्था शोचनीय है।

नीलगिरि—मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत एक जिलेको और जिला। यह अक्षा० ११ १२ से ११ ३७ उ० और देशा० ७६ १४ से ७७ पूर्व के मध्य अवस्थित है। यह जिला पहले बहुत छोटा था। १८०९ ई०में दक्षिण कुर्ग के वैनाद का अङ्गरेजोंने विभाग इस जिलेमें मिलाया गया। पीछे १८६० ई०में मलवारके अन्तर्गत वैनाद तालुकका नम्मनाड़, चेरामकोड़ और मननाटका कोई कोई अंश इस जिलेके अन्तर्भुक्त हो जानेसे इस जिलेका आयतन पहलेसे बहुत बढ़ गया है। जिलेका विस्तार उत्तर दक्षिणमें ३६ मील और पूर्व-पश्चिममें ४८ मील है। क्षेत्रफल ९५८ वर्गमील है। इस जिलेके उत्तर महिसुरराज्य, पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें कोयम्बतोर जिला, दक्षिणमें मलवार और कोयम्बतोरका कुछ अंश तथा पश्चिममें मलवार है। राजकीय प्रधान प्रधान कार्य्य उतकामण्डमें रहते हैं।

नीलगिरि (पहाड़) पूर्व समयमें कोयम्बतोर और मलवारके अन्तर्गत था। पीछे १८६८ ई०में नीलगिरि प्रदेश ले कर एक स्वतन्त्र जिला कायम हुआ। एक कमिश्नरकी नियुक्ति हुई, वे ही खजाना वसूल करते और फौज तथा दीवानी विचारका काम भी चलाते थे।

कमिश्नर १८८२ ई०में कलक्टर, जिला-मजिष्ट्रेट और एजेन्ट दोनोंके उच्च पद पर नियुक्त हुए हैं। उनके सहकारी कमिश्नर प्रधान सहकारी कलक्टर और मजिष्ट्रेटका काम करते हैं। इनके अलावा एक सब-जज और अन्यान्य डिपटी कलक्टर नियुक्त हुए हैं। उनका सबमें एक डिपटी तहसीलदार है। वर्त्तमान समयमें उतकामण्डमें समस्त विचार विभाग कायम हुए हैं।

ग्रीष्मकालको इस उतकामण्डमें मन्द्राजप्रदेशकी राजधानी उठ कर आती है। नीलगिरि जिलेमें पांच उपविभाग हैं, पेरनाद तोड़ानाद मेकनाद कुन्दन-नाद और दक्षिण पूर्व वैनाद। नीलगिरि प्रदेशकी आदिम अवस्था दुर्ज्ञेय है। केवल इतना ही पता लगता है, कि हैदरअलीसे १०० वर्ष पहले तोड़ानाद, मेकनाद और पेरङ्गनाद नामक स्थानमें तीन सामन्त रहते थे। मलावार कोटा, हुलिकलदुर्ग और कोटागिरिमें उनका सुदृढ़ दुर्ग था। सुतरां यह गिरि पहले कोङ्गदेश अर्थात् पूर्व चेरदेशके अन्तर्गत था और तदनन्तर १०वीं शताब्दीमें महिसुरके अन्तर्गत हुआ है, ऐसा अनुमान निःसन्देह नहीं है। फिर भी अनुमान किया जाता है कि हैदरअली पूर्वोक्त दो दुर्ग अधिकार करके अधिवासियोंसे यथेष्ट कर वसूल करते थे। टीपू सुलतानने भी कोटागिरि दुर्ग पर अधिकार जमाया था। १८२१ ई०में मि० सुलिवनने इस स्थान पर प्रथम अङ्गरेजी कोठी खोला।

१८०९ ई०के पहले नीलगिरि जिला जब जिलेके अन्तर्भुक्त न था तब इसका आयतन बहुत कम था। इसके चारों ओर दो गिरिश्रेणियोंके मध्यवर्त्ती अधित्यका घेरे हुए जिलेको नीलाचल रखा था। इस अधित्यका प्रदेशमें छोटे छोटे गिरिमाला नीलवर्ण जलसे मण्डित है। जगह जगह छोटे छोटे निर्झर कल कल शब्द करते हुए बह रहे हैं। यहां छोटे छोटे पेड़ समान रूपसे एक सीधमें खड़े हो कर पथिकोंके मनको आकृष्ट कर रहे हैं। यह गिरि साधारणतः ६००० फुट ऊंचा है। वैनाद और महिसुरके मध्यवर्त्ती भाग भूमिसे मोयरनदी निकली है। यहांसे पश्चिमघाटके दक्षिण-पश्चिम कोणमें कुण्डपहाड़ है जिसकी एक शाखा दक्षिणकी ओर बहुत दूर तक चली गई है।

प्रधान गिरिशृङ्ग—दोदाबेत्ता ८७६० फुट ऊंचा, कुलियाकोड़ ८५०२ फुट, बेदरबेत्ता ८४८८ फुट, मकुर्ति ८४०२ फुट, दाबरोलबेत्ता ८३८० फुट, कुन्द ८३५३ फुट, कुन्दमोग ७८१६ फुट, उतकामण्ड ७३६१ फुट, नामबेत्ता ७२८२ फुट, होकबत्ता ७२६७ फुट, उदबेत्ता ६९११ फुट, कोड़नाद ६८१२ फुट, देवबेत्ता ६५०१ फुट, कोटागिरि ६५०१ फुट, कुन्दबेत्ता ६५११ फुट डिमहट्टी ६१११ फुट कुन्नूर ५८८२ फुट और पम्बालोन्मड ४९१० फुट ऊंचा है। इस जिलेमें ६ गिरिपथ वा घाट हैं। यथा—कुन्नूर, सिगूर, गुडालूर, सिसपारा, कोटागिरि और आन्दपाठी।

यहांकी निम्नलिखित नदियां प्रधान हैं। मोयरनदी नीलगिरिसे उत्पन्न हो कर भवानी नदीमें गिरती है। पाइकर नदी मोयरकी एक शाखा है। इसका दूसरा नाम कैमपुर है। उतकामण्डका ऊंचा समुद्रपृष्ठसे ७२२० फुट

ऊंचेमें अवस्थित है और प्रायः २ मील विस्तृत है। पहाड़के निम्नभागमें ढालवें स्थानके ऊपर अनेक वृक्ष लगे हुए हैं। इन सब वृक्षोंसे कार्योपयोगी सुन्दर तख्ता तैयार होता है। पूर्व समयमें पहाड़ पर बाघ, भालू, पहाड़ी बकरे इत्यादि जङ्गली जानवर अधिक संख्यामें पाये जाते थे। आजकल शिकारियोंके उत्पातसे उनकी संख्या बहुत कम हो गई है।

नीलगिरि जिलेमें दो शहर और ४८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी लोग ही इस जिलेमें अधिक पाए जाते हैं। हिन्दुओंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, शेठी, वेल्लालर (भूमिकर्षक), इडैयर (मेषपालक), कम्मालर (सूत्रधर), कणक्कण (लेखक वा कायस्थ), कैकलर (तन्तुवाय), वक्किलम (कृषक) कुशवन (कुम्भकार) और सतानी (मिश्र-जाति) प्रधान हैं। ईसाइयोंमें अङ्गरेज़ और टीमें बढ़ रहे हैं। इसीलिए कारण पर्वतवासियोंका वह दुर्भिक्ष सा हो जान पड़ता है। १८७७ ई०में यहांके गरीब अंगरेजों और नीलगिरिके अधिवासियोंको अन्नके लिये अत्यन्त कष्ट सहने पड़े थे।

नीलगिरि जिला पर्वतसङ्कुल होने पर भी यहां गमनागमनयोग्य अनेक पथ हैं, ऐसा कह सकते हैं। यहांकी प्रधान सड़क कुनूरघाट और उतकामण्ड है। उतकामण्डसे एक पथ कर्कपहल्लीसे, दूसरा गुडालूरसे और तीसरा अवलङ्घोमें चला गया है। प्रथम पथ हो कर महिसुरको जाते हैं। कोटागिरिघाट पथ भी वाणिज्यके लिये विशेष उपयोगी है। इसके सिवा जाने आनेके और भी कितने गिरिपथ हैं किन्तु इन सब राहों हो कर बैलगाड़ी नहीं जा सकती।

इन सब स्थानोंमें एक भी बढ़िया पदार्थ तैयार नहीं होता, पर तोड़ा लोग एक प्रकारका मोटा कपड़ा प्रस्तुत करते हैं। यहांसे चाय, कहवा और सिनकोना अन्यत्र भेजा जाता है।

उतकामण्डमें प्रति मङ्गलवारको एक बड़ी हाट लगती है, यही हाट सबसे बड़ी है। तोड़ाओंमें 'कटू' नामका उत्सव प्रचलित है। प्रति वर्ष नियत तिथिमें यह उत्सव मनाया जाता है। इस उपलक्षमें महिषादि-

कणाड़ी और तामिलमिश्रित एक प्रकारकी भाषा इस जातिमें प्रचलित है। ये लोग उदर और शिकार-देवताकी उपासना करते हैं। इनका विश्वास है, कि मृत्युके बाद आत्मा पुण्यस्थानमें वा दूसरे स्थानमें जाती है।

तोड़ाओंके रहनेके लिये पांच घर होते हैं, तीनमें आप रहते हैं, एकमें गो और शेष एकमें उनका बछड़ा।

जहां तक मालूम होता है, कि बड़गेरा लोग विजय-नगर-राज्यके ध्वंस होने बाद ३०० वर्ष पहले दुर्भिक्ष-प्रपीड़ित हो कर इस स्थानमें आ कर रहने लगे हैं। देशीय जातियोंमें इनकी ही संख्या अधिक है और धन, सौन्दर्य तथा सभ्यतामें भी ये लोग बढ़े चढ़े हैं। पुरुष लोग समतलवासियोंकी तरह पोशाक पहनते हैं। इसके अलावा एक कीमती चादरसे शरीर और कंधेको ढंके रहते हैं। कितने ढट कूट गए हैं। इनके मध्य अनेक अस्त्र और नाना प्रकारके पात्रादि पाए गए हैं। तोड़ा-नाद और पड्डनाद नामक स्थानके स्तम्भमें बहुप्राचीन और उत्कृष्ट ब्रोञ्जनिर्मित तरह तरहके पात्रादि और अस्त्रशस्त्र देखे जाते हैं। इन सब स्तम्भोंकी आकृति बहुत अजूबा है। किस व्यक्ति वा अभ्युदयके समय, किस व्यक्तिसे वे सब स्तम्भ बनाए गए थे, इसका पता लगाना कठिन है। कोटागिरिके निम्नभागमें जो सब कीर्त्तिस्तम्भ हैं उनमेंसे कितनोंमें मट्टीके पुतले हैं जिनके ऊपर तातारदेशीय पगड़ी दिखाई पड़ती है। डाक्टर काल्डवेल (Dr. Caldwell)का कहना है कि वर्त्तमान अधिवासियोंमेंसे कोई भी इन सब ध्वंसावशेषका अपने पूर्वपुरुषसे निर्मित होना स्वीकार नहीं करता। अतः इससे अनुमान किया जाता है कि वे सब कीर्त्तिस्तम्भ और तत्कालीन अधिवासी वर्त्तमान नीलगिरिवासियों-से बहुत पहलेके हैं। कितने स्तम्भ हस्तखुरोका आकृति-विशिष्ट हैं। इनमेंसे एकको तोड़ कर देखा गया था कि उसके मध्य अनेक द्रव्य उत्पन्न हुए हैं। इन सब द्रव्योंको देखनेसे मालूम होता है कि ये सब कीर्त्ति-स्तम्भ अन्ततः ८०० वर्ष पहलेके बने हुए थे।

वर्त्तमान समयमें जो सब स्तम्भ परीक्षाके लिये तोड़े गये हैं उनमेंसे कितनोंमें पीतलके पात्र, चकई, मृत्पात्र

है। स्त्री और पुरुष दोनों ही पूर्वोल्लिखित पीतल और कांचके आभूषण पहनते हैं।

साधारणतः पर्वतकी उपत्यका और जनजङ्गलमें इनका वासस्थान है। अविशुद्ध तामिल भाषा इन लोगोंमें प्रचलित है। यह जाति साधारणतः कृषिकार्य नहीं करती। धर्मविश्वास इनमें कुछ भी नहीं है ऐसा कह सकते हैं, पर वे प्राकृतिक कुछ द्रव्य वस्तुओंकी उपासना करते हैं। कुरुम्बियोंमें जो पद लगाते हैं वे बड़गियों का पौरोहित्य करते हैं। अन्यान्य जाति कुरुम्बोंसे अत्यन्त भय करती हैं और कुरुम्ब लोग भी तोडाओंके भयसे हमेशा आतङ्कग्रस्त रहते हैं।

इरुलजाति नीलगिरि[illegible] पहाड़)के नीचे ढालू प्रदेशमें और पहाड़ तलदेशमें [illegible] ग्राम [illegible] जङ्गलोंमें वास करती है। यहांके [illegible] राज्य [illegible] अधिवासी [illegible] हो विश्वास है, किन्तु [illegible] कहते हैं, कि ये प्राचीन मौर्यवंश कुरुम्ब नामसे प्रसिद्ध थे। पाश्चात्य पण्डितों और पुरातत्त्वविदोंने भी शिवोक्त मतका समर्थन किया है। प्रवाद है, कि कुरुम्ब लोग एक समय समग्र दाक्षिणात्यमें फैले हुए थे। पीछे विदेशीय राजाओंके आक्रमणसे छिन्न भिन्न हो कर उन्होंने गिरि, जङ्गल आदि दुर्गम प्रदेशोंमें आश्रय ग्रहण किया।

मन्द्राज प्रदेशमें तथा भारतवर्षके नाना स्थानोंमें ऐसे कीर्त्तिस्तम्भ वा स्मृतिस्तम्भ हैं जिनमें खोदित मृतदेह की चक्रियां आदि देखी गई हैं।

नीलगिरि (पहाड़) पर एक बहुत प्राचीन मेहाजाति का वास था। वे ही कि इरुल मेहाजातिके आदिपुरुष माने जाते हैं।

यहांका जङ्गल चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। (१) नीलगिरिके पूर्व और दक्षिण ढालू प्रदेश, (२) उत्तरका ढालू प्रदेश और मोयारकी उपत्यका, (३) दक्षिणपूर्व वैनाड और (४) शोल उपत्यकाको जङ्गल।

प्रथमोक्त प्रदेशमें तरह तरहके सुन्दर पेड़ पाये जाते हैं। द्वितीय विभाग चन्दनवृक्षसे भरा हुआ है। तृतीय विभागमें अनेक चायबागानके वृक्ष हैं। चतुर्थ विभागमें बड़े बड़े पेड़ शीशम, पियासाल आदिके

नहीं उपजता। पूर्व समयमें वैनाड और कोइम्बटूर प्रदेशमें कहवा उत्पन्न होता था पीछे नीलगिरि (पहाड़) पर उपजने लगा है। यहां तीन प्रकारकी चायकी खेती होती है। नीलगिरि (पहाड़)के पश्चिम बहुत ऊंचे पर चाय उत्पन्न होती है। यहांकी चायकी अवस्था देख कर यह स्पष्ट जाना जाता है कि चायके पौधे शीतप्रधान देशोंमें ही अच्छे लगते हैं।

इस जिलेमें समस्त स्थान आज तक भी कृषियोग्य नहीं हुए हैं। जिन नियमसे अधिवासी जमीन यहां अर्पित होती है, उसका कुछ विवरण देना यहां आवश्यक है। कहते हैं कि तोडाजाति पहलेसे ही सर्वापेक्षा जनशाली और साहसी होती चली आ रही है और अब तक सभी उपत्यकाओंमें अपनी स्वाधीनताके उपाय स्वरूप गोधन और महिषादि जीव जन्तुओंको चराती [illegible]। उन सब अधिकृत प्रदेशोंमें दूसरा कोई भी अपनेसे गोचारण जाना जाता है।

[illegible]

वार्षिक हरियाली ६५ इञ्च है। यहां ज्वर और वातरोग अकसर हुआ करता है। किन्तु यहांका जलवायु बहुत अच्छा होनेके कारण यह स्थान दाक्षिणात्यके स्वास्थ्य-निवासरूपमें निर्वाचित हुआ है।

डाक्टर बिरडनका कहना है, कि इस पहाड़ पर प्रायः ११८ जातिके पक्षियों का वास है।

शिक्षाप्रसारमें इस जिलेका नम्बर मन्द्राज जिलों में दूसरा आता है। यहां भिन्न भिन्न जातियों के लिये भिन्न भिन्न स्कूल हैं। स्कूलके सिवा यहां कोई अस्पताल और तीन कारागार हैं।

नीलगिरि—उड़ीसाके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २१ १० से २१ १०´ ३० और देशा० ८६ २६´ से ८६ १०´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर और पश्चिममें मयूरभञ्ज राज्य, दक्षिण और पूर्वमें बालेश्वर जिला है। इस राज्यका एकतृतीयांश पार्वत्य भूमि एकतृतीयांश जङ्गलपरिपूर्ण और अवशिष्टांश कृषिकार्य के उपयुक्त है। यहां एक प्रकारका कीमती काला पत्थर पाया जाता है जिससे कटोरा, गिलास आदि बरतन प्रस्तुत होते हैं। हिन्दू, मुसलमान ईसाई, सन्थाल और भूमिज जातिके लोग यहां अधिक पाए जाते हैं। प्रजा प्रायः

सत्तर हजारके लगभग है। राज्यकी वार्षिक आय १२७०००) रु० है जिसमेंसे ३८००) रु० गवर्मेण्टको करमें देने पड़ते हैं। राज्य भरमें १ मिडिल स्कूल, ८ अपरप्राइमरी स्कूल और ७३ लोअर प्राइमरी स्कूल हैं। इसके अलावा एक चिकित्सालय भी है। राजाकी सैन्य-संख्या ७८ है। इसमें कुल ४६६ ग्राम लगते हैं। प्रवाद है, कि छोटानागपुर राजाके किसी आत्मीयने उड़ीसाके राजा प्रतापरुद्रदेवकी कन्यासे विवाह कर इस राज्यको बसाया। चक्रियराज कृष्णचन्द्रीमुरदराज हरि चन्दन इस वंशके चौबीसवें राजा माने जाते हैं।

नीलगिरिकर्णिका (सं० स्त्री०) गिरिकर्णिकाभेद, नील पुष्प, नील अपराजिता।

नीलगिरिजा (सं० स्त्री०) १ विष्णुकान्ता, अपराजिता। २ आस्फोता, हापरमाली बेल।

नीलगुण्ड—१ एक क्षुद्र ग्राम। यह धारवार जिलेके गडगसे १२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां उत्तम मर्मर-प्रस्तरनिर्मित एक नारायण-मन्दिर और सामनेमें एक मण्डप विद्यमान है। मन्दिरकी छत १२ खम्भोंके ऊपर स्थापित है। इसकी दीवारमें पुराणोक्त अनेक मूर्त्तियां चित्रित हैं। ग्रामके उत्तरी फाटकके पूरब १०४४ ई०को उत्कीर्ण एक शिलालिपि है।

२ जातिभेद। ये लोग हिमालयके अन्तर्गत गढ़वाल और कुमायुन नामक स्थानमें वास करते हैं। इनका आचार-व्यवहार झण्डेशवासियों-सा है।

नीलग्रीव (सं० पु०) नीला नीलवर्णा ग्रीवा यस्य। १ महादेव, शिव। (त्रि०) २ नीलवर्ण ग्रीवायुक्त, जिसका गला नीला हो।

नीलङ्गु (सं० पु०) निलङ्गति गच्छतीति नि लगि-गतौ कु-निपातनात् पूर्वदीर्घः। (खरुशङ्कुपीयुनीलङ्गु लिगु। उण्, १।३७) १ कृमिभेद, एक प्रकारका कीड़ा। २ शृगाल, गीदड़। ३ भ्रमर, भंवरा। ४ प्रसून, फूल।

नीलचक्र (सं० पु०) १ जगन्नाथजीके मन्दिरके शिखर पर माना जानेवाला चक्र। २ तीस अक्षरोंका एक दण्डक-वृत्त। यह अशोकपुष्पमञ्जरीका एक भेद है। इसमें गुरु लघु १५ बार क्रमसे आते हैं।

नीलचर्मन् (सं० क्ली०) नीलं चर्म फलत्वक् यस्य। १ परूषक, फालसा। २ कृष्णाजिन। (त्रि०) ३ नीलचर्म विशिष्ट, जिसका चमड़ा या छिलका नीला हो।

नीलच्छद (सं० पु०) १ गरुड़का नामान्तर, गरुड़का एक नाम। २ खर्जूरवृक्ष, खजूर। (त्रि०) ३ नीलपक्ष विशिष्ट, नीले पंख या आवरणका।

नीलच्छवि (सं० पु०) कृष्णभपक्षी, वनमुर्गा।

नीलज (सं० क्ली०) नीलाज्जायते जन-ड। १ वर्त्तलौह, खोटरी लोहा। नीलात् नीलपर्वतात् जायते इति जन-ड स्त्रियां टाप्। २ नीलपर्वतोत्पन्न नदीभेद, वितस्ता नदी। (त्रि०) ३ नीलजात।

नीलजा (सं० स्त्री०) नीलनदीसे उत्पन्न वितस्ता (झेलम) नदी।

नीलझिण्टी (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा झिण्टी। नील-वर्ण झिण्टीपुष्पवृक्ष, नीली कटसरैया। पर्याय—नील-कुरण्ट, नीलकुसुमा, वाना, वाणा, दासी, कण्टार्त्तगला। गुण—कटु, तिक्त, दन्तामय, शूल, वात, कफ, काम और त्वग्दोषनाशक है।

नीलतन्त्र (सं० क्ली०) चीनाचारादिप्रकाशक तन्त्रभेद।

नीलतरा—बौद्ध कथाओंके अनुसार गान्धारदेशकी एक नदी जो उरुवेलारण्यमें हो कर बहती थी। इस स्थान पर जा कर बुद्धदेवने उरुवेलकाश्यप, गयाकाश्यप और नदीकाश्यप नामक तीन भाइयोंका अभिमान चूर किया था। उक्त तीनों भाई अपनेको अर्हत् कहा करते थे और लोगोंको ठग कर अपना मतलब निकालते थे। बड़े भाईके पांच सौ, मझलेके तीन सौ और छोटेके दो सौ शिष्य थे। बुद्धदेव उक्त तीनों भाइयोंको अपने मतमें लानेके लिये वहां गए और रात भर बड़े भाईकी अग्नि-शाला वा मन्दिरमें रहनेके लिये उनसे आज्ञा मांगी। उरुवेलने उत्तर दिया, कि स्थान देनेमें तो आपत्ति नहीं, लेकिन जहां ये रहना चाहते हैं वहां एक प्रकाण्ड विष-धर सर्प रहता है। बुद्धदेवने इसकी परवाह न की और सीधे मन्दिरमें प्रवेश किया। पीछे नाना उपायसे उक्त सर्पको पराभूत और वन्दी कर अपने भाइयोंका अभि-मान चूर किया। बाद वे बहुत लज्जित हो कर बुद्ध-देवका आदर करने लगे।

नीलतरु (सं० पु०) नीलस्तरुः। नारिकेल, नारियल।

नीलता (सं॰ स्त्री॰) नीलस्य भावः नील तल्-टाप्। १ नीलत्व, नीलापन। २ कालापन।

नीलताल (सं॰ पु॰) नीलस्तालः। हिन्तालवृक्ष, श्याम-तमाल।

नीलदूर्वा (सं॰ स्त्री॰) नीला दूर्वा। हरितवर्ण दूर्वा, हरी दूब। पर्याय—नीलकुम्भो, हरिता शाद्वलो, श्यामा, गोला, शतपर्विका, अमृता, पूता, शतग्रन्थि, अमृतसञ्जीविका, शिवा, शिवेष्टा, मङ्गला, जया, सुभगा, भूतहन्त्री, अनन्ता महौषधी, विजया, गौरी, शान्ता, अनन्ती।

गुण—हिम, तिक्त मधुर, कषाय, लघु, रक्तपित्त अतिसार, कफ, वमन और ज्वरनाशक।

भावप्रकाशके मतानुसार इसका पर्याय—रुहा, अनन्ता भार्गवी, शतपर्विका, शष्प, सहस्रवीर्या और शतवल्ली। गुण-हिम, तिक्त, मधुर, तुवर, कफ, पित्त, अस्र, वीसर्प, तृष्णा और दाहनाशक।

नीलद्रुम (सं॰ पु॰) नीलवर्ण असनवृक्ष।

नीलध्वज (सं॰ पु॰) नील: नीलवर्णं ध्वज यस्य। १ तमालवृक्ष। २ नृपभेद, एक राजाका नाम। ये माहिष्मती नगरीके अधिपति थे। इनका विषय जैमिनिभारतमें इस प्रकार लिखा है,—

राजा नीलध्वज माहिष्मतीनगरीके अधीश्वर थे। इनकी स्त्रीका नाम ज्वाला और पुत्रका प्रवीर था। इनके स्वाहा नामक एक कन्या भी थी। जब वह कन्या विवाहयोग्य हुई, तब राजाने कन्यासे पूछा, 'हमारे पटमण्डपमें हमारे राजा अवस्थान करते हैं। इनमेंसे जिस किसीको चाहो, अपना पति बना लो।' कन्याने लज्जासे मुख नीचे किये उत्तर दिया, 'मनुष्य लोभके वशीभूत और मोहके आधकृष्ट हैं। अतः मैं मनुष्यको अपना पति बनाना नहीं चाहती। अतएव आप इस लोकमें ला कर मेरे लिये एक उपयुक्त वरकी तलाश कीजिए।' यह सुन कर नीलध्वजने कहा, 'तुम देवराज इन्द्रको अपना पति वरो; सुना है, कि वे मानुषीका परि-ग्रहण करना चाहते हैं। इस पर स्वाहा बोलीं, 'पिता'। देवराज इन्द्रने देवताओं का सर्वस्व हरण किया है, तपस्वियों के विरुद्ध वे अत्याचार किया करते हैं, पर-विभूति पर उनकी है तथा उन्होंने गोतमकी भार्याका सतीत्व नष्ट किया है। ऐसे बड़ कुकर्म उन्होंने कितने किये हैं, मालूम नहीं। इसीसे मैं उन्हें वर नहीं सकती। अग्निदेव सभी वस्तुओंको पवित्र करते हैं, अतः मैं उन्हींको अपना पति बनाना चाहती हूं।' कन्याकी इच्छानुसार नीलध्वजने अग्निदेवके ही साथ उसका विवाह कर दिया। अग्निदेव विवाह करके माहिष्मती नगरीमें रहने लगे। जब कभी कोई शत्रु इस नगर पर चढ़ाई करता था, तब अग्निदेव नीलध्वजको युद्धमें सहायता पहुंचाते थे। इसलिये किसीको इनके विरुद्ध खड़ा करनेको हिम्मत नहीं होती थी। जब अर्जुन अश्वमेधका घोड़ा ले कर दिग्विजयको निकले तब वह घोड़ा चलते चलते माहिष्मतीनगरीमें प्रविष्ट हुआ। राजाके पुत्र प्रवीर अपने सखाओंके साथ उद्यानवनमें विहार रहे थे। इसी समय वह घोड़ा उनके सामने पहुंच गया। प्रवीरने मदनतुल्य उस सुन्दर अश्वके मस्तक पर जयपत्र देख उसे पकड़नेको कहा।

अश्वमेध घोड़ा पकड़ा गया। प्रवीर उसे ले कर अपने पुरको चल दिये। वहां और सब तो उस अपूर्व घोड़ेको देख कर खुश हुए, लेकिन प्रवीर शत्रुके भय हुसकी अपेक्षा करने लगे। पीछे अर्जुन और वृषकेतुके साथ घोरतर संग्राम हुआ। प्रवीर विपक्षीके शरजालसे एकबारगी अवसन्न हो गये। इस पर पावकप्रतिम नीलध्वज तीन अक्षौहिणी सेनाको साथ ले वहां पहुंचे और प्रवीरको मुक्त किया। इस समय उन्होंने अग्निका आह्वान किया। अग्निदेवके युद्धक्षेत्रमें पहुंचनेके साथ ही अर्जुनकी सेना दग्ध होने लगी। तब अर्जुनने नारायणास्त्र-का स्मरण किया। इस नारायणास्त्रको देख कर अग्निने शान्तमूर्त्ति धारण की और राजा नीलध्वजको समझा कर कहा, 'आप घोड़ेको लौटा दें। स्वयं भगवान् विष्णु जिनके सहायक हैं, उनके साथ युद्ध कर दुर्गमें अवस्थान करे, ऐसा कौन व्यक्ति है? राजाने इसे युक्तियुक्त समझा और घोड़ेको लौटा देना चाहा। जब रानीको इसकी खबर लगी, तब वे कोपान्वित हो बोलीं 'महाराज! आपके राज्यकोषमें विपुल धन है, दशवाहिनी सेना और पुत्र पौत्रादिके रहते क्षत्रियधर्म पर लात मार क्यों इस प्रकार घोड़ा लौटा रहे हैं?' राजा मन्त्रियोंको

बात सुन कर पुन: युद्धके लिये अग्रसर हुए। इस बार भी दोनोंमें समसान युद्ध चला। नीलध्वजका महाबलिष्ठ पुत्र और भ्रातृगण मारे गये, रथ टूट फूट गया और सारथिका पतन हुआ, स्वयं नीलध्वज भी मूर्च्छित हो कर रथके ऊपर गिर पड़े। सारथि राजाको युद्धक्षेत्रसे उठा ले गये। पीछे जब वे होशमें आए, तब रानी पर बहुत बिगड़े और नाना उपहारोंके साथ अर्जुनको घोड़ा लौटा दिया तथा आप अश्वरक्षामें नियुक्त हुए। इधर राजमहिषी ज्वाला उसी समय अपने भाई उल्मूकके पास गईं और अपनी दुरवस्थाका सब विषय सुनाया। पीछे रानीने अर्जुनके वधके लिये उनसे खूब अनुरोध किया, पर वे राजी न हुए। कोई उपाय न देख ज्वाला घरसे निकल कर गङ्गाके किनारे चली गईं और वहां चिल्ला कर बोलीं, 'पाण्डवोंने अन्यायरूपसे भीष्मदेवका वध कर डाला है।' यह सुन कर गङ्गादेवीने क्रुद्ध हो कर अभिशाप दिया कि आजसे छः मासके भीतर अर्जुनका शिर भूपतित होगा। ज्वालाको जब मालूम हुआ कि अब उसका मनोरथ पूरा हो जायेगा, तब अग्निमें कूद कर उसने शरीर त्याग किया और भयानक वाणरूपमें आविर्भूत हो कर धनञ्जयके संहारकी कामनासे बभ्रूवाहनके तरकशमें प्रवेश किया। (जैमिनिभारत १५ अ०) ४ कामरूपके एक राजा। कामरूप देखो।

नीलनाग—काश्मीर राज्यका एक ह्रद। इस ह्रदसे एक जलस्रोत निकल कर धरामूलाके समीप सिन्धुदेशस्थ इरावती नदीके साथ मिल गया है। यह अक्षा० ३३°४८´ उ० और देशा० ७४° ४०´ पू०के मध्य, श्रीनगरसे २१ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यह ह्रद हिन्दुओंका एक पवित्र तीर्थ गिना जाता है।

नीलनिर्गुण्डी (स० स्त्री०) नीलानिर्गुण्डी। नीलवर्ण सिन्धुवारवृक्ष, नीला सम्हालू।

नीलनिर्यासक (स० पु०) नीलवर्णो निर्यासो यस्य, कप्। १ नीलासनवृक्ष, पियासालका पेड़। २ कृष्णवर्ण निर्यास, काला गोंद।

नीलनीरज (सं० क्लो०) नील नीरजं पद्मम्। नीलपद्म, नीलकमल।

नीलपङ्क (सं० क्लो०) नीलं पङ्कमिव। १ अन्धकार। २ कृष्णकर्दम, काला कीचड़।

नीलपटल (सं० क्लो०) अक्षोंकी आंखोंका वह पपड़ा जिससे आंखें ढंकी रहती हैं।

नीलपट—एक कवि।

नीलपत्र (सं० क्लो०) नीलं पत्रं वर्णं पुष्पफलं यस्य। १ नीलवर्ण उत्पल, नीलकमल। २ गुण्डतृण, गोंनरा घास जिसकी जड़ कसेरू है। ३ अश्मन्तकवृक्ष। ४ नीलासनवृक्ष, पियासालका पेड़। ५ दाड़िम, अनार। नीलं पत्रं कर्मधा०। ६ नीलवर्ण पत्र, नीला पत्ता। (त्रि०) ७ नीलवर्ण पत्रयुक्त, जिसके पत्ते नीले हों।

नीलपत्रिका (सं० स्त्री०) १ नीलपत्री, नील। २ कृष्णतालमूली।

नीलपत्री (सं० स्त्री०) १ नीलवृक्ष, नीलका पौधा। २ क्षुद्र नीलीक्षुप, जङ्गली नील।

नीलपद्म (सं० क्लो०) नीलं पद्मम्। नीलवर्ण पद्म, नील कमल।

नीलपर्ण (सं० पु०) १ वृक्षविशेष। (स्त्री०) २ वृन्दारकवृक्ष, वृन्दारकका पेड़।

नीलपर्णी (सं० स्त्री०) विदारीवृक्ष।

नीलपल्ली—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत गोदावरी जिलेका एक शहर। यह शहर अक्षा० १६° ४४´ उ० और देशा० ८२° १३´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां अङ्गरेजोंकी एक वाणिज्यकोठी है।

नीलपिङ्गल (सं० त्रि०) नीलश्च तत् पिङ्गलश्चेति, वर्णोवर्णेन इति सूत्रेण कर्मधारयः। नील अथच पिङ्गलवर्णयुक्त।

नीलपिङ्गला (सं० स्त्री०) नीला च पिङ्गला चेति। नील अथच पिङ्गलवर्णयुक्त गोजातिभेद, नीलो और भूरापन लिये खास गाय।

नीलपिच्छ (सं० पु०) नीलं पिच्छं यस्य। श्येनपक्षी, बाजपक्षी।

नीलपिट (सं० पु०) बौद्धोंका राजकीय अनुशासन और इतिवृत्तसंग्रह।

नीलपिष्टोड़ी (सं० स्त्री०) नीलाम्लीवृक्ष, नलबुलगुल नामका पेड़।

नीलपुनर्नवा (सं॰ स्त्री॰) नीला पुनर्नवा। कृष्णवर्ण पुनर्नवा शाक। पर्याय—नील, श्यामा, कृष्णाख्या, नील वर्षाभू। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, रसायन, हृद्रोग, पाण्डु, श्वयथु, श्वास, वात और कफनाशक।

नीलपुर (सं॰ पु॰) काश्मीरका एक पुर।

नीलपुराण (सं॰ क्ली॰) पुराणभेद, एक पुराणका नाम।

नीलपुष्प (सं॰ पु॰) नील पुष्प यस्य। १ नीलभृङ्गराज, नीली भंगरैया। २ नीलाम्लान, काला कोराठा। ३ ग्रन्थिपर्ण, गठिवन। ४ नीलकुसुम नीला फूल।

नीलपुष्पा (सं॰ स्त्री॰) नील पुष्पं यस्याः। विष्णुक्रान्ता अपराजिता।

नीलपुष्पिका (सं॰ स्त्री॰) नील पुष्पं यस्याः। कप् कापि-अत इत्व। १ अतसी, अलसी। २ नीलोत्पल नीलका पौधा। ३ नील-अपराजिता।

नीलपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) नील पुष्पं यस्याः, ङीष्। १ नीलभृङ्गा, काला भौंरा, नीली कोयल। २ अतसी, अलसी।

नीलपृष्ठ (सं॰ पु॰) नीलं पृष्ठं कृष्णवर्ण यस्य। १ अग्नि, आग। २ मत्स्यविशेष, एक किस्मकी मछली।

नीलफला (सं॰ स्त्री॰) नीलोफल, नीलका पौधा।

नीलफोर (सं॰ पु॰) इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख।

नीलफला (सं॰ स्त्री॰) नील फलं यस्याः। १ जम्बूवृक्ष, जामुनका पेड़। २ बैंगन, भण्टा। ३ मार्ताकुवृक्ष।

नीलकुमारी—१ मन्द्राजके मदुरा जिलान्तर्गत एक गण्डकुमा। इसका क्षेत्रफल १६८ वर्गमील है। इसमें कुल १८२ ग्राम लगते हैं। यहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध ब्राह्म समाज और अन्यान्य अनेक जातियोंका वास है।

२ उक्त गण्डकुमेका एक ग्राम। गण्डकुमेको यहांसे शक्ति यहां हो लगती है।

नीलबरी (हि॰ स्त्री॰) कच्चे नीलकी बड़ी।

नीलबिर्रे (हि॰ स्त्री॰) सन्मयका पौधा, सना।

नीलभ (सं॰ पु॰) नील इव भाति भा-क। १ चन्द्र चन्द्रमा। २ मेघ, बादल। ३ मक्षिका, मक्खी। (त्रि॰) ४ नीलवर्ण आभाविशिष्ट, जिसमें नीलीकी रोशनी हो।

नीलमञ्जरी (सं॰ स्त्री॰) पीतमाञ्जन पियाबास।

नीलभू (सं॰ स्त्री॰) नीलात् भूरुत्पत्ति यस्य। नील-पर्वतोत्पन्न नदीभेद, नीलपर्वतसे उत्पन्न एक नदीका नाम।

नीलभृङ्गराज (सं॰ पु॰) नीलो भृङ्गराजः। नीलवर्ण भृङ्गराज नीला भंगरा। पर्याय—महाभृङ्ग, महानील सुनीलक नीलपुष्प, श्यामल। गुण—तिक्त उष्ण, चक्षुष्य, केशरञ्जन; कफ, आम, शोथ और विषनाशक।

नीलम (फा॰ पु॰) नीलमणि, नीले रंगका रत्न, इन्द्रनील। अंगरेजीमें इसे Sapphire कहते हैं।

सिंहलद्वीपके मध्यगत राजधानीके अविहित पद्माकर प्रदेशमें इन्द्रनील मिलता है। प्राचीन कालमें भारत और अरबदेशमें यह रत्न मिलता था, अब भारतमें नीलम की खानें नहीं रह गई हैं। काश्मीरकी खानें भी अब खाली हो चली हैं। बरमामें मानिकके साथ नीलम भी निकलता है। सिंहलद्वीप और श्याममें भी बहुत अच्छा नीलम पाता है। उत्तर-अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, आष्ट्रेलिया आदि स्थानोंमें भी नीलम पाया गया है, ऐसा सुननेमें आता है।

नीलम वास्तवमें एक प्रकारका कुरंड है जिसका नम्बर कड़ाईमें हीरेसे दूसरा है। जो बहुत चोखा होता है उसका मोल भी हीरेसे कम नहीं होता। नीलम अम्लजनक धातु अलुमिना (Oxide of alumina) और अम्लजनक धातु कोबाल्ट (Oxide of cobalt) इन्हीं दो पदार्थोंसे प्रस्तुत होता है। यथार्थमें यदि देखा जाय तो अम्लजन-वायु (Oxygen) और अलुमिनियम कोबाल्ट (Aluminium Cobalt) नामक अत्यन्त सामान्य द्रव्य हो इसमें देखनेमें आता है। तब रत्नादिका मूल्य अधिक होनेका कारण यही है; कोई विज्ञानविद् पण्डित कृत्रिम उपायसे हीरकादि प्रस्तुत नहीं कर सकते। किन्तु विज्ञानकी दिनोंदिन जैसी उन्नति देखी जाती है और तत्विषयक विषय पर जैसी चर्चा चल रही है उससे बोध होता है, कि थोड़े ही दिनोंमें मनुष्य का अभाव पूरा हो जायगा।

समस्त नीलमके रंग एकसे नहीं होते। इनमेंसे कुछ नीलपद्मके जैसा, कुछ नीलकमलके जैसा, कुछ समाधिंत तलवारके जैसा, कुछ आसमानके रंगके जैसा, कुछ मिन

नीलकण्ठके जैसा, कुछ मयूरपुच्छके तारेके जैसा और कुछ कृष्ण अपराजिता पुष्पके जैसा होता है। समुद्रकी निर्मल जलराशिरूप नीलरङ्गके बुदबुद और कोकिल कण्ठके जैसा नीला नीलम ही अकसर देखनेमें आता है। यह वर्णभेदसे चार भागोंमें विभक्त है, यथा—श्वेतका आभायुक्त नील, रक्तका आभायुक्त नील, पीतका आभायुक्त नील और कृष्णका आभायुक्त नील। इन चार श्रेणियोंके इन्द्रनील यथाक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामसे प्रसिद्ध हैं।

पद्मराग जिस तरह उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे तीन प्रकारका है, इन्द्रनीलके भी उसी तरह तीन भेद हैं, यथा, साधारण इन्द्रनील, महानील और इन्द्रनील। महानीलके सम्बन्धमें लिखा है, कि यदि वह सौगुने दूधमें डाल दिया जाय, तो सारा दूध नीला दिखाई पड़ेगा। सबसे श्रेष्ठ इन्द्रनील वह है जिसमेंसे इन्द्रधनुषको-सी आभा निकले। पर ऐसा नीलम जल्दी मिलता नहीं। नीलममें पांच बातें देखी जाती हैं—गुरुत्व, स्निग्धत्व, वर्णाढ्यत्व, पार्श्ववर्त्तित्व और रञ्जकत्व। जिस इन्द्रनीलका आपेक्षिक गुरुत्व बहुत अधिक हो अर्थात् जो देखनेमें छोटा पर तौलमें भारी हो उसे गुरु कहते हैं। जिसमें स्निग्धत्व होता है, उसमेंसे चिकनाई छूटती है। जिसमें वर्णाढ्यत्व होता है उसे प्रातःकाल सूर्यके सामने करनेसे उसमें नीली शिखा-सी फूटती दिखाई पड़ती है। पार्श्ववर्त्तित्व गुण उस नीलममें माना जाता है जिसमें कहीं कहीं पर सोना, चांदी, स्फटिक आदि दिखाई पड़े। जिसे जलपात्र आदिमें रखनेसे सारा पात्र नीला दिखाई पड़ने लगे उसे रंजक समझना चाहिए। गुरु इन्द्रनील वंशवृद्धिकर, स्निग्ध इन्द्रनील धनवृद्धिकर, वर्णाढ्य इन्द्रनील धनधान्यादि-वृद्धिकारक, पार्श्ववर्त्ती इन्द्रनील यशस्कर और रञ्जक इन्द्रनील लक्ष्मी, यश और वंशवर्द्धक माना गया है। अभ्रक, त्रास, चित्रक, मृद्गर्भ, अश्मगर्भ और रौच्य ये छः प्रकारके दोष इन्द्रनीलमें पाये जाते हैं। जिस इन्द्रनीलके ऊपरीभागमें अभ्र-सी छाया दीख पड़े, उसे अभ्रक कहते हैं। इस प्रकारके इन्द्रनीलसे आयु और सम्पत्ति विनष्ट होती है। जो इन्द्रनील विशेष चिह्न द्वारा भग्न मालूम पड़े, वही त्रासनील है। इस नीलमके धारण करनेसे दंष्ट्रीभय उत्पन्न होती है। जिसमें भिन्न भिन्न रंग दीख पड़ते हैं उसे चित्रक कहते हैं, चित्रकके दोषसे कुल नष्ट होता है। जिसके मध्यभागमें मट्टी लगी रहती है, वह मृद्गर्भ कहलाता है। मृद्गर्भके दोषसे गात्रकण्डू आदि नाना प्रकारके त्वग्रोग उत्पन्न होते हैं। जिसके भीतरमें पत्थरका खण्ड दिखाई दे उसका नाम है अश्मगर्भ। अश्मगर्भ दोष-विनाशका कारण है। जो शर्करायुक्त है उसे रौच्य कहते हैं। रौच्यदोषाश्रित इन्द्रनीलधारी व्यक्तिको यमराजका द्वार देखना पड़ता है। दोषहीन होने पर भी जो गुणयुक्त है, ऐसी इन्द्रनीलमणि जिसके पास है उसको आयु और यशकी वृद्धि होती है। जो मनुष्य विशुद्ध इन्द्रनील धारण करता है, नारायण उसके प्रति प्रसन्न होते हैं और उससे आयु, कुल, यश, बुद्धि, लक्ष्मी और सन्तति की उन्नति होती है। गुणसम्पन्न और दोष-युक्त पद्मराग धारण करनेमें जैसा शुभाशुभ होता है, इन्द्र-नील धारणमें भी ठीक वैसा ही फल लिखा है।

जिस इन्द्रनीलमें कुछ लोहित-सी आभा दीख पड़े उसे टिट्टिभ कहते हैं। टिट्टिभजातीय मणि धारण करनेके साथ ही गर्भिणी-स्त्री सुखसे सन्तान प्रसव करती है। (गरुड़पु०)

पद्मरागके जैसा नीलम तीन अवस्थामें पाया जाता है। यथा—(१) शुभ्र स्वच्छ चूनेके पत्थर (White Crystaline lime-stone)के मध्य निहित अवस्थामें देखा जाता है; (२) पहाड़के निकटवर्त्ती मट्टीके मध्य शिथिल अवस्थामें पाया जाता है और (३) रत्नप्रसवि कंकड़के मध्य कभी कभी देखा जाता है। साधारणतः द्वितीय अवस्थाका नीलम ही यथेष्ट पाया जाता है।

अलङ्कारके लिये इन्द्रनीलका इतना आदर है। नीलम इतना कठिन पदार्थ है, कि इस पर नक्काशी आदि कार्य बहुत मुश्किलसे किया जाता है। इस प्रकार असुविधा रहते भी इन्द्रनीलमें खोदित मूर्त्ति देखी गई है। ग्रीसके जुपिटर (Jupiter)की उज्ज्वल मुखाकृति इस इन्द्रनील पर खोदित है, ऐसा सुना जाता है। मार्लबोरो (Marlborough) संस्थानमें जो सब प्राचीन द्रव्य संग्रह किये गए हैं उनमेंसे मेडूसाका

मस्तक (Medusa's head) नीलम पर अङ्कित देखा गया है। इसके अलावा और भी कितनी प्राचीन प्रति-मूर्त्तियां इस पत्थर पर निर्मित हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि इन्द्रनीलसे नाना प्रकारकी व्याधि और अमङ्गलका नाश होता है। यह केवल भारतवासियोंका ही विश्वास है, सो नहीं, यूरोपके अनेक महात्मा लोग भी इसका पक्ष समर्थन कर गए हैं। एपिफेनिस् (Epiphanes)-का कहना है कि मोजेस (Moses)के निकट जो दश पर्वतसे ऊपर उदित हुआ था और ईश्वरने सबसे पहले उनके पास जो नियमावली भेजी थी वह नीलममें ही लिखी थी। पुण्यात्मा जेरोम (St Jerome)ने कहा है कि इन्द्रनील धारण करनेसे राजाका विश्वास होता है, शत्रु वशमें आ जाते हैं और बन्धनसे छुटकारा मिलता है। इसके धारण करनेसे मनोवृत्तिकी शुद्धि और अमङ्गल निवारित होता है। यदि कोई लम्पट मनुष्य इसे धारण करे, तो इसका औज्ज्वल्य जाता रहता है। अङ्गुलिमें पहननेसे कामवृत्ति नष्ट होती है, यही कारण है कि धर्म-याजक गण इसे अङ्गुलिमें पहनते हैं। आंखमें धारण करनेसे ज्वर दूर हो जाता है। कपालमें धारण करनेसे यह रक्तस्रावको बन्द कर देता है। इन्द्रनीलको चूर्ण कर मोमसे तैयार करके आंख पर रखनेसे वायुवाहक कीट आदि जब भी उसमें क्यों न प्रवेश कर जाय उसी समय वह बाहर निकल जाता है। इसके सिवा आंखका नाना प्रकार अस्वास्थ्यरोगजनित चक्षुदोष इत्यादि आरोग्य हो जाता है। दूधके साथ इसका चूर्ण सेवन करनेसे ज्वर, मूर्च्छा, विषप्रयोग आदि प्रशमित होते हैं। विष नाशकशक्ति इसमें इतनी अधिक है कि जिस ग्लास वा शीशेमें कोई विषधर प्राणी रहे उसमें यदि इसे डाल दे, तो वह उसी समय मर जाता है।

पद्मरागके जैसा इन्द्रनीलके आकारके अनुसार इसका मोल अधिक नहीं होता। हीरेकी तरह ज्योति-परिष्कारताके अनुसार मूल्यका तारतम्य हुआ करता है। बढ़ियासे बढ़िया नीलम यदि एक कैरटसे कम तौलमें हो (कैरट=प्रायः ४ रत्ती), तो वह ३०) से १२०) रु० तकमें बिकता है और एक कैरट होनेसे १२०)से २१०) रु० तकमें। किसी किसी इन्द्रनीलसे नक्षत्रकी तरह ज्योति निकलती है। इस प्रकारका नीलम हिन्दुओंका एक पवित्र पदार्थ है। इसका मूल्य १००) से १०००) रु० तक है। उत्तम इन्द्रनील रात दिन सब समय औज्ज्वल्यको रोशनी देता है। कभी कभी ऐसा भी देखा गया है, कि दिनमें तो अच्छा नीलम एक सी रोशनी देते हैं, पर रात होने ही उनसे भिन्न भिन्न तरहकी रोशनी निकलती है। कभी कभी इन्द्रनीलमें अनेक दोष भी देखे जाते हैं। इनमें मैल, दाग तथा इसी तरहके कितने दोष रहते हैं। इसके अलावा इसमें तमाम एक सा रंग नहीं रहता।

सफेद नीलम हीरेसे मिलता जुलता है। यहां तक कि यदि यह अच्छी तरह काटा जाय और बिना पालिश का रहे, तो हीरेमें और इसमें कुछ भी फर्क देखनेमें नहीं आता। इसको आंच दे कर उनके साथ ऐसे कुशलतासे रंग स्थापित किया जाता है, कि वे तमाम रंग हूबहू मालूम पड़ने लगते हैं। अनभिज्ञ लोग अक्सर इनको नीलम समझ लेते हैं और अधिक दाम ठगे भी जाते हैं।

अङ्गरेज राजपुरुषने बालाघाटमें ८९१ कैरटीलका एक अच्छा उज्ज्वलवर्णविशिष्ट इन्द्रनील देखा था। पारिस (Paris) नगरकी खनिज-विद्यालय (Museo-demineralogie)में १३२।१६ कैरट तौलका एक नीलम है जिसका नाम 'रुबिन स्यूज बेस्टर' है। यह नाम पड़नेका कारण लोग बतलाते हैं कि बाहेमके काठकी बक्सी बेचनेवाले किसी दरिद्रने इसे पाया था। अन्तमें बहुतोंके हाथमें उलट फेर होता हुआ यह फरासीसी द्वितीय किसी वणिक्‌से यहां १८८००० फ्रैंकमें बेचा गया। यूरोपके राजकोषमें बहुतसे सुन्दर सुन्दर नीलम हैं। बेल्जियमके कोलमारटस नामक स्थानमें असाधारण बृहत् इन्द्रनील है। रुसकी किसी काउण्टेसी (Countess)-के पास जो अत्यन्त परिष्कार और मनोहर त्रिभुजाकृति इन्द्रनील था वही पेरिसनगरके महामेलेमें देख कर लोग चकित हो गए थे। लन्दन महामेलेमें एच० टि० होप (H T Hope) साहबके संगृहीत कुछ नीलम दिखलाये गए थे और वहां द से

होप (A. J. Hope) साहबने अपना खुरज्योतियुक्त नीलम (Sapphire Maveilleux) सबके सामने दिखाया था जिससे दिनको नीला और रातको बैंगनी रंगको रोशनी निकलती थी। इङ्गलैंडके महाराज ४र्थ जार्जने राजमुकुट धारण करनेके लिए एक बड़ा नीलम खरीदा था। मिर्जापुरके महन्तके पास किसी समय अत्यन्त उत्कृष्ट एक खण्ड इन्द्रनील था।

नीलमक्षुष्ठ (सं० पु०) नीलवनमुद्ग, नकुल।

नीलमक्षिका (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा मक्षिका, नीली मक्खी।

नीलमञ्जरी (सं० स्त्री०) नीलनिर्गुण्डी।

नीलमणि (सं० पु०) नीलः नीलवर्णः मणिः। स्वनामख्यात मणिविशेष, नीलम। नीलम देखो।

नीलमण्डल (सं० क्ली०) परुष, फालसा।

नीलमल्लिका (सं० स्त्री०) १ विल्व, बेल। २ कपित्थ, कैथ।

नीलमाधव (सं० पु०) नीलो नीलवर्णो माधवः। १ विष्णु, जगन्नाथ।

नीलमाष (सं० पु०) नीलः माषः। राजमाष, काला उरद।

नीलमोलिक (सं० पु०) नीलवर्णनिमीलनमस्त्यस्येति नील-मील-ठन्। खद्योत, जुगनू।

नीलमृत्तिका (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा मृत्तिकेव। १ पुष्पकासीस, हीराकसीस। २ कृष्णवर्ण मृत्तिका, काली मट्टी। (त्रि०) नीला मृत्तिका यत्र। ३ जहां काली मट्टी हो।

नीलमेह (सं० पु०) मेहरोगविशेष। पित्तसे नीलमेह उत्पन्न होता है। इसमें शालसारादि वा अश्वत्थ कषायका प्रयोग करना चाहिए। इस रोगसे शुक्र नीला हो कर बाहर निकलता है, इसीसे इसको नीलमेह कहते हैं। प्रमेह देखो।

नीलमेहिन् (सं० पु०) नीलं नीलवर्णं शुक्रं मेहति मिह-णिनि। नीलवर्ण मेहयुक्त।

नीलमोर (हिं० पु०) कुररी नामक पक्षी जो हिमालय पर पाया जाता है।

नीलयष्टिका (सं० स्त्री०) कृष्णवर्ण इक्षुभेद, एक प्रकारकी काली ईख।

नीलरत्न (सं० क्ली०) इन्द्रनील-मणि।

नीलराजि (सं० पु०) नीलानां राजिः। तमस्तति, अन्धकारराशि।

नीलरुद्रोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

नीलरूपक (सं० पु०) १ वृक्षवृक्ष, पाकरका पेड़।

नीललोचन (सं० त्रि०) नीलं लोचनं यस्य। नीलवर्णनेत्रयुक्त, नीली आंखवाला। जो मनुष्य शाक चुराता है, उसीकी आंखें नीली होती हैं।

"शाकहारी च पुरुषो जायते नीललोचनः॥" (शातातप)

नीललोह (सं० क्ली०) नीलं नीलवर्णं लोहम्। १ वर्त्तलोह, बीदरी लोहा। २ कृष्णलोह, काला लोहा।

नीललोहित (सं० पु०) नीलश्चासौ लोहितश्चेति (वर्णो वर्णेन। पा २।१।६९) इति सूत्रेण कर्मधारयः। १ शिव, महादेव। चैत्रमासमें नीललोहित शिवके उद्देशसे व्रत करना होता है। इस व्रतमें त्रिसन्ध्या स्नान कर रातको हविष्याशी और जितेन्द्रिय हो कर नाना प्रकारके उपहार और उत्सवके साथ शिवकी पूजा करते हैं, पीछे संक्रान्तिको उपवास और होम करके व्रत समाप्त करते हैं। भगवान् शिवके प्रसन्न होनेसे कुछ भी अलभ्य नहीं है। महादेवका कण्ठ नीला और मस्तक लोहितवर्ण है, इसीसे शिवका नाम नीललोहित पड़ा है। (त्रि०) २ नीलापन लिये लाल, बैंगनी।

नीललोहिता (सं० स्त्री०) १ भूमिजम्बु, एक प्रकारका छोटा जामुन। २ शिवपार्वती।

नीललोह (सं० क्ली०) वर्त्तलोह, बीदरीलोहा।

नीलवटी (सं० स्त्री०) केशरञ्जन।

नीलवत् (सं० त्रि०) नीलं निलयो विद्यतेऽस्य, मतुप् मस्य व। १ निवासयुक्त। २ नीलवर्णयुक्त।

नीलवर्ण (सं० क्ली०) १ रसाञ्जन, नीलमूलक। २ परुषफल, फालसा।

नीलवर्षाभू (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा वर्षाभूः। १ नीलपुनर्णवा। (पु०) २ कृष्णवर्णभेक, काला बेंग।

नीलवल्ली (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा वल्ली। वन्दाक, परगाछा, बाँदा।

नीलवसन (सं० त्रि०) नीलानि वसनानि यस्य, नील वसन वस्त्र। १ नीलवस्त्रयुक्त, नीला या काला कपड़ा पहनने वाला। (पु०) २ शनिग्रह। शनिका परिधेय वस्त्र नीला है, इसीसे नीलवसन शब्दसे शनिका बोध होता है। ३ नीलवर्ण वस्त्र, नीला कपड़ा। ४ बलराम।

नीलवस्त्र (सं० पु०) नील वस्त्र यस्य। १ बलराम। २ नीलवर्ण वस्त्र, नीला कपड़ा। ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंको नीलवस्त्र नहीं पहनना चाहिये, पहननेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। नीलवस्त्र पहन कर यदि स्नान, दान, तपस्या, होम, स्वाध्याय और पितृतर्पण आदि पुण्यकार्य किये जांय, तो वे निष्फल होते हैं।

"स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवस्त्रस्य धारणात्॥"

(प्रायश्चित्तविवेक)

नीलवानर—एक प्रकारका बन्दर (Inuus silenus)। यह बन्दरका राजा Lion monkey भी कहलाता है। इस जातिके बन्दर काले होते हैं और मस्तक रोओंसे ढका रहता है। इसकी लम्बाई प्रायः २ फुट और पूंछकी लम्बाई १० इंच होती है। यह वानरजाति विभिन्न श्रेणियोंमें अनिर्दिष्ट है। कोई तो इसे Papio कोई Cynocephalus और कोई Macacus जातिके बतलाते हैं। किन्तु मिवार्ट और ये आदि इसे अलग श्रेणीका बतला गए हैं। ये बहुत कुछ बनमानुषसे मिलते जुलते हैं। कुछ काल पहले कृपोपाधिकारियोंने इन्हें भारतके दक्षिणांश और सिंहलद्वीपके बतलाये थे। बफनने इनका जो Wanderoo नाम रखा है वह इस सिंहलद्वीपके बनमानुषका है। किन्तु टेनेण्टन और ब्लाइथ साहबने कहा है कि सिंहलद्वीपमें ये कभी भी पाये नहीं जाते। भारतवर्षके पश्चिमघाट पर्वतके उपत्यकाके जङ्गलमें सदा इनका वास है। कोचीन और तिनावल्लीमें भी ये अधिक संख्यामें मिलते हैं। ये अत्यन्त निभृत और अगम्य स्थानमें ही रहना पसन्द करते हैं। ये प्रायः दल बांध कर बाहर निकलते हैं। एक एक दलमें १२ या २० अथवा इससे भी अधिक बन्दर देखे जाते हैं। ये बड़े बलवान् और चालाक होते हैं किन्तु ये क्रोधी और निर्लज्ज भी अवश्य होते हैं।

नीलवीज (सं० पु०), नील वीज यस्य। नीलासनवृक्ष, पियासाल।

नीलवृक्षा (सं० स्त्री०) नीलवर्ण वृक्षभेद, नीलाबोला नामका पेड़।

नीलवृष (सं० पु०) नीली वृषा। वृषभभेद, एक किस्म का सरकण्डा। पर्याय—नील, जालारि, मोचकाख्य, नरनाला, जवाहय, नवाहु, नरप्रिय। गुण—कटु, कषाय, उष्ण, पटु, वातामय और आमामयनाशक।

नीलवृन्ता (सं० स्त्री०) नीलवर्ण वृन्त यस्य। १ तूल, रुई। २ तुषखाड़, तरवाड़ बनानेकी लकड़ी।

नीलवृन्तक (सं० स्त्री०) नीलवृन्त कप्। तूल, रुई।

नीलवृष (सं० पु०) वृषविशेष, विशेष प्रकारका सांड़ या बछड़ा।

शास्त्रमें नीलवृष एक पारिभाषिक शब्द है। जिस बछड़ाका रंग लाल, पूंछ खुर और सिर श्वेतवर्ण हो, उसे नीलवृष कहते हैं। पितृ इसके उत्सर्गका बड़ा फल है। इसमें अश्वमेधादिके समान फल प्राप्त होता है।

"एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥" (विष्णुपु०)

अनेक पुत्रोंमेंसे यदि एक भी पुत्र गया जाय, अथवा अश्वमेधयज्ञ करे वा नीलवृषका उत्सर्ग करे, तो उससे पितृगण उद्धार पाते हैं। वृषोत्सर्ग देखो।

नीलवृषा (सं० स्त्री०) नील नीलवर्णं पुष्पफलादिकं वर्षति प्रसूते इति वृष-क ततष्टाप्। वार्त्ताकी, बैंगन।

नीलव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष। मत्स्यपुराणमें इस व्रतका विषय इस प्रकार लिखा है—

जो हैम नीलोत्पल और शर्करापात्रयुक्त कर वृषभके साथ दान करते हैं, वर्षके अन्तमें वैष्णव पद प्राप्त होता है। इसीका नाम नीलव्रत है। इस व्रताचरणसे समस्त पातकोंका नाश होता है।

नीलशिखण्ड (सं० त्रि०) नीला शिखण्डो यस्य। १ नील वर्णशिखण्डयुक्त। (पु०) २ रुद्रभेद।

नीलशिग्रु (सं० पु०) नीलः शिग्रुः। नीलशोभाञ्जन, सहजनका पेड़।

नीलशिम्बिका (सं० स्त्री०) शिम्बीभेद।

नीलशूक (सं० पु०) यवविशेष, हरित जातिभेद।

नीलशोथनी (सं० स्त्री०) नीली, नीलका पौधा।

नीलपङ्क (सं० पु०) नीला या काला मांड़।

नीलसखो—हिन्दीके एक कवि। ये जैनपुर बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे और इनका जन्म सम्वत् १८०२में हुआ था। इनके बनाए पद रसीले होते थे।

नीलसन्ध्या (सं० स्त्री०) नीला सन्ध्येव। कृष्ण-अपराजिता।

नीलसरस्वती (सं० स्त्री०) द्वितीय विद्या, तारादेवी।

नीलसस्य (सं० क्ली०) शस्यविशेष, बाजरा।

नीलसहचर (सं० पु०) नीलपुष्प, नीली कटसरैया।

नीलसार (सं० पु०) नीलः सारो यस्य। तिन्दुकवृक्ष, तेंदूका पेड़। इसका हीर काला आबनूस होता है।

नीलसिर (हिं० पु०) एक प्रकारकी बत्तख जिसका सिर नीला होता है। यह हाथ भर लम्बी होती है और सिंध, पंजाब, काश्मीर आदिमें पाई जाती है। अण्डे यह गरमीमें देती है।

नीलसिन्धुवार (सं० पु०) कृष्णवर्ण सिन्धुवारवृक्ष। पर्याय—शीतसहा, निर्गुण्डी, नीलसिन्दूक, सिन्दूक, कपिका, भूतकेशी, इन्द्राणी, नीलिका, नीलनिर्गुण्डी। गुण—कटु, उष्ण, तिक्त, रूक्ष, कास, श्लेष्मा, शोथ, वायु, प्रदर और आध्मानरोगनाशक।

नीलस्कन्धा (सं० स्त्री०) नीलः स्कन्धो यस्याः। गोकर्णीलता।

नीलस्यन्दा (सं० स्त्री०) नीली अपराजिता।

नीलस्वरूप (सं० पु०) एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तीन भगण और दो गुरु अक्षर होते हैं।

नीला (सं० स्त्री०) नीली नीलवर्णोऽस्त्यस्याः अच्, ततष्टाप्। १ नीलवर्ण मक्षिका, नीली मक्खी। २ नीलपुनर्नवा। ३ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। ४ लताविशेष, एक लता। ५ नदीविशेष, एक नदी। ६ मल्लाररागकी एक भार्या।

नीला (हिं० वि०) १ आकाशके रंगका, नीलके रंगका। (पु०) २ एक प्रकारका कबूतर। ३ नीलम।

नीलाक्ष (सं० त्रि०) नीले अक्षिणी यस्य। १ नीलवर्ण चक्षुविशिष्ट, नीली आंखका। (पु०) २ राजहंस।

नीलाङ्कितदल (सं० पु०) नीलाङ्कितं दलं यस्य। तैलकन्द।

नीलाङ्ग (सं० पु०) नीलं अङ्गं यस्य। १ सारसपक्षी। (त्रि०) २ नीलवर्णाङ्ग युक्तमात्र, नीले अङ्गका।

नीलाङ्गु (सं० पु०) नितरां लिङ्गतीति नि-लिगि गतौ कु, धातूपसर्गयोः दीर्घत्वं। १ कृमि, कीड़ा। २ भ्रमरालो, भौंरा। ३ प्रविर, घड़ियाल।

नीलाचल (सं० पु०) १ नीलगिरि पर्वत २ जगन्नाथजीके निकट एक छोटी पहाड़ी।

नीलाञ्जन (सं० क्ली०) नीलं अञ्जनं। १ सौवीराञ्जन, नीला सुरमा। यह उपधातुविशेष है। भलीभांति शोधन कर इसका व्यवहार करना होता है। नीलाञ्जनका चूर्ण को जम्बीरी नीबूके रसमें भावना दे, पीछे धूपमें उसे एक दिन सुखा कर विशुद्ध कर लें। इस प्रकारसे शोधित नीलाञ्जन व्यवहारोपयुक्त होता है। इसका गुण—कटु, श्लेष्मा, मुखरोग, नेत्ररोग, व्रण और दाहनाशक, उष्ण, रसायन, तिक्त और भेदक है। २ तुत्थ, तूतिया।

नीलाञ्जनच्छदा (सं० स्त्री०) जम्बूवृक्ष, जामुनका पेड़।

नीलाञ्जना (सं० स्त्री) नीलं मेघं अञ्जयतीति अञ्ज-णिच्-ल्यु टाप्। विद्युत्, बिजली।

नीलाञ्जनी (सं० स्त्री०) नीलवत् अञ्जतेऽनयेति अञ्ज णिच्-ल्युट्, ततो ङीप्। कालाञ्जनी क्षुप, काली कपास।

नीलाञ्जसा (सं० स्त्री०) १ अप्सरोभेद, एक अप्सरा। २ नदीविशेष, एक नदी। ३ विद्युत्, बिजली।

नीलाण्डक (सं० पु०) रोहितमत्स्य, रोहित मछली।

नीलाथोथा (हिं० पु०) तांबेकी उपधातु, तूतिया। वैद्यकमें लिखा है, कि जिस धातुकी जो उपधातु होती है उसमें उसीका-सा गुण होता है पर बहुत हीन। तांबेका यह नीला लवण खानोंमें भी मिलता है लेकिन अधिकतर कारखानोंमें निकाला जाता है। तांबेके चूरको यदि खुली हवामें रख कर तपावें या गलावें और उसमें थोड़ासा गन्धकका तेजाब डाल दें तो तेजाबका अम्ल-गुण नष्ट हो जायगा और उसके योगसे तूतिया बन जायगा। नीलाथोथा रंगाई और दवाके काममें आता है। वैद्यकमें यह क्षारयुक्त, कटु, कसैला, वमनकारक, लघु, लेखन गुणयुक्त, भेदक, शीत-

वीर्य, मेहोंको हितकर तथा कफ, पित्त, विष, पथरी, कुष्ठ और वातको दूर करनेवाला माना गया है। तूतिया शोध कर अल्प मात्रामें दिया जाता है।

विशेष विवरण तुत्थ शब्दमें देखो।

नीलाद्रि (सं॰ पु॰) १ नीलपर्वत। २ नीलगिरिका नीलाचल।

नीलाद्रिकर्णिका (सं॰ स्त्री॰) नीलापराजिता।

नीलाम्बर—हिन्दीके प्राचीन कवि। ये सन् १७०१में उत्पन्न हुए थे। पुराने कवियोंने इनकी खूब प्रशंसा की है।

नीलापराजिता (सं॰ स्त्री॰) नीला अपराजिता। नीली अपराजिता। पर्याय—नीलपुष्पी, महानीलि, नीलगिरिकर्णिका, गवादनी, व्यक्तगन्धा, नीलस्यन्दा, नीलाद्रिकर्णी। गुण—शिशिर, तिक्त, रक्तातिसार, ज्वर, दाह, छर्दि, उन्माद, मदभ्रमजन्य पीड़ा, श्वास और कास नाशक।

नीलाब्ज (सं॰ क्ली॰) नीलपद्म, नीला कमल।

नीलाभ (सं॰ त्रि॰) नीलयुक्त।

नीलाभ्र (सं॰ क्ली॰) कृष्ण वर्ण काला बादल।

नीलाम (हिं॰ पु॰) बिक्रीका एक ढंग जिसमें माल उस आदमीको दिया जाता है जो सबसे अधिक दाम बोलता है, बोली बोल कर बेचना।

नीलामघर (हिं॰ पु॰) वह घर या स्थान जहां चीजें नीलाम की जाती हों।

नीलामी (हिं॰ वि॰) नीलाममें मोल लिया हुआ।

नीलाम्बर (सं॰ पु॰) नीलमम्बरं यस्य। १ बलदेव। २ शनैश्चर। ३ राक्षस। (क्ली॰) नीलं अम्बरं कर्मधारय। ४ नीलवस्त्र, नीला कपड़ा। ५ तालीशपत्र। (त्रि॰) ६ नीलवस्त्रयुक्त नीले कपड़ेवाला।

नीलाम्बरी (सं॰ स्त्री॰) एक रागिनी।

नीलाम्बुज (सं॰ क्ली॰) नीलं अम्बुजं कर्मधारयः। नीलपद्म, नील कमल।

नीलाम्बुजन्मन् (सं॰ क्ली॰) अम्बुनि जायते जन, अम्बुजन्म नील अम्बुजन्म। नीलोत्पल, नीलकमल।

नीलाम्लान (सं॰ पु॰) न म्लायते-म्लै-क्त, नीलाम्लानः, नीलं अम्लानः। पुष्पभेद, काला कोरांठ। इसका गुण—कटु, तिक्त, कफ, वायु शूल कण्डू कुष्ठ व्रण, शोथ और त्वक्दोषनाशक है।

नीलाम्ली (सं॰ स्त्री॰) नीला अम्ली। क्षुपभेद, नीलपुष्प क्षुप। पर्याय—नीलपिष्टोड़ी, श्यामाम्ली, दीर्घमालिका। गुण—मधुर अम्ल और कफवातनाशक।

नीलारुण (सं॰ पु॰) नील अरुण वर्णौ यत्र, बहुव्रीहि समास। १ सूर्योदयकालमें अरुणवर्ण मिश्रित नीला आभा। २ नील और अरुण वर्ण विशिष्ट।

नीलालु (सं॰ पु॰) नीलः नीलवर्णः आलुः कर्मधारयः। कन्दभेद। पर्याय—असितालु, श्यामालुक। गुण—मधुर शीतल, पित्तदाह और श्रमनाशक।

नीलावती (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका धान।

नीलाशी (सं॰ स्त्री॰) नील नीलवर्णं अन्नं वा अश्नाति अण्-अण् गौरादित्वात् ङीष्। १ नीलनिर्गुण्डी नील सिन्धुवार।

नीलाशोक (सं॰ पु॰) नीलः नीलवर्णः अशोकः। नील वर्ण अशोक।

नीलाश्मजम् (सं॰ क्ली॰) तुत्थक, तूतिया।

नीलाश्मन् (सं॰ पु॰) नीला नीलवर्ण। अश्मा। नीलवर्ण प्रस्तरभेद, नीलकान्तमणि।

नीलाश्व (सं॰ पु॰) दैत्यभेद, एक दैत्यका नाम।

नीलासन (सं॰ पु॰) नीलः नीलवर्णः असनो वृक्षभेदः। १ असनवृक्ष, पियासालका वृक्ष। पर्याय—नीलबीज, नीलपत्र सुनीलक, नीलद्रुम, नीलसार, नीलनिर्यासक। गुण—कटु, शीतल, कषाय, सारक, कुष्ठ, कण्डू और कृमि नाशक। २ रतिबन्धविशेष, एक रतिबन्ध।

नीलाहट (हिं॰ स्त्री॰) नीलापन।

नीलाह्वा (सं॰ स्त्री॰) कृष्ण अपराजिता।

नीलि (सं॰ पु॰) नील इन्। मत्स्यभेद, एक मत्स्यका नाम।

नीलिका (सं॰ स्त्री॰) नील क टाप्, कापि अत इत्वं वा नीलीव कन् टाप्, पूर्वह्रस्वः। १ नीलवरी। २ नीला निर्गुण्डी, नील सिन्धुवार। पर्याय—नीली, नीलिनी, तूणी, कालदोला, नीलिका, रञ्जनी, श्रीफली तुत्था, ग्रामीणा मधुपर्णिका, क्लीतका कालकेशी, नीलपुष्पा। ३ नेत्ररोगविशेष, आंखका एक रोग। सुश्रुतमें इस रोगका

विषय इस प्रकार लिखा है—दोष जब चतुर्थ पटलमें आश्रय लेता है, तब तिमिररोग उत्पन्न होता है। जिस तिमिररोगमें कभी कभी एकबारगी कुछ न दिखाई पड़े उसे लिङ्गनाश कहते हैं और जिसमें आकाशमें चन्द्र सूर्य, नक्षत्र, बिजली आदिकी-सी चमक दिखाई पड़े उसे नीलका कहते हैं। जब यह रोग वायुसे उत्पन्न होता है, तब सभी पदार्थ अरुणवर्ण और सचल दिखाई देते हैं। पित्त कर्त्तृक उत्पन्न होनेसे आदित्य, खद्योत, इन्द्रधनु, तड़ित् और मयूरपुच्छकी तरह विचित्र वर्ण अथवा नील कृष्णवर्ण देखनेमें आता है अथवा सफेद बादलकी तरह अत्यन्त स्थूल और मेघशून्य समयमें मेघाच्छन्नकी तरह अथवा सभी पदार्थ जलप्लावित-से मालूम पड़ते हैं। रक्त कर्त्तृक इस रोगके उत्पन्न होनेसे सभी द्रव्य रक्तवर्ण और अन्धकारमय नजर आते हैं।

यदि यह रोग कफसे उत्पन्न हो, तो सभी वस्तु श्वेतवर्ण और स्निग्ध देखनेमें आती हैं। यदि यह सन्निपातज हो, तो जिधर ही नजर दौड़ाई जाय उधर ही सभी पदार्थ हरित, श्याम, कृष्ण, धूम्र आदि विचित्रवर्णविशिष्ट और विप्लुतकी तरह दीख पड़ते हैं। ४ क्षुद्ररोग भेद। क्रोध और परिश्रम द्वारा वायु कुपित हो कर तथा पित्तके साथ मिल कर मुखदेशमें आश्रय लेती है, इससे मुखमें छोटे छोटे फोड़े निकल आते हैं जिन्हें मुखव्यङ्ग कहते हैं। इस लक्षणका चिह्न जब शरीर वा मुखमें उत्पन्न होता है, तब उसे नीलिका कहते हैं।

इसकी चिकित्सा—शिरावेध, प्रलेप और अभ्यङ्ग द्वारा मुखव्यङ्ग, नीलिका, न्यच्छ और तिलकालककी चिकित्सा करनी होती है। वटवृक्षकी कली और मसूरको एक साथ पीस कर उसका प्रलेप देनेसे यह रोग दूर हो जाता है। मधुके साथ मञ्जिष्ठा पीस कर उसका अथवा शशकके रक्तका वा वरुणवृक्षके छिलकेको छागमूत्रसे पीस कर लेप देनेसे मुखव्यङ्ग और नीलिका नष्ट होती है। पकेवानके दूध और हल्दीको पीस कर उसका प्रलेप देनेसे भी बहुत दिनोंको नीलिका जाती रहती है। दूधके साथ पीसे हुए मसूरमें घी मिला कर मुखमें प्रलेप देनेसे नीलिकारोग प्रशमित होता है और मुखकी कान्ति उज्ज्वल होती है। वटवृक्षका हरा पत्ता, मालती, रक्तचन्दन, कुट और लोध्र इन सब द्रव्योंको पीस कर प्रलेप देनेसे नीलिका जाती रहती है। इस रोगमें कुङ्कुमादि-तैल ही सर्वोत्कृष्ट है। कुङ्कुमादि-तैलकी प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ८ सेर, कल्कार्थ कुङ्कुम, श्वेतचन्दन, लोध्र, पतङ्ग, रक्तचन्दन, खसकी जड़, मञ्जिष्ठा, यष्टिमधु, तेजपत्र, पद्मकाष्ठ, पद्ममूल, कुट, गोरोचना, हरिद्रा, लाक्षा, दारुहरिद्रा, गेरूमट्टी, नागकेशर, पलाशफूल, वटाङ्कुर मालती, मोम, सर्षप, सुरभिवच प्रत्येक द्रव्य आध छटांक, जल ३२ सेर।

इस तैलको धीमी आंचसे पाक कर प्रयोग करनेसे व्यङ्ग, नीलिका, तिलकालक, माषक, न्यच्छ आदि रोग प्रशमित हो कर चन्द्रमण्डलकी तरह मुखकान्ति उज्ज्वल होती है। (भावप्रकाश) ५ जलका ज्वर।

नीलिकाकाच (सं० पु०) नेत्ररोगविशेष। नीलिका देखो।

नीलिन् (सं० त्रि०) नीलः प्रशस्ततयाऽस्त्यस्य इति इन्। प्रशस्त नीलवर्ण युक्त।

नीलिनी (सं० स्त्री०) नीलिन् ङीप्। १ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। २ नीलवृक्षाढ्य, नीला बोना। ३ श्यामविपुटा। ४ अजमोदकी पत्नी। ५ सिंहपिप्पली।

नीलिनीफल (सं० क्ली०) नीलीबीज, नीलका बीया।

नीलिमा (हिं० स्त्री०) १ नीलापन। २ श्यामता, स्याही।

नीली (सं० स्त्री०) नीलो निष्पाद्यत्वेनऽस्त्यस्याः, नीलअच्, ततो गौरादित्वात् ङीप्। १ वृक्षभेद, नीलका पौधा। पर्याय—काला, क्लीतकिका, ग्रामीणा, मधुपर्णिका, रञ्जनी, श्रीफली, तुत्था, तूणी, दोला, नीलिनी, तूली, चोणी, मेला, नीलपत्री, राज्ञी, नीलीका, नीलपुष्पी, कालो श्यामा, शोधनी, श्रीफला, ग्राम्या, भद्रा, भारवाही, मोचा, कृष्णा, व्यञ्जनकेशी, महाफला, असिता, क्लीतनी, केशी, चोरटिका, गन्धपुष्पा श्यामलिका, रङ्गपत्री, महाबला, स्थिररङ्गा, रङ्गपुष्पा, तूलि, तूलिका, द्रोणिका।

इसका गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, केशहितकर, कास, कफ, वायु और विषोदर, व्याधि, गुल्म, जन्तु और व्रणनाशक।

भावप्रकाशके मतसे यह रेचक, तिक्त, केशहितकर और भ्रमनाशक है।

उष्णाका गुण—उदर, प्लीहा, वातरक्त और कफवायु-

कोमार्द। नील शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। २ नीलिका रोग। ३ नीलाञ्जनिका, नीला सुरमा। ४ काकाञ्जनि, काली कपास। ५ नीलफलिका बैंगनका पेड़। ६ शब्दारक।

नीलो (हिं० वि०) नाली रंगको, नीलके रंगको, काली, आसमानी।

नीलोघोड़ी (हिं० स्त्री०) १ काले अथवा नीले रंगका घोड़ा। २ कमरसे साथ सिलो हुई काठका घोड़ा। इसे पहन लेनेसे जान पड़ता है कि आदमी घोड़े पर सवार है। कहारको इसे पहन कर नाचते गाते हुए भीख मांगते निकलते हैं।

नीलोचकरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा।

नीलोथाय (हिं० स्त्री०) मजकुम या चचिया थाथ।

नीलोपल (सं० क्ली०) नीलम।

नीलोराग (सं० पु०) १ प्रेमभेद। २ स्थिर प्रेमगुणम। इसका पर्याय स्थिरसौहृद है। ३ नायक-नायिकाका पूर्वरागविशेष। जिस रागमें प्रकाशित प्रेम अधिक नहीं होता और अतिमात्र शोभित है, उस रागको नीलोराग कहते हैं। रामसीताका राग नीलीराग है।

नीलोरोग (सं० पु०) चक्षुरोगविशेष आंखका एक रोग। नीलिका देखो।

नील्ह (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास, पचनाग।

नीलेश्वर—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलेके अन्तर्गत कासरगोड़ तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १२° १६' उ० और देशा० ७५° ८' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां साधारणतः हिन्दू, मुसलमान और ईसाईका वास है। यह शहर पहले समसाके विरव्हल राजके अधीन था। १७८८ ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीने इस पर अपना दखल जमाया और राजाको पेन्शन मुकर्रर कर दी। आज तक भी राजाके वंशधरोंको पेन्शन मिलती है।

नीलोत्पल (सं० क्ली०) नील उत्पलम्' कर्मधा। नील पद्म (A blue lotus, Nympsea caeruloy), नीलकमल। पर्याय—उत्पलक कुवलय, इन्दीवर, कन्दोत्थ, सौगन्धिक, सुगन्ध, कुड़ नालक, असितोत्पल, वन्तोर, इन्दिरालय, इन्दीवार, नीलाम्बुज। गुण—सुस्वादु शीतल, सुरभि, सौख्यकारी पाकमें अतितिक्त और रक्तपित्त नाशक। उत्पल देखो।

नीलोत्पलमय (सं० त्रि०) नीलोत्पल-मयट्। नीलपद्म-बाहुल्य, नीलपद्मयुक्त, जिसमें नीलकमल हो।

नीलोत्पलाद्यघृत (सं० क्ली०) नीलोत्पलाद्य नाम घृत। चक्रपाणि दत्तोक्त घृतौषधभेद।

नीलोत्पली (सं० पु०) नीलोत्पल अस्त्यर्थे इनि। १ [illegible] एक गण। २ बौद्धमहात्मा मञ्जुघोषका एक नाम।

नीलोद (सं० पु०) नीलजलविशिष्ट सागर या नदी वह समुद्र या दरिया जिसका पानी नीला हो।

नीलोफर (फा० पु०) १ नील कमल। २ कुमुद, कुई। दवाओं नुसखोंमें कुमुद या कुई का ही व्यवहार होता है।

नींव (हिं० स्त्री०) १ घर बनानेमें गहरे गड्ढोंके रूपमें खुदा हुआ गड़ा जिसके भीतरसे दीवारकी जोड़ाई आरम्भ होती है, दीवार उठानेके लिए गहरा किया हुआ स्थान। २ दीवारके लिए गहरे किये हुए स्थानमें ईंट पत्थर, मिट्टी आदिकी जोड़ाई या भराव जिसके ऊपर दीवार उठाई है, दीवारकी जड़ या आधार। ३ स्थिति, आधार, जड़, मूल।

नींब (हिं० स्त्री०) नीम देखो।

नीवर (सं० पु०) नयत्याहारं यत्र कुत्रचित् देशवासान् नियादनार्थेपि नो वारण्, प्रत्ययेन निपातनात् दृष्टान्तादिष पाठः (सिद्धान्तकौ० ३।३।१) १ भिक्षुपरिव्राजक। २ वाणिज्य। ३ वासस्थान, रहनेकी जगह। ४ पङ्क, कीचड़। ५ जल, पानी।

नीवाक (सं० पु०) निरन्तर नियत या बढ़ते इति नि-वच्-घञ्, कुत्व उपसर्गस्य दीर्घत्व च। १ मूल्यादिसंवृद्धि धान्यादिमें लोभपूर्वक आहरणविषय। २ दुर्भिक्षकाल अन्न दुष्प्राप्ति, महंगी। पर्याय—प्रयाम, दुष्प्राप्य, अन्न दुर्मूल्य। ३ वचननिवृत्ति।

नीवाबाद (हिं० पु०) सत्यानाश, ध्वंस बरबादी। (वि०) २ नष्ट, चौपट, बरबाद।

नीवार (सं० पु०) नि-वृ-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घत्व। तृणधान्यविशेष, पसही या तिन्नीके चावल। पर्याय—अरण्यधान्य, वनब्रीहि, मुनिधान्य, तृणोद्भव, धरञ्ज आदि। गुण—मधुर, स्निग्ध, पवित्र, पथ्य, लघु। धान्य देखो।

नीवारक (सं० पु०) नीवार एव स्वार्थे कन् । नीवार, तृणधान्यभेद, तिन्नो ।

नीवारतुण्डिका (सं० स्त्री०) नीवार ।

नीवि (सं० स्त्री०) निव्ययति निवीयते वा नि-व्ये-इञ् यलोपः पूर्वस्य दीर्घः (नौव्यौ यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः । उण ४।१३५) १ पण, बाजो । २ वणिक्‌का मूलधन, पूंजी । ३ राजपुत्रादिका बन्धक । ४ स्त्रीकटीवस्त्रबन्ध, सूतकी डोरी जिससे स्त्रियां धोतीकी गांठ बांधती हैं, फुफुंदी, नारा । ५ वस्त्रमात्र, साड़ी, धोती । ६ कमरमें लपेटी हुई धोतीकी वह गांठ जिसे स्त्रियां पेटके नीचे सूतकी डोरीसे या यों ही बांधती है । ७ लहंगेमें पड़ी हुई वह डोरी जिससे लहंगा कमरमें बांधा जाता है, इजारबन्द

नीवीभार्य (सं० त्रि०) मैल आदिसे बचानेका वस्त्र-आच्छादक ।

नीवृत् (सं० पु०) नियतं वर्त्तते वसत्यत्र जनसमूहः इति नी-वृ अधिकरणे क्विप् । ततो पूर्वपदस्य दीर्घः (नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ । पा ६।३।११६) जनपद, देश ।

नीव्र (सं० क्ली०) नितरां व्रियते वृ-बाहुलकात् क पूर्वदीर्घश्च । १ छदिप्रान्तभाग, छप्परका सिरा या किनारा । पर्याय—वलीक, पटलप्रान्त । २ नेमि, पहियेका घेरा । ३ चन्द्र, चांद । ४ रेवतीनक्षत्र । ५ वन ।

नीशार (सं० पु०) निःशेषेण नितरां वा शीर्यन्ते हिमवाय्वादयोऽनेन अस्मादत्र वा शृ-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घत्वं । १ हिम और वायुनिवारक आवरणवस्त्र, सरदी हवा आदिसे बचावके लिये परदा, कनात । २ मसहरी ।

नीषह (सं० त्रि०) अतिक्रम, जय ।

नीस (हिं० पु०) सफेद धतूरा ।

नीसानी (हिं० स्त्री०) तेईस मात्राओंका एक छन्द । इसमें १३वीं और १०वीं मात्रा पर विराम होता है । यह उपनामके नामसे अधिक प्रसिद्ध है ।

नीसू (हिं० पु०) जमीनमें गड़ा हुआ काठका कुंदा जिस पर रख कर चारा या गन्ना काटते हैं ।

नीहार (सं० पु०) निह्रियते इति नि-हृ-घञ्, उपसर्गस्य घञीति दीर्घत्वं । १ तुषार, हिम, पाला । पर्याय—अवश्याय, तुषार, तुहिन, हिम, प्रालेय, महिका, खजल, निशाजल, निहार, मिहिका । यह कफ और वायुवर्द्धक माना गया है । २ कुज्झटिका, कुहरा । निहार देखो ।

नीहार—१ हिमालयके पाददेशमें अवस्थित एक प्राचीन जनपद । यह पौराणिक उल्लिखित जनपदके दक्षिण-पश्चिममें तथा वर्त्तमान, काबुल और सारखस नदीके सङ्गमस्थल पर जलालाबादके समीप अवस्थित था । यह नगर मत्स्य और वामनपुराणमें निगर्हर वा निराहार नामसे तथा आर्यावर्त्तमानचित्रमें निगर्हर नामसे उल्लिखित हुआ है । अध्यापक लासेनके मतानुसार इस स्थानका नाम नगरहार है । २ गोमतीतीरवर्त्ती एक ग्राम ।

नीहारस्फोट (सं० पु०) वृहदाकार नीहारपिण्ड, बर्फका बड़ा बड़ा टुकड़ा ।

नीहारिका (सं० स्त्री०) आकाशमें धूएंका कुहरेकी तरह फैला हुआ क्षीणप्रकाश पुञ्ज जो अंधेरी रातमें सफेद धब्बेकी तरह कहीं कहीं दिखाई पड़ता है ।

निहारिका देखो ।

नु (सं० अव्य०) नौति नुदति वा । नु, नद वा मितद्र्वादित्वात् डु । १ वितर्क । २ अपमान । ३ विकल्प । ४ अनुनय । ५ अतीत । ६ प्रश्न । ७ हेतु । ८ अपदेश । ९ आदेश । १० अनुताप । ११ संशय । १२ सम्मान । १३ सम्बोधन । १४ अपमान ।

नु (सं० पु०) अनुस्वार ।

नुकता (अ० पु०) १ बिन्दु, बिन्दी । २ लगती हुई उक्ति, फबती, चुटकला । ३ दोष, ऐब । ४ घोड़ोंके मत्थे पर बांधनेका एक परदा । यह झालरके रूपका होता है और इसलिये बांधा जाता है जिसमें आंखमें मक्खियां न लगें ।

नुकताचीन (फा० वि०) छिद्रान्वेषी, दोष ढूंढनेवाला या निकालनेवाला ।

नुकताचीनी (फा० स्त्री०) छिद्रान्वेषण, दोष निकालनेका काम ।

नुकती (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी मिठाई, बेसनकी छोटी महीन बुंदिया ।

नुकरा (अ० पु०) १ चांदी । २ घोड़ोंका सफेद रंग । (वि०) ३ सफेद रंगका ।

नुकरी (हिं० स्त्री०) जलाशयोंके पास रहनेवाली एक

चिकना । इसके पैर सफेद और चोंच काली होती है ।

नुकसान (अ० पु०) १ ह्रास, कमी, घटी । २ क्षति, हानि, घाटा । ३ अवगुण, दोष, विकार, बिगाड़, खराबी ।

नुकाई (हिं० स्त्री०) खुरपीसे निरानेका काम ।

नुकीला (हिं० वि०) १ नोकदार, जिसमें नोक निकली हो । २ सुन्दर बनका, नोक झोंकका, बाँका तिरछा ।

नुकीली (हिं० वि०) नुकीला देखो ।

नुक्कड़ (हिं० पु०) १ नोक, पतला सिरा । २ अन्त, सिरा, छोर । ३ निकला हुआ कोना ।

नुक्ता (हिं० पु०) १ नोक । २ घोड़ोंके चेहरेमें एक लकड़ी ।

नुक्स (अ० पु०) १ दोष, ऐब, खराबी, बुराई । २ त्रुटि, कसर ।

नुखना (हिं० क्रि०) नाखूनका खिंच ओढ़ना ।

नुचार (हिं० स्त्री०) छड़ीकी मार जो कलन्दर भालूके मुँह पर मारते हैं ।

नुचनी (हिं० स्त्री०) नुक्ती देखो ।

नुचिन—दिल्लीके निकटवर्ती एक नगर । यह माहरम-पुर जिलेमें पड़ता है और अक्षा० २८° २०' उ० तथा देशा० ७८° २६' पू०के मध्य अवस्थित है । यहाँ अनेक प्राचीन कीर्तियाँ देखनेमें आती हैं जिनमेंसे काशूलीका दुर्ग प्रसिद्ध है ।

नुंगक्लो—आसामके अन्तर्गत एक जिला । यहाँके राजा तीर्थसिंहने १८२६ ई०में अपना राज्य सन्धिपत्रके अनुसार अंग्रेजोंको सुपुर्द किया । सन्धिकी शर्त यह थी कि कम्पनी राजाको विदेशीय शत्रुके आक्रमणसे बचा लेगी । राजा देशके आईनके अनुसार प्रजाका पालन करेंगे । यदि कोई व्यक्ति कम्पनीके अधिकृत स्थानोंमें अन्याय कार्य करके राजाके राज्यमें आश्रय ले, तो राजा उसे कम्पनीके हाथ सौंप दे ।

नुचना (हिं० क्रि०) १ अंग या अंगके ऊपर लगी हुई किसी वस्तुका झटकेके साथ अलग होना, खिंच कर उखड़ना, उखड़ना । २ नखोंका जाना, नाखून आदिसे छिलना ।

नुचवाना (हिं० क्रि०) नोचनेमें किसी दूसरेको प्रवृत्त करना, नोचनेका काम कराना, नोचने देना ।

नुजट (हिं० पु०) संगीतमें २४ शोभाओंमेंसे एक ।

नुजिब्-उद्दौला—रोहिलखण्डके एक शासनकर्त्ता । १८वीं शताब्दीमें इन्होंने दिल्लीका शासनभार ग्रहण किया और शाहआलमके बड़े लड़के युवराज मिर्जा जवानबख्तको प्रतिनिधि बना कर राजकार्य चलाया । पानीपतकी लड़ाईके बाद १७६८ ई०में पेशवा माधोरावने बहुत बड़ी सेना संग्रह कर भारतवर्ष जीतनेके लिए उन्हें भेजा । विसाजी कृष्ण, माधोजी सिन्धिया और तुकाजी होलकरने सैन्यदलका नेतृत्व ग्रहण किया । जब इन्होंने राजपूत राजाओंको जीत लिया, तब नुजिब्-उद्दौला बहुत डर गये और उनसे मेल करना चाहा । लेकिन पानीपतकी लड़ाईमें इन्होंने मराठोंके विरुद्ध विपुल संग्राम किया था, इस कारण माधोजी सिन्धियाने प्रतिहिंसा साधनके इच्छुक हो कर उनका सन्धि प्रस्ताव मंजूर न किया । विसाजीने उनके सन्धिका समाचार पेशवाको लिख भेजा । पेशवाने हुक्म दिया कि यदि नुजिब्-उद्दौलाके साथ सन्धि करना किसीको भी नहीं भाता है, तो उनका प्रस्तावित विषय विचारपूर्वक सुननेमें क्या आपत्ति है ? तदनन्तर महाराष्ट्रोंके कौशल-क्रमसे यह स्थान पठानोंके हाथसे ले लिया गया किन्तु उनकी यह आशा फलवती न हुई । थोड़े ही दिनोंके मध्य १७७० ई०में नुजिब्-उद्दौलाका देहान्त हो गया ।

नुजिफ खाँ (नाजिफ खाँ)—१७७२ ई०में महाराष्ट्रोंका प्रभाव कम होने पर नुजिफ खाँने दिल्लीश्वरके सभामें फिरसे स्थान पाया ।

नवाबने वजीर नुजिफ खाँको सन्तुष्ट करनेके अभिप्रायसे पश्चात् सभामें उन्हें अपना प्रतिनिधि बनाया । नुजिफ खाँने कितनी ही लड़ाइयोंमें विजय पाई थी । रोहिलखण्डवासियोंके साथ जो लड़ाई छिड़ी थी उसमें इन्होंने अंग्रेज और सुजा-उद्दौलाका साथ दिया था और जाटोंका अभिमान चूर किया । आगरा नगरमें इनका प्रभाव फैल गया । जब ये दूर देशोंमें नाना कार्योंमें लगे थे, तब यहाँ उनके आत्मीय कर्मचारि जितने इनके मत हो गए । ये अब्दुल अहमद खाँको बादशाहकी सभामें अपना प्रतिनिधि छोड़ गए थे । इन्हींके हाथमें नुजिफ खाँने राजकार्य और सांसारिक कार्यका भार अर्पण किया था । इस नूतन दीवानकी सुजाउद्दौलाको पदसे

दी गई थी। उन्होंने सम्राट्‌के यहां नुजिफ खांको शिकायत कर अपनी प्रधानता जमानेमें खूब कोशिश की। नुजिफके विरुद्ध जो सब षड़यन्त्र चल रहे थे, उन्हें वे नहीं जानते थे, सो नहीं। उस समय वे भारी कामोंमें उलझे हुए थे, इस कारण उन्होंने इस ओर कुछ भी ध्यान न दिया। अपनी सुशिक्षित पदातिक सैन्यके गुणसे ही वे विराट् कार्यमें क्षतकार्य हुए थे। जिस समय दिल्लीके सम्राट् अंग्रेजोंके आश्रममें थे, उस समय उनके कर्त्तृक उक्त पदातिक सैन्यका उत्कृष्टांश सुशिक्षित हुआ था। नुजिफ खांके अधीन दो दल सेना थी जिनमेंसे एक दल जर्मनवासी समरूके और दूसरा दल फरासी मेडकके अधीन था।

नुजिफ खांने निर्विघ्नतासे अपनी असाधारण क्षमताको फैलाया। वे जुल्फिकर खांकी उपाधि ग्रहण कर अमीर-उल-उमराव हुए थे। अनन्तर न्यायपरायणता और दृढ़ताके साथ ये सम्राट् और साम्राज्य दोनोंका शासन करने लगे।

नुजिब-उद्दौला (नाजिब-उद्दौला)—रोहिलखण्डके एक ख्यातनामा सुदक्ष वीरपुरुष और जमींदार। १७५७ ई०में अहमदशाहने इन्हें सेनापतिके पद पर प्रतिष्ठित किया, किन्तु बादशाहके अनुपस्थितिकालमें वजीरने नाजिब उद्दौलाके स्थान पर अपने आदमीको नियुक्त किया। दिल्लीके राजपुत्र अलीजहर पिताके वजीरके स्वभावको सहन न कर सके और नाजिबकी शरणमें पहुंचे। बादशाहने पुनर्वार नाजिब उद्दौलाको सेनापति बनाया। इस समय २य आलमगीरके वजीर साहब उद्दीनने अपनी क्षमताको दृढ़ रखनेके लिये महाराष्ट्रोंसे सहायता मांगी। यह खबर जब रघुनाथ राव (राघव)को लगी, तब उन्होंने मालवसे दिल्लीयात्रा करके नगरमें घेरा डाला। नाजिब उद्दौला किसी तरह भाग गये। राघवने हिन्दुस्थानका त्याग कर सैन्यसमूहको दो दलोंमें विभक्त कर दिया। एक दल लाहोर चला गया और दूसरा दिल्लीमें ही रहा। शेषोक्त दलका नेतृत्व दत्तजी सिन्धियाके हाथमें था। उन्होंने साहब उद्दीनके आज्ञानुसार नाजिब उद्दौला और रोहिलखण्ड-वासियोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। अन्तमें नाजिब उद्दौलाने गोविन्दपन्थकी सेनाको तहस नहस कर गङ्गाके दूसरे पार मार भगाया। इसी बीचमें अहमदशाहने १७५८ ई०में पञ्जाब जीतनेके लिए आए और नाजिबके साथ मिल गए। दोनोंने मिल कर दत्तजी सिन्धियाको अच्छी तरह परास्त किया। अहमदशाहके मरने पर उनके पुत्र अलीजहरने शाहआलमकी उपाधि धारण कर सिंहासन पर अधिकार जमाया। इस समय रोहिल्लागण बहुत क्षमताशाली हो उठे थे और दिल्लीमें आ कर रहने लगे थे। सरदार नाजिबउद्दौलाने अपनी स्वाधीनता फैला दी और रोहिलखण्डमें राज्य करने लगे। १७७१ ई०के अक्तूबर मासमें इनका देहान्त हुआ।

नुजिब खां (नाजिब खां) रोहिलखण्डके एक शासनकर्त्ता। १७७२ ई०में महाराष्ट्रोंने रोहिलखण्ड पर आक्रमण कर इनके प्रचुर धन-रत्न हथिया लिए थे।

नुजीबाबाद—मुरादाबाद जिलेका एक नगर।

नजीबाबाद देखो।

नुजुफगढ़ (नाजफगढ़)—कानपुर जिलेके अन्तर्गत इलाहाबादके मध्यवर्त्ती एक नगर। यह कानपुर शहरसे १० कोस दक्षिण-पूर्व गङ्गाके किनारे अवस्थित है। वर्त्तमान समयमें यह एक प्रसिद्ध वाणिज्य स्थानमें गिना जाता है। इसके पास ही एक नीलकोठी है जिससे यह और भी प्रसिद्ध हो गया है।

नुटका—उत्तर-अमेरिकाके पश्चिम उपकूलवासी जातिविशेष। रकिपर्वतके शीतप्रधान स्थानसे ले कर समुद्र-तट तक इनका वास है। अङ्गरेजोंने इनका 'नुटका-कलम्बीय' नाम रखा है। किन्तु यह नाम उनका देशीय नहीं है। दलभेदसे ये कई नामोंसे पुकारे जाते हैं, यथा चेनुक, क्लोटसप, वाकश, सुल्टलोमा वा क्लामथ।

ये देखनेमें अङ्गरेजोंसे गोरे होते हैं। किन्तु देश व्यवहारके अनुसार ये अपने सर्वाङ्गमें नाना प्रकारका मट्टी लेपे रहते हैं। इनके मस्तकका आकार अपरापर मनुष्योंके जैसा होता है लेकिन कुछ चिपटा होता है। इस कारण इनका मस्तक किस जातिके जैसा है, इसका निरूपण करना कठिन हो जाता है। जब लड़का जन्म लेता है तब उसके मस्तकमें दोनों बगल काठकी पटरी जोरसे बांध देते हैं। कुछ कालके बाद ही उसका मस्तक सदाके लिए चिपटा हो जाता है। आश्चर्यका विषय यह

है, कि ऐसी विकृताकारसे उनके स्वास्थ्य वा सुविधाकी कोई हानि नहीं होती। ये लोग बलिष्ठ और असभ्यता-सुलभ चतुर होते हैं। किन्तु इतने शीतल स्थानमें रहने पर भी ये वस्त्रोंकी यथावत् पहनना नहीं जानते। इसीका कारण है, कि ये हमेशा रोएँदार भालूका चमड़ा पहने रहते हैं। ये लोग सुकोमल और नम्रताके साथ अपने वासोपयोगी गृहादि और प्रयोजनानुसार नौकादि बनाते हैं।

इनका आचार-व्यवहार अन्यान्य मनुष्यजातिसे पृथक् है। मांस मछली ही इनकी प्रधान उपजीविका है। शीतकालमें भोजनके लिए ये पहले हीसे मछली को भून कर रखा रखते हैं। जब इन्हें खानेको मछली मिल जाती है तब वे कुछ नहीं कमाते और बड़े चैनसे दिन काटते हैं। इस समय कोई कोई दलपति वन में जा कर अनाहार ऐन्द्रजालिक मन्त्रसाधन करते हैं। इस प्रकारके तपस्वियोंको 'ताम्बिम' कहते हैं। इन लोगोंका विश्वास है कि दलपति तपस्याके समय 'तोर्नोक' नामक एक देवताके साथ कथोपकथन करते हैं और उन्हींकी कृपासे नाना प्रकारके अलौकिक कार्य कर सकते हैं।

प्रवाद है, कि हुटका लोग नरमांस खाते हैं किन्तु यह कहां तक सच है, कह नहीं सकते। 'ताम्बिम' तपस्विगण किसी किसी दिन कृष्णलोमविशिष्ट चर्मसे शरीर ढक कर और मस्तक पर वल्कलनिर्मित सामग्रीके मुकुट पहन कर वनसे बाहर निकलते और ग्राममें प्रवेश करते हैं। उन्हें देखनेके साथ ही आबालवृद्धवनिता डरके मारे भाग जाते हैं, केवल जो आलसी हैं, वे ही उनके सामने आते हैं। इस समय वे उन्हें पकड़ कर उनके हाथसे दो तीन ग्रास मांस काट लेते हैं। मांस काटनेके समय और दो कर स्वाद रखना ही प्रथा प्रचलित है। जो ऐसा नहीं करते उनको समाजमें निन्दा होती है। ताम्बिम भी यदि अवाकाय तथा लोभवाले मांस काट न सकें, तो उनकी भी निन्दा फैल जाती है। उल्लिखित प्रकारसे जितना मांस खाया जाता है, उसीसे अनुमान कर सकते हैं, कि ये लोग कहां तक मांसाशी हैं। इसके अलावा ये अन्य नरमांस भोजन नहीं करते।

इनकी भाषाका अनुशीलन करनेसे ये मङ्गोल जातिकी शाखा समझे जाते हैं। दोनों जातियोंकी भाषाके अनेक शब्दोंके शेष भागमें 'तन' वा 'तनी' शब्द लगा रहता है और दोनों ही एक ही अर्थमें व्यवहृत होते हैं। उदाहरणस्वरूप दो एक शब्द और उनके अर्थ नीचे दिए जाते हैं यथा—'आपलुरलिसुत'—आलिङ्गन, 'तोमकलिकिसुत'—चुम्बन। 'तिसुसनूजितक'—मुखान। 'आयकोवातन'—युवती, रमणी इत्यादि।

इनके घर काठके बने होते हैं जो बहुत अपरिष्कार और मछलीकी गन्धसे परिपूर्ण रहते हैं। घरमें काठकी अनेक पुतलियां रहती हैं। कभी कभी मछली पकड़नेके जितने औज़ार हैं तथा जिन प्रकारसे मछलियां पकड़ी जाती हैं, उन्हें भी खोदाईमें अङ्कित कर देते हैं। इनका आवासस्थान जैसा अपरिष्कार रहता, परिधेय वस्त्रादि भी वैसा ही रहता है।

सूई कपड़ेका ये लोग ज़रा भी व्यवहार नहीं करते और न इसे बुनना ही जानते हैं। मालूम होता है, चमड़ेके अभावसे 'तालन' वृक्षकी छालकी बनी हुई एक प्रकारकी चटाई पहनते हैं। कभी कभी चटाईके नीचे घास रोएँ ढक कर उसे ही शरीरके ऊपर रख लेते हैं।

इनका प्रधान खाद्य मछली है। इनका घर हमेशा मछलीसे भरा रहता है। मछलीकी गन्ध इतनी तीव्र होती है कि हुटकाके सिवा अन्य मनुष्य घरमें प्रवेश नहीं कर सकते। ये लोग मछलीका तेल भी पीते हैं और उसी अण्डेसे एक प्रकारकी रोटी बनाते हैं।

ये लोग बड़े असभ्य होते हैं, इस कारण इनकी बुद्धि शक्ति उतनी प्रखर नहीं होती। शिकार खेलने तथा मछली पकड़नेके सिवा ये दूसरा कोई काम नहीं जानते। आचार-व्यवहारमें ये लोग एस्किमो जातिकी अपेक्षा सब प्रकारसे निकृष्ट हैं।

हुत (सं० त्रि०) हु-क्त। हुत, अर्पित, जिसकी आहुति या प्रदान की गई हो।

हुतरिका—आसामके अन्तर्गत एक क्षुद्र शहर। यह अक्षा० २६° ०' उ० और देशा० ९१° ११' पू०के मध्य अवस्थित है।

हुति (सं० स्त्री०) हु-भावे-क्तिन्। १ स्तुति, वन्दना। २ पूजा।

नुत्त (सं० त्रि०) नुद-क्त पाणिनीय सूत्रानुसार (नुदविदोन्द । पा ८।२।५६) १ क्षिप्त, घबराया हुआ। २ प्रेरित, भेजा हुआ। ३ दूरीकृत। ४ सञ्चालित।

नुत्फा (अ० पु०) १ शुक्र, वीर्य। २ सन्तान, औलाद।

नुत्फाहराम (अ० वि०) १ जिसकी उत्पत्ति व्यभिचारसे हो, वर्णसंकर, दोगला। २ कमीना, बदमाश।

नुनगाम—काश्मीरका एक परगना। क्षेत्रफल १०११ वर्गमील है। इसमें कुल २७ जमींदारी लगती हैं और राजस्व (१,०२०) रुपया है।

नुनखरा (हिं० वि०) स्वादमें नमक सा खारा, नमकीन।

नुनखारा (हिं० वि०) नुनखरा देखो।

नुनना (हिं० क्रि०) लुनना, फसल काटना।

नुनी (हिं० स्त्री०) छोटी जातिका वृक्ष। यह हिमालय पर काश्मीरसे ले कर सिक्किम तक तथा आसाम और दक्षिण-भारतके पहाड़ों पर होता है।

नुनेरा (हिं० पु०) १ लोनी मिट्टी आदिसे नमक निकालनेवाला, नमक बनानेका रोजगार करनेवाला। २ लोनिया, लोनिया। लोनिया देखो।

नुन्दरगाम—मान्द्रेज जिलेका एक नगर। पहले यह नगर बहुत विस्तृत था। अभी इसके चारों ओर ध्वंस प्राचीर रह गए हैं। यह अक्षा० २१° २५' उ० और देशा० ७४° १५' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके पासकी जमीन बहुत उर्वरा है, किन्तु जलाभावसे उपयुक्त शस्यादि नहीं होते। नगरमें एक पर्वतकी चूड़ी पर शाहतगोरकी कब्र है। उसके ऊपर एक मन्दिर बना हुआ है। इसके अलावा और भी कितने मन्दिर देखनेमें आते हैं।

नुन्दियाम (दूसरा नाम गाजीपुर)—चान्दाघाट जिलेके अन्तर्गत एक बहुजनाकीर्ण शहर। इसके चारों ओर मट्टीकी दीवार है और बीचमें एक दुर्ग है। यह अक्षा० १५° २३' उ० और देशा० ७८° २७' पू०के मध्य अवस्थित है।

नुन्न (सं० त्रि०) नुद क्त निष्ठा तस्य पूर्वपदस्य च नः। १ नुत्त, क्षिप्त, घबराया हुआ। २ प्रेरित, भेजा हुआ।

नुब्र—लद्दाखके उत्तरपश्चिममें अवस्थित एक जिला। यह हिमालयके उत्तर पश्चिम सायुकनदीके किनारे अक्षा० ३५°से ३६° उ० और देशा० ७७°से ७८° पू०के मध्य अवस्थित है। जिसके चारों तरफ अत्यन्त ऊँचा और दुर्गम है।

नुवाकोट—नयपाल राज्यका एक छोटा शहर। यह अक्षा० २७° ५६' उ० और देशा० ८५° १४' पू०के मध्य काठमाण्डूसे १२ कोस पूर्व-उत्तरमें अवस्थित है।

नुमायश (फा० स्त्री०) १ प्रदर्शन, दिखावट, दिखावा। २ सजधज, ठाटबाट, तड़क भड़क। ३ नाना प्रकारकी वस्तुओंका कुतूहल और दर्शनके लिए एक स्थान पर दिखाया जाना। ४ वह स्थान जिसमें अनेक स्थानोंसे इकट्ठी की हुई पदार्थ और अद्भुत वस्तुएं दिखाई जाती हैं।

नुमायशगाह (फा० स्त्री०) वह स्थान जहां अनेक प्रकारकी उत्तम और अद्भुत वस्तुएं संग्रह करके दिखाई जायँ।

नुमायशी (फा० वि०) १ दिखाऊ, दिखौआ, जो देखनेमें भड़कीला और सुन्दर हो, पर टिकाऊ या काममें न हो। २ जिसमें ऊपरी तड़क भड़क हो, भीतर कुछ सार न हो।

नुरि (नूरि)—बेलुचिस्तानके कलातके अन्तर्गत सुलेमानी एक जातिके मनुष्य। ये लोग मुसलमान धर्मावलम्बी हैं। कहते हैं कि ये मुसलमान किसी राजपूतके गर्भमें उत्पन्न हुए हैं, ऐसा प्रवाद है। ये सात शाखाओंमें विभक्त हैं।

नुरङ्गपुर—त्रिपुराराज्यका एक परगना। इसका क्षेत्रफल ७१३ वर्गमील है। इस परगनेमें कुल चार जमींदारी लगती है।

नुरिसट्ट—सेलिया पहाड़के मध्यवर्ती एक नगर। इस स्थानके अधिवासी पत्थरके स्तम्भ बनाते हैं। कैप्टेनियल स्तुअर्ट साहबका कहना है कि इन स्तम्भके साथ उनके धर्मका सम्बन्ध है।

नुवलराय (नवलराय)—इटावाजिलावासी एक सक्सेना कायस्थ। अपने जीवनके प्रारम्भमें ये अयोध्याके नवाब बुर्हान-उल-मुल्कके यहां लेखकके कार्यमें नियुक्त हुए।

बुर्हानके मरने पर उनके भागिनेय सफदरजङ्ग अयोध्याके नवाब-वजीरपद पर अभिषिक्त हुए। उन्होंने

नवीनरायको राजाकी उपाधि दे कर अन्यान्य और अपने सहकारीरूपमें नियुक्त किया। इस समय सफदरको कई वर्ष दिल्लीमें रह कर विद्रोहियोंको दमन करना पड़ा था और नवलराय अन्य कुमाऊँके साथ अयोध्याप्रदेशके शासनकार्य चला रहे थे। जब बादशाह महम्मदशाह अली महम्मदखाँके विरुद्ध युद्धयात्रा कर बंगश जिलेके बड़ाङ्गदुर्गको जीत न सके, तब नवाब वजीरके आदेशसे महाराज नवल अयोध्याको गए और एक ही दिनमें दुर्ग-वासियोंको तहस-नहस कर शत्रुको परास्त कर दिया। इस पर सफदरने प्रसन्न हो कर इनकी बड़ी तारीफ की और बहुमूल्य पदार्थ पुरस्कारमें दिये। १७५० ई०में जब रोहिला-पठान विद्रोही हो उठे, तब महाराज नवल उन्हें दमन करनेके लिये अग्रसर हुए। इस युद्धमें ये महम्मद खाँ बङ्गशके साथ बहुत काल तक असीम साहसके साथ लड़ते हुए मारे गए। पीछे इनके लड़के खुशालसिंह राजा हुए।

नुवल (नवलसिंह)—भरतपुरके जाट जातीय राजा सूर्यमल्लके तृतीय पुत्र, ये पत्नीके प्रथम गर्भजात। सूर्यकी मध्यमा पत्नीके द्वितीय पुत्र रत्नसिंहकी मृत्युके बाद उनके पांच वर्षके पुत्र कीरोसिंह मन्त्रियोंके [illegible] राजपद पर प्रतिष्ठित हुए। अपनी भतीजेका राज्यकार्य चलानेके लिये नवलसिंह नियुक्त हुए। करीब एक मासके बाद कीरोसिंहकी मृत्यु हो गई। अब नवलसिंह सिंहासन पर बैठे और स्वाधीनभावसे राज्यशासन करने लगे।

राज्यवर्द्धनकी ओर इनका विशेष ध्यान था। ११८६ हिजरीमें इन्होंने बाबु जाटके पुत्र अजीतसिंहसे रामगढ़ दुर्ग छीन लिया। इस समय अजीतने सहायताके लिये दिल्लीके राजदेवा [illegible]। किन्तु रास्तेमें ही नवलने उन्हें मार भगाया। इस युद्धमें इन्होंने दिल्लीके अधिकारभुक्त सिकेन्द्रा और अन्यान्य स्थान छीन लिये। पीछे बादशाह शाह आलमने सेनाध्यक्ष नजफ खाँको इनके विरुद्ध भेजा। [illegible] और बर्साने निकट दोनोंमें लड़ाई छिड़ी। पहले नवलने जो सब स्थान अपने अधिकारमें कर लिये थे उनमेंसे नजफ खाँ फरीदाबाद और बल्लभगढ़ आदि जीत कर पीछे दीग दुर्ग जीतनेके लिये अग्रसर हुए। इसी दुर्गमें नवलसिंह रहते थे। नजफ खाँ इस दुर्गको दो वर्ष तक घेरे रहे थे। इसी समयके मध्य नवलकी मृत्यु हुई।

नुजिगढ़—[illegible] अन्तर्गत एक नगर। यह फर्रुखाबादसे १८ मील दक्षिण पश्चिममें अक्षा० २७ १४' उ० और देशा० ७८ ११' पू०के मध्य अवस्थित है।

नुसखा (अ० पु०) १ लिखा हुआ कागज। २ कागजका वह चिट जिस पर हकीम या वैद्य रोगीके लिये औषध सेवनविधि आदि लिखते हैं, दवाका पुरजा।

नुसरत खाँ तुगलक (नसरत)—फिरोज तुगलकके पौत्र। १३९४ ई०में दिल्लीके अमीरगण दो दलोंमें विभक्त हुए। उनमेंसे एक दलने बादशाह महम्मदका और दूसरेने नसरतका पक्ष अवलम्बन किया। इस प्रकार गृह-विवाद खड़ा हुआ और तीन वर्ष तक विषम हाहाकार चलता रहा। १३९८ ई०में नसरत एकबारगी हाथकी कठपुतली बन गए। किन्तु अन्तमें इकबालने नसरत खाँको दगावाजीके साथ नगरसे बाहर निकाल दिया था।

नूपुर—दिल्लीके अधीन एक छोटा नगर। यह अक्षा० २८° २६' उ० और देशा० ७७ १० पू० [illegible] नगरसे १४ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

नूजविद (नूजिवोडू)—१ मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक जमींदारी। यह प्राचीन स्थान किसी [illegible] जमींदारके कब्जे था। इसका क्षेत्रफल ६८४ वर्गमील है। यह जमींदारी ६ भागोंमें विभक्त है, यथा—१ [illegible], २ [illegible], ३ मिर्जापुर, ४ कपिलेश्वरपुर, ५ वेमोल् और ६ मदुरा। वार्षिक आय (१००००) रु०की है।

२ उक्त जमींदारीका सदर और प्रधान नगर। यह अक्षा० १६ ४७' २१" उ० और देशा० ८० ५१' २०" पू०के मध्य अवस्थित है। बेजवाड़ासे यह २६ मील उत्तर पूर्व एक ऊँची भूमि पर बसा हुआ है।

यहां एक प्राचीन मट्टीका दुर्ग है जो अभी जमींदारोंके आवासस्थानमें परिणत हो गया है। यहांका वेङ्कटेश्वर स्वामीका मन्दिर करीब चार सौ वर्षका पुराना है। उस समयका बना हुआ एक वृहत् मुसलमानधर्म-मन्दिर भी है जिसका आदर बहुत कम लोग करते हैं।

गत शताब्दीमें प्रवुके हाथमें यह नगर बसाया गया है। यहांसे १५ मील दक्षिण-पूर्व पेरिमलिङ्ग ग्राम तक जो रास्ता गया है, वही इस नगरका प्रवेशपथ है। यहां मारियम्म और ग्रामके अनेक दरगत हैं।

नूजगढ़ा—कृष्णा जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह विनुकोण्डसे ८ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहांके अग्र-यारुदेवमन्दिर और मंडपके सामने स्तम्भगात्रमें शिला-लिपि उत्कीर्ण है। ग्रामसे १ मील उत्तरमें एक प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

नूजिकल—दक्षिण-भारतकी एक नदी। यह कूर्ग राज्यके पश्चिमघाट पर्वतकी मेरकारा शाखाके निकटवर्त्ती सम्पाजी उपत्यकासे निकलती है और पश्चिमाभिमुख होती हुई मन्द्राजके दक्षिण कणाड़ा जिलेको पार कर कासरगोड़के निकट बसवनी नामके आरब्योपसागरमें गिरती है।

नूत (सं० वि०) नू-स्तवने कर्मणि क्त। स्तुत, प्रशंसित।

नूत (हिं० वि०) १ नूतन, नया। २ अनोखा, अनूठा।

नूतन (सं० वि०) नवएव तनप्‌ नवस्य नूरादेशय। (नवस्य नूरादेशस्त्नप्तनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः। वार्त्तिक ५।४।२५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या तनप्‌। १ अपुरातन, नया, नवीन। पर्याय—प्रत्यग्र, अभिनव, नव्य, नव, नवीन, नूत्न, सद्यस्क, अजीर्ण, अभ्यय, प्रतिनव। २ विलक्षण, अपूर्व, अनोखा।

नूतनगुड (सं० पु०) अभिनव गुड, नयागुड़।

नूतनद्वीप—भारतमहासागरके बोर्नियो द्वीपके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक द्वीपपुञ्ज। इसके उत्तर और दक्षिणमें इसी नामके दो छोटे छोटे द्वीप हैं। उत्तरस्थ द्वीप-पुञ्ज अक्षा० ४° ४५' उ० और देशा० १०°८' पू०में पड़ता है। अक्तूबरसे दिसम्बर मास तक बहुतसे जहाज इसी द्वीपके दक्षिणपथ हो कर निरापदसे चीनबन्दरको जाते आते हैं। दक्षिणस्थ द्वीपपुञ्ज अक्षा० १° उ० और देशा० १०८° पू०के मध्य बोर्नियोद्वीपके उत्तरपश्चिममें अवस्थित है। मधास्थ वृहत्‌द्वीप ३४ मील लम्बा और १६ मील चौड़ा है। इसकी चौड़ाई सब जगह एकसी है। इसके चारों ओर असंख्य छोटी छोटी द्वीपावली देखनेमें आती हैं। ये सब द्वीप पर्वतमय हैं। कोई कोई पहाड़ तो इतना ऊंचा है, कि उसका शिखर ४५ मील दूरसे दीख पड़ता है। यहां मलयजातिका वास है।

नूतनता (हिं० स्त्री०) नवीनता, नयापन, नूतनका भाव।

नूतनत्व (सं० पु०) नयापन, नवीनता।

नूतनपक्कम्—मन्द्राज प्रदेशके कर्नूल जिलेका एक ग्राम। यह नन्दीकोटकुरसे १२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां आञ्जनेयका एक भग्नमन्दिर है जिसमें एक अस्पष्ट शिलालिपि खोदी हुई है।

नूत्न (सं० वि०) नव एव नवस्य त्नप्‌ नूरादेशय। नूतन, नया।

नूद (सं० पु०) नुदति रोगानिति नुद-क पृषोदरादित्वात्‌ दीर्घः। अश्वत्थाकार वृक्षविशेष, शहतूत। शहतूत देखो।

नून—उड़ीसाके अन्तर्गत पुरी जिलेकी एक प्रधान नदी। यह जिलेके मध्यभागसे निकल कर अक्षा० १९° ५२' ३८" उ० और देशा० ८५° ३८' पू० दयानदीमें आ कर मिल गई है। इस नदीमें कभी कभी बाढ़ आ जाया करती है जिससे तीरस्थ शस्यादि नष्ट हो जाते हैं। इसकी तीर-भूमि स्वभावतः ऊंची है और जलस्रोतको रोकनेके लिए कहीं कहीं बांध भी दे दिये गए हैं।

नून (हिं० पु०) १ नमक। २ दक्षिण-भारत तथा आसाम बरमा आदि देशोंमें मिलनेवाली आलकी जातिकी एक लता। इससे एक प्रकारका लाल रंग निकलता है। इसका व्यवहार भारतवर्षमें कम लेकिन जावा आदि द्वीपोंमें बहुत होता है।

नूनम्‌ (सं० अव्य०) नु ऊनयतीति ऊन परिहाणे अम्‌। १ तर्क, ऊहापोह। २ अर्थनिश्चय। ३ अवधारण। ४ स्मरण। ५ वाक्यपूरण। ६ उत्प्रेक्षा।

नूना—१ बालेश्वर जिलेके पहड़ा परगनेका एक प्रकाण्ड बांध। यह अक्षा० २०° ५८' से २१° १२' उ० और देशा० ८६° ५२' से ८६° ५५' पू० तक विस्तृत है। समुद्रका जल जिससे ग्राममें प्रवेश न कर सके, इसलिये यह बांध दिया गया है। किन्तु कभी कभी यह बांध अनिष्टका कारण हो जाता है। १८६७ ई०में गंगाईनदीका जल बांध रहनेके कारण बाहर निकलने नहीं पाया था जिससे

विशेष अनिष्टकी सम्भावना हो गई थी। किन्तु ईश्वरको अनुकम्पासे यह दोष उनके मनसे दूर भगा था। २ हिमालयपुरकी एक नदी।

नूनी—मुर्शिदाबादसे ४६ कोस उत्तर-पश्चिमके कोनमें अवस्थित एक क्षुद्र नगर। यह अक्षा० २८° १६' उ० और देशा० ८७° ८' पू०के मध्य अवस्थित है।

नूपुर (सं० पु० क्लो०) नू-क्विप नुवि पुरति पुर अग्रगमने-क। १ अलङ्कारविशेष पादभूषण, पैरमें पहननेका स्त्रियोंका एक गहना, पैंजनी, घुंघरू। २ नकुलके पुत्रका नाम। ३ इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा।

नूपुरवत् (त्रि०) नूपुर विद्यतेऽस्य, मतुप् मस्य व। नूपुरयुक्त, जिसने नूपुर पहना हो।

नूर (अ० पु०) १ ज्योति, प्रकाश, आभा। २ श्री, कान्ति, शोभा। ३ ईश्वरका एक नाम। ४ सङ्गीतमें बारह मुकामोंमेंसे एक।

नूरबख्श—मुसलमानोंके सूफी-सम्प्रदायके एक गुरु और मीर मसुम बखोआरके पुत्र और शिष्य। इनके पिता दाक्षिणात्यवासी और पीछे वह अली एका नामक किसी मुसलमानसे दीक्षित हुए। पारस्यराज करीम खाँके राजत्वकालमें ये सिराफुल्ल भारतवर्षको छोड़ कर शिराजनगरको चले गए और वहां उन्होंने अपने अनुमित नये मतका प्रचार किया। थोड़े ही दिनोंके मध्य प्रायः तीस हजार मनुष्य इनके शिष्य हो गए। नूर अलीने पहले इस्पाहन नगरमें धर्मोपदेशको अवतारणा की। उनकी अवस्था कम होने पर भी दया और बुद्धिमें वे बहुतोंको मात करते थे। मुसलमान ऐतिहासिकगण मुक्तकण्ठसे इनका गुणानुवाद कर गए हैं। दिनों दिन इनको शिष्यसंख्या बढ़ती देख इस्पाहनके धर्मयाजकगण जल उठे। पीछे उन्होंने षड़यन्त्र करके सूफी-साम्प्रदायिक मतके विरुद्ध निन्दा करते हुए राजा अलीमर्दन खाँसे अभियोग और सत्य इसलामधर्मकी स्थापनाके लिए आवेदन किया और कहा कि नव धर्मके कारण लोगोंका जो विश्वास है उसे ये लोप करा रहे हैं। यह सुन कर राजा बहुत बिगड़े और इसलामधर्मके ऊपर विशेष आस्था दिखलाते हुए यह कहा, कि इस प्रकार नवधर्मका निन्दावाद धर्मविरुद्ध और राजनीतिविरुद्ध है। अतः उसी समय उन्होंने हुक्म दिया कि इन विधर्माचारियोंके नाक कान काट कर देशसे निकाल दो। फिर क्या था, मूर्ख सैनिकोंने आज्ञा पाते ही, जो सामने मिले उनकी नाक, कान और दाढ़ी काट डाली। इस समय मुसलमानधर्मके अपभ्रंश अर्थात् निर्दोष इसलाम धर्मसेवियोंको यह निग्रहभोग करना पड़ा था। ये नाना स्थानोंमें भ्रमण कर मुक्तनगरको छोड़ आए। प्रवाद है, कि विष खा कर ये मरे थे। इस समय इनके प्रायः साठ हजार शिष्य हो गए थे।

नूरुद्दीन् तरखानी—एक कवि। ८०१ हिजरीमें जिस समय पारस्यराज तहमास्पने अधिकारमें पाया, तब इनके पिता मौलाना अबदुर रज्जाक सिहरमानसे मारे गए थे। ये पहले गिलानके शासनकर्ता अहमद खाँके अधीन काम करते थे। पिताकी मृत्यु और अहमदकी राज्यच्युति देख कर ये कौसाजविनको भाग गए। पीछे ८९१ हिजरीमें वे अपने भाई मसीहउद्दीन् और हुमामको साथ ले भारतवर्षको भाग आए। सम्राट् अकबर शाहने पहले इन्हें सेनाध्यक्षके पद पर नियुक्त किया, किन्तु ये अश्वारोहणसे बिलकुल पराङ्मुख थे। एक समय जब ये बिना हथियारके अपने दलके बीच आ खड़े हुए, तब साथियोंने इनकी खूब हँसी उड़ाई। इस पर उन्होंने जवाब दिया कि इनके जैसा विद्यानुरागीको युद्ध विद्या अच्छी नहीं लगती। इन्होंने और भी कहा था, कि जब तैमूर दिग्विजय जीतनेको अग्रसर हुए, तब उन्होंने ऊँट गधादिको सेनाके बीचमें और स्त्रियोंको सबके पीछे रखा था। जब कोई उनसे विद्वान् व्यक्तिका स्थान पूछते, तब वे कहा करते थे कि स्त्रियोंके भी पीछे विद्वान् और पण्डितोंके रहनेका स्थान है, कारण विद्यानुरागी व्यक्ति कभी भी साहसी नहीं हो सकते।

इनके असद्व्यवहारसे असन्तुष्ट हो कर सम्राट् अकबरने इन्हें मक्कामें भेज दिया। यहां ८८८ हिजरीमें सुलतान खाँके शासनाधीन मक्कामें जो राष्ट्रविप्लव हुआ, उसीमें नूरुद्दीन्‌की मृत्यु हुई।

नूरुद्दीन् सराय—पञ्जाबके बड़ो-दोआब विभागके अन्तर्गत एक नगर। यह इरावती नदीके बाएं किनारे १० कोस दक्षिण-पूर्व और लाहोर नगरसे १३ कोस पूर्व-

दक्षिणमें अक्षा० ३१° ३०´ उ० तथा देशा० ७५° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है।

नूरउद्दीन् महम्मद—एक मुसलमान ग्रन्थकार। इन्होंने 'जामो-उल-हिकायत' नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा जिसे १२३० ई०में दिल्लीश्वर अलतमसके सैन्याध्यक्ष निजाम-उल-मुल्क महम्मदके नाम पर उत्सर्ग किया था।

नूरउद्दीनमहम्मद मिर्जा—अलाउद्दीन् महम्मदके पुत्र और ख्वाजा हुसेनके पौत्र। सम्राट् बाबरको कन्या गुलरुख बेगमसे इनका विवाह हुआ था। इन्हींकी कन्या सलिमा सुलताना अकबरके कहनेसे १५५८ ई०में खानखाना बैराम खांको व्याही गई थी।

नूरउद्दीनमर्क्‌दूनी—एक मुसलमान कवि। हिराटके खोरा-सन प्रदेशके अन्तर्गत जामनगरमें इनका जन्म हुआ था मशहद शहरमें इन्होंने पढ़ना लिखना समाप्त किया। बाबरशाहसे परिचित होनेके पहले हुमायूंके साथ इनका सखा-भाव था; सम्राट् हुमायूं इन्हें खूब प्यार करते थे, सभी समय अपने साथ रखते थे। इनके आचरण-से सन्तुष्ट हो कर सम्राट्‌ने सर्कदून परगना इन्हें जागीरमें दिया। तभीसे ये सर्कदूनी कहलाने लगे। सम्राट् अकबरको तरफसे इन्हें समाना परगनेकी फौज-दारी और 'नवाब-तरखान'की उपाधि मिली थी। समानाके फौजदारके पद पर रह कर इन्होंने ग़ैरमहम्मद दीवानको धनूरी नामक स्थानमें परास्त किया। ८७३ हिजरीमें इनका शरीरावसान हुआ था।

१५६८ ई० वा ९७७ हिजरीमें ये यमुना नदीसे कर्नाल तक एक नहर काट ले गए। यह नहर सेखू-नहर नामसे प्रसिद्ध है। इसी साल सम्राट् अकबर शाह-के पुत्र जहानगीरका जन्म हुआ था। आदरके साथ इन्होंने सम्राट्‌पुत्रका 'सेखबाबा' नाम रखा। सुलतान सलीम-के मान्यके लिये उक्त नहरका नाम सेखू पड़ा। विद्या-चर्चाके लिए कोई कोई इन्हें मुल्ला नूरउद्दीन् कहा करते थे। काव्य-जगत्‌में इन्होंने विशेष ख्याति लाभ की थी। सामयिक कवियोंने इन्हें "नूरी"की पदवी दी थी। इनकी बनाई हुई "दीवान" और "स्तोत्र-माला" नामक दो पुस्तक मिलती हैं।

नूरउद्दीन् शेख—एक ऐतिहासिक। इन्होंने पारस्य भाषामें "तारीख-काश्मीर" नामक काश्मीरप्रदेशका एक इति-हास लिखा है। इस ग्रन्थका शेष खण्ड हैदर मल्लिक और महम्मद अजीमसे समाप्त हुआ था।

नूरउन्निसा-बेगम—मिर्जा इब्राहिम हुसेनकी कन्या और गुलरुख बेगमकी गर्भजाता तथा मुजफ्फर हुसेन मिर्जा-की बहन। युवराज सलीमके साथ इनका विवाह हुआ था। यही सलीम भविष्यत्‌में भारतके इतिहासमें जहान्‌-गीर नामसे प्रसिद्ध हुए। १०२२ हिजरीमें ये वर्त्त-मान थे।

नूरउलहक—१ एक ग्रन्थकार, दिल्लीवासी अबदुल हकबिन सैफुद्दीनके पुत्र। इन्होंने पिताके लिखे हुए इतिहासका पूर्ण संस्कार कर "जुब्दत्-उत्-तवारिख" नामसे उसको प्रकाश किया। पूर्वग्रन्थमें जो सब भूल और त्रुटि थीं उन्हें यथास्थान पर सन्निवेशित कर इन्होंने उज्ज्वल भाषामें पुस्तक लिखी और सहीबुखारी तथा इस्लामधर्म-के विषयमें एक "सारा" लिखा। सम्राट् आलमगीरके राजत्वकालमें १६६२ ई०को इनकी मृत्यु हुई।

अल-मसालो, अल-देलावी और अल बुखारा ये सब इनके मर्यादा-सूचक नाम हैं। इनके इतिहासमें बङ्गाल, दाक्षिणात्य, दिल्ली, गुजरात, मालव, जौनपुर, सिन्धु, काश्मीर आदि देशोंके राजाओंका संक्षिप्त विवरण है।

२ एक विचारपति। ये १७८६ ई०में विद्यमान थे और बरेलीमें काजीका काम करते तथा पारस्य भाषामें कविता लिखनेमें विशेष पारदर्शी थे। पारस्य भाषामें इन्होंने तीन लाखसे भी अधिक श्लोकोंकी रचना की। इनकी कवितामेंसे श्लोकके ढंग पर लिखित कुरान-टीका, अरबी और पारसीभाषामें लिखित काशीदास ग्रन्थ कुछ मसनवी और तीन दीवान मिलते हैं। कविताशक्ति-के कारण इन्हें "सुनाइम"-की उपाधि मिली थी।

नूर-उल्ला-सुस्तरी—सम्राट् अकबरशाहकी राजसभाके एक उमराव। इनका असल नाम "नूर-उल्ला-बिन-सरीफ-उल-हुसेन उल-सुस्तरी" था। इन्होंने "मजलिस-उल्-मोमिनीन्" नामक एक ग्रन्थकी रचना की। इस विस्तृत जीवनीमें 'शिया' सम्प्रदायके विशिष्ट उमरावों-का इतिवृत्त लिखा है। इतिहासके सम्बन्धमें यह एक अमूल्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थके ५म मजलिस वा भागमें

विंशत प्रमादगण जीवनी और अवतारजीवीयोंका इतिहास लिखा है। इनके बनाये ग्रन्थ चिकित्सा या शफोम के कोयमचरितके शेष भागमें इनके कृत ग्रन्थादिके नाम भी वर्णित हैं। शिया सम्प्रदायके मत पर इनकी विशेष श्रद्धा थी। इस कारण जहांगीरके राजत्वकालमें १६१० ई०को इन्हें यथेष्ट कष्ट भुगतने पड़े थे।

नूर व किरात—भारतवर्षके पश्चिम सीमान्तवर्ती काबुल नदीकी शाखा। नूर और किरात नामक दो शाखाएं विभिन्न स्थान होती हुई एक साथ मिल कर काबुल नदीमें गिरी हैं।

नूरवोल्ली—दाक्षिणात्यके बीजापुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह बीजापुर राजधानीसे १८ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लाल पत्थरके पहाड़के ऊपर यह नगर बसा हुआ है। यहांके मकान भी लाल पत्थरके ही बने हुए हैं। इसके दक्षिण-पश्चिममें अपेक्षाकृत उच्च पहाड़के ऊपर एक बड़ा और दुर्गम दुर्ग रचित है। इसका शिल्प कार्य और गठनादि उतना सुन्दर नहीं है।

नूरगढ़—मुगलराजधानी दिल्लीके निकटवर्ती एक नगर। यह अभी अलीगढ़ नामसे मशहूर है।

नूरगुल—दाक्षिणात्यके बीजापुर प्रदेशके अन्तर्गत एक छोटा जिला। यह घाटप्रभा और मालप्रभा नामक दो नदीके सङ्गमस्थल पर बसा हुआ है। इस जिलेमें बदामी और रामदुर्ग नामक दो नगर लगते हैं।

नूरघांट—बम्बई प्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक नगर। पेशवा नारायणरावकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र माधवरावने १७७४ ई०में सिंहासन ग्रहण किया। इनके सिंहासन पर बैठनेसे रघुनाथरावने ईर्षान्वित हो सूरतमें अंगरेजोंसे सहायता मांगी। अंगरेजी सेना पूनानगरसे नूरघाटमें जो चार कोसकी दूरी पर था, पहुंच गई। इधर महाराष्ट्रगण भी पूनासे उक्त नगरकी ओर अग्रसर हुए। दोनों दलमें घमसान युद्ध चला। युद्धमें किसी भी पक्षकी जीत न हुई। किन्तु रातको अंगरेजी सेनाध्यक्षने पेशवासे मेल कर लिया और रघुनाथको उनके हाथ सुपुर्द कर दिया।

नूरजहान् (नूरमहल, मेहेरुन्निसा)—भारतवर्षके मुगल सम्राट् जहांगीरकी प्रियतमा महिषी। १६११ ई०में इनके साथ सम्राट् जहांगीरका विवाह हुआ था। तभीसे ले कर १६ वर्ष तक नूरजहान्की जीवनी ही जहांगीरके राजत्वका इतिहास है। नूरजहान् महिषी हो कर अत्यन्त क्षमताशालिनी हो गई थी। बिना इनकी सलाह लिए सम्राट् कोई काम नहीं करते थे। इस समय इनके जितने भी आत्मीय-स्वजन राज्यके प्रधान प्रधान पद पर अभिषिक्त हुए थे।

नूरजहान्के इतिहासका पता जहां तक जो कुछ मालूम हुआ है उससे इनके पितामह तकका कुछ कुछ विवरण जाना जाता है; उसके पहलेका कुछ भी नहीं। नूरजहान्के पितामहका नाम था ख्वाजा महम्मद शरीफ। पारस्यनगरके तिहरान् नगरमें उनका धाम था। पारस्यके अन्तर्गत खोरासान प्रदेशमें जब महम्मद-खाँ-तकलू उरोम् उगलु-तातलु 'सेनापति' थे, उस समय ख्वाजा महम्मद शरीफ उनके मन्त्री थे, (१) और उसी समयसे उनकी प्रतिष्ठा जम गई—वे एक प्रतिभावान कवि भी थे। "हिजरी" (२) यह उपनाम धारण कर वे कविता लिखते थे। पूर्वोक्त उगलुतातलुके पुत्रने जब तातारसुलतानपद प्राप्त किया, तब ख्वाजा महम्मद शरीफ ही वजीरके पद पर नियुक्त हुए। उस सुलतानकी मृत्युके बाद उनके पुत्र काजीखाँके समयमें भी ख्वाजा महम्मद शरीफ ही वजीरके पद पर वर्त्तमान थे (३)। पीछे खोयाजख खाँ जब मर गए, तब पारस्यराज शाह तमास्पने ख्वाजा महम्मद शरीफको बुला कर यास्द नामक राज्यका वजीरीपद प्रदान किया (४)।

किसी किसी ऐतिहासिकका मत है कि वे पारस्यराज शाह् तमास्पके ही वजीरीपद पर नियुक्त हुए थे। मुगलसम्राट् हुमायूं जब शेरशाहसे भगाए गए थे, तब वे पारस्यराज शाह तमास्पके यहां अतिथि हुए थे। उस समय शाह तमास्पने जिन सब अमीरों और कर्मचारियोंको उनकी सेवा शुश्रूषामें

(१) Ikbal nama i-Jahangiri (Elliot Vol. p. 430.)

(२) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 622.)

(३) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 508 इसके और इकबालनामामें खोजायक खांका उल्लेख नहीं है।

(४) Ikbal nama-i Jahangiri (Blochmann, p. 403.)

नियुक्त किया था, उनमेंसे वजीर ख्वाजा महम्मद शरीफ भी एक थे (५)। ९८४ हिजरीमें ख्वाजा महम्मद शरीफ अनेक पुत्र पौत्रादिको छोड़ परलोक सिधारे।

ख्वाजा महम्मद शरीफके दो भाई थे। एकका नाम था ख्वाजा मिर्जा अहम्मद और दूसरेका ख्वाजाकाजि ख्वाजा (६)।

९८४ हिजरीमें ख्वाजा महम्मद शरीफकी मृत्यु हुई। उस समय उनके आगामहम्मद-ताहिर और मिर्जा गयासुद्दीन् महम्मद नामक दो पुत्र वर्त्तमान थे। आगामहम्मद ताहिर भी पिताकी तरह, 'वासल' उपनामसे कविता लिखते थे (७)। मिर्जा गयासुद्दीन् महम्मद भी उस समय परिणतवयस्क, विवाहित, दो पुत्र और दो कन्याके पिता हो चुके थे। मिर्जा गयासुद्दीन् मुसलमान इतिहासमें गयासबेग नामसे प्रसिद्ध थे। प्राचीन अङ्गरेज ऐतिहासिकोंने "गयासबेग" शब्दको "आयाल" शब्दका अपभ्रंश समझ कर 'आयासबेग' नामसे इनका उल्लेख किया है। गयासबेगका अस्मा उद्दौलाकी कन्यासे विवाह हुआ था। अस्माउद्दौला (मिर्जा अलाउद्दीन्) आगामोल्लाके लड़के थे। जब ख्वाजा महम्मद शरीफकी मृत्यु हुई, उस समय गयासके महम्मद शरीफ और मिर्जा अबुलहुसेन् नामक दो पुत्र तथा मनीजा और खदीजा नामक दो कन्यायें थीं। इन चारोंका पारस्य देशमें ही जन्म हुआ था।

९८४ हिजरीमें पिताकी मृत्युके बाद ही गयास स्त्री पुत्रकन्याको ले कर स्वदेशसे निकल पड़े। इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि इस समय इन्हें यथेष्ट कष्ट भुगतने पड़े थे।

जो कुछ हो, गयासबेगने दारापत्यके साथ ही स्वदेशका परित्याग किया। इस समय उनकी स्त्री पुनः गर्भिणी थी। केवल गर्भिणी ही नहीं, प्रसवका समय भी निकट पहुंचा था। किन्तु दुरदृष्टके प्रभावसे गयासबेग पत्नीके प्रसवकाल तक भी देशमें ठहर न सके। आसन्नप्रसवा पत्नी और चार पुत्रकन्याको ले कर (१) उन्होंने देश छोड़ दिया। कहां जायेंगे, इसका कुछ निश्चय था नहीं, निःसहाय अवस्थामें यत्किञ्चित् सम्बल ले कर पूर्व दिशाकी ओर चल दिये। पितृवियोग वर्षमें ही गयासबेगने स्वदेशका त्याग किया था। (२)

क्रमशः गयासबेगने पारस्य छोड़ कर अफगानिस्तानके सीमान्तवर्त्ती कन्दहारकी मरुभूमिमें प्रवेश किया। यहां डकैतोंने उनका सर्वस्व छीन लिया। विपद्के ऊपर विपद् पड़ जानेसे गयास राहमें वणिकोंसे भीख मांग मांग कर दिन बिताने लगे। इस प्रकार वे धीरे धीरे मरुभूमि पार कर वनप्रान्तमें पहुंचे। इस समय पथश्रम और दुर्दशाकी दुर्भावनासे पीड़ित हो कर गयासबेगकी पत्नी प्रसववेदनासे व्याकुल हो पड़ी। असहायके सहाय भगवान् हैं, इसलिये उस समय कोई भारी चोट न पहुंची। सुखशरीरसे उसने एक अपूर्व सुन्दरी कन्या प्रसव की। यही कन्या आगे चल कर भारतकी साम्राज्ञी नूरजहान् हुई।

कन्याको गोदमें लेनेके साथ ही उन दोनोंकी आंखें डब डबा आईं और उसे ले कर किस प्रकार रास्ता तै करेंगे यह सोच कर वे बहुत व्याकुल हो पड़े। सद्यःप्रसूता अनीगहिषी गयासपत्नी यदि कन्याको गोदमें ले कर राह चलेगी, तो यह निश्चय है या तो उसीको जान जायगी या दुग्धाभावसे जङ्गलमें वह सुकुमार बच्चा हो माताकी गोदमें सदाके लिये सो रहेगी, इस चिन्तासे वे दोनों फूट फूट कर रोने लगे। अन्तमें सद्योजात कन्याको भगवच्छरण पर छोड़ जाना ही उन्होंने स्थिर कर

(५) विश्वकोषके ८म भाग, १५७ पृष्ठमें जहान्‌गीर शब्द देखो।

(६) इन दोनों भाइयोंके साथ भारतका कोई संस्रव नहीं है। ज्येष्ठ मिर्जा अहम्मदके पुत्र ख्वाजा अमीन राजी (पारस्यदेशमें रायशहरवासी) वा कालान्तर मजिष्ट्रेट थे। वे एक प्रसिद्ध पर्यटक और कवि थे। १००२ हिजरीमें उनका 'हफ्त इकलिम" नामक ग्रन्थ रचा गया। सम्राट् जहान्‌गीरके यहां इस काव्य और कविका विशेष आदर था। ख्वाजाकाजी ख्वाजा और उनके पुत्र ख्वाजाशाह दोनों ही साहित्यसेवी थे। Ain-i-Akbari, Blochmann, p. 503.)

(७) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 622.)

(१) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 510-11)

(२) „ „ „ „ p. 504.

किया। इसकी उपस्थितियों पर खुश हो कर, इसकी पत्नियोंमें कई कर गयासबेगने भारतकी भविष्यत् साम्राज्ञीको मरुभूमिके किनारे बबूलवृक्षके तले पर छोड़ दिया और आप घोड़े पर सवार हो वहांसे चल दिए। उस समय उनके सिर्फ दो घोड़े बच गए थे। सद्योजात सन्तानको इस प्रकार छोड़ कर गयास-बनिता अविरल धारामें अश्रुमोचन करती हुई स्वामीकी अनुवर्त्तिनी हुई। आप बोसका रास्ता तै करने भी न पाया था, कि शोक और मोहसे गयासबनिता अचान हो घोड़ेकी पीठ परसे नीचे गिर पड़ी। गयासने देखा—जिसके माताकी रक्षाके लिये सद्योजात शिशु तकको भी छोड़ आये हैं, वही शिशु विच्छेदने उसीको जान जाने पर है। बाद पत्नीको गोदमें ला कर पुनः घोड़े पर बिठा दिया और आप उस कन्या-को लाने चले गये। शिशुके पास पहुंच कर गयासने देखा, कि एक विषधर सर्प शिशुके ऊपर फण फाड़े हुए है। यह देख कर भी गयासके होश उड़ गए और कुछ देर बाद भयसे चीत्कार करने लगे। चीत्कार सुन कर सर्प बहुत फुर्तीसे भाग गया। गयासने उस कन्या को गोदमें ले लिया और जहां तक हो सका बहुत तेजीसे परिवारवर्गके निकट पहुंच कर सारा विवरण कह सुनाया। बाद सब किसीने भगवान्‌को धन्यवाद देते हुए पुनः यात्रा आरम्भ कर दी।

इसी समय दीदिसे भारतगामी एक दूत वणिक् आ पहुंचा। यह इनके भाग्य से मलिक मसऊद। ये भी उसीके साथ आ रहे थे। गयासबेग इन मार्गमेंसे किसी मलिक मसऊदके पास पहुंचे। मलिकने गयास-परिवार का आचार-व्यवहार और आकृति प्रकृति देख कर उनका परिचय पूछा। गयासबेगने भी उनको सहृदयतासे मुग्ध हो कर आद्योपान्त सब बातें कह सुनाईं। मलिक मसऊद महात्मा कन्याके अतुलनीय रूपलावण्य पर मोहित हो उसे अपनी गोदमें दिखलाया। मसऊदपत्नीने भी वह रूप देख कर और स्वामीके मुखसे सारा विवरण सुन कर आनन्दपूर्वक स्वयं उस कन्याके लालन-पालनका भार ग्रहण किया और कन्याकी माताको धात्रीरूपमें कन्याकी माताको भी नियुक्त किया। गयासकी गृह, अमानुषीय

आश्रय पा कर असहायतासे अभिभूत हो गई। (१)

अब मलिक मसऊद और गयासबेग दोनोंने मिल कर यात्रा की। दोनोंमें गाढ़ी प्रीति हो गई। यात्रा मध्यमें गयासबेगको मालूम हो गया कि मसऊदको भारतके मुगलसम्राट् अकबरके यहां खूब चलती बनती है। गयास इस भविष्यत् सुविधाकी आशासे मलिक मसऊदके निकट विशेष विनीत, शान्त और बाध्य हो कर रहने लगे। १५८५ ई०में (२) मसऊद गयासबेगको साथ ले परिवार सहित भारतकी अन्यतम राजधानी लाहोर पहुंचे। बादशाह अकबर कुछ समय लाहोरमें ही थे (३)। फ़तेहपुरसीक्रीमें वे नहीं रहते थे।

एक दिन गयासको साथ ले मलिक मसऊद सम्राट्‌के दरबारमें उपस्थित हुए। दरबारमें गयासको एक और अभावनीय सुयोग मिला। जाफरबेग आसफ खाँ नामक एक उच्च पदके राजकर्मचारीके साथ उनका परिचय हुआ। परिचयसे मालूम हुआ कि वे दोनों एक ही वंश के हैं। इस आत्मीयकी सहायतासे मिर्जा गयासउद्दीन, मसऊद सम्राट्-दरबारमें अच्छी तरह परिचित हो गए।

सम्राट्‌ने उनका विवरण जान कर अपने यहां आश्रय दिया और कुछ दिन बाद उनसे सदयवहारसे प्रसन्न हो कर तीन सौ सेनाका मनसबदार बनाया। अपने भाग्यके जोरसे गयासबेग विदेशी भारतवर्षमें आ कर इस प्रकार मनसबदार हुए। उस समय अकबर बादशाहके राजत्वका ३०वां वर्ष चल रहा था।

गयासबेग इस प्रकार सम्राट् अकबरशाहके मनसबदारके पद पर अधिष्ठित हो क्रमशः सम्राट्‌के प्रीतिभाजन हो गए। बाद दोनोंमें गाढ़ी प्रीति भी हो गई। कथाप्रसङ्गमें अकबरको मालूम हुआ कि सम्राट् हुमायूं शाह जब शेरशाहसे विताड़ित हो कर पारस्यदेश भाग गए थे, तब गयासबेगके पिता ख्वाजा महम्मद शरीफने उनकी अच्छी सहायता की थी। यह जान कर अकबर

(१) Ain-i-Akbari (Blochmann p. 509) विश्वकोष ४म भाग १५० पृष्ठ देखो।

(२) विश्वकोष ४म भाग १५० पृष्ठ देखो।

३ Elliot's Mahommedan Historians, Vol. VI. p 397 Dow's Hindostan III. p 23

शाहका हृदय कृतज्ञतासे परिपूर्ण हो गया। इस कृतज्ञताके प्रत्युपकारस्वरूप सम्राट्‌ने तीन सौ सेनाके मनसबदार गयासको पहले काबुलकी दीवानीके पद पर, पीछे एकहजारी मनसबदारके पद पर और तब बुयुतात दीवानी (सांसारिक व्यापारके अध्यक्ष)-के पद पर नियुक्त किया *। क्रमशः गयासकी पत्नीके साथ अकबर-की महिषी सलीमकी माता मरियम जमानीकी अत्यन्त घनिष्ठता और मित्रता हो गई। वे प्रायः कन्याको ले कर बादशाह बेगमके अन्तःपुरमें जाया करती थी (१)। जिस अपूर्व सौन्दर्यललामभूता कन्याने कन्दहारके मरु-प्रान्तमें जन्म लिया था, वह कन्या आज बड़ी हुई और उसका नाम रखा गया मेहेरुन्निसा अर्थात् 'रमणीकुल-दिनमणि'।

गयासबेग धीरे धीरे अपनी उन्नति करने लगे। अपने परिवारके लिए भी उन्होंने अच्छी व्यवस्था कर दी। जिस कन्याके जन्म होनेके बादसे उनकी दुर्दशाका क्रमशः अवसान हो गया, गयासने सबसे पहले उसी कन्याको तालीम करनेके लिए जहां तक हो सका सुव्यवस्था कर दी। उसकी परिचर्याके लिए दिलारानी नामक एक धात्री नियुक्त हुई। (२)

मेहेरुन्निसाने नृत्य, गीत, वाद्य, चित्रविद्या तथा काव्य-में धीरे धीरे अच्छी व्युत्पत्ति लाभ कर ली। थोड़े ही दिनोंमें वे कविता और गानरचनामें पारदर्शिनी हो गईं। उनका सुयश चारों ओर फैल गया। सलीमकी माता उन्हें बहुत चाहती थीं, मेहेरुन्निसा कभी कभी उनको खुश करनेके लिए नाचती, गाती तथा कविता-की रचना कर उन्हें सुनाती थीं। (३)

एक दिन गयासबेगने अपने यहां राज्यके सम्भ्रान्त लोगोंको निमन्त्रण किया। शाहजादा सलीम भी निम-न्त्रित हुए। सलीमका असल नाम था महम्मद नूर-उद्दीन। ९७७ हिजरी (१५६९ ई०)की १८वीं रबिउल अव्वलको फतेपुर शहरमें शेख सलीम चिस्तीके घरमें जन्म होनेके कारण वे सलीम नामसे प्रसिद्ध हुए। इस समय उनकी चढ़ती जवानी थी। भगवान् सिंहकी कन्या जोधबाई और बीकानेरके राजा रायसिंहकी कन्याके साथ उनका विवाह हो चुका था। जो कुछ हो, निमन्त्रण-में सलीम गयासके घर पहुंचे। उत्सव समाप्त हो जाने पर जितने अभ्यागत आए हुए थे, सब चले गए, केवल सलीम रह गए। गयासने उनके लिये शराब मंगवाई। उस समय ऐसा नियम था, कि राजा वा राजपुत्रोंकी अभ्यर्थना करनेमें निमन्त्रणकर्त्ताके परिवार-की रमणियोंको उनके सामने आना पड़ता था। गयास-बेगने भी वैसा ही किया। मेहेरुन्निसा और अन्यान्य रमणियोंने आ कर शाहजादाकी संवर्द्धना की। मेहेरु-न्निसाने शराबका बोतल युवराजके हाथमें दिया। सलीम कन्दर्पलाञ्छन थे, इधर मेहेरुन्निसा भी रतिविनिन्दिता थीं। ऐसे शुभ अवसरमें एकका मन दूसरेके प्रति आकृष्ट हो गया। पीछे मेहेरुन्निसा कोकिलकण्ठसे वीणा-विनिन्दिस्वरमें देववालाका हावभाव दिखा कर गाने लगीं। उस मधुर तानसे शाहजादाकी हृदयतन्त्री बोल उठी। मेहेरुन्निसा भी उस समय युवती थीं, विद्यावल और सहवासके गुणसे लोकचरित्र भी कुछ कुछ सम-झती थीं। सलीमका भाव देख कर वे समझ गईं, कि युवराज उनके गान पर मोहित हो गए हैं। अब उन्होंने नाचना आरम्भ कर दिया। इस समय सलीम-को ऐसा मालूम होने लगा मानो उनके हाथ पैरके सञ्चालनसे रूपकणा विकीर्ण हो रही है। सलीमका दिमाग चकराने लगा। अपनी मर्यादाको भूलते हुए वे टक लगा कर मेहेरुन्निसाके प्रत्येक अङ्गप्रत्यङ्गकी गठन और शोभाको देखने लगे। इस समय हठात् वायुके सञ्चालनसे मेहेरुन्निसाका घूंघट अलग हो गया। नृत्य-का ताल भङ्ग न हो जाय, इस भयसे वे उसे संभाल न सकीं। लज्जा और भीतिविजड़ित सङ्कोचपूर्वक युव-

* विश्वकोष जहांगीर शब्द देखो—८म भाग १५७ पृ०। Ain-i Akbari (Blochmann, p. 509)

(१) Dow's Hindostan III, p. 24.

(२) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 510) Waki-at-i-Jahangiri (Elliot's History of India vol. VI p. 394)

(३) विश्वकोष ८म भाग १५० पृ०; Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 524)

राजाके पुत्रको और जब उसने पिये ताना, पर मेहेर-
निसाने अपना सिर नीचे कर लिया। उस दृश्यने, उस कटाक्षसे सलीमके हृदयमें अनुरागको ज्वाला धधक उठी। वह यह अलग हो जानेका बहाना कर मेहेरु-न्निसाने नाचना बन्द कर दिया। सलीम भी अपने घरको चले गए। इसके बाद जब तक वे घरमें रहे, तब तक उनके मुखसे एक भी बात न निकली। (१)

तदनन्तर दोनोंके मनमें एक दूसरेके प्रति अनुराग बढ़ने लगा। सलीम मेहेरुन्निसाको पानेके लिए नितान्त उत्सुक और उद्विग्न हुए। यह बात धीरे धीरे गियासउद्दीनके कानमें पड़ी। बादशाह अकबरने पुत्रके इस अभिप्रायको जरा भी पसन्द न किया। क्योंकि उस समय ऐसा नियम था, कि जब किसी राजकर्मचारीको अपनी कन्याका विवाह करना होता था, तब उसे राजाकी अनुमति लेनी पड़ती थी। गयासबेगने भी इसी प्रकार तुरकमान जातीय अलीकुलीबेग नामक एक सुरूप सुपण्डितके साथ जो दो सौ सेनाके मनसबदार थे, विवाहसम्बन्ध स्थिर करके सम्राट्‌की अनुमति ले ली थी। जिसे एक बार कन्यादान देनेकी अनुमति दी जा चुकी है, उसे अब पुत्रके अनुरोधसे अन्यथा करना बादशाहने अच्छा नहीं समझा, बल्कि जिससे प्रस्तावित पात्रके साथ शीघ्र ही विवाह हो जाय उसके लिए दीवान गयासबेगसे अनुरोध किया। उन्होंने समझा था, कि दूसरेके साथ ब्याही जाने पर सलीम मेहेरुन्निसाको पानेकी आशा ही छोड़ देंगे किन्तु ऐसा न हुआ। विवाहकी पक्की बातचीत हो जाने पर भी सलीमने एक दिन पिताके सामने अपना मतलब प्रकट किया। यह सुनते ही बादशाह आगबबूला हो गए और सलीमको तिरस्कार करते हुए सामनेसे निकलवा दिया। इस प्रकार तिरस्कृत हो कर लज्जासे सलीमके चेहरे पर जर्दी आ गई। उसी दिनसे उन्होंने प्रकाश्यरूपसे मेहेरु-न्निसाके पानेकी चेष्टा छोड़ दी (२)।

(१) Dow's Hindostan III. p. 24-25. किसी लेखकने बहादुरीसे इसको लिखा है, कि सलीमने मातृगृहमें गुप्तरीतिसे अन्य मेहेरुन्निसाको एक दिन हठात् देखा था । ...

(२) Dow's Hindostan Vol. III p. 25.

पहले कहा गया है, अलीकुलीबेग इस्ताजलुके प्रधान तुरकमानगोष्ठीय होने पर भी इसी पदके अनुसार पारस्यराजका अधीन नौकरी करना पड़ा था। वे शाह इस्माइल (द्वितीय) के 'सफर्ची' (भोजन-परिचारक) थे। इस्माइलकी मृत्यु होने पर अलीकुलीबेग कन्दहारसे भारतवर्षको चले आए। मुलतानमें इनके साथ प्रधान सेनापति मिर्जा अबदुर्रहीम खानखानाका परिचय हो गया। उन्होंने इन्हें सेनादलमें भरती कर लिया। खानखाना उस समय ठट्टा जीतनेको जा रहे थे। अलीकुली भी उनके साथ हो लिये। युद्धमें अलीकुलीने अपना विशेष वीरत्व दिखा कर सुख्याति लाभ की। खानखाना १००८ हिजरी (अकबरके राज्यके ४४वें वर्ष) में सिन्धुको जीत कर जब दरबार लौटे तब उन्होंने अलीकुलीबेग इस्ताजलु-का बादशाहके साथ परिचय करा दिया। सम्राट्‌ने खानखानाके मुंहसे युद्धमें इस नवीन युवाको वीरत्व-कहानी सुनी, तब उन्होंने उन्हें दो सौ सेनाके मनसबदारके पद पर नियुक्त किया। पीछे अलीकुली कुमार सलीमके साथ राणाप्रतापके विरुद्ध युद्धमें भेजे गए; इस समय भी उन्होंने अपनी बहादुरी दिखा कर अच्छा नाम कमा लिया था (१)। पीछे जहांगीरने इस कामसे प्रीत हो कर उन्हें 'शेर अफगान' की उपाधि दी (२)।

इसी समय सलीम और मेहेरुन्निसाके साथ पूर्वोक्त घटना घट रही थी। इस लिए अकबरने दीवान गियासबेगको इसी 'शेर अफगान' के साथ कन्याका विवाह करनेको कहा था। बादशाहके अनुरोधसे उन्हींके साथ मेहेरुन्निसा ब्याही गई (३)। १५९८ ई०में कुछ पहले यह

(१) Ain-i Akbari (Blochmann p. 524)

(२) Ikbal-nama-i-Jahangiri (Elliot Vol VI p. 402.) किन्तु इकबालनामाकी दूसरी जगह (Elliot Vol. VI. p. 404) लिखा है कि 'शेर अफगान' की उपाधि जहांगीरसे दी गई थी।

(३) Ain I Akbari (Blochmann, p. 524.)

आईन-ए अकबरीमें लिखा है, कि जहांगीरने सम्राट् हो कर इन्हें बङ्गदेशके एक पद पर नियुक्त किया था किन्तु "तुजक जहांगीरी" नामक जहांगीरके स्वलिखित जीवनचरितमें इसका कोई उल्लेख नहीं है। आईन ए अकबरीके अन्त और अङ्गनामके इतावारी ... के विवरणमें लिखा है, कि वह

दिन दोनों मिल कर शिकार खेलनेके लिये किसी जङ्गल-में गए। शिकारियोंको आस पासके ग्रामवासियोंसे खबर लगी कि अमुक जङ्गलमें एक बड़ा भारी बाघ है जो उन-के मवेशीको हमेशा मारा करता है। जहांगीर दल-बलके साथ वहां पहुँच गए। बाघ चारों ओरसे घेर कर बीचमें लाया गया। सम्राट्‌ने हँसीके बहानेसे अपने अनुचरोंको कहा, 'हमारे इतने महावीर अनुचरों-मेंसे जो अकेला व्याघ्र पर आक्रमण कर सके, वह आगे बढ़े।' यह सुन कर सबके सब एक दूसरेका मुँह देख निश्चेष्ट हो रहे। बहुतोंने शेरअफगानकी ओर भी दृष्टि डाली थी। शेर-अफगान उस दृष्टिपातका मर्म समझ न सके। अन्तमें तीन अमितसाहसी उमराव हाथमें तल-वार लिए तैयार हो गए। इन्हें देख कर शेर-अफगान के अभिमान पर धक्का पहुँचा। एक तो वे व्याघ्रशिकार-में पहलेसे ही प्रसिद्ध थे, दूसरे उनके रहते तीन प्रतिद्वन्द्वी खड़े हो गए। यह देख कर वे क्षणकाल भी ठहर न सके और बोले, "एक जंगली पशुका शिकार करनेमें अस्त्रशस्त्र लेनेका मैं कोई प्रयोजन नहीं समझता। जगदीश्वरने पशुको जिस तरह दंष्ट्रानखायुध दिये हैं मनुष्यको भी उसी तरह हस्तपदादि दिये हैं।" इस पर अमीरोंने कहा, "बाघकी अपेक्षा मनुष्य कमजोर है। सुतरां बिना अस्त्रकी सहायता लिए उसे जय करना असम्भव है।" इस पर शेर-अफगान बोले, "आप लोगोंको जो भ्रम है, उसे मैं अभी तुरन्त दिख-लाए देता हूं।" इतना कह कर वे असिचर्मका त्याग करते हुए खाली हाथसे बाघ पर टूट पड़े। जहांगीरका हृदय नाचने लगा, किन्तु दिखावटी तौर पर उन्होंने शेर अफगानको इस दुःसाहसिक कार्यमें जाने-से निषेध किया पर शेर अफगानने एक भी न सुनी और वे भगवान्‌का नाम स्मरण करते हुए बाघकी ओर चल पड़े। जितने मनुष्य वहां उपस्थित थे, वे उनके साहस पर प्रशंसा करेंगे वा मूर्खता पर निन्दा करेंगे, उस ओर शेरने कुछ भी ध्यान न दिया। बाघके साथ शेर अफ-गानका युद्ध हुआ। बहुत काल लड़ते रहने बाद सर्व-शरीर क्षतविक्षत हो कर शेर-अफगान भगवान्‌की कृपा से युद्धमें विजयी हुए। उनके हाथसे बाघ मारा गया। चारों ओर जयध्वनि होने लगी। सम्राट् भीतरसे तो बहुत व्यथित हुए, पर बाहरसे उनको प्रशंसा करते हुए उन्हें यथेष्ट पुरस्कार दिया। पीछे क्षत शरीरसे शेर पालकी पर बैठे राजदरबारसे अपने डेरे पर जा रहे थे, उस समय सम्राट्‌ने उन्हें राहमें मार डालनेके उद्देश्यसे महावतको गलीमें एक मतवाला हाथी रखनेका गुप्त आदेश दिया। शेर-अफगान राहमें मत्त हाथी देख कर जरा भी न डरे और शिविका ले जानेको कहा। हाथी सूंड़में आग लिये रास्ते पर खड़ा हो गया। कहार लोग मृत्यु उपस्थित देख पालकीको फेंक कर जिधर तिधर भाग गये। शेर अफगानको इस समय भारी विपद्‌की आशङ्का हुई और सर्वाङ्गमें वेदना रहते भी वे पालकी-मेंसे बाहर निकल पड़े। बाद अपनी नित्य सङ्गी छोटी तलवार द्वारा हाथीको सूंड़में उन्होंने भीमबलसे ऐसा आघात किया कि उसी समय सूँड दो खंड हो कर जमीन पर गिर पड़ी। हाथी चिंघाड़ मारता हुआ भाग चला और कुछ दूर जा कर मर गया।

यह देखनेकी सम्राट्‌को बड़ी उत्कण्ठा थी। वे प्रासादके एक झरोखेसे शेर अफगानका यह ध्वंस व्यापार देख रहे थे। वैसी हालतमें भी जब उन्होंने देखा कि शेर-अफगानने ऐसे विशाल मत्त हाथीको मार गिराया, तब वे बहुत लज्जित हो काठकी मूर्त्ति सी जहांके तहां खड़े रह गए। इधर शेर अफगान इस कामसे और भी उत्फुल्ल हो कर प्रसन्नचित्तसे सम्राट्‌को यह सम्वाद कहने चले गए। सम्राट्‌ने मुखसे अजस्र प्रशंसा करके उन्हें बिदा किया। शेर अफगान पीछे वर्द्धमानको लौट आए। छः मास तक और कोई उत्पात न हुआ। पीछे कुतुब-उद्दीन सूबेदार हो कर बङ्गालमें आए। चाहे सम्राट्‌के गुप्त आदेशसे हो, चाहे आप सम्राट्‌का प्रियकार्य साधन करके और भी प्रियपात्र होनेके लिये हो उन्होंने शेर अफगानकी हत्याके लिये ४० डकैतोंको नियुक्त किया। शेर-अफगानको जब यह गुप्त रहस्य मालूम हो गया, तब वे हमेशा दरवाजा बन्द किए रहने लगे। एक दिन रातको द्वारपालकी असावधानीसे दरवाजा बन्द नहीं किया गया। डकैतोंको गृह-प्रवेशमें अच्छा मौका हाथ लगा। शयनगृहमें वे

प्रवेश करके निद्रितावस्थामें शेर अफगानको मारनेके लिये उद्यत हुए। उनमेंसे एक बूढ़ा बोला, "निद्रितको वध करनेके लिये ४० आदमी आक्रमण करनेका क्या प्रयोजन! मनुष्योचित व्यवहार करो, एकसे ही काम चल जायगा।" इस कथोपकथनसे शेर अफगान जाग उठे और बातकी बातमें म्यानसे अपनी तलवार निकाल कर बोले, 'जो वीर है, वह युद्ध कर ले।' इतना कह कर वे घरके कोनेमें खड़े हो गए और हत्यारोंके आक्रमणका प्रतिरोध करने लगे। १८।२० व्यक्ति तो आहत हो कर अचेत हो गए शेष उसी जगह ढेर रहे। किन्तु बूढ़ेकी बातसे उनको प्रीति टूटी तो, वह भागा नहीं, बल्कि उसी जगह चुपचाप खड़ा रहा। शेर अफगानने उसे पुरस्कार दे कर कहा 'जाओ, यह सम्वाद चारों ओर फैला दो।' इस समय वे सूबेदारके राजधानी महलमें थे और इस घटनाके बाद वे वर्द्धमान को चले आए। पीछे कुतुब उद्दीन अपने कर्मचारियों को आयोजनोंकी देखरेख करनेके बहाने वर्द्धमान पहुंचे। शेर अफगानने उनका स्वागत किया। पीछे कुतुब-उद्दीनका उद्देश्य समझ कर शेरने उन पर आक्रमण कर उन्हें यमपुर भेज दिया। पीछे कुतुबके अनुचरोंने उन पर हमला किया। कन्धोंमें और अन्य एक तीरका जख्म सह कर भी वे घोड़े परसे उतरे और मक्केकी ओर मुंह किए खड़े हो गए। मक्केके उद्देश्यसे एक मुट्ठी धूल अपने सिर पर डाल कर धार्मिकके मरनेकी तरह वे शय्या पर सो रहे (१)।

शेर अफगानकी मृत्युके बाद मेहेर उन्निसा पर कड़ा पहरा बैठाया गया और वह दिल्लीको भेज दी गई। वहां पहुंच कर उन्हें भी कुतुब उद्दीनके मारे जानेके अभियोग पर बन्दिखानेमें रखनेका हुक्म हुआ। वह अकबरकी महिषी सलिमा बेगमकी सहचरियोंमें नियुक्त हुई (२)। किसी किसीका कहना है, कि मेहेर उन्निसाने जहांगीरकी धर्ममाता सलिमा सुलतानाके यहां आश्रय लिया (१)।

जिस मेहेर उन्निसाने एक दिन अपने कटाक्षसे कुमार सलीमको मोहित कर दिया था, फिर जो पतिके मारनेकी अधीश्वरी बनाई गई वही अब मेहेर-उन्निसा आज प्रासादमें बुरी निगाहसे देखी जा रही है, यह देख कर उन्हें बड़ी चोट आई। जहांगीरने उनके प्रति ऐसा क्रूर व्यवहार क्यों किया, उसका स्पष्ट प्रतिवाद नहीं मिलता। मुसलमान ऐतिहासिकोंका कहना है, कि मिथ्यापवाद कुतुब-उद्दीनकी मृत्यु पर वे नाराज हुए थे।

शेर अफगानके औरस और मेहेर-उन्निसाके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी जिसका आदरका नाम था लाडली बेगम, किन्तु संक्षेपमें माताके नाम पर उसका भी नाम मेहेर उन्निसा रखा गया था। माताके साथ कन्या भी दिल्लीमें आई थी।

शेर अफगानकी मृत्युका सम्वाद जब दिल्लीमें पहुंचा तब जहान्गीर फूले न समाए और बोले, 'अब आशा-सुख भोग करनेमें विलम्ब न सहूंगा।'

मेहेर उन्निसा सुलताना सलिमा बेगमके महलमें रहने लगीं। बेगमसाहबाने उसकी परिचर्याके लिये एक क्रीतदासी भी नियुक्त कर दी। प्रासादमें आनेके बाद सम्राट जहांगीरने मेहेर उन्निसाकी कोई खोज खबर न ली। जिसके लिये उन्होंने आजीवन सब कौशल और कूटचालोंको काम किया, आज पार्श्ववर्तिनी होने पर भी उनकी ओर वे नजर तक भी नहीं उठाते। इस प्रकार पर मेहेर उन्निसाको तो आश्चर्य होना ही चाहिए, अन्यान्य लोग भी विस्मित हो पड़े। सम्राट्ने ऐसा क्यों किया, मालूम नहीं। मुसलमान ऐतिहासिकोंने भी इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। किसी किसीका कहना है कि मिथ्यापवाद कुतुब-उद्दीनकी मृत्यु, पर अमीर ओमरावों को उन्होंने ऐसा किया था। जहांगीर लिखित विवरणमें किसी कारणका उल्लेख न कर केवल इतना लिखा गया है कि "पहले पहल मैं

(१) Dow's Hindostan vol III, p. 30-32.

(२) Ain-i-Akbari (Blochmann p. 509 and Wakiat-i-Jahangiri Elliot, vol. vi. p. 393.)

(१) Ikbal-nama-i-Jahangiri (Elliot vi p. 404.)

उसे ग्राह्य नहीं करता था।" सुतरां इसका कारण चिर-अज्ञात रह गया। पीछे इससे भी बढ़ कर मेहेर-उन्निसाकी अवज्ञा की गई थी। उन्हें प्रतिदिन खाने-के लिये केवल ॥०/) आने मिलने लगे थे।

मेहेर-उन्निसा स्वामिशोक तथा बादशाहके अवज्ञा जनित कष्टसे दिनों दिन क्षय होने लगीं। अन्तमें दृढ़ता बांध कर जिससे सम्राट् की नयन-पथवर्त्तिनी हो सकूं, उसकी चेष्टा करने लगीं। सुलताना रुक़िया बेगम-साहबा उनके व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हुईं। मेहेर उन्निसाका अलोकसामान्यरूप देख कर वे भी मुग्ध हो गई थीं। ऐसी भुवनमोहिनी सुन्दरी ऐसी बुरी अवस्थामें रहेंगी, यह उन्हें ज़रा भी पसन्द न आया। स्वतःप्रवृत्त हो कर उन्होंने सम्राट से अनुरोध किया। बादशाहने विमाताके अनुरोध पर भी कर्णपात न किया।

अब मेहेर-उन्निसा निराशासे दुःखित न हो ऐसा उपाय सोचने लगीं जिससे बादशाहका मन इस ओर पलट आवे। वे दैनिक व्ययके लिये जो कुछ पाती थीं, उससे अपना तथा अपनी परिचारिकाका खर्च चलाना बहुत कठिन था। इसी सूत्र पर उन्होंने सूई और शिल्प कर्ममें विशेष मन दिया। आप वे सब कार्य अच्छी तरह जानती भी थीं, अब और भी तन मन दे कर असाधारण बुद्धिके प्रभावसे अच्छे अच्छे फूल, पाड़ और नक़्शे निकालने, जवाहरमें बढ़िया नक़्शे उतारने और पुराने गहनोंमें कुछ परिवर्त्तन कर उन्हें और भी सुदृश्य करने लगीं। ये सब कार्य वे खुद अपने हाथसे करतीं और अपनी परिचारिकाको सिखा कर उससे भी करातीं थीं। धीरे धीरे द्रव्यादिके प्रस्तुत हो जाने पर वे परिचारिका द्वारा उन्हें बेगम-महलके नाना स्थानोंमें बेचनेके लिये भेज देती थीं। बेगम-साहबा और कन्याएँ बहुत आग्रह तथा आदरसे उन नयी नयी विलासकी सामग्रियोंको खरीदती थीं। इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें मेहेर-उन्निसाकी प्रशंसा बेगम-महल-में फैल गई। जब तक विलासनी उनके प्रस्तुत दो चार द्रव्योंको अपने घरमें रख न लेती थीं, तब तक वे अपने कमरेको सुसज्जित नहीं समझती थीं। सुतरां इसी सूत्रसे मेहेर-उन्निसाको बहुत आय होने लगी। बादमें सुन्दर सुन्दर द्रव्यादि प्रस्तुत कर दिल्लीके समस्त अमीर उमरावोंके अन्तःपुरमें भेजने लगीं। उन स्थानोंमें भी इनका नाम फैल गया। धीरे धीरे दिल्ली-से ले कर आगरा तक उनके द्रव्यादिकी रफ़्तनी होने लगी। इस प्रकार वे बहुत धनवती हो गईं। उपयुक्त अर्थ पा कर मेहेर-उन्निसाने अपनी परिचारिकाओंको ऐसे सब कीमती तथा कामदार कपड़े दिये कि वे ही बादशाहज़ादी-सी मालूम पड़ने लगीं। पीछे अपने घर-को भी उन्होंने भलीभांति सजा दिया। लेकिन आप अपने व्यवहारमें सफ़ेद मामूली कपड़े के सिवा और कुछ भी काममें न लाती थीं। इस प्रकार चार वर्ष बीत गए। सम्राट् के निजअन्तःपुरके प्रत्येक घरसे, दरबारके प्रत्येक अमीर-उमरावके मुखसे, यहां तक कि दिल्ली और आगरेके सभी सम्भ्रान्त व्यक्तियोंमें मेहेर-उन्निसाकी शिल्प-प्रशंसा इतनी दूर तक फैली कि सम्राट् जहांगीरको भी इसकी खबर लग गई। फिर क्या था, जो जहांगीर एक दिन मेहेर-उन्निसाका गान सुन कर स्तब्धसे हो गए थे, आज वे उनकी शिल्प-प्रशंसा सुन कर तथा उनके शिल्पकार्यको अपनी आंखोंसे देख कर बेहोश हो उठे। यहां तक, कि उन्होंने स्वयं किसी दिन मेहेर-उन्निसाके कारखाने जाने और उनके शिल्पकार्यको देखनेका सङ्कल्प कर लिया। लेकिन यह विषय उन्होंने किसीसे भी न कहा (१)।

१०२० हिजरी (जहांगीरके राजत्वके छठें वर्ष)-के प्रथम दिनमें (२) सम्राट् हठात् मेहेर-उन्निसाके कक्षमें उपस्थित हुए। कक्षशोभा और स्टहसज्जादिका चमत्कारित्व देख कर बादशाह सचमुच विस्मित हो पड़े। उस समय मेहेर-उन्निसा खाट पर केहुनीके बल लेटी हुई अपनी परिचारिकाओंके शिल्पकार्यकी निगरानी कर रही थीं। वे आप तो सफ़ेद मलमलका सामान्य कपड़ा पहने हुए थीं, किन्तु बहुमूल्य शोभामय परिच्छद-परिधारिणी बहुत-सी परिचारिकाएं घरकी शोभा बढ़ाती हुई मण्डलाकारमें बैठ कर काम कर रही थीं।

(१) Dow's Hindustan vol. III, p. 84.

(२) Ikbal-nama-i Jahangiri (Elliot, vol. vi. 404)

मिहेर उन्निसा बादशाहको देख विस्मयचकितनयनसे समझोच सिंहासन परसे उठीं और कुर्सी दे कर उनका स्वागत किया। इस समय बादशाह सामान्य सूक्ष्मवस्त्र मण्डित मिहेर उन्निसाकी अतुलनीय शोभा और माधुरी देख कर अवाक् हो रहे। अङ्ग प्रत्यङ्गको सरल गठन, परिमित आकार और भरे शरीरका लावण्य देख उन्हें मालूम पड़ा मानो सौन्दर्य ही मूर्त्तिमान् हो कर उनके सामने खड़ा है। सम्राट् कुछ काल तक इस प्रकार अवाक् हो उस रूपराशिको देखते रहे। पीछे खाट पर बैठ कर उन्होंने पूछा "मिहेर-उन्निसा! ऐसी भिन्नता क्यों? तुम्हारे परिचारिकाओंके परिच्छदमें इतनी पृथकता क्यों?" मिहेर उन्निसाने उत्तर दिया "जहाँपनाह! दासत्व करनेके लिये जिन्होंने जन्म लिया है प्रभुके इच्छानुसार ही उन्हें अपनी सजावट करनी [illegible] होती है। मुझमें जहां तक शक्ति है, वहां तक मैं उन्हें सुखी बनानेकी चेष्टा करती हूं। मैं आपकी दासी हूं, आपके अभिप्रायानुसार मैंने अपना परिच्छद मनोनीत कर लिया है।" मिहेर उन्निसाके ऐसे विनीत उत्तर सुन कर चमत्कृत हो उत्तरसे जहाङ्गीर नितान्त प्रसन्न हुए। उसी समय उनका पूर्वानुराग पूर्ववत् प्रबलवेगसे उद्दीप्त हुआ। मीठी मीठी बातोंसे मिहेर उन्निसाको आश्वासन दे वे चले आए। दूसरे दिन उन्होंने मिहेर-उन्निसाके साथ अपना विवाह तथा उसका आयोजन करनेका प्रधान आदेश दे दिया (१)।

जहाङ्गीरने निम्नलिखित विवरणमें मेहेरउन्निसाके साथ द्वितीय बार प्रथम दर्शनका कोई विशेष कारण नहीं दिया है केवल इतना ही लिखा है, "अन्तमें मैंने काजीको बुला मंगाया और उससे विवाह कर लिया। विवाहके समय मैंने उसे 'देनमोहर' (विवाहकालीन मरदके कन्याको अवश्य देय यौतुक)-स्वरूप १ मेहरन परिमित ८० लाख अशरफी (७ करोड़ २० लाख रु०) और एक बड़ी मुक्ताकी माला (इसमें ३० मुक्ता थीं प्रत्येकका मूल्य ४० हजार रुपये, सुतरां १२ लाख रुपये) प्रदान की थी (१)।" १०२० हिजरीके प्रथम मासकी १२वीं या १४वीं तारीखको सम्राट जहान्गीरके साथ मीर अफगानकी विधवा पत्नी मेहेरउन्निसा बेगमका दूसरा विवाह हुआ था। मिहेरउन्निसाकी उमर उस समय [illegible] वर्षकी और जहाङ्गीरकी प्रायः ४२ वर्षकी थी (२)।

विवाहके बाद जहाङ्गीरने अपनी मिहेरउन्निसाका नाम बदल कर "नूरमहल" अर्थात् 'अन्तःपुरालोक' और पीछे उसे भी बदल कर अपने नामानुसार "नूरजहान्" नाम रखा।

नूरजहाँने चिरवाञ्छित साम्राज्ञीका पद प्राप्त किया, साथ साथ अपनी रूप और असामान्य बुद्धिके प्रभावसे जहाङ्गीरके ऊपर भी अपनी क्षमता और प्रभुत्व फैलाया। जहाङ्गीर उनके हाथके खिलौने हो गए। वे नूरकी बुद्धिके प्रभाव पर मुग्ध हो कर कहा करते थे, "नूरजहान्से विवाह होनेके पहले मैंने विवाहका यथार्थ अर्थ नहीं समझा था। उनके हाथमें राज्यका और राजकोषका कुल अधिकारादिका भार दे कर मैं निश्चिन्त हो गया हूं। मुझे अब एक सेर शराब और आध सेर मांसके सिवा कुछ भी प्रयोजन नहीं है (१)।" नूरजहान्के विवाहके बाद उनके पिता गयास बेग प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त हुए और ६ हजारी मनसबदार तथा ३ हजार अश्वारोहियोंके अधिनायक बने। जहाङ्गीरके राज्यके दसवें वर्ष (१०२५ हिजरी)में गयासबेगने और भी सम्मानपद प्राप्त किया। उन्हें दरबारके बीचमें ही ढोल सम्मानसूचक डङ्का बजानेका हुकुम मिला। ऐसा सम्मान और किसीके भाग्यमें नहीं बदा था। इसके पांच वर्ष बाद नूरजहान्की माताका देहान्त हुआ। १०३० हिजरीमें गयासने उस सहधर्म-चारिणीके शोक दुःखकी अग्निमें [illegible] प्राणोंको खो दिया। इस समय गयासको जामाताके साथ काश्मीर

(१) Dow's Hindustan vol III. p 85

(१) Tuzuk-i-Jahangiri (Autobiographical memoirs of Jahangir by Major D Price p. 27)

(२) [illegible] इसी गणना की गई। (Ain-i Akbari p. 508 note)

जाना पड़ा। राहमें भग्नहृदय गयास पीड़ित हो पड़े। इस समय सम्राट् और नूरजहान् ये दोनों कांगड़ादुर्ग देखने गये थे। गयासकी अन्तिम अवस्थामें उन्हें यह संवाद मिला और फौरन ये दोनों उन्हें देखनेको चल दिये। इस समय गयासकी मुमुर्षु अवस्था थी, किसीको वे पहचान नहीं सकते थे। नूरजहान्ने अश्रुपूर्णनयनसे पिताकी शय्याके पास खड़ी हो कर सम्राट्को दिखाते हुए पूछा, "ये कौन हैं, पहचान सकते हैं?" गयास एक कवि थे, उस समय भी उनकी कविताशक्ति नष्ट नहीं हुई थी। उन्होंने कवि अनवारीकी एक कविताकी आवृत्ति करके कन्याके प्रश्नका उत्तर दिया जिसका भावार्थ था—"यदि जन्मान्ध भी यहां आ कर खड़ा हो जाय, तो वह भी ललाटकी विशालता देख कर सम्राट्की उपस्थिति समझ सकेगा।" जहांगीर ससुरका तकिया पकड़ कर दो घण्टे तक वहां खड़े थे। कुछ समयके बाद ही गयासकी मृत्यु हो गई। पत्नीकी मृत्युके ३ मास २० दिन बाद १०३१ हिजरीमें उनकी मृत्यु हुई थी। आगरेके निकट उनकी कब्र बनाई गई। इनका समाधिमन्दिर देखनेमें सुन्दर और उल्लेखयोग्य है। गयासकी मृत्यु पर जहान्गीर भी शोकातुर हुए थे।

जहान्गीर स्वयं कह गए हैं, कि हजारों विपद्‌हृदययुक्त वन्धुकी अपेक्षा एकमात्र उनका साथ अतीव प्रीतिकर है। गयासके एक भी शत्रु न था, सभी उन्हें चाहते थे। उनमें अगर दोष भी था तो सिर्फ यह कि वे रिशवत लेते थे (१)।

नूरजहान्ने दिनों दिन सम्राट्के ऊपर अपना इतना प्रभुत्व जमाया, कि तातार पारस्यसे प्रतिदिन उनके जितने आत्मीय दिल्लीमें आने लगे, वे सभी अच्छे अच्छे ओहदे पर नियुक्त होते गये। इनके पिता और भाईने तो अकबरके समयसे ही प्रतिपत्ति लाभ की थी। अब इनके भारताधिश्वरी होने पर उन्होंने और भी अपनी पदोन्नति कर ली। यहां तक कि इस समय ख्वाजोकाका नामक एक व्यक्ति राजान्तःपुरके परिचारिका-नियोगके अध्यक्ष थे। नूरजहान्की धात्री दिलारानीने नूरजहान्की कृपासे इस व्यक्तिके ऊपर भी कर्तृत्वलाभ कर "सदरोअनास"की पदवी प्राप्त की थी। बिना उनकी सलाह लिये ख्वाजोकाका किसीको नियुक्त नहीं कर सकते और न किसीको वेतन ही दे सकते थे। इस रमणीने धर्मार्थरूपमें अपनी सभी भूमि मोहराङ्कित करके दान करती थीं। सम्राट् उसमें जरा भी छेड़छाड़ नहीं करते थे (२)।

नूरजहान्के बड़े भाईका विवरण पहले ही कहा जा चुका है। द्वितीय भ्राता मिर्जा अबुल हसन आसफ खांकी उपाधि लाभ कर पांचहजारी मनसबदार हुए थे। तृतीय भ्राता इब्राहिम खां फतेजङ्गकी उपाधि लाभ कर १६१७से १६२२ ई० तक बङ्गालके सूबेदार हुए थे। उनके कनिष्ठाभगिनीपति हाकिम-बेग दरबारमें एक अच्छे उमराव थे।

नूरजहान्के पूर्व स्वामीके औरससे लाड़ली बेगम नामक जो कन्या उत्पन्न हुई थी, उसके साथ १०३१ हिजरीमें जहान्गीरने अपने पञ्चमपुत्र शहरयारका विवाह कर दिया।

नूरजहान्ने धीरे धीरे राज्यके सभी काम अपने हाथमें ले लिए। यहां तक कि उपाधिवितरणके व्यापारमें भी उनकी सम्मतिकी आवश्यकता होती थी। शासन, युद्ध, सन्धि, राजकोष आदि सभी विषयोंमें उनकी आज्ञा ली जाती थी। केवल अपने नाम पर "खुतबापाठ"के सिवा और सभी विषयोंमें उन्होंने सम्राट्का अधिकार निजस्व कर लिया था। राज्यके सभी कागज पत्रोंमें तथा दलील दस्तावेज आदिमें सम्राट्के नामके बाद ही उनका भी नाम लिखा रहता था। स्त्रियोंकी जो सब जमीन दान की जाती थी, उस दानपत्रमें केवल नूरजहान्का मोहर अङ्कित रहता था। राज्यकी मुद्रामें भी उनका नाम और इस प्रकारकी

(१) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 409 10) and Autobiographical memoirs of Jahangir, p. 25, Wakiat-i-Jahangiri (Elliot, Vol. VI. p. 382)में लिखा है, कि इनकी मृत्यु १०३० हिजरी, १७ सावनको हुई।

(२) Wakiat-i-Jahangiri (Elliot, Vol. VI. p. 398 and Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 570.)

कविता मुद्रित होती थी,—"सम्राट्के आदेशसे स्वर्ण-मुद्राके वक्ष पर रानी नूरजहान्का नाम अङ्कित रहनेसे स्वर्णकी ज्योति सौ गुनी बढ़ गई है।" नूरजहान्ने इतनी क्षमता पाई थी सही, लेकिन कभी उसका अप-व्यवहार न किया। उन्होंने जो पिता-भ्राता या आत्मीय स्वजनोंको प्रधान कर्म पर नियुक्त किया था, उसके लिये किसी ऐतिहासिकने उनके प्रति दोषारोपण नहीं किया। उसका कारण यह था, कि उन्होंने सब कर्मचारियोंको शासनसे वशीभूत कर रखा था। वे लोग भी कभी राज्य-का अनिष्ट करना नहीं चाहते थे। उनका सब किसीके साथ सद्व्यवहार था। वे मित्रपालन और दुष्टदमन करती थीं, अतः कोई उनसे डाह नहीं रखते थे। ये सब मनुष्य अपने अपने कर्म सम्पादनमें निपुण थे, इस कारण कोई उन्हें रानीका आत्मीय समझ कर किसी पक्षपातसे नहीं देखते थे। उनकी पदोन्नति आत्मीयताके कारण नहीं होती थी बल्कि कार्यकारिताके कारण। यही कारण है कि ऐतिहासिकगण नूरजहान्में कोई दोष बतला न सके और वे भी अनुगतपालनके दोषसे मुक्त हो गईं।

नूरजहान् परम दयावती थीं। जब कभी उन्हें अनाथा बालिकाओंकी खबर लग जाती तब वे उनके प्रतिपालनकी व्यवस्था और विवाहादि करा दिया करती थीं। इस प्रकार उनकी कृपासे पांच सौसे अधिक बालिकाओंका उद्धार हुआ था।

इस प्रकार क्षमता प्राप्त कर उनके सद्व्यवहारके साथ साथ नूरजहान् जहान्गीरकी मद्यपानासक्ति घटानेकी कोशिश करने लगीं। १०२१ हिजरीके अरदिबहिश्तमें जहान्गीरको श्वासरोगकी बीमारी हुई। उस समय वे काश्मीरमें थे और ज्वरका दौरा था, खूब पीड़ा करते थे। बहुत-सी चिकित्सा की गई, पर अब कुछ भी अच्छा न निकला। मद्यपानसे ही कुछ आरोग्यता अनुभव कर सकते थे इस कारण अन्तमें शराबकी मात्रा बढ़ा दी गई। वे दिनको भी शराब पीने लगे। नूरजहान्ने उनका हुक्म ले कर बहुत चालाकीसे उसकी मात्रा कम की और पीना बन्द करके स्वामीको आरोग्य बना दिया। इसी समयसे जहान्गीरके मद्यपानका परिमाण कुछ कम हो गया (१)।

(१) Wakiat-i Jahangiri (Elliot Vol. VI. p. 351.)

नूरजहान् केवल बुद्धिमती रमणी थीं सो नहीं, वे शौर्यशालिनी भी थीं। उनके प्रथम स्वामी शेर अफगान्ने व्याघ्रको मार कर जो साहस दिखलाया था, वे भी वैसा ही साहस रखती थीं। १०२८ हिजरीमें मथुराके निकट बाघने बड़ा उपद्रव मचाया। जहान्गीरको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने शिकारियोंको भेज कर बाघको चारों ओरसे घेर लेनेका हुक्म दिया। बादमें नूरजहान् भी अनुचरोंके साथ पहुंचीं। जहान्गीरके नहीं जानेका कारण यह था कि उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे किसी प्राणीका वध नहीं करेंगे, इस कारण उन्होंने नूर-जहान्को जाने तथा गोली चलानेका आदेश दे दिया। बाघकी भयसे हाथी स्थिर रह न सका। अतः होदेके भीतरसे निशाना ठीक करना बहुत कठिन-सा हो गया। उस समय केवल मिर्जा रुस्तम नामक एक अव्यर्थ-लक्ष्य शिकारी उपस्थित था। उसने तीन बार निशाना किया, लेकिन एक बार भी सफल न हुआ। अन्तमें नूरजहान्-ने उस अस्थिर हाथीकी पीठ परसे अपूर्व-दक्षताके साथ एक ऐसी गोली चलाई कि बाघ चित हो रहा (१)।

दरबारके किसी कविने इस घटनाका उपलक्ष्य करके कवितामें कहा था, "यद्यपि नूरजहान् स्त्री थीं तो भी वे शेर अफगानकी पत्नी थीं तो भी।" "जानि शेर अफगान" अर्थात् शेर अफगानकी पत्नी या व्याघ्र-नाशिनी रमणी यह विशेषण जहान्गीर खुद लिख गए थे।

महारानी नूरजहान्के क्षमताशाली होने पर तथा नूर-जहान्का प्रभाव देख कर जहान्गीरके अन्यान्य पुत्रगण डर गए। सम्राट्के पुत्रोंमेंसे युवराज खुर्रम (पीछे शाहजहान्) बुद्धिमान्, वीर, कर्मकुशल तथा विलासविमुख प्रजावर्गके प्रियपात्र थे। अजमेरके पूर्व-दक्षिण राजपूतोंके

(१) Wakiat-i Jahangiri, Elliot Vol. VI. p. 367)

आईन-इ-अकबरी (१२१ पृ०)में चार बाघकी कथा लिखी है जिनमेंसे दो बाघको एक एक गोलीसे और शेष दोको छः गोलियोंसे नूरजहान्ने मारा था। शिकारमें इन्हें ज्यादा प्रेम था, इस कारण हर वक्त सम्राट्के साथ ही रहती थीं।

निकट रानी नूरजहान्की अति विस्तृत जागीर थी। १०३१ हिजरीके शेषमें जहान्गीरके राजत्वके सत्तरहवें वर्षके प्रारम्भमें यह सम्वाद पहुंचा कि युवराज खुर्रम ने नूरजहान् और राजकुमार शहरयारकी जागीरका अधिकांश अधिकार कर लिया है। उस समय शहरयारके कर्मचारी ढोलपुरके फौजदार अशरफ-उल-मुल्कके साथ लड़ रहे थे, जिसमें दोनों पक्षको बहुत-सी सेनाएं हताहत हो चुकी थीं। यह खबर जब जहान्गीरको लगी, तब उन्होंने शाहजहान्के अधीनस्थ सैन्यदल दिल्ली भेजने तथा उन्हें अपनी जागीरमें सन्तुष्ट रह कर कर्त्तव्यपथसे विचलित नहीं होनेके लिए एक अनुशासन पत्र उनके पास भेजा। शाहजहान्ने पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया। प्रधान सेनापति मिर्जा अबदुल-रहीम खानखानाने शाहजहांका साथ दिया। अन्तमें २५ हजार अश्वारोही ले कर आसफ खां (नूरजहान्का द्वितीय भ्राता)ने बिलुचपुरके निकट विद्रोहियोंके ऊपर आंशिक जयलाभ किया। पीछे १०३२ हिजरीमें मुतामद-उद्दौला सलकादिर महव्वत खां कुमार परवीजके अधीन रह कर ४० हजार अश्वारोहियोंको साथ ले विद्रोहदमनमें अग्रसर हुए। अजमेरके समीप महव्वत खांने विद्रोहियों-के प्रभावको बहुत कुछ खर्व कर डाला। पीछे खान-खानाने जब शाहजहानका साथ छोड़ दिया, तब वे उड़ीसा भाग गए। इस घटनासे नूरजहान् शाहजहां-के ऊपर बहुत बिगड़ीं और भविष्यमें अपने जमाई शहरयारको ही दिल्लीके सिंहासन पर बिठानेका उन्हीं-ने सङ्कल्प कर लिया, किन्तु शाहजहांका अनिष्ट करने-को उनकी जरा भी इच्छा न थी। कारण महव्वत खां जब उनके विरुद्ध रणकी ओर अग्रसर हुए, तब नूर-जहान्ने ही एक गुप्त पत्र लिख कर उन्हें गुजरातको राहसे भाग जानेकी सलाह दी थी(१)।

जहान्गीरके राजत्वके इक्कीसवें वर्षमें १०३५ हिजरी-को महव्वत खां बङ्गालके सूबेदार हुए। सूबेदार हो कर उन्होंने बङ्गालसे हाथी (जो प्रति वर्ष पकड़ कर भेजा जाता था) भेजना बन्द कर दिया। अरबवासी तोम्रगायर नामक एक कर्मचारी द्वारा हाथी भेजने तथा महव्वत खांको दरबारमें उपस्थित होनेके लिए सम्राट्ने कहला भेजा। महव्वतने हाथी तो भेज दिया लेकिन आप न गये। इस समय उन्हें खबर लगी कि सम्राट्की सलाह लिये बिना उन्होंने जो अपनी कन्या का विवाह किया है, इस कारण सम्राट्ने उनके जमाईको पकड़ लानेका हुकुम फिदाई खांको दे दिया है। इस समय सम्राट् दलबलके साथ काबुलकी ओर जा रहे थे। बेहात (वितस्ता) नदीके किनारे उनकी छावनी डाली गई थी। नवाब आसफ खां अपनी सारी सेनाको ले कर नदी पार हो चुके थे। महव्वत खांने निज मान, सम्भ्रम और जीवनसमूहको विपद्में समझ कर २०० राजपूत सेना साथ ले सम्राट्की छावनीमें प्रवेश किया। इकबालनामाके ग्रन्थकार मुतामद खां इस समय सम्राट्की बकशी और मीर तुजकके पद पर अधिष्ठित थे, इस कारण वे हमेशा उन्हींके साथ साथ रहा करते थे। महव्वतने दलबलके साथ छावनीको घेर लिया। सेनाने दरवाजेके परदेको चीर फाड़ डाला। द्वाररक्षकने भीतर जा कर सम्राट्को यह खबर दी। सम्राट् तुरत ही बाहर निकल आए और पालकी पर चढ़ कर जहां महव्वत खां थे, वहां पहुंचे। महव्वतने उनसे कहा, नवाब आसफ खांकी हिंसा और ताच्छिल्यका सहन नहीं करते हुए मैंने जहाप-नाहकी शरण ली। मैं यदि प्राणदण्डके उपयोगी हूं, तो हुकुम दीजिए, आपके सामने ही दण्ड-भोग करूं।" इसके बाद योद्धागण पालकीको चारों ओरसे घेरे हुए खड़े हो गए। रागके मारे सम्राट्ने दो बार तलवारको खींचना चाहा, पर दोनों बार मनसुर-बदकशीने उनका हाथ पकड़ लिया और धैर्य रखने तथा ईश्वर पर निर्भर करनेका अनुरोध किया। पीछे महव्वत खांने सम्राट्को अपने घोड़े पर सवार होनेको कहा। लेकिन सम्राट्ने वैसा नहीं किया वरन् उन्होंने अपना घोड़ा और पोशाक लानेका हुकुम दिया। घोड़े-के पहुंचते ही वे तुरत सवार हो गए। थोड़ी दूर जा कर महव्वतने उन्हें हाथी पर चढ़ा लिया और दोनों बगलमें पहरा बैठाया गया। पीछे शिकारका बहाना

(१) Maasir-i-Jahangiri Elliot, Vol VI. p. 445.).

करके महब्बत सम्राट्‌को अपने घर ले गए और अपने पुत्रोंको सम्राट्‌के रक्षकस्वरूप नियुक्त किया।

महब्बत खाँ सम्राट्‌को बन्दी करके ले गए, यह रहस्य किसीको मालूम होने न पाया। यहाँ तक कि रानी नूरजहाँको भी इसकी खबर न लगी। महब्बतने जब सम्राट्‌को कैद किया, उस समय उनके मनमें बुद्धिमती नूरजहाँकी बात जरा भी याद न थी। इस प्रकार कई दिन बीत जाने पर जब उन्हें नूरजहाँका डर लगा, तब उन्होंने सम्राट्‌को पुनः राजप्रासादमें भेज देनेकी कल्पना की। किन्तु जब इधर नूरजहाँको सन्देह हुआ, तब वे अपने भाईके साथ मुलाकात करनेको गईं। यह समाचार पा कर महब्बत अपनी भूल समझ गये और दुविधा रहते भी नूरजहाँको बन्दी कर न सके यह सोच कर वे अपने ओठ चबाने लगे। अन्तमें कुमार शहरयारको सम्राट्‌के साथ बन्दी रखनेके उद्देश्यसे वे सम्राट्‌को शहरयारके घर ले गए।

इधर नूरजहाँ आश्चर्यमें पड़ीं और अपने आमदमियोंके लिये उनको खूब निन्दा की। आसफ खाँ भी बहुत लज्जित हुए। उस समय उन्होंने विचार करके यह स्थिर किया कि दूसरे दिन महब्बत पर आक्रमण और सम्राट्‌को उद्धार करना ही कर्तव्य है। यह खबर धीरे धीरे सम्राट्‌के कानमें पहुँची। उन्होंने इस कार्य आयोजनको रोक देनेके लिये मुकारिब खाँके हाथ संवाद भेजा और नदी पार हो कर युद्ध करनेका निषेध किया। दूत यह खबर पहुँचानेके लिये रानी की अँगूठी ले कर चला गया था, किन्तु आसफ खाँने महब्बतका कूटकौशल समझ कर उस परामर्शको और कार्य मान न किया।

महब्बतको भी इसकी खबर लग गई। नदीके ऊपर जो पुल था उसे उन्होंने जला दिया। फिदाई खाँ सम्राट्‌का ... सुननेके साथ ही कई एक साथी वीरोंको साथ ले कर नदी पार होने लगे। उनमेंसे कुछ नदीके वेग और उसकी शीतलतासे मर गए, केवल छः योद्धा कुशलसे पार हो सके थे; उन छःमेंसे भी फिर चार महब्बतके हाथसे मारे गए। फिदाई अपनी निरुपायता समझ पुनः तैर कर नदीके पार चले आए। अन्तमें आसफ खाँ नूरजहाँके साथ ही उसी समय हाथी और घोड़े द्वारा नदी पार कर गए। नूरजहाँने दूत भेज कर सबोंको उत्साहित किया और कहा, 'अभी इतस्ततः करनेसे सब व्यर्थ हो जायगी। शत्रु, बादशाहको ले कर भाग जायँगे। इसमें उनके साथ जानेकी आशङ्का भी है।"

नदी पार होनेके समय सात आठ सौ राजपूतसेनाने युद्धक्षेत्रोंमेंसे कर अपनी ओरसे हो उन पर आक्रमण किया। नूरजहाँके हाथीकी सूँड़ पर विपक्षियोंने तलवार द्वारा बहुत जोरसे प्रहार किया। जब हाथी दौड़ा, तब वे तीर बरसाने लगे। कुमार शहरयारकी धात्रीकी छातीके पासमें एक तीर घुस गया (१)। नूरजहाँने उस तीरको खींच कर बाहर फेंक दिया। धात्रीका समूचा शरीर रक्तसे रंग गया। हाथी रानीको अपनी पीठ पर लिए राजप्रासादकी ओर चल दिया। पार होते समय आसफ खाँ घोड़े परसे पानीमें गिर पड़े और रिकाब पकड़ कर कुछ दूर तक लटके रहे। घोड़ा उनके बोझसे पानीमें डूब मरा। इसी समय एक फकीरी नाविककी नजर आसफ पर पड़ी और उसने उनकी जान बचा दी। पीछे आसफ खाँ इस प्रकार अपने उद्देश्य और परामर्शको विफल होते देख भागके मर गये। फिदाई खाँ कतिपय अनुचरों और सम्राट्‌के सवारोंको ले कर नदी पार हुए और शत्रुओं पर टूट पड़े तथा उनका व्यूह भङ्ग करते हुए दलबलके साथ कुमार शहरयारके प्रासादमें जहाँ सम्राट्‌ बन्दी थे पहुँचे। प्रासादके अन्दर विपक्षियोंके जो बहुत सवार पहारेदारों और पदाति बैठे हुए थे, उन्होंने फिदाईको भीतर प्रवेश करनेसे रोका। इस पर फिदाई खाँ फाटक परसे तीरकी वर्षा करने लगे। जिस घरमें सम्राट्‌ थे

(१) डाउ साहबके इतिहासमें लिखा है, कि नूरजहाँकी कन्या शहरयारकी पत्नी ही आहत हुई थी और यही ठीक भी प्रतीत होता है। क्योंकि ऐसे समयमें वैसी बालिकाको ले कर नूरजहाँके साथ हाथी पर सवार थीं यह अनुमानसे बाहर है। उसकी धात्रीका साथ रहना कोई बड़ी बात नहीं थी। (Dow's Hindostan Vol. III, p. 91.)

थे, उस घरमें भी दो एक तीर जा गिरा। मुखलिस खाँ नामक एक व्यक्ति सम्राट्के जीवनको अगद्धा देख निज शरीर द्वारा सम्राट को आड़ दिए खड़ा रहा।

शत्रुओंके तीरने फिदाई खाँके कितने अनुचरोंको यमपुर भेज दिया; वे स्वयं भी आहत हुए और उनका घोड़ा मृतप्राय हो गया। जीतकी आशा न देख फिदाई खाँ लौट जानेको बाध्य हुए और नदी पार कर रोहतस दुर्गमें जा ठहरे। आसफ खाँ भी लज्जित और परास्त हो अपनी जागीरके अन्तर्गत अटकदुर्गमें भाग गए। महब्बतने जयी हो कर आसफ खाँको पकड़नेके लिये अपने लड़के बिहरोज और एक राजपूत सेनापतिको विपुल सेना साथ दे भेज दिया। आसफ खाँके सेनाबल कुछ भी न था। अत वे सहजमें पराजित और पुत्र समेत पकड़े गए। महब्बतके पैर पहुंच कर उन्होंने उनका पक्ष ग्रहण करनेका शपथ खाया। अटकदुर्ग महब्बतके अधीन रहा। सम्राट् कुछ दिन जलालाबादमें रह कर काबुलको चल दिए। महब्बत भी उनके साथ थे, उनका बन्दित्व उस समय भी दूर नहीं हुआ था (१)।

आसफ खाँके सपुत्र बन्दी होने पर नूरजहान् लाहोरसे भागी जा रही थीं। किन्तु सम्राट्ने उन्हें एक पत्र लिख कर सूचित किया कि महब्बतने उन्हें सम्मानपूर्वक रखा है और महब्बतके साथ जितना गोलमाल था, सब मर मिट गया है। स्वामी कुशलपूर्वक हैं, यह जान कर नूरजहान्को चैन पड़ा। महब्बतने भी सम्राट्के पत्रानुयायी सब विवाद मिट जानेकी कथा लिखी और अन्तमें नूरजहान्को सम्राट्के साथ काबुल वा जहां वे चाहें वहां जानेमें बाधा नहीं देंगे, ऐसी खबर दी। अब नूरजहान्ने स्वामीके पास जानेमें जरा भी विलम्ब न किया। लाहोर छोड़ कर वे उसी समय जहां सम्राट् थे वहां पहुंच गईं। महब्बतने सेना भेज कर उनको महासम्भ्रमसे अभ्यर्थना की।

महब्बतने इस प्रकार नूरजहान्को हस्तगत कर उनकी कार्य्यावलीको ओर दृष्टि रखी और वे शीघ्र ही समझ गए कि नूरजहान् अपने जामाताको राजगद्दी पर बिठानेकी कोशिशमें हैं। महब्बतने इसकी खबर सम्राट्को दी और कहा "मौका मिलने पर रानी आपके प्राण तक भी ले सकती हैं। अतएव इस समय नूरजहान्को मार डालना ही उचित है।" इस पर सम्राट्ने उसी समय नूरजहान्के बधादेश पर हस्ताक्षर करके भेज दिया। महब्बतने यथासमय वह आदेशपत्र नूरजहान्को दिखाया। नूरजहान्ने कहा, "सम्राट् अभी बन्दी हैं। उन्हें स्वाधीनता कहां। मैं एक बार उनसे मुलाकात करना चाहती हूं।" उनकी प्रार्थना स्वीकार की गई। नूरजहान् पर नजर पड़ते ही सम्राट् फूट फूट कर रोने लगे। जिस हाथसे सम्राट्ने बधादेश लिखा था, उसे अश्रुजलसे सिक्त किया। सम्राट्ने व्याकुल हो कर महब्बतसे कहा, 'महब्बत! क्या तुम केवल इसे एक स्त्रीको छोड़ नहीं सकते।' यह कातरोक्ति सुन कर महब्बत भी मुग्ध हो गए और मुंहसे एक बोली भी न निकालते हुए रक्षिगणको जाने कह दिया। नूरजहान् मुक्त हो गईं। इधर महब्बतके इस आचरणसे उनके साथी लोग क्षुब्ध और विरक्त हो गये तथा बोले, 'इस दया पर, इस भूल पर एक दिन तुम्हें ठोकर खानी पड़ेगी। बाघिन जब कभी मौका पायगी तभी उसकी हड्डी चबा डालेगी। आगे चल कर हुआ भी वैसा ही। नूरजहान्के हृदयमें यह अपमान प्रस्तराङ्कित रेखाकी तरह बैठ गया था। (१)

बादशाह और बेगम काबुलमें छः मास तक ठहरी थीं। इस समय वे बीच बीचमें शाह इस्माइलसे मुलाकातको जाया करते थे। महब्बतकी छावनी बादशाही छावनीसे कुछ दूरमें थी और वे कभी कभी बादशाहको देखने आया करते थे।

नूरजहान्का हृदय पूर्व अपमानसे दिनों दिन भभक

(१) एकबालनामामें नूरजहां कब कहां और किस तरह सम्राट्से मिलीं उसका कोई उल्लेख नहीं है। पर काबुलभ्रमणके समय वे सम्राट्के साथ थीं, ऐसा लिखा है। सुतरां काबुल प्रवेशके पहले ही वे जलालाबादकी छावनीमें मिली थीं ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

(१) Dow's Hindostan Vol. III, 98.

रखा था। जिस प्रकार महब्बतका पहरा चुपचाप। रात दिन वे इन्हींको घिरवे थे।

इस समय नूरजहान अपने स्वामीके साथ रहा करती थीं और उद्धारके लिये नाना परामर्श देती थीं। किन्तु सम्राट् एक भी परामर्श न सुनते थे। उस समय वे महब्बतके साथ मिल कर विश्वास दिलानेकी चेष्टा कर रहे थे। महब्बत भी सम्राट्के व्यवहारसे दिनों दिन इस विषयमें निःसन्देह हो रहे थे। सम्राट्को भी यह अच्छी तरह मालूम हो गया था। वे इस विश्वासको एकबारगी दृढ़ीभूत करनेके लिए नूरजहान के सभी परामर्शों को निष्कपट पूर्वक महब्बतसे कहने लगे। यहां तक कि नूरजहान्ने महब्बतके प्राणनाशकी जो सलाह दी थी तथा उनको भ्रातृपुत्र वधू (आसफखाँ की पुत्री और शाह नवाजकी कन्या) ने अवसर पा कर गोलोंसे मार गिरानेका जो विचार किया था उसे भी सम्राट्ने महब्बतको कह दिया।

महब्बत निष्कपटचित्तसे सम्राट्के उदाराशय से इस छल-चेष्टाकी कथा सुन कर कुछ भी न बोले थे। नूरजहानको इसकी भी खबर लग गई और जब वे इसे बरदाश्त कर न सकीं, तब वे महब्बतको प्राणोंसे अलग करनेकी कोशिश करने लगीं। उन्होंने इस बार सम्राट्को भी इसकी सूचना न दी। महब्बत जिस राह हो कर बादशाहके शिविरमें जा रहे थे, एक दिन उस राह पर उन्होंने कुछ काबुली बन्दूकधारियोंको गुप्त भावसे रखा। महब्बत घोड़े पर चढ़ ज्यों ही बाहर हो कर कुछ दूर आगे बढ़े, त्यों ही दोनों बगलसे बन्दूकधारियोंने उन पर गोली बरसाने लगे। सौभाग्यवश महब्बतके शरीरमें एक भी गोली न लगी। वे वायुवेगसे भागे हो कर बन्दूकधारियोंको विमर्दित करते हुए सामान्य आहत हो कर अपने शिविरमें पहुंचे। काबुलियोंने सम्राट्की पांच सौ सेनाको मार डाला। पीछे नूरजहान भी मानो इस विषयसे बिलकुल अनभिज्ञ हो, सम्राट्से इस घटनाका कारण पूछा। सम्राट् वस्तुतः इसका कुछ भी हाल नहीं जानते थे, उन्होंने ऐसा ही उत्तर दिया। बाद महब्बतने काबुलियोंके इस प्रदेशको घेर लिया। काबुली भयभीत हो गए। नगरके प्रधान प्रधान मनुष्य महब्बतके पास बहुत विनीतभावसे उपस्थित हुए। सम्राट्ने भी उन लोगोंकी ओरसे महब्बतसे क्षमा मांगी। इस घटनाके कुछ नेतागण जब पकड़ा दिये गए, तब महब्बतने भी सन्तुष्ट चित्तसे घेरा उठा दिया। उन सब नेताओंको सामान्य दण्ड दे कर मुक्ति मिली। इसके बाद ही महब्बतने काबुलसे चलनेका हुक्म दिया और वे सबके सब लाहोरकी ओर चल दिए (१)।

नूरजहान्ने जब देखा कि सम्राट् उनकी बात पर कान नहीं देते, तब वे बहुत चिन्तित हो गईं और क्या करना चाहिये उसकी तरकीब सूझने लगीं। स्वामी परसे उनका विश्वास उठ गया और छिपके उद्धार पानेके लिये वे षड्यन्त्र रचने तथा सम्राट्को भी प्रबोध देनेके लिये उनके साथ मिथ्या परामर्श करने लगीं। सच पूछिये तो नूरजहान इस समय भी प्राणसे छुटकारा पानेकी कोशिशमें थीं। वेतन दे कर वे अनुचरकी संख्या और भी बढ़ाने लगीं। क्रमशः उनके खोजाध्यक्ष होशियार खाँ दो हजार मनुष्योंको संग्रह कर लाहोरकी ओर अग्रसर हुए। उस समय नूरजहांने भी राजपत्रपरिवर्तनसे कितने ही लोगोंको संग्रह कर रखा था। होशियारने रोहतससे कुछ दूरमें रह कर नूरजहांको सम्वाद भेजा। नूरजहांने स्वामीको निजसैन्यपरिदर्शनके लिये आग्रहपूर्वक अनुरोध किया। सम्राट्ने इसे स्वीकार कर लिया। उन्होंने निज परिचारक बलन्द खां द्वारा महब्बतको कहला भेजा कि उस दिन दैनिक कुचकावाद बन्द रखो क्योंकि सम्राट् बेगमके अश्वारोहीका परिदर्शन करेंगे। पहले महब्बत तो राजी न हुए पर पीछे ख्वाजा अबुलहसनने तब द्वारा उन्हें राजी कराया। राजप्रासादसे ले कर नदीके किनारे तक दोनों बगल राणीके अश्वारोही एक श्रेणीमें खड़े किये गए। उधर नदीके दूसरे किनारे होशियार खांका सैन्यदल रोहतास दुर्ग तक फैला हुआ था। बादशाह और बेगम घोड़े पर सवार हुए। उनके कुछ

(१) Ikbal-nama-i Jahangiri Elliot, Vol. VI. p 420-431)

दूर जाने पर सैनादम धीरे धीरे सम्राट्‌के पीछे पीछे आने लगी। अन्तमें बहुत तेजीसे वे सबके सब बाद शाह और बेगमके साथ नदी पार कर रोहतास दुर्गमें पहुंचे। इस प्रकार मानो नूरजहांके बुद्धिबलसे सम्राट्‌ने चिरबन्दित्वसे उद्धार पाया। अब स्वामीको उद्धार कर वे अपने भाई और भतीजेके उद्धारकी चेष्टा करने लगीं। उन्होंने महब्बत खांको एक आदेशपत्र स्वामीसे लिखवा कर भेजवा दिया। उस पत्रमें महब्बत खांको ठट्टप्रदेशमें शाहजहांके विरुद्ध युद्धयात्रा करने, आसफ खां और उनके पुत्र आबू तालिब (पीछे शाइस्ता खां)-को दरबारमें भेज देने, शाहजादा दानियालके दोनों पुत्रोंको और मुखलिस खांके पुत्र लस्करी खांको भेज देनेका आदेश था। पत्रमें यह भी लिखा था, कि उनके आदेश-का उल्लङ्घन करनेसे उनके विरुद्ध सेना भेजी जायगी। महब्बतने देखा, कि इस समय बिना किसी छेड़छाड़के सबको भेज देना ही अच्छा है, नहीं तो आफत मेरे ही सिर पड़ेगी। यह सोच कर उन्होंने सब किसीको भेज दिया सिवा आसफखांके, जिसका कारण लिख भेजा कि वे ठट्ट प्रदेश जा रहे हैं, इस समय वे आसफ खांको छोड़ नहीं सकते। क्योंकि नूरजहां बेगमसे वे पदपदमें प्रतिशोध-की आशङ्का कर रहे हैं। ठट्टकी ओर जानेसे सम्भव है कि स्वाधीनता-प्राप्त आसफ खां उनके विरुद्ध अस्त्रधारण करें। अतएव लाहोर पार होनेके बाद वे छोड़ दिये जायेंगे। नूरजहां यह सम्वाद पा कर आगबबूला हो उठीं। उन्होंने पुनः महब्बतको लिख भेजा कि वे फौरन आसफको छोड़ देवें अन्यथा उनके पक्षमें अच्छा नहीं होगा। इस पर महब्बतने बिना किसी ना नुं-के आसफको भेज दिया, लेकिन उनके पुत्रको कुछ समय तक रोक रखा।

डाउ साहबके इतिहासमें सम्राट्‌के उद्धारका वर्णन और प्रकारसे लिखा है। महब्बतकी राज्य पानेकी जरा भी इच्छा न थी। पद और मर्यादामें किसी प्रकारकी हानि न पहुंचेगी इस प्रकार सम्राट्‌से प्रतिज्ञा करा कर उन्होंने उन परसे कठोरता घटा दी, पहरुओंकी संख्या-को कम कर दिया तथा जो सब राजकीय क्षमता अपने हाथमें ले ली थी उसे भी सम्राट्‌को प्रत्यर्पण किया। इस सद्व्यवहार पर भी नूरजहां चुप चाप बैठी न रहीं, वरन् क्षमता पानेसे उन्हें अब और भी सुयोग मिल गया। उन्होंने यह कहला भेजा कि, "जो भयानक दुर्दान्त क्षमता शाली और कुटिल मनुष्य सम्राट्‌को कैद कर सकता है, उसे यदि बिना दण्ड दिए ही छोड़ दें अथवा मौखिक आनुगत्यसे वशीभूत हो कर उसका आदर करें तो फिर प्रजा क्या सम्राट्‌को प्रकृत सम्राट्‌ मानेगी?" यह कह कर बेगमने जनताके सामने उसे प्राणदण्ड देनेके लिये सम्राट्‌से अनुरोध किया। लेकिन सम्राट्‌ने वैसा नहीं किया, वरन् इस विषयमें कोई बात उठानेसे मना किया। स्वामीसे इस प्रकार विफलमनोरथ हो नूरजहांने एक खोजाको सम्राट्‌-शिविरमें प्रवेश करते वा उससे बाहर निकलते समय महब्बत पर गोली चलानेका हुक्म दिया। जहांगीरको ज्योंही इस आदेश-को खबर लगी, त्योंही उन्होंने महब्बतको सावधान होनेके लिये कहला भेजा। महब्बत सावधान हो गए लेकिन मारे जानेका डर हरवक्त बना हुआ था। अन्त-में सम्राट्‌की बात पर विश्वास करते हुए, वे चुरा कर ठट्ट प्रदेशको चल दिये।

जब नूरजहान्‌को मालूम हुआ कि महब्बत जान ले कर कहीं भाग गया, तब उन्हें खोजने और पकड़ लानेके लिये उन्होंने चारों तरफके शासनकर्त्ताओंके पास फरमान भेज दिये। ढिंढोरा भी पिटवा दिया गया कि महब्बत खां बागी हो गया है, जो उसको पकड़ लावेगा उसे यथेष्ट पारितोषिक मिलेगा।

आसफ खांने अपनी बहनके ऐसे कठोर आदेशको अच्छा न समझा। वे महब्बतकी गुणावली जानते थे और स्वयं भी उनके सद्व्यवहारके वशीभूत थे।

महब्बत नूरजहान्‌के आदेशसे ताड़ित कुत्तोंकी तरह नाना स्थानोंमें चुरा कर घूमने लगे। अन्तमें एक दिन छद्मवेशमें असम साहस पर निर्भर करते हुए घोड़े पर सवार हुए और ठट्टसे दो सौ कोसका रास्ता ते कर कर्णाल नामक स्थानमें आसफ खांके शिविरमें पहुंचे। रातके ८ बजे जब वे द्वार पर जा खड़े हुए, तब एक खोजाने उसे पहचान आसफको खबर दी। आसफने महब्बतके मलिन वेश और दुर्दशा देख कर

उनकी पाणिग्रहण किया और दोनों रोने लगीं। बहुत बातचीत होनेके बाद महब्बतने कहा, "सम्राट्की अकर्मण्यताने ही उनका सर्वनाश किया। नूरजहाँ जैसी चञ्चल है और उन्होंके लिये आज मेरी ऐसी दुर्दशा हो गई है, तब एक दूसरेको सम्राट् बनाऊंगा, ऐसी मैंने प्रतिज्ञा कर ली है। कुमार परवेज धार्मिक बन्धु होने पर भी दुर्बलमना और निर्बोध है। किन्तु शाहजहां सभी अंशमें उपयुक्त है। उन्हें मैंने युद्धमें पराजित किया है। अतएव यदि आप हमारी सहायता करें, तो हम आपके जामाताको राज्य दे सकते हैं।' आसफ प्रस्तावित बन्धु पा कर विस्मित और भीत हुए तथा सैन्य और अर्थ दे कर सहायता पहुंचानेको तैयार हो गए। बाद महब्बत वहांसे चल दिये।

तदनन्तर दक्षिणके लोकयोगका समाचार पहुंचा। सम्राट्ने महब्बतके जैसे सेनापतिका समान उत्कर्ष करते हुए आक्षेप किया। उसी मौकेमें आसफ खाँने महब्बतको मार्जनाका आदेश पा कर निकाल दिया। महब्बतने फिरसे पूर्व सम्मान और पदादि पाये तथा वे नेत्रहस्तसे अभिमानमें हो कर शाहजहांके निकट चले गए। (१)

मुसलमान ऐतिहासिकोंने लिखा है,—इसी बीच सम्राट् दलबलके साथ लाहोर पहुंचे। आसफ खाँके वहां पहुंचने पर वे पञ्जाबके सूबेदार और प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किए गए तथा उन्हें समस्त राजनैतिक और राजस्व सम्बन्धी मन्त्रणासभाके सभापतिरूपमें कार्य करनेका आदेश भी दिया गया। इस अवसर महब्बत बङ्गदेशसे २२ लाख मुद्रा साथ लिए जाते थे। दिल्लीके निकट शाहाबाद पहुंचने पर जब सम्राट्को इसकी खबर लगी, तब उन्होंने सेना भेज कर उसे छीन लिया।

इसके बाद शाहजहान्ने ठट्ठ प्रदेश होते हुए पारस्य जाने तथा वहांके अधीश्वर शाह अब्बाससे सहायता मांगनेका विचार किया। ठट्ठदेश पहुंचने पर कुमार शहरयारके कर्मचारी शरीफ उल मुल्कने दुर्गसे गोला छोड़ कर उनके कितने अनुचरोंको मार डाला। इस समय १८ वर्षकी अवस्थामें कुमार परवेजकी मृत्यु हुई। अतः शाहजहां उसको छोड़ कर नासिक भाग गए। महब्बत खां शाहजादेसे ११ लाख रुपयेसे वञ्चित हो कर इस आपदाओंका परित्याग करते हुए राजपूतानेमें राणाके राज्यमें अभय पार्वत्य प्रदेशमें छिप रहे। पीछे जब उन्होंने सुना कि शाहजहां नासिकमें हैं तब उनके पास एक दूत भेजा। इस समय शाहजहांको महब्बतके जैसे एक आदमीकी जरूरत थी, इसलिए उन्होंने महब्बतको अपने पास बुला भेजा। इस समय भी महब्बतके साथ २००० अश्वारोही थे। जुनिर नामक स्थान पर दोनोंमें मुलाकात हुई।

१०३७ हिजरीमें सम्राट् जहांगीर रोगग्रस्त हुए। दिनों दिन उनका भोजन कम होता गया। केवलमात्र एक आध प्याला रसके पिया और कुछ भी खानेका उपाय न रहा। उनकी चिकित्सा होने लगी, पर कोई फल देखा न गया। काश्मीरसे वे पालकी पर चढ़ कर लाहोर भेज दिए गए। इस समय कुमार शहरयार एक प्रकारके उत्कट रोगोंके कारण दुर्दशाग्रस्त हुए। उनके मुखमण्डलके भ्रू, गुम्फ, श्मश्रु, मस्तकके बाल और आखोंकी पलक झड़ गए। वे नितान्त लज्जित हो कितने निकटसे लाहोर भाग आए। सम्राट् भी पर्वतसे उतर रहे थे। राहमें बरमकल (भमकाल) नामक स्थान पर पहुंच कर चिरअभ्यस्त सम्राट्को शिकार खेलनेकी इच्छा हुई। कुछ ग्रामवासी सम्राट्के आदेशसे एक हरिणको बहुतसे भगा लाए। सम्राट्ने बन्दूक उठा कर गोली चलाई। हरिण गोली खा कर बहुत निचे भागा और पहाड़ीके पास जा पड़ा हुआ। बाद उसी समय उसकी जान निकल गई। कुछ लोग जो उसके पीछे दौड़े थे वह उसी गिर कर अपघातको प्राप्त हुए। यह देख कर दुर्बलमस्तिष्क सम्राट्का मन और विकल हो गया। उन्हें उस समय ऐसा मालूम पड़ने लगा कि वे यमदूतको देख रहे हैं। बाद वे इस स्थानसे दो दण्डका रास्ता तै कर राजौर पहुंचे। इस समय उन्हें केवल हृदयकी व्यथा थी। लेकिन वे उसे छूट न सके। दूसरे दिन भोर (२८वीं सफर १०३७

(१) Dow's Hindostan Vol. III. p. [illegible]

हिजरीको) सम्राट् नूरउद्दीन् जहांगीर परलोकको सिधार गए (१)।

बाद आसफ खांने इरादत खानखानी आलमके साथ परामर्श किया और तदनुसार मृत युवराज खुसरू के पुत्र दौरा बक्‌शको बन्दित्वसे उद्दार कर उसीको राजकी आज्ञा दी। दौरा बक्‌शने उन लोगोंसे इस विषयमें प्रतिज्ञा कर ली। अन्तमें आसफ खांने उन्हें घोड़े पर चढ़ा उन्हींके मस्तक पर राजछत्र पहना दिया और सबके सब अग्रसर हुए। नूरजहांने इस समय भाईसे भेंट करनेके लिये अनेक बार उन्हें अनुरोध किया; किन्तु आसफ खांने कोई बहाना लगा कर मुलाकात न की। दौरा बक्‌शको आश्वासन दिये जाने पर भी आसफखां अपनी प्रतिज्ञा पर कायम न रहे। उन्होंने बाणारसी नामक एक अत्यन्त द्रुतगामी दूतकी भेज कर शाहजहां और महब्बतको इसकी खबर दी, पत्र लिखने का उन्हें अवकाश न था। अभिज्ञानस्वरूप उन्होंने अपनी अंगूठी दूतके हाथ लगा दी। ऐसा करनेका कुछ कारण था (२)। इनकी कन्या मुमताज-महलके साथ १०१८ हिजरीमें कुमार शाहजहांका विवाह हुआ था। सुतरां जामाताके लिये सिंहासनको निरापद रखनेके उद्देश्यसे दूसरे दूसरे प्रतिद्वन्द्वियोंको बाधा देनेके लिये ही उन्होंने दौरा बक्‌शको सिंहासनकी आज्ञा दी थी।

दूसरे दिन भीमबरसे बड़ी धूमधामसे सम्राट्‌की मृतदेह लाहौर लाई गई और नूरजहान्‌के उद्यानमें गाड़ी गई। यहां पर अन्यान्य अमीरगण आसफ खांकी अभिसन्धि समझ कर उन्हींके मतानुसार चलने लगे। दौरा बक्‌श सम्राट् कह कर विघोषित किये गए और भीमबरमें उस दिन उनके नाम पर खुतबा पढ़ा गया। नूरजहां भाईके इस कार्य पर बहुत असन्तुष्ट हुईं। वे मृत सम्राट्‌के इच्छानुसार काम करने लगीं और उसी स्थान पर अमीर उमरावोंके मध्य स्वपक्षमें लोक संग्रह करनेके लिये चेष्टा भी की। आसफ खांने उनकी चेष्टाको विफल करनेके लिये उन्हें अपने शिविरमें बन्दिनीके स्वरूप रख दिया।

उधर शहरयार पिताका मृत्यु-पश्चात् पाते ही लाहौरके राजकोष पर अधिकार कर बैठे और उसीसे सैन्य संग्रह करने लगे। उनकी पत्नी नूरजहान्‌की कन्या लैईलिसाने स्वामीको उत्तेजित कर उन्हें सम्राट् कह कर तमाम घोषणा कर दी। सैन्य और सेनापतियोंको अपने दलमें लानेमें शहरयारके एक सप्ताह के अन्दर १० लाख रुपये खर्च हुए थे। शाहजादा दानियालके भतीजे मिर्जा बाइसिन्दरने इस समय भाग कर लाहौरमें अपने भतीजे शहरयारका आश्रय ग्रहण किया। शहरयारने चाचाको सेनापति बनाया। वे सैन्यदल ले कर नदी पार हुए और वहां किनारेको चारों ओरसे सुरक्षित कर रहने लगे। हाथी पर चढ़े हुए आसफ खां और दौरा बक्‌शने देखा कि नदीके किनारे तीन कोस तक विपक्ष सैन्य एक कतारमें खड़ी है। आसफकी सैन्यसंख्या बहुत कम थी। अतः वे पहले तो डर गए, पर पीछे जब उन्होंने युद्ध करनेका पक्का विचार कर लिया, तब शहरयारकी अशिक्षित सेना गोलाघातसे भीत हो कर अस्त्रचालनके पहले ही तितर-बितर हो गई। दूरमें शहरयार पर्वतशिखर पर तीन सहस्र अश्वारोही ले कर खड़े थे। जब उन्हें मालूम पड़ा कि उनकी सेना जान ले कर भग गई, तब वे पर्वत परसे उतरे और किलेमें आश्रय लिया। दूसरे दिन आसफ खांने सुशिक्षित राजभक्त सैन्य और वीरोंकी सहायतासे पुनः दुर्गको अपने अधिकारमें कर लिया।

उस समय शहरयार अन्तःपुरमें छिपे हुए थे। फिरोज खां उन्हें आसफके पास पकड़ लाए। दौराबक्‌शके आदेशसे उनकी दोनों आंखें उपाट ली गईं। शाहजादा दानियालके दूसरे दो पुत्र भी बन्दी हुए (१)।

उधर बाणारसी काश्मीरके पहाड़से २० दिनमें गोलकुण्डा पहुंचा और १०३७ हिजरी १८ रबिउल

(१) Ikbal-nama-Jahangiri (Elliot, Vol. VI. p. 431-35.)

(२) Dow's Hindustan, Vol. III, p. 113 and Ikbal-nama-i Jahangiri (Elliot, Vol. VI. p. 436.)

(१) Dow's Hindustan Vol. III. p, 114 and Elliot Vol. VI. p. 437.

जमनकी सुमिर नामक स्थानमें मदमान खाँसे कर उपस्थित हो उसने खानखानाका प्रेरित सम्वाद कह सुनाया शाहजहान्‌को भी इसकी खबर लगी। पीछे उन्होंने २२ तारीखको गुजरातकी राह हो कर यात्रा कर दी। अहमदाबाद पहुंच कर शाहजहान्‌ने अपने भाइयोंको एक पत्र लिखा जिसमें कुमार खुसरूके पुत्र दोरा बख्श, कुमार शहरयार और शाहजादा दानियालके पुत्रोंको मार डालनेका परामर्श था। तदनन्तर १०३७ हिजरीकी २री जमादियस् सानीको लाहोरमें सर्वसम्मतिक्रमसे शाहजहाँ सम्राट् बनाये गए। २६ तारीखको दोरा-बख्श, उनके भाई गरशास्प, शहरयार और दानियालके दोनों पुत्र मार डाले गए। आसफ खाँने इस विषयमें कोई खोज खबर न ली। दूसरे दिन वे सबके सब आगराको चल दिये और २६वीं तारीखको शाहजहाँ दलबलके साथ आगरा पहुंच कर सर्ववादी सम्राट्‌के वेशमें समासीन हुए।

शहरयारकी मृत्यु होने पर नूरजहान्‌की सभी आशा अभी वैसा धूलमें मिल गई। उन्होंने राजनैतिक व्यापारसे एकबारगी हाथ उठा कर लिया। शाहजहान्‌ने उन्हें वार्षिक दो लाख रुपयेकी वृत्ति निर्धारित कर दी। बाद वे जब तक जीती रहीं तब तक उन्होंने सफेद वस्त्र पहन कर विधवाकी भांति जीवन व्यतीत किया। इस समय वे अपने तथा पारसीमें कविता बनानेमें रत रहती थीं। 'मुख्फि' उपनामसे वे अरचित कवितामें भणिता देती थीं। जहांगीर बादशाहमें इस समय इनको जरा भी अभिमान न थी।

नूरजहान अत्यन्त रमणी थी। राजनीतिको उन्होंने नखदर्पणमें रखना किया था। स्त्री हो कर वे जिस तरह भारतसाम्राज्यका शासन कर गई हैं, अब मरदोंमें राजनीतिज्ञ बादशाहके पुत्र हो कर जहांगीर भी उस तरह राज्यशासन कर न सके थे। नूरजहान्‌की बुद्धिमत्ता उनको यदि जहांगीरको न मिलती, तो सम्भव था कि, वे या तो विद्रोहमें हि राज्यच्युत होते, अथवा जिन्दगी भर मद्यपान और विलासितामें रत रह कर प्राण गंवाते। बुद्धि, साहस, कौशल, धूर्तता, दया, स्नेह ममता और कर्तव्यनिष्ठता आदि गुण नूरजहाँमें भरपूर थे। पर हां, सपत्नीके साथ उनका व्यवहार विशेष निन्दनीय था। स्वार्थान्ध हो कर उन्होंने जो चातुरता दिखलाते हुए पुत्र खोसरूका अपमान किया था, उन्हीं सब भूलोंसे उनका इतना शीघ्र पतन हुआ।

लाहोरमें ७२ वर्षकी उमरमें १०५५ हिजरी, २८वीं सोयालको भारतेश्वरी नूरजहाँका परलोकवास हुआ। स्वामीकी कब्रके बगल ही निज निर्मित कब्रमें उनकी देह समाहित हुई।

नूरजहाँ जैसी अनुपम-अद्वितीय-सौन्दर्यशालिनी थी, वैसी ही सौन्दर्यप्रिय और विलासिनी भी थी। मीर अयासकी मृत्युके बाद जब वे जहांगीरकी सन्दिनी थीं, तब उन्होंने नये नये आदर्शके गहने बना कर रेशमी वस्त्रमें लगवाके निज शिल्पकुशलता और सौन्दर्यज्ञानका परिचय दिया था। पीछे आप महिलाओंकी विलासिताकी चूड़ान्त बहुत बढ़ा कर भुवन पर चिर प्रतिष्ठित कर गई हैं। 'अतरे-जहांगिरी' नामक सर्वोत्कृष्ट गुलाबजल पेशवाजके लिये सूक्ष्म चिकन "दुदामी" नामक वस्त्र (तौलमें दो दाम मात्र), ओढ़नीके लिये 'पांच तोलिया' (तौलमें ५ तोला मात्र), 'बादला' नामक बूटेदार या गुलदार सूक्ष्म रेशमी वस्त्र और नहीं उन्हींके मस्तिष्कको उद्भावित वस्तु है। 'फरास-ई चन्दनी' नामक चन्दनवर्णकी कार्पेट, उनके समस्त शिल्पोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ शिल्प और परम शोभाविशिष्ट है (१)।

द्वितीय बार विधवा हो कर नूरजहाँ ईश्वराराधना और पतिकी चिन्तामें इतनी दुःखी हुई थी कि उन्होंने चिरदिन राजनीतिका परित्याग कर दिया था।

नूरा—सिन्धुप्रदेशका एक वृहत् ग्राम। यह अक्षा० २६ ६' ३०" तथा देशा० ६७ ४१ पू०के मध्य अवस्थित है। यह सेहवनसे १० मील उत्तर और लिप्पुनहरसे २ मील पश्चिम पड़ता है। इस ग्रामके चारों ओरकी जमीन समतल है और प्रति वर्ष पानी पड़नेसे यह ध्वंस हो जाती है। यहां बहुतसी नहरें हैं। इस कारण धान आदि अच्छी उपजती है।

(१) Ain-i Akbari (Blochmann p. 510)

नूरनगर—१ बङ्गालदेशके अन्तर्भुक्त त्रिपुरा जिलेके अधीन एक क्षुद्र नगर। यह अक्षा० २३° ४५' उ० और देशा० ९१° ५' पू०के मध्य ढाका शहरसे ५५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

२ खुलना जिलेके अधीन एक गण्डग्राम। यहां राजा वसन्तरायके वंशधरगण वास करते हैं।

३ युक्तप्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन एक नगर। यह अक्षा० २९° ४१' उ० और देशा ७७° ५८' पू०के मध्य मुजफ्फरनगरसे हरिद्वार जानेके रास्ते पर बसा हुआ है। यहांसे मुजफ्फर नगर २२ मील उत्तर-पूर्व पड़ता है।

नूरपुर—१ पञ्जाब प्रदेशके कांगड़ा जिलेके अन्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० ३२° १९' उ० और देशा० ७५°५५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५२५ वर्गमील और लोकसंख्या चार हजारसे ज्यादा है। यहां एक आश्चर्य-जनक लकड़ीका मन्दिर है। यहां चावल, गेहूं, मकई, जौ, चना, ईख, रुई और अन्यान्य शाक सब्जी उत्पन्न होती है। यहांके तहसीलदार ही दीवानी और राजस्व विभागीय विचारकार्य तथा शासनकर्त्ताके कार्य करते हैं। यहां तीन थाने हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३२° १८' १०" उ० और देशा० ७५° ५५' ३०" पू०, समुद्रपृष्ठसे दो हजार फुटकी ऊंचाई पर तथा धर्मशाला नामक स्वास्थ्य-निवाससे ३७ मील दक्षिण चक्की स्रोतस्वती-की एक शाखा पर अवस्थित है। पहले यह नगरी एक क्षुद्र देशीय क्षुद्र राज्यकी राजधानी थी। राजा बसुने समतल क्षेत्रसे इस नगरको उठा कर पहाड़के ऊपर बसाया और चारों ओर दुर्गसे सुरक्षित कर दिया। बहुत दिनों तक यह नगर वाणिज्यवृद्धिके कारण जिलेका प्रधान सदर था। किन्तु वर्त्तमान समयमें व्यव-सायका ह्रास हो जानेसे नगरकी पूर्व श्री जाती रही और धनाभावसे जनसंख्या भी दिनों दिन घटती आ रही है। फ्रान्स-प्रुसिया युद्धके बाद ही यहांके वाणिज्य-की अवनति हुई। यहां शाल और पशमीने कपड़े तो तैयार होते हैं पर वे काश्मीर वा अमृतसरके कपड़ोंसे बहुत निकृष्ट हैं।

यहांके अधिवासी विशेष कर राजपूत, काश्मीरी और क्षत्रिय हैं। ये क्षत्रियगण मुसलमान राजाओंसे उत्पीड़ित हो कर लाहोरसे आ कर इसी स्थान पर बस गए। १७८३ और १८३० ई०में जब काश्मीरमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा था, तब काश्मीरियोंमेंसे बहुतोंने स्वदेश छोड़ दिया और इसी स्थानमें आ कर रहने लगे। आते समय वे पश्मीना वस्त्रादि बुननेके उपयुक्त यन्त्रादि भी अपने साथ लाए थे। इस समयसे यह स्थान शाल व्यव-सायके लिए विशेष मशहूर हो गया है।

फिलहाल यहांके काश्मीरिगण शालव्यवसायके बदले रेशमके कीड़ेकी खेती करते और उसीसे रेशमादि तैयार कर बेचते हैं। यहां एक बड़ा बाजार, अदालत, औषधा-लय, विद्यालय और दो सराय हैं। निकटवर्त्ती स्थानोंसे नाना प्रकारके द्रव्यादिकी आमदनी होती है।

इरावती और विपासा-नदियोंके बीच १६ मील तक विस्तृत एक भूभाग है जो नूरपुर जिला नामसे प्रसिद्ध है। इसके उत्तरमें चन्द्रभागा नदी, पूर्वमें चम्बाराज्य, पश्चिममें पञ्जाबराजके अधीनस्थ कई एक हिन्दूराज्य और विपासानदी तथा दक्षिणमें हरिपुर है। इस जिलेके प्रत्नतत्त्व-विषयमें जो कुछ पता लगा है, वह नीचे दिया जाता है। प्रसिद्ध ग्रन्थकार अबुलफजलने इस स्थानको दमक्षी बतलाया है। यहांके अधिवासी इसे 'दहमेरी' कहा करते हैं। तारीख-इ-अल्फिनामक ग्रन्थमें इसका दमाल नाम रखा गया है। उक्त पुस्तकमें लिखा है, कि यह स्थान हिन्दुस्थानके प्रान्तभागमें एक पर्वतके ऊपर बसा हुआ है।

इस दहमेरी जिलेकी राजधानी पठानकोटमें है। यह पठान-कोट नगर इरावती और विपासा नदीके मध्य-स्थलमें अवस्थित है। यहांके निकटस्थ पर्वतों पर कांगड़ा और चम्बानगर तथा समतल क्षेत्र पर लाहोर और जलन्धरनगर बसे रहनेके कारण एक समय यह नगर वाणिज्यका एक उत्कृष्ट स्थान गिना जाता था। इस स्थानके प्राचीन हिन्दूराजगण पठान जातीय राजपूत-शाखासे उत्पन्न हुए हैं और पठानिया वा पैठान कहलाते हैं। ये लोग मुसलमान वा अफगान जातिको पठान शाखासे बिलकुल विभिन्न हैं। यह पठानिया वा पैठान

सिन्दे] के खात 'प्रतिष्ठान' नामक जनपदका प्रथमांश समझा जाता है। हो सकता है, कि गोदावरी तीरवर्त्ती विख्यात पैठान वा प्रतिष्ठान जनपदके किसी राजाने इसे बसाया हो।

पश्चाहिम मजमदी नामक किसी मुसलमानने इस पठिआन वा पठियानकोटके दुर्गको बहुत दिन तक घेरे रहनेके बाद जीता था। धीरे धीरे इसका पूर्वतन हिन्दू नाम लोप होता गया और वर्त्तमान मुसलमान अधिकारमें पठानकोट कहलाने लगा है।

यहांके पुरातन दुर्गका जो ध्वंसावशेष देखा जाता है, उसके चारों ओर डेढ़ सौ वर्गफुट तक एक मट्टीका स्तूप है जिसकी ऊंचाई करीब एक सौ फुटकी होगी। यहां जो सब ईंटें मिलती हैं वे बहुत बड़ी बड़ी हैं। जिन्हें देखनेसे ही पता लगता है कि ये प्राचीन हिन्दुओंसे बनाई गई हैं। यहां ग्रीकराज जिलस (King Zoilus), शकनृपतियोंमें गोण्डफरेस (Gondophares), कणिष्क और हुविष्कको अनेक मुद्राएं मिलती हैं और जो आश्चर्यका विषय यह है कि पठानकोटमें हिन्दूराजाओंके समयकी भी ताम्रमुद्राएं पाई गई हैं। इन मुद्राओंके ऊपर प्राचीन अक्षरमें औदुम्बर नाम खोदा हुआ है। ये सब मुद्राएं प्रायः दो हजार वर्षकी पुरानी होंगी। इस प्रकारकी मुद्रा दूसरी जगह देखी नहीं जाती, केवल इसी स्थानमें पाई गई हैं। इस कारण डा० कनिङ्हम इस जिलेको प्राचीन औदुम्बर देश बतला गए हैं।

पाणिनिने उडुम्बरवृक्ष (Ficus glomerata) समन्वित देशको औदुम्बर बतलाया है। वर्त्तमान नूरपुर जिलेमें भी इस जातिके अनेक पेड़ देखे जाते हैं। इसके अलावा वराहमिहिरके देशीय ग्रन्थोंमें यह औदुम्बर देश पञ्जाबके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित माना है। पराशरमिहिरने उदुम्बरवासीके साथ कपिष्ठलवासियोंका सम्बन्ध निर्णय किया है। मार्कण्डेयपुराणमें भी यह मत समर्थित हुआ है। विष्णुपुराणमें भी त्रिगर्त्तवासी और कुलिन्द जातिके साथ इनका सम्बन्ध वर्णित है।* इसके सिवा प्राचीन "दहमेरी वा डहमरी" शब्द औदुम्बरका अपभ्रंश है, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन औदुम्बर जनपद और तत्पार्श्ववर्त्ती स्थानसमूह भी एक समय दहमेरी नामसे जनसाधारणमें प्रसिद्ध था, पैठानराजाओंके समयमें पठानकोट कहलाने लगा। पीछे जब यह मुगल मानके हाथमें आया, तब पठानकोट और जहांगीरके शासनकालमें नूरजहान्‌के नाम पर नूरपुर नामसे प्रसिद्ध हुआ। यहां जितनी ताम्रमुद्राएं पाई गई हैं, वे सभी चौकोन हैं। इनके एक पृष्ठ पर एक मन्दिर और दूसरे पृष्ठ पर हाथी और वृक्ष अङ्कित है। मन्दिरके पार्श्वभागमें त्रिशूल अङ्कित और धर्मचक्र तथा नन्दिपदमें एक सर्पमूर्त्ति खोदित है। दूसरे पृष्ठ पर जो वृक्ष है वह चारों ओरसे घिरा है और उस पर औदुम्बर नाम खोदा हुआ है। इन सब प्रमाणोंके बलसे डा० कनिङ्हम आदि प्रत्नतत्त्वविदोंने इसी स्थानको औदुम्बर राज्य स्थिर किया है।

भारतवर्षमें मुसलमान आगमनके पहले यही नाम जनसाधारणमें चलता था। परवर्त्ती कालमें आबु रिहान नामक किसी व्यक्तिने जलन्धरकी राजधानीको दहमाल (अन्यान्य मुसलमान ग्रन्थोंमें इसी स्थानका नाम दैह-मारी है।) बतलाया है।† मालूम होता है, इसी समय त्रिगर्त्त वा जालन्धराधिपोंने इस स्थानको अपने अधिकारभुक्त किया था। इस समयके बादसे ले कर सम्राट् अकबरके शासनकाल तक इसका कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आता। पर हां, यह स्थान किसी एक क्षुद्र हिन्दू सरदारके अधीन था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। अकबरशाहके राज्यारोहणके पहले ९६३ हिजरीमें जब पैठान-राज मकतमख सिकन्दर-सूरके बख्शी था जब मानकोट नामक स्थानमें मुगल-व्यहित खड़े थे तब पैठानराज कोम उन्हें कैद कर लिया और बड़ी बुरी तरहसे मार डाला।

नूरपुर राजका प्रथम प्रकृत इतिहास मुसलमान और सिक्खोंके समयसे नहीं मिलता है। किन्तु १८४६ ई०में [illegible] बोलराम [illegible] चमोरके बड़ाइ देवोदास नामक ८९ वर्षके एक वृद्ध ब्राह्मणसे राजवंशका जो

* बृहत्संहिता १४वां अध्याय।

* Hall's Edition Vishnupurana, Vol. II. p. 180.

† Elliot's Muhammadan Historians, Vol. I p. 62.

इतिहास संग्रह किया है तथा मुसलमान ऐतिहासिकोंने नूरपुरके इतिहासके विषयमें जो कुछ लिखा है, वह एक दूसरेसे बिलकुल मिल जाता है।

यहांके राजगण विपोली, मन्दो और सुखेत आदि देशोंके राजाओंकी तरह अपनेको पाण्डुवंशोद्भव बतलाते हैं। इनकी जातीय आख्या पाण्डोर है। देवोशाहका कहना है, कि ये लोग अर्जुन संशोद्भव तोमरजातिके राजपूत हैं। उनके मतानुसार,—जयपाल और भूपाल नामके दो भाई थे जिनमेंसे जयपाल दहमेरीमें और भूपाल पैठान नामक जनपदमें राज्य करते थे। जयपालके बादसे जो उन्होंने थोड़े राजाओंके नाम दिए हैं, उनके राजत्वकालका निर्द्धारित समय मालूम नहीं होनेके कारण अकबर बादशाहके राजत्वके पूर्व समयके केवल उन्नीस राजाओंके नाम नीचे दिए जाते हैं। यथा—

१ जयपाल, २ गोवपाल, ३ सुखीनपाल, ४ जायत्पाल, ५ रामपाल, ६ गोपालपाल, ७ अर्जुनपाल, ८ वर्षपाल, ९ यतनपाल, १० विद्रथ वा विदूरथपाल, ११ जोखानपाल (इन्होंने तिर्हारण राजाकन्यासे विवाह किया), १२ राना किरातपाल, १३ कत्तपाल, १४ जम्बुपाल, १५ कलसपाल (इन्होंने जम्बुराजकन्याका पाणिग्रहण किया), १६ नागपाल, १७ पृथ्वीपाल, १८ दिलो और १९ भक्तपाल। शेष राजा १५२५ ई०में राजगद्दी पर बैठे और १५५८ ई०में मानकोटके युद्धमें वैराम खांसे मारे गए। पीछे २०वें विद्दारीमल्ल राजा हुए। १५८० ई०में इनकी मृत्यु हुई।

२१वें राजा वसुदेव—इन्होंने १५८० ई०में राज्यारोहण किया। सम्राट् अकबरके राजत्वके ४२वें वर्षमें ये एक बार विद्रोही हुए थे। फल यह हुआ कि सम्राट्ने उनकी राजाकी उपाधि छीन ली और वे उन्हें मान तथा पठानप्रदेशके जमींदारके रूपमें गिनने लगे। पांच वर्षके बाद फिर भी वे विद्रोही हो उठे। इस बार सम्राट्ने पठानराज्य उनके हाथसे छीन लिया। १६१३ ई०में उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के राज्याधिकारी हुए।

२२वें राजा सूर्यमल्ल थे। जब ये गद्दी पर बैठे, तब जहांगीरके विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगे। इस पर सम्राट्ने १०२१ हिजरीमें उन्हें दमन करनेके लिये राजा विक्रमजित्को भेजा। सूर्यमल्ल डर गए और उन्होंने पहले वसुराज-निर्मित नूरपुर दुर्गमें, पीछे चम्बाराजके यहां आश्रय लिया। विक्रमजित्ने उन्हें पराजित कर मौ, घारा, पहारी, ठट्ट, पक्कोत, सूर और जवालीके दुर्ग दखल कर लिए। बाद बहुसंख्यक हाथी, घोड़े और धन-रत्नादि लूट कर दिल्ली भेज दिये*। १६१८ ई०में सूर्यमलके राज्यच्युत होने पर उनके भाई जगत्सिंह (२३वें) राजा हुए।

सम्राट् जहांगीर जगत्सिंहको बहुत चाहते थे। अतः प्रसन्न हो कर सम्राट्ने उन्हें ३०० सेनाओंके अध्यक्षका पद और राजाकी उपाधि दी।

१०४७ हिजरीमें वे शाहजहान्के विरुद्ध हो गए। पीछे उनकी अधीनता स्वीकार करने पर छीना हुआ अधिकार लौटा दिया गया। १०४२ हिजरीमें वा १६४२ ई०में वे दाराशिकोहको कन्दहार ले गये और वहीं उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के राजा रूपने १५ सौ सेनाओंका अध्यक्षपद और राजाकी उपाधि पाई। तारागढ़के युद्धमें इनकी हार हुई और किला हाथसे जाता रहा। १०७७ हिजरीमें उनके मरने पर उनके लड़के राजा मान्धाताने राज्यभार ग्रहण किया। यह एक अच्छे कवि थे। उनके लिखित काव्यसे मशामान्य वीमस साहबने जो वंशपरिचय और अद्भुत कहानी संग्रह की है, उसका अधिकांश मि० ब्लकमैन साहबके अनुवादित पादशा नामाकी वर्णित कहानीसे बहुत कुछ मिलता है। इस ग्रन्थमें राजा जगत्सिंहकी गुण-

* तह्-ए-फत्ह्-ए कांगरा नामक ग्रन्थमें लिखा है कि युद्धजयके बाद इस धमीराज्यका नाम नुरुद्दीन् जहांगीरके नाम पर 'नूरपुर' पड़ा था। (Elliot Vol VI, p. 522.)

† स्थानीय प्रवाद है तथा मान्धाताविरचित ग्रन्थमें लिखा भी है कि राजा जगत्सिंह मुसलमान सेनाको पराजित करनेमें सक्षम हुए थे। बादशाह-नामामें लिखा है कि जगत्सिंहने पराजित हो कर मौ, नूरपुर आदि दुर्ग शत्रुओंके हाथ लगा दिये और अन्तमें तारागढ़ युद्धमें आत्मसमर्पण किया।
(Elliot, Vol. VII, p. 96 & Vol. V. p. 521.)

गरिमा की कविता गाई गई है‡। पीछे २६वें राजा दयाधात २७वें इन्द्रसिंह २८वें फतेसिंह और २९वें राजा वीरसिंह (१८०५ ई०) हुए।

मुगल साम्राज्यकी अवनतिके साथ साथ सिक्खजातिके अभ्युदय तथा उसके पीछे छोटे छोटे राज्योंने स्वातन्त्र्य धारण किया था। १८०३ ई०में मि० फरीस्टर जब नूरपुर देखनेके लिये आए थे, उस समय इस राज्यका शान्त भाव देख कर वे विस्मित हुए थे, कि निकटवर्ती स्थानोंसे यहांकी शासनविधि बहुत अच्छी है और सिख लोगोंका अधिक उपद्रव नहीं है। १८१५ ई०में महाराज रणजित्‌सिंहने वीरसिंहको कैद कर उनका राज्य अपने कब्जेमें कर लिया। वीरसिंह किसी तरह भाग कर चम्बामें आ गये। १८२६ ई०में वे पुन कैद कर लिए गए और मासिक ५००) रु० भत्ता उन्हें मिलने लगा। १८४६ ई०में उनकी मृत्युके बाद जसवन्तसिंह उनके पद पर अभिषिक्त हुए।

राजा वासुदेवने समतलक्षेत्रका पठानकोट नगर अकबर बादशाहके हाथ लगा दिया। सम्भवतः इसी समय उन्होंने पर्वत पर इस नूतन नगरको बसा कर जहांगीर बादशाहको खुश करनेके लिए नूरजहांके नाम पर इस नगरका नाम रखा था*।

२ अयोध्या प्रदेशके अन्तर्गत एक नगर। यह लखनऊ नगरसे [illegible] मील और कानपुरसे ७६ मील उत्तर पूर्वमें अक्षा० २७ १९´ उ० तथा देशा० ८१ १९´ पू०के मध्य अवस्थित है।

३ पञ्जाबके सिन्धुसागर दोआब विभागका एक नगर। यह वितस्ता नदीके दक्षिण कूलसे १२ मील उत्तर-पश्चिम (अक्षा० ३२ ४०´ उ० और देशा० ७२ १८´ पू०)में अवस्थित है।

४ उक्त प्रदेशके दमन विभागका एक नगर। यह मुलतानसे ८० मील दक्षिण-पश्चिम अक्षा० २९ ८ उ० तथा देशा० ७० १६ पू०के मध्य अवस्थित है।

५ बङ्गालके ढाका जिलेके अन्तर्गत जमालपुरका एक नगर। यह ढाका शहरसे २२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है और बङ्गालके छोटे लाटके शासनाधीन है।

६ उक्त प्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन जिला और जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२ ८ उ० तथा देशा० ७८ २८´ पू०में पड़ता है।

नूरबाफ (फा० पु०) जुलाहा, तांती।

नूरम—अकबरशाहके सैन्याध्यक्ष भाई। सम्राट्‌के राजत्वके ११वें वर्षमें इन्होंने सीरापर्वत पर अफगान जातिके साथ युद्ध किया था। पीछे जब मानसिंह उड़ीसा जीतनेके लिए बङ्गाल आए, उस समय ये एक हजार सेनाके नायक हो कर उनका सामना करने गये थे।

नूरमहल—आगरा नगरका एक उद्यान। इसे सम्राट् जहांगीरने बनाया था। वर्त्तमान समयमें लोग इसे 'दिहराबाग' कहते हैं। उद्यानके मध्य एक बड़ा कूप है जिसे देखनेसे लोगोंको भय होता है।

नूरमहम्मद—सिन्धुप्रदेशके एक शासनकर्त्ता। १७१८ ई०में इनके पिता यारमहम्मद कल्होराके मरने पर उनके राज्य पर अभिषिक्त हुए। इधर नूरमहम्मदने दाऊदपुत्रोंसे नहर उपविभाग छीन लिया, साथ साथ सेवन और तत्पार्श्ववर्ती राज्य भी अपने अधिकारमें कर लिये। १७३६ ई०में इन्होंने अमर दुर्गको जीता। बाद मुलतानसे ठट्ठ तक उनका अधिपत्य फैल गया। १७३९ ई०में जब नादिर शाह भारतवर्ष पर चढ़ाई करने आये, तब सिन्धुप्रदेशके ठट्ठ और शिकारपुर जीत कर उन्होंने नूरमहम्मदको सिन्धु और पञ्जाबका शासनभार सौंप दिया और आप स्वदेशको लौट गये। इसी बीच नूरमहम्मदने ठट्ठके सुबेदार सादिकअलीको तीन लाख रुपये दे कर उनसे ठट्ठ प्रदेश खरीद लिया। इस पर नादिरशाह बहुत बिगड़े और इन्हें दमन करनेके लिए सिन्धु और पञ्जाबकी ओर अग्रसर हुए। उनका आगमन सुन कर नूरमहम्मद अमरकोटको भाग गये। अन्तमें इन्होंने शिकारपुर और शिवप्रदेश नादिरको दे कर अपना पिण्ड छुड़ाया। नादिरने इन्हें शाहकुलीखांकी पदवी दी और इस

‡ Proceedings Asiatic Society of Bengal 1872. p. 156 and Journal of the Asiatic Society of Bengal 1873, p. 201.

* Cunningham's Ancient Geography of India.

मान्यपुरस्कार-स्वरूप इन्हें वार्षिक २० लाख रुपये कर देने पड़ते थे। १७४८ ई०में अहमदशाह दुर्रानीने सिन्धुप्रदेशको जीत कर इन्हें शाह नवाज खाँको उपाधि दी। १७५४ ई०में नूरमहम्मदने जब कर देनेसे इनकार किया, तब अहमद उनसे लड़नेके लिए अग्रसर हुए। दुरानीका आगमन सुन कर नूरमहम्मद जशलमेर को भाग गये और वहीं उनका शरीरावसान हुआ।

नूरमहल—पञ्जावके जलन्धर जिलेकी फिलौर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° ६' उ० और देशा० ७५° १६' पू०, जलन्धर शहरसे १६ मील दक्षिण, सुलतानपुरसे २५ मील दक्षिण-पूर्व और फिलौरसे १३ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या आठ हजारसे ज्यादा है। यह नगर बहुत प्राचीनकालका है। इसके विषयमें अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। । यहांकी मट्टी खोदने पर १३"×११"×३½" मापकी जो ईंटें निकलती हैं, उनके ऊपर हाथका चिह्न है और हाथके तल पर एक वेन्द्रमें तीन अर्धवृत्त अङ्कित हैं। ये सब ईंटें पूर्वतन हिन्दू राजाओंके समयको मानी जाती हैं।

इसके अलावा यहां जो सिक्के पाए गये हैं वे भी बहुत पुराने हैं। इनमेंसे छेनीको कटी हुई (Punch-marked) रौप्यमुद्रा, क्षत्रप राजुबलकी ताम्रमुद्रा और दिल्लीश्वर महीपालको मुद्रा तथा विभिन्न समयके मुसलमान राजाओंकी मुद्रा भी पाई गई है। ये सब मुद्राएं नूरमहलके प्राचीनत्वका परिचय देती हैं।

सम्राट् जहांगीरने इस नगरका जीर्ण संस्कार कराके निज प्रियतमा पत्नी नूरजहांके नूरमहल नाम पर इस नगरको फिरसे बसाया। उस समय जहांगीरकी आज्ञासे यहां एक बड़ी सराय बनाई गई जो देखने लायक है। इस सरायको लोग बादशाही सराय कहते हैं। इसमें एक कोणविशिष्ट चूड़ा और कुल ५२१ वर्गफुट परिमाणफल है। इसका पश्चिमी प्रवेशद्वार लाल पत्थरों का बना हुआ है। ये सब पत्थर फतेपुर सिकरीसे मंगाये गये थे। सरायकी दीवारमें जहां तहां देव, दैत्य, परी, हाथी, गैंड़े, ऊंट, घोड़े, वानर, मयूर, अश्वारोही योद्धाओं और तीरन्दाजोंकी मूर्त्तियां खोदी हुई हैं। किन्तु इसका शिल्पकार्य उतना सुन्दर नहीं है।

प्रवेशपथके ऊपर एक खण्ड शिलाफलकमें जो लिपि खोदी हुई है उससे जाना जाता है कि यह स्थान फिल्लौर जिलेके अन्तर्गत है। किन्तु कोई कोई उस लिपिको 'कोटकपूर' वा 'कोटकहलोर' ऐसा पढ़ते हैं। पूर्वद्वार दिल्लीकी ओर है और पश्चिमद्वारके जैसा लाल पत्थरोंका बना है। इसके ऊपर भी पारस्य भाषामें एक शिलालिपि खोदी हुई थी, किन्तु पूर्वद्वारकी गठनादि बिलकुल भूमिसात् हो गई है। इसके पश्चिम वा लाहोरमुखी द्वारके ऊपर शिलाफलक उत्कीर्ण है जिससे ज्ञात होता है, कि सम्राज्ञी नूरजहानके आदेशसे फिलौर जिलेमें यह 'नूरसराय' १०२८ हिजरीमें स्थापित हुई, किन्तु इसका निर्माणकार्य १०३० हिजरीमें समाप्त हुआ था।

सम्राट् जहांगीरके राजत्वकालमें जलन्धर-सूबाके नाजिम जकरिया खाँने इस सरायका निर्माण किया, किन्तु इसके पश्चिम वा पूर्वद्वारकी शिलालिपिसे मालूम होता है कि वेगम नूरजहांकी आज्ञासे यह 'नूरसराय' बनाई गई है। जकरिया खाँकी कथा नितान्त अमूलक नहीं है, कारण वहांके उत्कीर्ण फलकसे जाना जाता है, कि वे इसके निर्माणविषयमें विशेष उद्योगी थे।

यहां एक मुसलमान फकीरकी कब्र है जहां प्रति वर्ष मेला लगता है। मेलेमें दूर दूरके मुसलमान एकत्रित होते हैं। शहरमें १८६७ ई०को म्युनिसपलिटि स्थापित हुई है। यहां एक वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल है जो बोर्डके खर्चसे चलता है। इसके अलावा औषधालय, डाकघर और पुलिस-स्टेशन भी है।

नूरमा—आसामको गोराजातिका देवताभेद।

नूरमुहम्मद—एक कवि। इनका जन्म संवत् १७७० (११२७ हिजरी)में हुआ था। आपने तीस वर्षकी अवस्थामें दोहा चौपाइयोंमें जायसीकृत पद्मावतीके ढंग पर इन्द्रावती नामक एक अच्छा प्रेमग्रन्थ बनाया है। आपने मावेला आदि फारसी शब्द, त्रिविष्टप, स्वान्त, वृन्दारक, स्वस्वैरम आदि संस्कृत शब्द भी अपनी भाषामें रखे हैं। आपने गँवारी अवधी भाषामें कविता की है, परन्तु फिर भी उसकी छटा मनमोहिनी है। इनकी रचनासे विदित होता है, कि ये काव्याङ्ग भी जानते थे। एकाध स्थान पर इन्होंने कूट भी कहे हैं। इनका मन-

फुलवारीवाला वर्णन बड़ा ही विकट है। इन्होंने सामाजिक वर्णन जायसीकी भाँति खूब विस्तारसे किए हैं तथा भाषा, भाव और वर्णन-चातुर्यमें अपनी कविता जायसीसे मिला दी है। इन्होंने प्रीतिका भी अच्छा चित्र दिखाया है।

नूरशाहवली—एक मुसलमान धार्मिक फकीर। पञ्जाबके फिरोजपुर नगरमें ये रहते थे। मरने पर इनकी कब्र फिरोजपुरमें ही बनाई गई थी। प्रति बृहस्पतिवारको मुसलमान लोग इस कब्रके पास जा कर नमाज पढ़ते हैं। आसपासके हिन्दू भी कब्रके दर्शन करने आते हैं। मुहर्रम उत्सवके कुछ दिन बाद भी यहां एक बड़ा मेला लगता है। उस समय जो पर्व हुए तब सर हेनरी लारेन्स इस स्थानको देखने आए थे उस समय इस कोठी कब्रके निकट अनेक लोगोंका समागम देख कर वे बहुत आश्चर्यान्वित हुए थे। अतः उन्होंने मजिस्ट्रेट कब्रकी मरम्मत करनेका हुक्म दिया और आगत लोगोंके रहनेके लिये जो वहां टूटा फूटा मकान था उसे तोड़वा डाला। फिरोजपुरमें प्रवाद है, कि यहांके कप्तान लारेन्स-ने इस कुछ भूमिसात् करना चाहा था। लेकिन रातको स्वप्नमें उन्हें मालूम पड़ा कि कोई रस्सीसे उन्हें मजबूतीसे बांध रहा है और कहता है कि 'यदि तुम मेरा घर खराब करोगे तो तुम्हारा भला नहीं होगा।' दूसरे दिन सबेरे लारेन्स साहबने कोतवालको बुलवा कर कब्रका संस्कार कराया और पार्श्ववर्ती मकानोंको तोड़ डालनेका आदेश दिया।

नूरा (हिं० पु०) वह कुश्ती जो आपसमें मिल कर लड़ी जाय अर्थात् जिसमें जोड़ एक दूसरेके विरोधी न हों।

नूरपुर—रावलपिण्डीके मध्यवर्ती एक नगर और मिलि-टरी स्टेशन। यह अक्षा० [illegible] २६´ उ० और देशा० ७८ १३ पू०के मध्य सिवारोसे ६० मील दक्षिण पश्चिममें अव-स्थित है।

नूराबाद—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६ २६´ २५´´ उ० और देशा० ७८ १´ १०´´ पू०के मध्य आसननदीके दाहिने किनारे पर बसा हुआ है। आगरा राजधानीसे यह नगर ६० मील दक्षिण और ग्वालियरसे ११ मील उत्तर-पश्चिममें पड़ता है। मुसलमानोंके शासनकालमें यह नगर आगराके अन्तर्गत था।

मुगलराज्यकी अवनतिके साथ साथ इस नगरकी पूर्वश्री भी धीरे धीरे गायब हो गई। यहां जितने मकान हैं वे सभी पत्थरके बने हुए हैं। १०७१ हिजरीमें यहां एक मसजिद बनाई गई और दूसरे वर्ष मोतामिद खाँके एक बड़ी सरायका भी निर्माण किया गया। इन दोनोंके ऊपर जो शिलाफलक खोदित हैं। सरायका अभी भग्नावशेष मात्र देखा जाता है।

यहां शाह-नूरकी कबर सात गुम्बजका एक पुल बना है। इसके पास ही औरङ्गजेब बादशाह १६६६ ई०में बना हुआ एक सुन्दर प्रमोद-उद्यान है। इस सुरम्य उद्यानके मध्य दिल्लीश्वर अहमदशाह और उनके परवर्ती सम्राट् २य आलमगीरके वजीर, गाजीउद्दीन खाँकी पत्नी गुन्ना बेगमके स्मरणार्थ १७७८ ई०का एक स्तम्भ है। यह स्तूप आज भी ज्योंका त्यों है। इस कामिनीने अपना प्रखर मानसिक शक्तिके बलसे नानाभाषाओंमें व्युत्पत्ति लाभ की थी। उनके काव्यकी भाषा अत्यन्त सरस और मधुर है। उन्होंने हिन्दी भाषामें जो गीत बनाया है वह बहुत मर्मस्पर्शी है और आज भी आदरपूर्वक गाया जाता है। उक्त स्मृतिस्तम्भमें पारस्य भाषामें उन्होंने जो सब बातें लिखी हैं, वे केवल उनके वियो-गात्म वर्णनामूलक हैं।

नूरि—बम्बईप्रदेशके सिन्धु विभागमें फुलाली नदीके किनारे अवस्थित एक गण्ड ग्राम। यह हैदराबाद नगरसे १२ मील दक्षिणमें अवस्थित है।

नूरी (हिं० स्त्री०) एक चिड़िया।

नूरोकल-बेटा—कूर्गराज्यके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध पर्वत-शिखर। यह सिद्दपुरघाट जानेके रास्ते पर मेरकारासे १२ मील दूरीमें अवस्थित है। इस शिखर पर चढ़ कर देखनेसे कूर्गराज्यका दृश्यसमूह बहुत सुन्दर दीखता है।

नूह—१ पञ्जाब प्रदेशके गुड़गाँव जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७ ५६´ और २८ २०´ उ० तथा देशा० ७६ ५१´ और ७७ १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०९ वर्गमील और जनसंख्या करीब ८६ हजारकी है। इसके पश्चिममें अलवार राज्य पड़ता है। तहसीलमें कुल

२५७ ग्राम लगते हैं। राजस्व दो लाख रुपयेसे अधिक है। १८०८ ई०में यह स्थान ब्रटिश साम्राज्यभुक्त हुआ।

यहां बाजरा, ज्वार, जौ, चना गेहूं, रुई, फल-मूलादि और अपरापर शस्योंकी खेती होती है। यहांके तहसीलदार ही शासनकार्य करते हैं। यहां एक दीवानी और एक फौजदारी अदालत तथा तीन थाने हैं।

२ उक्त तहसीलका सदर और म्युनिसपलिटीके अधिकृत नगर। यह अक्षा० २८° ६´ ३०´´ उ० तथा देशा० ७७° २´ १५´´ पू०के मध्य गुरगांव नगरसे २६ मील दक्षिण अलवार जानेके रास्तेपर अवस्थित है। यहांके निकटवर्त्ती स्थानोंसे तथा लवणयुक्त पुष्करिणीसे नमक प्रस्तुत हो कर नानास्थानोंमें वाणिज्यके लिये भेजा जाता था। किन्तु अभी सरकारके हुक्मसे लवण प्रस्तुत होनेके कारण यहांके व्यवसायका ह्रास हो गया है। शहरमें विद्यालय और औषधालय भी हैं।

३ मथुरा जिलेके नोहझील परगनेके अन्तर्गत एक नगर। यह यमुनानदीके बाएँ किनारेसे ४ मील दूर अक्षा० २७° ५१´ उ० और देशा० ७७° ४२´ पू०के मध्य अवस्थित है।

नूह (अ० पु०) शामी या इबरानी (यहूदी, ईसाई, मुसलमान) मतोंके अनुसार एक पैगम्बरका नाम जिनके समयमें बड़ा भारी तूफान आया था। इस तूफानमें सारी सृष्टि जलमग्न हो गई थी, केवल नूहका परिवार और कुछ पशु एक किश्ती पर बैठ कर बचे थे।

नूह-होतियानी—सिन्धु प्रदेशके अन्तर्गत एक ग्राम। यह हदेरलालसे तीन मील उत्तर-पश्चिम तथा मतियारीसे प्रायः ११ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहांकी पीर-नूहहोतियानीकी दरगाह १०९२ हिजरीकी बनी है।

नृ (सं पु०) नी-ऋन् डिच्च। १ मनुष्य। २ पुरुष। ३ शङ्कु। (त्रि०) ४ नेता।

नृकपाल (सं० क्ली०) नुः कपालं ६-तत्। नरकपाल, मनुष्यकी खोपड़ी।

नृकुकुर (सं० पु०) १ कुत्तेका जैसा मनुष्यका शरीर। २ कुत्तेके जैसा व्यवहारविशिष्ट मनुष्य।

नृकेशरी (सं० पु०) केशरः प्राशुर्यं लाङ्गस्यस्य इति हरिः, ना चासौ केशरी चेति। १ नरसिंहावतार, नृसिंहरूप विष्णु। २ मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी पुरुष, श्रेष्ठ पुरुष।

नृग (सं० पु०) १ एक राजा जिनकी कथा महाभारतमें इस प्रकार है,—

द्वारकानगरमें यदुबालकोंने किसी कूपमें एक बड़े गिरगिटको देखा और उसे बाहर निकालनेकी खूब कोशिश की, किन्तु कामयाब न हुए। बाद वे सब के सब भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। कृष्ण कूपके पास आए और उन्होंने गिरगिटको बाहर निकाल कर उसका पूर्वजीवनवृत्तान्त पूछा। इस पर गिरगिटने कहा, 'भगवन्! मैं पूर्व जन्ममें नृग नामक राजा था। मैंने हजारों यज्ञ और नाना प्रकारके सत्कार्य किए हैं।' भगवान्‌ने उनकी पुण्यकथा सुन कर कहा, 'जब आप ऐसे दानी और धर्मात्मा हैं, तब ऐसी दुर्गति होनेका क्या कारण?' इस पर कृकलास रूपी महाराज नृगने जवाब दिया, "प्रभो! कोई अग्निहोत्री ब्राह्मण किसी कारणवश जब परदेश गया था, तब यहां उनकी गाय मेरी गायोंके झुण्डमें आ मिली। मैंने एक बार एक ब्राह्मणको सहस्र गो दानमें दीं जिनमें यह ब्राह्मणवाली गाय भी थी। जब वह ब्राह्मण परदेशसे लौटे और गायको घरमें न देखा, तब वे उसकी खोजमें इधर उधर निकले। जिस ब्राह्मणको मैंने गो-दान किया था उन्होंके घरके पास वह गाय चर रही थी। उक्त ब्राह्मणने अपनी गायको पहचाना और उनसे मांगा। इस पर उन्होंने कहा, 'राजा नृगने मुझे यह धेनुदान किया है।' बाद दोनों झगड़ते हुए मेरे निकट आए और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। जिस ब्राह्मणको मैंने गाएं दानमें दी थीं, उन्हें बहुत समझा कर कहा, कि इस गायके बदलेमें मैं आपको एक हजार गायें और देता हूं, आप उनकी गाय दे दें। लेकिन उसने एक भी न मानी और कहा कि ये सब गायें सुलक्षण हैं, अतएव इसे मैं लौटा नहीं सकता। इतना कह कर ब्राह्मण चल दिये। बाद मैंने निरुपाय हो प्रवासागत ब्राह्मणसे कहा, 'भगवन्! मैं उस गायके बदले आपको एक लाख गाएं देता हूं,

आप कृपापूर्वक उन्हें भी दें।' इस पर वे बोले, 'मैं अपना भरण पोषण सद्योमात्र कर लेता हूं, तब फिर राजाओंका दान क्यों लूं।' इतना कह कर वे विरक्त चित्तसे अपने घरको चले गये। अनन्तर थोड़े ही दिनोंके मध्य मेरा शरीरावसान हुआ। जब मैं यमलोक पहुंचा, तब धर्मराज यमने मेरे पुण्यकर्मकी विविध प्रशंसा करते हुए मुझसे कहा, 'आपका पुण्यफल बहुत है, पर ब्राह्मणकी गाय हरण करनेका पाप भी आपको लगा है। चाहे आपका फल पहले भोगिये, चाहे पुण्यका।' इस पर मैंने पापका ही फल पहले भोगना चाहा। अतः सहसा यमके लिए गिरगिट हो कर मैं इस कूपमें रहने लगा। यमने कहा था 'द्वापरके शेष होनेके बाद भगवान् वासुदेव आपका उद्धार करेंगे और तब आप पुनः सनातन लोकमें जायेंगे।' अभी आपने कृपा करके मेरा उद्धार किया।" बाद राजा नृग कृष्णके आदेशसे दिव्यविमान पर चढ़ कर स्वर्ग लोकको चले गये।

महाराज नृगका उद्धार करने पर भगवान् वासुदेवने लोगोंकी भलाईके लिए कहा था, कि नृगने ब्राह्मणका गोधन हरण किया था जिससे उन्हें ऐसी दुर्दशा भुगतनी पड़ी थी। अतएव ब्रह्मस्व हरण करना कदापि उचित नहीं है। फिर भी देखना चाहिए कि [illegible] महाराज नृगने नरकसे उद्धार पाया था। अतएव साधुजन भी कभी निष्फल होनेको नहीं। दान करनेमें जितना फल मिलता है, अपहरणमें उतना ही अधर्म भी होता है। (भारत अनुशासनपर्व ७० अ०)

२ ओघवतीके पौत्र। ३ यौधेय व शाका आदि पुत्रको दृषाके गर्भसे उत्पन्न उशीनरका पुत्र था। ४ मनुके एक पुत्रका नाम। ५ सुमतिका पिता।

नृगकूप (सं० पु०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नृगा (सं० स्त्री०) उशीनरकी पत्नी और नृगराजकी माता।

नृघ्न (सं० त्रि०) नरघातक।

नृचक्षस् (सं० पु०) नॄन् चष्टे अध्यक्षेण पश्यतीति चक्ष असुन्, वा खचि (चक्षेर्बहुलं शिच्च। उण् ४।२३२) १ राक्षस। २ देव। ३ मनुष्यदर्शक।

नृचक्षुस् (सं० पु०) नॄन् प्रजाना चक्षुरिव। सुनीथ राजपुत्र।

नृचक्षु (सं० पु०) रन्तिनारराजका एक पुत्र।

नृजग्ध (सं० त्रि०) नॄन् अत्ति, अद-क्त ततो जग्धादेश। नरभक्षक मनुष्यको खानेवाला।

नृजल (सं० क्ली०) नृणां जलं ६-तत्। १ मनुष्यनिर्गत पानी। २ मानवमूत्र, मनुष्यका मूत्र।

नृजाति (सं० स्त्री०) नरजाति, मनुष्यजाति।

नृजित् (सं० त्रि०) १ मनुष्यके जेता। २ एकाहभेद।

नृति (सं० स्त्री०) नृत नर्त्तने इन् उच्, कित् (उण् ४।१२८) नर्त्तन, नाच।

नृतु (सं० पु०) नृत्यतीति नृत बाहुलकात् कु। १ नर्त्तक, नाचनेवाला। २ भूमि, जमीन।

नृतू (सं० त्रि०) नृत ऊ। १ नर्त्तक। नॄन् तूर्ण्यति तूर्ण क्विप्। २ नरहिंसक।

नृत्त (सं० क्ली०) नृत भावे क्त। नृत्य, नाच।

नृत्य (सं० क्ली०) नृत-क्यप्। तालमानरसाश्रय सविलास अङ्गविक्षेप, संगीतके ताल और गतिके अनुसार हाथ पाँव हिलाने, मटकाने, कूदने आदिका व्यापार, नाच। पर्याय—ताण्डव, नटन, नाट्य, लास्य नर्त्तन, नृत्त, नाट, चार ताण्डव, नृति।

नृत्य मानवोंका स्वाभाविक है। क्या प्राचीनकाल क्या आधुनिक काल सभी सुसभ्य समयमें नृत्य प्रचलित था और है। पुराकालमें जिस प्रकार नृत्य होता था, उस प्रकार आज कल नहीं होता, रूपान्तरित भावमें हुआ करता है। शिवजी सर्वदा नृत्य किया करते हैं, स्वर्गमें अप्सरायें मनोहर नृत्य करके देवताओंको खुश किया करती हैं।

महर्षि भरत नाट्यशास्त्रके प्रणेता थे। वे स्वर्गमें अप्सराओंको नृत्य सिखाते थे। प्रायः सभी पुराणोंमें लिखा है कि देवमन्दिरका प्रदक्षिण कर नृत्य करनेसे महापुण्य प्राप्त होता है। चैतन्यदेवने अपने शिष्योंको नामोच्चारणपूर्वक नृत्य करनेका उपदेश दिया था।

अति पुराकालसे बौद्ध लोग उत्सवोपलक्षमें नृत्य और गान करते हुए देवमन्दिरकी प्रदक्षिणा करते थे। यहूदियोंमें भी नृत्य बहुत पहलेसे प्रचलित है। इस्रायेल लोग लोहितसागर पार कर आनन्दपूर्वक नृत्य किया था। ग्रीकलोगोंका नृत्य अभिनय प्रथाके अन्तर्भूत है। इनके

भयानक रसका नृत्य देख कर दर्शकोंके मनमें भयका सञ्चार होता था।

ग्रीक-शिल्प विद्याविशारद भास्करों की प्रस्तरखोदित प्रतिमूर्त्ति पर नृत्यकी नानाप्रकारकी भङ्गी प्रदर्शित हुई हैं। होमर, आरिस्तातल, पिण्डार आदिने अपने अपने ग्रन्थमें नृत्यका विशेष उल्लेख किया है। आरिस्ततलने नृत्यकी विविध प्रणालीका उद्भावन कर उसे 'पोइटीक्स' ग्रन्थके मध्य सन्निवेशित किया है।

स्पार्टनगण युद्धके समय नृत्य करनेके लिये जब उनकी उमर पांच वर्षकी होती थी, तभीसे नृत्य सीखते थे। उनके युद्धके इस नृत्यका नाम 'पाइरिक' नृत्य था।

सम्भ्रान्त रोमकगण धर्मकार्य भिन्न हम लोगोंके लिये नृत्य नहीं करते थे। हम लोगोंके निमित्त नृत्य वहांके व्यवसायियोंसे सम्पादित होता था। मिस्रदेशीय नर्त्तकियोंका नाम 'आलमी' है। ये अच्छी अच्छी कविता गान करते हुए नाचती हैं। यह नृत्य हम लोगों-के नृत्यसे बहुत कुछ मिलता जुलता है।

यूरोपियोंके मध्य सम्भ्रान्त वर्गसे ले कर साधारण मनुष्य तक सभी नृत्य किया करते हैं। कोई स्त्री या पुरुष जो नाच नहीं सकते वे अकर्मण्य और असभ्य समझे जाते हैं। यह Ball नामक नाच कई प्रकारका है, यथा—पोल्का, कोयाडिल, कानड्रो डान्स इत्यादि। इसके सिवा अभिनय कार्यमें भी अनेक प्रकारके नृत्य हैं।

हम लोगोंके देशमें सङ्गीतशास्त्रानुसार जो सब नृत्य हैं अभी उन्हीं पर विचार करना चाहिये।

इतिहास, पुराण, स्मृति आदि सबमें नृत्यका उल्लेख मिलता है। जो नर्त्तक या नर्त्तकी नृत्य करेगी उसका सुन्दर रूप रहना आवश्यक है, अरूपा नर्त्तकीका नृत्य निन्दनीय समझा जाता है।

"नृत्येनालम् रूपेण सिद्धिर्नास्त्यस्य रूपतः।
नार्विषिणान्नृत्यं नृत्यमन्यद्विडम्बना॥"

(मार्कण्डेयपु०)

अरूप नृत्य नृत्यपदवाच्य नहीं है। सुन्दररूपविशिष्ट नृत्य ही नृत्य कहलाता है। देवदेवीकी पूजामें नृत्य करनेसे अशेष प्रकारके मङ्गल प्राप्त होते हैं।

जो देवीके आगे नृत्य करते हैं वे संसारसागरसे मुक्तिलाभ कर स्वर्गलोक गमन करते हैं।

"यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहुभक्तितः।
स निर्दहति पापानि जन्मान्तर शतैरपि॥"

(द्वारकामाहात्म्य)

जो प्रफुल्लचित्तसे अत्यन्त भक्तियुक्त हो नृत्य करते हैं वे शतजन्मान्तरके पापसे मुक्ति लाभ करते हैं। हरिभक्तिविलासमें भी लिखा है—

"नृत्यतां श्रीपतेरग्रे तालिकावादनैर्भृशम्।
उड्डीयन्ते शरीरस्थाः सर्वे पातकपक्षिणः॥"

जो विष्णुके आगे तालिकावादन द्वारा अर्थात् ताली दे दे कर नाच करते हैं, उनके शरीरस्थित सभी पाप दूर हो जाते हैं। प्रायः सभी धर्मशास्त्रोंमें देवीके समीप जो नृत्य किया जाता है उसकी प्रशंसा लिखी है।

रामायण और भागवतके दशमस्कन्धमें नृत्यका विशेष विवरण मिलता है। महाभारतके विराटपर्वमें लिखा है कि अर्जुन उत्तम नर्त्तक थे और उसीसे वे (बृहन्नलारूपमें) विराटके अन्तःपुरमें स्त्रियोंको नाच गान सिखानेके लिये नियुक्त हुए थे।

धर्मसंहितामें लिखा है कि नृत्य जिसकी उपजीविका है, वे निकृष्ट समझे जाते हैं, यथा—रजक, चर्मकार, नट प्रभृति अति निकृष्ट जाति है। दैवात् यदि इनका अन्न भक्षण किया जाय, तो प्रायश्चित्त करना होता है। मनु प्रभृति सभी धर्मशास्त्रोंमें नट-जाति और नृत्यका उल्लेख है। अतएव इस देशमें नृत्य-चर्चा अत्यन्त पुरातन है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

नृत्यका लक्षण।

"देशरुच्या प्रतीतोऽथ तालमानरसाश्रयः।
सविलासोऽङ्गविक्षेपो नृत्यमित्युच्यते बुधैः॥"

(सङ्गीतदामोदर)

जिस देशकी जैसी रुचि है, तदनुसार ताल, मान और रसाश्रित विलासयुक्त अङ्गविक्षेपका नाम नृत्य है।

नृत्य दो प्रकारका है, ताण्डव और लास्य। पुंनृत्यको ताण्डव और स्त्रीनृत्यको लास्य कहते हैं।

तण्डु नामक मुनिने ताण्डव नृत्यकी विधि रची थी। यह विषय भरतमल्लिकने अमरकोषकी टीकामें

विस्तृतरूपसे लिखा है। ताण्डव और लास्य भी दो दो प्रकारके होते हैं,—पेरणि और बहुरूपक। अभिनयशून्य अङ्गविक्षेपको पेरणि और जिसमें छेद भेद तथा अनेक प्रकारके भावोंके अभिनय हों उसे बहुरूपक कहते हैं।

लास्यनृत्य भी दो प्रकारका होता है—छुरित और यौवत। अनेक प्रकारके भाव दिखाते हुए नायक-नायिका एक दूसरेका चुम्बन, आलिङ्गन आदि करते हुए जो नृत्य करती हैं, वह छुरित कहलाता है। जो नाच नाचनेवाली अकेली आप ही नाचे वह यौवत है।

तालके नाच और नाचसे भावकी उत्पत्ति है। कोई भाव और तालके समावेश हो कर नृत्य करना होता है।

जितने प्रकारके विशेष विशेष नृत्य हैं, उनमेंसे समस्त देह अथवा विलासयुक्त अङ्गविक्षेपको ही नृत्य वा नर्त्तन कहते हैं। नर्त्तननिर्णयमें लिखा है—

'अंगविक्षेपैर्विक्षिप्तं सविलासाङ्गचालनम्।
...देव दर्शित यत्र नर्त्तनं कथ्यते तदा॥' (नर्त्तननिर्णय)

यह नाना प्रकारके अङ्गविक्षेपसे भाव लोगों का जो चित्तानुरञ्जन करता है, उसीको नर्त्तन वा नृत्य कहते हैं। यह नर्त्तन तीन प्रकारका है—नाट्य, नृत्य और नृत्त।

इनमेंसे नाट्यनाटकादि अर्थात् दृश्यकाव्य और तद्गत कथा, देश, वृत्ति, भाव और रसादि चार प्रकारके अभिनय द्वारा प्रदर्शित होनेसे उसे नाट्य और कोई भावाविष्ट जो पुरुषमें अनुभाव वा नैपथ्य विधानके अधीन नहीं है अथवा रसभावादि अभिनय द्वारा विमुक्त और तत्तद् रसभावादि अभिनय द्वारा प्रदर्शित होते हैं, उसे नृत्य कहते हैं। यह रूपाङ्गसुन्दर होने पर सभी मनुष्यों का मनोहारी होता है। अभिनय वर्जित, तालानुकारजनक अङ्गविक्षेप विधिका नाम नृत्त है।

"तालमानाश्रितं... ...।
...नृत्तं प्रकीर्त्तितम्॥"
(नर्त्तननिर्णय)

यह नृत्त तीन प्रकारका माना गया है—विषम, विकट और लघु। ... और रज्जुमें गति ... इत्यादि प्रकारका नाम विषम नृत्त है। यह नृत्त ... करते हैं। वेशभूषादि व्यापारका नाम विकट नृत्त और अल्प अल्प ... पूर्वक ... गति विशेषका नाम लघु नृत्त है। यह नृत्त नाचनेवालियोंमें व्यवहृत होता है।

नर्त्तक वा नर्त्तकीको रङ्गभूमिमें प्रवेश कर पुष्प आदि उत्कृष्ट वस्तु बिखेर देनी चाहिये और तब पहले अनुरूप तालसे कोमल नृत्य आरम्भ करना चाहिये। विषम और औद्धत्यविहीन नृत्यका नाम कोमल नृत्य है।

रङ्गमञ्चमें ... जो नृत्य किया जाता है वह दो प्रकारका है—बद्ध और अबद्ध नृत्य। बद्ध नृत्यमें गति नियम और ताल प्रभृति विविध क्रियाओंका नियम रहता है। अबद्ध नृत्यमें यह नहीं रहता।

नृत्यके मध्य अनेक व्यापार और ज्ञातव्य विषय हैं। मस्तक, चक्षु, भ्रू, मुख, बाहु, हस्तक, चालक तलहस्त, रङ्गप्रचार, करकर्म, पैर, कटि, भ्रमरि, स्थानक, चारी, करण, रेचक प्रभृति शारीरिक अनेक प्रकारके व्यापार हैं। नृत्यशाला, नर्त्तकलक्षण, रेखालक्षण, नृत्याङ्ग और उसके दोष इत्यादि अनेक प्रकारके ज्ञातव्य भी हैं। पण्डित विट्ठलने ये सब विषय नर्त्तननिर्णयके चतुर्थ प्रकरणमें विस्ताररूपसे लिखे हैं।

नृत्य और अभिनयमें मस्तक, दृष्टि और भ्रूचालनादिके अनेक प्रकारके भेद हैं जिनमेंसे मस्तकके अकेलेमें १८ प्रकारके भेद बतलाये गये हैं। दोषरहित रसभावादिव्यञ्जक अवलोकनका नाम दृष्टि है। यह दृष्टि तीन प्रकारकी है—रसदृष्टि, स्थायिदृष्टि और सञ्चारिदृष्टि। इन तीनके अलावा व्यभिचारिदृष्टि भी एक है। नर्त्तक वा नर्त्तकीके लिये यह दृष्टिविधान जैसा कठिन है, वैसा कठिन और दूसरा कुछ भी नहीं है। शृङ्गार, वीर, करुण आदि सभी रसभाव इसी दृष्टि द्वारा मूर्त्तिमान् करने होते हैं। इनमेंसे रसदृष्टि ८, स्थायिभावप्रकाशक दृष्टि ८ और व्यभिचारिदृष्टि १०, कुल २६ प्रकारकी दृष्टि हैं। इसके सिवा ताराकर्म अर्थात् अक्षि विकारव्यञ्जक व्यापार भी है। भ्रूविकार ७ प्रकारका है—सहजा, उत्क्षिप्ता, कुञ्चिता, रेचिता, पतिता, चतुरा और भ्रूकुटी। अन्तःस्थित रसभाव जिनसे मुखमें प्रकाश हो, ऐसे मुखभङ्गको मुखराग कहते हैं। यह मुखराग

४ प्रकारका है। बाहु (अर्थात् नृत्यकालमें किस प्रकार हस्तसञ्चालन करना होता है, वह) १८ प्रकारका है—यथा ऊर्ध्व, अधोमुख, तिर्यक्, अपविद्ध, प्रसारित, अचिन्त्य, मण्डल, गति, स्वस्तिक, वेष्टित, आवेष्टित, पृष्ठानुग, अविद्ध, कुञ्चित, सरल, नम्र, आन्दोलित और उत्सारित। नृत्यकालमें अनुरागजनक अथच अर्थप्रकाशक जो हस्ताङ्गुलिका विन्यास वा विक्षेपविशेष किया जाता है, उसे हस्तक कहते हैं। यह हस्तक तीन प्रकारका है—संयुत, असंयुत और नृत्यहस्त। फिर संयुतहस्तके ३८, असंयुत और नृत्यहस्तके ३२ भेद बतलाये गये हैं। पताक, हंसपक्ष, गोमुख, चतुर, निकुञ्चक, सर्पशिरा, पद्मास्य, अर्द्धचन्द्रक, चतुर्मुख इत्यादि नृत्यके ही भेद कहे गये हैं।

चालक—वंशी वा अन्यप्रकारके लययन्त्रका अनुगत कर हस्त विरेचनाका नाम चालक है। नृत्यमें इस चालक-विषयके अनेक विवरण लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त करकर्म है, यथा—उत्कर्षण, विकर्षण, आकर्षण, परिग्रह, निग्रह, आह्वान, रोधनसंश्लेष, विश्लेषरक्षण, मोक्षण, विक्षेप, धूनन, विसर्जन, तर्जन, छेदन, भेदन, स्फोटन, मोटन, ताड़न ये सब हस्तकर्मके नामसे प्रसिद्ध हैं। नृत्यकार्यमें इन सब हस्तकर्मोंका विशेषरूपसे ज्ञान रहना आवश्यक है।

हस्तक्षेत्र—पार्श्वद्वय, सम्मुख, पश्चात्, ऊर्ध्व, अधः, मस्तक, ललाट, कर्ण, स्कन्ध, नाभि, कटि, शीर्ष, ऊरुद्वय ये तेरह हस्तक्षेत्र अर्थात् हस्तविन्यासके प्रधान स्थान हैं। नृत्यकालमें इन सब स्थानोंमें हस्तविन्यास करना होता है।

कटि—निर्दोष नृत्ययोग्य क्रम कटि ६ प्रकारकी है, यथा—छिन्ना, समाच्छिन्ना, निवृत्ता, रेचिता, कम्पिता और उद्वाहिता। नृत्यमें इनका साधन और लक्षण विशेषरूपसे जानना आवश्यक है।

चरण—नृत्यके उपयुक्त चरणके साधन और लक्षण तेरह प्रकारके हैं, यथा—सम, अञ्चित, कुञ्चित, सूच्यग्र, तलसञ्चर, उद्घट्टित, घट्टित, उत्क्षेपक, वर्त्तित, मर्दित, पार्ष्णिग, अग्रग और पार्श्वग। नृत्यमें इनका भी विशेष लक्षण जानना आवश्यक है।

स्थानक—आनुरक्तिजनक अङ्गमें अङ्गसन्निवेशविशेषका नाम स्थानक है। यह स्थानक असंख्य प्रकारका है, जिनमेंसे नृत्यमें २७ प्रकारके लक्षण प्रयोजनीय हैं। इनके नाम ये हैं—समपाद, पार्ष्णिविद्ध, स्वस्तिक, संहत, उत्कट, अर्द्धचन्द्र, मान, नन्द्यावर्त्त, मण्डल, चतुरस्र, वैशाख, आवहित्थक, पृष्ठोत्थान, तलोत्थान, अग्रक्रान्त, एकपादिक, ब्राह्म, वैष्णव, शैव, आलीढ़, खण्डसूचि, प्रत्यालीढ़, समसूचि, विषमसूचि, कूर्मासन, नागबन्ध, गारुड़ और वृषभासन।

चारी—इसका साधारण लक्षण यह है कि जिससे पाद, जङ्घा, वक्ष और कटि ये सब स्थान आयत्त किये जांय। आयत्त हो जाने पर तद्द्वारा विरचन करनेका नाम भी चारी है। सञ्चरणविशेषमें उसके किसी अंशका नाम चारीकरण और किसी अंशका नाम व्यायाम है। इस व्यायामके परस्पर घटित अंशविशेषका नाम खण्ड और खण्डसमूहका नाम मण्डल है।

"चारीभिः प्रस्तुतं नृत्यं चारीभिर्वेष्टितं तथा।
चारीभिः शस्त्रमोक्षश्च चार्य्यो युद्धेपुकीर्त्तिताः।"
(नर्त्तकनिर्णय)

चारी प्रथमतः दो प्रकारकी है—भौमी और आकाशिका। भूमि पर सञ्चरण विशेषका नाम भौमी और शून्यमें गतिविशेषका नाम आकाशिकाचारी है। इन दोनों प्रकारकी चारीका आश्रय ८२ प्रकारका है। इनके नाम ये हैं—समपादा, स्थितावर्त्ता, शकटास्या, विच्यवा, अध्यर्द्धिका, आगति, एलका, क्रीड़िता, समसर्पिता, मतल्ली, उत्स्यन्दिता, उड्डिता, स्यन्दिता, बद्धा, जनिता, उन्मुखी, रथचक्रा, परोवृत्ता, नूपुरपादिका, तिर्यङ्मुखा, मराला, करिहस्ता, कुलीरीका, विश्लिष्टा, कातरा, पार्ष्णिरेचिता, ऊरुताड़िता, ऊरुवेणी, तलोद्वृत्ता, हरिणत्रासिका, अर्द्धमण्डलिका, तिर्यक्कुञ्चिता आदि भौमी चारीके अन्तर्भुक्त हैं। अतिक्रान्ता, अपक्रान्ता, मृगप्लुता प्रभृति २१ प्रकारकी आकाशचारी हैं।

करण—नृत्यकालमें हाथ हाथ जुड़ कर, पद पद जुड़ कर वा हाथ पैर जुड़ कर जो नृत्य किया जाता है उसका नाम करण है। यह करण नाना प्रकारका है जिनमेंसे १६ प्रकारके करण नृत्योपयोगी हैं। इन सोलहोंके नाम ये हैं—लीन, समनख, छिन्न, गङ्गावतरण, वैशाख,

रेचित, पक्षाञ्चित, पुष्पपुट, पार्श्व, जानु, ऊर्ध्वजानु, दण्डपक्ष, तलविलासित, विद्युद्भ्रान्त, चक्रावर्त्तक, उत्क्षिप्त, समार्द्धनितम्ब, भ्रमरता और डुबिक। नृत्यमें इनके व्यवहारादि जानना परमावश्यक है।

ऊपरमें जिन सब पदार्थोंका उल्लेख किया गया, उनके संयोग और वियोगवशतः अनेक प्रकारके नृत्य हो सकते हैं और होते भी हैं। नृत्य कुछ भी नहीं है, कथित नियमों को पालन कर तालवाद्यसंयोगसे जो अङ्ग चालना है। यदि नृत्य करना हो, तो पूर्वोक्त सभी नियमोंका भलीभांति जानना आवश्यक है। प्रथमतः नृत्य दो प्रकारका है बद्ध और अनिबद्ध। अङ्गादि नियमोंके अधीन जो नृत्य है, उसका नाम बद्धनृत्य और अनियमसे अर्थात् केवल तालवशसे हुआ नृत्यका नाम अनिबद्ध नृत्य है। इस बद्ध और अनिबद्ध नृत्यके अधिकांशमें नाम दिये जाते हैं। यथा—प्रथमवर्त्तनिका नृत्य, मध्यवर्त्तनिका और मार्दिनृत्य, मानवी नृत्य, सैनीनृत्य, मयोनृत्य, द्वौनीनृत्य, कुण्डली नृत्य, रत्नमोननृत्य, गजगामिनी नृत्य, गैरिनृत्य, कारर्मादि नृत्य, चित्र नृत्य, विषमनृत्य, गीत, चटकोल, कुमाड़, पादबन्ध, नामबन्ध, वर्त्तवर्त्तिका, स्वालुक, तुम, रूपक, स्वपरूप, रविनाम पदबन्ध इत्यादि।

गैरिनृत्य—चतुरस्रमें स्थित करके तालमानक तालसे यो-विवक्षित रूपसे अनुमान हो कर गैरिनृत्य आरम्भ करना चाहिये। पीछे रथ चाल, पाट और यथायोग्य गतिका अवलम्बन करना चाहिये। चारों दिशामें पताकाहस्त हो कर तदनुसार करना चाहिये। वाम और दक्षिण भागमें मोड़ि या विपादि गतिका होना आवश्यक है।

पादबन्ध—यह नृत्य किसी कुशलतासे आरम्भ करे, पीछे संगीत और अनेक प्रकारकी गति द्वारा सुन्दर रूपसे भ्रमण कुमाड़ नामक मोलगातिका मोल और उस जातिके तालकी योजना करे। बाद चच्चत्, चाचपुट, आदि छः अङ्ग परिमित ताल द्वारा लिखा कर अन्यतम ताल यदि समान मात्रामें लिया जाय और द्रुत पुन लघु इत्यादि यदि उसमें रहें, तो पूर्व पूर्व मात्राका परित्याग कर क्रमसे अधिमादि आलयमें नृत्य करना चाहिये। नृत्यविद्याविशारदोंने इसीको पादबन्ध कहा है। (सङ्गीतदर्पण)

इस तरह नृत्योंका विवरण अति संक्षिप्तभावमें कहा गया। आजकल इनमेंसे अधिकांश नृत्य प्रचलित देखनेमें नहीं आते। अभी आजकल जो नृत्य प्रचलित हैं वे सब प्रायः आधुनिक हैं। इनमेंसे खेमटा बाईनाच आदि प्रसिद्ध हैं। नर्त्तननिर्णयके सिवा नृत्यप्रयोग, नृत्यविलास, नृत्यसर्वस्व, नृत्याध्याय और अशोकमल्ल विरचित नृत्याध्याय नामक कई एक ग्रन्थोंमें नृत्यके प्रकार आदि विशेषरूपसे वर्णित हैं। मल्लिनाथने किरातार्जुनीय नाटककी टीकामें नृत्यविलास और नृत्यसर्वस्वका उल्लेख किया है।

नृत्यचारी (सं० स्त्री०) पादविक्षेपभेद।

नृत्यप्रिय (सं० त्रि०) नृत्यं प्रियं यस्य। १ नर्त्तनप्रिय, जिसे नाच प्रिय हो। (पु०) २ ताण्डवप्रिय महादेव। ३ कार्त्तिकेयका एक अनुचर।

नृत्यशाला (सं० स्त्री०) नृत्यस्य शाला। नाट्यघर, जलसघर।

नृत्यस्थान (सं० क्ली०) नृत्यस्य स्थानम्। नृत्यका स्थान, नाचनेकी जगह।

नृत्येश्वर (सं० पु०) महाभैरवभेद।

नृदुर्ग (सं० पु०) सेनाका चारों ओरका घेरा।

नृदेव (सं० पु०) नृषु नरेषु मर्त्त्ये देवः, वा देव इव उपमितसमासो वा। १ राजा। २ ब्राह्मण।

नृधर्मन् (सं० पु०) नृणां धर्म इव धर्मो यस्य इति अनिच् (धर्मादनिच् केवलात्। पा ५।४।१२४) १ कुबेर। (त्रि०) २ नरधर्मयुक्त।

नृधूत (सं० त्रि०) मनुष्य कर्त्तृक शोधित, आदमीसे धोया हुआ।

नृनमन (सं० क्ली०) नॄन् नमयति नम-णिच्-ल्युट्, पूर्वपदादिति णत्वं प्राप्ते क्षुभ्नादित्वात् न णत्वम्। मनुष्यनमनीय धनादि।

नृप (सं० पु०) नॄन् नरान् पाति रक्षति इति नृ-पा-क। १ नरपति, राजा।

जिनका अधिकार चौदह योजन तक विस्तृत हो, उन्हें नृप कहते हैं। इनसे सतगुण अधिक होनेसे राजा वा महाराज और उससे भी दश गुण अधिक होनेसे राजेन्द्र कहते हैं। नृपलक्षण इस प्रकार है—

"अपुत्रस्य नृपः पुत्रो निर्धनस्य धनं नृपः।
अमातुर्जननी राजा अतातस्य पिता नृपः॥
अनाथस्य नृपो नाथः अभर्त्तुः पार्थिवः पतिः।
अभृत्यस्य नृपो भृत्यः नृप एव नृणां सखा॥
सर्वदेवमयो राजा तस्मात्तमर्चयेन्नृप॥"

(कालिकापु० ५० अ०)

राजा अपुत्रका पुत्र, निर्धनका धन, मातृहीनकी माता पितृहीनका पिता, अनाथका नाथ, जिसके भर्त्ता नहीं है, उसका पति, अभृत्यका भृत्य, एकमात्र राजा ही सबके सखा हैं, राजा सर्वदेवस्वरूप हैं। नृपको दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन करना चाहिए। जगत्‌में अराजकता फैल जाने पर चारों ओर हाहाकार मच जाता है, मनुष्य डरसे विह्वल हो जाते हैं। इसी कारण भगवान्‌ने चराचर जगत्‌की रक्षाके लिए राजाओंकी सृष्टि की है। इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर इन अष्टदिक्‌पालों के अंशसे राजा जन्मग्रहण करते हैं। इसी कारण राजा को सर्वदेवमय कहा है।

मनुसंहितामें नृपोत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—

'राजा अष्टदिक्‌पालोंके अंशसे जन्मग्रहण करते हैं, इस कारण वे अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। नरपति प्रभाव में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर, वरुण और महेन्द्रकेसमान हैं। नृप देवता हो हो कर मनुष्यके रूपमें अवस्थान करते हैं, इसलिए उन्हें नरदेव कहते हैं। राजा प्रयोजनीय कार्यकलाप, स्वकीयशक्ति और देशकालकी सम्यक्‌ पर्यालोचना करके धर्मानुरोधसे सब प्रकारके रूप धारण किया करते हैं। जिनके प्रसन्न रहनेसे महती श्री प्राप्त होती है, जिनके पराक्रमप्रभावसे विजय लाभ होता है और जिनके क्रोध करनेसे मृत्यु हुआ करती है, वे सर्वतेजोमय हैं। किसीको राजाके प्रति क्रोध वा द्वेष करना कर्त्तव्य नहीं है। राजा शिष्टोंके प्रतिपालन और दुष्टोंके दमनके लिए जो धर्मनियम संस्थापन करते हैं, उन नियमोंका कभी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए। विधाताने राजाके मङ्गलके लिए सर्व-प्राणियोंके रक्षाकर्त्ता, धर्मस्वरूप और आत्मज ब्रह्मतेजो-मय दण्डकी सृष्टि की। राजा स्वयं उस दण्डका परि-चालन करते हैं। इस दण्डके भयसे चराचर जगत्‌ अपना अपना सुख भोग किया करता है, कोई भी स्वधर्म-से विचलित नहीं हो सकता। एकमात्र दण्ड ही चारों वर्णोंके धर्मका प्रतिभूस्वरूप है। दण्ड ही सारी प्रजाका शासन और रक्षणाबेक्षण करता है। सबोंके निद्रित होने पर एकमात्र दण्ड ही उन्हें जागरित करता है। राजा-को उचित है, कि वे अनलस हो कर धर्मानुसारसे दण्डको परिचालना करें।

राजाओंके कर्त्तव्यकर्म—नरपतिको चाहिए, कि वे शास्त्रानुसार दुष्टोंको दण्डविधान, विदेशीय शत्रुओंको तीक्ष्ण दण्डसे दमन और अकपटभावसे आत्मीय स्वजनों-के प्रति सरल व्यवहार करें और कम अपराधमें ब्राह्मणों-को सजा न दें।

जो राजा सदाचार और सुप्रथापूर्वक शास्त्रानुसार राज्यशासन करते हैं, यहां तक कि यदि उन्हें उञ्छ-वृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करना पड़े तथा उन्हें धन-सम्पत्ति बहुत थोड़ी हो, तो भी जो प्रजाकी रक्षा करने-में सुख नहीं छोड़ते, उनकी यशोराशि संसार भरमें फैल जाती है। जिन राजाओंका आचार व्यवहार इसके बिल-कुल विपरीत है, उनके अत्यन्त धनशाली होने पर भी इस लोकमें उनकी निन्दा और परलोकमें नरक होता है। राजा प्रतिदिन सबेरे शय्याका त्याग कर वेदज्ञ और नीतिशास्त्रकुशल ब्राह्मणोंकी सेवा करें और वे जो कुछ कहें उसका प्रतिपालन भी करें। राजाको विनयी होना सर्वतोभावसे उचित है। राजा कामज दश और क्रोधज आठ इन अठारह प्रकारके व्यसनोंमें कदापि आसक्त न होवें। वे मन्त्रियोंके साथ परामर्श करके षड्‌वर्गका विचार करें।' (मनु० ७ अ०) विशेष विवरण राजन्‌ शब्दमें देखो। २ ऋषभक्‌। ३ राजादनवृक्ष, खिरनीका पेड़। ४ तगर-पादुका।

नृपकन्द (सं० पु०) नृपप्रियः कन्दः, कन्दानां नृप-श्रेष्ठो वा। राजपलाण्डु, लाल प्याज।

नृपगृह (सं० क्ली०) नृपाणां गृहम्‌। राजमन्दिर, राजाका मकान। राजाओंका कैसा घर होना चाहिए, उसका विषय वृहत्‌संहिता (५३ अध्याय)में और

योगसमनोतिपरिमित (१ अध्याय)में विशेषरूपसे लिखा है।

नृपञ्जय (सं० पु०) नृपान् जयति जि-खच्। पौरव नृपभेद।

नृपतरु (सं० पु०) १ आरग्वधवृक्ष, अमलतास। २ राजादनीवृक्ष, खिरनीका पेड़।

नृपता (हिं० स्त्री०) राजत्व, राजाका गुण या भाव।

नृपति (सं० पु०) पाति पा डति, नृणां पतिः ६-तत्। १ राजा। २ कुबेर।

नृपतिवल्लभ (सं० पु०) १ वटिकाकार चक्रदत्तोक्त औषध विशेष। रसेन्द्रसारके मतमें इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार लिखी है—जायफल, लवङ्ग, मोथा, दालचीनी, सोहागा, हींग, जीरा, तेजपत्र सोंठ, सैन्धवलवण, लौह, अभ्र, पारा गन्धक और ताम्र प्रत्येक ८ तोला, मिर्च १६ तोला इन सबको बकरीके दूधमें पीस कर गोली बनाते हैं। श्रीमत् गहननाथने बड़ी खोजसे इसका आविष्कार किया है। इसके सेवन करनेसे सभी अग्निमान्द्य और रोगोंसे रोगी मुक्त होता है। पाचको अग्निकारको यह एक उत्तम औषध है। (रसेन्द्रसारसंग्र अजीर्णचि०) इसके सिवा इस अधिकारमें बृहन्नृपति वल्लभ और दो प्रकारका 'महाराज नृपतिवल्लभरस' नामक औषधियोंकी प्रस्तुतप्रणाली लिखी है।

बृहन्नृपतिवल्लभकी प्रस्तुत प्रणाली।—पारा, गन्धक लौह, अभ्र, सीसक, चिता, गिलोय, सोहागा, जायफल लौंग, दालचीनी, इलायची, लवङ्ग, तेजपत्र, जीरा सोंठ, सैन्धवलवण और मिर्च प्रत्येक एक तोला ले कर पीछे दो आने भर स्वर्ण अदरकके रस और आंवलेके रसमें भावना दे कर दो माशे भर की गोली बनावें। प्रातः काल उठ कर इसे खानेसे जो सब पदार्थ भोजन किये जाते हैं अच्छीभांति पाक होते हैं। इस औषधके सेवन करनेसे अग्निमान्द्य, अजीर्ण, अर्श, ग्रहणी आमातीसार, उदरी आदि रोग प्रशमित होते हैं। (रसेन्द्रसारसंग्र, ग्रहणी-चिकि०)। नृपतिवल्लभ औषध भैषज्य रत्नावलीमें भी नृपतिवल्लभ नामसे प्रसिद्ध है। बृहत् नृपतिवल्लभका नाम बृहत् नृपवल्लभ है। (भैषज्यरत्नावली) (त्रि०) २ राजाका प्रिय। (स्त्री०) स्त्रियां टाप्। ३ राजपत्नी, राजमहिषी।

नृपतीन्द्रवर्मा—व्याधपुरके एक राजा। इनके परवर्ती राजा जयवर्माने महेन्द्र पर्वत पर जा कर राज्यस्थापन किया।

नृपतुङ्ग—१ दाक्षिणात्यके राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा। ये ३य गोविन्दराजके पुत्र थे। मन्द्राज प्रदेशके चार्कोट जिलेसे जो ताम्रशासन प्राप्त हुआ है उसमें इनका परिचय है। इस ताम्रशासन द्वारा इन्होंने ब्राह्मणोंको 'अग्निमाण्डेवी चतुर्वेदी मङ्गल' नामक ग्राम दान किया। इन्होंने भागमालाकी कन्या ... से विवाह किया था और चालुक्य अन्ध्र आदि जातियोंको जीत कर कीर्त्ति मान्यखेटनगरका पुनर्निर्माण किया। यही नगर इनके वंशधरोंको राजधानीरूपमें गिना जाता था। यह प्राचीन नगर वर्त्तमान निजामराज्यके अन्तर्गत मालखेड़ या मालखेड़ है।

इन्होंने बहुत दिन तक राज्य किया था। ८०१ शकमें उत्कीर्ण इनके राज्यकालका एक और ताम्रशासन पाया गया है। जिसके आखरमें १म अमोघवर्ष और अतिशयधवल इनके दो नाम बतलाये हैं।

२ उक्त वंशके एक दूसरे राजा। ८११-८१२ शकमें अमृतपालके उत्कीर्ण शासन जिसके बहुत कुछ ताम्रपत्र इनको एक शिलालिपि है। उस लिपिसे जाना जाता है, कि ७९१-८१७ शकके मध्य इन्होंने २य भीमराजके साथ युद्ध किया। राष्ट्रकूटराजवंश देखो।

नृपनी (सं० स्त्री०) नृणां पतिः, पालयित्री, नान्तादेश जातित्वात् स्त्रियां ङीष्। मनुष्योंकी पालिका शक्ति, यह औरत भी सबोंका पालन करती है।

नृपत्व (सं० क्ली०) नृपस्य भावः, नृप-त्व। राजत्व, राजा का काम।

नृपद्रुम (सं० पु०) नृपप्रियो द्रुमः। १ आरग्वध, अमलतास। २ राजादनीवृक्ष, खिरनीका पेड़।

नृपद्विट् (हिं० पु०) परशुराम।

नृपप्रिय (सं० पु०) नृपाणां प्रियः। १ वेणु, एक प्रकारका बाँस। २ राजपलाण्डु, लाल प्याज। ३ राजशरभ, शरबन्धा। ४ शालिधान्य, जड़हनधान। ५ आम्रातक, आमड़ा पेड़। ६ राजशुकपक्षी, राजसुआ, पहाड़ी या पार्वती तोता। (त्रि०) ७ राजवल्लभ, राजाका प्रिय।

नृपप्रियफला (सं० स्त्री०) नृप प्रियं फलं यस्याः । वार्त्ताकी, बैंगन ।

नृपप्रिया (सं० स्त्री०) नृपप्रिय स्त्रियां टाप्। १ केतकी २ राजखर्जूरी, पिण्डखजूर ।

नृपबदर (सं० पु०) बदराणां नृपः, राजदन्तादित्वात् पूर्वनिपातः । राजबदरवृक्ष ।

नृपमन्दिर (सं० क्लो०) नृपाणां मन्दिरम् । राजगृह, प्रासाद ।

नृपमाङ्गल्यक (सं० क्लो०) नृपस्य माङ्गल्यं यस्मात्, कप्। आकुलवृक्ष, तरवटका पेड़ ।

नृपमान (सं० क्लो०) नृपस्य तद्भोजनस्य मानमावेदकं वाद्यं । एक प्रकारका बाजा जो राजाओंके भोजनके समय बजाया जाता था ।

नृपमाष (सं० पु०) राजमाष ।

नृपरुद्र—दाक्षिणात्यके पूर्व चालुक्यवंशीय एक राजा। इनके पिता त्रिपुरके कलचुरि-वंशीय थे और इनकी माता हैहयवंशसम्भूता थी । चालुक्यवंश देखो।

नृपलक्ष्मन् (सं० क्लो०) नृपाणां लक्ष्म ६-तत्। राजचिह्न, छत्रचामरादि ।

नृपलिङ्गधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, नृपलिङ्गस्य धरः । नृपवेशधारी ।

नृपवल्लभ (सं० क्लो०) १ चक्रपाणि दत्तोक्त पक्व घृत और तैलविशेष । भैषज्यरत्नावलीमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—तिलतैल वा गव्यघृत ८० सेर, दुग्ध ३२ सेर, भाथार्थ जीवक, ऋषभक, मेद, द्राक्षा, शालपर्णी, कण्टकारी; वृहती, यष्टिमधु, विडङ्ग, मञ्जिष्ठा, चीनी, रास्ना, नीलोत्पल, गोक्षुर, पुण्डरीककाष्ठ, पुनर्नवा, सैन्धव, पीपर प्रत्येक २ तोला। तैलके लिए प्रत्येक द्रव्य २॥ तोला करके देना होता है। नृपवल्लभ घृत वा तैलको यथाविधान प्रस्तुत कर सेवन करनेसे तिमिर, रात्र्यन्धता, लिङ्गनाश, मुखनाश, दौर्गन्ध्य आदि नाना प्रकारके रोग प्रशमित होते हैं ।

(भैषज्यरत्ना० नेत्ररोगाधि०)

२ राजाका वृक्ष । (त्रि०) ३ राजप्रियमात्र ।

नृपवल्लभा (सं० स्त्री०) १ केतकी । २ महाराजचूतवृक्ष ।

नृपवृक्ष (सं० पु०) रायवृक्ष, सोनालुका पेड़ ।

नृपशु (सं० पु०) ना पशुरिव, वा ना चासौ पशुश्चेति । १ नरपशु । २ मूर्ख ।

नृपशार्दूल (सं० पु०) नृपः शार्दूल इव 'उपमितं व्याघ्रादिभिः श्रेष्ठार्थे' इति सूत्रेण कर्मधारयः । राजशार्दूल, राजश्रेष्ठ ।

नृपशासन (सं० क्लो०) नृपस्य शासनं ६ तत् । राजशासन, राजाका शासन ।

राजाको प्रजा, दास, भृत्य, भार्या, पुत्र, शिष्य आदिके प्रति किस प्रकार शासन करना चाहिये, उसका विषय शुक्रनीतिपरिशिष्टके ११ वें अध्यायमें विस्तृतरूपसे लिखा है । राजशासन देखो ।

नृपसभ (सं० क्लो०) नृपाणां सभा तत्- तत्पुरुषसमासे क्लीवत्वम् (सभा राजामनुष्यपूर्वा। पा २।४।२३)। राजाओंकी सभा ।

राजाको चाहिए कि वे सुगम मनोरम त्रिकोष्ठ, पञ्च कोष्ठ वा सप्तकोष्ठ विस्तृत राजसभा प्रस्तुत करें। इस राजसभाके निर्माणका विशेष विवरण शुक्रनीतिपरिशिष्टके १ अध्यायमें लि है । राजसभा देखो ।

नृपसुता (सं० स्त्री०) नृपस्य सुता । १ राजकन्या, राजकुमारी । २ छुछुन्दरी, छछूंदर ।

नृपांश (सं० पु०) नृपाय देयोऽशः भागः । १ राजाको देय षष्ठांशरूप भाग । राजाको उपजका छठा भाग करमें देना होता है इसीको नृपांश कहते हैं । २ राजपुत्र, राजाका लड़का, राजकुमार ।

नृपाकृष्ट (सं० पु०) नृपेण आकृष्टः। क्रीड़ाके निमित्त राजकर्त्तृक आकृष्ट राजा, चतुरङ्ग आदि खेलनेके लिए आकृष्ट राजा ।

नृपाङ्गण (सं० क्लो०) नृपस्य अङ्गनं ६-तत्। राजप्रासादका प्राङ्गण या आंगन ।

नृपाण (सं० क्लो०) नृणां पानं ततो णत्वं । १ कर्मनेताका पानयोग्य । (पु०) २ देवताओंका पानसाधन ।

नृपाल (सं० पु०) नॄणां पाता रक्षकः। मनुष्योंके सर्वदा रक्षक, मनुष्योंको पालनेवाला ।

नृपात्मज (सं० पु०) नृपस्य आत्मजः । १ राजपुत्र, राजकुमार । २ आम्रातकवृक्ष । ३ महाराजचूतवृक्ष ।

नृपात्मजा (सं० स्त्री०) नृपात्मज टाप् । १ राजकन्या, राजकुमारी । २ कटुतुम्बी, कडुआ घीया ।

नृपाध्वर (सं॰ पु॰) नृपसाध्यकर्त्तव्य अध्वर। राजसूय यज्ञ। प्रत्येक राजाको यह यज्ञ सम्पन्न करना चाहिए।

नृपानुचर (सं॰ पु॰) राजभृत्य, राजाका नौकर।

नृपान्न (सं॰ क्ली॰) नृप प्रियं अन्नं। १ राजान्न नामक धान्यभेद, राजभोग धान। नृपस्य अन्नं। २ राजाका अन्न।

नृपान्यत्व (सं॰ क्ली॰) राजपरिवर्त्तन।

नृपाभीर (सं॰ क्ली॰) अभीरयति नृपयति भोजनकाल-मिति, अभि-ईर क, अभीर, नृपस्य अभीर भोजनकाल-सूचकवाद्यविशेष। एक प्रकारका बाजा जो राजाओंके भोजनके समय बजाया जाता था।

नृपामय (सं॰ पु॰) आमयानां रोगाणां नृप, राजदन्ता-दित्वात् पूर्वनिपातः। १ राजयक्ष्मा, क्षयरोग। यह रोग सभी रोगोंका राजा है इसीसे इसको नृपामय कहते हैं। नृपस्य आमयो व्याधिः ६-तत्। २ नृपको पीड़ा, राजरोग।

नृपाय्य (सं॰ त्रि॰) नृभिर्नेतृभिः पाय्य। देवताओंके पानयोग्य सोम।

नृपार्हम् (सं॰ क्ली॰) माक्षिकधातु, एक किस्मका धान।

नृपाल (सं॰ पु॰) नॄन् पालयति पालि-अण्। नृपति, राजा।

नृपालय (सं॰ पु॰) राजप्रासाद, राजाका घर।

नृपावर्त्त (सं॰ क्ली॰) नृप इव आवर्त्तते इति आ-वृत-अच्। राजावर्त्त रत्न, मणिविशेष।

नृपासन (सं॰ क्ली॰) नृपस्य आसनम्। राजासन, तख्त। पर्याय—भद्रासन सिंहासन।

नृपास्पद (सं॰ क्ली॰) नृपस्य आस्पद ६-तत्। राजस्थान, राजप्रतिष्ठा।

नृपाह्वय (सं॰ पु॰) नृप आह्वयो नामेति, आ-ह्वे-अच्। १ राजपलाण्डु, लाल प्याज। २ राजा कहलानेवाला राजनामधारी।

नृपीठ (सं॰ क्ली॰) चरक, जन।

नृपीति (सं॰ स्त्री॰) पा-रक्षणे भावे क्तिन्, पात ईत्वं पीतिः, नृणां पीतिः ६-तत्। १ मनुष्यरक्षण। (त्रि॰) कर्त्तरि क्तिच्। २ मनुष्यरक्षक।

नृपेयस् (सं॰ त्रि॰) नरकृत।

नृपेष्ट (सं॰ पु॰) १ राजपलाण्डु, लाल प्याज। २ राजबदरवृक्ष, बेरका पेड़। ३ नीलवृक्ष, नीलका पौधा।

नृपोचित (सं॰ पु॰) नृपेषु उचितः। १ राजमाष नामक बड़ा उरद। २ लोबिया। (त्रि॰) ३ राजयोग्य।

नृबाहु (सं॰ पु॰) नृणां बाहुः। १ कर्मनेता ऋत्विकोंकी बाहु। २ नरबाहुमात्र।

नृभर्त्तृ (सं॰ पु॰) नृणां भर्त्ता। मनुष्योंका रक्षक।

नृभोज (सं॰ त्रि॰) पातालजात, जो पातालमें उत्पन्न हो।

नृमण (सं॰ पु॰) नृषु यजमानेषु मनो यस्य ततो णत्व। १ दक्षिणार्थ यजमानके प्रति अनुग्रहबुद्धियुक्त इन्द्रादि देव। २ धन सम्पत्ति।

नृमणा (सं॰ स्त्री॰) ब्रह्मद्वीपकी एक महानदी।

नृमधि (सं॰ पु॰) पिशाचभेद, एक भूत जो मनुष्योंको मार कर खा लिया करता है।

नृमत् (सं॰) मनुष्यविशिष्ट, जहां आदमी हो।

नृमर (सं॰ त्रि॰) मनुष्यका हन्ता, राक्षस।

नृमांस (सं॰ क्ली॰) नृणां मांस। नरमांस आदमीका मांस।

नृमादन (सं॰ त्रि॰) नृणां मादन। ऋत्विक् और यजमानका हर्षोत्पादक सोम।

नृमिथुन (सं॰ क्ली॰) नृणां मिथुनम्। स्त्रीपुरुषका जोड़ा।

नृमेध (सं॰ पु॰) ना मेध्यतेऽत्र मेध आधारे घञ्। १ पुरुषमेधयाग, नरमेधयज्ञ। यजुर्वेदके ३०वें अध्यायमें इस यज्ञका विशेष विवरण लिखा है। २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

नृम्ण (सं॰ क्ली॰) नृभिर्म्नायते अभ्यस्यते म्ना-बाहु॰ क ततो णत्व ([illegible]। पा ८।४।२६) धन, सम्पत्ति।

नृयज्ञ (सं॰ पु॰) नृणां अर्च्या यज्ञः। पञ्च यज्ञोंमेंसे एक जिसका करना गृहस्थके लिए कर्त्तव्य है, अतिथि-पूजा अभ्यागतका सत्कार। जो अतिथिसेवा करते हैं उनके अभ्यागतजन्य पातक नष्ट हो जाते हैं।

नृयुग्म (सं॰ क्ली॰) नृयुग्मम्। नृमिथुन स्त्रीपुरुषका मिथुन।

नृलोक (सं॰ पु॰) ना एव लोकः। नरलोक, मनुष्य लोक।

नृवत् (सं० त्रि०) ना परिचारकादिरस्त्यस्य मतुप् वेदे मस्यवः। परिचारक नरयुक्त।

नृवत्सखि (सं० त्रि०) ऋत्विगादि सहाययुक्त कर्मनेता।

नृवराह (सं० पु०) ना चासौ वराहश्चेति वराहरूपधृक् भगवदवतारः। वराहरूपधारी भगवान्।

यही नृवराहरूपी भगवान् बलिके द्वारी हुए थे।

"शौकरं रूपमास्थाय द्वार्यस्य च दुरात्मनः।

भविष्यामि न सन्देहो मम धर्म्म तरान्वितः॥"

(पद्मपु० सृष्टिख० २८ अ०)

मैं शौकर अर्थात् वराहरूप धारण कर इस दुरात्मा बलिका द्वारी होऊंगा, इसमें सन्देह नहीं। नृवराहदेवकी मूर्त्ति इस प्रकार है—आकार वराहके जैसा, अन्य प्रत्यङ्ग मनुष्यके जैसा, हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म; दाहिनी और बाईं ओर शङ्ख, लक्ष्मी वा पद्म, वामकूर्प रमें श्री और चरणयुगलमें पृथिवी तथा अनन्त हैं। ऐसी मूर्त्तिको घरमें स्थापना करनेसे राज्यलाभ और अन्तमें अनन्तस्वर्ग लाभ होता है। (अग्निपु० ३० अ०)

नृवाहण (सं० त्रि०) नेतृवोढ़ा, नायकवाहक।

नृवाहन (सं० पु०) ना वाहनं यस्य। नरवाहन कुवेर। वैदिक प्रयोगमें णत्व हो कर नृवाहण होगा।

नृवाहस् (सं० त्रि०) नरवाहक, इन्द्र और उनके सारथि आदिका वाहक।

नृवेष्टन (सं० त्रि०) ना वेष्टनं यस्य। १ मनुष्यवेष्टित, आदमीसे घिरा हुआ। (पु०) २ महादेव, शिव।

नृशंस (सं० त्रि०) नॄन् नरान् शंसति हिनस्तीति नृशंस-अण् (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) १ क्रूर, निर्दय। २ परद्रोही, अनिष्टकारी, अपकारी। निन्दिता स्त्रीसे विवाह करनेसे नृशंस पुत्र उत्पन्न होता है।

चार इतर विवाह अर्थात् गान्धर्व, असुर, राक्षस और पैशाच विवाह करनेसे नृशंस, मिथ्यावादी, धर्म और वेदविद्वेषी पुत्र उत्पन्न होता है। जो नृशंस हैं, उनका अन्न तक भी खाना नहीं चाहिए।

याज्ञवल्क्यमें लिखा है, कि नृशंस राजा, रजक, कृतघ्न, वधजीवी, चेलधाव अर्थात् वस्त्रको मैल दूर करनेवाला और सुराजीवी इनका अन्न खाना निषेध है।

नृशंसता (सं० स्त्री०) नृशंसस्य भावः, भावे तल्, ततष्टाप्। निर्दयता, क्रूरता।

नृशंसवत् (सं० त्रि०) नृशंसः विद्यतेऽस्य, मतुप्, मस्य वः। पापकर्मा, अपकार करनेवाला।

नृशृङ्ग (सं० क्ली०) नृणां शृङ्गम्। अलीक पदार्थ, मनुष्यको सींगके समान अनहोनी बात या वस्तु।

नृसोबा—दाक्षिणात्यके बीजापुर प्रदेशके अन्तर्भुक्त कोल्हापुर सामन्तराज्यके अधीन एक ग्राम। यह कृष्णा और पञ्चगङ्गा नदीके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। यहां कृष्णानदीके किनारे सोपानराजिविराजित घाटके ऊपर नरसिंहदेवका मन्दिर है। सम्भवतः इसी नृसिंहदेवके मन्दिरसे इस स्थानका नामकरण हुआ होगा। यहां ब्राह्मण भी रहते हैं। पूर्वोक्त घाटके दूसरे किनारे करन्दर नगर है। यहांका घाट जैसा सुन्दर है, वैसा ही तोरवर्ती स्थानसमूहका दृश्य भी मनोरम है।

नृषद् (सं० पु०) नरि पुरुषे अन्तर्यामितया सीदति सद्-क्विप्, वेदे षत्वम्। १ परमात्मा। २ कण्वऋषिके पिता ऋषिभेद। ३ मनुष्यस्थायी।

नृषदन (सं० क्ली०) नरः नेतारः ऋत्विजः तेषां सदनं, वेदे षत्वम्। यज्ञगृह, यज्ञशाला।

नृषद्मन् (सं० त्रि०) मनुष्यमें रहनेवाला।

नृषा (सं० त्रि०) पुत्रदाता, लड़का देनेवाला।

नृषाच् (सं० त्रि०) प्राणरूपसे मनुष्यको सेवा करनेवाला।

नृषाता (सं० स्त्री०) मनुष्योंके सभक्ता।

नृषाह् (सं० त्रि०) शत्रुओंका परास्त करनेवाला।

नृषाह्य (सं० त्रि०) शत्रुओंका अभिभावुक, दुश्मनोंको जीतनेवाला।

नृषूत (सं० त्रि०) षू-प्रेरणे कर्मणि क्त, नृभिः षूतः ३ तत्। स्तोतृगण कर्त्तृक प्रेरित।

नृसार (सं० पु०) १ निपादन। २ महाद्रावक।

नृसिंह (सं० पु०) ना चासौ सिंहश्चेति कर्मधारयः। १ भगवदवतारभेद, नरसिंहरूपी विष्णु, नृसिंहावतार, दश अवतारोंमेंसे चौथा अवतार।

"सिंहस्य कृत्वा वदनं मुरारिः सदा करालं च सुरुकनेत्रम्।

अर्द्धं वपुर्वै मनुजस्य कृत्वा ययौ सभां दैत्यपतेः पुरस्तात्॥"

(अग्निपु०)

भगवान् मुरारि आधा शरीर सिंहके जैसा और आधा मनुष्यके जैसा इस प्रकार नरसिंहमूर्त्ति धारण कर दैत्यपतिके सामने सभामें पहुँचे थे।

अग्निपुराणके मतसे—नृसिंह मूर्ति स्थापन करनेका ऐसा विधान है। उनका शरीर व्यादित, वाम चरण पर चतरानन, दक्षिण आगा हाथमें चक्र और गदा है ऐसी पदकामें ये दैत्यपतिका वक्ष फाड़ रहे हैं। (अग्निपु० ४९ अ०) नृसिंह तथा महाविष्णुका मन्त्र और पूजादिका विषय तन्त्रसारमें विशेषरूपसे लिखा है। नृसिंह मन्त्र इस प्रकार है, यथा—

"उग्रं वीरं वदेत् पूर्व महाविष्णुमनन्तरं।
ज्वलन्तं सर्वतो मुखमीरयेत्॥
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं वदेत्ततः।
नमाम्यहमिति प्रोक्तो मन्त्रराजः द्वात्रिं॥" (तन्त्रसार)

यह नृसिंह मन्त्र मायापुटित और सर्वफलप्रद है।

"उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥"

इसी मन्त्रसे नृसिंहदेवकी पूजा करनी चाहिए। इस मन्त्रके आदि और अन्तमें "ह्रौं" यह मन्त्र योग करके जपादि करनेसे साधकका कल्याण होता है। इस मन्त्रका पूजा प्रयोग इस प्रकार है—सामान्य पूजापद्धतिके अनुसार प्रातःकृत्यादि करके विष्णुपूजापद्धतिक्रमसे पीठन्यासान्त समस्त कर्म कर चुकनेके बाद ऋष्यादि न्यास, करन्यास, अङ्गन्यास और मन्त्रन्यास करे। पीछे नृसिंहदेवका ध्यान करनेका विधान है।

ध्यान—"माणिक्याद्रिसमप्रभं निजरुचा संत्रस्तरक्षोगण
जानुन्यस्तकराम्बुजं त्रिनयनं रत्नोल्लसद्भूषणम्।
बाहुभ्यां धृतशङ्खचक्रमनिशं दंष्ट्रोग्रवक्त्रोल्लसद्
ज्वालाजिह्वमुदारकेशरचयं वन्दे नृसिंहं विभुम्॥"

'नृसिंहदेवकी देहकान्ति माणिक्यादिकी तरह उज्ज्वल है, जिनकी प्रभासे राक्षसगण सर्वदा डरा करते हैं, दोनों हाथ जानुके ऊपर रखे हुए हैं, इनके तीन नेत्र हैं और समूचा शरीर रत्नभूषणसे भूषित है। हाथोंमें शङ्ख और चक्र है, आधा शरीर मनुष्यके जैसा और आधा सिंहके जैसा है। विकट वदनसे अग्निशिखाकी नाईं जिह्वा बाहर निकली हुई है।' इस प्रकार ध्यान कर के मानसोपचारसे पूजा करे और शङ्खस्थापनपूर्वक विष्णुपूजा पद्धतिक्रमसे पीठपूजा और पुनर्वार ध्यान आवाहनादि द्वारा पूजा करके आवरणकी पूजा करनी होती है इस मन्त्रका पुरश्चरण ३२ लाख जप है। यथाविधि पुरश्चरण करके घृतयुक्त पायस द्वारा ३२ हजार होम करना होता है।

नृसिंहदेवका मन्त्रान्तर—

"आद्यः सर्वविसर्गाढ्यो वर्मः फट् मनुः।
पञ्चार्णो वरदो ज्ञेयः सर्वदः॥"

आं ह्रीं क्ष्रौं क्रौं हुं तथा फट् ये पञ्चाक्षर नृसिंहदेवके मन्त्र हैं, यह मन्त्र सर्वकामप्रद है। यथाविधान इस मन्त्रसे नृसिंहदेवकी पूजा करनी होती है। इस मन्त्रका पुरश्चरण भी लाख बार जप है। जप करनेके बाद घृत द्वारा दश हजार होम करनेका विधान है।

नृसिंहदेवका एकाक्षर मन्त्र—

'क्षकारो वह्निमारूढो मनुबिन्दुसमन्वितः।
एकाक्षरो मनुः प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः॥'

'क्ष्रौं' यही नृसिंहदेवका एकाक्षर मन्त्र है। यह मन्त्र सर्वकामफलप्रद माना गया है। इस मन्त्रका पुरश्चरण ८ लाख जप है और उसका दशांश होम।

नृसिंहदेवका षडक्षर मन्त्र—

'जयद्वयं तदन्ते श्रीनृसिंह इत्यपि।
षडक्षरो मनुः प्रोक्तो भक्तानां कामदो मतः॥'

'जय जय श्री नृसिंह' यही षडक्षर मन्त्र है जो साधकोंके लिये कल्याणकर माना गया है। इस मन्त्रका पुरश्चरण भी ८ लाख जप है और उसका दशांश होम होगा।

नृसिंहदेवके षडक्षर मन्त्रका ध्यान—

"ध्येयाराध्येत्स्थितं त्रिभुवनविभुतं कोपकृत्वस्थितेश
स्वाधाराभिरत्नोज्ज्वलितं निर्वितेनम्बरम्।
शङ्ख चक्र ज्वालाकुण्डलिनिकर दारयन्तं नखाग्रै
भीमं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रं मणिमयरचिता करतो नृसिंहम्॥"

इस प्रकार ध्यान करके पूजा करते हैं।

नृसिंहदेवके यन्त्रविषयमें तन्त्रसारमें इस प्रकार लिखा है। नृसिंह यन्त्र—

"बीजं साध्यसमन्वितं प्रविलिखेन्मध्ये तदर्धं धरो
मन्त्रार्णैर्नृसिंहको निगम विलिखेत् क्रिया बहिर्वेष्टयेत्।
वार्णैर्योनिगतैरथस्वरगतैर्वेष्टनावेष्टयेत् बाह्य
यन्त्रं त्रैलोक्यमहामवैष्णवप्रजनं भीषणम्॥"

मध्य स्थलमें बोज और साध्यनामादि लिख कर अष्टदलमें यह लिखें—

"उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतो मुखं ।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहं ॥"

इस मन्त्रके चार चार मन्त्रसे विन्यास और उसके चारों ओर मातृकावर्ण अर्थात् अकारादि वर्ण द्वारा परिवृत करना होता है। उसके वहिर्भागमें दो भूपुर लिख कर उसके प्रत्येक कोनेमें भी यह मन्त्र लिखना पड़ता है। इस यन्त्रका यथाविधि पूजन कर शरीर पर धारण करनेसे चद्र विष ग्रह-दोष, व्याधिनाश, शत्रुध्वंस और लक्ष्मीलाभ होता है। भूर्जपत्रलिखित यन्त्र १२ वर्ष तक धारण किया जा सकता है। (तन्त्रसार) नृसिंह अवतारादिका विषय नरसिंह शब्दमें देखो।

२ षोड़श रतिबन्धान्तर्गत नवम बन्ध। ३ नरश्रेष्ठ, श्रेष्ठपुरुष। ४ स्वनामख्यात नृपविशेष।

नृसिंह—पञ्जावके अन्तर्गत काङ्गड़ा जिलेमें विष्णु-अवतार नरसिंह वा नारसिंहदेवका पूजन प्रचलित हैं। वहांके प्रायः दो तृतीयांश मनुष्य इस पूजाको विशेष श्रद्धाभक्तिसे करते हैं। स्त्रियोंका विश्वास है, कि यही नरसिंहदेव उन्हें सन्तानादि देते और विपद्कालसे उद्धार करते हैं।

इस पूजामें वे लोग एक नारियलको ले कर थाली पर रखते और पहले परिष्कार जलसे उसे धोते हैं। पीछे उसमें चन्दन घिस कर लेप देते हैं तथा उस चन्दन से उसके ऊपर तिलक काढ़ते हैं। बादमें उस पर अरवा चावल छोड़ते और मालादिसे विभूषित कर उसके आगे धूप जलाते हैं। पूजाके बाद वे मिष्टान्नादि भोग लगाते हैं और उस प्रसादको अपने तथा पड़ोसीके बालबच्चोंके बीच बांट देते हैं। साधारणतः प्रति रविवार अथवा मासके प्रथम रविवारको यह पूजा होती है।

यहांके लोग नरसिंहदेवसे साधारणतः डरते और उनको भक्ति किया करते हैं। सभी अपनी अपनी बांह पर कवच पहनते हैं जिसके ऊपर नृसिंहमूर्त्ति खोदित रहती है। इसके सिवा बहुतसे मनुष्य ऐसे भी हैं जो कवच न पहन कर अपने घरमें नारियल रखते और प्रति दिन उसीकी पूजा करते हैं। माता वा सास जब यह पूजा करती है, तब कन्या या पुत्रवधूको उनका साथ देना पड़ता है। जब कोई वन्ध्यानारी पुत्रके लिये किसी योगीसे प्रार्थना करती है, तब वह योगी उसे नरसिंह-पूजा करनेकी सलाह देते हैं। प्रवाद है, कि इस प्रकार पूजा करनेसे नरसिंहदेव रातको उन्हें स्वप्न देते हैं। जब किसीको ज्वर लगता है, तब नरसिंहका चेला आ कर उसका रोग झाड़ देता है।

नृसिंह—भारतवर्षके मध्यप्रदेशके अन्तर्गत सिवनी जिलेका एक मन्दिराकृति पर्वत। यह वेणगङ्गा नदीकी उपत्यकाभूमिसे एक सौ फुट ऊंचा है। पहाड़के ऊंचे शिखर पर नरसिंहदेवका मन्दिर और मध्यभागमें विष्णुकी नृसिंह-मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। पर्वतके निम्नभागमें इसी नामका एक ग्राम भी है।

नृसिंह—एक राजा। ये कुमारिकाभक्त चम्पकमुनिके कुलमें उत्पन्न राजा नागमण्डनके पुत्र थे।

नृसिंह—अनेक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम। जो जो ग्रन्थ जिनके रचित हैं, उन उन ग्रन्थोंके नाम और ग्रन्थकारोंका यथासम्भव परिचय नीचे लिखा है।

१ आपस्तम्बसोमटीका, आशौचमप्रयोग, चयनपद्धति, प्रयोग-पारिजात, विधानमाला और संस्कार आदि ग्रन्थोंके प्रणेता।

२ कालचक्र, जातककलानिधि, जैमिनिसूत्रटीका निबन्ध-शिरोमणि-उक्त निर्णयाङ्क, केशवार्कको जातक-पद्धतिको प्रौढमनोरमा नामक टीका, यन्त्रराजोदाहरण, शिक्षाजदीपिका आदि ग्रन्थोंके रचयिता।

३ गणेश-गद्य नामक एक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

४ दत्तकपुत्रविधानके रचयिता। इनकी उपाधि भट्टको थी।

५ नलोदयटीकाके प्रणेता।

६ वन्यकौमुदी नामक ग्रन्थकर्त्ता।

७ वीरनारसिंहावलोकनके प्रणेता।

८ वृत्तरत्नाकरटीकाके रचयिता।

९ शिवभक्तिविलास नामक ग्रन्थके प्रणेता।

१० शृङ्गारस्तवकभाणके प्रणेता। ये अपनेको हारीत-वंशोद्भव बतलाते थे।

११ कुशलके पुत्र। संचिप्तसारके अन्तर्गत धातुपाठको गणभाष्य नामक टीकाके रचयिता।

१२ एक ज्योतिर्विद्। ये दिवाकरके पौत्र, राम दैवज्ञके पुत्र, मदिन दैवज्ञके भ्रातृष्पुत्र और कमलाकर के पिता थे। इन्होंने सिद्धान्तशिरोमणिटीका [illegible] सिद्धान्तशिरोमणिवासनावार्त्तिक और सूर्यसिद्धान्त-वासनाभाष्य रचे हैं।

१३ कालकर्मपद्धतिके प्रणेता। ये नारायणके पुत्र और मौद्गल्य गोत्रके थे।

१४ नारायण भट्टके पुत्र, नृसिंहके पौत्र और मौनीनाथके भाई। कोकण राज्यके अन्तर्गत कद्‌ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इन्होंने प्रयोगरत्न नामक एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की।

१५ एक ज्योतिर्विद्। ये रामदैवज्ञके पुत्र और केशवके पौत्र थे। इन्होंने नृसिंह दैवज्ञसे ज्योतिःशास्त्र पढ़ा था। इनके बनाये हुए मल्लकौमुदी, पदार्थदीपिका और [illegible] नामक ग्रन्थ मिलते हैं।

१६ एक विख्यात पण्डित। इनके बनाए हुए कालनिर्णयदीपिकाविवरण और तिथिनिर्णय नामक दो ज्योतिर्ग्रन्थ हैं। ये प्रक्रियाकौमुदीके प्रणेता कृष्णाचार्यके पितामह और विट्ठलाचार्यके पिता थे। इनके पिताका नाम रामचन्द्राचार्य था। इन्होंने गोपालपण्डितसे विद्या सीखी थी।

१७ महानन्दतीर्थके परम गुरु। इनकी उपाधि तीर्थ थी।

नृसिंहपट्टी—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत कविपुरा तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १२ ५ उ० और देशा० ७५ ११ पू० के मध्य अवस्थित है। १७८४ ई०में टीपू सुलतानने जब अङ्गरेजोंसे संधि कर ली थी तब उन्होंने इस स्थानको प्राकृतिक सौन्दर्यसे सुरक्षित तथा पर्वतोपरि सुशोभित स्थानमें अवस्थित देख यहांका प्राचीन नाम बदल कर जमालाबाद नामका एक नगर बसाया। इस नगरके पश्चिम पर्वत पर एक दुर्ग बना कर उन्होंने इस नगरकी रक्षा की थी। १७९९ ई०में अङ्गरेजोंकी विजयके बाद टीपू सुलतानके मारे जाने तक युद्ध चलता रहा। अन्तमें टीपूके सिपाहियोंने जब आत्मसमर्पण कर दिया, तब अङ्गरेज-सरकारने दुर्गके साथ जमाला-बादनगरको नष्ट भ्रष्ट कर डाला। इसके पार्श्ववर्ती ग्रामोंमें आज भी बहुत से मुसलमानोंका वास है।

नृसिंहाचार्य—१ एक पण्डित। ये कुसिकवंशके थे। कोई कोई इन्हींको रामानुजके पिता बतलाते हैं।

२ अनङ्गमर्दनभाणके प्रणेता अप्पयो नृसिंहके पिता।

३ एक दार्शनिक। इन्होंने शङ्कराचार्यकृत तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यकी टीका नारायणोपनिषद्भाष्य और शङ्कराचार्य-विरचित श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यकी टीका प्रणयन की।

४ शिवानन्दकृत पदार्थचन्द्रिका नामक ग्रन्थके टीकाकार।

५ अनन्तभट्टको भारतचम्पू टीकाके रचयिता।

६ मन्त्रचिन्तामणिके प्रणेता।

७ ज्योतिःशास्त्रविशारद एक पण्डित। ये भारद्वाज गोत्रज बापूदेव वरदाचार्यके पुत्र थे। इन्होंने [illegible] नामक एक संक्षिप्त ज्योतिर्ग्रन्थ लिखा है।

८ चम्पूभारतकी सरस्वती नामक टीकाके रचयिता।

नृसिंहकवच (सं० क्ली०) नृसिंहस्य कवचम्। तन्त्रसारोक्त नृसिंहदेवका कवचभेद, त्रिपुरविद्यात्मक मन्त्रविशेष। इस कवचको भोजपत्र पर लिख कर यथाविधि कण्ठमें धारण करनेसे सब प्रकारकी विपद् जाती रहती है।

तन्त्रसारमें लिखा है—

"नारद उवाच।

इन्द्रादिदेववृन्देश तातेश्वर जगत्पते।

महाविष्णोर्नृसिंहस्य कवचं ब्रूहि मे प्रभो॥

यस्य प्रपठनाद्विद्वान् त्रैलोक्यविजयी भवेत्॥

ब्रह्मोवाच।

शृणु नारद वक्ष्यामि पुत्रश्रेष्ठ तपोधन।

कवचं नरसिंहस्य त्रैलोक्यविजयाभिधम्॥

यस्य प्रपठनाद् वाग्मी त्रैलोक्यविजयी भवेत्।

स्रष्टाहं जगतां वत्स पठनाद्धारणाद् यतः॥" इत्यादि।

एक दिन नारदने जब ब्रह्मासे महाविष्णु नृसिंहदेवके कवचके विषयमें पूछा, तब उन्होंने कहा था, 'हे नारद! तुम त्रैलोक्यविजय नामक नृसिंहकवच श्रवण करो। इस कवचके पढ़नेसे वाग्मित्व लाभ और त्रैलोक्यविजयी होता है। मैंने इस कवचको धारण

करके स्रष्टृत्वशक्ति लाभ की है। इसीको पाठ और धारण कर लक्ष्मोदेवी त्रिजगत्का पालन करती हैं, महेश्वर इसीके प्रभावसे जगत्‌संहार करते हैं और देवताओंने इसीसे दिगीश्वरत्व प्राप्त किया है। यह कवच ब्रह्ममन्त्रमय है, इससे भूतादि निवारित होते हैं। मुनि दुर्वासा इसी कवचके प्रभावसे त्रिलोकविजयी हुए थे। इस त्रैलोक्यविजयकवचके ऋषि—प्रजापति, छन्दः—गायत्री, विभु—नृसिंहदेवता हैं।'

इस कवचको यथाविधि भोजपत्र पर लिख स्वर्णपात्रमें रख कर यदि कोई कण्ठ वा बाहुमें धारण करे, तो वह मनुष्य स्वयं नृसिंहरूपी हो जाता है। स्त्रियोंको यह कवच वाम बाहुमें और पुरुषोंको दक्षिण बाहुमें पहनना चाहिए। काकवन्ध्या, मृतवत्सा, जन्मवन्ध्या और नष्टपुत्रास्त्री यदि इस कवचको धारण करें, तो वे बहुपुत्रवती होती हैं। इस कवचके प्रभावसे सब प्रकारकी विपत्तियां जाती रहती हैं और साधकका जीवन सुख होता है। जिस घरमें वा जिस ग्राममें यह कवच रहता है, भूतप्रेतगण उस देशको छोड़ कर बहुत दूर चले जाते हैं। ब्रह्मसंहितामें यह कवच लिखा है। तन्त्रसारमें भी इस कवचका अन्यान्य विषय देखनेमें आता है।

(तन्त्रसार)

नृसिंहगढ़—१ मध्यप्रदेशके अन्तर्गत होलकरराजके अधीनस्थ भूपाल एजेन्सीका एक छोटा राज्य और परगना। यह अक्षा० २३° २५´ से २४° उ० तथा देशा० ७६° २०´ से ७७° ११´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७३४ वर्गमील है। इसके उत्तरमें इन्दोर, खिलचीपुर और राजगढ़ ष्टेट; पूर्वमें मधुसूदनगढ़ और भूपाल; पश्चिममें देवास और ग्वालियर तथा दक्षिणमें भूपाल और ग्वालियर है।

राजगढ़के रावतवंशीय सामन्तराजके मन्त्री अजबसिंहके पुत्र परशुराम १६६० ई०में पितृपद पर नियुक्त हुए। पीछे १६८१ ई०में इन्होंने रावतोंसे यह नृसिंहगढ़ राज्य बलपूर्वक पृथक् कर लिया और स्वयं इस प्रतिष्ठित राज्यके अधीश्वर हुए। १८वीं शताब्दीमें यहांके राजाने मराठोंकी अधीनता स्वीकार की और वे होलकरके साथ सन्धि करनेमें बाध्य हुए। उसी सन्धिके अनुसार राज्यकी आयमेंसे होलकर राजाको वार्षिक ८५०००), रु० देने पड़े।

पिण्डारी दस्युदलसे यह परगना उत्सादित होने पर इस स्थानके प्रधान दीवान सुभगसिंह राजाको खजानेके दायी हुए। उक्त ऋणपरिशोधके लिये उन्होंने तथा उनके पुत्रकुमार चैनसिंहने वहांके सूबेदार महाराजाधिराज बहादुर अोजनराजो सिन्धियाको एक पत्र लिखा। वह पत्र जब होलकरके दरबारमें पहुंचा, तब राजा मल्हार राव होलकरने नृसिंहगढ़के अधिपति सुभगसिंहको १२१८ हिजरीमें अपना हस्ताक्षर करके परवाना भेज दिया जिसमें छः वर्षको सलीमशाही मुद्रा पर तीन लाख पचीस हजार रुपये देनेकी बात लिखी थी।

१८२४ ई०में चैनसिंहने वृटिश सेना पर धावा बोल दिया और आप ही युद्धमें मारे गये। पीछे १८७२ ई०में हनवन्तसिंह नृसिंहगढ़के सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इन्हें वृटिश गवर्मेण्टकी ओरसे राजाकी उपाधि और १५ सलामी तोपें मिलीं। १८७३ ई०में हनवन्तके मरने पर होलकरने उनके उत्तराधिकारी प्रतापसिंहसे नजराना तलब किया। लेकिन वृटिश सरकारने इस दावाको स्वीकार न किया। १८८० ई०में प्रतापकी मृत्युके बाद उनके चचा महताबसिंह सिंहासन पर बैठे। महताबकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई। पीछे वृटिश सरकारने भाठखेर ठाकुरके वंशधर अर्जुनसिंहको १८९६ ई०में नृसिंहगढ़के सिंहासन पर अभिषिक्त किया। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। इनका पूरा नाम यह है—एच, एच राजा सर अर्जुनसिंह साहब बहादुर, के० सी० आइ० ई०। इन्हें ग्यारह सलामी तोपें मिलती हैं।

राज्यकी जनसंख्या लाखसे ऊपर है। सैकड़े पीछे ८० हिन्दूकी संख्या है, शेषमें अन्यान्य जातियां। राज्यकी आय पांच लाख रुपयेकी है। राजाके पास ४० अश्वारोही, पदातिक और २४ गोलन्दाज सेना है।

२ उक्त राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २३° ४३´ उ० और देशा० ७७° ६´ पू०, सेहोरसे ४४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ८७७८ है। नृसिंहगढ़के प्रथम सरदार परशुरामने इस नगरको बसाया। यहां

स्कन्ध, भगताल, कारावार तथा हावभाव और टेकिनाथ शामिल है।

२ मध्यप्रदेशके दमोह जिलेका एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २३° १८´ उ० और देशा० ७८° २६´ पू० दमोह नगरसे १२ मील उत्तर-पश्चिम तथा जबलपुरसे ६५ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। पहले यह नगर गढ़ाके राज मण्डलके अधीन था। मुसलमानोंके समयमें यहां एक दुर्ग और मसजिद बनाई गई। मुसलमान लोग इस स्थानको नसरतगढ़ कहा करते थे, परन्तु महाराष्ट्र-अभ्युदयमें उस नामसे बदलके नरसिंहगढ़ नाम रखा गया। यहां महाराष्ट्रोंका बनाया हुआ एक दुर्ग है। १८५७ ई०के गदरमें अंगरेजी सेनाने दुर्गका बहुत कुछ अंश तहस नहस कर डाला था।

नृसिंह चक्रवर्ती—देवीमाहात्म्यटीकाके रचयिता।

नृसिंहचतुर्दशी (स्त्री०) नृसिंह उद्दिष्टा नृसिंह प्रकटी-भविता वा चतुर्दशी। वैशाखमासकी शुक्लाचतुर्दशी। इस तिथिमें नृसिंहदेवके उद्देशसे व्रतानुष्ठान किया जाता है।

"वैशाखस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां श्रीनृकेसरी।
जातस्तदस्यां तदुत्सव कुर्वीत व्रतम्॥"

(स्मृति ८)

वैशाखमासकी शुक्लाचतुर्दशी तिथिमें नृसिंहदेव अवतीर्ण हुए थे, अतएव इस दिन उनके उद्देशसे पूजा, व्रत और महोत्सव करना चाहिए। यह व्रत प्रत्येक व्यक्ति का अवश्यकर्त्तव्य है।

व्रतविधि—"वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्यं मम सन्तुष्टिकारकम्।
महागुह्यमिदं श्रेष्ठं मानवैर्भवभीरुभिः॥
किंच—विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लङ्घयेत् स तु पापभाक्।
एवं ज्ञात्वा प्रकर्त्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम्॥
अन्यथा नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥"

(वृहद् नारसिंहपुराण)

प्रति वर्ष भगवान् नृसिंहदेवकी सन्तुष्टिके लिये यह अतिगुह्य और श्रेष्ठ व्रत मनुष्योंका अनुष्ठेय है। इस व्रत का अनुष्ठान करनेसे भवभय जाता रहता है। जो इस दिन व्रतानुष्ठान नहीं करते, वे पापभागी होते हैं। अतः मद्दिनमें अर्थात् नृसिंह-चतुर्दशीमें यह उत्तम व्रत अवश्य कर्त्तव्य है। इसका अन्यथाचरण करनेसे जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे तब तक नरकमें वास होगा।

इस नृसिंह व्रतका करना सबीका अधिकार है, इसमें ब्राह्मणादि वर्णविभाग नहीं है। विशेषतः नृसिंहभक्तको एकाग्र हो कर इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिए।

प्रह्लादके भगवान् नृसिंहदेवसे इस व्रतका माहात्म्य पूछने पर उन्होंने कहा था,—पुराकालमें अवन्तीपुरमें वसुदेव नामक एक ब्राह्मण थे। वे अत्यन्त वेदपारग और नाना प्रकारके सद्गुणसम्पन्न थे। उनकी पत्नीका नाम था सुशीला। सुशीला यथार्थमें सुशीला थी। उनके गर्भसे पांच पुत्र उत्पन्न हुए जिनमेंसे छोटेका नाम सुविनीत था। वह बहुत विलासी था और हमेशा विलासिनीके घरमें रहा करता था। यहां तक कि उसने वेश्यागमन के साथ सुरापान तक भी आरम्भ कर दिया। एक दिन वेश्याके साथ इसका विवाद हुआ। नृसिंहचतुर्दशीका दिन था। विवाद करके उस दिन दोनों उपवासी रहे। उपवास और रात्रिजागरण तो विवादहेतुसे हुआ, लेकिन साथ साथ इस महाव्रतका अनुष्ठान भी किया गया।

इस व्रतके प्रभावसे उस वेश्या और वसुदेवतनयमें तुम्हारे समान भक्ति हो गई। वह वेश्या इस त्रिलोकमें स्वेच्छाचारिणी हो कर अन्तमें लय की अप्सरा हुई और नाना प्रकारके सुख भोग करने लगी। ब्राह्मणकुमारके भी सन्मति हुई। इस व्रतका माहात्म्य अधिक क्या कहा जाय, ब्रह्माने सृष्टि करनेके लिये इस व्रतका अनुष्ठान किया था। इसी व्रतके प्रभावसे वे सृष्टि करनेमें समर्थ हुए हैं। देवगण इसी व्रतके प्रभावसे देवता हो कर स्वर्गमें सुखसे अवस्थान और समस्त विश्राम करते हैं। जो मनुष्य यह व्रतानुष्ठान करते कल्पकोटि-शत वर्षमें भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। इस व्रतके प्रभावसे अपुत्र पुत्रलाभ करता है, दरिद्र लक्ष्मी पाता है और राज्यकामी राज्य प्राप्त करता है। हमारे भक्त गण यह व्रत करके जो कुछ मांगना करते, वही पाते हैं। जो मनुष्य यह व्रतमाहात्म्य भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं उनके ब्रह्महत्यादि समस्त पाप दूर हो जाते हैं और उनकी सभी अभिलाषायें पूर्ण होती हैं।

(हरदमाराधि १५०)

व्रतदिननिर्णय यथा—

"वैशाखे शुक्लपक्षे च चतुर्दश्यां महानिशौ।
जातं प्रह्लादधिक्कारमसहिष्णुः परोहरिः॥
स्वातीनक्षत्रयोगे तु शनिवारे हि मद्व्रतम्।
सिद्धयोगस्य योगे च लभ्यते दैवयोगतः॥
सर्वैरेतस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम्।
केवलं च प्रकर्त्तव्यं मद्दिनं फलकांक्षिभिः।
वैष्णवेन तु कर्त्तव्या स्मरविद्धा चतुर्दशी॥"

(बृहन्नारसिंहपु०)

वैशाख मासको शुक्लचतुर्दशी महातिथिको भगवान् परब्रह्म प्रह्लादके प्रति विकार सह्य न करते हुए सन्ध्या समय नृसिंहरूपमें अवतीर्ण हुए। इस दिन उनके उद्देश्यसे यह व्रत अवश्य विधेय है। यदि इस दिन स्वातिनक्षत्र, शनिवार और दैवक्रमसे सिद्धियोग हो, तो व्रतानुष्ठान करनेसे कोटिहत्याका पाप दूर जाता है। यदि यह चतुर्दशी स्मरविद्धा हो, तो वैष्णवोंको इस दिन व्रतानुष्ठान नहीं करना चाहिये। इस व्रतके करनेमें बहुत सवेरे विछावनसे उठ भगवान् विष्णुका स्मरण करके संयम करना होता है और नियमकालमें निम्न लिखित मन्त्रका पाठ करना होता है।

"श्रीनृसिंह! महोग्रस्त्वं दयां कुरु ममोपरि।
अद्याहं ते विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय॥" इत्यादि।

इस दिन मिथ्यालाप, पापिसङ्ग आदि दुष्कार्य न करे, सर्वदा नृसिंहमूर्त्तिके ध्यानमें मस्त रहे। पीछे मध्याह्नकालको नदी वा किसी पूतजलमें स्नान करके, पट्टवस्त्र परिधानपूर्वक घर लौटे और वहां पवित्र स्थान पर एक अष्टदलपद्म बनावे। उस जगह एक कलसी भी स्थापन करे और उसके ऊपरमें हेममय नृसिंह और लक्ष्मीप्रतिमाको स्थापना करके पूजा करे। इस पूजामें पहले प्रह्लादको पूजा, पीछे मूलपूजा विधेय है। इसमें चन्दन, पुष्प, दीप और नैवेद्यकी जरूरत पड़ती है तथा पूजाका पृथक् पृथक् मन्त्र भी है। हरिभक्तिविलासके १४वें विलासमें ये सब मन्त्र तथा अन्यान्य विवरण लिखे हैं। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं दिये गये।

नृसिंहकी पूजा कर इस मन्त्रसे प्रार्थना करनी चाहिये।

"मद्वंशे ये नरा जाता ये जानिष्यन्ति मत्पुरः।
तांस्त्वमुद्धर देवेश दुःसहात् भवसागरात्॥
पातकार्णव मग्नस्य व्याधिदुःखाम्बुराशिभिः।
तीव्रैस्तु परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे।
करावलम्बनं देहि शेषशायिन् जगत्पते।
श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भयनाशन॥" इत्यादि।

(हरिभ० १४)

नृसिंहठक्कुर—एक संस्कृतज्ञ पण्डित, भगवद्गीतार्थसङ्गतिनिबन्ध, काव्यप्रकाशटीका और प्रमाणपल्लव नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। इन्होंने काव्यप्रकाशटीका रचा है। एक जगह इन्होंने धावक कविकृत रत्नावलीनाटिकाके श्रीहर्षराजके यहां विक्रय और उससे अर्थप्राप्तिविवरणका उल्लेख किया है। यह प्रसङ्ग रहनेके कारण कोई कोई इन्हें वैद्यनाथ, नागेश और जयरामप्रभृति टीकाकारोंके समसामयिक बतलाते हैं। किन्तु इनके ग्रन्थमें नागेशका मत उद्धृत रहनेके कारण ये उनके परवर्त्ती माने जाते हैं।

नृसिंहतापनीय (सं० पु०) उपनिषद्विशेष। शङ्कराचार्यने इस उपनिषद्‌का भाष्य प्रणयन किया है।

नृसिंहदेव—१ कौशिक कुलोद्भव वेदान्तचार्यके भागिनेय। ये वत्स गोत्रके थे। इन्होंने भेदधिक्कारन्यक्कार नामक संस्कृत ग्रन्थ लिखा है।

२ कर्णाटदेशके एक राजा। ये ज्योतिरीश्वर पण्डितके प्रतिपालक थे।

३ मिथिलादेशके एक राजा। इनकी सभामें कवि विद्यापति विद्यमान थे।

४ एक ज्योतिर्विद्, विष्णुदैवज्ञके पुत्र। इन्होंने सूर्य सिद्धान्तभाष्यकी रचना की।

५ उड़ीसाके एक राजा।

गाङ्गेयवंश और उत्कल देखो।

नृसिंहदेव—श्रीनिवासाचार्यके शिष्य, मानभूमके एक राजा। पदकी रचना करके ये भी चिरजीवी हो रहे हैं।

नृसिंहदेव नृपति—एक विख्यात पदकर्त्ता। प्रेमविलासमें लिखा है, कि जिस समय ठाकुर महाशयके प्रभावसे ब्राह्मणादि भी उनसे दीक्षित होने लगे, कुलका भेद

माना जाता रहा, उस समय कतिपय ब्राह्मण इन्हीं नर- सिंहरायको मारनेमें लगे थे। नरसिंहरायको सभामें अनेक देशविख्यात पण्डित थे। कृष्णनारायण नामक दिग्विजयी पण्डित इन्हींके आश्रयमें रहे।

कृष्णनारायण देखो।

ब्राह्मणोंके प्रार्थनापर राजा उन सब पण्डितोंके साथ श्री नरोत्तम ठाकुरके साथ शास्त्रार्थ करने गए। अन्तमें शास्त्रार्थमें पराजित हो कर उन्होंने इनलोगोंके साथ ठाकुर महाशयका शिष्यत्व ग्रहण किया। इसी समयसे राजा बहुत भक्त हो गए और पदकी रचना भी करने लगे।

नृसिंहदैवज्ञ—एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्‌। इन्होंने सूर्य- सिद्धान्तभाष्य और तिथिचिन्तामणिटीकाकी रचना की है। गोलग्राम नगरमें महाराष्ट्रोंमें इनका जन्म हुआ था। इनका वंशपरिचय इस प्रकार मिलता है— रामपुत्र दिवाकर दैवज्ञके ५ पुत्र थे जिनमेंसे कृष्ण दैवज्ञ बड़े थे। कृष्णदैवज्ञने बीजसूत्रादि ग्रन्थ लिखा। उन्होंके पुत्र नृसिंहदैवज्ञ थे।

नृसिंहनगर—मन्द्राज प्रदेशके तिन्नेवेली जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० ८ ४२ उ० और देशा० ७७ ४२ पू० तिन्नेवेली नगरसे ६ कोस पश्चिममें अवस्थित है।

नृसिंहपञ्चानन—एक ग्रन्थकार। इन्होंने न्यायसिद्धान्त मञ्जरी नामक न्यायग्रन्थको एक टीकाका प्रणयन किया।

नृसिंहपञ्चानन भट्टाचार्य—एक नैयायिक। इन्होंने भेद प्रकाश नामक तत्त्वचिन्तामणिदीधितिकी एक टीका लिखी है।

नृसिंहपुराण (स० क्लो०) पुराण शब्द देखो।

नृसिंहपुर—नरसिंहपुर देखो।

नृसिंहपुरोपरिज्ञान्‌—एक ग्रन्थकार। इन्होंने रत्नकोष नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

नृसिंहभट्ट—इस नामके कई एक प्रख्यात ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं—

१ दशरूपके एक टीकाकार।

२ विष्णुधर्ममीमांसाके रचयिता।

३ विष्णुपुराणके एक टीकाकार।

४ एक ईमान पण्डित। इनकी उपाधि मीमांसक थी। "स्मृतिनिबन्ध" नामक ग्रन्थ इन्होंका बनाया हुआ है।

५ हरिहरानुहरण्याख्य नाटकके प्रणेता।

६ सप्तार्णवरत्नाकरके प्रणेता, शिवभट्टके पुत्र।

नृसिंहभारती—एक ईमानतत्त्वज्ञ पण्डित। ये देवी- मणिमाप्रदीप आदि कई ग्रन्थ बना गए हैं।

नृसिंहभूपति—एक चोलराज। ये पूर्व चालुक्य चोल चोलराज विजयादित्यके पौत्र और उपेन्द्रके पुत्र थे।

चालुक्यराजवंश देखो।

नृसिंहमुनि—१ एक वैदान्तिक। इन्होंने वेदान्तराम बोधकी रचना की। २ रामप्रकाश ग्रन्थ-प्रणेता।

नृसिंहयज्वन्‌—अहिपुरवासी एक पण्डित। इन्होंने प्रयोगरत्न और चोलकारिका नामक दो ग्रन्थोंकी रचना की।

नृसिंहयतीन्द्र—एक ख्यातनामा पण्डित। ये वैदान्त- परिभाषाकार धर्मराज अध्वरीन्द्रके गुरु थे।

नृसिंहराय—विजयनगरके नरसिंह राजा। ये वीर नर- सिंह या नृसिंहेन्द्रके पिता थे। इन्होंने तिप्पाजीदेवी और नागलादेवीसे विवाह किया था। विजयनगर देखो।

नृसिंहवन (सं० पु०) कूर्मविभागमें वर्णित पश्चिम-उत्तर दिक्‌-स्थितएक देश।

नृसिंहवर्मा—पल्लव वंशीय एक राजा। इन्होंने प्रायः ६६० ई०में काञ्चीपुरमें कैलासनाथ या राजसिंहेश्वर देवमन्दिरका निर्माण किया।

नृसिंहब्रह्ममिश्रठाकुर—काशीश्वर मिश्र महाशयके दीवान थे। उनके सन्तान होती थी पर मर मर जाती थी। एक दिन एक सन्तानकी मृत्यु होने पर उनकी स्त्री नदी किनारे बैठ कर रो रही थी। इसी समय ठाकुरमहाशय (गणदास)के साथ उनकी भेंट हुई। गणदास देखो। उन्होंने मिश्रपत्नीकी दुःखगाथा सुन कर दयार्द्रचित्तसे उन्हें आश्वासन दिया और कहा, "इस बार जो तुम्हारे पुत्र होगा, वह बचेगा और प्रभुका भक्त होगा।" यह सुन कर मिश्र ठाकुरानी विनीतभावसे बोलीं, 'यदि आपके वचन सत्य निकलें तो मैं उस पुत्रको ठाकुरके चरणमें अर्पण कर दूंगी।'

उनके वही पुत्र नृसिंह ब्रह्म थे। जब नृसिंह इनको उमर

१६ वर्ष की हुई, तब ठाकुरमङ्गलने उन्हें मन्त्रदान किया। समय पा कर उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम हरेकृष्ण ठाकुर रखा गया।

पुत्र होनेके बाद एक दिन 'प्रभु' (शायद नित्यानन्द प्रभु)-ने उन्हें दर्शन दिये और विषयत्याग करनेको कहा। आदेश पाते ही नृसिंह घर द्वार छोड़ कर वीरभूम जिलेके मैनाडल जङ्गलमें स्त्री समेत चले गये और वहीं कृष्णभजन करने लगे। इस समय बहुतसे मनुष्य उनके शिष्य हुए। इसी समय उन्होंने कांदड़ासे निम्बवृक्ष ला कर गौराङ्गको विश्वम्भर नामक मूर्त्तिकी स्थापना की। उस मूर्त्तिके निर्माणकर्त्ता भास्करका नाम था कनाराम। वह मूर्त्ति आज भी विराजमान है।

नृसिंह वाजपेयी—१ एक पण्डित। इनके बनाए हुए आचार और व्यवहार तथा श्रुतिमीमांसा नामक दो ग्रन्थ मिलते हैं। २ विधानमालाके रचयिता।

नृसिंहशास्त्री—एक विख्यात नैयायिक। इन्होंने अन्यकारवाद नामक एक ग्रन्थकी रचना की।

नृसिंहसरस्वती—१ एक ख्यातनामा वैदान्तिक। कृष्णानन्दके शिष्य। इन्होंने १५७८ ई०में वाराणसीवासी अपने प्रतिपालक गोवर्द्धनके अनुरोधसे सुबोधिनी नामक एक वेदान्तसारटीकाकी रचना की।

२ शङ्करसम्प्रदायके १५वें गुरु।

नृसिंहसूरि—एक पण्डित। ये दाक्षिणात्यके वेङ्कटगिरिनिवासी शिङ्गनके पुत्र थे। वेङ्कटाद्रिनाथीय पहतन्त्र इन्हींका बनाया हुआ है।

नृसिंहानन्द—एक विख्यात पण्डित, भास्कररायके गुरु। इन्होंने ललितासहस्रनामपरिभाषा और वारिवस्यारहस्य नामक दो संस्कृत ग्रन्थ लिखे हैं।

नृसिंहारण्यमुनि—एक पण्डित। इन्होंने विष्णुभक्तिचन्द्रोदयकी रचना की।

नृसिंहाश्रम—१ एक विख्यात पण्डित और महीधरके गुरु। २ गीर्वाणेन्द्र सरस्वती और जगन्नाथाश्रमके शिष्य तथा नारायणाश्रमके गुरु। इनके बनाए हुए अद्वैतदीपिका, अद्वैतरत्न, अद्वैतबोधदीपिका, अद्वैतरत्नकोष, अद्वैतवाद, तत्त्वबोधिनी संक्षेपशारीरकटीका तत्त्वविवेक, पञ्चपादिका, विवरणप्रकाशिका, भेदधिक्कार, वाचारम्भण और वेदान्तविवेक आदि ग्रन्थ मिलते हैं।

नृसिंहेन्द्र—विजयनगर राजवंशके एक राजा। ये नरस अवनिपाल वा नृसिंहरायके पुत्र थे। इनकी माताका नाम तिप्पाजी देवी था। विजयनगर देखो।

नृसेन (सं० क्ली०) नृणां सेना, ततो विकल्पपक्षे क्लीवत्वं (विभाषा सेनेति। पा २।४।२५) मनुष्योंकी सेना। विकल्पपक्षमें क्लीवलिङ्ग नहीं होनेसे 'नृसेना' ऐसा पद और स्त्रीलिङ्ग होगा।

नृसोम (सं० पु०) ना सोमचन्द्र इव, इत्युपमितकर्मधारयः। नरश्रेष्ठ, वह जो मनुष्योंमें चन्द्रमाके सदृश हो।

नृहन् (सं० पु०) नृ-न् हन्ति, हन-क्विप्। मनुहन्ता, नरघातक।

नृहरि (सं० पु०) ना चासौ हरिश्चेति। नृसिंहावतार, नृसिंहरूपी विष्णु।

नृहरि—दाक्षिणात्यके एक राजा। ये योगेश्वरीके भक्त थे। भानु नामक ऋषिके कुलमें इनका जन्म हुआ था। (सह्याद्रि ३३।१२८)

ने—सकर्मक भूतकालिक क्रियाके कर्त्ताका चिह्न जो उसके आगे लगाया जाता है, सकर्मक भूतकालिक क्रियाके कर्त्ताकी विभक्ति। जैसे, रामने रावणको मारा। हिन्दीकी भूतकालिक क्रियाएं संस्कृतके कृदन्तसे बनी हैं, इससे कर्मवाच्यरूपमें वाक्योंका प्रयोग आरम्भ हुआ। क्रमशः उन वाक्योंका ग्रहण कर्तृवाच्यमें भी होने लगा।

नेउरालियापत्तन—सिंहलद्वीपकी काण्डी राजधानीसे ३२ मील दक्षिणमें अवस्थित एक उच्च पर्वतकी अधित्यका भूमि। यह समुद्रपृष्ठसे ५२०० फुट ऊंची है। पर्वतशृङ्गके उन्नत रहनेके कारण इस विस्तीर्ण अधित्यकाका अंश सीमान्तदेशमें कहीं कहीं बहुत ऊंचा मालूम पड़ता है। यहांका जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है। यहां लोगोंका वास बहुत कम है। वासोपयोगी गह्वरादिमें तथा प्रशस्तभूमिमें असंख्य हाथी बे-रोक टोक भ्रमण करते हैं।

नेउर—छोटानागपुरके अन्तर्गत चाङ्गभकार राज्यके मध्य प्रवाहित एक नदी। यह कोरिया राज्यके पर्वतसे निकल कर उत्तर-पूर्वको बह गई है।

नेउला (हिं॰ पु॰) नेवला देखो।

नेउली (स॰ स्त्री॰) हठयोगभेद। हठप्रदीपिकामें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

धौतीयोगके सिवा जो वस्तिकर्म आदि षट् नेउलीयोग किया जाता है। इसमें पहले मूल बन्धादिको सिद्ध कर चाहिये, पीछे अपना उदर चालन करते हैं। हठयोग में इसका विषय विस्तारपूर्वक लिखा है।

नेउलपोखी—उड़ीसा विभागके अन्तर्गत कटक जिलेका एक परगना। भूमिपरिमाण १८४ वर्गमील है। यहां मोहन और मयापाड़ा नामक दो विशिष्ट ग्राम हैं।

नेक (फा॰ वि॰) १ उत्तम अच्छा, भला। २ शिष्ट, सज्जन। (हिं॰ वि॰) ३ थोड़ा, जरा, तनिक।

नेकचलन (हिं॰ वि॰) अच्छे चालचलनका, सदाचारी।

नेकचलनी (हिं॰ स्त्री॰) सदाचार, भलमनसाहत।

नेकनाम (फा॰ वि॰) जिसका अच्छा नाम हो जो अच्छा प्रसिद्ध हो यशस्वी।

नेकनामी (फा॰ स्त्री॰) सुख्याति, कीर्त्ति, नामवरी।

नेकनीयत (फा॰ वि॰) १ शुभसङ्कल्पवाला, जिसका आशय या उद्देश अच्छा हो। २ सदाशय, उत्तम विचारका, भलाईका विचार रखनेवाला।

नेकनीयती (फा॰ स्त्री॰) १ नेकनीयत होनेका भाव, अच्छा सङ्कल्प, भला विचार। २ ईमानदारी।

नेकबख्त (फा॰ वि॰) १ भाग्यवान्, खुशकिस्मत। २ अच्छे स्वभावका, सुशील।

नेकमर्द—मन्द्राजके त्रिचनापल्ली जिलेके अन्तर्गत भवानी पुर (भवानीपुर) ग्रामके सन्निकट एक स्थान। यह अक्षा॰ ११ ३८' उ॰ और देशा॰ ७८ १८' ३०" पू॰ कावेरी नदीसे १ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहां पर नेकमर्द नामक किसी मुसलमान फकीरकी कब्र है जिसके कारण यह स्थान मुसलमान समाजमें बहुत पवित्र गिना जाता है। उसी फकीरके नामानुसार इस स्थान का नामकरण हुआ है। उन्हींके कहे गये यहां प्रतिवर्ष मेला लगता है जिसमें लाख डेढ़ लाख आदमी जुटते हैं। जिस तरह श्रीरामपुरके हरिहरक्षेत्रके मेलेमें हाथी, घोड़े और गायोंकी हाट लगती है यहां भी उसी प्रकार मवेशी आदि बिकनेको आते हैं।

नेकविहार—हिन्दुकुश पर्वतके अन्तर्गत एक सुरक्षित गिरिसङ्कट। यह स्थान प्रायः सभी समय तुषारसे ढका रहता है। अन्ध्याकालके ले कर पूर्व दिनके दो पहर तक तुषारराशि प्रबलस्रोतसे ढालवां पथ हो कर निम्न प्रदेशमें गिरती है।

नेकी (हिं॰ स्त्री॰) मनुष्यकी उसकी अपेक्षा जिससे अधिक किसी औरको बढ़ता है, श्रेष्ठ।

नेकी (फा॰ स्त्री॰) १ उत्तम व्यवहार, भलाई। २ सज्जनता भलमनसाहत। ३ उपकार, हित।

नेकोमियर-सुलतान—सम्राट् औरङ्गजेबके पोते और मुराद अकबरके पुत्र।

नेग (हिं॰ पु॰) १ विवाह आदि शुभ अवसरों पर सम्बन्धियों, आश्रितों तथा काम या कार्यमें योग देनेवाले और लोगोंको कुछ दिए जानेका नियम, देने पानेका हक या दस्तूर। २ वह वस्तु या धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर सम्बन्धियों, नौकरों चाकरों तथा नाई बारी आदि काम करनेवालोंको उनकी प्रसन्नताके लिये नियमानुसार दिया जाता है, जैसा कि पुरस्कार, इनाम, बखशिश।

नेगचार (हिं॰ पु॰) नेगजोग देखो।

नेगजोग (हिं॰ पु॰) १ विवाह आदि मङ्गल अवसरों पर सम्बन्धियों तथा काम करनेवालोंको उनकी प्रसन्नताके लिये कुछ दिए जानेका दस्तूर, देने पानेकी रीति, इनाम बांटनेकी रस्म। २ वह धन जो मङ्गल अवसरों पर सम्बन्धियों और नौकरों चाकरों आदिको बांटा जाता है इनाम।

नेगी (हिं॰ पु॰) नेगपानेवाला, नेग पानेका हकदार।

नेगीजोगी (हिं॰ पु॰) नेग पानेवाले विवाह आदि मङ्गल अवसरों पर इनाम पानेके अधिकारी।

नेचरिया (हिं॰ पु॰) प्रकृति अतिरिक्त ईश्वर आदिको न माननेवाला, नास्तिक।

नेजक (स॰ पु॰) निज शब्दसे ण्वुल्। निर्णेजक, धोबी।

नेजन (स॰ क्ली॰) निज्यतेऽत्र निज आधारे ल्युट्। १ निर्णेजनालय, धोबीका घर। २ शोधन।

नेजा (फा॰ पु॰) १ भाला, बरछा। २ निशान, साँग

नेजाबरदार (फा॰ पु॰) भाला या राजाओंका निशान उठानेवाला।

नेजाराममिंह—रेवाप्रदेशमें बाघेलखण्डके अन्तर्गत बांदाका एक बघेला-सरदार। इनकी उपाधि राजाकी थी और ये अकबरशाहके समसामयिक थे। फतेपुरके हरिनाथ कविका एक दोहा सुन कर आपने उन्हें लाख रुपयेका दान किया था।

नेटा (हिं० पु०) नाकसे निकलनेवाला कफ या बलगम।

नेडुङ्गुम्—उत्तर अर्काट जिलेके वन्दिवास तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यहांके दो प्राचीन मन्दिरोंमें बहुत सी शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं।

नेड़् माड़ण—दाक्षिणात्यके पाण्ड्यवंशीय एक राजा। इन्होंने नलवेली युद्धमें* विजय पाई थी। चोलराजकी एक कन्यासे इनका विवाह हुआ था। आप जैन धर्मावलम्बी होने पर भी आपकी स्त्री शैव थीं। एक समय जब राजा बीमार पड़े, तब उनकी स्त्रीने जैन पुरोहितको बुला कर उन्हें आरोग्य करने कहा था। लेकिन जब वे कृतकार्य न हुए, तब रानीने शैवाचार्य तिरुज्ञान-सम्बन्दरको बुला कर अलौकिक मन्त्रकी सहायतासे राजाको चंगा किया। शैवचार्यको आश्चर्य क्षमता देख राजा उन्होंसे शैवमन्त्रमें दीक्षित हुए।

नेडमङ्गलम्—दाक्षिणात्यके कर्णाट राज्यके तञ्जावुर जिलेका एक नगर। यह तञ्जावुर राजधानीसे प्रायः २२ मील पश्चिम-दक्षिणमें अवस्थित है। यहां हिन्दू पथिकोंके लिए अनेक पान्थनिवास और प्राचीन देवदेवीके मन्दिरादि देखे जाते हैं।

नेड्डियावत्तम्—मन्द्राज प्रदेशको नीलगिरि-पर्वतश्रेणीके गुड़ालुरघाटके ऊपर अवस्थित एक ग्राम। इसके ऊंचे शिखर पर खड़े होनेसे मलवार उपकूल और वैनाद जिला दृष्टिगोचर होता है।

नेडुमनगद—मन्द्राज प्रदेशके त्रिवाङ्कुड़ राज्यका एक तालुक या उपविभाग। भूपरिमाण ३४० वर्गमील है। इसमें कुल ६८ ग्राम लगते हैं।

* यह स्थान सम्भवतः तिरुणेलवेली माना जाता है। कारण पाण्ड्य-राजा जब सिंहलसे शत्रुद्वारा आक्रान्त हुए, तब अपने ही राज्यके मध्य दोनोंमें मुठभेड़ हुई थी और पीछे राजाने पराजित शत्रुओंको राज्यसे मार भगाया था। (Ind. Ant. XXII, p. 63.)

नेत् (सं० अव्य०) नी-विच्, बाहुलकात् तुक् या नेद-विच् बाहु० चादि०। १ शङ्का। २ प्रतिषेध। ३ समुच्चय।

नेत (हिं० पु०) १ ठहराव, निर्धारण, किसी बातका स्थिर होना। २ निश्चय, ठहराव, ठान। ३ व्यवस्था, प्रबन्ध, आयोजन। ४ मथानीकी रस्सी। ५ एक गहना।

नेतली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पतली डोरी।

नेता (हिं० पु०) १ नायक, सरदार, अगुआ। २ प्रभु, स्वामी। ३ नीमका पेड़। ४ विष्णु। ५ निर्वाहक, प्रवर्त्तक। ६ मथानीकी रस्सी।

नेताजी पालकर—एक महाराष्ट्र-सरदार। ये १६६२ ई०में शिवाजीके कहनेसे अश्वारोही महाराष्ट्रीय सैन्य ले कर दाक्षिणात्यके मुगलराज्यको लूटने अग्रसर हुए थे। इस समय वे अत्यन्त निष्ठुरताके साथ प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक नगरको ध्वंस करने तथा लूटने लगे। इस प्रकार धीरे धीरे एक स्थानसे दूसरे स्थानमें लूट-मार मचाते हुए ये औरङ्गाबादके पार्श्वस्थित ग्राममें जा धमके। इस समय अमीर-उल-उमरा शाइस्ता खांने राजकुमार मुआजिमके पद पर दाक्षिणात्यका प्रतिनिधित्व ग्रहण किया था। इस उपद्रवको दमन करनेके लिये वे दलबलके साथ औरङ्गाबादसे अहमदनगर और पेडगावसे पूनाको गए। १६६३ ई०में जब शाइस्ता खां पूनामें ठहरे हुए थे, उस समय नेताजीने अहमदनगरके निकटवर्त्ती ग्रामोंको दग्ध कर धनादि लूटना आरम्भ कर दिया। शाइस्ता खांकी एक दल सेना उन पर टूट पड़ी, दोनों पक्षमें घनघोर युद्ध हुआ। पीछे जब नेताजीने देखा कि जयकी कोई सम्भावना नहीं है, तब वे भागनेका उपाय सोचने लगे। बीजापुरके सेनाध्यक्ष रुस्तम-जमानने उन्हें अभय दान दे कर छोड़ दिया। युद्धमें वे विशेषरूपसे आहत हुए थे। १६६४ ई०के मध्यभागसे ले कर १६६५ ई० तक उन्होंने पुनः इन सब प्रदेशोंको लूटना आरम्भ कर दिया। अन्तमें १६६५ ई०के अगस्तमासमें महाराष्ट्र केशरी शिवाजीने आ कर उनका साथ दिया। दोनोंने अहमदनगर और औरङ्गाबादके निकटस्थ स्थानोंको लूट कर प्रचुर रत्न संग्रह किया था।

नेतादेवी—भैरवीविशेष। नेपालके नेवारजातिके लोग इन्हें शक्तिका अंश मान कर पूजा करते हैं। नेपाल-राजधानी काठमण्डुमें जो भैरव-मूर्त्ति है, ये उन्हीं की

महिमा है। शिवरात्रि-उत्सवमें कुछ पक्षमें काठमण्डू शहरमें इनके सम्मानके लिये नेपालवासी प्रति वर्ष मेला लगा करते हैं। इस महोत्सवमें प्रायः नेपालराज और उनके प्रधान सरदार तथा बौद्ध और हिन्दू-सन्तानगण भी योगदान देते हैं। यह स्थान नेतादेवीकी यात्रा नामसे प्रसिद्ध है।

नेति (स० पु०) १ हठयोगभेद। २ एक न इति वाक्य (न इति) जिसका अर्थ है "इति नहीं" अर्थात् "अन्त नहीं है" ब्रह्म या ईश्वरके सम्बन्धमें यह वाक्य उपनिषदों में अनन्तता सूचित करनेके लिये आता है।

नेतो (हिं० स्त्री०) वह रस्सी जो मथानीमें लपेटी जाती है और जिसे खींचनेसे मथानी फिरती है और दूध या दही मथा जाता है।

नेतीधोती (हिं० स्त्री०) हठयोगकी एक क्रिया जिसमें कपड़ेकी धज्जी पेटमें डाल कर आँतें साफ करते हैं।

धौति देखो।

नेतीयोग (स० पु०) हठयोगभेद। इस योगका विषय वड़योगकके उत्तराखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

नेतियोगका अभ्यास करनेसे मस्तकमें जितना कफ है वह दूर हो जाता है। इस योगमें पहले एक पतली सूतीको नाकमें डाल कर मुंह हो कर निकालते हैं। इस प्रकार अभ्यास करते करते कुछ मोटे सूतसे काम [illegible] चलते हैं। इस नेतियोगसे नासारन्ध्र साफ होता है।

नेत्र (स० पु०) नयतीति नी-ष्ट्रन्। १ चक्षु। २ निर्वाहक। ३ नायक। ४ प्रवर्त्तक। ५ प्रापक। ६ जिन्नवृक्ष नीम-का पेड़। ७ दिव्य।

नेत्रत्व (स० स्त्री०) नेतृभाव नेताका नायकता, अग्र-गता।

नेत्रमत् (स० त्रि०) नेतृदुत नायकरूपसे निपुण।

नेत्रोवन—दाक्षिणात्यके बेलारी जिलान्तर्गत पहाड़ो तालुकका एक ग्राम। यहाँ पर्वतके ऊपर आञ्जनेयका एक मन्दिर है। उस मन्दिरके पीठस्थानके निकट एक पत्थरके ऊपर तेलगू भाषामें उत्कीर्ण एक शिलालिपि है। इस ग्राम और अवस्थ ग्रामकी सीमाके मध्यभागमें एक दूसरा शिलाफलक देखनेमें आता है।

नेत्र (स० स्त्री०) नीयते प्राप्यते अनेनेति नी करणे ष्ट्रन् (दाम्नी शसि। पा ३।२।१८२) १ चक्षु, नयन आँख। २ मन्थनदाम मथानीकी रस्सी। ३ वस्त्रभेद, एक प्रकारका वस्त्र। ४ वृक्षमूल, पेड़की जड़। ५ रथ। ६ जटा। ७ नाड़ी। ८ पार्थसिता। ९ वस्तिशलाका, वस्तोको सलाई, कटोरा। १० दोका संख्यासूचक शब्द। ११ चक्षुके नीचेका स्थित वक्रिद्वेषताका तेज वस्त्रभेद। (पु०) १२ वैदय राजाके एक पुत्रका नाम।

नेत्रकनीनिका (स० स्त्री०) नेत्रयो चक्षुषो कनीनिका। चक्षुका तारा।

नेत्रकोष (स० पु०) नेत्रयोः कोष। नेत्रपद्म, आँखके पर्दे।

नेत्रच्छद (स० पु०) नेत्रे छाद्यतेऽनेनेति छद णिच् घ, गतो ह्रस्वः। नेत्रपिधायक चर्मपुट, आँखके पर्दे।

नेत्रज (स० पु०) नेत्रात् जायते जन-ड। नेत्रजात आँसू।

नेत्रजल (स० स्त्री०) नेत्रयोर्जलम्। अश्रु आँसू।

नेत्रता (स० स्त्री०) नेत्रस्य भावः नेत्र-तल् टाप्। नेत्र का भाव और धर्म।

नेत्रपर्यन्त (स० पु०) नेत्रयो पर्यन्त अन्त कोणः सीमा। १ अपाङ्ग, आँखका कोना।

नेत्रपाक (स० पु०) नेत्ररोगभेद आँखका एक रोग। कफज, उपदेश अन्नुपात और दूसरे जैसा आकार, दाह, घर्षण, ताम्रवर्ण शोथ, गौरव, शोथ, मुहमुहुः उष्ण शीतल और पिच्छिल आस्रावण रक्त आदि लक्षण रहनेसे समोह नेत्रपाक और शोथ नहीं रहनेसे अशोध नेत्रपाक जानना चाहिए।

नेत्रपिण्ड (स० पु०) नेत्र पिण्ड इव यस्य। १ विड़ाल बिल्ली। स्त्रियां जातिलक्षणात् ङीष्। (स्त्री०) २ नेत्रगोलक, आँखका ढेला।

नेत्रपुष्करा (स० स्त्री०) नेत्रयोः पुष्कर यस्य यस्माः अक्षेपणादित्वर्थं। रुद्रजटा नामको लता।

नेत्रबन्ध (स० पु०) नेत्रे बध्यतेऽनेन बन्ध-करणे घञ्। नेत्रपुट आँखका पर्दा।

नेत्रसादनकर्मन् (स० क्ली०) चक्षुप्रसादनकार्य-विशेष, वह काम जिसके करनेसे चक्षु प्रसन्न हो और

दृष्टिशक्तिको सहायता मिले ; जैसे, कज्जल इत्यादि।

नेत्रवन्ध (सं० पु०) नेत्रयोर्बन्धः ६-तत्। चक्षु-द्वयको आवरणरूप बाल्यक्रीडाविशेष, आँख मिचौलीका खेल।

नेत्रबाला (हिं० पु०) सुगन्धबाला, कचमोद, वालक।

नेत्रभाव (सं० पु०) सङ्गीत या नृत्यमें एक भाव जिसमें केवल आँखोंको चेष्टासे सुख दुःख आदिका बोध कराया जाता है और कोई अङ्ग नहीं हिलता डोलता, यह भाव बहुत कठिन समझा जाता है।

नेत्रमण्डल (सं० पु०) आँखका घेरा।

नेत्रमल (सं० क्ली०) नेत्रयोर्मलम्। चक्षुका मल, आँख का कीचड़, गिद्द।

नेत्रमार्ग (सं० पु०) नेत्रगोलकसे मस्तिष्क तक गया हुआ सूत्र जिसमें अन्तःकरणमें दृष्टिज्ञान होता है।

नेत्रमीना (सं० स्त्री०) नेत्रयोः मीना मुद्रणं यस्याः, पृषोदरादित्वात् लस्य न। यवतिक्ता लता। इसके सेवनसे आँखें बन्द रहती हैं।

नेत्रमुष् (सं० त्रि०) नेत्रं तत्प्रचारं मुष्णाति मुष-क्विप्। दृष्टिका उपघातक, दृष्टिप्रचारनाशक।

नेत्रयोनि (सं० पु०) नेत्राणि योनिभिर्जातानि यस्य, नेत्राणि योनय इव यस्य इति वा। १ इन्द्र। गौतमके शापसे इनके शरीरमें सहस्र योनि-चिह्न हो गये थे जो पीछे नेत्रके आकारमें हो गये, इसी कारण इन्द्रका नाम नेत्रयोनि पड़ा। नेत्रं अत्रिलोचनं योनिरुत्पत्ति-कारणं यस्य। २ चन्द्रमा। ये अत्रिके आँखसे उत्पन्न हुए थे, इस कारण इन्हें भी नेत्रयोनि कहते हैं।

नेत्ररञ्जन (सं० क्ली०) नेत्रं रज्यते अनेन रञ्ज करणे ल्युट्। कज्जल, काजल। कालिकापुराणमें लिखा है, कि अञ्जनके मध्य सौवीर, जाम्बल, तुत्थ, मयूर, श्योकर और दर्विका ये ही छः प्रकारके प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे सौवीर स्रवद्रूप, यामुन, प्रस्तर, मयूर और श्योकर रत्न, मेचनील तैलस—इन्हें मिला पर अथवा तैजसपात्रमें घिस कर रस निकाल लें और उसे देवदेवीको लगावें। ताम्रादि-पात्रमें घृत और तैलादि लेप कर आगको गरमीसे जो काजल तैयार होता है उसे दर्विका कहते हैं। अगर किसी प्रकारका काजल न मिले तो देवीको दर्विका अञ्जन दे सकते हैं। विधवासे प्रस्तुत किया हुआ काजल देवीको नहीं लगाना चाहिए। (कालिकापु० ७८ अ०)

नेत्ररुज् (सं० स्त्री०) रुज-क्विप्, नेत्रयोः रुक्। नेत्र-पीड़ा, नेत्ररोग।

नेत्ररोग (सं० पु०) नेत्रयोः रोगः। चक्षुपीड़ा, आँखका दर्द। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—

अपने अङ्गुष्ठके उदरदेशके परिमाणसे दो अङ्गुलि नेत्रमण्डलकी लम्बाई है। इसका कुल परिमाण ढाई अङ्गुल है। इसका आकार गोस्तनके जैसा सुवृत्त और यह सब प्रकारके भूतोंके गुणसे उत्पन्न हुआ है। नेत्रमण्डलका मांस क्षितिसे, रक्त अग्निसे, कृष्ण-भाग वायुसे, श्वेतभाग जलसे और अश्रुमार्ग आकाशसे सम्भूत हुआ है। नेत्रका तृतीयांश कृष्णमण्डल है और दृष्टिस्थान कृष्णमण्डलका सप्तमांश है। दोनों नेत्रके मण्डल ५, सन्धि ६ और पटल ५ हैं। पाँचों मण्डलके नाम ये हैं,—पक्ष्ममण्डल, वर्त्मण्डल, श्वेतमण्डल, कृष्ण-मण्डल और दृष्टिमण्डल। ये सब यथाक्रमसे एक दूसरेके मध्यगत हैं। सन्धि छः प्रकारकी है, यथा—पक्ष्म और वर्त्ममध्यगत सन्धि, वर्त्म और शुक्लमध्यगत सन्धि, शुक्ल और कृष्णमध्यगत सन्धि, कृष्णमण्डल और दृष्टिमण्डलकी मध्यगत सन्धि तथा कनीनिका और अपाङ्गगत सन्धि। पहला पटल तेजजलाश्रित, दूसरा मांसाश्रित, तीसरा मेदाश्रित, चौथा अस्थि आश्रित और पाँचवां दृष्टिमण्डलाश्रित है। ऊर्ध्वगत शिरानुसारी दोषसमूह द्वारा नेत्रभागमें दारुण रोग होते हैं। आवि-लता, संरम्भ, अश्रुपतन, गुरुत्व, दाह, राग प्रभृति उपद्रव होनेसे अथवा नेत्तवर्त्मकोषमें शूक पूर्णकी तरह अर्थात् आँखमें काँटा निकल आया है, ऐसा बोध होनेसे किंवा इसके प्रकाशरूप वा पूर्वोक्तरूपसे क्रियाशक्तिका व्याघात होनेसे नेत्र दोषयुक्त है, ऐसा समझना चाहिए। ऐसी अवस्था होने पर अच्छी तरह चिकित्सा करना विधेय है।

नेत्ररोगका निदान- उष्णाभिताप, जलप्रवेश, दूरदर्शन, स्वप्नविपर्यय अर्थात् दिनमें सोना और रातमें जागना, स्थिरदृष्टि, रोदन, शोक, कोप, क्लेश, अभिघात, अति-मैथुन, शुक्त, काञ्जी, अम्ल, कुलथी और उरद-सेवन, वेग धारण अथवा स्वेद, रजो वा धूमसेवन, वमनव्याघात वा

अभिघात, वाष्पवेगधारण या सूक्ष्मपदार्थ निरीक्षण इन सब कारणोंसे दोष कुपित हो कर नेत्ररोग होता है। ये नेत्ररोग ७६ प्रकारके हैं जिनमें वातजन्य दश कफजन्य तेरह, रक्तजन्य षोडश, सन्निपातज पचीस और बाह्य-रोग दो प्रकारके हैं। इनमेंसे हताधिमन्थ, निमेष, दृष्टिगत, गम्भीरिका और वातहतवर्त्म ये सब वातजन्य चक्षुरोगके मध्य असाध्य हैं। वातज काचरोग याप्य तथा अन्यतोवात, शुष्काक्षिपाक, अधिमन्थ अभिष्यन्द और मारुत ये सब रोग साध्य हैं। पित्तज रोगोंमेंसे ह्रस्वजाड्य, जलस्राव, परिम्लायी और नीलीरोग असाध्य है। काचरोग, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, अम्लाध्युषित, शुक्तिका, पित्तविदग्धदृष्टि, पोथकी और लगण ये सब याप्य है। कफजात नेत्ररोगके मध्य स्रावरोग असाध्य और काचरोग याप्य है। अभिष्यन्द, अधिमन्थ, बलास-ग्रथित, श्लेष्मविदग्धदृष्टि, पोथकी, लगण, कृमिग्रन्थि क्लिष्ट-वर्त्म और श्लेष्मोपनाह ये कफरोगोंमेंसे ये सब रोग साध्य हैं। रक्तजात नेत्ररोगमें रक्तस्राव अजका, शोणितार्श, व्रणशुक्र और काचरोग असाध्य है। रक्तज काचरोग याप्य तथा मन्थ, अभिष्यन्द, क्लिष्टवर्त्म, हर्षोत्पात, सिराज, अञ्जन, सिराजाल, पर्वणी, अव्रण, शुक्र, शोणितार्श और अर्जुन ये सब साध्य हैं। पूयस्राव, नाकुलान्ध्य, अक्षिपाक और अलजी ये सब रोग सर्वदोषज हैं; अतएव ये सब असाध्य हैं। सन्निपातज काचरोग और पक्ष्मकोपरोग याप्य है। वर्त्मावबन्ध, पिडका, प्रस्तार्यर्म, अधिमांसार्म, स्नाय्वर्म, उत्सङ्गिनी, पूयालस, अर्बुद, श्याववर्त्म अर्शोवर्त्म शुष्कार्श, शर्करा, सशोफ और अशोफ ये दो प्रकारके पाकरोग, बहलवर्त्म, अक्लिन्नवर्त्म, कुम्भीका और बिसवर्त्म ये सब रोग साध्य हैं। सनिमित्त और अनिमित्त ये दो प्रकारके बाह्यरोग हैं।

नेत्ररोग ७६ प्रकारके हैं। इनमेंसे ८ सन्धिगत २१ वर्त्मगत, ११ शुक्लभागस्थित, ४ कृष्णभागस्थित, १७ सर्वगत १२ दृष्टिगत और २ बाह्यरोग हैं।

नेत्रके सन्धिगतरोग ८ प्रकारके हैं—पूयालस, उपनाह, पूयास्राव, श्लेष्मास्राव, रक्तस्राव, पित्तास्राव, पर्वणिका, अलजी और कृमिग्रन्थि। नेत्रके सन्धिस्थानमें जब शोथ हो जाता और उसमें पूतिगन्धविशिष्ट पूय निकलता है, तब उसे पूयालस रोग कहते हैं। सुश्रुतमें उत्तरतन्त्रके पहले अध्यायसे १९ अध्याय तक नेत्ररोगका विस्तृत विवरण लिखा है।

प्रत्येक विभिन्न रोगका विवरण तत्तत् शब्दमें देखो।

भावप्रकाशके नेत्ररोगाधिकारमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—अपनी अपनी अंगुलियोंसे दो अंगुल नेत्रमण्डलका परिमाण है। पक्ष्म, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण और दृष्टि ये सब इसके अंग हैं तथा इनमें ७८ प्रकारके रोग होते हैं। (चरकके मतानुसार ९६ प्रकारके हैं।) दृष्टिमें १२, कृष्णगत ४, शुक्लगत ११, वर्त्मगत २१, पक्ष्मगत २, सन्धिगत ८ और समस्त नेत्रव्यापक १७ प्रकारके रोग हैं।

नेत्ररोगका निदान :—धूपादि द्वारा उत्तप्त व्यक्तिके स्नान करनेसे अथवा शीतलजलमें अवगाहन, दूरका पदार्थ दर्शन, निद्राविपर्यय अर्थात् दिवानिद्रा और रात्रिजागरण, अश्रु कि द्वारा व्याघात, नेत्रमें धूलि या धूमप्रवेश, वमन वेगधारण, अतिवमन, शुक्त, आरनाल, अम्ल कुलथी और उड़द अतिरिक्त सेवन, मलमूत्रका वेगधारण, अतिशय क्रन्दन, शोकजन्य सन्ताप, मस्तक पर आघात, द्रुतगामी यान पर आरोहण, ऋतुवैपरीत्य, क्लेश-प्रयुक्त अभिताप, अतिरिक्त स्त्रीप्रसङ्ग, अश्रुवेगधारण और अतिसूक्ष्म वस्तुदर्शन इन सब कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो कर नेत्ररोग उत्पादन करते हैं। पूर्वोक्त कारणसे प्रकुपित दोष शिरासमूह द्वारा ऊर्ध्वदेशको जा कर नेत्ररोगोत्पादक होते हैं।

नेत्रदृष्टिका स्वरूप—दृष्टि पञ्चमहाभूतसे सम्भूत मसूरदाल अर्थात् आधे मसूरके परिमाणकी, सूक्ष्म नामक कीड़ेकी खद्योत या अग्निकणिकाकी तरह प्रकाशमान, छिद्रयुक्त और बाह्यपटलसे आवृत है। यह शीतसात्म्य अर्थात् शीत क्रियासे प्रशान्त, पञ्चभूतात्मक और चिरस्थायी तेजोमय है।

पटल विवरण—प्रथम पटल रसरक्ताश्रित, दूसरा मांसाश्रित, तीसरा मेदस् श्रित और चौथा पटल कालकास्थि संश्रित है। पुरुषपटलकी विस्तृता नेत्रमण्डलके पांचवें भागका एक भाग है। पहले पटलमें दोष जानेसे रोगी कभी अस्पष्ट और कभी स्पष्टरूपसे देखता है। दूसरेमें दोष संचित होने पर स्पष्टरूपसे दिखाई नहीं पड़ता और कभी मक्षिका, मशक, केश, जालक, मण्डल,

चपला, मरीचि और कृष्णाकृति। कभी अग्निशिखाके जैसा या दृष्टि-अन्धकार इत्यादि नाना प्रकारकी मूर्ति स्पष्ट दिखाई देती है। दृष्टिमण्डलके चारों ओर मधु सर्वावरणी और सर्वावृत मधु कुछ दोष होता है। जिसमें ही चेष्टा करने पर भी सूईका छिद्र देखा दिख नहीं सकता।

तृतीय पटलगत दोषका विवरण—तीसरे पटलमें यह दोष हो जाता है, तब रोगी ऊपरकी ओर देख सकता, नीचे उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। बड़े बड़े वस्त्राकार पदार्थ वस्त्रावृतके जैसे मालूम होने लगते हैं और प्राणिसमूहके कान, नाक और आंख विकृत दिखाई पड़ता है। इसमें जो दोष बलवान् हो कर दूषित हो जाते हैं, उन्हीं सब दोषोंके अनुसार वे सब वस्तु मालूम दिखनेमें आता है। अर्थात् वातान्वित होने पर लाल, पित्तान्वित होनेसे पीला या नीला और कफान्वित होनेमें उजला दिखाई पड़ता है। पटलके अधोदेशमें दोष होनेसे निकटस्थ वस्तु, ऊर्ध्वदेशमें होनेसे दूरस्थ वस्तु और दोषपार्श्वस्थ होनेसे पार्श्वस्थित वस्तु दीख नहीं पड़ती। इसमें यदि सब जगह दोष हो जाय, तो मिश्र मिश्र रूप मिश्रित भावमें दृष्ट होता है। दोष मध्यस्थ होनेसे बड़ी वस्तु छोटी, तिर्यक् और दोनों पार्श्वस्थ होनेसे एक को दो दिखाई पड़ता और दोषके एक स्थानमें स्थिरभावसे नहीं रहने पर एक वस्तु अनेक जान पड़ता है।

चतुर्थपटलगत दोषका विवरण—कुपित दोषके चतुर्थ पटलमें अवस्थान करने पर सब तरहसे दृष्टि बन्द हो जाती है। किसी किसीके मतसे यह तिमिर या लिङ्गनाशरोग कहा गया है। (भावप्रकाश ४ भाग)

शलाका विषय चक्षुरोगमें देखो।

सुश्रुतमें नेत्रके सर्वस्थानगत रोगका विषय इस प्रकार लिखा है,—अभिष्यन्द और अधिमन्थरोग चार चार प्रकारके हैं। यथा—शोफयुक्तपाक, शोफहीनपाक, हताधिमन्थ, अनिलपर्याय, शुष्काक्षिपाक, अन्यतोवात, अम्लाध्युषितदृष्टि, सिरोत्पात और सिराहर्ष। इनका प्रतीकार शुरूसे ही करना चाहिये। वायुजन्य अभिष्यन्द होनेसे नेत्रका स्तम्भभाव, संहर्ष, परुषभाव, शुष्कभाव और इससे शीतल अश्रुपात तथा शिरोवेदनामें अतिसात ये सब लक्षण दिखाई पड़ते हैं। पित्तजन्य अभिष्यन्दरोग होनेसे आंखमें दाह, पाक, शीतेच्छा, धूम और वाष्पका उद्गम तथा उष्ण अश्रुपात होता है और आंखें पीली भी जाती हैं। कफजन्य अभिष्यन्दरोग होनेसे ऐसे उष्णाभिलाष, गुरुता, शोफ, कण्डू, उपदेह, शीतलता और इसीसे पिच्छिलस्राव ये सब लक्षण मालूम पड़ते हैं। रक्तज अभिष्यन्दमें आंखें लाल हो जाती हैं, और लाल लाल रेखाएं दिखाई देने लगती हैं तथा इसका उष्ण अश्रु बहुत साव हो जाता और इसमें ताम्रवर्णके जैसे दोष दिखते हैं। अर्थात् सब लक्षण पित्तजके जैसे होते हैं।

अभिष्यन्द यदि इसका प्रतीकार न किया जाय, तो क्रमशः यह बढ़ते बढ़ते अधिमन्थरोग हो जाता है। इससे होनेसे आंखोंमें बड़ी पीड़ा और ऐसा उत्पाटित तथा मथित जैसा मालूम भी होता है। वायुज अधिमन्थमें आंखें जैसा ही वेदना होता है और इसमें संघर्ष, तोद, भेद, संरम्भ, आविलता, आकुञ्चन, आस्फोटन, आध्मान, कम्प और व्यथा ये सब उपद्रव हो कर शिरके अर्ध भाग तक व्याप्त हो जाते हैं। पित्तज अधिमन्थमें नेत्र लाल हो जाते और सूज कर पक जाते हैं। इसमें क्षार या क्षार द्वारा दग्धकी तरह वेदना होती है। इसके अन्यान्य अंगोंमें पसीना निकलता है, आंखें और धूम्रवर्णका दिखाई पड़ता है और सिरमें भ्रम सा होता है। कफजन्य अधिमन्थमें शोथ, अल्प संरम्भ, स्राव, शैत्य, गौरव, नेत्रदाह और पिच्छिलता ये सब उपद्रव होते, दृष्टि आविल तथा सब पदार्थ धूलिपूर्ण से दिखाई पड़ते हैं और नासिकामें आध्मान तथा मस्तकमें वातना होती है। रक्तज अभिष्यन्दमें नेत्रका रक्तस्राव तथा तोदविशिष्ट, आंखें और अग्निसदृश और मानों रक्तमण्डल रक्तवर्णके जैसा मालूम पड़ता है। इसके छूनेसे ही बहुत दर्द होता है। अधिमन्थरोगके कफजन्य होनेसे सप्तरात्रमें, रक्तजन्य होनेसे पञ्चरात्रमें, वायुजन्य होनेसे षड्रात्रमें तथा पित्तजन्य होनेसे बहुत जल्द दृष्टि नष्ट हो जाती है।

कण्डू, उपदेह, अश्रुपात, पक्व उडुम्बरके जैसा आकार, दाह, संहर्ष, ताम्रवर्ण, तोद, गौरव, शोफ,

शुष्क ■ उष्ण, शीतल तथा विरुद्ध आहार, मद्य और पक्व आम्ल ये सब सदोष नेत्रपाकके कारण हैं। सदोष नेत्रपाकमें शोथके सिवा और दूसरे सब लक्षण देखे जाते हैं। आंखकी आभ्यन्तरिक शिराओंमें वायुकुपित हो कर दृष्टिको नष्ट करने पर हताधिमन्थ नामक असाध्य रोग उत्पन्न होता है। कुपित वायुके दोनों पक्ष और भ्रूमें आश्रय कर सञ्चरण करनेसे कभी तो भ्रूमें और कभी पक्ष्ममें वेदना होती है, इसीको वातपर्याय कहते हैं। नेत्रवर्त्मके कठिन तथा रूक्ष होनेसे अथवा दृष्टिके क्षीण होनेसे और नेत्रको उन्मीलन करनेमें असमर्थ मालूम होनेसे शुष्काक्षिपाकरोग समझा जाता है। अम्ल या विदाही द्रव्य खानेसे आंखोंके सूजने और लोहित लिये लाल हो जानेको अम्लाध्युषित दृष्टि कहते हैं। वेदना हो या न हो, लेकिन समूचे आंखोंके लाल होनेसे भी शिरोत्पातरोग कहा जाता है। इस प्रकार कुछ दिन रहनेसे आंखोंसे ताम्रवर्णके जैसे आंसू निकलते रहते हैं और रोगी देख नहीं सकता। (सुश्रुत उत्तरतन्त्र ६ अ०) आकार विवरण तथा चिकित्सा अक्षिरोग शब्दमें देखो।

नेत्ररोगहन् (सं० पु०) नेत्ररोग हन्ति हन-क्विप्। वृश्चिकाली क्षुप।

नेत्ररोम (सं० क्ली०) नेत्रको रोम। नेत्रपक्ष्म, आंखकी बिरनी, बरौनी।

नेत्रवस्त्र (सं० क्ली०) नेत्रयोर्वस्त्रमिव आच्छादक। नेत्रच्छद, आंखके पर्दे।

नेत्रवस्ति (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी पिचकारी।

नेत्रवारि (सं० क्ली०) नेत्रयोर्वारि। अश्रुजल, आंसू।

नेत्रविट् (सं० स्त्री०) नेत्रयोर्विट्। नेत्रमल, आंखका कीचड़।

नेत्रविष (सं० पु०) नेत्रे विषं यस्य। दिव्यसर्पभेद, एक प्रकारका दिव्यसर्प जिसकी आंखोंमें विष होता है।

नेत्रसन्धि (सं० स्त्री०) आंखका कोना।

नेत्रस्तम्भ (सं० पु०) नेत्रयोः स्तम्भः ६-तत्। चक्षुरोगका उन्मीलनादि व्यापाररहित्य, आंखकी पलकोंका स्थिर हो जाना अर्थात् खुलना और गिरना बन्द हो जाना।

नेत्रस्राव (सं० पु०) आंखोंसे पानी बहना।

नेत्राञ्जन (सं० क्ली०) नेत्रयो अञ्जन। अञ्जन काजल, सुरमा।

नेत्रानन्द—जयपालके नामक एक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

नेत्रान्त (सं० पु०) नेत्रयोरन्त। अपाङ्गदेश, आंखके कोने और कानके बीचका स्थान, कनपटी।

नेत्राभिष्यन्द (सं० पु०) नेत्रयोः अभिष्यन्दः ६-तत्। नेत्ररोगभेद, आंखका एक रोग जो छूतसे फैलता है, आंख आनेका रोग।

सुश्रुतमें लिखा है कि प्रसङ्ग, गात्रसंस्पर्श, निःश्वास, एक साथ भोजन, एक शय्या पर शयन, एकत्र उपवेशन, एक वस्त्रपरिधान और माल्यानुलेपन सेवन करनेसे कुष्ठ, ज्वर, शोष, नेत्राभिष्यन्द और औपसर्गिक रोग एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिको हो जाता है, ये सब संक्रामकरोग हैं।

सर्वभूमत अभिष्यन्दरोग चार प्रकारका है—वातज, पित्तज, कफज और रक्तज। इस रोगमें आंखें लाल लाल हो जाती हैं और उनमें बहुत पीड़ा होती है।

वातज अभिष्यन्दरोगमें सुई चुभनेकी-सी पीड़ा होती है और ऐसा जान पड़ता है कि आंखोंमें किरकिरी पड़ी हो। इसमें ठण्ढा पानी बहता है, सिर दुखता है और शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

पैत्तिक-अभिष्यन्दमें आंखोंमें जलन होती है और बहुत पानी बहता है। ठण्ढी चीजें रखनेसे आराम मालूम होता है।

श्लैष्मिक अभिष्यन्दमें आंखें भारी जान पड़ती हैं, सूजन अधिक होती है और बार बार गाढ़ा पानी बहता है। इसमें गरम चीजोंसे आराम मालूम होता है।

रक्तज-अभिष्यन्दमें आंखें बहुत लाल रहती हैं और सब लक्षण पित्तज अभिष्यन्दके होते हैं। अभिष्यन्द रोगकी चिकित्सा नहीं होनेसे अधिमन्थरोग होनेका डर रहता है। (भावप्रकाश ३य भाग)

चिकित्सा—वायुजन्य अभिष्यन्द या अधिमन्थ होनेसे पुरातन घृत द्वारा स्निग्ध करे, पीछे यथाविधि स्वेदका प्रयोग और शिरोविरेचनपूर्वक रक्तमोक्षणका विधान है। इसमें तर्पण, पुटपाक, धूम, आश्चोतन, नस्य, स्नेहपरिषेक, शिरोविरेचन, अन्नवर या कपोल देशपर वातघ्न पत्तेके प्रलेप अथवा अपकारायका परिषेचन प्रशस्त है। घृत, चर्बी, तैल और मज्जा सबको एक साथ गरम करके प्रयोग करनेसे यह रोग जाता रहता है। सुश्रुतमें इसका

तन्त्रके ८से १२ अध्याय तक इस नेत्रोन्मीलनका विशेष विवरण लिखा है।

नेत्रामय (सं० पु०) नेत्रस्य आमयो रोगः। चक्षुरोग, आंखकी बीमारी।

नेत्राम्बु (सं० क्लो०) नेत्रस्य अम्बु जलम्। अश्रु, आंसू।

नेत्राम्भस् (सं० क्लो०) नेत्रस्य अम्भः। अश्रु, आंसू।

नेत्रारि (सं० पु०) नेत्रस्य अरिः शत्रुः। सेहुण्डवृक्ष, सेहुंड़, थूहर।

नेत्रावती—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह अक्षा० १३° १०' १५" उ० और देशा० ७५° २६' २०" पू०से निकल कर पश्चिमकी ओर मङ्गलूरके निकट (अक्षा० १२° ५०' उ० और देशा० ७४° ५२' ४०" पू०) समुद्रमें आ कर गिरी है। कुमारधारी नामकी एक शाखानदी उप्पिनङ्गदि ग्रामके निकट इसमें मिल गई है। जहां पर उक्त नदी इससे मिली है, वहां इसका नाम नेत्रावती पड़ा है और इस नामसे यह मङ्गलूर तक चली गई है। बाढ़की समय छोड़ कर और सभी समय इसमें वाणिज्यकी नावें आती जाती हैं।

स्कन्दपुराणके अन्तर्गत सह्याद्रिखण्डमें लिखा है, कि सूर्यवंशोद्भव हेमाङ्गद राजाके पुत्र मयूरने अहिछत्रसे आगत वेदवित् ब्राह्मणोंको रहनेके लिए कई ग्राम दान किए। इनमेंसे नेत्रावतीके उत्तरी किनारे पर अवस्थित गजपुरि नामक एक ग्राम था जहां नृसिंहमूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। दूसरे ग्रामका नाम था वैकुण्ठ जिसके उत्तरमें कोटीलिङ्ग, पूर्वमें सिंहेश्वर, दक्षिणमें सीतानदी और पश्चिममें लवणसमुद्र पड़ता था। यह ग्राम देवविग्रहादिके लिये जगतीतल पर विशेष मशहूर था।

(सह्याद्रि २।८।८-११)

नेत्रिक (सं० क्लो०) एक प्रकारकी छोटी पिचकारी।

नेत्री (सं० स्त्री०) नीयतेऽनयेति नी करणे ष्ट्रन् (दाम्नी शसेति। पा ३।२।१८२) षित्वात् ङीष्। १ लक्ष्मी। २ नाड़ी। ३ नदी। नयतीति नी तृच् ङीप्। ४ अग्रगामिनी, अगुआ, सरदार। ५ शिक्षयित्री, राह बतानेवाली, सिखानेवाली।

नेत्रोपकार गुरुसे हो (?) नेत्रोपमं नयमतुल्यं फलं यस्य बादाम। ... भ्रभाव, स...

नेत्रोत्सव (सं० पु०) १ नेत्रोंका आनन्द, देखनेका मजा। २ दर्शनीय वस्तु, वह वस्तु जिसे देखनेमें नेत्रोंको आनन्द मिले।

नेत्रौषध (सं० क्लो०) नेत्रस्य औषधम्। १ पुष्पकसीस। २ आंखकी दवा।

नेत्रौषधी (सं० स्त्री०) नेत्रस्य औषधी। अजशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

नेत्ररगण (सं० पु०) रसौत, त्रिफला, लोध, ग्वारपाठा, वनकुलथी आदि नेत्ररोगोंके लिये उपकारी औषधियोंका समूह।

नेदिष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन अन्तिकः, अन्तिक इष्ठन् अन्तिकशब्दस्य नेदादेशः। (अन्तिक बाढयोर्नेदसाधौ। पा ५।३।६३) १ अन्तितम, निकटका, पासका। २ निपुण। (पु०) ३ अङ्कोटवृक्ष, ढेरेका पेड़।

नेदिष्ठतम (सं० त्रि०) नेदिष्ठ-तमप्। अत्यन्त निकट, बहुत समीप।

नेदिष्ठी (सं० पु०) नेदिष्ठं जन्मतः सन्निकृष्टस्थानं विद्यतेऽस्य इनि। १ सहोदर भाई। (त्रि०) २ निकटस्थ, समीपका।

नेदीयस् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन अन्तिकः, अन्तिक ईयसुन्, ततो अन्तिकस्य नेदादेशः। नेदिष्ठ, समीपका।

नेदीयस्ता (सं० स्त्री०) नेदीयभावे-तल्-टाप्। अति समीपता।

नेनमेनी—मन्द्राजके तिनेवल्ली जिलेके शातूर तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यह शातूरनगरसे ५ मील पूर्वमें अवस्थित है। यहांके अनन्तराजस्वामी-मन्दिरके सम्मुखस्थ पत्थर पर एक शिलालिपि खोदी हुई है जो चोक्कलिङ्ग नायक आदिके समय (१५८३ सम्वत्)-की मानी जाती है। यहांके पेरुमलके मन्दिरमें भी चोक्कलिङ्गके समयमें उत्कीर्ण एक दूसरा शिलापट्ट देखा जाता है।

नेनुआ (हिं० पु०) घियातोरई, घिवरा।

नेप (सं० पु०) नयति प्रापयति शुभमिति नी-प, ततो गुणः। (पानी विषिभ्यः। उण् ३।२३) १ पुरोहित। २ उदक, जल।

नेपचून—सूर्यको परिक्रमा करनेवाला एक ग्रह। इसका

देता सन् १८४६ ई०से पहले किसीको नहीं था। उसी सालके अगस्त मासमें फरासीसी ज्योतिर्विद् मैसिलियर (M Leverrier)-ने इस ग्रहका पता लगाया। अब तक जितने ग्रहोंका पता लगा है उनमें यह सबसे अधिक दूरी पर है। इसका व्यास ३०००० मील है। सूर्यसे इसकी दूरी २८०००००००० मीलके लगभग है, इसीसे इसको सूर्यके चारों ओर घूमनेमें १६४ वर्ष लगते हैं अर्थात् नेपच्यूनका एक वर्ष हमारे १६४ वर्षोंका होता है। जिस प्रकार पृथ्वीका उपग्रह चन्द्रमा है, उसी प्रकार नेपच्यूनका भी एक उपग्रह है। ज्योतिष देखो।

नेपथ्य (सं० क्ली०) नी-पिध्, घुञ् नि नेता तस्य पथ्यम्। १ वेश। २ भूषण। ३ रंगस्थान, रङ्ग, अभिनय नाटक आदिमें पर्देके भीतरका वह स्थान जिसमें नटगण नाना प्रकारके वेश बदलते हैं।

भरतनाट्यमें नेपथ्य विधानका विषय इस प्रकार लिखा है। अभिनयमें नेपथ्यविधि विशेष प्रयोजनीय है। नेपथ्यविधि चार प्रकारकी है—पुस्त, अलङ्कार, सञ्जीव और अङ्गरचना। फिर पुस्त नेपथ्य ३ प्रकारका है, सन्धिमा, व्याजिमा और चेष्टिमा। वस्त्र या चर्मादि द्वारा जो द्रव्य बनाया जाता है उसका नाम सन्धिमा है। वह द्रव्य यदि यन्त्रघटित हो तो उसे व्याजिमा और यदि द्रव्य चेष्टमान हो, तो उसे चेष्टिमा कहते हैं। माल्य, आभरण और वस्त्रादि द्वारा यथायोग्य तत्तद्‌शोभाके लिये जो द्रव्य बनाया जाता है उसका नाम अलङ्कारनेपथ्य है। प्राणियोंके जो प्रवेश होता है उसे सञ्जीव कहते हैं।

अभिनय और आभरणादि तथा श्वेत, पीत नील और लोहितादि वर्ण द्वारा यथायोग्य स्थानमें यथायथ भावसे जो विन्यास किया जाता है, उसे अङ्गरचना कहते हैं।
(भरत)

नेपाल—भारतवर्षके उत्तरमें अवस्थित एक प्राचीन राज्य। इस राज्यके उत्तरमें तिब्बत-राज्य, पूर्वमें अंगरेजी अधिकृत सिकिमराज्य दक्षिणमें अंगरेजाधिकृत हिन्दुस्थान और पश्चिममें अंगरेजाधिकृत कुमायुन और रोहिला खण्ड प्रदेश है। १८१६ ई०के पहले कुमायुन और और उसके पश्चिम शतद्रु नदीके तीर तक इस राज्यकी सीमा विस्तृत थी। १८१६ ई०के सन्धिसूत्रसे ये सब स्थान अंगरेजोंके अधिकारमें आ गए हैं। पश्चिममें काली या सरयू नदी, दक्षिणमें अयोध्याके सन्निकट दूनका पर्वत, चम्पारणके मध्य सोमेश्वर पर्वतकी उच्चभूमि तथा पूर्वमें मेचीनदी और सिङ्गालिला पर्वत ही नेपाल और अंगरेजी राज्यके मध्य सीमा-रेखारूपमें निर्दिष्ट है।

शक्तिसङ्गमतन्त्रमें नेपालकी सीमा इस प्रकार लिखी है—

"जटेश्वरं समारभ्य योगेशान्तं महेश्वरि।
नेपालदेशो देवेशि साधकानां सुसिद्धिदः॥"

जटेश्वरसे ले कर योगेश्वर तक नेपाल देश माना गया है। यह स्थान साधकोंका सिद्धिप्रद है।

नेपालनामकी उत्पत्ति।

हिमालय पर्वतका तटदेश जिस पार्वतीय अंशमें गोर्खाजातिका वास है, उसे तिब्बतीय और हिमालयके उपरिस्थ अधित्यकावासी जातिकी भाषामें 'पाल' देश* कहते हैं। वर्त्तमान नेपालराज्यके पूर्वांश और सिकिम प्रदेशके यहांके आदिम असभ्य लेपचाजाति 'नै' कहते थे। लेपचा, भिक्षार और चपरावर आदि एक परस्पर असम्बद्ध जातियोंकी जैन भारतीय भाषामें 'नै' शब्दका अर्थ 'पर्वत गुहा है जहां पशुआदिके भयसे आश्रय ले कर मनुष्य रह सकते हैं। तिब्बत और ब्रह्ममें तत्तद् भाषाओंकी भाषामें 'नै' शब्दका अर्थ है 'पवित्र गुहा या देवताके वहांसे रक्षित पवित्र स्थान वा पीठ।'† इससे सहजमें अनुमान किया जा सकता है कि गोर्खाजातिकी वासभूमि हिमालयतटस्थ पालदेशमें जहां बाबाका स्तूप और स्वयम्भूनाथ प्रभृति नै अर्थात् पवित्र तीर्थ स्थान है उसको वमदिको नेपाल (अर्थात् पालराज्यान्तर्गत पवित्र तीर्थ या वासभूमि) कहते थे। फिर किसी किसीका कहना है कि इस पाल देशके जिस भागमें नेवारजातिका वास था, वह पहले 'नै' कहलाता था।

---

* तिब्बतीय भाषामें 'पाल' शब्दका अर्थ है ऊन। हिमालयके इस अंशमें पशमसे अनेक ऊन पाये जाते हैं इस कारण वे लोग इस स्थानको पालदेश कहते थे।

† An account of the Steps See Proc. of the Bengal A latic S clety 1893

'ने' नामक स्थानमें वास करनेके कारण ही इस जातिका नाम 'नेवार' पड़ा है। इस नेवारजातिके लामाओंने पहले बौद्धमत ग्रहण करके अपने देशमें बहुत-सी बौद्धकीर्त्तियां स्थापन कीं तथा उन्हींके नाम अङ्कित पर इस स्थानका नाम नेपाल हुआ था, ऐसा लोगोंका विश्वास है। यह स्थान लेप्चाकथित 'ने' नामक स्थानसे स्वतन्त्र है।

"नेपाल" यह नाम समग्र देशका नहीं है। जिस उपत्यकामें इस राज्यकी राजधानी काठमण्डू नगर अवस्थित है, उसी उपत्यकाका नाम नेपाल है। उसीसे समग्र राज्यका नामकरण हुआ है। यह राज्य पूर्व-पश्चिममें २५६ कोस लम्बा और उत्तर-दक्षिणमें ३५से ७५ कोस चौड़ा है। यह अक्षा० २६° २५' से ३०° १७' उ० और देशा० ८०° ६' से ८८° १४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५४००० वर्गमील है।

प्राकृतिक विभाग।

नेपालराज्य स्वभावतः पश्चिम, मध्य और पूर्व इन तीन उपत्यकाओंमें विभक्त है। चार अत्युच्च पर्वतशिखर इन तीन उपत्यका-विभागके प्रधान कारण हैं। अंग्रेजाधिकृत कुमायुन प्रदेशमें अवस्थित नन्दादेवी-शिखरकी छोटी छोटी नदियोंके एक साथ मिलनेसे काली नदीकी उत्पत्ति हुई है। यही नदी नेपालराज्यके पश्चिम उपत्यकाकी सीमा है। नन्दादेवीसे सौ कोस पूर्व धवलगिरिशिखर (देशीय नाम दूधगङ्गा) अवस्थित है। इसके ठीक दक्षिण गोरखपुर नगर पड़ता है। यह पर्वतशिखर मध्य उपत्यकाके पश्चिमसीमारूपमें उपस्थित है। पूर्वोक्त नेपाल नामक उपत्यकाके ठीक उत्तर यह गोसाईंथान पर्वत दण्डायमान है। यह पर्वत शिखर पूर्व उपत्यकाके पश्चिम सीमा और धवलगिरि तथा गोसाईंथान पर्वतके मध्य उपत्यका पर अवस्थित है। गोसाईंथानसे ६५ कोस पूर्व अङ्गरेजाधीन सिकिम राज्यमें अवस्थित काञ्चनजङ्घाशिखर ही नेपालकी पूर्व-उपत्यकाकी पूर्व सीमा है। इस पर्वतके दक्षिणाङ्गके कुछ अंश और सिकिम नेपालराज्यकी पूर्वसीमा रेखारूपमें निर्दिष्ट है।

गिरिपथ।

नेपालान्तर्गत हिमालयपृष्ठको भेद कर तिब्बतराज्यमें जानेके अनेक गिरिपथ हैं। किन्तु ये सब पथ प्रायः तुषारसे ढके रहते हैं। इनमेंसे जो पथ सबसे निम्नभूमिमें अवस्थित है, वह यूरोपके सर्वोच्च पर्वतसे भी उच्च है।

१ थकला-खर पथ वा यहिपथ—यह नन्दादेवी और धवलगिरि-शिखरके मध्यस्थलमें है। शतद्रु-नदीके उत्पत्तिस्थानके समीप घर्घरा नदीकी कर्णाली नामक उपनदी निकल कर इसी राह होती हुई तिब्बतको छोड़ कर नेपालमें प्रवेश करती है। जिस स्थान पर कर्णाली नदी तिब्बतसीमामें गिरती है, उस स्थान पर थक नामक ग्राम है। इसी ग्रामके नाम पर इस पथका नामकरण हुआ है। थक ग्राममें तिब्बतसे लाए हुए लवणका विस्तृत व्यवसाय होता है।

२ मस्तं पथ—यह धवलगिरिसे २० कोस पूर्वमें अवस्थित है। धवलगिरिके पादमूलमें तिब्बतकी ओर इस नामका एक प्रदेश भी है। उसी प्रदेशके नामानुसार इस पथका नाम पड़ा है। मस्तं प्रदेश धवलगिरिके उत्तर होने पर भी वहांके राजा नेपालके करद हैं। मस्तं उपत्यका हिमालयके तुषारावृत उत्तर और दक्षिण पर्वतश्रेणीके मध्यवर्त्ती एक ऊंचे स्थान पर अवस्थित है। यह राज्य गोर्खाराज्यमालाके अन्तर्गत नहीं है। मस्तं गिरिपथके उत्तरभागमें प्रधान रास्तेके ऊपर मुक्तिनाथ नामक एक ग्राम बसा हुआ है। यह ग्राम तीर्थस्थानमें गिना जाता है और यहां भी तिब्बतीय लवणका व्यवसाय होता है। मस्तंसे आठ दिनमें और धवलगिरिके क्रोड़स्थ मालीभूमके प्रधान नगर बेनीशहरसे चार दिनमें मुक्तिनाथ तीर्थ पहुंचते हैं।

३ केरंपथ—यह गोसाईंथान पर्वतके पश्चिममें पड़ता है।

४ कुटि पथ—गोसाईंथान पर्वतसे पूर्वमें है। ये दोनों पथ राजधानी काठमण्डूके निकटवर्त्ती होनेके कारण दोनों पथ हो कर तिब्बतीय तीर्थयात्री और व्यवसायी प्रति वर्ष शीतकालमें नेपाल आते हैं। नेपालकी राजधानी काठमण्डूसे तिब्बतकी राजधानी लासा जानेका

रास्ता ८१२ फुट ऊँचे हो कर चला गया है। ढेवो नामक स्थानमें यह रास्ता कुटियाके रास्तेमें मिल गया है। कुटिया रास्ता ही तिब्बत जानेका अपेक्षाकृत छोटा और सीधा है; किन्तु इस राह हो कर टट्टू नहीं चलता।

चीन जानेके लिये नेपालका प्रभूतदल कुटिया हो कर जाता है। किन्तु आते समय चीन देशीय टट्टू लाना होता है इस कारण वह केरंग हो कर लौटता है। १८८२ ई०में युद्धमें चीनसेना इसी केरंग हो कर आई थी। कुटियाके पश्चिमस्थ तुषाराहत पर्वतकी पूर्व भूमि (तलभूमि) और उसके पूर्वस्थ पर्वतको तीव्र झुकी रहती है। इसी पर्वतसे ताम्रकोशीनदीकी उत्पत्ति हुई है। यह कोशी नदीकी एक उपनदी है। भुटियानदी भी (कोशीनदीकी सप्त उपनदियोंमेंसे अन्यतम) इसी कुटिया हो कर बह गई है।

५ हतिया पथ—यह कुटियासे २०।२५ कोस पूर्वमें है। कोशीनदीकी सात उपनदियोंमें प्रधान अरुणा नदी भी इस राह हो कर नेपालमें प्रवेश करती है।

६ वर्ग वा वलचुन पथ—काञ्चनजङ्घाके पश्चिम नेपालके पूर्व सीमान्तमें यह पथ अवस्थित है। इस पथ पथ हो कर तिब्बती लोग शीतकालमें नेपाल आते जाते हैं।

नदीके अववाहिका।

नेपालके जिन तीन प्राकृतिक विभागोंका उल्लेख किया गया है, वे फिर भी तीन भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। नेपालमें प्रधान नदी तीन हैं, घर्घरा, गण्डक और कोशी। ये तीनों नदियां यथाक्रमसे पश्चिम और पूर्व उपत्यकाके मध्य होती हुई प्रवाहित हैं और यथाक्रम वे तीन उपत्यकाएं इन्हीं तीन नदियोंके नामसे पुकारी जाती हैं। इन तीन उपत्यकाओंको छोड़ कर गण्डकी और कोशीनदीके मध्य नेवार-उपत्यका है। इसी उपत्यकामें काठमण्डू नगर अवस्थित है। यहां वाघमती नदी बहती है। यह नदी गुरुडरके समीप गङ्गामें मिली है। इन चार नदियोंकी अववाहिकामें पार्वत्यभूभाग तथा भूखण्ड यथाक्रम विभक्त है। इनके अलावा पार्श्ववर्ती दक्षिणांशमें नेपालराज्यके अन्तर्गत जो भूखण्ड है, वह तराई नामसे प्रसिद्ध है।

राज्यविभाग।

पूर्वोक्त प्राकृतिक विभाग पुनः नाना खण्डोंमें विभक्त है।

१ पश्चिम उपत्यका या घर्घरा अववाहिका प्रदेश—यह २२ खण्डोंमें विभक्त है। इन बाईस खण्डोंको एक साथ मिला कर बाईसराज्य कहते हैं। फिर इन बाईस राज्योंमें बाईस राजा या जमींदार रहते हैं जिनमेंसे एक राजा प्रधान और शेष इक्कीस उनके करद हैं। जुमला, जगदीकोट, जाम, थाचाम, रुगम, मुसिकोट, तिबखा, मलिअब, दैलेख, दारमेकोट, डोटी, डुलियाला, बमकी, बिरटी, काचाकोट, कलियाकोट, गुटम और मल्लहर यही बाईस राज्य हैं। इनमेंसे जुमला-राज ही प्रधान है। वे ही शेष इक्कीस राज्यों पर आधिपत्य करते हैं। जुमला-राजकी राजधानीका नाम छिनाचिन है। इस राज्यके अधिपति गोर्खाओंसे पराजित होनेके पहले ४६ राज्योंके अधिपति थे। कालीनदी और गोर्खाराज्यके मध्य ये ४६ राज्य पड़ते थे जिनमेंसे बाईस कालीनदीकी और चौबीस गण्डक नदीकी अववाहिकामें अवस्थित थे। ये सब सामन्तराज जुमलाराजको सम्मान, पद इत्यादि द्रव्य करस्वरूप देते थे। यद्यपि जुमलाराजका वैसा प्रभाव अभी नहीं है तो भी अन्यान्य सामन्तराज आज भी उन्हें चक्रवर्त्ती राजा मानते हैं और निर्दिष्ट कर भी दिया करते हैं। ४६ राज्योंके मध्य गण्डक अववाहिकाके चौबीस राज्य बहादुर-शाहके नेपालराज्यमें मिलाए गये थे। इस चौबीसी और बाईसीराज्यके राजगण आज भी राजा कहलाते हैं और राजचिह्न धारण कर के सम्मानित होते हैं। ये लोग अभी नेपालराजाके जागीरदार मात्र हैं। इन सब राजाओंकी चार पांच हजारसे ले कर चार पांच लाख तककी आमदनी है। इनमेंसे कई एक पदधारी मनुष्य हैं। किसीके पास तो चार पांच सौ तक और किसीके पास सामान्य पचास भी है।

जुमलाराज्यके बाद ही अभी डोटि राज्यका उल्लेख किया जा सकता है। इसकी राजधानीका नाम है डोटि (दु ति) वा दोर्पि। इस राज्यका क्षेत्रफल अधिक है। डोटिनगर कर्णालीनदीकी सेतगङ्गा नामक शाखाके बाएं किनारे तथा बरैली शहरसे ४२८

कोस उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। यहां दो दल पदाति और कुछ कमान हैं।

इसके बाद सुलियानानगर है। यह अयोध्या-सीमान्त पर नेपाली-स्कन्धावार है। यह नगर लखनऊसे ६० कोस उत्तरमें पड़ता है। यहांसे २५ कोस उत्तर-पूर्वमें पैल्तानागर है जहां नेपालियोंको सिलखाना और बारूदखाना है। इस प्रदेशमें गोरा बहुत पाया जाता है। सुलियानमढ़ी नामक विख्यात उपत्यका राप्ती-नदीके दोनों किनारे तक विस्तृत है।

२ मध्य उपत्यका वा गण्डक अववाहिका प्रदेश।

नेपालीलोग बहुत पहलेसे इस प्रदेशको जानते थे। वे लोग इसे सप्तगण्डकी उपत्यका कहते हैं। सप्तगण्डकीसे गण्डकनदीके उपादान-स्वरूप सात उपनदियोंका बोध होता है। ये सातों नदियां धवलगिरि और गोसाईंथान शिखरके चिरतुषारक्षेत्रसे उत्पन्न हुई हैं। सातो नदियोंके नाम ये हैं,—बरिगार, नारायणी वा शालग्रामी, श्वेतगण्डकी, मरस्यांगढ़ी, बरमड़ी, गण्डी और त्रिशूल-गङ्गा। इनमेंसे बरिगार और नारायणी; श्वेतगण्डकी और मरस्यांगढ़ी; त्रिशूलगङ्गा, बरमड़ी और गण्डी नदी एक साथ मिल कर पुनः तीन शाखाओंमें विभक्त हुई हैं। इसके बाद जिस स्थान पर ये मिल कर गण्डक नामसे सोमेश्वर पर्वतसे एक पथ हो कर बिहारमें प्रवेश करती है, उस स्थानको तथा उस गिरिपथको त्रिवेणी कहते हैं। त्रिशूलगङ्गाके उत्पत्तिस्थानके समीप छोटे बड़े २२ ह्रद हैं। इनमेंसे गोसाईंथानके शिखर पर गोसाईंकुण्ड वा नीलस्त्रियत् (नीलकण्ठ) कुण्ड ही बड़ा है। इसी ह्रदके नामानुसार समस्त पर्वत गोसाईंथान कहाता है। इस ह्रदके बीचमेंसे एक नीलवर्ण डिम्बाकृति पर्वतखण्ड निकला है। यह शिखर जल भेद कर ऊपर नहीं उठा है, बल्कि जलपृष्ठसे एक फुट नीचेमें ही है। स्वच्छजल रहनेके कारण यह साफ साफ दीख पड़ता है। वह पर्वतखण्ड नीलकण्ठ महादेवकी प्रतिमूर्त्ति रूपमें पूजित होता है। आषाढ़, श्रावण और भाद्रमासमें यहां असंख्य यात्री आ कर स्नान करते और नीलकण्ठकी पूजा करते हैं। यह पथ जैसा दुर्गम है, वैसा ही भयावह भी है। इस कुण्डके उत्तरी किनारे एक अत्युच्च पर्वत है। इस पर्वतके हृदय तीन गह्वरोंसे तीन निर्झरिणी निकली हैं। इन तीनोंका जल तीस फुट नीचेमें पतित हो कर पुनः एक ह्रदमें जमा होता है। इस त्रिधाराका नाम त्रिशूलधारा है। कहते हैं, कि समुद्र मथनेके समय विषपानके बाद शिवजी विषकी ज्वाला और तृष्णासे कातर हो कर हिमालयके इसी तुषारक्षेत्रमें जलकी खोज करते हुए आए। यहां जब जल नहीं मिला, तब उन्होंने पर्वत-गात्रमें त्रिशूलाघात किया जिससे तीन निर्झरिणीको उत्पत्ति हुई। पीछे शिवजी नीचे लेट रहे और त्रिधारा पान कर गए। इसी शयनस्थानमें गोसाईं कुण्ड वा नीलकण्ठ ह्रदकी उत्पत्ति हुई है।

ह्रदगर्भस्थ डिम्बाकृति प्रस्तरखण्ड ही उस शयित महादेवकी प्रतिमूर्त्तिके रूपमें गिना जाता है। तीर्थयात्रियांका कहना है, कि ह्रदके किनारे खड़ा हो कर देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है मानो भगवान् नीलकण्ठ सर्प-शय्या पर ह्रदगर्भमें सो रहे हैं। मि० ओल्डफिल्ड अनुमान करते हैं कि यह शिखरोपम प्रस्तरखण्ड बहुत पहले किसी हिम-शिलाके साथ सञ्चलित हो कर ह्रदगर्भमें इस प्रकार जड़ीभूत है। इस तीर्थस्थानमें एक क्षुद्र प्रस्तर-मय स्तूप और डेढ़ फुट ऊंची नरमूर्त्तिके सिवा और कोई प्रतिमूर्त्ति नहीं है। यहां कुछ स्तम्भ भी खड़े हैं जिनमें पहले एक बृहद्घण्टा लटका रहता था। अभी वह घण्टा नष्ट हो गया है। समस्त गोसाईंथान पर्वत पर और कहीं भी शिवमूर्त्ति वा लिङ्गका चिह्न नहीं है। इस ह्रदमें आनेके पथ पर चन्दनबाड़ी नामक ग्रामके पास एक फुट ऊंचा एक प्रस्तरखण्ड है जिसे लोग गणेशकी प्रतिमा समझ कर पूजा करते हैं। इस गणेशको वे "लोढ़ो गणेश" कहते हैं। इस गोसाईं-कुण्डसे उत्पन्न होनेके कारण गण्डककी पूर्वीय उपनदीका नाम त्रिशूलगङ्गा पड़ा है। सूर्यकुण्डनामक ह्रदके उत्तरांशसे त्रिशूलगङ्गाको एक और उपनदी वेत्रवतीसे निकली है। इसी सूर्यकुण्डसे टाढ़ी वा सूर्यवती नदीकी भी उत्पत्ति हुई है। देवीघाट नामक स्थानमें सूर्यवती त्रिशूलगङ्गामें मिली है। वह देवीघाट नयाकोट नामक एक उपत्यकाके मध्य अवस्थित है। यह भी तीर्थस्थान माना जाता है। इस स्थानकी अधिष्ठात्री देवी भैरवीकी

मन्दिर नवकोट शहरमें पड़ता है। किन्तु प्रतिवर्ष शुभाशुभ मास आने पर जब मनुष्य यहां आने लगते हैं, तब दोनों नदीके सङ्गम स्थान पर बांसके लम्बे लम्बे और एक पोखत पर्यन्तादि द्वारा एक मन्दिर बना कर उसीमें देवीकी पूजा की जाती है। कहते हैं, कि देवीकी प्रतिमा पहले इसी स्थान पर थी पीछे आपादेवीमें नवकोटमें स्थानान्तरित हुई। टाड़ी वा त्रिशूलगङ्गाका स्वभावतः वेग इतना तेज है और वर्षाके समय उसका जल इतना बढ़ जाता है, कि दोनों किनारे टूट फूट जाते हैं। इसी कारण देवीने आपादेवीमें अपना प्रतिमा स्थानान्तरित कर ली। गण्डक अववाहिका जिन चौबीस क्षुद्र राज्योंमें विभक्त है वा पहले जिन चौबीसीराज्यका उल्लेख किया गया है वह सब रा- अववाहिकाके अन्तर्गत थे और राज्याधिपति गुरखा राजके अधीन था। उन राज्योंके नाम ये हैं—आनाकु गुल्मकोट, मालेभूम, सतहुं, गरहुं, पोखरा, नयाकोट, रिसि, धीर, बोमाट, ताजबा, बैतुअ, पाल्पा, गुलमी, पश्चिम नयकोट, पालि वा पाल्पि, इस्मा, धरकोट, मुसिकोट, विर्कि, सबियाना तिरु, पैनाल, स्यङ्गजा, र, कचि, लमजुङ्ग और ममन। ये सब अभी गोर्खाराज्यके अन्तर्निविष्ट हुए हैं। गोर्खाओंने समस्त गण्डक अववाहिकाको मालेभूम, पाल्पि, पल्पा और गोर्खा इन चार भागोंमें विभक्त कर लिया है। मालेभूम प्रदेश धौल-वलगिरिके नीचे मरिगर नदी तक विस्तृत है। इसकी राजधानी बिनि-शहर नारायणी नदीके किनारे बसा हुआ है। पाल्पिप्रदेश मालेभूमके दक्षिणपूर्वमें पड़ता है। पल्पाप्रदेशका विस्तार ज्यादा नहीं होने पर भी यह सबसे प्रयोजनीय विभाग है। यह चारों ओर राज्य गोरखपुर जिलेके सीमान्तमें अवस्थित है। इसके उत्तरमें नारायणीनदी बहती है और निम्नभागमें गोरखपुरके बीच उत्तर "बैतुलवास" नामक तराई प्रदेश है। यह तराई अयोध्याके अन्तर्गत तुलसीपुरसे ले कर गण्डक नदीके पश्चिम पाली शहर तक विस्तृत है। गोरखनमें पर्वतका निम्नप्रदेश और दक्षिणांश परिव्याप्त है। पश्चिम नवकोट विभाग गण्डक नदीके पश्चिममें अवस्थित है। यह पल्पा प्रदेशका ही एक अंश है। वर्तमान गोर्खाके पूर्वपुरुष राजपूतगण १२वीं शताब्दीमें जब मुसलमानोंसे विताड़ित हुए, तब वे इसी प्रदेशमें आ कर रहने लगे थे। पीछे वे लोग श्रीनगरवासीके किनारे समस्त प्रदेशमें आ बसे। पल्पानगर ही प्रधान शहर है, उसके बाद बैतुल और गुलमी शहर है। पल्पानगरसे २० कोस पूर्व तानसेन शहर अवस्थित है जहां पल्पा-प्रदेशको सेना रहती है। यहां एक दरबार, बाजार और टकसाल है। इस टकसालमें तांबेका सिक्का ढाला जाता है। पल्पा प्रदेशमें गुर्जजातिके लोग रहते अपने कुलकी तथा तरह तरहका व्यवसाय करते हैं।

गोर्खाराज्य गण्डक अववाहिकाके पूर्वोत्तर अंशमें त्रिशूलगङ्गा और मार्श्याङ्गदीकी दोनों नदियोंके बीच अवस्थित है। राजधानी गोर्खानगर हनुमानभञ्जन पर्वत है ऊपर दरमड़ी नदीके किनारे बसा हुआ है और काठमाण्डू नगरसे १२ कोस दूर पड़ता है। गोर्खाप्रदेशके पश्चिम-दक्षिणांशमें पोखरा उपत्यका है। इस उपत्यकाका प्रधान शहर पोखरा श्वेतगण्डकीनदीके किनारे अवस्थित है। यह शहर बहुत बड़ा है, लोकसंख्या भी कम नहीं है। इस स्थानमें ताम्रद्रव्यका व्यवसाय प्रसिद्ध है। यहां प्रति वर्ष एक मेला लगता है जिसमें समस्त पोखरा उपत्यकाके उत्पादित अन्न तथा ताम्र द्रव्यादि बिकने आते हैं। नेपाल उपत्यकासे पोखरा उपत्यका बहुत बड़ी है। यहां बहुतसे ह्रद हैं। उनमेंसे एक ह्रद इतना बड़ा है कि उसका प्रदक्षिण करनेमें दो दिन लगते हैं। इन सब ह्रदोंमें मछलियां बहुत रहते हैं। इनके किनारेसे जलस्रोत प्रायः ११००-१२०० फुट निम्न है। सुतरां कृषिकार्यमें इन सब ह्रदोंसे कोई उपकार नहीं होता। पल्पा और बैतुल प्रदेशके मध्य मध्यगण्डकीके पश्चिमी किनारे ओहतालीमड़ी नामक उपत्यका और गण्डकीके पूर्व चितवन वा चैतनमड़ी नामक उपत्यका तथा इसके उत्तर मकवन वा माकवनमड़ी नामक उपत्यका विशेष प्रसिद्ध है। चितवन उपत्यकामें रात्री नदी बहती है। यह भीमपेड़ी नामक स्थानसे कुछ पूर्व सिमपानि पर्वतसे निकल कर लोमियार पर्वतके उत्तर गण्डकनदीमें मिलती है। इस नदीके ऊपरमें ही हिटौरा शहर बसा हुआ है। चितवन उपत्यकामें बड़े बड़े ह्रदोंमें मगरी

कर्त्ताके अधीन दो दस वैसा बना रहता है। प्रधान तराई चार जिलोंमें विभक्त है, १ बड़ा और पारसा, २ रोतहत, ३ मकवान-सप्तरी और ४ मोहतारी। गण्डकसे कोशीतक प्रधान जिलेके मध्य हो कर ही बाग्मतीका रास्ता गया है। विगौलियाके निकटवर्ती पारसा नामक स्थानमें १८१५ ई०को कप्तान सिवलो पराक्त हुए थे और उनकी दो कमान शत्रुओंके हाथ लगी थीं। रोतहत जिला पारसाकी सीमासे ले कर बाग्मती तक विस्तृत है। बाग्मतीनदीके किनारे रोतहत जिलेकी सीमा पर बाग्मतीसे ७ कोस पश्चिम सिमरौनगढ़का ध्वंसावशेष नजर आता है। यह ध्वस्त स्थान बहुविस्तृत और गम्भीर वनाच्छादित है। ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें इसका परिष्कार होना वर्णित है। इस ध्वंसावशिष्ट स्थानमें प्राचीन मिथिला राज्यकी राजधानी थी। उस समय मिथिला राज्य पूर्व-पश्चिममें गण्डक और उत्तर-दक्षिणमें नेपालकी पर्वतमालासे गङ्गातीर तक विस्तृत था। १०८० ई०में मिथिलाराज नान्यदेवने सिमरौनगढ़ बसाया था। १३२२ ई०में दिल्लीके सम्राट् गयासुद्दीन् तुगलकने नान्यके वंशीय हरिसिंह देवको पराजय कर सिमरौनगढ़ ध्वंस कर डाला। हरिसिंह देव नेपालको भाग गये और नेपाल जय करके वहींके राजा बन बैठे। बाग्मतीके किनारे बहारवार ग्राम बहुत स्वास्थ्यकर और सुन्दर-स्थान है। १८१४ ई०के प्रथम नेपालयुद्धमें मेजर ब्राडशने सबसे पहले इसी स्थान पर आक्रमण किया और इसे जीत लिया।

मकवानपुर जिला बाग्मतीसे कमलानदी तक विस्तृत है। इस जिलेके सीमान्तमें प्राचीन नगर जनकपुरका ध्वंसावशेष है। मोहतारी जिला कमलासे कोशी तक फैला हुआ है। कोशीके दक्षिण किनारे कोशासारके निकट भातुरका नामक स्थानमें मेलाधाम है। कोशीके पूर्व मेचीनदी तक तरोयार नामक मोरङ्ग समतल देश है। इस देशकी भूमि कर्दममय है। मलेरियाका यहां विशेष प्रकोप रहता है। तराईके मध्य जितने देश हैं, उनमेंसे यह देश सबोंसे अधिक अस्वास्थ्यकर है। नदियोंका जल भी बहुत दूषित है, यहां तक कि अनेक नदियोंका जल विषाक्त है। मोरङ्ग छोड़ कर तराईकी अपर भूमि अधिक उर्वरा है। यहां तरह तरहका अन्न, ईख, अफीम और तमाकू भी काफी उपजता है। कोशीके पश्चिमांशके जङ्गलमें हाथीकी संख्या दिनों दिन कम होती जा रही है। मोरङ्गमें अभी बहुत हाथी मिलते हैं लेकिन पहलेके जैसा नहीं।

नेपाल-उपत्यका।

गोसाईंथान पर्वतके अन्तर्गत वेतरापर्वतके ठीक दक्षिण महाभारतकी ओर चन्द्रगिरिके मध्य जो उच्च उपत्यका प्रदेश वर्त्तमान है उसीका नाम नेपाल उपत्यका है। यह उपत्यका त्रिकोणाकार है। इसकी लम्बाई पूर्व-पश्चिममें १० कोस और चौड़ाई उत्तर दक्षिणमें ७॥ कोस है। इस उपत्यकाके पश्चिम त्रिशूलगङ्गानदी और पूर्वमें मिलाची वा इन्द्रावतीनदी है। उपत्यकाके चारों ओर पर्वतवेष्टित है जिनमेंसे उत्तरमें ये सब पर्वतमालायें शिवपुरी, काकनी, पूर्वमें महादेव-पोखरसिखर, हिमचोक, पश्चिममें नागार्जुनपर्वत और दक्षिणमें मेघपानी पर्वतमालामें चन्द्रागिरि, चम्पादेवी और फुलचोका आदि पर्वतशिखर ठीक पङ्क्तिरूपमें अवस्थित है। नेपाल उपत्यका समुद्रपृष्ठसे ४५०० फुट ऊंची है। नेपाल-उपत्यकाके चारों ओर छोटे छोटे पर्वत रहनेके कारण उसके भी चारों ओर छोटी छोटी उपत्यका हैं। इन सब उपत्यकाओंके मध्य दक्षिण-पश्चिममें चित्लाङ्ग उपत्यका, पश्चिममें धूना और कालपूउपत्यका, उत्तरमें नवकोट उपत्यका और पूर्वमें बनेपा उपत्यका उल्लेख योग्य है।

नेपालकी गिरिमाला।

नेपालउपत्यकाके चतुष्पार्श्ववर्त्ती पर्वतमाला विभिन्न प्रसिद्ध है। इन सब पर्वतशिखरोंके परस्पर संयुक्त रहनेके कारण गिरिपथ और नदी द्वारा छोड़ कर अन्य दिशासे इस उपत्यकामें प्रवेश नहीं कर सकते।

उत्तरका शिवपुरी पर्वत साढ़े आठ हजार फुट ऊंचा है। इसका शिखरदेश ग्राम और बिकूट वृक्षोंसे समाच्छन्न तथा पश्चात् पर्वतसे अधिक उच्च है।

पश्चिमस्थ काकनी पर्वतके साथ शिवपुरी पर्वतका सीमा है। दोनोंके मध्य हो कर 'कठमा' नामक गिरिपथ गया है। काकनि पर्वतकी ऊंचाई ७ हजार फुट है।

शस्य उर्व्वरा उपत्यकामें परिणत किया है। इन्होंने अपनी तलवारसे कोटवार नामक एक पर्वत शिखरको काट कर उसी पथ हो कर जल बहा दिया था। पुनः चोभा और कम्पादेवी पर्वतोंके मध्य जिस गह्वर हो कर बाघमती नदी प्रवाहित है, कहते हैं कि वह गह्वर मञ्जुश्रीने इस प्रकार बनाया था। मञ्जुश्रीका उपाख्यान यदि छोड़ दें, तो भी यह स्थान एक समय जलमय था और प्राकृतिक परिवर्त्तनसे बहुत समयके बाद उपत्यकामें परिणत हो गया है यह विश्वास किया जा सकता है।

उपत्यकाकी नदी।

बाघमती—यह शिवपुरी पर्वतके ऊपर उत्तरकी ओर बाघद्वार नामक स्थानमें एक निर्झरसे उत्पन्न हो कर शिवपुरी और मणिचूड़के मध्य होती हुई शिवपुरी पर्वतके ऊपर गोकर्ण नामक तीर्थस्थानके निकट स्याघमती या सिमान्दीके साथ मिल गई है। इस स्थानसे यह नदी दक्षिणाभिमुखमें प्राचीन गोकर्णेश्वर मन्दिरके समीप पहुंच गई है। पीछे गौरीघाटके मध्य होती हुई पशुपतिनाथ मन्दिरके प्रायः तीन ओर वेष्टन करके दक्षिण-पश्चिमको ओर राजधानी काठमण्डूके निकट आई है। काठमण्डू इसके दाहिने किनारे और पाटननगर बांए किनारे बसा हुआ है। पीछे यह दक्षिणको ओर एक बार होती हुई पम्पर नामक प्राचीन नगरके निकट हो कर चन्द्रगिरिपर्वतके मूलमें पहुंच गई है और यहांसे कम्पादेवी और महाभारतशिखरके मध्य चिरचिर पर्वतके निम्नस्थ द्वार हो कर नेपाल उपत्यकाको छोड़ती हुई चली गई है। यहांके लोगोंका कहना है, कि गोकर्णके निकटस्थ घाट, गौरीघाट, चम्परके निकटस्थ घाट और चिरचिर पर्वतके निकटस्थ घाट मञ्जुश्री बोधिसत्त्वकी तलवारके आघातसे उत्पन्न हुआ है। शिवमार्गी नेवार और अन्यान्य हिन्दू इनकी उत्पत्तिका विवरण प्रति स्वीकार करते हैं। विष्णुमती, धोबिखोला वा रुद्रमती, मनोहरा और हनुमानमती ये चार बाघमतीकी प्रधान उपनदियां हैं। विष्णुमतीका दूसरा नाम केशवती है। यह शिवपुरी पर्वतके दक्षिण बड़े नौनखक प्रदेशमें निकल कर विशुनाथ नामक ग्रामके निकट पर्वतको छोड़ कर उपत्यकामें प्रवेश करती है। यहांसे यह दक्षिणको ओर नागार्जुन पर्वतके चारों ओर घूम कर बालाजी और स्वयम्भुनाथ नामक तीर्थस्थानके पास और होती हुई काठमण्डू नगरके पश्चिमांशमें पहुंच गई है और पीछे नगरसे कुछ निम्न दक्षिण दिशामें बाघमतीके साथ मिलती है। इन दो नदियोंके सङ्गम स्थान पर बहुतसे मन्दिर हैं और एक बड़ा घाट भी है। यहां शवदाह करना लोग पुण्यप्रद समझते हैं, इस कारण दूर दूर स्थानोंसे आ कर लोग यहां शवदाह करते हैं। बाघमती और विष्णुमतीकी उत्पत्तिके विषयमें एक उपाख्यान है। लोगोंका कहना है, कि जब क्रकुच्छन्द नामक चतुर्थ मानव बुद्ध तीर्थदर्शनके उद्देश्यसे नेपालके शिवपुरीपर्वत पर आये, उस समय उनके कुछ अनुचरोंने इस स्थानकी शोभा देख कर बौद्धधर्म ग्रहण करना चाहा और वहां चिरकाल तक रहनेकी इच्छा प्रकट की। उनके अभिषेकके लिये क्रकुच्छन्दको कहीं भी जल न मिला। तब देवमन्त्रकी आराधना करके उन्होंने एक पर्वतमात्रमें अपना अङ्गुष्ठ प्रवेश कर दिया। उस छिद्र हो कर देवबलसे एक निर्झर निकली। उसी निर्झरकी धारा वारिमती वा बाघमती नामसे प्रसिद्ध है। तदनन्तर उसी जलसे अभिषेक हुआ। तब लोगोंके मुण्डनके बाद स्तूपीकृत केशराशि प्रस्तरीभूत हो गई। यही वर्त्तमान बौद्धोंके केशचैत्य कहलाता है। उन सब केशोंका कुछ अंश वायुसे उड़ कर जहां चला गया, वहां भी फिर उसी तरहकी जलधारा बहिर्गत हुई। उसी धारा केशवती या विष्णुमती नदी कहलाती है। फिर सुवर्णमती और कदरी नामक विष्णुमतीकी दो उपनदियां हैं। धोबिखोला या रुद्रमती शिवपुरी पर्वतसे निकल कर काठमण्डूसे डेढ़ कोस पूरब बाघमतीमें मिल गई है। इसके किनारे हरिगांव और देवपाटन अवस्थित है। मनोहरा या मणिमती मणिचूड़ पर्वतसे निकल कर पाटन नगरके सामने बाघमतीनदीमें गिरी है।

हनुमानमती महादेवपोखरा पर्वतके एक झरनेसे उत्पन्न हो कर भाटगांवनगरके दक्षिण होती हुई बाघमती नदीके साथ मिल गई है।

कृषि।

नेपालकी खेतीबारी और उद्भिज्जादिकी उत्पत्ति तथा वृद्धि वहांके जलवायु और हेमन्तादि षड़्ऋतुके ऊपर निर्भर करती है। इस राज्यके सभी स्थानोंके समतल नहीं होनेसे तथा जगह जगह उपत्यकादिके ऊंची और नीची रहनेसे यहांकी प्रकृतिका विलक्षण विपर्यय देखा जाता है। हिमालयके क्रमनिम्न प्रदेशोंमें तथा नेपालकी पार्वतीय उपत्यकादिमें सुमिष्टफल और आहारोपयोगी शाक सब्जी प्रचुर परिमाणमें उपजती है। जलवायुके गुणानुसार पर्वतांशके किसी किसी स्थानमें बड़ा बड़ा बांस और बेंतका पेड़ देखनेमें आता है। किन्तु अन्यान्य अंशोंमें केवल सुन्दरीवृक्ष और देवदारुके पेड़की ही संख्या अधिक है। इसके अलावा कहीं कहीं अखरोट, शहतूत, गोरोफल (Rashbery) आदि सुमिष्टफलोंके दरख्त भी नजर आते हैं। छोटे छोटे पहाड़ोंकी उपत्यका भूमिमें जहां ग्रीष्मकी प्रखरता अधिक है वहां सुपक्व अनानास और ईख तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें जौ, गेहूं, कंगनी आदिकी विस्तृत खेती होती है। यहां शीतकालमें कमलानीबू उत्पन्न होता है। पर्वतादि उच्च भूमि पर वर्षाकालमें खूब वृष्टि होती है जिससे फलादि नष्ट हो जाया करते हैं।

वर्षाकालमें पंक पड़ जानेसे ग्रीष्मऋतुमें धान जुन्हरी तथा अन्यान्य फसल अच्छी लगती है। यहां बहुत-सी जमीन ऐसी हैं जिनमें ऋतुभेदसे वर्ष भरमें तीन बार फसल लगती है। शीतकालमें जिस जमीनमें गेहूं, जौ, सरसों आदि फसल लगती है, वसन्तके प्रारम्भमें उस जमीनमें पुनः मूली, लहसुन, आलू आदि तथा वर्षाकालमें धान, मकई आदि उपजाते हैं। ढालुवां पर्वत जहां काट कर समतल बना दिया गया है, वहां मटर, उरद, चना, गेहूं और जौ आदि भी नजर आते हैं। यहां सरसों, मञ्जिष्ठा, ईख और इलायची प्रचुर उत्पन्न होती है। जहां इलायचीका पेड़ लगता है, वहां अधिक जलका रहना आवश्यक है, नहीं तो फसल उत्तम नहीं होती।

चावल ही नेपालवासियोंका खाद्य है। इस कारण राज्यके सभी स्थानोंमें एक एक तरहके धानकी खेती होती है। एतद्भिन्न नेपालमें और भी नाना प्रकारके धानकी खेती होती है जिसे नेपाली 'घिया' कहते हैं। इन सब धानोंको परिपक्व होनेमें ग्रीष्म वा वर्षाकी जरूरत नहीं पड़ती। पर्वतके ऊपर खेत जोतनेके लिये हल वा अन्य औजारकी आवश्यकता नहीं होती। वे लोग कायिक परिश्रमसे हस्त द्वारा ही जमीनको शस्यवपनोपयोगी बना लेते हैं। जमीनकी उर्वरता बढ़ानेके लिये उसमें गोबर, एक प्रकारकी काली मट्टी तथा घरके कूड़ा-करकट आदि डाल देते हैं। नेपालके तराई नामक स्थानमें चावल, अफीम, सफेद सरसों, तीसी, तमाकू आदि उपजते हैं। इस प्रदेशके चारों ओर खाल और पर्वतनिःसृत छोटी छोटी स्रोतस्विनी बहती है जिससे यहां कभी जलाभाव नहीं होता।

इस तराई प्रदेशके वनविभागमें शाल, श्वेतशाल, पियासाल, खैर, शीशम, कृष्णकाष्ठ, वट और भाञ्ज नामक एक प्रकारका पेड़, रुई, डूमर और गोंद उत्पन्न करनेवाले वृक्ष पाए जाते हैं।

पर्वतके उपरिस्थ वनमें सुन्दरी, तिलपत्र, मन्दार, पहाड़ी कटहल, कच्चूर, तालीसपत्र, मधुफल, शृङ्गाट, अखरोट, चम्पक, शिरीष, देवदारु और भाऊ आदि वृक्ष ही प्रधान हैं। इसके अलावा खाद्योपयोगी मेवा तथा सुगन्धविशिष्ट पुष्पवृक्ष भी देखनेमें आते हैं।

जमीनसे कृषककी सहायतासे नाना जातीय शस्य और उद्भिज्जादि उत्पन्न होने पर भी यहांकी मट्टीमें नाना प्रकारके कन्द, औषधलता आदि पाई जाती हैं। यहांके तिक्तास्वादयुक्त और सुगन्धविशिष्ट वृक्षादिके निर्याससे नाना प्रकारका रंग निकाला जाता है। 'जीया' नामक एक प्रकारकी लतासे चरस उत्पन्न होता है। इसका सेवन करनेसे नशा आता है। हम लोगोंके देशमें इसे नेपालीचरस कहते हैं। नेवारी लोग उक्त जीयाके पौधेकी नीरस पत्तियोंको कूट कर उससे सूत सरीखा एक प्रकारका पदार्थ निकालते हैं जिससे एक तरहका सूती कपड़ा तैयार होता है।

भूतत्त्व।

नेपालकी पार्वतीय अंशसे जो सब मूल्यवान् पत्थर और धातु पाई गई हैं, उनसे अच्छी तरह अनुमान

किया जाता है, कि नेपालके किसी किसी स्थानमें कुछ खान विद्यमान हैं। अभीतक कुछ मौकेमें ताम्र, लोह आदिकी खान देखी गई है। ताम्र उत्कृष्ट होने पर भी यहांका लौह अन्यान्य खानोंसे निकृष्ट होता है। यहां गन्धक प्रचुर परिमाणमें मिलती है और नाना स्थानों में भी पाई जाती है।

नेपालमें जो सब विभिन्न प्रकारके मिश्रित और अपरिष्कृत खनिज पदार्थ पाए जाते हैं उनको विशेष आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि उन सब मिश्रित पदार्थोंमें अनेक मूल्यवान् अंश है। इसके अलावा यहां नाना जातीय प्रस्तर देखनेमें आते हैं जिनमेंसे मारबल, स्लेट, चूनापत्थर और स्लाब तथा पोतलबके पत्थर भी बड़े कमनीय हैं।

गोसांईथानके निकट एक प्रकारका स्वच्छ स्फटिक (Crystal) पत्थर पाया जाता है। इसको तरह काटनेसे यह हीरेके जैसा चमकता है। यहांका मधु इतना उत्कृष्ट है, कि कुछ कालके बाद वह मिश्रीकी तरह दृढ़ हो जाती है।

वाणिज्य।

नेपालराज्यके वाणिज्यके विषयमें कुछ कहनेके पहले यह देखना होगा, कि किन किन राज्योंके साथ नेपालवासियोंके व्यवसायके सम्बन्धमें विशेष संस्रव है। हिमालयपर्वतके अपरपारस्थित तिब्बतदेश और दक्षिण अङ्गरेजाधिकृत भारतसाम्राज्य, इन दोनोंके साथ उनकी विशेष घनिष्ठता देखी जाती है। तिब्बतदेश जानेमें बहुतसे विघ्न हैं क्योंकि, ये हिम वा हमेशा तुषारसे ढके रहते हैं। केवल काठमाण्डू नगरसे उत्तर पूर्व हो कर जो रास्ता कोशी नदीकी उपनदीके किनारे सीमान्तवर्ती नीलम् वा कुती नामक स्थान तक चला गया है, वह प्रायः १४००० फुट ऊंचेमें है और दूसरा रास्ता जो ८००० फुट ऊंचा है वह गण्डकनदीके पूर्वाभिमुखी स्रोतको अतिक्रम कर सीमान्तमें किरुङ् नामक ग्राम हो कर ताड़म् नामक अधित्यका सामपुण्डोंके किनारे तक चला गया है। इन्हीं दो पथ हो कर नेपाली लोग साधारणतः तिब्बतराज्यमें आते जाते हैं। पश्वादिको ले कर जानेमें कोई विशेष सवारी नहीं मिलती। प्रत्येक माल प्रायः लोग बकरी और भेड़ोंकी पीठ पर माल लाद कर उस राज्यमें जाते हैं। घोड़े वा बैलकी गाड़ी ले कर ऐसे दुर्गम पथमें जाना मुश्किल है। तिब्बतसे पशमीना माल और एक प्रकारका पशम निर्मित मोटा कपड़ा, लवण, सोहागा, स्वर्णादि, चामर, हरिताल, पारा, स्वर्णरेणु, सुरमा, मजीठ, चरस, नाना प्रकारकी औषध मिर्च और शुष्कफलादि नेपाल तथा आस पासके अङ्गरेजाधिकृत राज्योंमें लाये जाते हैं। फिर यहांसे तांबे, पीतल, कांसे, चांदी, विलायती कपड़े, कौड़ियां इत्यादि, भारतोत्पन्न सूती कपड़े, सुगन्धित मसाले, तमाकू, सुपारी, धान, नाना धातु और मूल्यवान् पत्थरोंकी तिब्बतमें रफ्तनी होती है।

नेपाली भारतके साथ जो व्यवसाय-वाणिज्य करते हैं वह प्रायः नेपालक्षेत्रान्तर्गत ७०० मीलके अन्तर्भुक्त सभी हाट बाजारोंमें हो; उससे बाहर नहीं। नेपालसे भारतके नाना स्थानोंमें जब पण्यद्रव्योंकी रफ्तनी होती है, उनके ऊपर नेपालराज्यने कर लगा दिया है। इसी प्रकार भारतसे जो पदार्थ नेपाल लाये जाते हैं, उन पर भी निर्दिष्ट कर है। इस तरहका संग्रहीत कर राजकोषका होता है। राजाके आत्मीय देशवासियोंको भोज्य तथा और विलासिताके लिए जो द्रव्य नेपालमें लाए जाते हैं उन पर अधिक शुल्क निर्धारित है। किन्तु अङ्गरेजीय-के आवश्यकतानुरोधसे जो सब वस्तुएं आमदनी होती हैं उन पर राजा बहुत कम शुल्क लगाते हैं। ये सब शुल्क वसूल करनेके लिए प्रत्येक हाटमें और भिन्न देशमें हो जानेके प्रत्येक पथ पर एक एक चौतरा स्थापित है। कभी कभी इस चौतरेका कार्य चलानेके लिए वह ठेकेदार वा महाजनको नीलाममें दिया जाता है। तमाकू, इलायची, लवण, पैसा, हस्तिदन्त और चन्दनकाठ खास नेपाल सबमें ठेका होता है। इस व्यवसायको चलानेके लिए राजपरिवारभुक्त अथवा राजकर्मचारीमें कोई व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं। एतद्भिन्न सभी द्रव्य दूसरे दूसरे लोगोंके अधिकारमें है। किन्तु शुल्क देनेको सभी बाध्य हैं। यह शुल्क द्रव्यके गुरुत्व वा संख्यानुसार लिया जाता है।

काठमाण्डूसे भिम फेदी हो कर नेपालजात द्रव्यसमूह

भारतवर्षमें लाया जाता है, वह राह सिगौलीसे राजधानी काठमण्डूकी ओर पहले नेपाल-सीमान्तमें रा कसूल ग्रामको पार कर सम्राबासा, हतोरा, भीमफेडी और थानकोट नगर होती हुई राजधानीको चली गई है। पहले इस राह हो कर चम्पारण जिलेके मध्य पटना नगरमें आते थे, किन्तु वर्त्तमान समयमें सिगौली तक रेलपथ हो जानेसे वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। इन सब सुविधाओंके रहते भी यहांके दुर्गमपथ हो कर द्रव्यादि ले जानेमें बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ती है। कहीं बैल, कहीं घोड़े और कहीं कुलीको सहायतासे माल पहुंचाया जाता है। सिगौलीसे काठमण्डू तक जो रास्ता गया है, वह प्रायः ८२ मील लम्बा है। स्थानीय नदी वा स्रोतादि हो कर केवल शाल और अन्यान्य चकोरकाष्ठ बहा कर ले जाते हैं।

चावल तथा दूसरा दूसरा अनाज, तैलकरबीज, घृत, टट्टू, गो-मेषादि, शिकारोके लिए शिकर पक्षी, मैना, शुग्ग आदिका चकोर, अफीम, मृगनाभि, दिरायता, सोहागा, मञ्जिष्ठा, नारपिनका तैल, खैर, पाट, चम, छागका लोम, सोंठ, इलायची, मिर्च, हल्दी और चामरके लिये चामरी गोकी दुम आदि नाना द्रव्य भारतवर्षके प्रधान प्रधान नगरोंमें आमदनी होती हैं और यहांसे रुई, रुईके सूते, सूती कपड़े, पशमी कपड़े, शाल, फलालेन, रेशम, किंखाप वा बूटेदार चिकने कपड़े, कारुकर्मयुक्त झालर वा जरीके पाड़, चीनी, मिर्च आदि मसाले, नील, तमाकू, सुपारी, सिन्दूर, तैल, लाख, लवण, बारीक चावल, महिष, छागल, भेड़े, ताम्र, पीतलके अलङ्कार, भाला, आरसी, शिकारके लिये बन्दूक और बारूद तथा दार्जिलिङ्ग और कुमायुनसे 'चाय' आदि द्रव्योंकी नेपालमें रफ्तनी होती है। जिस तरह चम्पारण हो कर पटनानगर जानेका रास्ता है, उसी तरह दरभङ्गा जिलेके मिर्जापुरनगरमें तथा पुर्णिया जिलेके नौरगञ्जनगरमें नेपालसे द्रव्यादि ले कर जानेके लिये भी दो रास्ते गये हैं।

वाणिज्यार्थ उत्पन्न द्रव्य।

नेपालकी सभी जातियोंमें नेवारगण बड़े परिश्रमी होते। स्त्री-पुरुष दोनों ही कठिनसे कठिन परिश्रम कर सकते हैं। नेवारी स्त्री और पर्वतवासी मगरजातीय पुरुषगण सूती कपड़े बुननेमें विशेष पटु हैं। वे साधारणतः अपने पहननेके लायक एक प्रकारके मोटे कपड़े तैयार करते हैं और अन्यान्य देशोंमें रफ्तनीके लिये एक दूसरा वस्त्र बुनते हैं। गरीब लोगोंके लिए पशमका कम्बल प्रस्तुत होता है जिसे भुटियागण बुनते हैं। नेपाल राजगण और अन्यान्य सम्भ्रान्त व्यक्तिगण जो सब पोशाक और परिच्छद पहनते हैं, वे यूरोप आदि नाना स्थानोंसे यहां लाये जाते हैं। स्वदेशजात मोटे कपड़ेके ऊपर उनकी विशेष स्पृहा देखी नहीं जाती।

नेवारी पुरुषगण लोहे, तांबे, पीतल और कांसेसे नाना प्रकारके तैजसादि निर्माण करते हैं। पाटन और भाटगांवनगरमें इन सब धातुओंका विस्तृत कारबार है। यहां बहुत अच्छे अच्छे घंटे तैयार होते हैं। ये लोग सीकू पेड़को छालसे मोटा कागज बनाते हैं। पहले छिलकेको किसी बरतनमें रख गरम जलमें सिद्ध करते हैं। सिद्ध हो जाने पर उसे एक खलमें कूटते हैं। बाद उसे जलमें घोल कर छाननीसे छान लेते हैं। ऐसा करनेसे जो पदार्थ कपड़े पर जम जाता है उसे एक चौरस काठके ऊपर सूखने देते हैं। अच्छी तरह सूख जाने पर उसे चिकने काठकी सहायतासे घिस कर चिकना बनाते हैं। कालीनदीके तीरवर्त्ती भूटिया लोग इस प्रकारका कागज तैयार करते हैं। काठमण्डूमें तीन सेर कागज सत्तरह आनेमें बिकता है। कोई चीज बांधनेके लिए यह कागज बड़े कामका और बहुत चीमड़ होता है।

नेपाली चावल और अन्यान्य शस्यसे सुराका सार, गेहूं, महुएके फूल और चावलसे मद्य तैयार कर बाजारमें बेचते हैं। वे लोग इस मद्यको 'रुकसी' कहते हैं। यह सुमिष्ट होता है और अन्यान्य मद्यकी तरह इसमें तीव्रमादकता शक्ति नहीं रहती।

प्रचलित मुद्रा।

नेपालमें फिलहाल जो मुद्रा प्रचलित है तथा समय समय पर जो स्वर्ण, रौप्य और ताम्रमुद्रा प्रचलित थी एवं अङ्गरेजाधिकृत भारतवर्षमें उन सब मुद्राओंका क्या मोल है, उसकी एक तालिका नीचे दी जाती है।

पूर्व प्रचलित मुद्रा	उसका दाम
स्वर्ण	
असरफी	२०) रु०
आठवें	८) आ०
सूका	३) ८ पाई
सूकी	२) ४ पाई
आना	१) ८ पाई
दाम	१२ पाई
रौप्यमुद्रा	
रुपो	५) ४ पाई
मोहर	२) ८ पाई
सूका	१) ४ पाई
सूकी	) ८ पाई
आना	॥०
दाम	॥

ताम्रमुद्रा

पैसा	॥ पाई
दाम	३ भाग पाई

अभी नेपालमें जो मुद्रा प्रचलित है उसका नाम मोहर है। यह मोहर हम लोगोंके देशके ८ आने आठ पाईके बराबर होता है। किन्तु इस प्रकार की मुद्राका अब प्रचार नहीं है, केवल नाम गणनाके लिये आवश्यक है। फिलहाल नेपालमें जो मुद्रा प्रचलित है वह इस प्रकार है—

४ दाम = १ पैसा
४ पैसा = १ आना
१६ आना = १ मोहरीरुपी

इसके अलावा यहां और भी तीन प्रकारको ताम्र मुद्रा प्रचलित देखी जाती है। चम्पारन और ... के पासके स्थानोंमें जो मोटा ताम्रमुद्रा देखो जाती है वह मुद्रिया वा गोरखपुरी पैसा नामसे परिचित है। इस प्रकारके ७४ पैसे हम लोगोंके देशमें एक रुपयेके बराबर माने गये हैं। किन्तु नेपाली अब पैसेसे इतने अभ्यस्त हैं, कि इस तरहके ८ पैसेको बदले में सीधे अंगरेजी ८ पैसेसे काम नहीं लेते। ये सब पैसे नेपालराज्यके अन्य जिलेके अन्तर्गत ताम्रीय खानकी टकसालमें बनाये जाते हैं।

इस राज्यके पूर्व और उत्तरपूर्व में एक प्रकारका तांबा सिक्का प्रचलित है जो खोदिया-पैसा कहलाता है। इस सिक्केमें खोटा मिला रहता है इस कारण इसका दाम भी कम है। इस प्रकारके १०० पैसे हम लोगोंके देशके एक रुपयेके बराबर हो सकते हैं। खोदिया पैसा बनानेकी पूर्वदिक् स्थ पर्वतश्रेणीमें अनेक टकसाल हैं जिनमें से सिक्का मिलाने आदिको टकसाला हो बड़े अयोग्य है। आज भी चम्पारन और पूर्णिया हो कर ही यह मुद्राएं उत्तरबिहारमें आती हैं।

१८८१ ई०में काठमण्डू राजधानीमें जो नया पतला तांबेका सिक्का प्रचलित हुआ है, उसका आकार गोल है यह कलको सहायतासे बनाया जाता है और उसके ऊपर राजाका नाम भी अंकित है। इस नूतन मुद्राका प्रचार हो जानेसे राजधानी भरमें खोदिया-मुद्राका प्रचार बिलकुल उठ गया है। इस मुद्राको ढालनेके लिये काठमण्डू नगरमें स्वतन्त्र टकसाल है।

* पूर्व समयमें नेपालराज्यमें जो रौप्यमुद्रा प्रचलित थी, वह बहुत मामूलीको मुद्रासे बड़ी बड़ी थी। इस राज्यके दक्षिणस्थ कभी स्थानोंमें नेपाली मोहरके बदले अंगरेजी रुपयेका प्रचार हो गया है। यहां अंगरेज प्रचलित नोटका भी आदर होता है। काठमण्डू नगरमें इस नोटका विशेष आदर है, कारण रुपयेसे गवर्नमेण्ट नोट रखनेसे उससे सैकड़े पीछे कुछ लाभ मिलता है।

फिलहाल नेपालमें जो रौप्यमुद्रा प्रचलित है, उसके एक पृष्ठ पर राजा सुरेन्द्रविक्रमशाहदेव और त्रिशूल तथा दूसरे पृष्ठ पर गोरखनाथ और काली भवानी तथा त्रिपद अंकित है। बेण्डल साहबने लिखा है, कि नेपालमें प्राय १७वीं शताब्दीको मुद्रासे स्थानीय प्राचीन इतिहासतत्त्व के अनेक विषय जाने जाते हैं*। किन्तु १६वीं शताब्दीके परवर्तीकालको मुद्रासे ही ऐतिहासिक समय तथा राजाओंके नामका निर्णय करनेमें विशेष सुविधा हुई है†।

* Zeitschrift der deutschen morgenland. h-a Gesellschaft 1852. p. 651

† Bendall's Catalogue of Buddhist Manuscripts Cambridge Intro. XI

तौल और वजन।

इस समय स्वर्ण, रौप्य, अन्यान्य धातु, शुष्क और जलीय पदार्थका वजन तथा उसका परिमाण निर्धारण करनेके लिये जो सब बटखरे वा माप प्रचलित हैं, वह क्रमशः नीचे दिया जाता है।

स्वर्ण	रौप्य
१० रत्ती वा लाल = १ माशा	८ रत्ती वा लाल = १ माशा
१० माशा = १ तोला	१२ माशा = १ तोला

ताम्र और पित्तलादि धातुकी माप।

४॥ तोला	=	१	कुणवा
४ कुणवा	=	१	टुकणी वा पौव
४ टुकणी	=	१	सेर

३ सेर = १ धारणी, एक धारणीका वजन = अङ्गरेजो एवर्डोपाईज ५ पौण्ड।

शुष्क द्रव्यादिकी माप	तरल पदार्थादिका परिमाण
२ मन = १ कुडवा	४ दोया = १ चौथाई।
४ कुडवा = १ पाथी	२ चौथा = आधटुकणी।
२० पाथी = १मुड़ी	२ आधटुकणी = १ टुकणी
१ पाथी = अङ्गरेजी एभर्डोपाईज ८ पौण्ड	४ टुकणी = १कुडवा = १ सेर
	४ कुड़वा = १ पाथी

समयनिरूपण।

वर्त्तमानकालमें केवल धनी लोग ही यूरोपसे मंगाये हुए घटिकायन्त्रकी सहायतासे समयादिका निरूपण करते हैं, पर और लोग पूर्वकालसे भारतवासीका अनुकरण कर समयका जो निरूपण करते आए हैं, वह इस प्रकार है,—

६० विपल = १ पल

६० पल = १ घड़ी = २४ मिनट।

६० घड़ी = १ दिन वा २४ घण्टा

प्रभातकालमें जब हाथकी रेखा अथवा गृहादिकी छतके ऊपरकी कोठरी साफ साफ गिनी जाती है, ठीक उसी समयसे इन लोगोंका दिन शुरू होता है।

प्राचीन समयमें नेपाली एक तांबेकी हंडीकी पेंदीमें छेद करके उसे किसी एक पात्रस्थित जलके ऊपर बहा देते थे। हंडीका छेद इस प्रकार बना रहता था, कि तलदेशस्थ जल धीरे धीरे हंडीमें प्रवेश करता और हंडीको पात्रस्थ जलके मध्य डुबनेमें एक घड़ी समय लगता था। इस प्रकार प्रत्येक बार पूरण और निमज्जन ले कर एक एक घडी समय निरूपित होता था। हम लोगोंके देशमें पूजादिके समय कांसेके बने हुए जिस गोलाकार घंटेका व्यवहार होता हैं, ठीक उसी तरहके घंटेमें वे लोग घड़ीके निरूपण हो जानेके बाद एक दो करके चोट देते थे ताकि जनसाधारणको समयका ज्ञान हो जाय। आज कल हम लोगोंके देशमें भी धनी लोगोंके यहां उसी तरहके घंटेका व्यवहार होते देखा जाता है। नेपालियोंमें दिन रात चार भागोंमें विभक्त है। पहला प्रभातसे पूर्वाह्नकाल तक, दूसरा पूर्वाह्नसे सन्ध्याकाल तक, तीसरा सन्ध्यासे दो पहर रात तक और चौथा दोपहर रातसे फिर दूसरे दिन प्रभातकाल तक। किन्तु हम लोगोंके देशमें दिवारात दो ही भागोंमें विभक्त है,— यथा दोपहर रातसे दोपहर दिन अर्थात् १२ बजे तक और १से फिर रातके १२ बजे तक।

जाति-तत्त्व

पर्वत श्रेणी द्वारा यह देश बहुधा विच्छिन्न होने पर भी राज्यमें अनेक उपत्यकाओंकी सृष्टि हुई है। इन सब उपत्यकाभूमि पर नाना प्रकारकी पार्वतीय जातियोंका वास देखा जाता है। वे लोग यहांके आदिम अधिवासी माने जाते हैं। कालीनदीके पूर्व स्थित उपत्यकाओं पर जिन प्रधान प्रधान जातियोंका वास है, उन्होंके नाम उल्लेखयोग्य हैं। (१) मगरजाति- भेरी और मरस्येन्द्री वा मस्यांग्दो दोनों नदियोंके मध्यवर्त्ती पर्वतमय प्रदेशमें इनका वास है। ये लोग बड़े साहसी हैं और सैनिकवृत्ति द्वारा जीविकानिर्वाह करते हैं। २ गुरुङ्जाति—उक्त मगरजातिकी वासभूमिसे हिमालयके तुषारावृत स्थान पर्यन्त पर्वतखण्ड पर इनका वास है। (३) नेवार जाति—काठमण्डु उपत्यकाके 'ने' नामक प्रदेशके आदिम अधिवासी। नेपालके कृषि आदि सभी कार्य इन्हींसे सम्पन्न होते हैं सही, लेकिन ये हो लोग धनहीन भी हैं। इस उपत्यकाभूमिके पूर्वदिकस्थ पार्वत्य भूमिमें (४) लिम्बू वा याकन्थुम्बा और (५)

किरांती या भोम्बो जातिका वास है। (६) लेपचा जाति—ये लोग सिक्किम और दार्जिलिङ्ग विभागके पश्चिमप्रान्तमें तथा नेपालके पूर्व भोमान्तमें वास करते हैं। (७) भूटिया जाति—किम्बु किरांती और लेपचा जातिकी वासभूमिके उत्तरस्थ पर्वतकी उपत्यकादिमें तथा तिब्बतसीमान्त तकके स्थानोंमें इस जातिका वास है। भूटियाओंसे 'शो' नामक स्थानवासी शेरपा और तत्पार्श्ववर्ती जाति पृथक् या स्वतन्त्र है। हिमालयके दूसरे पार तिब्बतके निकटवर्ती देशोंमें भूटिया जातिके वासभूमिमें रहो, किरेसा या काम्भूटिया, पहुपेन, वालेन, सर्प आदि पार्वतीय जातियोंका वास है। एतद्भिन्न निम्नतर उपत्यकादिमें तथा नेपालकी तराई प्रदेशमें (८) कुमहार, (९) दिमवार और (१०) बाहु बोटिया, दूरे या दरह्रो, माझु बोक्सा, चेपाङ, कुसुन्दा वार आदि जातियोंका वास है। एतदतीत (११) भूलवार और (१२) मुर्मि या तमर नामक और भी दो विभिन्न जातियां हैं।

काली या सारदानदीके पश्चिम कुमायुन प्रदेशमें १२वीं शताब्दीको राजपूतोंसे खोसजाति यहां आ कर वास करती है। इन लोगोंमें जो ब्राह्मण हैं उनकी उपाधि पांडे और उपाध्याय तथा क्षत्रियोंकी उपाधि सुख और थपा है। अभी नेपालकी समस्त जातियों के ऊपर इन्हींका आधिपत्य है। गोर्खा देखो।

सारे नेपालकी जनसंख्या पहाड़ियाओंके अनुमानसे चालीस लाखसे अधिक नहीं होगी। किन्तु नेपाली राजदरबारकी तालिकासे जाना जाता है कि यहांकी जनसंख्या बावन लाखसे ऊपर बढ़ गई है। गिनतीके समय सदुपायसे नहीं होनेसे यथार्थ जनसंख्याका निरूपण करना बहुत कठिन है।

पूर्वोक्त आदिमजातिके रहते भी यहां बोधनाथ और स्वयम्भूनाथके मन्दिरके निकट भूटान और तिब्बतवासी जातियोंका वास है। काठमाण्डु उपत्यकामें काश्मीरी और इराकी मुसलमान वणिक् अधिकतासे वास हैं। इन लोगोंने बहुत पहलेसे ही यहां उपनिवेश स्थापन कर रखा है।

नेपालमें पर्यटक देवदेवियोंके मन्दिर रहनेके कारण ब्राह्मण और पुरोहितकी संख्या भी बढ़ गई है। इनमें प्रायः प्रत्येक गृहस्थके एक स्वतन्त्र पुरोहित रहता है। ये सब पुरोहित धर्मयाजक और गुरु अपने अपने शिष्य या यजमानके प्रदत्त दक्षिणा, क्रियाकर्म कृत्यादि और ब्रह्मोत्तर जमीनकी आयसे अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। इन लोगोंमें जो राजगुरु हैं, वे ही सबसे अधिक माननीय हैं। राज्य भरमें ये एक प्रकारका प्रधान माने जाते हैं, उनका आदेश अमान्य करनेकी किसीमें क्षमता नहीं है। नेपालराज प्रदत्त जमीनके उपस्वत्वोंके सिवा ये लोग देशवासियोंके मध्य जातिगत किसी दोषकी मीमांसा करके भी प्रचुर अर्थ उपार्जन करते हैं। नेपालीगण ब्राह्मणकी विशेष भक्ति करते हैं। किसी प्रकारकी पीड़ा या हठात् विपद्के उपस्थित होने पर ब्राह्मणभोजनका नियम भी प्रचलित है।

ज्ञानवान् ब्राह्मणके सिवा यहां दैवज्ञोंका भी वास है। यद्यपि कोई कोई पुरोहिताई करते हैं तो भी दैवज्ञवृत्ति ही उनका जातीय व्यवसाय है। भविष्यत् जाननेके ऊपर नेपालियोंकी विशेष आस्था है। यहां तक कि एक किन्तु ज्योतिषियोंकी सुरवास्ता आदि दुरूह कार्य पर्यन्त जब तक ये बहु समालोचना निर्णय नहीं कर देते तब तक वे किसी काममें हाथ नहीं डालते।

वैद्यजाति—आयुर्वेद शास्त्रकी आलोचना करना ही इनका व्यवसाय है। नेपालके चाहे जिस अवस्थामें क्यों न हो प्रत्येक परिवारमें एक एक वैद्य नियुक्त रहता ही है। यहां जनसाधारणके उपकारार्थ कोई औषधालय नहीं है।

जो चित्र या हिसाब किताबका काम करते हैं वे नेवारजातिगत होने पर भी वर्त्तमानकालमें स्वतन्त्र श्रेणीभुक्त हुए हैं।

यहां व्यवहार जीवका विषय आदर नहीं है। यद्यपि की तरह अब पराजयता दोष नहीं पड़ती। पर जङ्ग बहादुरके शासनसे नेपालियोंको वर्त्तमान समयमें कुकार्य करनेका साहस नहीं होता। यहांके जो प्रधान विचारपति हैं उनका मासिक वेतन दो सौ रुपयेसे अधिक नहीं है। इस कारण विचारकको अपना समर्थनके लिये प्रतिवादियोंसे रिश्वत ले कर अपना काम निकाल लेते हैं।

बहुत पहले बङ्गालदेशके साथ नेपालका संस्रव था जिसका प्रकृत इतिहास यथास्थानमें दिया गया है। उसी समयसे नेपालमें बङ्गालियोंका व्यवसाय आरम्भ हुआ था। वे सब पूर्वतन बङ्गाली धीरे धीरे नेपाली आचार-व्यवहारका अनुकरण कर तथा वहांके प्रचलित हिन्दू, बौद्ध और पर्वतवासियोंकी आदि धर्मप्रथाके अनुवर्त्ती हो कर नेपालराज्यवासियोंमें परिणित हो गए हैं। वे लोग धर्म प्रचारके उद्देशसे वा अन्य किसी कारण वश स्वदेशसे विताड़ित हो कर अथवा वाणिज्यादि कार्य व्यपदेशसे इस पार्वत्य-प्रदेशसमूहमें आ उपस्थित हुए, इसमें कोई सन्देह नहीं।

पूर्वोल्लिखित जातियोंके अतिरिक्त नेपालमें जगह जगह और भी कितनी जातियोंका वास देखा जाता है। काठ-भूटिया जातिके वासस्थानके निकटवर्त्ती पर्वतमाला पर यकसिया और पक्षीया नामक दो जातियां रहती हैं। उनमें एक दूसरेके साथ सखाभाव है। नेपालमें जगह जगह पहि वा पधि, वायु वा कायु, खश वा खशिया कोलि, डोम, राभी, हरी, गड़वाली, कुनैत, दोगड़ा, कक्क, बम्ब, गक्कर, दर्दु और दूंबर तथा दक्षिण भागमें नेपालके तराई-प्रदेशके समीप तथा मध्यभागमें कोच, बोदो, धिमाल, कीचक, पल्ल, कुच्च, दहि वा दवि बोधपा और अवलिया-जातिका वास है। इस अवलिया जातिके मध्य और भी कितने थाक हैं, यथा—गरो टोलम्बुली, वतर वा वोर, कुदो, हाजङ्ग, धनुक, मरहा, अमात्, रैवात्, थामि प्रभृति।

जिन सब प्रधान प्रधान जातियोंका विषय पहले लिखा गया है। उनमेंसे जातिगत व्यवसायसे जिस जिस सम्प्रदायने विशिष्ट आख्या लाभ की है तथा जिस व्यवसाय के अभिधानसे जिस थाककी उत्पत्ति हुई है उसकी एक तालिका नीचे दी जाती है।

सुनारा, साकि (चमकार, चमार), कामी (लमार, बढ़ई) सोनार (स्वर्णकार), गाइन (वाद्यकर और गायन), भानर (गायक, इन लोगोंकी स्त्रियां वेश्या-वृत्ति करती हैं), दमाई (दरजी) आगरी (खननकारी), कुम्हल और किवरि (कुम्भकार), पो (डाम, ये लोग जल्लादका काम करते हैं), कुलु चमकार), नाय (कसाई), चमाखल (धांगड़ जो मैला फेंकता है), डोड़ वा युगी (वाद्यकर सम्प्रदाय), को (कमार, बढ़ई), धुसो (धातुशोधनकारी), मम (स्थपति), वालि (कृषक), नौ (नापित), कुमा (कुम्भकार), सङ्गत (धोबी) तप्टि (दरी आदिका बनानेवाला), गथा (माली), सावो (जोंक लगा कर लोहू निकालने-वाला), छिपि (रंगरेज), सिकमी, दकमी (गृहादि-निर्माता, राजमिस्त्री), लोहोङ्गकमि (पत्थरकट्टा)।

परिच्छद और अलङ्कार।

नेपालियोंमें गोर्खा जातिने ही वेशभूषा और अङ्ग परिपाटयमें अन्यान्य जातियोंसे श्रेष्ठता लाभ की है। ग्रीष्मकालमें यहांके लोग सफेद वा नीलवर्णका सूती कपड़ा बना कर पैजामा, कुर्त्ती वा घुटने तक लम्बा चपकनकी तरह अंगरखा पहनते हैं। शीतकालमें वे लोग पूर्वोक्तरूपसे परिच्छदादि धारण करते हैं सही, किन्तु उसमें रुई भर कर। जो धनी हैं, उनके लिये स्वतन्त्र व्यवस्था है। वे कुर्त्तेके भीतर बकरेके रोएं डाल कर उसे पहनते हैं। मस्तकशोभाके लिये ये लोग शिरस्त्राणका व्यवहार करते जो जरी आदिसे जड़े रहते हैं।

नेवारी लोग साधारणतः कमर तक कपड़ा पहनते हैं और शीत तथा ग्रीष्मके अवस्थाविशेषमें मोटे सूते वा पशमीने कपड़ेका व्यवहार करते हैं। इन लोगोंमें जो व्यवसाय द्वारा धनशाली हो गए हैं तथा जो अकसर कार्योपलक्षमें तिब्बतदेश जाया करते हैं, वे चूड़ीदार इजार, चपकनकी तरह लम्बा कुरता और मस्तक पर पशमनिर्मित टोपी पहनते हैं। हरसिद्धि नामक स्थानमें जो सब नेवारी रहते हैं वे स्त्रियोंके घघरेकी तरह पांवकी एंड़ी तक लम्बे कुरतेका व्यवहार करते हैं। इनके मत्थे पर सफेद वा काले कपड़ेकी टोपी रहती है।

नेपालमें और जितनी सब जातियां हैं, उनका पह-नावा पूर्वोक्त प्रकारका होता है। पर स्थानविशेषसे कुछ प्रभेद भी देखा जाता है। स्त्रियोंके मध्य वेशभूषामें विशेष वैलक्षण्य नहीं देखा जाता। सभी जातिकी स्त्रियां एक खण्ड कपड़ा ले कर उसे सामनेके भागमें घंघरेकी तरह कोंची करके पहनती हैं। इनकी परिधान-

तथा बहुत अपूर्व है। सम्मुखभागमें जो कपड़ेका कुञ्चित परिसमूह विलम्बित रहता है, वह प्रायः दोनों पैरको ढकता हुआ महीको छूता है। किन्तु पश्चाद्भागका कपड़ा उतना लटका हुआ नहीं रहता। राजपरिवारभुक्त रमणियां तथा द्वितीय श्रेणीके व्यक्तिकी स्त्रियां घघरेकी तरह चोली करके पहननेके लिये जिस कपड़ेका व्यवहार करती हैं, उसकी लम्बाई १०से ८० गज होती है। यह कपड़ा मलमलकी तरह बारीक होता है। स्त्रीयोंको भी इस प्रकारका कपड़ा पहन कर कभी घूमनेके लिये बाहर नहीं निकलती। धनी वा उच्च कुलोद्भव स्त्रियां अपने वंशकी मर्यादा और सम्मानकी रक्षाके लिये इस प्रकार यथासाध्य वेशभूषासे भूषित हो कर जनसमाजमें आदरणीय होती हैं।

इनकी स्त्रियां प्रायः चूड़ीदार पाजामा तथा पेशवाज और साड़ी पहनती हैं। भारतके समतलक्षेत्र वासियोंके जैसा ये कभी समूचे शरीरमें कभी कमर तक ही कपड़े का व्यवहार करती हैं। इनके सिर पर किसी प्रकारका विशेष परिच्छद नहीं रहता। नेपालरमणियां अपने बालोंका सिरके मध्यभागमें जूड़ा बांधती हैं, किन्तु अन्यान्य स्त्रियां चोटीकी तरह उसे पीठ पर लटकाये रहती हैं और उस प्रान्त भागको रेशम वा सूतसे बांध कर उसकी शोभाको बढ़ाती हैं।

नेपाली स्त्रियां अलङ्कारको बहुत पसन्द करती हैं। वे यथाशक्ति अपने अपने अङ्गकी शोभा बढ़ानेके लिये नाना प्रकारके आभरण पहनती हैं। धनीको स्त्री-कन्या जिस तरह मणिमुक्ताखचितादि अङ्कित तथा स्वर्ण और रौप्यका व्यवहार पहनती, उसी तरह पहाड़ी स्त्रियां भी अपनी अपनी सामर्थ्यके अनुसार पहनती हैं। धनी व्यक्ति निज परिवारकी अङ्गशोभाकी वृद्धिके लिये मस्तक पर स्वर्ण वा पीतलका बना हुआ फूल, गलेमें सोने वा प्रवालकी माला, हाथमें अङ्गूठि और बाला, कानमें स्वर्णफूल, नाकमें नथनी तथा इसी तरहके भूषणादि आभूषणको भी काममें लाते हैं। अल्पमूल्य होने पर भी अन्या-न्तीय कामिनीकुलके लिये सुलेमानी पत्थर, प्रवाल और इत्यादि कीमती पत्थरोंकी माला, चांदीके आभूषण वा लड़ी आदि नाना प्रकारके व्यवहार बनाती हैं।

स्त्रीमात्र ही सुगन्धित पुष्पकी विशेष अनुरागी होती हैं। वे शिरशोभाकी वृद्धिके लिये हमेशा सिर पर फूल गूंथे रहती हैं। त्योहार आदि उत्सवमें वे अपने बालोंको फूलके गुच्छेकी तरह सजाए रहती हैं। स्वामीके सदा बाहर रहने पर भी उनको पुष्पदर्शन बहुत प्रिय होती है। इसीसे जब कभी उन्हें फूल मिल जाता तब उसे सूंघनेके लिये वे हाथमें ले लेतीं अथवा प्रकृति सतीत्व मर्यादाकी रक्षाके लिये उसे सिर पर धारण करतीं और इस तरह अपनेको चरितार्थ समझती हैं।

राजपुरुषोंकी परिच्छदप्रथा स्वतन्त्र है। वे मस्तक पर जरी और मणिमुक्ताखचित ताज, अङ्गमें रेशमका कपड़ा अथवा बूटेदार जामा तथा घुटने तक लम्बा कुरता, पैजामा और पैरमें जरीका जूता पहनते हैं। सभी राजपुरुषोंके हाथमें चलनेके समय कमाल और तलवार रहती है। राजा जङ्गबहादुर अपने मस्तक पर जो मुकुट पहनते थे, उसका मूल्य एक लाख पचास हजार रुपये था। यह प्रकार सद्र सम्मान जब समय सिर पर टोपी, शरीरमें घुटने तक लम्बा कुरता, कमरबन्द पैजामा और जूता पहने रहते हैं। ये निज विभागके अध्यक्षगण साधारणतः वेशभूषामें अङ्गरेजी सेना-नायकोंका अनुकरण करते हैं।

खाद्य और पानीय।

नेपालराज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि जातियोंका विभाग होने पर भी खाद्याखाद्य विषयमें कोई पृथक्ता देखी नहीं जाती। यहां जो ब्राह्मण कहलाते हैं, उनका आचार-व्यवहार और खाद्य-प्रथा सभी भारतवर्षके समतलक्षेत्रवासी ब्राह्मणोंके जैसे हैं। किन्तु अधिकांश व्यक्ति अत्यन्त मांसप्रिय होते हैं। गोर्खा जातियां साधारणतः उत्तरस्थ पार्वतीय प्रदेश और तराई भूमिसे लाए हुए भेड़े आदिका मांस खाती हैं। ये लोग अत्यन्त शिकारप्रिय होते हैं। धनवान् सभी व्यक्ति शिकार विषयमें अच्छी तरह अभिज्ञ हैं। वे प्रायः सभी समय शिकार खेलनेको बाहर निकलते हैं और इच्छानुरूप हरिण, जंगली सूअर, मोषादि तथा मोर्पादि कुक्कुर-डेरी हरिण, पुरुषलोग आदि पर्वतजात पक्षियोंका शिकार कर उनका मांस खाते हैं।

वे लोग अकसर सुअरके बच्चेको पोसते हैं और इंगलैण्डकी प्रथाके अनुसार उन्हें खिला कर बड़ा करते हैं। बचपनसे पालित शूकर-शावक प्रतिपालकके वशीभूत हो जाते हैं। यहां तक देखा गया है, कि वे कभी कभी कुत्तेको तरह अपने मालिकका पदानुसरण कर बाहर निकलते हैं। नेवारगण महिष, भेंड़े, छागल, हंस आदि पक्षियोंका मांस खाना बहुत पसन्द करते हैं। यहांकी मगर और गुरुङ्ग जाति अपनेको हिन्दू बतलाती हैं। किन्तु उनके कार्यकलापादिके ऊपर लक्ष्य रखने से वे नीचश्रेणी से प्रतीत होते हैं। मगरजाति शूकरका मांस खाती है, महिषका नहीं। इसके विपरीत गुरुङ्गलोग महिषके मांसको बहुत पसन्द करते हैं, किन्तु सूअरके मांस छूते तक भी नहीं। लिम्बू, किराती और लेपचा आदि बौद्ध धर्मावलम्बियों को खाद्यप्रणाली नेवार जातिकी नाईं है।

अवस्थापन्न व्यक्ति-साधारण मांसादि भोजन और नानाप्रकारके विलास द्रव्य उपभोग करनेमें तो समर्थ है, पर अपेक्षाकृत दरिद्र और निम्नश्रेणीस्थ व्यक्तिके भाग्यमें मांसादिका भोग हमेशा बदा नहीं रहता। मांसप्रिय होने पर भी ये लोग अर्थाभाववशतः सब समय खाद्यके सिवा मांसका बन्दोबस्त नहीं कर सकते। इसी कारण साग सब्जी द्वारा वे लोग उदर-पूरण करनेमें बाध्य होते हैं। वे लोग अकसर चावल, साक सब्जी लहसुन, प्याज और मूली आदिकी तरकारी बना कर खाते हैं। मूली पचानेके लिये वे एक प्रकारकी चटनी बनाते हैं जिसको अन्नादिके साथ खाते हैं। इस चटनीको वे 'सिनको' कहते हैं। यह अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त और नितान्त दूषित होती है।

नेवारगण और अन्यान्य निम्नजातिके लोग मदिरासक्त होते हैं। वे अपनी अपनी पान-पिपासाको परितृप्त करनेके लिये चावल अथवा गोधूमसे एक प्रकारका निकृष्ट मद्य तैयार करते हैं जिसे रुकसी कहते हैं। यहांके उच्चश्रेणीके मनुष्य शराब नहीं पीते। कारण जो समाजके नेता हैं और जातीयतामें सबसे श्रेष्ठ हैं, वे शराबको मलमूत्रके समान समझते हैं। इस प्रकारके सभ्रान्त कुलशील भद्र व्यक्ति यदि मद्यपान कर लें, तो वे जातिसे च्युत किये जाते हैं। आश्चर्यका विषय यह है कि स्वदेशमें उत्पन्न मद्यकी अपेक्षा अभी नेपालमें विलायती ब्रेंडी और शैमपिन मद्यकी खूब आमदनी देखी जाती है।

नेवारजाति आमोद-प्रमोदके लिये जो मद्य पान करती है, उसे वह अपने घरमें ही बनाती है। इसके लिये राजाको कोई कर देना नहीं पड़ता। किन्तु यदि कोई इस रुकसी मद्यको बाजारमें बेचे, तो राजकर्मचारी उससे कर वसूल करते हैं। नेवारगण सब समय मद्य पान करते हैं, किन्तु वे कभी भी नशेमें बेहोश नहीं देखे जाते। केवल मेला आदि पर्वोत्सवमें अथवा धान्यादिके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें रोपनेके समय वे हदसे ज्यादा शराब पीते हैं। पार्वतीय कोल जातिमें जिस तरह 'हांड़िया' प्रचलित है उसी तरह इन लोगोंमें रुकसी मद्य।

उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणीके सभी मनुष्य चाय पीते हैं। निम्नश्रेणीमें जो नितान्त गरीब हैं, जिन्हें चाय खरीदनेको बिलकुल शक्ति नहीं है, केवल ऐसे ही मनुष्य चाय पीनेसे वंचित रहते हैं। यह चाय तिब्बत से लाई जाती है। ये लोग चायको दो प्रकारसे बनाते हैं,—(१) मसालादिके साथ एकत्र सिद्ध करके जो चाय बनाई जाती है उसका स्वाद मद, चीनी, नेबूके रस और जायफल मिश्रित द्रव्य सरीखा लगता है। (२) दूध और घीके संयोगसे जो चाय बनाई जाती है, उसका स्वाद बहुत कुछ अंगरेजी चाकलेट (Chocolate)से मिलता जुलता है। इसके अलावा नेपाली चाय-पिष्टककी खाना बहुत पसन्द करते हैं। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है;—ताजी चायकी पत्तियोंके साथ चर्बी, चावलका पानी अथवा खारयुक्त पदार्थ मिला कर उसे कुछ कालके लिये धूपमें छोड़ देते हैं। पीछे फेन आ जाने पर उसे चौकोर वा लम्बे बरतनमें भर कर आंच पर चढ़ाते हैं। यह दूध आदिके साथ भी खाया जाता है। चीन भाषामें इसका नाम तुङ्ग-काइ है। अंग्रेजी प्रणालीसे प्रस्तुत की हुई चाय विशेष आदरणीय नहीं होती। केवल उच्चश्रेणीके नेपाली जो अकसर कलकत्ते आया करते हैं, वे ही इसके पक्षपाती हैं।

विवाह-प्रथा

प्राचीन नेपालियोंमें बहुत विवाह प्रचलित थे। विवाह उन लोगोंके लिये एक प्रकारका व्यवसाय है। जो अपेक्षाकृत धनवान् हैं, वे एक से अधिक स्त्री रखनेसे बाज नहीं आते। बहु-पत्नीपरिग्रह रखना नेपालियोंमें साधारणसा विषय है। इस कारण १०।१० दारपरिग्रह करने पर भी किसी किसी धनी व्यक्तिकी आशा पूर्ण नहीं होती। बहु-विवाहका स्रोत नेपालमें जैसा प्रबल है, वैसा ही विधवाविवाह एकबारगी निषिद्ध है। पहले यहां हजारों विधवायें सती होती थीं। स्वामीकी मृत्यु पर पीछे इस अपूर्व आत्मत्यागसे नेपालियोंके कठोर हृदयमें एकमात्र धर्म-ज्योति जाग उठी थी। वे अब स्त्रियां भी धर्मजगत्‌में 'सती' नाम ग्रहण कर तथा भारतके पथ पर धर्मस्तम्भ स्थापन कर सारे जगत्‌में अपनी इस चिरस्मरणीय कीर्तिकी घोषणा करके सभी की पूज्य हुई हैं, इसमें बिन्दुमात्र भी संशय नहीं।

पूर्वतन राजपुरुषों को नियमादिकी उपेक्षाकारिता दोषसे दूषित रहनेके कारण तथा राजाके राज्यशासनमें शिथिल प्रयत्न होनेके कारण राज्यमें नियम विशृङ्खला उपस्थित होती है। राजपुरुषोंके स्वार्थविच्छेदसे राष्ट्र विप्लव होता है। इसी समय जङ्गबहादुरने राजाको सिंहासनच्युत करके स्वयं राज्यभार ग्रहण किया था। नेपालका राज्यभार अपने हाथमें ले कर भी जब राणा जङ्गबहादुरने देखा कि अब भी वे शत्रुपक्षीयको कुचक्रसे निष्कृति लाभ न कर सके तब उन्होंने नेपालकी प्रतिष्ठित व योग्य धनीकी कन्याओंका पाणिग्रहण कर शत्रुओंको चरितार्थ किया। इस विवाहका मुख्य उद्देश यह था, कि शत्रुदल अब किसी हालतसे उनसे विश्वासघात न करेंगे। इसी उद्देश्यके साधनेके लिये वे उस समय देशके गण्यमान्य और क्षमताशाली सभी घरोंमें अपनी पुत्र कन्या और भ्राताओंका विवाह दे कर सम्बन्धसूत्रसे आबद्ध हुए। इस प्रकार अपनेको विपद्से निरापद समझ कर वे १८५१ ई०में इंग्लैण्ड गए और वहां एक वर्ष रह कर दूसरे वर्षकी ८वीं फरवरीको स्वदेश लौटे। स्वदेशमें आ कर उन्होंने अंग्रेजोंके अनुकरणमें सामरिक दक्षता और फौजदारी आईन आदिमें हेर फेर करके देशमें सुव्यवस्था स्थापन की। इस समय उन्होंने सतीदाहको रोकनेके लिये कई एक नियम बनाए। सतीदाहके सम्बन्धमें उनकी व्यवस्थित नियमावली इस प्रकार थी—(१) पुत्रवती स्त्रियां इच्छा रहते भी सती नहीं हो सकतीं। (२) सती नाबालिगा कोई रमणी यदि स्वामीकी चिताको देख कर डर जाय और आचार प्रमादवश अग्निमें जीवन विसर्जन करनेमें कातरता प्रकट करे तो कभी भी वह रमणी अग्नि प्रवेश नहीं कर सकती। पहले यह नियम था, कि जो स्त्री मृतपतिके साथ जानेकी इच्छा प्रकट करती और यदि वह प्रज्वलित आ कर अग्निका भीषण रूप देख उसमें होना नहीं भी चाहती थी, तो भी उसे बन्धुबान्धव बलपूर्वक चितामें बैठा देते थे। यदि वह भाग जानेकी कोशिश करती, तो डण्डेके प्रहारसे उसकी खोपड़ी चूर कर देते थे जिससे वह उसी समय पञ्चत्वको प्राप्त होती थी। जङ्गबहादुरकी कृपासे अबलाओंने ऐसे नृशंस अत्याचारके हाथसे रक्षा पाई है। ब्राह्मणों और पुरोहितोंने यद्यपि इस जङ्गानुमोदित मतको 'अशास्त्र और अयौक्तिक तथा धर्मका व्याघातक' बतलाया था, तो भी उनके मतामतकी उपेक्षा करके नियमके स्थापनके लिये वे कृतसङ्कल्प हुए थे।

नीचजातिके दाम्पत्य प्रणयमें एक बार व्यभिचार हो जाने अथवा पतिके चरित्रमें सन्देह होने पर वे स्त्रियां भी छूट बतला देती हैं। यदि कोई स्त्री व्यभिचार विपथगामिनी हो जाय, तो पहले उसे घरमें सुनियमपूर्वक रख कर उसके चरित्र संशोधनकी चेष्टा करते हैं अथवा उसके पूर्व आचरित पाप कर्मोंके प्रायश्चित्त-स्वरूप उत्तम सम्भाषण व बातचीत द्वारा उसे पुनः सुपथ पर लानेकी कोशिश की जाती है। इतना करने पर भी जब देखते हैं कि कोई फल न निकला तब वे उसे यावज्जीवन कैदमें रख छोड़ती हैं। जो मनुष्य उपपति हो कर दूसरेकी पत्नी पर आसक्त होता है और उसे सत्पथसे भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करता है तथा यह बात यदि उस स्त्रीके स्वामीको मालूम हो जाय, तो निश्चय ही उसकी पत्नीका धर्मरक्षक उपपति है। ऐसा व्यक्ति जब कभी नजर आता है, तभी उसे खड्गाघात द्वारा जमीन पर

भुला देते हैं। सर जङ्गबहादुरने जब देखा कि इस प्रकार अवैध-प्रणयसे केवलमात्र जातीयताकी अवनति होती है और सतीत्व हरणसे स्वदेशकी ग्लानि तथा आत्म-ग्लानिकी सम्भावना है, तब उन्होंने इस नृशंस व्यापार-को रोकनेके लिये एक कानून निकाला। उस कानून-के अनुसार यदि कोई मनुष्य अवैधरूपसे उपपत्नी-प्रेममें आसक्त हो जाता, तो उसे राजदरबारमें उचित दण्ड मिलता था। दोषी व्यक्तिको कैदमें रख कर उसका विचार किया जाता था। विचारमें यदि वह दोषी ठहराया जाता, तो राजाके आज्ञानुसार उस रमणीका स्वामी आ कर सबके सामने अपनी स्त्रीके सतीत्वापहारी उपपतिको दो खण्ड कर डालता था। किन्तु उसकी मृत्युके ठीक पहले प्राणरक्षाके लिये उसे एक मात्र अदृष्ट-परीक्षा करनेकी दी जाती थी। इस परीक्षा-में दोषी व्यक्ति अपने जीवन-संहर्त्तासे कुछ दूरमें खड़ा रहता और उसे भागनेको कहा जाता था। यदि वह दोषी व्यक्ति किसी उपायसे अपनी जीवनरक्षा कर सकता, तो वह पुनर्जीवनलाभ करता था। उसका विचार फिर नहीं होता। इसके अलावा उस उपपतिको प्राण-रक्षाके और भी दो उपाय थे। किन्तु नेपाली इन उपायोंको अन्तःकरणसे हेय समझते थे। नेपालीके मतसे इस प्रकार घृणित प्रथाको अनुसरण करनेमें जातित्याग करनेकी अपेक्षा प्राणत्याग करना अच्छा है। फिर यदि वह स्त्री कह देती कि वह व्यक्ति उसका प्रथम उपपति नहीं है और न वह सबसे पहले उसे कुपथ पर ले ही गया है, तो राजा उस स्त्रीकी बात पर विश्वास करके विचा-रार्थ लाए हुए उपपतिको छोड़ देते थे। इस प्रकार अन्य स्त्रीके साथ गुप्त भावसे प्रणय करनेमें कितने ही सम्भ्रान्तवंशीय युवकगण कराल कालके गालमें पतित हुए हैं।

व्यभिचार और जातिभङ्गदोषके लिये पूर्व समयमें नियमके अनुसार नेपालियोंको गुरुतर सजा दी जाती थी। वैसे कार्यमें ऐसा दारुण दण्ड और पाशविक अत्याचार स्वभावतः ही विद्रोहका उत्तेजक था।

वर्त्तमानकालमें उक्त नियमोंमें बहुत हेरफेर हो गया है जिसका यहां पर उल्लेख करना निष्प्रयोजन है। नेवार, लिम्बू, किराती और भूटियाजातिके लोग बौद्ध होने पर भी उनमें हिन्दूधर्मका अद्भुत प्रभाव देखा जाता है। इस कारण उनमें विभिन्न श्रेणियोंकी उत्पत्ति हो गई है। इनके परस्परका आचार-व्यवहार प्रायः एक-सा है।

यहांकी नेवार आदि जातियोंकी अपेक्षा गोर्खाओंके विवाह-बन्धनमें कुछ विशेषता देखी जाती है। भारत-वासी हिन्दुओंके जैसा इन लोगोंमें भी स्त्री-वियोगका नियम नहीं है। स्त्री त्याग और उस स्त्रीका पत्यन्तर-ग्रहण ये दोनों कार्य यथार्थमें जातीय गौरवमें हानि पहुंचाने वाले हैं। नेवारलोग अपनी अपनी कन्याका बचपनमें ही एक बेलके साथ विवाह कर देते हैं। पीछे वह कन्या जब बड़ी और ऋतुमती होती है, तब उसके लिये एक उपयुक्त वर ढूंढ़ लाना पड़ता है। यदि उस नव-दम्पतीके मनमें प्रणयसञ्चार न हुआ और सर्वदा कलह होता रहा, तो वह कन्या अपने स्वामीके सिरके तकियेके नीचे एक सुपारी रख कर पीहर वा अन्यत्र चली जाती है। ऐसा करनेसे ही वह स्वामी समझ जाता है, कि उसकी नवविवाहिता पत्नी उसे छोड़ कर कहीं चली गई है। सम्प्रति यह स्वामीत्यागप्रथा विधि-बद्ध हो गई है। अभी सहजमें कोई स्त्री स्वामीको छोड़ कर अन्य स्थानमें नहीं जा सकती।

इनमें विधवा विवाह प्रचलित है। प्रायः इनमें किसी-को विधवा होना ही नहीं पड़ता। इनका विश्वास है, कि पतिसे पत्यन्तर ग्रहण करने पर भी बाल्यकालमें बेलके साथ उनका जो विवाह हुआ था उसके लिये मांगका सिन्दूर कभी धुल नहीं सकता।

इनकी स्त्रियां जब व्यभिचार दोषसे दुष्ट हो जाती हैं, तब उन्हें अति सामान्य सजा मिलती है। किन्तु जिस उपपतिके सहवाससे उसका पातिव्रत्य-धर्म नष्ट हो गया है वह उपपति यदि पत्नीपरित्यक्त स्वामीको पूर्व-विवाहका कुल खर्च न दे और उसकी स्त्रीका बिना कष्ट उठाए भोग दखल करनेकी चेष्टा करे, तो उसे कारागारकी हवा खानी पड़ती है।

ये लोग मृतदेहका दाह करते हैं और विधवाकी इच्छा होने पर वह सती हो सकती है। किन्तु उनमें विधवाविवाह प्रचलित रहनेके कारण और दूसरा पत्र

वहन करना नहीं पड़ता। इनमें कभी कभी दो एक अत्याचार भी होते देखा गया है।

दण्ड-प्रणाली।

प्राचीन कालमें यदि कोई भारी दोष करता था, तो उसका कोई अङ्ग कटवा दिया जाता अथवा उसका कोई कोई अङ्ग फोड़ दिया जाता या अथवा जेलकी सजा दी जाती थी जिससे उनके कभी कभी प्राण भी निकल जाते थे। सर जङ्गबहादुर जब इङ्गलैण्डसे लौटे, तब उन्होंने कितने नूतन कानून बना दिए और राज्य शासन सम्बन्धमें निम्नलिखित कुछ नूतन कानून प्रचार किये। जो व्यक्ति राजद्रोही होता वा राजकीय कार्य सम्बन्धमें विश्वासघातकता करता उसे यावज्जीवन-कारावास अथवा सिरच्छेदकी दण्डाज्ञा मिलती। गवर्मेण्ट सम्बन्धीय जो व्यक्ति रिश्वत लेता अथवा राजकीय तहबीलको नष्ट करता अथवा बिना किसीके जाने राजकोषसे रुपये ले कर दूसरेके यहां सूद पर चलाता उसे जुर्माना देना पड़ेगा और साथ साथ उसकी नौकरी भी छूट जायगी।

इस राज्यमें जो गोहिंसा नरहत्या करता है, उसी समय उसके सिरच्छेदकी आज्ञा होती है। यदि कोई मोह मायावशमें वा क्रोधादि द्वारा प्राणविघात की अथवा यदि बिना सोचे विचारे क्रोधके वशीभूत हो कर उसको हत्या कर डाले, तो उसे यावज्जीवन कैदमें रहना पड़ता है। राजनियम-उल्लङ्घनकारी व्यक्तिको उसके दोषके अनुसार जुर्माना देना होता अथवा कारावासभुगतना पड़ता है।

यदि कोई नीच जातिका मनुष्य अपनेको उच्च जाति बतलावे और इस कारण किसी उच्चजातीय व्यक्तिको अपना कार्य किया गया और उस जातिके लिये अनुरोध करे तथा उसे स्वजातिच्युत करनेकी कोशिश करे, तो उसे जुर्माना देना पड़ता, कैदकी सजा भोगनी पड़ती और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती है। कभी कभी लोहदागके रूपमें वह दूसरे स्थान भेज भी दिया जाता है। किन्तु यह जातिभ्रष्ट मनुष्य उपवासादि और प्रायश्चित्त करके तथा गुरु और पुरोहितको निर्दिष्ट अर्थदण्ड दे कर स्वजातिमें फिरसे मिल जाता है।

ब्राह्मणों और स्त्रियोंके सिरच्छेदका विधान नहीं है। भारी से भारी अपराध करने पर स्त्रियोंको कठिन परिश्रमके साथ चिरनिर्वासन होता है। ब्राह्मणोंके लिये भी यही एक नियम है। पर विभिन्नता यह है, कि ब्राह्मणगण कारागारमें जा कर जातीय गौरव नाशके साथ साथ ही जातिच्युत होते हैं।

सैन्यविभाग।

राज्यरक्षा और राज्यशासन सम्बन्धमें नेपालराजको बहुत रुपये खर्च करने पड़ते हैं। जिन दुर्नियमसे सेनाओंको युद्धविद्या सिखाई जाती है, कमान और बन्दूक आदि तैयार करनेमें भी वैसे ही अधिक परिश्रम और रुपये खर्च करने पड़ते हैं। यहां राजके तनखाहोंमें प्रायः तीस हजार सैनिक हैं। यह सेनादल २६ विभिन्न रेजिमेण्टमें विभक्त है। इसके अलावा नेपालराजके नियमानुसार कुछ मनुष्य सैनिक विभागमें निर्धारित समय तक युद्धविद्या सीख कर घरमें भी बैठ सकते हैं। समय पड़ने पर वे ही आवश्यक हो कर लड़ाईमें जाते हैं। राज्यमें ऐसे नियमका प्रचार रहनेके कारण नेपालराज को युद्धके समय कोई कठिनाई उठानी नहीं पड़ती। इच्छा होने पर वे एक दिनमें ७० हजार शिक्षित सेनाएं इकट्ठा कर सकते हैं।

अङ्गरेजी प्रथाके अनुसार यहांकी सेना शिक्षित है। किन्तु सभी विषयमें अङ्गरेजी नियम भी नहीं। सैन्यका विभाग और इनका नायक और अधिनायकादि पद सभी अङ्गरेजोंके अनुरूप होने पर भी उनकी अङ्गरेजोंकी तरह क्रमिक पदोन्नति नहीं है। राजपुत्र वा राजकुटुम्ब प्रति वर्ष उच्च पद पाते हैं, किन्तु जो यथोचित शिक्षण पाते हैं, वे प्रायः सामरिक विभागका निम्नपद भोग करते देखे जाते हैं, उनकी क्रममें उन्नति नहीं होती।

सैनादलका वेश भिन्न परिच्छद नीलाङ्का पगड़ी पहनना और पैजामा है। सामरिक योद्धाओंको लाल रङ्गका अंगरखा जाता इजार, उनकी छाप होती पैजामे जूता और सिर पर टोपी तथा स्वदलको चिह्नयुक्त दबजियोंको तकमी रहती है। कमानवाले सैनादलको पोशाक नीली होती है। अश्वादि परिचालनका काम

नहीं रहनेके कारण नेपालराज्यकी अश्वारोही सेनाकी संख्या बहुत थोड़ी है। यहां बारूद, गोले और गोली आदि तैयार करनेका कारखाना है।

आज भी सैन्य-शिक्षाके लिये कुचकवायद होती है। पार्वतीय प्रदेशमें ये लोग युद्धमें विलक्षण पटु होते हैं। अङ्गरेजोंके साथ इनका जो दो बार युद्ध हुआ था उसमें इन्होंने खूब वीरता दिखलाई थी। इनकी कमान, बन्दूक और अन्यान्य अस्त्रादि उतने सुविधाजनक नहीं हैं। फिलहाल नेपालराजके पास ४ पहाड़ी कमान (Mountain battery) और ४५ हजार सेना है। जब सरदार बाबरजङ्गने नेपालीसेनाका चालक हो कर अङ्गरेज-सेनाध्यक्षको अपने व्यवहारसे परितृप्त किया था, तब अङ्गरेजराजने तब्बुलके निदर्शन-स्वरूप उक्त चार यन्त्र नेपालराजको उपहारमें दिये थे। राजाके अस्त्रागारमें असंख्य सामान रहने पर भी प्रतिदिन यहां कमान और अस्त्रादि तैयार होते हैं।

दास-प्रथा।

नेपालमें आज भी दासदासीको विक्रयप्रथा प्रचलित है। सामान्य अवस्थापन्न व्यक्ति भी अपने अपने गृह कार्यकी सुविधाके लिए क्रीतदास खरीदा करते हैं। किन्तु यह दास-प्रथा अफ्रिकाके पूर्व प्रचलित दासव्यवसायसे भिन्न है। यहांके दासगण केवल घरके काम काज करते हैं और एक तरहसे स्वाधीन भावमें रह सकते हैं किन्तु अफ्रिकाके विक्रीत दासगण अपने प्रभुसे समय समय पर विशेषरूपसे निगृहीत होते हैं। नेपालके जो दासदासी हैं, वे बहुत कुछ भारतवासीके घरमें रक्षित दासदासियों से होते हैं।

नेपालको वर्त्तमान दाससंख्या प्रायः ४२ हजार है अगम्यागमन वा जातिभ्रंशोत्सर्ग आदि निकृष्ट पापोंमें लिप्त होनेसे अथवा जातिगत कोई दोष करनेसे वह स्त्री वा पुरुष राजाके आदेशसे परिवार सहित क्रीतदासरूपमें बेचा जाता है। इस प्रकार नेपालकी दाससंख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है।

क्रीतदासी इस भी गृहकार्यमें व्यस्त रहती हैं। इसके अलावा उन्हें लकड़ी काटना, सकरे, घोड़े आदिके लिये घास काटना आदि कितने पुरुषोचित कार्य भी करने पड़ते हैं। कोई कोई धनी इन सब दासियोंको अपने घरसे बाहर निकलने नहीं देते। किन्तु वे अक्सर अधिकांश समय स्वेच्छासे विचरण करती हैं। इन सब रमणियोंका चरित्र उतना पवित्र नहीं होता। वे प्रायः गृहस्थित किसी न किसी व्यक्तिके साथ अवैध-प्रणयमें आसक्त रहती हैं। यदि खरीदनेवाले गृहस्वामीके सहवाससे उस दास-रमणीके गर्भसे सन्तानादि उत्पन्न हो, तो वह स्त्री अपनी स्वाधीनता पुनः पा सकती है। उस समय वह कभी भी उस घरका परित्याग करना नहीं चाहती। यहां क्रीतदासीका मूल्य १५०)से २००) और दासका मूल्य १००)से १५०) रु० है।

देवदेवीकी पूजा और उत्सवादि।

देवद्विजमें विशेष भक्तियुक्त नेपालमें असंख्य देवदेवियोंके मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। यहां २७३३ उत्तमयोग्य तीर्थक्षेत्र वा देवालय हैं और उन सब देवमन्दिरोंमें पर्वोपलक्षमें उत्सव हुआ करता है। प्रायः वर्षके प्रत्येक दिन एक दो वा ततोधिक पर्वोत्सव आते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है, कि वर्षभरमें छः मास पूजा और उत्सवादिमें व्यतीत होते हैं। इस देशमें आनेसे हो मालूम पड़ेगा कि यहां पार्वण और उत्सवका शेष नहीं है। आश्चर्यका विषय यह कि यहाके लोग इन सब उत्सवोंमें सदा लिप्त रहते हुए भी किस प्रकार अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। प्रत्येक निर्दिष्ट पर्वदिन और तज्जन्य उत्सवादि सम्बन्धमें प्रचलित प्रवाद है। विस्तारके भयसे उनका विवरण नहीं दिया गया। यहां जो सबसे प्रधान प्रधान पीठ वा देवालय हैं उनके पर्वदिन और उत्सवादिकी उत्पत्तिकी कथा बहुत संक्षेपमें दी जाती है।–

१। मत्स्येन्द्रनाथयात्रा—नेपालके अधिष्ठात्रदेवता मत्स्येन्द्रनाथके विषयमें प्रचलित प्रवादादि यथास्थानमें वर्णित हैं। पाटनके अन्तर्गत भोगमती ग्राममें यह मन्दिर और लिङ्ग स्थापित है। वर्षके प्रथम दिन (वैशाखकी १ली तारीख)को प्रथम उत्सव आरम्भ होता है। इस दिन विग्रहस्थानसे बाद राजाकी तलवारको मूर्त्तिके पाददेशमें रख कर उसकी पूजा करते हैं। पूजाके बाद एक सुसज्जित रथ पर मत्स्येन्द्रनाथकी मूर्त्तिको बिठा कर पाटन ले जाते और वहां प्रायः एक मास तक रख

और पुनः पुष्पादिने और मध्याह्नमें वे गमली पासमें जाते हैं। इस दिन विपदको बचनेके लिये और स्थान स्थान पर वह यावत्क्रम और वह प्रजाको मूर्ति का दर्शन कराते हैं। इससे लोगोंको यह बताया जाता है कि देवता गरीब नहीं होने पर भी उन गुरुको (बन्धन) के सिवा और कुछ भी दे नहीं आते। वे मर्तोको यह बतलाते हैं, कि अपनी अपनी अवस्था पर सन्तुष्ट रहना ही अच्छा है। इसका नाम गुरुकी माला अष्टक है। पाटनके छोटे समय राजमें जहां महां देवकी के याचादके लिये विशेष रखा जाता है, वहांके पशिमाधिनाथ बाबा दुपादिका और बनाने है। नेपालमें भी नेपालके पशिष्ठाता पायोवलोकितेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ देवके दो पर्व दिन निर्दिष्ट हैं। विशेष विवरण पाटन और मत्स्येन्द्रनाथ शब्दमें देखो।

२। नेतादेवीकी यात्रा वा देवीयात्रा।

नेवादेवी देखो।

३। पशुपतिनाथयात्रा। पशुपतिनाथ देखो।

४। वज्रयोगिनी-यात्रा—यह बौद्धों का उत्सव है। बौद्धके अलावा हिन्दू लोग भी अभी उनकी उपासना करते हैं। सङ्कु नामक पर्वत पर इस देवीका मन्दिर है। चैत्र मासको इस उत्सवका सूत्रपात होता है। उस समय लोग एक खाटके ऊपर वज्रयोगिनी-मूर्ति को रख कर और पर चढ़ा सङ्कु नगरका प्रदक्षिण करते हैं। उस मन्दिरके सामने ही वज्रयोगिनीका मन्दिर है। देवीमूर्ति के सामने अग्नि हमेशा प्रज्वलित रहती है और वहां एक मनुष्यका मस्तकाकृति भी रखी हुई है।

५। सिथीयात्रा—काठमाण्डु और ललितपुरवासी मध्यवर्ती विष्णुमतीनदीके किनारे २१ ज्येष्ठको यह उत्सव होता है। भोजनके बाद दोनों देशके उपस्थित व्यक्तिगण दो दलोंमें विभक्त हो जाते और दोनों दल एक-दूसरे पर ढेला फेंकना शुरू कर देते हैं। पूर्व समयमें यह प्रथा थी कि जो कोई ढेले से आहत हो मूर्च्छित हो रहता था उसे विपक्ष दलके लोग निकटवर्ती काई माई मन्दिरमें ले जा कर बलि देते थे। अभी राजाके आदेशसे ढेलोंका फेंकना बन्द हो गया है।

६। गोधिया पर्व वा गवयात्रा—भाद्रपदके नामक उत्सवको स्वदेशमें गिवातु भाषामें वो इस उत्सवका कहते हैं। नेवार जातिके उस समय महोत्सवसे घरको एक प्रतिमूर्ति बना कर राहमें घूमते और मनोरथ मनुष्यसे भीख मांगते हैं। १५ भाद्रको उत्सवके बाद बालकगण उस मूर्ति को जला कर आमोद-प्रमोद करते हैं।

७। बांड़ा-यात्रा—बौद्धमार्गी नेवार जातिके पुरोहित ८ श्रावण और ११ भाद्रके दो दिन प्रत्येक गृहस्थके यहां जा कर चावल और द्रव्यादि मांगते जाते हैं। इस भिक्षावृत्तिका अर्थ यह है कि प्राचीनकालमें बांड़ाओं के पूर्वपुरुष बौद्ध-पुरोहितगण भिक्षुक थे। उन महात्माओंने केवल उनके अनुष्ठेय कार्य का पालन करनेके लिये वर्ष भरमें केवल दो बार भिक्षावृत्तिका अवलम्बन करते हैं। इस भिक्षादान द्वारा वे एक वर्ष तक गुजारा करते हैं।

इस दिनमें नेवारगण अपने-अपने घर और दूकान को फूल आदिसे सजाते और उन चावल रखनेवाले एक एक टोकरा चावल तथा और दूसरे दूसरे द्रव्यको ले कर दूकान या दरवाजेके आगे रखते हैं। बांड़ागण जब दरवाजे हो कर गुजरते हैं, तब सभी उन्हें थोड़ी थोड़ी चावल दे कर उनको विदा करते हैं। यद्यपि नेवारके उन निर्दिष्ट दिनोंके सिवा और दूसरे दिन गृहस्थके यहां भिक्षा नहीं मांगते, तथापि बांड़ाओंकी इस प्रकार भिक्षा दे कर विदा करनेकी रक्षा स्पष्ट करे, तो बिना प्रचुर अर्थव्यय किये उनकी यह मनस्कामना पूर्ण नहीं हो सकती। इस उत्सवमें जो बांड़ा सबसे पहले चौकठ पर पहुंच जाता है, उसे कुछ अधिक दान मिलता है। यदि गृहस्थ इस उत्सवके उपलक्षमें राजाको निमन्त्रण करे, तो राजाके खानेके लिये एक दोपहर भोजन... इस प्रकार आत्मसम्मानकी रक्षा करनी पड़ती है।

८। राखी-पूर्णिमा—श्रावणमासकी पूर्णिमाके दिन बौद्ध और हिन्दू दोनों सम्प्रदाय इस उत्सवमें योगदान करते हैं, किन्तु दोनों दलके पर्वादि स्वतन्त्र हैं। बौद्धगण इस दिन पवित्र नदीमें स्नान करके देवदर्शनके लिए मन्दिर जाते हैं। उधर ब्राह्मण पुरोहितगण अपने शिष्य या यजमानके हाथमें पुरोहित के तार निर्मित राखी

कहते हैं, बांधते हैं और उसके लिए उनसे कुछ दक्षिणा वसूल करते हैं। वस्तुतसे हिन्दू पुण्य कमानेके उद्देशसे गोसाईंथान नामक पर्वतके तटवर्त्ती नीलकण्ठह्रद या गोसाईंकुण्ड नामक स्थानमें स्नान करनेको जाते हैं।

८। नागपञ्चमी—प्रति वर्ष श्रावणमासकी पञ्चमी-तिथिको नाग और गरुड़के उपलक्षमें यह उत्सव होता है। चाङ्गुनारायणके मन्दिरमें जो गरुड़मूर्त्ति प्रतिष्ठित है, नेपालियोंका विश्वास है, कि उस दिन उस मूर्त्तिके शरीरमें युद्धक्लेशके कारण पसीना आ जाता है। पुरोहितगण एक तौलियासे उस पसीनेको पोंछ डालते हैं। इस प्रकार सभीका विश्वास है, कि उस तौलियाका एक सूता भी सर्पविषका विशेष उपकारी है।

१०। जन्माष्टमी—श्रीकृष्णके जन्मोपलक्षमें यह उत्सव होता है।

११। गोइ या गाभीयात्रा—केवलमात्र नेवारजातिके मध्य यह उत्सव प्रचलित है। किसी गृहस्थ परिवारके किसी व्यक्तिके मरने पर उस घरके सब कोई मिल कर १ भादोंको गाभीरूप धारण करते और राजप्रासादके चारों ओर भ्रमण और नृत्य करते हुए घूमते हैं।

१२। वाघयात्रा—गाभीयात्राके बाद ही २ भादोंको नेवारगण बाघको सजा कर नृत्यगीत करते हैं। यह गाभी-यात्राके अनुरूपमात्र है।

१३। इन्द्रयात्रा—२६ भादोंको काठमण्डू नगरमें यह उत्सव होता है और ८ दिन तक रहता है। प्रथम दिन राजप्रासादके सामने एक उच्च काष्ठकी ध्वजा गाड़ी जाती है और राज्यका नर्त्तकसम्प्रदाय मुखस पहन कर प्रासादके चारों ओर घूम घूम कर नृत्यगीतादि करते हैं। तृतीय दिन राजा कुछ बालिकाओंको बुला कर कुमारीपूजा करते हैं। पीछे उन्हें गाड़ी पर चढ़ा कर नगरमें घुमाते हैं। जब वे सब कुमारियां नगरकी परिक्रमा कर राजप्रासादमें पुनः पहुंचती हैं, तब एक गद्दीके ऊपर राजा स्वयं बैठते अथवा राज-तलवारको ला कर उसके ऊपर रख देते हैं। इस समय राजसरकारभुक्त कर्मचारिगण नाना प्रकारके उपढौकन और नजराना दाखिल करते हैं। उसी दिन अनन्तचतुर्दशी होती है। गोर्खाराज पृथ्वीनारायणने इस पर्वके दिनमें दलबलके साथ काठमण्डू नगरमें प्रवेश किया था। जब राजाके बैठनेके लिये गद्दी बाहर निकाली गई, तब गोर्खाराज उस गद्दी पर बैठे। नेवार लोग सबके सब उत्सवमें मग्न और नशेमें चूर थे, इस कारण वे विपक्षके प्रति अस्त्रधारण कर न सके। नेवारराज नगरसे भाग गए, पृथ्वीनारायणने निर्विवादसे नेपालराज्यको दखल कर लिया। इस पर्वके दिन यदि भूकम्प हो, तो विशेष अनिष्टपातकी सम्भावना रहती है, ऐसा नेपालियोंका विश्वास है। यही कारण है कि नेवारगण भूमिकम्पके बादसे आठ दिन तक पुनः इस उत्सवको मानते हैं।

१४। दशहरा या दुर्गोत्सव—महालयाके बाद विजया दशमी तक दश दिन यह उत्सव होता है। भारतवर्षमें दशहरा उत्सवके उपलक्षमें जो सब कर्मादि विहित हैं, यहां भी ठीक वही सब हैं। उत्सवका स्थितिकाल दश दिन है। इन दश दिनोंमें अनेक भैंसे और बकरेकी बलि दी जाती है, किन्तु बङ्गाल तथा बिहारके जैसे मट्टीकी दुर्गा-प्रतिमा नहीं बनाई जाती। प्रथम दिन अर्थात् घट-स्थापनके समय ब्राह्मण लोग पूजाके लिये निर्द्धारित स्थान पर यवादि पञ्च शस्य बोते और पवित्र नदीके जलसे उसे सींचते हैं। दसवें दिन वे शिष्यादिकी शिखामें जौके अङ्कुर खोंस देते और राखीकी तरह इसमें भी दक्षिणा पाते हैं।

१५। दीवाली—धनाधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवीकी पूजाके उपलक्षमें कार्त्तिककी अमावस्याको यह पर्वोत्सव मनाया जाता है। इस दिन नगरवासी सारी रात जुआ खेलते हैं। राजनियमसे जुआ खेलना निषिद्ध होने पर भी इस उत्सवमें तीन रात और तीन दिन तक कोई रोकटोक नहीं है। जुआड़ी स्वर्ण रौप्य आदिका दांव रखते हैं। सुनते हैं, कि कभी कभी वे अपनी स्त्रीको भी दांव पर रख कर खेलते हैं। एक समय किसी मनुष्यने अपना हाथ काट कर दांव पर रखा था। जब जीत उसकी हुई, तब उसने प्रतिपक्षसे कहा, कि उसे भी हाथके बदले हाथ देना होगा अथवा जीता जुआ जो कुछ द्रव्य उसके पास है, वही लौटाना पड़ेगा। ऐसा मनुष्य संसारमें बहुत कम है।

१६। खिचा-पूजा—केवल नेवार जातिमें यह उत्सव होता है। १६ कात्तिकको नेवारगण सिर्फ कुत्तोंकी पूजा करते हैं। इस दिन नेपालके प्राय: सभी कुत्तोंके गलेमें पुष्पमाला शोभित देखी जाती है। भविष्य काक और बैल आदि जीवपूजाके लिये भी यही प्रकारका दिन निर्दिष्ट है।

१७। भाई-पूजा या भ्रातृ-द्वितीया—कात्ति'की यमद्वितीयाको रमणियां अपने अपने भाईके घर जाती हैं और भाईके पांव धो कर उनके कपालमें तिलक लगाती और गलेमें माल्यादि पहना कर मिष्टान्नादि भोजन कराती हैं। भाई भी सन्तोष देनेके लिये बहनको कपड़ा अलङ्कारादि देते हैं।

१८। बाला चतुर्दशी या मेला—१४ अगहनको यह उत्सव होता है। इस दिन देशवासिगण पशुपतिनाथ मन्दिरके ऊपर पार्श्ववर्ती जङ्गलको जा कर बन्दरोंके भोजनके लिये चावल, चना और मिष्टान्नादि जमीन पर छिड़क देते हैं।

१९। कात्तिकी पूर्णिमा—इस पर्वोपलक्षमें कुछ लोग अपने बहुतसी स्त्रियां पशुपतिनाथ मन्दिरमें जाती हैं और एक मास तक उपवास करती हैं। वे इस समय केवल विषयके स्नानजल जलके सिवा और कुछ भी नहीं खाती। मासके शेष दिन अर्थात् कात्ति'की पूर्णिमाको उपवासके अन्तमें वे जलपानादि करती हैं। इस दिन पशुपतिनाथका मन्दिर रोशनीसे भरा भास करता है और सारी रात नाच गान होता रहता है। दूसरे दिन शिव पर्वतके पर देवमन्दिर बने हैं, वह ये आसपासके ऊपर रमणियां ब्राह्मण भोजन कराती और अपने कुटुम्बादिके समवाय से घर घर वापिस जाती हैं।

२०। गणेश-चौथ या चतुर्थी—माघमासमें गणेशकी भक्तिके लिये यह उत्सव होता है। सारा दिन उपवास करके रातको भोजनादि करते हैं।

२१। वसन्तोत्सव या श्रीपञ्चमी—यह उत्सव उस सीमाके दिनमें मेला होता है।

२२। होली या होल-लीला—फाल्गुन मासके शेष दिनमें यह उत्सव होता है। इस दिन राज-प्रासादके सामने एक 'चीर' या काठखण्डको ठहरा कर उसमें निशानादि शोभित करते हैं और रातको उसे जला देते हैं। नेपालियोंमें प्रवाद है, कि इस प्रकार वे गत वर्षको जला कर नूतनवर्षके आगमनकी प्रतीक्षा करते हैं।

२३। माघी-पूर्णिमा—माघमासमें नेवारयुवकगण प्रतिदिन पूतसलिला बाघमतीके जलमें स्नान करते हैं। जिसका कुछ माहात्म्य रहता है, माघके शेष दिनमें उनमेंसे कोई तो हाथ पर, कोई पीठ पर, कोई वक्ष पर, कोई पद पर अग्नि जला कर सुसज्जित डोली पर चढ़ते और अपने अपने आत्मीयसे देवदर्शनको जाते हैं। दूसरे दूसरे आत्मीय भी अपने अपने हाथमें एक एक विशुद्ध जलपूर्ण कलसी ले कर उनके पीछे पीछे चलते हैं। उस कलसीके छिद्रसे बुंद बुंद जो पानी गिरता है उसे लोग पवित्र समझ कर सिर पर ले लेते हैं। इस दिन अनेक मनुष्य अग्नि जलाते हुए राह पर चलते हैं इस कारण नेवारगण आंखमें चश्मा लगाए रहते हैं। यह माघ उत्सव सर्वतोभावमें हास्योद्दीपक है।

२४। घोड़ा-यात्रा—एक अश्वमेला। १५ चैत्रको राजाके आदेशसे राजकर्मचारिगण अपने अपने घोड़े ले कर खूब सजधजके मैदानमें पहुंचते हैं। वहां सर जङ्गबहादुरकी प्रतिमूर्त्तिके निकट राजा और दूसरे दूसरे कर्मचारी उपस्थित होते हैं। सभी अपने अपने घोड़े पर सवार हो घुड़दौड़ करते हैं। जिस स्थानके ऊपर जङ्गबहादुरकी मूर्त्ति स्थापित है उसी स्थानके निर्माणके वार्षिक उत्सवमें एक बड़ा मेला लगता है। उसमें पहले छावनीके कर्मचारिगण खूब कवायदके लिये निर्दिष्ट मैदानमें जा कर तम्बू लगाते हैं। यहां दोकानोंके जैसा इस दिन भी रातको अनवरत आमोद और जुआ खेला जाता है। शेष दिनमें प्रतिमूर्त्तिके चारों ओर आलोक मालासे सुसज्जित करके उत्सव करते हैं।

२५। पिशाच-चतुर्दशी—यह भयङ्करी मायाका देवीका पर्वदिन है। चैत्र कृष्णाष्टमीमें नाना जातिके उस देवमन्दिरमें भीड़ जा कर इकट्ठे होते हैं। उस दिन देवीके नामसे नरबलि होती है। त्रयोदशीके दिन कुमार और कुमारियोंको भोजन कराया जाता है और पिशाच

चतुर्दशीका व्रतकथा आरम्भ होता है। उस दिन रात भर दीप जलता रहता है और अन्निरचा की जाती है दूसरे दिन सवेरे वज्रेश्वरी देवीको एक रथ पर चढ़ा कर नगरकी परिक्रमा करते, पीछे मन्दिरके निकटस्थ महादेवमूर्त्तिके पार्श्वमें रख देते हैं। देवीका रथयात्रापर्व बहुत धूमधामसे मनाया जाता है।

२६। पञ्चलिङ्ग-भैरवयात्रा—आश्विनकी शुक्ल पञ्चमीको यह उत्सव आरम्भ होता है। प्रवाद है, कि इस दिन महाभैरव आ कर खड्गिनी वा काशायिनी देवीके साथ उक्त स्थान पर केलोविहार करते हैं।

२७। होल्या-यात्रा—कान्तिपुर-स्थापनके बहुत पहलेसे देवमाहात्म्यप्रकाशके लिये इस उत्सवकी सृष्टि हुई है।

२८। कृष्णयात्रा—देवकीर्ति-घोषणार्थ महोत्सव। कान्तिपुरस्थापनके पहलेसे यह प्राचीन उत्सव नेपालमें प्रचलित है।

२९। लाखिया-यात्रा—शाक्यमुनि जब बोधिद्रुमके नीचे ध्याननिमग्न थे, उस समय इन्द्र उनका ध्यान तोड़नेके लिए आए, लेकिन उनके बलसे पराभूत हो वापिस चले गए। पीछे ब्रह्मादि देवगण शाक्यबुद्धको आशीर्वाद देने आए। इसी उद्देश्यसे इस उत्सवकी सृष्टि हुई है।

३०। भैरवी-यात्रा और विषकाटी उत्सव—भातगाँव नगरके अधिष्ठाता भैरवदेवके उद्देश्यसे नेवारजातिका उत्सव। यह उत्सव दो तीन बैशाखको मनाया जाता है। इसके पास ही शक्तिस्वरूपिणी भैरवीमूर्त्ति नेतादेवीका मन्दिर है। इस दिन भैरवमन्दिरके सामने एक वक्रीकाष्ठ रख कर उसकी पूजा करते हैं। इसीका नाम लिङ्गयात्रा वा विषकाटी है।

३१। अमिताभ-बुद्धका उत्सव—स्वयम्भुनाथके मन्दिरसे नानाप्रकारके पवित्र उपकरण और साजसज्जादि तथा अमिताभ बुद्धके शिर परका मुकुट ला कर काठमण्डूमें यह उत्सव होता है। पूजादिके बाद बाँड़ा-नामक बौद्ध ब्राह्मणोंको धान्यादि शस्य और नानाप्रकारके द्रव्यादि दान करते हैं। तदनन्तर देवोच्छिष्ट नैवेद्यादिको रास्ते पर छिड़क देते हैं। इस समय आगत बौद्ध-नेवारीगण बुद्धका पवित्र प्रसाद पानेको आशासे गोलमाल करते हैं। पीछे बाँड़ा-भोजन होता है। इसके बाद वो सब कोई मिलकर बाहर निकलते हैं।

३२। रथयात्रा—यह इन्द्रयात्रासे स्वतन्त्र है। १७४०-१७५० ई०के मध्य राजा जयप्रकाशमल्लके राजत्वकालमें इस उत्सवकी सृष्टि हुई। एक समय सात वर्षकी एक बाँड़ा-बालिकाने प्रलाप करते हुए कहा कि वह कुमारी देवी वा शक्तिकी अंशसम्भूत है। लेकिन राजाने उसे पाखण्डी समझ कर नगरसे बाहर निकाल दिया और उसकी जमीन जमा सब जप्त कर ली। उसी रातको रानी वायुरोगसे पीड़ित हुई। उनके उन्मत्त प्रलापसे मालूम हुआ कि उन पर देवीका क्रोध है। यह देख कर राजा स्तम्भित हो रहे। उन्होंने सबके सामने उस बाँड़ाबालिकाको ईश्वरीय अंशोद्भव बतलाया और उसी समयसे उसकी पूजादि करके देवीका क्रोध शान्त किया। पीछे राजाने उस कन्याको स्वदेशमें ला कर बहुत-सी जागीर दीं। प्रतिवर्ष उस कन्याको रथ पर चढ़ा कर नगरके चारों ओर घुमाते थे। इसीसे रथयात्रा उत्सवकी सृष्टि हुई है। जिस तरह उड़ीसामें जगन्नाथ, बलराम और उनके बीचमें सुभद्रा देवी अवस्थित है, उसी तरह यहाँ भी देवीकी मूर्त्तिके रक्षणावेक्षणके लिये दो बाँड़ा बालक नियुक्त रहते हैं। वे भैरव वा महादेवके पुत्र गणेश और कुमारके रूपमें गिने जाते हैं। वह कुमारी-अष्ट-मातृका वा कालीदेवीकी तरह पूजित होती है।

३३। स्वयम्भूमेला वा—स्वयम्भूत्पत्तिक-दिन—स्वयम्भूदेवके जन्मदिन-उपलक्षमें आश्विनी पूर्णिमाको यह उत्सव होता है। वर्षाके आरम्भमें ज्येष्ठमासको स्वयम्भूनाथकी चूड़ा आदिको वस्त्रसे ढक देते हैं। इस दिन मन्दिरावरक वस्त्रका उन्मोचन किया जाता है। बौद्धधर्मावलम्बियोंके लिये यह महापुण्यका दिन है। इस दिन नेपालको सभी उपत्यकाओंमें बुद्धकी पूजा होती है।

३४। कोटी-मत्स्येन्द्रनाथ-यात्रा—काठमण्डू नगरका एक वार्षिक महोत्सव। पाटनमें जिस तरह पद्मपाणिका उत्सव होता है, यहाँ भी उसी तरह समन्त-भद्रके उद्देशसे एक उत्सव होता है। किन्तु समन्त-भद्रका नाममाहात्म्य जनसाधारणमें विशेष ख्यात न रहनेके कारण यह पार्वणोत्सव- नेपालके अधिष्ठाता मत्स्येन्द्र-नाथके

नामानुसार कोई कोई मत्स्येन्द्रनाथयात्रा नामसे प्रसिद्ध है। वैशाखकी शुक्लाष्टमी तिथिको यह पर्वोत्सव होता है और चार दिन तक रहता है। किन्तु रथ चतुर्थ चाकके यदि रथचक्र टूट जाय अथवा रथयात्रामें कोई विघ्न पहुँच जाय तो क्षतिपूरण स्वरूप एक दिन और भी उत्सव होता है। प्रथम दिन रानी-पोखरासे लगनटोल तक, दूसरे दिन लगनटोलसे दरबार तक तथा तीसरे दिन दरबारसे लगनटोल तक जाते हैं और चौथे दिन लगनटोलसे पुनः रानीपोखराको लौटते हैं।

१५। रामनवमी-उत्सव—श्रीरामचन्द्रके जन्मोपलक्षमें गोर्खाजातिका प्रचलित उत्सव। चैत्रमासकी शुक्ला-नवमी तिथिको गुरखे उत्सवमें पशुबलि करते हैं, गोर्खा लोग इस शुभ-दिनमें अपने अपने इष्टमन्दिरमें पूजा और देवताओंको मनोहर द्रव्यादि उत्सर्ग करते हैं। दूसरे दिन दशमी तिथि पड़ती है। इस शुभतिथिमें हिन्दुओंका उत्सव देख कर बौद्ध नेवारगण आपसमें ही कर एकादशी तक समवायमण्डपका उत्सव दिन स्थिर करते हैं।

१६। नागार्जुनपूजा और उत्सव—शिवपुरी पर्वतके ढालुदेशमें बड़ा-नीलकण्ठ नामक ग्राममें तथा नागार्जुन-पर्वतके निकट बालाजी ग्राममें विष्णुपूजा बड़ी धूमधामसे होती है। पहले सिर्फ बड़ा-नीलकण्ठमें यह उत्सव होता था। यहां एक क्षुद्र पुष्करिणीके मध्यभागमें अनन्तशय्या-शायी नारायणकी वृहत् मूर्त्ति विद्यमान है। इस विष्णुमूर्त्तिके हाथमें शङ्ख, चक्र गदा और पद्म है। गोसाईंथान पर्वतके नीलकण्ठ झरनेवर्ती महा-देवकी वृहत् मूर्त्ति देख कर नेपालवासी इस नारायणमूर्त्तिको भी महादेवकी मूर्त्ति मानते हैं।

बड़ा-नीलकण्ठतीर्थमें नेपालराज और राजपरि-वारस्थ किसी व्यक्तिका जाना निषेध है। किन्तु दूसरे दूसरे सभी बौद्ध और हिन्दूगण इस तीर्थमें जा सकते हैं। प्रायः दो सौ वर्ष हुए कि नेपालीने इसके अनुकरणसे बालाजीमें बालानीलकण्ठ नामक अनन्त नारायणकी मूर्त्ति स्थापन की है। हिन्दूगण यहां शेषशायी नारा-यणमूर्त्तिकी पूजा करते हैं और मांगलिक द्रव्यादि उप-हार देते हैं। किन्तु बौद्धगण पूजाके बाद नागार्जुन पर्वतस्थित बौद्धचैत्यके दर्शनको जाते हैं।

१७। उपरोक्त यात्राओंके अतिरिक्त गठ्यात यात्रा, (३८) गुह्येश्वरी यात्रा, (३९) गोकर्णयात्रा (४०) अनन्त कोटीश्वरयात्रा आदि अनेक यात्राएं हैं।

स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें और स्वयम्भूपुराणमें इन यात्राओंमेंसे किसी किसीका विषय वर्णित है।

नेवारजातिके उत्सवमें धार्मिक कार्य चाहे हो चाहे न हो लेकिन सुभोज मांसभोजन और मद्यपान अवश्य होता है।

फाल्गुनमासकी शिवचतुर्दशी तिथिको नेपालीगण शिव पूजा और रात्रिजागरणादि करते हैं। प्रत्येक मनुष्य पशु-पतिनाथके मंदिरमें जाता और वाग्मतीमें स्नान करता है।

प्रसिद्ध स्थानादि।

नेपाल उपत्यकामें सबसे बड़े चार नगर हैं। भिन्न भिन्न राजाके समयमें इन्हीं चार नगरोंमें राजधानी थी। वर्तमान राजधानी काठमाण्डू और प्राचीन राज-धानी कीर्त्तिपुर, पाटन और भातगांव यही चार नगर विष्णुमतीनदीके किनारे बसे हुए हैं। इसके अलावा और भी कई प्रसिद्ध स्थान हैं, उनमेंसे अधिकांश तीर्थ स्थान या मन्दिरादिके लिए विख्यात हैं किन्तु वे सब ग्राम मात्र हैं। नेपाल उपत्यकामें इस प्रकारके जितने ग्राम हैं उनमेंसे बड़ा नीलकण्ठ ग्राम बालाजी वा छोटा नीलकण्ठ ग्राम स्वयम्भूनाथ ग्राम (ये सब विष्णुमती नदीके मुहाने पर अवस्थित हैं), हरिग्राम, थय (वाग्मतीके किनारे), चरिपाय ग्राम और बौद्धनाथ ग्राम (रुद्रमती और वाग्मतीनदीके मध्यवर्ती जलभूमि पर अवस्थित), गोकर्णग्राम, देवपाटन ग्राम, चाङ्गेश्वर, फिरफिङ्नगर, धन्धनगर, चाङ्गुनारायण ग्राम, तिमिनगर (मनोहरानदीके निकटवर्ती) गोदावरी ग्राम (गदोरी, फुलचोवा-पर्वतमूल पर अवस्थित), नालकोट नगर (चन्द्रगिरि पर्वतमूल पर अवस्थित) आदि ग्राम उल्लेखयोग्य हैं।

काठमाण्डू, कीर्त्तिपुर, पाटन और भातगांव ये चार नगर नेवार राजाओंके समयमें प्राचीर द्वारा चारों ओरसे घिरे थे और नगरके भीतर जानेके लिए प्राचीरके नाना स्थानोंमें तोरण बने हुए थे। गोर्खाओंके समयसे ये सब प्राचीर दिनों दिन तहस नहस होने लगे हैं। अधिकांश तोरण

ध्वंसावशेषमें परिणत हो गए हैं। किन्तु नगरसीमा उस प्राचीन प्राचीर तक आज भी निर्दिष्ट है। उस समयके नियमानुसार नीच जातीय हिन्दू (मेहतर, कसाई, जल्लाद आदि) किसी नगरसीमाके अन्तर्भागमें वास नहीं कर सकते। मुसलमानोंके प्रति यह नियम नहीं है। बहुतेरे मुसलमान नगरमें ही वास करते हैं। प्रति नगरके प्रत्येक फाटकसे संलग्न एक एक टोला वा पल्ली है। इन सब पल्लियोंकी म्युनिसपलिटी स्वतन्त्र है। म्युनिसपलिटीके हाथमें पल्लीके संस्कार और रक्षाका भार है। इन चार नगरोंके प्रत्येक नगरमें एक राजप्रासाद वा दरवार है जो नगरके प्रायः मध्यस्थलमें अवस्थित है। प्रत्येक प्रासादके सामने एक लम्बा चौडा मैदान है। उसी मैदान हो कर राजप्रासाद जाना पडता है। मैदानके चारों ओर मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। नगरके अन्यत्र भी इस प्रकारका खुला मैदान देखनेमें आता है। काठमण्डू नगरमें ऐसे मैदानकी संख्या १२ है। विचारालय और साधारण कर्मस्थानादि इसी प्रकारके मैदानके किनारे अवस्थित है। काठमण्डू पाटन और भातगांवके प्रधान प्रधान मन्दिर दरवारके पास ही बने हुए हैं। यहां तक कि उनमेंसे कितने दरवारकी सीमाके मध्य उपस्थित हैं। उसके निकटवर्त्ती कोई कोई मन्दिर आज भी भग्नावस्थामें वर्त्तमान है। दरवारोंके पीछे राज्योद्यान, हयसाल और युद्धमाल है।

काठमण्डू नगर आयताकार है। बौद्धोंका कहना है, कि यह नगर मञ्जुश्री द्वारा उनकी तलवारके आकारमें बनाया गया है। लेकिन हिन्दू लोग, भवानीके खड्गाकारमें यह नगर बसाया गया है, ऐसा कहते हैं। जिस किसीका खड्ग हो, उसका मुष्टिभाग दक्षिणकी ओर वाघमती और विष्णुमतीके सङ्गम स्थल पर तथा उत्तरकी ओर तिम्मेल ग्राममें अग्रभाग कल्पित हुआ है।

काठमण्डू उत्तर दक्षिणमें आध कोस और चौडाईमें कहीं उससे अधिक है। इसका प्राचीन नाम है मञ्जुपाटन। दरबारके सम्मुखस्थ और काष्ठमय भवनको नेवारलोग बहु दिनसे काठमण्डू (काठमंडप) कहते आये हैं; जहां तक सम्भव है, कि उसीसे नगरका नाम भी 'काठमण्डू' पड़ा है। १५९६ ई०में राजा लक्ष्मीन्द्रसिंहमल्लने यह काठमण्डप बनवाया था। यह कोई देवमन्दिर नहीं है। देशवासी और आगन्तुक संन्यासियोंके रहनेके लिये ही यह बनाया गया है। आज भी उसमें बड़ी कार्य होता है। लेकिन कुछ दिन हुए कि उसमें एक शिवमूर्त्ति भी प्रतिष्ठित हुई है। काठमण्डूके प्राचीन ३२ फाटकोंमेंसे कितने आज भी भग्नावस्थामें पड़े हैं किन्तु उन ३२ फाटकोंके संश्लिष्ट ३२ टोला वा ग्राम अब भी पूर्ववत् दीख पड़ते हैं। इन ग्रामोंमेंसे वामनटोला, इन्द्रचक, दरवारचक, काठमण्डू टोला, टोखा टोला और लघन टोला उल्लेखयोग्य हैं।

दरवारचकमें दरवार वा प्रासाद अवस्थित है। प्रासादके उत्तर तलिजु मन्दिर, दक्षिण वसन्तपुर नामक मन्त्रणागृह और नूतन-दरवार (अभ्यर्थना-गृह), पूर्व राज्योद्यान और हाथी-घोड़े रहनेके घर तथा पश्चिममें सिंह-द्वार है। प्रासादमें उस समयके नेवारोंके बने हुए प्राचीन गठनके गृहादि आज भी विद्यमान हैं।

काठमण्डू नगरमें हिन्दूके जितने मन्दिर हैं उनमेंसे तलिजु मन्दिर छोड़ कर और कोई मन्दिर उतना शोभायुक्त वा उल्लेखयोग्य नहीं है। बौद्धमन्दिर नगरके नाना स्थानोंमें हैं जिनमेंसे 'काठोशम्भु' और 'बौद्धमण्डल' नामक दो मन्दिर उल्लेखयोग्य हैं।

काठमण्डू नगरमें ६०से ८० हजार लोग रहते हैं जिनमेंसे नेवारोंकी संख्या ही अधिक है। नगरके बाहर पूर्वको ओर ठण्डोखेल नामक मैदानमें सेनाओंकी खूब कवायद होती है। इसके मध्यस्थलमें प्रस्तर-वेदिकाके ऊपर सर जङ्गबहादुरकी शिवटोको हुई एक प्रतिमूर्त्ति है। १८५६ ई०में बहुत धूमधामसे जङ्गबहादुरने स्वयं इस मूर्त्तिको प्रतिष्ठा की थी। बारूदखानेमें जगन्नाथका मन्दिर है जिसे १८५२ ई०में जङ्गबहादुरने प्रतिष्ठित किया। ठण्डोखेल मैदानके एक बगलमें बहुत पुराना एक छोटा मन्दिर है जहां नेपालके सभी मन्दिरोंकी अपेक्षा अधिक यात्री एकत्रित होते हैं। इस मन्दिरमें महाकाल नामक शिवकी जो मूर्त्ति है, बौद्ध लोग उसीको पद्मपाणि बोधिसत्त्व बतलाते हैं। महाकालके कपाल पर एक और भी छोटी मूर्त्ति खोदित है। हिन्दू लोग उस मूर्त्तिको क्या कहते हैं, मालूम नहीं (शायद

चन्द्रमूर्त्ति कहते हैं)। किन्तु बौद्धलोग उस मूर्त्तिको पद्मपाणिके समाटमें अथवा अमिताभकी मूर्त्ति मानते हैं। जो कुछ हो, इस मन्दिरमें ऐसी किसी एक ही प्रतिमाको विभिन्न धर्मका विभिन्न देवता जान कर हिन्दू और बौद्ध दोनों सम्प्रदायके मनुष्य उसकी पूजा करते हैं।

नगरके उत्तर-पश्चिम कोणमें रानीपोखरा नामक जिस सरोवरका उल्लेख किया गया है, उसके मध्यस्थलमें देवी का मन्दिर है। इसमें जानेके लिये पश्चिम किनारेमें पुल बना हुआ है। पहले इस ह्रदकी शोभा अपूर्व थी, किन्तु जबसे जङ्गबहादुरने इसे चारों ओरसे दीवारसे घेर दिया है, तबसे इसकी शोभा नष्ट हो गई है।

रानीपोखरा सरोवरके पूर्वोत्तरकोणमें नारायणका एक छोटा मन्दिर है जिसमें चार तरफ देवताओंके सुन्दर बन बने हुए हैं, यह स्थान देखने लायक है। इसके समीप ही एक निर्झर है। इस स्थानका नाम नारायणहिटी है। इस मन्दिरके सामने आधुनिक ढङ्गका पत्थरका काम किया हुआ धर्मोशह चौतरा नामक एक अट्टालिका है जहां पूर्व समयमें धर्मोशह वास करते थे। रानीपोखराके दक्षिण एक प्रस्तरमय हाथीके ऊपर राजा प्रतापमल्ल और उनकी महिषीकी प्रस्तरमयी मूर्त्ति है। उन्हीं महिषीने इस सरोवरको खुदवा दिया है।

काठमण्डू नगरके पश्चिम स्वयम्भूनाथ पहाड़के दक्षिण समभूमि पर अस्त्रागार और कवायदका मैदान है। यहां नेपाली सेनाकी कवायद होती है। नगरके दक्षिण वाग्मती और विष्णुमतीके सङ्गमस्थल पर वाग्मतीके दाहिने किनारे सेनापति भीम बहादुरके निर्मित ५२ हाथ ऊंचा पत्थरका एक बड़ा धरहरा है। यह धरहरा काठमण्डू, कान्तिपुर, सिमलेशो आदि नामोंसे भी पुकारा जाता है। कहते हैं, कि राजा गुणकामदेवने १८२४ कल्यब्द (७२३ ई०)-में यह नगर बसाया।

रानीपोखरासे और भी दक्षिण इस्कोइन मा तुडी खेल नामक कवायद करनेका मैदान है। इसके पश्चिम धरारा नामक एक प्रस्तरस्तम्भ है जिसे भीमसेन थापा नामक किसी सेनापतिने बनाया है। इसकी ऊंचाई २२० फुट है। इसमें सीढ़ी और झरोखे बने हुए हैं। १८३४ ई०के भूकम्पसे इसका बहुत कुछ अंश टूट गया था, फिरसे इसका संस्कार हुआ है। यहां भीमसेन निर्मित इसी प्रकारका एक और भी स्तम्भ था जो १८३३ ई०के भूमिकम्पसे तहस नहस हो गया है। वर्त्तमान स्तम्भकी गठन और कारुकार्य अत्यन्त चाकचिक्य और शोभासम्पन्न है। काठमण्डूसे आध कोस उत्तर अंगरेजी रेसिडेण्टका आवासभवन और उद्यान है।

काठमण्डूसे जिस सेतु द्वारा वाग्मती पार कर पाटन जाना होता है, उस सेतुके उत्तर एक प्रस्तरमय इष्टक् गठनके एक पर प्रस्तरस्तम्भ है। स्तम्भके ऊपर एक प्रस्तरमय सिंहमूर्त्ति विद्यमान है। यह चतुष्कोणकार स्तम्भ भी सेनापति भीमसेन थापाने बनाया था। सेतु भी उन्हींकी कीर्त्ति है।

पाटन—यह नेपालमें सबसे बड़ा नगर है। इसका दूसरा नाम है ललितपत्तन। यह काठमण्डूसे दक्षिण पूर्व तीन मीलकी दूरी पर वाग्मतीके दाहिने किनारे अवस्थित है। गोर्खा-विजयके पहले नेपाल जो तीन राज्यों में विभक्त था, उस समय इसी नगरमें नेवाररजकी राजधानी थी। पत्तन देखो।

कीर्त्तिपुर—चन्द्रगिरि पर्वतके उपरिस्थित गिरिपथके नीचे जो एक ग्राम और नगर हैं उनमेंसे ग्राम और नगर बहुत कुछ प्रसिद्ध है। इसीके पूरब पर्वतके ऊपर बहुतसे ग्राम हैं। उन ग्रामोंमें कीर्त्तिपुर ही प्रधान है। यहां पहले एक स्वाधीन राजाकी राजधानी थी। अन्तमें यह पाटनराजके हाथ लगा। कीर्त्तिपुर निकटवर्त्ती समतल भूभागसे २०० सौ फुट ऊंचे पर तथा पाटन और काठमण्डू नगरसे डेढ़ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यह नगर प्राचीनकालमें बहुविस्तृत नहीं था। किन्तु यहांका दुर्ग और दुर्ग बहुत मजबूत था। १७६५से १७७० ई० तक तीन वर्ष घेरा डाले रहनेके बाद गोर्खाराज पृथ्वीनारायणने जय करके यह नगर जीता और विश्वासघातकताके नगरमें प्रवेश कर आबालवृद्धवनिता सबोंकी नाक काट डाली। केवल वे ही बच गए थे, जो बांसुरी बजाना जानते थे। फादरमाइकिनो नामक एक पादरी उस समय कीर्त्तिपुरमें थे। वे अपने नेपाल इतिहासमें इस विषयमें अनेक निष्ठुर घटनाओं का उल्लेख कर गए हैं। कर्नल कार्कपैट्रिक भी इस

घटनाके ६० वर्ष बाद जब कीर्त्तिपुर गए थे, तब उन्होंने भी वहां कितने नकटे मनुष्योंको देखा था। कीर्त्तिपुरकी लोकसंख्या चार हजारके लगभग है। पृथ्वीनारायणके आदेशसे कीर्त्तिपुरका नाम बदल कर 'नाक काटापुर' रख गया। तभीसे यह नगर क्रमशः ध्वंस होता जा रहा है, मन्दिर और अट्टालिकाओंके संस्कार करनेकी कोई चेष्टा नहीं की जाती। प्राचीन तोरण और प्राचीर आज भी ध्वंसप्राय अवस्थामें पड़ा है। यहां केवल नेवारोंका वास है। जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है। पर्वतसुलभ गलगण्डरोगी यहां एक भी देखनेमें नहीं आता। यहांके दरवार और निकटवर्त्ती मन्दिरादि शहरके पश्चिम छोटे पहाड़के ऊपर अवस्थित है। अभी इसका जो ध्वंसावशेष वर्त्तमान है, उससे प्रकृत आकारका निरूपण नहीं किया जा सकता। पीतवर्ण प्रस्तर (अभी इस तरहका पत्थर नेपालमें प्रसुत नहीं होता) निर्मित दो मन्दिर आज भी वर्त्तमान है। इनकी छत गिर पड़ी है, दोवार पर जङ्गल हो गया है, किन्तु कितने हाथी, सिंह आदिकी प्रस्तर मूर्त्ति आज भी रक्षित अवस्थामें वर्त्तमान है। मन्दिर १५५५ ई०में बनाया गया था और उसमें छरगोरोकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी।

यहांके सभी मन्दिर ध्वंसप्राय है, केवल जिनका खर्च गोर्खा-राजाओंकी ओरसे दिया जाता है, वे ही आज तक पूर्ववत् अवस्थामें विद्यमान हैं। भैरवका मन्दिर ही प्रधान है। यहां उत्सवके दिन बहुतसे यात्री एकत्रित होते हैं। मन्दिरमें कोई मनुष्याकृति वा लिङ्गरूपी देवप्रतिमा नहीं है। उसके बदलेमें एक प्रस्तरमय नाना रंगोंमें रञ्जित व्याघ्रमूर्त्ति है। यही मूर्त्ति देवमूर्त्तिरूपमें पूजित होती है। इस मन्दिरके पास ही और भी दो तीन मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

कीर्त्तिपुरके उत्तर पर्वतके ऊपर गणेशका एक मन्दिर है। इस मन्दिरका तोरण बहुत सुन्दर और उत्कृष्ट खोदित कारुकार्य शोभित है। इन सब खोदित शिल्पोंमें अधिकांश पौराणिक चित्र है। १६६५ ई०में जैपो जातीय शेरिस्थानेशारने इस मन्दिरको प्रतिष्ठा की। तोरणको कपालीके मध्यस्थलमें गणेश, वाम भागमें मयूरारोहिणी कुमारी, कुमारीके वामभागमें महिषारोहिणी वाराही, और वाराहीके वामभागमें शिवारोहिणी चामुण्डा है तथा गणेशके दक्षिण गरुड़ारोहिणी वैष्णवी, वैष्णवीके दक्षिण ऐरावतारोहिणी इन्द्राणी और इन्द्राणीके दक्षिणमें सिंहवाहिनी महालक्ष्मी है। गणेशके ऊपर मध्यस्थलमें भैरव और शिवकी तथा वामभागमें हंसारोहिणी ब्रह्माणीकी और दक्षिणमें वृषारोहिणी रुद्राणी भी मूर्त्ति खोदित है। इन अष्ट देवमूर्त्तियोंको अष्टमातृका कहते हैं। दोनों द्वारके कोनेमें मध्यविन्दुयुक्त षट्कोणी यन्त्र है और दोनों बगल पद्मयुक्त सिंहमूर्त्तिके नीचे कलस और श्रीवत्स खोदित है।

कीर्त्तिपुरके दक्षिण-पूर्वमें "विक्रमदेव" नामक एक बौद्धमन्दिर है। यह मन्दिर छोटा होने पर भी इसमें बौद्ध देवदेवियों, बौद्ध शास्त्रोक्त घटनाओं और बौद्ध चिह्न यानादिके जो सब विचित्र चित्र स्पष्टरूपसे खोदित हैं, उन सबके लिये इस मन्दिरका विशेष आदर होता है। कीर्त्तिपुरके पूर्व काठमण्डूसे एक कोस दक्षिण चोवहाल नामक ग्राम और उससे भी डेढ़ कोस पूर्वमें भातगांव पड़ता है।

भातगांव—यह महादेव-पोखराशिखरसे डेढ़ कोस और काठमण्डूसे दक्षिण-पूर्व ४ कोस दूर हनुमान्-मतीके बाएं किनारे अवस्थित है। इस नगरके पूर्व और दक्षिणमें हनुमान् मती नदी और उत्तर तथा पश्चिममें कंसावती नदी प्रवाहित है। इस नगरका आकार शङ्ख-सा है। भातगांव देखो। भातगांव और काठमण्डूके मध्य नदीबुद और थेमी नामक ग्राम बसा हुआ है। थेमी ग्राममें बहुत सुन्दर मृण्मय पात्रादि प्रस्तुत होते हैं।

फिरफिङ्ग—यह छोटा नगर वाघमती नदीके दक्षिण बसा हुआ है।

चांपागांव—पाटनसे जो रास्ता दक्षिणकी ओर गया है उसीके ऊपर यह छोटा नगर अवस्थित है। इस नगरके समीप एक पवित्र कुञ्जके मध्य एक बहुत प्राचीन मन्दिर है।

हरिसिद्धि—पाटनसे दक्षिणपूर्वकी ओर जो रास्ता चला गया है उसीके ऊपर यह गण्डग्राम अवस्थित है।

गोदावरी या गदौरी—फुलचोआ पर्वतके पादमूलमें तथा पाटनके दक्षिणपूर्वकी ओर जो रास्ता गया है उसी के ऊपर यह नगर अवस्थित है। यह नगर नेपाल भरमें बहुत पवित्र स्थान माना जाता है। हर बारहवें वर्ष में यहां एक निर्झरके समीप एक मासव्यापी मेला लगता है। स्थानीय लोगोंमें प्रवाद है कि दाक्षिणात्यकी गोदावरी नदीके साथ इस नदीका संयोग है और तदनुसार इस स्थानका नाम भी पड़ा है। इसके समीप बहुतसे छोटे छोटे मन्दिर और पुष्करिणी हैं। गोदावरीमें रत्नाध्योंका क्षेत्र बहुविस्तृत है। यहांकी रत्नाच्ची पत्थर मिली जाती है और लोग इससे चाको काम चलाते हैं। यहां पर्वतके शिखर पर गुलाब, जूही, जाती आदि नाना फूल बहुत लगते हैं, ऐसा नेपाल भरमें और कहीं भी देखनेमें नहीं आता। प्रचुर परिमाणमें फूल उपजनेके कारण ही इस पर्वतका नाम फुलोच या 'फुलचोआ' पड़ा है। पर्वतके ऊपर एक छोटा पवित्र मन्दिर है जहां से कड़ों यात्री जमा होते हैं। मन्दिरके निकट जो भग्नस्तूपोंमेंसे एकके ऊपर लोहेकी कितने भालों और दूसरे पर एक त्रिशूल गड़ा हुआ है।

पशुपतिनाथ—काठमण्डूसे पूर्वकी ओर एक रास्ता निकल कर नवसागर, नन्दीगांव, हरिगांव, चवाहिल और देवपाटन ग्रामके मध्य होता हुआ पशुपतिनाथ तक चला गया है। यह तीर्थस्थान काठमण्डूसे डेढ़ कोस पूर्व-उत्तर कोणमें अवस्थित है। पशुपतिनाथ देखो।

चाङ्गुनारायण—पशुपतिनाथसे दो कोसकी दूरी पर यह शहर अवस्थित है। इसके निकट मनोहरीनदी प्रवाहित है। चाङ्गुनारायण चार ग्रामोंकी समष्टि है। प्रत्येक ग्राममें चारि नामक चार नारायणके मन्दिर हैं। उन्हीं सब देवताओंके नाम पर उस ग्रामका नाम पड़ा है। चारिनारायणमूर्तिके दर्शन करनेके लिये दूर दूरसे सैकड़ों लोग यहां आते हैं। चारिनारायणके नाम ये हैं,—चाङ्गु नारायण, विशङ्कुनारायण, शिखरनारायण और इचाङ्गु-नारायण। इन चार ग्रामोंको सीमा प्रायः ४२ कोस है।

भट—चाङ्गुनारायणसे पूर्व-उत्तर कोणमें एक कोस की दूरी पर यह नगर अवस्थित है। इसको भी तीर्थ स्थानमें गिनती होती है। यहां भी सैकड़ों यात्री जमा होते हैं। यहांका सिद्धिविनायक नामक गणेशका मन्दिर बहुत मशहूर है। नेपाल प्रदेशमें विनायक नामक चार गणेशकी मूर्ति प्रसिद्ध है। इन चारोंमेंसे भट्-गावमें सिद्धिविनायक, भातगांवमें सूर्य विनायक, काठमण्डूमें चाङ्ग-विनायक और कल्याणगरमें विघ्नविनायक मन्दिर अवस्थित है।

गोकर्ण—यह पशुपतिनाथसे एक कोस पूर्व-उत्तर कोणमें वाग्मतीके किनारे अवस्थित है। यह नेपाल तीर्थके मध्य विशेष प्रसिद्ध है। इसके समीप सर जङ्ग बहादुरके पहले मृगयाके लिए एक वन लगा हुआ है।

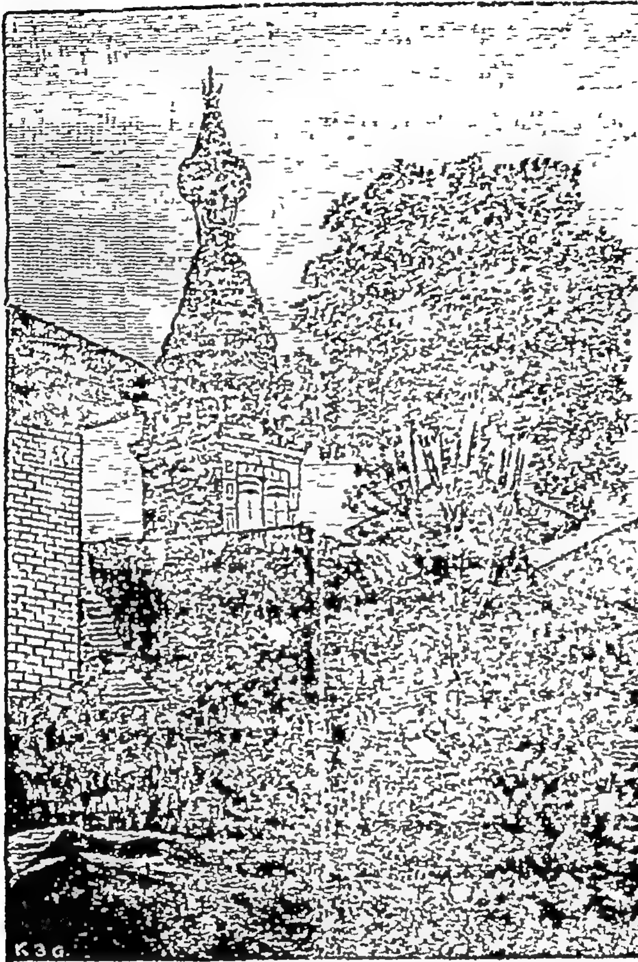
बोधनाथ—पशुपतिनाथ और काठमण्डूके मध्य पशु-पतिनाथसे प्रायः आध कोस उत्तर बोधनाथ (बुद्धनाथ) नामक ग्राम अवस्थित है। यहां वृहत् बौद्धमन्दिरके चारों ओर चक्राकारमें यह ग्राम बसा हुआ है। मन्दिर की बेदी गोलाकार ईंटोंसे बनी हुई है। उसी बेदीके ऊपर पूर्वगर्भ गम्बुजाकृति मन्दिर है जिसकी चूड़ा पीतलकी बनी हुई है। बेदीमें कुलङ्गेके मध्य बोधिसत्वों-की प्रतिमा है। ये सब कुलङ्गे १२ इञ्च ऊंचे और ८ इञ्च चौड़े हैं। मन्दिरका व्यास १०० गजसे कम नहीं होगा। यह मन्दिर भूटिया और तिब्बतीय बौद्धोंका विशेष आदरका स्थान है। शीतकालमें वे लोग इस मन्दिरको देखने आते हैं।

नीलकण्ठ—शिवपुरी पर्वतके पादमूलमें नीलकण्ठ ह्रदके किनारे नीलकण्ठ या नीलकण्ठ नामक ग्राम वर्तमान है। यहांके नीलकण्ठ देवताका विवरण इसके पहले शिवपुरी पर्वतके वर्णनमें उल्लिखित हुआ है।

बालाजी—काठमण्डूसे विष्णुमती पार हो कर एक त्रिशूलगामी नामक पर्वतके नीचे यह ग्राम बसा हुआ है। इस पर्वतका बहुत कुछ अंश सर जङ्गबहादुर द्वारा जागीरमें दिया हुआ है और उसके मध्य सुरक्षित उपवन है। इस पर्वतके नीचे कितने निर्झर बहते हैं और निर्झरके नीचे एक हरदाकार शायित महादेवकी मूर्ति है। इस ग्राममें नेपालाधिपतिको उद्यानवाटिका विद्यमान है।

स्वयम्भूनाथ—काठमण्डूसे पश्चिम तीन पावकी दूरी पर स्वयम्भूनाथ ग्राम अवस्थित है। इस ग्रामके

पर्वतके शिखर पर बौद्ध देवता स्वयम्भूनाथका मन्दिर है। मन्दिरमें जानेके लिए चार सौ सीढ़ियां लगी हुई हैं। मन्दिर २५० फुटको ऊंचाई पर अवस्थित है। सीढ़ीके नीचे शाक्यसिंहको एक प्रकाण्ड मूर्त्ति विद्यमान है और ऊपरमें ३ फुट ऊंचो वेदोके ऊपर इन्द्रके वज्रको मूर्त्ति है। स्वयम्भूनाथ देखो।



स्वयम्भूनाथका मन्दिर।

भोगमती—कीर्त्तिपुरसे ढाई कोस दक्षिण वाघमतीके पूर्वी किनारे यह ग्राम अवस्थित है। रथके ऊपर इस ग्राममें मत्स्येन्द्रनाथकी प्रतिमा छः मास तक रहती है। प्रवाद है, कि नरेन्द्रदेव और आचार्य जब पाटनसे पवित्र वारिपूर्ण कलस ले कर कपोतल पर्वत पर घूम रहे थे, तब इन्होंने एक दिन इसी ग्राममें वास किया था।

नवकोट—यह नवकोट उपत्यकाका प्रधान नगर है। काठमण्डू से पूर्व ८॥ कोसकी दूरी पर अवस्थित भैवङ्गा वा जिवजिविया पर्वतके दक्षिण-पश्चिमकी ओर जो शिखर है, उसीके ऊपर यह नगर वसा हुआ है। इस नगरके पूरब आध कोसकी दूरी पर त्रिशूलगङ्गा और पूर्व तथा दक्षिण आध कोसकी दूरी पर ताड़ो वा सूर्यमती नदी प्रवाहित है। इस नगरमें दो दरबार वा प्रासाद हैं। नेपालका विख्यात भैरवीदेवीका मन्दिर इसी नगरमें अवस्थित है। अङ्गरेजों और नेपालियोंके साथ जो अन्तिम लड़ाई हुई उस समय तक इस नगरमें नेपालाधिपतिका ग्रीष्मावास था। १८१३ ई०में नेपालाधिपतिने यहांका वासस्थान छोड़ कर काठमण्डू में ही चिरवास

बर्तीकी आवश्यकता थी है और तभीसे यहांके प्रासादादि भग्नोन्मुख हुआ है। सुवर्णमती नदीकी ओर यने भाव का वन है। चैत्रमासमें नवाकोट उपत्यका और तराई-प्रदेशमें मलेरिया ज्वरका प्रादुर्भाव अधिक देखनेमें आता है।

देवीघाट—नवाकोट नगरसे तीन पावकी दूरी पर देवोघाट नामक स्थान है। यहां त्रिशूलगङ्गा और सुवर्णमती नदी आपसमें मिली है। इस सङ्गम स्थान पर भैरवीदेवीका मन्दिर वर्त्तमान है। वैशाखमासमें मले-रियाके प्रकोपके समय इस देवमन्दिरमें अधिक यात्री एकत्रित होते हैं। मन्दिरमें कोई प्रतिमा नहीं रहती, उस समय नवाकोटसे भैरवीदेवी यहां लाई जाती है।

मातुर्ना—यह तराई-प्रदेशमें बसा हुआ है। इस नगरसे नेपाल जानेमें बोधीनदी पार होना पड़ता है। इस स्थानके निकट ही लताच्छादित सुन्दर मचान से स्थान है वह ये व्यायामके लिए उपयुक्त है।

रङ्गेली—मोरङ्ग तराईके मध्य यह स्थान स्वास्थ्य-निवासके रूपमें लिया जाता है। मोरङ्गके अन्य सभी स्थान अस्वास्थ्यकर होने पर भी रङ्गेलीका जलवायु बहुत उत्तम है। यहांका पानी भी सुस्वादु है।

तराई-प्रदेशमें हनुमाननगर, मतिहार, हरहुवा आदि नगर बसते हैं।

नेपाल उपत्यकासे पश्चिम कुमायुन जानेमें निम्न-लिखित प्रसिद्ध स्थान राहमें पड़ते हैं—

थानकोट नेपाल-उपत्यकाका सीमान्तवर्ती है। यह एक छोटा सुन्दर नगर है।

मईमकोट—यह काठमण्डूसे दस कोस पश्चिममें पड़ता है। इस ग्रामके नीचे त्रिशूलगङ्गा और सहिया खोलानदीका सङ्गम है।

महवोटघाट—यह काठमण्डूसे बीस कोस पश्चिममें है। यहां सेनापति भीमसेननिर्मित शिवजी के पत्थरके मन्दिर हैं।

नीवोन्नगर— धरमड़ीनदीके पूर्व वा दक्षिण किनारे काठमण्डूसे २६ कोसकी दूरी पर यह नगर अवस्थित है। यह दसुमानहमलाङ्ग पर्वतके उत्तर प्रतिष्ठित है और वर्त्तमान राजवंशकी प्राचीन राजधानी है।

तानाहुङ—यह काठमण्डूसे २५ कोस दूर है और इसी नामके छोटे राज्यकी राजधानी है। इसका दरबार भग्नप्राय है।

पोखरा—यह सेतुगण्ड नदीके किनारे बसा हुआ है और एक छोटे स्वाधीन राज्यकी राजधानी है। नगर बहुत बड़ा और बहुजनाकीर्ण है। यहां सब प्रकारका अनाज उपजता है। यह ग्राम ताम्रनिर्मित द्रव्यादिके व्यवसायके लिए विख्यात है। यहां एक वार्निश मिल सकता है।

भनपु—पोखराकी तरह यह भी एक क्षुद्र स्वाधीन राज्यकी राजधानी है। यहां एक दरबार है।

तानसेन—पोखराकी तरह यह एक सामन्त राज्यकी राजधानी है। पश्चिमदेशका सैनावास इसी नगरमें है। एक हजार सेना और एक काजी यहां रहते हैं तथा एक नूतन दरबार और हाट भी है। सुतवाके बहुत सूती कपड़ेका व्यवसाय यहां खूब होता है। यहांकी टकसालमें ताम्रमुद्रा ढाली जाती है। काठमण्डूसे ६६ कोस पश्चिममें यह नगर अवस्थित है।

पल्पानगर—यह काठमण्डूसे ६१ कोस दूर है। यहां एक दरबार और भैरवनाथका मन्दिर है।

पियूठना—यह काठमण्डूसे ८६ कोस पश्चिममें है। यहां बारूद और बन्दूकका कारखाना है। निकटवर्ती सुविनिया नमकके पाससे यहां अच्छी आमदनी होती है।

सलियाना—पोखरा राज्यकी तरह स्वाधीन राज्य-की राजधानी। यह काठमण्डूसे एक सौ दस कोस पश्चिम शरणखोला नदीके ऊपर अवस्थित है। यहां दरबार और मन्दिरादि हैं।

जाजरकोट— एक प्राचीन राजधानी। यह भेरी-महानदीके किनारे अवस्थित है। यहांका दरबार और देवी-मन्दिर भग्नप्राय है।

तरिया—वैराङ्ग पर्वत और त्रिमलिंगिका पर्वतकी एक शाखाके ऊपर यह ग्राम बसा हुआ है। यहां भूटिया जातिका वास है। इसके समीप एक स्वाभाविक बृहत् गुहावत् स्थान है। वहां २।३ सौ मनुष्य रह सकते हैं। गोसाई थान पर्वतके तीर्थयात्री यहां आ कर आश्रय

लेते हैं। नेवारगण इसे भीमल याकू और पार्वतीय लोग "भीमलगुफा" कहते हैं। प्रवाद है, कि भीमल नामक एक नेवार-काजीने तिब्बत जीतनेके लिये एक दल सेना भेजी। जब सेना वहां पहुंची, तब तिब्बतके लामा ऊपर से बड़े बड़े पत्थर उन पर फेंकने लगे। किन्तु भीमल अपने हाथोंसे उन गुहाकी छतको तरह बड़े बड़े पत्थरोंको रोकते गए और किसीका कुछ भी अनिष्ट न हुआ। तभीसे इसका नाम 'भीमलगुफा' पड़ा है।

दुमचा—यह भीमलगुफासे डेढ़ कोस दूरमें अवस्थित है। यहां प्रस्तरनिर्मित एक बुद्धमन्दिर है। इस ग्रामके निकट चन्दनबाड़ी पर्वतके ऊपर लोड़ो-विनायकका मन्दिर है। लोड़ो विनायकके मन्दिरमें एक मूर्त्तिहीन प्रस्तरखण्ड गणेशकी प्रतिमाके रूपमें पूजित होता है। मन्दिरको परिक्रमा करनेमें यात्रियोंको डंडे आदि रख देने पड़ते हैं, नहीं तो उनपर विनायकका क्रोध पड़ता है।

इतिहास और पुरातत्त्व।

नेपालका विश्वासयोग्य प्राचीनतम इतिहास प्राय नहीं मिलता। पौराणिक ग्रन्थ-समूहसे अथर्ववेदके परिशिष्टमें, स्कन्दपुराणके नागरखण्डमें (१०२।१६) और सह्याद्रिखण्डमें (३९।८), रेवाखण्डमें, देवीपुराणमें, गरुड़पुराणमें (८०।२), अरिष्टनेमि-पुराणान्तर्गत जैनहरिवंशमें (११।७२), ब्रह्मनीलतन्त्रमें, वाराहीतन्त्रमें, वराहमिहिरकी वृहत्संहितामें और हेमचन्द्रकी स्थविरावली चरित्रमें नेपालका सामान्य उल्लेख मात्र पाया जाता है। बौद्धतन्त्र और बौद्धस्वयम्भूपुराणमें तथा स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें नेपालका थोड़ा बहुत वर्णन देखनेमें आता है। किन्तु इन सब ग्रन्थोंमें केवल अलौकिक उपाख्यानावली वर्णित है। इनको ऐतिहासिक बातका पता लगाना मुश्किल है।

सुना है, कि नेपालके नाना स्थानोंमें समृद्धिशाली पुरातन वंशके घरोंमें विभिन्न समयकी राजवंशावली संगृहीत है। सुप्रसिद्ध प्रत्नतत्त्ववित् भगवान्लाल इन्द्रजी जब नेपालमें ठहरे हुए थे, तब उन्हें इस प्रकारकी वंशावलीकी खबर लगी थी। किन्तु दुःखका विषय है, कि वे भी उन्हें संग्रह कर न सके थे। आज कल रचित पार्वतीय-वंशावली नामक ग्रन्थमें एक प्रकार नेपालराजाओंका संक्षिप्त विवरण लिखा है। किसी किसी यूरोपीय ऐतिहासिकने इस प्रकारकी वंशावलीके आधार पर नेपालका इतिहास लिखा है।

बौद्धपार्वतीय वंशावलीके मतसे,—नेमुनि कर्तृक अभिषिक्त पहले गोपालवंशने नेपालके अन्तर्गत मातातीर्थमें राजत्व लाभ किया। इस गोपालवंशने ५२१ वर्ष तक नेपालमें राज्य किया था। इसके १५२६ वर्ष पीछे जितेदास्ति नामक किरातवंशीय एक व्यक्ति राज्य करते थे। कुरुपाण्डव-युद्धके समय जितेदास्तिने पाण्डवका पक्ष अवलम्बन किया था और कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें ही उनकी जीवलीला शेष हुई थी। यह विवरण प्रकृत ऐतिहासिक है या नहीं, इसमें बहुत सन्देह है। पर इतना तो अवश्य है, कि जब किसी सभ्य आर्यसन्तानने नेपाल जा कर अपना आधिपत्य नहीं फैलाया था, तब नेपालमें गोमेष-प्रतिपालक और मृगयाशील गोपाल और किरातोंकी ही प्रधानता थी।

सम्प्रति नेपालकी तराईसे जो अशोकलिपि आविष्कृत हुई है उससे ज्ञात होता है कि नेपालके दक्षिणांचलमें एक समय शाक्यराजगण राज्य करते थे और वहां शाक्यावतार शाक्यबुद्ध आविर्भूत हुए। वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें शाक्यवंशीय कई एक राजाओंके नाम पाये जाते हैं जिससे अनुमान किया जाता है, कि बुद्धदेवके बाद भी शाक्यवंशीय ५।७ पीढ़ियोंने इस अञ्चलमें राज्य किया था। पीछे सम्राट् अशोकका आधिपत्य हुआ।

इसके बाद ही नेपालमें पराक्रान्त लिच्छवि राजाओंका अभ्युदय हुआ था। यद्यपि पार्वतीय वंशावलीमें 'लिच्छवि' नामका उल्लेख नहीं है, तो भी हम लोगोंने ख्यातनामा प्रत्नतत्त्वविद् भगवान्लाल इन्द्रजीके यत्नसे इस प्रथित राजवंशका विलक्षण परिचय पाया है। नेपालका पुरातत्त्व संग्रह करनेके लिये नेपालमें जा कर उन्होंने ही सबसे पहले २३ पुरातन शिलालिपियोंका उद्धार किया। उनकी संगृहीत शिलालिपियोंमेंसे १५ लिपिके ऊपर निर्भर करके डाक्टर फ्लीट और डाक्टर होरनलीने लिच्छवि राजाओंका धारावाहिक इतिहास लिखनेकी चेष्टा की। किन्तु

दुःखका विषय है कि पलीट साहबने उनकी नवीन रहते हुए भी मे मवृत्ति शिलालेखोंमें उतनी उपयोगी न हुए। उन्होंने जिस प्रकार लिच्छवि राजाओंके राज्यकालका निर्णय किया है, उसे यहां लिखते हैं।

पण्डित भगवान्‌लालजी निज संग्रहीत १५ शिला लिपियों से नेपाल राजाओंका जैसा धाराबाहिक नाम और कालनिर्णय किया है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है,—

१। जयदेव १म—प्रायः १ ख़ृष्टाब्दमें। (१५ की लिपि)।

२। इसे ले कर १२ अर्थात् ११ राजाओंके नाम शिलालिपिमें नहीं दिये गए हैं। (१५वीं लिपि।)

१३। वृषदेव—प्रायः २६० ई०में। (१ली और १५ वीं लिपि।)

१४। शङ्करदेव—प्रायः २८५ ई०में।

१५। धर्मदेव—(राज्यवतीके साथ विवाह हुआ था) प्रायः ३०५ ई०में।

१६। मानदेव सम्वत् ३८६ ४१३ या ३२८ ३५६ ई०में।

१७। महीदेव—प्रायः ३६० ई में।

१८। वसन्तदेव या वसन्तसेन—सम्वत् ४३५ या ३७८ ई०में।

१९। उदयदेव—प्रायः ४०० ई०में। २०से २७ तक ८ राजाओंके नाम १५वीं शिलालिपिमें नहीं दिए गये हैं।

२८। शिवदेव १म प्राय ६३० ई०में।

महासामन्त अंशुवर्मा (ठोकि महाराज) ३४-४५ श्रीहर्ष सम्वत् या ६४० से ६५१—२ ई०में।

२९। १५वीं शिलालिपिमें कोई उल्लेख नहीं है।

३०—ध्रुवदेव – श्रीहर्ष सम्वत् ४८ या ६५४ ५५ ई०में (८वीं लिपि।) जिष्णुगुप्त श्रीहर्ष सम्वत् ४८ या ६५४-५५ ई०।

३१। } १५ वीं लिपिमें नाम नहीं दिया गया।
३२। } विष्णुगुप्त और सम्भवतः विष्णुगुप्त। (८वीं लिपि।)

३३। नरेन्द्रदेव—प्रायः ६८० ई०में।

३४। शिवदेव २य, (आदित्यसेनकी दौहित्री और मौखरीराज भोगवर्माकी कन्यासे विवाह।) श्रीहर्ष संवत् ११९ १४५ या ७२५ ६—७५१ २ ई०में।

३५। जयदेव २य परचक्रकाम (गौड़ोड्रकलिङ्ग कोशलाधिप भगदत्तवंशीय हर्षदेवकी कन्या राज्यमती से विवाह हुआ) श्रीहर्ष संवत् १५३ या ७५८-६० ई०में।

उक्त विवरण प्रकाशित होनेके बाद बेण्डल साहबने नेपालसे ३१६ संवत्‌में स्थापक शिवदेवकी एक शिलालिपि प्रकाश की। उसमें भी अंशुवर्माका नाम रहनेसे डाक्टर कीलहार्न फ्लीट साहबने उस अङ्कको गुप्तसंवत् स्थापक अर्थात् ६३५ ६ ई०की लिपि बतलाया है। इसी लिपि-की सहायतासे उन्होंने पूर्वोक्त भगवान्‌लाल और डाक्टर बुहलरसाहबका मत परिवर्तन कर दिया है।

डाक्टर फ्लीट साहबका मत।

डाक्टर फ्लीट साहबके मतसे शिवदेवके समयमें उत्कीर्ण ३१६ अङ्क चिह्नित लिपि ही सर्वप्राचीन है। उसीके आधार पर उन्होंने जो कालानुक्रमिक संक्षिप्त नाम विवरण प्रकाशित किया है (१), वही यहां पर संक्षेपमें लिखा जाता है।

१। (मानगृहसे) भट्टारक महाराज लिच्छविकुल केतु शिवदेव (१म) थे। उन्होंने महासामन्त अंशुवर्माके उपदेश या अनुरोधसे ३१६ (गुप्त) सम्वत्‌में अर्थात् ६३५ ई०में एक ताम्रशासन प्रदान किया। इस शासनके दूतक सामन्त भोगवर्मन् थे। (२)

२। (कैलासकूटभवनसे) महासामन्त अंशुवर्माने ३४से ४५ वर्ष सम्वत् अर्थात् ६४०से ६५० ५० ई० तक राज्य किया।

३। अंशुवर्माके बाद कैलासकूटभवनसे जीष्णु गुप्तकी लिपिमें ४८ सम्वत् अर्थात् ६५४ ई० और साथ साथ नेपालाधिप ध्रुवदेवका नाम है।

४। वृषदेवके प्रपौत्र, शङ्करदेवके पौत्र और धर्म देवके पुत्र मानदेव ३८६ गुप्तसम्वत् अर्थात् ७०५ ई में राज्य करते थे।

(१) Dr Flee 's Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol, III pp- 177 ff.

(२) डाक्टर फ्लीट इस भोगवर्माको महासामन्त अंशुवर्माके भागिनेय मानते हैं। p. 177n.

५। परम भट्टारक महाराजाधिराज श्रीशिवदेव (२य) ११९ हर्ष सम्वत् अर्थात् ७२५ ई०में राज्य करते थे।

६। पीछे ४१३ गुप्तसम्वत्में अर्थात् ७३२-३३ ई०-में मानदेव नामक एक राजाका नाम मिलता है।

७। फिर २य शिवदेवको एक दूसरी लिपिसे जाना जाता है, कि वे १४३ हर्षसम्वत् अर्थात् ७४८ ई०में राज्य करते थे।

८। मानगृहस्थ महाराज श्रीवसन्तसेन ४३५ गुप्त सम्वत् अर्थात् ७५४ ई०में विद्यमान थे।

९। जयदेव (२य)—विरुद्द परचक्रकाम—१५३ हर्षसम्वत् वा ७५८ ई०में। इनकी लिपिमें पूर्वतन लिच्छवि राजाओंकी वंशावली वर्णित है।

१०। राजपुत्र विक्रमसेन ५३५ गुप्तसम्वत् अर्थात् ८५४ ई०में विद्यमान थे। डाक्टर फ्लीटने उपरोक्त राजाओंकी पर्यालोचना करके स्थिर किया है, कि नेपालके दो स्थानोंमें दो राजवंश राज्य करते थे जिनमें से एक वंश नेपालके प्राचीन लिच्छवि वंश था और दूसरा महासामन्त अंशुवर्मासे आरम्भ हुआ था। उन्होंने दो विभिन्न राजवंशकी तालिका इस प्रकार लिखी है—

	मानगृहके लिच्छवि वा सूर्यवंश।	कैलाश कूट भवनका ठाकुरीवंश।	
	१ जयदेव १म—प्रायः ३३०-३५५ ईस्वी।		
	२, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ } शिलालिपिमें इन कई एक मनुष्योंके नाम नहीं मिलते। } प्रायः ३५५-६३० ई०।		
महाराज शिवदेव १म ६३५ ई०।	१३ वृषदेव—प्रायः ६३०-६५५ ई०।	अंशुवर्मा महासामन्तके बाद महाराज ६२५-६५० ई०।	
महाराज ध्रुवदेव ६५३ ई०।	१४ शङ्करदेव (वृषदेवकेपुत्र) लगभग ६५५-६८० ई०।	जिष्णुगुप्त—६५० ई०।	
	१५ धर्मदेव (शङ्करदेवके पुत्र) ६८०-७०४ ई०।		उदयदेव लगभग ६७५ ७०० ई०।
	१६ मानदेव (धर्मदेवके पुत्र) ७०५-७३२ ई०।		नरेन्द्रदेव (उदयके पुत्र) लगभग ७००-७२४ ई०।
	१७ महीदेव (मानदेवके पुत्र) ७३३-७५१ ई०।		शिवदेव २य (नरेन्द्रके पुत्र) ७२५-७४८ ई०।
	१८ वसंतदेव (महीदेवकेपुत्र		जयदेव २य (शिवदेवके पुत्र) ७५०-७५८ ई०।

पीछे प्रत्नतत्त्वविद् डाक्टर होर्णलीने जो तालिका प्रकट की है। (१)।

ऊपरमें दोनोंका भिन्न मत उद्धृत किया गया जिनमेंसे भिन्न मतको अभी ग्रहण करते हैं। किन्तु जहाँ तक इसकी खोज की गई उससे मालूम होता है, कि वह मत समीचीन नहीं है। पूर्वोक्त शिलालिपियोंके अक्षर विन्यास, पूर्वापर घटनावली और सामयिक इतिहाससे जाना जाता है, कि डाक्टर फ्लीट और डाक्टर होर्णली बहु अनुसन्धान द्वारा जिस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, उसका सम्पूर्ण परिवर्तन आवश्यक हुआ है।

पण्डित भगवानलाल और डाक्टर बुह्लरने जो मत प्रकाश किया था, उसका कोई कोई अंश यद्यपि विच्छिन्न होने पर भी वह बहुत कुछ प्रकृत इतिहासके निकटवर्त्ती है वह सम्यक् आलोचना द्वारा प्रतिपन्न हुआ है।

अब शिलालिपि-समूहकी आलोचना।

१म अर्थात् मानदेवकी लिपि ३८६ (अनिर्दिष्ट) सम्वत्‌में उत्कीर्ण हुई। पण्डित भगवानलाल और डाक्टर बुह्लरने उसको सम्वत्कालीन गुप्ताब्द बतलाया है। किन्तु डाक्टर फ्लीट साहबके मतसे वह ८वीं शताब्दीका अक्षर है। हम लोगोंके ख्यालमें इसकी अक्षरावली ५वीं शताब्दीकी-सी प्रतीत होती है। कारण ५वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण जो सब लिपियां उत्तरभारतमें आविष्कृत हुई हैं, उनमें मात्राकी कुटिलता आरम्भ देखा जाता है। इसके अलावा उस समयसे व्यञ्जनयुक्त स्वरादिकी अर्थात् ा, ि, ी, , ो, ै आदि स्वर-चिह्नकी बहुत कुछ पूर्णता देखी जाती है। किन्तु मानदेवकी लिपि प्राचीन है और इसके स्वर चिह्न उतने पुष्ट नहीं हैं। इसका अक्षरविन्यास गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्तकी प्रयागस्तम्भ लिपिके अनुरूप है। इसमें व्यञ्जनयुक्त आकारका जो रूप है, वह २य से ३य शताब्दीकी लिपिमालामें भी पाया जाता है। इसमें कई अक्षर मुख्य क, ज त, द, न, प इत्यादि अक्षरोंका आकार २यसे ३य शताब्दीके मध्य उत्कीर्ण शिलालिपिमें देखा जाता है। केवल इसका भ, म, य, व ये सब अक्षर हम लोगोंको पूर्वतन लिपियोंमें नहीं मिलते, बल्कि ३य और ४म शताब्दीकी उत्कीर्ण लिपियोंमें मिलते हैं। इसके सिवा ष, पा, ह, इन अक्षरोंका जैसा रूप है, वह केवल ३य-से ४थं शताब्दीकी खोदित लिपिमें अधिक अनुसन्धान करने पर भी मिल नहीं सकते।

५वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण महानामको महाबोध लिपि और ७वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण सोमनाथके सम्राट् हर्षवर्द्धनकी लिपिकी आलोचना करनेसे सहजमें जाना जा सकता है कि उक्त मानदेवकी लिपि पिवोक्त समयकी लिपिसे कितनी प्राचीन है। इधर मानदेवकी शिलालिपिका अक्षरविन्यास देख कर उसे ७वीं वा ८वीं शताब्दीकी लिपि कदापि नहीं मान सकते, वर उसे ३री या ४थी शताब्दीकी लिपि मान सकते हैं। इस लिहाजसे मानदेवकी लिपिमें जो अङ्क निर्दिष्ट है उसे यदि शकाब्दज्ञापक अङ्क मानें, तो कोई अयुक्ति नहीं होगी। पण्डित भगवानलालने उसे विक्रमसम्वत्का अङ्क बतलाया है। किन्तु उत्तर भारतमें ९वीं शताब्दीके पूर्ववर्त्ती किसी लिपिमें विक्रमसम्वत् ज्ञापक अङ्क आज तक स्पष्टरूपसे पाया नहीं गया है। वर १मी, २री, ३री और ४थी शताब्दीमें उत्कीर्ण उत्तरभारतीय बहुत सी लिपियोंमें केवल 'संवत्' नामसे शकसम्वत्का ही प्रमाण पाया जाता है। इसीसे हम लोगोंने उसे शकसम्वत् ऐसा स्वीकार किया।

२य अर्थात् वसन्तदेवकी लिपिको डाक्टर फ्लीटने ८वीं शताब्दीकी लिपि माना है। किन्तु जिन जिन कारणोंसे हम लोगोंने मानदेवकी लिपिका प्राचीनत्व प्रतिपन्न किया है, उन्हीं सब कारणोंसे हम लोग वर्त्तमान शिलालिपिको भी ४थी और ५वीं शताब्दीका अक्षर अर्थात् ४३५ शकसम्वत्‌की लिपि ग्रहण कर सकते हैं।

३य अर्थात् ४३५ सम्वत् अङ्कित लिपि डाक्टर फ्लीट साहबके मतसे ८वीं शताब्दीकी लिपि है। किन्तु इस लिपिके अक्षरोंका जो आकार है वह इसीसे ६ठी शताब्दीके

(1) Journal of the Asiatic Society of Bengal for 1889, Pt. 1. Synchronistic Table.

* Fleet's Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III, plates XLI XXXII, B-

मध्य उत्कीर्ण लिपियोंमें देखनेमें आता है (१)। इसकी किसी एक पूर्ण ग्रन्थका छान्द ८ वीं वा ९ वीं शताब्दीकी लिपिमें नहीं मिलता (२)।

प्रथमत: शिवदेव और अंशुवर्माके समयकी लिपि देखनेसे वह ७ वीं शताब्दीकी लिपि प्रतीत होती है। किन्तु जब हम लोग जापानके होरि-उजु-मठके तालपत्रके ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि देखते हैं, तब शिवदेवकी लिपि ७वीं शताब्दीकी है, ऐसा स्वीकार करनेमें महा सन्देह उपस्थित होता है। होरी-उजुमठमें जितने ग्रन्थ हैं वे भारतके लेखकसे उत्तरभारतमें बैठ कर लिखे गए और ५२० ई०से कुछ पहले बौद्धाचार्य बोधिधर्म कर्तृक चीनदेशमें लाए गए। फिर वे सब ग्रन्थ चीन देशसे ६०९ ई०में जापान भेज दिए गए (३)। उन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपिको प्रसिद्ध अध्यापक मोक्षमूलरने प्रकाश किया है और उसे देख कर प्रत्नतत्त्ववित् डाक्टर बुह्लरने ऐसा स्थिर किया है, कि उक्त ग्रन्थ ६ठीं शताब्दीके प्रथम भागमें लिखे गए हैं (४)। उक्त ग्रन्थोंकी लिपिमें तथा शिवदेव और अंशुवर्माके समयकी लिपिमें बहुत कुछ सदृशता देखी जाती है। दोनों लिपियोंका अक्षरविन्यास एक सा होने पर भी शिवदेवकी शिलालिपिमें उसका प्राचीन रूप रखा गया है। डाक्टर बुह्लर साहबने बहुत खोजके बाद स्थिर ८ किया है, कि शिलालिपिमें हम लोग जो अक्षरविन्यास देखते हैं, राजकीय दलीलपत्रमें व्यवहृत होनेके बहुत पहले वह विद्वत्-समाजकी लिपि माना गया था।

लिखने पढनेमें पहले जो व्यवहृत होता था, धीरे धीरे वही राजकीय लिपिमें व्यवहृत होने लगा, किन्तु प्रश्न यह उठता है, कि यदि विद्वत्समाजमें पुस्तक-रचनाके समय किसी विशेष अक्षरका व्यवहार होता है, तो क्या वह उस समयकी राजकीय दलीलादिमें प्रयुक्त नहीं होगा? प्राचीन शिलालिपिकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि राजकीय शासनादि राजसभाके प्रधान प्रधान पण्डितोंसे लिखे जाते थे। यहां तक कि ताम्रशासनका कोई कोई श्लोक राजा स्वयं रच कर अपने कवित्वकी शक्तिका परिचय देते थे। इस हिसाबसे राजगण सामयिक पुस्तकादिके उपयुक्त अक्षरोंके छान्दका ग्रहण न कर पूर्वतन अक्षरोंका छान्द ग्रहण करेंगे, यह कहां तक सम्भव है, समझमें नहीं आता। इसी कारण मालूम होता है, कि गुर्जरपति राष्ट्रकूटराज दद्द प्रशान्तरागका हस्ताक्षर देख कर डाक्टर बुह्लरने लिखा है, 'अधिक सम्भव है, कि ६ठी शताब्दीके प्रथम भागमें भी उत्तरभारतके धर्मांशमें दो प्रकारके हस्ताक्षर प्रचलित थे (१)।'

पहले ही लिखा जा चुका है, कि डाक्टर फ्लीटके मतानुसार शिवदेवकी लिपि मानदेवलिपिके बहुत पहलेकी है। किन्तु खोदित लिपिके धारावाहिक कालानुसारी अक्षरतत्त्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है मानो मानदेवकी खोदित लिपि बहुत प्राचीन कालकी है। इस हिसाबसे कौन ग्राह्य किया जा सकता है? यदि हम लोग उपरोक्त प्रत्नतत्त्वविद्-निर्दिष्ट ७वीं शताब्दीमें अर्थात् ६२५-६५० ई०में राजा शिवदेव और महासामन्त अंशुवर्माका प्रकृत समय स्वीकार करें, तो सामयिक इतिहासके साथ विरोध उपस्थित होगा। इस हिसाबसे यदि डाक्टर बुह्लरके मतानुसार एक ही समयमें दो प्रकारकी लिपिका छान्द प्रचलित था, ऐसा स्वीकार कर शिवदेव और उनके महासामन्तको पांचवीं शताब्दीके मनुष्य मानें, तो कोई गड़बड़ी नहीं रहती।

उक्त लिच्छविराजके समयकी दो खोदित-लिपिकी प्रतिरूप बेण्डल साहबने प्रकाश किया है, कि एक ही समयकी दोनों लिपि होने पर भी परस्पर वर्णविन्यासमें कुछ फर्क देखा जाता है। पहलेके स्वर चिह्नका छान्द

(१) Dr. Buhler's Gundriss, (Indischen Palaeographie) IV Tafel.

(२) यह लिपि द्रष्टव्य है—The inscription of Gopala (Cunningham's Arch Surv. Reports Vol. I.) of Dharmapala (Cunningham's Mahabodhi) and of Devapala (Ind. Ant. XVII. p. 610.)

(३) Professor Max Muller's Letter, in the Transactions of the 6th International Congress of Orientalists held at Leiden, pp. 124-128.

(४) Anecdota Oxoniensia, Vol I, 5 t. III, p. 64.

(१) Dr. Buhler's Remarks on the Horiuzi palm-leaf MSS (Aneo. Oxon, Vol. I. pt. III, p. 65.)

'ष' 'ष्' देखनेसे जो मालूम पड़ता है कि वह दूसरेकी अपेक्षा आधुनिक अर्थात् ६ठी शताब्दीके बादका है। किन्तु द्वितीय लिपिका अपूर्ण 'ि' तथा 'ा' देखनेसे इसकी प्राचीनताके विषयमें उतना सन्देह नहीं रहता। पण्डित भगवान्‌लालकी प्रकाशित ६ठी शिलालिपि उक्त शिवदेव प्रदत्त होने पर भी उसका 'ष' आकार देखनेसे वह बेण्डल प्रकाशित लिपिका समकालीन प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार पण्डित भगवान्‌लालकी ७वीं लिपिका आकार 'ष' तथा बेण्डल साहबकी १ली लिपिका आकार 'ष' इन दोनोंको मिला कर देखनेसे मालूम होता कि पिछला 'ष' कई शताब्दी बादका है। पण्डित भगवान्‌लालकी १ली लिपिके आकारमें उनकी ७वीं लिपिमें बहुत कुछ परिपुष्टि की है ऐसा जान पड़ता है। यही कारण है कि पण्डितजीने ७वीं लिपिको १ली लिपिके बहुपरवर्त्ती कह कर उल्लेख किया है। किन्तु बेण्डल साहबकी प्रकाशित १ली और २री शिलालिपि तथा पण्डित भगवान्‌लालकी १ली, ६ठी, ७वीं और ८वीं लिपिके अक्षरोंकी आलोचना करनेसे ऐसा मालूम पड़ेगा कि उनकी लिपि सबसे प्राचीन है। उनकी लिपिकी १२वीं पंक्तिका "भागिन" शब्दका 'भा' और १ली लिपिके द्वितीयांशकी १६वीं पंक्तिका 'भा' इन दोनोंमें कोई प्रभेद नहीं दीख पड़ता।

वंशावलिक इतिहास।

पण्डित भगवान्‌लालने सूर्यवंशीय लिच्छविराज जयदेव-परचक्रकामसे शिलापट्टमें जो वंशावली दी है, वह इस प्रकार है—

लिच्छवि (सूर्यवंशीय)
|
सुपुष्प (पुष्पपुरका नाम)
(पीछे जयदेवसे २३ व्यक्ति)
|
जयदेव (१म नेपालाधिप)
|
(११ अनुक्त इसके बादके राजा)
|
वृषदेव
|
शंकरदेव
|
धर्मदेव
|
मानदेव (३८६-४१३ शक)
|
महीदेव
|
वसन्तदेव (४३५ शक)
|
उदयदेव (१)
|
नरेन्द्रदेव
|
शिवदेव २य (११९ १४८ अनिर्दिष्ट संवत्)
|
जयदेव-परचक्रकाम (१५३ अनिर्दिष्ट संवत्)

नेपालाधिप लिच्छवि राजाओंके समयकी जितनी शिलालिपियां आविष्कृत हुई हैं उनमेंसे उपरोक्त १६वीं लिपिकी वंशावली सबसे अधिक प्रामाणिक है। उक्त वंशावलीके आधार पर ही हम नेपालका प्राचीन और प्रामाणिक इतिहास लिखते हैं।

नेपालकी प्राचीन वंशावली अनैतिहासिक विषयपूर्ण होने पर भी इसमें बीच बीचमें अनेक ऐतिहासिक बातें देखनेमें आती हैं जिसे पण्डित भगवान्‌लाल प्रभृति प्रत्नतत्त्वविदोंने एक वाक्यसे स्वीकार किया है। इस वंशावलीमें एक जगह लिखा है,—

'सूर्यवंशीय राजा विश्वदेववर्माने अंशुवर्मा ठाकुरीको अपनी लड़की ब्याह दी। इनके समयमें विक्रमादित्य नेपाल आये थे और यहां अपना अब्द प्रचलित किया था।'

'अंशुवर्मा भी राजा हुए थे। उन्होंने मध्यलख (कैलासकूट) नामक स्थानमें अपनी राजधानी बसाई। उनके समयमें विष्णुगुप्तने चक्रनिभरत्नयुक्त एक जलप्रणाली प्रस्तुत करके उसके समीप एक जलोर्ध्व शिलापट्ट (२) स्थापन किया (३)।'

(१) पण्डित भगवान्‌लालने जिस प्रकारसे उद्धार कर प्रकाशित किया है, उसके अनुसार वृषदेवके बाद ११ राजा हुए, पीछे नरेन्द्रदेव नेपालकी गद्दी पर बैठे। ठीक वृषदेवके बाद कौन राजा हुए, वह शिलालिपिमें अस्पष्ट है। बादमें वही शंकरदेव राज्यासन पर अभिषिक्त हुए।

(२) पण्डित भगवान्‌लाल प्रकाशित ६वीं शिलालिपि।

(३) Wright's History of Nepal, and Ind. Ant. 1884, p. 412.

पण्डित भगवान्‌लाल और डाक्टर बुहलरने कहा है, 'अंशुवर्माके समयमें विक्रमादित्यका नेपाल-आगमन बिलकुल असम्भव है। मालूम होता है, श्रीहर्षदेवके विजय-उपलक्षमें उनका अब्द नेपालमें प्रचलित हुआ, यह उस क्षीण स्मृतिको विकृतरूप वंशावलीमें भूलसे दिखलाया गया है (१)।'

इसीका अनुवर्त्ती हो कर डाक्टर फ्लोटने भी अंशुवर्माके समयमें उत्कीर्ण लिपियोंके अङ्कोंको श्रीहर्ष संवत् ज्ञापक स्वीकार किया है।

अब प्रश्न यह उठता है, कि सम्राट् हर्षदेव क्या सच मुच नेपाल गये थे और वहां जा कर क्या अपने अब्दका प्रचार किया था? इस विषयमें कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। बाणभट्टके हर्षचरितमें, चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गके भ्रमणवृत्तान्तमें, म तोयन-लिनके विवरणमें और राजा हर्षवर्द्धनकी निज खोदित लिपिमें हर्ष द्वारा नेपालविजय और हर्षसंवत् प्रचारकी कोई बात लिखी नहीं है। हर्षदेवने नेपाल जय किया था, उसका आज तक कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस हिसाबसे हर्षदेव कर्त्तृक नेपालविजय और हर्षसंवत्‌के प्रचारकी कथाको प्रामाणिक तौर पर ग्रहण नहीं कर सकते।

ग्रहण नहीं करनेका कारण भी है। यदि हम लोग अंशुवर्माकी खोदित लिपिके अङ्कोंको श्रीहर्षसंवत्-ज्ञापक मानें, तो भी सामयिक विवरणके साथ विरोध उपस्थित होता है। अंशुवर्माके प्रसङ्गमें जो '३८', '४०', '४४' वा '४५', अङ्कके चिह्न हैं उन्हें श्रीहर्षसंवत् मान लेनेसे ६४०से ६५१ ई०सन् होता है। किन्तु चीन परिव्राजक यूएनचुवङ्गने ६३७ ई०की ५वीं फरवरीको नेपालकी यात्रा की थी (२)। उन्होंने नेपाल देख कर लिखा है, "अंशुवर्मा नामक यहां एक राजा थे। वे स्वयं विद्वान् थे और विद्वान्‌का आदर भी करते थे। वे स्वयं शब्दविद्याके विषयमें पुस्तक रच गये हैं। नेपालमें इनकी कीर्त्ति बहुत दूर तक फैली हुई थी। (३)"

(१) Indian Antiquary. 1881, p. 424.

(२) Cunningham's Ancient Geography of India.

(३) Beal's Records of Western World, Vol. II, p. 81.

चीनपरिव्राजकका उक्त विवरण पढ़ कर उपरोक्त पण्डितोंने स्थिर किया है कि, 'चीनपरिव्राजकने नेपालमें कदम तक भी नहीं बढ़ाया। वे केवल हरिकी राजधानी तक पहुंचे थे और वहांके लोगोंसे जहां तक सम्भव है, कि पूछपाछ कर कुछ लिखा होगा। यथार्थमें उस समय भी अंशुवर्माकी मृत्यु नहीं हुई थी।'

उक्त समालोचना ठीक प्रतीत नहीं होती। जिस व्यक्तिकी सुख्याति नेपाल भरमें फैली हुई थी, उनका मृत्यु संवाद जाननेमें भूल हो गई हो, यह कहां तक सम्भव है। चीनपरिव्राजकने अंशुवर्माके रचित ग्रन्थका भी परिचय दिया है; इस हिसाबसे उनका विवरण अमूलक नहीं मान सकते। चीनपरिव्राजकके पहले ही अंशुवर्माकी मृत्यु हुई थी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। सुतरां अंशुवर्माकी खोदित लिपिके अङ्कको श्रीहर्षसंवत्का अङ्क नहीं मान सकते, बल्कि उसे गुप्तसंवत्का अङ्क मान सकते हैं। गुप्तसंवत् माननेका कारण भी है।

गुप्त राजाओंके साथ लिच्छवि राजाओंका घनिष्ठ संबन्ध था, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। डाक्टर फ्लोटने असङ्कोच-पूर्वक लिखा है, 'गुप्तसम्वत् यथार्थमें लिच्छविसम्वत् है। लिच्छवि राजवंशसे आदि गुप्त राजाओंने सम्वत् ग्रहण किया है, इसमें किसी बातकी आपत्ति उठ नहीं सकती।.........मैं समझता हूं, कि लिच्छवियोंमें साधारणतन्त्रके विलुप्त और राजतन्त्रके आरम्भसे अथवा १म जयदेवके राज्यारम्भसे ही उक्त सम्वत् आरम्भ हुआ है (१)।'

(१) 'And no objection could be taken by the Early Gupta Kings to the adoption of the era of a royal house, in their connection with which they took special pride, I think, therefore, that in all probability the so called Gupta era is Lichchhavi era, dating either from a time when the republican or tribal constitution of the Lichchhavis was abolished in favour of a monarchy; or from the commencement of the reign of Jayadeva I. as the founder of a royal house in a branch of the tribe that had settled in Nepal" (Fleet's Corpus Inscriptionum Indicarum Vol. III. Intro. p. 186)

गुप्तराजने लिच्छवीके साथ सम्बन्धसूत्रमें आबद्ध होने और इस कारण अपनेको गौरवान्वित समझनेके, क्योंकि उन्होंने लिच्छवी-शब्द ग्रहण किया था अनुमानके सिवा इस विषयमें और कोई प्रमाण नहीं है। पर लिच्छवी राजाओंने गुप्तसम्वत्‌का व्यवहार किया था, यही अधिक सम्भवपर प्रतीत होता है।

पार्वतीय वंशावलीमें अंशुवर्मा कुछ पहले विक्रमादित्यके आगमनका प्रसङ्ग है, वह नितान्त असमय मालूम नहीं पड़ता।

भारतवर्षमें विक्रमादित्य नामसे कितने ही राजाओंने राज्य किया था। उनमेंसे जो नेपाल गये थे गुप्तवंशके प्रथम गुप्तसम्राट् थे। उनका नाम था चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य। उनका लिच्छवीराज दुहिता कुमारदेवीके साथ विवाह हुआ था। इस सम्बन्धसूत्रसे गुप्तसम्राट् अपनेको विशेष गौरवान्वित समझते थे। इसीसे अनुमान किया जाता है कि उनकी मुद्रा पर 'लिच्छवय' यह गौरवस्पर्शी शब्द खोदा गया है। उस लिच्छवीराज दुहिता कुमारदेवीके गर्भसे ही गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त उत्पन्न हुए थे।

इन गुप्तसम्राट्‌ने अपने बाहुबलसे नेपालादिके सभी सीमान्त राजाओंको वशमें कर लिया था यह उनकी इलाहाबादमें उत्कीर्ण खोदितलिपिमें साफ साफ लिखा हुआ है। किन्तु नेपालके लिच्छवी राजाओंने गुप्तराजाओंको कब पराजय किया था, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस हिसाबसे समुद्रगुप्तके पिता और लिच्छवी राजजामाता चन्द्रगुप्तविक्रमादित्यसे नेपालमें गुप्तसम्वत् प्रचलित हुआ था, इसीका अस्फुट आभास पार्वतीय वंशावलीसे पाया जाता है।

वंशावलीमें लिखा है, 'अंशुवर्माके बाहर विश्वदेव जब नेपालके राजा थे, उसी समय विक्रमादित्य नेपाल गये थे और अपना अब्द चलाया था।' अगर यह ठीक मान लिया जाय तो फिर कोई ऐतिहासिक गोलमाल नहीं रहता—

"चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके समय वृषदेव जब नेपालके राजा थे, उस समय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने नेपाल जा कर कुमारदेवीका पाणिग्रहण किया और वहां अपना अब्द चलाया।"

प्रथम गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने ३१९-२० से ३३०-३८ ई० तक राज्य किया। इनके बीच वे किसी समय नेपाल गये थे।

मानदेवकी शिलालिपिसे मालूम होता है, कि लिच्छवीराज ३८६ शक (४६४ ई०) में राज्य करते थे। वृषदेव उनके प्रपितामह थे। तीन पीढ़ी तक एक शताब्दी मान लेनेसे जिस समय गुप्तसम्राट् नेपाल आये, उसी समयमें इस बीच वृषदेवको लिच्छवीराजसिंहासन पर अधिष्ठित देखते हैं। इससे यह बोध होता है, कि पार्वतीय वंशावलीके रचयिताने 'वृषदेव' की जगह 'विश्वदेव' यह भ्रमात्मक पाठ ग्रहण किया होगा।

वृषदेवके बाद ११ गुप्तसम्वत्में अर्थात् ३३१ ई० में महासामन्त अंशुवर्माका अभ्युदय हुआ। पण्डित भगवानलाल आदि उपरोक्त पण्डितोंने लिखा है, 'पहले पहल वे राज्योपाधि ग्रहण करनेमें डावाँडोल करते थे। पीछे ३४वें अब्दसे वे 'महाराजाधिराज' की उपाधिसे भूषित हुए।' किन्तु हम लोगोंका विश्वास है, कि वे अपनी इच्छासे कभी राज्योपाधि ग्रहण करनेमें अग्रसर न हुए। शौर्य वीर्य, पराक्रम और विद्याबुद्धिमें प्रधानता लाभ करने पर भी उन्होंने कभी लब्धप्रतिष्ठ लिच्छवी-राजाओंकी उपेक्षा करके 'राज्योपाधि' ग्रहण न की। उनकी किसी खोदित शिलालिपिमें 'राज्योपाधि' नहीं है। वे महासामन्तकी उपाधिसे ही सन्तुष्ट थे। १म शिवदेवकी शिलालिपिसे जाना जाता है कि लिच्छवीराज महासामन्त अंशुवर्माके पराक्रमसे अपनी राजलक्ष्मीकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। सम्भवतः जिस समय वे अपना भार छोड़ कर दूर देशमें युद्ध करने के लिये गये थे, उसी समय उस ३४वें अब्दमें विष्णुगुप्तकी लिपि खोदी गई होगी।

पूर्वतन और अधुनातन भारतीय सामन्तोंको अपने अपने अधिकारके समय 'राजा' 'महाराज' इत्यादि नाना उपाधिसे भूषित देखते हैं। महासामन्त अंशुवर्मा भी उसी तरह अपने अधिकारके समय विष्णुगुप्त आदि अधीनस्थ व्यक्तियोंसे जो 'राजाधिराज' आख्यासे अभिहित हुए होंगे, यह असम्भव नहीं है और वैसी राज्योपाधि देख वे लिच्छवी राजाओंकी अधीनतासे मुक्त हो

कर एक स्वाधीन राजाके मध्य गिने गये थे, यह ठीक प्रतीत नहीं होता। आज भी जिस तरह नेपालराजके अधीन राजा-उपाधिधारी बहुसामन्त हैं, लिच्छवी राजाओंके समयमें भी उसी तरह थे। लेकिन अंशुवर्माने सर्वप्रधान सामन्तपद पर अधिष्ठित हो कर लिच्छवी राजाओंसे राज्योचित महासम्मान प्राप्त किया था, यह असम्भव नहीं है।

उनके अभ्युदयके समय ध्रुवदेव लिच्छवीराजधानी मानगृहमें प्रतिष्ठित थे और गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्तने समस्त भारतवर्षमें अपना आधिपत्य फैला लिया था। जिस तरह मालवराज महासेनगुप्तकी बहन महासेनगुप्ताके साथ स्थाण्वीश्वराधीप आदित्यवर्द्धनका विवाह हुआ (१) उसी तरह मालूम होता है कि समुद्रगुप्तके पुत्र २य चन्द्रगुप्त विक्रमाङ्कके साथ ध्रुवसेनकी बहन ध्रुवदेवीका परिणय कार्य सुसम्पन्न हुआ होगा (२)।

ध्रुवदेव ४६ (गुप्त) सम्वत् अर्थात् ३६७-८ ई०में राजसिंहासन पर बैठे थे। किन्तु उन्होंने कब तक राज्य किया, ठीक ठीक मालूम नहीं। उनके समयमें उत्कीर्ण जिष्णुगुप्तकी शिलालिपि देख कर कोई कोई अनुमान करते हैं, कि उक्त सम्वत्के पहले ही महासामन्त अंशुवर्माकी मृत्यु हुई थी; लेकिन यदि सच पूछिए, तो उस समय भी उनकी मृत्यु नहीं हुई थी। ३१६ (शक) सम्वत् अर्थात् ३८४ ई०में वे विद्यमान थे, यह बेण्डल साहबकी प्रकाशित लिच्छवीराज शिवदेवकी शिलालिपिसे जाना जाता है।

महासामन्त अंशुवर्मा ध्रुवदेव और शिवदेव दोनोंके राजत्वकालमें ही विद्यमान थे। उनके यत्नसे नेपाल उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। इस समय नेपालमें लिच्छवीराजगण बौद्ध और ब्राह्मण्यधर्मावलम्बी सभीको समान दृष्टिसे देखते थे। अंशुवर्माके समयमें उत्कीर्ण लिपिसे मालूम होता है, कि एक ओर वे जिस तरह हिन्दूधर्मके प्रति भक्ति दिखलाते थे, दूसरी ओर उसी तरह बौद्धोंका आदर भी करते थे। नेपालमें बहुत दिन तक गुप्तसम्वत् प्रचलित था, ऐसा बोध नहीं होता। क्योंकि शिवदेवके समयसे पुनः पूर्वप्रचलित (शक)-सम्वत्का प्रचार देखा जाता है।

ध्रुवदेव और शिवदेवके बाद कालानुसार हम लोग मानदेवका नाम पाते हैं। इनके साथ ध्रुवदेव और शिवदेवका क्या सम्पर्क था, मालूम नहीं। पर हां, इतना तो अवश्य है, कि वे सबके सब लिच्छवीवंशके थे। मालूम होता है, कि शिवदेवके बाद धर्मदेव और धर्मदेवके बाद उनके पुत्र मानदेव राजा हुए।

मानदेवने ३८६से ४१३ शक (४६४से ४८१ ई०) तक शान्तिपूर्वक राज्य किया। ये बड़े मातृभक्त और महावीर माने जाते थे। उनके समयमें महासामन्त अंशुवर्मावंशीय ठाकुरी राजाओंने सम्भवतः लिच्छवीराजकी अधीनता अस्वीकार कर स्वाधीनता पानेकी चेष्टा की थी। मानदेवके शिलापट्टमें लिखा है, "उन्होंने पूर्वकी ओर यात्रा की। वहां पूर्वदेशाश्रित सामन्तोंको वशीभूत कर राजा (मानदेव) निर्भीक सिंहकी तरह पश्चिमकी ओर अग्रसर हुए। उधर किसी एक नगरमें पहुंच कर उन्होंने सामन्तका कुव्यवहार देख गर्वित भावमें कहा था, 'यदि वह मेरे आदेशानुवर्त्ती न होगा, तो मेरे विक्रमप्रभावसे निश्चय ही पराजित होगा।' इस सामन्तका नाम क्या था, मालूम नहीं। लेकिन जहां तक सम्भव है, कि वे महासामन्त अंशुवर्मावंशीय कोई होंगे।"

मानदेवके राजत्वकालमें जयवर्मा नामक एक व्यक्तिने वर्त्तमान पशुपतिनाथके मन्दिरमें जयेश्वर नामकी एक मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की, लेकिन वह लिङ्ग नष्ट हो गया है। अभी उस स्थान पर मानदेवके पिता शङ्करदेवका प्रतिष्ठित १४ हाथ ऊंचा एक त्रिशूल विद्यमान है।

मानदेवके बाद उनके पुत्र महीदेव सिंहासन पर बैठे। उनके समयका कोई विवरण जाना नहीं जाता। पीछे वसन्तदेव पितृराज्यके अधिकारी हुए। ४३५ (शक) सम्वत् अर्थात् ५१३ ई०में उत्कीर्ण इनके समयकी खोदित लिपि पाई गई है। २य जयदेवकी शिलालिपिमें लिखा है, कि ये बड़े ही शूरवीर थे। विजित सामन्तगण इनको वन्दना किया करते थे।

(१) Epigraphica India, Vol. 1, p. 6873.

(२) २य चन्द्रगुप्तविक्रमादित्यने ४०० ४१३ ई० तक राज्य किया। मालूम होता है, राज्याभिषेकके बहुत पहले उनके साथ ध्रुवदेवीका विवाह हुआ था।

वसन्तदेवके समयमें ही सम्भवतः आर्यावलोकितेश्वरका प्रभाव नेपालमें बढ़ा चढ़ा था। पार्वतीय वंशावलीमें लिखा है,—'३५२१ कलिगताब्दको अवलोकितेश्वर नेपालमें उदित हुए।'

पहले ही कहा जा चुका है, कि पण्डित भगवान्‌लाल आदि प्रत्नतत्त्वविदों ने स्वीकार किया है, कि पार्वतीय वंशावलीमें अनेक अनैतिहासिक विवरण रहने पर भी इसमें ऐतिहासिक कथाका भी अभाव नहीं है। ऊपरमें अवलोकितेश्वरके विषयमें जो कुछ उद्धृत किया गया है, उसके मूलमें सत्य छिपा रह सकता है।

३५२१ कल्यब्द अर्थात् ४२२ ई०में मालूम होता है, कि वसन्तदेवने समस्त शासकों को सम्पूर्ण रूपसे वशीभूत कर नेपालमें अवलोकितेश्वरकी पूजाका प्रचार किया। उसी समयसे ले कर आज तक अवलोकितेश्वर वा मत्स्येन्द्रनाथको नेपालके अधिष्ठाता-देवता मान कर उनकी पूजा करते आ रहे हैं।

वसन्तदेवके पश्चात् २य शिवदेव और २य जयदेवकी शिलालिपिमें शब्द पढ़े हैं। मालूम होता है, कि यह अब्द अवलोकितेश्वरके सार्वजनिक पूजा प्रकाश तथा राजा वसन्तसेन कर्त्तृक सार्वभौमिक राजा कह कर परिचित होनेके समयसे गिना जाता होगा।

वसन्तदेवके बाद उनके लड़के उदयदेव राजा हुए। डाक्टर फ्लीटके मतसे उदयदेव लिच्छवीय वंश नहीं थे, वे ठाकुरीय वंश अर्थात् अंशुवर्म्मीय वंश थे। २य जयदेवकी शिलालिपिमें उदयदेवके पहले जिन सब राजाओं की नामावली दी गई है वे लिच्छवीय वंश होने पर भी (कई पुराविद्के मतसे) उदयदेवसे ही ठाकुरीय वंशकी वंशमाला आरम्भ है। किन्तु मूल शिलालिपि पढ़नेसे उदयदेव लिच्छवीय वंश और वसन्तदेवके पुत्र माने जाते हैं। उदयके बाद ठीक कौन व्यक्ति राजसिंहासन पर बैठे, यह शिलालिपिमें कुछ अस्पष्ट है। किन्तु उसके बाद ही नरेन्द्रदेवका विवरण साफ साफ लिखा है।

२य नरेन्द्रदेवके पराक्रमकी बात २य जयदेवकी शिलालिपिमें विस्तारसे वर्णित है। सम्भवतः इनके पराक्रमसे कामरूपाधिपति हर्षदेव नेपाल जीत नहीं सके थे। इनके राजत्वकालमें चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्गने कुछ समयके लिए नेपालमें पदार्पण किया था। वे इस प्रकार लिख गये हैं—

"मैं कितने पर्वतोंको लांघते हुए तथा कितनी ही उपत्यकाएं होते हुए नेपालदेशमें आया। यह देश तुषारमय पर्वत मालाओंसे वेष्टित है। पर्वत और उपत्यका एक दूसरेसे संयुक्त हैं।" इस प्रकार देशकी प्राकृतिक और लोकव्यवहारकी प्रकृति वर्णनके बाद उन्होंने लिखा है, "यहां विश्वासी और अविश्वासी (अर्थात् बौद्ध और हिन्दू) दोनों सम्प्रदाय एक साथ वास करते हैं। यहां सङ्घाराम और देवमन्दिरकी संख्या अनेक है। महायान और हीनयान मतावलम्बी प्रायः २००० भिक्षुओंका वास है। राजा क्षत्रिय और लिच्छवीय वंशीय हैं। ये पवित्र, निर्मलचरित्र और उन्नतप्रकृतिके हैं। बौद्धधर्ममें उनका प्रगाढ़ विश्वास है।" इत्यादि।

चीनपरिव्राजकने जिन लिच्छवीराजका उल्लेख किया है, वे ही सम्भवतः नरेन्द्रदेव हैं। नरेन्द्रदेवके विषयमें अनेक किंवदन्तियां आज भी नेपाली बौद्धसमाजमें प्रचलित हैं। २य जयदेवकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि नरेन्द्रदेवके पहलेसे ही लिच्छवीराजवंश बौद्धशासनके पक्षपाती हुए थे।

नरेन्द्रदेवके बाद उनके पुत्र २य शिवदेव सिंहासन पर बैठे। मगधराज आदित्यसेनकी दौहित्री और मौखरी राज भोगवर्म्माकी कन्या वत्सदेवीके साथ इनका विवाह हुआ था। इनके समयमें जो शिलालिपि उत्कीर्ण हुई है उनमें १४३, १४५ और १४८ (अनिर्दिष्ट) संवत् अङ्कित है। इससे अनुमान किया जाता है कि इन्होंने ६६१से ७०१ ई०के मध्य किसी समय राज्य किया था। पीछे इनके पुत्र २य जयदेव लिच्छवीराजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इनका दूसरा नाम परचक्रकाम था। इनके समयकी १५३ संवत् चिह्नित शिलालिपिसे जाना जाता है, कि इन्होंने गौड़, ओड्र, कलिङ्ग और कोशलाधिप हर्षदेवकी कन्या राज्यमतीके साथ विवाह किया। इसी हर्षदेवको हम लोगोंने इसके पहले हर्षवर्द्धन समझा था। किन्तु अभी मालूम होता है, कि वे कन्नौजराज हर्षवर्द्धन नहीं थे। जिस समय कामरूपाधिपति कुमार भास्करवर्म्माने अभ्युदय

किया था, २य जयदेवके श्वशुर हर्षदेव भो उसी वंशमें उत्पन्न हुए थे। आसाम अञ्चलसे आविष्कृत ताम्रशासन-समूह पढ़नेसे जाना जाता है, कि ये कुमार भास्करवर्माके पुत्र अथवा पौत्र होंगे। तेजपुरके ताम्रशासनमें ये 'हरिष' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

पार्वतीय वंशावलीमें शङ्करदेवके ४ पीढ़ीके बाद 'गुणकाम' नामक एक राजाका नाम मिलता है। वंशावलीके मतसे ७२३ ई०में उन्होंने काठमण्डूको बसाया। परचक्रकाम और गुणकाम यदि एक व्यक्तिको उपाधि हो, तो २य जयदेवको ७२३ ई० तक नेपालके राजसिंहासन पर अधिष्ठित देखते हैं।

२य जयदेवके बाद प्रायः ढाई सौ वर्षका इतिहास सम्पूर्ण अन्धकाराच्छन्न है। इस समयके नेपाल इतिहासके विश्वासयोग्य विवरणादि आज तक संग्रहीत नहीं हुए। नेपालाधिप राघवदेवने ८७९ ई०की २०वीं अक्तूबरको एक नया अब्द चलाया जो नेपाली सम्वत् कहलाता है। तदनन्तर प्राचीन ग्रन्थोंसे बहुत अनुसन्धान करने पर अध्यापक बेण्डलसाहबने जो तालिका प्रस्तुत की है, वह नीचे दो जाती है—

राजाके नाम	शासनकाल	राजधानी
निर्भयरुद्र	१००८ ई०	
भोजरुद्र	१०१५ ई०	
लक्ष्मीकाम	१०१५ १०३९ ई०	
जयदेव		काठमण्डू
उदय		काठमण्डू
भास्कर		पाटन
बलदेव		
प्रद्युम्नकामदेव	१०६५ ई०	
नागार्जुनदेव		
शङ्करदेव	१०७१-१०७२ ई०	
वामदेव	१०८३ ई०	
रामहर्षदेव	१०९३ ई०	
सदाशिवदेव		
इन्द्रदेव		
मानदेव	११३९ ई०	
नरेन्द्र	११४१ ,,	
आनन्द	११६५-११६६ ई०	
रुद्रदेव		
मित्र वा अमृत		
अरिदेव		
रणशूर	१२२२ ई०	
सोमेश्वर, राजकाम, अभयमल्ल		
अभयमल्ल	१२२४ ई०	
जयदेव	१२५७ ई०	भातगांव
अनन्तमल्ल *	१२८६-१३०२ ई०	काठमण्डू
जयार्जुनमल्ल	१३६४-१३८४ ई०	
जयस्थितिमल्ल	१३८५-१३९२ ई०	
रत्नज्योतिर्मल्ल	१३९२ ई०	
जयधर्ममल्ल	१४०३ ई०	
जयज्योतिर्मल्ल	१४१२ ई०	काठमण्डू
यक्षमल्ल	१४२९-१४५७ ई०	

यक्षमल्लके बाद नेपालराज्य उनके लड़कोंके बीच दो अंशोंमें विभक्त हो गया। एकको राजधानी भातगांवमें और दूसरेकी काठमाण्डूमें थी। राजवंशावली, उनके समयकी मुद्रा तथा शिलालिपिसे जो वर्ष मालूम हुआ है वह नीचे देते हैं—

यक्षमल्ल
(प्रायः १४६० ई०में)

भातगांव	काठमण्डू
राय वा राम	रत्न
सुवर्ण (भुवन)	अमर
प्राण	सूर्य
विश्व	नरेन्द्र
त्रैलोक्य (१५७२ ई०)	महेन्द्र
	सदाशिव (१५७६ ई०)
जगज्ज्योतिः (१६२८-१६३३	शिवसिंह (१६००)
नरेन्द्र	

* इनके बाद ६० वर्ष तकका पता नहीं लगता।

(काठमाण्डु में) (पाटनमें)

लक्ष्मीनारायण सिंह — सिद्धिनरसिंह (१६२१ १६५७)

जगत्प्रकाश (१६४३-७० ई०) — प्रताप — श्रीनिवास (१६५७-८७)

जितामित्र (१६६१) — जयपक्ष महीन्द्र — योगनरेन्द्र (१६८४ १७०५)

भूपतीन्द्र (१६८२ १७२०) — जयभूपेन्द्र — लोकप्रकाश

रणजितमल्ल (१७२२-१७६९ ई०) — भूपालेन्द्र

भास्कर — (१७०५) योगी रानी योगमती

महीन्द्र सिंह (१७०८-१४)

काठमाण्डु — पाटन

जगज्जय महीपतीन्द्र (१७२२ २८) — योगीन्द्रप्रकाश (१७२२)

जयप्रकाश (१७३६-६८) — विष्णु (१७२९-४१)

ज्योतिप्रकाश (१७४८) — राज्यप्रकाश (१७४१-५८)

विश्वजित्

दलमर्दनसा

तेजनरसिंह

इसके बाद ही नेपालमें गोर्खाधिपका विस्तार हुआ। उपरोक्त राजाओं के विषयमें जो संक्षिप्त इतिहास पाया गया, उसे संक्षेपमें लिखते हैं—

११ वीं शताब्दीमें जब मुसलमानोंने भारतवर्ष पर आक्रमण किया, उसके पहलेसे ही भारतका पश्चिमोत्तर प्रदेशसमूह छोटे छोटे खण्डराज्योंमें विभक्त था। उन सब राजाओंके एक दूसरेके प्रति आक्रोश और ईर्ष्या अथवा युद्धविग्रहमें लिप्त रहनेके कारण हिन्दुओंकी सेना और धर्मको हानि होने लगी जिससे वे दुर्बल होने लगे। ऐसे समयमें उन्होंने शत्रुओंके हाथसे रक्षा पाने तथा स्वदेशमें अपनी मान मर्यादा और स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखनेके लिये बहिर्देशस्थ शत्रुओंको आमन्त्रण किया। इसका फल यह हुआ कि भारतवासीके आमन्त्रणसे मुसलमान लोग इस देशमें आ कर विशेष रूपसे आकर्षित और सम्मानित हुए तथा रहनेके लिये एक सुरक्षित स्थान अधिकार कर बैठे। मुसलमानोंने शत्रुओंके भारतवर्षमें पदार्पण किया सही, किन्तु पहलेसे ही उनकी आंखें भारत पर गड़ी हुई थीं। धीरे धीरे उन्होंने शत्रुओंके बहुतसे भारतसाम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। नेपालके भाग्यमें भी एक दिन ऐसी ही घटना हुई थी।

१३२२ ई०में अयोध्याके सूर्यवंशीय राजा हरिसिंह देव पर जब मुसलमानोंने आक्रमण किया तब उन्होंने अयोध्याके मिथिलाकी राजधानी सिमरौनगढ़में दलबल के साथ भाग कर आश्रय ली। ४४४ नेपालाब्दमें (१३२४ ई०में) वे पुनः दिल्लीश्वर तुगलकशाहके आक्रान्त हुए। इस बार सिमरौनमें उन्होंने शत्रुओंके साथ तुमुल युद्ध किया, पीछे पराजित हो कर नेपालमें आ आश्रय लिया। उस समय नेपालमें वर्मवंशीय राजगण राज्य करते थे। जब राजा हरिसिंहदेव यहां पहुंचे, तब उन्होंने यहांके राजाओंके पूर्ण प्रभावका ह्रास देख कर नेपाल राज्यको करायत्त कर लिया। प्रवाद है, कि राजा हरिसिंहदेवके राज्यमें यवनका उत्पात देख देवी तुलजाभवानीने राजाको इस मुसल्मानस्पृष्ट राज्यका परित्याग कर नेपालके उत्तम प्रदेशमें जाने और वहां राज्यस्थापन करनेका आदेश दिया था। राजा देवीके आदेशानुसार जब इस प्रदेशमें आए, तब भातगांवके ठाकुरीराजाओंने तथा वहांके अधिवासियोंने अपनी देवीका प्रत्यादेश सुन कर उन्हींके हाथ नेपाल-दरबारका कुल कार्यभार अर्पण किया।

नेपालमें राज्यभार ग्रहण करनेके साथ ही उन्होंने यहां तुलजादेवीके स्मरणार्थ एक मन्दिर बनवाया। उस मन्दिरका नाम मूल-चोक है। भोटियागण उनकी प्रतिष्ठित तुलजादेवीका माहात्म्य सुन कर देवमूर्त्तिको चुरा लानेके लिये भातगांवकी ओर चल दिये। जब वे लोग सम्मुख नदीके किनारे पहुंचे, तब उन्होंने देखा कि प्रज्वलित हुताशन भातगांव नगरको चारों ओरसे वेष्टन कर रहा है। देवीकी अद्भुत क्षमता देख भोटिया लोग उनके सब डर गए और विस्मित हो वापिस चले आए।

१३३७ ई०में दिल्लीके बादशाह महम्मद तुगलकने चीनसाम्राज्य जीतनेके लिये अपने भागिनेय सेनापति खुसरू-मालिकको दश लाख अश्वारोही सेनाके साथ चीन देशमें भेज दिया। इनकी सेना इसी नेपालराज्यके मध्य हो कर गई थी। इस समय सेनाके अत्याचारसे नेपाल प्रायः तहस नहस हो गया था। मुसलमानी सेनाने बहुत मुश्किलसे पर्वतादिको पार कर नेपालसीमान्तमें चीनसैन्यका सामना किया। यहां दोनोंमें घमघोर युद्ध हुआ। एक तो शीतका समय, दूसरे यह स्थान उनके लिये अस्वास्थ्यकर था, इस कारण मुसलमानी सेना दिनों दिन नष्ट होने लगी। बची खुची सेना रणक्षेत्रमें पीठ दिखा कर दिल्लीकी ओर भाग चली।

राजा हरिसिंहदेवने प्रायः २८ वर्ष तक राज्य किया था। पीछे उनके लड़के मतिसिंहदेवने १५ वर्ष और मतिसिंहके लड़के शक्तिसिंहदेवने २२ वर्ष तक राज्य किया था। इनके साथ चीनसम्राट्‌की मित्रता थी, इस कारण बनेप (वणिकपुर) ग्रामके पूर्ववर्त्ती पलामचौक ग्राममें इन्होंने राजधानी बसाई। वहांसे ये चीनराजसभामें तरह तरहके भेंट भेजा करते थे और चीन सम्राट्‌ने भी इसके बदलेमें उन्हें ५३५ चीनाब्दका लिखित एक अनुमोदनपत्र और शीलमुहर भेज दी। शक्तिसिंहके पुत्र श्यामसिंहदेवके एक भी पुत्र न था। इस कारण वे १५ वर्ष राज्य कर चुकने बाद अपनी एक मात्र कन्या और जामाताको राज्यसम्पद् देनेको बाध्य हुए। राजा नान्यदेवने जब नेपाल पर आक्रमण किया, तब नेपालके मल्लवंशीय राजाने तिरहुत भाग कर अपनी जान बचाई। उक्त मल्लराजवंशमें श्यामसिंहदेवने अपनी कन्याका विवाह किया। इस सूत्रसे नेपालमें मल्लराजवंशकी पुनः प्रतिष्ठा हुई। ५२८ नेपालसम्वत्‌में यहां भयानक भूमिकम्प हुआ जिससे मत्स्येन्द्रनाथ तथा दूसरे दूसरे कितने मन्दिरादि तहस नहस हो गए।

हरिसिंहदेव-वंशका राजत्व शेष होने पर महाराज जयभद्रमल्लने पहले पहल नेपालराज्यमें अपनी गोटी जमाई। १५ वर्ष राज्य करनेके बाद जयभद्र परलोकको सिधारे। पीछे उनके लड़के नागमल्ल राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने सिर्फ १५ वर्ष राज्य किया। बादमें उनके लड़के जयजगत्‌मल्लके ११ वर्ष तक राज्य कर चुकनेके बाद अपने लड़के नगेन्द्रमल्लके हाथ राज्यका कुल भार सौंप आप परलोकको सिधारे। राजा नगेन्द्रमल्लने १० वर्ष और उनके लड़के उग्रमल्लने १५ वर्ष राज्य किया। पीछे उनके लड़के अशोकमल्ल राज-सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। इन्होंने ही विष्णुमती, वागमती और रुद्रमती तीनों नदियोंके मध्यवर्त्ती स्थानमें श्वेतकाली और रक्तकालीकी स्थापना करके उस स्थानको पुण्यभूमि काशीधामके जैसा आदर्श बना दिया और उसका नाम रखा उत्तरकाशी वा काशीपुर। अपने भुजाबलसे राजा अशोकमल्लने ठाकुरी राजाओंको परास्त कर उनकी राजधानी पाटन नगर पर अधिकार कर लिया।

तदनन्तर इनके पुत्र जयस्थितिमल्ल राजा हुए। इन्होंने पूर्वतन राजगणकृत शासन-पद्धतिका विशेष संशोधन और कुछ नये नियमोंका प्रचार किया। इन्हींके शासनकालमें जातिमर्यादा संस्थापित हुई। समाजशासन तथा धर्मसंक्रान्त कुछ नवीन प्रथाका प्रचार कर वे जनसाधारणकी श्रद्धा और भक्तिके पात्र हुए थे। आर्यतीर्थके दूसरी ओर वागमतीके किनारे इन्होंने रामचन्द्र, उनके लड़के लव और कुशकी मूर्त्तिकी स्थापना तथा गोरखनाथदेव मूर्त्तिकी पुनः प्रतिष्ठा की। ललित पाटनका कुम्भेश्वर मन्दिर तथा अन्यान्य बहुसंख्यक देवमन्दिर इन्हींके प्रतिष्ठित हैं। ४३ वर्ष राज्य करने बाद इनके लड़के राजा जययक्षमल्ल राजसिंहासन पर सुशोभित हुए। इन्होंने पहले शङ्कराचार्यप्रवर्त्तित धर्ममत ग्रहण कर भारतके दाक्षिणात्यसे भट्टब्राह्मणको बुलाया और पशुपतिनाथदेवकी पूजाका भार उन्हीं पर सौंपा। इसी समयसे भारतवासी हिन्दूधर्मावलम्बी ब्राह्मणोंने नेपालमें प्रकृत हिन्दूमतानुसार देवपूजाविधिका प्रचार किया। इनके राजत्वकालमें धर्मराज मीननाथ-लोकेश्वरका मन्दिर बनाया गया। उस मन्दिरमें समन्तभद्र बोधिसत्व, पद्मपाणि बोधिसत्व और अन्यान्य बोधिसत्व तथा नाना देवदेवियोंकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। ५७३ नेपाल-सम्वत्‌में इन्होंने एक दुर्गनिर्माण किया और उसकी देखभालके लिये कुछ विशेष नियम

बनाए। भातगांवमें तचपालटोल ग्राममें इन्होंने दत्तात्रेयका एक मन्दिर बनवा दिया। राजा गुणकाम देव-प्रतिष्ठित गोरक्षनाथ देवमूर्त्ति ठाकुरी राजाओंके समयमें यमला नामक स्थानके भग्नमन्दिर स्तूपके मध्य पाई गई थी। इन्होंने उस देवमूर्त्तिका संस्कार करा कर काठमण्डूमें पुनः उसकी प्रतिष्ठा की। वह मूर्त्ति अभी यमलेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। ये पाटन और काठमण्डूके राजाओंको वशमें लानेमें समर्थ हुए थे।

राजा यक्षमल्लके तीन पुत्र और एक कन्या थी। मरनेसे पहले इन्होंने अपने बड़े लड़केको भातगांव राज्य, दूसरे रणमल्लको बनेपा और तीसरे लड़के रत्नमल्लको काठमण्डू तथा कन्याको पाटनका सामन्तराज्य दे दिया था। किन्तु धीरे धीरे आपसमें विवाद होनेसे वे कमजोर हो गये। राजा यक्षमल्लके इस प्रकार अपना राज्य विभाग कर देने पर भी प्रजा न इधरके अभावसे अथवा किसी अभावनीय कारणसे बनेपा और पाटनराज्य भातगांव और काठमण्डू राज्यमें शामिल हो आया। इसी कारण नेपालके इतिहासमें गोर्खा आक्रमणके पहले उक्त दो राज्योंका थोड़ा बहुत इतिहास मिलता है। १४८२ नेपाली-सम्वत्में यक्षमल्लकी मृत्यु होने पर नेपालराज्य इस प्रकार विभक्त हो गया। उनके बड़े लड़के रायमल्लने भातगांवका स्वाधीन शासन पाया। उस समय भातगांव का राज्य पूर्व दूधकोसी तक विस्तृत था। रायमल्लके बाद उनके लड़के भवमल्ल, भवमल्लके बाद उनके लड़के विश्वमल्ल भातगांवके राजा हुए। विश्वमल्लने अनेक मठ और देवमन्दिर बनवाये। विश्वमल्लके पुत्र त्रैलोक्यमल्लके राजत्वके बाद उनके लड़के जगज्ज्योतिमल्लने शासनभार ग्रहण किया। इन्होंने ही भातगांवमें आदिमें रथकी एक यात्राका उत्सव प्रवर्त्तन किया। इनकी मृत्युके बाद इनके लड़के नरेन्द्रमल्ल राजा हुए। इनके बाद इनके पुत्र जगत्प्रकाशमल्लने राजपद पा कर ७७५ नेपालसम्वत्में अनेक कीर्त्तिस्तम्भ स्थापन किये। तचपालटोल ग्राममें दारुचित्र मारो और काष्ठ मारो नामक दो व्यक्तिने भीमसेनके उद्देशसे एक मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। ७८८ नेपालसम्वत्में इन्होंने विश्वनाथेश्वर मण्डप और ७८० ने० स०में मदनध्वज नामक एक स्तम्भ निर्माण किया।

इनके लड़के राजा जितामित्रने (८०२ ने०सं०) एक धर्मशाला, नारायणमन्दिर और (८०१ ने०स०) दत्तात्रेयका मन्दिर बनवाया। इनके पुत्र राजा भूपतीन्द्र मल्लके राजत्वकालमें नेपालमें एक सुन्दर दरबार और नाना देवदेवियोंके मन्दिरकी प्रतिष्ठा की गई। इन्होंने स्वयं तथा अपने पुत्र रणजित्की सहायतासे ८१६ ने० स०में स्वदेवके मन्दिरमें स्वर्णकी छत बनवा दी। पिताके मरने पर रणजित्मल्ल शासनभार ग्रहण कर नेपालमें अनेक अद्भुत कीर्त्ति छोड़ गए हैं। इन्हींके राजत्वकालमें भातगांव, ललितपाटन और कान्तिपुरके राजाओंके बीच परस्पर विरोध छिड़ गया। गुर्खाधिपति राजा नरभूपालने तत्कालीन राजाओंको इस प्रकार कमजोर देख उन पर आक्रमण कर दिया। जब वे त्रिशूलगङ्गानदी पार कर नेपाल पहुंचे तब नवकोटके ब्राह्मणोंने उनके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। इस युद्धमें गुर्खाराज पराजित हो कर स्वदेशको लौट गये।

गुर्खापति नरभूपालके पुत्र राजा पृथ्वीनारायण रणजितके राजत्वके समय नेपाल देखनेको आए। रणजितने उनका आचार-व्यवहार देख अपने पुत्र वीर नृसिंहमल्लके साथ उनकी मित्रता करा दी; किन्तु पुनः राजकी पश्चात् मृत्यु होने पर भातगांवके स्वतन्त्र राजाओंका अस्तित्व लोप हो गया।

राजा यक्षमल्लने द्वितीय पुत्र रणमल्लको बनेपापुर तथा और सात ग्रामोंका शासनभार अर्पण किया था। उनका आधिपत्य पूर्वमें दुधकोसी, पश्चिममें सङ्गा नामक ग्राम, उत्तरमें महादेव और दक्षिणमें सिंदिना नामक वध्यभूमि तक फैला हुआ था। बनेपापुरके किसी व्यक्तिने (५९२ ने०स०) अवन्तिनाथको एक मूल्यवान् कवच और पञ्चमुखी रुद्राक्ष उपहार देते समय राजाको एक दुशाला भी दिया था। वह दुशाला आज भी कान्तिपुर राजभवनमें रखा हुआ है।

राजा यक्षमल्लके तृतीय पुत्र राजा रत्न वा रत्नमल्लने पिताके विभागानुसार काठमण्डूका राज्यभार ग्रहण किया। इस राज्यकी पूर्व सीमामें वाग्मती, पश्चिममें त्रिशूलगङ्गा, उत्तरमें सोआई ग्राम और दक्षिणमें पाटन विभागकी उत्तरीय सीमा है। राजा रत्नमल्लने पिताके

मरते समय उनसे तुलजादेवीका वीजमन्त्र ग्रहण किया था। प्रवाद है, कि इस मन्त्रबलसे देवी उन पर हमेशा प्रसन्न रहती थीं। इनकी भविष्यत् उन्नति देख इनके बड़े भाई जलने लगे। अन्तमें इस मनोमालिन्यसे दोनोंमें भारी विरोध खड़ा हो गया।

राजा रत्नमल्लने एक दिन स्वप्नमें देखा कि नीलतारादेवी उन्हें कह रही है, 'यदि तुम कान्तिपुर जा सको, तो काजीगण तुम्हें अवश्य ही राजा बनावेंगे।' तदनुसार राजा बहुत तड़के बिछावनसे उठ देवीको प्रणाम कर ठाकुरी राजाओंके प्रधान काजीके समीप पहुंचे। काजीने उन्हें राजा बनानेकी प्रतिज्ञा की। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये काजीने एक दिन बारह ठाकुरीराजाओंको अपने यहां निमन्त्रण किया और व्यञ्जनादिके साथ विष मिला कर उन बारहोंको यमपुर भेज दिया। कान्तिपुरके सिंहासन पर बैठनेके साथ ही रत्नमल्लको काजीके चरित्र पर विशेष सन्देह हो गया और आखीरको उसे मरवा ही डाला। स्वप्नदृष्ट वाक्य मिथ्या होने पर भी उन्होंने भाइयोंके साथ विवाद कर जो कान्तिपुर दखलमें कर लिया था, इसमें सन्देह नहीं।

६११ ने०स०में इन्होंने नवकोटके ठाकुरीराजाओंको पराजित कर उनका राज्य अपना लिया था। इस स्थानसे उन्होंने नाना प्रकारके फूल और फल ले कर पशुपतिनाथका पूजा की थी। यही कारण है, कि आज भी वहांके लोग नवकोटसे द्रव्यादि ला कर उक्त देवमूर्त्तिकी पूजा करते हैं।

इनके राजत्वकालमें कुलु नामक भूटिया जातिने विद्रोही हो कर राजा पर विशेष अत्याचार आरम्भ कर दिया। राजा जब उन्हें दमन कर न सके, तब देवधर्मा ग्रामवासी चार तिरहुतिया ब्राह्मण पल्पाके सेनराजाओंके अधीनस्थ सेना ले कर रत्नमल्लकी सहायतामें पहुंच गए। कुकुस्यानाजोर नामक ग्राममें भूटिया लोग पराजित हुए। राजाने ब्राह्मणोंको कई एक ग्राम और बहुत धन दान दिये। इन्हींके शासनकालमें भोटिया-विद्रोहके बाद नेपालमें यवन (मुसलमान) जातिका वास आरम्भ हुआ।

इन्होंने ६२१ नेपालीसम्वत्‌में तुलजादेवीका एक मन्दिर बनवा कर उसमें देवमूर्त्तिकी स्थापना की। बाद इन्होंने कान्तिपुर और ललितपाटनके अधिवासियोंको वशमें ला कर ग्रेपागढ़ि पर्वतकी चितलिङ्ग उपत्यकाकी तांबेकी खानसे तांबा निकाल कर सुकिचा (१)के बदलेमें तांबेके पैसेका प्रचार किया।

रत्नमल्लकी मृत्युके बाद उनके लड़के अमरमल्ल काठमण्डूके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनके शासनकालमें वणिकपुरके कुमारोंने अनन्तनारायणकी मूर्त्तिको ले कर पशुपतिके मन्दिरमें स्थापन करना चाहा। किन्तु राजाका आदेश नहीं मिलने पर उन्होंने उसी रात भरमें बाछला देवके मन्दिरकी बगलमें एक दूसरा मन्दिर बनवा लिया और इसीमें नारायणकी मूर्त्ति-प्रतिष्ठा की। भुवनेश्वरके उपासक मणि आचार्यके वंशधरोंने ८ कुमार और कुमारियोंके उद्देशसे एक यात्रा-उत्सव किया। प्रति वर्ष ८ आषाढ़को यह उत्सव होता है। प्रवाद है, कि ६०७ ने०स० जिस दिन मणिआचार्य 'मृतसञ्जीवनी'के अन्वेषणमें बाहर निकले थे, उसी दिन यह उत्सव मनाया जाता है। उनके वंशधरोंने उनके अन्तर्धान होनेका समाचार सुन कर जब अन्त्येष्टिक्रियाकी तैयारियां कीं, तब वे देवपाटनसे लौट कर उनका अभिप्राय समझ स्वेच्छासे अग्निमें जल मरे।

राजा अमरमल्लने मदनके पुत्र अभयराजको मुद्राङ्कणका कर्त्तृत्वभार दे कर 'टङ्किनायक'के पद पर अभिषिक्त किया। इन्होंने अपने खर्चसे अनेक मन्दिरादि बनवाये थे।

इस राजाने खोकनाकी महालक्ष्मीदेवी, हलचोकदेवी, मानमईसुदेवी, पचली-भैरव और लुम्बिकालीकी दुर्गादेवी, कनकेश्वरी, घटेश्वरी और हरिसिद्धिकी पूजामें नृत्य-उत्सवका प्रचलन किया। पूर्व समयमें कनकेश्वरीदेवीकी पूजामें नरबलि दी जाती थी, इस कारण अभी उक्त देवीकी पूजा और उत्सव बन्द हो गया है।

ललितपुर, बन्दगांव, थेचो, हरसिद्धि, लुभु, चापागांव, फिरफिङ्ग, मत्स्येन्द्रपुर वा वागमती, खोकना, पाङ्गा

(१) सुकिचा वा सबसे प्राचीन नेपालीमुद्रा। इसका वर्त्तमान मील ८ पैसे वा दो आने है।

श्रीसिंहपुर, भातगांवे, बनेपा, मतातल, चतचाव, फुलुम, धर्मस्थली, ठोका, चम्पोगांव, सिविग्राम, सुनग्राम, मोकवं, देवपाटन, नन्दीग्राम, नगराज साखीग्राम वा मानव आदि विशिष्ट जनपद उनके अधिकारमें थे। काठमण्डूसे पशुपति ग्राम जानेके रास्ते पर नन्दीग्राम अवस्थित है। नगराज और साखीग्राम एक समय विशाल नगर नामसे प्रसिद्ध था। यहां प्राचीन कीर्त्तिके अनेक ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं।

नेपालीवंशावलीके अनुसार ४० वर्ष राज्य करनेके बाद अमरमल्लका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के सूर्यमल्ल राजा बने। इन्होंने भातगांवके राजाके राज्य पर चढ़ाई कर ईशानस्थित चाङ्गुनारायण और शङ्खपुर ग्राम जीत लिए। पीछे शङ्खपुर जा कर अवलोकितेश्वरकी पूजा करनेके लिये वहां कुछ वर्ष ठहर कर अन्तमें कान्तिपुर लौटे और यहीं उनकी मृत्यु हुई। अनन्तर उनके लड़के नरेन्द्रमल्ल और पीछे नरेन्द्रमल्लके लड़के महीन्द्रमल्ल राजा हुए। इन्होंने दरबारके सामने महीन्द्रेश्वरी और पशुपतिनाथका मन्दिर बनवाया। भारतकी राजधानी दिल्ली जा कर इन्होंने सम्राट्‌को नाना जातीय द्रव्य और शिकारी पक्षी उपहारमें दिए। सम्राट्‌से मुद्राङ्कनका आदेश मांगने पर सम्राट्‌ने खुशीसे इन्हें रौप्यमुद्रा प्रचलनकी अनुमति दी थी।

स्वराज्य लौट कर राजा महीन्द्रमल्लने अपने नाम पर 'मूहर' नामकी रौप्यमुद्रा चलवानी शुरू की। यही मुद्रा नेपालकी प्रथम रौप्यमुद्रा थी। इसके पहले और कभी भी नेपालमें रौप्यमुद्राका प्रचार था या नहीं, कह नहीं सकते। इस समयके पहलेकी नेपालमें जो सब ताम्रमुद्राएं पाई जाती हैं, उनके ऊपर सिंह, शिव, हस्ती आदि जन्तुओं की प्रतिकृति अङ्कित है।

महीन्द्रमल्लके ही समयसे कान्तिपुर नगर [illegible] हुआ था। ६६८ ने० स०के माघमासमें इन्होंने इस नगरमें तुलजाभवानीकी प्रतिष्ठाके लिये एक मन्दिर बनवाया। इनके राजत्वकालमें ६८६ ने० स०को विष्णुसिंह देवके पुत्र पुरन्दर-राजवंशीने ललितपाटन दरबारके सामने नारायणके लिए एक मन्दिरकी स्थापना की। राजा महीन्द्रमल्लके दो पुत्र थे। बड़े का नाम था सदाशिवमल्ल और छोटेका शिवसिंहमल्ल। इनकी माता [illegible] थीं।

पिताके मरने पर बड़े लड़के सदाशिव राज्याधिकारी हुए किन्तु वे थे उद्दण्ड और स्वेच्छाचारी राजा। किसी तीर्थ या यात्राके उपलक्षमें जब किसी सुन्दरी स्त्री पर उनकी नजर पड़ जाती थी, तब वे उसको बलात् छीन लेते थे। इस प्रकार इन्होंने कितनीही कुलललनाओंके कुलमें कालिमा लगा दी थी, उसकी इयत्ता नहीं। विलासिताके वशवर्त्ती हो कर वे और भी राजकोष खाली करने लगे। प्रजा भी उनका ऐसा व्यवहार देख दिनों दिन श्रद्धाहीन होने लगी। एक दिन जब उन्होंने देखा, कि राजा मनोहराकी ओर जा रहे हैं तब वे उन्हें मुद्गरादि ले कर उन पर टूट पड़े। राजाने डर कर भातगांवमें जा कर आश्रय लिया; किन्तु भातगांवाधिपतिने उनका जघन्य चरित्र विदित सुन कर उन्हें कैद कर लिया। राजा सदाशिव कुछ दिनके बाद किसी तरह जान ले कर वहांसे भाग आये। इन्हींके समयमें [illegible] नेपालसे अन्तर्हित हो गया।

प्रजाने सदाशिवको राज्यच्युत करके उनके छोटे भाई शिवसिंहमल्लको राजसिंहासन पर बिठाया। राजा शिवसिंह बड़े धार्मिक थे। इन्होंने महाराष्ट्र देशके ब्राह्मण बुला कर उन्हें गुरुपद पर अभिषिक्त किया। इनके राजत्वकालमें स्वयम्भू नामक कान्तिपुरवासी कोई नागरिक तिब्बतकी राजधानी [illegible] गये। शिवसिंहके दो पुत्र थे, लक्ष्मीनरसिंहमल्ल और हरिहरसिंहमल्ल। छोटे हरिहर कुछ उग्र प्रकृतिके थे। पिताके जीते-जी वे ललितपाटनका शासन करनेके लिये अग्रसर हुए। इनकी माता महारानीने कान्तिपुर और [illegible]के मध्य एक उद्यान बनवाया जो रानीवन नामसे प्रसिद्ध है। वर्त्तमान अङ्गरेजी-रेसिडेन्सीके समीप ही उस उद्यानके ध्वंसावशिष्ट कुछ प्राचीरादि देखनेमें आते हैं। कुछ समय पहले यही रम्य उद्यान जङ्गबहादुरके शिकारके लिए हरिणपालन [illegible]के आकारमें परिणत था।

एक समय हरिहरसिंहने जब देखा कि उनके पिता

शिकारके लिये बाहर गये हुए हैं, तब उन्होंने किसी विवादके कारण अपने भाई लक्ष्मीनरसिंहको दरबारसे बाहर निकाल दिया था। ७१४ ने०सं०में राजा शिवसिंहने स्वयम्भूनाथके मन्दिरका पुनः संस्कार करा दिया। कुछ समय बाद राजा और रानी गङ्गादेवीके मरने पर ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीनरसिंह कान्तिपुरके राजा हुए। इनके किसी आत्मीय भीममल्लने स्वयं भोटदेशमें जा कर कान्तिपुर और भोट इन दोनों स्थानोंको वाणिज्यसूत्रमें एक कर दिया। इस प्रकार व्यवसाय व्यापारमें भोटसे स्वर्ण और रौप्य नेपाल लाया गया था। काजी भीममल्लके यत्नसे भोटराजके साथ राजा लक्ष्मीनरसिंहकी इस शर्त पर एक सन्धि हुई कि व्यवसाय-उपलक्षमें यदि किसी मनुष्यका तिब्बतकी राजधानी लासानगरमें जीवन नष्ट हो जाय, तो उसकी स्थावर अस्थावर सम्पत्ति नेपालराजको देनी पड़ेगी। इनकी सहायतासे भोटान्तर्वर्ती कुटी नामक प्रदेश नेपालके अधीन किया गया।

तिब्बत-राजधानी लासानगरसे लौट कर भीममल्लने राजाकी उन्नत करनेमें विशेष सहायता की थी। यथार्थमें वे राजा लक्ष्मीमल्लको नेपालके एकच्छत्र राजा बनानेमें विशेष यत्नवान थे। किसी मनुष्यने एक दिन राजासे कहा, "भीममल्ल स्वयं राज्य लेनेके लिये ये सब चेष्टाएँ कर रहे हैं। आपको राज्यच्युत करना ही उनका मुख्य उद्देश्य है।" यह सुन कर राजाने भीममल्लका शिरच्छेद करनेकी आज्ञा दे दी। भीममल्लने अपनी जीवद्दशामें धर्मशिला विग्रहका एक ताम्र आवरण बनवा दिया था। जनश्रुति है, कि दक्षिण-भारतवासी नित्यानन्दस्वामी नामक एक ब्रह्मचारी इस समय नेपालमें आए हुए थे। वे ब्रह्मचारी थे सही, किन्तु किसी मूर्त्तिको प्रणाम नहीं करते थे। यह कथा सुन कर राजा आगबबूला हो गए और ब्रह्मचारीको विग्रहादि प्रणाम करनेका हुकुम दिया। नित्यानन्दस्वामीने ज्यों ही विग्रहके सामने अपना शिर झुकाया, त्यों ही चन्द्रेश्वरी, धर्मशिला, कामदेव आदि मूर्त्तियां टूट फूट गईं। भीममल्लकी हत्या पर उनकी स्त्रीने राजाको शाप दिया था जिससे कुछ दिन बाद राजाका मस्तिष्क विकृत हो गया। जब वे राजकार्य चलानेसे असमर्थ हुए, तब उनके लड़के प्रतापमल्ल ७५८ ने०सं०में नेपालकी गद्दी पर बैठे। ७८७ नेपालसम्वत्में १६ वर्ष कारागारके बाद राजा लक्ष्मीनरसिंहकी मृत्यु हुई।

उन्होंने इन्द्रपुर नगर और जगन्नाथ देवालयकी स्थापना की। ७७४ ने०सं०की माघ-शुक्ला पञ्चमीको उन्होंने कालिकादेवी-स्तोत्रकी रचना कर उसे पत्थरके ऊपर खुदवा दिया और जहां तहां देवालयमें भी लिखवा दिया। वह देवस्तोत्र १५ विभिन्न भाषाओंकी वर्णमालामें रचा गया था *। वे विद्वान् और अनेक शास्त्रोंके पण्डित थे तथा १५।१६ विभिन्न भाषा जानते थे।

इनके राजत्वकालमें श्यामार्पा-लामा नामक कोई भोटवासी नेपाल आए और ७६० ने०सं०में उन्होंने स्वयम्भूनाथका गर्भकाष्ठ बदलवा दिया तथा देवमूर्त्तियां गिलटी करवा दीं। उक्त मन्दिरके दक्षिणस्थ गुम्बजमें राजा लक्ष्मीनरसिंहका नाम अङ्कित है। ७७० ने०सं०में राजा प्रतापमल्लने स्वयम्भूनाथका माहात्म्य वर्णन करते हुए एक और कविताकी रचना की तथा उसे प्रस्तर पर खोदवा कर देवमन्दिरमें रखवा दिया। उन्होंने अपनी प्रचलित मुद्रामें 'कवीन्द्र'-की उपाधि संयोजित कर अपनेको विशेष गौरवान्वित समझा था।

उन्होंने पहले दो तिरहुत-राजकन्याका पाणिग्रहण किया। पीछे यौवनस्वभावसुलभ चपलतासे उन्होंने इन्द्रिय-लालसाकी परितृप्ति करनेके लिये नेपाली प्रथानुसार प्रायः तीन हजार रमणियोंको स्त्रीके रूपमें वरण किया था। इस अहमवासनाके वशमें आ कर उन्होंने एक समय एक बालिकाको मार डाला था। स्वकृत पापोंसे भयभीत हो कर उन्होंने तथा परिवारस्थ सब किसीने पापमोचनके लिये तुलादान उत्सव किया।

इनके राजत्वकालमें महाराष्ट्रसे लम्बकर्ण भट्ट और तिरहुतसे नरसिंहठाकुर नामक दो ब्राह्मण नेपाल आए और राजासे परिचित हो कर 'गुरु'-उपाधिसे भूषित हुए। राजा प्रतापमल्लके चार पुत्र थे, पार्थिवेन्द्रमल्ल, नृपेन्द्रमल्ल, महीपेन्द्र (महीपतीन्द्र)-मल्ल और चक्रवर्त्तीन्द्रमल्ल।

* D. Wright's History of Nepal नामक पुस्तकमें उक्त शिलालिपिकी एक प्रतिकृति है।

पिताके जीते-जी उन चारों ने एक एक वर्ष पिताके इच्छानुसार राज्यभोग किया। तृतीय पुत्र महीपतीन्द्रके शासनकालमें पिताने पुत्रकी सहायतासे ७८८ ने० सं०को पशोपतिपुष्पमन्दिरके पासमें स्वर्णधातुमण्डपमें एक रत्न को यथाविधि स्थापित की। चतुर्थ पुत्र चक्रवर्तीन्द्रने एक वर्ष राज्य कर जीवलीला समाप्त की। ७८९ ने० सं०में चक्रवर्तीन्द्रने जो मुद्रा चलाई, उसके एक पृष्ठ पर मात्रासे पाय, पद्म, कमल और चामर अङ्कित देखा जाता है।

पुत्रकी मृत्यु पर राजमाता जब व्याकुल हुई, तब राजाने उनका शोक दूर करनेके लिये एक सुवर्ण पुष्प दिये और मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। वह पुष्करिणी रानी पोखरी नामसे मशहूर है। ८०८ ने०सं०को राजाकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के महीन्द्रमल्ल नृपालेन्द्र नाम धारण कर राजसिंहासन पर बैठे। ८१४ ने० सं० को नृपालेन्द्र भी परलोकको प्राप्त हुए। बादमें उनके लड़के भूपालेन्द्रमल्ल सोलह वर्षकी अवस्थामें राजपदको प्राप्त हुए। इनके राजत्वकालके आठवें वर्षमें इनकरा का पक्ष ले कर पाटन और भातगांववासियोंके बीच विवाद उपस्थित हुआ। इसी साल नेपालमें महामारी का प्रकोप हुआ जिससे उनकी अकाल मृत्यु हुई। उनकी मृत्युके साथ साथ कान्तिपुरका सूर्यवंशीय राजवंशका भी चिराग गुल गया। राजाकी महिषी तथा दूसरी दूसरी स्त्रियां सतीदाह होनेके पहले अपने विशेष आत्मीय जगज्जयमल्लको राजा बना गई थीं।

राजा जगज्जयके पांच पुत्र थे। राजेन्द्रप्रकाश और जयप्रकाशने उनके राज्यप्राप्तिमें पहले कष्टसहन किया था। राज्यप्रकाश नरेन्द्रप्रकाश और चन्द्रप्रकाश पीछे उत्पन्न हुए थे। राजाको जीवितावस्थामें ज्येष्ठ राजेन्द्र और कनिष्ठ चन्द्रप्रकाश स्वर्गधामको सिधारे। दोनों पुत्रके वियोगसे जब राजा बहुत व्याकुल हुए, तब उनके अधीनस्थ कर्मचारियोंने आ कर उन्हें सान्त्वना दी और राजकुमार राज्यप्रकाशको राजपद-प्राप्तिके लिये उनसे विशेष अनुरोध किया।

इस समय जब राजाको मालूम हुआ कि गुर्खाके राज पृथ्वीनारायणने नवकोट तक राज्य फैला लिया है और उनकी दिनोंदिन सम्पत्ति शत्रुके हाथ लग गई है, तब वे बहुत दुःखी हुए। ८६२ ने०सं०में उनके स्वर्गारोहण करने पर उनके लड़के जयप्रकाशमल्ल बाद सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। कुमार राज्यप्रकाशको जब सिंहासन प्राप्त न हुआ, तब वे नाराज हो पाटनको चले गए और राजा विष्णुमल्लके यहां रहने लगे। राजा विष्णुमल्लको एक भी पुत्र न रहनेके कारण उन्होंने राज्यप्रकाशको ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा।

राजकर्मचारी ठाकुरोंने उनके कनिष्ठ भ्राता नरेन्द्रप्रकाशको देवपाटन चाङ्गु, साङ्गु, गोकर्ण और नन्दी ग्राम नामक पांच ग्रामोंका आधिपत्य प्रदान किया। ठाकुरोंके कार्यसे विरक्त हो कर उन्होंने उन्हें कैद कर लिया और भाईके उक्त पद नामका अधिकार छीन लिया। अतः नरेन्द्रप्रकाशको विवश हो काठमाण्डू छोड़ कर भातगांव जा कर रहना पड़ा था। इसके कुछ दिन बाद नरेन्द्रप्रकाशकी मृत्यु हुई।

जो कुछ हो उक्त ठाकुर कर्मचारियोंने समय पा कर भेदसे षड़यन्त्र रचाया और रानी दयावतीका पक्ष अवलम्बन कर उनके अठारह मासके बच्चे ज्योतिप्रकाशको सबके सामने राजा कह कर घोषणा कर दी। राजा जयप्रकाश दरबार छोड़ कर ललितपाटन भाग गये। किन्तु वहांके प्रजाओंने उन्हें आश्रय न दिया। इस कारण वे रानी दयावतीका आश्रय ग्रहण करनेके लिये गोदावरीको चले गए। यद्यपि भी निकाले जाने पर उन्होंने गोकर्णवनमें और पीछे गुह्येश्वरीके मन्दिरमें आश्रय लिया। वहां एक भक्तने उन्हें देवीका खड्ग दे कर शत्रुओंके विरुद्ध युद्ध करनेकी सलाह दी। उनके विरुद्ध जो सैन्यदल कान्तिपुरसे आ रहा था, वे सबके सब उनके हाथसे मारे गए। पीछे राजाने कान्तिपुर लौट कर दरबारमें प्रवेश किया और शिशु ज्योतिप्रकाश को दो पृथक् करके उनकी माता रानी दयावतीको नन्दीपुर-भवनमें कैद कर रखा।

इस प्रकार जयप्रकाशने अपने शत्रुओंको दमन कर नवकोट पर आक्रमण कर दिया। गोर्खाराज पृथ्वीनारायण पराजित हो कर स्वदेश लौटे। इसके बाद वर्ष

बाद पृथ्वीनारायणने पुनः नवकोट पर हमला बोल दिया और १२ तिरहुतवासी ब्राह्मणोंका ब्रह्मोत्तर छीन लिया। उन ब्राह्मणोंने नेपाल-राजके पास जा कर अपना दुखड़ा रोया। इसी समयसे राजाके अधःपतनका सूत्रपात हुआ। जब उन्होंने सुना कि काशीराम ठापा नामक एक व्यक्ति पृथ्वीनारायणको नवकोटका अधिकार देनेके लिये सहायता कर रहे हैं, तब उन्हें समझा कर सहायता करनेसे मना किया। काशीरामने अपनेको बिलकुल निर्दोष बतलाया, तिस पर भी जब वे चावहिल-के गौरीघाट पर सन्ध्या कर रहे थे, तब राजप्रेरित गुप्त-चरोंने आ कर उन्हें मार डाला।

गुह्येश्वरीकी कृपासे जयप्रकाशने पुनः राज्यभार ग्रहण किया और कृतज्ञताके लिये मन्दिरके सामने घाट और उसके चारों ओर गृहादि बनवा दिये तथा उक्त देवीकी पूजाके लिये बहुत-सो जमीन दान दी। वे ही उक्त देवीपूजाके उत्सवमें बहुसंख्यक लोगोंको खिलाने-की प्रथा चला गए हैं। पशुपतिनाथ-मन्दिरके समीप उन्होंने एक वेदीके ऊपर मृत्तिकानिर्मित कोटिशिव-लिङ्गपूजाकी पद्धति जारी की थी जो अभी कोटि-पार्थिव पूजाके नामसे प्रसिद्ध है।

इस समय पृथ्वीनारायणने बहुत-सी सेना ले कर कीर्त्तिपुर पर आक्रमण कर दिया। दोनों दलमें घम-सान युद्ध चला। युद्धमें नेपालराजके सरदार शक्तिवल्लभ-के अधीनस्थ बारह हजार सेना विनष्ट हुई थो। दोनों दलकी विशेष क्षति होने पर भी राजा जयप्रकाश पृथ्वी-नारायणको राज्यसे बाहर निकाल देनेमें सक्षम हुए थे। किन्तु ठारिगण सीमान्तवर्त्ती तिरहुतवासी ब्राह्मणोंके ऊपर ईर्ष्यापरतन्त्र हो कर पुनः पृथ्वीनारायणके समीप गए और उन्हें नेपालके कितने अंश प्रदान किए।

इस समय भातगांवके राजा रणजित्‌मल्ल थे। वे भी गुर्खालियोंको पराजित करनेकी इच्छासे भागसिपा-हियोंको शिक्षा देने लगे। ८८७ ने०सं०के आषाढ़ मासमें यहां २४ घण्टेके मध्य २१ बार भूमिकम्प हुआ ... इसके आठ मास बाद ८८८ ने० सम्वत्‌को पृथ्वी-... राजाका मौ... कान्तिपुर पर धावा मारा। उस दिन ... ने असमर्थ हुए, नेपाली सेना और नगरवासी सबके सब नशेमें चूर चूर थे। फलतः दो एक घण्टे युद्ध करनेके बाद ही वे थक गए। राजा उस समय मन्दिरमें देवीको उपासनामें मस्त थे। पृथ्वीनारायण-को अच्छा मौका हाथ लगा। उन्होंने पहले कान्तिपुर पर और पीछे ललितपुर पर अपनी गोटी जमा ली।

राजा यक्षमल्लने पाटन जीत कर अपनी एकमात्र कन्याको वहांका शासनभार अर्पण किया। क्रमशः यह जनपद काठमण्डू राजाके दखलमें आ गया। राजा शिवसिंहके छोटे लड़के राजा हरिहरसिंहमल्ल इस प्रदेशका शासन करने आये। हरिहरसिंहको मृत्युके बाद उनके लड़के सिद्धिनरसिंह राजा हुए। ये अत्यन्त ज्ञानवान् थे, उनको कोर्त्ति आज भी नेपालमें जगह जगह विद्यमान है। ७४० नेपालसम्वत्‌को उन्होंने अपने गुरु विश्वनाथ उपाध्यायकी सलाहसे तुलजादेवीको पुनः प्रतिष्ठा की। ७५७ नेपालसम्वत्‌के फाल्गुणमास पुन-र्वसुनक्षत्रको आयुष्मान योगसे उन्होंने कोथ्याङ्‌ तियस कर राधाकृष्णका मन्दिर बनवाया।

ये बुद्धमार्गीसम्प्रदायके ऊपर विशेष श्रद्धा रखते थे। राजाने स्वयं हठकोविहारको तोड़वा कर उनका पुन-र्निर्माण किया। इसके अलावा अन्यान्य सर्वोके यत्नसे ज्येष्ठवर्ण, तङ्गल, धर्मोत्कलितव, मयूरवर्ण, विष्णु-मत्त, येंघासवर्ण, भोंकासीरुद्र वर्ण, छक, हिरण्यवर्ण, यशो-धराध्यूह, चक्र, शक्र, दत्त, यशु, बम्बाहा, जसोवाहा और धूमबाहा नामक कई एक विहार बनाए गए थे। यहांका जम्पोविहार 'निर्वाणिक' है अर्थात् यह उन्होंके लिए है, जो निर्वाणतत्त्व जानना चाहते हों वे दारपरि-ग्रह नहीं करते। यहां निर्वाणसम्प्रदायियोंके और भी पांच विहार हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि राजा लक्ष्मीनरसिंहके आत्मीय काजी भीममल्लको सहायतासे नेपालमें तिब्बत-वासियोंके साथ वाणिज्यके लिये जो सन्धिका प्रस्ताव हुआ था, उसी शर्त पर ललितपुरका वणिक्‌सम्प्रदाय भी भोटजातिके साथ वाणिज्य व्यवसाय करने लगा।

७६८ नेपाल... ...न्होंने भण्डारघानके निकट-... पृथ्वीनारा... ...रिणीके समीप एक भूमीतल ... इसके आठ वर्ष ... मन्दिरके ऊपरी भाग पर

काठके ऊपर भगवानादिको प्रतिकृति और कर्णीव देवताओंकी मूर्त्तिं खोदित है। इस वर्षके पौषमासकी सङ्क्रान्तिके समयमें उन्होंने महाकुम्भयोगमें जानकीनाथ चक्रवर्ती नामक एक ब्राह्मणको पञ्चरत्न महापुराण दान किये। ७७२ नेपालसम्वत्‌में वे तीर्थयात्राको निकले। ७७४ नेपालसम्वत में भयानक भूकम्प उठा जिससे नेपालके अनेक मन्दिर और अट्टालिकादि तहस नहस हो गये। इन्होंने अपना शेष जीवन धर्मकर्ममें बिताया। ७७७ ने० सं० में इन्होंने राजासनका परित्याग कर संन्यासधर्म ग्रहण किया। प्रवाद है, कि नेपालमें ऐसे सद्गुणसम्पन्न राजा और कोई न हुए थे। उनका नाम लेनेसे सब पाप क्षय होता है।

उनकी मृत्युके बाद श्रीनिवासमल्ल १२ कार्त्तिक बदि (७७७ नेपालसम्वत्)-को मध्याह्नकालमें शुभक्षण नेपालके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। ७७८ नेपालसम्वत्‌में उन्होंने भातगाँव और ललितपुर राजाके साथ मेल कर कान्तिपुर राजाके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। इस समय श्रीनिवास और प्रतापमल्लके बीच कालिकापुराण तथा हरिवंश छू कर मित्रता स्थापित हुई एवं भातगाँव, ललितपुर और कान्तिपुर तीनों स्थानके लिये जो एक राजा नियत है वह इस युद्धमें सुन्ना रखनेको आपसमें राजी हुए।

७८० नेपालसम्वत्‌में भातगाँवके राजा जयप्रकाश मल्लने चाङ्गुके निकटवर्त्ती थेमानिवासमें आग लगा कर ८ मनुष्योंकी हत्या कर डाली और २१को कैद कर अपने साथ ले गए। इस पर राजा श्रीनिवासने प्रतापमल्लके साथ मेल कर पहले बन्देपाम और अन्यान्य थेमानिवासको जीत लिया, पीछे वे चौरपुरी जीतनेके लिये अग्रसर हुए। चौरपुरी जब उनके हाथमें आ गया, तब भातगाँवके राजाने हाथी घोड़े आदि दे कर उनसे सन्धि कर लिया। ७८२ ने० सं० में वे खोकनाथ जा कर रहने लगे। वहां ७ दिन रहनेके बाद उन्होंने नकदेशवासियोंको जीता तथा लूटा। पीछे पेमी जीत कर वे अपनी अपनी राजधानीको लौटे।

राजा श्रीनिवासने ७८१-८८ नेपालसम्वत्‌के मध्य अनेक मन्दिर बनवाये तथा बहुतोंका संस्कार कराया। ८०१ नेपालसम्वत्‌में उन्होंने भीमसेनके लिये एक उन्नत मन्दिरका निर्माण किया। उनके बाद उनके पुत्र योगनरेन्द्रमल्ल सिंहासन पर बैठे। इन्होंने मणिमण्डप नामक एक बड़ा घर बनवाया। इनके शोकाक्रान्त होने पर इन्होंने राजैश्वर्यसे उदासीन हो संसारधर्मका त्याग कर दिया। इस समय अपनाके पायसे कान्तिपुरके राजा महीपतीन्द्र वा महीन्द्रसिंह सब पाटनके राजा हुए। उनको मृत्यु होने पर जययोगप्रकाशने राज्यभार ग्रहण किया। जयवीरमल्लमावको अकाल मृत्यु हुई। पीछे योगनरेन्द्रको एकमात्र कन्या पद्मतीके पुत्र विष्णुमल्ल ८४१ ने० सं० में राजा बनाए गए। उनके राज्यकालमें महादुर्भिक्ष और अनावृष्टि उपस्थित हुई। इन्होंने अनेक पुरश्चरण और नाग साधन करके वह देवताका शान्तिविधान किया। कोई सन्तान न रहनेके कारण उन्होंने राज्यप्रकाशमल्लको गोद लिया। राज्यप्रकाश शान्तप्रकृतिके मनुष्य थे। इसी कारण प्रधान कर्मचारियोंने षड्यन्त्र करके उनकी दोनों आँखोंसे अन्धा कर दिया। इस पर उनके भाई जयप्रकाशने क्रुद्ध हो कर उक्त प्रधान और कार्यियोंको कैदमें डाल दिया। राजा राज्यप्रकाश चक्षु-उत्पाटनकी दारुण यन्त्रणाको सह न सके और अल्पकालमें ही कराल कालके गालमें पतित हुए।

इस समय पाटनके डालाह्निवासप्रजातीय अन्यान्य प्रधानोंने भातगाँवके राजा रणजितको बुला कर पाटनका शासनभार अर्पण किया। किन्तु वे राज्यशासन अच्छी तरह चला न सके, इस कारण एक वर्षके बाद ही राज्यच्युत किये गए। इसके बाद उन्होंने पुनः कान्तिपुरके राजा जयप्रकाशको ला कर पाटनके सिंहासन पर बिठाया। किन्तु आश्चर्यका विषय था कि एक वर्षके बाद ही जयप्रकाशको भी सिंहासनच्युत करके विष्णुमल्लके दौहित्रको राज्यभार अर्पण किया। उनका नाम था राजविश्वजित्। चार वर्ष राज्य करनेके बाद प्रधानोंने षड्यन्त्र करके विश्वजित्‌को मरवा डाला, तदनन्तर वे नयकोट गए और राजा पृथ्वीनारायणको बुला कर उनके छोटे भाई दलमर्द्दन शाह नामक एक व्यक्तिको पाटनके सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। दलमर्द्दन प्रधानोंको

बिना सलाह लिए ही राजकार्य चलाने लगी। एक समय पृथ्वीनारायणके विद्रोही होने पर उन्होंने भी बड़े भाईके साथ युद्ध किया था। क्रमशः उनके आचरणसे विरक्त हो कर चार वर्ष राज्य करनेके बाद ही प्रधानोंने उन्हें निकाल भगाया और विश्वजित्के वंशोद्भव तेजनरसिंह-मल्लको सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

तेजनरसिंहने केवल तीन ही वर्ष राज्य किया था कि पृथ्वीनारायण नेपाल पहुँचे। उनके पाटन पर आक्रमण करने पर तेजनरसिंह भातगांवमें भाग गए। पृथ्वीनारायणने जब देखा कि, प्रधान ही एकमात्र हर्त्ता कर्त्ता हैं, तब उन्होंने इन विश्वासघातकोंको पकड़ा और मार डाला।

१८वीं शताब्दीके मध्यभागमें जब लार्ड क्लाइव धीरे धीरे बङ्गालके वक्षस्थल पर पदक्षेप कर ब्रटिशसैन्यकी निर्भीकतासे भारतमें अङ्गरेजी राज्यकी नींव डालनेकी कोशिशमें थे, ठीक उसी समय बङ्गालके उत्तर हिमालय-के पादमूलमें नेपालराज्य छोटे छोटे सामन्तोंके अधीन हो जानेसे परस्परमें विरोध चल रहा था। पूर्वोल्लिखित भातगांव, काठमण्डू और पाटनके शेष इतिहाससे जाना जाता है, कि जब तेजनरसिंह पाटनके सिंहासन पर और अपुत्रक राजा जयप्रकाश काठमण्डूके सिंहासन पर अधिरूढ़ थे, तब भातगांवके अधिपति राजा रणजित-मल्ल किसी सामान्य कारणसे उक्त दोनों राजाओंके प्रति-द्वन्द्वी हो दलबलके साथ उन पर आक्रमण करनेके लिए अग्रसर हुए। राजा रणजित, स्वदेशवैरियोंके हाथसे छुटकारा पानेके लिए तथा अपनेको काठमण्डू, पाटन और भातगांवके एकेश्वर राजा बनानेकी कामना कर दूर-स्थ, गोर्खापति पृथ्वीनारायणको बहुत आदरसे बुलाया। उनने मदगर्वसे उत्तेजित रणजितने नहीं समझा कि इस गृहवैरिताके दुष्फलसे भविष्यत्‌में क्या विषमय परि-णाम होगा। राजा पृथ्वीनारायण इस आमन्त्रणसे मन ही मन आनन्दित हुए—उनके हृदयमें पुनः नेपाल-जयकी आशा जग उठी। जिस नेपालमें उनके पूर्वपुरुषगण आक्रमण करके भी व्यर्थमनोरथ हुए थे और स्वयं भी जहांसे युद्धमें प्राण ले कर भागे थे, उनकी राज्य-लिप्सा आज भी उनके हृदयसे दूर नहीं हुई थी। उनके भाई दलमर्दनको पहले पाटनका शासनभार प्रदान पीछे प्रवञ्चना करके उन्हें राज्यसे बहिष्करण-व्यापार, तब भी उनके हृदयमें विशेषरूपसे जाग्रत था। अतः इन्होंने रणमल्लके आह्वानकी उपेक्षा न की। विचक्षण रणजित् थोड़े ही दिनोंके मध्य समझ गए, कि उनके साहाय्यकारी बन्धु उन्हींके सर्वनाशसाधनमें उतारू हैं। इस पर राजा रणजितने अपनेको कमजोर समझ सन्धि करनेका प्रस्ताव पास किया और परस्परमें सन्धिबलसे दृढ़बद्ध हो उन्होंने शत्रु और शत्रुसेनाको मार भगानेका सङ्कल्प कर लिया। किन्तु कार्यतः इससे कोई अच्छा फल न निकला।

राजा पृथ्वीनारायणने पूर्वोक्त राजाओंको एकत्र देख उनके विरुद्ध युद्ध न किया। वे अपने बलकी वृद्धि करनेके लिए पार्वतीय सरदारोंको छलबलसे स्वदलमें लानेकी चेष्टा करने लगे। पहले वे भातगांवके पूर्ववर्ती धूलखेल और चौकोटवासियोंके साथ प्रायः छः बार युद्ध करके उन्हें अपने वशमें लाए। पीछे चौकोटमें एक गढ़ बना कर अपनी सेनासंख्या बढ़ाने लगे। इस समय महेन्द्रसिंहराय नामक किसी राजपुरुषने गुर्खाओंके साथ १५ दिन तक अनवरत युद्ध किया। इस युद्धमें पहले तो गुर्खा लोग हार कर भाग गए, किन्तु परवर्ती युद्धमें महेन्द्रसिंहरायके भूमिशायी होने पर चौकोटियागण रणक्षेत्रका परित्याग कर नौ दो ग्यारह हो गये। दूसरे दिन सवेरे जब पृथ्वीनारायण रणभूमि देखनेके लिए आए, तब महेन्द्रसिंहकी शरवा-विद्ध मृतदेह देख कर उनके वीरत्वकी भूरि प्रशंसा की और उनके परिवार-वर्गको कुछ दिन राजप्रासादमें रख कर आदरपूर्वक भोजन कराया। अन्तमें भरणपोषणके लिये वे उन्हें पनावती, बनेपा, नाला, खदपू, सङ्गा आदि पांच ग्राम दान कर अपने पूर्व अधिकृत नवकोट राज्यको लौट गए।

कीर्त्तिपुरका प्रथमयुद्ध १७६५ ई०में समाप्त हुआ। इसके कुछ समय बाद राजा पृथ्वीनारायणने पुनः दो बार इस नगर पर आक्रमण किया था। तृतीय बारके आक्रमण और जयके बाद जो भीषण अत्याचार हुआ था, वह फादर गैसपी द्वारा प्रकाशित नेपाल-मिसनकी तालिका पढ़नेसे विशेषरूपसे जाना जा सकता है।

कासकाटापुर देखो।

कीर्त्तिपुरमें यह पाशविक अत्याचार किया कर पृथ्वीनारायण पाटन जीतनेकी अभिलाषासे अग्रसर हुए। पाटनराज तेजनरसिंहके आत्मसमर्पण करनेसे पहले पृथ्वीनारायणने सुना कि कप्तान कीनलकके अधीन एक सेना नेपाल तराईके दक्षिण प्रान्तमें पहुंच गई है। तब वे उसी समय दूसरी राह हो कर चले गए और पाटनराज तेजनरसिंह प्रायः एक वर्ष तक निश्चिन्त रहे।

कीर्त्तिपुरकी यह अत्याचार कहानी नेवारराजने अंगरेजोंको सुनाई। १७६७ ई०के प्रारम्भमें कीनलक साहब नेपाल पर्वतके तराईदेशमें आ पहुंचे। उस समय वर्षाका समय था, अंगरेजी सैन्य जलवायुजनित ज्वर और आपदाओंके प्रभावसे पीड़ित हो बहुत कष्ट भोगने लगे। अन्तमें वे हरिपुरके सामनेसे लौट आनेको बाध्य हुए। कीनलकके चले जाने पर भी प्रायः एक वर्ष तक गुर्खा लोग नेपालमें प्रवेश कर न सके। पुनः १७६८ ई०में इन्द्रयात्रा-उत्सवके समय पृथ्वीनारायणने काठमाण्डू पर आक्रमण कर दिया। काठमाण्डूराज और राजा तेजनरसिंहने कई बार उन्हें रोका लेकिन कोई फल न हुआ। अन्तमें जब उन्होंने देखा कि नेपालकी समस्त शक्ति और उनके आत्मीयगणने पृथ्वीनारायणका पक्ष अवलम्बन किया है, तब वे और कुछ कर न सके और भातगांवमें जा कर आश्रय लिया।

राजा रणजित्‌के एकमात्र पुत्र वीरनरसिंहको वञ्चित करनेके लिए उनके अन्य औरसजात 'बाल-बराजिका' (अद्भुत)-गणने षड्यन्त्र रचा और गुर्खापतिको वैवस्वात राजेश्वर नामके आपकी सम्पत्ति और सिंहासन बांट लेनेका बन्दोबस्त किया। पीछे उन्होंने अपना यह उद्देश्य और प्रस्ताव राजा पृथ्वीनारायणको ज्ञात किया। तदनुसार गुर्खापति अपने चित्तसे भातगांवका भविष्यत् राज्य प्राप्त करनेकी आशासे अग्रसर हुए।

गुर्खाराजने उन लोगोंके पूर्वोक्त परामर्शानुसार भातगांव पर आक्रमण कर दिया। बालबराजिकागणने कुछ अर्थके लोभ दिखानेके लिए फाटक अनुकूल शुरू किया और साथ ही साथ उन्होंने द्वारा कर अपनी गोली और बारूदको शत्रुओंके पास भेज दिया तथा वे अपनी सुरक्षित दुर्ग-द्वार शत्रुओंको छोड़ कर आप पलायनपर हो गए। गुर्खाओंने नगरमें प्रवेश कर उसे अपने अधिकारमें कर लिया। दरबारके सामने एक बार भीषण युद्ध हुआ जिसमें राजा जयप्रकाशके पैरमें जखम और चोट लगी और वे अचानक हो जमीन पर गिर पड़े। १७६८ ई०के प्रारम्भमें यह युद्ध हुआ था। इसी युद्धसे नेपालके पूर्वतन राजवंशका अधःपतन हुआ और गुर्खाराज नेपालके सिंहासन पर अभिषिक्त, राजरूपमें प्रतिष्ठित हुए।

राजा पृथ्वीनारायणने रणजयी हो कर दरबारमें प्रवेश किया। उस समय वहां राजा जयप्रकाश रणजित् और तेजनरसिंह बैठे हुए थे। दोनोंमें बातचीत होते होते आपसमें प्रीति हो गई। पृथ्वीनारायणने रणजित्मल्लको अपनी भातगांव राज्यमें पुनः वृद्ध राजा होनेके लिए विशेष अनुनय विनय किया। किन्तु रणजितने रोषमें अपनी अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा, "आत्मीय स्वजनकी विश्वासघातकतासे मैं विशेष दुःखी हूं, सुतरां राज्यभार ग्रहण नहीं कर सकता; वरं इस हालतमें मेरी इच्छा है कि काशी जा कर विश्वेश्वरकी सेवामें जीवन व्यतीत करूं।" ऐसा अभिप्राय प्रकट करने पर गुर्खापतिने उनके लिए पैसाको सुबन्दोबस्त कर दिया। काशी जाते समय चन्द्रगिरिके ऊपर खड़ा हो कर उन्होंने बालबराजियोंकी शठता और पुत्र वीर नरसिंहकी हत्या कहानी पृथ्वीनारायणको सुनाई। राजा पृथ्वीनारायणने विश्वासघातक-आत्मद्रोही बालबराजियोंको एक एक पुरस्कार और राज्यपद पानेके लिये उन्होंने विश्वासघातकता किया है, इस अपराधमें उनके नाक कान कटवा दिये, तथा उनकी जागीर और स्थावरसम्पत्ति हस्तगत कर ली।

जयप्रकाशने प्रार्थना की, "गोलीके आघातसे मैं मृतप्राय हो गया हूं। अतएव तुम लोग मुझे पशुपति नाथके आर्यघाटमें ले चलो। वहां मेरा शरीरावसान होनेपर अन्त्येष्टिक्रिया करना।"

ललितपुरराज तेजनरसिंहने जब देखा कि उनके आत्मीय रणजित्‌की यह अभावनीय विपद् नेपालकी

अदृष्टमें पड़ी है, तब वे किसको दोष देवें। यह सोच कर उनके मनमें दारुण क्षोभ हुआ और आत्मग्लानि उपस्थित हुई। किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो उन्होंने मौनावलम्बन किया और एक चित्तसे ईश्वराराधना करने लगे। ठीक इसी समय पृथ्वीनारायण उनका अभिप्राय जाननेके लिए अग्रसर हुए। लेकिन जब उन्होंने देखा कि तेजनरसिंहने उन्हें एक बात भी न कही, तब वे बहुत बिगड़े और लक्ष्मीपुरमें उन्हें कैद कर रखा। यहीं पर नेपालके मल्लवंशीय शेष राजा तेजनरसिंह बहादुरने अवशिष्ट जीवन व्यतीत किया था।

नेपाल-सिंहासन पर अधिष्ठित हो राजा पृथ्वीनारायणने किरात और लिम्बुजातिकी वासभूमि अपने अधिकारमें कर ली। क्रमशः एक एक करके नेपालकी वर्त्तमान सीमाके अन्तर्भुक्त प्रायः सभी प्रदेश उनके हाथ लग गए थे। उत्तरमें किरोण और कूटी, पूर्वमें विजयपुर और सिक्किम सीमान्तवर्त्ती मेचीनदी, दक्षिणमें मकवानपुर (माखनपुर) और तराणी (तराई) तथा पश्चिममें सप्तगण्डकी, इस सीमाके मध्यस्थित विस्तीर्ण भूभाग राजा पृथ्वीनारायणके शासनाधीन हुआ। भातगांवसे कान्तिपुरमें आ कर उन्होंने वसन्तपुर नामक एक बृहत् धर्मशाला बनवाई। इन्होंने ही सबसे पहले निकृष्ट 'पुतवर' जातिको राजाके समीप जानेकी अनुमति दी थी *। प्रायः ७ वर्ष राजत्वके बाद गण्डकीतीरस्थ मोहनतीर्थमें ८९५ नेपालसम्वत्‌को उनका शरीरावसान हुआ।

* जब प्रथम कीर्त्तिपुरके युद्धमें राजा पृथ्वीनारायण राजा जयप्रकाशमल्लसे पराजित हो एक डोली पर चढ़े भागे आ रहे थे उस समय एक सिपाहीने उनके प्राण लेनेके लिये ज्यों ही खड्ग उठाया, त्यों ही उसके एक दूसरे साथीने उसका हाथ पकड़ कर कहा, 'ये राजा हैं, अतः हमें इन्हें मारनेका अधिकार नहीं।' पीछे एक दुसाम और एक कसाईने उन्हें कन्धे पर चढ़ा कर रात भरमें नवकोट पहुँचा दिया। राजाने दुसानकी कार्यतत्परतासे प्रसन्न हो 'शाबाश पुत्र' ऐसा कहा था। इसी दिनसे दुसानकी जाति 'पुतवर' कहलाने लगी। ये लोग राजाके शरीर भी स्पर्श कर सकते हैं।

पृथ्वीनारायणके दो पुत्र थे। बड़े सिंहप्रताप-शा पिताके मरने पर सिंहासन पर बैठे और छोटे मा बहादुर बेतियाराज्यमें निर्वासित हुए। आचार्यों के कुचक्रमें पड़ कर ८९८ नेपालाब्दमें उन्होंने नश्वर मानवदेहका त्याग किया। उनकी मृत्युके पश्चात् उनके पुत्र रणबहादुरने राजासन ग्रहण किया। आचार्यों के चरित्र पर इन्हें सन्देह हुआ, इस कारण उन्हें मरवा डाला। पीछे अन्य किसी कारणसे विरक्त हो उन्होंने मन्त्रि-नायक वंशराज पाँड़ेका शिरश्छेदन किया था। इस समय इनके चाचा मा बहादुर नेपालमें आ कर रणबहादुरके प्रतिनिधि हुए। किन्तु राजमाता राजेन्द्रलक्ष्मीके साथ उनका विवाद होनेके कारण वे पुनः राज्यसे निकलवा दिए गए। अब राजमाता अपने हाथमें शासनभार ले कर राजकार्य चलाने लगीं। राजमाता अत्यन्त बुद्धिमति और कार्यक्षमा थीं। उन्हीं के यत्न और उद्योगसे गुर्खोंके पश्चिमस्थ पम्पा और कलिके मध्यवर्त्ती समुदय भूभाग नेपाल राज्यान्तर्गत हुआ था। उनकी मृत्युके बाद मा बहादुर नेपाल लौट कर पुनः राज्यकी परिचालना करने लगे। उनके उत्साहसे चौबीसी और बाइसी सामन्तराज्य, समलुङ्ग और टनहौं तथा पश्चिममें गङ्गानदीतटवर्त्ती स्थान, श्रीनगर और कलि तकके भूभाग तथा पूर्वमें किरातराज्य और शुभेश्वर तकके स्थानमें नेपाल सीमाके कलेवरकी वृद्धि की थी।

१७९१ ई०में गुर्खालोगोंने नेपाल, तिब्बत और अंगरेजाधिकृत भारतवर्षमें वाणिज्य सम्बन्धरक्षाके लिये सन्धिका प्रस्ताव किया। इस समय चीनराजके साथ गुर्खापतिका, चीनराजगुरुके अधिकृत दिगारचा नामक स्थानका आक्रमण ले कर घोर युद्ध छिड़ा। चीनमन्त्री थुमथाम और काजी धुरिनई अधीन चीन-सैन्यने आ कर खलिया, रसोआ और गोसाईंथान पर्वतसे निम्नदेशमें दीराली नामक स्थान पर नेपालियोंको अच्छी तरह पराजित किया। नेपालीगण पराजित हो कर पहले धुनचू और पीछे खत्तोरा भाग गए। इस युद्धमें मन्त्रिनायक दामोदर पाँड़ेने खूब वीरता दिखलाई थी।

१७९२ ई०में चीन-सैन्यसे इस प्रकार पराजित हो कर नेपालियोंने सितम्बरमासमें लार्ड कार्नवालिससे

सहायता मांगी। कार्नवालिसने पहले तो चीनके विरुद्ध पक्ष धारण करनेसे अस्वीकार किया, पर पीछे बहुत वादानुवादके बाद १७९१ ई०के मार्च मासमें मेजर कार्कपैट्रिकको काठमण्डू भेज दिया। किन्तु अंग-रेजोंको सहायता पहुंचनेके पहले ही नेपालराज चीन-सम्राट्से सन्धि कर चुके थे।

१७९१ ई०में रणबहादुर जब प्रौढ़ वयःप्राप्त हुए, तब उन्होंने स्वराज्य प्राप्त किया। इस समय किसी कारण वश चाचाके साथ उनका विवाद खड़ा हुआ जिसका फल यह हुआ कि बहादुरको यावज्जीवन कैदमें रखा गया।

रणबहादुरने १८०० ई० तक बहुत अत्याचार और अधीरताके साथ राज्यशासन किया। इनके व्यवहार पर सभी सब नाराज हो गए और उन्होंने मन्त्रिनायक दामोदरपांडे की सहायतासे इन्हें राज्यच्युत कर वाराणसीधाममें भेज दिया। उनकी प्रथमा पत्नी गुल्मी राजकन्याके कोई सन्तान न रहनेके कारण राजा रणबहादुरने एक विधवा मिथिला रमणीका पाणिग्रहण किया। इसीके गर्भसे गीर्वाणयुद्ध विक्रम शाह नामक एक पुत्रने जन्म लिया। राजपूत राजको ब्राह्मणकी कन्या ग्रहण करना अवैध है। यह देख कर सब किसीने उन्हें राज्यसे निकाल भगाया।

१८०१ ई०में नेपाल और अंगरेजोंके साथ एक सन्धि हुई। उस सन्धि पत्रके अनुसार नेपालके राज-कार्यके प्रति दृष्टि रखनेके लिये कप्तान नक्स् नामक एक अंगरेज रेसिडेण्ट हो कर नेपालमें रहने लगे। पहले तो नेपालियोंने इस अंगरेज राजदूतको नगरमें प्रवेश करने न दिया था, पर १८०२ ई०के अप्रिल मासमें वे नेपालराजधानीमें रहने लगे थे। वहां एक वर्ष रह कर वे १८०३ ई०में स्वदेशको लौट गए। १८०४ ई०में लार्ड वेलेस्लीने नेपालके साथ पहलेकी जितनी सन्धि थी, तोड़ दी और १८१० ई०के मई मासमें एक नई सन्धिका प्रस्ताव पेश किया।

राजा रणबहादुर चार वर्ष तक संन्यासी वेशमें काशीधाममें रह कर पुनः नेपाल लौटे। यहां पहुंचते ही उन्होंने मल्लपांडे और दामोदर मन्त्रीको यमपुर भेज दिया तथा राज्य भरमें नृशंस कार्यका प्रचार कर आप कांगड़ाकी ओर अग्रसर हुए। युद्धमें उन्होंने कांगड़ाधिपति संसारचन्दको परास्त कर उनका राज्य नेपालके सीमान्तर्गत कर लिया।

राजा रणबहादुरकी मृत्युके बाद उनके पुत्र गीर्वाण युद्ध विक्रम शाह राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने राज्यरक्षाके लिये भीमसेन थापाको अपना प्रधानमन्त्री बनाया। १८०८ ई०में यहां भयानक भूमिकम्प हुआ जिससे अनेक मनुष्योंकी जान गई और हजारों मन्दिर बरबाद हुए।

इनके पिता रणबहादुरने सबसे पहले नेपालमें अर्द्धमुद्राका प्रचार किया था। इन्होंने भी पितृगौरव अर्जनके लिये टाक (टका पैसा) नामक तांबेका सिक्का अपने नाम पर चलाया और अमरडिम थोक नामक स्थानमें गोली और बारूदका कारखाना खोला। १८१० ई०में अंगरेजोंके सन्धिप्रस्ताव करने पर भी नेपालके साथ अंगरेज वणिकोंके वाणिज्यव्यवसायमें दिनोंदिन अवनति होती गई। १७८० ई०से १८१४ ई० तक नेपालियोंने अंगरेजी सीमान्तमें आ कर खूब उपद्रव मचाया, फलतः उसी सालके नवम्बर मासमें अंगरेजोंने नेपालके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। इस युद्धमें जनरल मार्ली और वुड विशेषरूपसे आहत हुए और जनरल जिलेस्पी मारे गए। किन्तु जनरल आक्टरलोनी हठिया-गौरवकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। अंगरेजोंने जब मकवानपुर नगर और दुर्ग पर अधिकार किया, तब गुर्खाराजने १८१६ ई०में सन्धिसूत्रसे अंगरेजोंके सर्वाधिकृत देश छोड़ दिए और इसके कुछ दिन बाद अंगरेजोंने नेपालराजको इसके बदलेमें तराईप्रदेश अर्पण किया।

१८१६ ई०की सन्धिशर्तको कायम रखनेके लिये मि० गार्डनर नामक कोई अंगरेज रेसिडेण्टके रूपमें निर्वाचित हो काठमण्डू पधारे। इस समय राजा नाबालिग थे, अतः सरदार भीमसेन थापाके हाथमें ही शासनका कुल भार था। अंगरेजोंकी युद्धविजयके बाद ही नेपालमें भयानक वसन्त देखा गया। इस महामारीके भयसे नेपालवासी बहुत डर गए। इसीके समय महाराज राजच्युत हो कर नगरसे सुदूर शिव मन्दिरों और कुछ इधर उधर घूमने फिरने लगे। नेपालका यह दौर्भाग्य देख कर सबके सब शङ्कित हो गए।

राजा दरबारसे बाहर नहीं निकलते थे। शीतला देवी-की कृपासे उनका सारा शरीर गोटीसे आच्छादित था और अन्तमें इसीसे उनकी मृत्यु भी हुई।

इनकी मृत्युके बाद उनके तीन वर्षके लड़के राजेन्द्र विक्रमसा बहादुर समशेर जङ्ग नेपालके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। रण बहादुरकी विधवा पत्नी ललित-त्रिपुरा-सुन्दरादेवी राजकर्त्री और सरदार भीमसेन थापा उनके आदेशानुसार बालकराजका राज्यशासन करने लगे। १८१७ ई०में डा० वालिचू उद्भिदका विषय जानने-के लिये नेपाल आए। १८२९ ई०में राजाके एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

भीमसेनके इस प्रकार एकाधिपत्यसे सब कोई विस्मित और स्तम्भित हो गए। पशुपतिनाथके मन्दिरमें उन्होंने जो सोने और चाँदीका किवाड़ दान किया तथा उनको सत धारा और धर्मशाला आदि देख कर धीरे धीरे राजा के मनमें विकार उपस्थित हुआ। १८३२ ई०में उन्होंने रानीके कहनेसे उन्हें कैद करनेको उतारू हुए।

१८३४ ई०के भीषण तूफानसे नेपालके बारूदखानेमें आग लग गई जिससे रेसिडेन्सी टूट फूट गई और बहुत से लोग मरे।

१८३५ ई०में राजाने सेनापति मतव्वरसिंहको कल-कत्ते भेज दिया।

१८३८ ई०में रणजङ्गपांडे जब महारानीसे नेपालके सेनापतिपद पर नियुक्त हुए, तब भीमसेन और मतव्वर हताश हो पड़े। इस समय किसी तरह मतव्वर पञ्जाब-केशरी रणजित्सिंहके निकट किसी विशेष परामर्शके लिये भेज दिए गए। कई वर्ष तक चेष्टा करके अन्तमें १८३९ ई०को राजाने भीमसेनको कैद कर लिया। कारागारमें ही भीमसेनने आत्महत्या करके अपने हृदयका भार लाघव किया था। नेपालके जिस वीरनेता सैनिक-ने प्रायः २५ वर्ष तक राज्य किया था, आज उसके मरने पर उसकी लाश अत्यन्त जघन्यभावसे काठमण्डु-के रास्ते हो कर विष्णुमतीके किनारे लाई गई थी।

भीमसेनकी मृत्युके बाद १८४३ ई० तक नेपालके शासन-विभागमें विशेष गड़बड़ी होती रही और इसी सूत्रसे अंग्रेजोंके साथ युद्धकी सूचना हुई। महामति हजसन साहबकी सुशृङ्खलासे विपदकी सभी आशङ्काएं निर्वापित हो गईं। उसी वर्ष बड़ी रानीने रणजङ्गपांडे-का पक्ष ले कर उन्हींको राज्यका प्रधान मन्त्री बनाया। उधर छोटी रानीने भीमसेनके आत्मीय मतव्वर-सिंहके पञ्जाबसे लौटने पर उन्हींको मन्त्रिपद पर वरण किया। राजपुरुष और सैन्यदलने भी मतव्वरका पक्ष अवलम्बन किया जिससे उन्होंने निज विक्रम द्वारा शीघ्र ही उस पांडेवंशको उत्सादित कर दिया।

इस समय नेपालके एकमात्र गौरवस्थल, महानुभव, बुद्धि और वीर्यशाली जङ्गबहादुर सामान्य सैनिकरूपमें अपनी भविष्यत् उन्नतिका आभास दे रहे थे। ये बाल-नरसिंह नामक नेपाली काजीके पुत्र और राजमन्त्री मतव्वरके निकट आत्मीय थे। मतव्वर इस बालकको भावी क्षमताके विषय पर विचार कर बहुत डर गए थे। अंग्रेज रेसिडेण्ट हेनरी लारेन्स इस बालकको बुद्धिमत्ता-की विशेष प्रशंसा करते थे।

जङ्गबहादुरने प्रासादस्थ प्रधान राजमहिषियोंके साथ षड़यन्त्र करके १८४५ ई०के मई मासमें मतव्वरको मार डाला और आप राज्यके एकमात्र हर्त्ताकर्त्ता हुए। किन्तु गगनसिंह प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त रहे। १८४६ ई०में जब सर हेनरी लारेन्सने नेपालका परित्याग किया, तब मि० कलभिन नेपालके रेसिडेण्ट हो कर आए।

मतव्वरकी मृत्युके बाद राजा और रानी दोनों जङ्गबहादुरके हाथमें कठपुतली-से रहने लगे। इस समय राजमन्त्री गगनसिंह और फतेजङ्ग प्रभृति राजकीय दल-के साथ रानी और जङ्गबहादुरका मतद्वैधस्य उपस्थित हुआ। इस विवादसूत्रसे १८४६ ई०को १४वीं और १५वीं सितम्बरको नेपाल-राजधानीमें भीषण हत्या-काण्ड किया गया। राजा गहरी रातमें भाग कर कल-भिन साहबकी शरणमें पहुंचे। इधर नेपालके अधि-कांश सम्भ्रान्त व्यक्ति जङ्गबहादुर और उनके सैन्यदलसे यमपुर भेज दिये गए। राजाने रेसिडेन्सीसे लौट कर देखा कि कोटप्रासादके चारों ओर नालेमें रक्त स्रोत बह रहा है।

जङ्गबहादुर भ्रातृदलसे पुष्ट हो कर नेपालके सर्व्व एक विशेष क्षमतापन्न व्यक्ति समझे जाने लगे। जिन सब

पूर्वोक्त सरदारोंने उनके विरुद्ध सिर उठाया था, वे सबके सब जङ्गबहादुरकी तलवारके आघातसे यमपुर सिधारे। राजा भी अपनेको चारों ओरसे विपदसे घिरा देख काशी चले गए। फिर रानीने अपने पुत्रको सिंहासन-प्राप्तिके लिये जङ्गबहादुरकी सहायता ली थी, वे भी मर्यादित हो कर काशीवास भेजी गई। १८४७ ई०में राजाने नेपालराज्यवासकी आशासे फौज ले कर नेपाल पर आक्रमण किया, किन्तु वे असफल हुए और अन्तमें सरदारोंके द्वारा कैद कर लिये गए। इस प्रकार राजाके राज्यच्युत होने पर उनके बड़े लड़केके हाथ सिंहासन अर्पित हुआ।

राजा राजेन्द्रविक्रमके नेपालसे बाहर जाने तथा उनका मस्तिष्क खराब हो जानेसे जनताके आग्रह और सहानुभूतिसे राजपुत्रकुलतिलक महाराज सुरेन्द्रविक्रम शाह शमशेरजङ्ग नेपालके सिंहासन पर बैठे। राजा सुरेन्द्रविक्रमकी मृत्युके बाद उनके लड़केके लड़के पृथ्वीवीर विक्रम शाह बहादुर शमशेरजङ्ग नेपालके राजा हुए। १८४० ई०की १ली दिसम्बरको इन्होंने जन्मग्रहण किया था।

राजा वीरविक्रमने जङ्गबहादुरकी कन्यासे विवाह किया। इन्हींके गर्भ और राजाके औरससे १८७५ ई०को यहाँ सबको जङ्गबहादुरके दौहित्र नेपालाधिपके भावी उत्तराधिकारीका जन्म हुआ।

नेपालका आधुनिक इतिहास और राज्यकी सर्वेश्वर क्षमता मन्त्रियोंके हाथ न्यस्त रहनेके कारण नेपालका इतिहास उन्हीं मन्त्रियोंके कार्यकलापोंके ऊपर निर्भर कुछ दिन रहा है। एकमात्र प्रधान मन्त्री ही नेपालके कर्त्ताधर्त्ता और विधाता हैं, राजा उनके हाथके खिलौने हैं। राज्यके किसी विषय या कार्यमें उन्हें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नहीं है। राणा जङ्गबहादुरके समयसे ही मन्त्रियोंकी इस मर्यादा और क्षमताकी वृद्धि हुई है तथा उन्हींके समयसे नेपालका इतिहास उनके वंशधरोंके मध्य गिना जाता है। नेपालके पूर्व-राजवंशावलिका इतिहास शेष करके अभी जङ्गबहादुर और तत्पुत्र विभिन्न घटनावलीका उल्लेख कर नेपालका ऐतिहासिक शेष किया जाता है।

१८४८ ई०में दिलीपसिंहकी माता चाँदकुमारीने लाहोरका परित्याग कर नेपालमें अपना आश्रय ग्रहण किया। जङ्गबहादुरने राज्यके समस्त सम्भ्रान्त घरोंमें निज पुत्रकन्याका विवाह कर, विलायत जा कर, स्वदेशमें लौट नूतन आईनका प्रवर्त्तन कर, सामरिक विभागका सुधार तथा शत्रुके हाथसे अपनी रक्षा कर बलवीर्य और रणकुशलताका यथेष्ट परिचय प्रदान किया है।

१८५२ ई०में जङ्गबहादुरने अपने भाईको पल्पा और मूलतक प्रदेशका शासनकर्त्ता बनाया। १८५४ ई०में शाविनट्र ट्नीने वैज्ञानिक तत्त्वके अन्वेषणके लिये नेपाल जानेकी जब जङ्गबहादुरसे अनुमति माँगी, तब उन्होंने विशेष सरलताके साथ उनकी प्रार्थना स्वीकार की।

पूर्वसन्धिके शर्त्तानुसार नेपालराज प्रति पाँच वर्षमें नजराना और उपढौकन वस्त्र अर्थ इत्यादिके साथ एक दूत चीनसम्राट्के पास भेजा करते थे। उस दूतको कुटि हो कर तिब्बत हो कर जाना पड़ता था। एक समय तिब्बतवासियोंने उस राजदूतकी अवमानना की। इस पर १८५४ ई०में नेपालराज उनके [illegible] अपराध भार पर शत्रुको उन्हें दण्ड देनेके लिये अग्रसर हुए। इस युद्धयात्रामें विशेषरूपसे सज्जित होने पर भी पार्वतीय पथ हो कर जानेमें नेपालीसेनाको विशेष कष्ट उठाना पड़ा था। इसी समय नेपालीके मध्य अमरी भी मांस खानेकी प्रथा आरम्भ हुई। अवशेष भूमि पर तिब्बतीय और भोटिया लोगोंके परास्त होने पर भी, नेपाली सब उन्हें कुटी, केरङ्ग और कुटी गिरिपथसे भगा न सके। १८५५ ई०के नवम्बर मासमें भोटियाने कुटी, केरङ्ग और ठुङ्गा दखल किया। पीछे आक्रमणके भय जब नेपाली सेना आई, तब उन्होंने एक एक करके सब देश छोड़ दिए। किन्तु उनके हृदयमें विद्वेषरूपी आगका शमन न हुआ। इस पर जङ्गबहादुरने नूतन सामरिक कर दे कर एक सेना रक्खी थी। १८५६ ई०के मार्च मासमें तिब्बतके साथ जो सन्धि हुई, उससे नेपालियोंने भी तिब्बतके अधिकृत प्रदेश छोड़ दिए और तिब्बतराज वार्षिक १०००० रु० देने और ल्हासा राजधानीमें एक गुर्खा कर्मचारी रखनेको राजी हुए।

१८५८ ई० अगस्त मासमें जङ्गबहादुरने नेपालके

महामन्त्रीका पद अपने भाई बामबहादुरको दिया और आप महाराजकी उपाधि धारण कर काश्कि और लुमजङ्ग-का शासन करने चले गए। इस समय मि० आर्सिंट इटने नेपाल जानेकी अनुमति प्राप्त की। १८५७ ई०में नेपाली सेनाके मध्य विद्रोहके लक्षण दिखाई दिए, किन्तु जङ्ग-बहादुरके यत्नसे तमाम शान्ति बनी रही। इसी सालके जून मासमें भारतका वीर सिपाहीविद्रोह शुरू हुआ। इस समय जङ्गबहादुरने १२००० पदातिक और ५०० गोलन्दाज भेज कर अंग्रेजोंकी सहायता की। जूनमासके शेषमें आप महामन्त्री और सेनाध्यक्षका पद ग्रहण कर स्वयं अंग्रेज-शत्रुदमनमें अग्रसर हुए। १८५८ ई०में विद्रोहियोंके मध्य लखनऊकी रानी और उनके पुत्र, हजि-कादिर, नानासाहब, बालाराव, मामूखाँ, वेणीमाधव आदि प्रधान विद्रोही नेताओंने नेपाल आ कर आश्रय ली। १८७५ ई० तक लखनऊकी बेगम यहां थापटलीके निकट रही थीं।

सिपाहीयुद्धमें इस प्रकार सहायता पा कर अंग-रेजराजने नेपालको तराईके कुछ अंश छोड़ दिए और सरदार जङ्गबहादुरको जी० सी० बी० की उपाधि प्रदान की। भारतके सिपाहीविद्रोहके बाद नेपाल-इतिहासमें कोई उल्लेखयोग्य घटना न हुई। केवलमात्र पूर्वकृत सन्धिके मध्य 'अंगरेजोराजमें पलातक कोई दोषी व्यक्ति यदि नेपाल आ कर छिप रहे, तो नेपालराज उसे प्रत्यर्पण करने और नेपालमें यदि कोई दोषी अंगरेज-अधिकारमें आश्रय ले, तो अङ्गरेजराज उसे लौटा देनेको बाध्य हैं' इस प्रकारकी एक शर्त लिखी गई।

१८७३-७४ ई०में तिब्बतके साथ पुनः विवाद छिड़ा, किन्तु यह शीघ्र ही रुक गया। इसी साल जङ्गबहादुरने अङ्गरेजोंसे सम्मानसूचक जी. सी. एस. आइ. की उपाधि पाई थी और चीनसम्राट्ने उन्हें थोङ्ग-लिन्-पिम,-मा-को-काङ्ग-वाङ्ग-स्यानकी उपाधिसे भूषित किया। १८७४ ई०में इङ्गलैण्ड जानेके लिये ये सपरिवार बम्बई शहर पहुंचे और वहां पीड़ित हो कर स्वदेश लौट आए। आठ वर्षकी अवस्थामें १८७७ ई०को जङ्गबहा-दुरकी मृत्यु हुई। इन्हें १९ तोपोंकी सलामी मिलती थी। वे अपने जीते-जो मन्त्रिपद अपने भाई रणुदीप सिंहके हाथ छोड़ गए थे, क्योंकि उनके बड़े लड़के जगत्-जङ्ग उस समय बहुत बच्चे थे। उन्होंने यह भी कह दिया था कि बालिग होने पर जगत् मन्त्रिपदके अधि-कारी होंगे।

१८८१ ई०में नेपालके राजा महाराजाधिराज पृथ्वी वीर विक्रम शाह सुरेन्द्र विक्रमशाहके उत्तराधिकारी हुए। इस समय इनकी अवस्था केवल छः वर्षकी थी। १८८२ ई०में उसी साल मन्त्री रणुदीपसिंह और कप्तानने उनके भाई धीर शमशेरके विरुद्ध षड़यन्त्र किया। इस षड़यन्त्रके नेता जगत्जङ्ग ठहराये गए और वे कुछ काल-के लिये देशसे निकलवा दिए गए। पीछे १८८५ ई०में स्वदेश लौटनेका उन्हें आदेश मिला। उसी साल धीर-शमशेरके लड़कोंने जगत् जङ्गका साथ दे कर मन्त्रिपद पानेके लिये रणुदीपसिंहके विरुद्ध अस्त्रधारण किया और उन्हें मार कर राज्यका कुल कामकाज अपने हाथमें ले लिया। जगत्सिंह मार डाले गये और धीर शमशेरके बड़े लड़के वीर शमशेर प्रधान मन्त्रिपद पर प्रतिष्ठित हुए। इनके समयमें नेपाल भरमें शान्ति विराजती थी। देश उन्नत दशामें था। इन्होंने स्कूल और अस्पताल बन-वाए। ये १८९८ ई०में लार्ड कर्जनसे भेंट करनेके लिये कलकत्ते पधारे थे। १९०१ ई०में उनका शरीरावसान हुआ।

वीर शमशेरकी मृत्युके बाद उनके भाई देव शमशेर उनके उत्तराधिकारी हुए। लेकिन ३ मासके बाद वे अपने भाई चन्द्रशमशेरसे पदच्युत किये गए। फिलहाल ये ही यहांके प्रधान मन्त्री हैं। नेपालके वर्त्तमान शासन-कर्त्ताका पूरा नाम यह है,—His Magesty Sri Giri-raja Chakra Crunamany Nar-Narayanetydı Bibidhabırudabali Birajaman Manonnat Sri Man Maharajadhiraj Sri Srı Sri Sri Sri Maharjaa Tribhuban Bir Bikram Jung Baha-dur, Shah Bahadur, Shum Shere Jung Deva,

नेपालका प्रकृत इतिहास क्या है वह आज भी किसीको मालूम नहीं। कारण नेपालीगण अङ्गरेज वा अन्य किसी भिन्न देशीय व्यक्तिको काठमण्डू राजधानीके बारेमें

और १६ सदीके सन्तानोंमें आगे नहीं देते। किन्तु हस्तिय-परकारकी लिपिविशेषसे उसका कुछ पता चलता है कि जातिसे इतिहासतत्त्वका बहुत कुछ आभास मालूम पड़ने लगा है। नेपालीगण प्रायः चान्द्रमासके वर्षकी गणना करते हैं। इसके अलावा निर्दिष्टकाल मिलानेके लिये कभी कभी मास और दिनको घटा देते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे वर्त्तमान वर्षगणनासे पूर्ववर्ती नेपालियोंका निर्दिष्ट वर्ष निश्चित होता है।

नेपालका धर्म

नेपाल उपत्यकामें हिन्दू और बौद्धधर्मका प्राय समान प्रभाव देखा जाता है। हिन्दूगण शिवमार्गी और बौद्धगण बुद्धमार्गी नामसे प्रसिद्ध हैं। कालक्रमानुसार उभय धर्मका ऐसा अविच्छेद्य सम्मिश्रण हो गया है, कि अभी अनेक समय अनेक धर्मका बुद्धमार्गी अनेक आचार व्यवहार बौद्धधर्ममूलक है या शैवधर्ममूलक यह समझमें नहीं आता।

वर्त्तमान बुद्धमार्गी बौद्धगण वर्त्तमान रीति नीति शास्त्रको का विशेषाधिकार, जिनसे बौद्धोंकी सामाजिक व्यवस्था उसी जातिभेदकी विधिके नियमसे नियमित है। नेवारियोंमें प्रायः अनेक हिन्दू वा शिवमार्गी और अनेक बौद्ध वा बुद्धमार्गी हैं। नेवारी हिन्दूगण भी एक एक कर तीन श्रेणियोंमें विभक्त हो गए हैं। हिन्दू चातुर्वर्ण्य ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी तरह उन लोगोंके मध्य बाँड़ा, उदास और जापू इन तीन श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई है। हिन्दूमें क्षत्रिय वर्णके या वहां कोई भी बुद्धव्यवसायी कोई श्रेणी नहीं है। हिन्दू चातुर्वर्ण्यके मध्य वर्णगत आचारव्यवहारकी जैसी विधि व्यवस्था है, अभी नेवारियोंको उक्त तीन श्रेणियोंमें ठीक वैसी ही है। हिन्दू जिस तरह वर्णगत नियमादिका उल्लंघन करनेसे जातिच्युत होते हैं, नेवारी बौद्धगण भी ठीक उसी तरह वर्णगत नियमादिका अव्यवहार करनेसे पतित होते हैं। आठ प्रकारके व्यवसायको ये लोग बहुत घृणा करते हैं। इन आठ व्यवसायोंमेंसे यदि कोई किसीका व्यवसाय अवलम्बन कर ले तो वह जातिच्युत होता है। कसाई वा चर्मव्यवसायी, एक प्रकारका मत्स्यजीवी, धोबीका व्यवसायी, चर्मकार आदि, मत्स्यजीवी, नगरका प्रधान भण्डारक (बांमड़) तथा रजक ये सब जिस तरह हिन्दूमें नीच समझे जाते हैं उसी तरह बौद्धोंमें भी। उक्त व्यवसायका अवलम्बन करनेसे बौद्धोंको भी जातिच्युति होती है।

बौद्धोंके विषयमें मध्य बाँड़ा नामक श्रेणी हिन्दू ब्राह्मणकी जैसी सर्वश्रेष्ठ है। उदासगण पञ्च होते हैं। हिन्दू वैश्योंके साथ उनका सादृश्य है। उक्त दोनों श्रेणियोंके सिवा और सभी लोग जापू कहलाते हैं। हिन्दू शूद्रके साथ इनका सम्पूर्ण सादृश्य है। जापुओंमें अधिकांश कृषिजीवी हैं। इसी श्रेणीके नेवारी दासदासी पाई जाती हैं। ये लोग शिल्पकार्योंका काम काज भी करते हैं।

बाँड़ा और उदासगणको ही एक प्रकारके प्रधान बौद्धाचारी कह सकते हैं। जापूलोग मौके पर बौद्धके आचारको यथानियमानुसार पालन करते हैं। अनेक समय ये लोग देवताको शिव मान कर भी उनकी पूजा करते हैं।

*हिन्दूके चारो वर्णोंमें भी जिस तरह फिर छोटे छोटे विभाग हैं, बौद्धवर्णमें भी बहुत कुछ उसी तरह है। हिन्दुओंमें जातिभेदके अनुसार जिस तरह जीविकार्जनके लिये वंशगत व्यवसाय है बौद्धोंमें ठीक उसी तरह है। इन सब वंशगत व्यवसायोंमेंसे अनेक व्यवसाय ऐसे हैं जिनसे अच्छी तरह जीविका-निर्वाह नहीं हो सकता। ऐसी हालतमें उस व्यवसायके लोग एक प्रकारके साधारण व्यवसाय (अर्थात् कृषि) का अवलम्बन करते हैं। लेकिन वे किसी वंशगत व्यवसायका अवलम्बन नहीं करते अर्थात् बढ़ई यदि अपने व्यवसायसे गुजारा कर न सके तो वह सिर्फ खेती करेगा, लोहार वा सोनारका व्यवसाय नहीं करेगा। प्रत्येक नेवारीके (क्या हिन्दू क्या बौद्ध) एक न एक वंशगत व्यवसाय अवश्य है। जीविकाके लिए वह कैसा ही क्यों न कुछ करे, उसे कभी न कभी वंशगत व्यवसाय करना ही होगा।

बौद्धोंमें बाँड़ाओंको ही सर्वश्रेष्ठ और मान्य है। पूर्व समयमें जो वैराग्यधर्मका अवलम्बन करते थे नेवारी लोग उन्हींको बाँड़ा या भिक्षु (संस्कृत पण्डित)

कहते थे। हिन्दुस्तानके बौद्ध संन्यासीको जिस तरह श्रमण कहते थे, यहां भी उसी तरह उनका "बांढ़ा" नाम था। पूर्व समयमें यह श्रेणी अर्हत्, भिक्षु और श्रावक इत्यादिमें विभक्त थी।

पहले ये लोग संन्यासी थे, अभी इस प्रकारके विभागका चिह्नमात्र भी रह न गया है। जब बौद्धमठकी छानबीन कम गई, उस समय इनके संन्यासग्रहणकी एकान्त कर्त्तव्यता भी लुप्त हो गई। अर्हत् और श्रावक आज भी देखे जाते हैं सही, लेकिन अभी वे किसी तरह भिक्षुक नहीं हैं। वे ही लोग अभी सोने चाँदीका व्यवसाय करते हैं। यहांके बांढ़ाओंमें नौ श्रेणी हैं। प्रत्येक श्रेणीका एक न एक वंशगत व्यवसाय अवश्य है। इन नौ श्रेणियोंमें गुभाल वा गुभाजु नामक श्रेणी ही प्रधान है। 'गुरुभज' वा 'गुरुभाजन' शब्दसे इस नामकी उत्पत्ति हुई है। याजकता ही इनका वंशगत कर्त्तव्य कार्य है, किन्तु अभी वे केवल इसी व्यवसायका अवलम्बन किए हुए नहीं हैं। इसमें कितने दारिद्र्यपीड़ित हैं, कितने खेती बारी, सूचीकार्य, अट्टालिकानिर्माण, मुद्रा प्रस्तुत आदि कार्य करके जीविकानिर्वाह करते हैं और कितने महाजनी भी करते हैं। इनमेंसे जो शिक्षित और धर्मशास्त्रादि जानते हैं, वे ही पण्डित और पुरोहितका काम करते हैं। गुभाजूके मध्य जो याजकता करते हैं, ये वज्राचार्य कहलाते हैं। प्रत्येक गुभाजूको युवावस्थाके पहले वज्राचार्यकी कर्त्तव्यशिक्षा देनी पड़ती है। वज्राचार्य घृत और धान्यादि द्वारा अग्निमें होम करते हैं। यह होमाग्नि और मन्त्रादि उन्हें बचपनमें ही सिखाने पड़ते हैं। जब तक शिक्षा दी जाती है, तब तक उन्हें भिक्षु कहते हैं। कोई भिक्षु अपने घरमें भी शिक्षावस्थामें याजकता नहीं कर सकता। प्रत्येक शिक्षित भिक्षुको सन्तान-जननके पहले वज्राचार्यपदमें दीक्षित होना पड़ता है। दारिद्र्य, मूर्खता, पापाचार वा अन्य किसी कारणसे यदि कोई सन्तानजननके पहले वज्राचार्य न हो सके, तो वह मनुष्य तथा उसके वंशधर सदाके लिए वज्राचार्य होनेसे वञ्चित रहेंगे। वे वज्राचार्य न कहला कर भिक्षु नामसे ही पुकारे जाते हैं। गुभाजू श्रेणीके बालकोंको वज्राचार्य होनेका अधिकार है। वज्राचार्योंके याजकताकालमें शिक्षार्थी भिक्षुगण उनकी सहायता करते हैं।

स्वर्ण-रौप्य व्यवसायी भिक्षु नामक श्रेणीके लोग भी इस प्रकारकी सहकारिताके अनधिकारी नहीं हैं। भिक्षु लोग देवताको स्नान कराते, वेशभूषा पहनाते, उत्सवके समय वहन, देवसम्पत्तिकी रक्षा, उत्सवका आयोजन तथा तत्त्वाविधान करते हैं। गुभाजूसन्तान दीक्षाभ्रष्ट होने पर वज्राचार्य नहीं हो सकती हैं सही, लेकिन सद्वंशजात ब्राह्मणसन्तान हिन्दू होने पर भी यदि गुभाजूगणसे दत्तकरूपमें गृहीत हों, तो उन्हें भलीभांति शिक्षादानके बाद वज्राचार्य करना होता है।

गुभाजू और भिक्षुको छोड़ कर बांढ़ाओंमें ऐसी कोई श्रेणी नहीं जो याजकता करके अपना गुजारा करती हो। अन्य सात श्रेणीके बांढाओंके मध्य कितने ऐसे हैं जो वंशानुक्रमसे स्वर्णरौप्यका अलङ्कार, लौहद्रव्य और पित्तलादि पात्रनिर्माण, देवतागठन, कमानबन्दूकादि निर्माण और काठ पर खोदाई करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। इन नौ श्रेणियोंमें परस्पर आदान-प्रदान और आहारादिकी प्रथा प्रचलित है। बांढ़ा लोग अपनी नौ श्रेणियोंके बौद्ध छोड़ कर और दूसरी श्रेणीके साथ खान पान नहीं करते। वे लोग यदि कारणवश निम्नश्रेणीके बौद्धोंके साथ खान पान तथा आदानप्रदान कर लें, तो उनकी जातिच्युति होती है और जिसके संस्पर्शसे उनकी जाति नष्ट हुई है, वे उसी जातिके हो जाते हैं। वे लोग अपना सारा मस्तक मुड़ाते हैं, किन्तु अन्यान्य बौद्धगण रुचिके अनुसार केशसंस्कार करते हैं। बहुत ऐसे हैं जो बाल बिलकुल नहीं कटाते और शिखास्थान पर दीर्घ वेणी विलम्बित रखते हैं। किसीकी यह वेणी कुण्डलीके आकारमें बँधी रहती है। बांढा स्त्रियां केशसंस्कारकी विशेष पक्षपातिनी हैं। उनकी पोशाकमें कोई विशेषता देखनेमें नहीं आती। किसी उत्सवादिके समय ये लोग प्राचीनकालके बौद्ध-मठवासियोंकी तरह पोशाक पहनते हैं। पूर्व समयमें नेवारियोंकी एक साम्प्रदायिक परिच्छद था, वही आज कल बांढ़ाओंका नित्य पहनावा हो गया है। उत्सवके समय जब उन्हें देवमूर्त्ति ले कर कोई काम करना होता है, तब ये लोग

केवल अपने दाहिने हाथको अङ्गुलियोंसे बाहर निकाल लेते हैं। दाहिने हाथके साथ साथ बायां हाथ भी अनावृत हो जाता है। ये सब पोशाक रक्तवर्ण या पक्वकषाय-की होती है। बहुतसे पीतवर्णको पोशाक भी पहनते हैं। वज्राचार्य और भिक्षुओंकी पोशाकमें कोई प्रभेद नहीं है, केवल शिरोभूषा विभिन्न है। वज्राचार्यके मस्तक पर ताम्रवर्णका कारुकार्यविशिष्ट मुकुट, कटिदेशमें माणीय पट्ट, हाथमें वज्रदण्ड और घण्टा गलेमें १०८ दानेकी विचित्रवर्णकी स्फटिकमाला वा दूसरी तरहकी माला रहती है। मालाके एक ओरमें छोटा घण्टा और दूसरी ओरमें छोटा वज्र लटका रहता है। भिक्षुओंके मस्तक पर रक्तवर्णका उष्णीष रहता है जिसे 'चङ्गाम टोपी' कहते हैं। इस टोपीके ऊपर एक पीतलका गुलाम वा वज्र रहता है और सामनेमें एक चैत्यकी आकृति रहती है। सामान्य सामान्य उत्सवोंमें तथा बौद्धयात्रामें वज्राचार्य लोग भी उस प्रकारकी चङ्गाम टोपी पहनते हैं। भिक्षुओंके गलेमें सामान्य माला, दाहिने हाथमें 'खिक्खिरिका' नामक दण्ड और बाएं हाथमें 'पिण्डपात्र' नामक पीतलकी थाली रहती है। इसीमें लोग भिक्षादान करते हैं।

बौद्धलोग जहां लगातार वास करते आए हैं वही विहार वा मठ कहलाता है। ये सब विहार वा मठादि प्रधान प्रधान चैत्य और मन्दिरोंके निकट अवस्थित हैं। अति प्राचीनकालसे ये सब स्थान जो विहार वा मठमें वास करते आ रहे हैं, उनमें एक ऐसी जनश्रुति हो गई है कि उसके अनुसार एक एक विहार वा मठवासियोंको एक एक सम्प्रदाय कहते हैं। इस प्रकार एक सम्प्रदायके मध्य जितने आचार व्यवहार और रीतिनीति प्रचलित हो गई है। उनमें कौन किस विहार वा किस मठके व्यक्ति हैं यह सहजमें मालूम हो जाता है। बौद्धलोग शान्तस्वभावके, परिश्रमी और सदाचारी होते हैं। किन्तु इनमें अभी और धर्मोंके अपेक्षा अथवा अपनोंका आचारव्यवहार अधिकतर भावसे प्रचलित नहीं है। बौद्धधर्ममें कहीं पर भी सम्प्रदायानुसार वा जातिगत भेदभावका नियम नहीं है तथा सम्प्रदायकी अपेक्षा भी ये भिन्न आचार व्यवहारका विधान है। किन्तु बौद्ध लोग उस समयके बौद्ध श्रमणोंके समान पर अधिष्ठित हो कर उन सब सामान्य नियमोंका भी प्रतिपालन नहीं करते। सुविधा पा लेने पर तो ये लोग शराब और मछली-मांस खाते हैं, अपने हाथसे जानवरोंको काटते हैं, शराब खूब पीते हैं तथा दिनमें जब इच्छा होती, तभी दो चार बार खा लेते हैं। सदाचारी होने पर भी ये लोग सत्यवादी नहीं होते। अन्यान्य बौद्धगण बांडाओंको डोम जातियोंकी तरह मानते हैं। ब्राह्मणको दान देना हिन्दूके लिये जैसा पुण्यजनक है बांडाओंको भी दान देना नेवारी लोग वैसा ही समझते हैं। बांडा भी धर्म-कार्य करनेके लिए इस प्रकारका दान लेनेमें हमेशा तैयार रहते हैं।

उदासगण वाणिज्यव्यवसायी हिन्दूके वंशधर जैसे होते हैं। इन लोगोंमें सात श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणीका नाम उदास है। तिब्बत और चीनके साथ जितने कारबार चलते हैं, सभी इसी उदासश्रेणीके हाथ हैं। इन सात श्रेणियोंका एक एक स्वतन्त्र व्यवसाय है। किन्तु ये लोग बांडाओं की तरह व्यवसाय करनेमें उतने बाध्य नहीं हैं। ये लोग सभी महाजनी करते हैं इसके अलावा सिक्कादि स्वर्णादि धातुके द्रव्यादि और काष्ठ निर्मित द्रव्यादि प्रस्तुत, पत्थरकी खुदाई और कारुकार्य, देवतामूर्ति निर्माण, भित्तिरचना, तैलादि निर्माण, छोटा छोटा घर और इष्टकादि निर्माण आदि कार्य भी करते हैं। उदास लोग कट्टर बौद्ध हैं। प्रायः इसलिये ये लोग हिन्दू देवदेवीकी पूजा नहीं करते और न ब्राह्मण द्वारा अपना पौरोहित्य ही कराते हैं। ये लोग धर्मकर्ममें वज्राचार्यका उपदेश ग्रहण करते हैं। उदास लोग कभी बांडा श्रेणीमें प्रवेश नहीं कर सकते, पर बांडा इनके साथ आहारव्यवहार करके इनकी श्रेणीमें मिल सकते हैं। ये अपनी सात श्रेणियोंमें एक साथ आहार व्यवहार करते हैं पर जापुओंके साथ खान पान नहीं करते। किसी समय ये लोग बहुत धनी हो गए थे, व्यवसायकी अवनतिसे इनकी अवस्था आज कल उतनी अच्छी नहीं है। अभी बांडा लोग ही वाणिज्य व्यवसायमें बढ़े चढ़े हैं।

अन्यान्य सभी बौद्ध जापु श्रेणीमें गिने जाते हैं। इनको

रीतिनीति तथा आचार व्यवहार और भी विकृत हैं। बौद्धाचारके साथ इन्होंने हिन्दूके आचार अविच्छेद्य-रूपसे मिला लिया है। हिन्दूके मन्दिरादिमें जा कर उत्सवके समय ये लोग पूजा करते हैं। विवाह और अन्त्येष्टिक्रिया हिन्दूकी तरह की जाती है। इनके सामाजिक कार्यके समय वज्राचार्यके साथ साथ एक ब्राह्मण पुरोहित रहते हैं। इनमें आठ श्रेणियां हैं। सभी श्रेणीका वंशगत व्यवसाय है जिनमेंसे छः श्रेणीका कृषिजन्य कर्म, एक का जमीनका परिमाणादि और शेष एक श्रेणीका कर्म कुम्भकारवृत्ति है। कृषिजीवी छः श्रेणियोंका नाम ही जापू है। इनका स्थान उदास-के बाद ही आया है। तीस प्रकारके जापुओंमें उक्त प्रकृत जापूगण सामाजिक विधानमें अन्यान्य श्रेणियोंको कमीना समझाते हैं। प्रकृत जापू अपनी छः श्रेणियोंके अतिरिक्त दूसरी श्रेणीके साथ खान-पान तथा आदान प्रदान नहीं करते। अन्यान्य २४ श्रेणियोंमें पटुआ, वस्त्ररञ्जनकारी, बढ़ई, माली, टीकादार, अस्त्रचिकित्सक, नापित, निम्नश्रेणीका डोम, दुसाध, ग्वाला, काठुरिया, द्वारपाल आदि प्रधान हैं। इनमेंसे एक श्रेणीका नाम है "सम्मि"—जिसका जातीय व्यवसाय तैल प्रस्तुत करना है। नेवारियोंमें अभी इसी सम्मिके लोग धनी हैं। अभी इन्होंने उदासोंकी तरह महाजनी और वाणिज्य व्यवसायका आरम्भ कर दिया है। प्रयोक्त निम्नस्थ वर्णोंके हाथका हिन्दू लोग पानी नहीं पीते। लेकिन साम्मि आदि कई एक श्रेणीके लोग अभी नेपाल-राजसरकारके अनुग्रहसे जलाचरणीय हो गए हैं।

आज कल बौद्धोंमें ये सब जातिभेद क्रमशः दृढ़बद्ध होते जा रहे हैं। इसके भिन्न दूसरा व्यवसाय अवलम्बन करनेसे बौद्धोंको जातिच्युति होती है, वे सब व्यवसायी आठ श्रेणीके लोग 'पतित' कहलाते हैं। इनका स्पृष्ट कोई द्रव्य क्या बौद्ध क्या हिन्दू कोई भी ग्रहण नहीं करता। इन आठ श्रेणियोंके मध्य आपसमें व्यवहार नहीं चलता। इस देशके वर्णब्राह्मणोंकी तरह नीचश्रेणीके वर्णबांढा लोग उक्त नीच श्रेणीकी याजकता करते हैं।

नेपाली बौद्धोंके मध्य बांढाओंकी समितिमें धर्म-सम्बन्धीय संशयादिकी और 'गति'के विधानानुसार सामाजिक विषयकी मीमांसा होती है। किन्तु कोई विचाराधीन विषय होनेसे वह गुर्वाओंके आम्नायप्रधान याजकराजगुरुके सामने पेश किया जाता है। इस विषयमें कोई बौद्ध विचारक नहीं होते। राजगुरुके विचारालयका नाम धर्माधिकरण है और वे स्वयं धर्माधिकारी हैं। ये हिन्दूशास्त्रानुसार जातिगत विवादका विचार करते हैं। विचारमें अर्थदण्ड, कारादण्ड, प्राण-दण्ड, कैसा ही क्यों न हो, अपराधी बौद्ध होने पर भी उसे हिन्दूशास्त्रानुसार दण्ड भुगतना पड़ता है। राजगुरु इस विषयमें बौद्धशास्त्रकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते।

नेपाली बौद्धगण तिब्बतीय लामाओंका प्रधानत्व अस्वीकार नहीं करते। ये लोग लासाको बौद्ध धर्मका प्रधान स्थान मानते हैं। किन्तु धर्मसम्बन्धमें दोनों देश-में कोई सम्बन्ध वर्त्तमान नहीं है। तिब्बती लोग नेपाली बौद्धोंको हिन्दूकी अपेक्षा कुछ अच्छा समझते हैं। वे लोग स्वयम्भूनाथ, बोधनाथ और कश्यचैत्यके दर्शन करने आते हैं, किन्तु नेपाली बौद्धधर्मकी कोई खबर नहीं लेते और न उनके उत्सवादिमें साथ ही देते हैं।

गत्तिके नियमानुसार प्रत्येक श्रेणीके प्रत्येक परिवारके कर्त्ताको एक बार करके सामाजिक व्यक्तियोंको भोज देना पड़ता है। इस प्रकार एक एक भोजमें हजारों रुपये खर्च होते हैं। गरीबके लिये यह भोज बड़ा ही कठिन हो जाता है। जो इस भोजको नहीं दे सकता, वह जातिमें हीन समझा जाता है। वह हीनता जातिच्युतिके समान है। फिर एक नियम ऐसा है जिसके अनुसार किसी परिवारमें किसीके मरने पर उस जातिके प्रत्येक परिवारमेंसे एक एक मनुष्यको उस मृतके सत्कारमें योग देना पड़ता है। केवल इतना ही नहीं, उन्हें द्वादशाह अशौचान्तके दिन भी उपस्थित होना पड़ता है। नेपाली बौद्धोंको मृतदेहका दाह होता है। प्रत्येक श्रेणीका दाहस्थान स्वतन्त्र है, पर है सबोंका नदी किनारे ही। गत्तिके नियमका उल्लङ्घन करनेसे अपराधी स्वजातीय प्रधानोंके विचारसे अर्थदण्ड पाता है। भारी अपराध करने पर जातिच्युति भी होती है। जातिच्युत व्यक्तिकी मृतदेह राह पर छोड़ दी जाती है।

नेपालके बौद्धोंका संक्षिप्त विवरण।

नेपालके बौद्धगण आदि पञ्चतत्त्वको आदिबुद्ध नामसे और आदिकारणरूपिणीको आदि-प्रज्ञा नामसे अभिहित कर धर्म और संघ देवदेवीके रूपमें उनकी उपासना करते हैं। आदिबुद्ध स्वयम्भू, ज्ञानमय उनके कर्त्ता नहीं हैं, वे ही सबोंके कर्त्ता हैं। आदिकारणरूपिणी आदि-प्रज्ञा आदिबुद्धकी ही मायास्वरूप हैं। इनके मतसे आदिबुद्ध वा आदिप्रज्ञाकी कोई मूर्त्ति कल्पित नहीं हो सकती। किसी मन्दिरमें वा चारदीवारके मध्य इनकी कोई मूर्त्ति देखी नहीं जाती। नेपालका प्रधान बौद्ध मन्दिर आदिबुद्धके नामसे उत्सर्गीकृत है। लोगोंका विश्वास है कि उन सब मन्दिरोंमें आदिबुद्धका आवि र्भाव है।

नेपालमें ज्योतिःको ही आदि बुद्धका स्वरूप मान कर उनको प्रणामादि करते हैं। सभी ज्योति इस प्रकार पूजी नहीं जाती। सूर्यरश्मिसे निर्गत ज्योति ही आदि बुद्धज्योतिरूपमें पूजित होती है। वे सूर्यलोकको भी उसी की ज्योति मानते हैं।

बौद्ध लोग त्रिमूर्त्ति वा त्रिरत्नकी पूजा करते हैं। बुद्ध, धर्म और संघ यही त्रिमूर्त्ति त्रिरत्न नामसे अभिहित है। सामान्यतः बुद्ध और संघ पुरुषरूपमें और धर्म स्त्रीरूपमें कल्पित और चित्रित होते हैं। स्त्रीमूर्त्ति धर्म ही महादेवी, धर्मदेवी और प्रज्ञापारमिता नामसे प्रसिद्ध है। नेपालमें त्रिरत्नोपासनाका विशेष आधिक्य देखा जाता है। प्रायः सभी मन्दिरोंमें त्रिरत्न वा त्रिमूर्त्ति खोदित है, मनुष्य इसकी पूजा करते हैं। वहां के लोगोंके अन्दर दरवाजेके ऊपर चौखट पर वा प्राचीरमें, भवनप्रवेशकी दीवारमें, बुद्ध वा बोधिसत्त्वके मन्दिरमें यह त्रिमूर्त्ति देखनेमें आती है। इस त्रिमूर्त्तिकी छोटी और बड़ी नाना प्रकारकी प्रतिमा होती है। त्रिमूर्त्ति-की तीनों मूर्त्तियां प्रायः एक दूसरेसे सटी रहती हैं। कहीं मध्यस्थलमें बुद्ध, कहीं धर्ममूर्त्ति खोदित है। ये त्रिमूर्त्तियां प्रस्फुटित पद्मके ऊपर बैठी हुई हैं। संघ रूपकी मूर्त्ति भी साधारणतः नहीं होती है। बुद्धमूर्त्ति और पुरुष, धर्ममूर्त्ति युवती रमणी और संघ किशोर बयस्क पुरुषरूपमें कल्पित होते हैं। त्रिरत्नमें अधोभ्य अथवा प्रायश्चित्त बुद्धकी आकृति दी की जाती है। धर्मकी मूर्त्तिके चार भुजाएं होतीं जिनमेंसे दो ऊपर की ओर और दो नीचेकी ओर रहती हैं। ऊपरके दो हाथोंमें पद्म और जपमाला तथा नीचेके हाथोंमें पुस्तक रहती है। ऊपरके एक हाथका अङ्गुष्ठ दूसरे हाथकी तर्जनीसे छुटी रहती है। कहीं तो बोधिसत्त्वकी मूर्त्ति ही संघमूर्त्तिके रूपमें मानी जाती है। कोई कोई संघमूर्त्ति चतुर्भुज और कोई मूर्त्ति द्विभुज भी देखी जाती है। इनके दो हाथ मुद्राविशिष्ट होते, एक हाथमें मणियुक्त पद्म वा पुस्तक और दूसरे हाथमें मणिनिर्मित जपमाला रहती है।

प्रथमतः आदिबुद्ध और आदिप्रज्ञाकी उपासना पीछे त्रिरत्नपूजा, तब ध्यानी और मानुषभेदसे द्विविध बौद्ध बुद्ध तथा उनकी शक्ति एवं बोधिसत्त्वकी उपासना प्रच लित है।

ध्यानीबुद्धकी संख्या पांच (किसीके मतसे छः) और मानुष बुद्धकी संख्या सात (किसीके मतसे नौ) है। ध्यानीबुद्धोंकी शक्तियां उनकी पत्नी और बोधिसत्त्वगण उनके पुत्र माने जाते हैं। ध्यानीबुद्धोंकी संख्या ये हैं—शक्ति, बोधिसत्त्व, गुण, मूल, इन्द्रिय, आयतन, वाहन, वर्ण, चक्र और मुद्रासनस्थ।

मानवबुद्धोंको तारतम्य यही है कि वे बोधिसत्त्व बुद्ध हैं, विष्णु नहीं। ये सभी पीत वा स्वर्णवर्ण के हैं, भूमिस्पर्श मुद्राविशिष्ट हैं, कि इनका आसन है। जो पांच ध्यानीबुद्ध मानते हैं, वे तन्त्रके मतसे दक्षिणाचारी और जो छः ध्यानीबुद्ध मानते हैं, वे वामाचारी कहलाते हैं।

इन मानवबुद्ध ध्यानसिद्ध चरणपूजा भी नेपालमें प्रचलित है। इसमें ८ मङ्गलचिह्न हैं, यथा श्रीवत्स वा श्रीवृक्ष चिह्न, पद्म, ध्वज, कलश, चामर, छत्र, मत्स्य युगल और शङ्ख।

मञ्जुश्री बोधिसत्त्व नेपालियोंके मध्य विशेष उपास्य हैं। ये मञ्जुश्री, मञ्जुघोष और मञ्जुनाथसे प्रसिद्ध हैं। नेपालमें प्रायः सभी जगह इनका मन्दिर है। स्वयम्भूनाथके निकटका मन्दिर ही प्रधान है। ये नेपा-लियोंके मतसे शिल्पनायक तथा रक्षाकर्त्ता माने जाते

है। कितने नेपाली शिल्पजीविगण सरस्वती और विश्वकर्मा की तरह इनकी पूजा करते हैं। इनकी द्विभुज और चतुर्भुज प्रतिमा देखी जाती है। द्विभुज प्रतिमाके एक हाथमें खड्ग और एक हाथमें पुस्तक है। चतुर्भुज प्रतिमाके अन्य दो हाथोंमें तीर और धनुष् है। इनके मन्दिरके सामने मण्डल नामक एक खण्ड पत्थर रहता है जिस पर मञ्जुश्री चरण-चिह्न उत्कीर्ण देखा जाता है। मञ्जुश्री चरणके गुल्फ देशमें वज्रचिह्न है। चम्पादेवी पर्वत पर इनकी एक पत्नी वरदा (लक्ष्मी) और फुलचोया पर्वत पर मोक्षदा (सरस्वती) नामक दूसरी पत्नीका मन्दिर है।

नेपाली बौद्धोंमें हिन्दूका शैवाचार और तन्त्राचारके मिश्रित हो जानेसे वे अनेक शैवदेवदाता और तान्त्रिक उपास्य योनिलिङ्गादिकी उपासना करते हैं। नेपालमें स्वयम्भुनाथ ही आदिबुद्धरूपमें और गुह्येश्वरी आदिप्रज्ञारूपमें पूजित होती हैं। ध्यानीबुद्धोंमें अमिताभ, तत्शक्ति और पुत्र एवं मानवबुद्धोंमें शाक्यसिंह एवं बोधिसत्व मञ्जुश्री सबकी अपेक्षा प्रधान उपास्य हैं। इसके अलावा बुद्धचरण, मञ्जुश्रीचरण, त्रिकोणप्रभृति विशेष भावमें पूजित होते हैं।

नेपाली बौद्ध धातुमण्डल नामक एक और प्रकारके चिह्नकी पूजा करते हैं। धातुमण्डल दो प्रकारका है, वज्रधातुमण्डल और धर्मधातुमण्डल। वज्रधातुमण्डल वैरोचनबुद्धके साथ और धर्मधातुमण्डल मञ्जुश्री बोधिसत्त्वके साथ संश्लिष्ट है। बड़े बड़े बौद्धमन्दिरोंके निकट इन सब धातुमण्डलोंकी प्रतिष्ठा है। ये सब गोलाकार वा अष्टकोणी २।३ इञ्च मोटे पत्थरखण्ड पर बने होते हैं। उनमें पद्मचिह्न खोदित रहते हैं। प्रतिमा बैठानेके लिये वा चरणचिह्न खुदवानेके लिए इस प्रकारके मण्डलकी आवश्यकता होती है। जैसे बुद्ध वा बोधिसत्त्वोंके पवित्र स्थानादिमें वा उनके अवशेषके ऊपर चैत्य बना होता है, वैसे ही देवताके पवित्र स्थानादिके ऊपर बड़े बड़े धातुमण्डल प्रतिष्ठित होते देखे जाते हैं। बड़ा बड़ा धातुमण्डल स्तम्भ वा वेदिके ऊपर स्थापित होता है। इन सब मण्डलोंमें बौद्ध देवदेवियोंकी मूर्त्ति और चिह्नादि अङ्कित होते हैं। धर्मधातुमण्डलमें २२२ प्रकारके चिह्नोंसे कम नहीं रहते। समकेन्द्री क्रमह्रस्वतृत्तके मध्य पृथक् पृथक् कक्ष पर शास्त्रोक्त शृङ्खलानुसार एक एक प्रकारका चिह्न खोदित रहता है। वज्रधातुमण्डलमें ५०।६० प्रकारके चिह्नोंसे अधिक चिह्न नहीं रहते। इन दोनों प्रकारके मण्डलोंके चिह्नादिकी शृङ्खला एक-सी नहीं होती।

इसके अलावा हिन्दूके दिक्पालोंकी तरह बौद्धोंके भी उपास्य चार देवराज हैं। वे सब भी दिक्पाल हैं। खड्गपाणि खड्गराज पश्चिमाधिपति, चैत्यधारी चैत्यराज दक्षिणाधिपति, वीणापाणि वीणराज पूर्वाधिपति और ध्वजधारी ध्वजराज उत्तराधिपति माने जाते हैं।

शिवमार्गी हिन्दुओंके निम्नलिखित देवता क्या हिन्दू, क्या बौद्ध दोनों सम्प्रदायके उपास्य हैं,—

भैरव और महाकाल, भैरवी वा काली, गणेश, इन्द्र और गरुड़। भैरवका मुख मत्स्येन्द्रनाथके रथके सम्मुख भागमें संलग्न रहता है। बौद्ध लोग इस मुखको यद्यपि रथका अलङ्कार विशेष मानते हैं, तो भी अत्यन्त पवित्र समझ करके उसे एवितोड़ विहारके मध्य रखते हैं। भैरवका दैत्याकाररोद्र विग्रह अनेक बौद्ध मन्दिरोंके भी सामनेके मन्दिरके रक्षाकर्त्ता वा द्वारपालरूपमें देखे जाते हैं। महाकाल गणाधिपति गणेशके गणभुक्त होने पर भी इनकी प्रतिमा बौद्धमन्दिरके उभयपार्श्वमें देखी जाती है। मञ्जुश्रीमन्दिरके चरणमण्डलके एक पार्श्वमें गणेश और एक पार्श्वमें त्रिशूलधारी महाकालकी मूर्त्ति है। महाकाल प्रतिमा ही अनेक स्थानोंमें वज्रपाणि बोधिसत्त्वके विग्रहरूपमें पूजित होती है।

सिद्धिदाता गणेशको बौद्ध लोग बुद्धिदाता मानते और श्रद्धाभक्तिके साथ उनकी पूजा करते हैं। पशुपतियोंके दण्डदेव मन्दिरके निकट अशोककन्या चारुमतीका प्रतिष्ठित एक बहुत प्राचीन गणेश-मन्दिर है। 'चारुवीथि' विहारके बांढ़ापुरोहितगण ही इस गणेशकी पूजा करते हैं।

काली वा भैरवी मूर्त्ति किसी बौद्धमन्दिर वा उसके निकट देखनेमें नहीं आती। पर हां, उनके जो स्वतन्त्र मन्दिर हैं, बौद्ध लोग वहां जा कर पूजा करते हैं। अनेक कालीमन्दिरमें बांढ़ा पूजकका काम करते हैं।

इन्द्रकी अपेक्षा इन्द्रवज्रको बौद्ध लोग अधिक और उपास्य देवता मानते हैं। बौद्धशास्त्रमें लिखा है, कि बुद्ध देवने एक समय इन्द्रको पराजय कर उनका वज्र सर्वविघ्ननाशन लोप किया था। वज्र बुद्धाभियोंके मध्य 'दोर्जे' शब्दसे प्रसिद्ध है।

स्वयम्भूनाथके मन्दिरके सामने धर्मधातुमण्डलके ऊपर ६ फुट लम्बा एक वज्र प्रतिष्ठित है। यह भी बुद्धका चिह्न वज्र है। एक वज्रके मध्यभागमें और दूसरेके निम्नभागमें स्थापित होनेसे यह विश्ववज्र कह-लाता है। यह विश्ववज्र धर्मोपदेशक बुद्धका चिह्न है। हिन्दू लोग लिङ्ग और योनिको जिस तरह देवदेवीके प्रतिनिधि रूपमें पूजा करते हैं, उसी तरह नेपालमें वज्र और घण्टा बुद्ध तथा प्रज्ञादेवीके प्रतिनिधिरूपमें पूजित होता है। हिन्दूमन्दिरके चूड़ाभाग पर जिस तरह गरुड़, कलश, पद्म आदि मूर्त्तियां होती हैं, बौद्धमन्दिरके चूड़ाभाग पर भी उसी तरह प्रज्ञा वा धर्मका चक्र अङ्कित दिया जाता है।

हारिती (शीतला) और गरुड़की मूर्त्ति प्रायः सभी बौद्धमन्दिरोंमें देखी जाती है। बौद्ध गरुड़की मूर्त्तिके गलेमें सर्पमाला, हाथमें सर्पदण्ड और चञ्चुमें नाग सर्प तथा दोनों पदके नीचे पड़े हुए सर्पाकार नागकन्याकी मूर्ति है। धर्मोपदेशक बुद्धका वाहन भी गरुड़ है। प्रायः सभी बौद्धमन्दिरोंमें और केवल देवदेवीके मन्दिरमें गरुड़मूर्ति देखनेमें आती है। गरुड़का स्वतन्त्र मन्दिर नहीं है। लिङ्ग और योनिपूजा भी बौद्धोंमें प्रचलित है। वे लोग लिङ्गको आदिबुद्ध वा स्वयम्भूका मुख्यमान और योनिको स्वयम्भू अथवा मूलका आदि चिह्न वा बुद्धधर्मका स्थान मानते हैं। बौद्धोंमें अधिकांश इसके जानकार नहीं हैं। हिन्दू शिवलिङ्गके सामने बौद्धलोग बौद्ध देवदेवीकी मूर्त्ति खोद कर उनकी पूजा करते हैं। लिङ्ग स्थापकको भी उन्होंने चैत्यके आकार-में बदल दिया है। इस प्रकार खोदित लिङ्गकी विशेष सूक्ष्मदृष्टिसे परीक्षा किये बिना सहजमें कोई हिन्दू शिव-लिङ्ग नहीं कह सकता। हिन्दूतान्त्रिकोंके उपास्य त्रिकोण चिह्नको बौद्धलोग धर्मका चिह्न, कोई बुद्धधर्म आदि देवियोंके चिह्न मानते हैं। हिन्दू-तान्त्रिकके यन्त्रमें यन्त्राकारकी तरह बौद्ध लोग भी यह त्रिकोण यन्त्र धारण करते हैं।

बौद्धलोग जिस तरह हिन्दूदेवदेवियोंकी उपासना करते हैं, उसी तरह हिन्दू लोग भी अनेक बौद्धदेवदेवियोंको हिन्दूदेवदेवीकी प्रतिमा समझ कर उनकी पूजा करते हैं। वे लोग गुह्येश्वरीको भगवतीका रूप मानते हैं। मञ्जुश्रीको हिन्दू लोग कोई देवता सरस्वतीरूपमें पूजा करते हैं। उनकी दो पत्नी भी उनको सरस्वतीके रूपमें हिन्दूके निकट मान्य हैं। मत्स्येन्द्र अमिताभबुद्ध और विष्णुके अवताररूपमें मान्य होते हैं।

पशुपति स्वयम्भूनाथ पर्वत परके शीतलादेवीके मन्दिरमें हिन्दूकी तरह बौद्ध लोग भी उन्हें हिन्दूदेवी समझ कर ही पूजा करते हैं।

नेपाली शिवमार्गी हिन्दूओंमें जितने भी तान्त्रिक हैं, उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। हिन्दूओंके उपास्य देवदेवीका विवरण इसके पहले ही पूजा और उत्सवादिके मध्य लिखा गया है। नेवार देखो।

नेपालक (सं० क्ली०) नेपाल स्वार्थे कन्। १ नेपाल। २ ताम्रधातु, तांबा।

नेपालकम्बल (सं० पु०) कृष्णाभ चित्रकम्बल।

नेपालजा (सं० स्त्री०) मनःशिला मैनसिल।

नेपालनिम्ब (सं० पु०) नेपालोद्भवो निम्बः। नेपाल देशोद्भव निम्ब, नेपालकी नीम, एक प्रकारका चिरायता। पर्याय—नैपाल, ज्वरनिम्ब, ज्वरान्तक, नाड़ीतिक्त, निद्रारि सन्निपातरिपु। गुण—शीतल, रूक्ष, लघु, तिक्त, दोषा-दि, प्रशमन कफ, पित्त, व्रण, शोथ तृषा और ज्वर नाशक।

नेपालमूलक (सं० क्ली०) हस्तिकन्द बड़ा मूलभेद हस्तिकन्दके समान एक कन्द।

नेपालिका (सं० स्त्री०) १ मनःशिला, मैनसिल। २ सोमलता।

नेपाली (हिं० वि०) १ नेपालका, नेपालमें रहने वा होनेवाला। २ नेपाल सम्बन्धी। (पु०) ३ नेपालका रहनेवाला आदमी। (स्त्री०) ४ मनःशिला, मैनसिल। ५ नेवारीका पौधा।

नेपियर (सर चार्लस नेपियर)—एक अंगरेज सेनापति। इनका जन्म १७८२ ई०में हुआ था। ये ऐडमिरल नेपि

यर (Admiral Napior)-के भ्रातिभ्राता थे। १७९८ ई०में आइरिस-विद्रोहके समय बारह वर्षकी अवस्थामें ये २२ नं० रेजिमेण्टके पताकावाहक (Ensign officer)-के पद पर नियुक्त हुए और १८०६ ई०में सर जान मूरको सहायताके लिए ५० नं० पदातिक सैन्यके अध्यक्ष हो कर स्पेन गए। इसी समय करुणाकी लड़ाई-में इनके पंजरेकी हड्डी टूट गई और ये बन्दी हुए। बाद इङ्गलैण्ड लौट कर एक वर्ष तक ये बेकाम बैठे रहे। इसी समय इन्होंने सामरिक विभागीय नियमावली, उपनिवेश और आयरलैण्डकी अवस्थाके विषय पर एक पुस्तक लिखी। बाद १८०८ ई०में ये सचिर-सेनादलमें मिल गए और स्पेनके विरुद्ध पुनः युद्धयात्रा कर दी। किन्तु इस बार इन्हें गहरी चोट लगी। इसके बाद १८१३ ई०में ये उत्तर अमेरिकाके सामरिक कार्यमें चले गए और १८४१ ई०में भारतके सर्वप्रधान सेनाध्यक्ष (Commander-in-chief) हो कर आए। लार्ड एलेन-बरा जब गवर्नर-जनरल हो कर भारतवर्ष आए थे, तब इन्होंने उन्हें अफगानयुद्धके लिए सलाह दी थी। अफगानिस्तानमें अङ्गरेजोंकी दुरवस्था देख कर सिन्धुप्रदेशके अमीरगण उनकी अधीनतासे छुटकारा पानेके लिए तत्पर हुए। इसी समय यहांके रेसिडेण्ट मेजर आउटरम (सर
१ जेम्स) अमीरोंके औद्धत्यसे डर गए और राज प्रतिनिधि एलेनबराको इसकी खबर दी। इन्होंने उक्त प्रदेशको सामरिक और राजनैतिक कार्यावलीको देखरेखके लिए नेपियरको आदेश दिया। नेपियरने सिन्धुप्रदेश जा कर पहलेकी लिखी हुई शर्त्तमें कुछ हेर फेर कर यहांके अमीरोंको अपने वशमें कर लिया।

१८४३ ई०की ८वीं जनवरीको नेपियरने मरुदेशस्थ इमामगढ़ पर आक्रमण किया। अमीरगण पहलेसे ही उनकी हठकारिताकी बात जानते थे। अतः वे युद्धकी कोई घोषणा पानेसे पहले ही इमामगढ़ पार हो कर हैदराबादकी ओर चल दिए। नेपियरने भी दुर्गको जीत और उसे ध्वंस कर अमीरोंका पीछा किया। इधर हैदरा-बादनगरके अमीरगण एकत्र हो कर आउटरमके साथ सन्धिका प्रस्ताव कर ही रहे थे, कि इन्होंने नेपियरके हैदराबादकी ओर आनेको खबर सुनी। इस समय डर-के मारे बिना आगे पीछे सोचे उन्होंने सन्धिपत्र पर अपने अपने हस्ताक्षर कर दिए। सबोंने तो हस्ताक्षर उसी समय बना दिए पर उनके प्रधान जो बेलूच सरदार थे, उन्होंने अङ्गरेजोंकी वश्यता स्वीकार नहीं की। १८४३ ई०की १५वीं फरवरीको इन्होंने दल बांध कर रेसिडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। मेजर आउटरम हैदराबादके वासभवनका परित्याग कर भाग गये।

सर चार्लस नेपियर यह खबर पाते ही आगबबूला हो उठे। उन्होंने १७वीं फरवरीको बेलूचों पर धावा बोल दिया। मियानीके निकट दोनों दलमें घमसान युद्ध हुआ, लेकिन बेलूच दल पराजित हो कर रणस्थल-से नौ दो ग्यारह हो गए। नेपियरने हैदराबाद पर अधिकार जमाया और अमीरोंके अलङ्कारादि अपने दखलमें कर लिए।

पुनः उसी सालकी २२वीं मार्चको बेलूच-दल अमीर शेर महम्मदके अधीन हैदराबादके निकटवर्त्ती दूबा नामक स्थान पर अङ्गरेजोंके विरुद्ध आ डटे, किन्तु इस युद्धमें भी इन्हींकी हार हुई। युद्धमें नेपियरने बड़ी वीरता दिखाई थी। यद्यपि ये सिन्धुप्रदेशके अधीन कई एक बेलूच सर-दारोंको अपने वशमें लानेमें सक्षम हुए थे, तो भी कच्छ गण्डवा, मरी, बुगटी आदि उत्तर-पश्चिमसीमान्तवासी कुछ बेलूच जातियोंने इनकी अधीनता स्वीकार नहीं की। वे उस समयके पारस्य और सिन्धु अमीरोंके प्रभाव-की उपेक्षा कर उन लोगोंके राज्यमें लूट पाट मचाया करते थे। फिर क्या था, नेपियर कब चुपचाप बैठनेवाले थे। इन्होंने १८४५ ई०को १३वीं जनवरीको उनका सामना किया। विद्रोहीदलके नेता सरदार बीजा खां युद्धमें पराजित हो कर बन्दी हुए। अन्तमें यहांके विद्रोह ने शान्तभाव धारण किया। बाद १८४७ ई०में नेपियर इङ्गलैण्ड गए और पुनः १८४९ ई०में सिखयुद्धके समय भारतवर्ष आए थे। इस युद्धमें भी इन्होंने असम साहसके साथ अपनी बुद्धि और रणचातुर्यका परिचय दिया था। गोविन्दगढ़के ६० नं० देशीय पदातिक दलके १८४९ ई०में विद्रोही होने पर, नेपियरने उन्हें दमन किया तथा

* Hart's "Army List" 1843.

प्रजाको गरफ्तार कर उनको जहाज पर गोलियोंको रखा। यहां पर निपियर अपनी जीवनकी उदारताका सबूत दिया गया है। इन्होंने राजद्रोहियोंको प्राणदण्ड न दे कर सभी को दयाका पात्र समझ छोड़ दिया। उनका यह विश्वास था कि अङ्गरेज-राज्यके अधिकारियों को प्रजावर्गके मध्य राजभक्तिका उच्छेद देखा जाता है।

इस निर्भीक सेनापतिने जीवनके अन्तिम समय तक भारतवर्षके विषयमें आलापन कर पोर्टसमाउथके निकटवर्ती बाथर्स्ट नगरमें १८५९ ई०को मानव लीला संवरण की। इनको हस्तलिपि अत्यन्त ही सुन्दर होती थी। इनकी भाषा और वाक्यविन्यास देख कर चमत्कृत होना पड़ता था। ये बड़े ही धीरप्रकृतिके मनुष्य थे और मद्यपानादिको ओर इनको तनिक भी आसक्ति न थी।

नेपोलियनबोनापार्ट—जगद्विख्यात वीर। १७६९ ई०को १५वीं अगस्तको नेपोलियनने कर्सिकाद्वीपके प्रधान स्थान एजेसियो नामक नगरमें जन्म ग्रहण किया। नेपोलियनके जन्म लेनेके दो वर्ष पहले ही फरासीसियोंने एजेसियो पर अधिकार जमा लिया था। इसलिए नेपोलियन फरासीसीको प्रजा हो कर उत्पन्न हुए थे। आपके पिता चार्ल्स बोनापार्ट व्यवहारजीवी थे, किन्तु फरासीसियोंने जब कर्सिका पर चढ़ाई कर दी तब उन्होंने वकालती छोड़ कर जेनरलपाओलिका पक्षग्रहण किया था और पाओलिके साथ मिल कर देशके लिये यथासाध्य युद्ध करनेमें एक भी कसर उठा न रखी थी। जब नेपोलियन माताके गर्भमें थे उस समय उनके मातापिता एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भाग कर स्वाधीनताको निष्फल चेष्टा कर रहे थे। अन्तमें कोई उपाय न देख उन्हें फरासीसीकी अधीनता बाध्य हो कर स्वीकार करनी पड़ी। आपके पिता सम्भ्रान्त व कुलीन थे। आपकी माता लिटिसिया रेमोलिनी बड़ी सुन्दरी थी, वे ही बुद्धिमती भी थी। न गम्भीरतामें उनसे कोई भी हीन न थे।

आप अपने पिताके द्वितीय पुत्र थे। आपके चार भाई और तीन बहन थी। किन्तु बचपनसे ही आप बड़े भाईके ऊपर अपना प्रभुत्व जमाने लगे थे।

ये बचपनमें पिताकी गोद पर बैठ कर नेपोलियन कर्सिकावासियोंके वीरत्वकी कहानी सुना करते थे। फरासीसियोंके साथ युद्धमें पिताओंने जैसा अविचलित साहस, अदम्य उत्साह और अद्भुत वीरत्व दिखलाया था, उसे सुन कर बालक मोहित होते थे। पितामाताके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भागने और उनको कष्टदायक अवस्थाका परिचय सुन कर वे समझते थे, कि उस समय यदि वे विद्यमान रहते, तो कभी सम्भव नहीं था कि फरासीसी कर्सिकाको जीत सकते।

बचपनमें ही नेपोलियनको पितृवियोगदुःखका अनुभव करना पड़ा था। पीछे आपकी माता आपका तथा अन्यान्य सन्तानोंका यत्नपूर्वक लालनपालन और विद्याप्रदान करने लगी। बचपनमें आप बड़े नटखट और अभिमानी थे। माताके सिवा कोई भी आपको शासन नहीं कर सकते थे। वे भी जलपानको अपेक्षा मीठी मीठी बातों से नेपोलियनको सुपथ पर लानेकी चेष्टा करती थी। यहां तक कि लिटिसिया उनका अधिक आदर नहीं करती थी। पीछे नेपोलियनने भी स्वीकार किया था कि उनकी माताने उनकी चरित्रगठनको सुधारा था। आपको मातृभक्ति अति प्रबल थी।

फरासीसियोंने कर्सिका जीत कर यह नियम बनाया था, कि सम्भ्रान्त व कुलीन कुछ बालकोंको यहांसे फ्रान्स ले जा कर उन्हें सामरिक विद्याकी शिक्षा दी जायगी। कर्सिकाके शासनकर्त्ता काउण्ट मारबोफका बोनापार्ट-परिवारसे खास सम्बन्ध था। इसीसे दूसरे दूसरे बालकोंके साथ नेपोलियनको भी उन्होंने फ्रान्स भेजा था। उस समय आपकी उमर केवल दस वर्षकी थी। जिस समय आप माताके निकट बिदाई लेने गए, उस समय आप फूट फूट कर रोने लगे और बहुत व्याकुल हो उठे। फ्रान्समें पहुंच कर ब्रीन नामक स्थानके सामरिक विद्यालयमें आप भर्ती किये गये। उस विद्यालयमें फ्रान्सके उच्चवंशोद्भव भूस्वामी और धनियोंके लड़के पढ़ते थे। वे लोग निर्धनी बालककी पोशाक आदि देख कर उनकी ठट्ठे उड़ाने लगे। बचपनसे ही नेपोलियन निर्जनप्रिय और चिन्ताशील थे। अभी विद्या अर्जन कर इतिहासके पाठाभ्यास करने लगे। अभी

लड़कोंका साथ करना आप जरा भी पसन्द नहीं करते थे और न उनकी तरह वृथा समय नष्ट करना ही चाहते थे। विलासिताके आप कट्टर दुश्मन थे। यही कारण था कि विलासप्रिय धनी सन्तानोंको आप नीच निगाहसे देखते थे। एकाग्रचित्तसे पाठाभ्यास करके आप सर्वदा परीक्षामें सर्वोच्चस्थान पाते थे। परीक्षाका साफल्य देख कर धनी-सन्तान आपकी खूब खातिर करने लगी और जरूरत पड़ने पर आपको अपना दलपति भी बनाती थी। नेपोलियन उन्हें साथ करके बर्फका किला बनाते और बर्फकी गोलागोली करके दुर्ग-रक्षा और आक्रमण-शिक्षा करते थे। विज्ञान, इतिहास और अङ्कशास्त्र आपके प्रिय-पाठ्य थे। दर्शन, न्याय आदि तर्क प्रधान शास्त्र पर इनकी उतनी रुचि न थी। चरितपाठ और होमरके काव्यमें इनका प्रगाढ़ अनुराग था। जर्मन भाषा सीखनेमें इन्हें आनन्द नहीं मिलता था। आपकी हस्तलिपि अच्छी नहीं होती थी। १७७८ ई० तक ब्रीनके विद्यालयमें पढ़ कर आपने वृत्ति लाभ की। पीछे आप पारीके राजकीय विद्यालयमें भेजे गए। वहां केवल एक वर्ष तक शेष परीक्षामें प्रशंसाके साथ उत्तीर्ण हुए। बाद आप एक दल गोलन्दाज सेनाके लेफ्टिनेण्ट बनाये गए। सोलह वर्षके लड़केके लिये यह काम गौरवकी बात नहीं है।

नेपोलियन कुछ दिन तक सैन्यदलमें काम करके एक समय छुट्टी ले कर कर्सिका गए। माता और भ्राता-भगिनियोंके साथ मिल कर आपके आनन्दका पारावार न रहा। एक समय इन्होंने पितृसखा पेयलीके साथ मुलाकात की। पेयलीने नेपोलियनकी तीक्ष्णबुद्धि और अभिज्ञताका परिचय पा कर आग्रहपूर्वक उन्हें अपने मतमें लानेकी कोशिश की। किन्तु नेपोलियन यद्यपि पेयलीको भक्ति और सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे, तो भी उनकी सब बातोंमें इन्होंने साथ न दिया। छुट्टी पूरी हो जाने पर नेपोलियन पुनः सैन्यदलमें आ मिले। इस सेनादलको जब जहां पर रहनेका हुकुम मिलता था, तब इन्हें भी वहीं जाना पड़ता था। वे अन्यान्य सैनिककर्मचारियोंकी तरह वृथा आमोदमें समय नहीं बिताते थे। जहां जहां वे जाते, वहां वहांके अधिवासियोंसे मिल कर उनकी रीतिनीति और अवस्थाका विषय जाननेकी चेष्टा करते थे।

१७८९ ई०में फरासीसीदेशमें राष्ट्रविप्लव उपस्थित हुआ। फ्रान्सकी प्रजा प्रचलित शासननीतिके विरुद्ध अच्छी तरह डट गई। इस समय बोर्बों वंशधर फ्रान्समें राज्य करते थे। राजा १६वें लुई शान्तस्वभावके और प्रजाहितैषी थे। पन्द्रह वर्षसे ज्यादा वे राजसिंहासन पर बैठ चुके थे। उनकी चेष्टा और सहायतासे अमेरिकाका युक्तराज्य अंगरेजी अधीनताका त्याग कर स्वाधीन हो गया था। उनके पूर्ववर्त्ती राजाओंके अनेक व्ययसाध्य युद्धकार्यमें लगे रहनेके कारण राजकोष खाली होता आ रहा था।

१६वें लुईके राजत्वकालमें मन्त्रियोंके अटूट परिश्रम करने पर भी राजकोष पूरा न हो सका। अन्तमें सभा कर जनसाधारणके कर्त्तव्यनिर्णयकी व्यवस्था हुई। प्रजाने प्रचलित शासननीतिका परिवर्त्तन करना चाहा। उन्होंने देखा कि फरासीसी श्रमजीवियोंके अमानुषिक परिश्रम करने पर भी उनका पेट नहीं भरता—अधिकांश कर-भारसे पीड़ित है। फरासीसी जमींदार भी बहुत बुरी तरहसे प्रजाके साथ पेश आ रहे है। यह सब देख कर सहानुभूतिका सूत्र दिनों दिन छिन्न होने लगा। ऐसी हालतमें प्रजाकी विद्वेषरूपी अग्निमें धनी और भूस्वामियोंके भस्मीभूत होनेकी सम्भावना थी। उन्होंने राजाकी शरण ली। राजाने उन्हें समर्थन करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। राजा यदि प्रजाके मतानुसार चलते, तो सम्भव था कि कोई उपद्रव नहीं उठता। राजक्षमताकी कुछ लाघवता अवश्य होती। जातीय सभामें सर्वप्रधान राजनैतिक वक्ता मिराबों यदि जीवित रहते, तो निश्चय था कि राज-क्षमता विलुप्त न होती। उनकी मृत्यु होनेसे ही राजपक्ष नितान्त दुर्बल हो गया। राजाकी अपरिणाम-दर्शिताके शेषमें राजा, रानी दोनों ही अवमानित, निगृहीत और बन्दी हुए। फ्रान्सका राजनैतिक आकाश मेघाच्छन्न हो गया। यूरोपके अन्यान्य राजाओंने प्रजाशक्तिके विकाश पर प्रमाद समझा। अष्ट्रीयराज लुईके साले थे। उन्होंने प्रुशीय और सार्डिनीयाके राजाओंको अपने मतमें ला कर फ्रान्सके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। फरासीसी-

लोग भी लड़ाईकी तैयारियां करने लगी। अस्त्रीय और प्रुसीय सेना पराजित हो कर भी दो ग्यारह हो गई। फरासीसियोंको जब मालूम हुआ कि उनके राजा भाग कर विदेशके शत्रुओंसे साथ योग देनेको जा रहे हैं, तब उन्होंने राजा रानी दोनोंको देशके शत्रु समझ कर उन्हें फांसी दे दी। तदनन्तर फ्रान्समें साधारणतन्त्र स्थापित हुआ। इधर यूरोपीय राजगण युद्धका आयोजन करने लगे। चारों ओरसे फ्रान्स आक्रान्त हुआ। देश भरमें अराजकता फैल गई। कितने राजनैतिक समस्ता के कामसे उपस्तव हो गई और छोटे छोटे दलोंमें विभक्त हो कर आपसमें विरुद्धाचरण करने लगी। कितने प्रदेशमें भिन्न आयोजनसे व्यक्ति अधिकारके कार्यसे पक्षपुर भेजे जाने लगे। रक्तकी धारा बह निकली।

फ्रान्सके दक्षिण टूलन। ... राजाव था कर कर्सिका मानियोंने स्वदेशको ... आधीन सेनामें समर्पण करो। पेयको घिरनेके उनके अधिनायक हुए। नेपोलियन इस समय जातीय सैन्यके अधिनायकरूपमें अधिकारी थे। पेयली ने उन्हें अपने दलमें ला कर अंगरेजोंके साथ कर्सिकाको समर्पण करना चाहा। किन्तु नेपोलियन इस पर राजी न हुए। फ्रान्सके साथ कर्सिकाका अधिकतर पक्षपात सम्बन्ध देख कर उन्होंने पेयलीके मतका खण्डन किया। इसीसे पेयली उनके जानीदुश्मन हो गये। पेयलीकी उत्तेजनासे कर्सिकाके लोगोंने नेपोलियनका घर जला डाला। नाना विपदोंको झेलते हुए वे माता और भ्राता भगिनियोंके साथ फ्रान्समें भग आए और मार्सेल्स नगरमें रहने लगे। तभीसे परिवार प्रतिपालनका कुल भार उन्हींके ऊपर रहा। यहां नौकरीकी तलाश करने पर उन्हें गोलन्दाज सैन्यके कप्तानका पद प्राप्त हुआ। कुछ समय बाद आप टूलोंमें घेरा डालनेके लिए भेजे गये। टूलो फ्रान्सका समुद्रोपकूलवर्ती एक नगर है। यहांके राजपक्षीय अधिवासियोंने नगरको अंगरेजोंके हाथ सुपुर्द कर दिया था। साधारणतन्त्रके पक्षने अनेक चेष्टा करने पर भी वह काम साध न सका। पीछे नेपोलियनने गोलन्दाजसेनाके अधिनायक रूपमें आ कर निज युद्धकौशल द्वारा नगरको जीत लिया और अंगरेजोंको वहांसे भागना पड़ा। इसी काम पर अंगरेजोंके साथ नेपोलियनकी पहली मुठभेड़ हुई थी। इस काममें नेपोलियनकी पदोन्नति हुई और वे अस्त्रीयसेनाके विरुद्ध ... तके तमदेयमें भेजे गये। वहां भी उनके परामर्शानुसार कार्य करके फरासी सेनाने विजय पाई। इस समय फ्रान्स गवर्मेण्टको नेपोलियनके ऊपर कुछ सन्देह हुआ और वे पदच्युत किए गए। दो वर्ष बाद नेपोलियन मुक्त तो हुए पर फिरसे नौकरी न मिली। इस कारण वे राजधानीको चल दिए। वहां अर्थके अभावसे इन्हें विविध कष्ट उठाने पड़े। यहां तक कि आत्महत्या द्वारा इससे परित्राणका भी संकल्प कर लिया था। किन्तु उनके मित्र डिमार्टिनकी यथासमयकी सहायतासे उनकी जान खतरेसे बच गई। किसी समय इन्होंने तुरुष्क जा कर सुलतानके अधीन कार्य करनेकी इच्छा प्रकट की थी। जो कुछ हो, शीघ्र ही इनके विपदका अवसान हुआ।

फरासीसियोंकी जातीय समिति १७९५ ई० तक शासनकार्य चला कर ... विरामभाजन हुई। पेरिसनगरके जनसाधारण उसके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेमें उद्यत हुए। इस विपदके समय उस समितिने नेपोलियनको राजनीतिक सैन्योंका सहकारी सेनापति बनाया। नाममात्रके सहकारी होने पर भी सेनाका कुल कार्यभार नेपोलियनके हाथ था। वे आठ हजार सेना ले कर विद्रोहदमनमें समर्थ हुए थे। कृतज्ञताके चिह्नस्वरूप जातीय समितिने आपको सेनापतिका पद प्रदान किया।

इस समय जातीयसमितिने पांच व्यक्तियोंके हाथ शासनकर्ता होके शान्ति व्यवस्थापन और कार्य परिदर्शनका भार दिया। पांचों शासनकर्ता डिरेक्टर नामसे प्रसिद्ध हुए। इनमेंसे बारास नामक डिरेक्टर नेपोलियनके बन्धु और पृष्ठपोषक थे। उन्हींके बलसे नेपोलियन इटलीकी फरासी सेनाके प्रधान सेनापति बन कर वहां गए। इसी समय आपका प्रथम विवाहकार्य सम्पन्न हुआ। जोसेफाइन नामक एक सम्भ्रान्त विधवा महिलाका पाणिग्रहण कर आपने अपनेको कृतार्थ समझा। उन्होंने इससे कुछ वर्ष पहले नेपोलियनको उपयुक्त की। वे बड़ी सुन्दरी थीं। वैसी ही सर्वगुणसम्पन्ना और विनीतस्वभावा होनेके कारण उन्होंने नेपोलियनका मन हर लिया था। जोसेफाइनके प्रति आपका आन्तरिक अनुराग हो गया

था। जोसेफाइन भी बोरंपवरको प्राणसे बढ़ कर चाहती थीं। उनके एक पुत्र और एक कन्या थी जिन्हें नेपोलियन अपनी सन्तानकी तरह मानते थे। ऐसी स्त्रीके साथ नेपोलियन अपना अधिक दिन बिता न सके। शीघ्र ही उन्हें अपनी नौकरी पर जाना पड़ा।

इस समय इटलीसीमान्त पर ४५ हजार फरासी योद्धाएं दुरवस्थामें प्राप्त थे। शत्रुसे बार बार पराजित हो कर वे बिलकुल भग्नोत्साह हो पड़े थे। उनके परिधेय वस्त्र छिन्न और पदतल पादुकाविहीन हो गए थे। कुछ मास तक वेतन नहीं मिलनेके कारण खानेकी भी विशेष तकलीफ थी। नेपोलियनने वहां पहुंचते ही उन्हें उत्साहित किया और इटलीमें ले जा कर उनके कुल अभाव दूर किये जायंगे, ऐसी आशा दी। अल्पवयस्क सेनापतिके उत्साहवाक्यसे उत्तेजित हो फरासी सेना आल्प्स पर्वत पार कर शस्यपूर्ण इटलीदेशमें पहुंची और बहुसंख्यक शत्रुसेनाको क्रमागत कई एक युद्धोंमें परास्त किया। सार्डिनियाराज नेपोलियनके साथ सन्धि करनेको वाध्य हुए। इसके बाद अष्ट्रीय सेना आक्रान्त और परास्त हुई। किन्तु हारने पर भी उन्होंने हार स्वीकार न की। युद्धविशारद सेनापतियोंके अधीन अष्ट्रीय-सम्राट् अनवरत सैन्यदल भेजने लगे। नेपोलियनने भी क्रमशः उन्हें लोडी, आर्कोला, रिभोली और कास्टिलियन आदि स्थानों पर परास्त किया और विनष्ट कर डाला। सारा लम्बार्डि-प्रदेश फरासीसियोंके अधिकारमें आया और वहां साधारणतन्त्र प्रतिष्ठित किया गया। अष्ट्रीय सम्राट्के उरमसेर, आलभिन्जी, अभरी आदि समरकुशल सेनापतियोंके बार बार परास्त होने पर भी वे सन्धिस्थापनमें अग्रसर न हुए। नेपोलियनने इटलीसे अपनी सेनाका अभाव दूर कर फ्रान्समें प्रचुर अर्थ, मूल्यवान् चित्र आदि भेजे थे। अभी अन्यान्य स्थानोंकी फरासीसेनाकी सहायताके लिये भी कुछ रकम भेजी गई। इसके अनन्तर नेपोलियन अष्ट्रिया पर चढ़ाई करनेका आयोजन करने लगे। अष्ट्रीय-सेनापति राजपुत्र चार्ल्स उन्हें रोक न सके। नेपोलियनके कुछ दूर आगे बढ़ने पर अष्ट्रीय सम्राट्ने उनसे सन्धि करना चाहा। कम्पोफर्मिओ नामक स्थान पर सन्धि हुई। फरासीसियोंको उत्तर इटलीका भाग सौंपा गया।

युद्धमें विजय पा कर नेपोलियन राजधानीको लौटे। देशके लोगोंने सहस्र कण्ठसे उनकी प्रशंसा की। समस्त यूरोपकी निगाह नेपोलियनको ओर आकृष्ट हुई। अभी सब कोई नेपोलियनको देखनेके लिये तथा उनके परिचित होनेके लिये उत्सुक हुए। इस समय नेपोलियनको इङ्गलैण्ड पर चढ़ाई करनेका आदेश मिला। किन्तु इङ्गलैण्ड पर आक्रमण करना फरासीसियोंकी आन्तरिक इच्छा न थी। अतः नेपोलियन मिस्र पर चढ़ाई करनेके लिये भेजे गये। १७९८ ई०की १९वीं मईको टूलोंके बन्दरसे ४० हजार सेनाके साथ ले नेपोलियनने मिस्रकी ओर यात्रा कर दी। कितने विद्वान्, पुरातत्त्वज्ञ और वैज्ञानिक व्यक्ति भी उनके साथ हो लिये। राहमें माल्टा जीत कर नेपोलियन मिस्रके उपकूलमें पहुंचे।

अंग्रेजोंके जंगी जहाज उनके अनुसन्धानमें इधर उधर घूम रहे थे। उन्होंने फरासीजंगी जहाजोंको राहमें पा कर उन पर आक्रमण किया और कितनेको नष्ट भ्रष्ट कर डाला। इसी बीच नेपोलियन मिस्रको जीतनेके लिये दलबलके साथ अग्रसर हुए। उस समय मिस्र नाममात्र तुरुष्कके सुलतानके अधीन रहने पर भी माम्लूक लोग वहां राज्य कर रहे थे। नेपोलियनने कई एक युद्धोंमें उन्हें परास्त किया और मिस्रको अधिकार भुक्त कर लिया। भारतवर्ष पर आक्रमण करना नेपोलियनकी एकान्त इच्छा थी। इसीसे टीपू सुलतानके साथ उन्होंने दूत भेज कर सन्धि कर ली। यदि एक बार वे भारतवर्ष पर आ सकते, तो अंग्रेजवणिकोंको विपन्न कर डालते, इसमें सन्देह नहीं। सिख और महाराष्ट्रोंके साथ मित्रता कर वे नूतन साम्राज्यस्थापनमें कृतकार्य हो सकते थे, किन्तु स्थल पथ हो कर तुरुष्ककी ओर अग्रसर होते समय एकर नामक स्थानको वे जीत न सके। अंग्रेजोंकी सहायतासे तुर्की सेनाने नेपोलियनकी अभिलाषा धूलमें मिला दी। वे हताश हो मिस्रको लौट आए। इधर अंग्रेजी सहायतासे प्रकाण्ड एक दल तुर्की सेनाने मिस्र पर आक्रमण कर दिया। किन्तु नेपोलियनके

पिरामिडके [illegible] ये बहुत कम मारे गए। इस समय उन्हें खबर मिली, कि फ्रान्स चारों ओरसे आक्रान्त हुआ है। अष्ट्रीय सम्राट्ने सन्धि तोड़ कर इटली पर आक्रमण कर उसे जीत लिया है। अन्यान्य राजाओंने सुयोग पा कर फ्रान्सके विरुद्ध सेना भेजी है। फरासीसी कई एक युद्धोंमें पराजित हो चुके हैं। फिर क्या था। वीर नेपोलियनने क्रोधकी अग्नि रोक नहीं। ये चुपचाप भी स्थिर रह न सके। मिस्रशासनकी सुव्यवस्था कर और वहाँके सेनापति क्लेबरको सेनापति बना नेपोलियन कुछ अनुचरों और सेनाओंके साथ एक छोटे पोत पर आरोहण हुए और अंग्रेजोंकी दृष्टि बचाते हुए आगे बढ़े। १७९९ ई०की २१वीं अगस्तको उन्होंने अलेक्जान्द्रियासे यात्रा की और [illegible] दिन समुद्रमें रह कर ये फ्रान्सके उपकूलमें पहुंचे। राहमें अंग्रेजी जहाजोंने उनके क्षुद्र पोतका पीछा किया था। लेकिन ईश्वरकी कृपासे नेपोलियन कुशल पूर्वक फरान्समें पहुंच गए।

इस समय फरासीसी लोग डिरेक्टर-कर्माधिकारी शासनकर्त्ताओं पर बहुत बिगड़े थे। स्वार्थलोलुप डिरेक्टर देशकी भलाईकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते थे। अतः शासनप्रणालीमें हेर फेर करनेकी आवश्यकता हुई थी। देशके सभी मनुष्य नेपोलियनके आगमन पर विशेष उल्लसित हुए। सब कोई उनकी सम्वर्द्धना करने लगे, किन्तु कोई कोई डिरेक्टर उनके प्रतिकूल आचरणमें प्रवृत्त हुए। ये जो सबोंके प्रिय हो गये हैं यह कुछ स्वार्थपर डिरेक्टरोंको अच्छा न लगा। यहां तक कि ये उन्हें राज्यापहारी समझ कर पकड़ने और बन्दी करनेको भी तैयार हो गए। इसका फल यह हुआ कि नेपोलियन डिरेक्टरोंकी क्षमताका लोप कर आप ही सर्वेसर्वा हो गए। बिना किसी खूनखराबीके उन्होंने शासनकी क्षमता अपने हाथमें कर ली थी। आप प्रधान शासक (Consul) बने और अन्य दो व्यक्ति उनके सहकारी हुए। नूतन शासनप्रणाली चल पड़ी। इस रीतिसे नेपोलियनकी कार्यप्रणालीका [illegible]।

फ्रान्सके सर्वमयकर्त्ता हो नेपोलियनने प्रथमतः युरोपीय राजाओंके साथ सन्धिस्थापनकी चेष्टा की। अष्ट्रीय सम्राट्के भी [illegible] नेपोलियनने आप सन्धि करनेके लिए एक पत्र लिखा। लेकिन उन्होंने अनिच्छा प्रकट की। सन्धिकी आशा न देख नेपोलियन युद्धकी तैयारी करने लगे। किन्तु उस समय फ्रान्सकी आभ्यन्तरिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी, कि वे बहुत जल्दी चालीस हजार सेना जुटा सके थे। इधर अष्ट्रीय सेनाने इटलीको जीत कर फरासी सेनापति मेसेनाको जिनोया नगरमें अवरुद्ध कर रखा था। नेपोलियनकी सेना महादुरारोह आल्प्स पर्वतके उच्च शिखरको पार कर अष्ट्रीय सेनाके पश्चाद्भागमें पहुंची। उन्होंने शत्रुके आगमनकी आशङ्का न की थी इसीसे वे सहसा उनकी गति रोक न सके। अन्तमें मरेंगो नामक स्थान पर दोनों सेनामें मुठभेड़ हुई। अष्ट्रीय सेनापति मेलसने आठ हजार सेना ले फरासीसियों पर आक्रमण कर उन्हें छिन्न भिन्न कर डाला। उस समय फरासीसी सेनाकी संख्या कुल आठ हजार थी। नेपोलियन यद्यपि स्वयं युद्धक्षेत्रमें उपस्थित थे, तो भी वे मेलसकी गति रोक न सके। दोनों पक्षमें घमसान युद्ध चलने लगा। फरासीसी सेनाने युद्धमें पीठ दिखलाई। मेलसने अपनेको युद्धमें जयी समझ यूरोपीय राजाओंको पत्र लिखा कि नेपोलियनको युद्धमें परास्त कर दिया। किन्तु कुछ देर बाद ही फ्रान्ससे एक दल सेना पहुंची। इस बार मेलस पराजित हुए और समस्त द्रव्यों शत्रुके हाथ अर्पण कर, आप प्राण ले कर [illegible] भागे। नेपोलियन भी लड़ाई जीत कर राजधानीको लौटे। अष्ट्रीय सम्राट् पराजित होने पर भी सहसा सन्धि करनेको तैयार न हुए। केवल कुछ काल तक युद्ध बन्द रहा। बाद फिरसे दोनोंकी बलपरीक्षा हुई। इस बार अष्ट्रीय सम्राट्ने पराजित हो सन्धिके लिए प्रार्थना की और कुछ प्रदेश फरासीसियोंको देनेका वचन दिया।

अङ्गरेज [illegible] देखा कि उनके मित्रराज अष्ट्रिय-सम्राट् फरासीसियोंसे सन्धिसूत्रमें आबद्ध हो गए हैं, तब उन्होंने भी [illegible] नेपोलियनके साथ सन्धि करनेकी इच्छा प्रकट की। अङ्गरेज-दूत लार्ड कार्नवालिसकी चेष्टासे सन्धि स्थापित हुई। यही एमिन्सकी सन्धि कहलाती है। १८०२ ई०की २०वीं मार्चको यह सन्धिपत्र स्वाक्षरित

हुआ था। इस सन्धि द्वारा अङ्गरेजोंने सिंहल छोड़ कर युद्धलब्ध सभी स्थान फरासी और ओलन्दाजोंको दे दिए थे। इसके बाद यूरोपीय अन्यान्य राजाओंके साथ सन्धि स्थापित हुई। इतने दिनों तक यूरोपमें जो महासमरकी आग धधक रही थी, वह नेपोलियनकी चेष्टासे बुझ गई। फरासीसियोंने कृतज्ञताके चिह्नस्वरूप उन्हें यावज्जीवन कान्सल बना कर उत्तराधिकारी निर्देश करनेकी क्षमता प्रदान की।

इस समय फ्रान्सके भूतपूर्व राजवंशीय राजपुत्र लुईने फ्रान्सके सिंहासनको फिरसे पानेकी आशासे नेपोलियनको पत्र लिखा था। जब वे स्वराज्यमें पुनः प्रतिष्ठित हुए, तब उन्होंने नेपोलियनको पुरस्कारस्वरूप सर्वोच्च पद देनेकी इच्छा की थी, लेकिन कई एक कारणोंसे वे अपना अभिलाष पूरा कर न सके। इन्होंने लुईको जो राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया, इस पर फ्रान्सके लोग मन ही मन बहुत बिगड़े और नेपोलियनकी हत्या करनेका षड़यन्त्र करने लगे। एक बार वे गुप्तभावसे नेपोलियनके अश्वयानको राहमें बारूदसे उड़ा देने गए थे, लेकिन कृतकार्य न हुए। नेपोलियनने दया दिखला कर देशसे ताड़ित जिन सब फरासीसियोंको स्वदेश लौटनेका अधिकार दिया था, आज वे ही लोग अवसर पा कर उनके प्राणनाशकी चेष्टा करने लगे।

एमिन्सकी सन्धिके बाद अंगरेज लोग वाणिज्य-विस्तार करनेका रास्ता ढूंढ़ने लगे। लेकिन नेपोलियनने फ्रान्समें व्यापार करनेकी उन्हें अनुमति न दी, क्योंकि ऐसा करनेसे फरासीसियोंके शिल्पवाणिज्यमें धक्का लग सकता था। इस पर अङ्गरेज बहुत असन्तुष्ट हुए और उन्होंने भूमध्यसागरका माल्टा नामक क्षुद्र द्वीप ले कर सन्धि तोड़ दी। पूर्वोक्त सन्धि द्वारा अंगरेजोंने माल्टा छोड़ देना चाहा था। लेकिन जितना ही दिन गत होने लगा, उतनी ही उक्त द्वीप छोड़नेकी उन्हें ममता होने लगी। नेपोलियन सन्धि-शर्तके अनुसार काम करनेके लिये अंगरेजी दूतको धमकाने लगे। अन्तमें १८०३ ई०के मई मासमें अंगरेजोंके साथ नेपोलियनका विवाद छिड़ गया। एमिन्सकी सन्धिके केवल एक वर्ष सोलह दिनके बाद ही दोनों पक्ष युद्धकी तैयारी करने लगे। युद्ध-घोषणा करनेके पहले अंगरेजी जंगी जहाजने फरासीके कितने ही वाणिज्यपोतोंको रोक रखा। नेपोलियनने भी इसका बदला लेनेके लिये फ्रान्स और तदधिकृत देशोंमें जो सब अंगरेज मौजूद थे उन्हें कैद कर लिया। बाद इङ्गलैण्डेश्वरके पैतृकराज्य हैनोभरको फरासियोंने जीत लिया। किन्तु जिससे यह महा समरानल शीघ्र ही बुझ जाय इसके लिये नेपोलियन खूब कोशिश करने लगे। अंगरेज लोग जलयुद्धमें प्रबल हैं, उनकी अर्थ-सहायतासे यूरोपीय सभी राजा फ्रान्सके शत्रु हो सकते हैं यह नेपोलियन अच्छी तरह जानते थे। अंगरेज-जातिको विशेष विपन्न करनेके लिये उनकी उत्कट इच्छा हो गई। उन्होंने इङ्गलैण्ड पर चढ़ाई करनेका सङ्कल्प कर लिया। किन्तु फरासी स्थलयुद्धमें प्रबल होने पर भी जलयुद्धमें अंगरेजोंके समान न थे। इस कारण वे जंगी जहाज बनानेका उद्योग करने लगे। फ्रान्सके सभी लोगोंने इस कार्यमें असाधारण उत्साह दिखलाया। बहुतसे लोगोंने स्वतःप्रवृत्त हो कर तन मन धनसे सहायता दी। फ्रान्सके समुद्रोपकूलमें छोटे बड़े सभी तरहके जंगी जहाज बनने लगे। बुलोयन आदि स्थानोंमें बहुसंख्यक सेना एकत्रित हुई। यह भारी युद्धसज्जा देख कर अंगरेज लोग डर गए। इस समय विलियम पिट इङ्गलैण्डके प्रधान मन्त्री थे। वे बुद्धिकौशलसे नेपोलियनको पराजित करनेकी चेष्टा करने लगे। उनके राजनीति-कौशलसे रूसिया, अष्ट्रिया और नेपल्स आदि स्थानोंके राजगण फ्रान्स पर आक्रमण करनेको सहमत हुए। पिट साहबने उन्हें युद्धके सभी खर्च देनेके वचन दिये। इंगलैण्डकी अर्थ-सहायतासे अष्ट्रीय और रूससम्राट् सैन्य संग्रह करने लगे। यह खबर नेपोलियनको लग गई, किन्तु वे अच्छी तरह जानते थे कि इङ्गलैण्ड पर चढ़ाई कर देनेसे ही ये सब भावी उपद्रव दूर हो जायंगे। इस कारण वे उसीकी कोशिश करने लगे। इधर नेपोलियनको गुप्तभावसे मारनेके लिये बोर्बोणवंशीय लोग मौका ढूंढ़ रहे थे। दो एक सेनापतिने भी इस चक्रान्तमें साथ दिया। एक राजपुत्र फ्रान्सके सीमान्तभागमें रह कर फ्रान्स पर आक्रमण करनेके अवसरकी खोजमें थे। किन्तु दैवक्रमसे फरासी

पुलिसको इसकी खबर लग गई। उनके सबके सब पकड़े गये। एक कैदीने अपना अपराध स्वीकार किया और यह भी कहा कि उन्हें अङ्गरेजोंकी ओरसे अर्थसहायता मिली है। इनमेंसे किसी किसीने जेलखानेमें आत्महत्या कर डाली और कुछ अदालतके हाथसे कसूर निकले। बोर्बोनवंशका राजपुत्र भी पकड़े गये। सामरिक विचारालयमें उनका विचार हुआ और प्राणदण्डकी आज्ञा मिली। नेपोलियनको यदि समय पर यह समाचार मिलता, तो सम्भव था कि वे उन्हें प्राणदण्डकी आज्ञासे मुक्त कर देते, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसके वास्ते कोई कोई नेपोलियनको दोषी बनाते हैं। जो कुछ हो फरासीसी लोग अच्छी तरह समझ गये थे, कि नेपोलियनका जीवन कैसा मूल्यवान है और गुप्तघातकके हाथसे उनके प्राण जानेकी कैसी सम्भावना है। इस कारण लोग ने नेपोलियनको फ्रान्सके सम्राट् पद पर अभिषिक्त किया। १८०४ ई०के नवम्बर मासमें उनकी अभिषेकक्रिया सम्पन्न हुई थी। रोमके पोपने आ कर स्वयं उन्हें सम्राट्के पद पर अभिषिक्त किया था। पहले कभी भी किसी राजाके अभिषेक कार्यमें पोप नहीं आये थे।

सम्राट् पद पर बैठ कर नेपोलियनने इङ्गलैण्डसे पुनः सन्धि करनेकी चेष्टा की। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था, कि समरानल एक बार प्रज्वलित होनेसे वह सहजमें बुझनेको नहीं। इस कारण सन्धिके लिये प्रार्थना करते हुए उन्होंने इङ्गलैण्डके राजको एक पत्र लिखा, लेकिन अङ्गरेज मन्त्रीने सन्धि करनेमें अनिच्छा प्रकट की। फिर क्या था। नेपोलियन कब चूकनेवाले थे तुरत ही युद्धकी तैयारी करने लगे। उन्होंने पहलेसे ही समुद्रके किनारे एक लाख साठ हजार सेना और बहुत युद्धोपकरण संग्रह कर रखे थे। सैन्य पार करनेको कितनी नावें भी प्रस्तुत हुई थीं। लेकिन बिना एक बेड़ा रणपोतके उन्होंने यात्रा करना अच्छा न समझा। उनके नौसेनापति एक बेड़ा रणपोत ले कर अमेरिका गये हुए थे। वहां भी अंगरेजी रणपोतने उनका पीछा किया था। वे लौट कर स्पेनके उपकूलमें उपस्थित हुए और स्पेनके एक बेड़ा जहाजके साथ अङ्गरेजी बेड़ेको पराजित किया। किन्तु कितने रणपोतोंके सामान्यरूपमें क्षतिग्रस्त हो जानेके कारण, वे बुलोनमें पहुंच न सके। नेपोलियन अधीरभावसे नौसेनापतिके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सेनापतिके समय पर नहीं पहुंचनेके कारण वे बहुत असन्तुष्ट हुए। इसी सेनापतिके दोषसे अन्तमें फरासी रणपोत विध्वस्त हुआ था। नेपोलियनने इङ्गलैण्ड-आक्रमणका जो सङ्कल्प किया था उसे त्याग कर अष्ट्रियाकी ओर यात्रा कर दी। उनके नौसेनापति यदि समय पर पहुंच जाते, तो इङ्गलैण्ड उनके पञ्जेमें आ जाता, कह नहीं सकते। भाग्यवशसे इङ्गलैण्डने रक्षा पाई। इधर अष्ट्रियासेनाने बावेरिया मित्रराज्य पर आक्रमण कर उलम नामक स्थानको जीत लिया। रूस सेना उनका साथ देनेके लिये बहुत वेगसे आ रही थी। किन्तु तुरत समझ नेपोलियनने ससैन्य समुद्रीतटको छोड़ दिया और बहुत तेजीसे जा कर उलमकी अष्ट्रियासेनाको चारों ओरसे घेर लिया। अष्ट्रियासैन्य पराजित और बन्दी हुई। पीछे नेपोलियनने अष्ट्रियाकी राजधानी भियेनाकी ओर कदम बढ़ाया। भियेना भी बातकी बातमें अधिकृत हुआ। उस समय रूस सेना पहुंच गई थी। अष्टर्लिट्ज नामक स्थानमें दोनोंकी मुठभेड़ हुई। अन्तमें अष्ट्रिय और रूससैन्य पराजित तथा विनष्ट हुई। अष्ट्रिय सम्राट्ने कोई दूसरा रास्ता न देख सन्धिको प्रार्थना की और स्वयं आ कर नेपोलियनसे मिले। इस समय नेपोलियन इस सम्राट्को हमेशाके लिये कैद कर सकते थे, लेकिन ऐसा न कर उन्होंने उदारता दिखाई और उनके साथ सन्धि कर ली। तदनन्तर वे स्वदेश लौटे। फ्रान्स पर जो ये सब विपद् आ पड़ी थीं वे केवल इङ्गलैण्डके प्रधान मन्त्रीके बुद्धि कौशलसे ही। यूरोपीय सभी राजगण फ्रान्सके विरुद्ध उठ खड़े थे। अभी इन सभोंकी पराजय हुई और मन्त्रीने लज्जा तथा चिन्तासे प्राण त्याग किया। पिटकी मृत्युके बाद चार्ल्स जेम्स फाक्स साहबने फिरसे मन्त्रीका पद पाया। नेपोलियनके साथ सन्धि करनेकी उनकी आन्तरिक इच्छा थी, लेकिन थोड़े ही दिनोंके अन्दर उनकी मृत्यु हो गई जिससे सन्धि न हो सकी।

राजधानी लौट कर नेपोलियन देशहितकर कार्यमें

लग गए, नाना स्थानों में सड़क, पुल और नहर तैयार कराने लगे। पारीशहरके निम्नभागमें जो सब पयःप्रणाली थीं उनका संस्कार किया गया। उस समय फरासी भारतीय चीनीका व्यवहार करते थे, किन्तु अंग्रेजोंके साथ युद्ध उपस्थित हो जानेसे पर्याप्त चीनीका मिलना बन्द हो गया। इस पर नेपोलियनने बिट्‌-मूलसे चीनी तैयार करनेका उपाय आविष्कृत किया। तभीसे फ्रान्स आदि देशोंमें बिट्‌चीनी प्रचलित है। इस प्रकार चारों ओर देशहितकर कार्य करके नेपोलियन सभोंके धन्यवादके पात्र हुए। इसके पहले ही उन्होंने 'कोडनेपोलियन' नामक व्यवस्थापुस्तकको विधिबद्ध कर उसका प्रचार किया था। फ्रान्समें रोमनकैथलिक धर्म विप्लवके समय अन्तर्हित हो गया था। नेपोलियनने पुनः उसकी स्थापना की। वे वंशमर्यादाका आदर न कर गुणानुसार सबोंको राजकार्यमें नियुक्त करते और गुणी तथा विद्वान् लोगोंका सम्मान भी करते थे। विद्वत्‌समाजके उन्नतिसाधनमें खर्च करनेमें वे जरा भी हिचकते न थे। फ्रान्समें विद्यालयकी स्थापना कर तथा बालिका-विद्यालयमें उत्साह दे कर आप वहां नवयुगका आविर्भाव कर गए हैं। उनकी धारणा थी, कि माता अच्छी होनेसे सन्तान भी अच्छी होती है। इस कारण बालिका जिससे आवश्यक गृहकर्म और सन्तानपालनादि भलीभांति सीख लें, इसके लिए वे विशेष यत्नवान् थे। अपने शिक्षकके उपस्थित होने पर वे उन्हें आशातीत भेंट दे कर विदा करते थे। अपनी दुरवस्थाके समय इन्होंने जिन सब सम्भ्रान्तोंसे सहायता पाई थी उन्हें अब सहायता देनेमें विशेष आह्लादित होते थे।

इसी समय नेपोलियनने बमेरिया और उरटेम्बर्गके अधिपतियोंको राजाकी उपाधि प्रदान की। यह उपाधि आज भी वे भोग कर रहे हैं। पीछे नेप्लसराजको सिंहासनच्युत करके उस पद पर इन्होंने अपने बड़े भाई जोसेफको प्रतिष्ठित किया। उक्त राजाको इन्होंने तीन बार क्षमा करके राज्य छोड़ दिया था, किन्तु चौथी बार अङ्गरेजोंकी उत्तेजनासे नेप्लसराजने फ्रान्सके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी थी और जब नेपोलियन अष्ट्रियामें युद्ध करने गए थे, तब उन्होंने इटलीके फरासियों पर धावा बोल दिया था। अतः उन्हें अब पद पर रखनेसे फ्रान्सके पक्षमें अनिष्ट होगा, यह देख नेपोलियनने उन्हें पदच्युत कर दिया। नेपरस्-वासियोंने आनन्दके साथ जोसेफकी अभ्यर्थना की थी।

१८०६ ई०के मध्यभागमें प्रूसियाके साथ नेपोलियनका युद्ध अपरिहार्य हो उठा। पहली बारके अष्ट्रीय-युद्धके समयमें प्रूसिया रूसका साथ देता था, किन्तु अष्टर्लिजमें नेपोलियनने उन्हें परास्त किया, तब फिर युद्धमें अग्रसर होनेका उन्हें साहस न हुआ। अब रूसका उत्साह और सैन्य-साहाय्य पानेकी आशासे प्रूस युद्धके लिये प्रस्तुत हुआ। प्रूसियाधिपति फ्रेडरिक विलियम शान्तस्वभावके और विज्ञ राजा थे। शान्तिके पक्षपाती होने पर भी अभी उनका मत स्थिर रह न सका। उनकी स्त्री और राजपरिवारस्थ सभी भूस्वामी तथा सेनापतियोंके साथ एकमत हो कर उन्होंने युद्ध करना ही स्थिर कर लिया। नेपोलियन अष्ट्रिया जाते समय प्रूसियाधिकृत किसी स्थान हो कर जानेमें वाध्य हुए थे। इस कारण मीठी मीठी बातोंसे प्रूसियाधिपतिको इन्होंने खुश करनेकी चेष्टा भी की थी। उन्हें अपने पक्षमें रखना नेपोलियनकी एकान्त इच्छा थी। यही कारण था कि नेपोलियनने इङ्गलैण्डेश्वरका पैतृकराज्य हनोवर जीत कर उन्हें दे दिया था। अभी प्रूसवासियोंने नेपोलियनसे हालण्ड और इटलीको छोड़ देने कहा। किन्तु नेपोलियन राजी न हुए। फिर क्या था, दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। १८०६ ई०के सितम्बरमासमें फरासियोंने प्रूसियामें प्रवेश किया। दो एक छोटी छोटी लड़ाईके बाद जीना नामक स्थानमें पुनः दोनोंमें मुठभेड़ हो गई। कई घण्टों तक भीषण युद्ध होता रहा। पीछे प्रूसवासी पराजित हो कर भाग चले। उसी दिन प्रूसके राजाने ६२ हजार सेनाके साथ नेपोलियनके एक सेनापतिको औरस्तार्द नामक स्थानमें आक्रमण किया। किन्तु सेनापतिने सिर्फ २६ हजार सेनासे उन्हें परास्त किया था। पीछे क्रमशः प्रूससेना झुण्डके झुण्डमें आत्मसमर्पण करने लगी। फरासियोंने उनकी राजधानी बर्लिन पर अधिकार जमा लिया। प्रूसराज भग कर

इसकी शरणमें पहुंचे। नेपोलियनने शत्रु राज्य जीत कर भी शान्तिस्थापनकी कोशिश की और प्रुसराजको उनके राज्यका अधिकांश लौटा कर सन्धि करना चाहा, किन्तु रूससम्राट्को छोड़के वे सन्धि करनेको राजी न हुए। इस पर नेपोलियन बहुत बिगड़े और युद्धके सिवा और कोई दूसरा उपाय न देख रूसकी ओर अग्रसर हुए। रूसियोंके साथ इनकी कई एक छोटी छोटी लड़ाइयां हुईं। पीछे फ्रिडलैण्ड नामक स्थानमें जब रूससेना परास्त और विध्वस्त हुई, तब रूस सम्राट्ने कोई उपाय न देख सन्धिके लिये प्रार्थना की। नेपोलियनके साथ टिलसिट नामक स्थानमें उनकी भेंट हुई। नेपोलियनने उनकी खूब खातिर की और इस प्रकार दोनों बन्धुत्वसूत्रमें आबद्ध हुए। नेपोलियन दूसरे दूसरे राजाओंको प्रतिज्ञाभङ्ग करते देख उनके प्रति असन्तुष्ट हुए थे और रूससम्राट्को अपने पक्षमें लानेकी कोशिश करने लगे। नेपोलियनके व्यवहार और कार्यसे मुग्ध हो रूस-सम्राट् अलेकजेण्डरने प्रतिज्ञा की कि वे उनके चिरबन्धु होंगे।

पूर्व समयमें पोलैण्ड नामक एक स्वतन्त्र राज्य था, किन्तु रूसिया, अष्ट्रिया और प्रुसिया तीनों राज्योंने इसे बांट कर अपने अपने दखलमें कर लिया था। अभी प्रुसियाके अधीन जो चार भाग पड़े थे उन्हें नेपोलियन फिरसे स्वाधीन कर देनेमें इच्छुक हुए। सामन्तोंके अधिपतिको राजोपाधि दे कर उनको डिउकमें एक छोटा प्रदेश रख छोड़ा। प्रुसियाके एक दूसरा भाग ले कर इन्होंने वेष्टफेलिया नामक एक राज्य संगठन किया और अपने छोटे भाई जिरोमको वहांका राजा बनाया। इसके कुछ दिन पहले आपके एक और भाई हालैण्डके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए थे।

जब इसके साथ युद्ध चल रहा था, उस समय अष्ट्रियसम्राट् छिप कर फिरसे लड़ाईकी तैयारी कर रहे थे, किन्तु रूसके पराजित होनेसे, उन्होंने लड़ाईका उद्योग छोड़ दिया। अंग्रेज लोग जब किसीको युद्धमें उभाड़ देते थे, अर्थसाहाय्य करते थे और युद्धमें सामान भेजते थे। किन्तु युरोपीय शक्तिके पराजित होनेसे उनकी सभी आशाओं पर पानी फिर गया। वे फ्रान्सको द्वीपमें जलपथ हो कर किसीको वाणिज्य करने नहीं जाने देंगे, ऐसा अभिप्राय जब उन्होंने प्रकट किया, तब नेपोलियनने भी अपने कर्मचारियोंको हुक्म दिया कि मित्रराज्य तथा मित्रराज्यमें जहां अंग्रेजोंका वाणिज्य द्रव्य मिले उसे दखल कर लो। अतलान्तिक महासागरसे भूमध्यसागर तक अंग्रेजोंका पदार्पण जाना बन्द हो गया। रूससम्राट् और नेपोलियन दोनोंने आपसमें ऐसी प्रतिज्ञा की कि दोनों एक दूसरेके शत्रुको निज शत्रु मानेंगे।

इस समय यूरोपके मध्य क्षुद्र पोर्त्तुगालके सिवा अंग्रेजोंका और कोई मित्र न रहा। सभी नेपोलियनके वशीभूत हुए। विशेषतः रूससम्राट्के बन्धुत्वलाभसे नेपोलियन अभी अपनेको बलवान् समझने लगे। रूस सम्राट् अलेकजेण्डरने अंग्रेजोंको सन्धि करनेके लिए अनुरोध किया। किन्तु अंग्रेज लोग इस पर राजी न हुए और साथ साथ उन्होंने गर्वित भावसे उत्तर दिया। अन्तमें वे भी अंग्रेजोंके विरुद्ध लड़ाई करनेको प्रवृत्त हो गए। तदनन्तर पोर्त्तुगालराजको आयत्तमें लानेके लिए नेपोलियन कोशिश करने लगे। किन्तु नेपोलियन यदि शान्तस्वभावविशिष्ट प्रुसियापतिको अधिकांश राज्य छोड़ देते तो सम्भव था कि वे उनकी कृतज्ञता और चिरबन्धुत्व लाभमें समर्थ होते। अथवा जब प्रुसियाकी रानीने नेपोलियनके निकट जा कर केवल माग्डिबर्ग दुर्गके लिए उनसे प्रार्थना की थी उस समय यदि वे उनकी प्रार्थना पूरी करते, तो प्रुसपति उनके चिरबन्धु हो जाते, इसमें जरा भी सन्देह न था। किन्तु रानीको दुर्बल कारण बतला कर नेपोलियनने उदारता नहीं दिखलाई। प्रुसियापतिके मन ही मन नेपोलियनके प्रति विरक्त होनेका यही कारण था। इधर पोर्त्तुगालराजने नेपोलियनके कथनानुसार जब अंग्रेजोंका पक्ष छोड़ा तब इन्होंने उनके राज्य पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। १८०७ ई०के शेषमें यह घटना हुई थी।

इस समय स्पेनदेशीय राजपरिवारके मध्य गृह-विवादका सूत्रपात हुआ। राजा चार्ल्स राजकार्य की ओर ध्यान नहीं देते थे। रानीके प्रियपात्र ही राजकार्य चलाते थे। प्रधान मन्त्री अपने इच्छानुसार चला नहीं

अब उन्हें शान्तिसुख भोग करने नहीं दिये थे। युद्धके बाल्यसे ही कर अन्त तक लड़ाइयों को करवाते हुई तथा शोणितपात भी हुआ। देशहितकर कार्यमें ध्यान देनेका अवसर उन्हें नहीं मिला। फरासीसियोंके पेशामें तथा भिन्न जातियोंकी उन्नति-कार्यमें भी वे कुछ कर न न सके। यह सब सोच कर किसी यूरोपीय राजकन्याके साथ ब्याह कर अब मिलना उन्होंने स्थिर कर लिया। इनकी स्त्री जोसेफाइन अधिक सुखभागिनी थीं और नेपोलियन के औरससे उन्हें कोई सन्तान न थी। अतः नेपोलियनने किसी राजघरानेकी कन्यासे विवाह करना चाहा। किन्तु एक स्त्रीके रहते दूसरी स्त्रीसे विवाह करना इन लोगों में निषेध था। इस कारण जोसेफाइनको छोड़ देनेकी



नेपोलियन बोनापार्ट।

आवश्यकता हुई। नेपोलियनको बतला कर रहीं थे यह अपने स्वार्थके लिये नहीं, बल्कि फ्रान्सकी उन्नतिके लिये। फ्रान्स-हितके लिये इन्होंने अपनेको उत्सर्ग कर दिया था जोसेफाइनकी बात उनके सामने कुछ भी नहीं थी। इधर देशके लिये आत्मत्याग जैसा महा प्रशंसनीय है, उधर राजनीतिके लिये स्त्री त्याग वैसा ही दूषणीय होने पर भी आप फिरसे विवाह करनेको बाध्य हुए। फरासी सिनेट सभाने उनके इस कार्यका अनुमोदन किया। पोपके पार्लमेंने भी अपनी उदारता दिखला कर इसमें सम्मति दी। पीछे अष्ट्रीय सम्राट्कुमारी मेरी लुइसाके साथ नेपोलियनने १८१० ई०के मई मासमें विवाह किया। १८११ ई०के मार्च मासमें इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

इस समय नेपोलियन तथा फ्रान्सवासियोंके आनन्दका पारावार न रहा, चारों ओर शान्ति विराजने लगी।

इस समय नेपोलियनने सुना कि रूस-सम्राट् उनके मित्र हो कर भी अष्ट्रिया, प्रूसिया और स्वीडेनके साथ इङ्गलैण्डके वाणिज्यसम्बन्धमें नया प्रस्ताव कर रहे हैं। अपने राज्य हो कर अंग्रेजोंका वाणिज्यद्रव्य जाने न देंगे, ऐसी प्रतिज्ञा करने पर भी वे अंग्रेजोंको अपने राज्य हो कर वाणिज्यद्रव्य यूरोप जाने देते हैं। रूस-सम्राट् मित्रता छोड़ कर प्रतिकूलताचरण कर रहे हैं तथा अपनी पराजयका बदला लेनेका मौका ढूंढ रहे हैं। शान्तिरक्षाके प्रयासी हो कर नेपोलियनने रूस सम्राट्को अपने पक्षमें लानेकी विशेष चेष्टा की, लेकिन कोई फल न निकला। रूससम्राट्ने तुरुष्कके अन्तर्गत कई एक प्रदेशों पर अधिकार जमाना चाहा और नेपोलियन कभी भी पोलैण्डराज्यके पुनःसंस्थापनमें कोशिश न करेंगे, ऐसा उन्होंने प्रस्ताव किया। किन्तु यह प्रस्ताव नेपोलियनको अच्छा न लगा। अतः दोनोंमें फिर युद्ध छिड़ गया।

१८१२ ई०को १२वीं जूनको तीन लाख फरासी पदाति, साठ हजार अश्वारोही और बारह सौ कमान ले कर नेपोलियन रूस सीमान्त पर जा धमके। अष्ट्रीय और प्रूसीय सेना भी उनकी सहायताके लिये आगे बढ़ी। नेपोलियनने फिर एक बार सन्धि करनेकी चेष्टा की और रूस सम्राट्से मिलना चाहा, किन्तु वे कृतकार्य न हुए। इस समय नेपोलियन यदि पोलैण्डराज्यका पुनःसंस्थापन कर शान्त रह जाते, तो बहुत कुछ अच्छा होता; एक साधमी जातिको स्वाधीन करना होता, रूस-सम्राट्को यूरोपीय शक्तिपुञ्जसे अलग रखना होता और रूसयुद्धमें अजस्र शोणितपात करना न पड़ता। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, विधाताकी गतिको कोई रोक नहीं सकता। आखिरको फरासी सेनाने रूसमें प्रवेश किया। शत्रुगण पद पदमें पराजित होने लगे। बरोडिना नामक स्थानमें जो भीषण युद्ध हुआ उसमें रूसवासी पराजित हो कर भाग चले। नेपोलियनने रूसियाके प्रधान नगर मस्को ले लिया। अभी वे फ्रांससे प्रायः हजार कोस दूर आ गये थे। नेपोलियनने सोच रखा था कि वे मस्कोनगरमें शीतकाल बिता कर दूसरे वर्ष रूसकी राजधानी सेण्ट-पिटर्सवर्ग पर आक्रमण करेंगे। लेकिन रूसवासियोंने मस्कोनगरमें आग लगा कर उनकी आशाको निर्मूल कर दिया। मस्को नगरके भस्मीभूत हो जानेसे शत्रु मित्र सभी विपन्न हो गए। मस्कोनिवासी रूसियोंकी दुरवस्थाका शेष हो गया। नेपोलियन यथासाध्य उनकी सहायता करने लगे। वे रूसियोंकी बर्बरता और निष्ठुरतासे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। अतः इस समय इन्होंने मस्को नगरका परित्याग कर वापिस जाना ही अच्छा समझा।

१८वीं अक्तूबरको फरासियोंने मस्कोनगर छोड़ दिया। इधर दारुण शीतका भी समय पहुंच गया, तुषारपात होने लगा। कुहासेसे चारों दिशाएं आच्छादित हो गईं। दिनको भी राह दीख न पड़ने लगी। भोजनके अभावसे घोड़े और सेनाके प्राण निकलने लगे। ये सब दुर्घटनाएं देख कर नेपोलियन बहुत कातर हुए और स्वयं पैदल चल कर उनके साथ सहानुभूति दिखाने लगे। इस तरह ३० दिनका रास्ता तै कर नेपोलियन सकुशल पोलैण्ड पहुंचे। उनकी सेनाओंमेंसे बहुतोंकी मृत्यु हुई और बहुत थोड़ी बच गईं।

नेपोलियनकी दुरवस्थाका सम्वाद पा कर जो सब उनके मित्र थे वे भी शत्रु हो गए। सबसे पहले प्रूसियाधिपतिने अस्त्र धारण किया। नेपोलियनके श्वसुर अष्ट्रीय-सम्राट् भीतर ही भीतर युद्धका आयोजन करने लगे। नेपोलियनके जो सब सेनापति उनकी कृपासे स्वीडेनके राजा हो गए थे, उन्होंने भी नेपोलियन तथा निज जन्म भूमिके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। अंग्रेज गवर्मेण्टने सबोंको अर्थसाहाय्य करनेका वचन दिया। स्पेनदेशमें भी दूने उत्साहके साथ युद्धारम्भ हुआ। स्पेनमें अंग्रेजसेनापति ड्यूक आव-वेलिङ्गटन फरासीसेनापति मेसिनासे पराजित हो कर लिसबन् देशमें भाग गए थे। इस समय उन्होंने भी फिरसे उत्साहके साथ अग्रसर हो स्पेनमें प्रवेश किया। नेपोलियन और फरासी इससे जरा भी न डरे और लड़ाईकी तैयारी करने लगे। किन्तु इस बार वे शिक्षित बहुदर्शी सेनाके बदलेमें अल्पवयस्क अर्द्धशिक्षित सेनाको साथ ले बढ़े। यद्यपि ये

लोग समरमें बहुत कच्चे और नौसिखुए थे, तो भी इन्होंने लुटजीन और बटजीन नामक स्थानमें बहुत बड़ी शत्रुसेनाको बातकी बातमें परास्त कर डाला। नेपोलियनने ड्रेसडेनको अधिकार कर लिया। सामन्तोंके राजाने नेपोलियनका पक्ष नहीं छोड़ा था इसीसे शत्रुओंने उनके राज्य पर आक्रमण किया। अभी नेपोलियनने उन्हें अपने राज्यमें पुनः प्रतिष्ठित किया। इसके बाद कुछ दिन तक लड़ाई बन्द रखनेके लिये रूस सम्राट्‌ने प्रस्ताव किया। सन्धिस्थापनकी आशा पर नेपोलियनने उसे स्वीकार कर लिया। अष्ट्रियसम्राट्‌के मध्यस्थमें सन्धिकी बातचीत होने लगी, किन्तु सन्धि करनेकी राजाओंकी इच्छा न थी। वे अच्छी तरह प्रस्तुत नहीं थे इस कारण उन्होंने कुछ काल तक युद्ध बन्द रखा था। जब वे अच्छी तरह प्रस्तुत हो गए, तब अष्ट्रियसम्राट्‌ अपने जामाताको और कुछ भी ख्याल न करते हुए तीन लाख सेनाके साथ युद्ध करनेके लिए तैयार हो गए। इसके बाद वे सन्धि पर अनुचित मत लागू कर बैठे। क्योंकि ऐसा करनेसे नेपोलियन स्वीकार नहीं करेंगे। जो कुछ हो, इस समय नेपोलियन यदि सन्धिसूत्रको स्वीकार करते, तो चारों ओर शान्ति विराजती। कितना ही अपमानकर और दुःखजनक क्यों न होता नेपोलियनको यह सन्धि स्वीकार करना कर्त्तव्य था। अष्ट्रियसम्राट्‌ने जब देखा कि नेपोलियन इसमें राजी नहीं हैं तब उन्होंने भी शत्रुके दलमें योग दिया। शत्रुओंने चारों ओरसे नेपोलियनको घेर लिया। ड्रेसडेनके युद्धमें नेपोलियनने रूस, प्रूस और अष्ट्रियसेनाके ऊपर जय लाभ की। अनेकों शत्रुसेना मारी गई। किन्तु युद्धके बाद नेपोलियनके अचानक पीड़ित हो जानेसे युद्ध अथवा सम्पद्‌ पक्षसे लाभ कर न सके। नहीं तो युद्धके बाद ही शत्रुगण सन्धि करनेको बाध्य होते। लेकिन ईश्वर इस पक्ष उनके अनुकूल थे।

तदनन्तर यूरोपीय राजगण चारों ओरसे नेपोलियन पर आक्रमण करने लगे। जिन युद्धोंमें जहां नेपोलियन स्वयं उपस्थित नहीं रहते थे, उन सब युद्धोंमें वे हारने लगे। अन्तमें लिपजिक नगरमें दोनों पक्षकी सेनामें मुठभेड़ हो गई। मित्रित राजाओंके पक्षमें प्रायः ३ लाख सेना थी और नेपोलियनके पक्षमें सिर्फ १॥ लाख। दो दिन तक घनघोर युद्ध होता रहा। तीस हजार सक्सन सेना युद्धके समय नेपोलियनका पक्ष छोड़ कर शत्रुदलमें मिल गई। इससे नेपोलियन जरा भी न डरे, लेकिन उस समय इन्हें मालूम पड़ा कि युद्धकी सामग्री कम हो गई, इतनी भी गोली या बारूद नहीं है जिससे दूसरे दिन युद्ध किया जाय। अतः इस समय नेपोलियनको लड़ाईसे पीठ दिखानी पड़ी। राइन नदीके इस पार बर्लिन जीत कर वहां से अपना शासन करनेको सोचा था किन्तु सेनापतिकी इच्छा नहीं होनेसे वे ऐसा कर न सके। अभी इन्हें हट कर फ्रान्सकी सीमामें आना पड़ा। चारों ओरसे फ्रान्स आक्रान्त हुआ। प्रकृत्यालयकी तरह शत्रुसेना फ्रान्समें प्रवेश करने लगी। इस समय नेपोलियनने स्पेनके राजकुमार फर्डिनेण्डको स्पेनराज्य छोड़ दिया। किन्तु इस पर भी युद्ध शान्त न हुआ। स्पेनीय और अंगरेजी सेनाने दक्षिणकी ओरसे फ्रान्स पर आक्रमण किया। पूर्व दिशासे अष्ट्रियसेना इसके दलमें अग्रसर हुई। उत्तरसे रूस, प्रूस और स्वीडनकी सेनाने फ्रान्सको घेर लिया। नेपोलियन अपना शौर्य और समरकौशल दिखाते हुए तीन मास तक शत्रुओंको रोके रहे। किन्तु जब शत्रुदलके विनष्ट होनेके भय इन पा कर उसकी पुष्टि करने लगा। किन्तु नेपोलियन नया दल न पैदा करनेमें बिलकुल असमर्थ थे। ऐसी हालतमें भी नेपोलियनने छोटी सी सेनासे बहुत बड़ी शत्रुसेनाको परास्त किया। किन्तु इस पर भी इन्हें कोई अच्छा फल हाथ न लगा। बाकी शत्रुसेनाको वे अपनी हजार सेनासे कब तक रोके रख सकेंगे। जब वे इधर एक ओर आक्रमण पर थे, तब उधर शत्रुसेना दूसरी ओर चढ़ाई कर देती थी। तीन मास अविश्रान्त युद्धके बाद शत्रुसेनाने राजधानी पारी नगर पर अधिकार जमा लिया। इनके विश्वस्त सेनापति और कर्मचारिगण किसी प्रकार आशा छोड़ बैठे थे। लेकिन सेना और जनता नेपोलियनके लिए प्राण देनेको प्रस्तुत थी।

यूरोपीय राजाओंने बोर्बों वंशको फ्रान्सके राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। नेपोलियन यदि चाहते तो कुछ दिन और युद्ध चला सकते थे। लेकिन सर्वांश छोड़

जैसे सुधी पुरुष थे, उनका स्वभाव भी वैसा ही उत्कृष्ट था। उनकी सेना देवता सरीखा उनकी भक्ति करती थी। वे सर्वसाधारणकी श्रद्धाके पात्र थे। फरासी लोग आज भी उनका नाम भक्तिपूर्वक लेते हैं। उनके नाम पर आज भी सभी उत्साहसे उत्फुल्ल होते हैं। नेपोलियनके चिरशत्रु अंग्रेज लोग भी आज उनकी भूयसी प्रशंसा करनेमें कार्पण्य नहीं दिखलाते। इधर कच्ची उमरमें उन्होंने युद्धविद्यामें जैसी पारदर्शिता दिखलाई थी, बड़े होने पर अङ्कशास्त्रमें वैसा ही नाम भी कमा लिया था। समय समय पर उनकी दयाशीलताका भी विशेष परिचय पाया गया है। जिन सब व्यक्तियोंके साथ बाल्यकालमें तथा सैनिकवृत्तिके अवलम्बनकालमें उनका आन्तरिक आलाप हुआ था, सम्राट्-पद पानेके साथ ही उन्होंने उन सबको यथोपयुक्त कर्मपद अथवा वेतनस्वरूप कुछ अर्थका बन्दोबस्त कर उन्हें सन्तुष्ट किया था। विद्यालयमें पढ़ते समय जिन्होंने नेपोलियनको हस्तलिपि सिखलाई थी, अर्थाभाव जताने पर वे उन बाल्यगुरुको उसी प्रकार पुरस्कार दे कर उनके उपकृत हुए थे। पूर्वोक्त वर्फका किला बनाते समय किसी सहपाठीके साथ इनकी अनबन हो गई थी इस पर वर्फके टुकड़ेसे इन्होंने उसे ऐसा खींच कर मारा कि उसके मस्तकसे लोहू बह निकला था। नेपोलियनकी उन्नतिके समय जब उस बालकने उनके पास जा कर पूर्वोक्त बातकी याद दिलाई, तब नेपोलियनने उसे पहचान लिया और यथोचित सहायता दे कर दयाकी पराकाष्ठा दिखलाई थी। जिस डिमासियके अर्थसे एक दिन नेपोलियन परिवारका गुजारा चलता था, वीर नेपोलियन जब फ्रान्सके सर्ववादिसम्मत राजा हुए, तब उन्होंने उनका ऋण परिशोध कर अपनेको कृतार्थ समझा था।

नेफा (फा॰ पु॰) पायजामे लहँगेके घेरेमें इजारबंद या नाड़ा पिरोनेका स्थान।

नेब (हिं॰ पु) सहायक, मंत्री, दीवान।

नेबू (हिं॰ पु॰) नीबू देखो।

नेम (सं॰ पुं॰) नयतीति नी-मन् (अर्त्तिस्तुसुहुसृ इति। उण् १।१३९) १ काल, समय। २ अवधि। ३ खण्ड, टुकड़ा। ४ प्राकार, दीवार। ५ कैतव, छल। ६ अर्द्ध, आधा। ७ गर्त्त, गड्ढा। ८ नाद्यादि। ९ अन्य, और। १० सायंकाल, शाम। ११ मूल, जड़। १२ अन्न, अनाज।

नेम (हिं॰ पु॰) १ नियम, कायदा, बंधेज। २ बँधी हुई बात, ऐसी बात जो टलती न हो। ३ रीति, दस्तूर।

नेमधित (सं॰ त्रि॰) नेमं हितः, नेम-धा-क्त, ततो धाञो हि। अर्द्धभागधारी इन्द्र।

नेमधिति (सं॰ स्त्री॰) नेम-धा-क्तिन्, धाञो हि। १ अन्तर्धान। नेमं धोयतेऽत्र ध-क्तिन्। २ संग्राम, युद्ध।

नेमन्निष (सं॰ त्रि॰) नमस्कार पूर्वक गमनकारी, जो प्रणाम करके अपनी राह लेता हो।

नेमनाथसिंह एक ग्रन्थकार। नित्यनाथ देखो।

नेमादित्य—दमयन्तीकथा वा नलचम्पू नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये त्रिविक्रमभट्टके पिता और श्रीधर पण्डितके पुत्र थे। इनका गोत्र शाण्डिल्य था।

नेमावुर—मालवप्रदेशके अन्तर्गत हिन्दियाके दूसरे किनारे नर्मदा तट पर स्थित एक नगर। यह अक्षा॰ २२° २७´ उ॰ और देशा॰ ७७° पू॰के मध्य अवस्थित है। यह नगर होलकरराजके अधीन है।

नेमि (स ॰ स्त्री॰) नयति चक्रमिति नी-मि। (नियोमि। उण् ४।४३) १ चक्रपरिधि, पहिएका घेरा वा चक्कर। पर्याय—प्रधि और नेमी। कूपोपरिस्थित पट्टप्रान्तभाग, कुएँके ऊपर चारों ओर बँधा हुआ ऊँचा स्थान या चबूतरा। ३ प्रान्तभाग, किनारेका हिस्सा। ४ भूमिस्थित कूपपट्ट, कूएँको जमवट। ५ कूप समीपमें रज्जुधारणार्थ लिदारु यन्त्र, कूएँके किनारे लकड़ीका वह ढांचा जिस पर रस्सी रखते और जिसमें प्रायः घिरनी लगी रहती है। इसका पर्याय त्रिका है। ६ कूपके निकट समान स्थल, कूएँके समीपकी समतल जगह। (पु॰) ७ नेमिनाथ तीर्थङ्कर। ८ दैत्यविशेष, एक असुरका नाम। १० वज्र।

नेमिग्राम—चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक ग्राम।

नेमिचक्र (सं॰ पु॰) परीक्षित्के वंशके एक राजा जो असीमकृष्णके पुत्र थे। इन्होंने कौशाम्बीमें अपनी राजधानी बसाई थी। (भागवत॰ ९।२२।३९)

नेमिचन्द्र—एक विख्यात तार्किक। ये वैरस्वामीके शिष्य और सागरेन्द्रमुनिके गुरु थे। सागरेन्द्रके शिष्य

माणिक्यचन्द्रने १२०६ संवत्‌को सर्वाचित ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव—एक विख्यात पण्डित और माधवचन्द्रके शिष्य थे। इन्हींकी आज्ञासे उक्त माधवचन्द्रने पिघमें मागधी भाषामें लिखित त्रिलोकसार या त्रिलोकसार ग्रन्थकी टीका संस्कृत भाषामें लिखी।

नेमिचन्द्रसूरि—उत्तराध्ययनवृत्ति नामक जैनसूत्रके टीकाकार। *टीकाके अन्तमें ग्रन्थकारने आत्मपरिचय दिया है।* इन्होंने आख्यानमणिकोष और वीररचित टीका नामक और भी दो ग्रन्थ रचे हैं। इनका आदिनाम देवेन्द्रगणि था। पीछे इन्होंने सैद्धान्तिक शिरोमणिकी उपाधि पायी थी। ये बृहद्‌गच्छ मालासम्भूत थे।

नेमितीर्थ—एक पवित्र तीर्थस्थान। ये बलदेव व व्यास धर्मके प्रचारके लिए जब नाना स्थानोंमें भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने इसी नेमितीर्थमें स्नान और इसके घाट पर विश्राम किया था।

नेमिन् (सं॰ पु॰) नेम अर्द्धमस्त्यस्येति नेम-इनि। तिनिशवृक्ष, तिनास, तिनसुना।

नेमिनाथ—२२वें जैन तीर्थङ्कर। इनका दूसरा नाम था नेमि या अरिष्टनेमि। ये राजा समुद्रविजयके औरस और रानी शिवादेवीके गर्भसे ९ मास ८ दिन गर्भवासके बाद हरिवंशकुलमें श्रावणकी शुक्लपञ्चमीको कन्याराशि चित्रा नक्षत्रको शौरीपुर नगरमें अवतीर्ण हुए। इनका लाञ्छन चिह्न शङ्ख, शरीरमान १० धनु, वर्ण श्याम और आयु एक हजार वर्षका था। राजकुमार अवस्थामें ये अत्यन्त पराक्रमी थे। वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्ण आपके आत्मसम्बन्धीय थे। जिनधर्मशास्त्रमें नेमिनाथके बाहुबलकी अनेक अलौकिक क्षमताका उल्लेख है। जनश्रुति है कि नारायण अवतार द्वारकापति कृष्णके सिवा और कोई भी इनका पाञ्चजन्य शङ्ख बजा नहीं सकते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि नेमिनाथने श्रीकृष्णके रक्षित शङ्खको ले कर खूब जोरसे बजाया। श्रीकृष्ण दूरसे शङ्खनाद सुन कर बहुत तेजीसे उस स्थान पर पहुँच गए और वहाँ आ कर उन्होंने देखा कि उनके भाई ही ऐसी उच्चित ध्वनिके एकमात्र कारण हैं। श्रीकृष्ण ऐसी अलौकिक क्षमता देख उनकी प्रतिद्वन्द्वितासे भयभीत हुए। भाईके बलोभञ्जन और क्षोभका नाश करनेके लिए चतुरचूड़ामणिने उनके पास एक सौ गोपियाँ भेजी थीं। गोपकुलललनाएँ उनके पास पहुँच कर उन्हें नाना प्रकारसे विद्रूप करने लगीं और उनमें से किसीके साथ विवाह करनेको कहा। लेकिन नेमिनाथने अत्यन्त विरक्तभावसे उसे अस्वीकार किया। पीछे विविध रूपसे लाञ्छित और तिरस्कृत होने पर वे विवाह करनेको राजी हो गए। श्रीकृष्णका उद्देश्य था कि नेमिनाथका वीर्यक्षय होनेसे ही उनसे भयकी सम्भावना है इस लिये वे हमेशा उन्हींकी चेष्टामें लगे रहे। अन्तमें उन्होंने गिर्नारके राजा उग्रसेनकी कन्या राजमतीके साथ विवाह करना चाहा *। निर्धारित दिनमें नेमिनाथने जूनागढ़की ओर यात्रा की। नगरमें पहुँचने पर उन्होंने देखा कि नगरवासी सबके सब विवाहोत्सवमें मग्न हैं। विवाह-यज्ञमें आहुति देनेके लिए पशु वध कर लाये गए हैं, उन प्राणियोंकी बलि दे कर निमन्त्रित व्यक्तियोंका भोज होगा। इस पशुवधके दिन पशुका आर्त्तनाद और उनका चीत्कार सुन कर इनका हृदय करुणासे भर आया। मानवजीवनका सुख अति तुच्छ है ऐसा उन्हें मालूम पड़ा, वे जीवोंकी दुर्गतिकी कथा स्मरण कर बड़े ही कातर हुए। अतः उनको प्राप्त करनेके लिये वे गार्हस्थ्यका त्याग कर गिर्नारपर्वत पर जा पहुँचे। श्रावणमासकी शुक्लाषष्ठीको चैतन्य उदयके तट उन्होंने एक हजार साधुओंके साथ दीक्षा ग्रहण की। पीछे ५५ दिन तपस्या कर कर ५६वें दिनमें आश्विनकी अमावस्याको मधुचय नगरमें उन्हें ज्ञानलाभ हुआ। इसके बाद सात सौ वर्ष ज्ञानमार्गमें विचरण कर आषाढ़की शुक्लाष्टमी तिथिको इन्होंने मधुचय नगरमें पद्मासनसे बैठ मोक्षलाभ किया। उज्जयन्त पर्वतके † जिस स्थान पर उनको मुक्ति हुई थी वह स्थान श्वेत-

* जूनागढ़के पूर्वमें गिरिनारवर्ती सुदर्शनझीलके नामक स्थान-के पार्श्वदेशमें इस राजकन्याका वास्तव नाम भी देखनेमें आता है। Ind. Ant. Vol. 11, p 139

† संस्कृत उज्जयन्त और प्राकृत उज्जन्त गिर्नारका नामान्तर है और वर्त्तमान काठियावाड़ जिलेके जूनागढ़के निकट अवस्थित है। कोई कोई इस स्थानको रैवतक कहते हैं। उज्जयन्त देखो।

मावका ही पवित्र तीर्थ माना जाता है। यहां उनके पदचिह्नके ऊपर एक छत्र निर्मित है जो नेमिनाथ-छवि कहलाता है। इसके दक्षिण-पश्चिममें जो गुहा है, वह राजमतीका वासस्थल मानी जाती है *।

दाक्षिणात्यवासी जैनियोंके उत्तरपुराणमें लिखा है कि विश्वप्रभाधिपति अर्थात् त्रिजगत्‌के अधिपति श्रीकृष्ण ने तीर्थङ्कर नेमिनाथका शिष्यत्व ग्रहण किया था §।

हेमचन्द्रसूरि विरचित त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित नामक ग्रन्थमें नेमिनाथका आनुपङ्गिक इतिहास विस्तृतरूपसे लिखा है।

नेमिद्रुम (सं० पु०) श्वेतखदिरवृक्ष, सफेद खैरका पेड़।

नेमिशाह—रसतरङ्गिणीटीकाके प्रणेता।

नेमिसेन—दिगम्बर जैनियोंके माथुरसम्प्रदायके अन्तर्भुक्त अमितगतिके शिष्य और माधवसेनके गुरु। इन्होंने कमलाकर नामक एक व्यक्तिको स्वधर्ममें दीक्षित किया था।

नेमी (सं० स्त्री०) नेमि बाहुलकात् ङीप्। तिनिशवृक्ष, तिनसुना।

नेमी (हिं० वि०) १ नियमका पालन करनेवाला। २ धर्मकी दृष्टिसे पूजा, पाठ, व्रत, उपवास, आदि नियम-पूर्वक करनेवाला।

नेय (सं० त्रि०) १ लाने योग्य। २ अतिवाहन।

नेयतङ्कराय मन्द्राजप्रदेशके त्रिवाङ्कुड़ राज्यके अन्तर्गत एक तालुक। इसका भूपरिमाण २१ वर्गमील है। इसमें कुल मिला कर १५ ग्राम लगते हैं।

नेयपाल (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

नेयार्थता (सं० स्त्री०) काव्यदोषभेद।

नेर—१ बम्बईप्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° ५६' उ० और देशा० ७४° ३४' पू०के मध्य, धौलियासे १८ मील पश्चिम पाँजरानदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। पहले यह नगर विशेष समृद्धिशाली था। चारों ओर कब्र रहनेके कारण ऐसा प्रतीत होता है कि एक समय यहां अनेक मुसलमानोंका वास था। अभी पूर्वसौन्दर्यका दिनों दिन ह्रास होते देखा जाता है।

२ बरारके अमरौती जिलेके अन्तर्गत मोर्सी तालुक-का एक शहर। यह अक्षा० २१° १५' उ० और देशा० ७८° २' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या पाँच हजारके करीब है। इसके निकटस्थ पर्वत पर पिङ्गलो-देवीका मन्दिर है। एक समय यह बहुत बड़ा बड़ा नगर था।

नेरनाला—बरारप्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। एलिचपुरसे ले कर वरदानदी तक समस्त पार्वतीय भूभाग इस जिले-के अन्तर्गत है। इसका प्राचीन नाम नारायणालय है। नेरनाला नगर ही मुसलमान राजाओंके समयमें इसका सदर गिना जाता था। १५८२ ई०में अबुलफजलने लिखा है, 'इस पर्वतशिखरस्थ नगरमें एक बृहत् दुर्ग और अनेक प्रासादतुल्य गृहादि हैं।' यह नगर पूर्णानदीके किनारे अवस्थित है। अभी इसकी पूर्व समृद्धि नष्ट हो गई है, जनसंख्या दिनों दिन घट रही है।

नेर-पिङ्गलाय—बरार राज्यके अन्तर्गत अमरावती जिले-का एक नगर।

नेरवती (हिं० स्त्री०) नीले रंगकी एक पहाड़ी भेंड़ जो भोटानसे लद्दाख तक पाई जाती है। इसके ऊनके कम्बल आदि बनते हैं।

नेरालो—बम्बई प्रदेशके बेलगांव जिलान्तर्गत एक नगर। यह शङ्केश्वर और हुकेरी नामक स्थानके मध्य अवस्थित है। यहां एक दुर्ग है। सिदोजीराव निम्बलकर (अप्पासाहब)ने १७९८ ई०में उक्त दुर्ग पर आक्रमण किया था।

नेरि (नारि)—मध्यप्रदेशके चांदा जिलेकी वरोरा तहसील-के अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २३° २८' उ० और देशा० ७९° २८' पू०के मध्य चिमूरसे ५ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। वर्त्तमान नगरके पार्श्वमें ही पुरातन नेरिनगरका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। पुरातन नगर श्रीहीन हो गया है। यहां धान तथा तरह तरहके अनाज उपजाये जाते हैं। इसके अलावा यहांसे तांबे और पीतलके बरतन दूर दूर देशोंमें भेजे जाते हैं।

* शत्रुञ्जय-माहात्म्य—१३वां अध्याय। विशेष विवरण जैन शब्दमें देखो।

§ Wil. Mack. Col. Vol. 1, p. 146 and Ind. Ant 11, p 139

पुरातन नगरोंमें दो मन्दिर दुर्ग देखनेमें आते हैं। इसके अलावा यहां एक प्रकाण्ड प्राचीन मन्दिर भी है।

नेरिञ्जपेट—कोयम्बतुर जिलेका एक नगर। यह श्रीरङ्ग-पत्तनसे ८८ कोस दक्षिण-पूर्व कावेरीनदीके पश्चिमी किनारे अवस्थित है। यहांके निकटवर्ती पहाड़ पर अनेक माल पाये जाते हैं।

नेरुर—१ बम्बई प्रदेशके सावन्तवाड़ी जिलेका एक नगर। यह सावन्तवाड़ी और मालवनपुर ग्रामके मध्य बसा हुआ है तथा सुन्दरवाड़ी नगरसे १५ कोस उत्तरमें है। ११२२ शकमें चालुक्य-वंशीय राजा विजयादित्यने देवस्वामी नामक एक व्यक्तिको यह नगर दान किया था। यहांसे अनेक शिलालिपियां पाई गई हैं।

२ मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतुर जिलान्तर्गत करूर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ११° ०' १५" उ० और देशा० १८ ११' ४०" पू०के मध्य, करूरसे ११ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां शिव और विष्णुके दो प्राचीन मन्दिर हैं।

नेरे (हिं० क्रि-वि०) निकट, पास, समीप।

नेवास—बम्बई प्रदेशके सारवार जिलान्तर्गत एक नगर। यह सूरतसे दो कोस दक्षिण पश्चिम और ... से १८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहांका सर्वेश्वर-मन्दिर बहुत पुराना है। इसकी छत २७ सुन्दर खम्भों पर रचित है। सर्वेश्वरके मन्दिरमें ८८८ शकमें उत्कीर्ण एक शिलाफलक है। इसके अलावा निकट-वर्ती पुष्करिणीके तट पर तथा अन्यान्य मन्दिरमें और भी बहुतसे शिलालेख देखनेमें आते हैं।

नेरो—हजारीबाग जिलेके मांडेश्वर पर्वतके निकट और महोमदोको अववाहिकाके पश्चिम १०१० फुट ऊंचा एक पर्वत है।

नेर्ले—बम्बई प्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत वालवा उप-विभागका एक नगर। यह अक्षा० १७° ५' उ० और देशा० ७४° १६' पू०, साताराके ४७ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या ७१२४ है।

नेलकोट—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह पेनकोण्डासे २१ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। इस ग्रामके पास एक प्राचीन दुर्ग है जो पलिगारोंके समयका बना हुआ प्रतीत होता है।

नेलवो—मन्द्राजके कोयम्बतुर जिलान्तर्गत धारापुर तालुकका एक ग्राम। यह धारापुर नगरसे १५ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके शिव और विष्णु-मन्दिरमें बहुतसे शिलाफलक उत्कीर्ण हैं।

नेलवेली—मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत तिन्नेवल्ली या तिरु-नेलवेली जिलेका प्राचीन नाम०। तिन्नेवल्ली देखो।

नेलमङ्गल—महिसुर राज्यके अन्तर्गत बङ्गलूर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १३ ६ १०" उ० तथा देशा० ७७ २६ पू०के मध्य अवस्थित है। यह नगर नेलमङ्गल तालुकका सदर है।

नेलम्बूर—१ मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतुर जिलेके अन्तर्गत पल्लडम तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १० ५६ १५" और देशा० ७७ १८ ३० पू०के मध्य अवस्थित है।

२ उक्त प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एर्नाद तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० ११ १०' उ० और देशा० ७६ १५' ४५' पू०के मध्य अवस्थित है। कोई कोई इस स्थानको नीलम्बूर कहते हैं।

नेलसन होरेशियो—इङ्गलैण्डके एक प्रसिद्ध नौसेनापति। १८वीं शताब्दीके अन्तमें इनके द्वारा इङ्गलैण्डके नौबल-का गौरव विशेष वर्द्धित हुआ था। जब ये शिक्षावस्था में थे उस समय एक बार भारतवर्ष भी पधारे थे। भारतके उपकूलमें ही इनकी शिक्षा पूरी हुई। लोग इन्हें 'ऐडमिरल नेलसन' कहा करते थे।

इङ्गलैण्डके अन्तर्गत नरफोकशायरके बार्नहम-थोर्पमें १७५८ ई०को नेलसनका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम था रेभ० सि० नेलसन। ये अपने पिताके छठे लड़के थे। नार्विच नगरमें इन्होंने पढ़ना लिखना सीखा। लेकिन जब इनकी उमर केवल १२ वर्षकी थी तभी इनके मामा कप्तान साकलिङ्गने इन्हें नौ-सेनाविभागमें शिक्षार्थि रूपमें नियुक्त किया। कप्तान साकलिङ्ग 'रेजोनेबल' नामक जहाजके अध्यक्ष थे। कुछ दिन बाद ये भी जहाज पर शिक्षा देने लगे। एक समय उस जहाजको वेस्ट-इण्डीज द्वीपपुञ्जकी ओर ही जानेका हुक्म हुआ। नेलसन भी मामाके साथ जहाज पर गए। जब वे लौटे, तब मानिकविद्याके इन्होंने

* Ind. Ant, Vol. XXI p. 88.

विशेष पटुता लाभ की। इस समय राजकीय कर्म नहीं करेंगे, ऐसा इन्होंने सङ्कल्प कर लिया। किन्तु कुछ दिन के बाद ही इनके मामा जब 'ट्रायम्फ' नामक जहाजके प्रधान नियुक्त हुए, तब फिर इन्हें उनके साथ जाना पड़ा। १७७३ ई०में कमडोर फ्रिप्स और कप्तान लार्ड बोर्जो जब उत्तर-पश्चिम समुद्र हो कर पथके आविष्कारमें बाहर निकले, तब युवक नेलसन भी लार्ड बोर्जोके जहाज पर भर्त्ती हो कर उनके साथ साथ गये। इस समय अपने कौशल, साहस आदिसे इन्होंने अच्छा नाम कमा लिया।

पीछे १७७३ ई०के अक्तूबर मासमें इन्हें सि-हर्स नामक जहाज पर नौकरी मिली। वे अपनी दैनन्दिन लिपिमें लिख गये हैं कि, "कप्तान फार्मरके २० कमान-युक्त जहाजके प्रधान मस्तूल पर चढ़ कर चारों ओर दृष्टि रखनेके लिये मैं ही पहले पहल नियुक्त हुआ। कुछ दिन बाद मुझे 'कोयाटर-डेक'-में काम करना पड़ा। इस जहाज पर रहते समय मैंने पूर्व भारतीय द्वीपपुञ्जमें और बङ्गालसे बसोराके मध्य जितने स्थान हैं प्रायः सभी देखे हैं।" जो नौदल महाराष्ट्र-युद्धके समय भारत-की ओर आया था, ऐडमिरल सर एडवर्ड ह्यूज उसके अध्यक्ष थे। 'सि-हर्स' जहाज कप्तान फार्मरके अधीन इसी दलमें था। अब्राहम परसन्सके भ्रमणवृत्तान्तसे भी जाना जाता है कि १७७६ ई०को १७ वीं फरवरीको 'सि-हर्स' जहाज बम्बई-उपकूलमें नङ्गर डाले हुए था। नेलसनकी दैनन्दिन लिपिमें उनके भारतदर्शन-की अभिज्ञताका विषय वा उनके देखे हुए नगरादिका कोई विवरण लिपिबद्ध नहीं है। नेलसनने १७७७ ई०में स्वदेश आ कर लेफ्टेनेण्टकी परीक्षा दी। परीक्षा-में उत्तीर्ण होनेके बादही वे लाउसटफट् फ्रिगेटके द्वितीय अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए। अमेरिका युद्धमें यह फ्रिगेट वहां गया था। नेलसनने वहां भी नाम कमा लिया था। १७७९ ई०में इन्होंने 'पोष्ट-कप्तान'के पद पर नियुक्त हो कर 'हिचिनब्रोक' जहाजको अध्य-क्षता लाभ की। यह जहाज ले कर वे वेष्टइण्डीज द्वीपपुञ्जमें गये और मेक्सिकोउपसागरके तीरवर्त्ती फोर्ट सानजुअनको जीतनेके लिये विशेष यत्नवान् हुए। इस युद्धके बाद वे रोग ग्रसित हुए। आरोग्यता-लाभ करने-के कुछ दिन बाद ही 'अलिवमार्ले' जहाजके अध्यक्ष हुए। पीछे इन्हें बोरियस जहाजकी अध्यक्षता मिली। उस समय ड्यूक-आव-क्लारेन्स (ये ही चतुर्थ विलियम नामसे इङ्गलैण्डके राजा हुए) पेगसस नामक जहाजके कप्तान थे। यह जहाज नेलसनके अधीन था। इसी समय नेलसनका विवाह हुआ। पहले इन्होंने नेभिस द्वीपके विचारपति मि० विलियम एडवर्डकी कन्यासे, पीछे उसी द्वीपके डा० नेसबिटकी विधवा पत्नीसे विवाह किया। दूसरी पत्नीके गर्भसे नेलसनके कोई सन्तान उत्पन्न न हुई।

इसके बाद फ्रान्सके साथ जब घोर युद्ध चल रहा था उस समय 'आगमेमनन' जहाजके प्रधान हो कर नेल-सन टूलोंशहरके सामने उपस्थित हुए। बेष्टिया अवरोध-के बाद वे दक्षिण काल्भीको गये। वहांके नौ-युद्धमें इनकी दोनों आंखें नष्ट हो गईं। इस समय इनके युद्धकौशल और तीक्ष्णबुद्धिकी कथा चारों ओर फैल गई। १७९५ ई०में ऐडमिरल हथामके अधीन नेलसनने फरासी जहाजदलके साथ बड़े साहससे युद्ध किया था। १७९६ ई०में मिनर्भा जहाज पर 'कमोडोर' नियुक्त हो कर इन्होंने फरासियोंके 'साबेबिन' नामक जहाजको रोक रखा। किन्तु जब इन्होंने देखा कि उनकी मददमें स्पेनीय जहाज पहुंच गया है, तब वे उसे छोड़ नौदो ग्यारह हो गये। इसके बाद ही इन्होंने सेण्ट-भिनसेण्ट बन्दरको पार कर छिपके फरासीजहाजका पीछा किया। पीछे इन्होंने स्यानटिसीमा त्रिणिदादा, साननिकोलस और सानजोसेफ पर आक्रमण कर उन्हें जीत लिया। इस कार्यके पुरस्कारस्वरूप नेलसनको के० बी० की उपाधि मिली। पीछे ये केडिज अवरोधकारी जहाजदल के अधिनायक हो कर भेजे गये। केडिजनगरको इन्हों-ने गोलोंसे उड़ा देना चाहा था लेकिन इसमें सफलता प्राप्त न हुई। तदनन्तर टेनिरिफके युद्धमें गोलोके आघात-से नेलसनकी दाहिनी भुजा नष्ट हो गई। इस युद्धमें अंगरेजोंकी जीत नहीं हुई। आघात पा कर वे स्वदेशको लौट गये और इन्हें वार्षिक एक हजार पौण्डकी वृत्ति मिलने लगी। पेन्सन पानेके आवेदन पत्रमें लिखा है, कि बेष्टिया और काल्भी अवरोधमें इन्होंने यथेष्ट सहा

सेना को और इन्हें पद मिला कर १२० बार युद्ध करने पड़े थे। पीछे बहुत दिन तक नेलसन किसी कार्यमें नियुक्त नहीं हुए।

तदनन्तर जब यह खबर पहुंची कि नेपोलियन बोनापार्टने टूलोंका परित्याग किया है तब नेलसन अर्ल आव सेण्टभिनसेण्टकी आज्ञासे नेपोलियनका अनुसरण करनेके लिये भेजे गये। नेलसन अपने जहाज ले कर इधरोधर उपद्रव धूम कर उनको खोजमें अलेकजन्द्रिया की ओर अग्रसर हुए। लेकिन वहां उन्हें न देख कर वे हताश हो पड़े। पीछे नेलसनने सिसलीकी यात्रा की। सिसलीमें [illegible] १७९८ ई०में नेलसन पुनः अलेकजन्द्रिया होते हुए आवुकीके उपसागरके मुहाने पर उपस्थित हुए। वहां उन्होंने फरासीसियोंको [illegible] कुछ किलेदारोंको बाहर जाते हुए देखा। ऐडमिरल नेलसनने यह देखनेके साथ ही उसी समय लड़ाई शुरू कर देनेका हुक्म दिया। निकटवर्ती एक टापूके ऊपर नेपोलियनकी बड़ी जहाजोंकी रक्षाके लिये कमानें भी सज्जित थीं। युद्ध छिड़ गया; नेलसनके कुछ जहाज शत्रुके जहाज-दलमें प्रविष्ट हुए। भयानक [illegible] इस प्रकार दोनों ओरसे आक्रमण हो कर तनतन [illegible] गया। शत्रुको [illegible] हो गई थी, इसी समय नेलसनके 'एलोरियण्ट' नामक जहाजमें आग लग गई। उस आगने इतना भयङ्कर रूप धारण किया कि अनेक चेष्टा करने पर भी वह न बुझी। दूसरे दिन सबेरे देखा गया कि शत्रुपक्षके दो जहाज अथवा भग्नावस्थामें [illegible] हो कर सागरके गर्भमें जा पड़े हैं, अन्य सभी जहाज [illegible] हो गये हैं। यह सुखद समाचार और उसकी खबर इङ्गलैण्ड पहुंची। नेलसन सम्मानसूचक 'बैरन आव दि नाइल'की उपाधिसे भूषित किये गये और वे तभीसे लार्डकी श्रेणीमें गिने जाने लगे। उनकी पेन्शन भी बढ़ा कर २ हजार कर दी गई। विदेशमें भी इन्हें सम्मान लाभ हुआ था। नेपल्सराजने इन्हें अपनी राज्यकी महा भूसम्पत्ति दे कर 'ड्यूक आव ब्रन्टी'की उपाधिसे भूषित किया। इसके बाद लार्ड नेलसन सिसली गये। उस समय नेपल्समें विद्रोह उपस्थित हुआ था। राजा आदि राजच्युत हो गये थे। नेलसनको ज्यों ही इसकी खबर पहुंची, त्यों ही वहां जा कर इन्होंने विद्रोह दमन किया और राजाको पुनः गद्दी पर बिठाया। देश लौट कर लार्ड नेलसन बड़े समारोहसे अभ्यर्थित हुए। इस समय यूरोपके उत्तरांशके अन्यान्य राजाओंने मिल कर इङ्गलैण्डको तहस नहस कर डालनेका षड़यन्त्र रचा। अंगरेज गवर्मेण्ट यह समाचार पा कर डर गई और इस चेष्टाको व्यर्थ करनेके लिये एक बेड़ा अविलम्ब तैयार किया तथा सर हाइड पार्करको प्रधान अध्यक्ष और लार्ड नेलसनको द्वितीयपद पर नियुक्त कर उनके साथ भेज दिया।

जब बेड़ा जब बाल्टिक उपसागरमें पहुंचा, तब डिनेमार्कोंने बाधा दे कर अंगरेजबलसेनाको आनेसे रोका। इसी कारण तीसरे पहरमें लड़ाई छिड़ गई। डिनेमार्कके १० जहाज नष्ट भ्रष्ट और निम्न [illegible] पराजित हुए। डिनमार्कके राजाने कोई उपाय न देख नेलसनके साथ सन्धि कर ली। पीछे लार्ड नेलसनने स्वीडनके राजाको बाध्य करके उनसे बाल्टिक सागरमें अंगरेज वाणिज्यका आदेश ले लिया। इस कामसे लार्ड नेलसन देश लौटे। इस बार इन्हें 'भाइ काउण्ट'-का पद प्राप्त हुआ।

१८०१ ई०में नेपोलियन बुलनियाके निकट इङ्गलैण्डको जीतने की कामनासे विपुल आयोजन कर रहे थे। नेलसन इस आयोजनको भङ्ग करनेके लिये अग्रसर हुए। इस बार विशेष चेष्टा करने पर भी लार्ड नेलसन शत्रुका कुछ अनिष्ट कर न सके और लाचार हो देशको लौटे। किन्तु [illegible] एक वर्षके बाद ही पुनः युद्ध छिड़ गया। १८०३ ई०के मार्च मासमें 'भिक्टरी' जहाजके अध्यक्ष बन कर वे भूमध्यसागरमें अग्रसर होने लगे। इस बार भी वे काफी चेष्टा करने पर शत्रुके बेड़ेको रोक न सके। वे बड़ी चतुराईसे टूलोंको छोड़ कर केडिजमें उपस्थित हुए। लार्ड नेलसनने अपेक्षाकृत अल्पतर जहाज ले कर फरासीसियोंका पीछा किया। पीछे फरासिसी और स्पेनियोंने मिल कर १८०५ ई०के अक्तूबर मासमें ट्राफलगार अन्तरीपके सामने नेलसन पर चढ़ाई कर दी। २१वीं अक्तूबरको दोनों पक्षमें

लड़ाई छिड़ गई। नेलसनने "इङ्गलैण्डका प्रत्येक व्यक्ति देशवासीके लिये अपना अपना कर्त्तव्य पालन करेगा" इस वाक्यचिह्नित वृहत् पताकाको उड़ा दिया। उनके भिकृरी जहाजके साथ प्राचीन प्रतिद्वन्द्वी 'स्यान-ट्रिसीमा त्रिनिदाद' जहाजकी मुठभेड़ हो गई। विपक्षको ओरसे नेलसनके जहाज पर शिलावृष्टिके समान अजस्र गोलीकी बौछाड़ होने लगी। ये चारों ओर घूम घूम कर अध्यक्षता कर रहे थे। इसी समय एक गोली इनके कंधे पर गिरी और इस आघातसे तीन घण्टेके मध्य लार्ड नेलसनकी प्राणवायु निकल गई। जिस समय नेलसनका जीवन नष्ट हुआ, उस समय विपक्षको पराजय भी एक प्रकारसे निश्चित हो चुकी थी। नेलसनको मृत्युके बाद ऐडमिरल कलिंउडने अध्यक्षता ग्रहण कर सुकौशलसे जयलाभ किया।

नेलसनकी मृत्यु पर सारे इङ्गलैण्डमें गभीर शोक छा गया। किन्तु वे इङ्गलैण्डके लिये जो कुछ कर गये, उसके प्रतिदानस्वरूप लार्ड होरेशिय नेलसनके भाई रेभरेण्ड विलियम नेलसनको आर्लको पदवी दे कर लार्डकी श्रेणीमें उनकी गिनती की गई और उन्हें वार्षिक ६ हजार पेन्शन मिलने लगी। नेलसनके दो बहन थीं; उन्हें भी काफी पेन्शन निर्धारित हुई।

१८०६ ई०की जनवरी मासमें लार्ड नेलसनकी मृतदेह सेण्टपलके गिर्जेमें समाहित हुई।

नेल्लिकाड—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलेके अन्तर्गत मङ्गलूर तालुकका एक ग्राम। यह मङ्गलूर नगरसे २७ मील उत्तर-पूर्व में अवस्थित है।

नेल्लितीर्थ—दक्षिण कनाड़ाके मङ्गलूर तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यह मङ्गलूर नगरसे १२ मील उत्तरमें पड़ता है। यहांके एक प्राचीन मन्दिरमें कनाड़ी भाषामें लिखा हुआ एक शिलाफलक है।

नेल्लिपटला—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत पलमन तालुकका एक ग्राम। यह उक्त तालुकके सदरसे पांच कोस दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है। ग्रामके उत्तर देवरकोण्डा पर्वतके शिखर पर एक भग्नमन्दिर है जिसके बाहर एक शिलालिपि उत्कीर्ण है। इसके अक्षर तेलगु भाषा-से देखनेमें लगते हैं। वर्ण-गत सादृश्य रहने पर भी उसे स्पष्ट तेलगू नहीं कह सकते।

नेल्लियम्पति—मन्द्राज प्रदेशके कोचीन राज्यके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह पालघाट नगरसे १० कोस दक्षिणमें अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे यह पर्वत कहीं २००० और कहीं ५००० फुट ऊँचा है। १५००से ४००० फुट ऊँची भूमि पर शाल, चन्दन आदि अनेक प्रकारके कीमती पेड़ लगते हैं और कहीं कहीं इलायची, अदरक, मिर्च आदिकी खेती भी होते देखी जाती है। १८६० ई०से यहां कहवेकी खेती होने लगी है। इसकी खेती दिनों दिन उन्नति पर है।

पर्वतके जङ्गलमें केदार नामक एक असभ्य जातिका वास है। इनका आचार-व्यवहार बहुत कुछ वैनाद जिलेको कुरुम्ब जातिसे मिलता जुलता है। ये लोग फल-मूल और जङ्गली आहार खा कर अपना गुजारा करते हैं। इसके अलावा ये लोग मूसे आदि छोटे छोटे जानवरोंका मांस भी खाते हैं। सभी समय ये एक जगह वास नहीं करते। इनका जातिगत कोई खास व्यवसाय नहीं है।

नेल्लू—सिंहलद्वीपजात वृक्षविशेष। यह पेड़ आठ वर्षके बाद फलता फुलता है। इसके फूलोंसे काफी मधु पाया जाता है। इस कारण सिंहलवासी इस वृक्षको मधुका पेड़ कहते हैं।

नेल्लूर—मन्द्राज प्रदेशके मध्य अंग्रेजाधिकृत एक जिला। यह अक्षा० १३° २८' से १६° १' उ० तथा देशा० ७९° ५' से ८०° १५' पू०के मध्य अवस्थित है।

जिलेके सदर नेल्लूर नगरके नामानुसार इस जिलेका नाम पड़ा है। स्थानीय भाषामें इस नगरका नाम नेल्लूरु वा नेल्लि उरु है। उरु शब्दसे ग्राम और नेल्लि शब्दसे आमलकी वृक्षका बोध होता है। कहते हैं, कि नेल्लूर नगर रामायणोक्त अति प्राचीन दण्डकारण्यके एकांशमें बसा हुआ है। यह आमलकी वन शायद किसी प्राचीन समयमें उक्त दण्डकवनके अन्तर्वर्त्ती था।

यह जिला नानाजातीय वृक्षादिसे परिशोभित होने पर भी यहांका स्वाभाविक सौन्दर्य उतना दृष्टिकर नहीं है। जलवायुकी रूक्षताके कारण तथा स्वाभाविक

इत्यादिमें कोई विशेष परिवर्तन न न होने पाईके कारण विदेशियोंके लिये यह स्थान उतना रोचक नहीं है। पश्चिममें ऐसो मीलकी विस्तियोंकी स्थान अनुमानतः सुदीर्घ पर्वत वारण कर विमोचिकामको जोमसमुद्योंके भाव दण्डायमान है। पूर्वमें बङ्गोपसागरको अनपादित जलराशियों बालातमें तीरवर्ती समतलभूमि कूप हो कर वाणुकामय हो रहे हैं। समुद्र तोर पर्तिकम कर बमीन वर्षा होती गई है। अधिकांश स्थान पर्वतमय और वनराजिसे परिपूर्ण है।

पश्चिम दिशाकी समस्त भूमि पर्वतमय और पहुंवर है। इस पर्वतके सर्वोच्च शिखरका नाम देवता कोण्डा है जो समतल देशसे ९००० फुट ऊंचा है। इस शिखरमें स लग्न दूसरे शृङ्गका नाम उदयगिरिशृङ्ग है। इसकी ऊंचाई ४००८ फुट है। जिलेके सभी स्थानोंमें इन शिखरोंको देखा हो जो देखनेमें आतो है।

इस जिलेके मध्य एक पार्वत्य स्थान है जिसे जन-साधारण पठार देखने आया करते हैं। उस स्थानका नाम है श्रीहरिकोटाद्वीप। उस द्वीपके एक ओर पतल-स्पर्शी लवणसमुद्र और दूसरी ओर झील कमिवर पालि-कट ठहर है। दोनों जलराशियोंके बीचमें बालुकाभूमि बांधरूपमें दण्डायमान है जो सभी द्वीप कहलाता है। यह समझ कहना होगा कि यह अमरेश्वरके गौरव और स्वभावकी सुन्दरताको बढ़ा रही है।

यहां पिनर (पिनाकिनो), स्वर्णमुखी और गुण्ड-कम्मा नामक तीन नदियां प्रधान हैं जो पूर्वघाट पर्वतकी पश्चिमका भूमिसे निकली हैं। इन तीनोंके सिवा पर्वत मालासे और भी असंख्य छोटे छोटे जलस्रोत निकल कर भिन्न भिन्न ओर बह गये हैं। इतनी नदियां रहते भी यहांकी उर्वरता या वाणिज्यकी कोई विशेष उन्नति देखी नहीं जाती। एकमात्र पिनर नदी ही बाढ़के समय जलपूर्ण होती है।

जङ्गलमें इन दिनों जवान जिवजन्तु नहीं पाये जाते। भालूकी संख्या बहुत कम है, जो कुछ है सो भी बड़ुवा जिलेसे यहां आये हैं। चीता बाघ, भालू, सांभर हरिण, वाइसन जातीय महिष और बन्य बराह अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। पक्षिजातिमें बत्तक, बटेर, कबूतर कपोत और तीतर प्रधान हैं।

नाना जातीय प्रस्तर खण्ड और यहां मट्टीके अन्दर एक प्रकारका लौहमिश्रित कर्दम पाया जाता है। वह मट्टी पत्थरादि तथा पथ बनानेके काममें आती है। १८०१ ई०में यहां तांबेकी खान पायी गई है। जमीनके नीचे चूनेका कोष भी पाया गया है। वह चूनेका ढोका यहांके लोग तथा कर कपान्तरित करते हैं और जहरत पड़ने पर पत्थरादि भी निर्माण कर लेते हैं। कहीं कहीं भट्टोमें थोड़ा सोरा भी पाया जाता है।

यहांकी जलवायुका भाव सब ऋतुमें एक सा है, कभी भी तापकी चढ़ती या बढ़ती नहीं होती। जल-वायु स्वभावतः उष्ण होने पर भी स्वास्थ्यप्रद है। ग्रीष्म-कालमें पश्चिमसे जो उष्ण वायु चलती है वह बड़ी ही कष्टकर होती है। उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम मौन सुन वायुसे बरसी पर भी वर्ष भरमें दो समय प्रचुर वर्षा होती है। उत्तर-पूर्व मौनसुन वायुसे दिसेम्बर उत्तर में और दक्षिण-पश्चिम वायुसे जिससे दक्षिणमें अधिक वर्षा होती है।

जलवायुके दोषसे साधारणतः यहां कई एक विशेष रोगोंकी उत्पत्ति हुआ करती है। सविरामज्वर, वात, कुष्ठ, गोद, कृमि, अजीर्ण आमाशय, विसूचिका और बसन्त आदि रोगोंका प्रभाव ही अधिक है। समय समय पर हैजा और प्लेग भी हुआ करता है।

यहांको विस्तीर्ण वन देखा जाता है और जो एक समय सुविस्तृत दण्डकारण्यका अंश समझा जाता था वह अभ्र भूभाग अभी वैलीकोण्डाके पूर्वस्थित वानु-प्रदेश तथा रायपुर, पालकुण्ड, उदयगिरि और कनिगिरि तालुकमें अवस्थित है। रक्तचन्दन, चन्दन, पियासाल आदि मूल्यवान् दारुका जङ्गल भाग यथेष्ट परि-माण है। पालिकट झीलमें अवस्थित श्रीहरिकोट द्वीपके बालुकामय स्थानमें जो वनविभाग है, उसमें भी नाना तरहके पेड़ पाये जाते हैं।

इस जिलेमें १० शहर और १०५८ ग्राम लगते हैं। लगभग साढ़े दस लाखके लगभग है। सैकड़े पीछे ८० हिन्दूको संख्या है। यनदी जाति ही यहांको आदिम अधिवासी गिनी जाती है। कभी क्रमशः इनका ह्रास है। श्रीहरिकोटद्वीपमें जो पञ्चम जाति यनदी

रहते हैं उनका आचार-व्यवहार बहुत कुछ राक्षसोंके सदृश है। १८३५ ई०में जब यह द्वीप अङ्गरेज गवर्मेण्टके अधिकारमें आया, तब अङ्गरेजोंने यनड़ियोंका अत्यन्त दूषित और पैशाचिक आचार दूर कर उनकी जातीय अवस्थाकी उन्नतिके लिए विशेष चेष्टा की; लेकिन वे अपने वन्य और असभ्य जीवनका परित्याग कर खेतीबारी और गवादिपालन द्वारा जीविका निर्वाह करनेमें राजी न हुए। ये लोग जङ्गलमें घूमना बहुत पसन्द करते हैं, श्रौकीनो क्या चीज है उसे वे जानते तक भी नहीं। ये लोग द्राविड़वंशीय हैं, सभी तेलगु भाषामें बोलते हैं और भूतयोनिकी पूजा करते हैं। ये लोग शवदेहको जमीनमें गाड़ते हैं।

येरुकाला नामक एक दूसरी भ्रमणशील जाति है। ये लोग तामिलवंशके हैं। वेड्डू, डोम्मारा, सुकाली वा लम्बाड़ी जातिकी भाषा मराठी है। हिन्दूके अतिरिक्त यहां अरबी, लब्बाई, मुगल, पठान, शेख, सैयद आदि मुसलमान तथा यूरोपीय और ईसाई लोग भी रहते हैं। इस जिलेमें पहले पहल रोमनकैथलिक मिशन और पीछे १८४० ई०में अमेरिकाके बैपटिस्ट मिशन पधारे थे। क्रमशः स्काट और जर्मनके लुथर सम्प्रदायिकोंने भी उनका अनुसरण किया।

अति प्राचीनकालमें इस प्रदेशके वाणिज्यकी विशेष उन्नति हुई थी। भारतवासी और सिंहलद्वीपवासीके साथ दूरदेशवासी रोमकजातिका वाणिज्य-संस्रव था। १७८५-८६ ई०में नेल्लूरनगरके निकटस्थ स्थानकी जमीनसे जो सब प्राचीन रोमकमुद्रा पाई गई है, मन्द्राजके गवर्नरके मुद्रित पत्रसे वह जानी जाती है *। कर्नल मैकेञ्जीने १८०६ ई०में कोयम्बतुर जिलेके स्थान स्थानमें बहुत-सी मुद्राएँ पाई हैं। १८४०से १८४२ ई०के मध्य कोयम्बतूर, शोलापुर, कडापा, मदुरा और कन्नन्-रसे १० मील पूर्व कोट्टायमके निकटवर्ती पहाड़ पर अगष्टस, क्लडियस, कैलिगुला, सेभारस, एण्टोनिनस, कमोडस, गेटा, ट्राजन, ड्रूसस, जेनो आदि राजाओंके समयकी मुद्रा पाई गई हैं। इन सब मुद्राओंसे अच्छी तरह जाना जाता है कि अति प्राचीनकालमें रोमक वणिक्गण करमण्डल उपकूलमें आते और भारतीय पण्यद्रव्य खरीद कर स्वदेशको लौट जाते थे। करमण्डल उपकूल ही उस समय वाणिज्यका प्रधान स्थान माना जाता था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। चीनदेश और अरबदेशके नाना स्थानोंसे व्यवसायिगण वाणिज्यके उपलक्षमें इस प्रदेशमें आते थे। करमण्डल उपकूलमें प्राप्त चीन और अरबी मुद्रा ही उसका प्रमाण है। पूर्वमें चीनराज और पश्चिममें लोहित सागरतीरवर्ती मुसलमानाधिकृत राज्योंके मनुष्य उसी प्राचीन समयमें वाणिज्यके उपलक्षमें भारतवर्ष आया करते थे। १८६७ ई०में तिन्नेवेल्ली जिलेमें लाख रुपयेसे अधिक स्वर्ण-मुद्रा पाई गई थीं जिनमेंसे ३१ मन्द्राज म्युजियममें रखी हुई है। इन सब मुद्राओंमेंसे बहुतोंके नाम अरबी भाषामें तथा बहुतोंके क्यूफिक भाषामें अङ्कित हैं। अरबी मुद्रा प्रायः खलीफ, आतवेग, आयुब और मामलुकाअक्रीतवंशीय राजाओंके समयकी है। ये मामलुकवंशीय राजगण इजिप्टमें राज्य करते थे इतिहास पाठक इसे अच्छी तरह जानते हैं। कितनी मुद्राओंके ऊपर लैटीन भाषामें आरागणराज तृतीय पिट्रोका नाम खोदित है।

* The Asiatic Researches, Vol. 11, p. ३३२ नामक पुस्तकमें वह पत्र मुद्रित हुआ था। उसका मर्म इस प्रकार है—नेल्लूर नगरके निकट कोई कृषक हल चला रहा था। इसी समय एक प्राचीन हिन्दूमन्दिरके शिखर पर हलकी फाल अटक गई। पीछे अनुसन्धान करनेके बाद वह स्थान खोदा गया और उस मन्दिरके मध्य एक पात्रमें बहुत-सी रोम देशीय मुद्रा और पदक पाये गये। इस समय माननीय टेभिड्सन मन्द्राजके शासनकर्त्ता थे। कृषकने उस मुद्राको जब अशर्फीके मोलमें बेचना चाहा तब उन्होंने स्वयं एड्रियन और फष्टिन (Adrian and Faustina)-के समयकी अर्थात् २री शताब्दीकी दो मुद्राएं पसन्द कीं और नवाब अमीर-उल उमराने उनमेंसे तीस मुद्रायें खरीदीं। इसके अलावा ट्राजन समयकी भी अनेक मुद्रायें पाई गई थीं। उस मुद्राको गवर्नर बहादुरने अपनी आंखोंसे देखा था। उन्होंने मुद्राकी उज्ज्वलता देख कर लिखा है, कि ये सब मुद्रायें इतनी नई मालूम पड़तीं, मानो वे अभी तुरंत टकसालसे लाई गई हों। उन मुद्राओंमेंसे कुछ ऐसी भी हैं जिनके ऊपर दाग घिस गया है।

इन्होंने १२७६ ई०में राज्य लाभ किया। सालसुकअद्दीन-न मीय सुलतानके साथ एक समय उनकी सन्धि हुई थी। सम्भवतः वहीं सन्धिसूत्रसे उनकी मुद्रा दक्षिणमें और वहांसे वाणिज्यव्यपदेशसे भारतवर्ष लाई गई होगी। त्रिवाङ्कुरराज और रेसिडेण्ट जनरल कालीन साहबके पास बहुत-सी प्राचीन रोमक मुद्रा हैं*। फिर कितनी मुद्रा पर भी टिवेरियस, क्लडियस और नीरो सिजारके नाम भी खोदित हैं। इन सब मुद्राओंका आर-वाणिज्यतत्त्व अनुसन्धान करनेसे और मुसलमानोंका इतिहास पढ़नेसे अच्छी तरह जाना जाता है कि कई शताब्दी तक मैसूर और समस्त करमण्डल उपकूल प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान समझा जाता था†। ताकिया तुल अमसार नामक इतिहासमें लिखा है कि तुरस्कसे ले कर मैसूर तक प्रायः तीन सौ फरसङ्ग विस्तृत समुद्रका उपकूल मावाबर कहा जाता था। यहांके राजाओंकी उपाधि देवर थी। चीन और महाचीनवासिगण अपने जङ्क नामक जहाज पर तरह तरहका उत्तम कारुकार्यविशिष्ट दुर्लभ वस्तु लाद कर इस प्रदेशमें बेचनेके लिए लाया करते थे। सिन्धु और तत्पार्श्ववर्त्ती जनपदवासी मुसलमान भी इस देशमें वाणिज्यके लिए जहाज पर आया करते थे। इराकसे खोरासान तकके स्थान समूहमें और रोम तथा यूरोपके स्थान स्थानमें जो सब प्राचीन और सुन्दर वस्तुएं देखनेमें आती हैं उनमेंसे अधिकांश एक समय इसी भारत-उपकूलसे लाया गया था। पारस्य उपसागरके द्वीपवासियोंका धन और मणिमुक्तादि एक समय इसी प्रदेशसे आहृत हुई थीं, इसमें सन्देह नहीं। जिस समय सुन्दर पाण्ड्य इस प्रदेशके राजा थे, उस समय कालेस-द्वीपके मलिक-उल इस्लाम जमाल उद्दीन् उन्हें वाणिज्यके लिए करस्वरूप प्रतिवर्ष १४०० घोड़े देते हुए थे। फिर यह भी जाना जाता है कि दूरवर्त्ती चीन और अन्यान्य देशोंसे जो सब सुन्दर और सूक्ष्म द्रव्य यहां लाये जाते थे उनमेंसे पहले राजा करस्वरूप कुछ ले लिया करते थे। इनके अलावा मिस्र-आलेकजन्दर और निकोरके समयमें वाणिज्य और दक्षिण देशीय वणिक्गण वाणिज्यके लिए भारतवर्ष आते थे, यह उस समयका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है।

मैसूर डिनेमर देखो।

वर्त्तमान समयमें दक्षिण-भारतका वह वाणिज्य गौरव नहीं है। प्रायः १७वीं शताब्दी तक इस प्रकारका व्यवसायस्रोत चलता रहा था। पीछे धीरे धीरे इसका बिलकुल ह्रास हो गया है। उस प्राचीन व्यवसायके साथ साथ मैसूरके गोलकर्ण 'सेलेमपुरी' नामक वस्त्रने भी विशेष ख्याति लाभ की थी। पूर्व समयमें उस वस्त्रको वेद रस्तोग्रहोपवासी निग्रोजातिके लोग बड़े चावसे खरीदते थे। इस कारण उस वस्त्रका कभी भी अनादर नहीं हुआ। अभी मैसूरके कपास-वस्त्र विदेशमें रफ्तनी नहीं होती। नेल्लूर नगरके निकटवर्त्ती कोलार ग्राममें एक प्रकारका सूक्ष्म वस्त्र तथा रूमालका उपयोगी वस्त्र भी तैयार होता है। यहां तांबे, पीतल और कांसेके भी अच्छे अच्छे बरतन तैयार होते हैं।

*इनमेंसे होनेके पहलेसे ही वाणिज्य अवनतिका सूत्रपात देखा जाता है। कहवा और चन्दनके सिवा कई एक पदार्थ मैसूरसे बाहर भेजे जाते थे। पश्चिम समुद्रके किनारे वैदेशिक पण्यादिकी रफ्तनी होती है। यहां रुई, चावल, नील, तमाकू, चन्दन और अन्यान्य अनाजकी खेती होती है। उपकूलस्थित कोइमाटम तथा पठसुक्ला नामक दोनों बन्दरोंके साथ भी इन सब देशजात द्रव्योंकी रफ्तनी और विभिन्न देशोंसे वाणिज्यार्थ उत्पन्न नाना प्रकारकी द्रव्योंकी आमदनी होती है। ७

कभी कभी जल और वृष्टिके अभावसे, पेन्नार नदीकी बाढ़से तथा समुद्रोत्पन्न तूफानसे यहांके प्रजाको विशेष क्षति हुआ करती है। १८०४ १८०६ १८२०, १८२८ १८३२, १८३६ १८५२, १८६७ १८७१ १८७४ और १८७८ ई०में यहां तूफान और बाढ़से घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। १८७६-७८ ई०में जो दुर्भिक्ष पड़ा था उसमें फसल बिलकुल नहीं हुई थी। उस समय प्रायः १०००० गोमहिष और असंख्य मनुष्य अन्नके अभावसे कराल कालके गालमें पतित हुए थे।

यहांके हिन्दू बाहर सनातनधर्मावलम्बी होने पर भी

* Indian Antiquary Vol. VI p. 216 19

† Indian Antiquary Vol II p 241-420.

मुहर्रममें मुसलमानोंका साथ देते हैं। नेल्लूर जिलेके १२० ग्रामोंमें प्रतिवर्ष मुहर्रमके उपलक्षमें हिन्दू-मुसलमान दोनों ही अग्नि जला कर नृत्य करते हैं। बुन्दरशाह मदुर नामक किसी मुसलमान पीरके माहात्म्य-कीर्त्तनके लिये मुसलमान फकीरगण मधुमासमें दो विभिन्न स्थानोंमें दो बार अग्निक्रीड़ा करते हैं।

इस प्रदेशका कोई स्वतन्त्र इतिहास नहीं है। अति प्राचीनकालसे ही यह स्थान दाक्षिणात्यके तैलङ्गराज्यके अंशरूपमें गण्य होता आ रहा है। यही कारण है, कि पूर्वतन वणिकगण करमण्डल उपकूलस्थ नेल्लूर और तन्निकटवर्त्ती तैलङ्गराज्यके अन्तर्गत बन्दरसमूहमें आ कर पण्यद्रव्य खरीदा करते थे। इस राज्यमें एक समय यादव, चालुक्य, कल्याण और गणपतिवंशीय नरपतिगण शासन करते थे और उक्त वंशीय राजाओंके समयमें यह स्थान व्यवसाय-वाणिज्यमें जो विशेष समृद्धिशाली हो उठा था वह रोमक, चीन और अरबदेशीय मुद्रा तथा यहांके राजाओंकी शिलालिपिसे जाना जाता है।

यादव, चालुक्य आदि देखो।

यहांके मन्दिरादिमें उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है कि महाप्रतापशाली विजयनगरके नरपतिवंशीय राजा कृष्णदेव रायलूने कितने मन्दिरोंका निर्माण और कितनेका जीर्णसंस्कार किया *। राजा कृष्णदेवने १५०८से १५३० ई० तक राज्य किया था। स्थानीय प्रवादसे ज्ञात होता है, कि ११वीं शताब्दीमें यहां मुकन्ति नामक एक सरदार आधिपत्य करते थे और वे चोल राजाओंके सामन्तरूपसे गिने जाते थे। चोलराजाओंके पूर्ववर्त्ती समयका कोई ऐतिहासिक-तत्त्व मालूम न होनेके कारण यह अनुमान किया जाता है कि कडापा, बेलारी, अनन्तपुर, कर्णूल आदिके जैसे इस प्रदेशके अपरापर अंश प्रसिद्ध दण्डकारण्यके निविड़ गर्भमें निहित थे। केवलमात्र वाणिज्यके उपयोगी समुद्रतीरवर्त्ती बन्दर पूर्वोक्त राजाओंके अधिकारभुक्त रहनेके कारण यह स्थान भारतका प्राचीन वाणिज्य-गौरव समझा जाता था। मुकन्तिके बाद १२वीं शताब्दीमें सिद्दराज यहां राज्य करते थे। इस समय यादववंशीय कई एक सरदारोंने इस जिलेके उत्तरांशमें राज्य स्थापन किया।

नेल्लूर नगरके अति प्राचीन अधिवासी वेङ्कटगिरिके राजवंशधरोंकी प्राचीन वंशावलीसे जाना जाता है, कि इस वंशके पूर्वपुरुषोंने मुसलमानोंके साथ अनेक बार युद्ध किये थे। सम्राट् अलाउद्दीनके राजत्वकालमें मालिक काफुरने १३१० ई०में इस प्रदेश पर आक्रमण किया। पीछे कुतुवशाही वंशीय मुसलमानोंने १६८७ ई०में दाक्षिणात्य जीत कर गोलकुण्डामें राजधानी बसाई।

पहले लिखा जा चुका है, कि नेल्लूर नगरका कोई धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। इसका एकमात्र कारण यह है कि उस समयके राजाने इस नगरमें अपना आवास वा राजधानी बसानेकी इच्छा ही न की थी। १६२५ ई०में इस जिलेके आर्मेगोन नगरमें अङ्गरेज-वणिकोंके अवस्थानसे ही इस जिलेका इदानीन्तन इतिहास आरम्भ होता है।

१६२१ ई०में ओलन्दाजसे आम्बयना नगरमें अङ्गरेजोंके निहत और निर्जित होने पर इष्ट-इण्डिया कम्पनी नामक वणिक-सम्प्रदायने करमण्डल उपकूलके मछलीपत्तन और पट्टपोलि (वर्त्तमान नाम निजामपत्तन) नगरमें अपनी वाणिज्यकोठीमें आ कर आश्रय लिया। इसके चौदह वर्ष बाद ओलन्दाजोंके उत्पीड़नसे जर्जरित हो कर फ्रान्सिस डे नामक अंगरेज कर्मचारी दलबलके साथ दुर्गाराजपत्तन ग्राममें भग गये। उक्त ग्राममें पहुंचनेसे ग्रामपति मुदालियरने अङ्गरेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। उन्हें दमन करके डे साहबने उक्त मोड़लरके नामानुसार इस ग्राममें आर्मुगम मुडेलियर नामक एक दुर्ग बनवाया। इसके १४ वर्ष बाद १६३८ ई०में मन्द्राजके सेण्ट जार्ज दुर्ग स्थापित हुआ।

१८वीं शताब्दीमें अङ्गरेज और फरासीके 'कर्णाटक-युद्ध'-से ही यहांकी प्रकृत ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख मिलता है। इस समयका इतिहास पढ़नेसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि दाक्षिणात्यके पूर्व उपकूलमें फरासी

---

* Sewell's List of Antiquities, Madras I. p 144

और अङ्गरेज लोग अपना अपना आधिपत्य फैलानेमें विशेष यत्नवान् थे। १७४९ ई०में नासिरजङ्गने अपने भाई नवाब मजफ्फर अलीसे प्रदत्त नेल्लूरप्रदेशका शासनभार प्राप्त किया। इसी बीच मजफ्फर जङ्ग नामक किसी मुसलमानने नेल्लूर नगरमें प्रवेश कर नासिर जङ्गको निकाल भगाया। जब वह तिरुपतिका मन्दिर ध्वंस करनेको आगे बढ़ा, तब मन्दिरका रक्षाभार अङ्गरेजोंके हाथ समर्पित हुआ। दोनों दलमें घनघोर युद्ध चला। पहले अङ्गरेजोंकी दो बार हार हुई, पर पीछे उन्होंने [illegible] पर आक्रमण कर उन्हें कैद कर लिया।

नासिरजङ्गने राज्यमें प्रतिष्ठित हो कर कुछ दिन पीछे (१७५० ई०में) अपनी स्वाधीनता उच्छेद करनेके लिये भाईके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। नवाब मजफ्फर अलीने अपने अङ्गरेज बन्धुका आश्रय ग्रहण किया। नासिरजङ्गने भी अपना पक्ष दृढ़ रखनेके लिये फरासीसियोंकी सहायता ली। युद्धमें अङ्गरेजोंकी हार हुई। कर्णेल फार्ड इस क्षतिसे उत्तेजित हो कर मन्द्राज लौटे। १७५८ ई०में नासिरने बसालत जङ्ग और महाराष्ट्रोंको अङ्गरेजोंके विरुद्ध उभाड़ा। १७५९ ई०में जब उनके सेनापति आपको सेना ले कर मन्द्राजसे अपदस्थ हुए, तब उन्होंने अङ्गरेजोंसे सन्धि कर ली। पीछे वे अङ्गरेजोंके उस प्रदेशके शासनकर्त्ताके पद पर नियुक्त हो कर अङ्गरेजोंको वार्षिक तीन हजार 'पगोड़ा' देनेको राजी हुए। १७८० ई०में टीपू सुलतानके साथ जब अङ्गरेजोंका युद्ध छिड़ा, तब अङ्गरेजोंने अपने हाथमें कर्णाटप्रदेशका राजस्व वसूल करनेका भार ले लिया। १७९२ ई०में टीपूके साथ सन्धि होने पर उनका शासनभार पुनः नवाबके हाथ दे दिया गया। पीछे १८०१ ई०में अङ्गरेजोंने सदाके लिये इस प्रदेशका शासनभार अपने हाथ ले लिया। जिलेभरमें १ कालेज, १८ सेकेण्डरी, ८८३ प्राइमरी और ७ ट्रेनिंग स्कूल हैं। शिक्षाविभागमें प्रतिवर्ष १७७००० रु० खर्च होते हैं। स्कूलके अलावा यहां १० अस्पताल और १० चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह नेल्लूर और [illegible] तालुक ले कर संगठित हुआ है।

३ नेल्लूर उपविभागका एक तालुक। यह अक्षा० १४ ११´ से १४ ४१ उ० और देशा० ७९ ४९` से ८० ११` पू० के मध्य अवस्थित है। इसके पूरबमें बङ्गालकी खाड़ी पड़ती है। भूपरिमाण ४१८ वर्गमील और जनसंख्या लगभग २२६१२८ है। इसमें नेल्लूर और [illegible] नामके दो शहर और १९८ ग्राम लगते हैं। पिनर नाम-की नदी तालुकको दो भागोंमें विभक्त करती है। यहां धानकी अच्छी फसल लगती है।

४ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १४ २७` उ० तथा देशा० ७९ ५९` पू०, पिनर नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या तीस हजारसे ऊपर है। इस नगरका प्राचीन नाम सिंहपुर था। यहांका मूलस्थानेश्वरका मन्दिर कुलत्तुङ्ग नामक किसी राजाके बनाया गया है। शिलालेखमें ये 'कुलत्तुङ्ग महाराज' नामसे प्रसिद्ध हैं। यहां मुसलमानोंके समयका एक किला है।

बादमें यह शहर '[illegible]' नामसे प्रसिद्ध हुआ। आज भी विक्रमसिंहपुर नामसे पुकारा जाता है। इस नगरकी सड़क और आबहवा उतनी खराब नहीं है। यूरोपियनोंके वासस्थानके दूसरे पार्श्वमें नरसिंह स्वामीका पर्वतके ऊपर बहुतसे मन्दिर विद्यमान हैं। यहां १३वीं शताब्दीमें 'तिक्कना सोमयाजी' नामक एक कविने तेलुगु भाषामें समस्त महाभारतका अनुवाद किया। इन्होंके समसामयिक केतन नामक एक और कविने भी रामायणका अनुवाद कर विद्यावर्गके गौरवकी रक्षा की थी। राजकवि [illegible] राजा [illegible]देवकी सभामें वर्त्तमान थे। १८६६ ई०में यहां म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है। शहरकी आय प्रायः ४४००० रु० है। यहां यूनाइटेड फ्री चर्च मिशन हाई स्कूल और वेङ्कटगिरि राजाका हाई स्कूल है। इसके सिवा और भी कितने स्कूल हैं।

नेवगी (हि॰ पु॰) नेगी।

नेवछावर (हि॰ स्त्री॰) निछावर देखो।

नेवज (हि॰ पु॰) देवताको अर्पित करनेकी वह खाने पीनेकी चीज जो देवताको चढ़ाई जाय, भोग।

नेमता (फा॰ पु॰) नियामत।

नेवारी (फा॰ स्त्री॰) एक फूलका नाम।

नेवटिनो—अयोध्या प्रदेशके उनाव जिलेका एक नगर। यह मोहन नगरसे दो मील दक्षिणपश्चिम साईनदीके किनारे अवस्थित है। एक समय दीक्षित उपाधिधारी राजा राम शिकारको बाहर निकले और इस स्थानकी स्वाभाविक सुन्दरता देख कर मोहित हो गये। पीछे उन्होंने जङ्गल कटवा कर नेवटिनो शहर बसाया। नगरके एक स्थानमें प्राचीन राजाओंका दुर्ग था। वर्त्तमान अधिवासी टीले नामक स्थानको उसका ध्वंसावशेष बतलाते हैं। दीक्षित वंशीय राजाओंने यहां बहुत दिन तक राज्य किया था। अन्तमें गजनीपति महमूदके सेनापति सरिन महमद और जहीर-उद्दीनने भारत वर्ष पर चढ़ाई कर राजाको राज्यसे निकाल भगाया और स्वयं राज्यभार ग्रहण किया। उक्त दोनों मुसलमानके वंशधर आज भी इस नगरमें वास करते हैं। शहरकी दिनों दिन उन्नति होती जा रही है।

नेवतना (हिं० क्रि०) निमन्त्रित करना, नेवता भेजना।

नेवतहरी (हिं० पु०) न्योतहरी देखो।

नेवता (हिं० पु०) न्योता देखो।

नेवती—बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिलान्तर्गत एक बन्दर। यह अक्षा० १५° ५५' उ० और देशा० ७३° २२' पू० पोर्त्तगीज राजधानी गोआसे १८ कोस उत्तरपश्चिममें अवस्थित है। पहले यह नगर बीजापुरके अधीन था। यहां एक दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है। मि० रेनल आदि पुराविदोंने इस स्थानको टलेमी-कथित 'मिङ्ग' वा प्लिनी-कथित 'निट्रयस' बतलाया है। अभी इस स्थानके वाणिज्यकी श्रीवृद्धि जाती रही, दिनों दिन इसका ह्रास होता जा रहा है। १८१८-१८ ई०में अंगरेजी सेनाने इस बन्दर पर आक्रमण किया और गोलेके आघातसे दुर्गको तहस नहस कर महाराष्ट्रोंके हाथसे छीन लिया।

नेवधुरा—युक्तप्रदेशके कुमायुन जिलान्तर्गत एक गिरिपथ। यह अक्षा० ३०° २८' उ० और देशा० ८०° ३७' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका दूसरा नाम रङ्ग-विटङ्ग है। यहांसे धौलानदी निकली है। यह सङ्कट पार कर उत्तरकी ओर जानेसे हूणदेश अथवा तिब्बतका दक्षिण-पश्चिम प्रदेश मिलता है। यहां बहुसंख्यक भूटियोंका वास है। ये धर्मनगरसे बकरे और भेंड़ेकी पीठ पर धान, गेहूं आदि अनाज, बनात, रुई, लोहेकी बनी वस्तु तथा अन्यान्य द्रव्य लाद कर वाणिज्यके लिये यहां लाते हैं और यहांसे लवण, स्वर्णचूर्ण, सोहागा और पशमादि ले जाते हैं। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे १५,००० फुट ऊँचा है।

नेवर (हिं० पु०) १ पैरका गहना, नूपुर। (स्त्री०) २ घोड़ेके पैरका वह घाव जो दूसरे पैरकी ठोकर या रगड़से हो जाता है। ३ घोड़ेके पैरमें पैरकी रगड़।

नेवरा (हिं० पु०) लाल कपड़ेकी झारीकी खोली।

नेवल (हिं० पु०) नेवर देखो।

नेवलदास—एक हिन्दी-कवि। इनकी कविता सरस और मधुर होती थी। इनका कविता-काल १८२१ संवत् कहा जाता है।

नेवला (हिं० पु०) चार पैरोंसे जमीन पर रेंगनेवाला हाथ सवा हाथ लम्बा और ४-५ अंगुल चौड़ा मांसाहारी पिंडज जन्तु। यह देखनेमें गिलहरीके आकारका पर उससे बड़ा और भूरे रंगका होता है। विशेष विवरण नकुल शब्दमें देखो।

नेवही—राजपूतानेके अन्तर्गत अजमीरका एक नगर। यह जयपुर राजधानीसे ३७ मील दक्षिणपूर्व अक्षा० २६° ३१' उत्तर और देशा० ७५° ४४' पू०के मध्य अवस्थित है। सौ वर्ष पहले यह नगर खूब समृद्धिशाली था और इसका आयतन भी विस्तृत था। अमीर खांने जब इस नगरको लूटा था, उस समय यहांके अधिवासी दूसरी जगह भाग गए। पीछे १८१८ ई०में जब यहां शान्ति स्थापित हुई, तब लोगोंकी संख्या धीरे धीरे बढ़ने लगी। इसके पश्चाद्भागमें सरल भावमें दण्डायमान उच्च पर्वत और सामनेमें जयपुर तक विस्तृत प्रान्तरभूमि है। पर्वतके ऊपर नहरगढ़ नामक दुर्ग है। उस दुर्गकी रक्षाके लिये १५ गोलाकार मोर्चे बने हुए हैं। नगरके सम्मुखस्थ बालुकामय जमीन पर इमली और पीपलके पेड़ खूब लगते हैं। इसके अलावा यहां जगह जगह उद्यान, देवमन्दिर, कृत्रिम चहबच्चा और सतीदाहके स्मृतिस्तम्भ रक्षित हैं।

नेवा (हिं० पु०) १ रीति, दस्तूर, रवाज। २ लोकोक्ति, कहावत। (वि०) ३ नाईं, समान।

नेवाज (हिं॰ वि॰) निवाज देखो।

नेवाज—१ हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म सम्वत् १८०३में हुआ था। ये जातिके जुलाहे तथा बिलग्राम-वासी थे। इनकी कविता-रचना अच्छी होती थी।

२ एक हिन्दी कवि। ये जातिके ब्राह्मण और बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे। इन्होंने १८०० संवत्में शकुन्तला नाटक नामक एक पुस्तक बनाई है। ये असोथरके राजा भगवन्त राय खीचीके यहां रहते थे।

नेवाजना (हिं॰ क्रि॰) निवाजना देखो।

नेवाड़ा (हिं॰ पु॰) निवाड़ा देखो।

नेवार—नेपालराज्यवासी आदिम जातिविशेष। जो स्थान अभी नेपालराज्य कहलाता है और जिस उपत्यकाभूमि पर वर्त्तमान काठमण्डू नगर बसा हुआ है वही स्थान इस जातिका आदि वासस्थान है।

नेपाल ग्रन्थमें लिखा है, कि इस स्थानमें बौद्धकुल नागजातिका वास रहनेके कारण तिब्बतवासी हिमालयको इस तटभूमिको 'नागदेश' कहते थे (तिब्बतीय भाषामें नाग शब्दका अर्थ पन्नग है)। यह स्थान बहुत पहलेसे ही 'नें' नामसे प्रसिद्ध था। 'नें' नामक स्थानके अधिवासी होनेके कारण ये लोग नेवार वा नेवारी कहलाने लगे। आदिम नेवार जाति बहुत पहले असभ्य रहने पर भी क्रमशः बौद्धधर्मकी उन्नतिके साथ साथ अपनेको भी उन्नतिके सोपान पर चढ़ानेकी चेष्टा की थी। ये ही लोग नेपालमें प्रवर्त्तित बौद्धधर्ममतके स्थापनकर्त्ता हैं। अभी नेपालराज्यमें जो सब प्राचीन बौद्ध और हिन्दूमूर्त्ति देखी जाती हैं वह इन्होंके उद्यम और यत्नसे बनाई गई थीं। पाश्चात्य 'नें' नामक स्थानवासी पूर्वतन नेवारियोंके गौरव और सम्मान रक्षार्थ उन्हींकी वासभूमिके नाम पर इस राज्यका नाम 'नेपाल' हुआ था।

इनकी आकृति भोटिया लोगोंकी अपेक्षा खर्व है और मुखाकृति देखनेसे ये मङ्गोलीयके जैसे मालूम पड़ते हैं। भारतके साथ तिब्बतका सम्बन्ध रहनेके कारण दोनों जातिमें संस्रव हो गया है। बौद्धधर्मके प्राबल्यसे जब बौद्धमत तिब्बतमें प्रचारित हुआ और नेवारी लोगोंने भी जब बौद्धमत ग्रहण किया, उसी समयसे दोनों जातिमें आदान प्रदान होता था वा नहीं, ऐसा अनुमान किया जाता है। कारण नेवारजातिकी धर्मप्रथा, भाषा, वर्णाभिधान और उनकी आकारगठन प्रणालीके ऊपर लक्ष्य करनेसे यह स्पष्ट बोध होता है कि तिब्बतीय व खस भिन्न नेवारजातिके मध्य इस प्रकार प्रकारान्तर कभी भी होनेकी सम्भावना न रहती। इनके वर्त्तमान धर्मके कुछ क्रियाकलाप ही इसके एकमात्र निदर्शन हैं।

बहुतोंका अनुमान है कि पूर्व समयमें नेपाल उपत्यका तथा इस देशके भी कर तुषारावृत हिमालय पर्वत पर्यन्त विस्तृत स्थानमें जो एक जाति वास करती थी वे चीन और तिब्बत जातिके मिश्रणसे उत्पन्न हुई थी। जिस समय बौद्ध गुरु मञ्जुश्रीने महाचीनसे नेपाल आ कर बौद्ध-धर्मका प्रचार किया था, उसी समय भारतवासीके साथ तिब्बतीय अथवा महाचीन-वासीके संस्रवसे यह नेवार जाति गठित हुई होगी। फिर नेवार जातिके तिब्बतीय पूर्वपुरुषगण हिन्दुस्थानवासी आर्य्यजातिके साथ विवाहादि करके उनके पूर्वदीक्षा तथा बौद्धमतके अनुसार ही नवविवाहित हिन्दुओंको धर्मप्रथामें कुछ सङ्करत्व उपस्थित कर दिये हैं। इस कारण नेपालमें प्रचलित बौद्धधर्मके साथ हिन्दुधर्मका सम्मिलन हो जानेसे उन लोगोंका बौद्धधर्ममत बहुत कुछ विकृत भावापन्न हो गया है। इन लोगोंमें हिन्दू शास्त्रोक्त नियमादिका विशेष आदर देखा जाता है।

किसी किसीका कहना है कि समय समय पर भारतवर्षके समतल देशसे अथवा उन परिव्राजक, तीर्थयात्री तथा प्रवासी हिन्दूगण नेपालको इस पवित्र उपत्यकाभूमिमें आ कर रहते थे। वे ही क्रमागत हिन्दूगण या इन लोगोंके प्रथम आगमनसे यहांके आदिमवासी अथवा औपनिवेशिक तिब्बत जातिके साथ विवाहादि सम्बन्धमें आबद्ध हुए हैं। इसी तरह सम्भव है कि भारतवासीके साथ तिब्बतीयके मिश्रणसे इस नेवार जातिकी उत्पत्ति हुई होगी। भारतसे ताड़ित हो कर अथवा आदेशसे ही धर्मप्रचारके उद्देश्यसे यहां आये, उनमेंसे अधिकांश ब्राह्मणजाति और जो तीर्थदर्शनके उपलक्ष अथवा हिमालयप्रदेश-परिदर्शनकी कामनासे

यहां आये, उनमेंसे बहुत कुछ हिन्दू थे। इन हिन्दू-प्रवासियोंके मध्य किसीने तो नेपाल आ कर बौद्धमत ग्रहण किया और कोई स्वधर्म के ऊपर आस्था स्थापन करके हिन्दूप्रथाके अनुसार क्रिया-कलापका निर्वाह करने लगे। नेपालप्रवासी दोनों मतावलम्बियोंने इस स्थानको स्वदेश बना लिया और वहांके आदिम अधिवासियोंकी कन्याये विवाह कर गृही हो गये। इस प्रकार प्राचीन पार्वतीय अधिवासियोंके मध्य हिन्दू और बौद्धमत एकत्रित हो जानेसे वे दोनों ही यहांके प्रधान मत समझे जाने लगे।

अति प्राचीन कालमें इस आदिम जातिके मध्य जातिगत किसी प्रकारका पार्थक्य देखा नहीं जाता था। ये लोग जिस प्रकार भारतके प्रान्तदेशमें पर्वतके ऊपर वास कर जगत्के स्वाभाविक सौन्दर्य पर मोहित होते थे, उसी प्रकार इस अत्युत्सुन्दर स्थानमें वास करके भी वे लोग स्वभावतः ही सरल और निरीह हो गये। बौद्धधर्म ग्रहण करनेके बाद इन लोगोंके मध्य उदासीन वा संन्यासी और गृही इन दो श्रेणियोंकी सृष्टि हुई। जो लोग बौद्ध-संन्यासी हैं वे बांढ़ा कहलाते हैं। धीरे धीरे यह बांढ़ाश्रेणी चार विभिन्न थाकोंमें विभक्त हो गई। इन चार श्रेणियोंके मध्य भी पुनः उच्च नीच देखे जाते हैं। जो श्रेणी जिस परिमाणमें योगाभ्यास करती है, उस श्रेणीके मनुष्य जनसाधारणमें उसी प्रकार श्रेष्ठता लाभ करते और समाजमें मान्यास्पद होते हैं। उधर गृहिगण नाना प्रकारके विषयकार्यों और व्यवसायमें उलझे रहते हैं।

जिन सब प्रवासियोंने हिन्दूधर्मको रक्षा की थी उनके वंशधरगण अथवा अन्यान्य नेवारीलोग भी काल-माहात्म्यसे हिन्दूधर्मके पक्षपाती हो उठे। पहलेसे जो सामान्य प्रक्रियादि उनमें लक्षित होती थीं, कालक्रमसे वह परिपुष्ट हो हिन्दूधर्ममें परिणत हो गईं। इस समय हिन्दूमतावलम्बियोंने सरल स्वभाववाले पूर्वतन अधिवासियोंमेंसे कितनेको हिन्दूधर्ममें दीक्षित किया। इस प्रकार एक समय नेपालराज्यमें ब्राह्मण-धर्मकी प्रतिष्ठा हुई। इसके बाद हिन्दूनेवारोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातिगत विभाग कल्पित हुए। हिन्दुओंमें यह भेद रक्षित होने पर भी बौद्धगण इस प्रकार किसी स्वतन्त्र नियमसे आबद्ध नहीं हुए।

धीरे धीरे नेवारियोंमें दो विभिन्न सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। जिन सब नेवारियोंने बौद्धमत ग्रहण किया, वे बुद्धमार्गी और जो हिन्दूधर्मके ऊपर आस्थावान् हुए, वे शिवोपासना करनेके कारण शिवमार्गी कहलाये।

इन दो श्रेणियोंके मध्य पूर्वापर किसी प्रकार वाद-विसम्वाद नहीं हुआ। समग्र नेवार जातिके मध्य प्रायः अर्द्धेक मनुष्य हिन्दूधर्मावलम्बी और अवशिष्ट सभी बौद्ध वा मिश्रभावापन्न हैं।

शिवमार्गी नेवारियोंके मध्य ब्राह्मणश्रेणीमें उपाध्याय, लवजु और भजु वा भाजू ये तीन विभिन्न उपाधियां हैं। क्षत्रियश्रेणीमें ठाकुर, वा मल्ल (ये आदि नेवार-राजवंशीय हैं, राज्यभ्रष्ट हो कर अभी गोर्खादलमें सैनिकका काम कर रहे हैं) और निखु (ये लोग देव-मूर्त्तिको रंगाते हैं) तथा वैश्यश्रेणीमें जोशि, आचार, वन्नि और गावक आचार-प्रभृति चार स्वतन्त्र उपाधियां हैं। क्षत्रिके मध्य शियासु और सेरिष्टा-नामक दो थाक देखनेमें आते हैं। ये लोग आपसमें आदान-प्रदान करते हैं। शूद्र श्रेणीमें सखि, लखिपर और वयो-थाख्र आदि तीन थाक हैं। ये लोग सभी दासवृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करते हैं। उक्त चौदह श्रेणियोंमें सभी हिन्दू हैं, कोई भी बुद्धकी पूजा नहीं करता और न बौद्धधर्म संक्रान्त मन्दिरमें जाता ही है। ये लोग आपसमें विवाह नहीं करते और न एक श्रेणी दूसरी श्रेणीके साथ भोजन ही करती हैं।

बुद्धमार्गी वा बौद्धधर्मावलम्बी नेवारोंमें तीन प्रधान श्रेणी-विभाग हैं—

१म।—गांड़ा वाण्ढा वा बांढ़ा, इनके मस्तक मुण्डित रहते हैं।

२य।—गोंड़ा बौद्ध। ये लोग जनसाधारणमें उदास नामसे प्रसिद्ध हैं, प्रत्येक सिरके ऊपर जूड़ा बांधता है।

३य।—निम्नश्रेणीके बौद्ध। ये लोग हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्मके सेवी हैं। सांसारिक अवस्थाकी हीनता वशतः ये लोग निम्नवृत्तिका अवलम्बन कर अपना गुजारा करते हैं।

प्रत्येक थोंक़ा श्रेणीके नेवारोंमें पुनः ८ स्वतन्त्र थाक हैं। यथा—१ गुभाजु, २ बड़ाजु ३ चिकु, ४ भिचु ५ भिमार, ६ भिमर माहि, ७ दहामि, ८ गथमाहि, और ९ चिचड़ा माहि। ये लोग लोहोंकिमके घी चर लोहे चांदीके अलङ्कार, लोहमयपात्रादि और अम्बू आदि बनाए, यहां तक कि समवार आदिके निकट बर्म भी करते हैं। द्वितीय उदासमध्ये भी—सभी महाजन वा व्यवसायीका काम करते हैं। एक थोंक़ा नेवार दक्षप करने पर उदास हो सकता है। किन्तु थोंक़ाकी अपेक्षा निकट उदास कर्म जो थोंका ये भी शुद्ध नहीं हो सकता। फिर जयाफ़-जेमारकी इच्छा करने पर वे जापु नेवारके समतुल्य हो सकते हैं। किन्तु जापुके विशेष चेष्टा करने पर भी वे उन्नत श्रेणीभुक्त नहीं हो सकते। जापु नेवारगण खेती बारी करके अपना गुजारा करते हैं। नेवार जातिके मध्य ये लोग उच्चवर्णभुक्त हैं। इनकी एक शाखा नवि है, ये लोग बड़े धनी होते हैं। वर्त्तमान उदास थोंकेके मध्य कसार, लोहार-कमि (जो पत्थर काट कर घर बनाते हैं), सिकमि, ताम्रकृत्, अवा अविकमि प्रभृति का वास है। तृतीय अर्थात् निम्निन सम्प्रदायके मध्य मल्ल, दट्टू, कुम्हार, बल्हुआ, जापु वा किसानियों, योगी, चित्रकार, हाता, छिपा लोहा वा भैकमि भी (नापित), दमि, पुस्पुव लोमा, लोमार, मद्मी (माली), काठकार, डरी तलौको, दुइवार, मला लगु दलो, पिहि, माथोया, गन्द्वापोया, कसामी, गोको, कसी, भाई वा कसाई, धोबी, कुल, पोंगे, कुल, पुरिया, चमुकसम, ह थार आदि १८ विभिन्न थाक पाये जाते हैं।

नेपाल देखो।

यह नेवार जाति ही एक समय नेपालकी सर्वमय कर्त्ता थी, यह नेपालके इतिहासमें विशेषरूपसे वर्णित है। नेवारराज धर्मदत्त देवपाटनमें शिवदेवका मन्दिर निर्माण कर उसमें आदि पशुपतिकी प्रतिष्ठा कर गये हैं और पशुपतिनाथका मन्दिर भी इन्हींके द्वारा स्थापित हुआ है। १६९१ ई०में देवपाटन दरबारके पार्श्वके उक्त मन्दिर का संस्कार हुआ था। मुसलमानोंके आक्रमणके समय मन्दिरका ताम्रकलश तोड़ फोड़ डाला गया था और नेवार रातको उन्होंको नेस्त कर गुफ्या बनवाया था *।

नेवारियोंमें भैरव और सर्पपूजा विशेष प्रचलित है। भैरवपूजाके विषयमें भिन्न भिन्न लोगो का भिन्न भिन्न मत है। कोई कहते हैं कि जिस प्रकार सभी आदिम असभ्य जातियोंके मध्य किसी किसी विशिष्ट वस्तुकी पूजा प्रचलित है, नेवारियोंमें भैरवपूजा भी उसी प्रकार है। फिर किसी किसीका कहना है, कि नेवारी लोग धर्मपूजाके ऊपर विशेष आस्थावान् हैं, इस कारण सर्पके एकमात्र आधार इस भैरव जातिका सम्मान किया करते हैं। किन्तु नेवार लोग कहते हैं कि इस भैरवके आज्ञानुसार ही मर्त्यभूमि पर वृष्टि होती है और वृष्टि होनेसे देश हरा भरा हो जाता है। भैरव ही देशकी उन्नतिका एकमात्र कारण है, यह जान कर वे लोग भैरवकी पूजा किया करते हैं। आपाम ड्योढीमें भी बड़ी धूमधामसे भैरवकी पूजा होती है।

नेवारी लोग कार्त्तिक मासकी शुक्ला पञ्चमीको सर्प पूजा करते हैं। इस दिन वे नाना प्रकारके द्रव्य ले कर किसी पुष्करिणीमें जाते और वहां उन सब द्रव्योंको रख कर हाथके सबोंसे अर्पित करते और मन्त्र पढ़ते हैं। मन्त्रका मर्म इस प्रकार है, "हे परमेश्वर भूमिनाथ! हम लोगोंकी प्रार्थनाके अनुसार यह उपहार ग्रहण कीजिए और समय समय पर जल दे कर हम लोगोंके अन्नकी रक्षा कीजिए।"

जब मञ्जुश्री महाचीनसे इस नेपालराज्यमें पधारे थे, उस समय काठमाण्डू वा उपत्यकादेश जलपूर्ण था। मञ्जुश्रीने अपनी अलौकिक क्षमता दिखलानेके लिये पर्वतको काट कर वह संचित जल बाहर बहा दिया। जलमें जो सब सर्प और अन्यान्य जलजन्तु थे वे धीरे धीरे जलस्रोतसे बाहर निकल पड़े। जब नागराज कर्कोटक दारसुख पर आ पहुंचे, तब मञ्जुश्रीने उन्हें भीतरमें रहनेका अनुरोध किया और उनके रहनेके लिये टक्का नामक एक विस्तृत ह्रद वा पुष्करिणी निर्दिष्ट कर दी। नागराज कर्कोटकका माहात्म्य-प्रकाशके लिये नेपालमें सर्पपूजा प्रचलित हुई।

* H. A. Oldfield's History of Nepal II, p. 258-259.

श्रावणमासकी नागपञ्चमीकी यह पूजा और उत्सव होता है। जहां चार या पांच जलधारा एक साथ मिल गई हैं, वही स्थान पूजाके लिये उत्कृष्ट समझा जाता है। इस पूजामें एक पुरोहित आवश्यक है। इस दिन यह पुरोहित प्रातःकृत्यादि समाप्त करके चावल, सिन्दूर, समान भागमें मिश्रित दुग्ध और जल, फूल, घृत, मक्खन, जायफल, मसाला, चन्दन और धूना आदि उपकरण एक पात्रमें रख नदीतट जाते और पूजा समाप्त करके घर लौटते हैं। अन्यान्य विवरण नेपाल शब्दमें देखो।

नेवारी (हिं॰ स्त्री॰) जूही या चमेलीकी जातिका एक पौधा। इसमें छोटे छोटे सफेद फूल लगते हैं। पत्तियां इसकी कुंद या जूहीकी-सी होती हैं। यह पौधा वर्षा-ऋतुमें अधिक फूलता है। फूलोंमें बड़ी अच्छी भीनी महक होती है। इसे वनमल्लिका भी कहते हैं।

नेवाल—अयोध्या प्रदेशके बाङ्गड़-मऊ नगरसे २ मील उत्तर कल्याणी नदीके समीप पचनाई नालाके ऊपर स्थापित एक प्राचीन ग्राम। यहां अनेक मूर्त्तिका और इष्टकादिके स्तूप देखनेमें आते हैं। यही भग्नावशेष इसके प्राचीनत्वका परिचायक है। यह कान्यकुब्जराजधानीसे प्रायः १८ मील दक्षिणपूर्व गङ्गानदीके किनारे अवस्थित है।

चीन परिव्राजक फाहियान और यूएनचुवङ्गका भ्रमण-वृत्तान्त पढ़नेसे जाना जाता है कि वे कान्यकुब्जसे बाहर निकल कर गङ्गानदी पार हुए। पीछे उक्त महानगरीसे प्राय ३ योजन* या १०० लीका† रास्ता तै कर वे दक्षिण दिशामें नवदेवकुल (No po-ti po Kiu-lo) नामक एक समृद्धिशाली नगर पहुंचे। यूएनचुवङ्गने इस नगरके नामके सम्बन्धमें लिखा है, कि बुद्धदेव यहां पांच सौ राक्षसोंको धर्मका उपदेश दिया। उन असुरोंने बुद्धदेवसे धर्मका उपदेश पा कर दस्युवृत्ति छोड़ दी और नया जन्म प्राप्त किया। इस स्थानसे नूतन देवजातिकी उत्पत्ति हुई, इस कारण ग्रामका नाम 'नवदेव-कुल' रखा गया।

डा॰ कनिंहम नेवाल ग्रामकी प्राचीन कीर्ति देख कर विस्मित हो गये और उन्होंने अनुमानसे समस्त ध्वंसावशेषको प्राचीन नवदेव-कुल नगरीका निदर्शन बतलाया। उन्होंने यह भी कहा है, कि यूएनचुवङ्गने नगरके परिदर्शनके समय जिन सब स्तूपादिका उल्लेख किया है, उनकी अच्छी तरह आलोचना करनेसे मालूम पड़ता है कि वर्त्तमान नेवाल और बाङ्गड़ मऊ नगरमें जो सब भग्न इष्टकादि और स्तूपादिका ध्वंसावशेष है, वही उस प्राचीन कीर्त्तिका रूपान्तरमात्र है। बाङ्गड़-मऊ नगरसे नेवाल दो मील दूर होने पर भी बाङ्गड़मऊके प्रान्तभागमें स्थित जो टीला देखा जाता है, उस स्थानसे नेवाल ग्रामकी दूरी एक मीलसे भी कम होगी। यूएनचुवङ्गने नवदेवकुल नगरका घेरा प्रायः तीन मील लिखा है। यदि ऐसा हो, तो अनुमानसे यह अवश्य कह सकते हैं, कि वर्त्तमान नेवालग्राम और बाङ्गड़मऊके अंशमें प्राचीन भग्न इष्टकादि हैं। उनका बहुत कुछ अंश ले कर उस समय बहुजनतापूर्ण समृद्धिशाली नवदेवकुल नगरी गठित हुई होगी।

यहांके ध्वंसावशेषके विषयमें अधिवासियोंके मुखसे ऐसा सुना जाता है, कि एक समय यह नगर बहुत समृद्धिशाली और हर्म्यादिसे परिपूर्ण था। मुसलमानोंके प्रथम आक्रमणके समय यहां नल नामक एक हिन्दू राजा वास करते थे। इस समय सैयद अलाउद्दीन बिन बाबुन नामक कोई फकीर इस स्थान पर रहनेकी इच्छासे कान्यकुब्जसे रवाना हुए। राजाने अपने राज्यमें यवनका वास होना पसन्द न किया और उस फकीरको दूसरे देश चले जानेका हुकुम दिया। फकीरने उनकी बातकी अवहेला कर दी। इस पर राजाने अपना अनुचर भेज कर उन्हें बाङ्गड़-मऊसे निकाल भगाया। जाते समय फकीरने शाप दिया, 'तेरा राज्य शीघ्र ही भूमिसात् होगा।' आज भी इस ग्रामके ध्वंसावशिष्ट अंशको यहांके लोग उल्ट खेरा (उलट पलट) नगर कहते हैं। उनका विश्वास है कि उस फकीरके शापसे यहां जितने मकान थे सभी उलट गये और उस भग्नावशेषका अभी केवल एक टीला रह गया है। फकीरको नेवाल-में स्थान न मिलने पर वे बाङ्गड़-मऊ नामक स्थानको

* Beal's Fa hian, chap, XVIII p. 71.

† Julien's Hwen Th-ang, Vol. II, p 265.

जान दिये। यहां उनकी कबरके ऊपर लिखा है कि ७०२ हिजरीमें उनकी मृत्यु हुई। सभी अधिवासी उन्हें यति वा ब्रह्मचारी मानते हैं।

किसी किसीका कहना है, कि यह काठ्‌-मण्ड नगर उक्त मुसलमान संन्यासीसे बसाया गया था किन्तु जन-साधारणोंमें ऐसा प्रवाद है, कि यहां काठ्‌ नामका एक योगी रहता था। उन्हींके नामानुसार इस नगरका नाम काठ्‌मण्ड पड़ा। मुसलमान संन्यासीकी कबरके सामने उनकी भी एक छोटी मढ़ी थी। जो कुछ हो यह बात सत्य नहीं होने पर भी उस समय अर्थात् ७वीं शताब्दीमें जब यह फकीर नेपाल नगरमें आये हुए थे, तब न नगरकी सुन्दरता देख कर विमोहित हो गए। इसमें जरा भी सन्देह नहीं। यहांके जिस समय यूएन-चुयङ्ग इस स्थानको देख गए थे, उस समय उनसे पर वर्त्ती छः शताब्दियोंमें भी उन सब प्राचीन कीर्त्तिके कुछ कुछ बच रहे थे यह सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है।

काठ्‌के समाधिमन्दिरमें जो प्रस्तरलिपि है उससे जाना जाता है कि यह मन्दिर ७८२ हिजरीमें फिरोज शाह तुगलकके राजत्वकालमें निर्माण किया गया था। मुसलमान समाधिमन्दिरकी ईंटें १२×१२ इंच हैं और उन पर उनको चार अङ्गुलियोंके चिह्न देखे जाते हैं। इसके बरामदे और अभ्यन्तरभागमें प्राचीन हिन्दू राजाओंके समयका स्तम्भ विद्यमान है। जिस ऊंचे टीलेके ऊपर यह मन्दिर स्थापित है वह किसी प्राचीन हिन्दू-कीर्त्तिके ध्वंसावशेष जैसा दिखनेमें आता है। नेपालमें प्राचीन ध्वंसावशेषके मध्य केवल ऊंचे ऊंचे टीले दीवार, ईंटें, पत्थरकी भग्न प्रतिमूर्त्ति खुदी हुई शिलाका कारुकार्य और मृत्तिकादि तथा भिन्न भिन्न समयकी मुद्रा और माला पाई जाती हैं।

यहां जितने टीले हैं उनमेंसे देवराज नामका टीला सबसे बड़ा है। इस स्थानको खोदते समय दो बड़े प्राचीर देखे गए थे जिनकी प्रत्येक ईंट १६×८ इंच लम्बी थी। शीतलादि टीलेमें एक चतुर्भुज विष्णुमूर्त्ति और कई एक बुद्धदेवके मुख पाये गए हैं। ग्रामसे प्रायः तीन हजार फुट पश्चिमोत्तर दिशामें 'धामोधिरों' नामका एक दूसरा बड़ा ऊंचा टीला है। यहां मायाकी के अधीन एक मन्दिर और कुछ प्रति मूर्त्तियां हैं। नेपाल ग्रामके उत्तरांशमें महादेव और पुनघाड़ी नामक दो स्थान हैं। यहांके मन्दिर ब्राह्मणधर्मके परिचायक हैं। इसके पूर्व और उत्तरपूर्व दिशामें अनगाई नालाके और भी कुछ स्तूप तथा इत्यादि देखे जाते हैं।

यूएनचुयङ्गने नवदेव नगरके विषयमें भी लिखा है—इस नगरके उत्तरपश्चिम तथा गङ्गाके पूर्वी किनारे एक देवालय था जिसका मण्डप और शिखर बहुत ऊंचा और कारुकार्य भी मनोरम था। नगरके एक क्रोश पूर्व तीन बौद्ध सङ्घाराम थे। उन सङ्घारामको पार कर दो सौ पाद जानेके बाद अशोकनिर्मित १०० फुट ऊंचा एक स्तूप देखा जाता है। यहां बुद्धदेवने सात दिन तक धर्ममतकी शिक्षा दी थी। इसी स्तूप पर उनका शरीर गाड़ा गया था। उसके पास ही पिछले चार बुद्धके बैठनेके आसन और उनके भ्रमणस्थान हैं। उपर्युक्त तीन सङ्घारामके पास थोड़ी उत्तर गङ्गाके किनारे अशोक निर्मित दो सौ फुट ऊंचा एक और स्तूप है। यहां बुद्धदेवने ५०० राक्षसोंको अपने मतमें प्रवर्त्तित किया था। इसके समीप चार बुद्धासन हैं। कुछ दूरमें बुद्धदेवका केश और नखपीठ नामक एक दूसरा स्तूप देखनेमें आता है।

वर्त्तमान नेवालग्राम और काठ्‌मण्डमें जो सब ध्वंसावशेष हैं उनके साथ यूएनचुयङ्ग-वर्णित बौद्ध और हिन्दू कीर्त्तियोंकी तुलना करनेसे दोनोंमें बहुत सादृश्य देखा जाता है। इसके सिवा जिस स्तूप पर काठ्‌ रहनेको कह है, प्रत्नतत्त्वविद् उसीको बुद्धदेवका केश और नखपीठ बतलाते हैं। कशोमाडो-कोरोसो (Csoma-de-Korose) साहबने अपनी तिब्बतीय बौद्ध ग्रन्थकी समालोचनाके समय एक ग्रन्थसे एक गल्पका उल्लेख किया है जो इस प्रकार है,—सम्भव नामक एक शाक्य कपिलवस्तुसे भगाये जाने पर वे बुद्धके नख और केश अपने साथ ले आये थे और बाहुङ्ग नामक स्थानमें रहने लगे थे। बाहुङ्गके राजा हो कर उन्होंने नख और केशको महीके अन्दर गाड़ दिया और उसके ऊपर एक चैत्यका निर्माण किया। यह कीर्त्तिस्तम्भ उन्हींके

सुनाम और कीर्त्तिका परिचायक है *। परिव्राजक युएनचुयङ्गने नवदेवकुलके जिस अंशमें बुद्धके केश और नख देखे थे और जो अभी वाङ्गडमऊ कहलाता है, सम्भवतः वही तिब्बतीय बौद्ध-ग्रन्थमें वाङ्गडके अपभ्रंशरूप नागुड नामसे लिखा गया होगा।

नेवालगञ्ज-कुम्महाराजगञ्ज—अयोध्या प्रदेशके उनाव जिलान्तर्गत दो गावसंलग्न नगर। यह अक्षा० २६° ४७' १०" उ० और देशा० ८०° ४५' २१" पू०, मोहननगरसे दो मील पूर्व अयोध्यासे लखनऊ जानेके रास्ते पर अवस्थित है। पहले नवाब सफदरजङ्गके नायब महाराज नवलरायने इस नगरको बसाया। पीछे अयोध्याके अन्तिम नवाब वाजिदअली शाहके राजस्व-सचिव महाराज बालकृष्णने उक्त नगरके समीप महाराजगञ्ज नामक एक नया शहर बसाया। वाजिदअली शाह अङ्गरेजोंसे नजरबन्द हो कर कलकत्ते के निकट मोचोखोलां (Garden Reach) नामक स्थानमें रहते थे। यहीं पर १८८७ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उक्त गञ्ज बहुत बड़ा है। दोनों नगरोंमें जाने आनेके लिये पुल बने हुए हैं। यहां पीतलके बरतन तैयार होते जो भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजे जाते हैं।

नेबूकाडनेजर—बाबिलन देशका एक प्रसिद्ध प्राचीन राजा। शायद उन्होंने ५९८ से ५६२ ई०सन्के पहले राज्य किया था। पिताकी जीवद्दशामें ही उनका यशःसौरभ चारों ओर फैल गया था। उनके पिता नवोपल सर मिदोयाराज सायकसारेश और इजिप्तराज निकोके साथ मिल कर ताइग्रीस नदीतीरवर्त्ती निनिभो नगर जय करनेके लिए अग्रसर हुए थे। ६०६ ईस्वीसन्के पहले आसिरीयगणके अधःपतन होनेसे उक्त राज्य विभक्त हो गया था। मिदोया प्रदेश और उत्तर आसिरीयासे सायलीसिया तकका भूभाग मिदोयाराज सायकसारेशके, आसिरीयाका दक्षिणांश और अरबके कुछ अंश बाबिलनराजके तथा सायलीसियाके दक्षिण और कारकेमिस देशके पश्चिमांशवर्त्ती स्थान इजिप्तके हाथ आये।

निनिभि देखो।

इसी युद्धमें नेबूकाडनेजर भी पिताके अनुवर्त्ती हुए थे। प्राचीन इतिहासमें वर्णित निनिभि-दुर्गकी जयमें उनको गुणगरिमा समग्र पश्चिम एशियामें फैल गई थी। उन्होंने अपने प्रतिभा-बलसे बाबिलनको एशियाके पश्चिम खण्डका केन्द्रस्थल बना लिया। निकटवर्त्ती राजाओंने इस समय इनके सामने अपना अपना सिर झुकाया था। ६०५ ईस्वी सन्के पहले इन्होंने पिताके आदेशानुसार इजिप्तराज द्वितीय निकोके विरुद्ध युद्धयात्रा की और उन्हें कारकेमिस नगरके समीप पराजित कर सोरिया पर दखल जमाया। ६०२ ईस्वीसन्के पहले पैलेस्तिनमें जब विद्रोह खड़ा हुआ था, तब वे दलबलके साथ वहां उपस्थित हुए थे। जाते समय इन्होंने टायरको जीता और जूडा नगर पर आक्रमण किया। इन्होंने जूडाराज जोहाइया चीनको राज्यच्युत करके सिंहासन पर अपने चचा जेडकियाको बिठाया। पैलेस्तिनका विद्रोह दमन कर इन्होंने जूडाराजको कैद कर लिया और आप बाबिलनको लौट आये। पीछे चचाके विद्रोही होने पर ५८८ ई०सन्के पहले आपने सेनापति नेबुजरदनको सेनाके साथ उन्हें दमन करनेके लिये भेजा। ५८७ ई०सन्के पहले जेडकिया पराजित हुए और जेरुजलमनगर उनके हाथ लगा। नगरमें प्रवेश कर इन्होंने मन्दिरादि तोड़ने और समग्र नगरको जला देनेका हुकुम दिया। जेडकियाकी आंखें निकाल ली गईं और उनके लड़के यमपुरको भेज दिये गये। जेरुजलमके पवित्र मन्दिरके तैजसादि और मूल्यवान् धनरत्नादि ले कर वे स्वदेशको लौटे। राहमें जूडानगर जीता और लूटा तथा वहांके गण्यमान्य व्यक्तियोंको कैद कर अपने साथ ले चले। उसी साल इन्होंने फिर टायर नगरको अवरोध किया। प्रवाद है, कि कई वर्ष अवरोधके बाद ५७२ ई०सन्के पहले यह नगर उनके अधिकारमें आया था।

इसी बीच यहूदियोंने पुनः विद्रोही हो कर कालदियाके शासनकर्त्ता गोदालियाकी हत्या की। इस अन्याय आचरणसे उत्तेजित हो कर नेबूकाडनेजरने पुनः ५८२ ई० सन्के पहले जेडानगर पर धावा बोल दिया और आबालवनिता सभीको कैद कर बाबिलन ले गये। पीछे मरुभूमिके प्रान्तवर्त्ती जातियोंको दमन करनेका सङ्कल्प

* Asiatic Researches of Bengal, Vol. XX. p. 88.

किया तथा परवर्त्ती पश्चात्य भागों पर भी दखल जमाया।

६०२ ई०सन्‌के पहले आप अपनी सेनाके अधि-नायक हो कर इजिप्ट राज्यमें गए और वहांके अधिपति फेरोको पराजित कर राज्यमें लूटमार मचाने लगे। पीछे यहूदिया नामक एक सेनापतिको उस प्रदेशका शासनकर्ता बना कर आप बाबिलन लौटे। उस समय बाबिलन राज्य उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था।

महाप्रभावशाली सम्राट्‌ नेबुकाडनेजरके राजत्व कालमें जो वाणिज्यकी उन्नतिकी पराकाष्ठा भारतमें हुई थी, उनके शासनकालमें इजिप्ट और बाबिलनवासो भारतवर्षमें वाणिज्यके लिये आया करते थे। उनके प्रतिद्वन्द्वी इजिप्टराज २य निकोने वाणिज्यविस्तारके लिए नीलनदीके साथ लोहितसागरके संयोगार्थ एक नहर काटनेका इरादा किया।

नेबुकाडनेजरने बहुतसे मन्दिर बनवाये थे। इनमें उनका प्रसिद्ध 'बेल्स मन्दिर' और 'बिर्स-निमरुद्‌' इति नामक स्तम्भ, यूफ्रेटिस नदीके किनारे अवस्थित तीर्थस्थान और अन्य मन्दिर-समूह तथा वे बिशाल नगरके चतुर्दिक्‌स्थ विख्यात और प्रशस्त प्राचीरका इन्होंने पुनर्निर्माण कराया। ये विशाल महानगरीमें जो 'आकाश उद्यान' (Hanging Garden of Babylon) सम्म जगत्‌के मध्य आश्चर्यकीर्त्ति समझा जाता है और जो निर्माताके अलौकिक कार्य तथा असीम क्षमताका परिचायक है, सम्राट्‌ नेबुकाडनेजर अपरिमित अर्थ व्यय करके जगत्‌में वह अपूर्व कीर्त्तिकी प्रतिष्ठा कर गए हैं।

दानियेल-लिखित घटनावलीके पढ़नेसे जाना जाता है कि नेबुकाडनेजर वृद्धावस्थामें उन्माद रोगग्रस्त हुए। ई०सन्‌ ५६१ वर्षके पहले उनकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र अविल मरदकने राज्यभार ग्रहण किया। दानियेल और एक्लिसायेस्त पुस्तकमें उनके नामकी विभिन्न परि-भाषा देखी जाती है। किलुस्न शिलालिपिमें उनके तीन नाम देखे जाते हैं नबोकोद्रोसर, नबुचद्रसर और नबु-कुद्रसर। मुसलमान ऐतिहासिकोंने इन्हें 'बखत्‌ नस्र नसर' नामसे उल्लेख किया है।

नेष्ट (सं० त्रि०) न इष्टम्‌, नञर्थस्य न शब्देन सह सुप्‌-सुपेति समासः। १ अनिष्ट। २ तन्त्रशास्त्रनिषिद्ध जो शास्त्र-में निषिद्ध बतलाया गया है, उसका अनुष्ठान करनेसे अनिष्ट होता है, इसीसे उसे नेष्ट कहते हैं।

नेष्टा (हिं० पु०) नेष्टृ देखो।

नेष्टु (सं० पु०) निय-तुन्‌। लोष्ट, ढेला।

नेष्टृ (सं० पु०) नयति प्रमिमिति नी-तृन्‌ प्रत्ययेन साधुः (नप्तृनेष्टृ त्वष्टृहोत्रि। उण् २।९५) १ ऋत्विक। २ त्वष्टृ देव, त्वष्टा देवता।

नेस (फा० पु०) बड़ी जानवरोंके मुंहमें सबसे दांत जिनसे वे काटते हैं।

नेसकुन (हिं० पु०) बन्दरोंका छोड़ा खाना।

नेसर्गी—बम्बई प्रदेशके बेलगांव जिलान्तर्गत सम्पगांव तालुकका एक नगर। यह सम्पगांव शहरसे ११ कोस उत्तर बेलगांवसे कलादगी जानेके रास्ते पर अवस्थित है। प्रति सोमवारको यहां हाट लगती है। कृषिकर्म और व्यवहार निर्माण यहांके अधिवासियोंका प्रधान व्यवसाय है। यहांका बालप्पाका मन्दिर बहुत प्राचीन है। इसके स्तम्भोंका कारुकार्य बड़ा ही सुन्दर है। मन्दिरके सामने कार्त्तिक मासमें उनके प्रति वर्ष एक उत्सव होता है। रट्ट वंशीय राजा ४र्थ कार्त्तवीर्य्यके राजत्वकालमें ११८१ शकमें उत्कीर्ण एक शिला-लिपि मन्दिरमें संलग्न है। उक्त शिलाफलकसे जाना जाता है कि नेसर्गी आदि कई ग्रामोंके शासनकर्त्ता मल्लिकार्जुनने तीन मन्दिर बनवाये और राजा कार्त्तवीर्य के आदेशानुसार उक्त मन्दिरादिके व्ययके लिए कुछ भूमि दान की गई। यहांके अर्धमण्डप जैन-मन्दिरमें जो जिनमूर्त्ति प्रतिष्ठित है उसके नीचे ११वीं या १२वीं शताब्दीके प्रचलित अक्षरोंमें खोदित एक और शिलालिपि है। १८०० ई०में दुन्धियावाघका पीछा करनेमें मराठोंके 'देसाई' सरदार दलबलके साथ अंग्रेज सेनापति वेलेस्लीके साथ मिल गए थे।

नेस्त (फा० वि०) जो न हो।

नेस्ती (फा० स्त्री०) १ अनस्तित्व, न होना। २ आलस्य। ३ नाश, बरबादी।

नेह (हिं॰ पु॰) १ स्नेह, प्रेम, प्रीति। २ चिकना, तेल या घी।

नेहङ्ग खाँ—एक अविसिनीय सेनापति। निजामशाही राज्यमें जब चाँदबीबी बालकराज बहादुर खाँको अभिभाविका हुई थीं, उस समय (१६८४ ई॰में) नेहङ्ग खाँ सेनापतिके पद पर नियुक्त थे। राजा इब्राहिम खाँको मृत्यु के बाद प्रधान मन्त्रोने मियां मञ्जू अहमद नामक एक दूसरे बालकको राजा बनानेका विचार किया। सेनापति इखलास खाँने अहमदके राजवंशोयत्व पर सन्देह करते हुए एक और बालकको राजा बना कर घोषणा कर दी। नेहङ्ग खाँने प्रथम बुरहान निजाम शाहके वृद्ध पुत्र शाहअलीको भी जिनकी उम्र ७० वर्षको थी, सिंहासनके प्रार्थिरूपमें उपस्थित किया। इधर सुलताना चाँदबीबीने इब्राहिमके पुत्र बहादुरको यथार्थ उत्तराधिकारी समझ रखा था। इस प्रकार एक सिंहासन पर तीन बालक राजपदके प्रतिद्वन्द्वी हुए। अकबरके पुत्र मोरदने मियां मञ्जूका साथ दिया। मुगलयुद्धमें इखलास खाँ पराजित हुए। नेहङ्ग खाँ मुगलसेनाको भेद करते हुए अहमदनगर गढ़में पहुँचे और चाँद सुलतानाके साथ मिल गए। सिंहासन प्रार्थी शाहअली युद्धमें अपने अनुचरोंके साथ मारे गए। इसके बाद नेहङ्ग खाँ
६ मन्त्रिपद पर अभिषिक्त हुए। इस समय चाँदबीबीके साथ सम्राट् अकबरका युद्ध छिड़ा। अकबरके अधीन जब मुगल लोग अग्रसर हुए, तब नेहङ्गने पहले तो उन्हें रोकनेकी खूब कोशिश की, लेकिन पीछे उन्हें जूनीर नामक स्थानमें भाग जाना पड़ा।

बहादुर निजामशाह देखो।

नेहाल—पार्वत्य आदिम जातिविशेष। बरारके अन्तर्गत बरदा नदीके किनारे मैलघाट नामका जो पर्वत है उसके जङ्गलमें इनका वास है। ये लोग फल मूल खा कर अपना गुजारा करते हैं। जातिमें ये गोंड़से निकृष्ट समझे जाते हैं। कहीं कहीं इस जातिके लोगोंने गोंडके यहां दासत्व स्वीकार कर लिया है। खान्देशमें ये लोग भील जातिके साथ एक श्रेणीमें आबद्ध हैं।

नै (हिं॰ स्त्री॰) १ नदी। (फा॰ स्त्री॰) २ बांसकी नली। ३ हुक्केकी निगाली। ४ बांसुरी।

नैःस्व (सं॰ क्लो॰) निःस्वस्य भावः, अण्। निर्धनता।

नैक (सं॰ त्रि॰) न एकः नञर्थ-शब्देन सहसुपेति समासः। १ अनेक, बहुत। (पु॰) २ विष्णु।

नैकचर (सं॰ त्रि॰) नैकः संघोभूय चरतीति चर-ट। संघोभूयचारी, जो अकेले न चलते हों, झुंडमें चलते हों, जैसे सूअर, भेड़िया, हिरन आदि।

नैकज (सं॰ पु॰) नैकधा जायते जन ड, पृषोदरादित्वात् धा लोपः। धर्मरक्षाके लिये अनेक बार जायमान परमेश्वर।

नैकटिक (सं॰ त्रि॰) निकटे वसति निकट-ठक् (निकटे वसति। पा ४।४।७३) निकटवर्त्ती, निकटस्थ, समीपस्थ।

नैकट्य (सं॰ क्लो॰) निकटस्य भावः, निकट-ष्यञ्। निकटत्व, निकट होनेका भाव।

नैकती (सं॰ स्त्री॰) नैकं तायते ताय-ड, गौरादित्वात् ङीष्। १ गोष्ठी। तत्र भव पलाद्यादित्वात् अण्। (त्रि॰) २ नैकत-गोष्ठीभव।

नैकदृश (सं॰ पु॰) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १३।२५३ अ॰)

नैकधा (सं॰ अव्य॰) नैक प्रकारे धाच्। अनेक प्रकार, कई तरह।

नैकपृष्ठ (सं॰ पु॰) राजपुत्रभेद।

नैकभेद (सं॰ त्रि॰) नैको भेदोयस्य। उच्चावच, अनेक प्रकारका।

नैकमाय (सं॰ त्रि॰) नैका माया यस्य। १ अनेक कपट, बहुप्रकार मायायुक्त। (पु॰) २ परमेश्वर।

नैकरूप (सं॰ त्रि॰) नैकं रूपं यस्य। १ नानारूप। (पु॰) २ परमेश्वर।

नैकवर्ण (सं॰ त्रि॰) बहुवर्णसमन्वित।

नैकशस् (सं॰ त्रि॰) बहुवार, अनेकबार।

नैकशस्त्रमय (सं॰ त्रि॰) नानाविध अस्त्रसंयुक्त।

नैकशृङ्ग (सं॰ पु॰) नैकानि चत्वारि शृङ्गाणि यस्य। परमेश्वर। "नैकशृङ्गो गदाग्रजः" (विष्णुस॰) भगवान् विष्णुके तीन पैर और चार सींग माने गये हैं।

नैकषेय (सं॰ पु॰) निकषाया अपत्यं ढक्। निकषात्मज, राक्षस।

नैकभीतु (स॰ पु॰) मेरुके समीपका एक पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम।

नैकमायाचर (स॰ पु॰) नैकमायी चरतीति चर ट। शिव, महादेव।

नैकात्मन् (स॰ पु॰) नैक आत्मा स्वरूप यस्य। पर ब्रह्म परमेश्वर।

नैकृष (स॰ स्त्री॰) वेणामयोज कपासकोटेका बोया।

नैकृतिक (स॰ त्रि॰) निकृत्या परापकारेण जीवति निकृत्या निकृन्तता चरति वा निकृति ठञ्। १ दूसरेको हानि करके निष्ठुर कार्यका करनेवाला। २ बदमाश।

नैनगुना—अहिछत्रके अन्तर्गत एक क्षुद्र नगर। यह विलनहुर्गसे २१ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है।

नैगम्य (स॰ त्रि॰) निगमनयोग्य, चोदने या गाड़ने लायक।

नैगम (स॰ क्ली॰) निगम एव स्वार्थे अण्। १ ब्रह्म प्रतिपादक उपनिषद्रूप वेदभाग। २ नय नीति। निगमे भव अण्। ३ वणिक जन। ४ नागर। ५ निघण्टु पर्यायभेद। ६ वृत्ति। ७ पथ। ८ नायक। ९ नगरवासी मनुष्य। (त्रि॰) १० निगमसम्बन्धी। ११ जिसमें ब्रह्म आदिका प्रतिपादन हो। १२ निगम शास्त्रवेत्ता।

नैगम—चक्री जातिके एक राजा। सोमवंशानुक्रममें राजा आहविकके वंशमें इनका जन्म हुआ था। एक दोष इनमें कुछ देखता थे।

नैगम—देवांश। बुद्धशिलालिपिमें लिखा है, कि विष्णुवर्द्धन राजाके समयमें यहिदत्त नामक किसी राज कर्मचारीने नियमविद्याका विशेष आदर हुआ। इन्होंने एक शिलालिपिमें यहिदत्तको नैगमका आदि पुरुष बतलाया है।

नैगमनय (स॰ पु॰) वह नय या तर्क जो द्रव्य और पर्याय दोनोंको सामान्यविशेषयुक्त मानता हो और कहता हो कि सामान्यके बिना विशेष और विशेषके बिना सामान्य नहीं रह सकता।

नैगमिक (स॰ त्रि॰) निगमे भवः, तत्र व्याख्यातो वा अध्यात्मादित्वात् ठञ्। १ निगमभव, जो निगमसे उत्पन्न हो। (स्त्री॰) २ तनुमायस्थान धन्य। ३ वेदका अध्याय।

नैगमेय (स॰ पु॰) १ कुमारानुचरभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम। २ सुश्रुतोक्त बालग्रहभेद।

नैगमेष (स॰ पु॰) सुश्रुतीय बालग्रहभेद। सुश्रुतमें ९ बालग्रहभेदका उल्लेख है जिनमेंसे नैगमेष नवम ग्रह है। इसके द्वारा पीड़ित होनेसे बच्चेके मुंहसे फेन गिरता है, वे रोते हैं, बेचैन रहते हैं, उन्हें ज्वर होता है तथा उनकी दृष्टि ऊपरको टंगी रहती है और देहसे चरबीका-सा गन्ध आती है।

इसकी चिकित्सा—बिल्व, अग्निमन्थ, पाटलाकाष्ठ इन सबका क्वाथ और सुरा, कांजी, धान्याम्ल परिषेचन, प्रियङ्गु, सरलकाष्ठ अनन्तमूल, कुटज, गोमूत्र, दधि-मस्तु और अम्लकांजी इनके योगसे तैल पाक करके अभ्यङ्ग करना होता है। वचमूलका क्वाथ, दुग्ध और महद्गण तथा खजूरकी गांठ इन सबके योगसे पाक करके घृतपान, हरीतकी, जटिला और वचाका धूम धारण, गोलश्रृंग, वच, हिङ्गु, कूट, भल्लातक और श्वेत सरसों इनका धूप प्रयोज्य है। रातको सबके सो जाने पर बन्दर, उल्लू, चिड़िया और गिद्धको विष्ठा धूप धूप, तिल, तण्डुल तथा विविध प्रकारके भक्ष्यद्रव्योंसे इस ग्रहका पेड़के नीचे पूजन करना चाहिए। वट वृक्षके नीचे इसका पूजन करना प्रशस्त है। इस ग्रहका स्नान मन्त्र इस प्रकार है—

"अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः।
बाल बालपिता देवो नैगमेषोऽभिरक्षतु॥"

(सुश्रुत उत्तरतन्त्र ३७ अ॰) नैगमेय देखो।

नैगमेयापहृत (स॰ पु॰) नागोदर, गोनाद ?।

नैधेय (स॰ पु॰) सामवेदकी एक शाखा।

नैघण्टुक (स॰ क्ली॰) निघण्टुः पर्यायशब्दपरिज्ञानं प्रयुक्त ठञ्। आत्मवित यस्कप्रयुक्त निघण्टु, ग्रन्थका प्रथम काण्ड।

नैचा (फा॰ पु॰) हुक्केकी दोहरी नली जिसमें एकके सिरे पर चिलम रखी जाती है और दूसरेका छोर मुंहमें रख कर धुआं खींचते हैं।

नैचाबंद (फा॰ पु॰) नैचा बनानेवाला।

नै[illegible] (सं० क्ली०) [illegible]।

नै[illegible] (सं० [illegible]) [illegible]।

नै[illegible] (सं० [illegible]) [illegible] ठक्। [illegible] [illegible]।

नै[illegible] (सं० [illegible]) [illegible] ठक्, [illegible] [illegible]।

नै[illegible] (सं० त्रि०) [illegible] [illegible]।

नैचा (हिं० पु०) [illegible]।

नैचुल (सं० क्ली०) निचुलस्येदं अण्, [illegible] फलानि [illegible] अणो लुप्। १ निचुलसम्बन्धी हिज्जलफलादि, निचुलका फल या बीज। (त्रि०) २ निचुलसम्बन्धी।

नैज (सं० त्रि०) निजस्येदमिति निज-अण्। निज-सम्बन्धी, अपना।

नैठी (हिं० स्त्री०) कुश नामकी घास या जड़ी, दुधिया घास।

नैतन्धव (सं० पु०) सरस्वती नदीतीरवर्त्ती स्थानभेद।

नैतिक (सं० त्रि०) नीतिसम्बन्धीय, नीतियुक्त।

नैतुण्डि (सं० पु०) नितुण्ड-अपत्यार्थे इञ्। नितुण्डका पुत्र।

नैतोश (सं० पु०) उशनस्कारोंका अपत्य, मारनेवालोंकी सन्तति।

नैत्य (सं० त्रि०) नित्यं दीयते नित्यव्युष्टादित्वादण्। १ नित्य दीयमान, नित्य दिया जानेवाला। २ नित्यका। (क्ली०) नित्यं विहितः अण्, या स्वार्थे अण्। ३ नित्यविहित कर्म। ४ नित्यकर्म, रोज रोजका काम।

नैत्यक (सं० त्रि०) नैत्य-स्वार्थे कन्। नैत्य, रोजका।

नैत्यशब्दिक (सं० त्रि०) नित्यं शब्दं आह इत्यर्थे ठक्। नित्य शब्दवादी, जो शब्दका नित्यता स्वीकार करते हैं।

नैत्यिक (सं० त्रि०) नित्यं विहितः ठक्। नित्यविहित, जो प्रतिदिन किया जाता है।

"[illegible] पंच महायज्ञान् नैत्यिकं स्मृतिकर्म च।" (मनु)

[illegible] और पंच महायज्ञ यह नैत्यिक कर्म है।

[illegible] कहीं कहीं [illegible] होता [illegible] है।

[illegible]

नैदाघ (सं० त्रि०) निदाघस्य इदं [illegible] [illegible]। निदाघसम्बन्धी, ग्रीष्मका।

नैदाघिक (सं० त्रि०) निदाघे अनुष्ठितं [illegible] ठक् [illegible] ठक्। निदाघ ऋतुसम्बन्धी, ग्रीष्मका।

नैदेय (सं० त्रि०) निदाघसम्बन्धी।

नैदान (सं० पु०) उत्पत्ति, कारण।

नैदानिक (सं० त्रि०) निदानं रोगकारणं वेत्ति, उत्पत्ति-पादकं ग्रन्थं वेद वा ठक्। १ रोगनिदानविद्, रोगोंका निदान करनेवाला। २ उत्पत्तिप्रतिपादक ग्रन्थके अध्येता।

नैदेशिक (सं० त्रि०) निदेशं करोति ठक्। किङ्कर, दास।

नैद्र (सं० त्रि०) निद्रा-अण्। निद्राभव, निद्रासम्बन्धीय।

नैधन (सं० क्ली०) निधनमेव स्वार्थे अण्। १ निधन, मरण। २ लग्नसे आठवां स्थान।

नैधान (सं० त्रि०) निधानेन निर्वृत्तं सङ्काशादित्वात् ण्य। निधानसाध्य।

नैधानी (सं० स्त्री०) पांच प्रकारकी सीमाओंमेंसे एक, वह सीमा जिसका चिह्न गड़ा हुआ कोयला या तुष हो।

नैधेय (सं० पु०) निधिसम्बन्धीय।

नैध्रुव (सं० पु०) निध्रुवगोत्रप्रवर ऋषिभेद।

नैध्रुवि (सं० पु०) यजुर्वेदाध्यापक काश्यप ऋषिभेद।

नैनसुख (हिं० पु०) एक प्रकारका चिकना सूती कपड़ा।

नैनाराचार्य—अधिकरणचिन्तामणि, आचार्यप्रशस्ति, आचार्यप्रार्थना, आचार्यमङ्गल, तत्त्वत्रयचुलक, तत्त्वमुक्ताकलापकण्ठी, रहस्यत्रयचुलक और सारत्रयचुलक आदि ग्रन्थोंके प्रणेता।

नैनारकोविल—मन्द्राजके अन्तर्गत मदुरा जिलेका एक स्थान। यह रामनादसे ८ कोस उत्तरपश्चिममें अवस्थित है। यहां एक बहुत प्राचीन प्रसिद्ध शिवमन्दिर है जिसका कारुकार्य देखने योग्य है। यहां शिवरात्रि आदि पर्वोंमें मेला लगता है जिसमें अनेक यात्री एकत्रित होते हैं।

नैनीताल—भारतवर्षके युक्तप्रदेशके अन्तर्गत कुमायुन

जिलेमें अवस्थित एक पार्वत्य नगर। यह अक्षा० २८ २१´ से २९ १० उ० और देशा० ७८ ४१ से ८० ३´ पू०के मध्य अवस्थित है। नगरके नीचे एक बड़ा और सुन्दर मीठासय ह्रद है। यह एक स्वास्थ्यनिवास और यूरोपियनोंका ग्रीष्मावास है। युक्तप्रदेशके छोटे लाट ग्रीष्मकालमें इस नगरमें आ कर रहते हैं। यहांका चारों ओरका पार्वत्य प्राकृतिक दृश्य बहुत मनोहर है। समुद्र तलसे यह नगर ६४०८ फुट ऊंचे पर बसा हुआ है। ग्रीष्मकालमें यहांकी जनसंख्या प्रायः ग्यारह हजार हो जाती है। १८८० ई०की १८वीं सितम्बरको यहां एक भारी तूफान आया था जिससे एक पहाड़का एकभाग धंस गया था और १५० मनुष्योंकी जान गई थी। म्युनिसिपलिटीने २ लाख रुपये खर्च करके नगरकी रक्षाकी व्यवस्था कर दी है। सिपाही-विद्रोहके बाद यहां पीड़ित सैनिकनिवास स्थापित हुआ है। ११० प मरीजोंका यहां चिकित्साके लिये रह सकते हैं। जिस ह्रदके किनारे शहर अवस्थित है उसकी लम्बाई आध कोस और चौड़ाई ३ सौ गज है। ह्रदके दोनों बगल शेरकुदण्ड और हड़ियाखण्ड नामक दो पर्वतशिखर हैं। ह्रदमें मछलियां अधिक संख्यामें देखी जाती हैं। जिस अधित्यका पर नैनीताल बसा हुआ है, वह एक कोस लम्बी और आध कोस चौड़ी है। ह्रदका नाम नयनताल है। शायद नयनतालसे ही नयनीताल या नैनीताल ऐसा नाम पड़ा है।

नैनू (हि० पु०) १ एक प्रकारका सूती कपड़ा। इसमें चावलों-सी ऊंची उभरी हुई बूटियां बनी होती हैं। २ मक्खन।

नैप (स० त्रि०) नीपस्य विकारः नीप रजतादित्वात् अञ्। नीपविकार।

नैपातिक (स० त्रि०) निपातनके हेतु प्रयोगयुक्त।

नैपालिय (स० स्त्री०) मनसिल।

नैपात्य (स० क्ली०) निपातस्य भावः ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। निपातका भाव।

नैपाल (स० पु०) नेपाले नेपालाख्यदेशे भवः, अण्। १ निम्बतिक्त। २ इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख। ३ मुनिमण्डविशेष। (त्रि०) ४ नेपालसम्बन्धी। ५ नेपाल देशका, नेपालमें होनेवाला।

नैपालिका (स० स्त्री०) नैपाले भवा इति ठञ्। ताम्र तांबा। ताम पैसा।

नैपाली (स० स्त्री०) नैपाल-ङीप्। १ नवमल्लिका, नेवाली। २ मनःशिला मैनसिल। ३ नाली, नीलका पौधा। ४ शेफालिका, एक प्रकारकी निर्गुण्डी।

नैपाली (हि० वि०) १ नेपाल देशका। २ नेपालमें रहने या होनेवाला। (पु०) १ नेपालका रहनेवाला आदमी।

नैपालीय (स० त्रि०) नेपालदेशभव, नेपाल देशमें होनेवाला।

नैपुण (स० क्ली०) निपुणस्य भावः, कर्म वा अण्। नैपुण्य, निपुणता।

नैपुण्य (स० क्ली०) निपुणस्य भावः कर्म वा, ष्यञ्। (गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) निपुणता, चतुराई, होशियारी।

नैबिड (स० त्रि०) निबिडस्य अदूरदेशादि वराहादित्वात् कक्। निबिडसमीप देशादि।

नैभृत्य (स० क्ली०) निभृतस्य भावः ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। निभृतत्व, चपलाभाव।

नैमग्न (स० त्रि०) निमग्न वराहादित्वात् कक्। (पा ४।२।८०) निमग्नका अदूर देशादि।

नैमन्त्रण (स० क्ली०) निमन्त्रित व्यक्तियोंको खिलाना पिलाना भोज।

नैमय (स० पु०) वणिक व्यवसायी, रोजगारी।

नैमित्त (स० त्रि०) निमित्ते भवः, निमित्तस्य शकुन शास्त्रस्य व्याख्यानो ग्रन्थो वा ऋगयनादित्वात् अण्। (पा ४।३।७३) १ निमित्तभव। २ शकुनरूप निमित्त सूचक ग्रन्थव्याख्यान।

नैमित्तिक (स० त्रि०) निमित्त वेत्ति तदधीते वा उक्थादित्वात् ठञ्। १ निमित्तादिज्ञ। २ निमित्तरूप शकुनशास्त्रका अध्येता। ३ जो किसी निमित्तसे किया जाय, जो निमित्त उपस्थित होने पर या अथवा किसी विशेष प्रयोजनकी सिद्धिके लिये हो। जैसे, नैमि-

त्तिकर्म, पुत्रप्राप्तिके निमित्त पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान, ग्रहणके लिये गङ्गास्नान।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये तीन भेद हैं। स्नान, ग्रहण और संक्रान्ति आदि निमित्त उपस्थित होने पर जो स्नान किया जाता है, उसे नैमित्तिक स्नान कहते हैं। स्मार्त्तोंने नैमित्तिकका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

निमित्तका निश्चय होने पर अधिकारीकी कर्त्तव्यता, अधिकारी अर्थात् शास्त्रमें जिसका अधिकार है, एवम्भूत अधिकारीके कार्यको नैमित्तिक कहते हैं।

गरुडपुराणमें लिखा है, कि पापशान्तिके लिये पण्डितोंको जो दान किया जाता है उसे नैमित्तिक दान कहते हैं। ४ निमित्ताधीन, निमित्तके लिये।

नैमित्तिक-लय (सं० पु०) नैमित्तिकः ब्राह्मणो दिवावसाननिमित्तवशात् यो लयः। प्रलयविशेष। गरुडपुराणमें लिखा है, कि इस प्रलयमें सौ वर्ष तक अनावृष्टि होती है। बारहों सूर्य उदित हो कर तीनों लोकोंका शोषण करते हैं। फिर बड़े भीषण मेघ सौ वर्ष तक लगातार बरस कर सृष्टिका नाश करते हैं।

नैमिश (सं० क्ली०) निमिशमेव स्वार्थे अण्। निमिशारण्य। पृथ्वी पर नैमशक्षेत्र श्रेष्ठतीर्थ माना जाता है।

नैमिश्रि (सं० पु०) निमिश्रस्य अपत्यं इञ्। निमिश्रका अपत्य।

नैमिष (सं० क्लो०) १ अरण्यरूप तीर्थभेद, नैमिषारण्य। २ यमुनाके दक्षिण तट पर बसनेवाली एक जाति जिसका उल्लेख महाभारत और पुराणोंमें है।

नैमिषारण्य (सं० क्ली) निमिषान्तरमात्रेण निहतं आसुरं बलं यत्र, ततस्तत् नैमिषं अरण्यं। अरण्यविशेष, नैमिषक्षेत्र, एक प्राचीन वन जो आज कल हिन्दुओंका एक तीर्थस्थान माना जाता है और नीमखार कहलाता है। यह स्थान अवधके सीतापुर जिलेमें है।

गौरमुख मुनिने यहां निमिषकालके मध्य असुरसैन्य और उनके बलको भस्मीभूत कर दिया था, इसीसे इस स्थानका नाम नैमिषारण्य पड़ा है। देवीभागवतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—ऋषिलोग जब कलिकालके भयसे बहुत घबराए, तब उन्होंने पितामह ब्रह्माकी शरण की। ब्रह्माने उन्हें एक मनोमय चक्र दे कर कहा था, 'तुम लोग इस चक्रके पीछे पीछे चलो, जहां इसकी नेमि (घेरा, चक्कर) विशीर्ण हो जाय उसे अत्यन्त पवित्र स्थान समझना। वहां रहनेसे तुम्हें कलिका कोई भय नहीं रहेगा। जब तक सत्ययुग उपस्थित न हो, तब तक निर्भय हो कर तुम लोग वहां वास करना।' ऋषिगण ब्रह्माका आदेश पा कर समस्त देश देखनेकी इच्छासे उस चक्रके अनुगामी हुए। वह चक्र सारी पृथ्वीका परिभ्रमण कर इन लोगोंके समक्षमें ही विशीर्णनेमि हो पड़ा। तभीसे यह स्थान नैमिषक्षेत्र वा नैमिषारण्य नामसे प्रसिद्ध हुआ है। यह स्थान बहुत पवित्र है। कलिका यहां प्रवेशाधिकार नहीं है। (देवीभागवत १।२।२८-३२) कूर्मपुराणके ४०वें अध्यायमें नैमिषारण्यका जो उत्पत्ति-विवरण है वह इस प्रकार लिखा है—

"ततो मुमोच तच्चक्रं ते च तत् समनुव्रजन्।
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत॥
नैमिषं तत् स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्॥"
(कूर्मपुराण ४० अ०)

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि इस क्षेत्रकी गोमती नदीमें स्नान करनेसे सब पापोंका क्षय होता है। कहते हैं, कि सौतिमुनिने इस स्थान पर ऋषियोंको एकत्र करके महाभारतकी कथा कही थी।

आईन-इ-अकबरी नामक मुसलमान इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि पूर्व समयमें यहां एक दुर्ग था। इसके सिवा हिन्दुओंके अनेक देवमन्दिर और एक बृहत् पुष्करिणी आज भी देखनेमें आती है। यह पुष्करिणी चक्रतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। प्रवाद है, कि दानवोंके साथ युद्धकालमें विष्णुका सुदर्शनचक्र यहां आ गिरा था। पुष्करिणीकी आकृति षट्कोणी और उसका व्यास ८ हाथका है। इसके मध्यभागसे एक जलस्रोत निर्झरके आकारमें निकल कर दक्षिणाभिमुख होता हुआ जलभूमिके ऊपर बह गया है। इस स्थानका नाम गोदावरी-नाला है। सरोवरके चारों ओर बहुतसे मन्दिर और धर्मशाला निर्मित हैं। इस पवित्र चक्रतीर्थके दक्षिण-पश्चिम उच्चभूमिके ऊपर उक्त दुर्ग स्थापित है। दुर्गको

पश्चिमांशका उच चूड़ा आज भी दुर्ग नामसे प्रसिद्ध है। दुर्ग में बहुतसे स्थान ऐसे हैं जिन्हें गौर कर देखनेसे मालूम होता है कि इसका द्वार और प्राकृतिक ये दोनों स्थान बहुत प्राचीन हैं और हिन्दू राजाके समयसे बने हुए हैं। उन दो स्थानको तक्षणादि और स्थापत्यादि देखनेसे इसके प्राचीनत्वका सन्देह नहीं होता। स्थानीय प्रवाद है, कि यहां जो प्राचीन दुर्ग था वह पाण्डव राजाओंके समयमें बनाया गया था। पीछे उसीके ध्वंसावशेषके ऊपर दिल्लीश्वर कुतबुद्दीन ऐबकके वजीर खाजा मख्दूम (एक धर्मत्यागी हिन्दू सन्तान)ने ११०१ ई०में इस दुर्गका पुनर्निर्माण किया।

गोमतीके दूसरे किनारे चौथाकर, चौराहोत और देवनगर नामक एक प्रकाण्ड विस्तृत ध्वंसावशिष्ट स्थान दृष्टिगोचर होता है। यहांके लोगोंका कहना है कि यही स्थान नैमिषराजका प्रासाद माना जाता है।

नैमिषि (सं० पु०) निमिषति निमिष क, निमिषस्य अपत्यं इञ्। नैमिषारण्यवासी।

नैमिषेय (सं० पु०) निमिषका पद, क। निमिष सम्बन्धी।

नैमिषीय (सं० त्रि०) निमिषे भव, निमिषस्येदं वा छुञ्छाण्। १ निमिषारण्यज, नैमिषारण्यमें रहनेवाला। २ नैमिषसम्बन्धी।

नैमिष्य (सं० पु०) निमिषसम्बन्धीय।

नैमेय (अ० पु०) नि+मि-प्रक्षिपाने भावे अच् इति अच्, ततः स्वार्थे प्रज्ञाद्यण्। परिवर्त्त, विनिमय, बदलेका बदला।

नैयग्र (सं० त्रि०) निरग्रसम्बन्धीय।

नैयग्रोध (सं० स्त्री०) न्यग्रोधस्य विकारः, तस्य फलादि न्यग्रोधाण्। (पा ४।३।१६३) तस्य विकारसामर्थ्यात् अचि न युक्, ततो महर्षिरेकागमश्च (न्यग्रोधस्य च केवलस्य। पा ७।३।५) १ न्यग्रोधफल, बरगदका फल।

नैयङ्कव (सं० स्त्री०) न्यङ्कोर्विकार इति अण् (ज्ञाति न्यङ्क्वादिभ्योऽञ्। पा ४।३।१५४) न्यङ्कुमृगजात चर्म-चर्मादि चारवणिकेका चमड़ा।

नैयत्य (सं० स्त्री०) नियतस्य इव नियतभाव। नियतत्व, नियम होनेका भाव।

नैयमिक (सं० त्रि०) नियमादागत ठञ्। नियम विहितमात्र कर्म, ऋतुमती स्त्रीके साथ गमनादि।

नैयाय (सं० त्रि०) न्यायस्य व्याख्यानो ग्रन्थः अध्ययनो विद्याण् अण्। (पा ४।३।७२) न्यायव्याख्यान ग्रन्थ।

नैयायिक (सं० पु०) न्याय गोतमादिप्रणीत तर्क-शास्त्रविशेष अधीते वेत्ति वा न्याय-ठक्। (क्रतूक्थादि-सूत्रान्ताट्ठक्। पा ४।२।६०) १ न्यायवेत्ता न्यायशास्त्रका जाननेवाला। २ न्यायाध्येता। पर्याय—आक्षपाद तार्किक पार्त्तिक।

नैयासिक (सं० त्रि०) न्यासविद्।

नैरञ्जना (सं० स्त्री०) नदीभेद। गया जिलेकी फल्गू नदी पहले इसी नामसे पुकारी जाती थी। आज भी इसको पश्चिमाभिमुखिनी शाखा नीलाजन या लीला जन नामसे उक्त जिलेकी मोहानीनदीमें मिल गई है।

नैरन्तर्य (सं० स्त्री०) निरन्तरस्य भावः निरन्तर ष्यञ्। निरन्तरत्व, निरन्तरका भाव अविच्छेद।

नैरपेक्ष (सं० स्त्री०) निरपेक्षस्य भावः ष्यञ्। अपेक्षा-शून्यत्व।

नैरयिक (सं० त्रि०) निरये भवति ठञ्। नरकवासी।

नैरर्थ्य (सं० स्त्री०) निरर्थस्य भाव कर्म वा, निरर्थ-ष्यञ्। निरर्थकता।

नैरात्म्य (सं० स्त्री०) निरात्मनो भावः ष्यञ्। निरा० त्मता।

नैराश्य (सं० स्त्री०) निराशस्य निराशस्य भाव ष्यञ्। आशाशून्यत्व।

"आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला॥"
(भागव॰भारत)

आशा ही दुःखको कारण है, नैराश्य परम सुख है जिस प्रकार पिङ्गला कान्तकी आशाका परित्याग कर सुखसे सोती है। आशाका त्याग नहीं करनेसे सुख मिलना दुर्लभ है। अतः जो सुखका अभिलाष रखते हैं, उन्हें आशाका परित्याग करना सर्वतोभावसे उचित है।

नैरुक्त (सं० पु०) निरुक्तशास्त्रविशेष भाव जाननेवाला एक मत।

नैमाली (सं॰ त्रि॰) निमालेसाधु गुडादित्वात् ठञ्। (पा ४।४।१०३) १ निमाल साधु। २ उस पर रहने वाला देवता।

नैविड्य (सं॰ क्ली॰) निविडस्य भावः, ष्यञ्। १ घनत्व। २ निविडता। ३ अविच्छेदरूपसे संयोग, अयोगुणादरूप गुणभेद।

नैविड (सं॰ त्रि॰) निविड सम्बन्धीय।

नैवेद्य (सं॰ क्ली॰) निवेद निवेदनमर्हतीति निवेद ष्यञ्। देवताको निवेदनीय द्रव्य, वह भोजनकी सामग्री जो देवताको चढ़ाई जाय देवबलि, भोग।

"निवेदनीय द्रव्यन्तु नैवेद्यमिति कथ्यते।" (स्मृति)

देवोद्देश्यसे निवेदनीय वस्तुमात्र ही नैवेद्यपदवाच्य है। नैवेद्यशब्दकी नामनिरुक्तिके विषयमें और भी लिखा है—

"चतुर्विध कुलेशानि द्रव्यन्तु षड्रसान्वितम्।
निवेदनात् भवेत् तृप्तिर्नैवेद्यं तदुदाहृतम्॥"

(कुलार्णवतन्त्र १७ उ॰)

हे कुलेशानि! षड़रसान्वित चतुर्विध द्रव्य-निवेदनसे मैं तृप्त होती है, इसीसे उसका नाम नैवेद्य पड़ा है।

नैवेद्यके द्रव्य—

"कठिनं द्रवकेन शर्करया कर्तितं वा।
तिलोदक ... निवेदयेत्॥"

(तन्त्रसार)

सखित (भात या खिचड़ी), पक्वान्न मिष्टान्न पायस, शितोदक (ठंढा जल) खड्डी और दधि आदिके साथ देवदेवियोंका निवेदन करना चाहिये।

नैवेद्य पञ्चविध—

"निवेदनीय यद्द्रव्यं भक्ष्य भक्ष्य तथा।
तद्द्वयं पञ्चविधं नैवेद्यमिति कथ्यते।
भक्ष्यं भोज्यञ्च लेह्यञ्च पेयं चोष्यञ्च पञ्चमम्।
सर्वत्र नैवेद्यदाने निवेदयेत्॥" (तन्त्रसार)

भक्ष्य भोजनीय जो सब वस्तु देवताको चढ़ाई जाती है उसका नाम नैवेद्य है। यह नैवेद्य पाँच प्रकारका है—भक्ष्य, भोज्य, लेह्य पेय और चोष्य। यथाविधान देवपूजन करके नैवेद्य चढ़ाना चाहिये।

नैवेद्यदान-समय—

"आवाह विसर्जनान्तं नैवेद्य सर्वमुच्यते।
विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात्॥
अहोरात्रस्थितो कृत्वा नैवेद्य भुज्यते बुधम्।" (पद्मपु॰)

विसर्जनके पहले भगवत्कृष्णको नैवेद्य और विसर्जन हो जाने पर उसे निर्माल्य कहते हैं।

नैवेद्यस्थापनका क्रम—

"नैवेद्य दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठतः।
स्थापयेत् देवता वामे आमान्नं दक्षिणे॥" (पुरश्च॰)
"दक्षिणन्तु परित्यज्य वामे चैव निवेदयेत्।
अभोज्य तद्भवेदन्नं पानीयञ्च सुरोपमम्॥"

(तन्त्रसार)

नैवेद्य देवताके दक्षिण भागमें रखना चाहिये, आगे या पीछे नहीं। इसमें विशेषता यह है, कि पक्व नैवेद्य देवताके बायें और कच्चा दक्षिण भागमें रखना चाहिये। अन्यथा वह अभोज्य और पानीय सुरा सदृश समझा जाता है।

नैवेद्यदान-फल—

"नैवेद्येन भवेत् स्वर्गी नैवेद्येनामृतं भवेत्।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्ये तु प्रतिष्ठिताः॥
सर्वयज्ञफलं विप्र नैवेद्यं सर्वतुष्टिदम्।
ज्ञानदं मानदं पुत्रदं सर्वयोगमयं तथा॥"

(कालिकापु॰ ६९ अ॰)

नैवेद्यदानसे स्वर्ग और मोक्ष लाभ होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नैवेद्यमें प्रतिष्ठित है। नैवेद्य दानसे सब यज्ञका फल, ज्ञान मान और पुत्रलाभ होता है।

नैवेद्य समर्पण करनेके समय मुद्रा दिखानी चाहिये।

"नैवेद्यमुद्रामङ्गुष्ठ-कनिष्ठाभ्यां प्रदर्शयेत्।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैः प्राणस्य कीर्तिता॥
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैरपानस्य तु मुद्रिका।
अनामामध्यमाङ्गुष्ठैर्व्यानस्य तु वा स्मृता॥
तर्जन्यनामामध्याभिः साङ्गुष्ठाभिस्तदुर्दिता।
सर्वाभिः समानस्य ... मोदिता॥" (पाद्म)

अङ्गुष्ठ और कनिष्ठ अङ्गुलि अङ्गुलियोंसे नैवेद्य मुद्रा दिखानी चाहिये। इसमें विशेषता यह है, कि प्राण अपान, उदान व्यान और समान इन पाँच वायुओंके

उद्देगसे निवेदन करना होता है। कनिष्ठा, अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा प्राणवायुकी, तर्जनी, मध्यमा और अङ्गुष्ठ द्वारा अपान वायुको; अनामिका, मध्यमा और अङ्गुष्ठ द्वारा उदान वायुको; तर्जनी, अनामिका और मध्यमा द्वारा व्यान वायुको तथा सभी उंगलियों द्वारा समान वायुकी मुद्रा दिखानी चाहिये।

देवोद्देशसे नैवेद्यके उत्सर्ग हो जाने पर वह ब्राह्मण को देना चाहिये। जो देवदत्त नैवेद्य ब्राह्मणको नहीं देते, उनका नैवेद्य भस्मीभूत और निष्फल होता है।

"साक्षात् खादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्दनः।
ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्तुष्टाः सर्वदेवताः॥
देवाय दत्त्वा नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति।
भस्मीभूतश्च नैवेद्यं पूजनं निष्फलं भवेत्॥"

(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्मख० २१ अ०)

"शूद्रश्चेद्धरिभक्तश्च नैवेद्यभोजनोत्सुकः।
आमान्नं हरये दत्त्वा पाकं कृत्वा च खादति॥"

(ब्रह्मवै० २१ अ०)

हरिभक्त शूद्र यदि नैवेद्य खानेकी इच्छा करे, तो हरिको आमान्न चढ़ा कर पीछे उसे पाक कर खा सकता है।

नैवेद्यभोजन-फल—

"कृत्वा चैवोपवासन्तु भोक्तव्यं द्वादशीदिने।
नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटीविनाशनम्॥
अग्निष्टोमसहस्रैश्च वाजपेयशतैस्तथा।
तुल्यं फलं भवेद्देवि विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात्॥"

(स्कन्दपुराण)

एकादशीके दिन उपवास करके द्वादशीको तुलसी-मिश्रित नैवेद्य खानेसे कोटिहत्याका पाप विनष्ट होता है।

सहस्र अग्निष्टोम और शत वाजपेय यज्ञका अनुष्ठान करनेमें जो फल लिखा है, हरिको निवेदित नैवेद्य खानेसे वही फल मिलता है।

आह्निकतत्त्वमें नैवेद्यका विषय इस प्रकार लिखा है,—मोचक (कदलीफल), पनस, जम्बु, प्राचीनामलक (करमर्दक), मधुक और उडुम्बर आदि फल सुपक्व होने पर नैवेद्यमें दे सकते हैं। अपर्युषित पक्व वस्तु नैवेद्यमें नहीं देनी चाहिए। खण्डखाद्यादिकृत पक्व वस्तु पर्युषित नहीं होती। यव, गोधूम और शालिको घृत द्वारा संस्कृत करके तिल, मुद्गादि और माष नैवेद्यमें दिये जा सकते हैं। जो सब वस्तु अभक्ष्य हैं उन्हें नैवेद्यमें नहीं दे सकते। अभक्ष्य, जिस वर्णके लिये जिस वस्तुका खाना निषिद्ध है, वे सब वस्तु और जिस दिन जो द्रव्य खाना निषिद्ध है, वह द्रव्य उस दिन नैवेद्यमें नहीं देना चाहिए।

"माहिषं वर्जयेन्मासं क्षीरं दधि घृतन्तथा।"

(आह्निकतत्त्व-देवल)

माहिषघृत, दुग्ध और दधि द्वारा नैवेद्य नहीं देना चाहिए। घृत चण्डालादि और कुक्कुर द्वारा देखे जाने पर वह नैवेद्यमें अप्रयोज्य है।

"यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि प्रियमात्मनः।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते॥"

(आह्निकतत्त्व)

जो कुछ अभिलषित वस्तु है और जो विशेष प्रीतिकर है, वही सब वस्तु अभीष्ट देवताको चढ़ाना चाहिए। इस प्रकारका नैवेद्य अनन्तफलप्रद होता है।

"त्यजेत् पादोदकं यस्तु नैवेद्यं च त्यजेच्च यः।
षष्टिवर्षसहस्राणि रौरवे नरके पचेत्॥"

(आह्निकतत्त्व)

जो जिस देवताकी अर्चना करते हैं, उन्हें उस देवताका नैवेद्य खाना चाहिए। जो अवहेलापूर्वक उस नैवेद्यका त्याग कर देते वे साठ हजार वर्ष तक नरक भोग करते हैं।

जो कुछ अभिलषित वस्तु हो उसे देवताको चढ़ाये बिना न खाना चाहिए, अतएव प्रिय वस्तु मात्र ही देवताको चढ़ा कर उसे प्रसाद रूपमें खा सकते हैं।

"विष्णोर्निवेदितं पुण्यं नैवेद्यं या फलं जलम्।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा भवः॥"

(ब्रह्मवैवर्त्त जन्म० ३७ अ०)

विष्णुनैवेद्य पानेके साथ ही खा लेना चाहिए, जो इसका परित्याग कर देते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

विष्णुनैवेद्य खानेसे जितने प्रकारके पाप हैं, वे सभी

दूर हो जाते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्ण-जन्मखण्डके ८७वें अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। शिव और सूर्य का नैवेद्य खाना मना है।

"अभक्ष्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलास्पर्शात् सर्वं याति पवित्रताम्॥"

(आह्निकतत्त्व)

पत्रपुष्पादि और शिवनिर्वेदित नैवेद्य अग्राह्य है अर्थात् भक्षण करना निषिद्ध है। इसमें विशेषता यह है, कि यदि वह नैवेद्य शालग्रामशिलास्पृष्ट हो, तो वह पवित्र होता है। शालग्राम-स्पृष्ट शिव नैवेद्य खानेमें कोई दोष नहीं। इसका तात्पर्य यह कि शालग्रामशिलामें शिव पूजा करनेसे वह नैवेद्य खाया जा सकता है।

शिवके उद्देशसे चढ़ाया हुआ पत्र और नैवेद्य किसीको ग्रहण नहीं करना चाहिए, ग्रहण करनेसे नैवेद्य चढ़ानेका कुछ भी फल नहीं मिलता। फिर दूसरे शास्त्रमें शिवनैवेद्यका ग्रहण अग्राह्य नहीं बतलाया है—

'दत्त्वा नैवेद्यवस्त्रादि नारदैव कम यच।
ताम्बूलं शिरसा धारयेन्नैवेद्यं तत् फलम्॥"

(एकादशीतत्त्व)

शिवनिर्माल्य धारण करनेसे रोग, चरणोदक पीनेसे शोक और नैवेद्य खानेसे अशेष पाप नाश होते हैं।

शिवनैवेद्य भक्षण जो निषिद्ध बतलाया है उसका पौराणिक उपाख्यान इस प्रकार है—

"रोगं हरति निर्माल्यं शोकन्तु चरणोदकम्।
अशेषं पातकं हन्ति शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥"

(शाक्तानन्दत०)

एक समय सनत्कुमार विष्णुसे भेंट करनेके लिये वैकुण्ठ गये। उस समय भगवान् विष्णु भोजन कर रहे थे। भगवान् विष्णुने सनत्कुमारको देख कर उनको अवशिष्ट कुछ प्रसाद दिया। सनत्कुमारने उस प्रसादमेंसे कुछ तो आप खा लिया और कुछ आशीर्वादकी देनेके लिये घर ले आये। कैलासमें पहुंच कर उन्होंने अपने गुरु महादेवको कुछ प्रसाद दिया। महादेवजी उस प्रसादको पा कर उसी समय खा लिया और नृत्य करने लगे।[1] इसी बीच पार्वती वहां पहुंचीं और अपने गुरुसे यह वृत्तान्त सुन कर शिवजी पर बहुत बिगड़ीं। यहां तक कि पार्वतीने शाप दे दिया, 'आपने जो विष्णुका प्रसाद मुझे दिये बिना खा लिया, इस कारण जगत्‌में आपके जो मनुष्य आपका नैवेद्य खायगा, वह दूसरे जन्ममें कुक्कुरयोनिमें जन्म लेगा।'

"अद्यप्रभृति ते भोक्ष्यं नैवेद्यं भुञ्जते तव।
ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्तीह भारते॥"

(श्रीकृष्णजन्मख०)

इस प्रकार शाप दे कर पार्वती जो विष्णुका प्रसाद पा न सकीं, इस कारण वे बारबार रोने लगीं।

इसका दूसरा कारण शिवार्चनतन्त्रके ११।१८ पटलमें भी विस्तृतरूपसे लिखा है—

"दुर्लभं तव निर्माल्यं ब्रह्मादीनां कृपानिधे।
तव रूप परमेशान! निर्माल्यं तव दूषितम्॥"

(शिवार्चन०)

कालिकापुराणमें नैवेद्यका विषय इस प्रकार लिखा है—

भक्ष्य और पवित्र निवेदनीय वस्तुका नाम नैवेद्य है। यह नैवेद्य भक्ष्य (भात) प्रभृति भेदसे ५ प्रकारका है। इन पांच प्रकारके नैवेद्योंमेंसे देवीका नैवेद्य जो सबसे प्रिय है, उसीका विषय यहां लिखा जाता है। पांचों प्रकारका नैवेद्य देवीको प्रिय है। नागर कपित्थ द्राक्षा, खर्जूर, करक, बदर कोल, कुष्माण्ड पनस, लकुच मधूक, रसाल, आम्रातक, जम्बीर, आक्षोट, पिण्डखर्जूर कदली श्रीफल, इक्षु, औदुम्बर, पुन्नाग मोचक, कर्कटीफल (ककड़ी), नारिकेल, बीजपूर, जम्बू, हरीतकी आमलक, ४ प्रकारका नारङ्ग, देवज, मधुर पीत पटोल, चोरिकाल, पटल, वास्तुक, इक्षु, चम्पक, शतपोषक, तिन्दुक, कुसुम, पीत, क्षार भेद, पद्मपत्र, सर्पाक्ष आदि तथा नाना प्रकारके अन्य फल द्वारा देवीका नैवेद्य प्रस्तुत करना चाहिये। ये सब तरह विष्णु, ये सब प्रभृति फल भिन्न सभी फल देवीके प्रिय हैं। मातुलुङ्ग, भल्लक, कारमर्द और रसालक ये सब कामाख्या देवीको चढ़ाने चाहिये। महाटक अमीर, मालुक, सुवास गाङ्गेर, काञ्चन, कन्दलाम्र, कुटुम्बक आदि फल पर्याप्त पिष्टक, पायस, छमर, मोदक, शष्कुल, पिष्टका और लड्डू इन सब द्रव्योंसे नैवेद्यसे देवी

प्रसन्न होती है। गो, महिष, अजा, आविक और मृग इन सब पशुओंका दूध, सब प्रकारका मधु, शर्करा, सब प्रकारका अन्न, पान और मांस ये सब देवीके नैवेद्यमें प्रशस्त माने गये हैं। आमिक्षा, परमान्न, शर्करामिश्रित दधि और घृत ये सब वस्तु महादेवीको अर्पण करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। शर्करा, मधुमिश्रित सुरा, लाङ्गल, छत्रक, रुचक, मुद्ग, मसूर, तिल और यव आदि सब प्रकारका शस्य देवीको चढ़ाना चाहिए। कैसा ही भक्ष्य द्रव्य क्यों न हो, उसका केश-कारकादि संस्कार करके तब नैवेद्यमें दे सकते हैं। संस्कार्य वस्तुका जिस प्रकार संस्कार करना होता है, उसी प्रकार संस्कार कर के नैवेद्य चढ़ाना चाहिये। जो पूतिगन्धसंयुक्त हो, दग्ध तथा भोजनके अयोग्य हो, उसे नैवेद्यमें नहीं देना चाहिये। सुगन्ध कर्पूरवासित ताम्बूल देवीको चढ़ानेमें विशेष फल है। जो सब मृग और पक्षी वलिदानमें छेदित होते हैं उनका मांस, गण्डार, वार्ध्रीनस और छाग मांस तथा मत्स्य रन्धन कर देवीको नैवेद्यमें दे सकते हैं। खर्जुर, पिण्डखर्जुर तथा सघृत यवचूर्ण देवीको चढ़ानेसे राजसूययज्ञ करनेका फल मिलता है तथा कृशरान्न (खिचड़ी)के नैवेद्यसे अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है। नारियलका जल चढ़ानेसे अग्निष्टोम-यज्ञका फल और जामुन, लवली, धात्री तथा श्रीफल चढ़ानेसे भी अग्निष्टोम फल प्राप्त होता है, पीछे उसे देवलोककी प्राप्ति होती है। द्राक्षा, शर्करा और नारङ्गक, इक्षुदण्ड, नवनीत, नारियलका फल, शर्करा और दधियुक्त पेय वस्तु, नीवार और उरदको दधिके साथ कूट कर देवीको चढ़ानेसे लक्ष्मीवान् और रूपवान् होता है, पीछे मरने पर उसे मोक्ष मिलता है। मिर्च, पिप्पली, कोष, जीवक और तत्तुल्य द्रव्य भलीभांति संस्कृत कर देवीको चढ़ाना चाहिये। राजमाष, मसूर, पालङ्क, पोतिका, कलिशाक, कलाय, ब्राह्मीशाक, मूलक, वास्तुक लक्ष्मीक, चटुक, छिलमोचका, कुसुम्भिकुसुम पत्र और पुनर्नवा आदि शाक देवीको चढ़ा सकते हैं। मत्स्य और कालविरुद्ध तथा गुरुभारसमन्वित नैवेद्य देवताको चढ़ाना निषिद्ध है। चांदी वा सोनेके पात्रमें देवताको नैवेद्य चढ़ाना चाहिये। (कालिकापु० ७० अ०)

घण्टा बजा कर देवताको नैवेद्य चढ़ानेको लिखा है।

"धूपे दीपे च नैवेद्ये स्नपने वसने तथा।
घण्टानादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च॥
(विधानपा०)

नैवेश (सं० त्रि०) निवेशेन निर्वृत्तं सङ्कलादित्वादण्। (पा ४।२।७५) निवेशनिर्वृत्त, विवाहनिर्वृत्त।

नैवेशिक (सं० क्ली०) निवेशाय गार्हस्थ्याय हितं, निवेश-ठक्। १ विवाहयोग्य कन्या। २ विवाहार्थ दीयमान द्रव्य, विवाहके लिये दिये जानेका धन।

नैश (सं० त्रि०) निशायां इदम् निशा-अण्। (तस्येदम् पा ४।३।१२०) १ निशासम्बन्धी। २ निशाभव।

नैशिक (सं० त्रि०) निशायां भवम्, निशा-ठञ्। (निशाप्रदोषाभ्याञ्च। पा ४।३।१४१) १ निशाभव। २ निशाव्यापक।

नैश्चित्य (सं० त्रि०) निश्चितस्य भावः, ष्यञ्। निश्चय।

नैश्श्रेयस (सं० त्रि०) निश्श्रेयसाय हितमण्। निःश्रेयससाधन।

नैश्श्रेयसिक (सं० त्रि०) निःश्रेयसं प्रयोजनमस्य ठक्। निश्श्रेयसाधन। विकल्पमें 'स'-की जगह विसर्ग हो कर निःश्रेयसिक ऐसा पद होगा।

नैषदिक (सं० त्रि०) १ निषदभव, निषदका। २ उपवेशनकारी, बैठनेवाला।

नैषध (सं० पु०) निषधानां राजा, निषध-अण्। १ नलराजा। २ निषधदेशाधिपति। ३ वर्षविशेष। ४ पित्रादिक्रमसे निषधदेशवासी, नैषधं नलमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः अण्। ५ नलनृपचरितरूप महाकाव्यभेद, श्रीहर्षरचित एक संस्कृत काव्य जिसमें राजा नलकी कथाका वर्णन है। यह काव्य २२ सर्गोंमें सम्पूर्ण हुआ है।

"उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।" (उद्भट)

इसका तात्पर्य यह कि नैषध काव्यके सामने माघ और भारवि कुछ भी नहीं है। इसके सिवा और भी प्रवाद है कि—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥" (उद्भट)

कालिदासकी उपमा, भारविका अर्थगुरुत्व और

नैषधका पदलालित्य बड़ा मनोज्ञ है तथा भावमें ये तीनों गुण पाए जाते हैं। यथार्थमें नैषध-काव्यका पदलालित्य अनुपम है। पदलालित्य मात्र ही इसकी यथार्थताका अनुभव कर सकते हैं। नैषधके सम्बन्धमें एक किंवदन्ति प्रचलित है—श्रीहर्षदेवने नैषधकाव्यकी रचना कर उसे अपने मातुल एक आलङ्कारिकको दिखाने दिया। उन्होंने निर्दोषत्वके पर्यालोचना करके कहा, 'मैंने जो एक अलङ्कार ग्रन्थ लिखा है उसके दोष परिच्छेदके लिये मुझे कई ग्रन्थ देखने पड़े हैं। कुछ दिन पहले यदि तुम्हारी यह पुस्तक मिल जाती, तो एक ही ग्रन्थसे मेरे दोष-परिच्छेदके सभी उदाहरण संग्रह हो जाते। संस्कृत महाकाव्योंमें यह एक प्रधान काव्य है, इसमें सन्देह नहीं। (त्रि०) ६ निषधदेशसम्बन्धी, निषध देशका।

नैषधीय (सं० त्रि०) नैषधस्य इदम् 'वृद्धाच्छः' इति छ। नलसम्बन्धी।

नैषध्य (सं० पुं०) निषधस्य अपत्यम् तस्यापत्यम् गर्गादित्वात् यञ्। राजा नलका पुत्र या वंशज।

नैषाद (सं० पुं०) निषादस्य अपत्यं बिदादित्वादण्। निषादका वंशज।

नैषादक (सं० त्रि०) निषादेन कृतम्, कुलालादित्वात् वुञ्। (पा ४।३।११८) निषादकृत पदार्थमात्र।

नैषादकि (सं० पुं० स्त्री०) निषादस्य अपत्यं इति अकञ्। निषादका वंशज।

नैषादि (सं० पुं०) निषादस्य अपत्यं इति बाह्वादि इञ्। निषादका वंशज।

नैषिक (सं० पुं०) निषकं भक्तो भावकतयाऽस्त्यस्य, ठन्, पृषोदरादित्वात् साधु। तथामक नवकप इति ख्याति।

नैष्कर्म्य (सं० क्ली०) निष्कर्मणो भावः, ष्यञ्। विधिपूर्वक सर्वकर्मसंन्यास। ज्ञानक्रियपरिशून्य हो कर विधिपूर्वक कर्म करते करते कर्मत्याग किया जा सकता है।

नैष्कशतिक (सं० त्रि०) निष्कशतमस्त्यस्य ठञ्। (पा ५।२।११९) निष्कशतमानयुक्त।

नैष्कसहस्रिक (सं० त्रि०) निष्कसहस्रमस्त्यस्य ठञ्। निष्कसहस्र परिमाणयुक्त।

नैष्किक (सं० पुं०) निष्कं टङ्कं करोति तदाध्यक्षे नियुक्त ठञ्। १ कोषाध्यक्ष, टकसालका अफसर। २ निष्क विकार। (त्रि०) ३ निष्कक्रीत, निष्क द्वारा मोल लिया हुआ। ४ निष्कसम्बन्धी।

नैष्किञ्चन्य (सं० क्ली०) निष्किञ्चन-ष्यञ्। निष्किञ्चनता, दरिद्रता।

नैष्कृतिक (सं० त्रि०) परकृति-छेदनमें तत्पर, दूसरेको हानि करने अथवा प्रयोजन सिद्धिमें बाधा।

नैष्क्रमण (सं० क्ली०) निष्क्रमणे शिशोर्यद् बाह्यगमन काले दीयते तत् कार्यं वा व्युष्टादित्वात् अण्। (पा ५।१।९७) १ निष्क्रामणकालमें देयमान वस्तु। २ वह वस्तु जो निष्क्रामण संस्कारके समय दान की जाती है।

नैष्ठिक (सं० त्रि०) निष्ठा विद्यतेऽस्य इति निष्ठा-ठक्। १ निष्ठावान्, निष्ठायुक्त। २ मरणकालमें कर्त्तव्य। (पुं०) ३ ब्रह्मचारिभेद, वह ब्रह्मचारी जो उपनयनकालसे ले कर मरणकाल तक ब्रह्मचर्य-पूर्वक गुरुके आश्रममें ही रहे।

याज्ञवल्क्यमें लिखा है, कि नैष्ठिक ब्रह्मचारिगण यावज्जीवन आचार्यके समीप, आचार्यके अभावमें आचार्य-पुत्रके समीप, उनके भी अभावमें उनकी पत्नीके समीप और यदि उनको भी न रहे तो अग्निहोत्रीय अग्निके समीप वास करें। जितेन्द्रिय नैष्ठिक-ब्रह्मचारी यदि विधिपूर्वक इसका अवलम्बन करें, तो अन्तमें उन्हें मुक्तिलाभ होता है। इस संसारमें फिर उन्हें जन्मग्रहणका भोग करना नहीं होता। यावज्जीवन ब्रह्मचर्य अवलम्बनका नाम ही नैष्ठिक-ब्रह्मचर्य है।

नैष्ठुर्य (सं० क्ली०) निष्ठुरस्य भावः, निष्ठुर-ष्यञ्। निष्ठुरता, निठुराई, क्रूरता।

नैष्ठ्य (सं० त्रि०) निष्ठायुक्त, व्रतनियमादि आचरणशील।

नैष्णिह्य (सं० क्ली०) निःस्निह ष्यञ्, भावे अञ्। स्नेहाभाव।

नैष्पेषिका (सं० स्त्री०) पेषणकारीका कार्य, पीसने वालीका काम।

नैष्पेषिक (सं० त्रि०) निष्पेषणकारी पीसनेवाला।

नैष्पुरुष्य (सं० क्ली०) निष्पुरुष-ष्यञ्। (पा ३।१।४९) निष्पुरुषका भाव।

चट्टग्राम पर आक्रमण किया जिससे यहांके मुसलमानोंकी संख्या और भी बढ़ गई। इसके अलावा आराकानियोंके अत्याचारसे हिन्दु और मुसलमान उत्पीड़ित होते हुए नाना स्थानोंसे यहां आये थे। धीरे धीरे यहांके मुसलमान सम्प्रदायकी दिनों दिन उन्नति होने लगी।

१५१६ ई०में [illegible] नामक एक विनिस निवासीने इस स्थानको देख कर लिखा है,—'यहांके अधिवासिगण मूर नामक दस्युके समान हैं। यहां बहुत रुई मिलती और नमकका बहुत बड़ा कारबार है। प्रति वर्ष लाखों मन नमक यहांसे दूसरे स्थानमें भेजा जाता है।'

सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें कुछ पोर्तुगीज इस देशमें आए और आराकानराजके अधीन रहने लगे। १६०७ ई०में किसी कारण आराकानराजने उन्हें मार भगाया। बहुतोंकी जानें गईं और जो कुछ बच रहे थे गङ्गा नदीके मुहानेमें दस्युवृत्ति करने लगे। इनके अत्याचारसे अत्यीड़ित हो कर स्थानीय शासकने ४० जहाज और ४०० सेना ले कर [illegible] होकर इन पर चढ़ाई कर दी, किन्तु इस लड़ाईमें वे पराजित हुए। पोर्तुगीजोंने उनके जहाजादि अपने अधिकारमें कर लिए। इससे इन लोगोंने उत्साहित हो कर १६०८ ई०में सन्द्वीप पर आक्रमण कर मुसलमानोंके दुर्गको अवरोध किया। विजित और बोधमें पोर्तुगीजोंके साथ युद्धमें मुसलमानोंकी हार हुई और सन्द्वीप उनके अधिकारमें आ गया।

फरासी पर्यटक बर्नियरकी लिखित वर्णनासे जाना जाता है कि जब पोर्तुगीज मुगल द्वारा पराजित हुए तब आराकानराजने इन लोगोंके साथ अन्यान्य यूरोपियोंको भी आश्रय दिया और इन लोगोंकी सहायतासे चट्टग्राम बन्दरको मुगल-आक्रमणसे बचाया। मग और पोर्तुगीज मिश्रित दस्युसम्प्रदायके लुण्ठन और अत्याचारसे मुगलसम्राट् औरङ्गजेब तंग तंग आ गये और बङ्गालके शासनकर्त्ता शाइस्ता खांको उन्हें दमन करनेके लिए भेजा। शाइस्ता खांने उन लोगोंको डरा धमका कर वशीभूत किया और कहा कि यदि वे लोग अत्याचार करना छोड़ दें तो औरङ्गजेब उन लोगोंको रहनेको अनेक जमीन दे सकते हैं। इस प्रकार शाइस्ता खां उन लोगोंको शान्त कर १६६६ ई०में सैयद अब गानके अधीन १०० सेना नगरकी रक्षाके लिए रख छोड़ गए।

१७५६ ई०में इष्ट-इण्डिया-कम्पनीने कपड़ेका व्यवसाय करनेके लिए यहां एक कोठी बनवाई। इसके अलावा चारपाता, कालीबन्दी, लटवा और लक्ष्मीपुर ग्राममें उसी समय अनेक कोठी निर्माण की गई जिनके ध्वंसावशेष आज भी नजर आते हैं। यहांके मुसलमान हनफीमतानुसारी हैं। ये लोग नमाज पढ़ते और अनेक हिन्दू पूजामें योगदान देते हैं तथा अन्यान्य मुसलमान लोगोंकी विशेष भक्ति नहीं करते। हिन्दुओंके मध्य ब्राह्मण, वैद्य और निम्नश्रेणीके हिन्दू सम्प्रदाय हैं। यहां शीतलादेवी और नागपूजा ही प्रसिद्ध मानी जाती है।

यहांके क्या हिन्दू क्या मुसलमान दोनों जातिके मध्य युवका १५से २० वर्ष और कन्याका १० वर्ष होनेसे विवाह होता है। यहांके मुसलमानोंकी विवाह-प्रथामें हिन्दूसे बहुत कुछ फर्क पड़ता है। विवाहके दिन वर आत्मीय स्वजन और आमन्त्रित निमन्त्रित व्यक्तियोंके साथ कन्याके घर जाता है। अभ्यागतके निर्दिष्ट स्थान पर बैठनेके बाद एक आदमी वकील और दो आदमी साक्षी रूपमें नियुक्त होते हैं। बाद वर इसी वकीलके द्वारा बहुतसे द्रव्य कन्याको उपहारस्वरूप देता है। कन्या इन सब द्रव्योंको ले कर विवाहकी सम्मति प्रकट करती है। अनन्तर वकील वरके निकट आ कर कुरान वाक्य सुनाते और वर उसका स्वीकार अथवा समर्थन करते हैं। आमन्त्रित व्यक्तिगणके भोजन कर चुकने पर विवाह होता है। इसके बाद वर कन्याको अपना घर ले जाता है।

इस जिलेके नाना जातीय मनुष्य धानकी खेती करते हैं। बैशाख ज्येष्ठमासमें जो आउश धान बोया जाता है, वह श्रावण भाद्रमें और जो अमन्, आषाढ़में बोया जाता है वह कार्त्तिक, अग्रहायणमें काटा जाता है। यहां ईख, सरसों, नारियल, सुपारी, रुई, पाट और पानकी बहुत खेती होती है। ये सब उत्पन्न द्रव्य यहांसे ढाका, चट्टग्राम आदि जिलोंमें भेजे जाते और इन सब स्थानोंसे

नाना द्रव्योंकी इस जिलेमें आमदनी भी होती है। १८७६ ई०में यहां एक भयानक बाढ़ आई थी जिससे बहुत मनुष्योंके प्राण नाश हुए थे।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° १०' से २३° १०' उ० और देशा० ९०° ४०' से ९१° ३२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२०१ वर्गमील और जनसंख्या ८२२८८१ है। इसमें सुधाराम नामका एक शहर और १८५५ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान नगर। सुधाराम देखो।

नोइनो (हिं० स्त्री०) नोई देखो।

नोई (हिं० स्त्री०) दूध दुहते समय गायके पैर बांधनेकी रस्सी, बंधो।

नोक (फा० स्त्री०) १ सूक्ष्म अग्रभाग, शङ्कुके आकारको वस्तुका महीन वा पतला छोर। २ कोण बनानेवाली दो रेखाओंका सङ्गमस्थान या विन्दु, निकला हुआ कोना। ३ किसी वस्तुके निकले हुए भागका पतला सिरा, किसी ओरको बढ़ा हुआ पतला अग्रभाग।

नोकझोंक (हिं० स्त्री०) १ बनाव सिंगार, ठाटबाट, सजावट। २ आतङ्क, दर्प, तेज। ३ चुभनेवाली बात, व्यंग्य, ताना, आवाजा। ४ छेड़छाड़, परस्परकी चोट।

नोकदार (फा० वि०) १ जिसमें नोक हो। २ चुभनेवाला, पैना। ३ चित्तमें चुभनेवाला, दिलमें असर करनेवाला। ४ शानदार, तड़क-भड़कवाला, ठसकवाला।

नोकना (हिं० क्रि०) ललचना।

नोकपलक (हिं० स्त्री०) आंख नाक आदिकी गढ़न, चेहरेकी बनावट।

नोकपान (हिं० पु०) जूतेकी काट छांट, सुन्दरता और मजबूती।

नोकाझोंको (हिं० स्त्री०) १ परस्पर व्यंग्य आदि द्वारा आक्रमण, छेड़छाड़, ताना, आवाजा। २ विवाद, झगड़ा।

नोकीला (हिं० वि०) नुकीला देखो।

नोखा (हिं० वि०) अद्भुत, विचित्र, अनूठा, अपूर्व।

नोग्राम या नवग्राम—युक्तप्रदेशके यूसुफजाई जिलेमें अवस्थित अंगरेजाधिकृत एक ग्राम। यह मर्दानसे ११ कोस पूर्व और ओहिन्द नगरसे ८ कोस उत्तरमें अवस्थित है। इसके पास ही रानीघाट नामक पर्वत है। ग्राममें तथा पर्वत पर अनेक प्राचीन ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं। स्थानीय प्रवाद है, कि देशको शासनकर्त्री कोई रानी इस पर्वतके उच्च शिखर पर बैठ कर चारों ओर देखा करती थीं। जब उड़ती हुई धूल नजर आती थी, तब वे समझ लेती थीं कि देशान्तरस्थ वणिक् भारतवर्ष आ रहे हैं। इस समय वे उन्हें लूटनेके लिये अपनी सेनाको भेज देती थीं। इसी रानीके नाम पर पर्वत और निकटस्थ ग्रामका रानीघाट नाम पड़ा है। आज भी रानीघाटके शिखरदेश पर रानीका प्रस्तरासन नजर आता है। विशेष विवरण रानीघाट शब्दमें देखो।

नोङ्ग्क्रम—आसामप्रदेशके खसिया पर्वतस्थित खैरिम राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। इसके पास ही लोहेकी खान है। वह लोहा अग्निके तापसे गला कर समतल क्षेत्र पर रखा जाता है और पीछे बहुत उत्कृष्ट लोहा हो जाता है। इससे स्थानीय अधिवासी अपना अपना व्यवहारोपयोगी अस्त्रादि बनाते हैं।

नोङ्ग् स्लाव—आसामके खसिया पहाड़के अन्तर्गत एक छोटा राज्य। यहांके राजाओंको उपाधि सि-एम है। १८२६ ई०में खसिया राज्यके मध्य सबसे पहले इसी स्थानके राजाके साथ अंगरेजोंको मित्रता हुई थी। फलस्वरूप सि एम राजाने अपने राज्य हो कर उन्हें आसाम जानेका एक रास्ता बनानेका आदेश दिया। किन्तु १८२८ ई०में अंग्रेजोंके साथ इनका मनमुटाव हो गया। खसिया लोगोंने बागी हो कर इस नगरके दो अंगरेजकर्मचारी और सिपाहियोंको मार डाला। विद्रोहियोंका दमन किये जानेके बाद अंगरेजोंने इस नगरमें पालिटिकल एजेण्टका सदर स्थान बनाना चाहा। यहांके अधिवासी व्यवहारोपयोगी सूती कपड़े बुनते और लोहेके हथियार भी बनाते हैं।

नोङ्ग्तरमेन—आसामप्रदेशके खसिया पर्वतके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। इसे कोई कोई द्वार—नोङ्ग्तरमेन भी कहते हैं। यहांके राजा वा शासनकर्त्ताकी उपाधि सर्दार है।

नोङ्ग-छोइन—खसिया पर्वतके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यहांकी जनसंख्या दस हजारके करीब है। यहांके

राजाको उपाधि कि दम है। चाँवल, का गम, तिलपान, रबर, माल और मोम इस राज्यमें अधिक पाया जाता है। राज्यमें चूमि और औषधिको खान भी पाई गई है। सोनाइये इस राज्यमें पानेगा एक राज्य है।

नोङ्गसोको—खसिया पर्वतके अन्तर्भुक्त एक छोटा राज्य। यहां धान चावल, मकई आदिकी खेती होती है। यहांके लोग चटाईका व्यवसाय अधिक करते हैं।

नोङ्गस्पङ—आसामके खसिया पर्वतका एक सामन्त राज्य। जनसंख्या दो हजारके लगभग और राजस्व ८८०) रु०का है। यहांकी प्रधान उपज धान, आलू और मधु है। राज्यमें लोहा भी पाया जाता है, लेकिन वह काममें लाया नहीं जाता।

नोच (हि० स्त्री०) १ नोचनेको क्रिया या भाव। २ नोचने या छीननेको क्रिया, कहीं औरसे कहीं आदमियोंका झपटेके साथ खोसना या लेना। ३ चारों ओरकी मांग, बहुतसे लोगोंका तकाजा।

नोचखसोट (हि० स्त्री०) झपटेके साथ लेना या खोसना, जबरदस्ती यो च खो च करके लेना, छीना झपटी।

नोचना (हि० क्रि०) १ किसी जमी या लगी हुई वस्तुको झटकेसे खींच कर अलग करना, उखाड़ना। २ शरीर पर इस प्रकार हाथ या पंजा लगाना कि मालूम ऐंठ जाव पड़ी जमा। ३ नख आदिसे विदीर्ण करना, किसी वस्तुमें दांत, नख या पंजा धँसा कर उसका कुछ अंश खींच लेना। ४ ऐसा तकाजा करना कि नाकमें दम हो जाय बार बार तंग करके मांगना। ५ दुःखी और हैरान करके लेना, पीछे पड़ कर किसीको इच्छाके विरुद्ध उससे लेना बार बार तंग करके लेना।

नोचानोची (हि० स्त्री०) नोचखसोट देखो।

नोचू (हि० पु०) १ नोचनेवाला। २ तंग करके लेने वाला। ३ छीना झपटी करके लेनेवाला। ४ तकाजोंसे मारे नाकों दम करनेवाला।

नोखनी—युक्तप्रदेशके महाराजपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २८° ११' १८" उ० और देशा० ८० ३२' १२" पू०के मध्य, पाश्चिर नगरसे १ मील दक्षिण और महपुर ग्रामसे १ मील दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है।

नोट (स० पु०) नट-अच्, पृषोदरादित्वात् साधु। नट।

नोट (अ० पु०) १ ध्यान रखनेके लिये लिख लेनेका काम याददाश्त या टिप्पणीका काम। २ आशय या अर्थ प्रकट करनेवाला लेख टिप्पणी। ३ चिट्ठा छपा पत्र, चिट्ठी। ४ यूरोप, अमेरिका और अंगरेजाधिकृत भारत वर्षमें प्रचलित कागज (Parchment)को मुद्राविशेष, सरकारकी ओरसे जारी किया हुआ वह कागज जिस पर कुछ रुपयोंकी संख्या रहती है और यह लिखा रहता कि सरकारसे उतना रुपया मिल जायगा, सरकारी हुण्डी। भारतवर्षमें नोट दो प्रकारका होता है, एक करेन्सी, दूसरा प्रामिसरी। करेन्सी नोट बराबर सिक्केके स्थान पर चलता है और उसका रुपया जब चाहे, तब मिल सकता है। प्रामिसरी नोट पर केवल सूद मिलता रहता है। सरकार मांगने पर उसका रुपया देनेके लिये बाध्य नहीं है। प्रामिसरी नोटकी दर घटती बढ़ती है।

नोटपेपर (अ० पु०) पत्र लिखनेका कागज।

नोटबुक (अ० स्त्री०) वह कापी या बही जिस पर कोई बात याददाश्तके लिये लिखी जाय।

नोटिस (अ० स्त्री०) १ विज्ञप्ति, सूचना। २ विज्ञापन, इश्तिहार। इस शब्दको कुछ लोग पुंलिङ्ग भी बोलते हैं।

नोद (स० स्त्री०) थपथ, लमक।

नोबजवाड़ी—वर्त्तमान मणिपुर जिलेका उत्तरांश जो अभी विन्ध्यपुर कहलाता है, प्राचीनकालमें नोबज प्रजाधिष्ठित देश था नोबजवाड़ी नामसे प्रसिद्ध था।

नोबजभोर—चालुक्यवंशीय एक राजा। चालुक्य देखो।

नोदन (स० क्ली०) नुद भावे ल्युट्। १ क्षेपण। फिर भावे ल्युट्। २ प्रेरण, चलाने या हांकनेका काम। ३ प्रतोद, बैलोंको हांकनेकी छड़ी या कोड़ा, पैना, औगी।

नोद्य (स० त्रि०) अपसारणीय।

नोधस् (स० पु०) नु अथि-हुट् च। ऋषिभेद।

नौधसिंह—पञ्जाबकेसरी महाराज रणजित् सिंहके पूर्व पुरुष। इनके पिता बुधसिंह अपने पिताके आदेशानुसार नानकका धर्मग्रन्थ पढ़ कर सिक्खसम्प्रदायभुक्त हो गए थे। बुधसिंह पञ्जाबके नाना स्थानोंमें जो सब लूट मार करते थे उनसे सुकेरचक नामक ग्राममें जहां उनका घर था, रख दिये थे। सुकेरचक नामक स्थानमें घर रहने

कारण उनके दलभुक्त सिखगण 'सुखिर-चक-मिशल' नामसे प्रसिद्ध हुए। बुद्धसिंहके दो पुत्र थे, नोधसिंह और चान्दसिंह। नोधसिंह पिताके मिशलमें ही रहे और कनिष्ठ चान्दसिंहने 'सिन्धियन-वाला' नामक शाखाकी उत्पत्ति हुई।

उस समय 'धारवी' या दस्युव्यवसाय जातीयताका गौरवसूचक समझा जाता था। इसीसे नोधसिंहने अन्य कोई वृत्ति अवलम्बन करनेसे पहले सम्मानसूचक दस्यु-नेता होनेका पक्का विचार कर लिया। क्योंकि वे जानते थे, कि इस व्यवसायसे प्रचुर धन हाथ लगेगा। भविष्यत् उन्नतिकी आशासे इन्होंने रावलपिण्डीकी सीमासे ले कर अटकके तीरवर्त्ती सभी स्थानोंको लूट कर प्रभूत अर्थ संग्रह किया। इस समय क्या सिख, क्या जाट, क्या सीमान्तवर्त्ती सरदारगण, सबोंसे इनकी अवस्था उन्नत हो गई थी। विशिष्ट धनशाली हो कर ये अपने देश भरमें विशेष गण्यमान हो उठे थे। १७३० ई०में इन्होंने माजिथिया सन्धि-जाटवंशीय गुलाबसिंहकी कन्याका पाणि-ग्रहण किया। इसके बाद नोधसिंह फैजलपुरिया मिशलके सरदार नवाब कपूरसिंहसे आ मिले। इसी समय अहमदशाह अबदलीने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। नाना स्थानोंसे प्रचुर धनरत्न ले कर नोधसिंह सुखिरचकमें आ कर रहने लगे और जनसाधारणने उन्हें सुखिरचकके सरदार वा सामन्तराज मान कर घोषणा कर दी। १७४७ ई०में इनके साथ अफगानोंका एक सामान्य युद्ध हुआ। युद्धमें एक गोला इनके शिर पर आ गिरा। इस आघातसे इनकी मृत्यु तो न हुई, पर ५ वर्ष तक ये अकर्मण्य हो रहे। १७५२ ई०में आप चरत्‌सिंह, दलसिंह, चेत्‌सिंह और मङ्गीसिंह नामक चार पुत्र छोड़ सुरधामको सिधार गए।

नोधा (सं० अव्य०) नव-धाच्, पृषो०। नवधा, नौ प्रकार।

नोनगढ़—जयनगरसे ३ कोस दक्षिणपूर्व किउल नदीके किनारे अवस्थित एक ग्राम। कोई कोई इसे लोनगढ़ भी कहते हैं। यहां एक भग्नमूर्त्ति पाई गई है जिसमें ईसाब्दके पहले १ली शताब्दी और बादकी १ली शताब्दी-के मध्यवर्त्ती समयके अक्षरोंमें खोदित एक शिलालिपि है। मूर्त्तिकी भास्करकार्य भी मथुरासे प्राप्त उक्त समयकी खोदित प्रतिमूर्त्तिके अनुरूप है। चीन-परि-व्राजक यूएनचुवङ्ग लि-इन-नि-लो नामक स्थानमें भ्रमण कर लिख गए हैं, कि यहां एक बौद्ध सङ्घाराम और स्तूप है। वर्त्तमान नोनगढ़में भी इसी प्रकार दो चिह्नके ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं। यहांके स्तूपकी लम्बाई और चौड़ाई तथा उसकी प्राचीनत्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि यही नोनगढ़ चीन-परि-व्राजक-वर्णित लि-इन्-नि-लो नगर है।

नोनचा (हिं० पु०) १ नमकीन अचार। २ नमकमें डाली हुई आमकी फाँकोंकी खटाई। ३ वह जमीन जहां लोनी बहुत हो।

नोनछो (हिं० स्त्री०) लोनी मट्टी।

नोनहरा (हिं० पु०) पैसा। यह गन्धर्वोंकी बोली है।

नोना (हिं० पु०) १ नमकका अंश जो पुरानी दीवारों तथा सीड़की जमीनमें लगा मिलता है। २ लोनी मट्टी। ३ शरीफा, सीताफल, आत। ४ एक कीड़ा जो नाव या जहाजके पेंदेमें लग कर उसे कमजोर कर देता है, उधई कीड़ा। (वि०) ५ नमक मिला, खारा। ६ लावण्यमय, सलोना। ७ सुन्दर, अच्छा, बढ़िया।

नोनाई—आसामप्रदेशमें प्रवाहित दो नदी,—१ली भूटान पर्वतसे निकल कर दरङ्ग जिलेके पश्चिम होती हुई ब्रह्मपुत्र नदीमें गिरती है और २री मिकीर पर्वत-से निकल कर हरियामुख ग्राममें ब्रह्मपुत्रकी कलङ्ग शाखामें जा गिरी है।

नोनाखाल—२४ परगनेके अन्तर्गत विद्याधरी नदीकी एक शाखा।

नोनाचमारी—एक प्रसिद्ध जादूगरनी। इसकी दोहाई अब तक भी मंत्रोंमें दी जाती है। लोगोंका कहना है, कि यह कामरूप देशकी रहनेवाली थी।

नोनिया (हिं० पु०) लोनी मट्टीसे नमक निकालनेवाली एक नीच जाति। गया, शाहाबाद, चम्पारण, सारण आदि जिलोंमें इस जातिके लोग अधिक संख्यामें पाए जाते हैं। शोरा प्रस्तुत करना ही इनका प्रधान व्यव-साय है। इस जातिकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, मालूम नहीं। लेकिन दन्तकहानी है, कि सिदुरभक्त नामक किसी योगीसे अवधियाका जन्म हुआ। उस

पीछे विदूर लोगोंने मठी पर बैठ कर तपस्या करनी थी और उसी अवस्थामें उनका तपोभङ्ग हुआ था। पीछे योगाभ्यासमें उनका अधिकार न रहा। रामचन्द्रने उन्हें शाप दे कर मोरा प्रस्तुत करनेका आदेश दिया। बिन्द और बेलदारकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा ही प्रवाद है। किसीका मत है, कि बिन्द जातिके आदि पुरुषसे मोनिया और बेलदारकी उत्पत्ति हुई है।

बिहारमें मोनिया जातिके सात सम्प्रदाय हैं, यथा—अवधिया वा अयोध्यावासी भोजपुरिया, सारावत, मधैया, चोड़, मघाहयाँ और मेमारकार। इन सम्प्रदायोंमें एक दूसरेसे विवाह शादी नहीं होती। पर हां, तीन वा पांच पीढ़ी तक छोड़ कर अन्य हिन्दू जातिके जैसा विवाह कर लेते हैं। बहुत लड़कोंको अल्पवयसमें विवाह नहीं करते। ये लोग कच्ची उमरमें ही लड़कोंको ब्याहते हैं। किन्तु वर्त्तमानकाल कोई कोई अधिक उमरमें भी विवाह करते हैं। इन लोगोंमें बहु विवाह प्रचलित है, लेकिन दोसे अधिक स्त्री शायद बहुत थोड़े देखे जाते हैं। न मरनेके पहले यदि कोई दो चार स्त्री भी कर ले, तो समाजमें उसकी निन्दा नहीं होती। विधवा विवाह भी इन लोगोंमें चलता है। विधवा स्त्रियां अपने देवरके साथ विवाह करना ही अच्छा समझती हैं।

स्त्रीके असती होने पर अथवा पतिव्रत मान नहीं रखने पर पञ्चायतसे स्त्रीपरित्यागकी अनुमति हो जाती है। इस प्रकार एक स्वामी छोड़ देने पर मोनिया स्त्रियां अन्य स्वामी ग्रहण कर सकती हैं। किन्तु एक बार यदि अन्य जातिका संसर्ग करे, तो वह समाजसे अलग कर दी जाती है और फिर वह स्वजातिमें विवाह नहीं कर सकती।

तिरहुतिया ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। इन लोगोंकी विवाहप्रथा अन्यान्य जातियोंसे अनेक कुछ अन्तर पड़ती है। वरका मूल्य कुलरीतिके अनुसार केवल एक जोड़ा कपड़ा और एकसे पांच रुपये तक है। इस मूल्यका नाम तिलक है। विवाहके पहले ही इस मूल्यका निर्णय करना होता है। विवाह हो जाने पर कन्या बारातके साथ और जातिके जैसा ससुराल नहीं जाती। जब तक द्विरागमन नहीं होता, तब तक वह पीहरमें ही रहती है।

अवधिया मोनियामें 'आठमाहे 'माड़ो' नामक एक आचार-पद्धति प्रचलित है। इस पद्धतिके अनुसार वर कन्याको विवाहके समय दूसरे स्थानमें रखना पड़ता है।

बिहारमें प्रचलित हिन्दूधर्म ही मोनियाका धर्म है। इनमें शाक्तको संख्या ही अधिक है, वैष्णव बहुत थोड़े हैं। भगवती इनको प्रधान आराध्यदेवी हैं। ये लोग बन्दी गोरैया और शीतलाकी पूजा मङ्गलवार, बुधवार और शनिवारको किया करते हैं। स्त्रियां और छोटे छोटे बच्चे किसी देवदेवीकी पूजा नहीं करते। कभी कभी स्त्रियां शीतलापूजामें सुअरका भाग देती हैं। न्यायी फकीर लोग ही इस जातिके गुरु होते हैं। ये लोग मृतदेहको जलाते हैं, गाड़ते नहीं। जिसकी मृत्यु पांच वर्षके अन्दर होती है, केवल उसीको मृतदेह गाड़ी जाती है।

कोनी मट्टीसे मोरा और मकान प्रस्तुत करना ही इनका पैतृक व्यवसाय है। वर्त्तमान समयमें इनमेंसे कुछ पथनिर्माण, पुष्करिणीखनन, अट्टालिकानिर्माण, घर छावन आदि मजदूरका काम करते हैं।

पटना, मुङ्गेर और मुजफ्फरपुरमें मोनिया कुर्मी, कोइरी आदि जातियोंके समकक्ष हैं और ब्राह्मण इनके हाथका जल पीते हैं। किन्तु भागलपुर, पूर्णिया, चम्पारन शाहाबाद और गयामें मोनियाका जल कोई हिन्दू नहीं पीता। वहां ये लोग तांतीके समान माने जाते हैं। इस जातिके प्रायः सभी लोग चूहे और सूअरका मांस खाते तथा शराब पीते हैं।

मोनी (हिं० स्त्री०) १ चीनी मिट्टी। २ कोनिया अम मोनीका पौधा। (वि०) १ रूपवती, सुन्दर। २ अच्छी, बढ़िया।

मोनीकवि—एक हिन्दी भाषक कवि। बुन्देलखण्डके अन्तर्गत ओड़छा नगरमें १८३३ ई०को इनका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम था हरिदास।

मोनेरा—युक्तप्रदेशके आगरा विभागको मैनपुरी तहसीलके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह सिरसे सदरसे ८ मील उत्तर-पश्चिम ४० फुट ऊंची भूमिके ऊपर अवस्थित है। इस स्थ स्तूपके पूर्व दिशामें अवस्थित एक प्राचीन मन्दिरकी ईंटोंसे उस गांवमें एक दुर्ग बनाया गया था।

नोपस्थात् (सं॰ त्रि॰) न-उपतिष्ठति स्था-तृच्। दूरस्थ, दूरका।

नोमुर्दी—भारतवर्षकी सीमान्तवर्त्ती वेलुच जातिकी एक शाखा। सेवानसे ले कर खुटो तक इन लोगोंका वास है।

नोया (नोश्रा)—पश्चिम एशियाके प्राचीनतम ईसाइयोंकी एक पेट्रियार्क वा महापुरुष। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वरने जब देखा, कि धरावासी मानवोंकी अधार्मिकता और अत्याचारसे धरित्री भारग्रस्ता हो गई है, तब उन्होंने भूभारको घटानेका सङ्कल्प किया। तदनुसार उन्होंने धार्मिक प्रवर नोयाको आत्मीय स्वजनोंके साथ एक जहाज बना कर उस पर रहनेका आदेश दिया। वह जहाज 'नोयास् आर्क' वा नोआका जहाज नामसे प्रसिद्ध हुआ। नोया सपरिवार जहाज पर चढ़ कर निरापदसे रहे। इधर जगत्पतिके महाप्रलयमें पृथिवी जलमग्न हो गई; सभी जीव जन्तु इस लोकको छोड़ कर परलोकमें जा बसे। सात मास तक जलस्रोतमें बहता हुआ नोयाका जहाज आराराट गिरिशृङ्ग पर जा लगा। यहां जब इन्हें रहनेका आश्रय मिल गया, तब जगदीश्वरको खुश करनेके लिए इन्होंने एक बलि चढ़ाई। जगदीश्वर भी उनकी भुक्तिके लिये प्रतिश्रुत हुए।

इस स्थान पर उतर कर नोयाने अङ्गूरकी खेती की। एक दिन अङ्गूरको रस पी कर वे मत्तावस्थामें अपने पुत्र ह्यामकी बगलमें आ सो रहे। ह्यामने पिताका दौर्बल्य न समझ कर श्याम और जाफर नामक अपने दो भाइयोंको बुलाया और पिताकी मादकताजनित अङ्गशिथिलता और निद्रितावस्थाको दिखा कर वे आनुपूर्विक सभी विषय जान गए। पन्द्रह दिन तक पिताकी इसी अवस्थामें देख वे बड़े लज्जित हुए और उन्हें सर्वाङ्ग एक वस्त्रसे ढक कर रख दिया। निद्राभङ्ग होने पर नोया अपने पुत्रोंके इस आचरणको समझ गये और ह्याम पर असंतुष्ट हो कर शाप दिया, 'तुम्हारी भविष्यत् उन्नति कदापि नहीं होगी।' पृथ्वीके जलप्लावित होनेके ३५० वर्ष बाद धार्मिक नोया स्वर्गधामको सिधारे गए इनका पूर्ण जीवनकाल ८५० वर्ष था।

मुसलमान इतिहासमें भी नोयाका उल्लेख है। यास्तानिया-वंशीय प्रथम राजा विवर-आस्प हुशङ्गके पुत्र जमशेदको सिंहासनच्युत करके राजा बन बैठे। कुकर्मादिमें लगे रहनेके कारण जगदीश्वरने उसके पूर्वकृत पापका खण्डन करनेके लिये नोयाको उसके पास भेजा। नोयाके लाखों उपदेश देने पर भी राजाको ज्ञान न हुआ। इस पर परम पिता परमेश्वरने धराभारहरणके लिये महाप्रलय उपस्थित किया। ऐसा करनेसे पृथ्वी पर जितने पापी थे सबोंकी मृत्यु हो गई। नोयाको मृत्युके प्रायः एक हजार वर्ष बाद ह्यामके पुत्र जुआक राजा हुए*।

केवाक ग्रामसे दक्षिण जेवलसे १ कोस दूर बेकार समतल क्षेत्रके ऊपर वालबेकवासिगण नोयाको कब्र बतलाते हैं। यह कब्र १० फुट लम्बी, ३ फुट चौड़ी और २ फुट ऊंची मानी जाती है। कब्रके ऊपर ६० फुट ऊंची एक आकृति बनी हुई है। यहांसे २ कोसकी दूरी पर हारमिमका भग्नमन्दिर है। अंगरेजी वाइबलके नोया, हिब्रुवाइबलके गिशुथ्रस वा एकेडियन नोया तथा अन्यान्य भाषामें इनकी घटनावली विभिन्न नामोंसे वर्णित है। मनु देखो।

नोयाकोट (नवकोट)—नेपाल राज्यके अन्तर्गत हिमालय-तटस्थित एक नगर। यह त्रिशूलगङ्गा-नदीके पूर्वी किनारे अवस्थित है। धंवङ्ग पर्वतके निकटवर्त्ती गिरिपथ हो कर तिब्बती अथवा चोनवासिगण सहजमें नवकोट राज्यमें प्रवेश कर सकते हैं। १७९२ ई॰में चीनसेनाने इसी नगर हो कर नेपाल पर आक्रमण किया था। यहांके महामाया वा भवानीके मन्दिरके ऊपरी भाग पर चीनसैन्यसे लब्ध कितने द्रव्य युद्धजयके गौरवचिह्न स्वरूप संलग्न हैं। नेपाल देखो।

नोयाग्नि—भारतवर्षके उत्तर काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक गिरिपथ। इसके एक ओर उच्च हिमालय-शिखर और पूर्वकी ओर काश्मीरकी उपत्यकाभूमि है। इसका सर्वोच्च स्थान समुद्रपृष्ठसे बारह हजार फुट है।

नोयापुर (नवपुर)—१ गुजरात प्रदेशके अन्तर्गत एक

* तारीख-इ मुकद्दसी नामक मुसलमानी इतिहासमें नोयाकी वंशावली इस प्रकार लिखी है। नोया, उनके पुत्र काया, कायाके पुत्र तारा, ताराके पुत्र अवबन्द आस्प, आस्पके पुत्र जुआक वा विवर-आस्प। Tabakat-i-Nasiri, Vol. I, p. 303n.

नगर। १८१८ ई०में यहां अङ्गरेजी सेना आ बसी थी।

२ बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक ग्राम। इस ग्रामके चारों ओर पार्वतीय पथोंमें भील जातिका वास भी अधिक है।

नोयारवन्द्—आसाम प्रदेशके काछाड़ जिलेका एक नगर। यह सिलचरसे १८ मील दक्षिणमें अवस्थित है। लुसाई और कूकी आक्रमणसे देशकी रक्षाके लिये यहां ब्रिटिश सरकारने सेना रखी है। इसके पास चायकी खेती बहुत होती है।

नोयिल—मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतूर जिलेकी एक नदी। यह नीलगिरिसे निकल कर कावेरीनदीमें गिरती है।

नोर—आसामके दक्षिण और ढाकानगरके उत्तर तथा ब्रह्मपुत्र और ऐरावती दोनों नदियोंके मध्यमें अवस्थित एक जनपद। १५८१ ई०में यह स्थान ब्रह्मके राजाके अधीन था। यहांके सामन्तराज आसाम राज्य भोग है।

नोरोज़ व अक्षाब्दो (वा नौरोज़-जलाली) मुसलमान धर्मशास्त्रका एक प्रसिद्ध दिन। सुलतान मालिक-शाहके आदेशसे ज्योतिर्विदों और गणितशास्त्रविदोंने वर्ष, ऋतु, मास और कालनिर्णयके लिये फिरसे गणना आरम्भ कर दी। उस गणनासे यह स्थिर हुआ, कि सूर्य्य राशिके प्रथम मेषराशि से पहले अक्षरेखाकी विषुवांशिका अतिक्रम कर अयन वृत्तमें गमन करता है। इस कारण उस दिनसे मुसलमानोंके मास और वर्षकी गणना चली आ रही है।

नोवना (हि० क्रि०) दुहते समय रस्सीसे गायका पैर बांधना।

नोविकिट्ना—मन्द्राजके अनन्तपुर तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यह गुटीसे ११ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके चाक्रमेश्वरके मन्दिरमें ११५८ शकमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखनेमें आती है।

नोबिलियन राबर्ट-डि—एक पोर्त्तुगीज मिशनरी। १६०६ ई०में ये पहले पहल मदुरा नगरमें आये। उस समय तिरुमल नायक यहां राज्य करते थे। यहांके हिन्दू अधिवासिगण कृष्टीय याजकप्रधान नोबिलीको तत्त्वबोध स्वामी नामसे पुकारते हैं। १६५६ ई०को मन्द्राजके निकटवर्ती ग्राममें इनका देहान्त हुआ। [illegible] देखो।

नोब्रा—उत्तर-भारतके काश्मीर राज्यके लदाख विभागके अन्तर्गत एक उपविभाग। यह काराकोरम गिरिश्रेणीसे ग्यारह हजार फुट ऊंचे पर अवस्थित है और चारों ओरसे श्योक वा नोब्रानदीसे घिरा है। दिसकित् इसका प्रधान नगर है।

नोहर (हि० वि०) १ अलभ्य, दुर्लभ, जल्दी न मिलनेवाला। २ अद्भुत, अनोखा।

नोहला—चालुक्यवंशीय राजा अवनिवर्माकी कन्या। इनका कलचुरि राजपुत्र केयूरवर्षके साथ विवाह हुआ था। इनके प्रतिष्ठित मन्दिर और शिवलिङ्ग नोहलेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं।

नौ (सं० स्त्री०) नुद्यतेऽनेनेति नुद-प्रेरणे डौ (ग्लानुदिभ्यां डौः। उण् २।६४) १ नौका नाव। २ यज्ञपात्रविशेष, प्राचीनकालकी एक नाव जो यज्ञके सहारे बनाई जाती थी। महाभारतमें इस प्रकारकी नावका उल्लेख देखनेमें आता है।

० इस यज्ञपात्रनीय नौका शब्दसे आज कलके जहाज का ही बोध होता है। वर्त्तमान समयमें जहाजके जो सब लक्षण दिये जाते हैं, वे पूर्वोक्त यज्ञपात्रनीय नौका-के साथ मिलते जुलते हैं। अतः इस पात्रनीय नौकाको यदि जहाज के श्रेणीमें गिनती की जाय, तो कोई दोष नहीं होता। नौका देखो।

नौ (हि० वि०) जो गिनतीमें आठ और एक हो, एक कम दस।

नौकड़ा (हि० पु०) एक प्रकारका जुआ जो तीन आदमी तीन तीन कौड़ियां ले कर खेलते हैं।

नौकर (फा० पु०) १ भृत्य, चाकर, टहलुआ, खिदमतगार। २ कोई काम करनेके लिये वेतन आदि पर नियुक्त किया हुआ मनुष्य, वैतनिक कर्मचारी।

नौकरानी (फा० स्त्री०) दासी, घरका काम धन्धा करनेवाली स्त्री।

नौकरी (फा० स्त्री०) १ नौकरका काम, सेवा टहल, खिदमत। २ कोई काम जिसके लिए तनखाह मिलती हो।

नौकरीपेशा (फा० पु०) वह जिसका जीवननिर्वाह नौकरीसे होता हो, वह जिसका काम नौकरी करना हो।

नौकर्णधार (सं० पु०) नावः कर्णधारः, ६-तत्। नाविक मल्लाह।

नौकर्णी (सं० स्त्री०) नौरिव कर्णौ यस्याः, ङीष्। कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी अनुचरी एक मातृका।

नौकर्म (सं० क्ली०) नावि कर्म, चालनादिव्यापारः। नौकावाहनादि कार्य, नाव चलानेका काम।

नौका (सं० स्त्री०) नौरिव स्वार्थे कन् स्त्रियां टाप्। तरणि, नाव, जहाज। पर्याय—वारिरथ, नौ, तरिका, तरणि, तरि, तरी, तरण्डी, तरण्ड, पादालिन्दा, उतुम्बना, होड, वाधू, वार्वट, वहित्र, पोत, वहन। यान दो प्रकारका होता है, जलयान और स्थलयान। नौका निष्पद यान है।

नौका प्रभृति जलयानको निष्पदयान और अश्वादि-यानको स्थलयान कहते हैं। जलमें नौका ही एकमात्र यान है अर्थात् जलपथ हो कर जानेसे नौका ही उसका एकमात्र उपाय है। इस कारण शुभ दिन देख कर नौका प्रस्तुत और नौकारोहण करना चाहिये।

नौका बनानेमें पहले काष्ठनिर्णय करना होता है। काष्ठजाति चार प्रकारकी है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

इन चार प्रकारके काष्ठोंमें जो लघु, कोमल और सुघट होता है, वह ब्राह्मण जातिका काष्ठ; जो दृढ़ाङ्ग, लघु और अघट है, वह क्षत्रियकाष्ठ, जो कोमल और गुरु होता है, वह वैश्य जातिका काष्ठ और, जो दृढ़ाङ्ग तथा गुरु होता है, वह शूद्र जातिका काष्ठ कहलाता है। प्रथमतः काष्ठकी इन चार जातियोंमेंसे जिस काष्ठ द्वारा नौका बनाई जायगी, वह काठ किस जातिका है, पहले उसीको स्थिर करना होता है। ये सब लक्षण ठीक करके द्विजजाति काठ नौकाके लिये संग्रह करना चाहिए। भोजके मतसे क्षत्रिय जातिका काठ ही नौकाके लिये प्रशस्त है। फिर दूसरे दूसरे पण्डितोंका कहना है, कि लघु और सुदृढ़ काठसे जो नाव बनाई जाती है, वही सबसे बढ़िया है।

जो नौका दो विभिन्न जातिके काष्ठोंसे बनाई जाती है, वह शुभफलद नहीं होती।

नौका प्रथमतः दो प्रकारकी होती है, क्षुद्रनौका और मध्यमा नौका। जो नौका जितनी लम्बी होगी उसका चौथाई भाग यदि उसका चौड़ाई और उतनी ही ऊँचाई हो, तो उसे क्षुद्रनौका और जिसका परिणाह लम्बाईसे आधा तथा जिसकी ऊँचाई तिहाई भागके समान हो, उसे मध्यमा नौका कहते हैं।

यह सामान्य नौका दश प्रकारकी है। यथा—क्षुद्रा, मध्यमा, भीमा, चपला, पटला, अभया, दीर्घा, पत्रपुटा, गर्भरा और मन्थरा। इन दश प्रकारकी नौकाओंमें भीमा, अभया और गर्भरा नौका शुभजनक नहीं है।

दीर्घनौकाका लक्षण—जो नौका दो राजहस्त दीर्घ उसका आठवां भाग परिणाह तथा दशवां भाग-उन्नत हो, वैसी नौकाको दीर्घा कहते हैं। दीर्घा नौका भी पुनः दश प्रकारकी है—दीर्घिका, तरणि, लोला, गत्वरा, गामिनी, तरि, जङ्घाला, प्लाविनी, धरणी और वेगिनी। इन दश प्रकारकी नौकाओंमें लोला, गामिनी और प्लाविनी नौका दुःखप्रदा मानी गई है।

नौकामें नाना प्रकारकी धातु द्वारा चित्रकार्य करना होता है। यथाक्रमसे कनक, रजत और ताम्र द्वारा ब्रह्मादिकी आकृति चित्रित करे। पीछे सित, रक्त, पीत और नील आदि वर्णोंसे उसे सुशोभित बनाए रखे। केशरी, महिष, नाग, द्विरद, व्याघ्र, पक्षी और भेक इनके मुख नौकाके मुखकी ओर बने रहें। जलमें नौका भिन्न अन्य जो कोई यान है उसे जघन्ययान कहते हैं।

जलपथ-गमनमें द्रोणीयान, घटानौका, फलयान, चर्मयान, तृणयान और जन्तुयान ये सब यान निन्दित माने गए हैं।

उत्तम दिन चर और मकरादि ६ लग्न तथा विहित नक्षत्र देख कर नौका बनवानी चाहिये।

(युक्तिकल्पतरु)

नौकाक्रष्ट (सं० क्ली०) चतुरङ्गक्रीड़ाभेद।

नौकादण्ड (सं० पु०) नौकाया परिचालनार्थं यो दण्डः। क्षेपणी, नावका डाँड़, बल्ली।

नौक्रम—नौकाश्रेणीसंयुक्त सेतु, नावका बना हुआ पुल।

नौगाँव (नवग्राम)—आसामके चीफ कमिश्नरके अधीन एक जिला। यह अक्षा० २५° ४५' से २६° ४०' उ० तथा देशा० ९२° से ९३° ५४' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें ब्रह्मपुत्रनदी, पूर्वमें शिवसागर, दक्षिणमें

दरंगिया और भूटान जिला, पूर्व में शिवसागर तथा पश्चिममें कापिली नदी और कामरूप जिला है। इसका प्रधान सदर नौगाँव नगर है।

इस जिलेके चारों ओर जिस तरह कामरूप, शिवसागर, दरंगिया और भूटान जिला पर्वतमालासे सुशोभित है, उसी तरह पर्वतमालाप्रवाहिनी बहुतसी नदियोंसे यह उपविभाग विच्छिन्न हुआ है। इनमेंसे धानेश्वरी, कपिलाओ, दिवंग, दिक्‌पानी, ब्रह्मपुत्र और कलङ्ग नदियां ही प्रधान हैं। दिहू, नमाई, कालिनी, यमुना कल्लुपानी, दिमारू और किलिङ्ग आदि छोटी छोटी शाखानदियां ब्रह्मपुत्र और कलङ्गकी पुष्टि करती हैं।

कामाख्या-पर्वतकी कामाख्यादेवीका मन्दिर उल्लेख योग्य है। शायद यह मन्दिर पूर्वविहार-भवन सा किसी राजाके बनाया गया होगा। प्रवाद है, कि यह स्थान पहले एक बौद्धतीर्थरूपमें लिया जाता था। शैव मतावलम्बी राजा नरनारायणने १५६५ ई०में इस मन्दिर-का पुनर्निर्माण किया। कामाख्या और कामरूप देखो।

पार्वतीय असभ्य जातियोंमें मीकिर, गारो कुकी और नागा ही प्रधान हैं। ये लोग बहुत कुछ छोटानाग पुरके ओरावन, कोल और सन्थालोंसे मिलते जुलते हैं। यहां लोग जातिकी संख्या ही अधिक है, ये लोग अन्यान्य जातियोंसे श्रेष्ठ माने जाते हैं।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान नगर। यह कलङ्ग नदीके पूर्वी किनारे अवस्थित है।

३ मध्यभारतके बुन्देलखण्ड राज्यके अन्तर्गत एक नगर और सैन्यनिवास। इसके एक ओर अंगरेजाधिकृत हमीरपुर जिला और दूसरी ओर अजयगढ़का सामन्तराज्य है। यहां लार्ड मेयोके स्मरणार्थ बुन्देलखण्डके सामन्त राजने 'राजकुमार-कालेज' नामक एक विद्यालयकी स्थापना की।

नौगजी (हिं० स्त्री०) पञ्जाबमें पहननेका एक गहना जिसमें नौ कंगूरेदार दाने पाटमें गुंथे रहते हैं।

नौगुण (स० त्रि०) जिसमें नव गुण हों। नौगुणसम्पन्न, जो नाव पर चढ़ कर विचरण करते हों।

नौघो (फा० स्त्री०) वैश्याकी पालो हुई लड़की जिसे वह अपना व्यवसाय सिखाती हो।

नौचावर (हिं० स्त्री०) निछावर देखो।

नौज (हिं० अव्य०) १ ईश्वर न करे, ऐसा न हो। २ न हो, न सही।

नौजवान (फा० वि०) नवयुवक, उठती जवानी।

नौजवानी (फा० स्त्री०) उठती युवावस्था।

नौजा (फा० पु०) १ बादाम। २ चिलगोजा।

नौजी (फा० स्त्री०) लीची।

नौजीविक (स० त्रि०) नावा जीविका यस्य। नौकाव-लम्बनादि जीविकायुक्त, जो नाव चला कर अपना गुजारा करता हो।

नौटा (स० पु०) भौटा देखो।

नौतार्य (स० त्रि०) नावा नौकया तार्य तरणीय। नौतारम्य इत्यादि।

नौतिरी (हिं० स्त्री०) १ कनी ईंट, छोटी ईंट। २ एक प्रकारका जुआ जो पासोंसे खेला जाता है।

नौतोड़ (हिं० वि०) १ नया तोड़ा हुआ, जो पहले पहल जोता गया हो। (स्त्री०) २ वह जमीन जो पहली बार जोती गई हो।

नौदण्ड (स० पु०) १ नौकादिके सञ्चालित काष्ठदण्ड। २ डांड़।

नौदसी (हिं० स्त्री०) एक रीति जिसके अनुसार किसान अपने जमींदारसे रुपया उधार लेते हैं और सालभरमें ८) रु०के १०) देते हैं।

नौधा (हिं० पु०) नया पौधा, अँखुआ।

नौधा (हिं० पु०) १ नौमको वह फसल जो नवीरम्भ होमें बोई गई हो। २ नए कलदार पौधोंका बगीचा नया लगा हुआ बगीचा।

नौनगा (हिं० पु०) बांह पर पहननेका एक गहना जिसमें नौ नग जड़े होते हैं। इसमें नौ दाने होते हैं और प्रत्येक दानेमें भिन्न भिन्न रंगके नग जड़े जाते हैं। इसे नौरतन भी कहते हैं।

नौना (हिं० पु०) १ नवना, झुकना। २ झुक कर टेढ़ा होना।

नौनिधिराम—एक ग्रन्थकार। इन्होंने गरुड़पुराणसार नामक और टीकाकी रचना की। ये हरिनारायणके पुत्र और राजा माधूसिंहके पुरायचाकके पण्डित उपासकोंमें थे।

नौनार (हिं॰ स्त्री॰) वह स्थान जहां नोनिया लोग लोनी मट्टीसे नमक बनाते है।

नौबढ़ (हिं॰ वि॰) जिसे क्षुद्र वा हीन दशासे अच्छी दशामें आए थोड़े ही दिन हुए हों।

नौबत (फा॰ स्त्री॰) १ बारी, पारी। २ गति, दशा, हालत। ३ वैभव, उत्सव या मंगलसूचक बाजा जो पहर पहर भर देवमन्दिरों, राजप्रासादों या बड़े आदमियोंके द्वार पर बजता है। नौबतमें प्रायः शहनाई और नगाड़े बजाते हैं। ४ स्थितिमें कोई परिवर्त्तन करनेवाली बातोंका घटना, उपस्थित दशा, संयोग।

नौबतखाना (फा॰ पु॰) फाटकके ऊपर बना हुआ वह स्थान जहां बैठ कर नौबत बजाई जाती है, नक्कारखाना।

नौबती (फा॰ पु॰) १ नौबत बजानेवाला, नक्कारची। २ फाटक पर पहरा देनेवाला, पहरेदार। ३ बिना सवारका सजा हुआ घोड़ा, कोतल घोड़ा। ४ बड़ा खेमा या तम्बू।

नौबतीदार (फा॰ पु॰) १ द्वारपाल, दरवान। २ खेमे पर पहरा देनेवाला, संतरी।

नौबरार (फा॰ पु॰) वह भूमि जो किसी नदीके हट जानेसे निकल आती है।

नौमासा (हिं॰ पु॰) १ गर्भका नवां महीना। २ वह रीति रस्म जो गर्भके नौ महीने हो जाने पर की जाती है और जिसमें पंजीरी मिठाई आदि बांटी जाती है।

नौमी (हिं॰ स्त्री॰) पक्षकी नवीं तिथि।

नौयान (सं॰ क्ली॰) नौकादि पर चढ़ कर देशान्तरकी यात्रा।

नौयायिन् (सं॰ त्रि॰) नावा याति या णिनी। नौका द्वारा नदी आदिके पारगामी। नौयायियोंको तरपण्य देना होता है। इस तरपण्यका विषय मनुमें इस प्रकार लिखा है। नदी मार्ग हो कर जानेमें नदीकी प्रबलता वा स्थिरता तथा ग्रीष्म वर्षादिकालकी विवेचना करके तरमूल्य स्थिर करना होता है। समुद्रके विषयमें यह नियम लागू नहीं है। गर्भिणी स्त्री, परिव्राजक, भिक्षु, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और ब्राह्मण इन सबसे उतराई नहीं लेनी चाहिए। खाली गाड़ी नाव पर पार करनेमें एक पण महसूल, एक मनुष्य जितना बोझ ढो सकता है उतनेमें अर्द्धपण, पशु और स्त्रीको पार करनेमें चतुर्थांश पण तथा भारशून्य मनुष्यको पार करनेमें एक पणका आठवां भाग महसूल लगता है। बीच धारमें अथवा और कहीं नाविकके दोषसे यदि मुसाफिरकी कोई वस्तु नष्ट हो जाय, तो उसका दायी नाविक होगा। नाविकके दोषसे यदि उनकी चीज चोरी हो जाय, तो नाविक को ही उस चीजका दाम लगा कर देना होगा। किन्तु दैवसंयोगसे नष्ट हो जाने पर वह उसका दायी नहीं है। (मनु ८ अ॰)

नौरंग (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी चिड़िया।

नौरतन (हिं॰ पु॰) १ नवरत्न देखो। २ नौनगा नामका गहना। (स्त्री॰) ३ एक प्रकारकी चटनी जिसमें ये नौ चीजें पड़ती हैं—खटाई, गुड़, मिर्च, शीतलचीनी, केशर, इलायची, जावित्री, सौंफ और जीरा।

नौरवे—यूरोप महादेशका एक देश। नारवे और इसके पूर्ववर्त्ती स्वीडेन ये दोनों देश मिल कर स्केन्डिनेवीय उपद्वीप कहलाते हैं। नारवे अक्षा॰ ५८°से ७१° उ॰ और देशा॰ ५°से २८° पू॰के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें उत्तरमहासागर, पूर्वमें स्वीडेन, दक्षिणमें काटीगाट उपसागर और पश्चिममें जर्मन तथा उत्तरसागर है। इसकी लम्बाई उत्तर-दक्षिणसे ग्यारह हजार मील है, किन्तु चौड़ाई सब जगह समान नहीं है। भूपरिमाण १२५००० वर्गमील है।

इस विस्तीर्ण देशका अधिकांश पर्वतमय है। एक गिरिमाला उत्तरसे दक्षिण तक फैली हुई है। उत्तर भागको क्यूलेन और दक्षिण-भागको फीयलेन कहते हैं। क्यूलेन पर्वत श्रेणीका सबसे ऊंचा अंश सलीतेलमा कहलाता है जिसकी ऊंचाई ४८०६ फुट है। इसमें अनेक शृङ्ग हैं, सबसे ऊंचे शृङ्गको ऊंचाई ६२० फुट है। क्यूलेन-पहाड़ बर्फसे ढका हुआ है; इससे बहुतसी बर्फकी नदियां निकली हैं। यहांकी नदियोंके ऊंची भूमिसे निकलने और इनकी लम्बाई अधिक न होनेके कारण वे सबके सब नौवाणिज्यकी अनुपयोगी हैं। ग्लोमेन नदी ही सबसे बड़ी है। यह डफ्रेल पहाड़से निकल कर स्कागारक उपसागरमें गिरती है। नारवेका पश्चिम उपकूल अति दृढ़ और भग्न है। इसके

दक्षिणके प्रदेशोंमें बड़े बड़े ग्रह भवर पाये हैं। स्वीडेन-की सीमाके निकट पामन्ध ग्रह समुद्रतलसे २२८० फुट ऊंचा है।

यहांकी आबहवा स्थान भेदसे भिन्न भिन्न प्रकारकी है। समुद्र और उपसागरीय स्रोतके प्रभावसे उत्तरांशमें उतनी ठंढ नहीं पड़ती है। यहां वर्ष भरमें प्रायः आठ महीना समय खराब रहता है। शरत् और शीतकालमें हवा बहुत जोर-शोरसे बहती है और कुहासा भी देखा जाता है। बाद पूरबकी हवा बहने पर वह जाता रहता है। १५ मईसे २८ जुलाई और १८ नवम्बरसे २६ जनवरी तक यहां रात बड़ी होती है। इन कई एक महीनोंमें उत्तरकी ओर एक प्रकारका उज्ज्वल आलोक (Aurora Borealis—मेरुज्योति) दिखाई पड़ता है। मत्स्य-जीवी इसी रोशनीकी सहायतासे रातमें दिनकी तरह सहजमें ही मछली आदि पकड़ सकते हैं। पश्चिमोप-कूलमें क्या जाड़ा, क्या गर्मी सब समय समान हवा चलती है, पानी बरसता है और बिजली कड़कती है तथा कभी कभी भूकम्प भी हो जाया करता है।

यहां बड़े बड़े जङ्गल देखनेमें आते हैं। इन सब जङ्गलोंमें उत्पन्न फल और काठ ही यहांकी प्रधान सम्पत्ति है। मटर आदि कई तरहकी फसल भी लगती है। देशके लोग कृषिकार्यमें यद्यपि परिश्रम करते हैं सही, लेकिन उत्पन्न द्रव्यसे यहांका अभाव दूर नहीं होता।

यहांके पहाड़ों पर खनिज द्रव्य बहुतायतसे मिलते हैं। नरदां कोवहिन पहाड़ पर सोना, कङसबर्ग और आमर्दल वर्ग पर रूपा, रोरास पर तांबा और दक्षिणके प्रदेशोंमें लोहा, जस्ता, मार्बल आदि पाये जाते हैं। स्कागरक उपसागरके उपकूलवर्ती प्रदेशोंमें समुद्रके जलसे लवण प्रस्तुत किया जाता है।

यहांके अधिवासी अधिक लोग मत्स्य, काष्ठ तथा धातुका व्यवसाय करते और अवशिष्ट लोग कृषिजीवि हैं। [illegible] नदीके किनारे लकड़ी काटनेकी बड़ी बड़ी कलें हैं। यहां लोहे, तांबे, कांच और बारूदके भी बहुतसे कारखाने देखनेमें आते हैं। बहुतसे नौरवेके प्रसिद्ध नगरोंमें जहाज भी तैयार किया जाता है।

अन्यान्य देशोंके साथ नारवेका विस्तृत वाणिज्य प्रचलित है। पशुओत्पन्न द्रव्य, मत्स्य तथा खनिज पदार्थ इङ्गलैण्ड, स्पेन, भूमध्यसागर और बाल्टिकसागर भेजा जाता है। लोहा विदेश नहीं भेजा जाता, देशके व्यवहारमें ही खपत होता है। यहांके लोग नाविक कार्यमें बड़े ही निपुण हैं।

इस देशमें विद्याशिक्षाकी विशेष उन्नति है। सभी को ही लिखना पढ़ना जानना पड़ता है। ग्राम ग्राममें विद्यालय हैं, प्रत्येक नगरमें उच्चश्रेणीके विद्यालय तथा १० बड़े बड़े नगरोंमें स्वतन्त्र विश्वविद्यालय भी हैं।

नौरवेके अधिवासिगण ट्युटन जातिके हैं। अत्यन्त प्राचीन कालमें ये लोग समुद्रमें दस्युवृत्ति कर दिन बिताते थे। ये सब नारमन, उत्तर समुद्रके उपकूलवर्ती देशोंमें जा कर अधिवासक, नरहत्या तथा लुण्ठन किया करते थे। उस समय यहां बहुतसे छोटे छोटे राजा थे जो हमेशा आपसमें लड़ते-झगड़ते रहते थे। प्राचीन नौरवेवासियोंने आइसलैण्डका पता लगाया और वहां उपनिवेश स्थापित किया। ८७५ ई०में हेरल्ड हरफागर नामक एक राजा समस्त छोटे राज्योंको मिला कर एकाधिपति हुए थे। इसके कुछ दिन बाद ही नारवे और डेनमार्कके लोगोंने मिल कर डेनमार्कके राजा कैनूटके साथ इङ्गलैण्ड पर चढ़ाई की थी। बाद बीचमें ही दोनों जाति अलग अलग हो गईं। १३८० ई०में रानी मार्गारेटके समयमें फिर यह दोनों जाति एक साथ मिल कर १८१४ ई० तक उसी अवस्थामें रहीं। १८१४ ई०में स्वीडेन डेनमार्कसे नारवेमें मिलाया गया और तभीसे नारवे और स्वीडेन एक राज्यभुक्त हुआ है।

प्रजाओंके प्रतिनिधि ले कर नारवेकी व्यवस्थापक सभा संगठित हुई है। प्रजा साक्षात्‌रूपसे प्रतिनिधि नियोग नहीं करतीं, वे निर्वाचक चुनती हैं और निर्वाचकोंमेंसे प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं। नगरमें ५० नगरवासियोंमेंसे एक निर्वाचक चुननेका अधिकार है और छोटे छोटे गांवोंमें सौ पीछे एक। इन प्रति-निधियोंकी संख्या ७५ और १०० के बीच होनी चाहिए। नारवेकी व्यवस्थापक सभाका नाम है "स्टर्थि"। राजा या प्रतिनिधि इस सभाका कार्य रद्द करते हैं। इस

सभा द्वारा आईनमें अदल बदल करना, नया कर लगाना और तोड़ना, राजपुरुषोंकी संख्या तथा वेतन ठीक करना और अन्यान्य अनेक कार्य निर्वाहित होते हैं। इसके दो विभाग हैं, लैगथिं और ओडेलथिं। पहले विभागका काम आईन-कानून बनाना है और दूसरेका टेगके कागजातोंको ले कर पहलेमें पेश करना। प्रत्येक तीन वर्षको १ लो फरवरीको इथिंमें अधिवेशन होता है। कुल शासन-भार राजाके ऊपर रहता है। नारवेके गवर्नर, एक मन्त्री और सदस्यगण ले कर यहांकी मन्त्रिसभा संगठित है। राजा जब नारवेसे कहीं दूसरी जगह चले जाते हैं, तब मन्त्री और दो सदस्य उनके साथ रहते और बाकी गवर्नर तथा अपरापर सदस्यगण मिल कर राज्यकी देखभाल करते हैं। नारवेके मनुष्य गवर्नर नहीं हो सकते। वे मन्त्रिसभाके अन्यान्य सभ्य हो सकते हैं। युद्ध-घोषणा करने पर राजा नौरवे और स्वोडेन दोनों देशोंके सदस्योंको बुला कर उनके अभिमतानुसार कार्य करते हैं। यहांका राजस्व लगभग दो करोड़ अस्सी लाख रुपयेका है।

नारवे और स्वोडेन एक ही राजाके शासनाधीन है। यहां ४६ जङ्गी जहाज और १३८ तोपें हैं। सैन्य-संख्या १८००० है। तेईस वर्षसे ज्यादा उम्रवाला मनुष्य ही सैनिक कार्यमें नियुक्त किया जा सकता है और तेरह वर्षसे अधिक समय तक उक्त कार्यमें कोई नहीं रह सकता।

नौरस (हिं० वि०) १ जिसका रस नया अर्थात् ताजा हो, नया पका हुआ, ताजा। २ नवयुवक।

नौरूप (हिं० पु०) नीलको फसलको पहली कटाई। नील देखो।

नौरोज (फा० पु०) १ पारसियोंमें नए वर्षका पहला दिन। इस दिन बहुत आनन्द उत्सव मनाया जाता था। २ त्योहारका दिन। ३ खुशीका दिन, कोई शुभ दिन।

नौल (हिं० वि०) १ नवल देखो। २ जहाज पर माल लादनेका भाड़ा।

नौलक्खा (हिं० वि०) नौलखा देखो।

नौलखा (हिं० वि०) नौ लाखका, जिसकी कीमत नौ लाख हो, जड़ाऊ और बहुमूल्य।

नौलखी (हिं० स्त्री०) जुलाहेकी वह लकड़ी जिससे ताने दबाए जाते हैं और जिसमें इधर उधर बजनी पत्थर बंधे रहते हैं।

नौला (हिं० पु०) नेवला देखो।

नौलासी (हिं० वि०) नर्म, कोमल, मुलायम।

नौवत खाँ नवाब—सम्राट् अकबरके एक सेनापति। इन्होंने शाहजहानके अन्त पुरके निकट ८०२ हिजरीमें एक मसजिद बनवाई जिसे लोग 'नौनोछयो' कहते हैं। अभी यह टूटी फूटी अवस्थामें पड़ी है।

नौवतपुर—युक्त प्रदेशके वाराणसी जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २५° १४' ३८" उ० तथा देशा० ८३° २७' ४०" पू०के मध्य अवस्थित है। यहां बलवन्त सिंहके तहसीलदार विश्राम सिंहप्रतिष्ठित एक मन्दिर और सराय है। कर्मनाशानदी पार करनेके लिए यहां एक प्रस्तरनिर्मित सुन्दर सेतु है।

नौवन्धनतीर्थ—हिमालयपर्वतस्थ तीर्थ विशेष। महाप्रलयके बाद मनुने यहां आश्रय लिया था। मनु देखो।

नीलमतपुराणमें लिखा है—महर्षि कश्यप जब तीर्थपर्यटनको निकले, तब उनके पुत्र नीलने कनखलमें आ कर उनसे निवेदन किया कि संग्रह दैत्य पुत्र जलोद्भवके उपद्रवसे धरा समाहित हो गई है। तदनन्तर कश्यपने ब्रह्मा और शिवके निकट जा कर उन्हें सब वृत्तान्त कह सुनाया। मुनिकी प्रार्थनासे तुष्ट हो कर ब्रह्माने देवताओंको दलबलके साथ नौबन्धनतीर्थमें भेज दिया। कंसनागके उत्तर हिमालय पर्वतके अत्युच्च शृङ्ग पर यह तीर्थ स्थापित है। यहां पहुंच कर ब्रह्माने उत्तर, विष्णुने दक्षिण और शिवने दोनोंके बीचमें खड़े हो कर जलोद्भव दैत्यको ह्रदके भीतरसे बाहर निकलने कहा। लेकिन दुरन्त दस्युने उनकी बात अनसुनी कर दी। इस पर विष्णुके परामर्शानुसार शिवने अपने त्रिशूल द्वारा पर्वतको छेद डाला। ऐसा करनेसे जब जल निकलने लगा, तब विष्णुने अन्यमूर्त्ति धारण कर जलमें प्रवेश किया और वहां जलोद्भवके साथ युद्ध करके उसे मार डाला। कोई कोई आराराट पर्वतको जहां नोयाका जहाज आ लगा था, नौबन्धन-तीर्थ मानते हैं। नोया देखो।

मौवाह (सं॰ क्लि॰) नाव चलानेका काठ पद। नौका वाहक, जिससे नाव चलाई जाती है, डाँड़।

मौविद्या—मलाहादि परिचालन विद्या। नाविक देखो।

मौव्यसन (सं॰ क्लो॰) नावि व्यसन। नौका पर विपद्।

मौशहर—१ उत्तरपश्चिम सीमान्त प्रदेशके पेशावर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा॰ ३३ ४०' से ३४ ९' उ॰ और देशा॰ ७१ ४०' से ७२ १२' पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७०१ वर्गमील और लोकसंख्या लाखसे ऊपर है।

२ उक्त तहसीलका प्रधान नगर और छावनी। यह अक्षा॰ ३४ उ॰ और देशा॰ ७२ पू॰ पेशावरसे २७ मील पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या दस हजारके करीब है। छावनी काबुल नदीके दाहिने किनारे जमीन पर अवस्थित है। काबुल नदी पार करनेके लिये १९०३ ई॰को १ली दिसम्बरमें एक पुल और लोहेकी सड़क बनाई गई है। शहरमें एक सरकारी अस्पताल और एक वर्नाक्यूलर स्कूल है।

३ पञ्जाबके बहावलपुर राज्यके अन्तर्गत खानपुर निजामतकी एक तहसील। यह अक्षा॰ २८ १६' से २८ ५६' उ॰ और देशा॰ ७० ७' से ७० ५६' पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६९० वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ८००१२ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ७१ ग्राम लगते हैं। राजस्व दो लाख रुपयेका है।

४ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा॰ २८ २१' उ॰ और देशा॰ ७० १८' पू॰ बहावलपुर शहरसे १०८ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ४३०१ है। यहाँ बालकोंकी एक स्कूल और चिकित्सालय है।

५ बम्बईके सिन्धुप्रदेशके अन्तर्गत हैदराबाद जिलेका एक उपविभाग। इसके उत्तर और पश्चिममें सिन्धुनदी पूर्वमें खैरपुरराज्य, थर और पार्कर जिला तथा दक्षिणमें टाण्डा उपविभाग है। भूपरिमाण १९२९ वर्गमील है।

यहाँ खेतीबारीकी उन्नतिके लिए ८८ नहर काटी गई है जिनमेंसे नसरत नामक नहर मूरमहम्मद कलहोराके राजत्वकालमें काटी गई थी। १७८६ ई॰में शाहपुर-युद्धके बाद सिन्धुप्रदेश तालपुर सरदारोंके मध्य विभक्त हो गया। इस युद्धमें मीर फतेअली और उनके भाई जब अब्दुल नबिकलहोरा पराजित हुए, तब हैदराबाद तथा मीरपुर तालपुरके शासनकर्त्ता मीर सोहराब खाँके हाथ लगा। इस विभागसूत्रसे जो युद्ध छिड़ा उसमें अलीमुरादकी जीत हुई और १८११ ई॰में उन्हें राजकी उपाधि मिली। १८४२ ई॰तक उपविभाग मुराद अलीके अधिकारमें रहा। पीछे उनके अलहृयरबारके मृत्यु हो जाने पर वृटिशसरकारने इसका शासनभार अपने हाथमें ले लिया।

६ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर। यह मोरो नगरसे १६ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। तालपुरके मीर राजाओंके समयमें यहाँ गोलन्दाज सेना रहती थी। यह नगर २०० वर्ष हुए बसाया गया है।

७ शिकोहाबाद तहसीलके अन्तर्गत एक ग्राम। यह मैनपुरी नगरसे १४ मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। सम्राट् शाहजहाँके राजत्वकालमें शाह सय्यद सँवर नामक किसी मुसलमानसे इस ग्रामका पत्तन हुआ। यहाँ उन्होंके तथा उनके आत्मीय आदिसुहानीका समाधि-मन्दिर है। इसके अलावा यहाँ अनेक कूप, समाधि मन्दिर और प्रस्तरादिके भग्नावशेष देखनेमें आते हैं।

मौशहर अलो—सिन्धुप्रदेशके खैरपुर और शकर उपविभागके अन्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा॰ २७ ४९' से २८ उ॰ और देशा॰ ६८ १२' से ६८ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०८ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ४१०१६ है। इसमें एक शहर और ८७ ग्राम लगते हैं। यहाँकी जमीन बहुत उपजाऊ है। धान, ज्वार, गेहूँ और चना यहाँकी प्रधान उपज है।

मौशा (फा॰ पु॰) कूचा, घर।

मौशी (फा॰ स्त्री॰) मवमत् पुलिन।

मौशेरवाँ—पारस्यराज कुबादके पुत्र। ये सालतन्त्र नियम पक्षपाती थे। इनोंके पश्चिममें यूरोप और पूर्वमें भारतादि नानाराज्योंमें ये 'अद्ल' नामसे प्रसिद्ध थे। मुसलमान लोग इन्हें 'आदिल' और यूनानी चसरू (Chosroes) कहा करते थे। ५३१ ई॰में पिताकी मृत्युके बाद ये राजगद्दी पर बैठे। इस समय इन्होंने रोमन लोगोंको युद्धमें कई बार परास्त किया, मुसलमान लेखकोंने तो लिखा है कि इन्होंने रोमके बादशाहको

कैद किया था। रोमके सम्राट् उस समय जष्टिनियन थे। नौशेरवाँको पशियोकस पर विजय, शामदेश तथा भूमध्यसागरके अनेक स्थानों पर अधिकार तथा माइवेरिया यूक्साइन प्रदेशों पर आक्रमण रोमके इतिहासमें भी प्रसिद्ध है। रोमके बादशाह जष्टिनियन पारस्य साम्राज्यके अधीन हो कर प्रतिवर्ष तीस हजार अशर्फियां कर दिया करते थे। ८० वर्षकी वृद्धावस्थामें नौशेरवाँने रोम राज्यके विरुद्ध चढ़ाई की थी और दारा तथा शाम आदि देशोंको अधिकृत किया था। ४८ वर्ष राज्य करके परम प्रतापी और न्यायी बादशाह परलोक सिधारे।

फारसीकितावोंमें नौशेरवाँके न्यायकी बहुतसी कथाएँ हैं। ध्यान रखना चाहिए कि इसी बादशाहके समयमें मुसलमानोंके पैगम्बर मुहम्मद साहबका जन्म हुआ जिनके मतके प्रभावसे आगे चल कर पारसकी प्राचीन आर्यसभ्यताका लोप हुआ। सर जान मालकम-के पारस्य भ्रमणवृत्तान्त तथा अन्यान्य पारस्य ग्रन्थोंमें पूर्वकी ओर भारत और सिन्धु प्रदेशमें तथा उत्तरकी ओर फरगणा राज्यमें नौशेरवाँके आगमन और आक्रमणकी कथा लिखी है। सर हेनरी पटिञ्जरसाहबने लिखा है कि वल्लभीराजपुत्र गुहने नौशेरवाँकी कन्याका पाणिग्रहण किया था।

नौशेरवानी—बेलुचिस्तानवासी जातिविशेष।

नोपेचन (सं० क्ली०) नावः सेचनम्, सुपानादित्वात् पत्वम्। नौकासेचन।

नौसत (हिं० स्त्री०) शृङ्गार, सोलहो सिंगार।

नौसरा (हिं० पु०) नौ लड़ोंकी माला, नौलरा हार वा गजरा।

नौसादर (हिं० पु०) एक तीक्ष्ण झालदार क्षार या नमक जो दो वायव्य द्रव्योंके योगसे बनता है। यह क्षार वायवरूपमें वायुमें अल्पमात्रामें मिला रहता है और जन्तुओंके शरीरके सड़ने गलनेसे एकत्रित होता है। सींग, खुर, हड्डी, बाल आदिका भवकेमें अर्क खींच कर यह प्रायः निकाला जाता है। गैसके कारखानोंमें पत्थरके कोयलेको भवके पर चढानेसे जो एक प्रकारका पानी-सा पदार्थ छूटता है आज कल बहुत-सा नौसादर उसीसे निकाला जाता है। पर्व समयमें लोग ईंटके पजावोंसे भी क्षार निकालते थे। उन सब पजावोंमें मट्टीके साथ कुछ जन्तुओंके अंग भी मिल कर जलते थे। नौसादर औषध तथा कलाकौशलके व्यवहारमें आता है।

वैद्यकमें नौसादर दो प्रकारका माना गया है, १ला कृत्रिम और २रा अकृत्रिम। जो और क्षारोंसे बनाया जाता है उसे कृत्रिम और जो जन्तुओंके मूत्रपुरीष आदि-के क्षारसे निकाला जाता है उसे अकृत्रिम नौसादर कहते हैं। आयुर्वेदके मतानुसार नौसादर शोधनाशक, शीतल तथा यकृत, प्लीहा, ज्वर, अर्बुद, सिरदर्द, खांसी इत्यादि-में उपकारी है।

नौसारि—बड़ोदाराज्यके अन्तर्गत एक नगर।

नवसारि देखो।

नौसिख (हिं० वि०) नौसिखिया देखो।

नौसिखिया (हिं० वि०) जो दक्ष या कुशल न हुआ हो, जो सीख कर पक्का न हुआ हो, जिसने नया सीखा हो।

नौहंड (हिं० पु०) मट्टीकी नई हांड़ी, कोरी हँड़िया।

नौहंडा (हिं० पु०) पितृपक्ष, कनागत। इसमें मट्टीके पुराने बरतन फेंक दिए जाते हैं और नए रखे जाते हैं।

नौहजारी—बङ्गालके २४ परगनेके अन्तर्गत एक ग्राम।

न्यका (सं० स्त्री०) नि-अकि, बाहु० न लोपः। विष्ठाका कीड़ा।

न्यकारुका (सं० स्त्री०) न्यक् क्रियतेऽसौ पृषोदरादि-त्वात् क लोपे साधु। शकृत्कीट, विष्ठाका कीड़ा।

न्यक्कार (सं० पु०) न्यक् क्रियते इति कृ-घञ्। न्यक्-करण, नीचकरण। पर्याय—अवज्ञा, परीहार, परिहार, पराभव, अपमान, परिभव, तिरस्क्रिया, तिरस्कार, अवहेला, हेला, अवहेलन, हेलन, अनादर, अभिभव, सूक्षण, सूक्षण, रीढ़ा, अभिभूति, निकृति, अवमर्ष, असूक्षण, नीकार, अवहेल, अमानन, क्षेप, निकार, धिक्कार।

न्यक्कुरुका (सं० स्त्री०) पतङ्गविशेष, मलका कीड़ा।

न्यक्ष (सं० स्त्री०) नि अनूज-क्त, ततः कुत्वम्। नितान्त अञ्जनयुक्तोक्षत।

न्यक्ष (सं० त्रि०) नत, नीचे रखा हुआ।

न्यक्षाङ्गुली (सं० स्त्री०) नीचेकी ओर रखी हुई उंगली।

न्यक्ष (सं० पु० स्त्री०) नियते निकृते वा अक्षिणी यस्य समासे षच्। १ महिष, भैंस। २ जामदग्न्य, परशुराम।

३ वात्स्य । (स्त्री०) ४ मरिचपत्र। (त्रि०) ५ निकृष्ट।

न्यग्जाति (स० स्त्री०) नीच जाति।

न्यग्भाव (स० पु०) न्यग्का भाव। नीचत्व, नीच होने का भाव।

न्यग्भावन (स० स्त्री०) नीचत्वपादन, तुच्छके साथ व्यवहार करना।

न्यग्भावयितृ (स० त्रि०) अपकारी, नवाने या झुकाने वाला।

न्यग्रोध (स० पु०) न्यक् रुणद्धि इति रुध अच्। १ वटवृक्ष, बरगद। २ शमीवृक्ष। ३ व्यामपरिमाण उतनी लम्बाई जितनी दोनों हाथोंके फैलानेसे होती है, पुरसा। ४ विष्णु। ५ मोहनौषधि। ६ उशीनर राजाके एक पुत्रका नाम। ७ महादेव। ८ बाहु। ९ वानावलीके अन्तर्गत एक ग्राम। १० मूषिकपर्णी मूसाकानी।

न्यग्रोधक (स० त्रि०) न्यग्रोध, तत्सम्बन्धीयादि चतुरर्थ्यां । (पा ४।२।८०) न्यग्रोधके सूदूरदेशादि।

न्यग्रोधपरिमण्डल (स० पु०) न्यग्रोध व्यामः परिमण्डलं परिणाहो यस्य। व्यामपरिमित-उच्छ्रायपरिणाह पुरुष वह मनुष्य जिसकी लम्बाई चौड़ाई एक व्याम या पुरसा हो। ऐसे पुरुष संसारमें राज्य करते थे।

न्यग्रोधपरिमण्डला (स० स्त्री०) न्यक् रुणद्धि इति न्यग्रोधं यथा स्यात् परितो मण्डलं नितम्बमण्डलं यस्याः। स्त्रियोंका एक भेद, वह स्त्री जिसके स्तन कठोर नितम्ब विशाल और कटि क्षीण हो।

न्यग्रोधपुटपाक (स० पु०) वट वल्कादि पुटपाकभेद।

पुटपाक देखो।

न्यग्रोधमूल (स० स्त्री०) बरगदकी जड़।

न्यग्रोधा (स० स्त्री०) न्यक् रुणद्धि रुध अच्-टाप्। न्यग्रोधी। पर्याय—दन्ती, उदुम्बरपर्णी, निकुम्भ, मुकूलक द्रवन्ती, चित्रा और मूषिकाह्वया।

न्यग्रोधादिगण (स० पु०) सुश्रुतोक्त द्रव्य स वर्गीयगण विशेष, वैद्यकमें दवाओंका एक गण या वर्ग जिसके अन्तर्गत ये सब माने जाते हैं—बरगद, पीपल गूलर, पाकर, महुआ, अर्जुन, आम, कुसुम, आमड़ा, जामुन, चिरौंजी, मोचरोहिणी, कदम, बेर, तेंदू, सलई, तेजपत्ता, लोध, सावर, भिलावाँ, पलाश, तुन, नूकचा या तुनेरी।

(सुश्रुत सूत्रस्थान ३८ अ०)

न्यग्रोधादिघृत (स० स्त्री०) घृतौषधभेद। भैषज्यरत्नावलीमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है— घृत ४ सेर काढ़ेके लिये बट, पीपल, गूलर, पाकड़, कुट, पाकर, जामुन, चिरौंजी, अमलतास, बेल, सुपारी, कदम, रत्तरोहा और आम प्रत्येकको ढाई २ पल जल १६ सेर शेष ४ सेर आंवलेका रस ४ सेर। कल्कार्थ यष्टिमधु कुसुम, पिण्डखजूर, दारुहल्दी, क्षीरकाकोली गाम्भारीफल, कंकोल, चोरक कोल, रक्तचन्दन श्वेत चन्दन, रसाञ्जन, अनन्तमूल प्रत्येक १ तोला, सबको मिला कर यथाविधि पाक करते हैं। इसके सेवन करनेसे नाना प्रकारके प्रदर, योनिशूल, कुक्षिशूल, वस्तिशूल, पाण्डुरोग और योनिदाह आदि रोग जाते रहते हैं।

(भैषज्य० स्त्रीरोगाधिकार)

न्यग्रोधादिचूर्ण (स० स्त्री०) भावप्रकाशोक्त चूर्णौषधि भेद। प्रस्तुत प्रणाली—बट, गूलर, पीपल, अमलतास पीतशाल, जामुन, चिरौंजी, अर्जुन, कटभ्म, यष्टिमधु लोध वरुण सतावर, नीमछाल, दन्ती चीता, चक्रमर्द, करञ्ज, त्रिफला, इन्द्रयव और भिलावाँ प्रत्येक का बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण बनाते हैं। पीछे उस चूर्णको मधुके साथ चाट कर त्रिफलाका पानी पीने से प्रमेह विनष्ट होता है। इतना ही नहीं बीस प्रकारके प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र भी जाते रहते हैं।

न्यग्रोधाराम—कपिलवस्तु नगरके बौद्धोंका एक महाराम। यहां बुद्धदेव रह चुकनेमें रहते थे।

न्यग्रोधिक (स० त्रि०) जहां बहुतसे बटवृक्ष हों।

न्यग्रोधिका (स० स्त्री०) आखुकर्णी लता, मूसाकानी लता।

न्यग्रोधी (स० स्त्री०) १ मूषिकपर्णी, मूसाकानी। २ दन्तकदन्ती।

न्यङ्ग (स० पु०) ग्रामादिका चतुर्भेद रचना एक चक्र।

न्यङ्कु (स० पु०। निनरां अञ्चति गच्छतीति अञ्च् गतौ कु (अभसमः। उण् १।१८) न्यङ्क्वादीनाञ्च। पा ७।३।५३) इति कुत्वम्) १ मृगभेद, एक प्रकारका हिरन, बारह सिंगा। भावप्रकाशके मतसे इसका मांस लघु, बल

वलकारक और त्रिदोषनाशक होता है। २ मुनिभेद, एक ऋषिका नाम। ३ मणिभेद, एक प्रकारकी मणि। (त्रि०) ४ नितान्त गमनशील, बहुत दौड़नेवाला।

न्यङ्कुभूरुह (सं० पु०) न्यङ्कुरिव भूरुहः। १ श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा। २ आरग्वधवृक्ष, अमलतास।

न्यङ्कुशिरस् (सं० क्ली०) ककुभछन्द।

न्यङ्कुसारिणी (सं० स्त्री०) वृहती छन्दोभेद, एक वैदिक छन्द जिसके पहले और दूसरे चरणमें १२, १२ अक्षर और तीसरे तथा चौथे चरणमें ८, ८ अक्षर होते हैं।

न्यङ्क्वादि (सं० पु०) कुत्वनिमित्त शब्दगणभेद। यथा— न्यङ्कु, मद्गु, भृगु, दूरेपाक, फलपाक, क्षणेपाक, दूरेपाका, फलेपाका, दूरेपाकु, फलेपाकु, तक्र वक्र, व्यतिषङ्ग, अनुषङ्ग, अवसर्ग, उपसर्ग, श्वपाक, मांसपाक, मूलपाक, कपोतपाक, उलूकपाक।

न्यङ्ग (सं० पु०) नि अनज-घञ्। निनतरां अञ्जन, नितान्त अञ्जन।

न्यच्छ (सं० क्ली०) नितरामच्छम्। क्षुद्ररोगविशेष। जिस रोगमें शरीर श्याम या शुक्लवर्ण हो, शरीरमें जहां तहां थोड़ा बहुत दर्द होता हो अथवा वेदना-विहीन मण्डलाकृति चिह्न हो गया हो, उसे न्यच्छरोग कहते हैं। शिरावेध, प्रलेप और अभ्यङ्ग द्वारा न्यच्छरोगकी चिकित्सा करनी चाहिए। क्षीरिवृक्षके वल्कको दूधमें पीस कर उसका प्रलेप देनेसे अथवा सिद्धिपत्र, हृदारक और शिशुकाष्ठको चूर्ण कर उससे उद्वर्त्तन करनेसे न्यच्छ और मुखव्यङ्गरोग नष्ट होता है। (भावप्रकाश ४र्थ० क्षुद्ररोगा०) (त्रि०) २ अत्यन्त निर्मल, बहुत साफ।

न्यञ्च् (सं० त्रि०) निम्नतया अञ्चति अनच-क्विन्। १ निम्न। २ नीच। ३ कार्त्स्न्य।

न्यञ्चन (सं० क्ली०) नितरामञ्चनं गमनं। नितरां गमन, तेजीसे चलना।

न्यञ्चित (सं० त्रि०) नि-अञ्च णिच्-क्त। अधःक्षिप्त, नीचे फेंका या डाला हुआ।

न्यञ्जलिका (सं० स्त्री०) निम्नकृता अञ्जलिः। निम्नभागमें न्यस्त हस्तपुट, नीचे की ओरकी हुई अंजली या हथेली।

न्यन्त (सं० पु०) नितरां अन्तः। चरमभाग, शेषभाग।

न्यय (सं० पु०) नि-इ-अच् (एरच्। पा ३।३।५६) अपचय, नाश।

न्ययन (सं० क्ली०) छद।

न्यर्ण (सं० त्रि०) नि-अर्ण। द्रवीभूत।

न्यर्थ (सं० पु०) नि-ऋ गतौ घञ्। १ निकृष्टगति। २ ध्वंस, नाश। (त्रि०) निकृष्टो अर्थो यस्य। ३ निकृष्टार्थ।

न्यर्बुद (सं० क्ली०) १ दशगुणित अर्बुद संख्या, दश अरब।

न्यर्बुदि (सं० पु०) निकृष्टः अर्बुदिर्दो देवान्तरं यस्मात्। रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम।

न्यस्त (सं० त्रि०) नि अस-कर्मणि-क्त। १ क्षिप्त, फेंका हुआ, डाला हुआ। २ त्यक्त, छोड़ा हुआ। ३ निहित, रखा हुआ, धरा हुआ। ४ स्थापित, बैठाया या जमाया हुआ। ५ विन्यस्त, चुन कर सजाया हुआ।

न्यस्तदण्ड (सं० त्रि०) जिसने डंडोंको झुकाया या नवाया हो।

न्यस्तदेह (सं० क्ली०) १ स्थापित देह। २ मृत देह।

न्यस्तशस्त्र (सं० पु०) न्यस्तं शस्त्रं येन। १ पितृलोक। (त्रि०) २ त्यक्तशस्त्र, जिसने हथियार रख दिये हों।

न्यस्तिका (सं० स्त्री०) दौर्भाग्य लक्षण।

न्यस्य (सं० त्रि०) नि-अस क्षेपे कर्मणि बाहुलकात् आर्षे यत्। १ स्थापनीय, रखने योग्य। २ त्यक्तव्य, छोड़ने योग्य।

न्यह्न (सं० पु०) अमावस्याका सायंकाल।

न्याक्य (सं० क्ली०) नितरामक्यते इति नि-अक ण्यत्। भृष्ट तण्डुल, भूना हुआ चावल। इसका पर्याय भृष्टान्न और कुहव है।

न्याङ्कव (सं० क्ली०) न्यङ्कोरिदं न्यङ्कु-अण्। रङ्कुमृग-चर्म, बारहसिंघेका चमड़ा।

न्याद (सं० पु०) न्यदनमिति नि-अद-भक्षणे-ण (नौण च। पा ३।३।६०) आहार, भोजन।

न्याय (सं० पु०) नियमेन ईयते इति नि-इण घञ्। (परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः। पा ३।३।३७) १ उचित बात, नियमके अनुकूल बात, ठक बात, इन्साफ। पर्याय—अभ्रेष, कल्प, देशरूप, समञ्जस। २ विष्णु। ३ साधु। ४ नीति। ५ जयोपाय। ६ भोग। ७ युक्ति। ८

प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण, उपनय और निगमनात्मक पञ्च अवयव वाक्य। यह पञ्च अवयव वाक्य ही न्याय है। अवयव शब्दको अङ्ग कहते हैं, ये पञ्च अवयव न्यायके अङ्ग हैं। अतएव यह पञ्च अवयवयुक्त वाक्य ही न्याय पदवाच्य है। न्याय कहनेसे न्यायशास्त्रका बोध होता है। न्याय छः दर्शनोंमें है। इसके प्रवर्त्तक गोतम ऋषि मिथिलाके निवासी माने जाते हैं।

गौतमसूत्र—गौतमकृत सूत्राकारमें ग्रथित न्याय समूह पर थोड़ा विचार करना यहां आवश्यक है। गोतम दर्शनके प्रतिपाद्य विषय हैं। प्रथम अध्यायके प्रथमाह्निकमें प्रमाणादि षोड़श पदार्थोंका उद्देश, आत्मतत्त्व-साक्षात्कार और मोक्षरूप प्रयोजन प्रतिपादन, पीछे तत्त्वज्ञानाधीन मुक्तिका उत्पत्तिक्रम एवं प्रमाण पदार्थका प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान, शब्द ये चार लक्षण, पीछे दृष्टार्थ और अदृष्टार्थके भेदसे शब्दविभाग और प्रमेय लक्षण तथा प्रमेयविभागपूर्वक आत्मा शरीरनिरूपण एवं इन्द्रिय, भूत और अर्थविभाग, बुद्धिलक्षण, मनो-निरूपण, प्रवृत्तिलक्षण और तद्विभाग, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, अपवर्ग और संशयलक्षण, संशयका कारण-निर्देश, प्रयोजन और सिद्धान्तलक्षण सिद्धान्त विभाग एवं सर्वतन्त्रसिद्धान्त, प्रतितन्त्रसिद्धान्त, अधिकरण-सिद्धान्त, अभ्युपगमसिद्धान्त लक्षण, न्यायावयव विभाग, प्रतिज्ञाहेतु अन्वयीहेतु, उदाहरण, व्यतिरेकउदाहरण, उपनय और निगमनलक्षण, तर्क और निर्णयनिरूपण; द्वितीयाह्निकमें—वाद, जल्प, वितण्डालक्षण और हेत्वा-भासविभाग, सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम साध्यसम और अतीतकालस्वरूप, व्यभिचारी विरुद्ध सत्प्रतिपक्षित असिद्ध और बाधित इन पञ्चविध दुष्टहेतुका लक्षण है, इसके बाद छललक्षण और छलविभागः वाक्छल, सामान्य छल और उपचारछल इन त्रिविध छलका लक्षण और तत्सम्बन्धी पूर्वपक्ष तथा समाधान, अनन्तर जाति और निग्रहस्थानका लक्षण वर्णित है। द्वितीय अध्यायके प्रथम आह्निकमें संशयसम्बन्धी पूर्वपक्ष और सिद्धान्त एवं प्रमाणचतुष्टयसम्बन्धी पूर्वपक्ष और तत्समाधान, प्रत्यक्ष लक्षणमें आक्षेप और समाधान अवयविसिद्धिविषयमें युक्ति और अवयविसिद्धान्तपूर्वक, इन्द्रियार्थविषयमें प्रत्यक्षहेतुत्व

ग्राह्य, प्रत्यक्षमें अनुमितत्वशङ्का और तत्समाधान एवं अवयवी-खण्डन और तत्समाधान, अनुमानपूर्वपक्ष और तत्समाधान, उपमानपूर्वपक्ष और तत्समाधान एवं उपमानका अनुमानान्तर्भावखण्डन एवं शब्दप्रामाण्य सम्बन्धमें पूर्वपक्ष और वेदप्रामाण्यादि तत्समाधान वेदप्रामाण्यविभाग, विधिलक्षण, अर्थवादविभाग और अनुवादलक्षण, वेदप्रामाण्यमें युक्ति, प्रमाण चतुष्टय सम्बन्धमें आक्षेप, तत्समाधान शब्दका अनित्यत्वसाधन शब्दविकार निराकरण, केवलव्यक्ति, केवलाकृति और केवल जातिमें शक्तिका निराकरण और जात्याकृतिविशिष्ट व्यक्तिमें पदका शक्ति-प्रतिपादन, व्यक्ति आकृति और जातिका लक्षण; तृतीय अध्यायमें आत्मादि द्वादशविध प्रमेयकी परीक्षा इन्द्रियचैतन्यवाद शरीरात्मवाद प्रभृति दूषण करके देहात्मनिराकरण, मनका आत्मत्वप्रति-निराकरण और आत्माका नित्यत्वप्रतिपादन शरीरका एक भौतिकत्वसाधन और पार्थिवत्वमें युक्ति इन्द्रियका भौतिकत्व और नानात्व परीक्षा रूप, रस गन्ध, स्पर्श, शब्द, इन पञ्चविध अर्थके सम्बन्धमें परीक्षा ज्ञानका अनित्यत्वप्रतिपादन, बाह्यनिरास, बुद्धिका आत्मगुणत्व प्रतिपादन, बुद्धि भी शरीरगुण नहीं है, इनका विशेष रूपसे प्रतिपादन, मनकी परीक्षा और शरीरका पुरुषा-दृष्ट निमित्तत्व प्रतिपादन; चतुर्थ अध्यायमें प्रवृत्ति और दोषपरीक्षा एवं जन्मान्तर सम्बन्धमें सिद्धान्त उत्पत्ति प्रकार प्रदर्शन, दुःख और अपवर्गकी परीक्षा तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति, अवयवी और निरवयवप्रकरण पञ्चमा-ध्यायमें जातिविभाग, साधर्म्यसम, वैधर्म्य सम-प्रभृति अनेकविध जाति विशेषका प्रतिपादन, अनन्तर निग्रह स्थान विभाग, प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञान्तर प्रभृति बाईस प्रकारके निग्रहस्थानका लक्षण पीछे हेत्वाभासका उल्लेख कर यह न्यायदर्शन समाप्त हुआ है।

इस विश्वकोषमें न्यायदर्शनके सभी पदार्थोंकी आ-लोचना की जाती है, विचार अनुसार विषय यथास्थानमें पर आलोचना की जायगी।

महर्षि गौतमने इसमें षोड़श पदार्थोंका निरूपण किया है। यथा—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय वाद, जल्प, वितण्डा,

हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान। इन सोलह पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस अर्थात् मुक्ति लाभ होता है। इन सब पदार्थोंके तत्त्वज्ञान हो जानेसे मुक्ति उसी समय लाभ होती है, अथवा देरीसे इसका सिद्धान्त इस प्रकार है। आत्मादि प्रमेय वा पूर्वोक्त षोडश पदार्थका तत्त्वज्ञान हो जानेसे पहले मिथ्याज्ञान निवृत्त होता है। इस मिथ्याज्ञानके निवृत्त होनेसे तत्कार्य धर्माधर्मका भी नाश होता है। धर्माधर्मरूप प्रवृत्तिके नाश होने पर जन्मकी भी निवृत्ति हुआ करती है। जन्मनिवृत्ति द्वारा दुःखनिवृत्तिको ही मुक्ति कहते हैं। मिथ्याज्ञान, दोष, प्रवृत्ति, जन्म और दुःख इनमेंसे पूर्व पदार्थ एक दूसरेका कारण है। शरीरके रहते भी जीवन्मुक्त हो सकता है, किन्तु गौतम वा वात्स्यायनने इस विषयका कुछ भी जिक्र नहीं किया है। परवर्त्ती नैयायिकोंने जीवन्मुक्तका विषय कहा था। जीवन्मुक्तपुरुषके प्रारब्ध-कर्मके कारण शारीरिक कितने दुःख रहते हैं। किन्तु तत्त्वज्ञानवशतः मोह उत्पन्न नहीं हो सकता, इस कारण स्त्रीपुत्रादि वियोग जनित घोर मानसिक दुःख एवं मोह उत्पन्न नहीं होता। यही कारण है, कि तत्त्वज्ञानीकी प्रवृत्ति (यत्न वा चेष्टा) धर्माधर्मको उत्पन्न नहीं कर सकती। सुतरां जन्मनाश नहीं होने तक जीवन्मुक्त शब्दवाच्य होता है।

इन सोलह पदार्थोंके जाननेमें प्रमाणकी आवश्यकता है। इसी कारण इसके बाद ही प्रमाणका विषय लिखा गया है।

प्रमाणका लक्षण और विभाग—

प्रमा वा प्रमिति अथवा यथार्थज्ञानके करणको प्रमाण कहते हैं। इसका तात्पर्य यह कि जिसके द्वारा यथार्थरूपसे सभी वस्तुओंका निर्णय किया जाय उसीको प्रमाण कहते हैं। प्रमाण चार प्रकारका है, इस कारण प्रमाणजन्य ज्ञान भी चार प्रकारका बतलाया गया है। यथा—प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शाब्दबोध। प्रत्यक्ष प्रमितिको प्रत्यक्ष, अनुमितिको अनुमान, उपमितिको उपमान और शब्दज्ञानको शब्दप्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण—

नयनादि इन्द्रिय द्वारा यथार्थरूपसे वस्तुओंका जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसको प्रत्यक्ष प्रमिति कहते हैं। यही सहज लक्षण है। गौतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार है—इन्द्रियके साथ अर्थके सन्निकर्षसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है। यह प्रमाण अव्यपदेश्य, अव्यभिचारी और व्यवसायरूप माना गया है। अव्यपदेश्य शब्दका अर्थ नामोल्लेखके योग्य नहीं है। वात्स्यायनभाष्य देखनेसे मालूम होता है कि उक्त विशेषण उनके मतसे स्वरूपसत् विशेषण है अर्थात् अव्याप्ति या अतिव्याप्तिवारक नहीं है। अव्याप्ति शब्दका अर्थ लक्ष्यसे लक्षणका अगमन है, इसे अप्रसङ्ग भी कह सकते हैं।

अतिव्याप्ति, (अलक्ष्यसे लक्षणका गमन) इसे अतिप्रसङ्ग या अतिव्याप्ति कह सकते हैं। जिस पदार्थका लक्षण किया जाता है उसे लक्ष्य कहते हैं।

प्रथम इन्द्रिय-सन्निकर्षाधीन रूपरसादिका ज्ञान होनेसे रूपरसादिका नामोल्लेखपूर्वक "रूप जानता हूं, रस जानता हूं" इत्यादि प्रकारसे रूपरसादिके ज्ञानका व्यवहार हुआ करता है। व्यवहारकालमें रूपादि प्रत्यक्ष ज्ञानको शब्दमिश्रित करके शाब्दज्ञान हो सकता है। इसी भ्रमके निरासार्थ उक्त विशेषण दिया गया है। इन्द्रियसन्निकर्षसे उत्पन्न रूपादिप्रत्यक्षात्मक ज्ञान व्यवहारकालमें शब्द द्वारा उल्लिखित होने पर भी वह शब्दजन्य नहीं होनेके कारण शाब्दज्ञान नहीं है। इन्द्रियसन्निकर्षजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान व्यवहारकालमें परिवर्त्तित नहीं होता, पूर्वरूपमें ही रहता है, यही वात्स्यायन भाष्यका तात्पर्य है।

कोई कोई कहते हैं कि अनुमितिवारणार्थ अव्यपदेश्य विशेषण दिया गया है। वार्त्तिककारने कहा है, कि अनुमिति इन्द्रियसन्निकर्षके कारण नहीं होती, अतः अनुमितिमें अतिप्रसङ्ग भी नहीं हो सकता।

वात्स्यायनका कहना है कि, अव्यभिचारी शब्दका अर्थ भ्रमभिन्न और व्यवसाय शब्दका अर्थ निश्चय है। मरीचिकादिमें इन्द्रियसन्निकर्षवशतः जलादिके भ्रमसे उसके प्रत्यक्ष प्रमात्वको वारण करनेके लिये 'अव्यभिचारी' विशेषण और दूरस्थ व्यक्तिके स्थाणु आदिमें पुरुषत्वादि सन्देह प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणके प्रसङ्गको वारण करनेके

लिये 'व्यवसाय' यह विशेषण दिया गया है। षड्दर्शनटीकाकार वाचस्पति मिश्र प्रभृति प्राचीन नैयायिकों तथा विश्वनाथ प्रभृति नव्य नैयायिकोंका कहना है कि इन्द्रिय सन्निकर्षजन्य अव्यभिचारी यथार्थ ज्ञान मात्र ही प्रत्यक्षका लक्षण है। अव्यपदेश्य और व्यवसाय इन दो पदोंका विभाग, अव्यपदेश्य शब्दका अर्थ, निर्विकल्पक प्रत्यक्ष, व्यवसाय शब्दका अर्थ और सविकल्पक प्रत्यक्ष है।

जो ज्ञान विशेष्य और विशेषणके सम्बन्धको विषय करता है, वह सविकल्पक है यथा नील घट इत्यादि। इस ज्ञानमें नीलरूपात्मक विशेषण और घटरूप विशेष्य के सम्बन्धको विषय किया है। अतएव इस सविकल्पक ज्ञानको विशिष्टबुद्धि कहते हैं। जो ज्ञान सम्बन्धको विषय नहीं करता वह निर्विकल्पक है। घट रूपादिके साथ चक्षुके सन्निकर्ष होने पर पहले पृथक् पृथक् रूपमें घट और घटत्वादिका जो ज्ञान होता है उनमेंसे प्रथम ज्ञान निर्विकल्पक और उत्तर ज्ञान सविकल्पक है। इस निर्विकल्पक ज्ञानका आकार शब्द द्वारा दिखलाया नहीं जाता, इस कारण इसे अव्यपदेश्य कहते हैं। 'घट, घटत्व' इत्यादिरूप निर्विकल्पक ज्ञान का जो आकार दिखलाया गया, वह और कुछ देखनेसे बुद्धिमान् व्यक्ति मात्र ही समझ सकेंगे कि यह निर्विकल्पक ज्ञानका प्रकृत आकार नहीं है। क्योंकि नाममात्रात्मक ज्ञान और घटांशमें घटत्वादिका सम्बन्ध भान हुआ करता है, इस कारण नाममात्रात्मक ज्ञानको सविकल्पक कहते हैं। निर्विकल्पक ज्ञानका प्रत्यक्ष नहीं होता। अतः वह अतीन्द्रिय है। किन्तु अनुमान द्वारा उसका अर्थात् निर्विकल्पक ज्ञानका अनुमितिरूप ज्ञान हुआ करता है।

साधारण नियम यह है, कि विशिष्ट बुद्धिके प्रति विशेषण ज्ञान कारण है। क्योंकि पहले घटत्व, घटत्वादि रूप विशेषणका ज्ञान नहीं होनेसे घटत्वप्रकारकादि विशिष्ट घटका ज्ञान नहीं होता। इस कारण घटत्वविशिष्ट घटज्ञानके पहले विशेषणरूप घटत्व (घटत्व) का ज्ञान अवश्य स्वीकार करना होगा। किन्तु घटत्व सविकल्पक के पहले घटत्वका अनुमित्यादिरूप और सविकल्पक ज्ञान नहीं रहने पर भी घटमें चक्षुःसंयोगादिवशतः घटमात्र विशिष्ट घटज्ञान हुआ करता है। सुतरां लाचार हो कर तादृशविशिष्टबुद्धिके पहले घटमात्रका निर्विकल्पक ज्ञान स्वीकार करना होगा। इस निर्विकल्पक ज्ञानके प्रति अन्य कारण असम्भव होनेसे इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष मात्र ही कारण स्वीकार किया गया है और इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष रूप कारण है ऐसा मान कर घटमात्रके निर्विकल्पक ज्ञानके साथ घटका भी निर्विकल्पक ज्ञान स्वीकार किया गया है।

यहां सोचनेकी बात यह है कि, उक्तरूपसे सविकल्पक ज्ञानके प्रति निर्विकल्पक ज्ञान कारण होने पर और निर्विकल्पक ज्ञानके प्रति इन्द्रियसन्निकर्षमात्र कारण होने पर रूपत्वादिका और सविकल्पकनिर्विकल्पकज्ञानमें भी उक्तरूपसे कार्यकारणभाव स्वीकार करना होगा। अभी यह आशङ्का हो सकती है कि रज्जुमें चक्षुःसन्निकर्ष होनेसे रज्जु, रज्जुत्वका निर्विकल्पक ज्ञान हो कर रज्जुमें रज्जुत्वज्ञानरूप सविकल्पक ज्ञान हो जाया जो सकता है तब रज्जुमें सर्पत्वभ्रम कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि रज्जु, रज्जुत्वमें चक्षुःसन्निकर्ष है इस कारण रज्जुत्व विशिष्ट बुद्धिके कारण रज्जुत्वरूप विशेषण ज्ञान अवश्य है और सर्पत्वमें चक्षुःसन्निकर्ष नहीं है, इस कारण यह सर्प इत्याकार सर्पत्व विशिष्ट बुद्धिके कारण सर्पत्वरूप विशेषण ज्ञान नहीं है। अज्ञानवशतः सर्पत्वकी स्मृति हो कर दूरत्व दोषनिबन्धन सर्पत्वका रज्जुमें भ्रम होता है। ऐसा कहनेसे भी आशङ्का रहती है कि सर्पत्वभ्रम अनुमित्यात्मक वा प्रत्यक्षात्मक है जिसमें व्याप्तिज्ञान और पक्षधर्मताज्ञान अन्य स्मरणजन्यज्ञान शाब्दज्ञानादि नहीं है, इस कारण वह सर्पत्वभ्रम अनुमित्यात्मक नहीं हो सकता और सर्पत्वमें सन्निकर्षका नहीं रहना प्रयुक्त सर्पत्व भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

रज्जुमें रज्जुत्व प्रत्यक्ष नहीं होता सो क्यों? इसका उत्तर इस प्रकार है—प्रत्यक्ष दो प्रकारका है लौकिक प्रत्यक्ष और अलौकिक प्रत्यक्ष; इनमेंसे अलौकिक प्रत्यक्ष में इन्द्रियसन्निकर्ष कारण नहीं है। अभी यह देखना चाहिये कि रज्जुमें जो सर्पत्वभ्रम हुआ करता है, वह

जैसे—नदीको प्रवाह वृद्धि देख कर वृष्टिका अनुमान।

सामान्यतोदृष्ट अनुमान—कारण और कार्य भिन्न केवल साध्य जो वस्तु है उसे देख कर जो अनुमिति होती है उसे सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहते हैं। जैसे—गगनमण्डलमें सम्पूर्ण शशधर देख शुक्लपक्षके अनुमान को हेतु करके गुणका अनुमान और द्रव्यत्वादि जातिको हेतु करके द्रव्यत्व जातिका अनुमान। वात्स्यायनने सामान्यतोदृष्ट अनुमानका कोई लक्षण नहीं बतलाया लेकिन उदाहरण इस प्रकार दिया है—सूर्यका गमनानुमान यह सामान्यतोदृष्ट अनुमान है। उद्योतकर और विश्वनाथ प्रभृतिने कार्यकारण भिन्न लिङ्गक अनुमानको सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहा है। अभी यह देखना चाहिये कि सूर्यका गमनानुमान उन्हीं पर मतके अनुसार उदाहरण हो सकता है या नहीं? इसमें पहले देखना होगा कि देश गमनानुमानमें लिङ्ग क्या क्या है? यदि संयोग ही लिङ्ग हो, तो वह संयोग गतिके कार्यके जैसा शेषवत् अनुमानके अन्तर्गत हो जाता है सुतरां कार्यकारणभिन्न लिङ्गक नहीं हो सकता। देशान्तरप्राप्ति और देशान्तर संयोगमें भिन्न नहीं है, अतएव देशान्तरप्राप्तिज्ञानको विषयत्वादिका हेतु कहना होगा। यहां पर देशान्तरप्राप्ति गतिकार्य होने पर भी देशा और प्राप्तिज्ञान विषयत्व गतिकार्य नहीं है इसमें तादृश लिङ्गक अनुमान शेषवत् अनुमानके अन्तर्गत नहीं हो सकता। सुतरां सूर्यका गमनानुमान सामान्यतोदृष्ट अनुमानका उदाहरण हो सकता है, ऐसा बहुतेरे कहा करते हैं।

वात्स्यायनका द्वितीय पक्ष—जिस अनुमानका लिङ्ग-लिङ्गी सम्बन्ध पहले देखा गया है उसे पूर्ववत् कहते हैं, जैसे—धूमलिङ्गक वह्नि अनुमान। प्रसक्तमात्र (जिसकी प्रसक्ति है) इतर वस्तुके निराकृत होने पर अवशिष्ट धर्मानुमान शेषवत् है। यथा शब्दमें गुणत्वानुमान और सत्* पदार्थ होनेके कारण उसमें द्रव्यत्व, गुणत्व और कर्मत्वरूप धर्मत्रयकी प्रसक्ति है। अभी शब्द एक द्रव्य समवेत† होनेके कारण द्रव्य नहीं है शब्द सभातीय अथवा होनेके कारण कर्म नहीं है। सुतरां द्रव्यत्व कर्मत्वके निराकृत होने पर शब्दमें अवशिष्ट गुणत्वका अनुमान होता है। लिङ्ग और लिङ्गीका सम्बन्ध अप्रत्यक्ष हो कर किसी धर्म द्वारा लिङ्गकी समानता (एकरूपता) निबन्धन अप्रत्यक्ष लिङ्गीका अनुमान सामान्यतोदृष्ट है। यथा इच्छादि द्वारा आत्माका अनुमान। प्रयोग यथा—

इच्छादि गुण गुणपदार्थ द्रव्यवृत्ति, अतएव इच्छादि और द्रव्यवृत्ति। अभी यह देखना चाहिये कि इच्छादिका आधार आत्मरूप द्रव्य है और इच्छादिका सम्बन्ध भी प्रत्यक्ष नहीं है। इच्छादिमें गुणत्वरूप धर्म द्वारा द्रव्याश्रित अन्य गुणके साथ समानतानिबन्धन इच्छादिके द्रव्याश्रितत्व सिद्धि द्वारा सामान्यतः द्रव्यरूपमें आत्माकी भी सिद्धि हुई है।

उदयनाचार्य, गङ्गेश, विश्वनाथ प्रभृतिने पूर्ववदादि शब्दमें यथाक्रम केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी और अन्वय-व्यतिरेकी ये तीन प्रकारके अनुमान बतलाये हैं। उनके मत केवलान्वयी प्रभृतिके लक्षण और उदाहरण मतभेदसे नानारूप धारण किया है।

उदयनके मतसे—केवलमात्र अन्वय सहचार ज्ञान द्वारा जहां पर हेतु साध्यको व्याप्तिका निर्णय होता है, वहांका हेतु केवलान्वयी। केवल-व्यतिरेक-सहचार द्वारा जहां हेतु साध्यको व्याप्तिका निर्णय होता है वहां हेतु केवलव्यतिरेकी और जहां उभय सहचार द्वारा व्याप्तिका निर्णय होता है वही हेतु अन्वयव्यतिरेकी है।

गङ्गेशके मतसे—जहां केवल अन्वय व्याप्ति ज्ञान द्वारा अनुमिति होती है, वहां जो अन्वयव्याप्तिज्ञान है, वही केवलान्वयी है। केवलव्यतिरेक व्याप्तिज्ञान द्वारा अनुमिति होनेसे वह व्याप्तिज्ञान केवल-व्यतिरेकी, उभयविध व्याप्ति द्वारा व्याप्तिज्ञान अन्वयव्यतिरेकी है।

उद्योतकर प्रभृतिने यह पूर्ववदादि भिन्न केवलान्वयी केवलव्यतिरेकी और अन्वयव्यतिरेकी अनुमान स्वीकार किया है। विस्तारके भयसे तथा यह नव-

* कणादके मतसे द्रव्य, गुण और कर्म सत् है।

† शब्द आकाशका एकमात्र गुणमें समवेत है। तादृश अर्थ है अथवा अवकाश। एक द्रव्यमें समवाय सम्बन्धसे गुण और कर्म रहते, गुण और कर्ममें सामान्य या जाति एव परमाणुमें विशेष रहता है। अब इसी द्रव्य एक द्रव्यमें नहीं रहता; इसलिए रहता है, शब्द द्रव्य समवेत नहीं होता।

न्यायका विषय होनेके कारण इस पर विशेष आलोचना नहीं की गई।

अन्वय और व्यतिरेकके भेदसे गौतमके मतमें भी अनुमान जो त्रिविध है उसे गौतमोक्त हेतु प्रभृति लक्षण देख कर सभी हृदयङ्गम कर सकते हैं।

उपमान—किसी किसी शब्दके किसी किसी अर्थमें शक्तिपरिच्छेदको उपमिति कहते हैं। यथा, जिस मनुष्यने पहले गवयजन्तु नहीं देखा, किन्तु सुना है कि गोसदृश गवय होता है, अर्थात् जिस वस्तुकी आकृति अवि-कल गौकी आकृति-सी होती है, गवय शब्दसे उसीका बोध होता है। वह मनुष्य उस समय केवल इतना ही जानता है, कि जो वस्तु गोसदृश होगी, गवय शब्दसे उसीका बोध होगा। गवय शब्दसे गवयजन्तु समझा जाता है, सो वह नहीं जानता। किन्तु जब वह मनुष्य अपनी आंखोंसे गवय जन्तु देखता है, तब उस गवयकी आकृति गो-की आकृतिके समान देख कर तथा पूर्वश्रुत गोसदृश गवय होता है इस वाक्यका स्मरण कर वह विचार करता है कि यदि गोसदृश जन्तुसे गवय शब्दका बोध हो, तो जब यह जन्तु गोसदृश होता है तब यही जन्तु गवयपदवाच्य होगा, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार गवयशब्दके शक्तिपरिच्छेदको उपमिति कहते हैं।

गौतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार है—प्रसिद्ध-साधर्म्य द्वारा साध्यनिश्चयका नाम उपमिति है, तत् करण उपमान है। वात्स्यायनने इसकी व्याख्यामें कहा है, कि अतिदेशवाक्यप्रयोज्य स्मृति द्वारा प्रसिद्ध वस्तुके सादृश्यज्ञानसे अप्रसिद्धवस्तुविषयक संज्ञासंज्ञि बोध-का नाम उपमिति है।

एक वस्तुमें अपर वस्तुके धर्मकथनको अतिदेश वाक्य कहते हैं। 'गौके जैसा गवय' यही श्रुतवाक्य अतिदेश वाक्य है।

शब्द-प्रमिति वा शब्दप्रमाण—शब्द द्वारा जो बोध होता है, उसे शाब्दबोध कहते हैं। जैसे, गुरुका उप-देश वाक्य सुन कर छात्रोंको उपदिष्ट अर्थका शब्द बोध होता है। गौतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार है—आप्तवाक्यका नाम शब्द है, ऐसा शब्द-जन्य बोध शाब्द-प्रमाण है। यह शाब्द-प्रमाण दो प्रकारका है, दृष्टार्थक और अदृष्टार्थक।

जिस शब्दका अर्थ प्रत्यक्षसिद्ध है उसे दृष्टार्थक और जिसका अर्थ अदृश्य है उसे अदृष्टार्थक कहते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है—'तुम गोरवर्ण हो', 'मेरी किताब अत्यन्त सुन्दर है' इत्यादि सिद्धार्थक वाक्य और 'याग करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है', 'विष्णुकी पूजा करनेसे विष्णुकी प्रीति होती है' इत्यादि विधिवाक्य हैं। गौतमने ऐसा प्रमाण दे कर प्रमेय पदार्थका निर्देश किया है।

प्रमेयपदार्थ—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्गके भेदसे बारह प्रकारका है। मुमुक्षुव्यक्तिके लिए उक्त आत्मादि पदार्थ यथार्थ ज्ञानयोग्य होनेके कारण प्रमेय है। प्रमाण द्वारा ही यह प्रमेय पदार्थ स्थिर करना होता है। इसी-से पहले प्रमाणका विषय लिखा जाता है।

न्यायसूत्रमें यथार्थ ज्ञान विषयरूप प्रमेय लक्षणका निखिल पदार्थ ही लक्ष्य हो सकता है। यही कारण है कि उत्तरकालीन नैयायिकोंने निखिल पदार्थको ही प्रमेय बतलाया है। इन बारह प्रकार प्रमेयोंके यथा-विध लक्षण क्रमशः लिखे जाते हैं।

आत्मा—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, ज्ञान ये सब आत्मा (जीवात्मा)-के लिङ्ग अर्थात् अनुमापक गुण हैं। कोई कोई लिङ्ग शब्दका अर्थ लक्षण ऐसा भी कहते हैं—जिसके ज्ञानादि हैं वे आत्मा हैं; जो चैतन्यमय हैं, वे आत्मपदवाच्य हैं। आत्मा सभी इन्द्रिय और शरीरादिकी अधिष्ठाता है। आत्माके नहीं रहनेसे किसी इन्द्रिय द्वारा कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता।

जिस प्रकार रथगमन द्वारा सारथिका अनुमान करना होता है, उसी प्रकार जड़ात्मकदेहकी चेष्टादि देख कर आत्मा भी अनुमित हो सकती है। कारण, यदि यह शक्ति शरीरादिमें रहती, तो मृतव्यक्तिके शरीर-में भी चैतन्यकी उपलब्धि होती, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं और जब मेरा शरीर क्षीण हो जाता है, मेरी आंखें विकृत हो जाती हैं, तब आत्मा जो शरीर और इन्द्रियसे भिन्न है, वह स्पष्टरूपसे जाना जाता है। यह आत्मा दो प्रकारकी है—जीवात्मा और परमात्मा।

मनुष्य कीट, पतङ्ग प्रभृति जीवात्मा उपलक्षण है, पर आत्मा एक परमेश्वर है। कुसुमाञ्जलिकी आलोचनाके समय पर आत्माके विषय पर विचार किया जायगा।

शरीर—जो चेष्टा, इन्द्रिय और सुख-दुःखके भोगका आयतन है वही शरीर कहाता है।

इन्द्रिय—भौतिक इन्द्रिय पाँच प्रकारकी है।—घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक् और श्रोत्र। भूत भी पाँच प्रकारका है—क्षिति, जल, तेज, मरुत् और व्योम।

अर्थ—(इन्द्रिय विषय) गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दके भेदसे अर्थ पाँच प्रकारका है। यहां पर अर्थ शब्द पारिभाषिक है। गन्धरसादिके साथ एक एक इन्द्रियके एक एक विशेष विषय होनेके कारण गन्धादि मात्रको ही इस प्रकारसे इन्द्रियार्थ कहा गया है। यथार्थमें प्रत्यक्षविषय पदार्थमात्रको ही इन्द्रियार्थ समझना होगा।

बुद्धि—बुद्धि, ज्ञान और उपलब्धि ये तीनों एक प्रकारके हैं। सांख्यगण बुद्धि नामक अचेतनको अन्तःकरणरूप द्रव्य और उस द्रव्यके गुणविशेषको ज्ञान तथा चेतन आत्माके धर्मको उपलब्धि मानते हैं। लेकिन नैयायिक लोग इसे स्वीकार नहीं करते, इसका विषय पीछे आलोचित होगा।

जिससे समस्त विषय होते हैं उसे बुद्धि कहते हैं। इस बुद्धिका विषय पीछे लिखा जायगा।

मन—ज्ञान सुख और ज्ञानसुखादिसाधनकरण है। नैयायिक लोग एक कालमें अनेक इन्द्रियजन्य ज्ञानको स्वीकार नहीं करते अर्थात् यौगपद्यरूपसे कालमें ज्ञानका उत्पादन नहीं होता। जैसे—किसी व्यक्तिके अभिमत विषयमें अभिनिवेश करने पर उस समय गभीर ध्यानविधायक ज्ञानके सिवा उसके किसी दूसरे शब्दादि विषयका ज्ञान नहीं होता, इसका क्या कारण है? यदि इन्द्रिय मात्र ही कारण होती तो निद्रित व्यक्तिके जिस तरह चक्षु अविकार्य है उसी तरह जाग्रत व्यक्तिके शब्दादिमें भी श्रोत्रादि इन्द्रियका सम्बन्ध होनेके कारण उसके शब्दादिका आश्रयके सहित ज्ञान प्रत्यक्ष होना उचित था लेकिन वैसा नहीं होता। अतएव यह कहना पड़ेगा कि केवल इन्द्रियार्थसन्निकर्षमात्र प्रत्यक्षका कारण नहीं है, एक दूसरा भी कारण है जिसके रहनेसे ज्ञान होता है और नहीं रहनेसे ज्ञान नहीं होता। वह कारण और कुछ भी नहीं है, मनका योग है। किन्तु वह प्रत्यक्ष नहीं है। इस कारण गौतमने कहा है कि एक समय ज्ञानद्वय नहीं होना मनका अनुमापक है।

प्रवृत्ति (यत्न) तीन प्रकारकी है मन-आश्रित दया और असूयादि वाक्याश्रित मधुर और परुषादि तथा शरीराश्रित परोपकार और हिंसादि। फिर इन सब यत्नोंके भी दो भेद कहलाते हैं पाप और पुण्यरूप।

दोष—जो मनुष्यको प्रवृत्त कराते वही दोषशब्दवाच्य है। यह दोष तीन प्रकारका है राग, द्वेष और मोह। राग, द्वेष और मोहके वशमें आ कर मनुष्य कार्यमें प्रवृत्त होते हैं अथवा नहीं होते। राग, द्वेष और मोह इन तीनोंमें मोह अधिक निन्दनीय है। क्योंकि मोह नहीं रहनेसे राग और द्वेष नहीं होते।

राग—काम मत्सर स्पृहा तृष्णा, लोभ माया और दम्भादिके भेदसे रागपदार्थ नाना प्रकारका है। वस्तु विषयके अभिलाषको काम और अपना प्रयोजन नहीं रहने पर भी दूसरेके अभिमत विषयको निवारणेच्छाको मत्सर कहते हैं। परद्रव्यकी निवारणेच्छा भी मत्सर कहलाती है। जिससे किसी विषयकी हानि न हो ऐसे विषय प्राप्तिकी इच्छाको स्पृहा, सञ्चित वस्तुका क्षय न हो ऐसी इच्छाको तृष्णा, उचितव्यय न कर धनरक्षणेच्छाको कार्पण्य, जिससे पाप हो सके ऐसी विषय-प्राप्तीच्छाको लोभ, परवञ्चनेच्छाको माया और कपटसे अपनी धार्मिकतादिको प्रकाशित कर स्वकीय उत्कर्ष ख्यापनेच्छाको दम्भ कहते हैं।

क्रोध, ईर्ष्या, असूया, अमर्ष और अभिमानादिके भेदसे द्वेष भी नाना प्रकारका है। नेत्रादिके रक्तादिजनक द्वेषको क्रोध, साधारण धनादिमें विभागकारी एक अंशके प्रति अपर अंशवालोंका जो द्वेष होता है उसे ईर्ष्या कहते हैं। दूसरेके गुण पर विद्वेष करनेका नाम असूया है।

अपकार-विनाशजनक द्वेषको द्रोह, दुर्दान्त अपकारीके प्रति प्रत्युपकारासमर्थ व्यक्तिके द्वेषको अमर्ष और नाश्य अपकारीका अपकार न कर सकने पर उसका आत्म-भावनाको अभिमान कहते हैं।

विपर्यय, संशय, तर्क, मान, प्रमाद, भय और शोकादिके भेदसे मोह भी नाना प्रकारका है। अयथार्थ निश्चयको विपर्यय, जो जो गुण यथार्थमें अपना नहीं है वे सब गुण अपनेमें आरोप कर अपनेको उत्कृष्ट समझनेको मान, अस्थिरमतिताको प्रमाद, अनिष्टजनक किसी व्यापारके उपस्थित होने पर तन्निवारणमें अपनेको असमर्थ समझनेको भय और इष्टवस्तुसे वियोग होने पर पुनर्वार उसकी अप्राप्तिकी सम्भावनाको शोक कहते हैं।

प्रेत्यभाव - पुनर्जन्म, बारम्बार उत्पत्तिको अर्थात् एक बार मरण और एक बार जन्मग्रहण तथा फिरसे मरण और जन्मग्रहणरूप आवृत्तिको प्रेत्यभाव कहते हैं। आत्माकी नित्यत्व सिद्धि द्वारा पुनर्जन्म सिद्ध होता है।

फल—दोष-सहकृत प्रवृत्ति जनित जो सुख या दुःखका भोग है, वह फल है। फलके प्रति दोषसहकृत प्रवृत्ति ही कारण है।

दुःख—जो मनुष्यका द्वेष्य या प्रतिकूलवेदनीय है उसे दुःख कहते हैं। यह दुःख मुख्य और गौणके भेदसे दो प्रकारका है। जो दुःखान्तरकी अपेक्षा न कर प्रतिकूलवेदनीय है उसे मुख्य और जो दुःखान्तरकी अपेक्षा कर प्रतिकूलवेदनीय है उसे गौण दुःख कहते हैं। गौतमने कहा है कि जन्मके साथ इसेगा दुःख अनुसक्त रहता है, इसीसे जन्म होना दुःख है।

अपवर्ग—दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति ही अपवर्ग है। अत्यन्त शब्दका अर्थ है जिसके बाद और दुःख नहीं होगा। मोक्षके सम्बन्धमें अनेक मतभेद हैं। वात्स्यायनने कहा है, कि दुःख शब्दका अर्थ है दुःखरूप जन्मका,—अत्यन्त शब्दका तात्पर्य है स्वीत जन्मका त्याग और भविष्यमें जन्म ग्रहण नहीं करना। शङ्कर मिश्र प्रभृतिका कहना है कि दुःखका अनुत्पाद ही दुःखविमोक्ष है। विश्वनाथ प्रभृति कहते हैं कि दुःखविमोक्ष शब्दका अर्थ है दुःखनाश और जन्मविमोचन। यह स्वतःप्रयोजन नहीं हो सकता; इस कारण मुक्तिके स्वतःप्रयोजनत्वकी रक्षाके लिये प्रकृत दुःखनिवृत्तिको मुक्ति कहते हैं और तदर्थ दुःख शब्द भी प्रकृतदुःखपरक जैसा वर्णित है। जो कुछ हो, गौतमके अभिप्रायके साथ प्रकृत विषयमें किसीका भी विरोध नहीं है। किन्तु सुषुप्तिकालमें स्वप्न नहीं देखनेसे क्लेशका अभाव रहता है, इस कारण अपवर्ग हो सकता है। गौतमके ऐसे सूत्रमें अभाव शब्द अनुत्पादपर है, नाशपर नहीं है। क्योंकि स्वप्नदर्शन क्लेशनाशके प्रति कारण नहीं हो सकता, किन्तु स्वप्न नहीं देखनेसे क्लेश उत्पन्न नहीं होता, अतः अनुत्पादके प्रति प्रयोजक हो सकता है। अभी देखना चाहिये कि सुषुप्तिकालीन क्लेश अनुत्पादको दृष्टान्त दिया गया है। इस कारण मुक्तिप्रयोजक दोषकृत क्लेशाभाव और क्लेशानुत्पाद ही ग्रहण करना होगा तथा दोषानुत्पाद दुःखनाशका कारण नहीं होनेसे दोषका अनुत्पाद प्रयोज्य और दुःखको अनुत्पादरूप मुक्ति गौतमको अभिप्रेत है, यह समझा जाता है। यही द्वादश प्रकार प्रमेय है।

प्रमाण और प्रमेयका विषय कहा गया, अभी संशयका विषय कहा जाता है।

संशय - साधारण धर्मज्ञान, असाधारण धर्मज्ञान और विप्रतिपत्ति वाक्यार्थ ज्ञान तथा उपलब्धिकी अव्यवस्था ही संशयके प्रति कारण है। अनुपलब्धिकी अव्यवस्थाको भी कोई कोई स्वतन्त्र कारण बतलाते हैं। किन्तु यह वात्स्यायनादि किसीका भी मतसिद्ध नहीं है।

दोनोंके समान या एक धर्मको साधारण धर्म कहते हैं, जैसे स्थाणु और पुरुषका ऊर्ध्वत्व समान है, सुतरां यह साधारण धर्म है। जो धर्म समानजातीय, क्या असमानजातीय किसीका भी धर्म नहीं है, ऐसा धर्म असाधारण धर्म कहलाता है। श्रवणेन्द्रियग्राह्यता शब्दका असाधारण धर्म है, शब्दके सजातीय अन्यगुण या शब्दके असजातीय द्रव्यधर्ममें कहीं भी श्रवणेन्द्रियग्राह्य सत्ता नहीं है। यह असाधारण धर्म ज्ञानाधीन शब्दमें गुणत्वादि संशय हुआ करता है। परस्परविरुद्ध वाक्यद्वयको विप्रतिपत्तिवाक्य कहते हैं। किसीने कहा आत्मा है। किसीने कहा आत्मा नहीं है, इस प्रकार 'आत्मा है या नहीं' यह विरुद्धार्थ ज्ञानहेतु इस प्रकार संशय हुआ करता है।

उपलब्धिकी अव्यवस्था शब्दको अर्थस्थिरताका नहीं रहना या अप्रमाण्य संशय, मरीचिकादिमें जलज्ञान सत्य होता है। किन्तु फिर मरीचिकामें प्रथम जलज्ञानका

ज्ञान होनेसे, पीछे जिस समय निकट जाते हैं उस समय यथार्थ ज्ञान हो कर अयथार्थका निवारण होता है। अनुपलब्धि शब्दका अर्थ है ज्ञानका विपरीत कारणकी स्थिरताका नहीं रहना या अप्रामाण्य संशय। यथा—कूप खोदनेमें पहले जलका ज्ञान नहीं हुआ, पर जलका अभाव ही बोध हुआ। किन्तु पीछे जब जल दिखा गया तब जलाभावज्ञानमें मिथ्यात्व बोध हुआ, इस कारण अनावृत्र जलाभावज्ञानमें अप्रामाण्य संशय हो कर जल है या नहीं, इस प्रकार संशय हुआ करता है। अव्यवस्था शब्दका दूसरा अर्थ भी हो सकता है। विश्वनाथ प्रभृतिने अप्रामाण्य संशयका ऐसा अर्थ किया है।

प्रयोजन—जो वस्तु इच्छाप्रयुक्त मनुष्यमें प्रवृत्त होती है उसका नाम प्रयोजन है जैसे सुख, दुःखनिवृत्ति प्रभृति। सुखादिके इच्छावश ही मनुष्य प्रवृत्त होते हैं। गौतमने प्रयोजनका कोई विभाग नहीं किया। गदाधरने मुक्तिवादमें गौण और मुख्यके भेदसे दो प्रकारका प्रयोजन माना है।

अभिलषणीय विषयके सम्बन्धके जैसा जो विषय अभिलषणीय होता है उसे गौण और तदतिरिक्त केवल अभिलषणीय विषयको मुख्य प्रयोजन कहते हैं। जो जीवका स्वभावतः इष्ट है, वही मुख्य प्रयोजन है, यथा—सुख और सुखभोग तथा दुःखनिवृत्ति। किन्तु जो स्वभावतः इष्ट नहीं है, सुखादिका साधन हो कर इष्ट होता है, वह गौण प्रयोजन है, यथा—भोजनादि स्वभावतः भोजनादिकी इच्छा नहीं होती। भोजन सुखजनक वा क्षुधादिजनित दुःखनिवृत्तिजनक होनेके कारण भोजनकी इच्छा हुआ करती है।

दृष्टान्त—प्रकृत विषयको दृढ़ीकरणार्थ जिस प्रसिद्ध वस्तुका उपन्यास किया जाता है, उस वस्तुको दृष्टान्त कहते हैं, अर्थात् लौकिक तथा परीक्षक ये दोनों जिस विषयका स्वीकार करते हैं, उसीका नाम दृष्टान्त है। यथा—यह पर्वत पर अग्नि है क्योंकि यहाँ धूम दिखा जाता है, जहाँ जहाँ धूम रहता है वहाँ वहाँ अग्नि रहती है। जैसे, रन्धनशाला, यहाँ पर रन्धनशाला यही दृष्टान्त पद-वाच्य है।

सिद्धान्त—अनिश्चित विषयका शास्त्रानुसार निर्णय करनेको सिद्धान्त कहते हैं। यथा—मुक्ति किस प्रकार होती है? इस तरह जिज्ञासा करने पर "तत्त्वज्ञान होनेसे मुक्ति होती है" ऐसा निश्चित हुआ। यह सिद्धान्त चार प्रकारका है—सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम। जो विषय सभी शास्त्रोंमें स्वीकृत हुआ है उस प्रकार विषय स्वीकारका नाम सर्वतन्त्रसिद्धान्त है। जैसे परधनापहरण, परस्त्रीगमन आदि दोष सभी शास्त्रोंमें अकर्त्तव्य है, फिर दीनोंके प्रति दया प्रभृति सत्कर्म सभी शास्त्रोंके अभिमत हैं, इसीको सर्वतन्त्रसिद्धान्त कहते हैं। जो विषय शास्त्रान्तरव्याप्त नहीं है ऐसे विषयके स्वीकारको प्रतितन्त्रसिद्धान्त कहते हैं, अर्थात् जो एक शास्त्रसिद्ध है किन्तु अन्य शास्त्रविरुद्ध, वही प्रतितन्त्रसिद्धान्त है। यथा, इन्द्रियका भौतिकत्व सांख्य शास्त्र विरुद्ध है, लेकिन न्यायशास्त्र सम्मत है, अतएव यह प्रतितन्त्रसिद्धान्त हुआ।

जिस पदार्थके सिद्ध होने पर उसके आनुषङ्गिक भिन्न पदार्थकी सिद्धि होती है वह अधिकरणसिद्धान्त है। यथा, इन्द्रियकी नानात्व सिद्धि द्वारा इन्द्रियसे भिन्न आत्मरूप पदार्थकी सिद्धि हुई है वही अधिकरणसिद्धान्त है। जो विषय शास्त्रसूत्रमें नहीं कहा गया अथच उसका धर्मकथन द्वारा प्रकारान्तरसे स्वीकार किया गया है, उसे अभ्युपगमसिद्धान्त कहते हैं। यथा, गौतमने मनको साक्षात् इन्द्रिय नहीं बतलाया है अथच मनको सुख साक्षात्कारादि करण स्वीकार कर प्रकारान्तरसे इन्द्रिय कहा है।

अवयव—विचाराङ्ग वाक्यविशेषको अवयव कहते हैं। अवयवके पांच भेद हैं,—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। इसे पञ्चावयव वाक्य कहते हैं।

प्रतिज्ञा—जिस विषयका व्यवस्थापन करना होगा उस उपन्यासको प्रतिज्ञा कहते हैं यथा—पर्वत पर वह्निके साधनार्थ 'पर्वतो वह्निमान्' अर्थात् पर्वत पर अग्नि है इत्यादि वाक्य।

हेतु—'किस हेतु पर्वत पर वह्नि है' इस जिज्ञासाके निरासार्थ तदनुसारक हेतुका जो उपन्यास है, वही

हेतु कहते हैं; अर्थात् साध्यको साधन करनेके लिये प्रयुक्त लिङ्गवाक्यका नाम हेतु है। जैसे—उस जगह 'धूमात्' अर्थात् धूमहेतु इस वाक्यका उपनाम है। यह हेतु दो प्रकारका है—अन्वयी और व्यतिरेकी। पर्वत पर धूम रहनेसे वह्नि क्यों रहती है? इस आशङ्काके निवारणार्थ जिस जिस स्थान पर धूम रहता है उसी उसी स्थान पर वह्नि रहती है। यथा—रन्धनशाला इत्यादि वाक्य प्रयोजनको व्यतिरेकी उदाहरण कहते हैं।

१। प्रतिज्ञा। पर्वत पर वह्नि है वा पर्वत वह्निमान् है।

२। हेतु। धूम होनेके कारण।

३। उदाहरण। जहां जहां धूम है, वहां वहां वह्नि है। जैसे पाकशालादि।

उक्त उदाहरण वाक्य द्वारा वह्निविशिष्ट पर्वतरूप साध्यके साथ पाकशालादिरूप दृष्टान्तका धूमवत्त्वादिरूप साधर्म्य वा एक रूपभाव होनेसे यहां पर अन्वयीहेतु हुआ है।

व्यतिरेकी हेतु—फिर पूर्वोक्त शङ्कानिराकरणार्थ जहां वह्नि नहीं रहती, वहां धूम भी नहीं रहता। यथा—पुष्करिणी इत्यादि वाक्यप्रयोगको व्यतिरेक उदाहरण कहते हैं। अर्थात् जो न्यायवाक्यके अन्तर्गत उदाहरण वाक्य द्वारा साध्य है और दृष्टान्तका वैधर्म्य वा विरुद्धरूपता बोध होता है, उस न्यायान्तर्गत हेतुवाक्यको व्यतिरेकी हेतु कहते हैं।

१। प्रतिज्ञा। पर्वत पर वह्नि है।

२। हेतु। धूम होनेके कारण।

३। उदाहरण। जहां धूम नहीं है, वहां वह्नि नहीं है। यथा—ह्रद, जलाशय प्रभृति।

इस उदाहरण वाक्य द्वारा पर्वतरूप पक्ष (वह्निका अभाव प्रभृति विरुद्धधर्म)-का ह्रदमें बोध होता है, अतएव यहां पर व्यतिरेकी हेतु हुआ है।

साध्य दृष्टान्तका एकरूपतारूपसे साधर्म्य निबन्धन अन्वय व्यतिरेककल्पना प्राचीन सङ्गत है। इस पर नव्य लोग कहते हैं कि न्यायके अन्तर्गत उदाहरण वाक्य द्वारा हेतु और साध्य (लिङ्गी)-का अन्वयसहचार वा अन्वयव्याप्ति बोध होती है, वही न्यायान्तर्गत हेतुवाक्य अन्वयी हेतु है। (दो वस्तुओंके एक साथ रहनेको अन्वयसहचार, अभावद्वयके एकत्रावस्थानको व्यतिरेक सहचार और उसके इस सहचारद्वयके नियत वा अव्यभिचारी होनेसे उसे क्रमशः अन्वय और व्यतिरेकव्याप्ति कहते हैं।)

पूर्वोक्त जिस जिस स्थान पर धूम है वहां वहां वह्नि है, इस उदाहरण वाक्यसे धूमरूप हेतु और वह्निरूप साध्यके अन्वयसहचार वा धूममें वह्निको अन्वयव्याप्तिका बोध हुआ, अतः तत्रत्य हेतुवाक्य अन्वयीहेतु हुआ। जिस वाक्य द्वारा हेतुसाध्यके व्यतिरेकसहचार वा व्यतिरेक व्याप्तिका बोध होता है, वह न्यायान्तर्गत हेतुवाक्य व्यतिरेकी हेतु है

उपनय—पक्षमें हेतुबोधक वाक्यका नाम उपनय है। व्यतिरेकी उपनयकी जगह भी हेतुके अभावका अभाव होनेसे प्रकारान्तरमें हेतुका बोध होता है। यह उपनय भी दो प्रकारका है, अन्वयी और व्यतिरेकी। अन्वयी यथा—

जहां जहां वह्नि है, वहां धूम है। जैसे—पाकशाला। व्यतिरेकी यथा—जहां वह्नि नहीं है, वहां धूम नहीं है। जैसे ह्रदादि।

निगमन—हेतु कथन द्वारा प्रतिज्ञावाक्यके पुनः कथनको निगमन कहते हैं, अर्थात् यथार्थमें प्रकृतसाध्यके उपसंहार वाक्यका नाम निगमन है। जैसे 'तस्मात् वह्निमान्' अर्थात् उस हेतु पर्वत पर वह्नि है, इत्यादि वाक्य।

निगमन—अतएव धूम है इसीसे पर्वत वह्निमान् है।

अनेक नव्यनैयायिक उपनय और निगमन वाक्यार्थबोधसे भी व्याप्तिज्ञानका स्वीकार करते हैं और पर्वत ऐसे शब्दसे वह्निव्याप्यवान् इत्यादि अर्थ लगाते हैं। ये सब विषय और भी सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपमें नव्यन्यायमें आलोचित हुआ है।

यहां पर बहुतोंको आशङ्का हो सकती है कि अन्यदार्शनिकगण (वेदान्तिक) उदाहरण, उपनय और निगमन ये तीन प्रकारके अवयव स्वीकार करते हैं और ये ही तीन अवयव उनके मतसे न्याय हैं। वे गौतमका मत पञ्चावयव स्वीकार नहीं करते। गौतमने पञ्चावयव क्यों स्वीकार किया है, इस सम्बन्धमें चिन्तामणिकार

प्रवृत्तिमें ऐसी वृत्ति होती है। पहले देखना होता कि न्यायका प्रयोग क्यों होता है ? इस विषयमें सभी स्वीकार करेंगे कि किसी विषयमें सन्देह उपस्थित होने पर उसे दूर करनेके लिए तत्त्वनिर्णयार्थ न्यायका प्रयोग हुआ करता है। अतएव यह देखना उचित है कि किस प्रकार उसमें न्यायका प्रयोग होता है। यथा—पर्वत पर अग्निका संशय होने पर वहां अग्नि है या नहीं ? ऐसा प्रश्न होता है।

इसके उत्तरमें यदि कहा जाय कि जहां धूम है वहां वह्नि है, तो प्रश्नकारीका इस वाक्य द्वारा संशय दूर नहीं होता, इस कारण अविज्ञापित होनेसे अर्थान्तरग्रस्त हो जाता है। अतएव इस प्रश्नके उत्तरमें पहले उसे कहना होगा कि पर्वत पर वह्नि है। पीछे वह्नि है, इसका प्रमाण क्या ? इसके उत्तरमें यह कहना पड़ेगा कि धूम होनेके कारण। पीछे धूम होनेके कारण वह्नि रहेगी उसीका क्या प्रमाण है ? तब कहना होगा कि जहां धूम है वहां वह्नि है। धूम रहनेसे वह्नि अवश्य रहती है। यथा—पाकशाला। अतएव प्रश्नानुरूप प्रतिज्ञादिक्रमसे ही वाक्य प्रयुक्त हुआ करता है, इस कारण नैयायिकोंने प्रतिज्ञादि पञ्च अवयवको ही न्याय माना है।

वात्स्यायन-भाष्यसे मालूम होता है कि कोई कोई दश प्रकारका अवयव स्वीकार करते हैं। पूर्वोक्त प्रतिज्ञादि पांच प्रकार और जिज्ञासा, संशय, शक्यप्राप्ति, प्रयोजन तथा संशयव्युदास (संशय-निवृत्ति) यह दश प्रकार न्यायावयव है। गौतमने प्रतिज्ञादि पञ्चावयवको ही निर्दिष्ट अर्थके निर्णय विषयमें समर्थ बतला कर उक्त पञ्चावयवको ही न्यायावयव स्वीकार किया है। जिज्ञासा प्रभृति परम्पराक्रमसे निर्दिष्ट अर्थके निर्णय विषयमें उपयोगी होने पर भी साक्षात् सम्बन्धमें अर्थ-निर्णयमें समर्थ नहीं होते इस कारण जिज्ञासादि पञ्च को न्यायावयव नहीं माना है।

कोई कोई उदाहरण और उपनय इन्हीं दोको न्यायावयव मानते हैं, क्योंकि यही दो व्याप्तिसिद्धिमें उपयोगी हैं। व्याप्तिपक्षधर्मतादि निर्णय द्वारा निर्दिष्ट अर्थका निर्णय करता है। इत्यादि रूप न्यायावयवके सम्बन्धमें और भी अनेक मत हैं। गौतमने न्यायका पञ्चावयव स्वीकार किया है, इस कारण उक्त मतका विचार हो किया गया, अन्यान्य मतका विचार आलोचित नहीं हुआ।

तर्क—व्याप्ति विषयको तर्क कहते हैं। यथा—पर्वत पर यदि वह्नि नहीं रहती, तो कदापि धूम नहीं निकलता, क्योंकि धूम वह्निव्याप्य है। गौतमने तर्कका कोई विभाग नहीं किया, किन्तु अन्यान्य नैयायिकोंने इसे ५ भेदोंमें विभक्त किया है। आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक, अनवस्था और प्रमाणबाधितार्थप्रसङ्ग।

निर्णय—अवच्छेद्य ज्ञान जो निर्णय है, अर्थात् विवेचना करके पक्ष और प्रतिपक्ष द्वारा जो अर्थावधारण होता है, उसे निर्णय कहते हैं।

वाद—परस्पर जिगीषु न हो कर केवल प्रकृत विषयके तत्त्व निर्णयार्थ वादी और प्रतिवादीके विचारको वाद कहते हैं, अर्थात् प्रमाण और तर्क द्वारा स्वपक्ष साधन और परपक्षदूषणपूर्वक सिद्धान्त अविरोधी पञ्चावयवयुक्त वादी और प्रतिवादीकी उक्ति तथा प्रत्युक्ति कथनको वाद कहते हैं। यहां आशङ्का हो सकती है कि वादी और प्रतिवादी दोनोंका वाक्य किस प्रकार प्रमाणतर्कादिविशिष्ट हो सकता है ? इसका उत्तर यही है कि वचनस्थ प्रमाणादि शब्दका अर्थ जो है वही समझना होगा। यदि मनुष्य भ्रमवश प्रमाणाभास, तर्काभास, सिद्धान्त और न्यायाभासका प्रयोग करे, तो विचारको वादत्वहानि होती है।

वादविचारमें सभीको अधिकार नहीं है। जो प्रकृत विषयके तत्त्वनिर्णयेच्छु, यथार्थवादी अयथार्थादिदोष शून्य, यथाकालमें प्रकृतोपयोगी कथनमें समर्थ हैं जो सिद्धान्तविषयका अपलाप नहीं करते तथा युक्तिसिद्ध विषय स्वीकार करते हैं, वे ही यथार्थमें वादविचारके अधिकारी हैं।

किन्तु विविधोपायक्रमतः मनुष्य यदि प्रमाणादि कह कर प्रमाणाभासादिका प्रयोग करे, तो वह वाद नहीं होगा। तत्त्वनिर्णयके लिये वादप्रतिवाद जो वाद कथनका अर्थ है और निश्चय दृढ़ करनेके लिये हेतु

उदाहरणका अधिक प्रयोग युक्त होनेसे वादविचारकी जगह अवयवका आधिक्य दोषावह नहीं है। उदाहरण वा उपनयरूप अवयवप्रयोग नहीं करनेसे प्रकृतार्थ सिद्ध नहीं होता, इस कारण लक्षणसूत्रस्थ पञ्चावयव शब्द द्वारा न्यूनावयवका ही प्रतिषेध किया गया है, अधिकावयवका नहीं। लक्षणसूत्रस्थ पञ्चावयवयुक्त इस शब्द द्वारा हेत्वाभासका निरास और सिद्धान्तविरोधी शब्द द्वारा अपसिद्धान्तका भी निरास किया गया है। हेत्वाभास निग्रहस्थानान्तर्गत होने पर भी हेत्वाभासका पृथगभिधान किया गया है। इस विषयमें वृत्तिकार और वार्त्तिककार आदिका मत इस प्रकार है।

वार्त्तिककार—वादमें कथनीय होनेके कारण हेत्वाभासका पृथगभिधान हुआ है, यह बात स्वीकार करने पर न्यूनाधिक अपसिद्धान्तादि और वादमें कथनीय होनेसे उसका भी पृथगभिधान किया जा सकता है। अतएव विद्याप्रस्थानभेदज्ञापनार्थ ही हेत्वाभास पृथक्रूपसे कथित हुआ है।

वृत्तिकार—निग्रहस्थानान्तर्गत हेत्वाभास कथनसे ही विद्याविषयका भेद जाना जा सकता है, इसीसे हेत्वाभासके पृथक् उपादानकी कोई आवश्यकता नहीं। इस प्रकार वार्त्तिकके प्रति दोषारोप करके अन्यरूप मीमांसा की गई है। भाष्यकारका मत ही युक्तियुक्त है, इस कारण यहां पर अन्य मत पर विचार नहीं किया गया।

जल्प—प्रमाण, तर्क, छल, जाति और निग्रहस्थान द्वारा यथायोग्य स्वपक्षसाधन और परपक्ष प्रतिषेधयुक्त वादी तथा प्रतिवादीकी उक्ति और प्रत्युक्तिको जल्प कहते हैं। जल्प विचारविजिगीषावशतः हुआ करता है। इस जल्पमें प्रमाणाभास, तर्काभास और अवयवाभास हुआ करता है। स्वपक्षसाधन और परपक्षप्रतिषेधरूप विजिगीषुद्वयकी उक्ति प्रत्युक्ति ही यथार्थमें जल्पपदवाच्य है।

वितण्डा—स्वपक्ष साधनरहित परपक्षप्रतिषेधक जल्पको ही वितण्डा कहते हैं।

हेत्वाभास—प्रकृतविषयका वास्तविक साधन नहीं होने पर भी आपाततः प्रकृतविषयके साधनके जैसा जिसका बोध होता है उसे हेत्वाभास कहते हैं। अर्थात् इसका साधारण अर्थ यह है कि असाधक वा दुष्टहेतुको ही हेत्वाभास कहा जाता है। जिसका ज्ञान होने पर प्रकृत अर्थकी सिद्धि नहीं होती, उसे अनुमितिविषयमें दोष कहते हैं। यह दोष ५ प्रकारका है, व्यभिचार, विरोध, प्रकरणसम, असिद्धि और कालात्यय। दोष ५ प्रकारका होनेसे दुष्टहेतु (हेत्वाभास) भी ५ प्रकारका है, यथा सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, असिद्ध और अतीतकाल।

व्यभिचार और अव्यभिचार—हेतुमें साध्यकी व्याप्तिका अभाव रह कर साध्याभावकी व्याप्तिके नहीं रहनेको व्यभिचार और व्यभिचारयुक्त हेतुको अव्यभिचार कहते हैं। यथा पर्वत पर धूम है, वह्नि होनेके कारण, यहां पर धूम साध्य और वह्नि हेतु है। धूमशून्य अयोगोलकमें (लोहपिण्ड) तथा धूमयुक्त पर्वतादि पर वह्नि है, अतः वह्निमें धूम वा धूमाभाव किसीकी भी व्याप्ति नहीं है। अतएव धूमशून्य स्थानमें स्थिति और धूमयुक्त स्थानमें स्थिति, इन दो स्थलनिरूप साध्य और साध्याभाव व्याप्तिका अभाव ही वह्निमें धूमका व्यभिचार है एवं व्यभिचारविशिष्ट वह्नि सव्यभिचार है। इसका तात्पर्य यह कि धूमके रहनेसे वह्नि अवश्य रहती है, किन्तु वह्निके रहने पर जो धूम रहेगा, सो नहीं; धूम रह भी सकता है और नहीं भी रह सकता है। पर्वतादि पर वह्नि हेतु धूम है सही, लेकिन अयोगोलकमें धूम नहीं है इसीसे यह व्यभिचार हुआ। व्यभिचारका ज्ञान रहने पर पक्षमें साध्यव्याप्यहेतु ज्ञानरूप लिङ्गपरामर्श नहीं हो सकता। इस कारण प्रकृतार्थसिद्धि भी नहीं हो सकती। सुतरां व्यभिचार दोष हुआ।

विरुद्ध—जो प्रकृतसिद्धान्तका विरोधी है उसे विरुद्ध कहते हैं।

प्रकरणसम वा सत्प्रतिपक्ष—तुल्यबल परामर्शकालीन परस्पर विरुद्ध अर्थसाधनके निमित्त तुल्य बलसंयोग द्वारा प्रयुक्त हेतुद्वयको सत्प्रतिपक्ष कहते हैं। एक पक्षका कहना है कि शब्द रूपादिकी तरह बहिरिन्द्रियग्राह्य होनेके कारण अनित्य है, फिर दूसरे पक्षका कहना है, कि शब्द आकाशादिकी तरह स्पर्शशून्य है, अतः वह नित्य है। यहां पर जिस समय अन्यतर पक्षमें हेत्वा-

साध्यादिका उद्भावन नहीं होगा, उस समय अविशिष्ट साध्य एवं धर्मगुणात्मक हेतु द्वारा परस्पर विरुद्ध साधनमें समानबलयुक्त होनेसे सत्प्रतिपक्ष होगा। किन्तु धनात्मकपक्षमें तर्कादि द्वारा अधिक बाधित या हेत्वा साध्यादि द्वारा न्यूनता होनेसे सत्प्रतिपक्ष नहीं होगा। परस्पर विरुद्धार्थ साधनके निमित्त प्रयुक्त हेतुद्वयको अदुष्टता नहीं हो सकती, इस कारण सत्प्रतिपक्षको जब तक उत्तरकालमें जिस पक्षमें हेत्वाभास प्रकाशित होगा तब तक दोष हेतु वैसा ही हेत्वाभास द्वारा दुष्ट होगा। यदि वादी प्रतिवादी अथवा मध्यस्थ किसी पक्षमें हेत्वाभास उद्भावन न करे तो उस समय हेतुका दुष्टत्व व्यवहार नहीं होगा।

असिद्ध—साध्यकी तरह हेतु यदि पक्षमें असिद्ध या अनिश्चित हो, तो उसे असिद्ध कहते हैं। यथा—छाया द्रव्य गति होनेके कारण यहां पर छाया पक्ष है और द्रव्यत्वसाध्य गति हेतु है। अर्थात् यहां पर गतिको हेतु करके छायाका द्रव्यत्व सिद्ध किया गया है। किन्तु नैयायिकोंके मतसे छायामें द्रव्यभाव (द्रव्यत्व) जैसा असिद्ध है वैसा ही गतिमत्त्व भी असिद्ध या अनिश्चित है, अतः इस प्रकार हेतुका नाम असिद्ध या साध्यसम है।

कालातीत या बाधित पक्षमें साध्यसत्ताका काल अतीत होनेसे पक्षमें साध्यसाधनके लिये हेतुको कालातीत कहते हैं। जिसका एक देश निश्चयात्मके अतीत होने पर अभिहित होता है, उसी हेतुका नाम कालातीत है।

छल—वक्ता जिस अर्थतात्पर्यसे जिस शब्दका प्रयोग करता है उस शब्दका वैसा अर्थ ग्रहण न कर तद्विपरीत अर्थकी कल्पना करते हुए मिथ्या दोषारोप करनेको छल कहते हैं। वादिवाक्यको अन्यार्थकल्पना अर्थात् वक्ताके अभिप्रायसे अन्यार्थ या तात्पर्यकी कल्पना कर वादिवाक्यके प्रत्याख्यानको छल कहते हैं। यथा—मैं हरिका प्रसाद खाता हूं। यहां पर हरि शब्दका विष्णुरूप तात्पर्य न ग्रहण कर वानररूप अर्थकी कल्पना करके उसका तिरस्कार करना, छल है। यह छल तीन प्रकारका है, वाक्छल, सामान्य छल, उपचार छल।

अन्यार्थ शब्द प्रयोग करनेसे वादीके अभिप्रेतार्थसे भिन्न अर्थकी कल्पना करके वादिवाक्य प्रत्याख्यानको वाक्छल कहते हैं। यथा—समागत व्यक्ति नवकम्बलवाला', यह वादिवाक्य सुन कर प्रतिवादी कहता है, इसके एक कम्बल है, नौ कम्बल कहां हैं? यही प्रतिवादीका वाक्य वाक्छल है। नवकम्बल शब्दसे नूतनकम्बल और ९ कम्बल ये दो अर्थ हो सकते हैं, किन्तु वादीने नवशब्दका 'नूतन' ऐसा अर्थ लगाया है, पर प्रतिवादीने उस अर्थका परित्याग कर ९ संख्या ऐसा अर्थ किया है। यहां पर प्रतिवादीने जो वादीके वाक्यका दूसरा अर्थ लगाया वही वाक्छल है।

सम्भवपर सामान्यार्थ अर्थाभिप्रायसे अभिहित वादिवाक्यके असम्भव अर्थकी कल्पना करके सामान्यधर्मका कदाचित् अतिक्रम निबन्धन वादिवाक्यप्रत्याख्यानको सामान्य छल कहते हैं। यथा—वादीने कहा 'ब्राह्मण विद्वान् होते हैं।' इस पर प्रतिवादी बोला ब्राह्मण यदि विद्वान् हों तो ब्राह्मण शिशु भी ब्राह्मण होनेके कारण विद्वान् हो सकते हैं किन्तु ऐसा नहीं होता, सुतरां तुम्हारी बात मिथ्या है।

यहां देखना चाहिये कि वादीका अभिप्राय क्या था, उसका अभिप्राय था कि सामान्यतः ब्राह्मणमें विद्या सम्भवपर है। प्रतिवादीका कहना है, ब्राह्मण होनेसे ही विद्वान् होगा वादिवाक्यके ऐसे असम्भूत अर्थकी कल्पना कर विद्वान् शिशु भी ब्राह्मण होते हैं, अतएव ब्राह्मणत्वरूप सामान्यधर्म विद्याका अतिक्रम करता है, इस कारण ब्राह्मणका विद्वान् होना असम्भव है, अतएव इस वाक्यमें प्रतिवादीने मिथ्यारोप किया है, सुतरां प्रतिवादीका यह वाक्य यहां पर सामान्य छल हुआ।

शब्दके वाचक और लाक्षणिक भेदसे अर्थ दो प्रकार का है। इनमेंसे एकतात्पर्याभिप्रायसे वादीके शब्दप्रयोग करने पर अपरार्थकी कल्पना कर वादिवाक्यके प्रत्याख्यानको उपचार छल कहते हैं। जैसे—वादीने कहा, 'मेरा मित्र गङ्गामें वास करता है' इस पर प्रतिवादी बोला, तुम्हारा मित्र गङ्गाके किनारे रहता है, इस कारण तुम्हारी बात मिथ्या है। अब यहां गङ्गाके दो अर्थ होते हैं प्रथम वाच्यार्थ गङ्गाजल और द्वितीय गङ्गातीर। वादीने लक्ष्यार्थाभिप्रायसे वाक्यका प्रयोग

किया है। शब्दार्थ ग्रहण कर प्रतिवादीने उसका प्रत्याख्यान किया है।

जहां शब्दके शक्तिभेद वा लक्षणभेदसे शब्दार्थ अनेक प्रकार होंगे, वहां वाक्छल और जहां शक्तिलक्षणभेदसे शब्दार्थ अनेक प्रकार होंगे वहां उपचारच्छल होगा। वाक्छल और उपचारछलमें केवल इतना ही प्रभेद है।

जाति—व्याप्तिनिरपेक्ष किसी साधर्म्य वा वैधर्म्य द्वारा परपक्ष खण्डनको जाति कहते हैं। इस जातिका दूसरा नाम स्वव्याघातक उत्तर वा असदुत्तर भी है। असदुत्तरको अर्थात् वादिकर्त्तृक संस्थापित मत दूषणमें असमर्थ अथवा निजमतका हानिजनक जो उत्तर है उसे जाति कहते हैं। यह जाति २४ प्रकारको है। यथा—साधर्म्यसम, वैधर्म्यसम, उत्कर्षसम, अपकर्षसम, वर्ण्यसम, अवर्ण्यसम, विकल्पसम, साध्यसम, प्राप्तिसम, अप्राप्तिसम, प्रसङ्गसम, प्रतिदृष्टान्तसम, अनुत्पत्तिसम, संशयसम, प्रकरणसम, अहेतुसम, अर्थापत्तिसम, अविशेषसम, उपपत्तिसम, उपलब्धिसम, अनुपलब्धिसम, नित्यसम, अनित्यसम और कार्यसम।

१। साधर्म्यसम—व्याप्तिनिरपेक्ष स्थापनाहेतुको वस्तुका साधर्म्यमात्र ग्रहण कर स्थापनार्थ विपरीतार्थके आपादान वा प्रसञ्जनको साधर्म्यसम कहते हैं। यथा-घटवत्, प्रयत्ननिष्पन्न होनेके कारण शब्द अनित्य है। इस पर प्रतिवादीने कहा, यदि घटका धर्म प्रयत्न निष्पन्नत्व होनेसे शब्द अनित्य हो, तो आकाशधर्म स्पर्शशून्यत्व भी शब्दमें है, इस कारण शब्द भी नित्य हो सकता है, यह प्रतिवादि-दत्त आपादन ही जाति है। इस प्रकार सभी जगह जाति होगी। वादिवाक्यका सादृश्य ग्रहण कर वादिवाक्य खण्डनमें उद्यत होनेके कारण वादिपक्षखण्डन द्वारा निज पक्ष भी खण्डित होता है, सुतरां जात्युत्तरको स्वव्याघातक उत्तर कहते हैं।

२। वैधर्म्यसम—व्याप्तिनिरपेक्ष वैधर्म्यमात्र ग्रहण कर प्रत्यवस्थानको वैधर्म्यसम कहते हैं। यथा—जो जो अनित्य नहीं है, वह प्रयत्न निष्पन्न नहीं है, जैसे, आकाश। शब्द प्रयत्ननिष्पन्न है, सुतरां शब्द अनित्य है। इस पर प्रतिवादीने कहा, 'यदि नित्य आकाशमें वैधर्म्य प्रयत्ननिष्पन्नत्व होनेके कारण शब्द अनित्य हो, तो अनित्य घटमें धर्म्य स्पर्शशून्यत्व होनेके कारण शब्द नित्य होगा। प्रयत्न निष्पन्नपदार्थ सावयव होता है। यथा—घट, शब्द सावयव नहीं है, अतएव घटवत् अनित्य नहीं है।

३। उत्कर्षसम—दृष्टान्तसाधर्म्यमात्र ग्रहण कर पक्षमें साध्येतर दृष्टान्तधर्मके आपादनको उत्कर्षसम कहते हैं। यथा—यदि घटधर्म प्रयत्न निष्पन्न होनेके कारण शब्द घटवत् अनित्य हो, तो घटवत् रूपवान् होगा।

४। अपकर्षसम—दृष्टान्तसाधर्म्य ग्रहण कर पक्षमें पक्षवृत्ति धर्मके अभावापादनको अपकर्षसम कहते हैं। यदि घटधर्म प्रयत्न निष्पन्नत्व होनेके कारण घटवत् अनित्य हो, तो घटवत् अश्रावण (श्रवणेन्द्रियका अगोचर) होगा।

५। वर्ण्यसम—पक्षसाधर्म्य आदान कर दृष्टान्त पक्ष वृत्ति सन्दिग्ध साधारणत्वादिके आपादनको वर्ण्यसम कहते हैं।

६। अवर्ण्यसम—दृष्टान्तसाधर्म्य ग्रहण कर दृष्टान्त पक्षमें अवर्णत्वकी अर्थात् दृष्टान्तधर्म निश्चितरूपमें साधारणत्वादिके आपादनको अवर्ण्यसम कहते हैं।

७। विकल्पसम—हेतुविशिष्ट दृष्टान्तका धर्म नाना प्रकार होनेके कारण तत्साधर्म्ययुक्त पक्षमें नाना धर्मके आपादनको विकल्पसम कहते हैं।

८। साध्यसम—पक्ष और दृष्टान्तका साधर्म्य ग्रहण कर लिङ्गविशिष्ट पक्षकी तरह दृष्टान्तके साधनीयाध-आपादनको साध्यसम कहते हैं।

इस प्रकार और सभीके लक्षण और उदाहरण लिखे हैं, विस्तारके भयसे तथा ये सब लक्षण दुर्बोध्य होंगे यह सोच कर उनका विवरण नहीं लिखा गया।

निग्रहस्थान—प्रतिज्ञात विषयमें प्रतिवादीके दोष दान करने पर उस दोषके उद्धारमें अशक्त हो प्रतिज्ञातविषयमें परित्यागादिरूप पराजयका जो कारण है उसीका नाम निग्रहस्थान है। अर्थात् जिसके द्वारा निग्रह हुआ करता है उसे निग्रहस्थान कहते हैं। प्रकृतार्थविचारोपयोगी ज्ञानका विपरीत ज्ञान तथा विचार

विषयका अज्ञानमूलक ही सारी निग्रहीत हुआ करता है, इस कारण तादृशविप्रतिपत्ति (विपरीत ज्ञान) अप्रतिपत्ति अज्ञान द्वारा सभी निग्रहस्थानको अनुसरण करना होगा। यही कारण है कि गोतमने विप्रतिपत्ति और अप्रतिपत्तिको निग्रहस्थान बतलाया है। यह निग्रहस्थान २२ प्रकारका है। यथा प्रतिज्ञाहानि प्रतिज्ञाविरोध प्रतिज्ञासंन्यास हेत्वन्तर, अर्थान्तर, निरर्थक, अविज्ञातार्थ, अपार्थक, अप्राप्तकाल न्यून, अधिक, पुनरुक्त, अननुभाषण अज्ञान, अप्रतिभा विक्षेप मतानुज्ञा, पर्यनुयोज्योपेक्षण, निरनुयोज्यानुयोग, अपसिद्धान्त और हेत्वाभास। सामान्य प्रकारसे बोध करानेके लिये दो एक विषय दिये जाते हैं।

प्रतिज्ञाहानि—स्वदृष्टान्तके प्रति दृष्टान्तधर्म स्वीकार को प्रतिज्ञाहानि कहते हैं। यथा—घटवत् इन्द्रिय ग्राह्य होनेके कारण शब्द अनित्य है। इस स्थापना पर प्रतिवादीने कहा, कि नित्य द्रव्यत्वादि इन्द्रियग्राह्य होनेके कारण इन्द्रियग्राह्यत्व अनित्य साधक नहीं हो सकता। इस प्रकार दोषारोप करने पर वादीने कहा, तब तो द्रव्यत्वादि जातिवत् घट भी नित्य होगा।

प्रतिज्ञान्तर—प्रतिज्ञात विषयका प्रतिषेध करने से अन्यधर्म द्वारा प्रतिज्ञातार्थके कथनको प्रतिज्ञान्तर कहते हैं। यथा—इन्द्रियग्राह्य होनेसे घटवत् शब्द अनित्य है। इस स्थापना पर इन्द्रियग्राह्य द्रव्यत्वादि नित्य होनेसे इन्द्रिय ग्राह्यत्व भी अनित्यत्वसाधक नहीं हो सकता, प्रतिवादीने इस प्रकार दोषारोप किया। इस पर वादीने कहा, द्रव्यत्वादि बहुनिष्ठ है। किन्तु घट और शब्द बहुनिष्ठ नहीं है। अतएव जातिके साथ एकरूप नहीं होनेसे घटवत् शब्द अनित्य होगा, इत्यादि।

प्रतिज्ञाविरोध—प्रतिज्ञा और हेतुके विरोधको प्रतिज्ञाविरोध कहते हैं। यथा—घटादिभिन्न रूपादिगुण व्यतिरेकमें घटादिको उपलब्धि नहीं होती। रूपादिगुण-व्यतिरेकमें घटादिकी अनुपलब्धि होती है। घटादिभिन्न रूपादिगुण भिन्नताका अनुमापक न हो कर प्रतिषेधक होता है। इस कारण प्रतिज्ञा और हेतु परस्पर विरुद्ध है।

षोडश पदार्थोंके लक्षण लिखे गये। इन सब पदार्थोंके तत्त्वज्ञान होनेसे आत्मतत्त्वज्ञान अपवर्ग होता है। आत्मा जो शरीरादिसे पृथग्भूत है वह अहंरूपसे प्रतीयमान होता है। सुतरां शरीरादिमें आत्मत्वबुद्धिरूप मिथ्याज्ञान फिर उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार राग और द्वेषका कारणस्वरूप उस मिथ्याज्ञानके निवृत्त होने पर राग और द्वेषकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि राग और द्वेष ही निवृत्त हुआ, तो उनका कार्यस्वरूप धर्म और अधर्म। प्रवृत्तिकी पुनः बार उत्पत्तिकी सम्भावना क्या? फिर जब धर्म और अधर्म ही जन्मप्रवाहके मूलीभूत हुआ है, तब धर्माधर्मके निवृत्त होने पर जन्मादि निवृत्त होगा इसमें और आश्चर्य ही क्या? सुख और दुःखके आयतन स्वरूप शरीरादिके अभावमें तत्त्वज्ञानीके मरनेके बाद फिर सुख या दुःख कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। सुख और दुःख एक ही समयमें निवृत्त हो जाता है उसी दुःखनिवृत्ति को मुक्ति कहते हैं।

प्रमाण और प्रमेयका विषय लिखा जाता है। प्रमाण द्वारा सर्व पदार्थ निरूपित होता।

गोतमने षोडश पदार्थोंके विषयकी वर्णना कर परीक्षाका विषय कहा है। संक्षेपमें इसके विषयमें दो चार बात कह देना आवश्यक है। न्यायदर्शनमें अनेक पदार्थोंकी परीक्षाका विषय लिखा गया है। किसी विषयको स्वीकार करनेमें जो युक्तियां उपन्यास किया जाता है, उसे उसकी परीक्षा कहते हैं। भिन्न भिन्न विषयका सन्देह होता है उससे तत्त्वनिर्धारणके लिये परीक्षा हुआ करती है। असन्दिग्ध विषयकी परीक्षा नहीं होती। प्रमाणादिके किसी किसी अंशमें जो संशय है वह अति संक्षेपमें लिखा जायगा।

चार्वाकोंने एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण माना है, अनुमानादि सभी जगह सत्य नहीं होता, इस कारण उसे प्रमाण नहीं माना है। यथा मैत्रोपनिषद्‌में दृष्टि बाधक अनुमान प्रमाण नहीं हो सकता, सुतरां अनुमान भी प्रमाण नहीं है। क्योंकि अनुमान विषयमें कभी सत्य कभी मिथ्या और कभी परस्पर विभिन्नमत होनेसे अनुमानोंकी प्रामाण्यक्षय हुआ करता है। इसमें न्यायदर्शनका अभिप्राय यह है, कि प्रमाण ही अनुमान है। सामान्यतः मैत्रोपनि देख कर दृष्टिबाधक अनुमान

प्रमाण नहीं है, मेघोन्नति विशेष दर्शन ही वृष्टिसाधक अनुमान प्रमाण है। अतएव सामान्य मेघोन्नति देख कर वृष्टिकी अनुमिति मिथ्या हुई। अनुमितिके अयोग्य स्थानमें जो अनुमिति की गई है वह अनुमाताका दोष है, अनुमानका कोई दोष नहीं। जिस प्रकार साधन प्रकृति विषयमें अनुमितिका हेतु है, यदि उसी प्रकार साधन द्वारा अनुमिति मिथ्या हो, तो अनुमानका अप्रामाण्य कहा जा सकता है। भाविवृष्टि-अनुमानविशेषमें मेघोन्नति ही हेतु है, सामान्य मेघोन्नति हेतु नहीं। सुतरां सामान्य मेघोन्नतिदर्शनजात अनुमितिके मिथ्या होने पर भी उससे अनुमानका अप्रामाण्य नहीं हो सकता।

गौतमने अनुमानप्रामाण्यके सम्बन्धमें प्रतिकूल तर्क-मात्रका निरास किया है। गौतमके परवर्ती नैयायिकों-ने अनुमानप्रामाण्यके सम्बन्धमें अनुकूल तर्क भी दिख-लाया है। विस्तार हो जानेके भयसे वे सब मत सामान्य भावमें दिये गए हैं।

जीवमात्र ही भविष्यत्सुखलाभके लिए नाना प्रकार-की उपायका अवलम्बन किया करता है। मैं देखता हूं और सुनता हूं इत्यादि अनुभव तथा श्रवणयोग्य विषय सुननेके लिए एवं दृश्यविषय देखनेके लिए यत्न किया करता हूं। किन्तु वधिर मनुष्य सुननेके लिए और अन्ध मनुष्य देखनेके लिए प्रयत्न नहीं करता। इसका कारण यह है, कि चिन्ता करनेसे सब किसीको एक स्वरसे स्वीकार करना होगा कि वधिरके श्रवणेन्द्रिय और अन्धके चक्षुरिन्द्रिय नहीं हैं। इस कारण वह अपने-को अयोग्य समझ कर देखने वा सुननेका यत्न नहीं करता। अतएव यह स्वीकार करना होगा कि वधिर और अन्ध अपनी इन्द्रियका अभाव जानता है। अभी देखना चाहिए कि निज श्रवणेन्द्रिय वा चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाणका अगोचर होनेके कारण उसका बोध प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हो सकता। 'अतएव मेरे चक्षु हैं' इस ज्ञानके प्रति अनुमानको ही प्रमाण स्वीकार करना होगा। पीछे नव्यनैयायिकोंने इत्यादि रूपसे बहुतर युक्ति दी है।

वैशेषिकके कट्टेशी कतिपय पण्डितोंका कहना है कि उपमान और शब्द स्वतन्त्र प्रमाण नहीं हैं, अनुमान प्रमाणके अन्तर्गत है। जिस प्रकार धूमज्ञानवशतः पर्वत पर वह्निका और गोसादृश्य ज्ञानवशतः जन्तुविशेषका अनुमान हुआ करता है, उसी प्रकार उपमान अनुमानसे भिन्न प्रमाण नहीं है।

जो शब्दका स्वतन्त्र प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते, वे कहते हैं, कि 'पद्म अति सुन्दर है' ऐसे स्थान पर पहले पद्म और सुन्दर ये दो शब्द श्रवण द्वारा पद्म और सौन्दर्य-का स्मरण होता है। जिस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाणादि द्वारा अप्रत्यक्ष पर्वतमध्यस्थ वह्निकी अनुमिति होती है, उसी प्रकार चैत्र जाता है इत्यादि प्रत्यक्ष शब्द द्वारा अप्रत्यक्ष चैत्रगमनादिकी अनुमिति हुआ करती है। जिस प्रकार अनुमितिकी जगह धूमादि हेतुके साथ वह्निआदि साध्यका नियतसम्बन्ध है, उसी प्रकार चैत्रादिपदके साथ चैत्रादि पदार्थका भी नियतसम्बन्ध है। पद और पदार्थका नियतसम्बन्ध स्वीकार नहीं करने पर चैत्रपद द्वारा जिस प्रकार चैत्रका बोध होता है, उसी प्रकार चैत्र भिन्न अन्य वस्तुका भी बोध हो सकता है। अतएव पद और पदार्थका नियतसंबन्ध स्वीकार करना होगा। सुतरां प्रामाण्य सम्बन्धमें अनु-मान शब्दका कोई पार्थक्य नहीं है।

इस विषयमें गौतमका मत इस प्रकार है—उप-मान और शब्द अनुमान प्रमाणके अन्तर्गत नहीं हो सकता, कारण सामान्यतः अनुमिति हेतु और साध्यका व्याप्तिज्ञान सापेक्ष है अर्थात् जहां हेतुसाध्यकी व्याप्ति मालूम है, वहीं पर अनुमिति हुआ करती है, जहां मालूम नहीं है, वहां साध्यकी अनुमिति नहीं होती। उपमिति वा शब्दजन्यबोध व्याप्तिज्ञान व्यतिरेकमें भी हुआ करता है। उपमितिकी जगह पदार्थका सादृश्य ज्ञान-मात्र आवश्यक है, व्याप्तिज्ञानकी आवश्यकता नहीं।

यहां आशङ्का हो सकती है कि यदि केवल गो-सादृश्य ज्ञान ही गवय नामधारित्वका कारण हो, तो महिषादि-में भी गवय नामधारित्वका ज्ञान हो सकता है। यदि कहा जाय, कि सामान्यतः गोसादृश्य महिषमें रहने पर भी विलक्षण गो-सादृश्य महिषमें नहीं होनेके कारण

शेषका ज्ञानव्यापार नहीं होता। सादृश्य शब्द द्वारा विषयका संदेह ही मनका अभिप्रेत मानना होगा। विविध उपमान द्वारा पहले अज्ञात समय पदार्थ को जानकर उसकी समीक्षा बोध होता है।

वह्नि और धूमादिकी तरह घटादि पद और पदार्थ का कोई स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं है, अतएव शब्द अनुमान प्रमाणके अन्तर्गत नहीं हो सकता। न्यायभाष्यमें भी ये सब विषय विशेषरूपसे आलोचित और युक्तिद्वारा समाधान वर्णित हुए हैं।

कोई कोई कहते हैं कि प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुमानके अन्तर्गत स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है, वह मतिमत खण्डित हुआ है।

कोई कोई तो अर्थापत्ति सम्भव अभाव और ऐतिह्य ये ४ प्रकारका अतिरिक्त प्रमाण स्वीकार करते हैं। किन्तु गौतमने इन सबका खण्डन कर अर्थापत्ति, अभाव और सम्भवको अनुमान प्रमाणके अन्तर्गत और ऐतिह्यको शब्दप्रमाणके मध्य निविष्ट किया है।

प्रमेयपरीक्षा—कोई कोई कहते हैं, कि चक्षुरादि इन्द्रिय ही समस्त विषयको प्रकाश करती है, अतएव चक्षुरादि इन्द्रिय ही आत्मा कहा जाती है। फिर किसी का कहना है, कि यह शरीर प्रत्यक्ष कर्त्ता है, कोई कोई मनको ही कर्त्ता बतलाते हैं।

इस पर नैयायिकोंका सिद्धान्त इस प्रकार है—चक्षुरादि इन्द्रियको आत्मा नहीं कह सकते, क्योंकि चक्षुरादि एक एक इन्द्रिय द्वारा सभी विषयोंका प्रत्यक्ष नहीं होता, एक एक इन्द्रिय द्वारा एक एक विषयका प्रत्यक्ष हुआ करता है। अब तुम्हें यह कहना होगा कि चक्षुरादि इन्द्रिय भिन्न होनेसे रूपस्पर्शादिका प्रत्यक्षकर्त्ता भी भिन्न भिन्न है, किन्तु हमने सुवर्णका रूप और स्पर्श दोनोंको ही प्रत्यक्ष किया है और हमने पहले देखा था कि इन सबका स्पर्श किया है, इत्यादि सार्वलौकिक प्रतीति द्वारा रूप और स्पर्शका एक ही प्रत्यक्ष हुआ करता है।

तिन्तिड़ी (इमली) देखने वा उसका विषय सोचने से जिह्वामें पानी भर आता है, यह लोकसिद्ध है। अभी देखना चाहिये, कि यदि इन्द्रिय आत्मा होते, तो तिन्तिड़ी दर्शनसे चक्षुका रसानुभव नहीं था। इस कारण रसकी स्मृति नहीं हो सकती और चक्षुका धर्म तिन्तिड़ी दर्शन जिह्वाका उद्बोधक नहीं हो सकता, इस कारण स्मरण नहीं हो सकता।

अचेतन दधि और गोमय प्रयोगसे वृश्चिक उत्पन्न हुआ करता है और कदाचित् मक्षिकादि मलादि-जात जन्तुआदिको देख कर डरके मारे भाग जाते हैं। अब देखना चाहिये कि उस वृश्चिकके उपादान गोमयादि अचेतन हैं और उपकारभूत होनेके कारण उपादान कारणसे उपकारका प्रमाण अवश्य है। सुतरां भय-हेतु स्मरण नहीं हो सकता। नैयायिकोंका मत है कि पूर्वजन्मके संस्कार द्वारा आत्माका इसजन्ममें स्मरण हो सकता है।

मनको भी आत्मा नहीं कह सकते, कारण मन सुखदुःखादि का भी करण है, करण कर्त्तासे भिन्न होता है, इस कारण मन कर्त्ता नहीं हो सकता। चक्षुरादि ज्ञान करणसापेक्ष होने पर भी सुख दुःखादिज्ञान करण सापेक्ष नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि सामान्यतः ज्ञानमात्र ही करणसापेक्ष है। यह देखा जाता है, इस कारण सुख दुःखादिका ज्ञान भी जो करण-सापेक्ष है वह हम लोग अनुमान कर सकते हैं और ज्ञानद्वयका अयौगपद्य कारणसे मनको अति सूक्ष्म हुआ स्वीकार करना होगा। सुतरां अतिसूक्ष्म मन आत्मा नहीं हो सकता। आत्मा नित्य है वा अनित्य, इस विषय पर कुछ विचार करना आवश्यक है।

लोकारवत्ता मनुष्यकी प्रवृत्तिके प्रति राग (इष्ट-साधनता ज्ञान) कारण है, राग नहीं रहने पर वह किसी विषयमें प्रवृत्त नहीं होता। जातमात्र बालककी स्तन्यपानमें और मर्मसे अर्धनिःसृत बाहर निकले आत्मा अतस्थानमें प्रवृत्ति क्यों होती है? इस पर नास्तिकोंका कहना है कि जिस प्रकार स्वभावतः ही बिना कारणके पद्मादिका विकाश और संकोच हुआ करता है, उसी प्रकार स्वभावतः ही उस प्रवृत्तिका उदय होता है। इसके उत्तरमें नैयायिक कहते हैं, कि कार्यमात्र ही कारणसापेक्ष है। इसीसे पद्मादिका विकाश और संकोच स्वभावतः बिना कारणके नहीं होता, अतएव यह

प्रभृतिका विकाशादिवत् स्वभावतः प्रवृत्त होगा', ऐसा नहीं कह सकते। किन्तु प्रवृत्ति-कारण इष्टसाधनताज्ञान इहजन्ममें असम्भव है, क्योंकि वानरादि शाखावलम्बनादि इष्टसाधन इहजन्ममें प्रत्यक्ष नहीं करते। इस जन्ममें प्रत्यक्ष नहीं करनेसे अन्य सभी अनुभवज्ञान प्रत्यक्ष-मूलक होनेके कारण इष्टसाधनताका प्रत्यक्षभिन्न अनुभवज्ञान भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, अतएव स्मरण स्वीकार करना होगा। किन्तु स्मरण पूर्वानुभव-व्यतिरेकमें नहीं होता, इस कारण आत्माके पहले यह विषय अनुभव था, यह अवश्य स्वीकार करना होगा। वानरशिशु आदिके शाखावलम्बनमें इष्टसाधनताका अनुभवज्ञान ऐहिक असम्भव होनेसे इस जन्मके पहले भी आत्मा थी और उस समय उसका यह विषय अनुभव था। उस अनुभवजन्य संस्कारसे इहजन्ममें उस विषयमें स्मरण हो कर प्रवृत्ति हुई है, यह बात स्वीकार करना आवश्यक है। इस प्रकार पूर्वजन्मको प्राथमिक प्रवृत्तिके विषय पर विचार करनेसे उसके पूर्वकालमें भी आत्मा थी इत्यादि रूपमें तत्पूर्ववर्त्ती सभी जन्मके पहले आत्मा भी वर्त्तमान थी, यह मानना होगा। इससे यह मालूम हुआ कि किसी भी जन्मके समयमें उत्पन्न नहीं होने पर भी अवश्य आत्माको नित्य स्वीकार करना होगा।

आत्माका प्रथम जन्मस्मरण किस प्रकार होता है, नास्तिकोंके ऐसे प्रश्न पर नैयायिक लोग कहते हैं कि आत्माका जन्म प्रवाह अनादि है, सुतरां प्रथम जन्म नहीं हो सकता। विस्तार हो जानेके भयसे इस विषय पर और कुछ नहीं लिखा गया।

शरीर-परीक्षा—शरीर-सम्बन्धमें अनेक मतभेद हैं। कोई कोई कहते हैं कि पञ्चभूतयोगसे शरीर उत्पन्न होता है, इस कारण शरीर पाञ्चभौतिक है। फिर किसीका कहना है कि आकाशयोग शरीरमें रहने पर भी आकाश उपादान कारण नहीं है, अतएव शरीर चातुर्भौतिक है। फिर कोई कहते हैं कि वायुयोग रहने पर भी शरीरके बहिर्देश और अभ्यन्तरमें सदागमनशील वायु उपादान कारण नहीं हो सकती। इस पर गोतम कहते हैं, कि शरीर पार्थिव है। जलादि शरीरमें उपष्टम्भमात्र अर्थात् गुरुयोगो संयोगमात्र है।

इन्द्रिय परीक्षा—इन्द्रिय सम्बन्धमें भी मतभेद है। कोई कोई कहते हैं कि अधिष्ठान गोलकादि इन्द्रिय-विषयके साथ सन्निकर्ष नहीं होने पर इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता, सन्निकर्ष व्यतिरेकमें प्रत्यक्ष स्वीकार करनेसे चक्षुःसन्निहित विषयकी तरह असन्निहित विषय-का भी प्रत्यक्ष हो सकता है। अतएव इन्द्रियके साथ विषयके सन्निकर्ष प्रत्यक्षको अवश्य कारण स्वीकार करना होगा। अब देखो, कि अधिष्ठान गोलकादिको इन्द्रिय माननेसे गोलकके साथ विषयका सन्निकर्ष नहीं होता, अतएव ऐसा होनेसे घटादि विषयका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। अतः स्वीकार करना होगा कि गोल-कादि अधिष्ठानसे इन्द्रिय भिन्न है, किन्तु गोलकादिसे इन्द्रिय भिन्न होने पर भी इसके उपादानादि क्या हैं? इस पर गौतमने कहा है कि इन्द्रियगण भौतिक अर्थात् घ्राण पार्थिव, रसना जलीय, चक्षु तैजस, त्वक् वायवीय और श्रोत्र आकाशीय है।

इन्द्रियकी नानात्व-परीक्षा—कोई कोई कहते हैं कि सर्वशरीरव्यापी एक त्वगिन्द्रिय स्थानभेदसे नाना-रूप विषय ग्रहण किया करती है। इसके उत्तरमें नैया-यिक लोग कहते हैं कि एक त्वक्मात्र इन्द्रिय नहीं हो सकता, कारण एक त्वक्के इन्द्रिय होनेसे हस्तादि द्वारा स्पर्श प्रत्यक्षकालमें रूपादिका भी प्रत्यक्ष हो सकता है, चक्षुरादिस्थित त्वक् ही रूपादि ग्रहण करेगा, अन्य त्वक् नहीं।

बुद्धिपरीक्षा—शरीरादि मूर्त्तसे ज्ञानवान् अतिरिक्त है; किन्तु कोई कोई कहते हैं कि आत्मा चेतन है, ज्ञानवान् नहीं, महत्तत्त्व चित्तादि नामक बुद्धिरूप अन्तः-करण ही ज्ञानवान् है। सांख्यके मतसे चैतन्य और ज्ञान विभिन्न हैं। उन्होंने इस विषयमें अनुभव प्रमाण दिख-लाया है, यथा 'हम लोगोंके ज्ञानका विषय है' मैं जानता हूं यह कहनेसे क्या जानते हो, ऐसी एक आकाङ्क्षा रहती है। विषयव्यतिरेकमें कोई ज्ञान नहीं होता, किन्तु उसके चैतन्य हुआ है, ऐसा कहनेसे किस विषयमें चैतन्य हुआ है यह आकाङ्क्षा नहीं रहती। पहले अचेतन

(अप्रबोध) हुआ था, अभी चैतन्य हुआ है, ऐसा बोध होता है। चैतन्यका कोई भी विषय नहीं है। अतएव सविकल्प और निर्विकल्पक चैतन्य एक नहीं हो सकता। ज्ञानके मूल शक्ति चैतन्य है, वह आत्मा । धर्म है, ज्ञानादि बुद्धिका धर्म है, ज्ञान बुद्धिका धर्म होने पर भी बुद्धिसे अतिरिक्त नहीं है। क्योंकि बुद्धि व्यतिरेकमें ज्ञानकी कदापि उपलब्धि नहीं होती। विषयदेशमें गमन कर बुद्धि जो घटपटादिका आकार धारण कर ज्ञान नामसे पुकारी जाती है। जिसे पहले जाननेकी इच्छा की थी, उसे अभी जानता हूं इत्यादि प्रत्यभिज्ञान और स्मरण आदि द्वारा बुद्धिका नित्यत्व सिद्ध हुआ है एवं चेतन अपरिणामी और विभु है, आत्मामें घटादि विषय प्रतिबिम्बित नहीं हो सकता इस कारण घटादि ज्ञान भी आत्माका नहीं हो सकता। इस पर नैयायिकोंका अभिमत है कि प्रत्यभिज्ञान बुद्धि किया करती है या आत्मा, यह सन्देह है। अतएव प्रत्यभिज्ञान द्वारा बुद्धिका नित्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता। सामान्यको नित्यता उन लोगोंको अभिप्रेत नहीं है। चैतन्य और ज्ञान यह विभिन्न नहीं है। हमारे चैतन्य नहीं था, अभी चैतन्य हुआ है, इत्यादि सार्वलौकिक व्यवहार द्वारा चैतन्य का विषय स्वीकार करना होगा। यदि कहा जाय 'इस विषयमें मेरे चैतन्य न था' इसका अर्थ यह है कि इस विषयमें मेरा ध्यान नहीं था, पर सुषुप्ति भी मनःसंयोग होता है, इस कारण उस समय चैतन्य नहीं रहता। पुनर्वार मनके व्यापारिक अवस्थामें चाहिये भी ज्ञान हो सकता है। इस कारण मन व्यापारिक अवस्थाको प्राप्त हुआ है, यही तात्पर्य है अभी उसके चैतन्य हुआ है इत्यादि व्यवहार होता है। चैतन्यज्ञानसे अतिरिक्त होने पर भी मन संयोग अति रिक्त नहीं है। ज्ञानानन्दमें समान योग है अतः चैतन्य भी ज्ञान है। यह एक पदार्थका धर्म नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते। बुद्धि विषयके ज्ञानमात्र है लेकिन उपलब्धि नहीं करती। कारण उपलब्धि ज्ञानसे विभिन्न नहीं है। अतएव यह भी अयुक्त है। बुद्धिमें ज्ञान स्वीकार करनेसे उपलब्धि भी स्वीकार करनी पड़ेगी।

चेतन अपरिणामी और विभु आत्मामें स्वीकार नहीं करने पर भी बुद्धि अपने में ज्ञानादिका प्रतिबिम्ब स्वीकार किया है, अतएव वह आत्माको प्रतिबिम्ब नहीं कर सकता, ऐसा भी तुम नहीं कह सकते। यदि कहो कि बुद्धि और ज्ञानादि विभिन्न नहीं हैं, तो इस पर भी विचार कर देखनेसे मालूम पड़ेगा कि घटपटादि निश्चित विषय ज्ञानका भी रहना आवश्यक है। किन्तु निश्चित विषयज्ञान कदापि नहीं होता और निश्चित ज्ञानको सत्ता अनुभूत नहीं होती अब एक ज्ञानसमयमें अधिक ज्ञानाधार बुद्धिका नाश स्वीकार करने पर सभी ज्ञानका नाश हो सकता है। एक ज्ञान नष्ट हुआ एक ज्ञान रहा ऐसा नहीं कहा जाता। घटज्ञान और पटज्ञान एक बुद्धिसे अभिन्न होने पर घटज्ञान और पटज्ञान एक हो सकता है, लेकिन नैयायिकोंके मतसे ज्ञानादि गुण और आत्मतत्त्व परस्पर विभिन्न हैं तथा घटज्ञान और पटादिज्ञान परस्पर विभिन्न हैं, सुतरां पूर्वोक्त आपत्ति नहीं हो सकती।

मन सभी इन्द्रियोंके साथ एक कालमें संयुक्त नहीं हो सकता, क्रमशः विभिन्न इन्द्रियके साथ विभिन्नकालमें संयुक्त हुआ करता है और विभिन्न विषयके साथ एक कालमें इन्द्रियका सन्निकर्ष नहीं होनेसे एक कालमें विभिन्न ज्ञान नहीं होता। इस युक्ति विषयमें और भी अनेक प्रकारकी विचार-प्रणाली प्रदर्शित हुई है।

विशेष बुद्धि शब्दमें देखो।

एकमात्र त्वक् ही इन्द्रिय है ऐसा कहनेसे भी चक्षु द्वारा रूप प्रकाश कालमें स्पर्श प्रत्यक्ष हो सकता है क्योंकि चक्षुःस्थित त्वक् द्वारा स्पर्श प्रत्यक्ष होनेके कारण चक्षुका त्वक्‌को स्पर्श प्रत्यक्षका कारण कहना पड़ेगा। सुतरां वस्तुके साथ चक्षुका सन्निकर्ष होने पर रूपवत् स्पर्श प्रत्यक्ष भी हो सकता है।

एकमात्र त्वगिन्द्रियमें मनःसंयोग होनेसे सभी इन्द्रियोंके साथ मनका संयोग स्वीकार करना होगा। सुतरां उस मतसे एक कालमें सभी इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष हो सकता है। किन्तु नैयायिकोंके मतमें इन्द्रियके विभिन्न होनेके कारण अति सूक्ष्म मनके साथ एक कालमें सभी इन्द्रियोंका संयोग नहीं हो सकता, मनःसंयोगरूप

कारणके नहीं रहने पर प्रत्यक्ष भी नहीं होगा। यदि कहो, कि एक त्वक्‌के इन्द्रिय होने पर भी गोलकादि अधिष्ठानाश्रित त्वग्‌भाग जो चक्षुरादि इन्द्रिय स्वीकार करना होगा और तादृश त्वग्‌भावमें मनःसंयोग नहीं रहने पर प्रत्यक्ष नहीं होगा, तब यदि विभिन्न त्वग्‌भागको इन्द्रिय मान लिया जाय, तो प्रकारान्तरमें इन्द्रियका नानात्व ही स्वीकार किया गया, ऐसा समझना होगा।

प्राचीन न्यायका विषय एक प्रकारसे कहा गया। अब नव्य-न्यायके विषयमें दो एक बातें लिखी जाती हैं।

नव्यन्यायविषय कहनेमें पहले प्रमाणका विषय कहना आवश्यक है। गङ्गेशने गोतमसूत्रके मूल पर प्रमाण, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार प्रमाणोंका निरूपण कर चिन्तामणि प्रस्तुत की है। यही चिन्तामणि नव्य-न्यायका प्रथम है। नव्य न्याय-प्रदर्शित सभी विषयोंका उल्लेख विस्तार हो जानेके भयसे नहीं किया गया, केवल प्रमाणादिका विषय संक्षिप्त भावमें लिखा जाता है।

प्रमा वा यथार्थज्ञान—सम्वादी और विसम्वादीके भेदसे प्रमा और अप्रमा दो प्रकारकी है। यह प्रमेयान्तर्गत बुद्धिका विभाग है। इनमेंसे पूर्वानुभूत वस्तुका ज्ञान ही प्रमा है, तद्भिन्न सभी अप्रमा। इस प्रकार लक्षण जो पहले था, वह प्रमाण पदार्थके चार प्रकारके विभाग द्वारा अनुमित होता है, क्योंकि नव्य न्यायमें प्रचलित तद्वत् तत्प्रकार ज्ञान (उस पदार्थके अधिकरणमें उसी पदार्थका ज्ञान)के ज्ञानमें प्रमा इस प्रकार प्रमालक्षण होने पर स्मृति भी प्रमाके अन्तर्गत होती है। सुतरां तत्करणत्व ले कर प्रमाणको पञ्चविधत्वापत्ति होती है। मीमांसकने गोतमका इस तात्पर्यका अनुसरण करके ही अगृहीतग्राहित्व प्रमाका यह लक्षण किया है। पर हाँ, स्मृतिके करणमें तादृश प्रमाणत्व नहीं है इस कारण उसको प्रामाण्यापत्ति नहीं होती। वस्तुतः यही युक्त है, कि अगृहीतग्राहित्व ही प्रमात्व है, इस लक्षणमें धारावाहिक प्रत्यक्षादिप्रमामें अव्याप्ति दोष होता है। क्योंकि पूर्वानुभूत वस्तुको विषय करता है, इस कारण अगृहीत (अननुभूत) पदार्थग्राहित्व उसमें नहीं रहता और भ्रममें भी अति व्याप्ति दोष होता है। इसीसे उदयनाचार्यने कुसुमाञ्जलि ग्रन्थमें लिखा है, "अव्याप्तेरधिकव्याप्तेरलक्षणमपूर्वदृक्। यथार्थानुभवो मानं अनपेक्षतयेष्यते।" अपूर्वदृक् अर्थात् अगृहीतग्राहित्वरूप प्रमात्व लक्षणयुक्त नहीं होगा, क्योंकि पूर्वोक्त प्रकार अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष होता है, अतएव यथार्थानुभवत्व ही प्रमालक्षण है। करणात्मक ज्ञानमें तादृश प्रमात्व नहीं होनेके कारण प्रमाण चार प्रकारका है। उक्त कारिका द्वारा यह भी प्रतीत होता है कि अनुभव और स्मृतिके भेदसे ज्ञान दो प्रकार तथा अनुभव और भ्रम प्रमादके भेदसे दो प्रकारका है, यह प्राचीन परम्परा-अनुमोदित है, नहीं तो मीमांसकसम्मत सभी अनुभव ही यथार्थ होने पर 'यथार्थानुभवो मानं' यहां पर यथार्थपद व्यर्थ होता है। गोतमने जो प्रत्यक्षलक्षणमें अव्यभिचारी पद द्वारा यथार्थ इन्द्रियसन्निकर्षजन्य ज्ञानको प्रत्यक्ष बतलाया है वह भी प्रमाप्रत्यक्ष है, लक्षणाभिप्रायसे ऐसा कहना होगा। स्मृतिमें प्रमाके जैसा तात्त्विक व्यवहार नहीं रहनेका क्या कारण? स्मृति और तद्विशिष्ट तत्प्रकारकत्वरूप प्रमात्वविशिष्ट होता है। इस कारण उसे प्रमाके अन्तर्गत कहना उचित है। ऐसा होनेसे यथार्थ ज्ञानमात्र ही प्रमा लक्षणयुक्त होता है। यही कारण है कि परिच्छेद वा नव्य-न्यायमें 'अनधिगतन्तु ज्ञानमाश्रोच्यते प्रमा' ऐसा लक्षण प्रचलित हुआ है। अतएव यह कहना होगा कि स्मृति, समानाकारक अनुभवसापेक्ष होनेके कारण उसमें तात्त्विकका प्रमाव्यवहार नहीं है। अनुभव समानाकारक अनुभवान्तरकी अपेक्षा नहीं करता इस कारण उसे प्रमा ही तन्त्रमें व्यवहार किया है।

"मितिः सम्यक् परिच्छित्तिस्तद्वत्ता च प्रमातृता।
तदयोगव्यवच्छेदः प्रामाण्यं गौतमे मते॥"

आचार्यका कहना है कि यथार्थानुभवत्व प्रमालक्षण होने पर ईश्वरमें तादृश प्रमानुकूल कृतिमत्त्वलक्षण प्रमातृत्व नहीं रहता। क्योंकि ईश्वरज्ञान नित्य है, उसमें प्रमाणजन्यत्वरूप प्रमात्व वा प्रत्यक्षादिका अन्यतमत्वरूप यथार्थ अनुभवत्व नहीं है, सुतरां अन्यरूप प्रमालक्षणयुक्त होता है। सम्यक् परिच्छित्ति अर्थात् स्मृति भिन्न

यथार्थ ज्ञान ही प्रमा है उसका साधन ही प्रमाण तद गोतमस्त्रोक्त अर्थात् जिसे समग्र प्रमाको अपरताका नहीं रहना ही प्रामाण्य है, ऐसा गोतमका अभिप्रेत है। नहीं तो "मन्त्रायुर्वेदवच्च तत्प्रामाण्यम् आप्त-प्रामाण्यात्" इस सूत्रके आप्तप्रामाण्यपदकी सङ्गति नहीं होती, आप्त-अर्थात् यथार्थगोचर यथार्थ ज्ञानवान् पुरुषरूप वेदवक्ता ईश्वरमें प्रामाण्य नहीं रहता, क्योंकि अयथार्थ नहीं होनेसे प्रमासाधनरूप प्रमाकरणत्व भी ईश्वरमें असम्भव है। जिस प्रामाण्यको हेतु करके समस्त वेदका प्रामाण्य स्थापित होगा, ऐसा प्रामाण्य गोतमका निवृत्ति होने पर भी 'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि' यहाँ पर प्रमाण शब्द यथार्थानुभवसाधनतात्पर्यमें व्यक्त हुआ है ऐसा कहना होगा, तो भी चतुर्विध प्रमाण असङ्गत नहीं होता। तत्त्वचिन्तामणिकार गङ्गेशोपाध्यायके मत से सभी पदार्थ तत्त्वकी प्रमाणाधीन सिद्धि होती है अतएव प्रमाणतत्त्वकी विवेचना सर्वथा कर्त्तव्य है। यह सोच कर उन्होंने प्रत्यक्षादि भेदसे चार खण्ड न्यायतत्त्व चिन्तामणिकी रचना की है—'प्रमाणाधीना सर्वेषां व्यवस्थितिरतः प्रमाणतत्त्वमत्र विविच्यते' ऐसी प्रतिज्ञा करनेका अभिप्राय यह है कि यह प्रमाणतत्त्व निरूपण करता हूँ इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेसे ही मनुष्य ध्यान देंगे। इस ग्रन्थके श्रवण वा अध्ययन करनेसे सभी विषयोंकी अभिज्ञता होगी। गोतमने प्रमेय संशय आदि जो कुछ निर्देश किया है वह तत्त्व और प्रमाणके विस्तारपूर्वक ही विवेचित है। वस्तुतः उसमें उन्होंने प्रमाणेतर प्रमेय प्रमाणके माध्यमसे यह मत स्थापन की है, "अथवा येषां स्वरं प्रतिपादयन् ज्ञान वक्तव्यता निःश्रेयस सम्पद्यते।" अर्थात् इस शास्त्रके जो प्रमाणादिका तत्त्व ज्ञान उत्पन्न होता है वह परम्परा निःश्रेयसका साधन होनेके कारण इस शास्त्रके साथ मुक्तिका परम्परा सम्बन्धयोजक भाव सम्बन्ध है। अतएव जो प्रमा नहीं जानता, उसके प्रमाणसार नहीं हो सकता। फिर विशिष्ट ज्ञान विशेषणज्ञानसापेक्ष होनेसे किस प्रमाणस्वरूपका ग्रहण होना आवश्यक है उस प्रमा तत्त्वका ज्ञान स्वतः अथवा परतः नहीं हो सकता। क्योंकि प्रभाकरके मतसे ज्ञान प्रामाण्य-ज्ञान ही स्वतः होता है अर्थात् उस प्रामाण्य ज्ञानमें है कि ज्ञानका प्रमात्व (प्रामाण्य) उसी ज्ञानका विषय है। कारण ज्ञानमात्र स्वप्रकाशस्वरूप है। अतएव मीमांसकोंके मतसे "प्रतिविषयोऽत्मेव स्व' प्रामाण्यस्य विषयः।" प्रमा और प्रमाज्ञानका आश्रय तथा विषय ये सभी उसके ज्ञानके विषय हैं, यह विलक्षण रुचि है। मरारि कहना है कि ज्ञान मात्र ही अतीन्द्रिय अत एव ज्ञानोत्पत्तिके परवर्ती ही अनुमान हुआ है, यह अनुमतिरूप ज्ञाततालिङ्गक अनुमानका विषय ज्ञानका प्रामाण्य होता है। मुरारि मिश्र कहते हैं, कि ज्ञानोत्पत्तिके पीछे, "मैं यथार्थ रूपसे घट जानता हूँ" इस प्रकार जो ज्ञानका मानस अनुभव वा अनुव्यवसाय है उसीका विषय ज्ञानोंका प्रमात्व है। उन्होंने इन सब मतवादियोंका मत प्रत्यक्ष लक्षणादिमें उत्थापन करके अन्यथाके दोषोत्पन्न ज्ञानमें प्रामाण्यकी अनुपपत्ति आदि दोषोंका उल्लेख करते हुए खण्डन किया है। अनुमान यदि प्रमात्व निर्णायक हो, तो अनुमानगत प्रामाण्यके अनुमापक अनुमानान्तर तथा तद्गत प्रामाण्यके अनुमापक ज्ञानका अनुमान दिखाते हुए अनवस्थादोष लगता है। अन्त में वादियोंने इन सब दोषोंका उत्थापन कर सिद्धान्त किया है,—अब प्रकारके ज्ञानमें ही प्रामाण्य सन्देह होता और उस प्रामाण्यनिर्णयके लिये अनुमानकी अपेक्षा उसमें प्रमाण नहीं होगा, सुतरां अभ्यासोत्पन्न ज्ञानविषयरूप अनुमानसे प्रामाण्यका ज्ञान अनुभवरूप नियत सम्भव है अतएव अनवस्था दोष नहीं है। उन्होंने नाना प्रकारके मार्मिक युक्तिसे उत्थापित दोषके निराकरणपूर्वक प्रामाण्यवादमें प्रामाण्यनिर्णयका उपसंहार किया है उसमें प्राचीन न्यायके चिन्तामणि ग्रन्थ भी खतम हो जाता है, इस कारण चिन्तामणि ग्रन्थकी नव्य-न्यायमें गिनती हुई है।

इन सब सिद्धान्तोंका समर्थन करनेमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचारनिबन्धन न्यूनाधिक्यविरामविहीन टीकाएँ, अनुमान तर्कालोचनारूप ग्रन्थ अष्टादशधा टीकाएँ प्रकाशित और यथावत् भावार्थ प्रकाशित होकर नैयायिकोंके ये सब ग्रन्थ इतने दुरूह और विस्तृत हो गये हैं कि वहीं विद्वन्मण्डलीमें समस्त ग्रन्थोंके समझनेमें पैदा करना असम्भव है। इसीसे यह विषय छोड़ दिया गया।

गङ्गेशोपाध्यायने असंख्य प्रमाके लक्षण दिखलानेमें नये नये पदों का आविष्कार किया है अर्थात् अवच्छेद्यावच्छेदकभाव, प्रतियोग्यनुयोगिभाव, निरूप्यनिरूपकभाव, विषयविषयिभाव, प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव, कार्यकारणभाव और प्रकारप्रकारीभाव इन सबको विशेषरूपसे पर्यालोचना कर लक्षणसम्बन्धी विशेषणप्रयोगादिको उससे जैसा करनेमें स्वच्छन्द हो जाता है। ये सब बातें पूर्वतन ग्रन्थकारोंसे आलोचित हुई हैं, ऐसा समझमें नहीं आता। पीछे सूक्ष्मचिन्ताप्रभावसे वह ले कर एक युगान्तर उपस्थित हुआ है, ऐसा कहनेमें भी अत्युक्ति नहीं होती।

प्रत्यक्ष प्रमा—घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक् और श्रोत्र इस पञ्चविध बहिरिन्द्रियके गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्दादि और पृथिव्यादि अर्थका तथा अन्तरिन्द्रिय मनका सुखदुःखादि आत्माके साथ सम्बन्धाधीन जो भ्रमभिन्न ज्ञान है वही प्रत्यक्षप्रमा है। यह व्यवसायात्मक निर्विकल्प भेदसे दो प्रकारका है, यह अर्थ नवीन मतसिद्ध है। क्योंकि प्राचीनोंने निर्विकल्पज्ञानको कल्पना नहीं की। भाष्यकारका कहना है कि अव्यपदेश्य (शाब्दभिन्न) व्यवसायात्मक (निश्चयात्मक) अव्यभिचारी इन्द्रियसन्निकर्षजन्य जो ज्ञान है वही प्रत्यक्षप्रमा है। सूत्र और भाष्यकारके परवर्त्ती नैयायिकोंने प्रत्यक्षके जनकको इन्द्रियसन्निकर्षके लौकिक और अलौकिक भेदसे दो प्रकारमें विभक्त किया है। इनमेंसे लौकिक सन्निकर्ष छः प्रकारका है। यथा—संयोग, संयुक्त समवाय, संयुक्त समवेत समवाय, समवाय, समवेत समवाय और तद्विशेषणता।

प्रत्यक्षको अनुमिति और शङ्का निरास—व्याप्तिज्ञानकरणक ज्ञान ही अनुमिति है, जैसे धूमादिके हेतु वह्न्यादिका अनुमान। फिर एक देशमें इन्द्रियसन्निकर्षसे वृक्षादिके अपर अंशका प्रत्यक्ष किस प्रकार सम्भव है? इस पर सिद्धान्त किया गया है कि अनुमिति भिन्न प्रत्यक्ष नामक जो प्रमिति नहीं है, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि मूल वा शाखादिरूप किसी एक देशका जो इन्द्रियसन्निकर्षाधीन ज्ञान हुआ करता है, वह कभी भी अनुमितिके अन्तर्गत नहीं हो सकता। कारण उक्त ज्ञानके पहले किसी भी व्याप्तिविशिष्ट लिङ्गका ज्ञान नहीं है। अतएव विशेष गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द प्रभृतिसे एक देश नहीं है, इस कारण वे गन्धादि प्रत्यक्ष अनुमितिमें अन्तर्भूत नहीं हो सकते। अतएव प्रत्यक्षप्रमाणमें अनुमितिको शङ्का अयुक्त है, फिर वृक्षादि प्रत्यक्षकी जगह एक देशमात्रकी उपलब्धि हुआ करती है, यह भी नहीं कह सकते। कारण अवयवसे अवयव जो पृथक् है यह प्रमाण सिद्ध है, सुतरां अवयव प्रत्यक्षकालमें अवयवका भी प्रत्यक्ष क्यों नहीं होगा? चक्षुसंयोग जिस समय वृक्षके अवयवमें उत्पन्न होता है उसी समय स्वतन्त्र अवयवी जो समुदित द्रव्य है उसमें भी उत्पन्न होती है, यह स्वीकार करना होगा। सुतरां वृक्षमें इन्द्रियसन्निकर्षरूप कारणसम्बलनके अव्यवहित परक्षणमें जो वृक्षका ज्ञान होता है उसे अवश्य ही प्रत्यक्ष कारणजन्य होनेके कारण तथा व्याप्तिविशिष्ट हेतुज्ञानजन्य नहीं होनेके कारण प्रत्यक्ष कहना होगा। इस प्रकार एक देशमें सन्निकर्षवशतः समुदित वृक्षको प्रत्यक्षोपपत्ति करनेके लिए गौतमने द्वितीयाध्यायके १म आह्निकमें अवयव सिद्धिप्रकरणका आविष्कार किया है, "साध्यत्वादवयविनि सन्देहः" अर्थात् सकम्पत्वनिष्कम्पत्वादि विरुद्ध धर्मद्वयका एकत्र सत्तारूपत्तिप साध्यत्व हेतु अवयवी अवयवसे स्वतन्त्र है वा नहीं? इस प्रकार सन्देह उद्भावन और समाधान किया है, 'सर्वाग्रहणमवयव्यसिद्धेः" अर्थात् स्वतन्त्र अवयव अवयवी सिद्ध नहीं होने पर सभीको परमाणुपुञ्ज ही कहना होगा। वृक्षादि यदि परमाणुपुञ्जसे स्वतन्त्र न हो, तो परमाणुगत रूपादिका महत्त्वाभावनिबन्धन जिस प्रकार प्रत्यक्ष नहीं होता, उसी प्रकार परमाणुपुञ्ज और परमाणुसे भिन्न नहीं होनेके कारण वृक्षादिगत रूपादिकी अनुपलब्धि आपत्ति होती है। फिर अवयवीको स्वतन्त्र स्वीकार करने पर उसके महत्त्वप्रभावमें वृक्ष और वृक्षगत रूपादिकी उपलब्धि हो सकती है। फिर एक देशके धारण वा आकर्षणसे सभी वृक्षोंके धारण और आकर्षणकी उत्पत्ति होती है, जैसे दण्डादिका एक देश उत्तोलन वा आकर्षण करनेसे दूसरा देश उत्तोलित वा आकृष्ट होता है। परमाणु-पुञ्जात्मक होनेसे

एकके कारणसे दूसरेका धारण इस प्रकार नहीं होगा, तद्रूप एकदेशी परमाणुपुञ्जके कारणसे अपर परमाणुपुञ्जका धारण असम्भव होनेसे कारण एकदेश धारण और आकर्षणके द्रव्यके धारण और आकर्षणकी अनुपपत्ति होती है। फिर घटादि परमाणुमें महत्त्व नहीं होने पर उनके द्वारा रूपादिका ग्रहण भी असम्भव है। अतएव एकदेशमें चक्षुसन्निकर्ष होनेसे भी समस्त द्रव्यमें चक्षुसन्निकर्ष हुआ है, ऐसा कहा जाता है और इस सन्निकर्षसे समुदित द्रव्यकी उपलब्धि भी युक्त है।

अभी प्रश्नमें, चक्षुरादिका इन्द्रियके सन्निकर्ष सम्बन्धमें यह आपत्ति हो सकती है, क्या इन्द्रिय यथास्थानमें रह कर विषयके साथ सम्बद्ध होती है? अथवा विषयमें नहीं रह कर प्रत्यक्ष उत्पन्न करती है। चक्षु अपने स्थानमें रहते हुए अपनी रश्मि फैला कर विषयके साथ युक्त होता है यह उत्तर सङ्गत नहीं होता। कारण सूर्यकिरणकी तरह प्रत्यक्ष नहीं होनेसे कारण चक्षुको किरण है, ऐसा नहीं कहा जाता। इसमें "रात्रिचर नयनरश्मिदर्शनम् ।" इस सूत्र द्वारा इस प्रकार सिद्धान्त होता है कि रातको मार्जार, शार्दूल आदिके चक्षुमें रश्मि दिखी जाती है अतः मनुष्य-चक्षुमें भी रश्मि है, यह दृष्टान्तवशसे सिद्ध होता है। पर हां, चक्षु रश्मिके अनुद्भूतरूपवान् होनेसे ही उसकी उपलब्धि नहीं होती, चक्षुमात्र ही रश्मिविशिष्ट है। क्योंकि तैजसपदार्थ जिस प्रकार रात्रिचर मार्जारका चक्षु है, उसी प्रकार प्रदीप द्वारा मनुष्य-चक्षुमें भी रश्मिका अनुमान किया है। फिर चक्षुके तैजस पदार्थ नहीं होने पर वह रूपादि विषयका प्रकाशक नहीं हो सकता, जैसे पार्थिव घटादि द्रव्य रूप रस गन्ध स्पर्श इन सब गुणोंमें चक्षु केवल रूप प्रकाशक है। अतएव चक्षु तैजसपदार्थ है। चक्षु यदि पार्थिव होता तो वह गन्धका भी ग्राहक होता। चक्षुकी रश्मि रहने पर भी विषयमें युक्त नहीं होनेसे वह विषयप्रकाशक है। कारण कांच और अभ्र तथा स्फटिक प्रभृति स्वच्छ पदार्थोंसे व्यवहित विषयकी भी उपलब्धि होती है। "अप्रत्यक्षेण काचाभ्रपटल-स्फटिकान्तरितोपलब्धेः" इस सूत्र द्वारा इस आपत्ति करके फिर "न कुड्यान्तरितानुपलब्धेरप्रतिषेधः" इस सूत्र द्वारा उसीका निरास किया है। यदि चक्षु इन्द्रिय असन्निकृष्ट पदार्थको प्रत्यक्ष करानेमें समर्थ होती, तो वह भित्तिके द्वारा अन्तरित पदार्थका भी ज्ञान उत्पन्न कर सकती थी। पर भीतादि प्रतिबन्धकवशसे चक्षु-किरण जिस वस्तु पर नहीं पड़ सकती, उस वस्तुको हम लोग कभी भी उपलब्ध नहीं कर सकते। अतएव इन्द्रियके साथ अर्थका सन्निकर्ष रहने पर ही प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है, यह सिद्धान्तसङ्गत है। पर हां, जो कांच अभ्र आदिके व्यवधानमें रह कर भी अर्थ चाक्षुष प्रत्यक्षका विषय होता है, उसमें कारण यही है "अप्रतिघातात् सन्निकर्षोपपत्तिः। आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरितेऽपि दाह्येऽविघातात्" कांच आदि स्वच्छपदार्थोंको नयनरश्मि भी प्रतिरोधक नहीं होती। अतएव कांच आदि द्वारा व्यवहित वस्तु पर भी चक्षुरिन्द्रिय पतित हो सकती है। जिस प्रकार आदित्यरश्मि स्फटिक या कांच-पिटिकमें अन्तःप्रविष्ट हो कर तदन्तःस्थ दाह्य वस्तुमें दीप्त होती है, उसी प्रकार तैजसपदार्थ चक्षुकी रश्मि कांच अभ्र प्रभृतिको भेद कर व्यवहित पदार्थमें संयुक्त क्यों न होगी? ऐसा नहीं कह सकते कि आदित्यरश्मि और स्फटिकान्तरित दाह्य पदार्थमें प्रवेश नहीं करता, यदि ऐसा हो, तो तदन्तर्गत वस्तु अपना दाह्य पदार्थको जलाता और ताप उत्पन्न नहीं हो सकता है। जिस प्रकार कुम्भस्थ जलमें तैजसपदार्थ वह्नि और सूर्य प्रविष्ट हो कर उष्णताका सम्पादन करता है, उसी प्रकार चक्षु अपनी रश्मि द्वारा दूरस्थ वस्तुमें प्रविष्ट हो कर उसका प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पादन करता है, इन प्रमाणोंसे चक्षुरादि इन्द्रिय भी प्राप्यकारी है इसमें सन्देह नहीं। जो कहते हैं, कि विषयका प्रतिबिम्ब चक्षु पर पड़नेसे ही चक्षु विषयप्रकाशक हो जाता है, इसे भी युक्तियुक्त नहीं मान सकते। क्योंकि कांच, अभ्र आदि द्वारा व्यवहित या आवृत जो पार्थिव पदार्थ है उसका प्रतिबिम्ब चक्षु पर पड़ नहीं सकता कारण तैजोतिरिक्त पदार्थका आवरणभेद कर चक्षु पर जा प्रतिबिम्बित होनेकी उसमें शक्ति नहीं है। आकाश ही उसमें प्रतिबन्धक है। दर्पण आदिमें मुखका

प्रतिबिम्ब उपलब्ध हुआ करता है। मुख पर चक्षुसन्निकर्ष व्यतीत वह किस प्रकार सम्भव हो सकता है। अतएव यह कहना होगा कि चक्षुरश्मि दर्पणादिमें प्रतिहत हो कर उलटे मुख पर पतित होती है, इस प्रकार सन्निकर्षके कारण तथा दर्पणके दोषसे मुखके विपरीत क्रमवश भ्रमात्मककी उपलब्धि होती है। अभी चक्षुरश्मिको नहीं माननेसे दर्पणादिमें मुखका प्रतिबिम्ब उपलब्धिका विषय नहीं हो सकता, अतः यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा।

इसके बाद अनुमितिलक्षण और विभाग लिखा गया है। "अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतो दृष्टञ्चेति।" तत्पूर्वक अर्थात् लिङ्ग लिङ्गी नियतसम्बन्धरूप व्याप्तिका प्रत्यक्षपूर्वक जो ज्ञान है, वही अनुमान कहलाता है। यह अनुमान तीन प्रकारका है, पूर्ववत् (कारणलिङ्गक), शेषवत् (कार्यलिङ्गक) और सामान्यतोदृष्ट अर्थात् कारण और कार्य भिन्न लिङ्गक है। नवन्यायके मतमें केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी और अन्वयव्यतिरेकी जिस प्रकार अनुमानके ये तीन भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार स्वार्थानुमान और परार्थानुमानभेदसे अनुमान दो प्रकारका है। वह्निव्याप्ति विशिष्टहेतु पर्वत पर है इत्यादि रूप जिस हेतुमें व्याप्ति और पक्षधर्मतानिर्णय है, वही स्वार्थानुमान है। फिर वादी अथवा प्रतिवादीसे अन्य जो मध्यस्थादि उसमें निर्णयार्थ अनुमान प्रकट करना है वही परार्थानुमान है। यह परार्थानुमान न्यायसाध्य है अर्थात् पर द्वारा उच्चारित न्यायवाक्यसे उत्पन्न होता है। गोतमके न्यायलक्षण स्पष्टतः नहीं कहने पर भी प्रतिज्ञा (साध्यका निर्देश), हेतुप्रयोग (साध्यसाधकका उल्लेख), उदाहरण (दृष्टान्तकथनयोग्य व्याप्तिबोधक वाक्य), उपनय, (उदाहरणानुसारी अवयव विशेषका उपन्यास) अर्थात् प्रकृतमें उदाहरणमें उपदर्शित व्याप्तिविशिष्ट हेतुका पक्षवृत्तिताबोधक वाक्य, निगमन (उसी हेतु द्वारा स्थापनीय साध्यका उपसंहार) "यथा पर्वतो वह्निमान् धूमात्, यो यो धूमवान् स स वह्निमान्, यथा महानस; तथाचायं, तस्मादयं वह्निमानिति" इस पञ्चविध अवयवका उल्लेख करनेके लिये जो पंचावयवोपपन्नवाक्य न्याय है, यह लक्षण गोतमाभिप्रेत समझा जाता है। भाष्यकारका कहना है कि 'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः' अर्थात् प्रमाणनिचय द्वारा अर्थकी परीक्षा जिस वाक्यसे होती है, वही वाक्य न्याय है। भाष्यके अनन्तरवर्ती प्राचीन न्यायमें 'पञ्चरूपोपपन्नलिङ्गप्रतिपादकं वाक्यं न्यायः" इस प्रकार लक्षण दृष्ट होता है अर्थात् पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षासत्त्व, असत्प्रतिपक्षितत्त्व और अबाधितत्त्व इस पञ्चविध धर्मान्वित हेतुका निर्णय जिस वाक्यसे होता है, वही न्याय है। उक्त सभी प्रकारके लक्षणोंमें अतिव्याप्त्यादि दोष लगता है, क्योंकि प्रतिज्ञा-अपर न्यायका हेत्वादिघटित पञ्चवाक्य भी न्याय हो सकता है एवं हेतुके बाद प्रतिज्ञा; पीछे उदाहरणादिच्युतक्रम प्रयोगघटित वाक्यसमुदायमें अतिव्याप्ति दोष होता है। फिर भाष्योक्त प्रमाण द्वारा जिस वाक्यसे अर्थपरीक्षा होती है, वही न्याय है। इस प्रकार चिन्तामणिके लक्षणके ऊपर दीधितिकारने केवल उपनय वाक्यमें अतिव्याप्ति प्रभृति दोष देख कर स्वतन्त्र लक्षण किया है,—"उचितानुपूर्वीकप्रतिज्ञादिपञ्चकवाक्यं न्यायः" उचितानुपूर्वी अर्थात् यथाक्रम और यथोपयुक्त आनुपूर्वीक्रमसे उक्त जो प्रतिज्ञादिपञ्च हैं, तत्समुदायात्मक वाक्य न्याय कहलाता है।

हेत्वाभास।—मूलसूत्र वा भाष्यमें हेत्वाभासके सामान्य लक्षणका उल्लेख नहीं रहने पर भी चिन्तामणिकार गङ्गेशने सामान्य लक्षण निर्देश किया है, "यद्विषयकत्वेन लिङ्गज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वं" अर्थात् जिसके निर्णयसत्त्वमें अनुमिति नहीं होती तादृशदोषविशिष्ट जो पदार्थ हेतुत्वमें अभिमत होता है, वही हेत्वाभास है। हेतु नहीं है, पर हेतुके जैसा दीप्तिमान् है, वही हेत्वाभास शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है। उक्त लक्षणके अनुसार 'वह्निमान् धूमादित्यादि सद्धेतुमें अतिव्याप्ति होती है। क्योंकि वह्निशून्य पर्वत, इस प्रकार भ्रमका भी वह्निमान् पर्वत इस अनुमितिका प्रतिबन्धकत्व रहनेसे जो वह्न्यभाव विषयत्वरूपमें अनुमिति प्रतिबन्धकता है वही वह्न्यभावरूप दोषविशिष्ट धूमादि होता है। इसी कारण दीधितिकारने कहा है, कि यादृश विशिष्ट विषयक निश्चयत्व जो प्रकृत अनुमितिकी

प्रतिबन्धकताके अनतिरिक्त वृत्तिमत्त्व अवच्छेदकता विशिष्ट होता है, तादृश विशिष्ट जो दोष है उसकी बहिर्भावता करनेसे धूमादि हेतुमें वह्निशून्य जल भी दोष होता है। क्योंकि वह्निशून्य जलविषयक निश्चयक ग्रहतानुमितिकी जो प्रतिबन्धकता है उसके अतिरिक्त ज्ञानमें व्यावृत्ति हुई है। किन्तु पर्वत वह्निके साध्यता स्थलमें ग्रहतानुमिति प्रतिबन्धकताशून्य जो वह्न्य भाववान् है इस प्रकार पक्षतावच्छेदक वह्न्यभावमात्र प्रकारक निश्चय है, उसमें वह्निभावविषयक निश्चयत्व होनेके कारण वैसे पदमें वह्न्यभाव नहीं लिया गया। क्योंकि उसका विषय जो वह्न्यभाव है, तद्विशिष्ट पर्वत नहीं होनेसे वह नहीं लिया जा सकता। पर्वत वह्निमान् है, इस अनुमितिमें ग्रस्त वह्न्यभाववान् यह निश्चय भी प्रतिबन्धक नहीं होता। दीधितिकारके मतसे बाद भी दोष लगता है, कारण, बाधस्थलमें ... जो बाधार्थ या अप्रामाण्य है उससे ज्ञाना स्कन्दित वह्निशून्य जलविषयक निश्चय अनुमितिका प्रति-बन्धकताशून्य होनेसे वह्निशून्य जलविषयक निश्चयत्व उस प्रतिबन्धकताशून्य वृत्ति हुआ। उसके वह्निशून्य जलस्व-भावमें गौरवजनक भी तत्स्वकीय हेतुके गौरवस्वरूप दुष्टत्व अवच्छेदक प्रकाशित होता है। इसी कारण जगदीश गदाधर प्रभृतिका कहना है कि अनाहार्य अप्रामाण्य ज्ञानानास्कन्दित निश्चय वृत्तिमत्विशिष्ट यद्रूप विशिष्ट विषयिताका व्यापक होता है, ग्रहतानुमिति प्रतिबन्धकता तद्रूप विशिष्ट जो दोष है। तदवत् ही दुष्टत्व है। जगदीश और गदाधरने इस लक्षणके ऊपर अन्य कई दोष दिखलाते हुए निवेशपूर्वक अनुगम और अनुगत-पूर्व विचारचातुर्य दिखलाया है। साध्यसाधनपदके अविरोधी प्रथम महत्त्वमात्र व्यभिचारके विरोधिज्ञान-का जो विषय है वही व्यभिचार है। यह व्यभिचार साधारण, असाधारण और अनुपसंहारीके भेदसे तीन प्रकारका है। साध्यशून्य देशमें स्थित हेतुको साधारण कहते हैं। यथा—शब्द नित्य है क्योंकि यह शब्दत्व है, यहाँ पर नित्यत्वरूप साध्यशून्य जो शब्द है उसमें निष्प्रमेयत्वहेतु होनेके कारण नित्यताशून्य वृत्ति निष्प्रमेयत्व ही साधारण हुई। साध्याधिकरणमें वर्तमान हेतु असा-धारण शब्द गुणवान् है, क्योंकि वह शब्देन्द्रियग्राह्य है। यहाँ पर गुणाश्रयत्वके अधिकरणमें शब्देन्द्रिय ग्राह्यत्व नहीं होनेके कारण असाधारण हुआ, ऐसा जानना होगा। केवलान्वयी सर्वत्र साध्यत्वादि-पक्षतावच्छेदकादि अनुपसंहारी है। अव्यक्ति साध्याप्रसिद्धि-भूताभावके प्रतियोगी हेतु विरुद्ध है। यथा—गोत्व साधक अश्वत्वादि हेतु है। पक्षमें पक्षतावच्छेदका भावादि साध्याप्रसिद्धि है हेतुशून्य पक्ष ही स्वरूपासिद्धि है, यथा—ह्रदमें वह्निसाधक धूमादि। सर्वविशेषणक रूप व्याप्यत्वासिद्धि होती है। इस कारण नीलधूम हेतु करने पर भी दुष्टहेतु होता है। विरोधिपरामर्श कालीनहेतु सत्प्रतिपक्षित है, यथा—शरीर अचेतन है क्योंकि यह भौतिक है, जो जो भौतिक है, वे सभी चैतन्यविहीन होते हैं, जैसे घट शरीर आदि। जैसा विरोधि इस वाक्यके समानकालमें यदि चार्वाक कहें, शरीर जो चैतन्यविशिष्ट है क्योंकि वह सचेष्ट है, जो जो सचेष्ट हैं, वे सभी सचेतन हैं, जो सचेतन नहीं हैं, वह सचेष्ट भी नहीं है। इस प्रकार चैतन्यका व्याप्ति विशिष्ट चेष्टावान् शरीर और अचेतनत्वव्याप्तिविशिष्ट, भौतिकत्ववान् शरीर इस प्रकार अचेतनत्व और अचेत नत्व इन विरोधिपदार्थद्वयको व्याप्तिविशिष्ट चेष्टा और भौतिकत्व हेतुके एक कालमें एक पक्षमें परामर्श कालमें सत्प्रतिपक्ष दोषयुक्त हेतुद्वय किसी भी पक्षके साध्यीय पदार्थके अनुमापक नहीं होते। तब यदि, "अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेष्ववस्थितम् महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति" इत्यादि श्रुतिका उल्लेख करें तो शरीर चैतन्याभाव दुर्बल होता है। उस समय समानबलता नहीं होनेके कारण हेतु सत्प्रतिपक्षित नहीं होता। शरीर चैतन्याश्रय नहीं है, उसके प्रतिपादक वेदप्रमाणबलसे चैतन्यकी व्याप्ति विशिष्ट चेष्टाके शरीररूपपक्षमें निर्णयात्मक विरोधि परामर्शसे अप्रामाण्य ज्ञान हो कर चैतन्याभावका अनु-मान हो जाता है। साध्यशून्य पक्ष ही बाध है, यथा—ह्रद वह्निविशिष्ट धूमहेतुक, यहाँ पर वह्निशून्य ह्रद बाधदोष हुआ। परकीय हेतुमें हेत्वाभासका उद्भावन जैसा अनाभासानुमान स्थलमें उपयोगी है, वैसा

ही स्वीय हेतुमें व्याप्तिपक्षधर्मता दिखानेमें भी प्रकृतोपयोगी है, इस कारण व्याप्ति किस पदार्थका स्वरूप है, यह जानना आवश्यक है।

व्याप्तिवाद—अति प्राचीनकालमें लिङ्गलिङ्गीका नियतसम्बन्धत्वरूप ही व्याप्तिका उल्लेख था, अनन्तर वही अव्यभिचरित सम्बन्ध और अविनाभावसम्बन्धके कैसा वक्त होता था। पीछे सिद्धपुरुष गङ्गेशने प्राचीन परम्पराप्रचलित अव्यभिचरितत्व शब्दका ही जो पांच प्रकारके अर्थोंका उल्लेख कर दोष दिखलाते हुए निराकरण किया है उसमें साध्याभाववदवृत्तित्व इस लक्षणमें साध्यशून्यदेशमें हेतुका नहीं रहना ही व्याप्ति है। यथा—सुतार्थमें असम्भव होता है, क्योंकि साध्यघट उभयका अभाव और साध्य प्रतियोगिक होनेसे साध्याभाव है, उभयाभाव सब जगह है, सुतरां तदधिकरणमें वृत्तिता ही धूममें है। इस अव्याप्ति अथवा असम्भव दोषमें तथा 'धूमवान् वह्नेः" इत्यादि स्थलमें अतिव्याप्ति दोष होता है इस कारण अनन्तर, साध्यसामान्याभाव और तादृशवृत्तितासामान्याभाव आदि लक्षणोंका निवेश किया गया है। यत्किञ्चित् साध्य रहने पर भी साध्यसामान्यका अभाव नहीं रहता, सुतरां पर्वत पर वह वह्नि नहीं है, ऐसी प्रतीति होने पर भी वह्नि नहीं है ऐसा नहीं कह सकते। साध्यसामान्याभाव निवेश करके लक्षणका अर्थ यह होता है कि अनुमितिकी विधेयतारूप साध्यतामें अवच्छेदकभिन्न जो धर्म है तन्निष्ठ अवच्छेदकताका अनिरूपक और साध्यतावच्छेदकनिष्ठ अवच्छेदकताका निरूपक जो प्रतियोगिता है, उसका निरूपक जो अभाव है, तदधिकरण-निरूपित वृत्तिताभाव-व्याप्ति, वह्नि घट दोनों नहीं हैं, यह प्रतीतिसिद्ध अभाव साध्यतावच्छेदकसे अतिरिक्त उभयत्वधर्मनिष्ठ-अवच्छेदकताका निरूपक होनेसे तादृशसामान्याभाव नहीं है अतः साध्यसामान्याभावाधिकरणधूमाधिकरण नहीं होता, सुतरां अव्याप्ति दोष नहीं लगता है। साध्याभावाधिकरणवृत्तित्वसामान्याभाव निवेश नहीं करने पर भी तादृश वृत्तित्व जलत्व उभयाभावादि आदान करके व्यभिचारि-स्थलमात्रमें अतिव्याप्ति होती है। "धूमवान् वह्नेः" इत्यादि व्यभिचारस्थलमें धूमरूप साध्याभावाधिकरण जलह्रदनिरूपितवृत्तित्वाभाव वह्नि हेतुमें रहता है इस कारण तथा धूमरूपसाध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व जलत्व एतदुभयाभाव वह्निहेतुमें रहनेसे लक्ष्यमें लक्षण होता है, सुतरां अतिव्याप्ति है, "अतएव साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वं नास्ति" इत्याकारक प्रतीतिसिद्ध तादृशवृत्तित्व सामान्याभाव निवेशपूर्वक अतिव्याप्ति वारण करनी होती है। वृत्तित्वसामान्यभाव निवेशकी प्रणाली अति दुरूह और विस्तृत होनेके कारण आगे नहीं लिखी गई। इस रीतिसे एक एक लक्षण विशेषरूपसे निवेश प्रवेश कर अति दुरूह और नानारूप की कल्पना करनेसे व्याप्तिग्रन्थ भी विस्तृत हुआ है। यही पांच लक्षण साध्यका अभाव अथवा साध्यविशिष्टका सामान्यभेदघटित होनेसे केवलान्वयिस्थलमें (जिसका अभाव अप्रसिद्ध है ऐसे साध्यक हेतुमें) अव्याप्ति दोषसे परित्यक्त हुआ है। पीछे सिंह व्याघ्रोक्त लक्षणद्वय एवं सुन्दरोपाध्याय-मतसिद्ध व्यधिकरणरूपमें अभावघटित अनेक प्रकारके लक्षणोंकी कल्पना पर निरास और पूर्वपक्षोक्त बहुविधलक्षण परिहारपूर्वक सिद्धान्तलक्षण किया है, "प्रतियोग्यसमानाधिकरणयत्समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यन्न भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः" अर्थात् जिस हेतुके आश्रयमें वर्त्तमान अभावीय प्रतियोगिताके विशेषकीभूतधर्मविशिष्टसे भिन्न जो साध्य है उसके अधिकरणमें उस हेतुकी सत्ता ही व्याप्ति है। जैसे पर्वत वह्निमान् है, क्योंकि वहां धूम है। इस प्रकार धूमहेतुक वह्नि साध्यकस्थलमें हेतुका अधिकरण जो पर्वत चत्वर, गोष्ठ और महानस उसमें वर्त्तमान जो घटाद्यभाव है, तदीय प्रतियोगितावच्छेदक जो घटत्व गोत्व प्रभृति है, तदवच्छिन्न जो घट और गो-प्रभृति है, तद्भिन्न वह्निरूप साध्यके साथ धूमरूप हेतुमें जो एकाधिकरणभाव है, वही वह्निकी व्याप्ति है, इस लक्षणमें उक्त स्थल पर ही अव्याप्तिदोष होता है हेतुके अधिकरण पर्वत पर महानसीय वह्निका, महानसमें पर्वतीय वह्निका, चत्वरमें गोष्ठादिनिष्ठवह्निका, गोष्ठमें चत्वरादिनिष्ठवह्निका जो अभाव वर्त्तमान है, तत्तदभावीय प्रतियोगिताका अवच्छेदकीभूत तत्तद्व्यक्तित्व विशिष्ट सभी वह्नि होती है,

ऐसा कहने पर भी प्रतियोगिताका अवच्छेदकीभूतधर्मोंके भिन्न भिन्न होनेके कारण वह्नि का होना नहीं मान सकते। अतएव साध्यसाध्य समानाधिकरणरूप व्याप्ति लक्षणका इस लक्षणमें नहीं होना अव्याप्तिदोष होता है। इसीसे दीधितिकार रघुनाथ शिरोमणि कहते हैं, 'प्रतियोग्यसमानाधिकरणयत्समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदको यो धर्मस्तद्धर्मावच्छिन्नेन येन केनापि सम समानाधिकरण्यं तद्रूपविशिष्टस्य तद्धर्मावच्छिन्नयावन्निरूपिता व्याप्तिः।' जिस प्रतियोगिताके अधिकरणमें व्यक्ति हो वह जो हेतुतावच्छेदकधर्मविशिष्टके अधिकरणमें वर्तमान होता है जो जो अभाव तद्वृत्ति प्रतियोगिताका अवच्छेदक नहीं होता, जो साध्यतावच्छेदक धर्म तद्विशिष्ट जिस किसी साध्य व्यक्तिके साथ भिन्न हेतुको जो ऐकाधिकरण्यवृत्ति है, वही उस हेतुतावच्छेदकविशिष्ट हेतुमें, वही साध्यतावच्छेदक धर्मविशिष्ट निरूपित व्याप्ति है। धर्मभेद यह व्याप्तिघटित तत्तद् व्यक्तिका धूमवत्ता हेतुतावच्छेदक विशिष्टका अधिकरण पर्वत तत्समवायीय प्रतियोगिताके घटत्वादिको तरह अवच्छेदक होने पर भी तद्विशिष्ट वह्निरूप साध्यतावच्छेदकविशिष्ट वह्निका जो सामानाधिकरण्य है वही वह्न्यवच्छिन्नकी व्याप्ति हुआ। अर्थात् साध्य व्याप्तिज्ञान ही यह अनुमितिका कारण है। इस लक्षणमें प्रतियोग्यसमानाधिकरण पदका न रखने पर और प्रतियोग्यसमानाधिकरण दोनोंका प्रवेश करके शिरोमणिने ही इसका ध्वंस किया है उसमें भी अभी लक्षण स्वतन्त्ररूप हुए हैं। साध्यप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नका अभाव हेतुमतः साध्य प्रतियोगितावच्छेदकसाध्यतावच्छेदकविशिष्टसामानाधिकरण्य व्याप्ति। जिस प्रकार प्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टके अधिकरणमें हेतुका अधिकरण होता है, उसी प्रकार प्रतियोगिताके अवच्छेदक धर्म भिन्न साध्यतावच्छेदकविशिष्टके अधिकरणमें हेतुका वर्त्तमानत्व ही व्याप्ति है। इस लक्षणमें पुनः व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्न घटाभाव महाकाशादि हेतुमें अव्याप्ति होती है क्योंकि महाकाश समस्त वस्तुओंका अधिकरण काल होता है। दूसरी भी अभाव मान कर लक्षण किया जाता इस अभावके प्रतियोगितावच्छेदक विशिष्टका अर्थात् घटत्वसामान्य किसी अधिकरण नहीं होता, इस कारण किसी भी अभावको प्रतियोगिता साध्य प्रतियोगिता नहीं मान सकते। सुतरां उस लक्षण यहाँ नहीं जाते। इसके बाद प्रतियोग्यसमानाधिकरणपदके स्थानपर पारिभाषिक धर्मको रखना करनेसे उसमें भी का कथा समवायाश्रय लक्षणमें दोष होता है। अतएव अन्तमें उन्होंने ऐसा लक्षण किया है, 'स्वावच्छिन्नप्रतियोग्यनधिकरणहेतुमन्निष्ठाभावप्रतियोगितासामान्ये यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वयद्धर्मावच्छिन्नत्वोभयाभावस्तेन सम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य व्याप्तिर्बोध्या।' इस पर भवानीकि प्रभृतिकी व्याख्याति और अलग अलग नाना प्रकारकी परिष्कार कर इसे दीर्घ और गदाधरकृत टीका अत्यन्त विस्तृत हुई है। जिस जिस अभावका और प्रतियोगिताके अवच्छेदक सम्बन्धमें स्वीय प्रतियोगिताका अवच्छेदक धर्मविशिष्टका अधिकरण भिन्न होता है जो हेत्वधिकरण है उस अभावीय प्रतियोगितामें जो सम्बन्धावच्छेदकत्व है, साध्यतावच्छेदक जो धर्मावच्छेदकत्व है इन दोनोंका अभाव रहता है वह हेतुका व्यापक होता है। उस सम्बन्धमें उस धर्मविशिष्ट एवं तद्रूप व्यापकीभूत साध्यके अधिकरणमें हेतुकी सत्ता ही व्याप्ति हुई। इसीके प्रतियोगी घटादिका अधिकरण धूमादिरूप हेतुके अधिकरणमें वर्त्तमान जो जो घटादिका अभाव है, उस प्रतियोगितासामान्यमें ही संयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व और वह्नित्वावच्छिन्नत्व इन दोनोंका अभाव देखा जाता है। सुतरां संयोगसम्बन्धसे वह्नित्वविशिष्ट धूमका व्यापक हुआ। उसके अधिकरणमें यह धूम है, अतः धूम ही वह्निका व्याप्य हुआ। जिसका अभावका प्रतियोगितावच्छेदक उसका घटक जो अवच्छेदकता है वह किस प्रकार है स्वरूपसम्बन्धरूप है या प्रतियोगिताका अतिरिक्तवृत्तिस्वरूप है? इस प्रकार जगदीशने अवच्छेदकत्व निर्वचन करके अवच्छेदकत्वनिरुक्ति नामसे दीधितिकारने एक और ग्रन्थकी रचना की है। ये सब लक्षण यदि समझ न सकें तो लिये न्यायमें प्रतिपादित अभाव और प्रतियोगिताका लक्षण तथा प्रतियोगिता और अवच्छेदकताका क्या सम्बन्ध है और किसका अवच्छे

दक होता है, अवच्छेदक शब्दका क्या अर्थ है, अवच्छे-दकता कितने प्रकारकी है, निरूपितत्व और निरूपकत्व, अधिकरणत्व, आधेयत्व, विषयत्व, विषयित्व, प्रकारता, प्रकारिता आदि विषय विशेषरूपसे जानना आवश्यक है और किसी पदार्थको ले कर नानारूप लक्षण और उसका दोषानुसन्धान करते करते व्याप्तिवाद भी इतना विस्तृत हो गया है कि उसके अवधान करनेमें तीन चार वर्ष लगेंगे।

'यस्याभावः स प्रतियोगी', जिसका अभाव है, वही पदार्थ अभावका प्रतियोगी होता है, क्योंकि प्रतियोग अर्थात् प्रतिकूलसम्बन्ध उसमें है, प्रतियोगीका असाधारण धर्मरूप जो प्रतियोगिता है उसका इतरव्या-वर्त्तक विशेषक ही अवच्छेदक है। यह अवच्छेदक दो प्रकारका है,—संयोगादिमें सम्बन्ध अवच्छेदक और प्रतियोग्य धर्में प्रकारीभूत धर्म अवच्छेदक, प्रतियोगिता-को निरूपित अवच्छेदकता, अवच्छेदकताकी निरूपक प्रतियोगिता और प्रतियोगिताका निरूपक (निर्णायक) अभाव आदि विषय जो जानते हैं, वे ही उक्तविध लक्षण जाननेके अधिकारी हैं।

चार्वाकका कहना, 'सर्वमिदं व्याप्तिनिश्चये सति स्यात्' "तदेव तु न भवति उपायाभावात्" अर्थात् प्रत्य-क्षातिरिक्त अनुमितिरूपतत्त्व प्रमा तभी सिद्ध होती है, जब व्याप्तिनिश्चय हो सके, वही व्याप्तिनिर्णय तुम्हारे उपायका अभावहेतु असम्भव है। इस कारण व्याप्तिका सिद्धान्त करके भी नैयायिकोंने व्याप्तिग्रहणका उपाय निर्देश किया है। अनेक स्थल पर यद्यपि बार बार सहचार दर्शन व्याप्तिनिर्णायक न हो, तो भी व्यभिचार ज्ञानका असहकृत सहचारज्ञान जो व्याप्तिनिर्णयका कारण है उसमें सन्देह नहीं। अन्यथा तृप्तिप्रार्थी भोजनार्थ प्रवृत्त नहीं होता और जो भविष्यभोजन भविष्यत्तृप्तिका कारण है उसके सम्पादनके लिये प्राणिवृन्द इतना व्याकुल नहीं होता। इष्टसाधनताज्ञान छोड़ कर जब कहीं भी प्रवृत्त देखा नहीं जाता, तब अवश्य ही कहना होगा कि भोजनप्रवृत्त पुरुषके भोजनमें तृप्तिरूप इष्टसा-धनत्व निर्णीत था, तादृश इष्टसाधनत्वनिर्णय कभी भी प्रत्यक्षात्मक नहीं हो सकता। भविष्यद्भोजनसे तृप्ति-साधनत्वके सम्बन्धमें कोई भी उपदेश या स्मृति नहीं है। केवल मात्र भोजन ही तृप्तिसाधन है, इस प्रकार भोजनसे तृप्तिसाधनत्व ज्ञानात्मक व्याप्तिनिर्णयवशतः, भविष्यद्भोजनमें तृप्तिसाधकताका अनुमानात्मक निर्णय हुआ करता है। सुतरां भोजनतृप्तिका असाधक भी होता है, इस प्रकार व्यभिचारानुसन्धानके नहीं रहनेसे किसी भी भोजनमें ही तृप्तिसाधनताका ज्ञानरूप तृप्तिसाधनताके सहचारदर्शनसे भोजनत्वमें तृप्तिसाधनताका अव्यभि-चारित सम्बन्धरूप पूर्वोक्त व्याप्तिनिर्णय अवश्य ही स्वीकार्य है। इस प्रकार विचारपूर्वक सिद्धान्त करनेमें व्याप्तिग्रहोपाय नामक व्याप्तिवादके अन्तर्भूत ग्रन्थान्तर प्रणीत हुआ है। कई जगह व्यभि-चार संशयके निराकरणार्थ तर्क भी विशेष उपयोगी होता है। महर्षि गोतमने कहा है, "अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितः तत्त्वज्ञानार्थं ऊहस्तर्कः।" इसका तात्पर्य यह कि व्याप्यका आरोप प्रयुक्त होता है, जो व्यापकका आरोप है वही तर्क है अर्थात् जिस पदार्थके बिना नहीं रह सकता उसका आरोप वा आपत्ति करके जो उस पदार्थका आरोप होता है, वही तर्क पदार्थ है। उस तर्क पदार्थका प्रयोजन अविज्ञाततत्त्वपदार्थ-का तत्त्वज्ञान है। यह तर्क नव्यन्यायके अनुसार पांच प्रकारका माना गया है—आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक, अनवस्था, तदन्यबाधितार्थप्रसङ्ग। तर्कका विशेष प्रतिपादन करनेमें तर्क' नामक एक ग्रन्थ रचा गया है। व्यापकपदार्थका अभाववत्तानिश्चय जहां रहता है, वही स्थान व्याप्यके आरोपाधीन व्यापकका आहार्यारोपरूप तर्क हुआ करता है। पर्वत यदि वह्निशून्य हो, तो वह निर्धूम होगा। इस प्रकार वह्न्य-भावात्मक व्याप्यके आरोपाधीन धूमाभावात्मक व्यापक-का आरोप ही तर्क हुआ। उक्त तर्कबलसे आपादकी-भूत धूमाभावकी अभावस्वरूप धूमवत्ता निर्णयाधीन आपाद्य वह्न्यभावके अभावस्वरूप वह्निका अनुमानात्मक निर्णय होता है और धूम यदि वह्निव्यभिचारी हो, तो वह वह्निजन्य नहीं होगा, इस प्रकार तर्कबल वह्नि-जन्यत्व निर्णयाधीन वह्निव्यभिचाराभाव धूममें निर्णीत हुआ करता है। उन्होंने चिन्तामणिमें व्याप्तिग्रहका

उपाय, तर्क निर्णय बोधि उपाधि और सामान्यलक्षण। अनन्तर पक्षतानिर्णय अर्थात् निर्णीत पदार्थको अनुमिति नहीं होनेसे अनुमितिके प्रति साध्यसन्देह और इच्छाद्यप्रयोजन सर्वसिद्ध पक्षताका कारणत्वनिरास पूर्वक अनुमित्सागृह्य साध्यनिर्णयके अभावको कारण बतलाया है। इसके ऊपर जागदीशी गादाधरी आदि विस्तृत टीका रची गई है। तदनन्तर परामर्शके बाद अवयव निर्णय बोधि व्याख्यान तदनन्तर हेत्वाभास निरूपण, उसमें हेत्वाभासका एवं सबका अनुमानखण्ड शेष किया है।

शेष शब्दखण्ड। शब्दका प्रामाण्य—अनुमान जिस प्रकार प्रत्यक्षादिभिन्न स्वतन्त्र प्रमाण है, शब्द भी उसी प्रकार प्रत्यक्षानुमानोपमानसे स्वतन्त्र प्रमाण है। महर्षि गोतमने 'आप्तोपदेशः शब्दः' इस सूत्र द्वारा शब्दप्रामाण्यका लक्षण प्रतिपादित हुआ है। आप्त अर्थात् वाक्यार्थ गोचर यथार्थ ज्ञानवान् पुरुष है, तदुच्चारित जो वाक्य है वही प्रमाण है। नव्यन्यायके मतसे आसत्ति, आकांक्षा, तात्पर्य और योग्यतायुक्त वाक्य ही प्रमाण है। क्योंकि वक्ताके वाक्यार्थ विषयक ज्ञान रहने पर भी तदुच्चारित श्लोकादिसे अपर अनभिज्ञ व्यक्तिके प्रमाणक शब्दबोध उत्पन्न होता है। लौकिकवाक्यसे भी अनेक समय अप्रामाणिक शब्दबोध हुआ करता है, इस कारण सभी लौकिक वाक्यको प्रामाण्य नहीं है। भ्रम, प्रमाद, प्रतारणेच्छा, करणापाटव इन दोषचतुष्टयरहित आप्त पुरुषो कथित अभी वाक्य प्रमाण हैं। तादृश आप्त कथित ही वेदका प्रामाण्य है। "मन्त्रायुर्वेदवच्च तत् प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्" इस न्यायसूत्र द्वारा शब्द प्रामाण्य परीक्षाप्रकरणमें उक्त तात्पर्यमूलक ही वेदप्रामाण्य सिद्धान्त हुआ है और आसत्ति, आकांक्षा तात्पर्य और योग्यताविशिष्ट वाक्य ही स्वतन्त्र प्रमाण है इसके सम्बन्धमें पूर्वपक्ष और सिद्धान्त करनेसे शब्दप्रामाण्य नामक चिन्तामणिके अन्तर्गत एक विस्तृत ग्रन्थ हो जाता है। आसत्ति आकांक्षा तात्पर्य और योग्यता इन्हीं चार विषयों पर चार ग्रन्थ रचे गये हैं, तदनन्तर शब्दानित्यतावाद और पीछे प्रमाणके अवच्छेदक निरास उसके बाद अवयवबोधकवाद नामक और भी एक ग्रन्थकी रचना की गई है। वाक्यश्रवणके बाद जो एक विशिष्टज्ञान उत्पन्न होता है वही शाब्दबोध है। यह शाब्दबोध पदज्ञान ही कारण है, क्योंकि पदज्ञान पदार्थकी स्मृति उत्पन्न कर उस विशिष्टबोधका अनुकूल होता है। अनेक समय पदज्ञान व्याप्य बल प्रत्यक्षात्मक होने पर भी पदके अवधिज्ञान लिपि देख कर मौनि श्लोकादिका शाब्दबोध हुआ करता है। इस कारण पदका ज्ञानमात्र ही उसका कारण है। पुस्तक देखनेसे इस श्लोकोंसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह चित्रविशिष्टरूप पदार्थादि अक्षरमें ज्ञानपूर्वक पदस्मृति होता है, इसी कारण उसमें पुस्तक प्रतिपाद्य विषयका अनुभव होता है। उसका प्रमाण—कोई भी मनुष्य यदि कहे कि तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है अथवा पुत्रका देहान्त हुआ है तब हर्ष और विषाद दोनों ही होते हैं, अतएव यह कहना होगा कि शब्दसे यदि केवल पदार्थोपस्थिति वा पुत्रजन्म और मरण इन पदार्थका स्मरण मात्र ही हो तो हर्ष और विषाद किसी प्रकारसे हो सकता नहीं। क्योंकि कोई भी मनुष्य जन्म अथवा मरण शब्द मात्रसे हर्षविषादोत्पन्न नहीं होता। किन्तु हमारे पुत्र उत्पन्न हुआ है इत्यादि विशिष्टबुद्धि होनेसे ही हर्षादि उत्पन्न होता है। इसको विशिष्टबुद्धि स्मृति नहीं कह सकते, क्योंकि पहले ऐसा अनुभव नहीं होता। इसे प्रत्यक्ष भी नहीं कह सकते, क्योंकि तादृश विशिष्टार्थमें इन्द्रियसन्निकर्ष नहीं है। फिर यह अनुमान भी नहीं है, कारण व्याप्तिज्ञान वा व्याप्तिका उपस्थापक कोई भी नहीं है। इसे उपमान भी नहीं मान सकते, कारण तत्सदृशीभूत पदार्थका प्रतिपादक कोई भी सादृश्यज्ञान नहीं है। इसलिये शब्दबोध स्वतन्त्र प्रमा और तत्करण शब्दप्रमाणान्तर सिद्ध हुआ।

घटकर्मता आनयन कृति इत्यादि निराकांक्ष वाक्य घटादि पदके उपस्थिति उपस्थापक होने पर भी घट कर्मताक आनयन कर्त्तव्य इत्यादि विशिष्ट बुद्धि उत्पन्न नहीं होती इस कारण घटपदोत्तरत्वविशिष्ट जो "अम्" पद तथा "अम्" पदोत्तरत्वविशिष्ट आङ्पूर्वक नीपद नीपदोत्तरत्वविशिष्ट "हि" पदस्वरूप "घटमानय" इत्यादि सजातीय आकांक्षा ज्ञानकी कारणता तथा अन्वय-

बुद्धिमें अवश्य स्वीकार्य है। 'वह्निना सिञ्चति' इत्यादि योग्यताविहीन वाक्यसे अन्वयबोध नहीं होता, अतः वह्नि-करणत्वाभाववत्तारूप योग्यताज्ञान और शाब्दबोधमें कारण है। सेचनरूप पदार्थमें वह्निकरणत्वका बोध है, इस कारण तादृश योग्यताज्ञान असम्भव है। सुतरां वह्नि-करणकसेक इत्याकार अन्वयबोध भी नहीं होता। जिस पदके अर्थके साथ अन्वयबोध होता है, उस पदके अर्थकी इस पदमें सत्ता ही योग्यता है, तादृश योग्यताका प्रमात्मक ज्ञान ही शाब्दप्रमाका निदान है। पदके अव्यवधानमें उच्चारणरूप आसत्तिज्ञान भी कारण है। वक्ताका अभि-प्रायरूप तात्पर्यनिर्णयात्मक उक्त अन्वयबुद्धिमें कारण होता है।

इस शाब्दबोधमें 'घटमानय' इत्यादि आनुपूर्व्य विशेष-रूप आकाङ्क्षा और वक्ताके इच्छानुरूप तात्पर्यका निर्णय, निकटमें उच्चारणरूप आसत्ति और जिसमें जिसका अन्वय हो उसमें उसका बोध नहीं रहनेके समान योग्यताका ज्ञान जैसा कारण है, पद पदार्थका नियत सम्बन्धरूप वृत्तिज्ञान भी वैसा ही कारण है। वह वृत्तिसङ्केत और लक्षणा अन्यतररूप है। गदाधर भट्टाचार्यका कहना है, "सङ्केतो लक्षणा चार्थे पदवृत्तिः।" "आजानिकस्त्वाधु-निकः सङ्केतो द्विविधो मतः,। नित्य आजानिकस्तत्र या शक्तिरिति गीयते।" यह जगदीशका कथन है। आजा-निक और आधुनिकके भेदसे सङ्केत दो प्रकारका है जिनमेंसे भगवदिच्छारूप नित्यसङ्केत है अर्थात् इस शब्द-से यह अर्थ मनुष्यको अनुभवगम्य हो, इस प्रकार ईश्व-रीय इच्छा ही नित्यसङ्केत है, उसीका नाम पदकी शक्ति है। सृष्टिकालसे गो-प्रभृति शब्दका गवा-द्यर्थका तात्पर्यमें प्रयोग देख कर अनुमित होता है कि ईश्वरकी ही ऐसी इच्छा है कि गो-शब्द गवाद्यर्थका अनु-भावक हो, इस प्रकार भगवदिच्छारूप गो-पदका शक्तिग्रहमूलक ही कालान्तरमें 'गो आनयन' इस प्रकार वाक्यस्थ गवादिपदज्ञानाधीन गवाद्यर्थका स्मरण हो कर गोका आनयन कर्त्तव्य है, ऐसा अनुभव होता है। शास्त्रकारोक्त नदी और वृद्धि आदि पदके स्त्रीलिङ्गविहित ऊ, ईप, और आर, ऐ, औ आदिमें जो आधुनिक शास्त्र-कारीय सङ्केत अर्थात् शास्त्रकारका जो नदीपद है, वह ऊ, ई और वृद्धिपद आर् आदि वर्णका अनुभावक हो, इस प्रकार जो इच्छा है वही आधुनिक सङ्केत है। इसका दूसरा नाम परिभाषा है। प्रथमतः सङ्केतग्रहके उपाय वृद्धव्यवहारको ही शास्त्रकारोंने निर्देश किया है, इसीसे जगदीश कहते हैं, "सङ्केतस्य ग्रहः पूर्वं वृद्धस्य व्यवहारतः। यथादेशोपमानाद्यैः शक्तिधीपूर्वकैरसौ।" प्रथमतः व्युत्पन्न किसी पुरुषके शब्दाधीन व्यवहारको देख कर बालकके शक्तिग्रह हुआ करता है, पीछे शक्ति-ज्ञानपूर्वक सादृश्य ज्ञानरूप उपमान व्याकरण कोष, आप्तवाक्य, सिद्धपदके सन्निधि वाक्यशेष और विवरण आदि पदकी शक्ति या सङ्केतग्रह होता है। जिस पदके सङ्केतग्रह नहीं है, उसके शक्यसम्बन्धरूप लक्षणाज्ञान भी नहीं रहता। सुतरां उस पदका ज्ञानाधीन किसीके भी शाब्दानुभव नहीं होता। इस शक्तिको निर्वाचन करनेमें गदाधर भट्टाचार्यने अति दुरूह एक विस्तृत ग्रन्थकी रचना की है, जिसमें शक्तिज्ञानका शाब्दबोधके प्रति कैसा जनकत्व है और शक्ति ही क्या पदार्थ है, किस शब्दके कैसे अर्थमें शक्तिका प्रयोग होता है इत्यादि विषय विशेषरूपसे प्रतिपादन किये हैं।

जगदीशने शब्दके प्रामाण्यके सम्बन्धमें परमत निरा-करणपूर्वक शब्द जो स्वतन्त्र प्रमाण है उसे संस्थापनान-न्तर प्रकृति, प्रत्यय और निपात इन तीन प्रकारोंमें सार्थकशब्दका विभाग किया है। इनमें नाम और धातुके भेदसे प्रकृति दो प्रकारकी मानी गई है।- वह नाम रूढ़, लक्षक, योगरूढ़ और यौगिकके भेदसे चार प्रकार-का है। जिसका जिस अर्थमें सङ्केत है, वह पद उस अर्थमें रूढ है, उक्त रूढ नाम ही संज्ञा नामसे प्रसिद्ध है। यह संज्ञा तीन प्रकारकी है—नैमित्तिकी, पारि-भाषिकी और औपाधिकी। गो मनुष्य प्रभृति संज्ञा गोत्व, मनुष्यत्व जातिविशिष्टकी वाचक होनेसे नैमि-त्तिकी और आधुनिक सङ्केतविशिष्ट नदी वृद्ध्यादिपद ही पारिभाषिकी संज्ञा है। विशेषगुणविशिष्ट आकाशत्वादि अनुगत उपाधिविशिष्टमें सङ्केत होनेसे भूत दृतादि शब्द औपाधिकी संज्ञा है। लक्षक नाम नाना प्रकारका है— जहत्स्वार्थलक्षणा, अजहत्स्वार्थलक्षणा, निरूढ़लक्षणा और आधुनिकलक्षणा इत्यादि। पङ्कजादि शब्द- समुदाय

पदके शक्तिसम्म अर्थके साथ अन्वयं—पद्मादिका बोध जनक होनेसे योगरूढ़ है। पाचकादि शब्द केवल स्व-यवयवके योगार्थ मात्रका अनुभव होनेसे यौगिक है। ये सब विषय नामखण्डमें विशेषरूपसे प्रतिपादित हुए हैं। प्रकृति, प्रत्यय और निपातादिके लक्षण भी यथाक्रम वर्णित हुए हैं। तदनन्तर यौगिक नामके अन्तर्गत समासका लक्षण और विभाग प्रतिपादन करके समास नामक अलग प्रकरण हुआ है। बाद षट् कारक और उपकारकका व्युत्पादनपूर्वक कारक नाम चतुर्थ प्रकरण रचा गया है। इस कारकप्रकरणमें प्रथमादि विभक्ति, धातु, तद्धित और कृत इन चार प्रकारोंसे विभक्त विभक्ति आदिका सामान्य लक्षण और विशेष लक्षण वर्णित है। विभक्ति दो प्रकारकी है, सुप् और तिङ्। इनमेंसे सुप् कारकार्थ और स्वार्थ है, कारकमें जो विभक्त्यर्थ प्रकार कह कर अनुभवका विषय होता है, वही कारकार्थ और तद्भिन्न सुबर्थ ही कारक है। तद्भिन्न सुबर्थ ही उपकारक है। गदाधर भट्टाचार्यने प्रथमादि व्युत्पत्तिवाद नामक विस्तृत ग्रन्थकी रचना कर उसमें प्रथमादि का अर्थ, उसका अन्वय और उसके सम्बन्धमें आनुषङ्गिक विचारपूर्वक व्यमतका खण्डन किया है। द्वितीयादिव्युत्पत्तिवादमें भी शाब्दबोधके कारणादि निर्देश और तत् ग्रन्थमें विचार किया है तथा द्वितीयादिव्युत्पत्तिवादमें भी द्वितीयादिके अर्थ और धात्वर्थके साथ कैसा सम्बन्ध है, इत्यादि विषय लिखे हैं।

बौद्ध-न्याय।

प्रसिद्ध बौद्ध-नैयायिक धर्मकीर्ति रचित न्यायबिन्दुग्रन्थमें बौद्ध न्यायके विषयमें जो कुछ लिखा है उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है। इस ग्रन्थके प्रथम परिच्छेदमें प्रत्यक्ष-ज्ञानका विषय और द्वितीय एवं तृतीय परिच्छेदमें स्वार्थ तथा परार्थानुमानका विषय प्रतिपादित हुआ है। सम्यक् ज्ञान होनेसे समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, पुरुषार्थसिद्धिके विषयमें सम्यग्ज्ञान ही एकमात्र कारण है। सम्यग्ज्ञान हो जानेसे निर्वाण प्राप्त होता है। विष्णुपुराणमें भी लिखा है 'ज्ञानान्मुक्तिः' अर्थात् ज्ञानलाभ होनेसे मुक्ति होती है। बौद्धोंके मतानुसार सम्यग्ज्ञान होनेसे सभी पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। अतएव जिससे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो उसके लिये यत्न करना अवश्य कर्त्तव्य है।

इसीसे पहले सम्यग्ज्ञानका विषय लिखा जाता है—'अविसंवादक जो ज्ञान है' उसीका नाम सम्यग्ज्ञान है जिसमें किसी प्रकार विसम्वाद (विपरीत ज्ञान) और विरोध उत्पत्ति न हो, वही सम्यग् ज्ञानपदवाच्य है। प्रमाण द्वारा जो वस्तुका स्वरूपबोध हुआ करता है, अतएव सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेमें प्रमाणको निमित्त माना जाता है। अर्थाधिगति ही प्रमाणका फल है। प्रमाण द्वारा जो अर्थकी अवगति होती है, उसमें और किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहता, उसी समय पुरुषार्थ प्राप्त होता है। अतएव जो सब विषय अभिमत नहीं है, प्रमाण द्वारा उन्हींकी अवगति हुआ करती है। मनुष्य पहले पहल जिस ज्ञान द्वारा अर्थ मालूम करते हैं उसी ज्ञानके अनुसार प्रवर्त्तित हो कर अर्थलाभ किया करते हैं। ये सब अर्थ इन्द्रियरूपमें अवगत होते हैं, यह प्रत्यक्षका विषयीभूत है और जो लिङ्ग (हेतु) दर्शनहेतु लिङ्गरूपमें अर्थावबोध होता है वह अनुमानका विषय है। यह प्रत्यक्ष और अनुमान निश्चित अर्थसमूहका प्रदर्शक है इसीलिये ये दो प्रमाण हैं। यही सम्यग् विज्ञान है, इसके अतिरिक्त सम्यग्विज्ञान और कुछ भी नहीं है। आगेके निमित्त अग्नि जो अर्थ है, उसका नाम प्रापक है और प्रापक प्रमाणपदवाच्य है। इन दो ज्ञानोंके अतिरिक्त जो ज्ञान है उससे प्रदर्शित जो अर्थ है वह अन्यत्र विपर्यस्त हुआ करता है। जैसे मरीचिकामें जल पहले ही कहा गया है कि जो अग्निके लिए प्रवृत्त है वह प्रापक है और यही प्रापक प्रमाण है। किन्तु मरीचिकामें जल नहीं मिलता यहां पर जलका प्रापकत्व नहीं है सुतरां प्रमाण भी नहीं होगा। मरीचिकामें जलको आयत्त करना है इसीसे उसमें जलप्राप्ति असम्भव है। जहां जहां वस्तुका प्रापक नहीं होगा वहां प्रमाण भी नहीं होगा। अन्धे दुष्टके लोचनमें भाव और अभावयुक्त कोई पदार्थ दिखाई नहीं देता और वह वस्तुका प्रापक नहीं है सुतरां संशय भी सम्यक् प्रमाण नहीं होगा। सम्यग्ज्ञान होनेसे तत्त्वज्ञान पुरुषार्थसिद्धि नहीं होती। पुरुषार्थसिद्धिके प्रति सम्यग्

ज्ञान साक्षात् कारण नहीं है, पूर्वमात्र है। सम्यग्ज्ञान लाभ होनेसे पूर्वदृष्टका स्मरण होता है। स्मरणसे अभिलाष, अभिलाषसे प्रवृत्ति, प्रवृत्तिसे पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है इसीसे सम्यग्ज्ञान साक्षात् कारण नहीं है, पूर्वमात्र निर्दिष्ट हुआ है।

यह सम्यग्ज्ञान दो प्रकारका है, प्रत्यक्ष और अनुमान। इन्हीं दो द्वारा सम्यग्ज्ञान लाभ होता है। जहां प्रत्यक्ष द्वारा वस्तुकी उपलब्धि नहीं होती, वहां अनुमान द्वारा होती है। अनुमान-ज्ञानको भी प्रत्यक्षवत् जानना चाहिए। यह प्रत्यक्ष भी अनुमान द्वारा निखिल वस्तुतत्त्वका ज्ञान होगा। निखिल वस्तुतत्त्वका स्वरूपबोध होनेसे तब सम्यग्ज्ञान लाभ होता है। इस प्रत्यक्ष और अनुमानको प्रत्यक्ष और मानप्रमाण कहते हैं। यथाक्रम इसका लक्षण भी लिखा जाता है।

प्रत्यक्ष—जो कल्पनापोढ़ और अभ्रान्त है वही प्रत्यक्ष है अर्थात् जो कल्पनापोढ (काल्पनिक) नहीं है और अभ्रान्त है जिसमें कुछ भी भ्रम नहीं है, वही प्रत्यक्ष पदवाच्य है। जिस किसी अर्थका साक्षात्कारि जो ज्ञान है, वही प्रत्यक्ष है। चक्षुके साथ विषयेन्द्रियजन्य जो ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष है। इन्द्रियाश्रित ज्ञानमात्र ही प्रत्यक्ष पदवाच्य होगा।

कल्पनापोढ़ और अभ्रान्तत्व ये दो विशेषण विप्रतिपत्तिनिराकरणके लिये उक्त हुए हैं, अनुमाननिवृत्तिके लिए नहीं।

तिमिर, आशुभ्रमण, नौयान, संक्षोभ आदिमें जो ज्ञान होता है, उससे यथार्थमें वस्तुका अवबोध नहीं होता, इसलिए भ्रान्तत्वका निरास किया गया है।

यह प्रत्यक्षज्ञान चार प्रकारका है—इन्द्रियजन्यज्ञान, मनोविज्ञान, आत्मज्ञान और योगिज्ञान। इन्द्रियका जो ज्ञान है अर्थात् जो ज्ञान इन्द्रियाश्रित है, उसे इन्द्रियजन्यज्ञान कहते हैं। यह इन्द्रियजन्यज्ञान भी फिर दो प्रकारका है, परस्परोपकारी और एककार्यकारी। जो इन्द्रियज्ञानका विषय नहीं है, वही मनोविज्ञान होगा। जो सिद्धान्त-द्वारा प्रसिद्ध है वह मानस प्रत्यक्ष और जो रूप द्वारा आत्मवेदिता हो वह आत्मसंवेदन वा आत्मज्ञान है।

योगका अर्थ समाधि है, जिसके यह योग है, उसको योगी कहते हैं। एवम्भूत योगीका जो ज्ञान है उसे योगिप्रत्यक्ष वा योगिज्ञान कहते हैं। धर्मोत्तराचार्य-रचित न्यायबिन्दु, टीकामें इसका विवरण विस्तृतरूपसे लिखा है।

अनुमान—अनुमान प्रमाण दो प्रकारका है, स्वार्थ और परार्थ अर्थात् स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। इनमेंसे परार्थानुमान शब्दात्मक है और स्वार्थानुमान ज्ञानात्मक। इन दोनोंमें अत्यन्त भेदवशतः पृथक् लक्षण निर्दिष्ट हुआ है। स्वार्थानुमान ज्ञानस्वरूप है, इसमें किसी प्रकार शब्दोच्चारण करना नहीं होता। जिस अनुमानमें आपसे आप प्रतिपत्त हो जाय अर्थात् जो अपने लिए है वह स्वार्थानुमान और जिससे दूसरेको प्रतिपादन किया जाय अर्थात् जो दूसरेके लिए है वह परार्थानुमान है। इस स्वार्थ और परार्थ ज्ञानके मध्य पहले स्वार्थानुमानका विषय कहा जाता है। स्वार्थानुमान—त्रिरूप अर्थात् त्रिविधलिङ्ग उत्पन्न अनुमेयका आलम्बन अर्थात् अनुमानके विषयीभूत जो वस्तु है उसका आलम्बन जो ज्ञान है, वही स्वार्थानुमान कहलाता है।

त्रिविध लिङ्ग यथा—अनुमेयविषयमें सत्ता (अस्तित्व) अनुमानके विषयीभूत जो वस्तु है उसमें अस्तित्व है। सपक्षमें सत्ता और असपक्षमें असत्ता इन तीन लिङ्गोंके द्वारा स्वार्थानुमान ज्ञान हुआ करता है। इस त्रिविध लिङ्गका विषय न्यायबिन्दुटीकामें इस प्रकार देखनेमें आता है। प्रथम अनुमेय और सपक्षमें जो सत्ता है तथा असपक्षमें अर्थात् विपक्षमें जो असत्ता है, उसका नाम लिङ्ग है। अभी इसके अर्थका विषय देखना चाहिये। अनुमेय अनुमानके विषयीभूत वस्तुमात्र ही अनुमेय शब्दका तात्पर्यार्थ है। किन्तु इसके मतमें अनुमेय कहनेसे ठीक वैसा समझा नहीं जाता; निर्येतव्य जो हेतु और लक्षण है, उस विषयमें जो धर्मी है, वही अनुमेय है। जाननेके लिये अभिलषित विषय ही धर्म है अर्थात् ज्ञातव्य विषय ही धर्म नामसे प्रसिद्ध है। यह अनुमेय जो सत्ता (अस्तित्व) है वह प्रथम है। द्वितीय सपक्षमें सत्ता-समान अर्थ सपक्ष अर्थात् साध्यधर्मके साथ तुल्य जो अर्थ है, उसे सपक्ष कहते हैं। इस सपक्षमें जो सत्ता

(असत्त्व) है वह द्वितीय है। तृतीय असपक्षमें असत्ता है। असपक्ष अग्न्यभिन्न अर्थात् विपक्ष है, उसमें जो असत्ता (असत्त्व) है वह तृतीय है। इसी त्रिविध लिङ्गसे परार्थानुमान होता है।

वस्तु कारणके प्रति दो हेतु हैं, एक प्रतिषेध हेतु और दूसरा समर्थन हेतु। अर्थात् किसी एक वस्तुका साधन करनेसे उसमें प्रतिषेधहेतु और समर्थन हेतु दिया होता है। यह प्रतिषेधहेतु ग्यारह प्रकारका है। यथा—स्वभावानुपलब्धि कार्यानुपलब्धि, व्यापकानुपलब्धि, स्वभावविरुद्धोपलब्धि विरुद्धव्याप्तोपलब्धि, विरुद्ध-कार्योपलब्धि, कार्यविरुद्धोपलब्धि, व्यापकविरुद्धोपलब्धि, कारणानुपलब्धि, कारणविरुद्धोपलब्धि और कारणविरुद्ध कार्योपलब्धि।

स्वभावानुपलब्धि—स्वाभाविक अनुपलब्धि है। यथा—"नात्र धूम उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलब्धेः।" यहां पर धूम नहीं है, क्योंकि यहां उपलब्धि लक्षण प्राप्तिके अर्थात् जिससे धूमका बोध हो सके ऐसे किसी विषयमें उपलब्धि का बोध नहीं है। इस कारण यह स्थिर हुआ कि 'नात्र धूमः' अर्थात् धूम नहीं है; यदि धूम रहता, तो धूमोपलब्धिका बोध हो सकता था। यह धूमज्ञानका प्रतिषेधक होनेके कारण प्रतिषेधक हेतु हुआ है।

कार्यानुपलब्धि—कार्यकी अनुपलब्धि यथा—"नेह प्रतिबद्धसामर्थ्यानि धूमकारणानि सन्ति धूमाभावात्।" पहले कहा जा चुका है कि धूम नहीं है, इस धूमके अभाववशतः अप्रतिबद्धसामर्थ्य जो धूम कारण है, वह भी नहीं है। जब धूम नहीं है तब धूमकारण भी नहीं है, इसीसे कार्यकी अनुपलब्धि हुई।

व्यापकानुपलब्धि—व्यापक वस्तुकी अनुपलब्धि यथा—"नात्र शिंशपा वृक्षाभावात्।" यहां पर शिंशपा वृक्ष नहीं है क्योंकि वृक्षका अभाव है। शिंशपा एक प्रकारका वृक्ष है, यदि यहां कोई वृक्ष न रहे तो शिंशपा वृक्षरूप व्यापकका अभावहेतु शिंशपा व्याप्य की अनुपलब्धि हुई।

स्वभावविरुद्धोपलब्धि—स्वभावसंगत जो विरुद्ध है, उसकी अनुपलब्धि, यथा—"नात्र शीतस्पर्शोऽग्नेरिति।" यहां पर अग्निमें शीतस्पर्श नहीं है। अग्निमें शीतस्पर्श स्वभावविरुद्ध है, अतएव स्वभावविरुद्ध वस्तुकी उपलब्धि होती है। जहां अग्नि रहती है वहां उष्णस्पर्श रहेगा। अग्निमें शीतस्पर्श या अभावमें उष्णस्पर्श नहीं हो सकता, अतएव यहां पर स्वभावविरुद्धोपलब्धि है।

विरुद्धकार्योपलब्धि—विरुद्धकार्यकी उपलब्धि, यथा—'नात्र शीतस्पर्शो धूमादिति।' यहां पर शीतस्पर्श नहीं है, क्योंकि धूम है। धूम रहनेसे उष्णस्पर्श रहेगा ही, यहां विरुद्ध कार्यकी उपलब्धि होती है। विरुद्धव्याप्तोपलब्धि—विरुद्ध जो व्याप्ति है उसकी उपलब्धि।

कार्यविरुद्धोपलब्धि कार्यविरुद्ध जो वस्तु है उसकी उपलब्धि। इत्यादि उदाहरण दुर्बोध्य होनेके कारण छोड़ दिये गये।

स्वार्थानुमानके बाद परार्थानुमान लिखा जाता है।

परार्थानुमान शब्दस्वरूप है। इसमें दूसरेको समझानेके लिये अनुमानस्वरूप शब्दोच्चारण करना होता है। जैसे—तुम निश्चय जानोगे, कि जब धूम दिखाई देता है, तब अवश्य ही वहां वह्नि है इत्यादि। 'परस्मै इदं परार्थं, परार्थं अनुमानं परार्थानुमानं' दूसरेके निमित्त जो अनुमान है, उसे परार्थानुमान कहते हैं। कारणमें कार्योपचार अर्थात् कारण देखनेसे जो कार्य का अनुमान होता है, वही परार्थानुमान है। गौतमके मतसे लिङ्गज्ञानपूर्वक लिङ्गीका जो अनुमान है वह प्रायः एक ही प्रकार है। यह परार्थानुमान दो प्रकार का है, साधर्म्यवत् और वैधर्म्यवत्। यथार्थमें इसके अर्थमें कोई भेद नहीं है। प्रयोगकी अलग भिन्न होनेके कारण प्रयोगानुसार ही इसके दो भेद हुए हैं। इस परार्थानुमानमें व्याप्ति, अन्वय व्यतिरेक आदिका विषय आलोचित हुआ है। इसी परार्थानुमान द्वारा भगवान् ऋषभदेव और वर्धमान प्रभृति मोक्षदातादिका जैनमत और गौतम तथा कपिल आदिका मत खण्डित हुआ है।

धर्मकीर्तिने पहले जैन और हिन्दू प्रभृति दार्शनिकोंका मत खण्डन कर सम्यग्ज्ञानका विषय स्थिर किया है। इस सम्यग्ज्ञानके प्राप्त होनेसे सभी पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, फिर कोई प्रयोजन नहीं रहता। इसका विशेष विवरण न्यायबिन्दु और उसकी टीकामें विस्तृत रूपसे लिखा है।

क्योंकि न्यायशास्त्रके जैसा मीमांसा भी [illegible] तर्कशास्त्र है। उन्होंने न्यायदर्शनके मध्य अधिकांश तर्कशास्त्रकी आलोचना की है। [illegible]

[illegible] संक्षिप्त इतिहास।

किस प्रकार इस भारतवर्षमें न्यायदर्शनकी उत्पत्ति हुई थी, उसका प्रकृत कालनिर्णय करना सहज नहीं है। वर्त्तमान पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है कि बौद्ध प्रभृति सिद्धान्तवादिविरोधियोंका मत खण्डन करनेके लिये हिन्दुओंने तर्कके अनेक नियम प्रचार किये। किन्तु बौद्ध और ब्राह्मणोंके परस्पर संघर्षके परिणाममें खृष्टपूर्व पञ्चम शताब्दीमें न्यायशास्त्रकी उत्पत्ति हुई।

फिर किसी भारतीय पण्डितका मत है—"वैदिक वाक्यसमूहके मतान्तरसाधन-निमित्त जैमिनिने जो सब तर्क और उसके नियम लिपिबद्ध किये थे, वही पहले न्याय नामसे प्रसिद्ध था। आपस्तम्ब-धर्मसूत्रमें द्वितीय अध्यायमें जो न्याय शब्दका उल्लेख है, वह जैमिनिका पूर्व-मीमांसानिर्देशक है और उस अध्यायमें जो न्यायवित् शब्द है उसका अर्थ मीमांसक है। माधवाचार्यने पूर्वमीमांसाका जो सार संग्रह किया था उसका नाम है न्यायमालाविस्तर। लौगाक्षिभास्करने भी न्यायकणिका नामक एक और मीमांसा ग्रन्थकी रचना की। इस प्रकार प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे जाना जाता है कि पहले न्याय शब्द मीमांसा अर्थमें ही व्यवहृत होता था। वेदका अर्थ विचार करनेके उद्देशसे जो सब तर्क या न्याय व्यवहृत होते थे, वे सब न्याय पुस्तकाकारमें संगृहीत हो कर जिस शास्त्रकी उत्पत्ति हुई वही आन्वीक्षिकी-विद्या नामसे प्रसिद्ध था। यथार्थमें यद्यपि जैमिनिका उद्भावित तर्क समूह ही आन्वीक्षिकी विद्याका बीज है, पर वह तर्कसमूह न्याय कहलाता था। शब्दका नित्यानित्य, जीवात्माका स्वरूप, मुक्ति इत्यादि तत्त्वसमूहको आन्वीक्षिकी विद्यामें प्रविनिविष्ट करके गौतमने जो दार्शनिक मत प्रचार किया, वह कालक्रमसे न्याय-शास्त्र नामसे प्रचलित हुआ।

पाश्चात्य और कुछ भारतीय विद्वानोंने न्यायदर्शनकी उत्पत्तिके विषयमें जो कालनिर्णय और युक्ति प्रकाश की है, हम लोगोंके क्षुद्र विचारसे उसका अधिकांश समीचीन जैसा बोध नहीं होता। बुद्धदेवके अभ्युदयके बाद किन्तु [illegible] न्याय वा तर्क-विद्याकी उन्नति हुई अथवा ब्राह्मणका तर्कसमूह जो पूर्वकालसे आलोचित था उसमें परिवर्तन था और पीछे गौतमका न्यायसूत्र प्रकाशित होने पर आलोचित [illegible] न्यायशास्त्रको [illegible] है, यह युक्तिका समर्थन नहीं किया जाता। [illegible] दार्शनिकगण प्रचलित थे [illegible] है। गौतमने [illegible] दार्शनिक [illegible] में अपने सूत्रमें उसका उल्लेख किया है।

ऐतिहासिक [illegible] कि [illegible] वा [illegible] आलोचना हुए हैं। [illegible] गौतमने युक्ति द्वारा [illegible] इस दोनोंको परिशिष्ट [illegible] किया है। कोई कोई गौतमसूत्र [illegible] सूत्रमें [illegible] में, 'दशावयवानि [illegible] अवयवाः' इत्यादि [illegible] होनेसे [illegible] प्रमाण दें। [illegible] उसमें कोई कोई [illegible] १० अवयव स्वीकार करते हैं, वात्स्यायनने उसका उल्लेख किया है। किन्तु गौतमने [illegible] १० अवयव स्वीकार किये हैं इसका प्रमाण नहीं मिलता।

तथा हिन्दूशास्त्रके मतसे—गौतम वा अक्षपाद [illegible] प्रवर्त्तक थे। [illegible] इस न्याय या तर्कशास्त्रको [illegible] बतलाया है।

"[illegible]" ([illegible])

स्कन्दपुराणके मतसे—न्यायशास्त्र १४वीं विद्याके अन्तर्गत है। ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि—"प्रभु-कर्ण" नामक २७वें व्यासके समय प्रभासतीर्थमें सोमशर्माका आविर्भाव हुआ। अक्षपाद, कणाद, उलूक और वत्स ये चार उनके पुत्र थे।

प्रसिद्ध जर्मन पण्डित वेबरसाहबने अपने "संस्कृत साहित्यके इतिहासमें" (पृ। [illegible]) कहा है कि अक्षपाद

नाम माधवाचार्यके सर्वदर्शनसंग्रहमें पाया है किन्तु अक्षपाद नाम नितान्त आधुनिक नहीं है, यह स्कन्द-पुराणकी उक्ति द्वारा प्रमाणित होता है।

पाश्चात्य पण्डितोंने लिखा है कि ४थी शताब्दीमें स्कन्दपुराण और महाभारत ग्रन्थोंमें पाया गया था। सुतरां इसी शताब्दीके बहुत पहिलेसे 'अक्षपाद' नाम प्रचलित था, इसमें सन्देह नहीं। कालीके कथनानुसार उसमें अक्षपाद-दर्शनका उल्लेख है। उद्योतकराचार्यने न्यायवार्त्तिकमें और उसके बाद वाचस्पतिमिश्रने वार्त्तिक तात्पर्यटीकामें न्यायशास्त्र प्रवर्त्तक अक्षपादको प्रणाम कर उनके अपने ग्रन्थका आरम्भ किया है। उद्योतकर और वाचस्पति दोनों ही माधवाचार्यके बहुपूर्ववर्त्ती थे, इसमें सन्देह नहीं।

अक्षपाद नाम क्यों पड़ा, इस सम्बन्धमें आधुनिक नैयायिक समाजमें जो आख्यायिका प्रचलित है वह इस प्रकार है — कृष्णद्वैपायन वेदव्यासने गौतमप्रणीत न्याय सूत्रकी निन्दा की थी। इस कारण गौतमने प्रतिज्ञा कर ली कि वे फिर कभी नहीं वेदव्यासके मुखदर्शन करेंगे। इस पर वेदव्यासने उनकी यथेष्ट अनुनय की। किन्तु गौतमने जो प्रतिज्ञा की है वह कदापि टलनेकी नहीं। पीछे गौतमने पादमें चक्षु प्रकाशित करके उसीके द्वारा व्यासका मुखावलोकन किया। गौतमका अक्षपाद नाम पड़नेका यही कारण है।

यह आख्यायिका किसी पुराणादिमें लिखी नहीं है। स्कन्दपुराणसे जाना जाता है कि अक्षपाद और कणादके पीछे कृष्णद्वैपायन व्यास आविर्भूत हुए थे। फिर महाभारतके आदि पर्वमें (१।१६७१) और शान्ति पर्वमें (१८०।४७ ४८) आन्वीक्षिकी और तर्कविद्याका यथेष्ट निन्दावाद है।

> "आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकाम्।
> हेतुवादान् प्रवदिता वक्ता संसत्सु हेतुमत्॥
> आक्रोष्टा चाभिवक्ता च ब्रह्मवाक्येषु च द्विजान्।"

यहां तक कि आन्वीक्षिकी और तर्कविद्यानुरक्तोंके शृगालयोनि प्राप्तिकी कथा भी वेदव्यास और वाल्मीकिने लिखनेसे छोड़ी नहीं। मालूम होता है, इत्यादि निन्दावाद देख कर ही अक्षपादकी आख्यायिका कल्पित हुई होगी।

आन्वीक्षिकीके सम्बन्धमें मधुसूदन सरस्वतीने प्रस्थान भेद नामक ग्रन्थमें लिखा है—

"न्याय आन्वीक्षिकी पञ्चाध्यायी गौतमेन प्रणीता।"

कृष्णद्वैपायनके समयमें जो नैयायिकगण विद्यमान थे, महाभारतसे ही उनका यथेष्ट परिचय पाया जाता है।

महाभारतके सुविख्यात टीकाकार नीलकण्ठने उपरोक्त महाभारतवर्णित आन्वीक्षिकी और तर्कविद्या शब्दकी ऐसी व्याख्या की है—

"ईक्षा प्रत्यक्ष तामनुमहत्तो ईक्षा अन्वीक्षा पूर्वादि दर्शनेन यदनुमानं तद्मेवानामान्वीक्षिकी तर्कविद्या बाधमनपाद वकादिप्रणीत शास्त्र।"

देवस्वामी, विमलबोध आदि महाभारतके प्राचीनतम टीकाकारोंने भी नीलकण्ठ सरीखी व्याख्या की है।

मनुस्मृतिके मेधातिथि-भाष्यमें भी 'आन्वीक्षिकीश्चापि तर्कविद्याय वाक्यादिका' ऐसा लिखा है। किसी भी प्राचीन व्याख्या ग्रन्थमें आन्वीक्षिकी शब्दका अर्थ 'पूर्वमीमांसावर्णित युक्ति' है ऐसा कहीं भी नहीं लिखा। सुतरां आन्वीक्षिकी विद्या मीमांसाशास्त्रसम्भूत है ऐसा नहीं मान सकते। मीमांसामूलक होने पर वेदव्यास कभी भी आन्वीक्षिकी विद्याका निन्दावाद नहीं करते थे। वेदव्यासने आन्वीक्षिकी या नैयायिकोंकी क्यों निन्दा की है?

आदिपर्वमें २।१६७२ श्लोकके—"नैयायिकानां मुख्येन वक्तव्यमायुर्वेन च।" इत्यादि स्थलमें विमलबोधने दुर्घट प्रकाशिनी नामक भारतटीकामें लिखा है, "नैयायिकानां मुख्येन युक्तिरेव बलीयसी न तु श्रुतिरिति मन्यमानैः" अर्थात् नैयायिक लोगोंने श्रुतिके प्रमाणकी अपेक्षा युक्तिको ही प्रधान माना है। किन्तु मीमांसकगण उलटा मानते हैं। श्रुतिकी अपेक्षा युक्तिका प्राधान्य स्वीकार करनेमें ही नैयायिकगण वेदव्यासके निकट निन्दित हुए हैं।

मीमांसकगण वेदको अपौरुषेय और नैयायिकगण पौरुषेय मानते हैं, यह भी निन्दाका अन्यतम कारण हो सकता है।

मनुसंहिताके भाष्यमें मेधातिथिने भी लिखा है,—"तर्कप्रधाना ग्रन्था लौकिकप्रमाणस्वरूपेण यथा न्याय वैशेषिकलोकायतिका उच्यन्ते। कपिलकणादक्रिया मविरचितानि ग्रन्थान्तादिषु हि शब्दः प्रमाणं तथा चाक्ष पादसूत्रम्। प्रत्यक्षानुमानोपमाः शब्दाः प्रमाणानि वैशे षिका अपि" (१२।१०६) यहां मेधातिथिने भी न्याय-वैशेषिकको लोकायतिक, कपिल आदि निरीश्वरवादीके साथ एक श्रेणीभुक्त किया है।

महाभारत छोड़ कर रामायणके अयोध्याकाण्डमें भी "नैयायिक" शब्दका उल्लेख है। इससे अनुमान किया जाता है कि रामायण-रचनाके पहले ही न्याय-शास्त्रका प्रचार हुआ था एतद्भिन्न पाणिनिने उक्-थादिगणमें 'न्याय' और उक्त गणमूलक ४।२।६० सूत्रमें नैयायिक शब्दस्वीकार किया है। सुश्रुतमें तर्कग्रन्थका नाम और चरकसंहितामें हेतु, उपनय, प्रयत्न, अनुमान इत्यादि बहुतर पारिभाषिक शब्द द्वारा न्यायशास्त्रका प्रसङ्ग सूचित हुआ है।

शबरस्वामीने मीमांसाभाष्यमें उपवर्षके भाष्यसे जो वचन उद्धृत किये हैं, उनसे स्पष्ट जाना जाता है कि उपवर्ष गौतमके न्यायसूत्रसे अच्छी तरह जानकार थे और उन्होंने गौतमका मत कई जगह ग्रहण किया है। श्वेताम्बर जैनोंके उत्तराध्ययनवृत्ति, त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित, ऋषिमण्डलप्रकरण आदि ग्रन्थ पढ़नेसे ज्ञात होता है कि उपवर्ष महाराज नन्दके समयमें पांचवीं शताब्दीके पहले विद्यमान थे।

उपरोक्त अनेक प्रमाण देखनेसे यह मुक्तकण्ठसे कहा जा सकता है कि शाक्यबुद्धके आविर्भावके कई सौ वर्ष पहले गौतमका न्यायशास्त्र प्रचलित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं।

महामहोपाध्याय चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार महाशयने लिखा है कि सभी दर्शनसूत्रोंमें वैशेषिकसूत्र ही प्रथम है। किसी किसीका यह भी मत है कि न्यायसूत्र सभी दर्शनोंका शेष है। किन्तु भिन्न भिन्न दर्शनसूत्रसमूह-की आलोचना करनेसे कौन पहले और कौन पीछे रचित हुआ है इसका स्थिर करना असम्भव हो जाता है। फिर एक ही दर्शनकी एक ही बात भिन्न भिन्न दर्शनोंमें देखनेमें आती है। जैसे—गौतमसूत्रका ३।२।१४ सूत्र और ब्रह्मसूत्रका २।।२४ सूत्र, फिर कणादसूत्रका ३।२।५ सूत्र और गौतमसूत्रका १।१।१० सूत्र मिलानेसे भिन्न दर्शन होने पर भी एक ही बात देखनेमें आती है। ऐसे स्थान पर कौन किसका पूर्ववर्ती है, यह स्थिर करना असम्भव है। इस प्रकार भिन्न दर्शनमें एक ही कथा पा कर दार्शनिक लोग अनुमान करते हैं कि गौतम, कणाद वा बादरायणके समयमें या इनके पहले लोकसमाजमें ये सब युक्तियां या दृष्टान्त प्रचलित थे। यथार्थमें ये सब युक्तियां वा सिद्धान्त सार्वजनिक वा सबोंके मनमें यथासमय उदित हो सकते हैं, इसलिये दूसरे स्वतःप्रवृत्त हो कर जो ग्रहण करें, तो फिर आश्चर्य ही क्या है! किन्तु सभी दर्शनोंका एक विशेषत्व या पारि-भाषिकत्व है जो एक दर्शनके सिवा दूसरे दर्शनमें नहीं है और विशेषत्वनिबन्धनसे ही भिन्न भिन्न दर्शनका भिन्न भिन्न नाम पड़ा है।

जिस दर्शनका जो विशेषत्व है, उसका प्रसङ्ग यदि हम लोगोंको भिन्न दर्शनमें मिले, तो यह अवश्य कहना पड़ेगा कि जिस दर्शनने दूसरे दर्शनका विशेष मत ग्रहण किया है, वह दर्शन परवर्त्तीकालमें लिपिबद्ध हुआ है। सांख्यसूत्रमें "न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिका-दिवत्" (१।२४) इत्यादि सूत्रसे स्पष्ट वैशेषिक मत-खण्डन, "पञ्चावयवसंयोगात् सुखसंवित्ति" (५।२७) और "षोड़शादिष्वप्येवम्" (५।८६) इत्यादि सूत्रसे गौतमसूत्रका खण्डन और "ईश्वरासिद्धेः" (१।९०) इत्यादि सूत्रसे पातञ्जलसूत्रका मत खण्डित हुआ है।

जैमिनिके मीमांसासूत्रमें "औत्पत्तिकस्तु शब्दस्या-र्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे-स्तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्" (१।१।५)

"कर्माण्यपि जैमिनिः फलार्थत्वात्" (३।१।४) इत्यादि सूत्रमें बादरायणका मत खण्डित हुआ है और जैमिनिका नाम पाया जाता है।

फिर वेदान्तसूत्रमें "साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः" (१।२।२८)

"सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति।" (१।२।३१) फिर "तदुपर्य्यपि बादरायणसम्भवात्।" (१।३।२६)

इसके बाद १।१।११ और १।१।१८ सूत्रमें प्रमितिका मत एव "तर्कमनित्यत्वम्" (४।१।२९) इत्यादि सूत्रमें न्यायमतका मत वर्णित हुआ है।

उपरोक्त प्रमाणानुसार देखा जाता है कि सांख्य-सूत्र, वैशेषिकसूत्र और वेदान्तसूत्रके बाद इस दर्शनका सूत्र-बन्धन और दर्शनकारादि नाम हैं तथा न्यायसूत्रमें भी प्रमाणादिका उल्लेख रहनेसे कोई कोई इसे वैशेषिकके पश्चात् मानते हैं। किन्तु वैशेषिक और न्यायसूत्रमें एक दूसरेका उल्लेख किये हुए दर्शनकारोंके नाम का उल्लेख नहीं पाते। इस विचारसे वैशेषिकसूत्रको ही प्रचलित न्यायादि दर्शनसूत्रसे प्राचीन मान सकते हैं। महामहो पाध्याय सतीशचन्द्र महाशयने जो मत प्रकाशित किया है उसीको हम युक्तियुक्त समझते हैं।

न्यायसूत्र (१।१।२) भाष्यमें वात्स्यायनने जो मत प्रकाशित किया है उससे मालूम होता है कि उनके पहलेसे ही न्यायका प्रचार था और प्रचार क्यों न हो कुछ बढ़ती हुई थी। फिर एक जगह वात्स्यायनने कहा है कि गौतमने जिनका विस्तारसे वर्णन नहीं किया, वह वैशेषिक दर्शनसे ग्रहण करना होगा। इससे जाना जाता है कि वैशेषिक और न्याय ये दो मिलकर एक दर्शन गिना जाता था और वैशेषिक लोग कभी भी गौतमसूत्रमें नहीं रहनेके कारण वैशेषिक-को बतलानेके लिए विरोधोंकी मीमांसा करते थे। वात्स्या-यनने न्याय और वैशेषिककी आलोचना करनेमें ये दोनों एक मालूम पड़ते हैं, इस कारण ... और एकत्र संमिलित हुए थे ऐसा जाना जाता है। प्राचीन वैशेषिक मत और न्यायमत भी एक समझा जाता है। वैशेषिकोंके द्रव्यादि छहों न्यायसूत्रमें और न्यायसूत्रके प्रमाणादि वैशेषिकसूत्रमें मिलते हैं। न्यायसूत्रमें द्रव्य गुण कर्म, सामान्य विशेष और समवाय ये छः पदार्थ तथा वैशेषिकसूत्रमें प्रमाण, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान ये सोलह पदार्थ वर्णित हुए हैं।

अब प्रश्न उठता है कि गौतम और कणाद दोनोंने ही जब एक ही समयमें न्यायशास्त्रकी आलोचना की है तब उनका नाम न्याय और दूसरेका वैशेषिक होनेका कारण क्या?

तर्कशास्त्रकी आलोचना करने पर भी कणादने द्रव्यगुणादि छः और प्रत्यक्ष आदिमें इन शास्त्रकी आलोचना की। वे विशेष नामके एक विशेष पदार्थ-को स्वीकार करते हैं, इस कारण उनके दर्शनका वैशेषिक नाम पड़ा। वैशेषिक देखो। गौतमसूत्रमें दूसरे सभी दर्शनोंकी अपेक्षा प्रत्यक्षप्रमाणमें न्यायको विस्तृत आलो-चना है, इस कारण उनका न्यायदर्शन नाम पड़ा है। इस सम्बन्धमें रघुनाथने लौकिक न्यायमें लिखा है—

"प्रमाणाद्यर्थेन व्यवहारा भवन्ति इति न्यायाः। यथा प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि लोकमनस्यर्थप्रतिपादनेऽपि तदेकदेशव्यवहारार्थं च पञ्चधावयवेन न्यायेन प्रतिपादनात् न्यायमार्गमिति तत्त्व च ग्रा।"

न्यायसूत्रके भाष्यकार वात्स्यायनने लिखा है—

'प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।

आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता॥' (१।१।१)

तर्कविद्या सभी विद्याओंका प्रदीपस्वरूप है, सभी कर्मोंका उपाय और निखिल धर्मका आश्रय है।

मानव मिथ्याज्ञानवशसे ही नाना कर्मानुष्ठान कर के जन्मलाभ और बहु दुःखभोग करते हैं। इसलिए मिथ्याज्ञान रहनेसे मानवका दुःखोच्छेद नहीं हो सकता। दुःखोच्छेद करनेमें पहले मिथ्याज्ञानका उच्छेद आव-श्यक है। क्योंकि तत्त्वज्ञान ही मिथ्याज्ञानका निव-र्तक है। आत्मतत्त्वज्ञान होनेसे ही मिथ्याज्ञान जाता रहता है। उस समय मिथ्याज्ञानमूलक दुःख आपसे आप तिरोहित हो जाता है। आत्मतत्त्वज्ञान ही मुक्ति का परम उपाय है। इस आत्मतत्त्वके सम्बन्धमें सम्प्र-दायके भेदसे नाना प्रकारके मतभेद देखनेमें आते हैं। इस कारण इसमें लोगोंको नाना प्रकारका सन्देह हुआ करता है। इससे आत्मतत्त्वका निर्धारण होना दुष्कर है। अतएव सन्देह दूर करके निर्णय करनेके लिए विचार आवश्यक है। मुमुक्षु किस प्रकार उसका विचार करें, महर्षि गौतमने न्यायसूत्रमें उस विचारपद्धतिको निरूपण की है और विचार करनेके उसका प्रयोजनादि

है। ७८ ई०में कनिष्कका अभिषेक हुआ। इस हिसाबसे छठी शताब्दीके द्वितीयार्द्धमें असङ्ग और वसुबन्धुका समय मान सकते हैं। दिङ्नाग कालिदासके प्रति द्वन्द्वी और असङ्गके शिष्य थे। असङ्ग और वसुबन्धु विक्रमादित्यके समसामयिक माने जाते हैं। सुतरां विक्रमादित्य कालिदास और दिङ्नाग ये तीनों छठी शताब्दीके मनुष्य होते हैं।

भीषम्‌ मरहे इस मतको अपने अविकांश सिद्धान्त ग्रहण करते हैं। किन्तु इस मत समीचीन-सा प्रतीत नहीं होता। ह्‌एनसुयङ्गका भ्रमणवृत्तान्त और उनकी जीवनी पढ़नेसे ऐसा ज्ञान नहीं पड़ता कि उनके गुरु शीलभद्र असङ्ग बोधिसत्त्वके शिष्य थे। चीनपरिव्राजक ह्‌एनसुयङ्गने असङ्गबोधिसत्त्व, उनके भाई वसुबन्धु और शीलभद्रका यथेष्ट परिचय दिया है। किन्तु कहीं भी उन्होंने शीलभद्रको असङ्गका शिष्य नहीं बतलाया है। शीलभद्र यदि असङ्गके शिष्य होते, तो चीनपरिव्राजक कभी भी उनका जिक्र किये बिना न रहते बल्कि उनका उल्लेख करनेमें गुरुका गौरव समझते। असङ्ग बोधिसत्त्व चीनपरिव्राजकके सैकड़ों वर्ष पहले विद्यमान थे। असङ्गके भाई और शिष्य वसुबन्धुके परिचयके स्थान पर चीनपरिव्राजकने लिखा है, 'बुद्धनिर्वाणके बाद हजार वर्षके मध्य वसुबन्धु और उनके शिष्य मनोहृत आविर्भूत हुए थे।' चीनवार्त्तावित्‌ रयामुएल बिल साहबने इस विवरणको टीकामें लिखा है 'इस समय च मनोरथ ८५० ई० अर्थात्‌ पहले बुद्धके निर्वाणकालको गणना करते थे। इस हिसाबसे वसुबन्धु और उनके भाई असङ्ग दूसरी शताब्दीके मनुष्य होते हैं।

चीन-बौद्ध ग्रन्थसे जाना जाता है कि वसुबन्धु और दिङ्‌नागाचार्य दोनों ही असङ्गके शिष्य थे, इस तरह दिङ्‌नागाचार्यको भी दूसरी या तीसरी शताब्दीके मनुष्य मान सकते हैं।

चीनपरिव्राजक ह्‌एनसुयङ्गने लिखा है कि वसुबन्धु श्रावस्तीराज विक्रमादित्यकी सभामें उपस्थित हुए थे। चीनपरिव्राजक फाहियान ५वीं शताब्दीमें श्रावस्तीका सम्पूर्ण ध्वंसावशेष देख गये थे। इस हिसाबसे ५वीं शताब्दीके पहले वसुबन्धु जो श्रावस्तीनगरीमें उपस्थित हुए थे इसमें सन्देह नहीं। वसुबन्धुविरचित शत शास्त्र और बोधिचित्तोत्पादनशास्त्र कुमारजीवसे ४०१ ई०को चीनभाषामें अनुवादित हुए। एतद्भिन्न उनके दूसरे दूसरे ग्रन्थ ५वीं शताब्दीको चीनभाषामें अनुवादित हुए थे। फिर कोई कोई चीनपण्डित इत्सिङ्गका विवरण उद्धृत करके कहते हैं कि बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्त्ति इत्सिङ्गके समसामयिक थे। इत्सिङ्गने ६८२ ई०में अपना ग्रन्थ समाप्त किया। अतएव उससे कुछ पहले धर्मकीर्त्तिने ख्याति लाभ की थी। इत्सिङ्गकी कथा एक बातमें ही विश्वासयोग्य नहीं है। इसमें तत्कालीन समस्त इतिहासविरुद्ध ऐसी अनेक बातें हैं जो किसी मतसे प्राचीन मानी नहीं जा सकतीं। चीन और भोटके सभी बौद्धग्रन्थोंमें धर्मकीर्त्ति असङ्गके शिष्य बतलाये गये हैं। असङ्ग वसुबन्धुके ज्येष्ठ सहोदर और गुरु थे, यह चीनपरिव्राजक ह्‌एनसुयङ्गने भ्रमणवृत्तान्तमें लिखा है।

चीन बौद्धसमाजमें बोधिसत्त्वों की जो धारावाहिक तालिका प्रचलित है उससे इस प्रकार जाना जाता है—

वसुबन्धु २१वें उनके शिष्य मनोहृत २२वें और बोधिधर्म २८वें बोधिसत्त्व हुए थे। इन बोधिधर्मने ५२० ई०को चीनदेशमें पदार्पण किया। इस तरह उनसे बहुत पहले वसुबन्धुका आविर्भाव स्वीकार करना पड़ता है। भोटग्रन्थमें भी लिखा है कि प्रसिद्ध नैयायिक धर्म-कीर्त्ति वसुबन्धुके शिष्य थे। अतः ५वीं शताब्दीके बहुत पहले धर्मकीर्त्तिका जीवन साबित होता है। आधुनिक भोटदेशीय तारानाथ और सुम्पखन्‌पोका कथा स्थान स्थान पर मतिभ्रम और असमीचीन होनेके कारण उसका परित्याग करना उचित है। बौद्धग्रन्थकी आलोचना करनेसे यह साफ जाना जाता है कि २री या ३री शताब्दीके मध्य असङ्ग, वसुबन्धु दिङ्नाग और धर्मकीर्त्तिने बौद्धसमाजको अलङ्कृत किया था।

दिङ्नागादिके बहुत पहले आर्य नागार्जुन आविर्भूत हुए थे। भोटदेशीय बौद्धग्रन्थके मतसे बुद्धनिर्वाणके ४०० वर्ष पीछे राजा कनिष्क और नागार्जुनका अभ्युदय हुआ था। भोटदेशीय बौद्धोंके मतानुसार ई०सन्‌से ५४० वर्ष पहले बुद्धदेवका निर्वाण हुआ। अतः

कनिष्क और नागार्जुन १ली शताब्दीके मनुष्य होते हैं। अध्यापक मोक्षमूलरने लिखा है कि कनिष्क ७८ ई०में अभिषिक्त हुए। सम्प्रति यह मत उलट गया है। एक बार ख्यातनामा प्रत्नतत्त्वविद डाक्टर बुह्लरने नवाविष्कृत बहुतसी प्राचीन मुद्राकी सहायतासे भावेना-प्राच्य-समितिकी पत्रिकामें प्रकाशित किया था कि कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव प्रभृति शकराजाओंका राज्याङ्क जो शकसम्वत्के समान गिना जा रहा है, अभी उसे बहुत पीछेका जानना चाहिये अर्थात् ईसा-जन्मके किसी समयमें कनिष्कके समयका निर्णय करना चाहिये। उन्हींके समयमें नागार्जुन आविर्भूत हुए थे। चीनपरिव्राजक यूएनचवङ्गके विवरणसे हम लोगोंको पता लगता है, कि बोधिसत्व नागार्जुनने 'न्यायद्वार-तारकशास्त्र' प्रकाशित किया। चीनदेशीय दार्शनिक ग्रन्थसमूहको विवरणमूलक तालिकासे जाना जाता है कि उस पुस्तकमें हिन्दू-नैयायिक भरद्वाज वात्स्यका मत उद्धृत हुआ है। बौद्धाचार्यवर्णित भरद्वाज वात्स्य सम्भवतः भाष्यकार वात्स्यायन थे।

अब हिन्दूग्रन्थोंमें दिङ्नागादिका परिचय कैसा लिखा है वह देखना चाहिये।

सम्राट् हर्षवर्द्धनके सभासद् कवि वाणभट्टने अपने श्रीहर्षचरितमें वसुबन्धुके 'अभिधर्मकोष' और सुबन्धुके 'वासवदत्ता' ग्रन्थका उल्लेख किया है। केवल इतना ही नहीं, श्रीहर्षचरितके अष्टमोच्छ्वासकी आलोचना करनेसे इसका अधिकांश वासवदत्ताकी नकल है, ऐसा बोध होता है। वाणभट्टने गम्भीर भावमें कहा है—

"कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।" इससे जाना जाता है कि वासवदत्ताकी सुख्याति वाणभट्टके समयमें सब जगह फैली हुई थी। इस हिसाबसे वाणभट्टसे कमसे कम ५०।६० वर्ष पहले वासवदत्ताकार-सुबन्धु आविर्भूत हुए थे। वाणभट्टने ६०६से ६२० ई०के मध्य हर्षचरित प्रकाशित किया। यह सम्राट् हर्षवर्द्धनका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है। वासवदत्ताके टीकाकार नरसिंहवैद्यने सुबन्धुके विषयमें लिखा है, 'कविरयं विक्रमादित्यसभ्यः। तस्मिन् राज्ञि लोकान्तरं प्राप्ते एतन्निबन्धं कृतवान्," अर्थात् कवि सुबन्धु विक्रमादित्यके सभ्य थे। राजाके स्वर्गवास होने पर कविने इस वासवदत्ताकी रचना की। यह कौन विक्रमादित्य थे? चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने उज्जयिनी-दर्शनकालमें वर्णन किया है कि उनके ६० वर्ष अर्थात् ५८० ई०के पहले शिलादित्य विक्रमादित्य नामक एक महापण्डित और बुद्धिमान् राजा उज्जयिनीमें राज्य करते थे। अभी मालूम होता है कि वासवदत्ताकार सुबन्धुने (६ठी शताब्दीमें) उक्त शिलादित्य विक्रमादित्यकी सभा उज्ज्वल की थी। ६ठी शताब्दीमें सुबन्धुने वासवदत्तामें दिङ्नाग, न्यायस्थिति, उद्योतकर, धर्मकीर्ति, मल्लनाग आदि प्राचीन दार्शनिकोंके नाम लिखे हैं और "केचिज्जैमिनिमतानुसारिण इव तथागतमतध्वंसिनः" एवं "मीमांसान्याय इव विहितदिगम्बरदर्शनः"—इत्यादि उक्ति द्वारा सुप्रसिद्ध कुमारिलभट्टके प्रसङ्गकी आलोचना की है। उक्त प्रमाण द्वारा जाना जाता है कि ६ठी शताब्दीके पहले दिङ्नाग, उद्योतकराचार्य, धर्मकीर्ति, कुमारिल आदि आविर्भूत हुए थे सुबन्धुसे बहुत पहले उन्होंने धर्मजगत् आलोकित किया था, जैनग्रन्थोंमें उनके अनेक प्रमाण मिलते हैं।

भारतप्रसिद्ध बौद्धजैनमतोच्छेदकारी मीमांसावार्त्तिककार भट्ट कुमारिलने समन्तभद्ररचित आप्तमीमांसामें प्रतिष्ठापित स्याद्वादमतका खण्डन किया है। तदुत्तरमें उनके परवर्त्ती दिगम्बराचार्योंने जैनश्लोकवार्त्तिक तथा और दूसरे दूसरे ग्रन्थ लिख कर कुमारिल पर आक्रमण किया। इन सब प्रतिवादकारियोंमें आप्तमीमांसाकी अष्टसहस्री नामक टीकाके रचयिता विद्यानन्दका नाम पहले देखनेमें आता है। प्रसिद्ध जैनपट्टधर माणिक्यनन्दीने अपने 'परीक्षामुख' नामक ग्रन्थमें आप्तमीमांसाके टीकाकार अकलङ्क और विद्यानन्दका नाम उद्धृत किया है। फिर प्रसिद्ध जैन कवि और दिगम्बराचार्य प्रभाचन्द्रने 'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड' नामक परीक्षामुखटीकामें अकलङ्क, विद्यानन्द और माणिक्यनन्दीका प्रसङ्ग लिखा है।

राष्ट्रकूटराज अमोघवर्षके गुरु प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेनने ७०५ शक अर्थात् ७८३ ई०में हरिवंशपुराणकी रचना की। उनके आदिपुराणमें अकलङ्क, विद्यानन्द, पात्रकेशरी, प्रभाचन्द्र और उनके न्यायकुमुदचन्द्रोदय ग्रन्थका उल्लेख है—

'चन्द्रांशुशुभ्रयशसं प्रभाचन्द्र' कविं स्तुवे।
कृत्वा चन्द्रोदयं येन शश्वदाह्लादितं जगत्॥
चन्द्रोदयकृतस्तस्य यशः केन न शस्यते।
यदाकल्पमनाम्लानि सतां शेखरतां गतम्॥
महाकलङ्कधीरत्नकेशरीणां गुणाः।
विदुषां हृदयाम्भोजे हारायन्तेऽतिनिर्मलाः॥"

उपरोक्त श्लोकमें जिनसेनने जिस प्रकार प्रभाचन्द्रकी प्रशंसा की है, वह उल्लेखयोग्य है। प्रभाचन्द्र यदि उनके समसामयिक होते, तो जिनसेन उनका वो समका किन करते। इस तरह हम लोग प्रभाचन्द्रको जिनसेन-से पूर्ववर्ती अर्थात् ८वीं शताब्दीके मनुष्य मान सकते हैं। माणिक्यनन्दी उनसे पूर्ववर्ती थे क्योंकि प्रभाचन्द्र अपने ग्रन्थमें माणिक्यनन्दीको यथेष्ट प्रशंसा कर गये हैं। दिगम्बरोंके सरस्वतीगच्छकी पट्टावलीके मत से माणिक्यनन्दी ५८५ विक्रम-संवत्में अर्थात् ५२८ ई०-में पट्टधर हुए थे। पट्टधर होनेके पहले अर्थात् ६ठी शताब्दीके प्रथमभागमें माणिक्यनन्दीने 'परीक्षामुख' की रचना की। पहले ही कहा जा चुका है कि माणिक्य-नन्दीने विद्यानन्द पात्रकेशरीका नाम और उनकी आप्तमीमांसाटीका उद्धृत की है। इस प्रकार विद्या-नन्द माणिक्यनन्दीके पूर्ववर्ती और ५वीं शताब्दीके किसी समयके मनुष्य होते हैं।

प्रभाचन्द्र और श्लोकवार्त्तिककार विद्यानन्द दोनों-ने ही कुमारिलभट्टके मतका खण्डन किया है। उनके ग्रन्थमें दिङ्नाग धर्मोत्तर, धर्मकीर्त्ति भर्तृहरि, प्रज्ञाकर प्रभाकर और कुमारिलके नाम साफ साफ उद्धृत हुए हैं। इनमेंसे विद्यानन्दने 'अष्टसहस्री' नामक प्रकरणमें इन सबका खण्डन किया है।

अधिक दिनकी बात नहीं है, कि अध्यापक पिटर्सन साहबने गुजरातके पाटनग्रन्थालयसे जैनाचार्य मल्लवादि-विरचित न्यायबिन्दुटिप्पन नामक एक जैनन्याय ग्रन्थ संग्रह किया है। धर्मोत्तराचार्यने धर्मकीर्त्तिरचित न्याय बिन्दुकी जो टीका लिखी है, उस टीकाका मत खण्डन करनेके लिये ही मल्लवादीने 'न्यायबिन्दु-टिप्पन' प्रका-शित किया। पिटर्सन साहबने जैनग्रन्थकी दिखलाया है, कि मल्लवादी ८८४ वीरसंवत् अर्थात् ३२८ ई०में विद्यमान थे।

अभी हम लोग जैनमतानुसार देखते हैं कि मल्ल-वादीके पहले धर्मोत्तर, उनसे पहले धर्मकीर्त्ति, उनसे पहले प्रज्ञाकर और प्रज्ञाकरसे पहले दिङ्नागाचार्य होते हैं। पहले जिसी ग्रन्थका प्रचार होते ही कामसे बहुत दिन बाद उस पर टीका टिप्पणीका प्रकाश बहुत थोड़े समयमें नहीं हो सकता। जिस समयकी बात कह रहे हैं, उस समय मुद्रायन्त्र नहीं था, अतएव आज कलके जैसा पुस्तक प्रचारकी सुविधा भी न थी। इस हिसाबसे एक पुस्तक के तैयार हो जाने पर उस ग्रन्थका प्रचार होने और भिन्न सम्प्रदायसे उसको टीका टिप्पणी करनेमें कम से कम १०।१० वर्ष लगते थे। अतः मल्लवादीके सौ वर्ष पहले हम लोग दिङ्नागका होना स्वीकार कर सकते हैं। इससे पहले जैनदेशीय प्राचीन ग्रन्थानुसार मालूम हुआ है कि दिङ्नागाचार्यके गुरु वसु और वसुबन्धु २री या ३री शताब्दीके किसी समय विद्यमान थे। अभी हिन्दू बौद्धमतका भी समर्थन करता है।

इसके पहले कहा जा चुका है, कि विद्यानन्द पात्रकेशरीने ५वीं शताब्दीमें अकलङ्क और समन्तभद्रके न्याय ग्रन्थ का उल्लेख किया है। अकलङ्कने भी अष्टशती नामक समन्तभद्रकी आप्तमीमांसाकी टीका लिखी है। अतएव समन्तभद्र इसी शताब्दीके बहुत पहले आविर्भूत हुए थे, इसमें सन्देह नहीं। श्वेताम्बर जैनियोंके खरतर गच्छकी पट्टावलीके अनुसार समन्तभद्रने १२५ वीरसंवत्के कुछ पहले अर्थात् ५८ ई०में पट्टसे अधिष्ठित हुए। दिगम्बरोंके मतसे उनके पहले ही उन्होंने आप्तमीमांसाकी रचना की। इस समन्तभद्रकी आप्तमीमांसामें विभिन्न दार्शनिक-मतवादियोंके न्यायभाष्यकार वात्स्यायन-युक्ति-मतखण्डन भी देखा जाता है। सुतरां वात्स्यायन १ली शताब्दीके बहुत पहले आविर्भूत हुए थे।

प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्रने वात्स्यायनके और कितने नाम प्रकाशित किये हैं—

"वात्स्यायनो मल्लनागः कौटिल्यश्चणकात्मजः।
द्रमिलः पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः॥"
(अभिधानचि०)

हेमचन्द्रकी उक्ति द्वारा वात्स्यायनको हम लोग चाणक्यसे अभिन्न मान सकते हैं, किन्तु पाश्चात्य और देशीय संस्कृतानुरागी पुराविद्गण हेमचन्द्रके उस वचन पर विश्वास नहीं करते।" क्योंकि वे लोग वात्स्यायनका ५वीं शताब्दीमें होना स्वीकार करते हैं। उनकी युक्ति पहले ही खण्डित हुई है। अब यह देखना चाहिये कि हेमचन्द्रकी उक्ति प्रामाण्य है वा नहीं।

६ठी शताब्दीमें सुबन्धुने 'मल्लनाग-विरचित कामसूत्रों'-का उल्लेख किया है। फिर सुप्रसिद्ध शङ्कराचार्य, उदयनाचार्य और वाचस्पतिमिश्र पक्षिलस्वामीका नाम दे कर वात्स्यायनका न्यायभाष्य उद्धृत कर गये हैं। महेश्वरने विश्वप्रकाश अभिधानमें लिखा है—

"मल्लनागोऽभ्रमातङ्गे वात्स्यायनमुनावपि।" इत्यादि उदाहरण द्वारा वात्स्यायनका दूसरा नाम जो मल्लनाग और पक्षिलस्वामी था, वह प्रमाणित होता है। अब प्रश्न उठता है कि कामसूत्रके रचयिता वात्स्यायन और न्यायभाष्यकार वात्स्यायन दोनों एक व्यक्ति थे वा नहीं?

न्यायभाष्य और कामसूत्रकी भाषा अच्छी तरह पढ़नेसे यदि दोनोंको एक ही मनुष्यकी रचना मान लें तो अयुक्ति नहीं होगी।

अभी वात्स्यायनके भिन्न भिन्न नाम, पाटलिपुत्र नगरके कामसूत्रमत, चाणक्यकी तर्कविद्याविशारदता और बौद्ध तथा जैनग्रन्थानुसार ई०सन्‌से बहुत पहले वात्स्यायन और चाणक्यके आविर्भाव इत्यादिकी पर्यालोचना करनेसे मालूम होता है कि वात्स्यायन और चाणक्य दोनों एक ही व्यक्ति थे।

वैशेषिकसूत्रके भाष्यकार प्रशस्तपादने कई जगह बौद्धमतका निराकरण किया है। किन्तु वात्स्यायनने कहीं भी बौद्ध-प्रसङ्गका जिक्र नहीं किया। यदि उनके समयमें बुद्धमतका विशेष प्रचार होता, तो अपरापर ब्राह्मणभाष्यकारोंकी तरह वे भी बौद्धमतका खण्डन किये बिना न रहते। इससे ज्ञात होता है कि वात्स्यायनके समयमें बौद्धमतका विशेषरूपसे प्रचार नहीं था। इस हिसाबसे भी वात्स्यायनको अति प्राचीनकालके मनुष्य मान सकते हैं।

विभिन्न समयके नैयायिकग्रन्थोंका पाठ कर अभी हम लोग न्यायदर्शनको कई एक स्तरोंमें विभक्त कर सकते।

१म सूत्रयुग। २य भाष्ययुग। ३य संघर्षयुग। ४र्थ समर्थन वा व्याख्यायुग। ५म नव्य न्यायका आविर्भाव।

१म युगमें अर्थात् सूत्रयुगमें गौतमका सूत्रग्रन्थ प्रकाशित हुआ। पहले उनके मतानुवर्त्ती केवल शिष्यसम्प्रदाय ही सूत्रालोचना करते थे। उस समय केवल उनके शिष्योंमेंसे शिष्यपरम्परानुसार सूत्र अधीत वा आलोचित होता था। उस समय सूत्रसमूह नैयायिकोंके कण्ठस्थ था, लिपिबद्ध नहीं होता था। पीछे कई शताब्दी बीत जाने पर शिष्यपरम्पराके मध्य प्रकृत पाठ और व्याख्या ले कर बड़ी गड़बड़ी उठी। उसी समय न्यायसूत्र लिपिबद्ध करनेका प्रयोजन हुआ था। पार्श्वनाथ, महावीर आदि धर्मवीरोंके मतानुसारी नैयायिकगण न्यायसूत्रका अर्थ ले कर अपना अपना स्वाधीन मत, यहां तक कि वेदविरुद्ध मत प्रकाशित करने लगे। इससे ब्राह्मण्य-धर्मावलम्बी नैयायिकोंके हृदय पर आघात पहुंचा। उसी समय न्यायसूत्रकी व्याख्या करके जनसाधारणको प्रकृत सूत्रका अर्थ समझानेका प्रयोजन पड़ा। इस समय भाष्ययुगका परिवर्त्तन हुआ। वात्स्यायनने इस युगमें सूर्यस्वरूप प्रादुर्भूत हो कर अपनी असाधारण युक्ति और विद्याप्रभावसे भाष्य प्रकाशित किया। उनके सुविचारपूर्ण प्रमाणशास्त्रकी आलोचना करनेसे विस्मित होना पड़ता है, उनकी सुविचारप्रणालीकी पर्यालोचना करनेसे उन्हें हम लोग भारतके अरिष्टल कह सकते हैं। ई०सन्‌के पूर्वोसे २री शताब्दीके पहले तक भाष्ययुग था अर्थात् इस समय हिन्दू नैयायिकगण स्वाधीनभावसे न्यायशास्त्रकी आलोचना करते थे।

सम्राट् अशोकके प्राधान्यलाभके साथ साथ बौद्धधर्म भी विशेष प्रबल हो उठा। हिन्दूदार्शनिकगण लुप्त-प्राय होने लगे। इसी समयसे बौद्धगण वैशेषिक और

न्यायका विशेष आदर करने लगी। इस समय जो सब बौद्धग्रन्थ प्रचारित हुए थे, उनमें न्यायशास्त्रके सिवा पूर्व प्रमाण कथित हुआ। धर्मपदमें अवयवत्व और नाना प्रकारका योनिसम्भव, कर्मफलभोग, कर्मानुसार जन्म या नरकमें जा कर पुरस्कार या दण्डप्राप्ति अपवर्गावस्थित अर्थात् मुक्ति ही दुःखसे परित्राणका उपाय है, ज्ञानोदय होनेसे मुक्ति लाभ होती है और मुक्ति ही परम पुरुषार्थ है इत्यादि न्यायदर्शनमें जिसका मत और भाष्यमें देखा जाता है। अधिक सम्भव है कि न्यायके जिन शास्त्रोंसे बौद्धोंने यह मत ग्रहण किये होंगे। इसीसे मालूम होता है कि परवर्ती बौद्धोंमें नागार्जुन और उनके शिष्य आर्यदेव, दिङ्नाग और धर्मकीर्त्ति न्यायशास्त्रके निकट नितान्त ऋणी समझे गये थे। यहां तक कि नैयायिक अनुमानवादमें नागार्जुन और उनके शिष्योंको वैदिकधर्मवादी ब्राह्मण, बौद्ध, जैन आदिके साथ मिलनेमें बाधा नहीं आयी। ई० ५वीं शताब्दीमें इस मतानुसार न्यायसूत्रका सूत्रपात हुआ। इस समय प्रसिद्ध जैनाचार्य भद्रबाहुने 'न्यायावतारशास्त्र' प्रकाशित किया। इनके कुछ समय बाद जातक-विद् प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य समन्तभद्रने आप्तमीमांसामें न्यायमतका खण्डन किया। पीछे जैनमतके न्यायविद् भट्टाकलङ्कने 'न्यायविनिश्चय' या 'प्रमाणविनिश्चय' ग्रन्थ प्रकाशित कर जैनियोंके मध्य एक अभिनव न्याययुगका प्रवर्तन किया। अकलङ्कके बाद जैनसमाजमें भद्रबाहुरचित न्यायावतारशास्त्रकी व्याख्या, सिद्धसेन दिवाकरकृत न्यायावतारसूत्र और दिङ्नागाचार्यका 'प्रमाणसमुच्चय' प्रकाशित हो कर बौद्धोंमें न्यायशास्त्र आदृत हुआ। इन सब शास्त्रग्रन्थोंमें वैदिकधर्मसम्मत रीतिविरुद्ध मत प्रकाशित हुआ था। उक्त ग्रन्थोंमें दिङ्नागाचार्यका 'प्रमाणसमुच्चय' ग्रन्थ ही प्रधान न्यायग्रन्थके जैसा बौद्धसमाजमें गृहीत हुआ था। क्योंकि न्यायके १६ पदार्थोंमें केवल 'प्रमाण' स्वीकार कर उन्होंने उसमें प्रमाणके विषयकी ही विस्तृत आलोचना की है।

इस समय दिङ्नागाचार्यके विपक्ष हो करके हिन्दू न्यायकी रक्षा करनेके लिए उद्योतकराचार्यने 'न्यायवार्त्तिक'का प्रचार किया। न्यायवार्त्तिकको आजकल तत्त्वबोध हिन्दूसमाजने प्रधान समझा था। बौद्ध भी चुपचाप न रहे। धर्मकीर्त्तिने प्रमाणसमुच्चयके ऊपर प्रमाणवार्त्तिक लिख कर उद्योतकराचार्यके मत का खण्डन किया। धर्मकीर्त्तिने 'न्यायबिन्दु' नामक भी एक स्वतन्त्र न्यायग्रन्थ लिखा है, विनीतदेवने सबसे पहले उसकी टीका लिखी। प्रमाणवार्त्तिकका खण्डन करनेके लिए उस समय कोई हिन्दू नैयायिक अग्रसर न थे। उसी शताब्दीमें सुविख्यात मीमांसक प्रभाकर और कुमारिलभट्टने प्रादुर्भूत हो कर दिङ्नाग, धर्मकीर्त्ति, समन्तभद्र आदि बौद्ध और जैन नैयायिकोंके मतका खण्डन किया है। मीमांसावार्त्तिककारका मत खण्डन करनेके लिये कुछ समय बाद ही बौद्धपण्डित धर्मोत्तराचार्य तर्कक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। उनकी न्यायबिन्दुटीकामें मीमांसकका मत खण्डित हुआ है। उस समय हिन्दू और बौद्धके बीच मानो भयानक वाद चल रहा था। जैनियोंके साथ भी बौद्धोंका इसी प्रकार तर्कयुद्ध हुआ था। जैसे भी 'प्रबन्धचिन्तामणि'में लिखा है—

"एक समय विद्यादेवीकी सभामें श्वेताम्बर जैन और बौद्धोंके बीच घोरतर तर्कयुद्ध उपस्थित हुआ। दोनों सम्प्रदायने आपसमें ऐसी प्रतिज्ञा की थी, 'जिस पक्षके लोग विचारमें पराजित होंगे उन्हें देश छोड़ कर चला जाना होगा।' विचारमें जैन बौद्धोंको जीत गये। श्वेताम्बर जैनोंकी जीत हुई। अब उनको पवित्र शान्तिमय मूर्ति इलाकेमें स्थापित हुई। विद्यादेवीका मन्दिर भी उस समय बहुत बड़ा है, इस कारण बौद्धोंने उसे भारतमें रहना नहीं चाहा। क्रमशः जब जब बड़े हुए, तब कुमारिलने प्रतिज्ञापालन और वैदिकधर्म पुष्ट करनेके लिये विद्यापीठ स्थापन करने लगी। अन्तमें देवी सरस्वतीकी कृपासे उन्हें न्यायशास्त्र लाभ हुआ। इस न्यायके प्रभावसे उन्होंने बौद्धोंको सम्पूर्ण रूपसे पराजित किया। उनके पाण्डित्यप्रभावसे श्वेताम्बर धर्मकी ज्योति पुनः चमकने लगी। वे बादमें उपाधि लाभ कर इस समयके आचार्य बप्पभट्टि नामसे प्रसिद्ध हुए।

६९८ ई०के निकटवर्त्ती किसी समयमें मल्लवादीने 'न्यायबिन्दुटिप्पन' प्रकाशित कर धर्मोत्तराचार्यका मत खण्डन किया। इसके कुछ समय पीछे ८वीं शताब्दीमें दिगम्बराचार्य विद्यानन्दपात्रकेशरीने समन्तभद्रका स्याद्वादमत स्थापन और कुमारिलका मत खण्डन करनेके लिये जैनश्लोकवार्त्तिकका प्रचार किया। उन्होंने 'प्रमाणपरीक्षा' नामक न्याय-ग्रन्थमें दिङ्नागका मत विशेषरूपसे खण्डन किया है। उनका यह न्यायग्रन्थ दिगम्बर समाजमें विशेष आदृत होता है।

विद्यानन्दके समयमें भारताकाशमें हम लोगोंने शङ्कराचार्यरूप वेदान्तिक सूर्यका विकाश देखा। इनकी प्रभासे बौद्ध, जैन और दूसरे दूसरे दार्शनिक नक्षत्र होनप्रभ हो गये। वेदान्तकी गौरवप्रभा समस्त भारतमें प्रकाशित हुई। शङ्करावतार महात्मा शङ्कराचार्यने उपरोक्त उपवर्ष प्रभृति दार्शनिकोंके नाम या मत उद्धृत तथा असाधारण उपनिषदीय ज्ञानबलसे सभी दर्शनोंका मत खण्डन किया। पहले ही कहा जा चुका है कि उनके अभ्युदयकालमें बौद्ध, जैन और मीमांसक मत ही भारतवर्षमें प्रबल था। इस समयके नैयायिक और वैशेषिकगण बौद्ध तथा जैन समाजमें मानो मिल गये थे अर्थात् इस समय बौद्धों और जैनोंके मध्य कितने ही नैयायिक और वैशेषिक दर्शनवित् आविर्भूत हुए थे। मालूम पड़ता है, कि इसी कारण शङ्कराचार्यने बौद्धों और जैनोंके साथ नैयायिकों तथा वैशेषिकोंको घृणादृष्टिसे देखा है। न्याय और वैशेषिकमें अति निकट सम्बन्ध है। न्यायदर्शनमें प्रकृत अभिज्ञता लाभ करनेमें वैशेषिकदर्शन भी पढ़ना होता था, यह न्यायभाष्यकार वात्स्यायनकी उक्तिसे हो जाना जाता है। शङ्कराचार्यने वैशेषिकको अर्द्धवैनाशिक या अर्द्धबौद्ध बतलाया है। सम्भवतः शङ्कराचार्यके शारीरकभाष्यादि प्रचार होनेसे नैयायिक और वैशेषिकगण विच्छिन्न हो गये थे। मालूम पड़ता है कि शङ्कराचार्यका तीव्र प्रतिवाद देख कर हिन्दू नैयायिकगण वैशेषिककी अवहेला करने लग गये। वैशेषिकके विच्छिन्न होने पर न्यायदर्शनकी भी अवनतिका सूत्रपात हुआ। दिगम्बर पट्टधर माणिक्यनन्दीने ५८५ सम्वत् अर्थात् ५२७ ई०को कुछ पहले प्रमाण-परीक्षाके व्याख्यास्वरूप परीक्षामुख नामक एक विस्तृत न्यायग्रन्थकी रचना की। इस ग्रन्थमें समन्तभद्र, अकलङ्क और विद्यानन्दका मत आलोचित हुआ है। उनके बाद प्रसिद्ध जैन कवि और नैयायिक प्रभाचन्द्रका अभ्युदय हुआ। उन्होंने प्रमेयकमलमार्त्तण्ड नामक परीक्षामुखकी एक टीका लिखी है। इस ग्रन्थमें जैन न्यायमतकी समालोचना और उपवर्ष, दिङ्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्त्ति, भर्तृहरि, शबरस्वामी, प्रभाकर और कुमारिल आदिका मत जगह जगह पर खण्डित है। एतद्भिन्न उनके ग्रन्थमें ब्रह्माद्वैतवाद भी निराकृत हुआ है।

बादमें ७वीं और ८वीं शताब्दीके बीच किसी ख्यातनामा हिन्दू नैयायिक या हिन्दू न्यायग्रन्थका सन्धान नहीं मिलता। ७वीं शताब्दीमें बाणभट्टने ईश्वरकारिभिः इत्यादिरूपमें हिन्दू नैयायिकोंका उल्लेख किया है। भवभूतिके मालतीमाधवसे भी जाना जाता है कि ८वीं शताब्दीमें न्यायशास्त्रकी विशेष चर्चा थी। इस समय विख्यात बौद्धाचार्य कमलशीलने आविर्भूत हो कर जैन और हिन्दूमतखण्डन करनेके लिये 'तर्कसंग्रह' नामक बौद्धमतपूर्ण एक न्यायग्रन्थ प्रकाशित किया। तर्कसंग्रहके पहले ही कमलशीलने लिखा है—

"कर्मतत्फलसम्बन्धव्यवस्थादिसमाश्रयम् ।
गुणद्रव्यक्रियाजातिसमवायाद्युपाधिभिः ॥
शून्यमारोपिताकारशब्दप्रत्ययगोचरम् ।
स्पष्टलक्षणसंयुक्तप्रमाद्वितीयनिश्चितम् ॥
अणीयसापि नांशेन मिश्रीभूतापरात्मकम् ।
असंक्रान्तिमनाद्यन्तं प्रतिबिम्बादिसन्निभम् ॥
सर्वप्रपंचसन्दोह-निर्मुक्तमगतं परैः ।
स्वतन्त्रश्रुतिनिःसंगो जगद्धितविधित्सया ॥
अनल्पकल्पासंख्येयसात्मीभूतमहादयः ।
यः प्रतीत्यसमुत्पादं जगाद वदतां वरः ॥
तं सर्वज्ञं प्रणम्यायं क्रियते तर्कसंग्रहः ॥"

कमलशीलने अपने तर्कसंग्रहमें ईश्वरकारित्ववाद, कपिलकल्पित आत्मवाद, औपनिषद्कल्पित आत्मवाद और ब्रह्माद्वैतवाद आदिका खण्डन कर स्वतःप्रामाण्यवाद संस्थापन किया है।

९वीं शताब्दीमें शिवादित्यव्योमाचार्यने प्रशस्तपाद रचित वैशेषिक सूत्रभाष्यके ऊपर व्योमवती नामक वृत्ति और सप्तपदार्थीकी रचना कर प्राचीन मत पल्लवित किया। इसी समयसे समन्वय वा न्यायानुगमका सूत्रपात हुआ। कणादने पहले षट्पदार्थ स्वीकार किया और प्रशस्तपादने विशद भाष्य द्वारा उसे समझाया। अभी शिवादित्यने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थोंके अलावा 'अभाव' नामक एक और अतिरिक्त पदार्थ स्वीकार किया। इन्होंने वा इन्हींने ईश्वरकारणवाद अर्थात् जगत्‌कर्त्ता ईश्वरका निरूपण किया था। वात्स्यायनभाष्य, उद्योतकराचार्यके वार्त्तिक आदि प्राचीन न्याय ग्रन्थोंमें उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। बौद्ध नैयायिकोंने ईश्वरकारणवाद का खण्डन कर ईश्वरको उड़ा देनेकी चेष्टा की। इधर जैनोंने भी आप्तमीमांसा, प्रमाणमीमांसा, प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणसमुच्चय, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, प्रमेयरत्नमालालङ्कार, न्यायावतार, सन्मतितर्क, तत्त्वार्थसूत्र, अष्टसहस्री, [illegible] शास्त्रवार्तासमुच्चय आदि ग्रन्थोंमें जगत्कर्त्ता ईश्वरवादका खण्डन किया। शिवादित्य न्यायाचार्यके अपने ग्रन्थमें ईश्वरवाद प्रचार करनेकी चेष्टा करने पर भी उनका उद्देश्य सिद्ध न हुआ। इसके बाद दो जैनाचार्य अभयदेवसूरिने 'वादमहार्णव' नामक न्यायग्रन्थ लिख कर जैनमतका स्थापन किया। जैन भट्टारक देवसेनने ९९० संवत्‌में 'नयचक्र' नामक एक न्यायग्रन्थकी रचना कर उक्त मतकी आलोचना की। इसके बाद षड्दर्शनटीकाकृत् सुप्रसिद्ध वाचस्पतिमिश्रका अभ्युदय हुआ। उनका प्रकृत आविर्भाव काल ले कर मतभेद था। किन्तु उनके 'न्यायसूचीनिबन्ध'के प्रकाशित हो जानेसे उनके आविर्भावकालके विषयमें कोई मतभेद नहीं रहता। उक्त न्यायसूचीनिबन्धके शेष भागमें लिखा है कि उन्होंने यह ग्रन्थ ८९८ शकमें समाप्त किया।

"न्यायसूचीनिबन्धोऽसावकारि सुधियां मुदे।
श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वस्वङ्कवसु (८९८) वत्सरे॥"

उन्होंने न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीकाके प्रारम्भमें लिखा है—

"इच्छामि किमपि पुण्यं दुस्तरकुनिबन्धपङ्कमग्नानाम्।
उद्योतकरगवीनामतिजरतीनां समुद्धरणात्॥"

यथार्थमें इन्होंने उद्योतकरका ईश्वरकारणवादकी स्थापना करनेके लिये जो न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका प्रकाशित की। इस ग्रन्थमें ईश्वरसाधनका विशेषरूपसे कीर्तन है। इनके कुछ समय बाद मिथिलामें नैयायिक उदयनाचार्य आविर्भूत हुए। उदयनाचार्य-रचित लक्षणावलिके शेषमें ग्रन्थरचनाका काल लिखा है—

"तर्काम्बराङ्कप्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्॥"

इस श्लोकसे मालूम होता है कि वाचस्पतिमिश्रके ८ वर्ष पीछे अर्थात् ९०६ शकमें उदयनाचार्यने ग्रन्थकी रचना की थी। वाचस्पतिमिश्र विभिन्न मतावलम्बियोंका मत निरास कर ईश्वरवाद और आत्मवादके प्रचारमें विशेषरूपसे यत्नवान् नहीं हुए, इस कारण उदयनाचार्यने 'न्यायवार्त्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि', कुसुमाञ्जलि, बौद्धधिक्कार, आत्मतत्त्वविवेक, किरणावली आदि ग्रन्थ लिख कर समस्त बौद्धादिविभिन्न मतोंका विशेषरूपसे खण्डन किया। उनके आविर्भावसे हिन्दूसमाजमें पुनः अभिनव न्यायानुगमका आविर्भाव हुआ ऐसा कहनेमें भी कोई अत्युक्ति नहीं। क्योंकि वे ही पुनः हिन्दुओंके मध्य न्यायशास्त्र स्थापन किया और वे ही असाधारण पाण्डित्य तथा तर्कशक्तिके प्रभावसे बौद्धोंका मूलोच्छेद करनेमें समर्थ हुए। इसी उदयनाचार्यके समय दक्षिणराढ़में [illegible] भूरिसृष्टि ग्राममें श्रीधराचार्यने पाण्डुदास राजाके आश्रयमें प्रशस्तपादभाष्यके टीकास्वरूप न्यायकन्दलीकी रचना की। न्यायकन्दलीके शेषमें लिखा है, 'त्र्यधिकदशोत्तरनवशतशकाब्दे न्यायकन्दली रचिता' अर्थात् ९१३ शकाब्दमें न्यायकन्दली रची गई।

इस न्यायकन्दलीसे जाना जाता है कि ९०० वर्ष पहले भी इस देशमें न्याय और वैशेषिक शास्त्रकी विशेषरूपसे आलोचना होती थी। इसके बाद भासर्वज्ञने न्यायसार-भूषण नामक एक छोटा सर्वाङ्गपूर्ण न्यायग्रन्थकी रचना की। पीछे १२वीं शताब्दीके प्रारम्भमें आनन्द नामक किसी अघोर नैयायिकका नाम मिलता है। किन्तु दुःखका विषय है कि उनके बनाये हुए किसी ग्रन्थका

अनुसन्धान नहीं पाते। इस समय नरचन्द्रसूरि नामक किसी जैनाचार्यने न्यायकन्दली-टिप्पनकी रचना कर फिरसे जैनमत स्थापनकी चेष्टा की। उनका अनुकरण कर सिद्धसेन नामक एक दूसरे जैनने प्रायः १२४२ सम्वत्‌में 'प्रमाणप्रकाश' नामक एक जैन न्यायग्रन्थका प्रचार किया। इस समय विजयहंसगणि नामक एक और जैन-पण्डितने भासर्वज्ञरचित न्यायसारको टीका लिख कर ईश्वरकारणवादको उड़ा देनेकी चेष्टा की। १२५२ ई०में सारङ्गके पुत्र राघवभट्टने न्यायसारविचार नामक न्यायसारकी एक दूसरी टीका कर हिन्दू-नैयायिकमत संस्थापन किया। बादमें रामदेवमिश्रके पुत्र वरदराजने न्यायदीपिका तार्किकरक्षा आदि कई एक न्यायग्रन्थोंकी रचना की। इनमें माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें तार्किकरक्षाके वचन उद्धृत किये हैं। पीछे जयन्तभट्टने १२८६ ई०के लगभग न्यायकलिका और न्यायमञ्जरी नामक दो न्यायग्रन्थ लिखे। १२२६ शक अर्थात् १३०४ ई०में विख्यात जैनाचार्य जिनप्रभसूरि षड्‌दर्शनी नामक एक दार्शनिक ग्रन्थकी रचना कर ईश्वरकारणवाद खण्डन करनेमें यत्नवान् हुए। तदनन्तर तिलकसूरि और पीछे जिनप्रभके उपदेशानुसार उनके दो शिष्य, इन तीनोंने तीन न्यायकन्दलोपञ्जिका प्रणयन की। शेषोक्त दोके नाम थे रत्नशेखरसूरि और राजशेखरसूरि। राजशेखरसूरिने न्यायकन्दलीपञ्जिकामें लिखा है, कि "पहले प्रशस्तपादने वैशेषिकसूत्रका भाष्य प्रकाशित किया। पीछे व्योम शिवाचार्यने व्योमवती नामक उसकी वृत्ति, उसके बाद श्रीधराचार्यने न्यायकन्दली नामक सन्दर्भ, पीछे उदयनाचार्यने किरणावली और अन्तमें श्रीवत्साचार्यने लीलावतीकी रचना की। शेषोक्त चार ग्रन्थ जनसाधारणके सहजबोध्य नहीं होनेके कारण मैं यह न्यायकन्दलीपञ्जिका लिख रहा हूं।" उनके ग्रन्थमें न्याय-वैशेषिककी अनेक बातें रहने पर भी उन्होंने प्रच्छन्नभावसे पूर्वतन जैन-नैयायिकोंके मतका समर्थन किया है। वे प्रकाश्यरूपसे यद्यपि ईश्वरवादका निराकरण नहीं करते थे, तो भी उनका ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है कि वे 'एक कट्टर निरीश्वरवादी थे। सुप्रसिद्ध उदयनाचार्यके समयसे ही भारतवासी बौद्ध नैयायिकोंका सम्पूर्ण अधःपतन हुआ था। राजशेखरके बादसे ही जैनदार्शनिकोंको भी अवनतिका सूत्रपात हुआ है। राजशेखरके कुछ पहले केशवमिश्रको तर्कभाषा रची गई। इसीके बाद नव्य न्यायका आविर्भाव हुआ।

१४वीं शताब्दीके प्रारम्भमें सुप्रसिद्ध गङ्गेशोपाध्याय प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने असाधारण तर्कबुद्धिके प्रभावसे 'तत्त्वचिन्तामणि' प्रकाशित कर नैयायिकोंके मध्य युगान्तर उपस्थित किया। प्राचीन नैयायिकोंने केवल सिद्धिके उद्देश्यसे ही तत्परता दिखाई है। उदयनके समयसे जटिल तर्कसमूहकी आलोचना तो होती थी, पर उनका लक्ष्य भ्रष्ट नहीं हुआ। वे मूल पदार्थतत्त्वकी आलोचनामें व्याप्त थे, वृथा आडम्बरमें प्रवृत्त नहीं हुए। इस समय गङ्गेशने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार खण्डात्मक तत्त्वचिन्तामणि नामक एक विस्तृत प्रमाणग्रन्थका प्रचार किया। पूर्वतन नैयायिकोंके १६ पदार्थ स्वीकार करने पर भी इन्होंने केवल 'प्रमाण' स्वीकार किया। गौतम और वात्स्यायनादि प्रवर्त्तित न्यायदर्शनमें आत्मतत्त्व, देहतत्त्व, मुक्तितत्त्व, ईश्वरतत्त्व आदि दर्शनप्रतिपाद्य विषय वर्णित हुए हैं। नव्यन्यायके आविर्भावसे न्यायशास्त्रका दार्शनिकतत्त्व लोप होने पर आ गया। नव्यनैयायिकोंका प्रधान उद्देश्य था अपवर्ग। किन्तु प्राचीनोंने जिस पन्थका अवलम्बन किया है, नव्य लोग वैसा नहीं करते। नव्यन्यायमें कहीं कहीं मूलपदार्थतत्त्वकी अति संक्षिप्त आलोचना रहने पर भी वह उल्लेखयोग्य नहीं है। गङ्गेशकी चिन्तामणिमें ईश्वरानुमान अपूर्ववाद इत्यादि स्थान भिन्न अध्यात्मतत्त्वकी आलोचना नितान्त अल्प है। यहां तक कि गङ्गेशने बीच बीचमें गौतमका भी मत खण्डन किया है। उनके ग्रन्थमें केवल तर्कका आडम्बर देखा जाता है। इस तर्कके तूफानमें पड़ कर नव्यनैयायिकगण प्राचीन न्यायशास्त्रसे दूर हट गये हैं। नव्यनैयायिकोंने केवल वाक्य ले कर विचार, अवयवसमूह और विशेषण पदका खण्डन, विशेषणान्तरप्रक्षेपसे उसका समर्थन इत्यादि वाक्‌जालकी घटा विस्तार की है। उन्होंने धीशक्तिकी पराकाष्ठा दिखा कर केवल तर्कमार्गका

को आश्रय लिया है। प्रत्यक्ष, उपमान, अनुमान और शब्द इन चार प्रमाणचिन्तामणिके ऊपर नव्यन्यायशास्त्र प्रतिष्ठित हुआ है। गङ्गेश इस नव्यन्यायके प्रवर्त्तक थे, पर स्थापक नहीं। तत्त्वचिन्तामणिके रचने पुत्र वर्द्धमान, वर्द्धमानके बाद पक्षधरमिश्र, शङ्करमिश्र, वासुदेव सार्वभौम, रघुनाथशिरोमणि, जयराम तर्कालङ्कार, मथुरानाथ तर्कवागीश, गदाधर भट्टाचार्य, दिनकरमिश्र आदि न्यायाचार्यो ने नाना प्रकार पदार्थविचार और युक्तिके प्रभावसे नव्यन्यायका मत स्थापन कर गये हैं।

मिथिलामें नव्यन्यायकी जन्मभूमि होने पर भी, उसे नव्यन्यायका गौरव नहीं प्राप्त हुआ। सरस्वतीका लीलानिकेतन नवद्वीपधाम ही प्रकृत नव्यन्यायकी रङ्गभूमि है। वासुदेव सार्वभौम और रघुनाथशिरोमणि देखो।

प्रवाद है कि बङ्गदेशमें पहले न्यायशास्त्रकी विशेष चर्चा न थी। बङ्गाली मिथिलामें न्यायशास्त्र पढ़ने जाया करते थे। वहां पाठ समाप्त होने पर गुरुके निकट पढ़ी हुई पुस्तक छीन कर घर आना पड़ता था। इसी कारणसे बङ्गदेशमें न्यायशास्त्रकी अध्यापना नहीं होती थी। अन्तमें सुप्रसिद्ध वासुदेव सार्वभौम समस्त न्यायशास्त्र और कुसुमाञ्जलिको कण्ठस्थ कर बङ्गदेश आये और वे ही सबसे पहले नवद्वीपमें न्यायका विद्यालय खोल कर न्यायशास्त्रकी अध्यापना करने लगे। इनके प्रधान शिष्य रघुनाथशिरोमणिने मिथिलाके सुपण्डित मैथिल पक्षधरमिश्रको तर्कशास्त्रमें पराजित कर नवद्वीपमें न्यायशास्त्र स्थापन किया। उनकी चिन्तामणिदीधिति नामक तत्त्वचिन्तामणिकी टीकामें उनकी प्रतिभा और असाधारण तर्कशक्ति परिस्फुट हुई है। अद्वैतप्रकाश नामक ग्रन्थमें लिखा है कि महाप्रभु चैतन्यदेवने भी एक तर्कशास्त्रकी टीका लिखी है। किन्तु कोई रघुनाथ ने उनकी टीका देख अपने मानकी लाघवता समझ दुःख प्रकाश करेंगे, यह जान कर गौराङ्गदेवने गङ्गाजलमें अपनी टीका फेंक दी।

अद्भुत श्रीचैतन्यदेवके अभ्युदयकालमें नवद्वीपमें भी न्यायशास्त्र स्थापित हुआ, आज भी नवद्वीपका न्यायगौरव समस्त भारतवर्षमें विज्ञापित होता है। आज भी मिथिला, काशी, काञ्ची, तैलङ्ग आदि दूर दूर देशोंसे विद्यार्थीगण न्यायशास्त्र पढ़नेके लिए नवद्वीप आया करते हैं।

नवद्वीपके नैयायिकोंने जिन सब नाना ग्रन्थ लिख कर ख्याति लाभ की है, आफ्रेक्ट साहबने कटलगमें उनके तथा ग्रन्थके नाम ओष लिए गए हैं। इस अखण्ड युगमें विख्यात महेशचन्द्र पण्डितने प्रमाणप्रकृति और प्राचीन भारतका संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया है। उनमें जिनमें ग्रन्थ नवद्वीपके अन्तर्गत नहीं होने पर भी इसी युगमें लिखे रहनेके कारण उनके नाम भी इस तालिकामें सन्न दिये गये हैं।

ग्रन्थकार। न्यायग्रन्थके नाम।

अग्निहोत्र भट्ट—तत्त्वचिन्तामणि आलोककी टीका।

अनन्तभट्ट—पदमञ्जरी।

अनन्ताचार्य—शतकोटीखण्डन और सद्युक्तिरत्नमाला।

अनन्तदेव—आकाशवाद।

अनन्तनारायण—हरिदासको नामक भाषापरिच्छेदकी टीका, तर्कपदटीका।

अनन्तदेव महाचार्य—सिद्धान्तरहस्य।

अनन्त—शाब्दटीका।

उमापति उपाध्याय (रत्नपतिके पुत्र)—पदार्थीय दिव्यचक्षु।

काशीश्वर—पदमञ्जरी।

कृष्णतर्कालङ्कार—शक्तिविचार।

कृष्णदत्त—मनोरमा नामक न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीकी टीका।

कृष्णन्यायवागीश भट्टाचार्य (गोविन्द न्यायालङ्कारके पुत्र)—न्यायसिद्धान्तमञ्जरीकी भावदीपिका नामक टीका।

कृष्णभट्ट आर्डे (काशीवासी दाक्षिणात्य)—१ कालिका नामक गादाधरीविवृति, २ मञ्जूषा नामक जयदेव रचित, ३ सिद्धान्तरत्न नामक जागदीशी टीका, ४ शब्दचन्द्रिका, ५ कृष्णभट्टीय न्याय, ६ सिद्धान्तमञ्जरी। इनके सिवा और भी कितने छोटे छोटे ग्रन्थ लिखे हैं, यथा—व्याप्तिपञ्चकविवरणटीका, अनुमितिपरामर्शटीका, अनुमितिकारणताविचार, अवच्छेदकत्वनिरुक्तिविवरणटीका, अवयवप्रकरणटीका, अवयवटिप्पनी, अभिनवपूर्वपक्ष-

हस्टोका, असिद्धग्रन्थरहस्यटीका, आख्यातवादटिप्पनो, उदाहरणलक्षणवृहट्टीका, उपाधिदूषकतावीजवृहट्टीका, कूटघटितलक्षणवृहट्टीका, केवलव्यतिरेकी ग्रन्थरहस्य-टीका, केवलान्वयिग्रन्थरहस्यटीका, चतुर्दशलक्षणी, चित्ररूपविचारदीपिका, तर्कग्रन्थवृहट्टीका, तर्करहस्य-टीका, तृतीयमिश्रलक्षणवृहत्टीका, द्वितीय चक्रवर्ति लक्षणवृहत्टीका, द्वितीय प्रगल्भलक्षणवृहत्टीका, द्वितीय-मिश्रलक्षणवृहत्टीका, पक्षताटीका, पक्षलक्षणी वृहत्-टीका, परामर्श पूर्वपक्षग्रन्थवृहत्टीका, परामर्शरहस्य-टीका, पुच्छलक्षणवृहत्टीका, पूर्वपक्षग्रन्थविवृति, प्रतिज्ञालक्षणवृहत्टीका, प्रथमचक्रवर्तिलक्षणवृहत्-टीका, प्रथममिश्रलक्षण वृहत्टीका, बाधसिद्धान्तग्रन्थ-वृहत्टीका, लिङ्गविशेषण, विरुद्धग्रन्थरहस्यटीका, विरुद्ध-पूर्वपक्षग्रन्थ वृहत्टीका, विशेषनिरुक्तिवृहत्टीका, विशेषव्याप्तिरहस्यटीका, व्याप्तिग्रहरहस्यटीका, व्याप्त्य-नुगमरहस्य, व्याप्तिवाद, शक्तिवाद, सङ्गतिवाद, सत्प्रति-पक्षग्रन्थरहस्य, सत्प्रतिपक्षसिद्धान्त, सव्यभिचार ग्रन्थ-रहस्य, सामान्यनिरुक्तिरहस्य, सामान्यलक्षणरहस्य, सामान्याभावरहस्य, स्वप्रकाशवादार्थ, हेत्वाभास इत्यादि। इसके सिवा और भी कितने क्रोड़पत्र लिखे हैं।

कणादाम—नञ्वादटिप्पनी, तत्त्वचिन्तामणिदीधिति-की प्रसारिणी नामक टीका।

कण्वभट्ट—पञ्चलक्षणीटीका, सिंहव्याघ्रटीका।

कणमिश्र आचार्य—अनुमितिपरामर्श, गादाधरी-टीका, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिप्रकाश, वृहत्तर्कतरङ्गिणी, तर्कप्रतिबन्धक-रहस्य, लघुतर्कसुधा, तर्कसुधाप्रकाश, नञर्थवादटीका, लघुन्यायसुधा, पदार्थखण्डनटिप्पन-व्याख्या, पदार्थपारिजात, बोधबुद्धिप्रतिबन्धकताविचार, भवानन्दीप्रदीप, वादसंग्रह, वादसुधाकर, वायुप्रत्यक्ष-तावाद, शक्तिवादटीका, सामग्रीपदार्थ, सिद्धान्तरहस्य। (इसके अलावा कई एक क्रोड़पत्र।)

कण्वमिश्र—चिन्तामणि।

केशवभट्ट—न्यायचन्द्रिका, न्यायतरङ्गिणी।

केशवभट्ट (अनन्तके पुत्र)—तर्कभाषाकी तर्क-दीपिका नामक टीका।

कोण्डभट्ट (भट्टोजी दीक्षितके भ्रातुष्पुत्र)—तर्क-प्रदीप, तर्करत्न, न्यायपदार्थदीपिका।

कौण्डिन्यदीक्षित—तर्कभाषाप्रकाशिका।

गङ्गाधर—तर्कदीपिकाटीका।

गङ्गाधर—न्यायचन्द्रिका, सामग्रीवाद।

गङ्गाधर (सदाशिवके पुत्र)—तर्कचन्द्रिका।

गङ्गारामभट्ट—न्यायकुतूहल।

गङ्गाराम जडो (नारायणके पुत्र)—तर्कामृतचषक और उसकी टीका, टिमकरोद्गुरुत्म।

गङ्गेश दीक्षित—तर्कभाषाटीका।

गणेश दीक्षित (भावा विश्वनाथ दीक्षितके पुत्र और विज्ञानभिक्षुके शिष्य)—तर्कभाषाकी तत्त्व प्रबोधिनी नामक टीका।

गदाधरभट्टाचार्य—कुसुमाञ्जलिव्याख्या, गादाधरी नामक (तत्त्वचिन्तामणिदीधिति और तत्त्वचिन्तामण्या-लोककी टीका) सुविस्तीर्ण न्यायग्रन्थ। इनके बनाये हुए कितने खण्ड पाये जाते हैं जिनमेंसे निम्नलिखित उल्लेखयोग्य हैं,—

अतएवचतुष्टयिरहस्य, अनुकरणविचार, अनुप-संहारिग्रन्थरहस्य, अनुपसंहारिवाद, अनुमाननिरूपण, अनुमितिटिप्पन, अनुमितितत्त्ववाद, अनुमितिमानस-वादार्थ, अनुमितिरहस्य, अनुमितिसंग्रह, अन्यथा-ख्यातिवाद, अन्वयवादटीका, अन्वयव्यतिरेकी, अपूर्ववाद, अवच्छेदकतानिरुक्ति, अवच्छेदकता वाद, अवयवग्रन्थरहस्य, अवयवनिरूपण, अष्टादश-वाद, असाधारणवाद, असिद्धग्रन्थरहस्य, आकाश-वाद, आख्यातवाद वा आख्यातविचार, आत्मतत्त्व विवेकदीधितिटीका, आलोकटिप्पनी, उत्पत्ति-वाद, उदाहरणलक्षणटीका, उपनयलक्षणटीका, उपसर्गविचार, उपाधिवाद, उपाधिसिद्धान्तग्रन्थटीका, कारकवाद, केवलव्यतिरेकिरहस्य, केवलान्वयिरहस्य, चतुर्दशलक्षणी, चित्ररूपवाद, तदादिसर्वनामविचार, तर्कग्रन्थरहस्य, तर्कवाद, तात्पर्यज्ञानकारणताविचार-रहस्य, तादात्म्यवाद, त्वतलादिभावप्रत्ययविचार, द्वितीय-प्रगल्भलक्षणटीका, द्वितीयस्वलक्षणटीका, द्वितीयादि-व्युत्पत्तिवाद, धर्मितावच्छेदकप्रत्यासत्तिधर्मितावच्छे-दकवाद, नञर्थवादटीका, नञर्थसन्दिग्धार्थविचार, नव्यधर्मतावच्छेदकवादार्थ, नव्यमतरहस्य, नव्यमत-

विचार, निरुक्तिविचार, पक्षतावाद और पक्षतारहस्य, पक्षतावादार्थ, पक्षधर्मता पक्षवादटीका, परामर्श रहस्य, परामर्शवादार्थ, पूर्वपक्षग्रन्थटीका पूर्वपक्ष रहस्य, पूर्वपक्षादि पूर्वसिद्धान्तपक्षता, प्रतिज्ञालक्षण टीका, प्रत्यक्षखण्डसिद्धान्तलक्षण, प्रथमप्रगल्भलक्षण-टीका, प्रथमलक्षणपर्यविवरण प्रामाण्य, प्रामाण्यवाद, प्रामाण्यवादटीका, प्रामाण्यवादरहस्य बाधकरहस्य बाधतावाद, बाधबुद्धिवाद बाधबुद्धिवादार्थ, बुद्धिवाद, मूलोन्मर्दवाद, मुक्तिवाद, मुक्तिवाद मुक्तिवादार्थ, मोक्षवाद, रत्नकोषवादार्थरहस्य, लक्षणवाद, लिङ्गवादार्थ विरुद्धविचारपत्राकार विरुद्धहेत्वाभासवादार्थ वायुप्रत्यक्षवाद विधिवाद, विधिस्वरूपवादार्थ, विरुद्धग्रन्थरहस्य विरुद्धपूर्वपक्षटीका विरुद्धसिद्धान्तटीका, विरोधवाद, विरोधिग्रन्थ, विशिष्टवैशिष्ट्य ज्ञानवादार्थ, विशिष्ट वैशिष्ट्योपविचार, विषयताज्ञानवाद, विशेषव्याप्तिटीका विशेषव्याप्ति विषयतावाद, वृत्तिवाद व्यधि-करणधर्मावच्छिन्नवाद व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव, व्याप्तिपञ्चकोपाध्यटीका, व्याप्तिनिरूपण, व्याप्तिपञ्चकटीका, व्याप्तिवाद, व्याप्त्यनुगमटीका व्युत्पत्तिवाद, व्युत्पत्ति वादार्थ शक्तिवाद, शब्दपरिच्छेद, शब्दालोक-रहस्य संशयपक्षतावाद संशयवाद, संशयवादार्थ, सङ्गतिवाद, सत्प्रतिपक्षानुमितिवाद, सत्प्रतिपक्षरहस्य सत्प्रति पक्षग्रन्थ, सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षटीका सत्प्रतिपक्षवाद-पत्र सत्प्रतिपक्षवाद सर्वनामशक्तिवाद सव्य-भिचारपूर्वपक्ष सव्यभिचारवाद, सव्यभिचारसामान्य निरुक्ति सव्यभिचारसिद्धान्त टीका, साधारणवाद साधारणविवरण, साध्यसाध्य साधारणपूर्व ग्रन्थ वा साधारणवाद, साधारणसामान्यानुगम वादिविरोधलक्षण, सामग्रीवाद सामग्रीवादार्थ, सामान्यनिरुक्ति पूर्वपक्ष, सामान्याभाव, सामान्याभावव्यवस्थापन, सामान्यलक्षण टीका, सामान्यवादटीका, सामान्याभावस्थापन, सिद्धान्तलक्षणटीका, सिद्धान्तग्रन्थ सिद्धान्तलक्षणरहस्य, सिद्धान्तपत्रकोड, सिद्धान्तवाद, हेतुग्रन्थटीका, हेत्वाभास निरूपण, हेत्वाभाससामान्यलक्षण इत्यादि।

गुणानन्द विद्यावागीश (मधुसूदनके शिष्य)—आत्मतत्त्वविवेकदीधितिटीका, न्यायकुसुमाञ्जलिविवेक, शब्दालोकविवेक।

गुरुभट्ट—तर्कभाषाटीका।

गुरुपण्डित—भवानन्दीटीका और गुरुपण्डितीय नव्यन्यायमतविचार।

गोकुलनाथ मैथिल (महामहोपाध्याय)—तत्त्वचिन्तामणिकी 'रश्मिचक्र' नामक टीका, तत्त्वचिन्तामणि दीधितिद्योत तर्कतत्त्वनिरूपण, न्यायसिद्धान्ततत्त्व, पदार्थरत्नाकर।

गोपालन्यायालङ्कार—अनुपसंहारिविचार, अनुमितिमानसत्वविचार, असत्प्रमाणवाद, आकाङ्क्षादिविचार, ईश्वरवाद, ईश्वरानुमानवाद, एकत्वाद्यसिद्धिवाद कारणतावाद ज्ञानकारणतावाद, तत्त्वचक्रवाद, नव्यमतवाद, परामर्शवादार्थ बाधबुद्धिवाद, रामपुरुषवाद, वह्निविम, वादपत्रिका, विधिवाद, शिवाशिवावाद, समाप्तिवाद शाब्दबोधवाद। (इनके सिवा और भी छोटे छोटे ग्रन्थ)

गोपीकान्त (वंशीधरके पुत्र)—न्यायप्रदीप।

गोपीनाथमिश्र—तत्त्वचिन्तामणिविचार।

गोपीनाथमौनी—न्यायकुसुमाञ्जलिविकाश वा न्याय-विकाश।

गोपीनाथठक्कुर (भवनाथके पुत्र)—तर्कभाषाभाव प्रकाशिका।

गोवर्धन न्यायरत्न—माथुरीकी न्यायरत्न नामक टीका। इस टीकाके मध्येसे अनेक अंशमें पाये जाते हैं, यथा—अनुमितिविशेषण, असिद्धपूर्वपक्ष, असिद्ध सिद्धान्त, उपाधिपूर्वपक्ष, उपाधिसिद्धि, कूटघटितलक्षण, कूटाघटितलक्षण, केवलान्वयी, तृतीयप्रगल्भ, तृतीयमिश्र, द्वितीयमिश्रलक्षण, पक्षतापूर्वपक्ष, पक्षतासिद्धान्त, पक्ष-धर्मता, परामर्शपूर्वपक्ष, पुच्छलक्षण, प्रतिज्ञा, प्रथम चक्रवर्ती, प्रथममिश्र, बाधपूर्वपक्ष, बाधसिद्धान्त, सामान्यनिरुक्ति, हेतु प्रभृतिका विवेचन।

गोवर्धनमिश्र (पद्मनाभके पुत्र)—तर्कभाषाप्रकाश, न्यायबोधिनी नामक तर्कसंग्रहकी टीका।

गोवर्धनरङ्ग—न्यायार्थबोधिनी नामक तर्कसंग्रहकी टीका।

गोस्वामी—गादाधरी टीका।

गौरीकान्त सार्वभौम—भावार्थदीपिका नामक

तर्कभाषाटीका, तर्कसंग्रहटीका, मुक्तावली और 'गौरीकान्तीय' नामक नव्यन्यायमतविचार।

गौरीनाथ—तर्कपल्लव।

चक्रधर—न्यायमञ्जरीग्रन्थभङ्ग।

चतुर्भुजपण्डित—तत्त्वचिन्तामणिदीधितिविस्तार।

चन्द्रनारायण आचार्य—कुसुमाञ्जलिटीका, गादाधरी व्यानुगम, गदाधरके अनुमानखण्डकी टीका, गौतमसूत्रवृत्ति, जागदीशीक्रोड़टीका, जागदीशीचतुर्दशलक्षणीपत्रिका, तत्त्वचिन्तामणिटिप्पनी, तर्कसंग्रहटीका, न्यायक्रोड़पत्र।

चन्द्रयभट्ट—तर्कपरिभाषा।

चित्रभट्ट (विष्णुदेवाराध्यके पुत्र, १४वीं शताब्दी)—तर्कभाषाप्रकाशिका, निरुक्तिविवरण, चित्रभट्टीय।

जगदानन्द—न्यायमीमांसा।

जगदीश तर्कालङ्कार भट्टाचार्य (भवानन्दके शिष्य १६४८ ई०के पहले)—तत्त्वचिन्तामणिदीधितिप्रकाशिका, तर्कदीपिकाव्याख्या, तर्कामृत, तर्कालङ्कारटीका, न्यायलीलावतीप्रकाशदीधितिटीका, शब्दशक्तिप्रकाशिका। इनके बनाये हुए और भी कितने खर्र मिलते हैं, यथा—

अनुमितिरहस्य, अवच्छेदकत्वनिरुक्ति, अवयवग्रंथरहस्य, आख्यातवाद, आपत्तिविचार, उदाहरणलक्षणदीधितिटीका, उपनयलक्षणदीधितिटीका, उपाधिग्रंथरहस्य, उपाधिवादटीका, केवलव्यतिरेकरहस्य, केवलान्वयि ग्रन्थदीधितिटीका, केवलान्वयिग्रन्थरहस्य, चतुर्दशलक्षणी, तर्कग्रंथरहस्य, तृतीयचक्रवर्त्ति लक्षणदीधितिटीका, तृतीयप्रगल्भलक्षणदीधितिटीका, द्वितीयचक्रवर्त्तिलक्षणदीधितिटीका, द्वितीयलक्षणदीधितिटीका, पक्षताटिप्पनी, पक्षतापूर्वपक्षग्रंथदीधितिटीका, पञ्चलक्षणी, परामर्शपूर्वपक्षटीका, परामर्शरहस्य, परामर्शहेतुताविचार, पुच्छलक्षणटीका, पूर्वपक्षरहस्य, प्रतिज्ञालक्षणदीधितिटीका, प्रथमचक्रवर्त्तिलक्षणटीका, प्रथमस्वलक्षणटीका, प्रामाण्यवाद, बाधग्रंथरहस्य, भावरहस्यमामाद्य, भूयोदर्शन, विरुद्धग्रंथरहस्य, विशेषनिरुक्ति, विशेषलक्षणटीका, विशेषव्याप्तिरहस्य, विषयताव्याप्तिवादार्थ, व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावटीका, व्याप्तिग्रहोपायरहस्य, व्याप्तिपञ्चकटीका, व्याप्तिवाद, व्याप्त्यनुगमरहस्य, सद्धेत्वनुमितिवाद, सत्प्रतिपक्षग्रंथरहस्य, सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षग्रंथटीका, सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तग्रंथटीका, सव्यभिचारग्रंथरहस्य, सव्यभिचारसामान्यनिरुक्ति, सव्यभिचारसिद्धान्तग्रंथटीका, सामान्यनिरुक्तिरहस्य, सामान्यनिरुक्तिटीका, सामान्यलक्षणटीका सामान्यलक्षण और सामान्याभावरहस्य, सिंहव्याघ्रटिप्पनी, सिद्धान्तलक्षणरहस्य, सिद्धान्तलक्षणटीका, हेत्वाभास इत्यादि।

जगन्नाथतर्कपञ्चानन—'जगन्नाथीय' न्याय।

जगन्नाथपण्डित—नञ्वादविवेक।

जयदेव (पक्षधरमिश्र)—तत्त्वचिन्तामणि-आलोक, (चिन्तामणिप्रकाश, मण्यालोक वा आलोक नामसे भी प्रसिद्ध है), द्रव्यपदार्थी, न्यायपदार्थमाला, न्यायलीलावतीविवेक।

जयदेव (नृसिंहके पुत्र)—न्यायमञ्जरीसार।

जयनारायणदीक्षित—तर्कमञ्जरी।

जयराम न्यायपञ्चानन भट्टाचार्य (रामभद्रके शिष्य)—तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका, न्यायकुसुमाञ्जलिटीका न्यायसिद्धान्तमाला, पदार्थमणिमाला। इसके अलावा और भी कितने खर्र मिलते हैं।

जयसिंहसूरि—न्यायतात्पर्यदीपिका।

जानकीनाथ—न्यायसिद्धान्तमञ्जरी।

ताम्यनारायण—गरुडदीपिका।

तिम्मन—अन्यथाख्यातिवाद, सामान्यनिरुक्तिक्रोड़।

त्रिलोचनदेवन्यायपञ्चानन-न्यायकुसुमाञ्जलिव्याख्या।

त्रिलोचनाचार्य—न्यायसङ्केत।

त्र्यम्बकभट्ट—त्र्यम्बक-भट्टीय।

दिनकर—दिनकरी वा न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीप्रकाश, भवानन्दीटीका।

दुर्गादत्त मिश्र—न्यायबोधिनी।

दुलारभट्टाचार्य—गादाधरीक्रोड़टीका।

देवदास—न्यायरत्नप्रकरण।

देवनाथ—तत्त्वचिन्तामणि-आलोकपरिशिष्ट।

धर्मराजभट्ट—न्यायरत्न नामक न्यायसिद्धान्त दीपटीका।

धर्मराजदीक्षित (त्रिवेदीनारायणके पुत्र)—तत्त्वचिन्तामणि प्रकाशदीप्ति, तर्कचूड़ामणि (तत्त्वचिन्ता-

मणिसारकी टीका), न्यायसिद्धान्तमञ्जरीटीका, धर्मराज दीक्षितीय ।

नरसि शास्त्री—प्रकाशिका, न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीकी प्रभा नामक टीका।

नागेशभट्ट—पदार्थदीपिका ।

नारायण सार्वभौम—प्रतियोगिज्ञानकारणतावाद, प्रातिपदिकसंज्ञावाद ।

नारायणतीर्थ—न्यायकुसुमाञ्जलिकारिकाव्याख्या ।

निधिराम—न्यायसारस्य पदटीका ।

नीलकण्ठभट्ट—तर्कसंग्रहदीपिकाप्रकाश ।

नीलकण्ठशास्त्री—गादाधरीटीका, जागदीशीटीका, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका ।

नृसिंहपञ्चानन (गोविन्दपुत्र)—न्यायसिद्धान्तमञ्जरीटीका ।

पट्टाभिरामशास्त्री—तर्कसंग्रहनिरुक्ति, न्यायमञ्जूषा, प्रकाशिका, प्रभा ।

पक्षधराचार्य (दूसरा नाम जयदेव, हरमिश्रके पुत्र)—तत्त्वचिन्तामणिटीका और श्रीहर्षके नामक खण्डनखण्डखाद्यटीका ।

वनमहरि—प्रमाणमञ्जरीटीका ।

बलभद्र (विष्णुदासके पुत्र)—तर्कभाषाप्रकाशिका, मणिवादटीका ।

बालकृष्ण—न्यायबोधिनी नामक तर्कभाषाटीका ।

बालकृष्ण—न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीप्रकाश ।

भगीरथमेघ (रामचन्द्रके पुत्र और जयदेवके पौत्र)—द्रव्यप्रकाशिका, न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकाशिका ।

भवनाथ—खण्डनखण्डखाद्यटीका ।

भवानन्दसिद्धान्तवागीश (विद्यानिवासके पिता)—तत्त्वचिन्तामणिव्याख्या, भवानन्दी वा गूढार्थप्रकाशिका नामक तत्त्वचिन्तामणिदीधितिकी टीका, शब्दार्थसारमञ्जरी ।

भवानीशङ्कर—समवायत्वविचार ।

भास्करभट्ट—तर्कपरिभाषादर्पण (तर्कभाषाकी टीका)

मणिकण्ठमिश्र—कारकखण्डनमण्डन, न्यायरत्न ।

मथुरानाथ तर्कवागीश—मथुरानाथी वा माथुरी, तत्त्वचिन्तामणिटीका, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका, तत्त्वचिन्तामणि आलोकटीका, सिद्धान्तरहस्य । इनके सिवा और भी कितने ग्रन्थ हैं जो २००से कम नहीं होंगे ।

मधुसूदन—तर्कपूसमाप्यटीका, तत्त्वचिन्तामण्यालोककण्टकोद्धार ।

महादेवभट्ट—मुक्तावलीकिरण ।

महादेवभट्टदिनकर (दिनकर नामसे प्रसिद्ध)—इन्होंने पिताके ग्रन्थोंमेंसे दिनकरी आदिकी रचना की ।

महादेवपुणतामकर (मुकुन्दके पुत्र)—न्यायकौस्तुभ, मुक्तावलीप्रकाश (मुक्तावलीकी टीका), मितभाषिणी नामक न्यायवृत्ति ।

महेशचन्द्र—तत्त्वचिन्तामण्यालोकदर्पण ।

महेश्वर—तत्त्वचिन्तामणिटीका, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका ।

माधवमिश्र—अनुमानालोकदीपिका ।

माधवदेव—तर्कभाषासारमञ्जरी । न्यायसार, प्रमाणादिप्रकाशिका ।

माधवपट्टाभिराम—तर्कसंग्रहवाक्यार्थनिरुक्ति ।

मुकुन्दभट्ट गाडगिल (अनन्तभट्टके पुत्र)—ईश्वरवाद, तर्कसंग्रहचन्द्रिका नामक तर्कसंग्रहकी टीका, तर्कामृततरङ्गिणी ।

मुकुन्ददास—न्यायसूत्रवृत्ति ।

मुरारिभट्ट—तर्कभाषाटीका ।

मोहनपण्डित—तर्ककौमुदीटीका ।

यज्ञपति उपाध्याय—तत्त्वचिन्तामणिप्रभा नामक तत्त्वचिन्तामणिकी टीका ।

यज्ञमूर्त्ति वागीश्वर—तत्त्वचिन्तामणिटीका ।

यतिवर्य—तत्त्वचिन्तामणिदीधितिव्याख्या ।

यतीशपण्डित—न्यायसङ्केत ।

यज्ञभट्ट—न्यायपारिजात ।

यादवपण्डित वा यादवव्यास (यतिवरके पुत्र)—अनुमानमञ्जरीसार, न्यायसिद्धान्तमञ्जरीसार ।

रघुदेव न्यायालङ्कार भट्टाचार्य—रघुदेवी वा गूढार्थदीपिका नामक तत्त्वचिन्तामणिकी व्याख्या ।

रघुनाथवर्णी—न्यायरत्न नामक महादेवके पक्षवादकी टीका ।

कभी भी यूरोपीय पण्डितोंके मतसे न्यायशास्त्रके अन्तर्भूत नहीं हो सकते। मुक्तिमार्गका सोपान निरूपण ही भारतीय प्राचीन न्यायदर्शनका प्रधान आलोच्य विषय है, किन्तु यूरोपीय पण्डितोंके मतसे वह Philosophy proper or metaphysics अर्थात् साधारणतः दर्शनशास्त्र कहनेसे जो समझा जाता है, उसीका प्रतिपाद्य विषय है। हम लोगोंके देशमें न्यायदर्शन जिस प्रकार षड्दर्शनके मध्य दर्शनविशेष है, यूरोपीय न्यायदर्शन वा लाजिक उस प्रकार दर्शनशास्त्रके अंतर्गत नहीं है। यूरोपीय न्यायदर्शन विज्ञानकी एक शाखा (Science) विशेष है और पाश्चात्य न्यायको विज्ञानके अन्तर्भुक्त मान कर ही उसीके अनुसार लाजिककी संज्ञा (Definition) लिखी गई है।

किसी किसी पण्डितने न्यायको चिन्ताका नियामकशास्त्रविशेष बतलाया है (Science of the laws of thought as thought)। किसी किसीका कहना है कि लाजिक वा न्याय युक्तिप्रयोजकशास्त्र (Sceince as well as the art of reasoning) है, फिर अन्य पण्डितोंके मतसे लाजिक कहनेसे साधारणतः प्रमाणका नियोजक समझा जाता है (Science of proof or evidence)

सुतरां भारतीय न्यायदर्शनका जो अंश प्रमाणके अंतर्गत है अर्थात् जिसकी अंशमें प्रमाणकी नियमावली एवं प्रयोगप्रणाली वर्णित है, जो भारतीय नव्यन्यायका मुख्य विषय है, वही यूरोपीय न्यायदर्शन वा लाजिकका आलोच्य विषय है।

प्रमाणके ऊपर सभी विषयोंका सत्यासत्य निर्भर करता है। सत्यनिर्णय ही जब सब प्रकारकी चिंतावली वा कार्यप्रणालीका मुख्य उद्देश्य है, तब पहले प्रमाणका याथार्थ्य अयाथार्थ्यका निर्द्धारण करना आवश्यक है। सुतरां लाजिकमें प्रधानतः प्रमाण किसे कहते हैं, प्रमाणका उद्देश्य क्या है, निर्दोष प्रमाका स्वरूप क्या है, हेत्वाभास (Fallacies) संशोधनका उपाय क्या है, सत्यका निर्द्धारण करनेमें कैसी प्रणालीसे चिंताका प्रयोग करना आवश्यक है, ये सब विषय पुङ्खानुपुङ्खरूपसे आलोचित हुए हैं।

ग्रीक-पण्डित अरिष्टल ही पाश्चात्य न्यायके उद्भवकर्त्ता हैं। अरिष्टलके बहुत पहलेसे न्यायका अंशतः प्रचलन रहने पर भी अरिष्टलने ही पहले पहल न्यायको पृथक् शास्त्ररूपमें प्रवर्त्तित किया। अरिष्टलके पहले न्यायको नियमावली दर्शनशास्त्रमें प्रयुक्त होती थी। न्यायशास्त्र नामसे कोई पृथक् शास्त्र नहीं था।

दार्शनिक सक्रेटिस सबसे पहले न्यायप्रचलित नियमावलीका बहुत कुछ कर गए हैं। सक्रेटिसके न्यायदर्शनके प्रामाण्य विषय भी न्यायानुमत प्रक्रियासे साधित हुए हैं। तर्कशास्त्रका संज्ञाकरण (Definition of notion) सक्रेटिसने प्रवर्त्तित हुआ है। व्याप्तिसिद्धान्त (Synthetic reasoning or induction)-का सक्रेटिसने प्रचार किया है। सक्रेटिसके परवर्त्ती दार्शनिकगण सक्रेटिसका पदानुसरण कर गये हैं। दार्शनिक चिंताओंको शास्त्ररूपमें लिपिबद्ध करनेमें चिन्ताकी पद्धति वा क्रम (Method) की आवश्यकता है और चिंताका क्रम भी न्यायानुगत प्रमाणके ऊपर निर्भर करता है। सुतरां दर्शनशास्त्र जब व्यक्तिगत चिंतामात्र न हो कर शास्त्रविशेष हो जाता है, तब साथ साथ न्यायानुगत प्रमाणप्रणालीका भी (Logical method) उत्कर्ष साधित हुआ करता है। सक्रेटिसकी मृत्युके बाद दर्शनशास्त्रके अभ्युदयके साथ साथ तर्कशास्त्रकी उन्नति हुई थी। अभी तर्कशास्त्र कहनेसे जो समझा जाता है, उस समय लाजिक कहनेसे भी वही समझा जाता था। उस समय लाजिकका दूसरा नाम था Dialectic वा तर्कशास्त्र। प्लेटोके दर्शनमें भी इसी प्रकार Dialectic-का आधिपत्य देखनेमें आता है। Dialectics-ठीक हम लोगोंके देशीय न्यायदर्शनके जैसा है। Dialectics-इस प्रमाणमें प्रयोगप्रणालीके सिवा और भी दर्शनके अनेक साधारण विषय वर्णित हैं। वस्तुतः अभी Metaphysics कहनेसे जो समझा जाता है, उस समय Dialectics कहनेसे भी वही समझा जाता था।

सक्रेटिसके परवर्त्ती प्लेटोके समसामयिक दार्शनिकोंके मध्य आनटिसथिनिस (Antisthenes)ने लाजिकका आंशिक उन्नतिसाधन किया। आनटिस-

विलियम हाम' जिसमत वर्त्तमान Nominalism वा नामवाद है। आन्टिसथिनिसके मतानुसार वस्तुमात्र स्वाभाविक है और सभी स्वतन्त्र वस्तुकी सत्ता है तथा युक्ति (reason) व वाक्यों परिवर्त्तन (Transposition of names) के सिवा और कुछ भी नहीं है। सुतरां आन्टिस्थिनिसके मतमें तार्किक पद्धशास्त्रका समर्थनीय है। पीछे ष्टोइक-दर्शनमें (Stoic philosophy) तर्कका भी कुछ आभिप्राय देखनेमें आता है। सत्यान्वेषण अथवा न्यायानुगत प्रमाणनिरूपण ही ष्टोइक दार्शनिकोंके मतानुसार तर्कशास्त्रका प्रतिपाद्य विषय है और सत्यका निरूपण है (Ascertainment of the criterion of truth) यह सत्य उनके मतानुसार बाह्यविषयके ऊपर निर्भर नहीं करता है, यह मानसिक वा आन्तर धर्मविशेष (Subjective or a priori है)। ष्टोइक-दर्शनमें तर्कशास्त्रकी उन्नति नहीं पर्यवसित होती है।

एपिक्यूरियन (Epicurean) दार्शनिकोंके मतानुसार तर्कशास्त्र सत्यान्वेषणके उपायस्वरूप प्रकृतिविज्ञानके सहायकशास्त्रविशेषरूपमें परिगणित होता है। उपरि उक्त दार्शनिक मतोंके श्रेणीविभागमें तार्किकका प्रवेश रहने पर भी यथार्थमें तर्कशास्त्रकी थोड़ी ही उन्नति हुई थी। आरिष्टटलके पहले तक 'तार्किक' दर्शनशास्त्रके जैसा परिगणित नहीं हुआ। दार्शनिक आरिष्टटलने ही सम्पूर्णरूपसे Dialectic को परिवर्त्तित कर उसे तार्किक वा न्यायशास्त्ररूपमें प्रवर्त्तित किया।

आरगेनन (Organon) नामक ग्रन्थमें आरिष्टटलने पहले न्याय वा तार्किकको अवतारणा की। इस ग्रन्थमें केवल तर्कके अन्तर्निहित विषय ही आलोचित नहीं हुए, दर्शनशास्त्रके अन्यान्य जटिलतत्त्वकी मीमांसाकी भी अवतारणा की गई है। आरगेननमें Metaphysics और न्यायशास्त्रका जटिल सम्मिश्रण देखनेमें आता है। सुतरां आरगेननके वर्त्तमान तर्कशास्त्रका मूल ग्रन्थ होने पर भी वह अविमिश्र तर्कशास्त्र नहीं है।

आरगेनन नामक ग्रन्थमें आरिष्टटलने प्रथमतः शब्द वा नामप्रकरणके सम्बन्धमें (Determination of the categories) आलोचना की है। इन्द्रियग्राह्य वस्तुमात्र ही स्वाभाविक है। पदार्थ मात्रका ही एक एक धर्म वा गुण ले कर एक एक श्रेणीमें आरोप किया गया है। यह सब गुण किसी न किसी पदार्थमात्रके ही साधारण धर्म हैं। आरिष्टटलने उन साधारण धर्म गुणोंको ले कर एक एक श्रेणीविभाग किया है।

आरिष्टटलके द्रव्योंका श्रेणीविभाग साधारणतः दश बतलाये गये हैं। यथा—द्रव्यत्व (Substance), परिमाण वा परिमाण (Quantity), धर्म वा गुण (Quality) सम्बन्ध (Relation), देश (Space) काल (Time), अवस्थान (Position), अधिकारित्व वा अधिकार (Possession), (द्रव्यत्व और गुणके अन्यान्य सम्बन्धको अधिकारित्व कहते हैं) कार्यकारकगुण (Action), जिस गुणके ऊपर अन्य कोई गुण वा पदार्थको कार्यकारी बनना रहता है, वह गुण (Passion)। आरिष्टटलके आरगेननके प्रथम ग्रन्थमें इस प्रकार पदार्थोंका श्रेणीविभाग निर्णीत हुआ है।

आरगेननके द्वितीय ग्रन्थमें भाव और भाषाके सम्बन्धके विषयमें सविस्तर आलोचना है। भाषा किस परिमाणके भावप्रकाशमें समर्थ है, भावमात्र ही भाषा द्वारा प्रकाशित किया जा सकता है वा नहीं भाव और भाषामें विरोध किस प्रकार सम्भव है, सम्पूर्ण भाव किस प्रकार भाषामें प्रकाशित होता है, (Logical propositions) ये सब विषय पुङ्खानुपुङ्खरूपमें मीमांसित हुए हैं।

आरगेननका तृतीय ग्रन्थ, जितने भागोंमें विभक्त हुआ है, उनमें भागोंका विश्लेषणपाद (Analytic Books) कहते हैं। विज्ञानशास्त्रोंका क्रम किस प्रकार है, किस विषयके सिद्धान्तमें उपनीत होनेके लिये किस प्रकार युक्ति प्रयोग करना होता है, यही इस ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय है। साधारणतः युक्ति (Reasoning) ले कर पुस्तकका आरम्भ किया गया है।

एनालिटिक्सके प्रथम भागमें निगमनमूलकयुक्ति (Syllogism or Deductive reasoning) का विषय विवृत हुआ है। निगमनमूलक-युक्ति (Syllogistic reasoning) किसे किस प्रकार है, निगमनमूलक युक्तिको प्रयोगप्रणाली कैसी है इत्यादि इस भागके आलोच्य विषय हैं।

उक्त एनालिटिक ग्रन्थका द्वितीय भाग कई एक भागोंमें विभक्त है जिनमेंसे प्रथम दो भागोंमें स्वतःसिद्ध-युक्ति प्रणालीके सम्बन्धमें (Apodictic arguments) कुछ लिखा है। अवशिष्ट आठ भागोंमें प्रचलितयुक्ति या वादसम्बन्धमें पर्यालोचित हुआ है। अन्तके एक प्रबन्धमें (Essay on the Sophistical Elenchi) भ्रमात्मक युक्ति वा हेत्वाभास (Fallacies)-की आलोचना है।

आरगेननके उपरि-उक्त यथासंभव सारोद्धारसे यह सहजमें जाना जा सकता है कि आरिष्टलके समयमें तर्कशास्त्रकी अवस्था कैसी थी और वर्त्तमान समयमें उसकी कैसी उन्नति हुई है। सामान्य अभिनिवेशपूर्वक देखनेसे ही ज्ञात होता है कि आरिष्टलके समयसे उद्भावित तर्कशास्त्र (Formal or Deductive Logic) ने बहुत कम उन्नति की है। 'फारमल लाजिक'-को आरिष्टल जिस अवस्थामें रख गये थे, सामान्य परिवर्त्तन छोड़ देनेसे वह अब भी प्रायः उसी अवस्थामें है। निगमनमूलक-न्याय (Deductive Logic की प्रयोग-प्रणाली आरिष्टलके निर्दिष्ट पथसे ही आज तक चली आ रही है। आरिष्टलका 'डिडकटिभ लाजिक' वर्त्तमान कालमें दार्शनिक काण्ट (Kant) और हमिलटन-प्रवर्त्तित फारमल लाजिकमें परिणत हुआ है। आरिष्टलके न्याय वा लाजिकको दार्शनिकभित्ति अस्तित्ववाद (Realism)के ऊपर प्रतिष्ठित है। आरिष्टलने जगत्का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया। उनके मतसे बाह्यजगत् और अन्तर्जगत्का ऐक्य ही सत्यका द्योतक है। अन्तर्जगत्में विरोधवशतः (Contradiction) जो अनुभव किया नहीं जाता, बाह्यजगत्में भी उसका अस्तित्व असम्भव है। सुतरां दोनोंका अविरोध ही (Absence of Contradiction) सत्यके स्वरूपकी सूचना करता है। आरिष्टलके मतसे सत्य कहनेसे चिन्ताकी सङ्गति (Inner consistency)का बोध नहीं होता; बाह्यजगत्के साथ ऐक्यका बोध होता है (Correspondance with external realities), सुतरां आरिष्टलका 'डिडकटिभ लाजिक' वर्त्तमान 'फारमल-लाजिक' नहीं है।

३री शताब्दीमें नियप्लाटोनिजम (Neo-Platonism) नामक दार्शनिक मतका प्रचार हुआ। नियप्लाटोनिष्टोंके मतानुसार ज्ञानमार्गका अवलम्बन करनेसे सत्यके प्रकृत तत्त्वका उद्घाटन किया नहीं जाता, आत्माकी अन्तर्ज्योतिसे ही प्रकृतज्ञानका सम्भव है (Inner mystical subjective exultation), आत्माकी ऐसी उन्मेषित अवस्थाको नियप्लाटोनिक दार्शनिक आनन्दमय दशा (Ecstasy or rapture) कह गये हैं। नियप्लाटोनिक पण्डितों द्वारा भी लाजिककी कोई उन्नति साधित नहीं हुई। ये लोग भी दार्शनिकप्रवर आरिष्टलका मत अनुसरण कर गये। नियप्लाटोनिक पण्डित प्लोटिनस (Plotinus) आरिष्टल कृत आरगेननकी उपक्रमणिका (Introduction) लिख गये हैं। तन्मतानुवर्त्ती पण्डितोंने भी आरिष्टलके दार्शनिक ग्रन्थोंकी टीका रची है।

६ठी शताब्दीके प्राक्कालमें खृष्टधर्मावलम्बी महाजन लोग भी (Church fathers) आरिष्टलके न्यायमतका ही अनुसरण कर गये हैं। इसी समयमें अरबदेशीय पण्डितों और यहूदीजातिको विद्वन्मण्डलीमें भी आरिष्टलका दर्शन विशेषरूपसे आदृत हुआ। आरिष्टलके मतके अनुवर्त्ती अरबदेशीय पण्डितोंके मध्य आभिसेन (Avicenna) और आभिरोस (Aviroes) इन दो पण्डितोंका नाम सर्वाधिक विख्यात है।

यूरोपमें मध्ययुग (Middle Ages)में जो दार्शनिक मतसमूहका आविर्भाव हुआ, उसे साधारणतः स्कलाष्टिक फिलाजफी (Scholastic philosophy) कहते हैं। स्कलाष्टिक-दर्शन एक नूतन दार्शनिक मत नहीं है। मध्ययुगमें खृष्टधर्मका प्रभाव अप्रतिहत था और आरिष्टलका प्रभाव भी उस समय सम्पूर्णरूपसे तिरोहित नहीं हुआ था। स्कलाष्टिकदर्शन इन दोनोंके संघर्षसे उत्पन्न हुआ था। स्कलास्टिक दर्शनका विशेष लक्षण यह है कि उसका अधिकांश भाव ही ज्ञान और भक्तिके समन्वयमें व्ययित हुआ है (Reconciliation of Reason and Faith)। खृष्टधर्मके साथ दार्शनिक मतका सामञ्जस्य प्रतिपादन ही स्कलाष्टिकदर्शनका लक्ष्मीभूत-विषय था। आरिष्टलके दर्शनका इस समय समधिक प्रादुर्भाव हुआ। पहले बहुतसे पण्डितोंने आरिष्टलकी टीका प्रस्तुत की है। उक्त महात्माके लाजिकको इस

समय विशेष चर्चा हुई थी। अविलार्ड के पहले (Abelard 1049-1142 A D) आरिष्टटलके न्यायिकका सामान्य अंश ही विद्यमण्डलीमें प्रचलित हुआ था। आरिष्टटलकी पदार्थ विभाग प्रथाकी (The Cat gories) और 'डि इण्टारप्रिटेशन'में न्यायिकके इन दो अंशों का सामान्य प्रचार हुआ था। पश्चात् अंशोंका सामान्य विवरण विथियस (Boethius) और अगष्टिन (Augustine) के ग्रन्थसे प्राप्त होता है। १२वीं शताब्दीके मध्यभागमें न्यायिकके अवशिष्ट अंशोंका प्रचार हुआ। इसके अनन्तर १३वीं शताब्दी तक आरिष्टटलके न्यायिकके मूलग्रन्थकी आलोचनासे अधिक आलोचना हुई थी। इस समय आरिष्टटलका सिलजिष्टीक या सम्बोधक न्यायिकयुक्ति (Syllogistic reasoning) कुछ उन्नत दशामें थी। आरिष्टटलकी सम्बोधनमूलक युक्तियोंमें (Syllogistic doctrine) सोराइटिस (Sorites) नामक तर्कविशेषका उल्लेख और विवरण है। मध्य युगमें गोक्लेनियस (Goclenius) नामक पण्डितने भिन्न प्रकारसे सोराइटिस (Sorites) का युक्तिमें उल्लेख किया है। इसके सिवा न्यायिकका क्रम या प्रणाली एक प्रकार रहने पर भी मध्ययुगमें आरिष्टटलके न्यायिकको दाय भिन्न भित्तिका रूपान्तर हुआ था।

अरिष्टटलका न्यायमत सत्यवाद (Realism)के ऊपर प्रतिष्ठित है। अरिष्टटल बाह्यजगत्‌का अस्तित्व स्वीकार करते हैं और मनकी बाह्यजगत्‌के व्यापारको धारणा करनेकी शक्ति है यह भी स्वीकार करते हैं। दूसरी जो मानसराज्यमें असङ्गत समझा जाता है, जगत्‌में भी उसका अस्तित्व नहीं है (Contradiction of things constitutes contradiction of thoughts) क्योंकि मानसराज्यके व्यापार बाह्यजगत्‌के द्योतक हुए हैं। अरिष्टटलके मतानुसार सत्यका लक्षण (Criterion of truth) केवल मानसिक सङ्गति असङ्गति (Subjective consistency or inconsistency) नहीं है वस्तुतः बाह्य वस्तुका अस्तित्व या नास्तित्व है (Objective consistency—external reality)। अरिष्टटलका यह सत्यवाद (Realism) मध्ययुगके स्कलाष्टिक पण्डितोंके समय नामवाद (Nominalism)से ध्वस्त हुआ। नामवाद कहनेसे साधारणतः समझा जाता है कि नाम ही सत्ताज्ञापक है। नामव्यतीत अन्य किसी वस्तुकी सत्ता निर्देश नहीं करता। नाममें ही वस्तुकी सत्ता पर्यवसित होती है। किसी वस्तुका नाम द्वारा निर्देश करनेसे इन्द्रियगत अनुभूति (Sense-perception)का उद्बोधन किया जाता है। इसके सिवा इन्द्रियकी प्रत्यक्षता और किसी पदार्थमें अस्तित्व निर्देश किया नहीं जाता। जैसे वृक्ष कहनेसे किसी न किसी एक निर्दिष्ट वृक्षकी प्रतिकृति मनमें अङ्कित हुआ करती है—वही प्रतिकृति, जैसे आम, जाम वकुल इत्यादि किसी न किसी एक वृक्षकी ही होती। इस कहनेसे ऐसा कुछ भी समझा नहीं जाता जो आम भी नहीं है, जाम भी नहीं है वकुल भी नहीं है अर्थात् निर्दिष्ट किसी इन्द्रियगोचर वृक्षकी प्रतिकृति नहीं है। 'मनुष्य' यह शब्द मनमें रखनेसे साधारणतः मनमें किस प्रतिकृतिका उदय होता है? मनुष्य नामकी कोई निर्दिष्ट प्रतिकृति नहीं है। मनुष्य कहनेसे ही साधारणतः राम, श्याम या यदु अर्थात् किसी न किसी निर्दिष्ट मनुष्यकी प्रतिकृति मानसपटमें उदित होती है। वह प्रतिकृति एक निर्दिष्ट रकमकी है वह या तो दीर्घ है या ह्रस्व है या मध्यमाकारकी है। वर्ण गोरा, काला अथवा सांवला हो सकता है। साधारणतः राम श्याम या यदु कहनेसे जैसे किसी एक निर्दिष्ट आकारविशिष्ट प्रतिकृतिका मनमें उदय होता है, वैसे ही मनुष्य इस शब्दके अनुरूप ऐसी कोई प्रतिकृति नहीं जो मनुष्यमात्रकी ही प्रतिकृति कह कर गिनी जा सके। अपरापर पदार्थोंके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार है। नाम केवल इन्द्रियगोचर प्रतिकृतिको मनमें अङ्कित कर देता है। नामके साथ इन्द्रियगत मानसिक प्रतिकृतिका अभ्यासगत (Through experience) एक ऐसा सम्बन्ध है कि नाम उच्चारित होने पर तत्सिद्ध अनायास उसकी ध्यान आ जाता है (Association of ideas)। इसी सिद्धान्तको नामवाद (Nominalism) कहते हैं। मध्ययुगमें इस नामवाद (Nominalism) और अस्तित्व वाद (Realism)के सम्बन्धमें विविध आलोचना चली थी। वर्त्तमान कालमें भी यह प्रतिद्वन्द्विता मिटी

नहीं है। उभयपक्षको समर्थनकारी युक्तियां प्रदर्शित हुई हैं। इङ्गलैण्डदेशीय अभिज्ञतावादी दार्शनिक मत समर्थक (Empirical School) ह्यूम, जनष्टुआर्ट-मिल प्रभृति नामवादके पोषणके और जर्मनदेशीय ट्रेण्डेलेनवर्ग (Trendelenburg) मतानुवर्ती अरिष्टटल मतके समर्थक हैं। मध्ययुगके स्कलाष्टिक समय (Scholastic Period) का अधिकांश ही इस भेदको ले कर व्ययित हुआ है। नामवादके अन्याधिक प्रभावसे लाजिक चिन्ताप्रणालीका विनाश न हो कर अतिवितण्डाशास्त्रमें परिणत हुआ था। लाजिकका व्यवहारगत अंश हो (Formal or Linguistic aspect) प्रबल हो उठा था। स्कलाष्टिक वा मध्ययुगके दार्शनिक मतोंका आभ्यन्तरिक अन्यान्यविरोध, हो इसके अधःपतनका मूल है। बाइबलोक्त ऐश्वरिक प्रत्यादेश (Revelation)के साथ युक्तिका सामञ्जस्य विधान करना एक प्रकार असाध्यसाधन हो उठा। अधिकांश पण्डितोंने हो समझा था कि इस प्रकार सामञ्जस्यविधान एक तरह असम्भव है और इस प्रकार अस्थायी तथा असार भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित दार्शनिक मत भी अस्थायी और सारहीन है।

तद्भिन्न ग्रीक और लाटिनदर्शनशास्त्र तथा साहित्यको चर्चा भी स्कलाष्टिसिजमके अधःपतनका अन्यतम कारण है। पहले ही कहा जा चुका है कि मध्ययुगमें दार्शनिक चर्चा एक प्रकारसे वाद वा तर्क विस्तारको उपाय-स्वरूप हुई थी। प्लेटो और अरिष्टटल आदिका दार्शनिक मत भिन्न भिन्न भाषामें आंशिकरूपसे अनुवादित हो कर विकृतभावमें वर्णित और शिक्षित होता था। मुद्रायन्त्रके उद्भावनके साथ प्लेटो और अरिष्टटलकी पुस्तक ग्रीक भाषामें मुद्रित हो कर पढ़ी जाने लगीं।

धर्मसंस्कार (The Reformation) और प्रोटेष्टेण्ट (Protestants) मतके अभ्युदयको भी अवनतिका अन्य कारण कह सकते हैं। याजक-सम्प्रदाय (Church)के प्रभावका ह्रास होनेके साथ साथ स्वाधीन चिन्ताका प्रसार बढ़ने लगा। सुतरां युक्ति और विज्ञानके सामञ्जस्यविधानकी चेष्टा याजकोंके एकदेशदर्शिताके ऊपर निर्भर न कर स्वाधीनचिन्ताके वशवर्ती हो नाय-मात्र हुई। प्राकृतिक विज्ञानकी उन्नति भी इस स्वाधीन चिन्ताका फल है और यह भी स्कलाष्टिसिजमके अधःपतनका दूसरा कारण है।

स्कलाष्टिसिजमके विरुद्ध जो आन्दोलन चला था, इङ्गलैण्डदेशीय लार्ड बेकन (Lord Bacon) उसके अन्यतम नायक थे। बेकनको वर्त्तमानकालके 'इण्डक्टिव' लाजिकके स्रष्टा कहते हैं। उन्होंने नोभम् आर्गेनन वा नव्यतन्त्र नामक ग्रन्थमें (Novum Organum) उसमें अपने मतका प्रचार किया है। बेकन अरिष्टटलका न्यायमतका किसी अंशमें इनका परिपोषक नहीं मानते। बेकनके मतानुसार अरिष्टटल-प्रवर्तित युक्ति वा सिलजिजम् (Syllogism) सत्यान्वेषण (Scientific investigation) के अनुकूल नहीं है, वह केवल वाद वा तर्कके अनुकूल (Suitable for disputation) है। मध्ययुगमें अरिष्टटलके तर्कशास्त्रका जैसा आदर होता था, बेकनने केवल उसी प्रकार इसे अतिरिक्त प्रोज्ज्वल्य ही अनुसे देखा है। बेकनके नव्यतन्त्रमें निगमन अंश न्यायके अपेक्षाकृत उपेक्षित हो व्याप्ति (Inductive) भागने अधिकतर प्राधान्य लाभ किया है। न्यायशास्त्र वा लाजिकका इस प्रकार आमूल परिवर्त्तन दार्शनिक भित्ति (Underlying philosophical basis)के परिवर्त्तनके साथ संघटित हुआ है। बेकनके पहले दार्शनिकगण अन्तर्जगत्‌को ही दर्शनको भित्ति और लक्ष्यभूमि मान गये हैं। बेकनके समयमें प्राकृतिक विज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ जनसाधारणको दृष्टि बहिर्जगत्‌की ओर आकृष्ट हुई थी। सुतरां बहिर्जगत् ही दर्शनकी भित्तिभूमि हो कर खड़ा था। बहिर्जगत् ही अन्तर्जगत्‌के नियामकके जैसा स्वीकृत हुआ था (Experience became the criterion of truth)। बेकनने स्वयं पथप्रदर्शन भिन्न लाजिकका सामान्य ही उन्नतिसाधन किया है। निगमनमूलक न्यायशास्त्रमें जैसा कुतर्कका उल्लेख है और तत्समूह-निरासका प्रकरण प्रकटित हुआ है, बेकन वैसा हो कैसी प्रणालीका अवलम्बन करनेसे व्याप्ति (Induction) भ्रम प्रमादके आयत्तसे मुक्तिलाभ कर सके, उन उपायोंका निर्देश कर गये हैं। वे ही उपाय व्याप्तिसूत्र (Canons of Induction) कहलाते हैं। इसके सिवा बेकन द्वारा तर्कशास्त्रकी और कोई उन्नति साधित नहीं हुई।

बेकन नवलक्षणोंका पथ निर्देश कर गये हैं और उनका अनुसरण करके तत्परवर्ती जन्‌ष्टुआर्ट मिल प्रभृति पण्डितोंने वर्तमान व्याप्तिमूलक तर्कशास्त्र (Inductive Logic) का प्रणयन किया है और निगमनके पक्षको भी (Deductive Logic) व्याप्तिकी भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित किया है।

इसके पहले जिस यूरोपके पाश्चात्य देशोंमें भी प्राचीन ग्रीकदर्शन और मध्ययुगके स्कलास्टिक दर्शनके विरुद्ध आन्दोलन चला था। फ्रान्सदेशीय दार्शनिक डेकार्ट (Descartes) प्राचीन दर्शन मतोंके प्रति वीतश्रद्ध हो कर नितान्त निजमतका प्रचार किया। तद्रचित डिसकोर्स डि मेथड (Discourse-de la-Methode) वा चिन्ताप्रणाली नामक पुस्तकमें वे अपने दार्शनिक मतोंको लिपिबद्ध कर गये हैं। डेकार्ट अन्यान्य मतों-का भ्रान्ति निर्दिष्ट स्थिर कर नव तत्त्वानुसन्धानके प्रचारोन्मेषमें प्रवृत्त हुए। यथार्थ ज्ञान क्या सत्य है? यह प्रश्न पहले पहल ही उनके मनमें उदित हुआ। बहुत चिन्ताके बाद वे इस सिद्धान्तमें उपनीत हुए कि ज्ञानमय जो (Cogito ergosum) सूत्र रूप है मैं ही सोचता हूँ, अतएव मैं हूँ इस ज्ञानमें सन्देह करनेका उपाय नहीं। कारण सन्देह करना भी यह अनुभवसापेक्ष है। इसी ज्ञानकी सहायतासे अन्यान्य विषयोंका यथार्थत्व निर्णय करना होता है। इसके अनन्तर अन्यान्य विषयमें यथार्थताका किस प्रकार निर्णय करना होगा, डेकार्टने उस विषयमें मेथड (Methode) ग्रन्थमें जो पथ निर्देश किया है, वह संक्षेपतः यह है—मानसिक अनुभव और स्पष्ट विस्पष्टता ही सत्यका मानदण्ड है (Subjective clearness and distinctness)। जब कोई विषय स्पष्ट और भिन्न भाव रूप (Subjective Certainty or intuition)-से रहता है तब वह मानसिक विषय ही डेकार्टके मतसे सत्य अर्थात् यथार्थतः उसका अस्तित्व है।

उपरि उक्त विवरणसे मालूम होगा कि डेकार्टके दार्शनिकमतमें उनके न्यायके ऊपर किस परिमाणमें प्रभाव विस्तार किया था। स्पष्टज्ञान (Distinctness and clearness)-को सत्यका द्योतक मान कर उन्हें न प्रमादकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा है कि अस्पष्टज्ञान ही (Indistinctness of thought) प्रमादका कारण है। दूसरी जगह न्यायके सम्बन्धमें उन्होंने कहा है—"बहुत अधिक नियमोंकी आवश्यकता न कर निम्नलिखित चार नियमके अवलम्बन करनेसे ही न्यायका उद्देश्य साधित होगा। वे चार नियम ये हैं—१म, जब तक स्पष्टतः प्रतीयमान न हो, तब तक किसी विषयको सत्य मत मानो। अतएव मार्गणके समय इस बात पर लक्ष्य रखना होगा कि किसी सन्देहका विषय सिद्धान्तके अन्तर्निहित न रहे। दूसरा, किसी दुरूह विषयके सिद्धान्तमें उपनीत होनेके समय उस विषयको भिन्न भिन्न रूपमें विभाग करना होगा और प्रत्येक विभागको विशेष रूपसे परीक्षा करनी होगी। ऐसा करनेसे मीमांस्य विषय का सिद्धान्त सुगम हो जायगा। तीसरा, किसी विषयके सिद्धान्तमें उपनीत होनेके समय चिन्ताप्रणालीका इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए, कि जो अतिसरल और सुगम है उसीसे आरम्भ कर धीरे धीरे दुरूह विषयमें अग्रसर करना होगा। चौथा—अन्तमें मीमांस्य विषय का आन्दोलन और समालोचना करके यह देख लेना आवश्यक है कि कोई प्रयोजनीय विषय छोड़ तो नहीं दिया गया है। डेकार्टके मतानुसार उपरिउक्त चार नियमोंके प्रति लक्ष्य रखनेसे ही न्यायका उद्देश्य सिद्ध होगा। डेकार्ट-प्रवर्त्तित पोर्ट रयाल स्कूलसे ला-लाजिक (La Logique) नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। डेकार्टके परवर्त्ती मलब्रान्स आदि दार्शनिकगण डेकार्टके न्याय मतको पोषकता कर गए हैं।

स्पिनोजा। डेकार्टके परवर्त्ती दार्शनिकोंमें स्पिनोजाका (Spinoza) नाम विशेष उल्लेख योग्य है। स्पिनोजाका दार्शनिक मत बहुत कुछ इस देशके अद्वैतवादसे मिलता जुलता है। ग्रन्थाभावमें न्यायका कोई स्वतन्त्र वा मतान्तर प्रणाली परिवर्तन नहीं करनेसे भी स्पिनोजाके दार्शनिक मतने उस समयके प्रचलित न्यायके ऊपर जो प्रभूत परिमाणमें प्रभावविस्तार किया इसमें सन्देह नहीं। यूरोपीय न्याय मतानुसार नियामकताअवलम्बित है और सत्य ही प्रमाणका विषय है। इनका कहना है, इस विषयमें

मतभेद उपस्थित होनेसे ही लाजिकका प्रकारभेद हुआ करता है। स्पिनोजाके मतसे मानसिक प्रतिकृति वा आइडिया (Idea)के साथ वस्तु (Object)का ऐक्य ही सत्यपदवाच्य है। विशुद्धज्ञान (Intuition) द्वारा ही प्रत्यक्ष सत्योपलब्धि हुआ करती है। स्पिनोजाके मतसे ज्ञान तीन प्रकारका है—आनुमानिक वा प्रत्यक्षज्ञान (Imaginatio), परोक्षज्ञान (Ratio) अर्थात् जो ज्ञान प्रमाणके ऊपर निर्भर करता है और विशुद्धज्ञान (Intellectus)। इनमेंसे परोक्षज्ञान ही (Ratio or immediate knowledge) लाजिकका विवेच्य विषय है; उपरि-उक्त साधारण दर्शनकी कुछ बातोंको छोड़ कर स्पिनोजा लाजिकके सम्बन्धमें और कुछ भी लिपिबद्ध नहीं कर गए हैं।

लाक। यूरोप-महादेशकी कथा छोड़ देनेसे स्पिनोजाके आविर्भाव कालमें इङ्गलैण्डमें भी दार्शनिक युगान्तर उपस्थित हुआ। इङ्गलैण्ड देशीय दार्शनिक जान लाक (John Locke)ने बेकन-प्रवर्त्तित दार्शनिकप्रणालीको मनस्तत्त्व घटित विषयमें (Psychological problems) प्रयोग किया है। पहले दार्शनिकोंको प्रवर्त्तित प्रणालीका परित्याग कर दार्शनिकप्रवर बेकनने अभिज्ञतासापेक्ष दार्शनिक अनुसन्धानप्रथाका उद्भावन किया (The method of philosophical inquiry based upon observation and experiments upon experience) तत्परवर्त्ती दार्शनिक लाक उन प्रथाओंका कार्यतः दार्शनिक अनुसन्धानमें प्रयोग कर गये हैं। बेकनकी कथा छोड़ देनेसे लाक ही वर्त्तमान समयके इङ्गलैण्डदेशीय एम्पिरिकलदर्शनके सृष्टिकर्त्ता (Empirical school) माने जाते हैं। तत्प्रदर्शित पन्थानुसरण करके ही ह्यूम (Hume), मिल (Mill), बेन (Bain) आदिके आधुनिक दार्शनिकमतने सृष्ट हो कर प्रतिष्ठा लाभ की है। लाकके परवर्त्ती अन्यान्य दार्शनिकगण परोक्षभावमें लाकके दर्शनसे निकले हैं। लाकके प्रवर्त्तित मतका खण्डन करनेके लिये दार्शनिक रीड (Reid) प्रवर्त्तित स्काटिश दर्शन (Scottish school)की सृष्टि हुई है। जर्मन देशीय दार्शनिकप्रवर काण्टका क्रिटिकल दर्शन (Critical Philosophy)का उद्भव भी इसी कारण हुआ है। लाक-प्रवर्त्तित पन्थानुगामी डेभिड ह्यूमकी नास्तिकताका खण्डन करनेके लिये ही दोनों दर्शनोंका अभ्युत्थान हुआ है। प्रत्यक्षज्ञान ही सभी ज्ञानोंका मूल है। ऐसा कोई ज्ञान रह नहीं सकता जो प्रत्यक्षमूलक न हो (Nihil est Intellectu, quod non fuerit in sensu) यही लाक प्रवर्त्तित दर्शनका मूलसूत्र है। लाकका यही दार्शनिक मत वर्त्तमान एम्पिरिकल लाजिक (Empirical Logic)का मूल है।

लिवनिज। जर्मन दार्शनिक लिवनीज (Leibnitz) अनेक विषयोंमें लाकके विरुद्धवादी थे। उन्होंने ही पहले ज्ञानतत्त्व (Theory of knowledge) के विषयमें लाकके विरुद्ध मानसिक सांसिद्धिकज्ञान अर्थात् जो वस्तु वा विषय आपसे आप मनसे उत्पन्न हुआ है, बाह्यविषयसे गृहीत नहीं हुआ, (Doctrine of innate ideas) इस मतका पक्ष समर्थन किया है। लिवनीज अपना साधारण दार्शनिक मत "मानडोलाजि" नामक ग्रन्थमें सन्निविष्ट कर गये हैं। उनका साधारण दार्शनिकमत लिपिबद्ध करनेकी गुंजाइश न रहनेसे नीचे उसका केवल सार दिया जाता है। दार्शनिकमतके विषयमें लिवनिजने सम्पूर्णरूपसे स्पिनोजाके विपरीत पन्थ और मतका अवलम्बन किया है। स्पिनोजा जिस प्रकार समस्त जागतिक व्यापारको एक (One) का विकाश और जगत्में जो कुछ नानात्वज्ञापकके जैसा मालूम पड़ता है उसे, समुद्रतरङ्ग जिस तरह समुद्रकी है, उसी तरह एक ही महापदार्थका अंश बतला गये हैं, लिवनिजने उसी प्रकार दिखला दिया है कि बहु (Many)-की समष्टिसे ही एकको सृष्टि है। जगत्में जो कुछ एकत्वबोधक मालूम पड़ता है, वह बहुकी समष्टिसे उत्पन्न हुआ है। इस नानात्वज्ञापकपदार्थोंका लिवनिजने 'मनाड' (Monad) नाम रखा है। साधारणतः परमाणु वा आटम (Atom) कहनेसे जो समझा जाता है, लिवनीज कथित 'मनाड' ठीक उस प्रकार नहीं है। मनाड इन्द्रियका अगोचर है, क्षुद्रपदार्थ विशेष (Metaphysical points) मनाड नाना अवस्थापन्न है, कितने अचेतन हैं। लिवनिजने इन सबको

निद्रावस्थामें सुप्तचैतन्य (Sleeping monad) बतलाया है। जिनमें अर्द्धचेतन है, जैसे वृक्षादि; जिनमें सचेतन हैं जैसे पशुपक्ष्यादि और जिनमें सम्पूर्ण चेतन हैं, जैसे आत्मा (Soul) प्रभृति। इन सब मनाडके समावेशसे ही जगत्‌की उत्पत्ति हुई है। एक एक मनाड एक दर्पणकी तरह है उसमें समस्त जगत् प्रतिबिम्बित हुआ है और वह क्रियावस्था जिस प्रकार सम्पूर्ण है, वह मनाड भी उसी प्रकार स्वतन्त्र है। पहलेसे ही निर्दिष्ट नियमवशसे मनाडका ऐसा अन्योन्ययोग साधित हुआ है जिसे लिबनिज पूर्वप्रतिष्ठित सामञ्जस्य (Pre-established Harmony) कहते हैं।

पूर्वोक्त संक्षिप्त विवरणसे ही लिबनिजके दार्शनिक मतका किञ्चित् आभास दिया गया है। लिबनिजने डेकार्ट, कौलिरस बर्ड एवं पूर्वोक्त पक्षके ऊपर न्यायकी आवश्यकता अस्वीकार नहीं की। लिबनिजके मतसे अस्पष्ट और अविशुद्ध ज्ञानसे ही भ्रमकी उत्पत्ति हुई है और यह अविशुद्ध ज्ञान जब तक विशुद्धज्ञानमें परिणत नहीं होता तब तक भ्रमका निराकरण नहीं होता। न्यायानुमत सभी धर्मों (Logical rules)का अनुसरण नहीं करनेसे भ्रमनिवारण असम्भव है। अतः जब तक भ्रमप्रमाद वर्त्तमान रहेगा, तब तक न्यायकी आवश्यकता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। लिबनिजने प्रमाणके सम्बन्धमें दो नियमोंकी आवश्यकता स्वीकार की है। इन दो नियमोंमेंसे एकका नाम है अन्योन्यविरोध (The Principle of contradiction) और दूसरेका पर्याप्तयुक्ति (The Principle of sufficient reason)। इसके अलावा भी जिसमें न्यायके सम्भाव्ययुक्ति (Doctrine of probability) नामक एक और अंश शामिल हो, इसके लिये लिबनिजका विशेष अभिप्राय था। वे आप उपयुक्त अंशका सम्पादन कर न सके थे।

लिबनिजके बाद तन्मतानुवर्त्ती दार्शनिक क्रिश्चियन उल्फ (Christian Wolf) ने आपाततः तर्कशास्त्रकी यथेष्ट पर्यालोचना की। उन्होंने फिलजफिया राशनलिस (Philosophia Rationalis) नामक न्यायके सम्बन्धमें परिष्कृत विवेचना की है। इनके पहलेके पण्डितोंका पदानुसरण कर आधारादिकरूपमें न्यायके आलोच्य विषय निर्दिष्ट कर गए हैं। उनके मतसे न्यायके तत्त्वज्ञान (Ontology) और मनस्तत्त्व (Psychology) इन दो शास्त्रोंके ऊपर प्रतिष्ठित होने पर भी यह उनका अपना आलोच्य है। कारण, यद्यपि न्यायके मौलिक विषय (Data-Specially the axioms) इन दोनों शास्त्रोंके ऊपर निर्भर है तो भी इन दोनों शास्त्रने न्यायकी पर्यालोचना अवलम्बन करके ही शास्त्ररूपमें परिणत हुए हैं। उन्होंने अनुमानमूलक (Theoretical) और क्रियामूलक (Practical) इन दो भागोंमें न्यायको विभक्त किया है। इनमेंसे प्रथम प्रकरण (Notion) में भावपदका अन्योन्यसम्बन्ध निरूपण, वाक्यसन्दर्भ (Judgment) और अनुमान (Inference) प्रणालीके अन्तर्भुक्त है तथा शेषोक्त अंशमें पुस्तकाध्ययन, तर्कवितर्क प्रणाली इत्यादि विषयोंमें न्यायकी आवश्यकता आलोचित हुई है। इनके कार्टेसियन रडूल्फके साथ लिबनिजके मतका सामञ्जस्य साधन किया है। लिबनिजके मतमें अन्योन्यका अविरोध ही सत्यकी सूचना करता है (Absence of contradiction is the criterion of truth)। इस कार्टेसियन पण्डितके मतानुवर्त्ती जो कह गये हैं, कि केवल विरोध मात्र नहीं होनेसे ही सत्यकी प्रतिष्ठा नहीं होती। इसका भावनामें धारणा सम्भव होना आवश्यक है (The criterion of conceivability)।

लिबनिजके सहयोगी दार्शनिकोंमें क्रिश्चियन टमेसियस (Christian Thomesius) का नाम उल्लेखयोग्य है। इन्होंने उलफ और कार्टेसियन इन दोनोंका मध्यवर्त्ती मत अवलम्बन किया है। लिबनिजके समकालवर्त्ती दार्शनिक लाम्बर्ट (Lambert)ने न्यायके नूतन तन्त्र (Neves Organon) नामक एक पुस्तककी रचना की है।

इसके बाद ही दार्शनिकप्रवर इमानुयेल काण्ट (Emanuel Kant)का आविर्भाव हुआ। काण्टको यदि वर्त्तमान दार्शनिक जगत्‌का गुरु कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। काण्टके समय दार्शनिक जगत्‌में एक युगान्तर उपस्थित हुआ। जर्मन देशमें कार्टेसियन दर्शन क्रमशः स्थानान्तरित हो कर लिबनिज प्रवर्त्तित

मनाडोलाजिमें परिणत हुआ था। इङ्गलैण्डमें लाक-प्रवर्त्तित इम्पिरिकल दर्शन (Empirical philosophy) दार्शनिक ह्यूम प्रवर्त्तित अज्ञेयवादमें (Sceptism) परिणत हुआ था। काण्टके समयमें इन दोनों दर्शनोंका विरोध प्रभूत परिमाणमें स्पष्टीकृत हो उठा था। काण्टने स्वयं कहा है, ह्यूमके अज्ञेयवादने ही उनके दार्शनिक मतका परिवर्त्तन किया है (It was Hume's sceptism that roused me from my dogmatic slumder)। काण्टने कार्टसियन दर्शनका इनेटथिओरीका (Innate theory of ideas) सम्पूर्णरूपसे समर्थन नहीं किया। उन्होंने मध्यपथका अवलम्बन किया है। काण्टने अपने इस मतको इनेटथिओरी (Innate theory) न कह कर 'इनेट'के बदलेमें 'आप्रियराई' शब्दका व्यवहार किया है। दोनों शब्दके सम्बन्धमें व्यवहारगत क्या पार्थक्य है? काण्टके दार्शनिक मतका यथासंक्षेपमें विवरण नीचे दिया जाता है।

काण्ट वाह्यजगत्‌का अस्तित्व अस्वीकार नहीं करते। पर हां, साधारणतः वाह्यजगत्‌के सम्बन्धमें हम लोगोंकी जैसी धारणा है, काण्टके मतमें वाह्यजगत् वैसा नहीं है। वाह्यजगत् कहनेसे जिन सब जागतिक वस्तुकी प्रतिकृति हम लोगोंके मानसपट पर पतित होती है, काण्ट कहते हैं, कि वाह्यजगत् ठीक उस प्रकार नहीं है। दर्पण पर पतित छायाकी तरह वाह्यजगत् मानसप्रतिकृतिके अनुरूप नहीं है। साधारणतः वाह्यजगत् कहनेसे हम लोग जो समझते हैं, वह हम लोगोंका मनःप्रसूत है। वाह्यजगत्‌का अस्तित्व है, इसके सिवा वाह्यजगत्‌का स्वरूप जाननेकी हम लोगोंमें क्षमता नहीं है। काण्टके मतसे सूर्यालोक जब कांचकी कलम (Prism)के भीतर हो कर जाता है, तब वह जिस तरह नील, पीत, लोहितादि सात भिन्न भिन्न वर्णोंमें विभक्त होता है। वाह्यजगत् भी उसी तरह जब हम लोगोंके मनोमध्य प्रवेश करता है, तब मानसिक धर्मानुसारसे स्वतन्त्र अवस्था प्राप्त होती है और इस भिन्नावस्थापन्न मानसप्रतिकृतिको ही हम लोग साधारणतः वाह्यजगत् कहते हैं। कांच-कलमके भीतर हो कर देखनेसे जिस प्रकार प्रकृत सूर्यालोक कैसा है, नहीं जान सकते, उसी प्रकार हम लोगोंके मानसिक-धर्मवशसे प्रकृत वाह्यजगत् कैसा है, वह हम लोग नहीं जान सकते हैं। वाह्यवस्तुका यह प्रकृत स्वरूप जिसे हम लोग नहीं जानते, काण्टने उसे वस्तुसत्ता (Thing-in-itself) कहा है। अभी प्रश्न यह उठ सकता है कि यदि वाह्यवस्तु अज्ञात और अज्ञेय पदार्थ हो हुई, तो देश (Space) और काल (Time)का कैसा स्वरूप है? काण्ट कहते हैं, कि देश और कालका वाह्य अस्तित्व नहीं है, यह मनका धर्म वा गुणविशेष है। यदि कोई मनुष्य नील और लोहित काचविशिष्ट चश्मेका व्यवहार करे, तो उसकी आंखोंमें जिस प्रकार सभी वस्तु इन्हीं दो रंगोंमें रंगी हुई दीख पड़ती है, उसी प्रकार वाह्यवस्तु भी हम लोगोंके मानसिक-जगत्‌में प्रवेशलाभ करते समय देश और काल ये दो मानसिक धर्माक्रान्त हो देश और कालसे संश्लिष्ट हैं, ऐसा मालूम पड़ता है। देश और काल इन दो मानस-धर्मोंका दार्शनिक काण्टने "अनुभूतिका आकार" नाम रखा है। इसके सिवा और भी कितने ज्ञान वाह्य-वस्तुसे गृहीत हुए हैं। जैसे, एकत्व (Unity), बहुत्व (Plurality), समवाय (Totality), कार्यकारण-सम्बन्ध (Causality) इत्यादि। काण्टका कहना है कि ये सब ज्ञान वाह्यवस्तुसे गृहीत नहीं है, ये सब मानसिकधर्मविशेष हैं। काण्ट इन सबको बोधका आकार विभाग (Categories of the understanding) बतला गये हैं।

वाह्यजगत्‌के प्रकृत स्वरूपत्व सम्बन्धमें काण्टने जिस प्रकार अज्ञेयवादका अवलम्बन किया है, ईश्वर और आत्माके सम्बन्धमें भी उनका मत उसी प्रकार है। ये दो तत्त्व ज्ञानगम्य नहीं हैं, उसे वे साफ साफ निर्देश कर गये हैं। पर हां, ईश्वर और आत्माके अस्तित्वको काण्ट अस्वीकार नहीं करते। उन्होंने तत्प्रणीत (Critique of Practical Reason) नामक ग्रन्थमें इन दोनोंका अस्तित्व स्वीकार और प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की है। किस प्रकार उक्त सिद्धान्तमें वे उपनीत हुए हैं, वर्त्तमान प्रस्तावमें वह आलोच्य नहीं है। अतः हम लाजिकके सम्बन्धमें ही उनके मतका उल्लेख करेंगे।

पहले ही कहा जा चुका है कि काण्टने बोधशक्ति को बोधशक्तिका आकार (Forms of the under standing) और बोधशक्तिका विषय (Matter of the understanding) इन दो भागोंमें विभक्त किया है। वे कहते हैं कि लाजिक बोधशक्तिका आकार वा प्रक्रिया (Forms of thought) ले कर व्यस्त रहेगा, बोधशक्ति का विषय (Matter of thought) लाजिकका प्रतिपाद्य विषय नहीं है। काण्टके आकार (Form) और विषय (Matter) इन दार्शनिक श्रेणीविभागसे ही फारमल लाजिक (Formal Logic)की सृष्टि हुई है। काण्ट ही फारमल लाजिकका सूत्रपात कर गये हैं। वर्त्तमानकालमें हैमिल्टन और मान्सेल (Hamilton and Mansel)से कुछ परिवर्त्तित हो कर वर्त्तमान फारमल लाजिकमें परिणत हुआ है।

जर्मन देशमें जाकोबि (Jacobi), किसेवेटर (Kiesewutter), हफबर (Hoffbauer), क्रुग (Krug) आदि दार्शनिकगण काण्टके मतका अनुसरण कर गये हैं।

काण्टके समकालीन तदीय प्रतिपक्षमतावलम्बी दार्शनिकोंमेंसे फिकटे (Fichte) दार्शनिकजगत्में सुविख्यात हैं। हम यहाँ पर उनके दार्शनिक मतका उल्लेख नहीं करेंगे। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि फिकटे समस्त ज्ञान और मानसिक व्यापारको आत्माका विकास (Manifestation of the Ego) बतला गये हैं। फिकटेके मतमें ज्ञानका आकार और विषय (Form and matter of thought) यह काण्ट निर्दिष्ट श्रेणीविभाग सङ्गत नहीं है। अतः उनके मतसे फारमल लाजिक नामका एक पृथक् लाजिक नहीं हो सकता।

तत्परवर्त्ती सुप्रसिद्ध दार्शनिक शेलिं (Schelling)-ने फिकटेका मतानुसरण किया है। उनके मतका विशेषरूपसे उल्लेख करनेसे पुनः दर्शनका उल्लेख करना होता है। किन्तु वह वर्त्तमान प्रबन्धमें उपयोगी नहीं है। शेलिंके मतसे सभी एक-मात्र निर्गुण (Absolute)के विवर्त्त हैं। गुण निर्गुणसे मिलता है, किन्तु निर्गुण गुणसे नहीं मिलता है, अत एव निर्गुण ही सब भी गुणका आधार है। यह निर्गुण (Absolute) शेलिंके मतसे ज्ञानलभ्य (known dy intelletual intuition) है।

शेलिंके प्रवर्त्तित निर्गुण (Absolute)का स्वरूप कैसा है इस विषयकी मीमांसा करना वर्त्तमान समयमें बड़ा ही दुष्कर है। क्योंकि उनका मत इतनी बार परिवर्त्तित हुआ है, कि उनके प्रकृत मतका निर्धारण करना प्रायः असाध्यसाधन हो गया है। लेकिन वर्त्तमान दार्शनिकगण पहलेके मतको युक्तियुक्त और सार-वान् मानते हैं।

जब सभी वस्तु निर्गुणके विवर्त्त हैं, तब विषय (Matter) और आकार (Form) इस प्रकार पार्थक्य नहीं रह सकता। आकृति और तद्विशिष्ट पदार्थ अन्योन्य सम्बन्धविशिष्ट हैं; एकके अभावमें अपरका अस्तित्व असम्भव है, पदार्थके रहनेसे ही आकृति रहेगी और आकृतिके रहनेसे ही पदार्थका अस्तित्व सम्भावी है। इस प्रकार अन्योन्यसम्बन्धविशिष्ट दोनों वस्तुओं का पर-स्पर तादात्म्य स्वीकार करना आवश्यक है। सुतरां शेलिंके मतानुसार केवल फारमल लाजिक (Formal Logic) नामका कोई पृथक् शास्त्र नहीं रह सकता। लाजिकके यथार्थमें ज्ञान सहायक ज्ञान दोनोंमें आकार-गत वा फारमल (Formal) और विषयगत वा मेटे-रियल (Material) दोनों का ही होना आवश्यक है।

फिकटे और शेलिंके मतका अनुसरण कर सुप्रसिद्ध दार्शनिक हेगल (Hegel)-ने भी कहा है कि काण्ट प्रवर्त्तित ज्ञानका आकार और ज्ञानका विषय (The form and content of thought) इस प्रकार एक श्रेणीविभाग नहीं हो सकता। हेगलका कहना है कि आकार और विषय (Form and Content) ज्ञान और वस्तु (Thought and Being) दोनों का ऐक्य ही लाजिककी मूलभित्ति है। हेगल अपने दार्शनिक मतको 'लाजिक' नामसे अभिहित कर गये हैं। हेगलके दार्शनिक मतको साधारणतः दार्शनिक वा मेटाफिजि-कल लाजिक (Metaphysical Logic) कहते हैं। Metaphysical Logic कहनेसे साधारण लाजिककी तरह तर्क वा युक्तिका नियामकमात्र विवेचनीय समझा

नहीं जाता। हेगलका दर्शन और लाजिक ये दोनों एक ही पदार्थ हैं। हेगलका कहना है कि यह विश्वचराचर और तत्‌संसृष्ट समस्त व्यापार ही क्रमशः विकाश लाभ करके एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें लाया जाता है। यह विकाशप्रणाली धारावाहिक है, इसमें कोई व्यवच्छेद नहीं है। जिस प्रणालीके अनुसार यह जागतिक क्रमविकाश साधित होता है, उस प्रणालीको युक्तिमूलक प्रणाली वा 'डाइलेकटिकल मेथड' (Dialectical method) कहते हैं। केवल मानसिक जगत्‌में इस डाइलेकटिक प्रणालीका प्रभाव निबद्ध नहीं है, केवल अन्तर्जगत्‌का विकाश हो इस प्रणालीके अनुसार साधित नहीं होता, जड़जगत्‌का विकाश भी इसी नियमका सापेक्ष है। नियम संक्षेपतः इन दो विरोधी दोनों वस्तुओं वा भावोंके समन्वयमें तृतीय वस्तु वा भावका विकाश है। इनके एकका नाम पूर्वपक्ष वा थिसिस (Thesis) और इसके विरोधिभाव वा वस्तुका नाम उत्तरपक्ष वा आण्टिथिसिस (Antithesis) है तथा इस परस्परविरोधी वस्तु या दोनों भावोंके संयोगसे मिलित तृतीय वस्तुका नाम समन्वय वा सिनथिसिस (Synthesis) है। जगत्‌की प्रत्येक दृश्यमान् वस्तु इसी नियमके अधीन है। अस्तित्व (Being) और अनस्तित्व (Not-Being) इन दो विरोधीभावोंके सम्मिलनसे विकाशकी उत्पत्ति हुई है। जागतिक सभी व्यापार ही यही विकाशसम्पन्न है। (A process of becoming)। जिस अन्तर्निहित ज्ञानशक्तिके प्रभावसे (Indwelling Reason) यह क्रमोन्नति साधित होती है, अर्थात् इस क्रमोन्नतिमें जिस शक्तिका विकाश है, वही शक्ति हेगलके मतसे अन्तर्मुखी (Immanent) है। इस अन्तर्निहित शक्तिके प्रभावसे जगत्‌की प्रक्रिया किस वाह्यशक्तिकी सहायताके बिना अपने नियमके अनुसार आपसे आप प्रधावित हुई है। किस प्रकार सम्यग्‌रूप निर्गुण अवस्था (Simple being) से इस गुणमय जगत्‌का विकाश हुआ है, हेगल अपने दर्शनमें उस सम्बन्धमें विशेषरूपसे प्रतिपन्न कर गये हैं। विस्तार हो जानेके भयसे यथासंक्षेप विवरण दिया जाता है।

हेगलका दार्शनिक मत साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त हो सकता है। प्रथमांशमें वाह्य और अन्तर्जगत्‌के किस किस स्तरमें किस किस भावका विकाश हुआ है, उसकी आलोचना है (The development of those pure universal notions or thought-determinations which underlie and form the foundation of all natural and spiritual life, the logical evolution of the absolute)। इस अंशको हेगल 'लाजिक वा' भावप्रकाशप्रणाली कह गये हैं। द्वितीय अंशमें वहिर्जगत्‌की विकाशप्रणालीका वर्णना है, इस अंशको हेगलने प्रकृतितत्त्व (the philosophy of nature) नामसे उल्लेख किया है। तृतीय अंशमें अध्यात्मजगत् किस प्रकार विकाश लाभ करके धर्म, राजनीति, शिल्पनीति आदिमें परिणत हुआ है, उसका उल्लेख है। इस अंशका अध्यात्मतत्त्व (The philosophy of the spirit) नाम रखा गया है। यहां, पर यह कहना जरूरी है कि हेगलको यह क्रमविकाशप्रणालीको एक सीमा वा लक्ष्यस्थल है, निर्गुणभावका विकाश ही लक्ष्यस्थल है। किस शुद्धभाव (Pure Idea) जड़जगत् और अन्तर्जगत् (Nature and spirit) इन दो विभागोंमें विभक्त हो कर पुनर्मिलित हो निर्गुणभाव (The absolute Idea) में परिणत होता है, समस्त दर्शनमें हेगलने इसे प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की है। भाव और वस्तुका ऐक्य ही (The unity of thought and being) इस निर्गुणभाव (Absolute Idea) का स्वरूप है। यह अनेकांशमें हम लोगोंके 'समाधिज्ञान, जीवब्रह्मैक्यवबाव वा ज्ञेय और ज्ञाताके अभेदज्ञानरूप परमावस्थाके साथ मिलता जुलता है।

हेगलके दर्शनके अन्यान्य अंशोंका उल्लेख न कर उपस्थित प्रस्तावोपयोगी उनके दर्शनके प्रथम भागका अर्थात् जिस अंशका उन्होंने लाजिक नाम रखा है, उसी अंशका उल्लेख किया जायगा। पहले ही कहा जा चुका है कि हेगलके तदीय लाजिकमें पदार्थविभागप्रणाली (The development of notion or categories)-का क्रमनिर्देश किया है। आरिष्टल, उल्फ और काण्टसे हेगलने यह पदार्थविभाग ग्रहण किया है,

किन्तु आरिष्टल प्रभृति दार्शनिकोंने जिस प्रकार पदार्थ विभागको (Categories) संक्षेपमें किया है और जिस प्रकार पदार्थ विभागका विकाश हुआ है उसे नहीं दिख लाया है। हेगलने ऐसे पथका अवलम्बन नहीं किया है। जिस प्रकार डायलेक्टिक प्रणालीसे (Dialectical method) भाव या पदार्थके क्रमविकाशप्रणाम किया है, हेगलने उसका यथायथ विवरण किया है।

हेगलने अपनी भाषिकको साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त किया है। प्रथमांशका नाम है अस्तित्वतत्त्व (The Doctrine of Being)। Being और Nothing इन दो विरोधात्मक भावों से व दोनोंसे Becoming या विकाश-की उत्पत्ति होती है। पीछे उन्होंने अवस्था (State, thereness), व्यक्ति (Individuality), गुण (Quality), संख्या (Quantity) और परिमाण (Measure) आदि भावों की उत्पत्तिके सम्बन्धमें विस्तृत आलोचना की है।

द्वितीयांशका नाम है सत्तावाद (The Doctrine of Essence)। सभी पदार्थोंकी सत्ता क्या (Essence) है, किस प्रकार Essence का विकाशप्रकाश होता है। (Essence and its manifestation), सत्ता (Essence) और विकाश (appearance)-में क्या सम्बन्ध है; इसके सिवा समत्व (Identity), बहुत्व (Diversity), विरोधत्व (Contrariety), असङ्गति (Contradiction) आदि तथा सत्यता (Actuality) इत्यादि भावों का विकाश वर्णित है।

तृतीयांशका नाम भाववाद (The Doctrine of notion) है। इस अंशमें प्रथमतः भाव या Notionका स्वरूप क्या है, इसीका उल्लेख है। पीछे हेगलने Notion-को तीन भागोंमें विभक्त किया है, (१) मानसिक धारणा या भाव (Subjective notion), (२) बाह्य-भाव अर्थात् वह मानसिकभाव जिस प्रकार बाह्यजगत्में प्रतिफलित हुआ है (Objective notion) और (३) आइडिया (Idea) आइडिया उपरि-उक्त दोनों भावों अर्थात् Subjective और Objective भावोंका समन्वय (Synthesis) है।

बादमें हेगलने (Subjective notion)-के अन्तर्निहित भावोंको निर्दिष्ट किया है। हेगलका कहना है कि Subjective notion-के क्रमविकाशसे साधारणत्व या सार्वभौमत्व (Universality), विशेषत्व या विशेष-भाव (Particularity) और एकत्व (Singularity) इन भावोंकी उत्पत्ति हुई है (They are the moments of the subjective notion)। पीछे वाक्य (Judgment) और युक्ति (Syllogism)का स्वरूप कैसा है, उस विषयमें आलोचना की है। एकत्वमें सब सार्वभौम सत्य जिस प्रकार अन्तर्निहित है, उस तत्त्वका निदर्शन ही (Judgment,का स्वरूप है (The Judgment enunciates the identity o' the singular with the universal the self diremption of notion)। जिस प्रकार सार्वभौम भाव (Universal notion) विशेष भावकी सहायतासे (Through the particular) एकत्वमूलक भावके साथ (Singular notion) समन्वित होता है, इस तत्त्वका प्रदर्शन ही (Syllogism) का उद्देश्य है। एक, [illegible] और विशेष भावोंका समन्वय साधन (Commidiation of universal and singular through particular) युक्तिप्रणालीका मूल है।

तदनन्तर Objective notionके सम्बन्धमें आलोचना की गई है। Objective notion कहनेसे कोई मानसिक भाव समझा नहीं जाता है। Objective notion कहनेसे बाह्यवस्तुका बोध होता है। केवल बाह्यवस्तु कहनेसे Objective notion का बोध नहीं होता। वस्तु और मानसभाव अर्थात् बाह्यवस्तुको देखनेसे मनमें एक वस्तु भावका उदय होता है, उसीको हेगलने Objective notion कहा है। (Objective notion is not a outward being as such, but an outward being complete within itself and intelligently conditioned)

वस्तुगत भावकी उन्नतिका क्रम (Development of the objective notion) निम्नलिखितरूपसे लिपिबद्ध किया गया है। हेगलके मतसे बाह्यशक्ति या मैके निज़्म (Mechanism) इस क्रमोन्नतिका प्रथम स्तर है। दो स्वतन्त्र विभिन्न वस्तु जब किसी तीसरे वस्तु या शक्ति द्वारा एकत्र होती हैं और बलिष्ठ एक नूतन वस्तु-

का बोध होता है, तब पूर्वोक्त दोनों वस्तुओंके इस प्रकार संयोगको माध्य संयोग वा Mechanism कहते हैं। हेगलका कहना है, कि यह माध्य-संयोगप्रणाली वा Mechanism सृष्टिप्रणालीका आदिम वा सर्वापेक्षा निम्नतर है।

हेगल कहते हैं कि रासायनिक आसक्ति (Chemism or Chemical affinity) इस क्रमोन्नतिप्रणाली-का द्वितीय सोपान है। जिस शक्ति द्वारा दो स्वतन्त्र वस्तु एक दूसरेके प्रति आकृष्ट हो कर एक स्वतन्त्र नूतन वस्तुकी सृष्टि करती है, वही शक्ति इस जागतिक विकाशप्रणालीकी द्वितीय स्तर है। इस अवस्थामें दो स्वतन्त्र वस्तु यद्यपि एकत्र हो कर नूतन और पृथक् गुणसम्पन्न अपर वस्तुको सृष्टि करती हैं, तो भी पूर्वोक्त दोनों वस्तुओंका अस्तित्व एकबारके लिये लोप नहीं होता। वैज्ञानिक प्रक्रियाके मतसे अधिकांश जगह उक्त दोनों वस्तुओंको पूर्वावस्थामें ला सकते पर भी, जब दोनों वस्तु यौगिक अवस्थामें रहती हैं, तब पर-स्परका स्वातन्त्र्य (Indifference) परिहार करके जिस पदार्थका उद्भव करती हैं, वही पदार्थ सम्पूर्ण नूतन और भिन्न धर्माक्रान्त है। हेगलके मतानुसार यह रासायनिक शक्ति (Chemism) माध्यशक्ति (Mechanism)की अपेक्षा उच्चस्तरमें अवस्थित है।

टेलियोलाजी (Teleology) इस क्रमोन्नति प्रणालीका तृतीय वा सर्वोच्च सोपान है। टेलियोलोजी कहनेसे साधारणतः निमित्त कारण (Final cause) का बोध होता है। जागतिक विकाशके जिस स्तरमें उद्देश्य (End) का उन्मेष देखनेमें आता है अर्थात् जब पदार्थसमूहके प्रति दृष्टिपात करनेसे किस उद्देश्यसे उसकी सृष्टि हुई है और चरम परिणति ही क्या होगी, यह समझमें आता है, तब वही अवस्था Teleological Stage वा नैमित्तिक स्तर कहलाती है। उद्भिद और प्राणी जगत्में (Organic Stage) इस नैमित्तिक कारणका विकाश अत्यन्त सुस्पष्ट है। किसी जीव-शरीरके प्रति दृष्टिपात करनेसे देखा जाता है कि उसका कोई अंश अतिरिक्त नहीं है और निरर्थक सृष्ट नहीं हुआ है, प्रत्येक अङ्गका एक निर्दिष्ट कार्य है और वह कार्य प्रत्येकमें स्वतन्त्र नहीं है, एक कार्य दूसरेके ऊपर निर्भर करता है, एकके असम्पन्न होनेसे दूसरेका कार्य सम्पन्न नहीं होता। देखनेसे मालूम होता है कि शरीरके सभी अङ्गप्रत्यङ्ग मिल कर योथकारबारके अंशीदारोंकी तरह हैं, किसी एक विशेष उद्देश्य-साधनमें नियोजित हुए हैं। उद्भिद् और प्राणिजगत्के प्रति दृष्टिपात करनेसे ही प्रतीत होगा कि शरीरपोषण-रूप उद्देश्य ही शारीरिक सभी प्रक्रियाओंको नियन्त्रित करता है।

इसके अलावा सृष्टिका जो अन्य महत्तर उद्देश्य इनके द्वारा साधित हुआ है, हेगलने उसे दूसरी जगह निर्देश किया है। जो असीम ज्ञानस्रोत सृष्टिप्रणाली-के मध्य हो कर प्रवाहित होता है और समस्त सृष्टि प्रणाली जिस उद्देश्यका लक्ष्य करके धावित होती है, हेगलके मतानुसार निरञ्जनज्ञान या ब्रह्म (The absolute Idea) प्राप्ति ही एतत् समुदयका लक्ष्यस्थल है।

(१) हमलोगोंकी भाषामें Absolute शब्दका यथार्थ प्रतिशब्द नहीं मिलता, तब 'निरञ्जन' वा 'तत्-स्वरूप' कहनेसे बहुत कुछ हेगलके Absolute शब्दका आभास प्राप्त हो जाता है। हेगलके मतसे Absolute आध्यात्मिक नहीं है और न जड़ ही है; वस्तुतः जिससे जड़जगत् और आध्यात्मिक जगत्ने विकाश लाभ किया है, वही परमपदार्थ है (Neither subjective nor objective notion, but the notion that immanent in the object, releases it into its complete independencey, but equally retains it into unity with itself)। जड़जगत्से Absolute-का स्तर कई भागोंमें सन्निविष्ट है, हेगलने उसका उल्लेख किया है। प्रथम स्तर जीवजगत् (Life) है। जीव-जगत्में ज्ञान और जड़का एकत्रावस्थान देखनेमें आता है। जिस अन्तर्लीन उद्देश्यके वशवर्त्ती हो कर (The End that pervades life) प्राणिजगत् चलता है, वह ज्ञानमूलक है। लेकिन यह ज्ञान वर्त्तमान स्तरमें अधीनभावसे कार्य करता है तत्परवर्त्ती स्तरमें ज्ञान अधीनभावसे कार्य करता नहीं है, इस स्तरमें आत्मज्ञान (Self consciousness)-का विकाश हुआ है। यदि-

बहिर्जगत् और अन्तर्जगत् ये दोनों स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं, एक दूसरेका प्रतिरूप है। अपनापन ज्ञानके क्रियाओंके साथ साथ जो अनन्तमें अन्तर्निहित आत्मज्ञान अनुसंधी हो कर आत्मज्ञानमें परिणत हुआ है (Consciousness has returned to itself)। बहिर्जगत् और अन्तर्जगत् का विरोध भाव तब भी दूर नहीं हुआ है, आत्माको आधार मान कर निकट बहिर्जगत् अभी भी बाहरकी वस्तु है। आत्मा बहिर्जगत्में अपना विकास देखता है। Absolute Idea का सम्पूर्णता विकास होनेसे ही इस विरोधका निराश होता है उस समय ज्ञाता और ज्ञेय ज्ञान और वस्तु अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् का भेद नहीं रहता है (The opposite between the subject and the object, Knowing and Being Thought and Being will cease)। यह निरवच्छिन्न हेगलके मतमें मानसिक सभी व्यापारोंमें नियन्त्रित करके अपनी ओर खींच लेता है। ह्वेवेल' उपरि उक्त विवरण जो हेगलके लाजिक या उनके दर्शनका मूलतत्त्व है। हेगलने बहुविस्तृत दर्शनका सम्बन्ध ग्रन्थ लिख कर उसके 'लाजिक' नामसे एक ग्रन्थकी आलोचना की है। हेगलका दर्शन एक तो दुर्बोध है दूसरे जिस भाषामें उसका विवरण और भी कठिन हो गया है; ऐसी अवस्थामें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अध्यात्म दार्शनिक लोग लाजिक' शब्दसे जो समझते हैं, हेगलका लाजिक उससे दूसरी वस्तु नहीं है। उनका लाजिक मानसिक विषयके परिणामसे गठित है। हेगल क्रमोन्नतिवादी (Evolutionist) हैं। उनके मतानुसार बहिर्जगत् और अन्तर्जगत् दोनों ही जगत्में इस लाजिकका विकास साधित होता है। (Gradual development of the categories both in the subject and the object—mind and matter)।

आरिस्टटलसे ले कर हेगल तक लाजिककी उत्पत्ति परिवर्त्तन और परिणतिके सम्बन्धमें धारावाहिक इतिहास दिया गया। विभिन्न दार्शनिक मिलके ऊपर प्रतिष्ठित हो कर लाजिकमें कौन कौन विषय प्रारम्भ किया है उसका परिचय देना ही उपरि-उक्त विवरणका उद्देश्य है और वर्त्तमान समयमें जो लाजिककी कितनी परिपुष्टि साधित हुई है, उपर्युक्त विवरणसे वह जाना जायगा।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि दार्शनिकप्रवर बेकन आरिस्टटल-प्रवर्त्तित अवयवका परित्याग कर स्वकीय अभिनव दार्शनिक पथका प्रचार कर गये हैं। तत्प्रणीत Novum Organum का नया तत्त्व नामक ग्रन्थने वर्त्तमान समयके व्याप्तिमूलक तर्क (Inductive Logic)-की सूचना कर दी है। पीछे दार्शनिक जान ष्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill)-ने सबसे पहले व्याप्तिमूलक लाजिककी पूर्णावयव पुस्तक रची। मिल और बेकनसे दोनों अब वर्त्तमान समयमें 'इण्डक्टिव लाजिक' के सम्बन्धमें प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। दार्शनिकप्रवर काण्ट (Kant) जिस फारमल लाजिक (Formal Logic) की सूचना कर गये हैं, वर्त्तमान समयमें सर हमिल्टन और उनके शिष्य मान्सेल (Sir William Hamilton and Mansel) उसका सामान्य परिवर्त्तन कर एक प्रकारसे नूतनभावमें ही रचित हुआ है।

साधारणतः व्याप्तिमूलक लाजिकको मेटेरियल लाजिक (Material Logic) और फारमल लाजिकको 'निगमनमूलक' लाजिक कहते हैं। किन्तु यथार्थमें देखनेसे ऐसा श्रेणीविभाग युक्तिसङ्गत नहीं है। क्योंकि Deduction या निगमन युक्ति (reasoning) का एक प्रकार भेद मात्र है। Material लाजिकमें भी Deductive reasoning या निगमनमूलक युक्तिप्रणालीका प्रयोग किया गया है। मेटेरियल और फारमल दोनों ही लाजिकमें इण्डक्टिव और डिडक्टिव दोनों प्रकारकी युक्तिप्रणालीका प्रयोग है। प्रभेद इतना ही है कि एकमें व्याप्ति और दूसरेमें निगमन-युक्ति प्रणालीको प्रधानता दी गई है। लाजिकको नामकरणपद्धति भी कहाँ तक सङ्गत है उसीके अनुसार हुई होगी। मिलका कहना है कि युक्ति मात्र ही प्रधानतः व्याप्तिमूलक है। निगमन-युक्ति प्रणाली तत्पूर्ववर्ती व्याप्तिके ऊपर प्रतिष्ठित है। निगमन-युक्तिप्रणालीके अन्तर्गत सिलोजिज्म (Syllogism)-का मेजर प्रेमिस (Major Premiss)

या प्रधान पद या पूर्व पक्ष, व्याप्ति तक युक्तिप्रणालीका अवलम्बन करके निर्णीत हुआ है। सुतरां इण्डकसन (व्याप्ति) युक्तिप्रणालीकी सहायताके विना डिडक्टिभ (निगमन) युक्तिप्रणालीका प्रयोग असम्भव है। जीभन्स (Jevons) आदि पण्डित वर्ग विपरीत मतावलम्बी हैं जीभन्सका कहना है कि युक्तिप्रणाली मूलतः डिडकटिभ (Deductive) है। इण्डकसन अवान्तर प्रकार भेद मात्र है। डिडक्टिभ युक्तिप्रणालीको विपरीत दिक्से देखनेसे ही इण्डकटिभ युक्तिप्रणालीमें उपनीत हो जाता है (Induction is inverse deduction)।

उपरि-उक्त दोनों मतोंका संघर्ष अब भी दूर नहीं हुआ है। दोनों मतोंके अन्तर्निहित दार्शनिक तत्त्वका सामञ्जस्य जब तक नहीं होगा, तब तक स्थिर सिद्धान्तमें उपनीत होना असम्भव है।

लाजिककी उत्पत्ति—लाजिककी उत्पत्तिका निरूपण करनेमें यूरोपीय पण्डितोंका कहना है कि मानसिक उन्नतिके जिस स्तरमें अनुमान (Inference) का विकाश है, लाजिककी उत्पत्ति भी उसी स्तरमें है। न्यायदर्शनके मतसे प्रत्यक्ष (Perception) जिस प्रकार चारों प्रमाणोंमें अन्यतर है, यूरोपीय विद्वान् लोग प्रत्यक्षको उस प्रकार प्रमाणके मध्य नहीं गिनते। उनके मतसे जो प्रत्यक्ष वा इन्द्रियग्राह्य है उसका फिर प्रमाण क्या, प्रत्यक्ष स्वभावतः ही स्वतःसिद्ध है। इसी कारण मनस्तत्त्व (Psychology)-के प्रत्यक्षमूलक ज्ञानको लाजिकके अधिकारसे बाहर माना है। प्रत्यक्ष और अनुमानकी सीमा इतनी दुर्लक्ष्य है कि कब प्रत्यक्षसे अनुमानमें पदार्पण किया जाता है, उसका निर्णय करना कठिन है। अनेक समय जो सम्पूर्ण प्रत्यक्षज्ञान समझा जाता है, उसके मध्य बहुतसे अनुमान अन्तर्निहित हैं। मनस्तत्त्वविदोंने इस श्रेणीके अनुमानको अज्ञातसारयुक्ति (Unconscious Reasoning) बतलाया है। अज्ञातसारमूलक युक्ति लाजिककी सीमाभुक्त नहीं है। प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्षका अनुमान जब स्फुटतर होता है, जब अनुमानक्रिया ज्ञातसारसे साधित होती है, उसी समय लाजिककी विकाशावस्था है। पण्डितोंके मतसे युक्ति (Reasoning) बुद्धि (Thought or Intellect) की सर्वोच्चविकाश है।

लाजिककी दार्शनिक भित्ति।—लाजिक प्रमाणका नियामकशास्त्र है। प्रमाणका सत्यासत्य जिसके ऊपर निर्भर करता है, उसका निर्द्धारण कर सकनेसे ही लाजिकका मूलतत्त्व बोधगम्य होगा। प्रमाणका सत्यासत्य किस प्रकार है, इस विषयमें बहुत मतभेद है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। मिल प्रभृति दार्शनिकोंका कहना है कि बाह्य और अन्तर्जगत्‌का सामञ्जस्य ही सत्यका प्रकृत स्वरूप है (Correspondence of thought with the external realities) तथा प्रमाणका याथार्थ्य अयाथार्थ्य इसी हिसाबसे निर्द्धारित करना होगा।

हैमिलटन प्रभृति दार्शनिकगण कहते हैं कि प्रमाणके याथार्थ्य अयाथार्थ्यका निरूपण करनेमें बाह्यजगत्‌के साथ सामञ्जस्यकी कुछ भी आवश्यकता नहीं, वरं प्रमाणकी सङ्गति असङ्गति (Inner consistency or inconsistency) देखनेसे ही काम चल जायगा। हैमिलटनके मतानुसार विरोधाभाव ही (Absence of contradiction) सङ्गति और विरोध (Contradiction) असङ्गति-ज्ञापक है।

डेकार्ट प्रभृति पण्डितोंका कहना है कि परिस्फुट भाव ही (Distinctness and clearness) सत्यका लक्षण है। इस प्रकार भिन्न भिन्न मतोंके मध्य एक पक्षमें मिल, वेन प्रभृति पण्डितोंका मत, दूसरे पक्षमें हैमिलटन मानसेल प्रभृति पण्डितोंका मत समधिक प्रचलित है तथा मेटीरियल और फारमल दोनों प्रकारके लाजिकके लक्षणकी सूचना करता है। दर्शन और लाजिक अन्योन्यसाहाय्यसे उद्घटित होता है तथा लाजिककी मूलभित्ति अर्थात् सत्यका लक्षण दर्शनके ऊपर प्रतिष्ठित है। इसी कारण अन्तर्निहित दार्शनिकतत्त्वका परिवर्त्तन साधित होने पर लाजिक भी भिन्नरूप धारण करके भिन्न लक्षणाक्रान्त होता है।

लाजिक और भाषा।—भाव और भाषाका सम्बन्ध इतना घनिष्ट है कि सांख्यशास्त्रोक्त पङ्गु और अन्धकी तरह एक दूसरेके बिना चल नहीं सकता। सभी प्रकारकी चिन्तावली भाषाकी सहायतासे साधित होती है। अतः भाषाके असम्पूर्ण भावज्ञापक और भ्रमप्रमादपूर्ण होने पर तत्संश्लिष्ट भाव भी भ्रमवर्जित नहीं हो सकता।

इसी कारण प्रत्येक जातिकके प्रथमोंमें जो भाषापरिच्छेद निर्दिष्ट हुआ है। इसमें भाषाको भिन्नभिन्न रूपमें विश्लेषण करके (Analysing) भाषा और भावके पारस्परिक सम्बन्धके विषयमें आलोचना की गई है। प्रत्येक मानसिक भाव भाषाकी सहायतासे प्रकाशित होता है। जितने वाक्यविन्यास करनेसे एक सम्पूर्ण मनोभाव सूचित होता है वह मनोभावज्ञापक वाक्य समष्टिको (Acomplete sentence) जातिशास्त्रमें एक एक प्रतिज्ञा कही गई है। प्रतिज्ञाका विश्लेषण करनेसे देखा जाता है कि शब्दसमष्टि हो कर यह एक प्रतिज्ञा गठित हुई है। इसीसे जातिकके प्रथमाध्यायमें नाम प्रकरण वा शब्दसमष्टिके सम्बन्धमें आलोचना है।

नामप्रकरण —नामका प्रकृत अर्थ क्या है इस विषयमें भिन्न भिन्न ग्रन्थोंके दार्शनिकोंका मत भिन्न भिन्न है।

नामवादी (Nominalist) जिनके मतमें नाम तत्तत् द्रव्य पदार्थका चाहे जिस चिह्नमात्र (Symbol) है। अध्यासवशसे (Through association) किसी एक नाम या शब्दका स्मरण होनेसे ही तत्तत् द्रव्य पदार्थ मनमें उदित होता है।

जो भिन्नडन प्रभृति पण्डितगण भिन्न मतावलम्बी हैं इनके धारणमूलक मतको भाववाद या कल्पितमूलतावाद (Conceptualism) कहते हैं। जो भिन्नडनका कहना है कि जिस तरह व्यक्तिगत पदार्थ किसी व्यक्तिवाचक शब्दके वाच्य व वस्तु हैं, उसी प्रकार जातिवाचक शब्दके वाच्य जातिगत भाव (Concept) न वस्तु है। इस बातमें भाववादी सामान्य भाव (General idea or concept)का अस्तित्व स्वीकार करते हैं नामवाद वैसा नहीं करते।

अपरिक्त इस मतद्वय छोड़ कर भी एक और ग्रन्थोंका मत जो जिसे यथार्थवाद (Realism) कहते हैं अरिष्टल और मध्ययुग (Scholastic period)के अधिक पण्डित इसी मतके पक्षपाती थे। इनका कहना है कि द्रव्य मनुष्यका भिन्न भिन्न गुण छोड़ कर आतिक नामक एक स्वतन्त्र गुणका अस्तित्व है। जैसे—मनुष्य भिन्न भिन्न गुण रह सकता है। किन्तु तद्व्यतीत इसमें मनुष्यत्व नामक एक साधारण गुण है इस गुणके नहीं रहनेसे यह मनुष्यवाच्य नहीं होता। प्लाटो प्रमुख पण्डितगण Essence नामक गुणका स्वतन्त्र अस्तित्व (Reality) स्वीकार करते हैं। जैसे—मनुष्यत्व गोत्व, घटत्व इत्यादि। इसीसे इन्हें Realist कहा गया है। मिलके मतानुसार गुणसमष्टि छोड़ कर Essence नामक कोई एक स्वतन्त्र गुण नहीं है।

योगि नामको ग्रन्थोंने विभागप्रकारो निर्दिष्ट हुई है। यह नाम एकत्ववाचक, बहुत्ववाचक और समष्टिवाचक (Collective names)के भेदसे तीन श्रेणियों में विभक्त हुआ है।

ग्रन्थोंमें इसे द्वितीय प्रकरणमें व्यक्तिवाचक (Con Crete) और जातिवाचक (Abstract) भेदसे नाम दो प्रकारका है।

तृतीय प्रकरणमें नाम लक्षणवाचक (Connotative) और अलक्षणवाचक अर्थात् गुणवाचक नहीं (Non Connotative) इत्यादि भेदसे दो श्रेणियोंमें विभक्त है। जिस नाम द्वारा केवल एक नाम या गुणका प्रकाश हो, उसे Non-connotative वा अलक्षणवाचक नाम कहते हैं। राम कहनेसे राम-नामधेय व्यक्तिका ही बोध होता है और किसीका भी नहीं। मनुष्य कहनेसे केवल एक गुणविशेषका ही बोध हुआ, इसके सिवा अन्य किसी तत्त्वका आभास नहीं पाया गया, ऐसे नामको अलक्षवाचक या Non connotative और जिससे गुण तथा गुण दोनोंको ही प्रतीति होती है उसे Connotative या लक्षणवाचक नाम कहते हैं।

चतुर्थ प्रकरणमें (Fourth principal division) Positive या भाववाचक और Negative या अभाववाचक भेदसे नाम दो प्रकारका है, जैसे मनुष्य, अमनुष्य, घट अघट इत्यादि।

पञ्चम प्रकरणमें सम्बन्धसापेक्ष (Relative) और सम्बन्ध-निरपेक्ष (Absolute or non-relative) इन दो प्रकारका विभाग है। जो दोनों नाम परस्पर आकाङ्क्षा युक्त हैं उन्हें सम्बन्धसापेक्ष नाम कहते हैं, जैसे पिता कहनेसे ही पुत्रको और राजा कहनेसे प्रजाको सूचना करता है, इत्यादि।

नामका श्रेणीविभाग संक्षेपमें कहा गया। अभी नामका अर्थ विचार संक्षेपमें कहा जाता है।

टार्शनिकप्रवर अरिष्टलने द्रव्य, गुण, परिमाण इत्यादि दश पदार्थ विभाग करके निर्देश किया है। नाम इन दश श्रेणियोंमेंसे किसी न किसीके अन्तर्गत होगा। मिलने पूर्वोक्त दशप्रकारका श्रेणीविभाग करके अर्थनिर्द्धारणकी अयौक्तिकता दिखलाते हुए स्वीयमत स्थापन किया है। मानसिक चिन्ताप्रणालीका विश्लेषण कर मिलने निम्नलिखित श्रेणीविभाग निर्देश किया है।

(१) मानसिक भाव अर्थात् वाह्यवस्तुओंके मनके ऊपर क्रिया (Feelings or states of consciousness

(२) मन वा आत्मा—(The mind which experiences those feelings)

(३) समस्त वाह्यवस्तु (The Bodies or external objects) अर्थात् जो सब वस्तु हम लोगोंके मानसिक भावोंकी जनयिता।

(४) पौर्वापर्यज्ञान (Succession) समानाधिकरण ज्ञान (Co-existence) सादृश्य और असादृश्य ज्ञान (Likeness and unlikeness)

जागतिक समस्तपदार्थ इन चार श्रेणियोंमेंसे किसी न किसीके अन्तर्गत होंगे हो।

लाजिककी प्रतिज्ञा (Logical propositions)—पहले कहा जा चुका है कि एक सम्पूर्ण मानसिक भाव ज्ञापक समष्टिको प्रतिज्ञा (Proposition) कहते हैं। कर्त्ता, विधेयपद और योजक पदभेदसे प्रत्येक प्रतिज्ञाके तीन अंश हैं। जिसके सम्बन्धमें कुछ उक्त वा विहित हुआ करता है उस व्यक्ति वा वस्तुको कर्टपद (Subject), जो उक्त वा विहित हो उसे विधेयपद (Predicate) और जिस पदकी सहायतासे यस्तुपद एवं विधेय पदके मध्य सम्बन्ध स्थापित हो, उसको योजकपद (Copula) कहते हैं। पीछे भावज्ञापक (Affirmity) और अभावज्ञापक (Negative), सरल (Simple) यौगिक (Complex), सार्वभौमिक (Universal), विशेष (Particular), अनिर्दिष्ट (Indefinite) और व्यक्तिबोधक (Singular) इन कई श्रेणियोंमें विभक्त हुआ है। बादमें प्रतिज्ञाके अर्थविचारके सम्बन्धमें (Import of propositions) आलोचना सन्निविष्ट हुई है। सभी प्रतिज्ञाओंके अर्थसम्बन्धमें नानामत देखे जाते हैं। किसी किसी मतमें प्रतिज्ञा केवल दो मानसिक भाव वा प्रतिकृतिके मध्य सम्बन्धकी सूचना करती है (Expression of a relation between two ideas)। फिर दूसरेका मत है कि दो नामके अर्थका सम्बन्ध स्थापन ही प्रतिज्ञाका मूल है (Expression of a relation between the meanings of two names)। दार्शनिक हब्स (Hobbes) का कहना है कि कर्टपद (Subject) और विधेयपद (Predicate) जो एक ही बातके दो भिन्न भिन्न नाम हैं उन्हें प्रदर्शन करना ही प्रत्येक प्रतिज्ञाका उद्देश्य है। जैसे सभी मनुष्य प्राणिविशेष हैं; यहां पर प्रत्येक मनुष्यको ही प्राणी कहा गया है। मनुष्य और प्राणी ये दो शब्द एक ही वस्तुके नामान्तरमात्र हैं। हवसका मत एकदेशदर्शी और अनेकांशमें भ्रान्तिविजृम्भित है, इसीसे मिल प्रभृति अपरापर नामवादियोंका मत उससे स्वतन्त्र है। इस विषयमें मतभेद देखा जाता है। इन श्रेणीके दार्शनिकोंका कहना है कि कोई वस्तु किसी एक निर्दिष्ट श्रेणीके अन्तर्गत है वा नहीं (In referring something to or excluding something from, a class) इसका निर्देश करना ही प्रतिज्ञाका उद्देश्य है। जैसे, राम मरणशील है, ऐसा कहनेसे समझा जाता है कि मरणशील पदार्थ वा जीव नामकी जो श्रेणी है, राम उसी श्रेणीगत व्यक्तिविशेष है। इसी आमिषाशी जन्तु नहीं है, यह कहनेसे समझा जाता है, कि समस्त 'आमिषाशी जन्तु' ले कर जो श्रेणी गठित हुई है, हस्ती उस श्रेणीके अन्तर्निविष्ट नहीं (excluded) है, यह अन्य श्रेणीका है। इस प्रकार लाजिककी समस्त प्रतिज्ञा एक श्रेणी दूसरी श्रेणीकी अन्तर्निविष्ट है, यही सूचना करती है, जाति (Genus) श्रेणी (Speceies) इन दोनोंका पार्थक्य (Differentium) प्रभृति, मध्ययुगके स्कलाष्टिक पण्डितोंसे प्रवर्त्तित श्रेणीविभागसे प्रतिज्ञाके ऐसे अर्थनिर्देशका सूत्रपात हुआ है। आरिष्टल प्रवर्त्तित सूत्र (Dictum de omni et nullo) अर्थात् एक श्रेणीके सम्बन्धमें जो विहित हो

सकता है, उस में केवल प्रत्येक वस्तुके सम्बन्धमें यह प्रयोज्य हो सकता है, यही अनुमानका मूल है ।

दार्शनिक मिल उपरि उक्त मतको समीचीन नहीं मानते। उनका मत है कि उद्देश्यपद (Subject) और विधेयपद (Predicate) किसी एक विशेष सम्बन्धको सूचना करता है और उस सम्बन्ध में कर ही प्रतिज्ञाकी सृष्टि है। ये सम्बन्ध मिलके मतसे सामान्यतः पांच हैं—पौर्वापर्य (Sequence) समानाधिकरण्य वा सहावस्थान (Co-existence), अस्तित्वमात्र (Simple existence) कार्यकारण (Causatio) और सादृश्य (Resemblance) ।

प्रतिज्ञाको साधारणतः दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं-वाच्यप्रतिज्ञा (Verbal proposition) और वास्तव प्रतिज्ञा (Real proposition) जिस प्रतिज्ञाका विधेयपद (Predicate) उद्देश्यपदका अर्थ मात्र या उसी प्रकार प्रकाश करता है अर्थात् उद्देश्यपद जो अर्थ प्रकाश करता है तदतिरिक्त अर्थ प्रकाश नहीं करता, ऐसी प्रतिज्ञाको वाच्य वा Verbal प्रतिज्ञा कहते हैं। मनुष्य बुद्धिशाली जीव है, यहां पर 'बुद्धिशाली जीव' यह विधेय पद मनुष्य अर्थमें जो समझा जाता है, तदपेक्षा किसी अतिरिक्त अर्थका प्रकाश नहीं करता। इसलिये यहां पर उपरि उक्त प्रतिज्ञावाचक प्रतिज्ञा है। जिस प्रतिज्ञामें विधेयपद उद्देश्यपदके अतिरिक्त अर्थप्रकाश करता है, ऐसी प्रतिज्ञाको वास्तवप्रतिज्ञा (Real proposition) कहते हैं। जैसे 'सूर्यदेव जगत्का केन्द्रस्थान है' यहां पर "सूर्य" इस उद्देश्यपदके अर्थकी प्रतीति होनेसे जगत्का केन्द्रस्थल इस विधेय पदका अर्थ अन्तर्निविष्ट है, ऐसा समझा नहीं जाता, विधेयपद सम्पूर्ण नूतन तत्त्व प्रकाश करता है। इसीसे इस प्रतिज्ञाको वास्तव प्रतिज्ञा कहते हैं। वाच्य प्रतिज्ञाका नामान्तर अर्थव्याख्यापक प्रतिज्ञा (Explicative) और वास्तव प्रतिज्ञा (Real proposition का नामान्तर अर्थबोधक प्रतिज्ञा (Ampliative proposition है) । प्रतिज्ञाका अर्थविचार करनेमें विधेयपदका विशेषत्व आवश्यक है और विधेय पदके साथ उद्देश्यपदका सम्बन्ध निरूपण होनेसे ही प्रतिज्ञाका अर्थ निर्णीत हुआ।

संज्ञाकरण । Definition—सभी वस्तुओंको संज्ञा प्रदानको जिस नियमसे ज्ञापित हुई है, जिस प्रकार संज्ञानिर्धारणको निर्दिष्ट है, जिस प्रकार वस्तुकी संज्ञा निर्देश (Define) की जाती है वा नहीं की जाती है इत्यादि विषय इस प्रकरणमें आलोचित हुए हैं। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि संज्ञा और अंग्रेजी डेफिनिशन (Defination) शब्द परस्पर समार्थसूचक नहीं है, अधिकतर उपयुक्त नामके अभावमें संज्ञाशब्द ही प्रतिशब्दस्वरूप व्यवहृत हुआ। संज्ञाकरणके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न तर्कशास्त्रों का भिन्न भिन्न मत है।

दार्शनिक अरिष्टटलके मतानुसार किसी पदार्थका संज्ञानिर्देश करनेमें वह पदार्थ जिस जाति (Genus)के अन्तर्गत है, उस जातिका और तदपेक्षा जो सब अतिरिक्त गुण है उस पदार्थमें विद्यमान हैं, उनका उल्लेख करनेसे ही पदार्थका संज्ञानिर्देश किया गया (Definition per genus et differentias) । अरिष्टटल एवं तदनुवर्ती मध्ययुगके अधिकांश दार्शनिक सत्वादि (Realist) हैं; उपरि उक्त संज्ञाकरण उनके दार्शनिक मत सम्मत है।

मिल प्रभृति नामवादी (Nominalist) दार्शनिकगण उक्त मतको समीचीन नहीं मानते। मिलका कहना है कि प्राचीन पण्डितोंके मतसे परजाति (Summum genus) संज्ञित नहीं की जाती। उनके मतसे हम लोगोंके सरल मनोभाव (Elementary feeling) व्यतीत और सभी पदार्थ संज्ञा द्वारा निर्देश किये जा सकते हैं। समस्त संज्ञा मिलके मतसे नामका वचन अर्थ प्रकाश करती है (Enumerates the connotation of the term to be defined); एक नामका स्मरण होनेसे ही तत्क्षणात् जिन सब गुणोंसे वह नामधेय पदार्थ सूचित होता है, वे गुण स्मरण आ जाते हैं और उन गुणोंके निर्देश करनेके लिये ही मिलने 'संज्ञा' ऐसी व्याख्या प्रदान की है। मिलका कहना है कि जो वस्तु कोई सूचना नहीं करती, ऐसी वस्तु संज्ञा द्वारा निर्दिष्ट नहीं की जा सकती। नाम करनेसे किसी अर्थकी प्रतीति नहीं होती, नाम शब्द एक वस्तु निर्देशका

चिह्नमात्र है और वह चिह्न केवल वस्तुनिर्देशकी सहायता करता है। अतः राम शब्द संज्ञा द्वारा निर्देश्य नहीं है।

यदि कोई नाम वा शब्द तन्निहित समस्त अर्थोंका प्रकाश न कर अर्धांशमात्र प्रकाशित करे, तो वर्णोंका उक्त नाम वा शब्दको संज्ञाको असम्पूर्ण संज्ञा कहते हैं (Imperfect definition)। इसके सिवा किसी वस्तुके समवायी गुणोंका उल्लेख न कर असमवायी गुण (Accidents) द्वारा उक्त वस्तुका निर्देश करनेसे, उक्त वस्तुकी संज्ञा असम्पूर्ण हुई. इस प्रकार असम्पूर्ण-संज्ञा संज्ञापदवाच्य न हो कर वर्णनाशब्दवाच्य (Description) हुआ है।

लेखकके उद्देश्यानुसार उपरि उक्त वर्णना भो (Description) कभो कभी संज्ञापदवाच्य हुआ करता है। विज्ञानशास्त्रमें अधिकांश संज्ञा इसी हिसावसे रची गई हैं। लेखकने जिस गुण वा धर्मके ऊपर लक्ष्य रख कर वस्तुओंका श्रेणीविभाग निर्देश किया है, वह गुण वस्तुका समधिक विशिष्ट गुण नहीं भी हो सकता है, किन्तु लेखकके उद्देश्यानुसार गुणकी विशेष सार्थकता है। इस प्रकार उक्त निर्देश प्रणालीको वर्णना (Description) न कह कर वैज्ञानिक संज्ञा (Scientific difinition) कहते हैं। प्राणीतत्त्वविद् कुभियर (Cuvier)ने मनुष्यको "द्विहस्तविशिष्ट स्तन्यपायी" जीव संज्ञित किया है। उक्त संज्ञाकी वर्त्तमान प्रयोजनीयता रहने पर भी संज्ञापदवाच्य नहीं हो सकता। किन्तु कुभियरका उद्देश्य अन्य प्रकारका है। उन्होंने जिस प्रणाली (Principle) के अनुसार प्राणियोंका श्रेणीविभाग निर्देश किया है, उसीके अनुसार उपरि उक्त संज्ञाकी सार्थकता है। समस्त वैज्ञानिक संज्ञा इसी प्रकार प्रणालीका अवलम्बन कर ग्रथित है।

नामप्रकरणसे ले कर संज्ञाप्रकरण तक भाषा और भावका है। सत्रभ्रमनिराकरण चिन्ताप्रणालीका याथार्थ्य साधन करनेमें भाषामें किस प्रकार संस्कारको आवश्यकता, नामप्रकरण, संज्ञानिर्देशप्रणाली, भाषाके अर्थनिर्देशका सामञ्जस्यविधान इत्यादि प्रस्तावोंकी अवतारणा की गई है। उपरि उक्त विषय तर्कशास्त्रके भित्तिस्वरूप है। इसके अनन्तर तर्कशास्त्रके मूल उद्देश्यसाधक "प्रमाण" नामक अंशको अवतारणा की गई है।

अनुमान (Reasoning)।—पहले कहा जा चुका है कि न्यायशास्त्रोक्त प्रमाण चतुष्टयके अन्तर्गत अनुमान एक प्रमाणविशेष है। यूरोपीय पण्डितगण शेष तीनको अर्थात् प्रत्यक्ष, उपमिति और शब्दको प्रमाणका स्वरूप नहीं मानते।

जिस प्रणालीका अवलम्बन कर किसी ज्ञातपूर्व विषयके ज्ञानसे किसी अज्ञात या अदृष्टपूर्व विषयके सिद्धान्त पर पहुंचता है। ऐसी युक्तिप्रणालीको अनुमान (Reasoning or Inference in general) कहते हैं। कोई विषय सिद्ध वा प्रमाणित हुआ, यह वाक्य कहनेसे साधारणतः हम लोग क्या समझते हैं? साधारणतः इस अर्थसे यह बोध होता है कि प्रामाण्य विषयका सत्यासत्य जिस विषयके ऊपर निर्भर करता है, वह विषय हम लोगोंको ज्ञात था और उस ज्ञात विषयसे अज्ञातविषय निरूपित हुआ है।

अनुमान नाना श्रेणीमें विभक्त है। प्रधानतः निगमनयुक्ति (Deductive Reasoning) और व्याप्तिमूलकयुक्ति (Inductive reasoning) उपरि उक्त श्रेणी विभाग छोड़ कर एक और प्रकारके अनुमानका उल्लेख है। किन्तु यथार्थमें इस श्रेणीका अनुमान यथार्थ अनुमान (Inference) नहीं है, केवल शब्दविपर्ययहेतु (Transposition of terms) यथार्थ अनुमान जैसा बोध होता है। ऐसे अनुमानका नाम है साक्षात् अनुमान वा इमिडियेट इनफरेन्स) (Immediate Inference) जैसे, सभी मनुष्य मरणशील हैं, इस वाक्यके बदलेमें यदि कोई मनुष्य अमर नहीं है, इस पदका व्यवहार किया जाय, तो किसी नूतन सिद्धान्त पर नहीं पहुंचते, केवल एक ही बातको वाक्यान्तरमें पुनरावृत्ति की गई है।

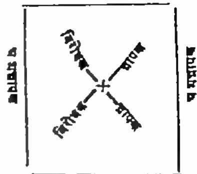
यूरोपीय दार्शनिकोंने तर्कशास्त्रको प्रतिज्ञाओंको साधारणतः चार भागोंमें विभक्त किया है और यथाक्रम उनका A, E, I, O नाम रखा है। इनमेंसे A सार्वभौमिक सम्मतिज्ञापक है, यथा—सभी मनुष्य मरणशील हैं, यहां पर मरण ... न पद सभी मनुष्योंके सम्बन्ध

में लिखित हुआ है। E प्रतिज्ञा सार्वभौमिक असम्मतिज्ञापक है अर्थात् किसी सत्य विधेयपदसे साथ उद्देश्यपदको एकप्रकारमिलित नहीं है, यही ज्ञापन करना E प्रतिज्ञाका उद्देश्य है। जैसे कोई भी वस्तु सम्पूर्ण नहीं है, यहां पर सम्पूर्ण पद प्रत्येक वस्तुके सम्बन्धमें ही प्रत्याहार किया गया है। आंशिक सम्मतिज्ञापक और आंशिक असम्मतिज्ञापकको यथाक्रम I और O कहते हैं; जैसे कितने जीव सम्पूर्ण हैं (I), कितने जीव सम्पूर्ण नहीं है (O)।

जिस द्वारा साक्षात् अनुमान (Immediate Inference)-का स्वरूप सहजमें ही प्रदर्शित हो सकता है। जैसे, सभी 'क' ही 'ख' है। सुतरां कितने ख क है, और कितने ख क नहीं हैं, ये दोनों ही अनुमान सिद्ध हो सकते हैं। निम्नलिखित वृत्त द्वारा प्रत्येक पद की व्याप्ति (Extension) दिखलाई गई है। क और ख नामधारी जितनी वस्तु हैं वे यथाक्रम क और ख वृत्त द्वारा सूचित हुई हैं। अधिकित्तचित्रसे देखा जाता कि क नामधारी जितनी वस्तु हैं वे ख नामधारी वस्तुओंके अन्तर्गत हैं। सुतरां क आख्याधारी ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो ख न हो। किन्तु क वृत्तका जो अंश ख वृत्तका एक स्थानीय है वह अंशका ख हो क है; सुतरां कितनेही ख क हैं; और क वृत्तका जो अंश ख वृत्तके बहिर्भूत है, उस अंशका ख क नहीं है, अतः दोनों अनुमान सिद्ध हुए।

अब पद और विधेयपदका जिस प्रकार स्थान विपर्यय द्वारा अनुमान साधित होता है, वह साधारणतः तीन प्रकारका है—(१) सामान्य और विशेष विपर्यय (Simple conversion and conversion per accidents), (२) विपरीतापन्नमान (Tran po-ition) और (३) विपरीतज्ञापन (Obversion)। इन सब अनुमानोंकी प्रक्रियाका विशेष विस्तार हो जानेके भयसे नहीं लिखा गया। निम्नलिखित चित्रसे प्रतिज्ञाओंका परस्पर सम्बन्ध निरूपित होगा।

A वैपरीत्यज्ञापक E



I आंशिक वैपरीत्यज्ञापक O

जिस द्वारा प्रमाण किया जा सकता है कि दोनों ही वैपरीत्यज्ञापक प्रतिज्ञाके मध्य दोनों ही मिथ्या हो सकती हैं, किन्तु दोनों ही सत्य नहीं हो सकते। आंशिक वैपरीत्यज्ञापक दोनों प्रतिज्ञाके मध्य दोनों ही सत्य हो सकते हैं, किन्तु दोनों मिथ्या नहीं हो सकते। दोनों परस्पर विरोधज्ञापक दो प्रतिज्ञाके मध्य सत्य अथवा दोनों मिथ्या नहीं हो सकते। एकके मिथ्या होनेसे दूसरा अवश्य सत्य होगा। अ ज्ञापक दोनों प्रतिज्ञाके मध्य सार्वभौमिक प्रतिज्ञा (Universal proposition) विशेष प्रतिज्ञा (Particular proposition)-का सत्य प्रतिपादन करता है। किन्तु विशेष प्रतिज्ञाका सत्य प्रतिपन्न होनेसे सार्वभौमिक प्रतिज्ञाका सत्य प्रतिपन्न नहीं होता। विशेष प्रतिज्ञाके मिथ्या प्रतिपन्न होने पर सार्वभौमिक प्रतिज्ञा भी मिथ्या प्रतिपन्न होती है किन्तु सार्वभौमिक प्रतिज्ञाके मिथ्या प्रतिपन्न होने पर विशेष प्रतिज्ञा मिथ्या प्रतिपन्न नहीं होती।

उपरिउक्त साक्षात् अनुमान (Immediate Inference) के सिवा अनुमान प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है—नियमनमूलक अनुमान (Deductive Reasoning) और व्याप्तिमूलक अनुमान (Inductive Reasoning)।

सिद्धान्तयुक्ति। सिद्धान्तमें या नियमन-प्रणालीमें युक्तिका प्रथम सोपान (First premise or datum) सार्वभौमत्व ज्ञापन (Universality) करते हैं। उस सार्वभौमत्वज्ञापक प्रतिज्ञाको विश्लेषण करके युक्तिप्रवाह प्रकार लाभ करता है। अरस्तूके मतमें परिणाम

जगह यही प्रणाली अवलम्बित हुई है। जैसे ज्यामिति-शास्त्रमें कितनी ही संज्ञा स्वतःसिद्ध विषय हैं और स्वीकृत विषयमें प्रथम सोपानस्वरूप मान कर विश्लेषण प्रणाली-क्रमसे अन्यान्य तत्त्व प्रमाणित हुए हैं। जागतीय जो सब कार्यकलाप साक्षात्कार द्वारा मीमांसित होनेको नहीं है, यहां पर निगमन (Deduction) युक्तिका आश्रय ग्रहण करना ही होगा। ज्योतिषशास्त्रके अनेक विषय इसी प्रकार उपाय अवलम्बनमें निर्णीत हुए हैं। नक्षत्र और यह जगत्के सभी तत्त्व हम लोगोंके इन्द्रियायत्त नहीं हैं, किन्तु यह जगत्के अनेक तत्त्व ज्योतिर्विद् द्वारा निर्णीत हुए हैं। इस प्रकार किसी तत्त्वकी सूचना देखनेसे उस तत्त्वके प्रमाणीकृत होनेको उपाय और कुछ नहीं है, केवल अपरापर ज्ञात और मीमांसित घटनाके साथ उक्त तत्त्वकी सङ्गति (Consistency) है वा नहीं तथा अपरापर व्यापकतर तत्त्व (Higher principles)से उक्त तत्त्वमें पहुंचता है (Deduce) वा नहीं, इसीका निराकरण है। निगमनयुक्ति (Deductive Reasoning)के जो कई प्रकारके भेद हैं, उनमें अन्योन्य संश्रयात्मिकायुक्ति ही (Syllogism or Ratiocination) विशेष उल्लेख योग्य हैं। नीचे उक्त प्रकारकी युक्तिका स्थूल मर्म दिया गया है।

अन्योन्यसंश्रयात्मिक युक्ति (Syllogism) और उक्तरूप अनुमानसे प्रतिज्ञाद्वय वा दो स्वीकृत विषयके संयोगसे तृतीय विषयके सिद्धान्त पर उपनीत होना पड़ता है। प्रथमोक्त प्रतिज्ञाद्वय वा स्वीकृत विषय दोनोंको प्रेमिस (Premiss) कहते हैं। इनमेंसे जिसे प्रतिज्ञा वा वाक्यमें प्रधान पद (Major term) वा जिसे (हम लोगोंके न्यायशास्त्रानुसार) हेतुपद रहता है उस प्रतिज्ञाको प्रधान वाक्य वा मेजरप्रेमिस (Major premiss) और जिस प्रतिज्ञामें अप्रधानपद (Minor term) वा हम लोगोंके न्यायशास्त्रमें साध्यपदका उल्लेख है उस प्रतिज्ञाको अप्रधान वाक्य (Minor premiss) कहते हैं। जिस पदके सहयोगसे (Mediation) हेतु और साध्यके मध्य सम्बन्ध सूचित हो कर सिद्धान्त पर पहुंच जाता है, उस पदको मध्यपद वा लिङ्गरूप (Middle term) कहते हैं। प्रतिज्ञाद्वय (Premisses) की सहायतासे जिस सिद्धान्त पर उपनीत हो जाता है उसे सिद्धान्तवाक्य वा निगमन (Conclusion) कहते हैं। सिलजिस्मका उदाहरण नीचे दिया जाता है।

(१) प्रत्येक मनुष्य ही मरणशील है।

(२) राम मनुष्योपाधिविशिष्ट है।

(३) अतएव राम मरणशील है।

उपरिउक्त दृष्टान्तमें सर्वप्रथमोक्त प्रतिज्ञा प्रधान वाक्य (Major premiss) वा न्यायशास्त्रोक्त प्रतिज्ञा है, द्वितीय प्रतिज्ञा "राम मनुष्योपाधिविशिष्ट" अप्रधान वाक्य (Minor premiss) वा न्यायशास्त्रोक्त उदाहरण है और तृतीय प्रतिज्ञा "राम मरणशील" सिद्धान्त वाक्य (Conclusion) वा न्यायशास्त्रोक्त निगमन है। मरणशील, राम और मनुष्य ये तीन पद (Term) यथाक्रमसे प्रधानपद (Major term) अप्रधानपद (Minor term) और मध्यपद (Middle term), अथवा न्यायशास्त्रोक्त हेतु, साध्य और लिङ्गपदवाच्य है।

मध्यपद वा लिङ्गपद (Middle term)के अवस्थाभेदसे अनुमानके चार अवयवगत भेद हुए हैं जिनका यूरोपीय न्यायशास्त्रविदोंने सामान्यतः "अवयव" (Figure) नाम रखा है। लेकिन प्रथम अवयवोक्त (First figure) अनुमान ही समधिक प्रचलित है, दूसरोंको प्रथमावयवमें परिणत किया जा सकता है।

प्रथम अवयवोक्त अनुमानमें (First figure) मध्यपद प्रधान वाक्यका कर्त्तृपदस्वरूप और अप्रधान वाक्यका विधेय पदस्वरूप विवृत हुआ करता है। यथा—

सभी क ही ख हैं सभी ग ही क हैं अतएव सभी ग ख हैं	कोई भी क ख नहीं है। सभी ग क हैं अतएव कोई भी ग ख नहीं है	कोई भी क ख नहीं है। कितने ग क हैं। अतएव कितने ग ख नहीं हैं।

द्वितीय अवयवमें (Second figure) मध्य वा लिङ्गपद प्रधान (प्रतिज्ञा) और अप्रधान (उदाहरण) वाक्यका विधेय पदस्वरूप व्यवहृत हुआ करता है। यथा:—

कोई भी क ख नहीं है सभी ग ख हैं ∴ कोई भी ग क नहीं है	विषयासक्त कोई भी मनुष्य सुखी नहीं है, धार्मिक मात्र ही सुखी है ∴ धार्मिक मनुष्य विषयासक्त नहीं है।

तृतीय अवयव (Third figure) में मध्यपद प्रधान और अप्रधान दोनों प्रतिज्ञाओं का ही कर्तृपदस्वरूप व्यवहृत हुआ करता है।

सभी क ख हैं सभी क ग हैं अतएव कितने ही ग ख हैं	मनुष्यजाति मात्र ही बुद्धिमान् है। मनुष्यजाति मात्र ही प्राणविशिष्ट है। अतएव कितने ही प्राण बुद्धिमान् होते हैं।

यहाँ पर देखा जाता है, कि प्रधान और अप्रधान दोनों वाक्यों के व्यापकत्वसूचक या सार्वभौमिक (Universal) प्रतिज्ञा होने पर भी सिद्धान्तवाक्य सार्वभौमत्वज्ञापक नहीं है, विशेषत्वज्ञापक (Particular) है, व्याप्तिज्ञान के ऊपर यह सिद्धान्त निर्भर करता है। प्रथम प्रतिज्ञा में मनुष्यजाति मात्र ही बुद्धिमान् है, यहाँ पर कर्तृपद और विधेयपद का व्याप्तिनिर्णय न करने से हम बोल नहीं सकते कि बुद्धिमान् जीवमात्र ही मनुष्यजाति है। कारण मनुष्यजाति नहीं है, ऐसे कितने बुद्धिमान् जीव हैं। द्वितीय प्रतिज्ञा में भी 'प्राणमात्र' ही मनुष्यजाति विशिष्ट है, ऐसा निर्देश करना भी सङ्गत नहीं है। इस प्रकार सिद्धान्तवाक्य का सार्वभौमत्व (Universality) निर्देश करने से सिद्धान्त अतिव्याप्तिदोषदुष्ट हो जाता है।

चतुर्थ अवयव (Fourth figure) विशिष्ट अनुमान में मध्यपद की अवस्थिति ठीक प्रथमावयवविशिष्ट अनुमान के विपरीत है। यहाँ पर मध्यपद प्रधान प्रतिज्ञा के विधेयस्वरूप और अप्रधान प्रतिज्ञा के कर्तृपदस्वरूप व्यवहृत हुआ करता है। यथा—

सभी क ख है। सभी ख ग है। ∴ कितने ग क हैं।	सभी मनुष्य बुद्धिमान् हैं। सभी बुद्धिमान् जीव मस्तिष्क विशिष्ट हैं। ∴ कितने मस्तिष्कविशिष्ट जीव मनुष्य नामधारी हैं।

उपरिउक्त चार प्रकार के अनुमानों से ही देखा जायगा कि जो प्रधान और अप्रधान वाक्यद्वय के मध्य एक प्रतिज्ञा का अन्ततः व्यापक (Universal) प्रतिज्ञा होना आवश्यक है। दो विशेषज्ञापक से किसी सिद्धान्त पर पहुँच नहीं सकते। कारण प्रतिज्ञाद्वय के मध्य एक को भी व्याप्ति नहीं इसलिये अनुमान असम्भव है। एकान्त या निषेधसूचक प्रतिज्ञाद्वय से कोई अनुमान हो सकता है या नहीं इस विषय में मतद्वैध है। जिसके मत से इस प्रकार का अनुमान साध्य है, बेन (Alexander Bain) और अन्यान्य न्यायशास्त्रविदों के मत से इस प्रकार का अनुमान असाध्य है (Bain's Logic, i 159)

दो निषेधज्ञापक (Negative) प्रतिज्ञाद्वय से किसी प्रकार का सिद्धान्त नहीं हो सकता। कारण, इस प्रकार व्याप्यव्यापक भाव नहीं रह सकता, अतएव अनुमान असम्भव है।

तद्भिन्न मध्यपद (Middle term) को प्रतिज्ञाओं (Premisses) में अन्ततः एक में भी एक बार समग्रभाव से व्याप्त होना (Distributed) आवश्यक है। मध्यपद की व्यापकता से ही अनुमान साधित होता है, इसीसे मध्यपद को समग्र व्याप्तिका रहना आवश्यक है।

बृहत्, लघु और लिङ्ग (Major, Minor and Middle terms) में किसी पद का तीन से अनधिक और अनल्प होना आवश्यक है।

इन सब नियमों का उल्लङ्घन होने से जो अनुमान सब दोषान्वित होता है, वह हेत्वाभास (Fallacies) प्रसङ्ग में लिखा गया है।

उपरिउक्त नियमों का पालन करके प्रत्येक अवयव (Figure) अन्तर्गत जिन सब युक्तियों की उत्पत्ति साधित हुई है, उन्हें सिद्ध अनुमान (Valid moods) कहते हैं। तदनुसार कितनी युक्तियों का बारबारा सेलारेण्ट (Barbara, Celarent) नामकरण हुआ है। (Jevons Logic on Syllogism)

हमिल्टन (Sir William Hamilton) विधेयपद का नियम (Quantification of the Predicates) नामक मत की अवतारणा कर कहते हैं कि इसके द्वारा सिद्धान्त के अन्यान्य नियमों की आवश्यकता निराकृत होगी।

अरिष्टटल कर्तृक प्रवर्तित व्याप्तिज्ञानबोधक सूत्र जो (Dictum de omni et nullo) अन्योन्यसंश्रयात्मिक युक्तिका भित्तिस्वरूप है। इस सूत्रका अर्थ इस प्रकार है, सभी श्रेणी (Class)के सम्बन्धमें जो विहित हो सकता है उस श्रेणीके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्तिके सम्बन्धमें ही वह विहित है। अतः देखा जाता है कि सिलजिस्म (Syllogism) की प्रधान प्रतिज्ञा (Universal proposition) है। अप्रधान प्रतिज्ञा (minor premiss) प्रधान प्रतिज्ञाका अन्तर्निहितत्व सूचना करना है अर्थात् प्रधान प्रतिज्ञाका कर्तृपद जिस श्रेणी (Class) की सूचना करता है। अप्रधान प्रतिज्ञाका कर्तृपद उस श्रेणीके अन्तर्गत व्यक्ति है यही बोध करता है, सुतरां प्रधान प्रतिज्ञाके कर्तृपदके सम्बन्धमें जो विहित हुआ है,—अप्रधान प्रतिज्ञाके कर्तृपद उक्त कर्तृपदके अन्तर्गत होनेसे उक्त विधेयपद प्रयोज्य है। सिद्धान्त वा निगमन इसको केवल सूचना करता है।

मिल उपरिउक्त सूत्र (Dictum)की समालोचना की जगह कह गए हैं कि उक्त सूत्र सदोष है और किसी नूतन तत्त्वको अवतारणा नहीं करता। श्रेणीके सम्बन्धमें जो विहित है, वह श्रेणीके अन्तर्गत प्रत्येक पदार्थके सम्बन्धमें विहित है, यह उक्ति एक ही अर्थकी सूचना करती है। (Truism) समगुणविशिष्ट पदार्थ ले कर एक एक श्रेणी गठित हुई है, अतः श्रेणी व्यक्ति समष्टिके सिवा और कुछ नहीं है। इस प्रकार श्रेणीमें जो गुण है, श्रेणीके अन्तर्गत प्रत्येक पदार्थमें वही गुण है, ऐसा कहनेसे कोई लाभ नहीं। कारण, श्रेणीके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्तिमें गुण है ऐसा कहनेसे ही श्रेणीमें वह गुण है, ऐसा कहा जाता है। पदार्थसमष्टिके सिवा श्रेणी नामका कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। (Mill's Logic, Book 11 ch. 2. p. 114.)

उपरिउक्त सूत्रको समालोचनाका अवलम्बन कर मिलने अन्योन्यसंश्रयात्मिका युक्ति (Syllogism)की समालोचना की है।

मिलका कहना है, कि इस प्रकारका अनुमान किसी नूतनतत्त्वकी अवतारणा नहीं करता। केवल ज्ञातविषयकी पुनरावृत्ति की जाती है। सिद्धान्तपद इस जगह एक नूतन तथ्य नहीं है। मनुष्यमात्रकी ही मरणशील कह कर जब राम मनुष्य इस पदकी अवतारणा की जाती है, तब राम मरणशील है यह सिद्धान्तपद मनुष्यमात्रमें ही मरणशील इस प्रतिज्ञाके मध्य अन्तर्निहित है ऐसा समझा जाता है। सुतरां सिद्धान्तपद मिलके मतानुसार प्रधान प्रतिज्ञामें निहित है, विशेष करके निर्देश करना पुनरावृत्तिमात्र है। प्रत्येक अन्योन्यसंश्रयात्मिका युक्ति ही उनके मतमें "चक्राकारमें अनुमान' (Petitio Principii or argument in a circle) दोषयुक्त है। (Mill's Logic, BK. 11, chap. 3.) मिलकी उक्त समालोचनाको अनेक पण्डित नहीं मानते। उनके मतमें मिलकी समालोचना नामवाद (Nominalism)के ऊपर प्रतिष्ठित है। सुतरां जो नामवादके याथार्थ्यको स्वीकार नहीं करते वे उक्त समालोचनाकी सारवत्ताको भी नहीं मानते। वे कहते हैं, कि एक व्याप्ति (Universal element) नहीं रहनेसे अनुमान हो ही नहीं सकता। वे लोग मिलके विशेषसे विशेष अनुमान (Reasoning from particular to particular) को स्वीकार नहीं करते। Bosanquet's Logic देखो।

मिलने अरिष्टटलके सूत्र (Dictum)के बदलेमें निज मतोपयोगी एक सूत्रकी रचना की है। यह सूत्र ठीक इस लोगोंके देशीय न्यायके लिङ्गलिङ्गीके ज्ञान अनुमानके स्वरूप हैं। मिलने भी कहा है कि जो चिह्न एक दूसरे चिह्नको सूचना करता है, वह चिह्न द्वितीय चिह्नोक्त वस्तुको भी सूचना करता है (Nota notae est nota rei ipsius, whatever is a mark of any mark, is a mark of that which this last is a mark of)। बेन (Bain)के मतमें उपरिउक्त सूत्र अनेक जगह सुविधा होने पर भी अनुमानको विशेष सहायता नहीं करता, कारण उपरिउक्त सूत्रमें व्याप्तिज्ञानका कोई आभास पाया नहीं जाता। (Bain's Logic 1. 157.) इसके सिवा बेनने दूसरी आपत्तिकी अवतारणा की है। किसी विशेष विषयमें एक व्यापक नियमके प्रयोगसे ही निगमन अनुमानकी (Deductive reasoning) आवश्यकता (The application of

a general principle to a special case) रूप उद्देश्य जिससे सूत्र द्वारा साधित नहीं होता।

किसी सिलजिस्म (Syllogism) में अनुमानका कोई एक पद या सोपान (Step) प्रकाश न रहनेसे उस प्रकारके अनुमानको प्रच्छन्नानुमान (Epicheirema or suppressed syllogism) कहते हैं।

दो या दोसे अधिक सिलजिस्मका आश्रय ले कर जो युक्तिश्रेणी (Train of reasoning) गठित हुई है, उसे युक्तिशृङ्खल (Sorites) कहते हैं। इस प्रकार प्रथम सिलजिस्मका सिद्धान्त पद द्वितीय सिलजिस्मके प्रधान वा अप्रधान प्रतिज्ञा स्वरूप व्यवहृत हुआ करता है।

पहले ही कहा जा चुका है कि अनुमानके प्रकृत स्वरूपके सम्बन्धमें मिलके साथ अन्तःस्फुरणवादी दार्शनिकों (Intuitionist and philosophers) तथा जर्मनदेशीय दार्शनिकोंका मतभेद है। मिलका मत इम्पिरिकल स्कूलका मत है (Empirical School) और मिल उक्त दार्शनिकमतके मुखपात्र हैं। मिलके मतका यथार्थतत्त्व जाननेमें उनके दर्शनका जानना आवश्यक है।

जर्मन-दार्शनिकोंका कहना है कि हम लोगोंको बोधशक्ति प्रकृतिगतः व्यापक (Reason is universal in its nature) है हम लोगोंकी ज्ञानविस्तृति व्यापकत्वसे विशेषकी (From the universal to the particular) ओर अग्रसर होती है। हम लोगोंका ज्ञानजीवन (Experience) अपरिस्फुट हो कर विशेष ज्ञानमें परिणत होता है। बीजमें जिस प्रकार समस्त भविष्यत् वृक्ष निहित है, ज्ञानशक्तिका (Reason) विकाश भी उसी प्रकार है। इनके मतसे ज्ञानविस्तृति विश्लेषण मूलक (Dissociative) है [Caird's Introduction to the critical philosophy of Kant—On the nature of reason (Vernuft) and conceptual elements in knowledge]।

मिल और तदनुवर्त्ती दार्शनिकों (The Empirical School) का मत उपरोक्त दोनों मतका सम्पूर्ण विपरीत है। मिलका कहना है कि हम लोगोंको ज्ञानविस्तृति विशेष होने पर व्यापकका अभिमुखी (From the particular to the universal) ज्ञान (Experience) साहचर्यमूलक (associative) है, व्याप्ति (The universal element in knowledge) विशेष विशेष वस्तुसे गृहीत है (derived from experience)। जब विशेष विशेष वस्तु हम लोगोंके इन्द्रियगोचर होती हैं, तब देखा जाता है कि कितनी वस्तुओंमें गुणका सामञ्जस्य है अर्थात् उन वस्तुओंमेंसे प्रत्येकमें वह गुण वर्त्तमान है। इसीसे यह गुण एक व्यापक गुण है। इस प्रकार समुदय व्यापक-पदार्थका ज्ञान इन्द्रियज्ञानमूलक है, व्याप्तिमूलकयुक्ति (Inductive reasoning) द्वारा व्यापकपदार्थके ज्ञानमें उपनीत होता है।

उपरिउक्त दोनों मतोंमेंसे कौन मत अधिक युक्तियुक्त है इसका निर्धारण करनेमें दोनों दर्शनको आलोचना करनी होती है। किन्तु वर्त्तमान विषयक आलोच्य नहीं होनेके कारण संक्षेपमें उल्लेखमात्र किया गया है।

व्याप्तिक वा व्याप्तिमूलक युक्ति (Inductive reasoning)।—पहले कहा जा चुका है कि मिलके मतमें ज्ञान (Knowledge) स्वभावतः व्याप्तिमूलक (Inductive) है, यह विशेषसे व्यापकको ओर दौड़ता है। प्रकृत अनुमान भी (Inferenc) उनके मतमें व्याप्तिमूलक (Inductive) है। सिलजिस्मको व्यापक-प्रतिज्ञा, मिल कहते हैं कि व्याप्तिमूलकयुक्ति द्वारा निरूपित हुई है। सुतरां मिलके मतमें निगमनमूलक युक्ति (Deductive reasoning) उनके पहले साधित व्याप्ति (Induction) के ऊपर निर्भर करती है।

दार्शनिक प्रवर बेकन (Bacon) ने जो तत्प्रणीत 'नूतनयन्त्र' (Novum Organum) पुस्तकमें स्पष्ट रूपसे व्याप्तिमूलक युक्तिप्रणालीकी आलोचना की है। उससे पहले अरिष्टटलने व्याप्तिका उल्लेख करने पर भी वे इसको इतनी प्रधानता स्वीकार नहीं करते। बेकनके बाद मिलने अपने तर्क शास्त्रमें व्याप्तिका प्रधान प्रतिपादन किया है।

सामान्य प्रतिज्ञाके निर्देश और प्रतिपादन करनेके उपायको मिलने 'इण्डक्शन' वा व्याप्ति कहा है। जितनी विशेष घटना देख कर पीछे यदि उसी प्रकारकी एक घटना संघटित हो, तो हम लोग कहते हैं कि यहां भी फल वैसा ही होगा। पर्यायरूपसे विष खा कर मृत्युमुखमें पतित होना इसे यदि कोई अव्यभिचारिरूपसे लक्ष्य करे अर्थात् यदि देखे कि राम, हरि, यदु, गोपाल तथा और दूसरोंने विष खा लिया है और वे मृत्युमुखमें पतित हुए हैं, तो किसी दूसरेने वही विष खाया है ऐसा ज्ञान करने पर वह सहजमें कह सकेगा कि यह व्यक्ति भी मृत्युमुखमें पतित होगा। इस प्रकार विशेष घटनासे साधारण स्थलमें उपस्थित होनेका नाम इण्डक्शन वा व्याप्ति (Induction) है। विष खानेसे राम, यदु और हरि मर गए हैं, अतएव गोपाल भी मरेगा तथा जो कोई विष खायगा वह भी मरेगा, इत्यादि घटना की संख्यानुसारके ऊपर अनुमानके लिए निर्भर करना प्रकृत व्याप्तिमूलक अनुमानका स्वरूप नहीं है। केवल घटनासंख्या देख कर अनुमान करनेको बेकन (Bacon) संख्यासूचक व्याप्ति वा इण्डक्शन (Induction per enumerationem simplicem) कहते हैं। इस प्रकार अनुमान पदार्थ इण्डक्शन वा व्याप्तिपदवाच्य नहीं है। प्रत्येक ग्रहके पर्यवेक्षणके बाद यदि कहा जाय कि ग्रहमात्र ही सूर्यके आलोकसे आलोकित होता है, तो इस प्रकार सिद्धान्त 'इण्डक्शन' द्वारा स्थिरीकृत हुआ है, ऐसा दिखानेसे भी यथार्थमें कोई अनुमानक्रिया साधित नहीं होता। कारण, प्रत्येक अनुमान ज्ञात विषयसे अज्ञात विषयमें ले जाता है (A process from the known to the unknown)। वर्त्तमानस्थलमें "ग्रहमात्र ही सूर्यके आलोकसे आलोकित होता है" यह सिद्धान्त एक अभिनव सिद्धान्त नहीं है वा अभिनव वस्तुके सम्बन्धमें भी आरोपित नहीं किया गया है, सभी ग्रहोंका पर्यवेक्षण करके उक्त सिद्धान्त पर पहुंच गया है, अतएव उक्त सिद्धान्त पदार्थके अनुमान नहीं है। (Not an inference properly so called)।

प्रकृत व्याप्तिका स्वरूप कैसा है, मिल तत्प्रणीत न्यायिक ग्रन्थमें इसकी सविस्तृत आलोचना कर गए हैं। यहां पर उनका मत संक्षेपमें लिखा जाता है।

मिलका कहना है कि स्वाभाविक नियमका अव्यभिचारित्व ही (Uniformity of nature) व्याप्तिकी भित्ति है। प्राकृतिक कार्यावली एक ही प्रक्रियाके अनुसार साधित होती है। नियमका अव्यभिचारी लक्षण यह है कि जगत्‌में जो घटना हो चुकी है वा हो रही है, ठीक उस प्रकार घटना परम्पराका समवाय है। वह घटना होगी ही और जितनी बार यह घटनासमवाय संघटित होगा उतनी बार घटनाका संघटन भी अवश्यम्भावी है। मनुष्य मरणशील है, इस सिद्धान्त पर हम लोग क्यों विश्वास करते? थोड़ा गौर कर देखनेसे ही व्याप्तिका याथार्थ्य स्थिरीकृत होगा। आज तक जितने मनुष्योंने हम लोगोंके सौ दो सौ वर्ष पहले जन्मग्रहण किया है, सभी मर चुके हैं। वर्त्तमान समयमें जिन्होंने जन्म लिया है, उनमेंसे भी कितने मरे हैं। कोई देश क्यों न हो, दो सौ वर्षके व्यक्ति जीवित नहीं रह सकते। आज तक किसीका भी अमर हो कर रहना नहीं देखा गया है। इन सब विषयोंसे स्थिर किया जाता है कि मरण मानवजीवनका अव्यभिचारी धर्मविशेष है और उसका संघटन जीवनमें अवश्यम्भवी है। सुतरां जो सब मनुष्य वर्त्तमान समयमें जीवित हैं और जो भविष्यमें जन्मग्रहण करेंगे, सभी मरेंगे; इस प्रकारका सिद्धान्त अयुक्तिक नहीं है। यहां पर आज तक जितने मनुष्योंने जन्मग्रहण किया है सभी मर चुके हैं, अतएव सभी मरेंगे, ऐसा सिद्धान्त नहीं किया जाता। कारण, पुराकालमें जिन्होंने जन्म लिया है वे ही मरे हैं ऐसा कह कर जो वर्त्तमान हैं तथा जन्म लेंगे वे भी मरेंगे, इस प्रकारका सिद्धान्त अयुक्तिक है। क्योंकि जिन्होंने पहले जन्मग्रहण किया है, वे मरे हैं, अतएव जो भविष्यमें जन्मग्रहण करेंगे, वे भी मरेंगे ऐसा कोई नियम नहीं है। भविष्यत्कालमें मानव अमर हो सकते हैं, क्योंकि भविष्यत् जब दृष्टिके परपारमें है, तब उस समयकी बात किस प्रकार कही जा सकती है किन्तु अनुमानका यथार्थ तथ्य यही है। आज तक मानवजीवनका लक्ष्य करके देखा गया है कि मृत्यु उनका अवश्यम्भावी धर्म है। प्रकृतिका कार्य अव्य-

मित्तारी है, जब तक वर्त्तमान घटनासमवाय रहेगा, तब तक क्रियाफल बन्द नहीं होगा। सुतरां जिन घटनासमवायोंसे वस्तु संघटित होती है, वह जब तक रहेगा, तब तक वस्तु होती ही रहेगी। कल सूर्य उदय होंगे ऐसा क्यों विश्वास करते ? बहुकालसे सूर्य उदय होते आ रहे हैं, इसके लिये कल भी उदय होंगे इस प्रकार विश्वास करते हैं। क्योंकि जिस घटनापरम्परा संयोगसे सूर्योदय संघटित होता है, वह घटना परम्परा आज भी विद्यमान है इसी कारण सूर्योदय होगा।

उपरोक्त प्रस्तावसे देखा जायगा कि व्याप्ति अनुमानको प्रयोजनीय पर नहीं है। अतीत या वर्त्तमान समयमें होता है, अतएव भविष्यत्कालमें होगा यह कालके ऊपर निर्भर करके इस प्रकार जिस सिद्धान्त पर पहुंचते हैं, वह सिद्धान्त निर्दोष नहीं है। इस प्रकारका अनुमान व्याप्तिरूप निर्देश नहीं करता।

पहले कहा जा चुका है, कि स्वाभाविक नियमका अव्यभिचारित्व (Uniformity of Natre) व्याप्तिमूलक युक्तिकी भित्ति है। सुतरां स्वाभाविक नियमकी व्याप्ति समरूपता कैसी है तथा स्वाभाविक नियमावली (Laws of Nature) किसे कहते हैं, ये सब विषय मालूम होने पर उक्त अनुमानकी सत्यता सिद्ध होगी।

स्वभावके अव्यभिचारित्व सम्बन्धमें धारणा है कि स्वभावमें जो एक बार हो चुका है वही पर्यायक्रमसे होता है। किन्तु स्वभाव यथार्थमें कुलालचक्रके सदृश विकारहीन वस्तु नहीं है। एक वर्ष परवर्ती वर्षके ठीक अनुरूप नहीं है। इस वर्षमें जिस जिस दिन कोई घटना घटी है, दूसरे वर्ष उसी दिन उस प्रकारकी घटना घटेगी, ऐसा कोई स्वभाव निर्दिष्ट नियम नहीं है। पर हां, स्वाभाविक कितनी घटना बिलकुल नियमविरुद्ध भी नहीं है। रात्रि, दिन, ऋतु और मास पर्यायक्रमसे आ और जा रहा है। यथार्थमें देखनेसे मालूम पड़ेगा कि वे किसीके साथ नियमका सम्बन्ध जो प्रकृतिका स्वतन्त्र है। प्रकृतिमें एक ही विषयमें तथा अनुमानके उपादान स्वरूप व्याप्तिमर्त्ता-त्विय (Uniformity)-का निर्वाचन करना होगा। प्राकृतिक नियमावलीका स्वरूप कैसा है, यह दो एक सदोष अनुमान द्वारा स्पष्टीकृत हो जायगा। अर्द्धशताब्दी पहले अफ्रिकावासी समझते थे कि मनुष्यमात्र ही कृष्णवर्णके होते हैं, क्योंकि उन्होंने कृष्णवर्ण व्यतीत अन्य किसी वर्णके मनुष्यको उस समय तक नहीं देखा था। उनके निकट इस प्रकारकी अभिज्ञताका अव्यभिचारित्व रहने पर भी सिद्धान्तको निर्दोष नहीं कह सकते। कारण, मनुष्यमात्र ही कृष्णवर्णके नहीं होते, वे बहुतोंके नजर आते हैं। अतः जानना होगा कि सिद्धान्त यथान्यय प्रतिपन्न नहीं किया गया। कुछ दिन पहले यूरोपियनोंकी धारणा थी कि हंसमात्र ही श्वेत हैं, कृष्णवर्णविशिष्ट हंस कभी उनके नयनगोचर नहीं हुए थे। सिद्धान्त उनकी अभिज्ञता द्वारा समर्थित होने पर भी परवर्ती घटना द्वारा अर्थात् अष्ट्रेलियामें कृष्णवर्णविशिष्ट हंसके आविष्कार द्वारा प्रमाणित होता है कि सिद्धान्त निर्दोष नहीं है। किन्तु यदि कहा जाय, कि एक जातिका मनुष्य ऐसा है जिसका मस्तक स्कन्धदेशके नीचे अवस्थित है, तो यह बात असम्भव और अविश्वास-सी प्रतीत होती है। इस प्रकारका अविश्वास नितान्त युक्तिहीन नहीं है। कारण, प्रकारमें वे विकार इतना अधिक है कि उसमें अनुमानका विशेष व्याघात नहीं पहुंचता। कृष्णवर्णकी जगह श्वेतवर्णका होना उतना विस्मयकर नहीं है। किन्तु मस्तकका स्कन्धके नीचे होना बिलकुल असम्भव है। क्योंकि, वर्णके विकारकी अपेक्षा एतादृश आकृतिगत वैचित्र्य विरल है और शरीरविद्या (Physiology)-की नियमावली भी उस सिद्धान्तका समर्थन नहीं करती।

इस प्रकार देखा जाता है कि किसी जगह एक विषयमें हम लोग निर्दोष अनुमानमें पहुंच सकते हैं और दूसरी जगह बहु अभिज्ञतामूलक होने पर भी अनुमान यथान्यय ग्रहण नहीं किया जा सकता। अब अनुमानका प्रकृत स्वरूप जान लेनेसे विषयकी मीमांसा पर पहुंच सकते हैं।

स्वभावका व्यतिक्रमराहित्य (Uniformity) कहनेसे व्यतिक्रमराहित्य नामक कोई साधारण नियम समझा

नहीं जाता। स्वभावके भिन्न भिन्न व्यापार जो विभिन्न नियमवशसे साधित होते हैं, वही नियम-समष्टि स्वभाव को व्यतिक्रमराहित्य है (The uniformity in question is not properly uniformity but uniformities, Vide Mill's Logic, p. 206)। इस प्रकार नियमोंमेंसे (Uniformities) जो नियम अन्य नियमोंके अन्तर्भुक्त नहीं किये जाते वे नियम अत्यन्त साधारण है और जिन नियमोंके स्वीकार करनेसे अन्यान्य नियम प्रतिपन्न किये जा सकते, ऐसे नियमोंको प्राकृतिक नियमावली (Laws of Nature) कहते हैं। (Mill's Logic. । ज्योतिर्विद् केपलर (Kepler)ने ग्रहोंकी गतिका पर्यवेक्षण करते समय तीन नियमोंको अवतारणा की है, उन तीनों नियमों (Kepler's Laws)को उस समय मूल (Ultimate) नियममें गिनती होनेसे वे प्राकृतिक मूल नियम (Laws of Nature) समझे जाते हैं। इसके अनन्तर बहुत खोजके बाद यह स्थिर हुआ कि वे तीनों नियम प्राकृतिक आदि नियम नहीं है, गतिके नियम (Laws of Motion) के अन्तर्गत नियमत्रयमात्र हैं।

प्राकृतिक नियमावली साधारणतः दो भागोंमें विभक्त है, कार्यकारण सम्बन्ध (The Law of Causation) और समावस्थान सम्बन्ध (The Law of Co-existence)। मिलने तदीय इण्डकटिभ लाजिकके भित्तिभागको कार्यकारणमूलक नियम (the Laws of Causation) के ऊपर सन्निविष्ट किया है। अभिज्ञतावादी दार्शनिकगण (Empirical or Experimental School) कार्यकारण ज्ञानको साधारणतः पौर्वापर्य मतवाद (Succession Theory) कहते हैं। अज्ञेयवादी ह्यूम (David Hume)से यह मत प्रवर्त्तित हुआ है। ह्यूमका कहना है, कि हम लोगोंका कार्यकारणज्ञान पौर्वापर्यज्ञानके सिवा और कुछ भी नहीं है। पूर्ववर्त्ती घटना (Antecedent, event or cause) केवल परवर्त्ती घटना (Consepuent or effect)की सूचना करती है इसके सिवा कारण किस प्रकार क्रियाका उत्पादन करता है, उसे जाननेकी क्षमता हम लोगोंमें नहीं है। इन सब पूर्ववर्त्ती घटनाओंमेंसे कौन प्रकृत कारण (Real cause) है, इस विषय में मिलने कहा है कि अव्यभिचारी अनन्य सापेक्ष (Not conditioned by others) पूर्ववर्त्ती घटना ही कारण पदवाच्य है (Cause may be defined to be the antecedent, or the concurrence of antecedents, on which the effect is invariably and unconditionally consequent)। पूर्ववर्त्ती सभी घटनाओंमेंसे एक ही घटना कारण होगी, सो नहीं, दो तीन घटनाके सहयोगसे क्रिया सम्पन्न होने पर सबोंको समष्टिको (Collective) कारण समझना होगा, किसीको अलग करनेसे काम नहीं चलेगा। बन्दूकके शब्दका कारण बन्दूक निहित बारूद है, अग्निसंयोग, बन्दूक और इन सबका संयोगकर्त्ता व्यक्ति कोई एक नहीं है, किन्तु इन सबका एकत्र संयोग है। इस प्रकार कार्यकारण सम्बन्धको अगर प्रकृत व्याप्तिमूलक अनुमानक्रिया साधित होती है। एक कार्यकारण सम्बन्धका निर्णय कर सकनेसे वहां पर अनुमान निर्दोष होगा, कारण कार्यकारण-सम्बन्ध अव्यभिचारी है।

किसी घटनाका कारण निर्देश करनेमें किस प्रकार पूर्ववर्त्ती अवान्तर घटनाओंको छोड़ कर प्रकृत कारण निर्देश किया जा सकता है, इस विषयमें चार नियम दिये गये हैं जिन्हें व्याप्ति सूत्र (Canons of Inductive or four Experimental methods) कहते हैं। विस्तार हो जानेके भयसे इन सबका विवरण न देकर केवल अनुमान अंशका यत्किञ्चित् आभास दिया जाता है। इसके बाद तर्कशास्त्रमें दूसरे कौन कौन विषय सन्निविष्ट हैं उन्हें उल्लेख मात्र किया जायगा।

व्याप्तिके सूत्र चार है—(१) सामान्यसम्बन्धनिर्देश प्रणाली (Method of agreement), (२) पार्थक्यसम्बन्ध निर्देशप्रणाली (Method of difference), (३) कार्यकारणके सादृश्य सम्बन्ध निर्देशप्रणाली (Method of concomitant variation) और (४) अवशिष्ट विषयको सम्बन्धनिर्णयप्रणाली (Method of Residues) । Mill's Logic देखो।

तर्कग्रन्थमें सन्निविष्ट अन्यान्य विषयोंमें अभ्युपगम-सिद्धान्त प्रणाली (The theory of Hypothesis), सम्भाव्ययुक्ति (Calculation of chance), सादृश्य

ज्ञान (Analogy) किस प्रकार अनुमानकी सहायता करता है उस विषयका आलोचन प्रमाण प्रकरण—(Of the Evidence of the Law of Universal causation) समवायाभावमूलक नियमावली और उन सब नियमोंका कार्यकारणभावके ऊपर अनिर्भरत्व (Of Uniformities of Co-existence not dependent on causation) तथा प्रकृतिके अवान्तर नियमावलीकी आदिका उल्लेख है। पीछे आदिमूलक अनुमान जिस जिस विषयके ऊपर निर्भर करता है उसका भी उल्लेख है। पदार्थोंका यथार्थ दर्शन और वर्णन (Observation and Description) दार्शनिक भाषाकी आवश्यकता और उसके प्रति क्या क्या प्रयोजन है (Requisites of a Philosophical Language) श्रेणीविभागकी आवश्यकता और तत्प्रणाली (Classification as subsidiary to Induction) आदिका उल्लेख है।

बाद हेत्वाभास (Fallacies) आलोचित हुआ है। हेत्वाभासका लक्षण क्या है, कितने प्रकारका हेत्वाभास है। (Classification of fallacies) सामान्यज्ञानमूलक हेत्वाभास (Fallacies of simple inspection); अभिज्ञतामूलक हेत्वाभास (Fallacies of Observation) सामान्यतोदृष्ट हेत्वाभास (Fallacies of generalisation) नियमनमूलक हेत्वाभास (Fallacies of Ratiocination) और अस्पष्ट ज्ञानमूलक हेत्वाभास (Fallacies of Confusion) इत्यादि विषयोंका उल्लेख है।

इसके अनन्तर न्यायानुमत नियमावलीका प्रयोग किस भाया गया है। मनस्तत्त्व नीतिज्ञान (Moral Science) समाज विज्ञान (Social Science) आदि विभिन्न शास्त्रोंकी आलोचना किस प्रकार न्यायानुगत पद्धतिका अनुसरण करती है उसकी आलोचना इनके प्रत्येक अंशमें है। इसी कारण उन शास्त्रोंमें चार प्रकारकी पद्धतियोंका उल्लेख किया है—परीक्षामूलक प्रथा (Chemical on experimental method) ज्यामितिविद्यामूलक प्रथा (Geometrical or Abstract method) विषयमूलक नियमनप्रणाली (Concrete Deductive method or physical method) विपरीत नियमनप्रणाली (Inverse deductive method) इत्यादि।*

० युक्तिमूलक दृष्टान्त विशेष। जिन सब दृष्टान्तोंमें नाना प्रकारकी युक्ति प्रदर्शित हुई है उन्हें न्याय कहते हैं। यह न्याय कई प्रकारका है। उसे लौकिक न्याय कहते हैं। इस लौकिक न्यायमेंसे कितनेके नाम, लक्षण और प्रमाण लिखे जाते हैं।

१ अजाकृपाणीयन्यायः।

अजा छाग और कृपाण खड्गविशेष, तत्तुल्य न्याय। अजाकृपाणशब्दोत्तर इवार्थमें छ प्रत्ययसे यह न्याय हुआ करता है अर्थात् कृपाण खड़ा हुआ था, उसी ओर एक छाग आ रहा था। दैवक्रमसे वह कृपाण छागके ऊपर गिर पड़ा जिससे छाग कट गया। दैवक्रमसे छाग पर कृपाण गिरा इस कारण इसे अजाकृपाणीय न्याय कहते हैं। जहां पर दैवक्रमसे कोई विपत्ति उपस्थित हो कर अनिष्टकी सूचना करती है, वहां पर इस न्यायका दृष्टान्त हो सकता है।

२। अजातपुत्रनामोत्कीर्त्तनन्यायः।

अजातपुत्र जिसके पुत्र नहीं हुआ है उसके पुत्रका नामकरण, तत्तुल्य न्याय। जिसके पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है उसके पुत्रका नामकरण नहीं हो सकता। अतएव अजातपुत्र नामकरण मानो कल्पितकी व्याख्याविशेष है। इसी प्रकार जहां मनुष्य आशाके वशीभूत हो नाना प्रकारकी कल्पना करते हैं वहां इस न्यायका दृष्टान्त हो सकता है। तात्पर्य यह कि भावि कार्यके लिये अभी उसका ही इस न्यायका उदाहरण दिया जा सकता है।

३। 'अधिकन्तु प्रविष्ट न च तद्धानिः' इति न्यायः।

जहां पर अधिक प्रविष्ट होनेसे उसकी हानि न हो, वहां पर यह न्याय हुआ करता है। जैसे लौकिक

---

* जो न्यायशास्त्र तर्कशास्त्रका विशद मर्म जानना चाहते हों, वे निम्नलिखित ग्रन्थ देखें —Grote's Aristotle Hamilton's Logic, Morse's Logic Bain's Logic Venn's Empirical Logic, Venn's Logic Ueberweg's Logic Bradley's Logic Fowler's Logic, Jevon's & Whately's Logic &c.

प्रवाद है, 'अधिकन्तु न दोषाय' अधिक होनेसे दोषावह नहीं। ऐसे स्थान पर इस न्यायका उदाहरण दिया जा सकता है। जैसे, किसी एक पुजारीसे दश हजार जप करने होंगे, किन्तु वहां पर १२ हजार जप हो गये हैं, इस न्यायके अनुसार वह दोषावह नहीं होगा।

४। अध्यारोपन्यायः।

अवस्तुमें वस्तुके आरोपको अध्यारोप कहते हैं। वेदान्तके मतसे सच्चिदानन्द, अद्वय ब्रह्म ही एकमात्र वस्तु है। ब्रह्मातिरिक्त सभी पदार्थ ही अवस्तु है। ब्रह्ममें मिथ्याभूत इस जगत्का आरोप करनेसे अध्यारोप हुआ है। जैसे रज्जुमें सर्पका और शुक्तिकामें रजतका आरोप, जिसप्रकार रज्जु और शुक्तिकाका याथार्थ्य-ज्ञान होनेसे मिथ्याभूत सर्पका ज्ञान दूर होता है, उसी प्रकार ब्रह्मका स्वरूप ज्ञान सकनेसे मिथ्याभूत जगत्का ज्ञान जाता रहता है। जिस अज्ञानवशतः ब्रह्ममें जगत्रूपकी भ्रान्ति होती थी, उस अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे जगत्रूप मिथ्या ज्ञानकी भी निवृत्ति हुआ करती है। जहां पर किसी वस्तुमें अवस्तुका आरोप होगा, वहीं पर इस न्यायका उदाहरण दिया जा सकता है। वेदान्त दर्शनमें इस न्यायका उल्लेख देखनेमें आता है।

५। अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत्।

गृहादिका निर्माण न कर सर्पकी तरह परगृहमें सुखी हो जाता है। चूहे बड़े कष्टसे गृहादिका निर्माण करते हैं, किन्तु सर्प उसमें प्रवेश कर सुखसे वास करते हैं। इसका उद्देश्य यह है कि मुमुक्षु व्यक्तिको रहनेके लिये गृहादिका आडम्बर नहीं करना चाहिये।

६। अन्धकूपपतनन्यायः।

अन्धका कूप-पतन, तद्विषयक न्याय। कोई अन्धा साधुसे उपदिष्ट हो कर राहमें जा रहा था। किन्तु थोड़ी दूर जानेके बाद ही वह एक कुएँमें गिर पड़ा। अन्धा साधुका उपदेश लेकर जा रहा था सही, लेकिन अन्धता वशतः वह उपदेशके अनुसार चल न सका, कुपथसे जानेके कारण वह कूपमें गिर पड़ा था। वेदादिशास्त्रमें धर्मपथ निर्दिष्ट हुआ है, किन्तु हम लोग विषयान्ध हो कर शास्त्रनिर्दिष्ट पथसे विच्युत हो कूपपतनकी तरह नरकमें पतित होते हैं। तात्पर्य यह कि साधुने प्रकृत पथका निर्देश कर दिया था सही, लेकिन उसका अन्धको राह दिखलाना अच्छा न हुआ और अन्धको भी वह बात सुन कर जाना उचित न था। साधुने अनधिकारीको उपदेश दिया था जिसका फल हितकर न हो कर अहित हुआ। यदि वे अन्धेको उपदेश न दे कर आँखवालेको उपदेश देते, तो उनका उपदेश सफल होता। इस प्रकार अशक्त व्यक्ति सदुपदेशके रहते हुए भी अपथसे जाते और पतित होते हैं। अशक्तको सदुपदेश देना भी साधुका कर्त्तव्य नहीं है और देनेसे भी उसका फल नहीं होता।

७। अन्धगजन्यायः।

अन्धहस्ति-निर्धारित मत अर्थात् हस्तीतत्त्वन्याय। कुछ जन्मान्ध मनुष्योंने एक आँखवालेसे पूछा था, 'हाथी कैसा होता है, उसका स्वरूप यदि आप बतला दें, तो बड़ा उपकार मानेंगे।" इस पर उस आदमीने उन्हें गजशालामें ले जा कर हाथीका एक एक अवयव स्पर्श कराया और कहा, यही हाथी है। उन अन्धोंने हाथीका एक एक अङ्ग स्पर्श किया। उनमेंसे जिस जिसने जो जो अङ्ग स्पर्श किया था, उसने उसी उसी अङ्गको हाथी मान लिया। इस प्रकार हाथीके स्वरूपका निर्णय करके वे सबके सब घर लौटे। एक दिन हाथीका स्वरूप ले कर उनमें विवाद छिड़ा। जिसने हाथीका पद स्पर्श किया था, उसने कहा, हाथी स्तम्भाकार होता है; जिसने शुण्डका स्पर्श किया था उसने हाथीका आकार सर्प सा, जिसने उदर स्पर्श किया उसने ढाकसा; जिसने पुच्छ स्पर्श किया उसने गोलाङ्गूल-सा, जिसने कर्ण स्पर्श किया था उसने हाथीका आकार सूपसा बतलाया। इस प्रकार वे सब अपने अपने अनुमानका समर्थन करते हुए आपसमें झगड़ने लगे। इसी प्रकार जो ईश्वरके स्वरूपसे अवगत नहीं हैं वे अन्ध हस्तिज्ञानकी तरह सामान्यज्ञानसे ईश्वरका निर्णय करनेमें आपसमें झगड़ते हैं। किन्तु कोई भी स्वरूप-निर्णय करनेमें समर्थ नहीं होते। यही इस न्यायका दृष्टान्त है।

८। अन्धगोलाङ्गूलन्यायः।

अन्धगर्त्तेक पदोन गोलाङ्गूल, तद्विषयक न्याय। एक अन्धा अपने कुटुम्बके यहाँ जा रहा था। अन्धता वशतः वह एक घोर जङ्गलमें जा कर दीनभावसे बैठ गया किसी कुटनीतिने उसे असहायसे देख कर उसे पूछा 'भाई! तुम कहाँ जाओगे? इसपर अन्धेने अपने मनकी सब बात कह दी। वह दुष्ट बोला, 'अब तुम्हें चिन्ता करनेकी कोई ज़रूरत नहीं, मैं एक गाय ला देता हूँ उसकी पूँछ पकड़ लेना, वह तुम्हें नगर तक पहुँचा देगी।' अन्धेने दुष्टमतिके उपदेशानुसार गायकी पूँछ पकड़ी और वह गाय अन्धेको जंगलमें ले जाने लगी। इससे अन्धेने अभीष्ट देश पहुँचनेकी बात तो दूर रहे वरन् उसे बड़ी विपत्ति उठानी पड़ी। इस न्यायका तात्पर्य यह है, कि मूर्खका उपदेश कदापि ग्रहण न करना चाहिये, ग्रहण करनेसे उस अन्धेके जैसा विपत्ति झेलनी पड़ेगी। वह अन्धा गोलाङ्गूल पकड़ कर बड़ी मुश्किलमें पड़ गया था, इस कारण इसका गोलाङ्गूलन्याय नाम पड़ा है।

८। अन्धचटकन्याय।

अन्धस्य करपतित चटक, तत्तुल्य न्याय। एक समय एक चटक (गौरैया पक्षी) अकस्मात् किसी अन्धेके हाथ पर गिरा। अन्धेने उसे पकड़ लिया। अब वह अन्धेने एक चटक पकड़ा है, इस प्रकार प्रवाद हो गया। यदि हठात् किसी अभीष्ट वस्तुका लाभ होता है, तो वहाँ पर इस न्यायका उदाहरण हो सकता है। 'काकतालीय' न्याय और इस न्यायमें प्रभेद यह है कि जहाँ पर हठात् अनिष्ट होगा, वहाँ पर 'काकतालीय' न्याय और जहाँ अभीष्ट लाभ होगा वहाँ अन्धचटक न्याय होगा।

९। अन्धपरम्परान्यायः।

अन्धपरम्परा—अन्धसमूहतत्तुल्य न्याय। एक अन्धेने दूसरे अन्धेको उपदेश दिया। उसने फिर तीसरे अन्धेको भी इसी प्रकार उपदेश दिया था। अन्धपरम्पराके प्रदत्त उपदेश जिस प्रकार प्रमाणरूपमें नहीं लिया जाता उसी प्रकार अज्ञका उपदेशसमूह भी प्रमाणित नहीं माना जा सकता है।

अन्यविध—अन्धोंके दलमेंसे यदि एक अन्धा गड्ढेमें गिर जाय, तो सभी एक एक कर गड्ढेमें गिर जायँगे, कोई भी आगे पीछेका विचार नहीं करता।

११। अन्धस्यैवान्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे इति न्यायः।

अन्धलग्न अन्धको पद पदमें विपत्ति उठानी पड़ती है। एक अन्धा यदि दूसरे अन्धेका अवलम्बन हो, तो प्रतिपदमें विपत्तिकी सम्भावना रहती है। जहाँ पर दोनोंको ही विपत्ति उठानी पड़े, वहाँ पर यह न्याय हुआ करता है।

१२। अन्धपङ्गुन्यायः।

अन्ध और पङ्गु तत्तुल्य न्याय। एक अन्धा और एक लङ्गड़ा आदमी था। इन दोनोंमेंसे अकेला कोई भी कार्य नहीं कर सकता, लेकिन यदि दोनों मिल कर कार्य करें, तो सभी काम सम्पन्न हो सकते हैं। लङ्गड़ा यदि अन्धेके कन्धे पर चढ़ जाय, तो दोनोंके सहयोगसे सारेके सारे काम साधित हो सकता है। सांख्यदर्शनमें इस न्यायका उदाहरण इस प्रकार लिखा है—

प्रकृति और पुरुषके संयोगसे सृष्टि हुआ करती है प्रकृतिको अपेक्षा कोई कार्य करनेकी शक्ति नहीं है, वह पुरुषके संयोगसे सृष्टि किया करती है। पुरुष जब प्रकृतिसे अलग हो जाता है, तब फिर सृष्टि नहीं होती। इसका और भी एक उपाख्यान इसप्रकार है। एक महापुरुषके विवेक नामक एक पङ्गु दास और प्रकृति नामक एक अन्धदासी थी। महापुरुषने एक दिन पङ्गु दाससे कहा, 'मैंने अपने घरका भार तुम्हें दिया।' दूसरे दिन अन्धदासीको भी उन्होंने इसी प्रकार आज्ञा दी। पीछे पङ्गुदास प्रभुका इस प्रकार आदेश पा कर, 'मैं लङ्गड़ा हूँ, किस प्रकार घरका काम चला सकता' इस तरह चिन्ता करने लगा। अन्धदासी भी इसी प्रकार चिन्ता कर रही थी। इसी समय काकतालीय न्यायसे दोनोंका मिलन हो जानेसे तथा एक दूसरेके विषयसे अवगत हो कर दोनोंने एक तरकीब निकाली। पङ्गु दास अन्धदासीके कन्धे पर चढ़ गया और इस प्रकार परस्परकी सहायतासे दोनों प्रभुके आज्ञानुसार महापुरुषके घरके सभी काम करने लगे।

१३। अपवादन्यायः।

अपवाद तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार रज्जुविवर्त्त सर्पका अपवाद रज्जुमें सर्पका भ्रम होनेसे पीछे भ्रम-

नाश होने पर सर्पज्ञानका उच्छेद हो कैवल रज्जुमात्र रहता है, उसी प्रकार वस्तुविवर्त्त अवस्तुका अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्म वस्तुमें अज्ञानादि अप्रपञ्च जो भ्रम है उसका नाश होनेसे अपवाद ब्रह्ममात्रको अवस्थिति होती है, इसीको अपवाद न्याय कहते हैं। "अपवादो नाम रज्जुविवर्त्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत्, वस्तुविवर्त्तस्य अवस्तुनः अज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्।" (वेदान्तसार)

वेदान्तसारमें इस न्यायका उक्तरूप लक्षण निर्दिष्ट हुआ है इस न्यायका तात्पर्य है कि अधिकरणमें भ्रान्तिरूपमें प्रतीयमान वस्तुके यथा—स्थाणुमें भ्रान्तिरूपमें प्रतीयमान पुरुषके स्थाणुत्वादि अतिरिक्त द्वारा जो अभाव निश्चय है, उसे अपवाद कहते हैं। इसे बाद भी कुछ बता चढ़ा कहते हैं। एक प्रकारकी वस्तुके अन्य प्रकार की होनेसे वह विवर्त्त है। दुग्ध दधि होता है, यह दुग्ध का विकार जानना होगा, रज्जु सर्पाकारमें प्रतीत होती है, यह विवर्त्त है। जगत् ब्रह्मका विकार नहीं है। यह दृश्य जगत् इन्द्रजाल सदृश है। तात्त्विक सत्ताशून्य अर्थात् मिथ्या है। ब्रह्ममें जगत्‌रूपमें अभाव निश्चय भी अपवाद है। यथार्थमें जगत् सत्य नहीं है, ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। ब्रह्ममें प्रतीत जो यह जगत् है उसका अभाव निश्चय अर्थात् बाध है, यह तीन प्रकारसे दूर होता है। यथा—श्रौत, यौक्तिक और प्रत्यक्ष। 'नेति नेति' 'नानास्ति किञ्चन' यह नहीं है, यह नहीं है, तद्‌तिरिक्त और कुछ भी नहीं है इत्यादि श्रुतिमें कहा गया है इसे श्रौतबाध कहते हैं। कारणादिके अभावमें जिस प्रकार कटकादिके अभावका बोध होता है, उसी प्रकार निखिल कारण ब्रह्मातिरेकमें निखिल-प्रपञ्चका अभाव हुआ करता है, यह यौक्तिबाध है और रज्जुमें सर्पका भ्रम होनेसे यह रज्जु नहीं सर्प है, इस प्रकार उपदेश द्वारा जिस तरह भ्रमके तिरोहित होनेसे रज्जुका ज्ञान जाता रहता है, उसी प्रकार तत्त्वमस्यादि वाक्यजनित मैं चैतन्यस्वरूप हूं इस प्रकार बोध होनेसे प्रत्यक्षरूपसे ब्रह्मात्मनिश्चय होता है, इसको प्रत्यक्षबाध कहते हैं।

१४। अपराह्णच्छायान्यायः।

अपराह्णकालीन छाया तत्तुल्य न्याय। जितना ही दिन ढलता जाता है, उतनी ही छाया बढ़ती जाती है। इसी प्रकार साधुओंका प्रेम जितना ही दीर्घ होता है, उतना ही उसकी वृद्धि होती है।

१५। अपसारिताग्निभूतलन्यायः।

भूतलसे अग्नि हटाये जाने पर भी जिस प्रकार कुछ काल तक भूतलमें अग्निका उत्ताप रह जाता है, उसी प्रकार धनी धनसे विच्युत होने पर कुछ काल तक उसकी धनोष्मा रहती है।

१६। अपथ्यानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति, इति न्यायः।

सहोदर भी यदि अन्याय मार्गमें जाय, तो सहोदर भी उसका परित्याग कर देता है। इस न्यायका तात्पर्य यह है कि अन्यायाचारी आत्मीय भी परित्याग करने योग्य है।

१७। अरण्यरोदनन्यायः।

अरण्य रोदन, तत्तुल्य न्याय। अरण्य। बैठ कर रोदन करनेसे जिस प्रकार कोई फल नहीं होता, उसी प्रकार निष्फल कार्य इस न्यायका उदाहरण दिया जा सकता है कि जिस कार्यमें कोई फल नहीं है, वह कार्य परित्यागके योग्य है।

१८। अर्के मधुन्यायः।

अर्कमें मधुलाभ, तत्तुल्य न्याय। अर्कमें अर्थात् अर्कवृक्षमें यदि मधु प्राप्त हो, तो पर्वत पर जाना निष्प्रयोजन है। अर्कका इस प्रकार अर्थ इस प्रकार भी है, 'घरमें' अर्थात् घरके कोनेमें मधु मिल जानेसे दूर देश जाना बेकार है। जो कार्य सहज सिद्ध हो जाय, उसके लिए आयास करनेका प्रयोजन ही क्या!

"अर्के (गृह) चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्।
इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ को विद्वान् यत्नमाचरेत्॥"

(तत्त्वकौमुदी)

अन्यायाससाध्य कार्यमें पण्डितोंको कभी भी यत्न नहीं करना चाहिए। मसल है कि "सस्ती सारनेमें खमानकी फजावट!" यहां पर यह इस न्यायका विषय हो सकता है।

१९। अर्धजरतीयन्यायः।

अर्धजरतीय—तत्तुल्य न्याय। एक वृद्ध ब्राह्मण दुर-

बेचनेमें पड़ जानेसे प्रति हाटमें अपनी गायको बेंचने ले जाया करते थे। गाहकके गायको उमर पूछने पर वह ब्राह्मण कहा करते थे कि यह गाय बहुत दिनकी है। बूढ़ी गाय समझ कर गाहक लौट जाते थे। ब्राह्मण प्रति हाटमें गाय ले जाते थे, किन्तु खरीददार उनकी बात सुन कर चले जाते थे। इस प्रकार गाय किसीके हाथ न बिकी। एक दिन किसी ब्राह्मणने गोस्वामीसे जा कर कहा, 'महाशय! आप प्रति हाटमें गाय ले जाते हैं और फिर ले आते हैं, बेंचते नहीं, इसका क्या कारण?' ब्राह्मणने जवाब दिया, 'मनुष्यको अधिक उमर होने पर लोग उसको प्राचीन समझ कदर करते और अधिक दे कर ग्रहण करते हैं, यही सोच कर मैं गौको उमर अधिक दिनकी बतलाता हूं, इस पर कोई ग्राहक नहीं आता, लौट जाता है। यही कारण है कि मैं प्रति हाटसे यों ही घर पर वापिस आता हूं।' ब्राह्मणने उसका मनोभाव समझ कर कहा, आप फिर कभी नहीं इस गायको उमर अधिक दिनकी बतावेंगे, बल्कि कहेंगे कि यह हालकी बियाई गाय है अधिक दूध देती है, ऐसा कहनेसे तो लोग इस पर लट्टू हो जायेंगे और खरीद लेंगे।'

ब्राह्मण अपने मन ही मन सोचने लगे 'मैंने अपने ही इच्छा बतलाया है, यह किस प्रकार सच्चा होगा?' अन्तमें उन्होंने स्थिर किया कि यह गाय वार्धक्यमें आया हुआ पुरुष है कहनेसे अर्द्धांशमें तरुणी हो सकती है। अतएव इसे अर्द्धजरती बतला सकता हूं। इस प्रकार ब्राह्मणने तत्त्वविचार स्थिर कर दूसरे दिन किसी गाहकके आ कर गौका दाम पूछा। इस बार ब्राह्मणने कहा, 'मेरी यह गाय अर्द्धजरती और अर्द्ध तरुणी है।' ब्राह्मणको विश्वासनिष्ठ समझ कर गाहकने गाय खरीद ली। जहां पर वादी और प्रतिवादियोंका मत कुछ ग्रहण किया जाता है और कुछ नहीं ग्रहण किया जाता है वहां पर इस न्यायका उदाहरण होगा।

२०। अर्द्धं त्यजति पण्डितो न्यायः।

पण्डित व्यक्ति अर्द्धका परित्याग करते हैं तत्तुल्य न्याय। यदि सभी वस्तुओंके नाशकी सम्भावना हो और वहां पर यदि अर्द्धका परित्याग करनेसे विपदसे उद्धार हो जाय, तो पण्डितगण वैसा ही करते हैं, सभीको रखनेकी कोशिश नहीं करते।

"सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः।" (चाणक्य)

२१। अशोकवनिकान्यायः।

अशोकवनिका अशोकवनसमूह, तत्तुल्य न्याय। अशोकवनमें जानेसे जिस प्रकार यथाभिलषित छाया और सौरभ पा कर अन्यत्र जानेकी इच्छा नहीं होती, उसी प्रकार यथेष्ट प्राप्त होने पर अन्यस्थानमें फिर जानेका अभिलाष नहीं होता ऐसी जगहमें यह न्याय हुआ करता है।

२२। अश्मलोष्टन्यायः।

अश्म प्रस्तर, लोष्ट-ढेला, तत्तुल्य न्याय। रुईकी अपेक्षा ढेला कठिन है और ढेलेकी अपेक्षा पत्थर और भी कठिन है। जहां पर जिसकी अपेक्षा जिसका वैषम्य रहेगा वहीं पर यह न्याय होगा। अश्म और लोष्ट, आपसमें लोष्टकी विषमता ही इस न्यायका उद्देश्य है। जहां पर जिसकी अपेक्षा जो लघु है, उसका विषय वर्णित होगा, वहां पर 'पाषाणेष्टक न्याय' होता है। पाषाणसे इष्टक लघु है अतएव जहां पर जो लघु तदुद्देश्य होगा वहां पर अश्मलोष्ट न्याय न हो कर पाषाणेष्टक न्याय होगा।

२३। प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायः।

प्रधानता द्वारा व्यपदेश होता है, तत्तुल्य न्याय। यथा—गौतमप्रणीत न्यायदर्शनमें प्रमाणादि षोडश पदार्थ निर्णीत हुए हैं। यद्यपि इस दर्शनके षोडश पदार्थोंका निरूपण ही प्रतिपाद्य विषय है, तो भी इसमें प्रमाण विशेषरूपसे दिखलाया गया है, इस कारण षोडश पदार्थोंके मध्य अन्य किसीका भी नाम न हो कर न्यायदर्शन यही नाम हुआ है, अन्य सभी पदार्थ प्रमाणका अंगरूपमें वर्णित हुए हैं। इस प्रकार जहां पर प्राधान्यरूपमें निर्देश होगा वहां पर यह न्याय होता है।

२४। अभावप्राप्तुचिन्ताः अन्याय मरणवत्।

जो मुक्तिका अधम्भव भी अनुपयोगी है, उसकी चिन्ता करनेसे मरण समान होना पड़ता है। राजा

भरत मुक्तप्राय हो कर भी हरिणीकी चिन्तामें आकृष्ट हो मुक्त न हो सके थे।

२५। अस्नेहदीपन्यायः।

अस्नेहदीप—तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार स्नेह-शून्य दीप थोड़े समयमें ही बुझ जाता है, उसी प्रकार जहां शीघ्र अनिष्ट होनेकी सम्भावना है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है।

२६। अहिकुण्डलन्यायः।

अहिकुण्डल—सर्पवलय तत्तुल्य न्याय। सर्पोंकी कुण्डलाकृति वेष्टन जिस प्रकार स्वाभाविक है, उसी प्रकार जहां पर किसी स्वभावसिद्धविषयका कथन हो वहां पर यह न्याय होता है।

२७। अहिनकुलन्यायः।

अहि और नकुल, तत्तुल्यन्याय। सांप और नेवल जिस प्रकार स्वाभाविक शत्रु हैं, उसी प्रकार जहां पर स्वाभाविक विवादका विषय कहा जाता है, वहां पर यह न्याय होता है। यथा—काकोलूक।

२८। अहिनिर्ल्वयनीवत्।

सर्प निर्मोककी तरह स्नेह नहीं करना चाहिये। सांपके निर्मोक (केंचुल) छोड़ देने पर भी वह ममता-प्रयुक्त स्थानको छोड़ नहीं सकता। किसी आहितुण्डिक (संपेरिया) ने उस केंचुलका अनुसरण करके उसे पकड़ा था। तात्पर्य यह कि किसी वस्तु पर स्नेह, ममता नहीं रखनी चाहिये और बहुकालोपभुक्ता प्रकृति-को हेय जान कर छोड़ देना चाहिये।

२९। आकाशापरिच्छिन्नत्व न्याय।

आकाश जिस प्रकार अपरिच्छिन्न है, उसी प्रकार जहां पर अपरिच्छिन्न वस्तुका वर्णन होता है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है।

३०। आदावन्ते वा इति न्यायः।

यह कार्य पहले अथवा पीछे करो, जहां पर इस प्रकारके कार्यको पहले वा पीछे करनेसे कार्यकी सिद्धि होती है, वहीं पर यह न्याय हुआ करता है।

३१। आभाणकन्यायः।

लौकिक प्रवाद तत्तुल्य न्याय। लोकप्रसिद्ध कथन-को आभाणक कहते हैं, यथा—इस ग्रामके अमुक वट वृक्ष पर भूत रहता है, ऐसा लोकप्रवाद है। इस प्रकार जनप्रवादमूलक विषय जहां पर कहा जाता है, वहां पर यह न्याय होता है।

३२। आम्रवणन्याय।

आम्रवण, तत्तुल्य न्याय। किसी काननमें बहुतसे वृक्ष हैं जिनमेंसे आम्रवृक्षकी संख्या ही अधिक है। कानन-में दूसरे दूसरे वृक्ष भी हैं, पर आम्रवृक्षकी संख्या अधिक रहनेसे वनका नाम आम्रवन पड़ा है। इस प्रकार प्रधानरूपमें जो विषय वर्णित होगा, इस न्यायके अनुसार उसीका निर्देश होगा।

३३। आयुर्घृतमिति न्यायः।

घृत ही एक मात्र आयु है अर्थात् घी खानेसे आयुकी वृद्धि होती है। इस प्रकार जहां मङ्गल हो, ऐसे विषयमें कहे जानेसे यह न्याय हुआ करता है।

३४। इषुकारनरे कश्चित्तस्य समाधिहानिः।

एकाग्र रह सकनेसे इषुकारकी तरह समाधिच्युत होना नहीं पड़ता। इषुकार जिस प्रकार एकाग्रसमय-में समीपवर्त्ती राजाको भी देख न सके थे, उसी प्रकार समाधिस्थ पुरुष भी एकाग्रताकालमें जगत् नहीं देख सकते हैं।

३५। उत्पाटितदन्तनागन्यायः।

उत्पाटित दन्तनाग अर्थात् सर्प, तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार सांपके दांत तोड़ देनेसे उसमें और कोई क्षमता नहीं रहती, केवल गर्जन मात्र रहता है, उसी प्रकार जिसके कार्यमें कोई क्षमता नहीं है अथच गर्जन है। ऐसे स्थल पर यह न्याय हुआ करता है। प्रवाद भी है कि दांत उखाड़ा हुआ सांप। लोग यह भी कहा करते हैं तुम्हारे विषदांत तोड़ दिये गये, अर्थात् तुममें और कोई क्षमता न रही, छोम लो गई।

३६। उदकनिमज्जनन्यायः।

जलमें डूबना, तत्तुल्य न्याय। उदकनिमज्जन एक प्रकारकी विद्या है। पापीने पाप किया है वा नहीं, इसकी सत्यता और असत्यता जाननेके लिये पापी जलमें डुबोया जाता है और उसे कहा जाता है कि तुम जलके अन्दर रहो। इधर मैं तीर छोड़ता हूं, जब तक यह तीर लौट न आवे तब तक तुम उसी हालतमें रहना। तीर

जानेसे पहले यदि तुम्हारा कोई पाप दोख पड़े, तो तुम देखो और यदि न दोख पड़े तो निर्दोष समझे जाओगे। जहां पर असम्भव विषय कथित होगा वहां पर यह न्याय होता है।

२७। उपपन् अपपन् चर्मो विकरोति हि धर्मिण मिति न्यायः।

उपपन्न और अपपन्न धर्म धर्मीको विकृत करता है तत्तुल्य न्याय। अर्थात् जहां पर धर्मीके पूर्व धर्मका अपगत होनेसे अन्य धर्मकी उत्पत्ति होती है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है।

२८। उपवासाद्वरं भैक्ष्यमिति न्यायः।

उपवाससे भिक्षा श्रेष्ठ है भिक्षावृत्ति होनेसे भ है, क्योंकि उपवासमें जो क्लेश होता है उससे भिक्षाका क्लेश कम है। इस प्रकार जहां पर अधिक क्लेशकर विषय अल्प क्लेशकर विषय उपस्थित होगा, वहां पर यह न्याय होता है।

२९। उभयतः पाशारज्जुर्न्यायः।

दोनों ओर जो बन्धन रज्जु है, जिस ओर खींची उसी ओर बंध जाती। इस प्रकार जहां पर दोनों पक्ष दुष्ट हों, वहां यह न्याय होगा।

३०। ऊषरवृष्टिन्यायः।

ऊषरभूमिमें वृष्टि होनेसे जिस प्रकार कोई फल नहीं होता उसी प्रकार जिस कार्यमें कोई फल नहीं वहां यह न्याय हुआ करता है।

३१। उष्ट्रकण्टकभक्षणन्यायः।

ऊँट जिस प्रकार कांटा खाता है उसी समय तो वह कांटा बहुत दुःख देता है पर जब पेटके अन्दर चला जाता तभी किञ्चित् मात्र सुख होता है, उसी प्रकार जहां बहुत कष्ट उठा कर थोड़ा सुख प्राप्त हो, वहां पर यह न्याय होता है। सामान्य अविवेकित्वकर सुखके लिये बहुतर कष्ट उठाते हैं।

३२। ऋजुमार्गेण सिध्यतोऽर्थस्य वक्रेण साधना-योग इति न्यायः।

जब सरल उपायसे कार्य सिद्ध हो जाय तो वक्रपथसे जानेकी क्या जरूरत? अर्थमासन्यायमें भाव इस न्यायका वाक्य है।

३३। एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति इति न्यायः।

एक देशका विकृत अनन्यवत् हुआ करता है, तत्तुल्य न्याय। ऐसे स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

३४। एकं सन्धित्सतोऽपरं प्रच्यवत इति न्यायः।

एक ओर सन्धान करने जाय और दूसरी ओर भङ्ग हो, तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार कभी कभी एक अवलम्बको एक ओर छुड़ाते समय दूसरी ओर जानको मरमोके मग्न हो जाता है, उसी प्रकार एक उपकार करनेमें साथ साथ एक अपकार भी करना पड़ता है। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है। उदयनाचार्यने कुसुमाञ्जलि और बोधसिद्धिमें इस न्यायका उदाहरण दिया है।

३५। एकवाक्यतापन्नानां मध्ये सर्वं प्रतिपाद-कत्वमिति न्यायः।

एक वाक्यतापन्न वाक्य मिल कर जिस प्रकार एक अर्थका प्रतिपादक होता है उसी प्रकार जहां पर मिल कर कोई काम किया जाता है वहां पर यह न्याय होगा।

३६। एकसम्बन्धिज्ञानमपरसम्बन्धिस्मारक मिति न्यायः।

जिस प्रकार हाथीका दर्शन होनेसे उसपर सम्बन्धी महावतका स्मरण होता है, उसी प्रकार जहां पर एक सम्बन्धीका ज्ञान होनेसे अपर सम्बन्धीका ज्ञान होता है वहां पर यह न्याय हुआ करता है।

३७। एकाकिनी प्रतिज्ञा हि प्रतिज्ञातं न साधये-दिति न्यायः।

केवल प्रतिज्ञा प्रतिज्ञात वस्तुका साधन नहीं कर सकती। प्रतिज्ञादिपञ्चक अर्थात् प्रतिज्ञा हेतु, उदाहरण, निगमन और उपनय यही पांच कार्य साधन करते हैं। प्रतिज्ञामात्रसे अर्थसिद्धि असम्भव है, इस कारण हेत्वादिको अवसिद्धिके लिये आवश्यक है, ऐसा जहां होता है वहां यह न्याय हुआ करता है।

३८। एकामर्थसिद्धिं परिहरतो द्वितीया आपद्यते इति न्यायः।

एक विपद्से उद्धार लाभ करनेसे दूसरी विपद् आ पड़ती है। जहां पर इस दुःखसे उद्धार मिल जाय पर दूसरा दुःख उपस्थित हो जाय, वहां पर यह न्याय होता है।

"एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे।"

यही उदाहरण है।

४८। सोपाधिकाकाशभेदन्यायः।

सोपाधिक आकाशभेद, तत्तुल्य न्याय। जैसे एक आकाश उपाधिभेदसे अनेक है, यथा—घटाकाश, पटाकाश इत्यादि। किन्तु इन सब उपाधियोंके तिरोहित हो जानेसे केवल एक आकाश बच जाता है। इस प्रकार जहां पर एक वस्तु आधारभेदसे अनेक होती है, वहां पर यह न्याय होता है।

"घटसंवृत आकाशे नीयमाने यथा पुनः।
घटो नीयेत नाकाशं तद्वद् जीवो नभोपमः॥" (श्रुति)

एक ही चैतन्य सब जीवोंमें विराजमान हैं। वही एक अखण्ड चैतन्य ब्रह्म है। यह अनन्त ब्रह्मचैतन्य उपाधि भेदसे अर्थात् आधार देहादि भेदसे विभिन्न हो कर अनेक हुआ करते हैं। वस्तुतः वह अभिन्न है, विभिन्न नहीं। उपाधिके अन्तर्हित होनेसे ही वे एक हैं अनेक नहीं।

५०। कण्ठचामीकरन्यायः।

कण्ठस्थित सुवर्ण भूषण, तत्तुल्य न्याय। सुवर्ण-हार तो गलेमें है, पर भ्रमवश हार खो गया है इस ख्यालसे चारों ओर उसको तलाश करते हैं। इस प्रकार जहां वस्तु है, अथच भ्रमवशतः नष्ट हो गई है, यह समझ कर दुःखानुभव होता है, पीछे भ्रम मालूम हो जाने पर सुख होता है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है। इसका उदाहरण वेदान्तमें इस प्रकार लिखा है—स्वतःसिद्ध ब्रह्मात्मक जीव जो अज्ञानवशतः स्वयं सुख दुःख शून्य जान कर अज्ञानवशतः दुःख भोग करता है, पीछे जब तत्त्वमसि प्रभृति वाक्यज आत्मसाक्षात्कार होता है, तब भ्रमवशतः जो दुःख था, वह तिरोहित हो जाता है।

५१। कदम्बगोलकन्यायः।

गोलाकार कदम्बपुष्प जिस प्रकार अपने समस्त अवयवोंमें एककालीन पुष्पोद्गम होता है, उसी प्रकार जहां पर समस्त प्रदेशोंमें एककालीन कार्यप्रवृत्ति होती है, वहां यह न्याय हुआ करता है। कादम्बगोलकमें सभी पुष्प एक ही समय निकलते हैं।

५२। कफोनिगुडन्यायः।

केहुनीमें गुड़ नहीं रहने पर भी गुड़ है ऐसा समझ कर उसे चाटना, तत्तुल्य न्याय। जहां पर वस्तु नहीं है अथच उस वस्तुकी प्रत्याशामें काम टाल दिया जाता है, वहां पर यह न्याय होता है।

५३। करकङ्कणन्यायः।

कङ्कण यह शब्द कहनेसे ही करभूषणका बोध होता है। कर यह शब्द निष्प्रयोजन है, किन्तु करकङ्कण यह शब्द कहनेसे करसंलग्न कङ्कण समझा जायगा, तत्तुल्य न्याय। इस प्रकार जहां पर कहा जायगा, वहां पर यह न्याय होता है।

५४। काकतालीयन्यायः।

काकगमनकालमें तालपतन तत्तुल्य न्याय। एक तालफलके ऊपरसे किसी काकके उड़ते समय यदि ताड़ गिर जाय, तो लोग अनुमान करेंगे कि कौवेने ही ताड़ गिराया है। किन्तु यथार्थमें वह नहीं है, तालका पतनसमय होनेसे ही वह गिरा है। कोई एक पथिक क्षुधासे कातर हो तालवृक्षके नीचे बैठ कर कुछ सोच रहा था, इसी बीचमें ऊपरसे एक ताल गिरा और उसने उसीसे अपनी भूखको निवृत्त करना चाहा। उस वृक्ष पर पक्वतालके ऊपर पहले एक काक बैठा था, वह काक उसी समय उड़ गया, बाद एक ताल नीचे गिरा। इससे पथिकका अभीष्ट सिद्ध हुआ। पथिकने 'काक और ताल'का व्यापार देख कर समझा, कि काकके उड़नेसे ही ताल गिरा है, किन्तु यथार्थमें काक अन्य किसी कारण-वश उड़ गया है और पतनकाल उपस्थित होनेसे ताल गिरा है। तालपतनके प्रति काकगमन कारण नहीं होने पर भी आपाततः कारण समझा गया। इसीको काक-तालीयन्याय कहते हैं।

जहां पर इस प्रकारकी घटना होती है, वहीं पर यह न्याय हुआ करता है। अतर्कित भावसे इष्ट वा अनिष्ट होनेसे ही यह न्याय होता है।

"यत्तया मेलनं यत्र लाभो मे यश्च सुभ्रुवः।
तदेतत् काकतालीयमवितर्कितसम्भवम्॥"

(चन्द्रालोक)

५५। काकदध्युपघातकन्यायः।

काकसे दधिको रक्षा करो, इस प्रकार एक बालकको उपदेश दिया गया, 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' इसके यह समझा गया कि काकसे दधिको रक्षा करो, किन्तु यही नहीं जो कोई वस्तु दधि नष्ट करे, उसीको निवारण करना होगा। काक पद उपलक्षण है। जहां पर ऐसा होता, वहीं पर यह न्याय हुआ करता है।

५६। काकदन्तपरीक्षान्यायः।

काकके दन्त हैं या नहीं और हैं तब कितने हैं या कैसे हैं इसका अन्वेषण जैसा निष्फल है वैसा ही जहां जिसका अन्वेषण निष्फल होता है, वहां यह न्याय हुआ करता है।

५७। काकमांसं शुनोच्छिष्टं स्वल्पं तदपि दुर्लभमिति न्याय।

एकतो कौएका मांस, दूसरे कुत्तेका जूठा, अल्प और अति दुर्लभ, तद्रूप न्याय। जहां पर अति निकृष्ट और अति तुच्छ वस्तु भी दुर्लभ होती है, वहां यह न्याय होता है।

५८ काकाक्षिगोलकन्याय।

काकका एक चक्षु जिस प्रकार प्रयोजनानुसार उभय चक्षुगोलकमें सञ्चार होता है, उसी प्रकार जहां एक पदार्थकी उभयस्थलमें सम्बन्धविवक्षा होती है वहां यह न्याय हुआ करता है।

५९। कारणगुणप्रक्रमन्याय।

कारणगुण कार्यमें संक्रमित होता है तद्रूप न्याय। "कारणगुणाः कार्यगुणमारभन्ते" कारणका गुण सदा तीव्र कार्यप्रवर्त्तक होता है, यथा—तन्तुका रूपादि सजातीय पटमें हुआ करता है इसी अर्थमें यह न्याय होता है।

६०। कारयितुः कर्तृत्वन्याय।

जो कार्य कराते हैं, वे ही कर्त्ता हैं, तद्रूप न्याय। काम स्वयं नहीं करने पर भी दूसरे द्वारा करानेसे इस न्यायके अनुसार उसका कर्तृत्व सिद्ध होता है जैसे युद्ध तो राजाकी सेन्यादि करता है पर जय जीत राजाकी होती है। सांख्यमतमें पुरुष कुछ नहीं करता बुद्धि ही करती है, परन्तु पुरुषका कर्तृत्व व्यपदेश हुआ करता है।

६१। कार्येण कारणमनुमेयन्याय।

जहां पर कार्य द्वारा कारणका ज्ञान होता है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है। जैसे—धूम द्वारा वह्निका ज्ञान, रूप द्वारा शीतका ज्ञान इत्यादि।

६२। कुशकाशावलम्बनन्याय।

समुद्रमें पतित व्यक्ति यदि नदीमें पड़ कर कुश वा काशका अवलम्बन करे, तो वह जिस प्रकार उससे उद्धार निष्फल होता है उसी प्रकार प्रबलयुक्ति निराकृत होने पर दुर्बलयुक्तिका अवलम्बन करनेसे वह निष्फल होता है। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

६३। कूपखानकन्याय।

जो मनुष्य कूप खनन करता है उसके शरीरमें कर्दम लग जाता है, पीछे जब कूपसे जल निकलता है, तब उस जलसे वह कर्दम दूर हो जाता है। इसी प्रकार विषयाभिध्यान ईश्वरभेद बुद्धि। अर्थात् भगवान् रामकृष्णादि हैं, उपास्य हैं इस तरह इन दोनोंकी जो भेदबुद्धि है और यह भेद बुद्धिजनित जो दोष है, वह भगवान्की उपासना करते करते ही अद्वैतबोध हो जाता है, तब तज्जन्य दोष भी निराकृत होता है। ऐसे स्थल पर यह न्याय हुआ करता है।

६४। कूपमण्डूकन्याय।

समुद्रस्थित मण्डूकने एक दिन किसी कूपमण्डूकके निकटमें प्रवेश किया। कूपमण्डूकने उसे देख कर पूछा 'तुम कहांसे आ रहे हो?' 'मैं समुद्रसे आ रहा हूं' समुद्रमण्डूकने जवाब दिया। इस पर कूपमण्डूकने पुनः उससे पूछा 'समुद्र कैसा होता है?' जवाबमें समुद्रमण्डूकने कहा 'बहुत लम्बा चौड़ा।' कूपमण्डूकने फिरसे कहा, 'इस कूपके जैसा?' समुद्रमण्डूकने उत्तर दिया, 'समुद्रसे बड़ा और कुछ भी नहीं होता, समुद्र सभी नदियोंका पति है।' यह सुन कर कूपमण्डूक बोला, 'तुम मिथ्या कह रहे हो कूपसे बड़ा कोई भी नहीं है।' यह सुन समुद्रमण्डूक मन ही मन उसकी हंसी उड़ाने लगा। कूपमण्डूक समुद्रको न जान कर और उसकी महिमासे अवगत न हो कर जिस प्रकार उपहसनीय हुआ था, उसी प्रकार जो दूसरेके सिद्धान्तको न जान कर उसके ऊपर दोषारोपण

करते हैं, वे भी इसी प्रकार उपहासास्पद होते हैं। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

६५। कूपयन्त्रघटिकान्यायः।

कूपको अत्यन्त गभीर होने पर जिस प्रकार यन्त्रघटिका द्वारा उससे सहजमें जल निकाला जाता है, उसी प्रकार शास्त्रार्थ यद्यपि अत्यन्तदुर्बोध है, तो भी वह उपदेशपरम्परा द्वारा सहज हो जाता है। इसी स्थान पर यह न्याय होता है।

६६। कूर्माङ्गन्यायः।

कूर्म (कच्छप) जिस प्रकार अपने अङ्गको इच्छापूर्वक सङ्कोच और विस्तार कर सकता है, उसी प्रकार जहां पर जो इच्छापूर्वक वृद्धि और क्षय करते हैं, वहीं पर यह न्याय होता है।

"यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।" (गीता)

६७। कृते कार्ये किं मुहूर्तप्रश्नेन इति न्यायः।

कार्य अनुष्ठित होने पर मुहूर्तप्रश्न अर्थात् समय अच्छा है वा बुरा, इस प्रकारकी जिज्ञासा निष्फल है। जहां पर कार्य करके उसके फलाफलकी जिज्ञासा की जाती है, वहीं पर यह न्याय होता है।

६८। कृदभिहितो भावः द्रव्यवत् प्रकाशते इति न्यायः।

भाववाच्यमें कृत् प्रत्यय होनेसे वह द्रव्यवत् प्रकाशित होता है, इसी प्रकार जहां भावविहित प्रत्यय द्रव्यवत् हो, वहां यह न्याय होता है।

६९। कैमुतिकन्यायः।

जहां पर दुर्बोध और दुःसाध्य विषय सहजमें सुसम्पन्न हो जाय, वहां सुबोध और सुसाध्य विषय अनायास समझा जाता है। इसका तात्पर्य यह कि जो भार दुर्बल भी वहन कर सकता है वह भार बलवान् अवश्य ही सहन कर सकेगा। ऐसे स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७०। कोषपानन्यायः।

किसी एक मनुष्यने झूठी बात कही है वा नहीं, उसका निश्चय करनेके लिये उसे कोषपान दिव्य कराना होता है। दिव्यके नियमानुसार पूर्व दिन उपवास करके दूसरे दिन दिव्यकालमें उसे जलपान करनेको दिया गया। उस जलके जलपान करनेसे पापोंको नष्ट करनेके लिये स्पष्ट हुआ है, लेकिन शास्त्रनिर्दिष्ट पर्यन्त जलपान करके उसे अत्यन्त दुःख हुआ। इस प्रकार वे पापसे निवृत्ति पाने अभिलाषासे उसका आलिङ्गन किया था। निन्दाके समय वह सुख तो हुआ, पर निन्दाजन्य पापोंके समय कुम्भीपाकादि घोर नरक होगा और तब बहुत कष्ट भुगतना पड़ेगा। ऐसे स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७१। क्रिया हि विकल्प्यते न वस्तु, इति न्यायः।

क्रियाका विकल्प होता है, वस्तुका विकल्प नहीं होता, यह न्याय। इच्छा रहने पर सभी मनुष्य कार्य कर सकते हैं, अच्छा भी कर सकते और बुरा भी। करना वा नहीं करना और अन्यथा करना इसमें शक्तत्व हेतु क्रियाका ही विकल्प होता है। वस्तुका नहीं। वेदान्तदर्शनके शारीरिकभाष्यमें इसका उदाहरण इस प्रकार दिया गया है।

लौकिक अथवा वैदिक कर्म किया भी जाता है अथवा उसका अन्यथा भी की जा सकता है, लेकिन वस्तुका विकल्प या अन्यथा नहीं की जा सकती। जैसे, अतिरात्रमें षोडशी ग्रहण करो अथवा नातिरात्रमें। यहां पर षोडशी ग्रहण करनी होगी, इसका विकल्प नहीं होगा। किन्तु अतिरात्र वा नातिरात्रमें इसी क्रियाका विकल्प हुआ करता है। पद द्वारा रथ द्वारा वा अन्य जिस किसी प्रकारसे जा सकते हो, यहां पर भी वस्तुका विकल्प नहीं होता है, क्रियाका ही विकल्प होता है। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७२। खले कपोतन्यायः।

वृद्ध, युवा और शिशुकपोत जिस प्रकार एक ही काल में खल पर पतित होते हैं, उसी प्रकार जहां सब पदार्थ एक कालमें अन्वयविशिष्ट हों, वहां यह न्याय होता है।

७३। गजभुक्तकपित्थन्यायः।

हस्ती जिस प्रकार कपित्थ (कैथ) खाता है अर्थात् उसके भीतरका सिर्फ गूदा खा लेता है और ऊपरका भाग ठीक वैसा ही रहता है, उसी प्रकार जहां जिसका भीतरी भाग शून्य होता जा रहा है और बाहरसे सब ठीक है, वहां यह न्याय होता है।

७४। गड्डलिकाप्रवाहन्याय।

भेड़के झुण्डमेंसे यदि एक गड्ढेमें गिर जाय तो सभी एक एक कर गड्ढेमें गिर जायंगी। इस प्रकार इनके मध्य एक जो कुछ करता है शेष सभी उसका गुण दोषके बिना उसे कर डालती हैं। इसीको लोग चालमें भेड़ियाधसान भी कहते हैं। ऐसे स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७५। गतानुगतिकन्याय।

कुछ ब्राह्मण तर्पण करके घड़ोंको किनारे रख गङ्गामें डुबकी लगाने गए। स्नान कर चुकने पर जब उन्होंने तर्पणके लिए घड़े अपने अपने हाथमें लिये तब मालूम पड़ा कि घड़ा एक दूसरेसे बदला गया है। इस प्रकारकी घटना एक दिन नहीं, कई दिन हो गई। एक दिन किसी एक ब्राह्मणने अपनी पहचानके लिए घड़े पर एक ईंटका टुकड़ा रख दिया और आप स्नान करने चले गये। उस ब्राह्मणको देखादेखी सब कोई अपने अपने घड़ेके ऊपर ईंट रख स्नान करने चले गये। इस पर उसने उनका उपहास करके कहा कि सभी मनुष्य गतानुगतिक अर्थात् देखादेखी काम करते हैं, वस्तुतः यथायोग्य कोई भी विवेचना नहीं करते। यदि बुद्धिसे काम लेते, तो सब कोई इस प्रकार एक-सा चिह्न न देते। इसी प्रकार प्रायः सभी मनुष्य गड्डलिकाप्रवाह (भेड़ियाधसान) अथवा अन्धपरम्परा न्यायसे संसारान्धकूपमें पतित होते हैं। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७६। गुड़जिह्विकान्याय।

बालकको निम्बपान करानेमें जिस प्रकार उसकी जिह्वा पर गुड़ लिप्त कर लोभ दिखाया जाता है, उस स्थान पर निम्ब भोजन कराना ही प्रयोजन है, गुड़ केवल प्रलोभनमात्र है। एक बालक कड़वी दवा पान करना नहीं चाहता था। बालकसे कहा गया कि यह दवा खाओ, तुम्हें मिठाई दूंगा। इस प्रलोभनमें पड़ कर लड़केने उस कड़वी दवाको खा लिया जिससे उसका रोग जाता रहा। इस प्रकार धर्मकर्म अति दुष्कर होने पर भी शास्त्रमें निर्दिष्ट हुआ है, कि अमुक व्रत करनेसे अक्षय स्वर्ग होगा। इस स्वर्ग-कामनासे इत्यादि अति दुष्कर होने पर भी उन्हें कर डालते हैं। ये सब वाक्यान्तर प्रवृत्ति प्रलोभन कर, लोगोंके लिए शास्त्र कर्मोंका विधान किया है। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता है। मत्स्यमांसतत्त्वमें इस न्यायका विषय लिखा है।

७७। गोबलीवर्दन्याय।

बलीवर्द शब्दसे वृषभका बोध होता है, अथच गो शब्दपूर्वक बलीवर्द इस शब्दके प्रयोगसे और भी वृषभका बोध होता है। जहां एक शब्द प्रयोगसे अर्थका बोध होने पर भी और भी अधिक अर्थबोध हो, ऐसे शब्द प्रयोगमें यह न्याय हुआ करता है।

७८। घट्टकुटीप्रभातन्याय।

घट्टकुट्याः समीप प्रभात तत्तुल्य न्याय। पार होनेके लिए पैसा देनेके डरसे चोरवणिक् विपथ हो कर भागे जा रहे थे, जब वे घट्टकुटीके समीप आये तब सवेरा हो गया। इन चोरवणिकोंको विपथ हो कर जाना भी पड़ा और पार होनेका पैसा भी देना पड़ा। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

७९। घुणाक्षरन्याय।

काष्ठखण्डमें घुन लग कर कभी कुछ अंश कट जानेसे उसमें अक्षरके चिह्न लिखित गये हैं, अर्थात् वह इस तरह काटा गया है कि वह ठीक अक्षरके जैसा हो गया है। घुन जानकर अक्षरके जैसा काटता नहीं दैवात् वैसा होता है। इस प्रकार जहां अन्यार्थमें प्रवृत्त कार्य दैवात् अन्यार्थका निष्पादन करे, वहां यह न्याय होता है।

८०। चतुर्वेदविद्न्याय।

किसी एक दाताने प्रचार किया कि चतुर्वेद ब्राह्मणोंको मैं एक एक सुवर्णमुद्रा दान करूंगा। यह सम्वाद पा कर कोई मूर्ख दाताके पास जा कर बोला "मैं चतुर्वेद समस्त रूपसे जानता हूं, मुझे दान दीजिए।" उस मूर्खको धन तो मिला नहीं साथ साथ उसकी हंसी भी उड़ाई गई। इसी प्रकार जो मनुष्य शब्दरूप प्रत्यभिज्ञ ब्रह्ममें वस्तुतः अवगत न हो कर "मैं ब्रह्म जानता हूं" ऐसा कहता है, उसकी लोग खूब भर्त्सना और साथ साथ उपहास वाक्य भी हो जाता है। जहां पर ऐसी घटना हो, वहां पर इस न्यायका प्रयोग होता है।

८१। चम्पकपटवासन्याय।

चम्पाका फूल कपड़ेमें बान्ध रखनेसे दूसरे दिन उसे फेंक देने पर भी जिस तरह उसमें सुगन्ध रह जाता है, उसी प्रकार विषयभोगके हेतु चित्तमें एक संस्कार होता है। विषयसंसर्ग नहीं रहने पर भी जिस प्रकार कपड़ेमें सुगन्ध रह जाती, उसी प्रकार चित्तमें उस विषयका संस्कार सूक्ष्म भावमें रहता है। ऐसे स्थान पर इस न्यायका प्रयोग होता है।

८२। चालनीयन्यायः।

चलनीमें कोई वस्तु रख कर यदि उसे घुमावें, तो जिस प्रकार चलनीके छेदसे सभी वस्तु गिर जाती हैं, उसी प्रकार किसी एक अवस्थित वस्तुका इस प्रकार पतन होनेसे यह न्याय होता है।

८३। चिन्तामणिं परित्यज्य काचमणिग्रहणन्यायः।

चिन्तामणिका परित्याग कर काचमणिका ग्रहण, तत्तुल्यन्याय। जहां पर उत्तम वस्तुका परित्याग कर तुच्छ वस्तुका ग्रहण किया जाता है, वहां यह न्याय होता है।

"जन्मेदं वन्ध्यतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया॥"

(शान्तिश०)

यह इस न्यायका उदाहरण हो सकता है।

८४। चोरापराधेन माण्डव्यदण्डन्यायः।

एक चोरके अपराधमें माण्डव्य ऋषिका शूलारोपण-रूप दण्ड पुराणप्रसिद्ध है। किसी चोरने चोरी की, उसके लिए माण्डव्य ऋषिको शूल हुआ, यह पुराणशास्त्रमें लिखा है। इस प्रकार जहां पर अपराध करे कोई और दण्ड पावे कोई, वहां यह न्याय होता है।

८५। छिन्नहस्तवत्।

छिन्न हस्तका दृष्टान्त अनुसरणीय है। एक मुनिने अन्य मुनिके आश्रममें जा कर बिना उनसे कहे सुने फल मूल ले लिया। मुनिने उसे चोर समझ कर दण्ड देना चाहा। इस पर उसने बड़ी विनती की और 'इस पापसे छुटकारा पानेके लिए कोई रास्ता बतला देनेको कहा। मुनिने इसके प्रायश्चित्तमें हाथ 'काट डालनेकी अनुमति दी। उस चोर मुनिने उसी समय वैसा ही किया। इस आख्यानका उद्देश्य यह है कि अकार्य करना उचित नहीं है, करनेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है। (शांकरद० ४ अ०)

८६। अलाबुलिप्तिकान्यायः।

तुम्बिकाको जिस प्रकार कर्दमादिसे लिप्त कर जलमें फेंक देनेसे वह डूब जाता है और उस तुम्बिकासे कर्दम धो डालने पर जिस प्रकार तैरने लगती है, उसी प्रकार जीव देहादि सम्बन्ध हेतु रागादियुक्त होने पर संसारसागरमें निमग्न होता है और देहादिबन्ध दूर होनेसे मोक्ष पाता है।

८७। कुल्याप्रणयनन्यायः।

जल लाने, कुल्या काटनेसे जिस प्रकार जलके साथ अनुषङ्ग उत्पात भी लाया जाता है उसी प्रकार एकके करनेसे अनुषङ्ग दूसरे कार्यका भी प्रसक्ति होता है, ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

८८। तण्डुलभक्षणन्यायः।

तण्डुलभक्षण एक प्रकारका दिव्यविधि है। इसे ग्राम्य भाषामें चावल चबाना कहते हैं। किसी चीजके चोरी जाने पर सन्देह पड़ा हुआ, चावल जिस जिस पर सन्देह हो उसे खानेको दो। चावल खानेसे उनमेंसे जिसने चोरी की होगा उसके मुखसे रक्त निकलने लगेगा। इस प्रकार जहां सद्यः अनिष्ट हो, वहां यह न्याय होता है।

८९। तत्क्रतुन्यायः।

क्रतु सङ्कल्प अर्थात् ध्यान करना, जो जिस निरन्तर भावसे ध्यान करता है, उसे वही मिलता है। यही श्रौत उपदेश ही तत्क्रतु नामसे प्रसिद्ध है। इस न्यायके अनुसार जो ब्रह्मक्रतु होगा, उसे ब्राह्मी ऐश्वर्य प्राप्त होगा। इस 'तत्क्रतु न्याय'से जिस जिस विषयकी चिन्ता की जायगी, वही विषय प्राप्त होगा। वेदान्तदर्शनके ४।३।१४ सूत्रमें इस न्यायका विषय लिखा है।

९०। तप्तपरशुग्रहणन्यायः।

जहां पर सत्याभिसन्धका मोक्ष और मिथ्याभिसन्धका बन्ध कहा जाता है, वहां इस न्यायका प्रयोग होता है। 'इसने चोरी की है या नहीं', इस प्रकारका सन्देह होने पर न्यायाधीशको चाहिए कि वे एक परशुको तपा कर उसे ग्रहण करावें। यदि उस मनुष्यका तप्त

परद्रव्यग्रहणमें हाथ न जले, तो उसे निर्दोष और यदि हाथ जल गया, तो उसे दोषी समझना चाहिये। इस प्रकार मुक्तिविषयमें प्रयोजक 'अहं ब्रह्म' यही वाक्य सत्य और बन्धप्रयोजक 'न ब्रह्म' यह वाक्य असत्य है ऐसा स्थिर हुआ। छान्दोग्य उपनिषद्में यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

८१। तप्तमाषग्रहणन्यायः।

तप्तपरशुग्रहण न्याय भी यह न्याय हो सकता है। तप्तमाषक ग्रहण भी एक प्रकारका दिव्यविशेष है। तैलादि खौलते पदार्थको गरम कर उसमें सुवर्णमाषक डाल देना पड़ता है। बाद उस तैलादिसे माषक निकालनेमें यदि हाथ न जले, तो निर्दोष और यदि जल जाय तो उसे दोषी समझना चाहिये। इस न्यायसे भी यथार्थाभिसन्धका मोक्ष और मिथ्याभिसन्धका बन्ध समझना होगा।

८२। तदिदमपरं मे कौतुकम्।

तत्त्वज्ञान विस्मृत होने पर मेंढकीके दुराचारसे दुःखी होना पड़ता है। किसी राजाने एक मेंढकराजकन्याको वरण किया। दोनोंमें बात यही ठहरी कि जल दिखाईसे मेंढका राजाको छोड़ कर भाग जायगी। एक दिन राजाने भूलभ्रमसे अपनी मेंढककन्याको जल दिखाया। इस पर पूर्व शर्तके अनुसार मेंढका राजाके पाससे चली गई। राजाको पीछे अपनी भूल सूझी और वे बड़े दुःखी हुए। इस प्रकारकी विस्मृतिके ज्ञान पर यह न्याय होता है। सांख्यदर्शनमें प्रकृतिपुरुष प्रसङ्गमें यह न्याय वर्णित है।

८३। तुष्यतु दुर्जन इति न्यायः।

दुर्जन तुष्ट हो, तत्सम्बन्ध न्याय। जहाँ पर प्रतिवादीके द्वारा कथ्य पक्ष दुष्ट होने पर भी वादी प्रौढ़िवाद द्वारा उसे स्वीकार कर ले वहाँ इस न्यायका प्रयोग होता है।

८४। तृणजलौकान्यायः।

तृण और जलौका (जोंक) तत्सम्बन्ध न्याय। जिस प्रकार जलौका जब तक एक तृणका आश्रय नहीं लेती, तब तक पूर्वाश्रित तृणको नहीं छोड़ती उसी प्रकार आत्मा सूक्ष्म शरीरके साथ एक देहका अवलम्बन किये बिना पूर्वाश्रित देहको नहीं छोड़ती है। इसी प्रकार जहाँ बिना एक अवलम्बनके पूर्वावलम्बन परित्यक्त नहीं होता वहाँ यह न्याय हुआ करता है।

८५। तृणारणिमणिन्यायः।

तृण अरणि और मणि इन तीनोंसे अग्नि उत्पन्न होती है। किन्तु तार्ण अर्थात् तृणसे उत्पन्न अग्निके प्रति तृणकी ही कारणता है। इसी प्रकार अरणि और मणिका भी जानना चाहिये। अतः जहाँ पर कार्य का कारणभाव भिन्न है अर्थात् कार्यतावच्छेदक और कारणतावच्छेदक अनेक है वहाँ पर यह न्याय होता है।

८६। दग्धपटन्यायः।

पट दग्ध होने पर उसका पटत्व नहीं रहता, किन्तु आकृति पूर्ववत् ही रहती है। इस प्रकार किसी वस्तुके दग्ध होने पर उसकी आकृति पूर्व-सी बनी रहती है, उसके पूर्वाकार द्वारा अवस्थानमात्रका बोध होता है, वहाँ यह न्याय होता है।

८७। दग्धबीजन्यायः।

बीज दग्ध होने पर जिस प्रकार उसमें अङ्कुर उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं रहती उसी प्रकार पुरुषको अविवेकतावशतः ही जीवका संसार है। जब यह अविवेक नाश हो जाता है तब फिर दग्धबीजन्यायानुसार जीव का संसार नहीं हो सकता। सांख्यदर्शनमें इस न्यायका विषय लिखा है।

८८। दण्डचक्रन्यायः।

एक घटादिकार्यके प्रति जिस तरह दण्ड, चक्र, सूत्र आदिका भी कारणत्व है उसी तरह जहाँ एक कार्यके प्रति बहुतोंका कारणत्व रहे, वहाँ यह न्याय होता है।

८९। दण्डापूपन्यायः।

पिष्टकमें बंधे दण्डका एक भाग यदि चूहेने खा लिया हो, तो जानना चाहिये कि उसने पिष्टक भी खाया है तत्सम्बन्ध न्याय। किसी मनुष्यने एक दण्डमें एक अपूप अर्थात् पिष्टक बांध रखा था। कुछ दिन बाद उसने देखा कि दण्डका कुछ भाग चूहेने खा लिया है। इस पर उसने मन ही मन स्थिर किया कि जब चूहेने दण्डका एक भाग खा लिया है, तब पिष्टक भी उसने

पिष्टक खाया होगा, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। क्योंकि दण्ड पिष्टककी अपेक्षा बहुत कड़ा कठिन है। जब दण्ड खानेकी उसमें शक्ति हुई, तब उसमें सुकोमल अपूपको पहले न खा कर दूर रखा होगा, यह सम्भव नहीं। इस प्रकार किसी दुःसाध्य कार्यकी सिद्धि देख कर किसी सुसाध्य कार्यकी सिद्धिका अनुभव करनेको ही लोग दण्डापूपन्याय कहते हैं।

१००। दशमन्याय:।

किसी समय दश व्यक्ति देशान्तर गये। राहमें उन्हें एक नदी मिली जिसे सन्तरण भिन्न पार होनेका और कोई उपाय न था। वे दशों युक्ति करके नदी तैर कर पार कर गये। दूसरे किनारे आ कर उन्होंने सोचा कि हम लोगोंमेंसे सब मौजूद हैं अथवा कोई नक्रजन्तुसे ग्रस्त हुआ है, यह जाननेके लिये उन्होंने आपसमें एक एक कर गणना की। किन्तु गिननेवाला अपनेको नहीं गिनता था जिससे एकको संख्या कम हो जाती थी। इस पर उन्हें सन्देह हुआ कि हममेंसे एक व्यक्ति अवश्य नष्ट हो गया है। इस कारण वे सबके सब अनेक प्रकारके शोक ताप करने लगे। उसी समय एक विज्ञ पथिक उसी रास्ते हो कर गुजर रहा था। उन लोगोंके करुण विलापसे नितान्त व्यथित हो मुसाफिरने उन्हें विलापका कारण पूछा। इस पर उन्होंने आद्योपान्त सब हाल कह सुनाया। मुसाफिरने जब उनकी गणना की, तब ठीक दशों निकले। बाद उसने उन लोगोंसे कहा, 'तुम लोग फिरसे गिनो, दशों हैं, एक भी नष्ट नहीं हुआ है।' इस पर वे पूर्ववत् गणना करने लगे। नौ तकको गिनती हो चुकने पर पथिकने गिननेवालेसे कहा कि, तुम ही दश हो। इस उपदेशसे उनका शोक मोह सब दूर हुआ। इस प्रकार जहां साधुके उपदेशसे भ्रम दूर हो कर भ्रमजन्य सुख और दुःखादिका शेष होता है, वहां यह न्याय हुआ करता है। वेदान्त दर्शनमें यह न्याय दिखलाया गया है। यथा—अज्ञानोपहितजीव तत्त्वमस्यादि महावाक्य सुननेसे उसको मनुष्यत्वादि भ्रान्ति दूर हो जाती है। तत्त्वमस्यादि महावाक्य भी शिष्यकी मनुष्यभ्रान्ति दूर करके ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पादन करता है। उपदेशात्मक तत्त्वमस्यादि महावाक्यजिज्ञासु शिष्यके मनमें ब्रह्माकारा वृत्ति उत्पन्न करता है, इससे धीरे धीरे उसको 'मैं मनुष्य हूँ' यह चिराभ्यस्त भ्रान्तिवृत्ति विदूरित वा निवृत्त होती है। ऐसा होनेसे उसका यह चिरसिद्ध अद्वयभाव अर्थात् ब्रह्मभाव स्थिरीकृत होता है, यही उसका मोक्ष है।

१०१। देवदत्तापुत्रन्याय:।

देवदत्ताका पुत्र, तत्तुल्य न्याय। पुत्रके प्रति माता और पिता दोनोंका सम्बन्ध है। जहां पर माताका प्रधान्य कहा जाय, वहां 'देवदत्तापुत्र' और जहां पितृप्राधान्य कहा जाय वहां देवदत्त, ऐसा होगा। अतएव जहां जिसका प्राधान्य समझा जाय, समान सम्बन्ध रहने पर भी उसका निर्देश होगा।

१०२। घटारोहणन्याय:।

घटारोहण अर्थात् तुलारोहण एक प्रकारका दिव्य है, तत्तुल्य न्याय। इसमें शास्त्रानुसार तुला पर बैठनेसे यदि वृद्धि हो, तो शुद्ध और यदि समान भार हो, तो वह अशुद्ध माना जाता है। इस प्रकार जहां सत्याभिसन्धकी शुद्धि और मिथ्याभिसन्धकी अशुद्धि होती है, वहां पर यह न्याय होता है।

१०३। धर्माधर्मग्रहणन्याय:।

धर्माधर्मग्रहण भी एक प्रकारका दिव्य है। इस दिव्यके नियमानुसार यदि धर्ममूर्त्ति ग्रहण की जाय, तो विशुद्ध और अधर्ममूर्त्ति ग्रहण की जाय तो उसे अशुद्ध जानना चाहिये। अतएव जहां पर जो सत्य और असत्य देखनेमें आवे, वहां यह न्याय होता है।

१०४। नकालनियम: वामदेववत्।

तत्त्वज्ञानका कालनियम नहीं है अर्थात् एक कालमें तत्त्वज्ञान होगा ऐसा कोई निर्दिष्ट नियम नहीं है। वामदेव मुनिकी तरह शीघ्र और इन्द्रकी तरह विलम्ब भी हो सकता है, ऐसा जहां होगा वहां यह न्याय होता है।

१०५। नष्टाश्वदग्धरथन्याय:।

एक दिन दो मनुष्य रथ पर चढ़ कर वनभ्रमणको निकले थे। दैवक्रमसे उस वनमें आग लग जानेसे एकका रथ और दूसरेका अश्व विनष्ट हुआ था। इस प्रकार

एक मनुष्य भण्डार और दूसरा दरवाजा हो उसमें अलग अलग रखने लगा। एक दिन दैवात् दोनोंमें फूट फाट हो गई। बाद परस्पर युक्ति उनके टोकरीमें छिद्र किया [illegible] एकने उसमें दूसरेका पत्र खोल कर उस भोग अपने ममत्वस्थानको पहुँच सकते हैं। इस न्यायके अनुसार निष्काम शुद्ध कर्मरूप उसमें आनन्द संयोजना कर के यदि मनुष्य चले, तो निश्चय ही वे मन्तव्य धाममें पहुंचो जा सकेंगे।

१०६। नहि करतलस्थामलकमालोकयितुं दर्पणापेक्षा इति न्याय।

करतलस्थ वस्तुमात्र जो गोचर है उस हितमें जिस तरह आरसीकी जरूरत नहीं होती उसी तरह प्रत्यक्ष प्रमाणमें फिर अनुमानादिकी आवश्यकता ही क्या ? ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

१०७। नहि भिक्षुको भिक्षुकः इति न्याय।

भिक्षुक कहनेसे भिक्षुकी आवश्यकता भिक्षुकत्व आदमी आप समझा जाता है, किन्तु भिक्षुक कहनेसे भिक्षुकका बोध नहीं होता। इस प्रकार जहां होगा वहां यह न्याय होता है।

१०८। नहि दृष्टे अनुपपन्नं नाम इति न्याय।

जहां पर प्रत्यक्ष प्रमाण पाया जायगा, वहां पर अन्य प्रमाणका अन्वेषण निष्फल है ऐसे जो स्थान पर यह न्याय होता है।

१०९। नहि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्त्तते किन्तु विधेयं स्तोतुमिति न्याय।

निन्दा निन्दनीयकी निन्दा करनेके प्रवर्त्तित होती है, केवल वही नहीं, पर वह विधेयका स्तव (यश गा) भी करती है। निन्दार्थवाद इतर वस्तुके प्राशस्त्यके लिये ही निन्दा प्रवर्त्तित न होता है। केवल निन्दाके लिये नहीं इस प्रकार जहां होगा, वहां यह न्याय कहा जाता है।

११०। नारिकेलफलाम्बुन्याय।

नारिकेल फलके भीतर जिस तरह जलका संचार होता है और वह चमत्कार जिस प्रकार कोई नहीं जान सकता, उसी प्रकार जहां अतर्कितभावमें लक्ष्मी प्राप्त होती है वहां यह न्याय कहा जाता है। अन्ति प्रसिद्ध भी है कि लक्ष्मी नारिकेलफलाम्बुकी तरह आती और गजभुक्त कपित्थकी तरह जाती है।

१११। निम्नगाप्रवाहन्याय।

नदीका प्रवाह स्वभावतः निम्न ओर बहता है, लाख चेष्टा करने पर भी जिस प्रकार उसकी गतिको मोटा नहीं सकते उसी प्रकार अन्तर्निरोध न करके उसमें परमेश्वरविषयमें आमानसिक चित्तवृत्तिप्रवाहको उसमें अन्य स्थानमें मोड़ानेके लिये अतिशय यत्न करने पर भी वह विफल होता है। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता।

११२। नृपनापितपुत्रन्याय।

प्रवाद है कि किसी राजाके एक नापित भृत्य था। राजाने एक दिन उसे एक अत्यन्त रूपवान् बालक लाने कहा। नापितने राजा वाले को सारे नगरमें रूपवान् बालक ढूंढा, पर अपने लड़केसे बढ़ कर किसीको रूपवान् न पाया। अतः उसने अपने लड़केको ही राजाके पास ला कर कहा 'राजन् ! मैंने सारा नगर ढूंढ डाला, पर अपने लड़केसे बढ़ कर किसीको सुन्दर न पाया।' नापितपुत्र निहायत कुरूप था। अतः राजा उसे देख कर बहुत बिगड़े और उसने कहा, 'क्या तुम मेरा उपहास कर रहे हो ?' नापितने अपनी गलतीमें समझा हाथ जोड़ कर कहा, 'मुझे ऐसा मालूम न हुआ कि किस कारण भी मेरे इस लड़केके जैसा रूपवान् और नहीं है इस लिये सुन्दरताके विषयमें और मैं क्या कहूं। इसी विश्वास पर मैं आपके पास इसे लाया हूं।' राजाने समझा कि नापित स्नेहके वशीभूत हो कर कुरूपको भी सुन्दर बतला रहा है। यह समझ कर उसने क्षमा प्राप्त किया। रागातिशयवशतः नापितको जिस प्रकार अति कुरूपमें भी सर्वांगसुन्दर बुद्धि हुई थी उसी प्रकार मन्दबुद्धियोंके आत्मज्ञानाभाव न होनेके कारण वे सर्वोत्तम हरिहरादि देवताका परित्याग करके भी क्षुद्र देवताके प्रति विशेष भक्ति करते हैं ऐसे जो स्थान पर इस न्यायका प्रयोग होता है।

११३। पङ्कप्रक्षालनन्याय।

पङ्क (कीचड़) प्रक्षालन करनेकी अपेक्षा दूरसे स्पर्श नहीं करना ही श्रेय है। कीचड़में न जा कर जिसमें कीचड़ न लगे, वही करना अच्छा है। इस

प्रकार अन्याय करके उसके निवारणकी चेष्टाको अपेक्षा अन्याय कार्य नहीं करना ही अच्छा है; ऐसी ही जगह पर यह न्याय होता है।

११४। पञ्जरचालनन्यायः।

दश पक्षी यदि एक पञ्जरमें रहें और वे एकत्र मिल कर जिस प्रकार पञ्जरके तिर्यक् और ऊर्ध्वनयनरूप क्रियादि करनेमें समर्थ होते हैं, उसी प्रकार पञ्चज्ञानेन्द्रिय और पञ्चकर्मेन्द्रिय एक प्राणरूप क्रिया उत्पादन करके देहचालन करती है।

११५। पञ्जरमुक्तपक्षिन्याय।

पञ्जरस्थित पक्षी जिस प्रकार अपने अभीष्ट देश जानेमें समर्थ होते हैं उसी प्रकार जीव बन्धनसे मुक्त हो कर ऊर्ध्व आकाशमें अवस्थान करनेमें समर्थ होते हैं। जैन मतमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

११६। पतन्तमनुधावतो बद्धोऽपि गतः इति न्यायः।

किसी एक बहेलियेके जालमें बहुत-सी चिड़िया फंस गईं। उनमेंसे कुछ तो बंध गईं और कुछ जाल ले कर उड़ीं। उड़ती हुई चिड़ियोंको पकड़नेकी आशासे उस बहेलियेने कुछ दूर तक उनका पीछा किया, पर व्यर्थ हुआ। इधर जो जालमें बंध गई थीं वे भी जाल ले कर भागीं। इस प्रकार जो ध्रुव वस्तुकी रक्षा न कर अध्रुवकी आशा पर जाते हैं उनके ध्रुव और अध्रुव दोनों ही नष्ट होते हैं; ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता है।

११७। पाषाणेष्टकन्याय।

रूईसे ईंट कठिन है, ईंटसे भी पत्थर कठिन होता है, इस प्रकार जहां एकसे बढ़ कर एक है, वहां इस न्यायका प्रयोग होता है।

११८। पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि।

किसी आचार्यने एक शिष्यको अरण्यमें ले जा कर तत्त्वका उपदेश दिया था। उस उपदेशको सुन कर एक पिशाच मुक्त हो गया। तत्त्वोपदेश अन्यार्थ में उपदिष्ट हुआ था सही, लेकिन पिशाच उसे सुन कर मुक्त हो गया था। तात्पर्य यह है कि तत्त्वोपदेश प्रसङ्गक्रमसे प्राप्त होने पर भी ज्ञान हो सकता है। (सांख्यद० ४ अ०)

११९। पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात्।

पिता और पुत्र दोनोंसे कोई भी किसीको जानता नहीं था, परन्तु उपदेश या कर जाना था। एक ब्राह्मण अपनी गर्भिणी स्त्रीको घरमें छोड़ देशान्तर गया। बहुत दिनके बाद जब वह घर लौटा, तब पुत्रको पहचान न सका, पुत्रने भी पिताको नहीं पहचाना। पीछे स्त्रीके उपदेशसे एकने दूसरेको पहचान लिया। तात्पर्य यह कि सुहृद्के उपदेशसे भी ज्ञान होता है।

(सांख्यदर्शन ४ अ०)

१२०। पिष्टपेषणन्याय।

पिष्ट वस्तुका पेषण जैसा निरर्थक है, वैसा ही निष्फल कार्यारम्भको जगह यह न्याय हुआ करता है।

१२१। पुत्रलिप्सया देवं भजन्त्या भर्त्ताऽपि नष्ट इति न्यायः।

पुत्र लाभ करनेके लिए देवताकी आराधना करते करते स्वामी भी अनिष्ट हुआ। मसल है—"पूत मांगे गई भतार खो आई।" इस प्रकार किसी मङ्गल कार्यका अनुष्ठान करते करते जब उसका मूल तक भी नष्ट हो जाय, तब इस न्यायका प्रयोग होता है।

१२२। प्रपाणकन्यायः।

जिस प्रकार शर्करा आदि वस्तुके योगसे एक अद्भुत अति सुमिष्ट वस्तु बनती है, उसी प्रकार जहां बहुसाधन द्वारा एक विचित्र वस्तु होती है, वहां यह न्याय होता है। जहां विभाव और अनुभावादि द्वारा शृङ्गारादिरसकी अभिव्यक्ति होती है, वहां भी यह न्याय हुआ करता है।

१२३। प्रदीपन्यायः।

जिस प्रकार तैल, सूत्र और अग्निके संयोगसे दीप प्रज्वलित हो कर प्रकाशमान होता है, उसी प्रकार सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण परस्पर विरोधी होने पर भी परस्पर मिल कर देहधारणरूप कार्य करते हैं। सांख्यदर्शनमें न्याय प्रदर्शित हुआ है।

"प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।" (-सांख्यका०)

१२४। प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते इति न्यायः।

कोई प्रयोजन नहीं रहने पर मूढ़ व्यक्ति भी कार्यमें प्रवर्त्तित नहीं होते। इस प्रकार प्रयोजनवशतः

कार्यमें प्रवृत्त होनेसे यह न्याय होता है।

१२५। भाषान्यायविन्यायः।

एक व्यक्ति समाजमें रहता है, लेकिन उसे कार्यो-गुरोधसे कभी कभी लोगोंसे भाषा बढ़ना है और दूसरी जगह भी जाना पड़ता है। ऐसा होने पर भी उसे जिस प्रकार भाषान्तरको बदलते हैं उसी प्रकार वर्णनीय विषयको भाषान्तरानुसार जो उसका नाम होता।

१२६। घनमनुष्यजालस्थायः।

पथिक घनपुष्प पाथजलके नीचे छायाके लिये बैठा हुआ है और एक घन जिस प्रकार बिना मेंहके उसके पानी पातके पास गिरता उसी प्रकारका घटना नहीं होती, वहाँ यह न्याय होता है।

१२७। बहुराजकन्यायः।

जिस प्रकार बहुतसे सिंहोंसे पाकड़ पर आश्रय प्राप्त स्थिति नहीं होती, उसी प्रकार जहाँ बहुतोंका परस्पर विवाद होता है वहाँ पर एक विषयकी स्थिरता नहीं रहती। जहाँ पर ऐसी घटना होगी, वहाँ यह न्याय होता है।

१२८। बहुमिलों निरोधो रामादिभिः कुमारो महावत्।

बहुत मनुष्योंका साथ नहीं करना चाहिये, क्योंकि रामादि द्वारा कुमारोंतकको नाश प्राप्त होता है। पाम कूटने समय किसी कुमारीके हाथमें था यथासमय बज पड़ा। देखनेमें वह कुटुम्ब बैठे हुए थे, कुमारीको बड़ी लज्जा हुई, सो उसने सब आभूषण उतार दिये केवल एक रहने दिया। उसके रहनेसे आवाज नहीं होती थी। तात्पर्य यह कि मुमुक्षु व्यक्तिको अकेला रहना चाहिये, बहुतोंके साथ नहीं। भागवतमें महर्षि और ब्राह्मणका प्रसङ्ग है।

१२९। बहुनामप्युपजाताना मितानाम बहुपद वत्।

नाना शास्त्र और नाना वचनादिके रहने पर भी मधुकर जैसा सारग्राही होना चाहिये। भ्रमर जिस प्रकार पुष्पका परित्याग कर मधुमात्र ग्रहण करता है उसी प्रकार मुमुक्षु व्यक्तिको सारतोष लिया मात्र ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा नहीं।

१३०। बहूनां मनुष्याणां मनस्य इति न्यायः।

बहुत मनुष्योंका अनुग्रह मान्य है, तत्पश्चात् नाथव। सामान्य वस्तु होने पर भी उसके मिलनेसे कठिनसे कठिन काम साधित होते हैं। जैसे, तृण यद्यपि तुच्छ वस्तु है, तो भी उसके मिलनेसे मत्त हाथी बाँधे जाते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार वस्तुका मिलन भी कार्यसाधक होता है।

— "बहूनामप्यसाराणां मेलनं कार्यसाधकम्।

तृणैः गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः॥"

१३१। विरक्तस्य देवस्तामनुपादेयोपादानं च न कोरवत्।

विरक्त मनुष्यको अन्यको त्याग देय वस्तुका परित्याग कर उपादेय वस्तु ग्रहण करना चाहिये। दूध मिश्रित जलको हंसके देखने पर केवल दूध पी लेता है, जल छोड़ देता है। तात्पर्य यह कि संसारसे–मोहजन्य विषय है।

१३२। विषवर्त्तिलोहान्यायः।

लोहा (लोह) वर्त्तके मध्य डालनेसे उसका जिस प्रकार विभाग नहीं हो सकता, उसी प्रकार प्रमाणान्तर विचारको बिना जाने उसमें दोष लगानेसे यह न्याय होता है।

१३३। ब्राह्मणग्रामन्यायः।

एक ग्राममें अनेक जातिके लोग रहते हैं, किन्तु उनमेंसे ब्राह्मणकी संख्या अधिक रहनेसे लोग उसे जिस प्रकार ब्राह्मणग्राम कहते हैं उसी प्रकार आधिक्यको विवक्षा होनेसे ही इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

१३४। ब्राह्मणश्रमणन्यायः।

श्रमणका अर्थ बौद्धयति है। ब्राह्मणके नियमसंस्कार परित्याग कर बौद्ध धर्म ग्रहण करने पर भी उसे जिस प्रकार ब्राह्मणश्रमण कहते हैं, उसी प्रकार जहाँ भूत पूर्व गति द्वारा निर्देश हो वहाँ यह न्याय होता है।

१३५। भिक्षुपादप्रसारणन्यायः।

कोई एक भिक्षुक किसी ओमबादि पानेकी आशा से किसी गाँवमें गया। उस समय उसी घरमें स्थान पाना असम्भव है। पर उसके पादप्रसारण योग्य परिचय और इससे उसकी अभिलाष पूरी नहीं। ऐसा सोच कर पहले थोड़ी जगह लिया और हृदय सोच विचारके बाद

उससे सभी अभीष्ट लाभ करता है। ऐसे ही स्थानपर यह न्याय होता है।

१३६। मज्जनोन्मज्जनन्यायः।

जो तैरना नहीं जानता हो ऐसा मनुष्य यदि नदीमें गिर जाय तो वह जिस तरह एक बार निमज्जित और एक बार उन्मज्जित होता है, उसी तरह दुष्टवादीके स्वपक्ष समर्थनके लिए यत्नवान् होने पर भी वह प्रकृत युक्ति न पा कर सन्तरणानभिज्ञकी तरह क्लेश पाता है। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता है।

१३७। मणिमन्त्रन्यायः।

मणि और मन्त्रकी अग्निके दाहके प्रति जिस प्रकार साक्षात् प्रतिबन्धकता है, इसमें जिस प्रकार प्रमाणापेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार जिनको कामिनीजिज्ञासा है, उनके ज्ञानमात्रकी प्रतिबन्धकता है, इसमें भी किसी युक्तिकी अपेक्षा नहीं करता है। ऐसे स्थान पर इस न्यायका प्रयोग होता है।

१३८। मण्डूकतोलनन्यायः।

कोई एक कपट वणिक द्रव्य बेचते समय एक मण्डूक (बेंग)को पलड़े पर रख कर उसीसे तौलने लगा। मण्डूक उछल कर भाग गया, उसी समय वणिककी कपटता सबको मालूम हो गई। इस प्रकार कार्य करते समय जहां कपटताका प्रकाश हो जाय, वहां यह न्याय होता है।

१३९। मरणादरं व्याधिरिति न्यायः।

मरणसे व्याधि श्रेय है, तत्तुल्यन्यायः। अत्यन्त दुःखजनक विषय उपस्थित होने पर उसकी अपेक्षा दुःख ही प्रार्थनीय है। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

१४०। मुञ्जादिषीकोद्धरणन्यायः।

मुञ्ज तृणविशेष, इषीका गर्भस्थतृण उसका उद्धरण, तत्तुल्य न्याय। मुञ्जसे इषीका निकाल लेने पर जिस प्रकार उसकी क्षति नहीं होती, उसी प्रकार जहां जिस वस्तुका गर्भस्थित उखाड़ लिया जाय और उसको कोई क्षति न हो, वहां यह न्याय होता है।

१४१। यत्कृतकं तदनित्यमिति न्यायः।

जो कृतक अर्थात् कार्य है, वह अनित्य है, तत्तुल्य न्याय। कार्यमात्र ही अनित्य है, इस प्रकार जहां होगा, वहां यह न्याय होता है।

१४२। यत्परः शब्दः शब्दार्थः इति न्यायः।

जहां जो प्रस्तुत विषय है उसमें उसीका प्रामाण्य अधिक है अन्य इतर विषयमें प्रामाण्य हो भी सकता और नहीं भी हो सकता। सांख्यदर्शनमें विज्ञानभिक्षुने भाष्यमें न्याय द्वारा कहा है, कि सांख्यदर्शनमें प्रधान वर्णनीय दुःखनिवृत्ति है। इस दुःखनिवृत्तिके विषयमें यही दर्शन अन्य दर्शनकी अपेक्षा अधिक प्रामाण्य है, किन्तु ईश्वरांशमें यह दर्शन दुर्बल है। क्योंकि ईश्वर इस दर्शनका प्रधान विषय नहीं है, किन्तु वेदान्तादि दर्शनमें ब्रह्मविषयका ही अधिक प्रमाण है। जहां ऐसा होगा, वहां यह न्याय होता है।

१४३। यत्रोभयोः समो दोषः न तत्रैकोऽनुयोज्य इति न्यायः।

जहां पर दोनोंका दोष और परिहार समान है, वहां पर कोई भी पक्ष पर्यनुयोज्य अर्थात् प्रष्टव्य नहीं है।

"यत्रोभयोः समो दोषः परिहारश्च यः समः।
नैकः पर्यनुयोज्यः स्यात् तादृगर्थविचारणे॥"

वेदान्तदर्शनमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है, जहां पर दोष और दोषका परिहार दोनों ही समान हैं वहां कोई पक्ष अवलम्बनीय नहीं है।

१४४। यादृशं मुखं तादृशं चपेटमिति न्यायः।

जैसा मुख वैसो चपेट अर्थात् जहां पर तुल्यरूप परिहार होगा वहां यह न्याय होता है।

१४५। यादृशो यक्षस्तादृशो बलिरिति न्यायः।

जैसा यक्ष वैसी ही उसकी बलि, जहां तुल्यरूप उपहार होगा, वहां यह न्याय होता है।

१४६। येन उपक्रम्यते उपसंह्रियते स वाक्यार्थः इति न्यायः।

जिससे उपक्रम और उपसंहार हो वही वाक्यार्थ, तत्तुल्य न्याय। जैसे, गिरि अग्निमान् ऐसा कहनेसे इस प्रतिज्ञा वाक्य द्वारा पर्वतका ही उपक्रम किया जाता है और क्यों वह्निमान् नहीं है, इस कारण वह्निमान् है। इस निगमनवाक्यसे भी पर्वतका बोध होता है। यहां पर

उपक्रम और उपसंहारमें पर्यन्त जो मात्रार्थ हुआ, ऐसा ही स्थान पर यह न्याय होता है।

१४७। योजनप्राप्यायां वार्ध्यां मज्जनन्यायः।

योजन प्राप्या वार्धेयोमें मज्जन (अल में अस्तं व्याप्ति निमेष, उसका मज्जन, अथवा मज योजन प्रवणके वैसा मज्जन) तत्तुल्य न्याय। यदि अथ अनायास हो, तो मज्जन करके अनायास अनायास पार हो सकता है। लेकिन नदी यदि योजनप्राप्या हो, तो मज्जन करके पार होना असम्भव है, इस प्रकार जहां होगा, वहां यह न्याय होता है।

१४८। एषोऽपटन्यायः।

जहां पर निराकाङ्क्ष वाक्यमें आकाङ्क्षा उत्थापित करके उस वाक्यमें किया जाय, वहां पर यह न्याय होता है। यथा—घटोऽयमिति, यह घट है इस वाक्यमें किसी प्रकारकी आकांक्षा नहीं है। इस निराकाङ्क्ष वाक्यमें आकाङ्क्षा उत्थापित करके अर्थात् कैसा घट, ऐसी आकाङ्क्षा निकाल कर उसमें उस वाक्यता को भरे अर्थात् एक घट। जहां ऐसा कहा जायगा वहां यह न्याय होता है।

१४९। रज्जुसर्पन्यायः।

रज्जुमें सर्पभ्रम, तत्तुल्य न्याय।

यत्र विश्वमिदं भाति कल्पित 'रज्जुसर्पवत्। (अध्यात्म०)

अल्पज्ञानीकमें रज्जु देखनेसे मनुष्यको सर्पका भ्रम होता है, किन्तु जब ज्ञानालोकमें वह अच्छी तरह देखा जाय, तब फिर सर्पभ्रम नहीं रहता। इस प्रकार हम लोगोंके अज्ञानसे अल्पज्ञानीयके ब्रह्ममें जगत्भ्रम होता है। जब श्रवण मनन और निदिध्यासन द्वारा अज्ञान-नाश हो जायगा, ज्ञानालोक उद्भासित होगा, तब फिर ब्रह्ममें जगत्भ्रम नहीं रहेगा। वेदान्तदर्शनमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है। भ्रान्तिकी जगह इस न्याय का प्रयोग होता है।

१५०। राजपुत्रव्याधन्याय।

किसी समय कुछ चोर एक राजपुत्रको उठा ले गये और एक व्याधके यहां बेच डाला। व्याधभवनमें व्याधके घरमें "मैं व्याधपुत्र हूं" ऐसी राजपुत्रकी धारणा हो गई। पीछे उसने किसी आत्मीयसे जब राजपुत्रके उसका अपना वृत्तान्त सब सुनाया, तब राजपुत्रकी व्याध भ्रान्ति दूर हुई और अपनेका बोध हुआ। इस प्रकार जहां भ्रान्ति हो कर वाक्यमें अपनोदन होता है वहां पर यह न्याय होता है। वेदान्तदर्शनमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है। हम लोगों को ब्रह्ममें द्वय भ्रान्ति होती है, किन्तु तत्त्वमस्यादिके वाक्यमें उसका अपनोदन हो कर 'अहं ब्रह्म' यही ज्ञान अविचलित है। यही ज्ञान इस न्यायका विषय है। सांख्यदर्शनके चतुर्थ अध्यायमें 'राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात्' इस सूत्रमें यह दृष्टान्त देखने में आता है।

१५१। राजपुरप्रवेशन्याय।

राजा जब किसी नगरमें जाते हैं, तब उन्हें देखनेके लिये लोगों की भीड़ लग जाती है, ऐसी हालतमें विग्रह कलह उपस्थित हो सकती है। किन्तु ये सब मनुष्य रक्षियोंके पीड़नभयसे वे कोलाहलमात्रमें पर्यवसित रहते हैं। इस प्रकार जहां सुश्रृङ्खलभावमें कार्य निर्वाह होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

१५२। लक्षणप्रमाणाभ्यां हि वस्तुसिद्धिरिति न्यायः।

लक्षण और प्रमाण द्वारा वस्तु सिद्ध होती है इस प्रकार जहां लक्षण और प्रमाणसे वस्तुकी सिद्धि हुआ करती है, वहां यह न्याय होता है।

१५३। लूतातन्तुन्याय।

लूता कीटविशेष, उसके तन्तुनिर्माण तत्तुल्य न्याय। लूता (मकड़ा) जिस प्रकार स्वयं अपनी देहसे सूत्र निर्माण करती है और फिर देहमें ही संहार करती है, उसी प्रकार ब्रह्म इस जगत्की सृष्टि करते हैं और संहारके समय ब्रह्ममें ही यह जगत् लीन हो जाता है। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

१५४। लोहचुम्बकन्याय।

जिस प्रकार चुम्बक द्वारा लोह आकर्षित होता है, उसी प्रकार उपसर्प और उपसर्पक दोनोंके बीच यह न्याय होता है।

१५५। लोहचुम्बकन्याय।

लोह और चुम्बक दोनों ही निष्क्रिय हैं, किन्तु चुम्बक लोह सन्निधिमात्रसे ही उसे आकर्षण करता है, इस प्रकार पुरुष निष्क्रिय होने पर भी प्रकृतिसन्निधानमें

कार्य प्रवर्त्तक होता है। सांख्यदर्शनमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

१५६। वरगोष्ठीन्याय:।

गोष्ठी अर्थात् वर और वधूपक्षके परस्पर आलापसे एक मत हो कर जिस प्रकार वरलाभरूप कार्य सम्पन्न किया जाता है, उसी प्रकार जहां एकमत्य हो कर कोई एक कार्य साधन किया जाता है, वहां यह न्याय होता है। गोष्ठी वर और वधू पक्षके आलापसे एकमत्य हो कर वरलाभ होता है, इसीसे इस न्यायका नाम वरगोष्ठी न्याय पड़ा है।

१५७। वरघाताय कन्यावरणमिति न्यायः।

विवाह करना जरूरी है अथच विषकन्यासे विवाह करनेसे मृत्यु हो सकती है, अतः विषकन्यासे विवाह नहीं करना ही श्रेय है। जहां अभीष्ट वस्तु लाभ करनेमें अनिष्टान्तरकी सम्भावना हो, वहां अभीष्ट वस्तुका लाभ नहीं करना ही अच्छा है। ऐसे स्थान पर ही यह न्याय होता है।

१५८। वह्निधूमन्याय:।

धूमरूप कार्य देखनेसे जिस प्रकार कारणरूप कार्यका अनुमान होता है, उसी प्रकार कार्यदर्शनमें कारणके अनुमान-स्थल ही यह न्याय होता है।

१५९। बिल्वखल्वाटन्याय:।

खल्वाट अर्थात् जिसके सिरके बाल झड़ गये हों। खल्वाट मनुष्य धूपमें अत्यन्त क्लिष्ट हो कर छायाके लिये एक बिल्ववृक्षके नीचे बैठा हुआ था। इसी समय एक बेल उसके सिर पर गिरा जिससे उसका सिर चूर चूर हो गया। इस प्रकार जहां अभीष्ट प्राप्तिकी आशासे जा कर अनिष्ट लाभ होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग होता है।

१६०। विशेष्ये विशेषणं तत्रापि च विशेषणमिति न्याय:।

विशेष्यमें विशेषण, उसमें भी विशेषण तत्तुल्य न्याय। जैसे, भूतल घटवत् और जलवत्, यहां पर भूतलमें घट विशेषण है और यह विशेषण भूतलांशमें प्रदत्त हुआ है, इस प्रकार विशेषण इस रीतिसे जहां भासमान होगा, वहां यह न्याय होता है।

१६१। विषभक्षणन्याय:।

पापीने पाप किया है या नहीं, यह जाननेके लिये विषभक्षणरूप दिव्य करना होता है। नियमपूर्वक पापीको विष खिलानेसे यदि उसने यथार्थमें पाप न किया हो, तो उसे अनिष्ट नहीं होगा और यदि अनिष्ट हो जाय, तो उसे पापी समझना चाहिये। इस प्रकार जहां सत्याभिसन्धका मोक्ष और मिथ्याभिसन्धका बन्ध हो, वहां यह न्याय होता है।

१६२। विषवृक्षन्याय:।

अन्य वृक्षकी बात तो दूर रहे, यदि विषवृक्ष भी वर्द्धित किया जाय, तो उसे भी काटना उचित नहीं है। उसी प्रकार निज अर्जित वस्तुका स्वयं नाश नहीं करना चाहिये, ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता है। 'विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्।' (कुमार २ स०)

१६३। वीचितरङ्गन्याय:।

नदीकी तरङ्ग जिस प्रकार एकके बाद दूसरी उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जहां परम्पराक्रमसे कार्योत्पत्ति हो, वहां यह न्याय होता है।

'वीचितरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्त्तिता।' (भाषापरि०)

नैयायिकोंके मतसे ककारादिवर्ण वीचितरङ्ग न्यायके अनुसार उत्पन्न होते हैं।

१६४। बीजाङ्कुरन्याय:।

बीजसे अङ्कुर अथवा अङ्कुरसे बीज, बिना बीजके अङ्कुरोत्पत्ति नहीं होती और अङ्कुरके नहीं होने पर बीज भी नहीं होता, सुतरां अङ्कुरके प्रति बीज कारण है या बीजके प्रति अङ्कुर कारण है, इसका कुछ स्थिर नहीं किया जाता तथा बीजाङ्कुरप्रवाह अनादि है यह स्वीकार करना होगा। इस प्रकार जहां होगा, वहां पर यह न्याय होता है। वेदान्तदर्शनके शारीरक भाष्यमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

१६५। वृक्षप्रकम्पनन्याय:।

कोई एक आदमी एक पेड़ पर चढ़ा था। नीचे दो आदमी खड़े थे। एकने उसे एक शाखा और दूसरेने कोई और शाखा हिलानेको कहा। वृक्ष पर चढ़ा हुआ आदमी उनके परस्पर विसंवादीवाक्यसे कुछ भी कर न सका। इधर एक तीसरे आदमीने जड़ पकड़ कर समूचा वृक्ष हिला दिया जिससे सभी शाखाएं

दिनमें गयीं। इस प्रकार जहां सभी वस्तुओं का अधि रोहावरोह हो वहां पर यह न्याय होता है।

९९। इन्द्रकुमारीवाक्यन्यायः।

एक दिन इन्द्रने एक वृद्ध कुमारीसे वर मांगने को कहा। इस पर उसने प्रार्थनाकी थी, मेरे जितने अधिक पुत्र हों, बहु धोर हों, वृन्द हो तथा मैं कांचनपात्रमें भोजन करूं, यही वर मुझे दीजिये।' वह जो कुमारी थी, विवाह नहीं हुआ था, विवाहादि नहीं होनेसे पुत्र और धनादि नहीं हो सकता। किन्तु उस कुमारीने एक ही वरमें पति, पुत्र, गो, धान्य और हिरण्य प्राप्त किया। इस प्रकार उपायना द्वारा एक भोगसाधन तत्स्थान प्राप्त करनेसे तदन्तर्भुक्त अविपत्तत्मादि न पहोते होने हैं, उसी प्रकार जहां एक वाक्य द्वारा नाना अर्थ का प्रतिपादन हो, वहां यह न्याय होता है। महा भाष्यमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

१००। हरिद्राविहनो मूलकादि विनष्टमिति न्यायः।

किसी एक वणिक्ने मूलधन बढ़ानेके लिये व्यवसाय आरम्भ किया था। उसने जितने लोगोंसे अपना व्यवहार करके उसका मूलधन तक भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार जहां होता है वहीं इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

१०१। वर्तनियमसम्भवाद्दानवंश लोकवत्।

दानमात्रका प्रतर्दिका परित्याग करनेसे लोकव्यवहार में दानरूप प्रयोजन नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह कि इसका अनवरत करनेसे आपत्ति उत्पन्न होती है और इसका परित्यागसे भी अनर्थ होता है।

१०२। दण्डपूपिकान्यायः।

महर्षिने द्वारा 'इस प्रकार समय विशेषका और अवस्था द्वारा समयका ज्ञान होता है उसी प्रकार जहां भिन्न भिन्न अर्थ जाना जाता है वहां यह न्याय होता है।

१०३। उत्पलपत्रभेदनन्यायः।

जो पत्तोंको एक सूई द्वारा विद्ध करनेसे एक ही बार में विद्ध गये, ऐसा ज्ञान पड़ता है किन्तु जो पत्ते क्रमसे एक भिन्न भिन्न समयमें विद्ध गया है पर काल की सूक्ष्मताके कारण उसका अनुमान नहीं होता। इस प्रकार जहां बहुतसे कार्य एक दूसरेके बाद होने पर भी एक समयमें हुए हैं ऐसा ज्ञान पड़ता है वहां यह न्याय होता है। सांख्यदर्शनमें यह न्याय दर्शित हुआ है।

१०४। शालिधान्यको कोद्रवाधमन्यायः।

शालि उत्तम धान्यविशेष है और कोद्रव अधम, उत्तम धानके बदले अधम धानका पाना, तत्र यह न्याय जहां उत्तम वस्तुके बदले अधम वस्तुका ग्रहण किया जाय वहां यह न्याय होता है।

१०५। शिरोवेष्टनेन नासिकास्पर्शं इति न्यायः।

सम्मुख में इस प्रकार नासिकास्पर्श, तत्तुल्य न्याय। जहां अल्पायासलभ्य कार्य में बहु परिश्रम लगता हो, वहां यह न्याय होता है।

१०६। ग्रामसरकन्याय।

जिस प्रकार ग्रहादिका ग्रामस्थान नाम हो कर स्थानगुण होता है, उसी प्रकार जहां पूर्व गुणका नाश हो जो कर अपर गुणका समावेश हो, वहां यह न्याय होता है।

१०७। श्वानपुच्छन्यायः।

किसी आदमीने एक कुत्ता पाला था और वह उसे श्वान (मामा) नामसे पुकारा करता था, जिस दिन उसे अपनी कोठी पिढ़ाईका काम होता था उस दिन वह उस कुत्तेको तरह तरहकी गाली देता था। जो उस कुत्तेको अपना भाई समझ कर बहुत गुस्सा आती थी। श्वानकी प्रति गाली देना बहुतका अभिप्राय नहीं था वही उसको श्वानके लोपका कारण नहीं रहने पर भी मामका ऐसा सुन कर वह खोचाकिया जाती थी। इस प्रकार जहां श्वान, वहीं यह न्याय होता है।

१०८। श्वः कार्यमद्य कुर्वीतेति न्यायः।

जो काम कल करना होगा उसे आज ही कार्य करना होगा उसे अभी कर डालना चाहिए। इस प्रकार जहां पर कर्त्तव्य कार्य पहले किया जाय वहां यह न्याय होता है।

"श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥"

१०९। श्रीमद्भगवद्गीतायां त्यागविषयोपसंहारः।

लोकव्याप और विशेष इस दोनों द्वारा स्नेह प्रयो-

की तरह सुखी और दुःखी होता है। किसी आदमीने एक श्येनशावक पाला था। कुछ दिन बाद उसने सोचा कि इसे वृथा कष्ट क्यों दूं, छोड़ देना ही अच्छा है। इस लिये पिञ्जरमेंसे निकाल उसे उड़ा दिया। श्येन बन्धनमुक्त हो कर सुखी हुआ और पालकके विच्छेदसे दुःखी भी हुआ। तात्पर्य यह कि संसारमें निरवच्छिन्न सुख नहीं है।

१७७। सन्दंशपतितन्यायः।

सन्दंश (सड़सी) जिस प्रकार मध्यस्थित पदार्थ ग्रहण कर सकता है। उसी प्रकार पूर्वोत्तर पदार्थके मध्यस्थित पदार्थके ग्रहणकी जगह यह न्याय होता है।

१७८। सन्निहितादपि व्यवहितं साकाङ्क्षं बलीय इति न्यायः।

सन्निहितसे व्यवहित पद यदि आकाङ्क्षायुक्त हो, तो वह बलवान् होता है तत्तुल्य न्याय। शाब्दबोधकी योग्यताके कारण साकाङ्क्षपदको अर्थात् स्वार्थान्वयबोधकी प्रयोजकता है इस नियमसे उसके आसत्तिक्रमका अनादर करके अन्वययोग्य पदार्थवाचक शब्दका व्यवहितत्व रहने पर भी जहां अन्वय होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

१७९। सन्निहिते बुद्धिरन्तरङ्गमिति न्यायः।

सन्निहित और विप्रकृष्ट इन दोनोंमें यदि दोनोंके अन्वयकी सम्भावना हो, तो सन्निहितमें आसक्ति वशतः अन्वय होता है, विप्रकृष्टका अन्वय नहीं होता। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

१८०। समुद्रवृष्टिन्यायः।

समुद्रमें वर्षा होनेसे जिस प्रकार उसका कोई उपकार नहीं होता, उसी प्रकार जहां निष्फल कार्य होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग करते हैं।

१८१। समूहालम्बनन्यायः।

जहां उपस्थित पदार्थोंके मध्य विशेषण और विशेष्य भाव द्वारा अन्वयकी असम्भावना हो, वहां उपस्थित पदार्थके समूहका अवलम्बन करके अन्वयका बोध होगा, जैसे घट, पट इत्यादिकी जगह घट और पट दोनों ही विशेष्यपद हैं। इस विशेष्यपदका अवलम्बन करके अन्वयका बोध होगा। ऐसे स्थल पर यह न्याय होता है।

१८२। सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो न चेष्यते इति न्यायः।

एक वाक्यकी सम्भावना होनेसे वाक्यभेद अभिलषणीय नहीं है, जहां पर ऐसा होगा, वहां यह न्याय होता है।

१८३। सर्वं विशेषणं सावधारणमिति न्यायः।

विशेषण मात्र ही सावधारण है, जैसे—'श्वेत शङ्ख' यहां पर शङ्ख श्वेतवर्ण ही है, इस प्रकार जहां सावधारण वाक्य-बोध होगा, वहां यह न्याय होता है।

१८४। सर्वापेक्षान्यायः।

बहुतसे मनुष्योंको निमन्त्रण दिया गया, उनमेंसे अभी केवल एक आया है, उसे जिस प्रकार भोजन नहीं दिया जाता है, सबोंकी अपेक्षा करनी पड़ती है, उसी प्रकार जहां ऐसी घटना होगी, वहां यह न्याय होता है।

१८५। सविशेषणौ हि विधिनिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामतः सति विशेष्ये बाधे इति न्यायः।

विशेष्यपदके बाधित होने पर विशेषणके साथ वर्त्तमान विधि और निषेध विशेषणमें उपसंक्रान्त होती है, तत्तुल्य न्याय। जैसे—'घटाकाशमानय नानयाकाश' घटाकाश लाओ, अनयाकाश लानेकी जरूरत नहीं। यहां पर विशेष्यपद आकाशसे बाधयुक्त आनयन और निवारण यह विधि है और निषेध होनेसे घटादिरूपमें विशेषण उपसंक्रान्त हुआ अर्थात् घट लाओ, यही बोध हुआ। इस प्रकार जहां होता है वहीं इस न्यायका प्रयोग करते हैं।

१८६ साक्षात् प्रकृतौ विकारलय इति न्यायः।

साक्षात् प्रकृतिमें विकारका लय होता है, तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार घटादिका साक्षात् प्रकृति कपालादिमें लय होता है, परमाणुमें नहीं होता, उसी प्रकार जहां पर विकारका स्वीय प्रकृतिमें लय होगा, वहीं यह न्याय होता है।

१८७। सावकाशनिरवकाशयोर्मध्ये निरवकाशो बलीयान् इति न्यायः।

सावकाश और निरवकाशविधिकी जगह निरवकाश विधि ही बलवान् है, तत्तुल्यन्याय। जिसके अनेक विषय अर्थात् स्थल हैं, वह सावकाश विधि और जिसके

अन्य एक विषय है, वही निरवकाश विधि है। यदि कहीं पर ये दो विधियां समान रहें, तो वहां निरवकाश विधिकी ही प्रधानता होगी। जहां इस प्रकार निरवकाश विधिको प्रधानता होती है वहां पर यह न्याय होता है।

१८८। सिंहावलोकनन्यायः।

सिंह जिस प्रकार एक जगहका वध करके आगे बढ़ने बढ़ते पीछेको ओर देखता है उसी प्रकार जहां आगे और पीछे दोनोंका समन्वय हो, वहीं यह न्याय होता है।

१८९। सूचीकटाह न्याय।

अल्पायाससाध्य सूचीके निर्माणके बाद कटाह निर्माण। एक दिन किसी आदमीने एक कर्मकारके यहां जा कर उसे एक कटाह बनाने कहा। इसी बीच एक दूसरा आदमी भी वहां पहुंच गया, उसने सूचीके लिये प्रार्थना की। कर्मकारने पहले सूची बना कर पीछे कटाह बना डाला। इस प्रकार जहां अल्पायास साध्य निपटा कर बहु आयाससाध्य कार्य किया जाता है वहां यह न्याय होता है।

१९०। सुन्दोपसुन्दन्यायः।

सुन्द और उपसुन्द नामक प्रबल पराक्रान्त दो असुर थे। वे दोनों भाई परस्पर विवाद करके नष्ट हुए। इस प्रकार जहां परस्पर विवाद होता है, वहां इस न्याय का प्रयोग करते हैं।

१९१। सूत्रशाटिकान्यायः।

सूत्र द्वारा शाटिका होती है। सूत्र शाटीका उपादान होनेसे सूत्रकी शाटी रूप आकिंचा द्वारा निर्देश होती है। इस प्रकार जहां उपादानका आकिंचा रूपमें निर्देश होता है, वहां यह न्याय होता है।

१९२। सोपानारोहणन्यायः

प्रासादके ऊपर जानेको इच्छा होने पर जिस प्रकार सोपान पर चढ़ कर जाना पड़ता है अर्थात् एक एक सोपान पार कर क्रमशः प्रासादके ऊपर पहुंचते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म ज्ञानमें पहले एक एक सोपान पार करनेसे ब्रह्मको जान सकते हैं। अर्थात् धीरे धीरे वैराग्य आदि उत्पन्न होता है और उसके साथ ही साथ अज्ञान भी दूर हो जाता है। क्रमशः सम्पूर्ण अज्ञान तिरोहित होनेसे ब्रह्म साक्षात्कार होते हैं। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता है।

१९३। सोपानावरोहणन्याय।

जिस प्रकार सोपान पर चढ़ा और उतरा जाता है उसी प्रकार जहां होगा वहां यह न्याय होता है।

१९४। स्वयंपतितखगुरुन्यायः।

स्वयंपतित अगुरु जिस तरह अग्निजल पर पतित नहीं होता उसी तरह अग्निजल पर पतित नहीं होनेसे यह न्याय होता है।

१९५। स्थूणानिखननन्यायः।

स्थूणा अर्थात् खम्भे उसका निखनन। स्तम्भ रोपित करनेमें उसकी दृढ़ताके लिए पुनः पुनः कर द्वारा उसे हिला कर और आघात कर जिस प्रकार निखनन किया जाता है, उसी प्रकार जहां अपना पक्ष समर्थित करनेको दृढ़ता के लिए उदाहरण और युक्ति आदि द्वारा पुनः पुनः समर्थन किया जाय, वहां यह न्याय होता है।

१९६। स्थूलारुन्धतीन्यायः।

विवाहके बाद वर और वधूको अरुन्धती दिखानी होती है। यह अरुन्धती बहुत दूरमें अवस्थित है, इसीसे अत्यन्त सूक्ष्म है। अति दूरत्वके कारण इसे सहसा देख नहीं सकते। किन्तु वह सप्त निर्देश पूर्वक मनुष्य पहले सप्तर्षिको, पीछे उसके समीपवर्ती अरुन्धतिको बतलाते हैं और उससे क्रमशः अरुन्धतीका ज्ञान भी होता है। इस प्रकार जहां अतिसूक्ष्म और दुर्विज्ञेय वस्तु जाननेके लिये धीरे धीरे उसका बोध होता है, वहां यह न्याय होता है।

१९७ स्वामिभृत्यन्याय।

स्वामी भृत्य प्रभुके अभिप्रायानुसार कार्य सम्पादन करके प्रभावशालीके अपनेको भाग्यवान् समझते हैं। इस प्रकार जहां परस्परके उपकार्य और उपकारक भावका बोध होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

जितने हो लौकिक न्यायके लक्षण लिखे गये। इसके सिवा और भी बहुतसे लौकिक न्याय हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उनका विवरण नहीं किया गया। केवल पाठादि क्रमसे तालिका दी जाती है।

१ अनयातपननन्याय, २ अत्यन्त वननवन्तोऽपि पौर-जानपदा इति न्याय, ३ अदग्धदहनन्याय, ४ अनधीते महाभाष्ये इति न्याय, ५ अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा इति न्याय, ६ अन्ते या मतिः सा गतिरिति न्याय, ७ अन्ते रण्डाविवाहश्चेदादावेव कुतो न स इति न्याय, ८ अन्धदर्शनन्याय, ९ अनरभुक्तन्याय, १० अंग-भक्षणन्याय, ११ अभाण्डलाभन्याय, १२ अर्द्धवैशस न्याय, १३ अवश्यापेक्षितानपेक्षितयोरिति न्याय, १४ अश्वतरीगर्भन्याय, १५ अश्वभृत्यन्याय, १६ अश्विनिपुत्र-न्याय, १७ अहिमुक्‌-कैवर्त्तन्याय, १८ आषाढ़वात-न्याय, १९ इक्षुरसन्याय, २० इक्षुविकारन्याय, २१ इच्छेष्यमानयोः समभिव्याहारे इष्यमाणस्यैव प्राधान्य-मिति न्याय, २२ इषुवेगक्षयन्याय, २३ उपजनिष्य-माननिमित्तोऽप्यपवादो जातनिमित्तमपि उत्सर्गं व धत इति न्याय, २४ उपजीव्योपजीवकन्याय, २५ उष्ट्रगुड़-न्याय, २६ एकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थः अन्यत्रापि तथा इति न्याय, २७ कण्टकन्याय, २८ करिवृंहितन्याय, २९ कांस्यभोजीन्याय, ३० कामनागोचरत्वेन शब्दबोध एव शब्दसाधनताऽन्वय इति न्याय, ३१ कालनाशे कार्य नाशन्याय, ३२ किमज्ञानस्य दुष्करमिति न्याय, ३३ कीटभृङ्गन्याय, ३४ कुक्कुटध्वनिन्याय, ३५ कुम्भीधान्य-न्याय, ३६ कूपन्याय, ३७ कृताकृतप्रसङ्गो यो विधिः स नित्य इति न्याय, ३८ कोषपानन्याय, ३९ कौण्डिन्यन्याय ४० कौन्तेयराधेयन्याय, ४१ खलमैत्रीन्याय, ४२ खादक-घातकन्याय, ४३ गजभटान्याय, ४४ गणपतिन्याय, ४५ गर्दभारामगणनान्याय, ४६ गलेपादुकान्याय, ४७ गुणोप-संहारन्याय, ४८ गोक्षीरं श्वदृत्तैर्दुष्टमिति न्याय, ४९ गोमयपायसन्याय, ५० गोमहिषादिन्याय, ५१ घटप्रदीपन्याय, ५२ चक्रभ्रमणन्याय, ५३ चर्मतस्तो मिहघी इत्तीनि न्याय, ५४ चिताग्निन्याय, ५५ चित्र-पटन्याय, ५६ चित्राङ्गनान्याय, ५७ चित्रामनन्याय, ५८ जलमथनं न्याय, ५९ जामात्रर्थे श्रपितस्य सूपादेरिति युपकारकत्वमिति न्याय, ६० ज्ञानधर्मिण्यभ्रान्तप्रकारे तु विपर्यय इति न्याय, ६१ ज्ञानादेर्निष्कार्यं बहुसुकार्यो-ऽप्यहंकार्यं इति न्याय, ६२ ज्योतिन्याय, ६३ तत्ताद्दग-वगम्यत इति न्याय, ६४ तदभिन्नत्वमिति न्याय, ६५ तडागमेऽपि दृश्यते इति न्याय, ६६ तमःप्रकाशन्याय, ६७ तरतमभावापन्नमिति न्याय, ६८ तामसं परिवर्जयेदिति न्याय, ६९ तालसर्पन्याय, ७० तिर्यगधिकरण-न्याय, ७१ तुलोन्नमनन्याय, ७२ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे इति न्याय, ७३ त्याज्या दुष्टटिनो इति न्याय, ७४ दग्धा-रसनन्याय, ७५ दग्धेन्धनवह्निन्याय, ७६ दन्तसर्प-मारणन्याय, ७७ दशिवयसि प्रयत्नो स्वर इति न्याय, ७८ दुन्तपरीक्षान्याय, ७९ दानशालकटन्याय, ८० दाह-कदाघ्र न्याय, ८१ दुर्बलैरपि बाध्यन्ते पुरुषैः पार्थि-वाश्रितैरिति न्याय, ८२ देवताधिकरण न्याय, ८३ देव-दत्तहन्तृहतन्याय, ८४ देहलीदीपन्याय, ८५ देहाधो-मुखत्वन्याय, ८६ धर्मकल्पनान्याय, ८७ धर्मिकल्पना न्याय, ८८ धान्यपलालन्याय, ८९ नहि प्रत्यभिज्ञामात्रेण-वस्तुसिद्धिरिति न्याय, ९० नहि भिक्षुको भिक्षुकमिति न्याय, ९१ नहि विवाहानन्तरं वरवरीक्षा क्रियते इति न्याय, ९२ नहि शाब्दमशाब्देनान्वेति इति न्याय, ९३ नहि सुतीक्ष्णाप्यसिधारा स्वयमेव छेत्तमाहित-व्यापारा भवतीति न्याय, ९४ नागोद्गपति न्याय, ९५ नाज्ञातविशेषणा विशिष्टबुद्धिः विशेष्यं संक्रामतीति न्याय, ९६ नीरक्षीरन्याय, ९७ नीलेन्दीवरन्याय, ९८ नौनाविकन्याय, ९९ पङ्कन्याय, १०० पदमध्यविका-भावात् स्मारकात् न विशिष्यत इति न्याय, १०१ परिव-न्याय, १०२ पर्वताधित्यकान्याय, १०३ पर्वतोपत्यका-न्याय, १०४ पिण्डं हित्वा करं लेढीति न्याय, १०५ पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधते नेतरानिति न्याय, १०६ पुटगुणन्याय, १०७ पूर्वमपवादा निवि-शन्ते पश्चादुत्सर्गा इति न्याय, १०८ पूर्वात् परबलीयस्त्व न्याय, १०९ प्रकल्प्यापवादविषयं पश्चादुत्सर्गोऽभिनि-विशते इति न्याय, ११० प्रकाशाश्रयन्याय, १११ प्रकृति-प्रत्ययार्थयोः प्रत्ययार्थस्य प्राधान्यमिति न्याय, ११२ प्रधानमल्लनिबर्हण न्याय, ११३ प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि सुबहूनापीति न्याय, ११४ प्रसङ्गपठितन्याय, ११५ बहुच्छिद्रघटप्रदीपन्याय, ११६ बहुराजकपुरन्याय, ११७ ब्राह्मणवशिष्ठन्याय, ११८ भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिरिति न्याय, ११९ भामतीन्याय, १२० भावप्रधान-माख्यातमिति न्याय, १२१ भ्वादिन्याय, १२२ भूलिङ्ग-

पचिन्याय, १२३ मूर्खेऽयोग्यन्याय १२४ मेरुन्याय १२५ भ्रमरन्याय, १२६ मक्षिकान्याय, १२७ मण्डूकप्लुति न्याय, १२८ मत्स्यकण्टकन्याय, १२९ मध्यमामन्याय १३० मध्विद्यो मधुवोऽप्युपोतिन्याय, १३१ मात्स्यन्याय, १३२ मूकमवेन बधान्धागन्याय, १३३ मूर्धाभिषेकन्याय, १३४ मूषाभिषिक्तताम्रन्याय १३५ मृगमधीन मधानाम-मध इति न्याय, १३६ यमयानुगामन्याय १३७ यतमात्मन्याय १३८ यः कारयति स करोत्येव इति न्याय, १३९ या कुरुते न मुह्यते इति न्याय १४० यत्पापाः चूर्यते ग्राह्यम् तत्ताम्यवगम्यते इति न्याय, १४१ यदर्थं प्रवृत्तिः तदेव प्रतिषिद्धा इति न्याय १४२ यदिकाकर्णीतन्याय मिति न्याय १४३ यत्पात्र मममधण्यं न्यातः सम्यक् च वेद न इति न्याय, १४४ यावच्छिष्टयावत्सिद्धोऽन्यथा इति न्याय, १४५ येन नाप्राप्ते न यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति इति न्याय १४६ रथकूपान्याय, १४७ रशिकल्पादिन्याय, १४८ राजपुत्र नाममयेति न्याय, १४९ रामभामिलन्याय १५० रुद्धियोगमपहरतीति न्याय, १५१ रेखामयन्याय, १५२ रोगिन्याय १५३ लाङ्गलजीवन मिति न्याय, १५४ लोपान्धिका य, १५५ वनवृक्षन्याय १५६ विकृतिविशेषो भवति विशेषणाधि विशेषण उपसंक्रा-मति इति न्याय १५७ विधि य वि अपूर्णे परिसंख्यान्याय, १५८ विपरीत बलाबलमिति न्याय १५९ विवाहमङ्गल समान्याय, १६० विमिश्रत इति न्याय, १६१ विविक्तम मैमिश्रमिति न्याय, १६२ वृक्षिकोभयभीन्याय, १६३ वेदो प्यापु तद्वाह इति न्याय १६४ व्याघ्रशरशकन्याय, १६५ व्याघ्रीचोरन्याय, १६६ शतपथोक्तन्याय शतपथवर्णमिति न्याय, १६७ शीघ्रशीघ्रन्याय, १६८ शक्ति सन्कालिकीति न्याय १६९ शशोदरन्याय, १७० शाखाचन्द्रन्याय, १७१ शाखोशाखाद्या शक्येनैव पूर्वोक्तन्याय १७२ शुष्कोपन्याय, १७३ शृङ्गग्राहिकान्याय १७४ सपिण्डन्याय, १७५ सतियोषि न जानातीति न्याय, १७६ सर्वं मानमात्रयमिदं वर्मेति न्याय, १७७ साक्षात्प्रमाण-मितिन्याय, १७८ साधुमैत्रीन्याय, १७९ सार्वभौमी न तुष्टायमानन्याय १८० सिंहवलयन्याय, १८१ सुन्दोपसुन्द-प्रतिन्याय, १८२ सुमणाभियुक्तन्याय, १८३ सूचीकटाह न्याय, १८४ स्थालीपुलाकन्याय, १८५ स्थूणानिखननिय

न्याय, १८६ स्फटिकलोहितन्याय, १८७ स्वरकुष न्याय १८८ स्वयंदासमिश्रस्यात् स्वपुत्रहरतों मत इति न्याय, १८९ स्वप्नयात्रान्याय, १९० स्वमिथ्यमपि सुभक्तमिति न्याय, १९१ हस्तामलकन्याय।

श्री रामदयालमिश्र रघुनाथविरचित लौकिकन्याय में इन सब न्यायसमूहका विवरण लिखा है।

न्यायकर्त्ता (सं॰ पु॰) न्याय करनेवाला, दो पक्षोंके विवादका निर्णय करनेवाला, इन्साफ करनेवाला।

न्यायकोविद (सं॰ पु॰) एक बौद्धाचार्य।

न्यायतः (सं॰ अव्य॰) न्याय तसिल्। १ न्यायानुसार, धर्म और नीतिके अनुसार, इन्साफसे। २ ठीक ठीक।

न्यायता (सं॰ स्त्री॰) न्याय भावे तल् टाप्। न्यायका भाव, उपयुक्तता।

न्यायदेव—भारतवर्षीय ज्योतिःशास्त्रकार ग्रन्थके टीका-कार।

न्यायदेय (सं॰ स्त्री॰) १ विचारालय, अदालत। २ विचारसम्बन्धीय कर्म।

न्यायपथ (सं॰ पु॰) न्यायोचित पन्थाः समासे पथ् समा-सान्त। १ मीमांसाशास्त्र। २ आचरणका न्यायसम्मत मार्ग उचित रीति।

न्यायपरता (सं॰ स्त्री॰) न्यायपरस्य भाव तल् टाप्। १ न्यायवान् कार्य, १ न्यायका काम। २ न्यायशीलता, न्यायी होनेका भाव।

न्यायवत् (सं॰ त्रि॰) न्याय विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। न्याययुक्त न्याय पर चलनेवाला।

न्यायवर्त्ती (सं॰ त्रि॰) न्याय वृत्-णिनि। न्याय पर चलनेवाला।

न्यायवागीश (सं॰ पु॰) शब्दचन्द्रिका नामक एक व्याक-रण ग्रन्थके प्रणेता विद्यानिधिके पुत्र।

न्यायवान् (वि॰ पु॰) नियमी, न्यायी।

न्यायविहित (सं॰ त्रि॰) न्यायेन विहितः। न्यायानुसार जान जो न्यायपूर्वक किया जाय।

न्यायवृत्त (सं॰ स्त्री॰) न्यायोचित वृत्तम्। १ शास्त्र विहिताचार। (त्रि॰) २ शास्त्रविहिताचारी।

न्यायविरुद्ध (सं॰ त्रि॰) प्रमाण प्रमाणके विरोधी।

न्यायशास्त्री (सं॰ पु॰) महाराष्ट्रदेशमें धर्मप्रचारकोंकी उपाधि।

हय, ककुद, हृदादि मुख, इन सब स्थानोंमें न्यास करना होता है। न्यासके सभी स्थानों पर प्रणवादि नमोऽन्त कर प्रयोग करनेका विधान है।

यथा—ॐ अं नमो ललाटे, ॐ आं नमो मुखवृत्ते, इं ईं चक्षुषोः, उं ऊं कर्णयोः, ऋं ॠं नसोः, लृं ॡं गण्डयोः, एं ओष्ठे, ऐं अधरे, ओं अधोदन्ते, औं ऊर्ध्व-दन्ते, अं ब्रह्मरन्ध्रे, अः मुखे। कं दक्षबाहु मूले, खं कुर्परे, गं मणिबन्धे, घं अङ्गुलिमूले, ङं अङ्गुल्यग्रे और चं छं जं झं ञं वामबाहुमूलसन्ध्यग्रेषु, इत्यादि। इस प्रकार पञ्चाशद्वर्णका विन्यास कर न्यास किया जाता है।

"ओमाद्यन्तो नमोऽन्तो वा सविन्दुर्बिन्दुवर्जितः।
पंचाशद्वर्णविन्यासः क्रमादुक्तो मनीषिभिः॥"

संहारमातृकान्यास।—इस न्यासमें संहारमातृका देवीका ध्यान करना होता है।

ध्यान—"अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटंक
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दरामां
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम्॥"

जो अपने चारों हाथमें अक्षमाला, हरिणशावक, टंकटङ्क और विद्या धारण की हुई है और जो त्रिनयनी हैं, अर्द्धचन्द्र जिनके मौलिदेश पर विराजमान हैं तथा जो अरविन्दवासिनी हैं, उन्हीं वर्णेश्वरी स्तनभार-विनता देवीको प्रणाम करता हूं। इस प्रकार संहार मातृकाका ध्यान करके 'हृदादि मुखे चं नमः हृदादि उदरे हं नमः' इत्यादि रूपसे न्यास करते हैं। यह मातृकावर्ण चार प्रकारका है-केवल, बिन्दुयुक्त, विसर्ग-युक्त और बिन्दु तथा विसर्ग उभययुक्त। इस केवल मातृकान्यासमें विद्या, बिन्दु और विसर्ग उभययुक्त न्यास में भक्ति, विसर्गयुक्त न्यासमें पुत्र और बिन्दुयुक्त न्यासमें वित्त लाभ होता है।

"चतुर्धा मातृका प्रोक्ता केवला बिन्दुसंयुता।
सविसर्गा चोभया च रहस्यं शृणु कथ्यते॥
विद्याकरी केवला च सोभया भक्तिदायिनी।
पुत्रदा सविसर्गा तु सबिन्दुर्वित्तदायिनी॥"

विशुद्धेश्वर तन्त्रमें लिखा है, कि वाक् सिद्धि कामनामें वाग्बीज (ऐं), श्रीवृद्धिकी कामनामें श्रीबीज (श्रीं), सब सिद्धिकी कामनामें नमः और लोकवशी-करणमें कामबीज (क्लीं) आदिमें योग करके न्यास करे। यह (अः) आदिमें योग करके न्यास करनेसे सभी मन्त्र प्रसन्न होते हैं। नवरत्नेश्वरतन्त्रमें श्रीविद्याके विषय-में लिखा है, कि आदिमें वाग्बीज (ऐं) और अन्तमें नमः योग करके अर्थात् 'ऐं अं नमः' ऐं आं नमः' इत्यादि पञ्चाशद्वर्ण द्वारा न्यास करनेसे अणिमादि अष्टसिद्धि लाभ होती है। यामलमें लिखा है, कि भूतशुद्धि और मातृका न्यास किये बिना जो पूजा की जाती है वह निष्फल होती है। अतएव सभी देवपूजामें मातृकान्यास अवश्य विधेय है। गौतमीयतन्त्रमें सामान्य न्यासका अङ्गुलिनियम इस प्रकार लिखा है—मन ही मन पुष्प द्वारा अथवा अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा न्यास करे, इसका विपरीत करनेसे निष्फल होता है। साधारण न्यासमें यह नियम है, श्यामादि विद्याविषयमें मातृकान्यासमें और कुछ विशेष है।

पीठन्यास—'ॐ आधारशक्तये नमः' इस प्रकार प्रकृति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, क्षीरसमुद्र, श्वेतद्वीप, मणिमण्डप, कल्पवृक्ष, मणिवेदिका और रत्नसिंहासन ये सब न्यास करने होते हैं यह न्यास हृदयमें करना होता है। पीछे दक्षिणस्कन्धमें धर्म, वामस्कन्धमें ज्ञान, वाम ऊरुमें वैराग्य, दक्षिण ऊरुमें ऐश्वर्य, मुखमें अधर्म, दक्षिणपार्श्वमें अज्ञान, नाभिमें अवैराग्य और वाम-पार्श्वमें अनैश्वर्य इन सबका न्यास किया जाता है। सभी जगह प्रणवादि नमोऽन्तका प्रयोग होगा।

"अंसोरुयुग्मयोर्विद्वान् प्रादक्षिण्येन साधकः।
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं क्रमशः सुधीः।
मुखपार्श्वे नाभिपार्श्वे ष्वधर्मादीन् प्रकल्पयेत्॥"

फिरसे हृदयमें न्यास करना होगा, ॐ अनन्ताय नमः, इस प्रकार पद्म, अं द्वादशकलात्मक सूर्यमण्डल, उं षोडश कलात्मक सोममण्डल, मं दश कलात्मक वह्नि-मण्डल, सं सत्त्व, रं रजस, तं तमस, आं आत्मन, अं अन्तरात्मन, पं परमात्मन, ह्रीं ज्ञानात्मन, अन्तमें नमः शब्दका योग करके न्यास करना होता है। सारदा-तिलकमें इस न्यासका विषय इस प्रकार लिखा है—

ऋष्यादिन्यास—

"महेश्वरमुखाज्ज्ञात्वा यः साक्षात्तपसा मनुः ।
संसाधयति शुद्धात्मा स तस्य ऋषिरीरितः ॥
गुरुत्वान्मस्तके चास्य न्यासस्तु परिकीर्तितः ।
सर्वेषां मन्त्रतत्त्वानां छादनाच्छन्द उच्यते ॥"

जिन्होंने पहले महादेवके मुखसे मन्त्र श्रवण करके तपस्या द्वारा मन्त्र सिद्ध किया है वे उसी मन्त्रके ऋषि होते हैं। ऋषि ही मन्त्रके आदि गुरु हैं, इस कारण उनका मस्तकमें न्यास करना चाहिए। सब प्रकारके मन्त्रतत्त्वको जो आच्छादन किए रहती है उसका नाम छन्द है। यही छन्द अक्षर और पदघटित है, अतः छन्द का मुखमें न्यास करनेका विधान है। सब प्रकारके जन्तुओंको जो सब कार्योंमें प्रेरण करती है, वे देवता हैं। अतः हृदयमें उनका न्यास किया जाता है। ऋषि और छन्दको बिना जाने न्यास करनेसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता। तन्त्रान्तरमें लिखा है कि मस्तक पर ऋषि मुखमें छन्द हृदयमें देवता, गुह्यदेशमें बीज पादद्वयमें शक्ति और सर्वाङ्गमें कीलक न्यास करें। पीछे सम्पूर्ण न्यास करना होता है। शारदातिलकमें लिखा है कि जो मनुष्य आगमोक्त विधानसे प्रतिदिन न्यास करते हैं उनका मन्त्र सिद्ध होता है और अन्त में देवलोकको जाते हैं। जो न्यास करके मन्त्रका जप करते हैं उनके सब विघ्न जाते रहते हैं। अज्ञानता प्रयुक्त जो न्यासादि किये बिना मन्त्र जपते हैं उनकी सभी काम निष्फल होते हैं।

षडङ्गन्यासका अङ्गुलि नियम—तीन, दो, एक एक, तीन और दो अङ्गुलि द्वारा हृदयादि षडङ्गमें न्यास करे। राघवभट्टकृत शारदातिलक टीकामें लिखा है कि मध्यमा, अनामिका और तर्जनी अङ्गुलि द्वारा हृदयमें, मध्यमा और तर्जनी अङ्गुलि द्वारा मस्तकमें, अङ्गुष्ठ द्वारा शिखा स्थानमें, सर्वाङ्गुलि द्वारा कवचमें तर्जनी मध्यमा और अनामिका द्वारा नेत्रमें तथा तर्जनी और मध्यमा द्वारा करतल पर न्यास करना होता है। जिस देवताका न्यास करना होता है, उस देवताके यदि दो नेत्र हों तो तर्जनी और मध्यमा द्वारा नेत्रमें न्यास करनेका विधान है। हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा शिखायै वषट् इत्यादि पूर्वविधानसे हृदयादि षडङ्गमें न्यास करे। जहां पर पञ्चाङ्ग न्यास कहा गया है वहां पर नेत्रको छोड़ कर दूसरे पञ्चाङ्गमें न्यास करे। विष्णुके विषयमें अङ्गुष्ठहीन सर्वाङ्गुलि द्वारा हृदय और मस्तकमें न्यास करे तथा अङ्गुष्ठ मध्यगत मुष्टि द्वारा शिखा, उभय हस्तको सर्वाङ्गुलि द्वारा कवच तर्जनी और मध्यमा द्वारा नेत्रमें न्यास करके अङ्गुष्ठ और तर्जनी द्वारा करतल पर ध्वनि करनी चाहिये। जहां पर अङ्गमन्त्र निर्दिष्ट नहीं हुआ है, वहां पर निजनाम के आदि अक्षर द्वारा अङ्ग-न्यास करना होता है। इस विषयमें शारदातिलकमें लिखा है, कि सभी देवताओंके नामके आदि अक्षर द्वारा अङ्ग-न्यास किया जा सकता है।

इस प्रकार न्यासादि करके देवताका मुद्राप्रदर्शन ध्यान और पूजनादि करनेका विधान है।

(तन्त्रसार सामान्य पूजाप्र०)

यह जो मातृका प्रभृति न्यासोंका विषय लिखा गया वह सभी पूजामें किया जाता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। मातृकान्यास और भूतशुद्धि नहीं करनेसे पूजादि निष्फल होती है।

"अकृत्वा न्यासजालं यो मूढात्मा प्रजपेन्मनुम्।
सर्वविघ्नैः स बाध्यः स्याद् व्याघ्रैर्मृग इवाध्वनि ॥"

(तन्त्रसार)

यह न्यास भिन्न भिन्न देवताके विषयमें भिन्न भिन्न प्रकारका है। विस्तारके भयसे कुछ विवरण नहीं लिखा गया, केवल थोड़ेके नाम बता दिए गये हैं,—

विष्णुविषयमें न्यास केशवकीर्त्यादि मूर्तिपञ्जर, तत्त्व, मूर्तिपञ्जर, दशाङ्ग पञ्चाङ्ग; शिवविषयमें श्रीकण्ठादि, ईशानादि पञ्चमूर्ति, मन्त्र मूर्ति, गोलक, कुमकादि और भूषण अन्नपूर्णाविषयमें षड्न्यास; श्रीविद्याविषयमें वशिन्यादि न्यासान्तर पीठ, न्यास, षोडशी, चोडशी, नवार श्रीचक्र, ऋषि नाद षोढ़ा गणेश ग्रह, नक्षत्र, योगिनी राशि, त्रिपुरा षोडशनित्या कामरति, पञ्चदशी, प्रकटयोगिनी आयुध। तारा विषयमें न्यास षडङ्ग अष्ट बीजन्यास है (तन्त्रसार) इन सब न्यासोंको प्रणाली तन्त्रसारमें विस्तृत रूपसे लिखी है। बाहुल्य भयसे वह विवरण यहां नहीं दिया गया।

न्यासस्वर (सं० पु०) वह स्वर जिससे कोई राग समाप्त किया जाय।

न्यासिक (सं॰ त्रि॰) न्यासेन चरति पर्य्यादित्वात् ष्ठन् (पा ४।४।१०) न्यासकारी, धरोहर रखनेवाला, जो किसीकी थाती रखे। स्त्रियां षित्वात् ङीष्।

न्यासिन् (सं॰ त्रि॰) नि-अस-णिनि। १ त्यागी। २ सन्न्यासी।

न्युङ्ख (सं॰ पु॰) नि-उङ्ख घञ्, पृषोदरादित्वात् साधुः। ऋग्भेद। गीतिमें उदात्त अनुदात्तरूप सोलह ओकार है जिनमेंसे तीन प्लुत और तेरह अर्द्धोकार है। २ सम्यक्। ३ मनोज्ञ।

न्युब्ज (सं॰ क्लो॰) न्युब्जति अधोमुखो भवति नि-उब्ज अच्। १ कर्मरङ्गफल, कमरख। २ यज्ञादि पात्रभेद। ३ दर्भमय स्रुक्। ४ कुश। ५ स्रुक्, एक यज्ञपात्र। ६ व्यथा, कष्ट। ७ रोगी, बीमारी। (त्रि॰) न्युब्जति अधोमुखो भवतीति। ८ कुब्ज, कुबड़ा। ९ अधोमुख औंधा। १० रोगभुग्न, रोगसे जिसकी कमर टेढ़ी हो गई हो।

न्युब्जखड्ग (सं॰ पु॰) न्युब्जः खड्गः। कुब्ज खड्ग, टेढ़ी तलवार। इसका पर्याय कटीतल्ल है।

न्युराय—युक्त प्रदेशके आगरा विभागान्तर्गत ईटा तहसीलका एक ग्राम। यह तहसीलके दरसे ४ कोस उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक सुन्दर मन्दिर है।

न्यूगोनी – प्रशान्तमहासागरस्थ पूर्वद्वीपपुञ्जके अन्तर्गत एक द्वीप। इसका दूसरा नाम तानापपूया है। यहांका ओवेनष्टेनलि गिरिशृङ्ग १३००० फुट ऊंचा है। इसका उत्तर-पश्चिम उपद्वीप भाग ओलन्दाजों और दक्षिण-पूर्व भाग वृटिश गवर्मेण्टके अधिकारमें है। यहां प्रसिद्ध पपूया-जाति रहती है। यह अफ्रिकाकी निग्रो और मेलोनेशियाजातिसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। इनके अङ्गप्रत्यङ्ग और मस्तकादि देखनेसे ये पलिनेसीय शाखाभुक्त-से मालूम पड़ते हैं। यहांकी फ्लाई नदीके तीरवासिगण गहरे पीले, खूब लम्बे चौड़े और बलिष्ठ तथा पूर्व उपद्वीपके अधिवासी हरापन लिए कुछ पीले होते हैं। अपरापर जातियां पपूयामलयवंशसम्भूत हैं।

हुड उपसागरके निकटवर्त्ती ग्रामवासिगण युद्धविद्यामें निपुण, श्रमशील, नाविकविद्यापारदर्शी, मिट्टीके अच्छे अच्छे बरतन और खिलौने आदि बनानेमें पटु हैं। मोगायथि चन्द्रवाम, कोईलापु और कोयरीजाति यहांकी आदिम अधिवासी हैं।

न्यूगोनीके दक्षिण पूर्व प्रायः तीन सौ कोसके मध्य पचीस विभिन्न भाषाएं देखनेमें आती हैं। इससे सहजमें जाना जा सकता है, कि यहां बहुत सी असभ्य-जातियोंका वास है। यहां तक कि कोई कोई जाति वृथा ही मनुष्योंको मारती और उनके मांस खाती है। इसी कारण यहांके अधिकांश अनायास अपनी जिन्दगी खो बैठते हैं। यहां धान, मकई और फलादि अधिक परिमाणमें मिलते हैं उनमेंसे ईख, कुम्हड़ा, तरबूज, आम, जोरा सुपारि, मधु और नारियल प्रधान हैं।

न्यू-आयर्लण्ड, न्यूब्रिटइ ईण्ड न्यूकालिडोनिया मालिकोला और ताना आदि इस द्वीपपुञ्जके अन्तर्गत हैं।

न्यूजीलैण्ड—अङ्गरेजाधिकृत एक उपनिवेश, दक्षिण गोलार्द्धके प्रशान्तमहासागरमें एक द्वीपपुञ्ज। इसमें दो बड़े द्वीप और इसके दक्षिणमें एक छोटा द्वीप है। यहांके रहनेवाले इन दो बड़े द्वीपोंमेंसे उत्तरस्थ द्वीपको एहिनोमजक और दक्षिणस्थको टवेलपोनाम्मु कहते हैं जो कुकके मुहाना द्वारा एक दूसरेसे पृथक् किये जाते हैं। किन्तु उपनिवेश स्थापनकारी उत्तरीय द्वीपको न्यूअलष्टर, दक्षिणीय बड़े द्वीपको न्यूमान्षटर और छोटेको न्यूलिनष्टर कहते हैं।

यह द्वीपपुञ्ज अक्षा॰ ३४° २५' से ४७° १७' दक्षिण और देशा॰ १६६° २६' से १७८° ३६' पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या ८५०००० और भूपरिमाण १०४४७१ वर्गमील है। यहांको आबहवा इङ्गलेण्डकी आबहवासे बहुत कुछ अंशोंमें मिलती जुलती है। जाड़ेमें खूब ठंढ पड़ती है और इसके सिवा अन्यान्य ऋतुओंमें भी जाड़ा मालूम होता है। वर्षा प्रायः सब समय हुआ करती है, किन्तु ग्रीष्म और वसन्त ऋतुमें कुछ अधिक होती है।

जिस समय यूरोपीयगण इस देशमें आये थे, उस समय यहांके अधिवासी तारो (Caladium esculentum) और कुमेरा नामक मोठे आलू (Kumera or Sweet potato convolvulus potato)की खेती करते थे। फलोंमें सफेदा (Areca Sapida) ही सर्वोत्कृष्ट है। यहांके अधिकांश स्थान जङ्गलसे भरे हुए हैं जिनमें

नाना प्रकारके बड़े बड़े वृक्ष देखनेमें आते हैं। यहांकी प्रधान उपज ज्वार, गेहूं, आलू, जनपाल आदि है, किन्तु आलूकी जो खेती अधिकतर होती है और वह दूसरे देशोंमें भेजा जाता है। पहले यहां पशुओंमें केवल कुत्ते ही देखे जाते थे, लेकिन वर्त्तमान समयमें यूरोपवासियोंके गाय, घोड़े, भेड़, सूअर प्रभृति पशु पालित हुए जाते हैं।

खनिज द्रव्य यहां उतने अधिक नहीं मिलते। १८५२ ई०को करमण्डलमें सोनेकी खानका पता लगा था। तांबे, कोयले और लोहेकी खान भी कहीं कहीं देखनेमें आती हैं।

मलय भाषा (Malay language) और यहांके अधिवासियोंकी भाषा एक आदि भाषासे ही उत्पन्न हुई है किन्तु इन दोनोंकी भाषामें दूसरी दूसरी भाषाएं भी मिली हुई हैं। जब कप्तान कुकने पहले पहल न्यूजीलैण्डका आविष्कार किया था उस समय यहांके लोग वहींके उत्पादित पदार्थोंसे जीवन-निर्वाह करते और पहाड़के ऊपर छोटे छोटे घर बना कर रहते थे।

यहांके अधिवासी यूरोपीय उपनिवेशस्थापनकारी और आदिम निवासी हैं। आदिम अधिवासी इन लोगोंको माओरी कहते हैं जो देखनेमें बलिष्ठ और सुन्दर गठनविशिष्ट होते हैं। शासन विभागकी यहां एक कमेटी कायम है। उसमें एक गवर्नर रहते हैं जिनको देशसे तनखाह मिलती है। देशकी देखभाल व्यवस्थापिका सभा द्वारा होती है जिसमें बैतालिस मेम्बर और अस्सी प्रतिनिधि रहते हैं। मेम्बर प्रत्येक सातवें वर्षमें और प्रतिनिधि प्रत्येक तीसरे वर्षमें बदले जाते हैं। इसकी देख रेख गवर्नरके ही अधीन रहती है। यहां म्युनिसिपलिटीकी भी व्यवस्था है। शिक्षाविभागका भी सुप्रबन्ध है। यहां अनेक प्राइमरी, मिडिल और हाई स्कूल हैं तथा चार प्रसिद्ध नगरोंमें कालेज भी हैं जहां लड़के सब प्रकारकी शिक्षा पाते हैं।

किसी किसीका कहना है, कि सोलहवीं शताब्दीमें स्पेनवासियोंने न्यूजीलैण्डका पता लगाया। किन्तु इस विषयका कोई सन्तोषजनक प्रमाण नहीं मिलता। ओलन्दाज नाविक आबेल तासमानने १६४२ ई० में यहां पा कर पहले पहल न्यूजीलैण्डका नाम जगत्‌वासियोंमें फैलाया।

न्यूटन आइजक—एक विख्यात दार्शनिक और ज्योतिःशास्त्रज्ञ पण्डित। इंगलैण्डके लिंकोलन प्रदेशके कोलष्टरवर्थ गिर्जाके अन्तर्भुक्त उलसर्प नामक एक छोटेसे गांवमें १६४२ ई०को २५वीं दिसम्बरको न्यूटनका जन्म हुआ था। इनके मातापिता दोनों ही प्राचीन सम्भ्रान्त वंशमें उत्पन्न हुए थे। ये न्यूटन लोग पहले लिंकोलन प्रदेशके वुष्टर्प नगरमें वास करते थे। बाद उलसर्पकी तालुकदारी पा कर वे लोग यहीं आ कर रहने लगे। इनके पिताने एटर्ववासी जेम्स अस्‌कापकी कन्याके साथ विवाह किया था। न्यूटन जिस समय माताके गर्भमें थे, उसी समय इनके पिताकी मृत्यु हो गई थी। इस प्रकार शोकसागरमें निमग्न हो उनकी माताने असमयमें ही पुत्र प्रसव किया। ये अपने माता पिताके एक ही सन्तान थे। न्यूटनको परिवारके भरण पोषणकी आय न रहनेके कारण उनकी विधवा माता नार्थविटमके वर्नेबस (Rector)के साथ पुनः विवाह करनेको बाध्य हुईं। इस समय तीन वर्षके बालक न्यूटनने मातामहीके तत्त्वावधानमें रह कर विद्या सीखना आरम्भ की। बारह वर्षकी उमरमें ये ग्रान्थमके व्याकरण विद्यालयमें भर्ती होने पर भी विद्याभ्यासकी कोई विशेष उन्नति दिखानेमें समर्थ न हुए। इस समय उन्होंने यन्त्र-विद्या (Mechanic) पढ़नेकी इच्छा प्रकट की और यथासाध्य कौशलके साथ वायवीय-यन्त्र (Windmill), जलघड़ी (Water clock) तथा सूर्य्ययन्त्र (Sun dial) बनाये। इन सब विषयोंमें विशेष पारदर्शिता दिखाने पर भी विद्यालयमें ये दूसरे दूसरे लड़कोंकी अपेक्षा हीन थे। जीवनी लेखक ब्रुस्टरने लिखा है कि इनकी उपरिस्थ एक बालकने एक दिन इनकी उपेक्षा कर इनके पेटमें एक लात मारी। इस पर इन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की कि, "जब तक इसको विद्याका अभिमान चूर न कर दूंगा तब तक किसीसे बातचीत न करूंगा।" उनकी इस आन्तरिक दृढ़ताने विद्वान्‌-जगत्‌का सर्वोच्च आसन दिलाया था। १६५६ ई०में इनके द्वितीय पिता 'रेभरेण्ड बारनाबास स्मिथ'की मृत्यु होने पर इन्हें माताके साथ

पुनः उलथर्व लौट आना पड़ा। इस समय आप माताके आदेशसे विद्या-शिक्षा का परित्याग कर खेतीबारी तथा उद्यानादिके उत्कर्ष साधनमें यत्नवान् हुए और इन सब कार्योंके अनिच्छुक होने पर भी आप उन्हें करनेको बाध्य हुए। जब हटवारमें न्यूटन साथियोंके साथ ग्राम्याम- ई उत्पन्न द्रव्योंको विक्रय करनेके लिये जाते थे, तब वे किसी स्थान पर कलकारखाना देख ठहर जाते तथा उसके चक्रादिकी गति विशेष रूपसे देखते थे। नगरमें प्रवेश कर वे अपने मित्र एक औषध-विक्रेताके घर पर जा उनके पुस्तकालयकी पुस्तकें पढ़ते थे। इस तरह पुराने ग्रन्थपाठसे वे ऐसा आनन्द अनुभव करते थे कि उनके साथी जब तक द्रव्यादि विक्रय कर उन्हें नहीं पुकारते तब तक वे पाठसे उठते नहीं थे। उनको विद्याभ्यासमें एकान्त अनुरक्ति देख कर उनके मामा 'रेभरेण्ड डवलिउ असकाफ'-ने उन्हें फिर विद्यालयमें भेजनेका विचार किया। १७ वर्षकी अवस्थामें ये केम्ब्रिजके अन्तर्गत त्रिनिटि कालेजमें पाठाभ्यासके लिये भेज दिये गये।

यहां उन्होंने १६६० ई०में प्रथम प्रवेशिका (Matriculation) परीक्षा पास की। १६६१ ई०में आपने अवैतनिक 'सब-सीजर' (Sub sizar) हो विद्यालयमें विद्याशिक्षा देनेकी अनुमति पाई तथा १६६४ ई०में आप शिक्षित संघोभुक्त हुए और १६६५ ई०में आपको 'बी० ए०'-की उपाधि मिली।

उन कई वर्षोंमें इनकी कोई विशेष उन्नति नहीं देखी गई। जब इनकी अवस्था २४ वर्षकी हुई, तब इन्होंने ज्ञानकी पराकाष्ठा दिखा कर बीजगणितके अन्तर्गत द्विपद उपपाद्य (Binominal theorem) विस्ताम गणितके परमाणुकी गति अनुधावनके हेतु नियमावली (Principles of flexion) तैयार की और गतिके नियम (Law of force) आविष्कारकालमें यहां तक कि चन्द्रका भी सूर्याभिमुख आकर्षण है यह उनके अन्तःकरणमें सहसा जाग उठा। उन्होंने कई एक अंशोंमें उक्त विषय प्रतिपादन करनेमें यत्न किया था और उद्भिन्न पत्थरकी पृथिवीकी ओर आकृष्टि देख समझा था कि जिस प्रकार समग्र ग्रहगण परस्पर आकर्षणशील हैं, उसी प्रकार पृथिवी भी आकृष्टिशक्तिके अधीन है।

१६६४-६५ ई०में न्यूटन त्रिनिटि कालेजके 'लाइन सदस्य (Law-fellowship) होनेके लिए 'रावर्ट उआडेन' साहबके प्रतिद्वन्द्वी हुए थे, किन्तु दोनोंके समगुणज्ञानवान् होने पर भी उनके अध्यापक 'डा० व्यारो' मि० उआडेनको पृष्ठपोषण तथा बयोवृद्ध विवेचनाके सदस्य रूपमें माने। १६६७ ई०में वे जुनियरसदस्य और 'एम० ए०'की उपाधि पा कर दूसरे वर्षमें सिनियर सदस्य नियुक्त हुए। १६६९ ई०में उन्होंने लुकासा (Lucasian) के अध्यापक हो व्यारो साहबका पद अधिकार किया।

गणितशास्त्रमें प्रवेश कर उन्होंने पहले 'देकार्ट' (Descartes) लिखित ज्यामिति अध्ययन की और उक्त अध्यापकके प्रवर्त्तित ज्यामितिके साथ बीजगणितकी संयोजनाका अभ्यास किया। इसके बाद उन्होंने 'वालिस'रचित Arithmetica Infinitorum नामक गणितग्रन्थ पढ़ा। इसके भी पढ़नेसे इन्हें विशेष लाभ हुआ था। यह पर्यालोचना करते समय उनके हृदयमें वे द्विपदप्रतिपाद्य गणित गणनाके उपाय उद्भावन करनेमें सक्षम हुए।

न्यूटनने परमाणुकी प्रवहनशीलगति गणनाका पहला उपाय १६६५ ई०में कल्पना किया और उसके प्रतिपादनार्थ दूसरे वर्ष "Analysis per Equationes Numero Terminorum Infinitas" नामका एक छोटा लेख भी लिखा। इसमें किसी तरहकी भूल हो सकती है, इस भयके कारण इन्होंने पहले उक्त लिपि किसीको भी न दिखाई और अन्तमें उसे अपने हितैषी बन्धु डा० व्यारो साहबको दिया। व्यारो साहबने इनकी अनुमति ले कर उक्त हस्तलिखित प्रबन्ध मि० कलिन्सको दिखाया। इन्होंने इसे अपनी पुस्तकमें लिख लिया और १७१२ ई०में इसका प्रथम मुद्राङ्कण हुआ।

१६६५-६६ ई०में जब इङ्गलैण्डमें महामारी फैली थी, तब आप केम्ब्रिज छोड़ कर उलथर्पमें आ बसे थे। यहां आ कर आपने पहले सब वस्तुओंकी स्वाभाविक-शक्ति और पृथिवीकी उपरिस्थ वस्तुसमूहका भू-केन्द्र (Centre of Earth)की ओर स्वाभाविक आकर्षणकी चिन्ता आरम्भ की थी और यह भी अनुमान किया था

कि यही शक्ति क्रमानुसार बढ़ित हो कर चन्द्र और सब ग्रह पारिपार्श्विक तारायोंको आकर्षण करती है। इन समस्त तारागणके परिवेष्टित कक्षमें भी परस्परको दूर करनेवाली केन्द्रापसारिणी नामक शक्ति (Centrifugal force) से पृथिवीसे दूरीके अनुसार इस योजकशक्तिको अपनी ओर आकर्षण कर दोनों शक्तियोंके बीचमें स्थिर कर रखा है। इस हेतु यह स्पष्ट अनुभूत होता है, कि ये समस्त ग्रह और तारावृन्द अपनी अपनी शक्तिके प्रभावसे (पृथिवीके) कक्षानुसार रास्ते पर भ्रमण कर स्थिर भावसे ठहरे हुए हैं। चन्द्र जिस प्रकार अपनी कक्षा (Orbit) पर घूम घूम केन्द्रानुग शक्तिसे (Centrifugal) शक्तिसे अपने दो कुल पथ पर स्थिर हैं उसी प्रकार सौरजगत्के केन्द्र (Centre) भास्कर सूर्यके चारों ओर ग्रहसमूह अवस्थित हो अपने अपने वृत्त-पथ पर अपनी अपनी शक्तिके प्रभावसे भ्रमण करते हैं। न्यूटनके पहले चिन्ताशील मस्तिष्कमें ऐसे भाव उत्पन्न नहीं हुए थे। इनके पहले बैयालिड बुलो (Boulliaud) ने सूर्यके साथ इस आकर्षणशक्तिका प्रतिपादन किया था। किन्तु वे इसको सरल भावसे समझानेमें समर्थ न हुए थे। अतः सर न्यूटनने स्पष्ट कहा था कि ग्रहगण अपनी अपनी शक्तिके प्रभावसे स्थित हो स्थिर भावसे ठहरे हुए हैं। उन्होंने दिखाया था कि केपलर-प्रतिपादित ग्रहगणके मध्यवर्त्तीकी दूरता (Mean distance) और भ्रमण काल (Periodic time) दोनोंमें जो समतायें वर्त्तमान हैं और उसमें व्यस्तानुपात-आकर्षण आकृष्ट वस्तुकी दूरीका अनुपाती है। यही दूरीके व्यस्तवर्गफल (Inverse square) से इस शक्तिकी कमी या बेशी देखी जाती है। बुलोके बाद इस मतके प्रकाश करने पर न्यूटनने उसका खण्डन करते हुए कहा कि यह शक्ति सभी पदार्थोंमें अन्तर्निहित भावसे वर्त्तमान है। न्यूटनने यह भी कहा कि किसी वस्तुकी आकृष्टि-शक्ति किसकी ओर है इसका निर्णय करनेसे उसकी केन्द्रापसारिणी शक्तिको समानरूपसे स्थिर रखा है उसी शक्तिकी समता निर्दिष्ट समयके अन्दर किसी धनुष्खण्डकी व्यस्तज्या (versed sine of the arc) का समानुपात होनेसे सहजमें अनुमान किया जा सकता है। चाप

समय यदि अल्प हो, तो इसाबके वर्गफलको निर्दिष्ट वक्री मध्यवर्त्ती (Mean distance) की दूरतासे भाग देनेसे अथवा रेखाविशिष्ट गतिवेगके वर्गफलको इसी दूरतासे भाग करनेसे उस शक्तिका अनुपात स्थिर किया जाता है।

इस प्रकार ग्रहगणकी सूर्यकी ओर आकृष्टि स्थिर कर, वे पृथिवीके साथ चन्द्रका आकर्षण निरूपण करनेमें अग्रसर हुए थे। १६६५ ई०में महामारीके प्रकोपसे यूनिवर्सिटीके बन्द हो जाने पर वे फिर वूल्सथार्प आये। यहां आ कर वे स्वचित्तसे इन सब विषयोंके तथ्यकी खोज करने लगे। इस प्रकार उनकी मानसिक कल्पना १६ वर्ष तक उनमें अन्तर्निहित रही। बाद १६८२ ई०में इन्होंने रायल सोसायटीके अधिवेशनमें उपस्थित हो पिकार्ड साहब-अनुमित याम्योत्तररेखांश (Arc of a meridian) का परिमाण नाप कर पृथ्वीके व्यासार्द्धका परिमाण ठीक किया था। इस समय इनका पूर्व-कल्पित आकर्षण-शक्ति-प्रकरण जिसकी कल्पना इनके हृदयमें बहुत दिनोंसे आ रही थी, क्रमशः परिस्फुटित होने लगा। इससे ये इतने उत्कंठित और आग्रहीत दुर्बलतामें ऐसे मग्न हुए कि उस समस्याका समाधान कर भी न सके थे। इसके दूसरे वर्ष इन्होंने केन्द्राभिमुखिनी (Centripetal) शक्तिकी सहायतासे पदार्थ समूहकी गति निरूपण कर एक प्रबन्ध लिखा। १६८४ ई०में यह प्रबन्ध डा० हिलीने द्वारा रायल सोसायटीमें दिया गया और अनेक वादानुवादके बाद निर्णीत हो १६८७ ई०में यह इनके बनाए हुए 'प्रिन्सिपिया' नामक ग्रन्थमें पहले पहल प्रकाशित हुआ। इसके बाद इन्होंने सौरजगत्के प्रत्येक वस्तु-परमाणुके परस्परके प्रति आकृष्टि और जिस विशिष्ट वस्तुके आकर्षणसे वे उस अवस्थामें स्थित हैं वे सब विषय निर्दिष्ट किये। यही माध्याकर्षण शक्ति है जिसको बहुत दिन पहले हमारे देशके पण्डितगण स्थिर कर गये हैं।

(भास्कराचार्य देखो।)

अलमणको परिचालनमें देखनेके लिये न्यूटनने १६७१ ई०में अपने हाथसे एक दूरवीक्षणयन्त्र बनाया। यह यन्त्र आज भी रायल सोसायटीमें वर्त्तमान है। १६७२

ई०में ये उक्त सभाके सदस्य निर्वाचित हुए और १६९८ ई०में शिक्षाविभागके प्रतिनिधि हो पार्लियामेंटमें गए महा-सभाका आसन ग्रहण किया। इसके कुछ दिन बाद ये वार्षिक ६०० पौण्ड वेतन पर टकशालके प्रधानाध्यक्ष-के पद पर नियुक्त हुए। १६९९ ई०में ये पेरिस (Paris) नगरकी 'रायल एकेडेमी-आफ् सायेन्स' सभाके फारेन एसोसियेट और १७०३ ई०में रायल-सोसायटीके प्रेसि-डेण्ट हो कर मृत्यु पर्यन्त उक्त पद पर सम्मानके साथ अधिष्ठित रहे। १७०५ ई०में इङ्गलैण्डकी महारानी एनी (Queen Ann) ने इन्हें 'नाइट'की उपाधि दी। १७२२ ई०में इन्होंने मूत्र और वातरोगसे आक्रान्त हो कर केनिंङ्गटननगरमें १७२७ ई०को ८५ वर्षकी उम्रमें मानवलीला सम्वरण की। इन्होंने कुल बारह पुस्तकोंकी रचना की जिनमेंसे प्रिन्सिपियो, अर्थटिक्स, एनालिसिस पर इकोएशनिस न्युमेरो टर्मिनोरम इन्फिनीटस, मेथड आफ् फ्लक्शन, एनालिसिस, वाइ इनफिनिट सीरीज और वाइबलके संस्कारक ये सब ग्रन्थ प्रधान हैं। उन्होंने जो सब छोटे छोटे प्रबन्धा-वली रायल-सोसायटीमें अर्पण की थीं, वे सब उक्त सोसायटीकी कार्य-विवरणी (Transactions)के ७मसे ११श भागमें सन्निविष्ट हैं।

न्यून (सं० त्रि०) न्यूनयति नि-ऊन परिहाणौ अच्। १ गर्ह्य, नीच, क्षुद्र। २ ऊन, कम, थोड़ा।

न्यूनतर (सं० त्रि०) प्रचलित परिमाणका कम, चलते हुए वजनसे कम।

न्यूनता (सं० स्त्री०) न्यूनस्य भावः, तल्-टाप्। १ क्षुद्रता, हीनता। २ अल्पता, कमी।

न्यूनपञ्चाशद्भाव (सं० पु०) न्यूनपञ्चाशतः ऊनपञ्चाशद्वा-युनां भावो यत्र। ऊनपञ्चाशद्भाव, पागल।

न्यूनाङ्ग (सं० स्त्री०) १ हीनाङ्ग, जो अङ्ग किसीका हीन हो। २ खञ्ज, लङ्गड़ा।

न्यूनेन्द्रिय (सं० त्रि०) जो एक न एक इन्द्रियका हीन हो।

न्यूफाउण्डलैण्ड—ग्रेटब्रिटेनके अधिकृत एक द्वीप। यह अटलाण्टिक महासागरमें अक्षा० ४६° ४०' से ५१° ३७' उ० और देशा० ५२° २५' से ५९° १५' पश्चिममें अवस्थित है। १००० ई०के पहले नार्वे देशवासियोंने इस देशका प्रथम आविष्कार किया। बाद १४९७ ई०में जानकेबट (John Cabot)ने इसका फिर पता लगाया। इस स्थानमें उपनिवेश स्थापनके लिए सर जार्ज कलभर्ट (Sir George Calvert) कई बार चेष्टा कर अकृतकार्य हुए। अन्तमें १६२३ ई०में इस द्वीपके दक्षिण पूर्वांशमें एक उपनिवेश स्थापित हुआ। धीरे धीरे दूसरे दूसरे उपनिवेश भी स्थापित हुए हैं।

इस द्वीपका क्षेत्रफल ६०००० वर्गमील है। यहांके अधिवासियोंमेंसे अधिकांश मत्स्यजीवी हैं और बहुत थोड़े मनुष्य खेतीबारी करते हैं। सभी खृष्टधर्माव-लम्बी हैं—कुछ प्रोटेष्टेण्ट (Protestant) और कुछ रोमन कैथलिक (Roman Catholic) हैं। अट-लाण्टिकके मध्य अवस्थित और अधिकांश समय तक बर्फसे ढके रहनेके कारण यहांकी ग्रीष्मऋतु अत्यन्त मनो-रम होती है। इसी समय दिन और रात अत्यन्त सुख-जनक है। सम्प्रति यहांके देशवासियोंने कृषिकार्यमें विशेष ध्यान दिया है। गेहूं, उरद, जौ, धान आदि यहां प्रचुर परिमाणमें होते हैं। स्थानीय गवर्मेण्ट नाना देशोंसे नाना प्रकारके शस्योंके बीजोंकी आम-दनी करती है। किन्तु मछली पकड़ना ही द्वीप-वासियोंकी प्रधान उपजीविका है। तैल और चमड़ेके लिए मकर (Seals) और तैल प्रस्तुत करनेके लिए कड (Cod) मछली भी पकड़ी जाती है। बहुसंख्यक लोग इस व्यवसाय द्वारा जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं। यहांसे प्रचुर सामन (Salmon) मछली अमेरिका आदि स्थानोंमें भेजी जाती है।

यहांकी राजधानी सेण्टजान्स (St. Johns) है जो द्वीपके दक्षिण-पूर्वांशमें अक्षा० ४७° ३३' उ० और देशा० ५२° ४३' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां पानी और गैसकी कलें हैं और एक वाणिज्यगृह (Custom-house) भी बनाया गया है।

उक्त द्वीपकी दक्षिण पूर्वकी तीरभूमि बहुत बड़ी है। किसी समुद्रकी ऐसी विस्तृत तीरभूमि देखनेमें नहीं आती। यह विशाल तीरभूमि (Great Bank) ६० मील चौड़ी है।

एक शासनकर्त्ता, व्यवस्थापक सभा और कार्य-निर्वाहक सभा द्वारा यहाँका शासनकार्य चलता है।

न्योछम् (सं० त्रि०) नियत थोड़ी वस्तु। नियत काम युक्त।

न्योचनी (सं० त्रि०) दासी।

न्योछावर (हिं० स्त्री०) निछावर देखो।

न्योज (सं० त्रि०) नि उब्ज घञ् न्यापि कुत्व। पार्श्व शून्य, कुटिल।

न्योतना (हिं० क्रि०) १ किसी रीति रस्म या आनन्द उत्सव आदिमें सम्मिलित होनेके लिए इष्ट मित्र, बन्धु बान्धव आदिको बुलाना, निमन्त्रित करना। २ दूसरेको अपने यहां भोजन करनेके लिए बुलाना।

न्योतनी (हिं० स्त्री०) वह खाना पीना जो विवाह आदि मङ्गल अवसरों पर होता है।

न्योतहरी (हिं० पु०) निमन्त्रित मनुष्य, न्योतेमें आया हुआ आदमी।

न्योता (हिं० पु०) १ किसी रीति, रस्म, आनन्द, उत्सव आदिमें सम्मिलित होनेके लिए इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव आदिका आह्वान निमन्त्रण बुलावा। २ भोजन स्वीकार करनेकी प्रार्थना अपने स्थान पर भोजनके लिए बुलावा। ३ वह भोजन जो दूसरोंको अपने यहां कराया जाय या दूसरेके घर भेजा जाय, दावत। ४ वह भेंट या धन जो अपने इष्टमित्र सम्बन्धी इत्यादिके यहांसे किसी शुभ या अशुभ अवसरमें सम्मिलित होनेवाला भेजता या ले कर उसके यहां भेजा जाता है।

न्योरा (हिं० पु०) बड़े दानोंका घुंघरू, नेवर।

न्योला (हिं० पु०) नेवला देखो।

न्योली (हिं० स्त्री०) नेती, धोती आदिके समान हठ योगकी एक क्रिया जिसमें पेटके नलोंको पानीसे साफ करते हैं।

न्युम्नमानिन् (सं० त्रि०) सुखाभिमानी, धनाभिमानी, मा पश्यर्थंति इनि। १ शिव, महादेव। २ महाविष्णु, मानविशिष्ट। ३ धन।

न्वाजिसमहम्मद—नवाब अलीवर्दीके भतीजे। अलीवर्दी जब बिहारके शासनकर्त्ता पद पर नियुक्त हुए, तब भाईके बड़ी बेटीके साथ इनको ब्याहा गया। इनके गोद से मिर्जामहम्मद दत्तक हुए। यही मिर्जामहम्मद आगे चल कर सिराजुद्दौलाके नामसे प्रसिद्ध हुए। सिराजमें नाना दोष रहते भी अलीवर्दीने १७५६ ई०में उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया। इस पर न्वाजिसमह-म्मदको बहुत दुःख हुआ क्योंकि वे शासन पद पानेका दावा रखते थे। कुछ वर्ष तक ढाकाका शासन भार ग्रहण कर उन्होंने कुछ रुपये जमा कर लिये और उन्होंसे एक दल सेना रखी। किन्तु वे स्वयं अत्यन्त भोगासक्त अथवा युद्धविशारद नहीं थे; इनके दोनों मन्त्री हुसेनकुली खाँ और हुसेनउद्दीनके हाथमें विशेष क्षमता थी। सिराजुद्दौलाने देखा कि जब तक इनका विनाश नहीं किया जायगा तब तक निरापदकी सम्भावना नहीं। इस समय न्वाजिसमहम्मद और हुसेन उद्दीन दोनों एक साथ मुर्शिदाबादमें रहते थे और हुसेनउद्दीन ढाकामें शासनकर्त्ताके प्रतिनिधि स्वरूप रह कर। अलीवर्दीने सोचा कि आवश्यकताके माफिक इन दोनों मन्त्रियोंको कामसे अलग कर सकनेसे ही मङ्गल है। पीछे न्वाजिसने उनका अभिप्राय समझ ढाका जा कर आलोचना कायम कर ली। सिराजुद्दौला इस भयसे चुपचाप बैठे न रहे और उनके हाथसे अपनेको बचानेके लिए कुछ आदमीको नियुक्त किया। इन लोगोंने ढाका जा कर दोपहर रातको हुसेनउद्दीनको मार डाला और ५।७ दिन बाद मुर्शिदाबाद शहरमें दिन-दहाड़े होसेनकुलीको भी हत्या की। न्वाजिस और उनकी भार्या घसेटी बेगम बराबर षड्यन्त्र करनेके लिये लगे रहे थे। किन्तु इस समय दोनों मिल गए और सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे। किन्तु सिराजुद्दौला बड़े वीर थे, अन्तमें कौशल उपायसे दोनों भाइयोंको यमपुर भेज ही दिया।

न्वाजा-सुजानखाँ—पोर्त्तुगीजके एक सेनापति। १६०१ ई०में पोर्त्तुगीजोंने जब तीसरी बार भारतवर्ष पर आक्रमण किया उस समय ये सेनापति बन कर यहां आये। कोचिनमें पहुंच कर उन्होंने देखा, कि यहांके राजा पोर्त्तुगीजोंके साथ सद्व्यवहार कर रहे हैं। कना-नूरके राजाने अच्छे मित्र और वाणिज्य सम्बन्ध स्थापन किए हैं। किन्तु कालिकटके शासनकर्त्ताने दर्पित भावसे

उद्योग हो कर त्वेभाके विरुद्ध युद्धजहाज भेजा। कोचिनके राजाने उन्हें छिप रहनेकी सलाह दी, किन्तु त्वेभा वैसे कापुरुष नहीं थे। ज्यों ही विपक्षके जहाज सामने होने लगे, त्यों ही उन्होंने एक एक कर उनके सौ जहाजों पर इस प्रकार आक्रमण किया कि वे बचावका कोई उपाय न देख सन्धिसूचक पताका उठानेको बाध्य हुए। त्वेभाने उनके साथ ऐसा उदार व्यवहार किया था, कि सामरी-राजने उन्हें कालिकट देखनेका निमन्त्रण किया, किन्तु असमय हो जानेके कारण उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार न किया और अपने जहाज पर माल असबाब लाद कर स्वदेशको चल दिये।

प

प—पकार, पञ्चमवर्गका प्रथम वर्ण, व्यञ्जनवर्णका इक्कीसवां अक्षर। इसका उच्चारण ओठसे होता है, इसलिये शिक्षामें इसे ओष्ठ्यवर्ण कहा गया है। इसके उच्चारणमें दोनों ओठ मिलते हैं, इसलिये यह स्पर्शवर्ण है। इसके उच्चारणमें शिक्षाके अनुसार विवार, श्वास, घोष और अल्पप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं। प के पीछे रहनेसे विसर्गके स्थानमें उपध्मानीय वर्ण होता है। वर्णाभिधानतन्त्रमें इसके वाचक शब्द ये हैं,—सुरश्रियता, तीक्ष्णा, लोहित, पञ्चम, रमा, गुह्यकर्त्ता, निधि, शेष, कालरात्रि, सुरारिहा, तपन पालन, पाता, देवदेव, निरञ्जन, सावित्री, पातिनी, पान, वीरतन्त्र, धनुर्द्धर, दक्षपार्श्व, सेनानी, मरीचि, पवन, शनि, उड्डीश, जयिनी, कुम्भ, अनलरेखा, मूला, द्वितीया इन्द्राणी, लीलाक्षी, मन और आत्मक।

इस वर्णका स्वरूप—

यह 'प' अक्षर अव्यय और चतुर्वर्गप्रद है। इसकी प्रभा शरत्कालीन चन्द्रमा-सी है। यह वर्ण पञ्चदेवमय और परमकुण्डली, पञ्चप्राणमय, सर्वदा त्रिशक्तिसमन्वित, त्रिगुणावहित, आत्मादितत्त्वसंयुत एवं महामोक्षप्रद है। (कामधेनुतन्त्र ५)

इस वर्णमें शम्भु, ब्रह्मा और भगवती अवस्थान करती हैं।

इसका उत्पत्तिप्रकार—

"कन्तुरेफयकाश्च मूर्द्धगो दन्तगस्तथा।
लतवर्गलसानोष्ठ्यावनुपूर्व्यान्मसंज्ञकान् ॥" (प्रपञ्चसार)

इसका ध्यान—

"चिविप्रवसनां देवीं द्विभुजां पद्मलोचनाम्।
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गीं पद्ममालाविभूषिताम् ॥
मणिरत्नादिकेयूर हारभूषितविग्रहाम्।
चतुर्वर्गप्रदां नित्यां नित्यानन्दमयीं पराम् ॥
एवं ध्यात्वा पकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥"

मातृकान्यासमें इस वर्णका दक्षिण पार्श्वमें न्यास किया जाता है। काव्यादिमें इसवर्णका प्रथम प्रयोग करनेसे सुख होता है।

"सुखमग्मरणपक्लेशदुःखं पवर्गः" (वृत्तरत्ना० टीका)

प (सं० पु०) पातयति वेगेन वृक्षादीन पत-कर्त्तरि ड। १ पवन, हवा। पतति वृक्षात् ड। २ पर्ण, पत्र, पत्ता। पीयते इति पा ड। ३ पान। ४ पातन। ५ अन्त। ६ पाता, वह जो पालन करता हो। पाति रक्षति पाक, इसी व्युत्पत्तिसे पाता यह अर्थ हुआ। यह किसी शब्दके बाद प्रयुक्त हुआ करता है। यथा—गोप, नृप इत्यादि।

"राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक्।"

(मनु २।१३९)

मुग्धबोध व्याकरणमें यह पञ्चम्यन्तरूपमें लिया गया गया है। पञ्चम्यादि। सुबन्तियोंका संकेत है य।

"ङ। स्यादिः से सुबादिस्प्रत्यादेर्मोर्विभीप्सयोः।"

(कविकल्पद्रुम)

पंख (हि॰ पु॰) पक्ष, पर, डैना। वह अवयव जिससे चिड़िया, पतिंगे आदि हवामें उड़ती हैं।

पँखड़ी (हि॰ स्त्री॰) पखड़ी देखो।

पंखा (हि॰ पु॰) वह पदार्थ जिसे हिला कर हवाका झोंका किसी ओर ले जाते हैं, बिजना, बेना। यह भिन्न भिन्न वस्तुओंका तथा भिन्न भिन्न आकार और आकृतिका बनाया जाता है। इसके हिलानेसे वायु चल कर शरीरमें लगती है। छोटे बड़े जितने प्रकारके पदार्थोंसे वायुमें गति उत्पन्न की जाती है, उनके लिये केवल 'पंखा' शब्दसे काम चल सकता है। पंखके आकारका होनेके कारण अथवा पहले पंखोंसे बनाये जानेके कारण इसका नाम पंखा पड़ा है।

पंखाकुली (हि॰ पु॰) वह कुली जो पंखा खींचनेके लिये नियत किया गया हो।

पंखाज (हि॰ पु॰) पखावज देखो।

पंखापोश (हि॰ पु॰) पंखेके ऊपरका गिलाफ।

पंखी (हि॰ पु॰) १ पक्षी, चिड़िया। २ पखड़ी। ३ वह पतली पतली छोटी पत्तियां जो नाजके सिरे पर होती हैं। ४ सूतकी वह बत्ती जो बहुतसे पंखमें बंधी होती है और जिसे ढरकीके छेदोंमें खोंस देते हैं। ५ पाँखी पतिंगा। ६ एक प्रकारका ऊनी कपड़ा जो पहाड़के लोगोंसे पहाड़ोंमें बुना जाता है। (स्त्री॰) ७ छोटा पंखा।

पँखुड़ा (हि॰ पु॰) मनुष्यके शरीरमें कंधेके पासका वह भाग जहां हाथ जुड़ा रहता है, कंधे और बांहका जोड़ पखौरा।

पंखुरा (हि॰ पु॰) पखड़ा देखो।

पंखेरू (हि॰ पु॰) पखेरू देखो।

पंग (हि॰ वि॰) १ पंगु, लंगड़ा। २ स्तब्ध बेकाम। (पु॰) ३ आसामको ओर सिलहट आदि प्रान्तोंमें होनेवाला एक पेड़। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और मकानोंमें लगती है। इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। लकड़ोंमें एक प्रकारका रंग भी प्रस्तुत करते हैं। ४ एक प्रकारका नमक जो लिवरपुलसे आता है।

पंगत (हि॰ स्त्री॰) १ पंक्ति पांती। २ भोजनके समय भोजन करनेवालोंकी पंक्ति। ३ सभा, समाज। ४ जुलाहोंके करघेका एक औज़ार जो दो लकड़ होते बनाया जाता है। इस औज़ारको वे बांसकी तरह स्थान स्थान पर गाड़ देते हैं। इनके ऊपरी छेदों पर तागेके किनारेके सूत इसलिये टांक दिये जाते हैं जिसमें ताना ढीला न रहे। ५ भोज।

पँगला (हि॰ वि॰) पंगु, लंगड़ा।

पंगा (हि॰ वि॰) १ पंगु, लंगड़ा। २ स्तब्ध, बेकाम।

पंगाबत (हि॰ पु॰) पायताना, गोड़वारी।

पंगास (हि॰ पु॰) एक प्रकारकी मछली।

पंगी (हि॰ स्त्री॰) एक प्रकारका कीड़ा जो धानके खेतमें लगता है।

पंगो (हि॰ स्त्री॰) मही जिसे नदी अपने किनारे पर लाती और जमा कर छोड़ती है।

पंच (हि॰ पु॰) १ पांचकी संख्या या अंक। २ पांच या अधिक मनुष्योंका समुदाय, समाज, सर्वसाधारण जनता, लोग। ३ पांच या अधिक मनुष्योंका समाज जो किसी झगड़े या मामलेका निपटारा करनेके लिये एकत्र हो, न्याय करनेवाली सभा। ४ इमाम। ५ वह जो फौजदारीके दौरेके मुकदमेमें सेशन जजको सहायताके लिये नियत हो।

पंचकुर (हि॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी बटाई जिसमें खेत-की उपजके पांच भागोंमेंसे एक भाग जमींदारको दिया जाता है।

पंचकोस (हि॰ पु॰) पांच कोसकी लंबाई और चौड़ाईमें बसी हुई काशीकी पवित्र भूमि, काशी।

पंचकोसी (हि॰ स्त्री॰) काशीकी परिक्रमा।

पंचतोलिया (हि॰ पु॰) एक प्रकारका झीना महीन कपड़ा।

पंचनाथ (हि॰ पु॰) बदरीनाथ, द्वारकानाथ, जगन्नाथ, रंगनाथ और सोमनाथ

पंचनामा (फा० पु०) वह कागज जिस पर पंच लोगोंने अपना निर्णय या फैसला लिखा हो।

पंचपात (हिं० पु०) पंचोली नामका पौधा, पंचपनड़ी।

पंचपीरिया (हिं० पु०) मुसलमानोंके पांचों पीरोंकी पूजा करनेवाला।

पंचभर्तारी (हिं० स्त्री०) द्रौपदी।

पंचमेल (हिं० वि०) १ जिसमें पांच प्रकारकी चीजें मिली हों। २ साधारण। ३ जिसमें सब प्रकारकी चीजें मिली हों, मिला जुला ढेर।

पंचरंगा (हिं० वि०) १ पांच रंगका। २ तरह तरहके रंगोंका रंग बिरंगका।

पंचलड़ा (हिं० वि०) पांच लड़ोंका।

पंचलड़ी (हिं० स्त्री०) गलेमें पहननेकी पांच लड़ोंकी माला।

पंचलरी (हिं० स्त्री०) पचलड़ी देखो।

पंचहजारी (फा० पु०) १ पांच हजारकी सेनाका अधिपति। २ एक पदवी जो मुगलसाम्राज्यमें बड़े बड़े लोगोंको मिलती थी।

पंचानवे (हिं० वि०) १ नब्बे और पांच, पांच कम सौ। (पु०) २ नब्बेसे पांच अधिकको संख्या या अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है,—९५।

पंचाम्बर (हिं० पु०) पञ्चाम्बरस देखो।

पंचायत (हिं० स्त्री०) १ किसी विवाद, झगड़े या और किसी मामले पर विचार करनेके लिये अधिकारियों या चुने हुए लोगोंका समाज। २ एक साथ बहुतसे लोगोंकी बकवाद। ३ बहुतसे लोगोंका एकत्र हो कर किसी मामले या झगड़े पर विचार, पंचोंका वाद-विवाद।

पंचायती (हिं० वि०) १ पंचायतका किया हुआ, पञ्चायतका। २ पञ्चायत सम्बन्धी। ३ बहुतसे लोगोंका मिला जुला, साझेका, जो कई लोगोंका हो। ४ सर्वसाधारणका, सब पञ्चोंका।

पंचालिस (हिं० वि०) पैंतालीस देखो।

पंचो (हिं० पु०) गुल्ली डण्डेके खेलमें डण्डेसे गुल्लीको मार कर दूर फेंकनेका एक ढंग। इसमें गुल्लीको बाएं हाथसे उछाल कर दहने हाथसे मारते हैं।

पंचोली (हिं० स्त्री०) १ पश्चिम भारत, मध्यप्रदेश, बम्बई और बंगालमें मिलनेवाला एक पौधा। इसके पत्तों और डंठलोंसे एक प्रकारका सुगन्धित तेल निकलता है। इस तेलका व्यवहार यूरोपके देशोंमें बहुत होता है। इसकी खेती पानके भीटोंमें की जाती है। पौधे दो दो फुटके फासले पर लगाए जाते हैं। जो पौधे एक बार लगाये जाते हैं उनसे दो बार छः छः महीने पर फसल काटी जाती है। जब दूसरी फसल कट जाती है, तब पौधे खोद कर फेंक दिये जाते हैं। डंठल सूख जाने पर उन्हें बड़े बड़े गट्ठरोंमें बांधते और बिक्रीके लिये भेज देते हैं। डंठलोंसे भबके द्वारा तेल निकाला जाता है। ६६ सेर लकड़ीसे करीब १२से १५ सेर तक तेल निकलता है। यूरोपमें इस तेलका व्यवहार सुगन्ध द्रव्यकी भांति होता है। इसे पंचपा और पंचपनड़ी भी कहते हैं। (पु०) २ वह उपाधि जो वंशपरम्परासे चली आती हो। प्राचीन कालमें किसी नगर या ग्राममें व्यवस्था रखने और छोटे मोटे झगड़ोंको निबटानेके लिये पांच प्रतिष्ठित कुलके लोग चुन लिये जाते थे जो पञ्च कहलाते थे।

पंछा (हिं० पु०) १ पानीको तरहका एक स्राव जो प्राणियोंके शरीरसे या पेड़ पौधोंके अंगोंसे चोट लगने पर या यों ही निकलता है। २ छाले, फफोले, चेचक आदिके भीतर भरा हुआ पानी।

पंछाला (हिं० पु०) १ फफोला। २ फफोलेका पानी।

पंछी (हिं० पु०) पक्षी, चिड़िया।

पंजड़ी (हिं० स्त्री०) चौसरके एक दांवका नाम।

पंजना (हिं० क्रि०) धातुके बरतनमें टांके आदि द्वारा जोड़ लगाना, झालना, झाल लगाना।

पंजरना (हिं० क्रि०) पजरना देखो।

पंजरी (हिं० स्त्री०) अर्थी, टिकठी।

पंजहजारी (फा० पु०) एक उपाधि जो मुसलमान राजाओंके समयमें सरदारों और दरबारियोंको मिलती थी। ऐसे लोग या तो पांच हजार सेना रख सकते थे अथवा पांच हजार सेनाके नायक बनाये जाते थे।

पंजा (फा० पु०) १ पांचका समूह, गाहो। २ हाथ या पैरकी पांचों उंगलियोंका समूह साधारणतः हथेलीके सहित हाथकी और तलवेके अगले भागके सहित

[illegible]

पंद्रह (हिं० वि०) १ जो संख्यामें दस और पांच हो। (पु०) २ दस और पांचकी संख्या या अंक, १५।

पंद्रहवां (हिं० वि०) जो पंद्रहके स्थान पर हो।

पंधलाना (हिं० क्रि०) फुसलाना, बहलाना।

पंप (अं० पु०) १ नल आदि जिसके द्वारा पानी ऊपर खींचा या चढ़ाया जाता है अथवा एक ओरसे दूसरी ओर पहुंचाया जाता है। २ पिचकारी। ३ एक प्रकारका हलका चमड़ेका जूता। इसमें पंजेसे ऊपरका भाग ढका रहता है।

पंबा (फा० पु०) एक प्रकारका पीला रंग जो रेशम रंगनेके काम आता है। इसको प्रस्तुत करनेकी यह प्रणाली है— ४ छटांक सोडा [illegible] छटांक [illegible] मिलाते हैं। इस को आगमें [illegible] उबलते हुए पानीमें मिला देते हैं। बाद इस [illegible] को भी [illegible] और एक घंटे तक इसीमें रखते हैं। यह रंग कच्चा होता है, पर यदि रेशमको आध घंटा [illegible] मिलाया जाय तो रंग पक्का होता है।

पँवर (हिं० स्त्री०) पँवरी देखो।

पँवरना (हिं० क्रि०) १ तैरना। २ थाह लेना, पता लगाना।

पँवरि (हिं० स्त्री०) प्रवेशद्वार या फाटक, वह फाटक या घर जिससे हो कर किसी मकानमें जाय, ड्योढ़ी।

पँवरिया (हिं० पु०) १ द्वारपाल, दरबान। २ सन्तानके जन्म लेने पर या किसी और मंगल अवसर पर द्वारों पर बैठ कर मंगल-गीत गानेवाला याचक।

पँवरी (हिं० स्त्री०) पँवरि देखो। २ पादत्राण, खड़ाऊँ, पाँवरी।

पँवाड़ा (हिं० पु०) १ कल्पित आख्यान, कहानी, दास्तान। २ बढ़ाई हुई बात, बातका बतंगड़। ३ एक प्रकारका गीत।

पंवार (हिं० पु०) राजपूतोंकी एक जाति।

पंवार [illegible] परमार देखो।

(हिं० क्रि०) हटाना, दूर करना, फेंकना।

पंवारना (हिं० स्त्री०) लोहारोंका एक औजार जिससे

पंवारी (हिं० [illegible] करते हैं।

से लोहेमें छेद क[illegible]

पंसहट्टा (हिं० पु०) वह बाजार जहां पंसारियोंकी

पंसारी (हिं० पु०) वह बनिया जो हल्दी, धनिया आदि मसाले तथा दवाके लिये जड़ी बूटी बेचता है।

पंसासार (हिं० पु०) पांसेका खेल।

पंसेरा (हिं० स्त्री०) पसेरी देखो।

पंसुली (हिं० स्त्री०) पसली देखो।

पंसेरी (हिं० स्त्री०) पांच सेरका बोझ।

पइसा (हिं० पु०) [illegible] इसमें एक [illegible] और [illegible] होता है।

पकौरी (हिं० स्त्री०) पकौड़ी देखो।

पकड़ (हिं० स्त्री०) १ पकड़नेकी क्रिया या भाव, धरने का ढंग। २ कुश्तीमें एक एक बार या [illegible] उपाय ढूंढ़ना जिससे [illegible] ३ दोष भूल आदि ढूंढ़ निकालनेकी क्रिया या भाव। ४ [illegible] आक्रोश।

पकड़धकड़ (हिं० स्त्री०) धरपकड़ देखो।

पकड़ना (हिं० क्रि०) १ ग्रहण करना, थामना, धरना। २ पता लगाना, ढूंढ़ निकालना। ३ कुछ करनेसे रोक रखना, स्थिर करना, ठहराना। ४ गिरफ्तार करना, काबूमें करना। ५ पसार करना, आगे बढ़ कर पकड़ना या मिलना। ६ अपने स्वभाव या गतिमें धारण करना, धारण करना। ७ कुछ कालमें इसको कोई विशेष काम आनेमें रोकना टोकना। ८ किसी फैलनेवाली वस्तुमें लग कर उसको अपनेमें संचार करना। ९ दौड़ने, चलने या किसी बातमें बढ़ने हुएके बराबर हो जाना, जैसे—यदि तुम परिश्रमसे पढ़ोगे तो दो महीनेमें उसे पकड़ लोगे।

पकड़वाना (हिं० क्रि०) पकड़नेका काम किसी दूसरेसे कराना, ग्रहण कराना।

पकड़ाना (हिं० क्रि०) १ किसीके हाथमें देना या रखना, थमाना। २ पकड़नेका काम कराना, ग्रहण कराना।

पकना (हिं० क्रि०) १ पक्वावस्थाको पहुंच जाना, कच्चा न रहना। २ सिद्ध होना, सीझना, रिंधना, चुरना। ३ कोमल ठहराना, मीठा पड़ना। ४ फोड़े फुंसी आदिका इस अवस्थामें पहुंचना कि उसमें मवाद आ जाय, पीबसे भरना। ५ चौसरमें गोटियोंका सब घरोंको पार करके अपने घरमें आ जाना।

पकना (हिं ० पु०) फोड़ा।

पकवान (हिं० पु०) वह खानेकी वस्तु जो घीमें तल कर बनाई जाती है।

पकवाना (हिं ० क्रि०) १ पकानेका काम कराना, पकानेमें प्रवृत्त करना। २ आँच पर तैयार कराना।

पकसनु (हिं ० पु०) पूर्व और उत्तर बङ्गाल, आसाम चट्टग्राम तथा ब्रह्ममें मिलनेवाला एक प्रकारका बांस। वालो भरनेके लिये इससे आगे बनती हैं। इससे छाता तथा पतली छड़ियोंसे टोकरे भी बनते हैं।

पकाई (हिं ० स्त्री) १ पकानेकी क्रिया या भाव। २ पकानेकी मजदूरी।

पकाना (हिं ० क्रि०) १ फल आदिको पुष्ट और तैयार करना। २ आँच या गरमीके द्वारा गलाना या तैयार करना। ३ माला पूरी करना, सौदा पूरा करना। ४ फोड़े फुंसी घाव आदिको इस अवस्थामें पहुंचाना कि उसमें पीब या मवाद आ जाय।

पकार (सं० पु०) प-स्वरूप वर्ण। प स्वरूपवर्ण, 'प' अक्षर।

पकारादि (सं ० त्रि०) जिसके आदिमें 'प' अक्षर हो।

पकारान्त (सं ० त्रि०) जिसके अन्तमें 'प' अक्षर हो।

पकाव (हिं० पु०) १ पकनेका भाव। २ पीब मवाद।

पकि—जातिविशेष। दाक्षिणात्यके मद्रास और रैवती ताल्लुकमें इनका वास अधिक है। झाड़ू देनेका काम करनेके कारण ये निकृष्ट समझे जाते हैं। इनमें जो विशाखपत्तनके निकटवर्त्ती स्थानमें वास करते हैं वे जातीय कार्य पालनके विशेष पक्षपाती हैं।

पकुड़—सर्पविशेष मणिपुरके हिन्दू राजवंशके उपास्य देवता। मणिपुरके वर्त्तमान राजवंशधर अपनेको पकुड़-नागके वंशज बतलाते हैं। जो स्त्रियाँ इस नागपूजामें पुरोहिताई करती हैं वे साधारणतः 'माइबी' कहलाती हैं। ये किसी मन्त्रके अर्थको वशीभूत करके आसन पर बिठाती हैं और नये पुत्र जन्मके लिए विधिके अनुसार पूजा करती हैं।

पकुमती—तैलङ्गदेशके नियोगी ब्राह्मणोंका एक भेद। ये लोग स्वतन्त्र सम्प्रदायके हैं। इनके आचार विचार तथा कुल पर्यायों आचार विचारसे नियोगियोंमें बड़ी भिन्नता है।

पकिनटी—एक असभ्य योद्धा जाति। मणिपुर और तैलङ्ग देशमें इनका वास है। १८वीं शताब्दीमें राजपुरुषोंके अत्याचारसे भगाये जाने पर ये लोग जहाँ तहाँ बस गये। तभीसे ये किसी खास जगह पर बसा कर नहीं रहते। तैलङ्गदेशान्तर्गत बेहारो जिलेके किसी किसी ग्राममें मध्यवर्गके इसी कृषकजातिसे उत्पन्न हुए हैं।

पकोरेस सिन्धुप्रदेशके शकवंशीय एक राजा। ये शताब्दीमें ये शासन करते थे। इनकी प्रचलित मुद्रा भी मिलती पाई गई है।

पकौड़ा (हिं ० पु०) घी या तेलमें पका कर फुलाई हुई बेसन या पीठीकी बड़ी।

पकौड़ी (सं ० स्त्री०) पकौड़ा देखो।

पक्कठो (सं ० स्त्री०) प्लक्षवृक्ष, पाकर नामक पेड़।

पक्कण (सं ० पु० क्ली०) पचति श्वादिनिकृष्टमांसमिति पच क्विप् पक्, शबर' तस्य कण अल्पसमूहो कौशादन यत्र। शबरालय, चाण्डालोंका वासस्थान।

पक्कपोत (सं ० पु०) वर्षिवृक्ष, पकौड़ा।

पक्करस (हिं ० पु०) मदिरा, शराब।

पक्कवारि (हिं ० पु०) कांजी।

पक्का (हिं ० वि०) १ फल या अन्न जो पुष्ट हो कर खानेके योग्य हो गया हो जो कच्चा न हो, पका हुआ। २ जो अपनी पूरी बाढ़ या प्रौढ़ताको पहुंच गया हो, पुष्ट। ३ जिसमें पूर्णता आ गई हो, जिसमें कसर न हो, पूरा। ४ जो आँच पर कड़ा या मजबूत हो गया हो। ५ जिसके संस्कार या परिष्करणकी प्रक्रिया पूरी हो गई हो, साफ और दुरुस्त, तैयार। ६ अनुभवप्राप्त निपुण, दक्ष, होशियार, तजरबेकार। ७ आँच पर गलाया या तैयार किया हुआ आँच पर पका हुआ। ८ जो अभ्यस्त या निपुण व्यक्तिके द्वारा बना हो। ९ जिसे अभ्यास हो, जो मंज गया हो। १० स्थिर दृढ़, निश्चित, न टलनेवाला। ११ दृढ़, मजबूत टिकाऊ। १२ जिसका मान प्रामाणिक हो, टकसाली। १३ प्रामाणिक प्रमाणोंसे पुष्ट, जिसे भूल या कसरके कारण बदलना न पड़े या जो अन्यथा न हो सके, ठीक जँचा हुआ नपा तुला।

पक्काइत (हिं ० स्त्री०) दृढ़ता, मजबूती, निश्चय, पोढ़ाई।

पकखुर (हिं० वि०) पक्का, पुख्ता ।

पक्‌घान—अंगरेजाधिकृत ब्रह्मराज्यके अन्तर्गत तेनासेरिम प्रदेशके सीमान्तमें प्रवाहित एक नदी । यह ४० कोस बह कर विक्टोरिया पेएटके निकट गङ्गोपसागरमें गिरी है ।

पक्कपौल (सं० पु०) वृक्षविशेष, पखोड़ा नामका एक पेड़ । पर्याय—पञ्चकञ्च, वर्द्धन, पच्चरञ्जक । गुण—दृष्टिके अञ्जनके विषयमें प्रशस्त, कटु, और जीर्णज्वरनाशक ।

पक्तव्य (सं० वि०) पच-तव्य । १ पाकयोग्य । २ जठराग्नि द्वारा जीर्ण करणीय ।

पक्ति (सं० स्त्री०) पच्यते परिणम्यते इति भावे क्तिन् । १ गौरव २ पाक ।

पक्तिशूल (सं० क्ली०) पक्तौ भुक्तस्यान्नादिकस्य परिणामे जायते यत्शूल रोगविशेषः । परिणामशूल । पर्याय—पाकज, परिणामज ।

पक्तृ (सं० वि०) पचतीति पच-पाके तृच् । १ पाककर्त्ता, पाक करनेवाला । (पु०) २ अग्नि, आग ।

पक्त्र (सं० क्ली०) पच्यतेऽनेन पच-त्र (गृध्रवीपचिवचीति । उण् ४।१६६) गार्हपत्य अग्नि ।

पक्त्रिम (सं० वि०) पाकेन निर्वृत्तं पच्, क्त्रि, मम् । (ड्वितः क्त्रि । पा ३।३।८८) 'क्त्रेर्मम् नित्यं' इति मम । सुपद्म प्रभृति व्याकरणमें 'ड्वितस्त्रिमगिति' इस सूत्रके अनुसार 'त्रिमक्' प्रत्यय द्वारा यह पद सिद्ध हुआ है । प्राकिम, पाक निर्वृत्त, जो पाक द्वारा उत्पन्न हो ।

पक्थ (सं० पु०) पच वाहुलकात् थक् । १ राजभेद । २ पाक ।

पक्थिन (सं० वि०) पक्थ-अस्त्यर्थे इनि । पाकयुक्त ।

पक्‌प्रणाली—भारतकी दक्षिणी सीमा कुमारिकासे कालीमियर अन्तरीप तक तथा सिंहल द्वीपके मध्यवर्त्ती जो समुद्र विभाग है वही पक्‌प्रणाली कहता है । ओलन्दाज शासनकर्त्ता पकके नामानुसार ही इस प्रणालीका नामकरण हुआ है । इसीके मध्यस्थलमें भारत और सिंहलद्वीपके मध्य कितनी ही द्वीपावली देखी जाती हैं । यहां भारतवासीका 'रामेश्वर सेतुवन्ध' और यूरोपियनोंका 'एडामस ब्रिज' है । प्रवाद है कि लङ्कासे लौटते समय श्रीरामचन्द्रने अपने निर्मित सेतुका खण्डविखण्ड कर डाला, यही छोटे छोटे द्वीप उसके एक एक खण्ड हैं । इस प्रणालीके मध्यस्थित रामेश्वर द्वीपपुञ्ज और उसके परस्परके आभ्यन्तरिक संस्रव देख कर अनुमान किया जाता है कि एक समय सिंहलद्वीप भारतके साथ संलग्न था । इस प्रणाली हो कर जहाजादि इसमें आ जा नहीं सकते ।

पक्व (सं० क्ली०) पच्यते स्म पच क्त, (पचो वः । पा ८।२।५२) इति निष्ठा तस्य वत्वं । खिचतण्डुलादि, भक्तप्रभृति, भात आदि । अन्नपाकका विधिनिषेध इस प्रकार लिखा है—

"पूर्वाभिमुखो भूत्वा उत्तराभिमुखेन वा ।
पचेदन्नञ्च मध्याह्ने सायाह्ने च विवर्जयेत् ॥
अग्न्याशाभिमुखे पक्त्वा अमृतान्न भवेत्तु च ।
पूर्वमुखो धर्मकाम धनेच्छानिध दक्षिणे ॥
श्रीकामश्चोत्तरमुखो पतिकामश्च पश्चिमे ।
ऐशान्याभिमुखे पक्त्वा दरिद्रो जायते नरः ॥"
(मत्स्यसू० ४२ प०)

पूर्व वा उत्तरकी ओर मुख करके मध्याह्नकालमें अन्नपाक करना चाहिए, सायंकालमें नहीं । अग्निकोणमें अन्नपाक करनेसे वह अमृत तुल्य होता है । धर्मार्थीको पूर्वमुख, धनार्थीको उत्तरमुख और पतिकामीको पश्चिममुखमें पाक करना चाहिये । ईशानाभिमुखमें पाक करनेसे दरिद्र होता है ।

"यदा तु आयसे पात्रे पक्वमश्नाति वै द्विजः ।
स पापिष्ठोऽपि भुंक्तेऽन्नं रौरवे परिपच्यते ॥"

ब्राह्मणको लोहपात्रमें पक्व वस्तु खानी नहीं चाहिये, खानेसे रौरवनरक होता है ।

"ताम्रे पक्त्वा चक्षुर्हानिर्मणौ भवति वै क्षरं ।
स्वर्णपात्रे तु यत् पक्वं अमृतं तदपि स्मृतं ॥"

ताम्रपात्रमें पाक करनेसे चक्षुकी हानि होती है, मणिमयपात्र तथा स्वर्णपात्रमें पाक करनेसे वह अमृततुल्य होता है ।

मत्स्यसूक्तके मतसे वातुल, कनिष्ठा भगिनी और असगोत्रके हाथका पक्वान्न खाना निषेध है ।

"वातुलेन तु यत् पक्वं भगिन्या च कनिष्ठया ।
असगोत्रेण यत् पक्वं गौजिनं तदपि स्मृतम् ॥"

धनमें और स्त्रियोंके पक्ष तथा पक्वपात्रमें जो पक्व अन्न रहता है वह निष्फल है। अनुभार कहना, गिरीश वध, दन्तुराट मास्तिनि और मानको उनक्रोधमें पाक किया हुआ अन्न खाना नहीं चाहिए। पक्वोरा स्त्रीका अन्न तथा जिनके सन्तान न हुई हो ऐसी स्त्रीका पक्वान्न भी दूषणीय है उनके घरमें भी भोजन करना मना है। मृन्मयपात्रमें अन्न पाक करनेसे मास, पक्ष या ८ दिनमें उसे परित्याग करना चाहिए। पाकके समय पाकपात्र का तीन भाग अन्नसे भर दे। मोदक, अन्दुवक, मत्स्याध और पुत्तम घृत अन्न पुनः पुनः खानेमें कोई दोष नहीं।

"मोदक घृतपूरं च अभ्यर्च्य पुनर्भक्षणम्।
पुनः पुनः भी कमी न पुनाम्न न दुष्यति ॥

(आस्तन्नु० २७ पटल)

पक्व (स० त्रि०, पच-क्त, तस्य व। १ परिणत पक्का। २ विनाशोन्मुख। ३ सुदृढ़, परिपुष्ट। ४ परिणतबुद्धि। ५ जिसा ऐतिहास पक्वासवशिल्पम।

पक्वकृत् (स० पु० पक्व करोति पैदवानिजलस्य परिणत कृति निम्बिष्टतरत्वमापीर्णिसितान कर्णिकारि तत्पुरुष। निम्बवृक्ष, नीम। पेड़। इसको पत्तियों को चाब कर कोढ़े पानीमें ज्वालित कर पका जाते हैं (त्रि०) २ पक्व करोति पक्वसम्पादिका। ३ पाककर्ता, पकानेवाला।

पक्वकेश (स० त्रि०) १ पक्वकेशयुक्त जिसके बाल पक गए हों। (पु०) २ पक्व केश सफेद बाल।

पक्वगात्र (स० त्रि०) जलगात्र जिसका शरीर चाह स्फोटसमन्वित हो।

पक्वता (स० स्त्री०) पक्वस्य भावः तल टाप। पक्व-त्व, पक्व होना। भाव पकापन।

पक्वमांस (स० क्ली०) पक्व मांस। १ पाकक्रिया द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस। इसका गुण—स्निग्ध बल और बोधवर्द्धन है ऐसा वैद्यक बतलाते हैं।

पक्वमाल (स० त्रि०) पक्वमाल पकाया हुआ सिद्ध किया हुआ।

पक्वरस (स० पु०) पक्वस्य गुड़ादेः रसः। मद्य मदिरा।

पक्ववारि (स० क्ली०) पक्वस्य पक्वादेवारि, पका हुआ वारि निष्कर्मनिर्ग। १ काञ्जिक, कांजी। २ पक्वजल, पकाया हुआ पानी।

पक्वाम (स० पु०) पुन्नाग पृषोदरादित्वात् साधु। वन्य-जातिभेद, एक जंगली नीच जाति। पर्याय—पुक्कस, पुष्कस और पक्कण।

पक्वाशयोपमोषात्ति (स० पु०) पक्वाशयस्य उपमा-पक्व, तादृशी उत्पत्तिर्यस्य। राजयक्ष्म।

पक्वातीसार (स० पु०) पक्वस्य आमातीसार भिन्न पक्व प्रकार अतीसाररोग, एक प्रकारका अतीसार, आमातीसारका उलटा। आमातीसारमें मलमें आम गिरती है पक्वातीसारमें नहीं। अतिसार देखो।

पक्वान्न (स० क्ली०) पक्वान्न। ऊतमात्र नष्ट आदि पका हुआ अन्न २ घी, पानी आदिसे साथ पाग पर पका कर बनाई हुई खानेकी चीज।

'आज गुरुरव पक्वान्न वर्जयन्नृत्पुरुष्यते ॥"

(तिथितत्त्व)

शूद्र पक्वादि पाक करके देवपूजा और ब्राह्मणादि को वैसा नहीं कर सकता केवल ब्राह्मणादि तीनों वर्ण देवताको पक्वान्न चढ़ा सकते हैं।

"विप्र वर्णे तु कर्त्तव्ये पाकवोद्यमेव च।
शूद्राणामपि सर्वासां शूद्रस्यैव सदाभवे —
शूद्रस्यानुवर्णनावस्य वर्जीयन्ते ॥" (तिथितत्त्व)

रघुनन्दनने दुर्गोत्सवमें ऐसा लिखा है उससे बोध होता है कि शूद्र भी ब्राह्मण द्वारा पाक करा कर उसे नैवेद्य दे सकता है। जिस प्रकार शूद्रकर्त्तृक होमोत्सर्ग का ग्रहण अवलम्बन करके उस धन द्वारा होमादि कार्य सम्पन्न होता है उसी प्रकार ब्राह्मण द्वारा पक्वान्न भी देवोद्देशसे निवेदन किया जा सकता है।

'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्ट मुच्यते।
इति सर्वं शास्त्रविधं।" (तिथितत्त्व)

इस वचनके अनुसार शूद्र भी ब्राह्मण द्वारा अन्न पाक करके नैवेद्य दे सकता है। किन्तु ऐसा व्यवहार देखने में नहीं आता। ब्राह्मण शूद्रगृहमें शूद्रकृत अन्दुवक, पायस दधिसात्, भोजन कर सकते हैं और शूद्र भी उसे देवोद्देशसे चढ़ा सकता है।

'अन्दुकानि तैलेन पायसं दधिसक्तवः।
द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि ॥"

(तिथितत्त्व)

पक्वाशय (सं॰ पु॰) पक्वस्य आमादिराशय आधानम्। पाकाशय, नाभिका अधोभाग। यह वास्तवमें अन्त्रका ही एक भाग है। थूकके साथ मिल कर खाया हुआ भोजन पचको नली द्वारा नीचे उतरता है और आमाशयमें जाता है। यह आमाशय मशकके आकारकी थैलासा होता है। इसी थैलीमें आ कर भोजन इकट्ठा होता है और आमाशयके अम्लरससे मिल कर तथा मांसके आकुञ्चन प्रसारण द्वारा मथा जा कर ढीला और पतला होता है। जब भोजन अम्लरससे संयुक्त हो कर ढीला हो जाता है, तब पक्वाशयका दरवाजा खुल जाता है और आमाशय बड़ी तेजीसे उसको उस ओर धक्का देता है। पक्वाशय यथार्थमें छोटी आँतके ही प्रारम्भका बारह अङ्गुल तकका भाग है जिसके तन्तुओंमें एक विशेष प्रकारकी कोठाकार ग्रन्थियां होती हैं। इसमें यकृत्से आ कर पित्तरस और क्लोमसे आ कर क्लोमरस भोजनके साथ मिलता है। क्लोमरसमें तीन विशेष पाचक पदार्थ होते हैं। ये पदार्थ आमाशयसे कुछ विश्लेषित हो कर आये हुए द्रव्यका और सूक्ष्म अणुओंमें विश्लेषण करते हैं जिससे वह घुल कर श्लेष्ममयी कलाओंसे हो कर सिञ्चमें जाने लायक हो जाता है। पित्तरसके साथ मिलनेसे क्लोमरसमें तीव्रता आती है और वसा या चिकनाई पचती है।

पक्रोता—नूरपुरके निकटवर्त्ती एक जनपद।

नूरपुर देखो।

पक्ष (सं॰ पु॰) पक्षयति परिच्छिनत्ति देवपितृकार्याय यः पक्ष्यते चन्द्रस्य पञ्चदशानां कलानामापूरणं चयो वा येन, पक्ष-अच्। यद्वा पष स (पृषि पण्योर्दकौ च। उण् ३।६८) कषान्तादेशः। १ पञ्चदश अहोरात्र, पन्द्रह पन्द्रह दिनोंके दो विभाग, पन्द्रह दिनका समय, पाख। पक्ष दो हैं, शुक्ल और कृष्ण। शुक्लप्रतिपदासे ले कर पूर्णिमा तक शुक्लपक्ष और कृष्ण प्रतिपदासे अमावस्या तक कृष्ण पक्ष कहलाता है। पक्षभेदसे तिथिको व्यवस्था इस प्रकार स्थिर करनी होती है—

"शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः।
कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः॥"

(तिथितत्त्व)

जिस तिथिमें सूर्य उदय होते हैं, शुक्लपक्षमें वह तिथि और जिसमें सूर्य अस्त होते हैं, कृष्णपक्षमें वह तिथि ग्राह्य है।

२ पक्षियोंका अवयवविशेष, चिड़ियोंका डैना, पंख, पर। पर्याय—गरुत् छद, पत्र, पतत्र, तनूरुह। ३ शरपक्ष, तीरमें लगा हुआ पर। इसका पर्याय वाज है। ४ सहाय, समूह। केश शब्दके बाद पक्ष शब्द रहनेसे वह समूहार्थबोधक होता है यथा—केशपक्ष। ५ महाकालमिश्र, कालोपाधिमें पक्ष अन्तर्निविष्ट है, इसीमें पक्षशब्दसे महादेवका बोध होता है।

"ऋतुः संवत्सरो मासः पक्षः संख्या समापनः।"

(भारत १३।१०।१३८)

६ किसी स्थान वा पदार्थके वे दोनों छोर या किनारे जो आगे और पिछलेसे भिन्न हों, किसी विशेष स्थितिसे दहने और बाएं पड़नेवाले भाग, पार्श्व ओर, तरफ। 'ओर' 'तरफ' आदिसे पक्ष शब्दमें यह विशेषता है कि यह वस्तुके ही दो अङ्गोंको सूचित करता है, वस्तुसे पृथक् दिक्मात्रको नहीं। ७ किसी विषयके दो या अधिक परस्पर भिन्न अङ्गोंमेंसे एक किसी प्रसङ्गके सम्बन्धमें विचार करनेको अलग अलग बातोंमेंसे एक, पहलू। ८ किसी विषय पर दो या अधिक परस्पर भिन्न मतोंमेंसे एक, वह बात जिसे कोई सिद्ध करना चाहता हो और जो किसी दूसरेकी बातके विरुद्ध हो। ९ दो या अधिक बातोंमेंसे किसी एकके सम्बन्धमें ऐसी स्थिति जिससे उसके होनेकी इच्छा, प्रयत्न आदि सूचित हो, अनुकूलमत या प्रवृत्ति। १० झगड़ा या विवाद करनेवालोंमेंसे किसीक अनुकूल स्थिति। ११ निमित्त, सम्बन्ध, लगाव। १२ वह वस्तु जिसमें साध्यकी प्रतिज्ञा करते हैं। जैसे—'पर्वत वह्निमान् है।' यहां पर्वत पक्ष है जिसमें साध्य वह्निमान्‌की प्रतिज्ञा की गई है। (न्याय) १३ किसीकी ओरसे लड़नेवालोंका दल, फौज, सेना, बल। १४ सजातीयवृन्द, सहायकों या सवर्गोंका दल, साथ रहनेवाला समूह। १५ सखा, सहायक, साथी। १६ वादिप्रतिवादि कर्त्तृक दर्शित प्रतिपत्ति, वादियों प्रतिवादियोंके अलग अलग मत्तूह। १७ गृह, घर १८ शुक्लारम्भ, चूल्हेका छेद। १९ राजकुञ्जर, राजाका

जाती। १० किसी पक्षी, चिड़िया। ११ समय जाननेकी तरह पक्षमेंका बना।

पक्षक (सं० पु०) पक्ष इव प्रतिकृतिः (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) इति कन्। १ पक्षद्वार। २ पार्श्वद्वार। ३ पार्श्व मात्र। ४ सहाय।

पक्षगम् (सं० त्रि०) १ जो पक्षकी सहायतासे चलता हो। (पु०) २ पक्षी, चिड़िया। ३ पर्वत।

पक्षगुप्त (सं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

पक्षग्रहण (सं० क्ली०) पक्षस्य ग्रहणम्। आराध्यग्रहण, किसीकी सहायता मिलना।

पक्षचार (सं० त्रि०) पक्षग्रहणकारी पक्ष लेनेवाला।

पक्षच्छिन् (सं० त्रि०) पक्ष-च्छिद-णिनि। पक्षच्छेद कारी।

पक्षघात (सं० पु०) पक्षस्य देहार्द्धस्य घातः विनाशनं यस्मात् यस्य वा। रोगविशेष वातरोगविशेष पक्षाघातरोग। पक्षाघात देखो।

पक्षज (सं० त्रि०) पक्ष जनि-ड। पक्षजातक।

पक्षजन्म (सं० त्रि०) पक्षज देखो।

पक्षचर (सं० पु०) पक्षे शुक्लपक्षे चरति चर-ट। १ चन्द्रमा। २ यूथभ्रष्ट हाथी।

पक्षच्छिद् (सं० त्रि०) पक्ष छिनत्ति पक्षच्छिद् क्विप्। इन्द्र।

पक्षज (सं० पु०) पक्षे शुक्लपक्षे जायते जन-ड। १ चन्द्रमा। (त्रि०) २ पक्षजातमात्र।

पक्षजन्मन् (सं० पु०) पक्षे शुक्लपक्षे जन्म उत्पत्तिर्यस्य। १ चन्द्रमा। (त्रि०) २ पक्षजातमात्र।

पक्षता (सं० स्त्री०) पक्षस्य भावः, तल् ततो टाप्। न्याय-शास्त्र अनुमानके पक्षका धर्म सिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्धाभाव, अनुमित्साविरहविशिष्टसिद्ध्यभाव। यही पक्षता अनुमितिका कारण है।

पक्षति (सं० स्त्री०) पक्षस्य मूलं (पक्षात्तिः। पा ५।२।२५) इति पक्षति। १ प्रतिपत्तिथि। २ पक्षमूल, डैनेकी जड़।

पक्षत्व (सं० क्ली०) पक्ष भावे त्व। पक्षका भाव, पक्षता।

पक्षद्वार (सं० क्ली०) पक्षे पार्श्वे स्थितं द्वारम्। पार्श्व द्वार, खिड़कीका दरवाजा।

पक्षधर (सं० पु०) धारयतीति धृ, अच्। पक्षस्य धरः। १ चन्द्रमा। २ महादेव, शिव। ३ पक्षी चिड़िया। (त्रि०) ४ पक्षधारणकर्त्ता तरफदार।

पक्षधर—तत्त्वचिन्तामणिआलोक नामक ग्रन्थके रचयिता। नाम-मिश्र। जयदेव देखो।

पक्षधरमिश्र—१ प्रसिद्ध नैयायिक, महेश्वर महामहो-पाध्यायके पुत्र। इन्होंने तत्त्वनिर्णय नामक एक न्याय ग्रन्थकी रचना की है। इनको प्रतिभाके कारण इन्होंने महामहोपाध्यायकी उपाधि पाई थी।

पक्षनाड़ी (सं० स्त्री०) डैनेका शाखा या पर।

पक्षपात (सं० पु०) पक्षे पक्षाभ्युपगमात्मके पातः पतिनि-वेश। १ पक्षाश्रयताप्रदर्शन, पक्षावलम्बन, बिना उचित अनुचितके विचारके किसीके अनुकूल प्रवृत्ति या स्थिति, तरफदारी। २ पक्षावलम्बन। पक्षोंका गिरना, पात पतन। ३ पक्षियों का पंख पक्षियोंके पंख जिनसे उनकी उड़ान शक्ति है।

पक्षपातकारिन् (सं० त्रि०) पक्षपात कृ णिनि। अन्याय रूपसे पक्षसमर्थनकारी।

पक्षपातिता (सं० स्त्री०) पक्षपातिनः पक्षपातकारिणः भाव, पक्षपातिन्-तल टाप्। पक्षपातका भाव।

पक्षपातिन् (सं० त्रि०) पक्षपातो विद्यतेऽस्य इनि। अन्याय-पक्षका समर्थनकारी बिना उचित अनुचितके विचारके किसीके अनुकूल प्रवृत्त होनेवाला। तरफदार।

पक्षपाती (हिं० वि०) पक्षपातिन् देखो।

पक्षपालि (सं० पु०) पक्षस्य पार्श्वस्य पालिरिव। पार्श्व द्वार खिड़कीका दरवाजा।

पक्षपुट (सं० पु०) पक्षियों का डैना।

पक्षपोषक (सं० त्रि०) पक्षपोषणकारी, पक्षसमर्थक, तरफदार।

पक्षप्रद्योत (सं० क्ली०) नृत्यशास्त्रमें हाथका एक प्रकारका मुद्रा।

पक्षभाग (सं० पु०) पक्षस्य पार्श्वस्य भागः पक्ष एव वा भागः। हस्तिपार्श्व भाग हाथीका कोख।

पक्षमाचार (सं० पु०) पक्षिविशेष।

पक्षमूल (सं० स्त्री०) पक्षस्य मूलम्। १ पक्षति डैना, पर। २ प्रतिपदा तिथि।

पक्षयालि (सं० पु०) खिड़की।

पक्षरचना (सं० स्त्री०) पक्षगठन, पक्षप्रबन्धकरण, किसीका पक्ष साधनके लिये रचा हुआ आयोजन, पक्ष।

पक्षरूप (सं० पु०) महादेव, शिव।

पक्षवञ्चितक (सं० पु०) नृत्यकालमें हाथका अवस्थान भेद।

पक्षवत् (सं० त्रि०) पक्षः विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। १ पक्षविशिष्ट, जिसके पर हो। २ उच्चकुलोद्भव, जो उच्च कुलसे पैदा हुआ हो। (पु०) ३ पर्वत, पहाड़।

पक्षवध (सं० पु०) वातव्याधिविशेष, पक्षाघात।

पक्षवर्द्धिनी (सं० स्त्री०) द्वादशी तिथिभेद, वह द्वादशी तिथि जो सूर्योदयसे ले कर सूर्योदय तक रहे।

पक्षवाद (सं० पु०) १ एक पक्षका उक्ति। २ पक्षसमर्थन।

पक्षवान् (हिं० वि०) १ पक्षवाला, परवाला। २ उच्च कुलमें उत्पन्न। (पु०) ३ पर्वत। पुराणोंमें लिखा है कि पहले पर्वतोंके पंख होते थे और वे उड़ते थे। पीछे इन्द्रने उनके पर काट लिये।

पक्षवाहन (सं० पु०) पक्षौ वाहनमिव यस्य। पक्षी, चिड़िया।

पक्षवाहु (सं० पु०) कुमारिका खण्डवर्णित भारतखण्डके अन्तर्गत जनपदविशेष।

पक्षविन्दु (सं० पु०) कङ्कपक्षी।

पक्षशस् (सं० त्रि०) पक्ष वारार्थे शस्। पक्षपक्षमें, प्रति पक्षमें।

पक्षस् (सं० क्ली०) पचतीति (पचिवचिभ्यां सुट् च। पा ४।२।१८) इति असुन् सुट् च। गरुत्।

पक्षसन्धि (सं० पु०) पक्षयोः सन्धिः। पर्वसन्धिकाल।

पक्षसुन्दर (सं० पु०) पक्षे देहाङ्गे कुसुमे सुन्दरः। लोध्र।

पक्षहत (सं० त्रि०) १ पक्ष द्वारा आहत। २ एक ओर पक्षाघात।

पक्षहोम (सं० पु०) पक्षव्यापको होम। पक्षपर्यन्त कर्त्तव्य होमभेद।

पक्षाघात (सं० पु०) पक्षस्य आघातं विनाशनं यस्मात् यद् वा। वातरोगविशेष। भावप्रकाशमें इसका लक्षण इस प्रकार है—

"गृहीत्वार्द्धं तनो वायुः शिराःस्नायु विशोष्य च।
पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिबन्धान् विमोक्षयन्॥
कृत्स्नोऽर्द्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः।
एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः॥ (भावप्र०)

वायु कुपित हो कर शरीरका अर्द्धांश ग्रहण करती है और उसकी एक शिरा तथा स्नायु समूहको शोषण एवं सन्धिबन्धनपूर्वक मस्तकको शिथिल करके देहके वाम या दक्षिणभागके एक पक्षको अर्थात् हाथ, पार्श्व, ऊरु और जङ्घादिको नष्ट कर डालती है। इस रोगमें शरीरका अर्द्धभाग किसी कामका नहीं रहता। इस अङ्गमें सामान्यरूपसे स्पर्शज्ञानादि रहता है। इसीको एकाङ्ग वात या पक्षवध अथवा पक्षाघात कहते हैं।

पक्षाघातका साध्यासाध्य लक्षण—पक्षाघात पित्तसंसृष्ट वायु कर्तृक होने पर गात्रदाह, सन्ताप, अन्तर्दाह और मूर्च्छा तथा कफसंसृष्ट वायुकर्तृक होने पर शीत बोध, देहका गुरुत्व और शोथ होता है।

किसी वायुकर्तृक पक्षाघात होने पर कृच्छ्रसाध्य और अन्य दोष अर्थात् पित्त और कफका संस्रव रहनेसे वह साध्य समझा जाता है। धातुक्षय जन्य पक्षाघात असाध्य है। गर्भिणी, सूतिकाग्रस्त बालक, वृद्ध, क्षीण और जिसके रक्तका क्षय हुआ हो, उनके पक्षाघातरोगको असाध्य समझना चाहिये। इस रोगमें यदि रोगीको दर्दका अनुभव न हो तो उसे भी असाध्य जानना होगा।

भावप्रकाशके मतसे इसकी चिकित्सा इस प्रकार है—माषादिक्वाथ अर्थात् उरद, कौंचकी फली, भिलावेंकी जड़, अड़ूस और जटामांसी सब मिला कर २ तोला, जल आध सेर, शेष आध पाव, इसका भलीभांति काढ़ा बना कर उसमें एक माशा हींग और एक माशा सैन्धव डाल दे। इसके पीनेसे पक्षाघात प्रशमित होता है।

ग्रन्थिकादितैल—तैल ६४ सेर, कल्कार्थ पीपल, चीता, पीपलमूल, सोंठ, रास्ना और सैन्धव सबोंको मिला कर एक सेर। क्वाथार्थ उरद १६ सेर, जल १ मन २४ सेर, शेष १६ सेर। इस तेलको यथाविधानसे पाक कर सेवन करनेसे पक्षाघात रोग जाता रहता है।

माषादितैल—तैल ४ सेर, कल्कार्थ उरद, कौंचकी

कल्कोंका योग, धतूरा, पत्तोंका रस, रास्ना, शतमूली और मैनफल सब मिला कर एक सेर, काथार्थ उरद १६ सेर जल १ मन १४ सेर शेष १६ सेर, बकरा १६ सेर जल १ मन २४ सेर, शेष १६ सेर। यथानियम इस तैलको पाक कर व्यवहार करनेसे पक्षाघात अच्छा हो जाता है। (भावप्र० व्याधि)

सुश्रुतमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—भगवान् स्वयम्भू वा वायु नामसे अभिहित हैं। वह वायु जब कुपित होती है, तब नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। वायु अत्यन्त कुपित हो कर अधः ऊर्ध्व और तिर्यग्गामिनी धमनियोंके मध्य प्रवेश करती है, तब वह एक पार्श्वके सन्धिबन्धनको शिथिल कर डालती है। इससे शरीरका एक पार्श्व नाश हो जाता है, इसीसे इसको पक्षाघात कहते हैं। वायु द्वारा आक्रान्त हो कर शरीरका समस्त वा अर्द्ध भाग अकर्मण्य और निश्चेष्ट हो जाने पर रोगी उसी समय जमीन पर गिर पड़ता है, या प्राणत्याग करता है। पक्षाघात केवल वायुजन्य होने पर कष्टसाध्य हो जाता है। इस वायुके साथ यदि पित्त वा श्लेष्मा मिला हो, तो वह सहजमें आरोग्य हो जाता है। क्षयजन्य पक्षाघातको असाध्य समझना चाहिये।

(सुश्रुत निदानस्थान १ अ०)

यह पक्षाघातरोग वातव्याधिका एक भेद है। वायु कुपित हो कर जो यह रोग उत्पन्न करती है, उसीको वातव्याधि कहते हैं। पक्षाघातरोगमें रोगीका शरीर म्लान नहीं होने पर तथा शरीरमें वेदना रहने पर रोगी यदि संयतेन्द्रिय और उपकरणविशिष्ट हो, तो उसकी चिकित्सा विधेय है। पहले स्नेह स्वेदादि द्वारा अपतर्पण करा कर रोगीको संशोधन करा लेना चाहिये। पीछे अनुवासन और आस्थापनका प्रयोग करना चाहिये। अन्तमें वातव्याधि रोगकी विधानानुसार चिकित्सा विधेय है। कुछ दिन तक यदि विशेषरूपसे चिकित्सा की जाय तो रोग अवश्य आरोग्य हो सकता है। (सुश्रुत)

एलोपैथीके मतमें पक्षाघात वा पार्श्विक अवशता पांच विभिन्न कारणोंसे उत्पन्न होती है—(१) मस्तिष्कके भीतर दोनों ओर और वातिवहरज्जुके मध्य भागमें रक्तस्राव, (२) शिराविरिया वा सन्यासादजनोंका परिणाम (३) विषजात्यका नाना प्रकार अवशता, (४) हिस्टीरिया, (५) वयस्क अवशताको शैशवकी। इत्यादि विभिन्न शारीरिक अवशताका विषय पाश्चात्य मतानुसार यथास्थानमें लिखा जायगा।

शरीरका अर्द्धांश वा अनुप्रस्थभागमें एकतरफ होने पर उसे पक्षाघात (Hemiplegia) कहते हैं। अंगरेजी भाषामें इसका पर्याय है (Paralytic Stroke)। स्नायु मस्तिष्कसे सुषुम्ना शीर्ष (Medulla oblongata) पहुंचने पर, वहां स्नायुकाण्ड तिर्यक् भावसे गमन करता है। उसके ऊपरी भागमें यदि कोई वैधानिक पीड़ा रहे, तो विपरीत पार्श्वमें अवशता दीख पड़ती है। लेकिन यदि निम्नांशमें कोई परिवर्त्तन हो, तो जो पार्श्व पीड़ित है, उसी पार्श्वमें अवशता होती है। फिर यह भी देखा जाता है कि Corpus Striatum अथवा आभ्यन्तरिकपोष (Internal Capsule)-के ऊपर रक्तस्राव वा अन्य कोई परिवर्त्तन होने पर, तो केवल अवशता एवं दर्शनशक्तिका मध्य और मस्तिष्कके द्वारा दोनों ओर Optic thalamus)-के ऊपरका ... नाश हो जाता है और तब स्पर्शशक्तिका ह्रास होता है। मस्तिष्क और मज्जाका वैधानिक परिवर्त्तन इस रोगकी उत्पत्ति है। किन्तु अन्यान्य व्याधिमें मस्तिष्ककी क्रियाका व्यतिक्रम होने पर भी यह रोग हो सकता है। यथा—मृगी, कोरिया, हिष्टिरिया आदि। उपदंश रोग भी इसका एक भारी कारण है।

लक्षण।—मस्तिष्कके मध्य मृदु परमसौ कोमलता अथवा सामान्य परिमाणमें रक्त जम (clot) दिखाई पड़नेसे पीड़ा आरम्भ होती है और रोगीको ज्ञान रहता है। किन्तु अधिक रक्तस्राव होनेसे रोगी ज्ञानशून्य हो जाता है। रोगके आक्रमणकालोंके तारतम्यानुसार रोगीके शरीरमें जो सब विभिन्न विभिन्न लक्षण देखे जाते हैं उनमेंसे कईकी आलोचना की गई। प्रथममें पक्षाघात (Hemiplegia with consciousness) होनेसे रोगी हाथ वा पैरमें किसी प्रकार अस्वाभाविक अवशता अनुभव करता है जो क्रमशः वर्द्धित हो कर अङ्गके एक पार्श्वका हस्त और पदको अवश कर डालती है। ज्ञानशून्य अवस्थामें

अर्द्धाङ्गाक्षेप (Hemiplegia without consciousness) होनेसे कितने ही पार्थिव लक्षण दीख पड़ते हैं, यथा—वाक्यकी अस्पष्टता, स्थानिक अवशता, मुखके एक पार्श्वकी आकृष्टता, स्मरणशक्तिका ह्रास और बीच बीच में वमन. पीछे रोग प्रबल होने पर आक्षेप और अचैतन्य हुआ करता है। इसके सिवा और भी कितने साधारण लक्षण हैं जिनसे रोग सहजमें पहचाना जा सकता है।

अर्द्धाङ्गाक्षेप रोग पूर्ण और असम्पूर्णके भेदसे दो प्रकारका है। मस्तिष्कके मध्य अधिक रक्तस्राव होनेसे उसमें दर्द मालूम पड़ता है। यदि मस्तिष्कके दक्षिण पार्श्वमें रक्तस्राव हो, तो वाम पार्श्व आलम्बन भावसे अवश होते देखा जाता है और मस्तिष्क तथा दोनों चक्षु धीरे धीरे दक्षिणकी ओर आकृष्ट होते हैं। वाम भागका ऊर्ध्व अक्षिपल्लव किञ्चित् अवनत, वामहस्त और पद तथा मुखका वाम पार्श्व अवश, जिह्वा बहिर्गत करनेसे अवशाङ्गकी ओर वक्र और वक्ष तथा उदरकी वामपार्श्वस्थ पेशियां सामान्य भावमें क्षीण और अवश मालूम पड़ती हैं। हस्त मस्तिष्कके निकटवर्त्ती होनेसे अवशता अधिक परिमाणमें और पद दूरवर्त्ती होनेसे वह अपेक्षाकृत अल्पमात्रामें हुआ करता है। सुतरां अधिकांश जगह पदका पक्षाघातरोग पहले आराम हो जाता है। उदर और वक्षकी पेशीकी अवशता शीघ्र ही दूर हो जाती है। मस्तिष्क अथवा उसकी झिल्लियोंके (Meninges) मध्य अधिक रक्तस्राव होनेसे हस्त पदकी अवशताके साथ दृढ़ता वर्त्तमान रहती है। मस्तिष्ककी कोमलताके हेतु इस रोगमें हस्तपदकी पेशियोंकी शिथिलता देखी जाती है, किन्तु कोमलता या क्षतस्थान क्रमशः सङ्कुचित अथवा उसके मध्य घातक, उत्पन्न होनेसे उक्त पेशियां दृढ़ हो जाती हैं। इस पीड़ामें चतुर्थ और षष्ठ स्नायु तथा पञ्चम स्नायुका चालक अंश (Motor) कभी कभी आक्रान्त हुआ करता है। किसी किसी स्थानमें चक्षुपल्लव संयुक्त पेशी भी सामान्य भावमें अवश हो जाती है। पीड़ित अङ्गके पार्श्वदेशमें स्पर्श और तापका अनुभव नहीं होता। पञ्चम और नवम स्नायुके आक्रान्त होनेके कारण रोगी साफ साफ नहीं बोल सकता। पीड़ित मांसपेशियोंमें प्रत्यावर्त्तनिक क्रिया हुआ करती है और जानुकास्थि (Petella)-की प्रतिक्षिप्त क्रिया वर्धित और गुल्फ-सन्धिका प्रक्षेपण भी दीख पड़ता है। पेशियां एकबारगी क्षयप्राप्त नहीं होतीं। पीड़ाकी तरुणावस्थामें पेशियां वैद्युतिक स्रोत द्वारा स्वाभाविक अथवा अधिक परिमाणमें सङ्कुचित होती हैं किन्तु रोग पुरातन होने पर उक्त सङ्कोचन अति सामान्य परिस्फुट हुआ करता है। चलते समय रोगी सुस्थभागकी ओर कुछ झुक कर चलता है। पीड़ितस्कन्ध उच्च और हस्तु वक्षके पार्श्वमें आन्दोलन करके पद कुछ गोलाकार भावमें (Circumduction) सञ्चालन करता है। पैरकी उंगलियां भूमिकी ओर झुकी रहती हैं। दक्षिण पार्श्वकी अवशतामें कोमलता पहुंच जाती है। मस्तिष्क क्रियाके व्यतिक्रम हेतु जो पीड़ा उत्पन्न होती है उसमें अर्थात् गुल्मवायु (Hysteria), अपस्मार (Emleptic) और ताण्डवरोग (chorea) आदिमें मुख आक्रान्त नहीं होता। गुल्मवायुरोगजनित पीड़ामें रोगी अपने शरीरको पश्चिमकी ओर निक्षिप्त और अवनत करके पीड़ित पदको खिंच कर चलता है। मज्जाके वैधानिक पीड़ाघटित अर्द्धाङ्गाक्षेप रोगमें रोगीको ज्ञान रहता है और मुख आक्रान्त नहीं होता। अर्द्धाङ्गाक्षेपका यान्त्रिकविकार होनेसे रोग आरोग्य नहीं होता, अन्यान्य प्रकारके रोग आरोग्य हो जाते हैं।

चिकित्सा। तरुण अवस्थामें मस्तक ऊंचा करके रोगीको शयनावस्थामें रखे। यदि पीड़ित अङ्गकी पेशियां दृढ़ रहे, तो रक्त मोक्षण या ग्रीवाके ऊपर आर्द्र कपिं करना विधेय है। पीछे कालामेल ५ ग्रेन और वेष्टर आयल १ ग्रांस अथवा बुंद क्रोटन आयलको चीनीके साथ मिला कर सेवन करावे। अनन्तर पोटाशी आयोडाइड पांच ग्रेन मात्रामें ३।४ घण्टेके पीछे देना आवश्यक है। यदि सभी मांसपेशियां शिथिल हो जांय, तो ग्रीवामें ब्लिष्टार तथा बलकारक औषधकी व्यवस्था करे। रोग पुरातन हो जाने पर पीड़ित अङ्गमें फलानेलका अम्धन, मर्दन और वैद्युतिक स्रोत संलग्न करना विधेय है। तरुणावस्थामें अथवा शिरःपीड़ामें वैद्युतिक स्रोतका संलग्न रहना उचित नहीं। टिंचरष्टील, लाइकरष्टिकनिया और अन्यान्य बलकारक औषध देनी चाहिये।

यदि यह मालूम हो जाय कि इस प्रकारका पक्षाघात पोषणस्थ रोगोंके पहले उल्लेखनीय दशा था तो पोटासी योडाइडका व्यवहार करना चाहिए। मस्तिष्कके कारण यदि पर्याप्त देर हो तो ... पारद और ... होना विशेष उपकारी है। मस्तिष्कमें रक्तस्राव होनेसे स्ट्रिकनिया फलदायक नहीं है। गुल्मवायु आदि रोग-सहित पीड़ामें यथेष्ट पोषण प्रयोग करे।

अन्यान्य रोगोंके साथ मिलनेसे पक्षाघात रोगका विभिन्न नाम हो जाता है। मानसिक पक्षाघात परि-वर्त्तनमें जो पक्षाघात उपस्थित होता है, उसे विकारग्रस्तोंकी पक्षाघात (General paralysis of the insane) कहते हैं। सप्तम स्नायुमण्डलमें पक्षाघात उसको स्फुलाका (Portio Dura) में कोई परिवर्त्तन होनेसे मुखकी मांसपेशियां पक्षाघात हो जाती हैं। इस रोगको Bell's palsy or Facial paralysis कहते हैं। इसके सिवा Paralysis agitans, P. diphtheritic, P. Duchene's, P. Glosso-labio-laryngeal, P. infantile, P. landrys और Scrivener's Paralysis आदि पक्षाघात रोगोंमें भी पोषणादि साथ एक ही हैं। पर इन रोगोंकी पृथक् लक्षण परस्पर भिन्न है।

धर्मशास्त्रमें लिखा है कि यह पक्षाघात रोग महापातकके कारण हुआ करता है। पूर्वजन्ममें जो सब पाप किये जाते हैं, मनुष्य उन पापोंका भोग कर पुनः जन्म लेता है। तब महापातकके चिह्नस्वरूप ये सब व्याधियां हुआ करती हैं। इस प्रकार महापातकका चिह्न सात जन्म तक रहता है। पक्षाघात और कुष्ठादिरोग महापातकज हैं।

जिनको पक्षाघात आदि महापातकज रोग होते हैं, उन्हें प्रायश्चित्त करना पड़ता है। महापातकरोगी यदि प्राय-श्चित्त न करे, तो उसे किसी धर्मकर्ममें अधिकार नहीं रहता और बिना प्रायश्चित्त किए यदि इस रोगसे उसकी मृत्यु हो जाय तो प्रायश्चित्त किए बिना उसका दाह, मरण वा श्राद्धादि कुछ भी नहीं होगा। इस पाप का प्रायश्चित्त करके उसके दाहादि कार्य करने होंगे।

महापातकमें प्रायश्चित्त चान्द्रायण है। यदि यह न कर सके तो पञ्चधेनु दानरूप प्रायश्चित्त विधेय है। इस पञ्चधेनुका मूल्य १५ रु० है। इस पक्षाघातरोगका प्राय-श्चित्त करते समय प्रायश्चित्तको अवश्य लेना होता है। स्मृतिप्रायश्चित्तमें इस प्रकार लिखा हुआ चाहिये।

"पक्षाघातरोगयुक्तचिह्नतापहरार्थ ... प्रायश्चित्त ... कर्तुमर्हसि ... ।"

प्रायश्चित्तके अन्यान्य विवरण प्रायश्चित्त शब्दमें देखो।

पक्षादि (सं० पु०) पक्ष आदिर्यस्य। पाणिनि उक्त शब्द गणभेद। यथा—पक्ष, तुष, तुष कुम्भ, ... अग्नि, ... कुम्भ, सीरक, सरक, ... रोमन्, लोमन्, हस्तिन्, मकर, लोमक, शीर्ष, निवात, पाक, सिंहक, अङ्कुश, सुवर्णक, हंसक, कुत्स, बिल, खिल, यमल, हस्त, कला, सकर्णक इन पक्षादियोंके उत्तर फक् प्रत्यय होता है। (पाणिनि)

पक्षाघात—आयुर्वेदके अन्तर्गत शिराकृत पक्षाघात।

पक्षान्त (सं० पु०) पक्षस्य पक्षयो वा अन्तः। १ पक्षका पूर्णिमा। पर्याय—पञ्चदशी, पर्व, इन्दुक्षय, दर्श, अवर। पक्षान्तमें यात्रा नहीं करनी चाहिये, करनेसे विपत्ति होती है।

"पक्षान्ते विपदं याति ... सुखम्॥"

(ज्योतिस्तत्त्व)

२ पक्षका अवसान।

पक्षान्तर (सं० क्ली०) पक्षस्य अन्तरम्। १ अपर पक्ष, दूसरी तरफ। २ मतान्तर।

पक्षाभास (सं० पु०) १ हेत्वाभास, हेत्वाभासाभास। २ मिथ्या अनुयोग।

पक्षाम्बिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कुमार-की अनुचरी मातृका।

पक्षालु (सं० पु०) पक्षौ विद्यते यस्य पक्ष अस्त्यर्थे आलुच्। पक्षी चिड़िया।

पक्षावसर (सं० पु०) पक्षस्य पक्षान्तरोऽवसरः यत्र। पूर्णिमा, अमावस्या।

पक्षाहार (सं० त्रि०) जो एक पक्षमें सिर्फ एक बार भोजन करते हों।

पक्षिणी (सं० त्रि०) १ पक्षयुक्त। (स्त्री०) २ चिड़िया,

मादा चिड़िया। ३ पूर्णिमा। ४ दो दिन और एक रातका समय। ५ वनकार्पासी, जङ्गली कपास।

पक्षितीर्थ—एक अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र। यह दक्षिणप्रदेशके मन्द्राज नगरसे १८ कोस दक्षिण समुद्र तीरवर्त्ती मद्रस और चिङ्गलपटके मध्यस्थलमें अवस्थित है। इसका वर्त्तमान नाम है तिरुकद्दुकुनरम् (तिरु-क्कजुक्कुनरम्) अर्थात् पवित्र चीलोंका पर्वत। यह पवित्र भूमि एक समय हिन्दू और बौद्ध सम्प्रदायोंके मध्य बहुत प्रसिद्ध हो उठी थी। तारनाथके भारतीय बौद्ध-धर्मके इतिहास नामक तिब्बतीय ग्रन्थमें यह स्थान बौद्धोंका अति पवित्र पक्षिसङ्घाराम नामसे उल्लिखित हुआ है। वर्त्तमान समयमें भी यहांके मन्दिरमें शिव और शक्तिमूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं तथा उन सब देवदेवियों-की पूजा प्रचलित देखी जाती है। किन्तु उक्त मन्दिरमें जैन-प्रादुर्भावके समयकी उत्कीर्ण शिलालिपि भी देखी जाती है। तिरुक्कुकुन्नम् देखो।

यहांके स्थल पुराणसे जाना जाता है कि चारों वेदने किसी समय देवादिदेव महादेवके पास जा कर प्रणति-पूर्वक अपने चिरस्थायी वासके लिये निर्दिष्ट स्थान मांगा और वहां रह कर जिससे वे उनके चरणकी पूजा कर सकें इस प्रकार मनोभिप्राय भी प्रकट किया। उनकी प्रार्थनासे सन्तुष्ट हो कर शिवजीने उन्हें पर्वता-कारमें रूपान्तरित करके परस्पर संलग्न कर रखा और उस पर्वतश्रेणीमेंसे एक पर अपना वासस्थान चुन लिया। यहांकी शिवमूर्त्ति "वेदगिरीश्वर" वा वेद-पर्वतके अधिष्ठातृदेवताके रूपमें पूजित होती है। प्रवाद है कि इस पर्वतके जिस स्थान पर महादेवने एक कोटी रुद्रको रणमें परास्त किया था, वहां उनकी विजयघोषणाके लिये एक मन्दिरका निर्माण किया गया। वह मन्दिर अति प्राचीन और बड़ा है। पूर्वोक्त युद्ध और मन्दिर स्थापनके बादसे यह ग्राम "रुद्रङ्कइल" नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

उपरिउक्त दो मन्दिरोंको छोड़ कर गिरिश्रेणीके पाददेशमें एक और मन्दिर है जो यहांके अन्यान्य मन्दिरों-से बड़ा है। इसके चार गोपुर देखे जाते हैं। मन्दिरा-भ्यन्तरमें शिवकी अर्द्धाङ्गिनी शक्तिदेवी हैं। देवीकी मूर्त्ति कालक्रमसे क्षयप्राप्त होती जा रही है। चैत्र-मासमें देवीके अभिषेकके समय यहां बहुतसे लोग एकत्र होते हैं।

१५वीं शताब्दी तक इस स्थानके माहात्म्यके विषय-में कुछ भी मालूम नहीं। पीछे पेरम्बिल तम्बिरन नामक किसी उपासकके उद्यम तथा वक्तृतासे जन-साधारण शिव-महिमासे विमोहित हुए थे और क्रमशः उन्हींकी चेष्टासे तिरुकद्दुकुन्रम् नवीन आकार धारण कर दक्षिणभारतमें काञ्चीपुरके सदृश तीर्थमालामें विभू-षित हुआ है।

स्थलपुराणके मतसे—जहां देवराज इन्द्रने आ कर महादेवकी उपासना की थी, वह स्थान आज भी इन्द्र-तीर्थ नामसे मशहूर है। प्रवाद है कि इन्द्र शिवपूजा-के उद्देश्यसे प्रति बारहवें वर्ष अपने वज्रको धराधाम पर भेजते हैं। उस समय वज्र पहले पर्वतके ऊपर मन्दिर के शिखर पर आ कर गिरता है। पीछे वह तीन बार मन्दिरस्थ देवमूर्त्तिका प्रदक्षिण कर पर्वतमें विलीन हो जाता है। बारहवें वर्षके अन्तमें विग्रहका यह अद्भुत अभिषेक साधारणतः कौतूहलोद्दीपक और नैसर्गिक माना जाता है। प्रति बारहवें वर्ष इस स्थानसे दो शङ्ख निकलते हैं। शङ्ख निकलनेके दो तीन दिन पहले जल मैला और फेन युक्त हो जाता है और मुहुर्मुहुः गर्जन सुनाई देता है। इस समय नगरवासिगण पुष्करिणी-के किनारे आ कर उत्कण्ठदृष्टिसे शङ्खके उत्थानकी अपेक्षा करते हैं। यथासमय शङ्ख उत्थित होने पर लोग महा-समारोहसे उसे लाते और एक रौप्यपात्रमें रखते हैं तथा नगरप्रदक्षिणके बाद पर्वत शिखरस्थ मन्दिरमें पूर्वोत्थित शङ्खके पास रख देते हैं।

इसके सिवा और भी आश्चर्यका विषय है कि यहां प्रति दोपहरको अर्थात् १२॥से १ बजेके भीतर दो सफेद चीलें आ कर भोजन करती हैं। उक्त दोनों पक्षियोंको आहार देनेके लिये एक पंडा नियुक्त रहता है। वह पंडा दोनों पक्षियोंके आनेके पहले ही पर्वत-शिखर पर चढ़ जाता और चावल तथा चीनी देकर भोजन प्रस्तुत करता है। वहां पक्षियोंके पीनेके लिये कुछ घी भी मौजूद रहता है। दोनों पक्षी यथासमय

पर्वत पर उतरते और मन्दिरमें जा कर शिवमूर्तिको प्रणामपूर्वक पहिले ग्रास भोजन करने आते हैं। भोजन कर चुकने पर परितुष्ट हो वे आकाशको लौट जाते हैं। पीछे यह पक्षा उपस्थित व्यक्तियोंके मध्य पक्षिभुक्त प्रसाद वितरण करते हैं। यह सत्य घटना बहुतोंने अपनी आंखोंसे देखी है। इसी कारण इस पर्वतका तिरुकड़ कुण्डम् नाम पड़ा है। प्रवाद है कि उन दोनों पक्षी पहले ऋषि थे, पीछे किसी पापके कारण से इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं।

पक्षितीर्थमें प्रतिदिन सुबह और शामको स्नान कर पर्वत पर स्वयम्भू देवमूर्तिदर्शन और सतत उनका ध्यान तथा अल्प आहार करनेसे कोढ़ी भी समयके मध्य शुद्ध, पक्षाघात, उन्माद और अन्यान्य नाना रोग उपशम होते देखे जाते हैं। बहुतेरे मनुष्य रोगमुक्त होनेकी आशासे यहां यात्रा करते हैं। अन्यान्य लोगोंके कारण में भी अनेक तरहकी किंवदन्तियां प्रचलित हैं। ये सब अलौकिक घटना सुन कर सुप्रसिद्ध लोकमान्य जोन्स निकारियाने १८६९ ई०को यहां आये और पर्वत पर प्रणाम पहित कर गये हैं।

पक्षिन् (स० पु० स्त्री०) पक्षी विशेष यस्य पक्ष इनि। विहङ्गम, चिड़िया। पक्षी देखो।

पक्षिपति (स० पु०) पक्षियों पतिः ६-तत्। १ पक्षिराज। २ सम्पाति।

पक्षिपात (स० पु०) पतङ्गज्वर।

पक्षिपानीयशालिका (स० स्त्री०) पक्षियों पानीयस्य पानार्थं सम्बन्ध शालिका। पक्षोका जलपानस्थान, वह जगह जहां चिड़िया आ कर पानी पीती है।

पक्षिपुङ्गव (स० पु०) पक्षिश्रेष्ठ जटायु।

पक्षिप्रवर (स० पु०) पक्षिश्रेष्ठ, गरुड़।

पक्षिमृगता (स० स्त्री०) पक्षित्व और मृगत्व।

पक्षिराज (स० पु०) पक्षियों राजा, टच् समासान्त। गरुड़ जटायु।

पक्षिल (स० पु०) दक्षिणस्वामी, वात्स्यायन। इन्होंने न्यायसूत्रका भाष्य प्रणयन किया।

पक्षिवराति (स० पु०) स्वनामख्यात शालिवाहन विहङ्ग, पक्षिराज बाज।

पक्षिशाला (स० स्त्री०) पक्षियों शाला ६-तत्। नीड़, बासा। इसका पर्याय कुलायिका है।

पक्षिसिंह (सं० पु०) पक्षी सिंह इव, अथवा पक्षिषु सिंह श्रेष्ठः। पक्षिराज, गरुड़।

पक्षिस्वामिन् (स० पु०) पक्षियों स्वामी। गरुड़।

पक्षी (स० पु० स्त्री०) पक्षो विद्यते यस्य पक्ष-इनि। विहङ्गम, चिड़िया। पर्याय—खग, विहङ्ग, विहग, विहङ्गम, विहायस्, शकुन्ति, शकुनि, शकुन, शकुन्त, द्विज, पत्रि, पक्षिन्, पतग, पतत्, पतत्र, अण्डज, नभोगम, वाजिन्, विकिर, वि, विष्किर, पतत्रि, नीड़ोद्भव, गरुत्मत्, विहङ्गम, नभसङ्गम, नाड़ीचरण, कण्ठाग्नि, पतङ्ग, नभोगम, नखायुध, कुलग्न, सरघा, विपक्षिणु, पत्ररथ और खग।

पक्षियोंकी उत्पत्तिका विषय वह्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

'अरुणस्य भार्या श्येनी वीर्यवन्तौ महाबलौ।
सम्पातिश्च जटायुश्च प्रसूतौ पक्षिसत्तमौ॥' (वह्निपु०)

अरुणकी भार्या श्येनी थी, इसी श्येनीने पहले पहल जटायु और सम्पाति नामक दो पक्षी प्रसव किये। उन्हीं दोनोंसे पक्षी जातिकी उत्पत्ति है। दूसरी जगह लिखा है—जलचर, स्थलचर और आकाशगामी पक्षी कीच गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। मत्स्यपुराण और विष्णुपुराणमें लिखा है—शुकी, श्येनी, भासी, गृध्री, शुचीग्री और ग्रीवा ये छः ताम्राकी कन्या थीं। इनमेंसे शुकीके गर्भसे शुकगण और उलूकगण, श्येनीके गर्भसे श्येनगण, भासीके गर्भसे भास और कुररपक्षिगण, गृध्रीके गर्भसे गृध्र, कपोत और पारावत जातीय पक्षी, शुचीग्रीके गर्भसे हंस, क्रौञ्च, गर्दभ और बक तथा ग्रीवाके गर्भसे अश्व, सारस, कारण्डव और भासगण उत्पन्न हुए हैं।

भावप्रकाशके मतसे जो सब पक्षी भूचर हैं, वे उष्णवीर्य और मधुर तथा अनूपदेशज पक्षी अभिष्यन्दक स्निग्ध और गुरु होते हैं। सचाके पक्षोंमें किञ्चित् स्निग्ध पुष्टिकारक, मधुरस वायुनाशक गुरु और वलकर शुक्रवर्द्धक गुण माना गया है। (भावप्रकाश)

पक्षी अण्डज जीव है। ऐसे सब जीवोंके दो बार होते हैं, पहले जो जनन हो पीछे है, इसीसे ये द्विज

मार्ग आकाशमें इधर उधर उड़ सकते हैं। इनके मुखविवरसे ले कर ओष्ठाग्रभाग तक कठिन अस्थिके सदृश चञ्चुयुक्त है। चञ्चुके ऊपरी भागमें दो छोटे छोटे नासाछिद्र हैं। उदरके अधोदेशमें केवल दो पैर हैं, उन्हींसे वे वृक्षादिकी शाखा, मृत्तिका, पर्वत और गृहादिकी छतके ऊपर खड़े हो कर जिधर तिधर इच्छानुसार गमनागमन कर सकते हैं। दोनों पैरके मध्यस्थानमें गांठ रहती है। प्रत्येक पैरमें चारसे पांच अङ्गुल और उनके अग्रभागमें टेढ़े किन्तु तेज नाखून होते हैं। ये दोनों पैर समय समय पर हाथके भी काम करते हैं। विशेषतः बाज, शिकरे (Hawks) आदि पक्षियोंके लिए ये विशेष उपयोगी हैं। दोनों पैरके पश्चाद्भागमें मलत्याग वा जननेन्द्रिय-विवर और उसके भी पश्चाद्भागमें पुच्छ रहता है। पूंछ और डैनेमें साधारणतः बड़े बड़े पर जमते हैं तथा समूचा शरीर पशम सरीखे कोमल छोटे छोटे परोंसे ढका रहता है। इनके ऊपरके पर इतने चिकने होते हैं कि उन पर ज़रा भी पानी नहीं ठहरता। यही कारण है कि वनके मध्य खुले मैदानमें जब वृष्टि होती है तब इनका शरीर भींग कर भारी नहीं होता। अतः इस समय यदि कोई उन्हें पकड़ने जाय ,तो वे सहजमें उड़ सकते हैं।

पक्षीमात्र ही खेचर हैं, क्योंकि ऐसा एक भी पक्षी नहीं जो कुछ भी उड़ना नहीं जानता हो, लेकिन जो कम उड़ सकते (अर्थात् जो हमेशा जमीन पर चला करते हैं) और जो अन्यान्य पक्षीकी अपेक्षा भारशील हैं, वे ही स्थलचर कहलाते हैं—जैसे सारसके सदृश पक्षी, उष्ट्रपक्षी, कुक्कुट प्रभृति। एतद्भिन्न स्थलचर होने पर भी जो सब पक्षी स्वतः ही जलमें विचरण करना पसन्द करते और जलसे साधारणतः खाद्यवस्तु संग्रह किया करते हैं, वे जलचर पदवाच्य हैं। जैसे, वक, पनडुब्क आदि।

प्राणितत्त्वज्ञोंने जलचर पक्षियोंके मध्य कुछ सामान्य लक्षण निर्देश करते हुए उनकी तालिका निर्णय किया है। उन सब लक्षणोंमें अङ्गुलाभ्यन्तरस्थ एक प्रकार-का चर्मसूत्वक् ही प्रधान है जिसकी सहायतासे ये आसानीसे पानीमें तैर सकते हैं। इसीसे इनका एक और नाम रखा गया है, जालपाद। यह जाल (सूत्व-त्वक्) इनके पदके पुरोभागस्थ तीन उंगलियोंमें पर-स्पर संलग्न है। इनके दोनों पैर देहके पश्चाद्भागमें स्थापित है। जातिभेदसे इन पद ... का तारतम्य देखा जाता है। पेङ्गुइन नामक पक्षीके पद अक्सर पुच्छमूलमें संलग्न रहते हैं। इस कारण जब ये जमीन पर बैठते हैं, तब खड़े जैसे मालूम पड़ते हैं। इस श्रेणीमें १म शीतप्रधान देशज पेङ्गुइन और २य निमज्ज-आदि, ३य गगन-भेडादि, ४र्थ गान-कोटादि, ५ गाङ्ग-चिल्लादि और ६ष्ठ हंसादि हैं।

शकुनशास्त्रविदोंने पक्षिवर्गको इस प्रकार आठ गणोंमें विभक्त किया है—

१म शाखाचारी (Passeres) अर्थात् जो सर्वदा वृक्ष की शाखा पर विचरण करते हैं, यथा—चटक, काक, नीलकण्ठ टुनटुनी, श्यामा आदि।

२य काण्डचारी (Scansores) अर्थात् जो वृक्ष-काण्ड पर विचरण करते हैं,—जैसे, दार्वाघाट (कठ-फोड़ा), टोकान, काकातूआ, नूरी टोया आदि।

३य द्रुतचारी (Carsores) अर्थात् जो पृथ्वी पर बहुत फुर्तीसे पैर रख कर चलते हैं, जैसे—शाहमरग, कशोवारी, उष्ट्रपक्षी आदि।

४र्थ जलचारी (Grallatores) अर्थात् जो जलमें विचरण करते हैं,—जैसे, वक, सारस, पनडुब्क आदि।

५म तरपदी (Natatores) अर्थात् जो पद द्वारा तैरते हैं,—जैसे, हंस, पेङ्गुइन।

६ष्ठ घर्षकपदी (Rasores) अर्थात् जो पक्षी नख द्वारा भूमि विदारण करते हैं—जैसे, कुक्कुट, मयूर, मोनाल, तीतर आदि।

७म कापोतक (Columbæ) अर्थात् पारावत और उसीके समान पक्षी, जैसे पायरा, घूघू इत्यादि।

८म आखेटक (Raptores) अर्थात् जो सब पक्षी आखेट वा शिकार करके अथवा मांस-भक्षण द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं,—जैसे, पेचक, बाज, शिकरा, चील, गीध ..., शकुनि इत्यादि।

प्राणितत्त्वविदोंने पक्षिजातिका आभ्यन्तरिक गठन और अस्थ्यादिके संस्थानकी आलोचना करके इनके मध्य

कुछ जातिगत पार्थक्य बतलाया है। कहीं नानाजातीय पक्षियोंके मध्य पक्षविस्तार पादकी विशेषता कर इन्हें भिन्न जातियोंमें विभाग किया है। पक्षिजातिके शरीरतत्त्वकी आलोचना करनेसे विज्ञानविद् पक्षितत्त्व मस्तिष्क पदतल पुच्छ और कुक्षास्थि आदिका आकार समावेश और विभिन्नता दिखा कर जिस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं उसका विवरण सहजबोध्य नहीं है। शरीरतत्त्वज्ञ व्यक्तिगण यदि इस विषयमें आलोचना करें तो वे बहुत कुछ समझ सकेंगे। साधारणतः जो सब विषय जल्दीसे सबकी समझमें बोध हो सकता है, उसीका यहां पर उल्लेख किया गया।

प्रथमतः पक्षिजातिका कोई विभाग निर्देश करनेमें उनका आकारगत पृथक्त्वरूपसे वर्णन करना उचित है। जैसे कुछ पक्षियोंकी पूंछ शरीरकी अपेक्षा बड़ी और कुछकी छोटी है। किसीमें चरम पक्षक अस्थि और किसीके मध्य अस्थि है। किसीकी भी कुक्षास्थि सरल और अच्छी नहीं है। इस प्रकार छोटे छोटे तत्त्वोंके अनुवर्ती हो कर शङ्कुमांसादिमें निर्देश किया है कि जिन सब पक्षियोंके डैनेकी मोटी अस्थि-सम्पन्न पक्षाङ्ग किसी अन्य सहज पक्षियोंकी अपेक्षा छोटी है तथा कुछ पक्षियोंकी कुछ बड़ी है, वे दो श्रेणीकी श्रेणी (Group) युक्त और अपटेरिजिडि (Apterygidoe) शाखाके अन्तर्गत हैं। जिनकी कुक्षास्थि वैसी नहीं है वे डिनरनिथिडी (Dinornithidoe) और कजुयारिआइडि (Casuaridoe) शाखाके मध्य परिगणित हुए हैं। जिनकी प्रमस्तास्थि बड़ी और शाखाकी दो अङ्गास्थिसमन्वित है तथा जिनकी बहुधारिस त्रिकास्थि (पश्चद्भागकी निम्न प्रान्तस्थ अस्थि)में आ कर मिल गई है और उदराभ्यप्रदेश परिच्छन्न है, उस शाखाका नाम रिहो (Rheidae) है अमेरिका देशीय शुतुरमुर्ग (Ostrich) इसी शाखाके अन्तर्गत है। जिन सब पक्षियोंकी बहुधारिस प्रबल और उदराभ्यप्रदेश तलपेटकी उपरस्थित हो सन्धिमें बद्ध है इसी शाखामें (Struthionidoe) अफ्रिका और अन्यान्य स्थानवासी शुतुरमुर्ग लिये जा सकते हैं। इसी प्रकार जिन सब पक्षियोंकी नानाकार कारिस पक्षाङ्गमें प्रशस्त हो तथा तालुसम्पर्कीय पक्षसत् पक्षियोंके मध्यभागमें और गलेका उपदेश कोणाकार पक्षिविशिष्ट हो तो उन सबोंको कैरिनेटी (Carinatae) कहते हैं।

फिर जिन सब पक्षियोंकी नानाकारकारिस पक्षाङ्गमें उनकी और गलेकी उपदेश कोणाकार अस्थि तालु और उपर शाखान्तरमें पक्षयुक्त पक्षियोंके साथ अधिक है तथा जिनके तालु सम्बन्धीय अनुरूप सरल और नाना कारकारिस सुगाम है वे सब पक्षी Carinatae श्रेणीके अन्तर्गत होने पर भी उनके मध्य विभिन्न शाखा और विभिन्न नाम देखे जाते हैं। उदाहरणस्वरूप उनमेंसे एकका विवरण नीचे लिखा जाता है। जैसे होमार पक्षी (Plover) इस लोगोंके देशमें इसे तोतर कहते हैं। विज्ञानविदोंने इसे Carinatae श्रेणीभुक्त करके भी इनके मध्य कार्सोरिना (Cursorina) और कारादिना (Charadrinoe or Charadriomorphoe) नामक दो स्वतन्त्र शाखा निर्देश की है और देश तथा स्थानकी भेदसे इस जातिके पक्षियोंमें आकृतिगत वैलक्षण्य देख कर उन्हें एक एकका विभिन्न नाम रखा है। तोतर पक्षीकी प्रथमोक्त शाखामें Indian courier, Double banded, Large Swallow and Small Swallow एवं निम्नोक्त शाखामें Grey Golden, Large sand, Small sand, Kentish ring, Indian ringed और Lesser ringed आदि जातियां भारतमें देखी जाती हैं। एतद्भिन्न चील बाज, हुद्‌हुद, पारावत, बक आदि पक्षी जातिके मध्य अन्य जातिगत विभाग और नामान्तरत्व लक्षित होता है। कपोत और बाज प्रभृति शब्द देखो।

इसके बाद अण्डोंसे बच्चोंकी और तत्सम्बन्धीय पक्षि तथा अस्थ्यादिकी उत्पत्ति और वृद्धिके सम्बन्धमें जैसी गंभीर आलोचना की है उसका उल्लेख करना निष्प्रयोजन है। किस प्रकार अण्डाके मध्य शुक्ल भाग पक्षोंमें परिणत होता है, वह किस प्रकार बढ़ कर परिपुष्ट होता है और प्रसवान्तमें उसके पीछे थोड़ेमें बाद क्या क्या अवस्थान्तर होता है, सं‌क्षेपमें उसीका आभास यहां दिया जाता है।

सभी जातिके पक्षी एक समयमें अण्डे नहीं देते।

ऋतु और कालभेदसे ये घोंसले बनाते और सन्तान उत्पादन करते हैं। अकसर देखा जाता है कि काक, चील, शालिख प्रभृति विभिन्न श्रेणीके पक्षिगण विभिन्न समयमें अण्डे देते हैं। इन अण्डोंकी बाहरी आकृतिसे इनकी जातिगत पृथक्ता जानी जाती है। साधारणतः अण्डोंकी एक ओर कोणाकार और दूसरी ओर गोलाकार होती है। कोणाकार अंश ही पहले प्रसव पथ हो कर बाहर निकलता है और साथ साथ मोटे गोल अंशके लिये पथ परिष्कार कर देता है। इसी प्रकार सभी पक्षी अण्डे प्रसव करते हैं, सो नहीं, कहीं कहीं इसका वैलक्षण्य देखा जाता है। एतद्भिन्न विभिन्न जातीय पक्षीके अण्डावरक कठिन त्वक्के ऊपर विभिन्न प्रकारका रंग देखा जाता है। विज्ञानविदोंका कहना है कि जरायुसे प्रसवद्वारमें आनेके समय वह वहांसे एक प्रकारके रंगीन पदार्थमें लिप्त हो बाहर निकलता है। बादमें देखा जाता है कि अंडोंके ऊपर भिन्न भिन्न रंगोंके भिन्न भिन्न दाग पड़े हैं। ये सब दाग उन पर समान भावसे नहीं पड़ते। पितामाताके दुर्बल होने पर अण्डेको वृहत् आकृतिके कारण गर्भद्वारमें अटक जानेसे तथा भीत अथवा अत्यन्त उत्तेजित होनेसे भी डिम्बके ऊपर रंगकी अल्पता बयस जितनी अधिक होगी, उसके ऊपरका रंगीन दाग भी उतना ही उज्ज्वलतर होता है। जो मादा दो वा दोसे अधिक अण्डे देती हैं उनके प्रथम अण्डों पर रंगकी अधिकता और परवर्त्ती अंडों पर रंगकी अल्पता लक्षित होती है। इन सब अंडोंमें यदि कुछ अन्तर पड़ जाय, तो भी वे एक जातिके समझे जाते हैं। चडाई नामक एक प्रकारकी चिड़िया (Passer montanus) है जो ५से ६ अंडे एक साथ देती है, ये सब अंडे भिन्न भिन्न तरहके होते हैं। अन्तिम अंडा बिलकुल सफेद होता है। हंस और कुक्कुट मादा प्रायः १५ अंडे देती है। इसके प्रथम प्रसूत अंडेकी अपेक्षा शेष अंडे अपेक्षाकृत छोटे देखे जाते हैं।

इसके बाद उन्होंने डिम्बके आवरक कठिन त्वक्की मसृणता सादृश्य आदि देख कर इनका जातिगत पार्थक्य निर्देश किया है। उनका कहना है कि उत्तर अफ्रिकाके उष्ट्रपक्षीका डिम्ब हस्ति-दन्तके सदृश मसृण और उत्तमाशा अन्तरीपके निकटवर्त्ती स्थानजात उष्ट्रपक्षीका डिम्ब खुरखुरा और वसन्तकी तरह व्रणचिह्नयुक्त होता है। ये दो सादृश्यगत विभिन्नता रहने पर भी उनकी जातिगत कोई पृथक्ता देखी नहीं जाती। इसी कारण उन्होंने इस पक्षी (Ratitae)-को श्रेणीभुक्त करके विभिन्न शाखाओंमें विभक्त किया है। अण्डेकी आकृतिकी भिन्न भिन्न तरहसे आलोचना करके भी उन्होंने इनकी पृथक्ता स्वीकार की है। पेचक (Strigidae) जातीय पक्षीका डिम्ब प्रायः गोल होता है। जिन सब पक्षियोंका डिम्ब न्यूनाकार गोल न हो कर कुछ लम्बा हो गया है, उनमेंसे कुछ Limicolae और कुछ Alcidae शाखाभुक्त है। फिर वनकुक्कुट (Pterocleidae) जातीय पक्षियोंका अण्डा नलकी तरह बहुत कुछ गोल होता है। इसके सिवा शकुनविदोंने डिम्बका आकृतिगत वैषम्य दिखा कर इनका विभिन्न जातित्व निरूपण किया है। दाँड़काक (Corvus Corax) और गिलेमट (The guillemot) एक आकृतिके होने पर भी दोनों पक्षियोंके डिम्बमें बहुत अन्तर देखनेमें आता है। डिम्बकी आकृतिमें १से १० इस प्रकार प्रभेद है। कादाखोंचा (Snipe or Scolopax gallinago) और ब्लाकबर्ड (Black Bird or Turdus merula) पक्षीके डिम्बमें भी इसी प्रकार असादृश्य देखा जाता है। कादाखोंचा और Partridge (Perdix cinerea) पक्षीका डिम्ब समानाकृतिका होने पर भी इनमें विशेषता यह है कि कादाखोंचा केवल चार अण्डे प्रसव करती है, किन्तु पेटिज चिड़िया साधारणतः १२से कम प्रसव नहीं करती।

अण्डाप्रसव होनेसे साथ ही वे गरमी देना आरम्भ करते हैं। जो बारह अण्डे पारती वे भी प्रथमसे ही गरमी देती हैं। कोई कोई शाखाचारी (Passeres) जातीय चिड़िया डिम्ब फोड़नेके लिए १०।११ तक उसे सेवती है, अन्यान्य जातियोंके मध्य कोई १३; कोई २१ और कोई २८ दिन तक गरमी पहुंचानेके लिए अण्डेको डैनेसे छिपाये रहती है। फिर जलचर और शिकारी पक्षियोंका डिम्ब फूटनेमें एक माससे अधिक समय लगता है। हंसका

डिम्ब फूटनेमें प्राय: ८० घण्टेका समय लगता है। डिम्बमें गरमी पहुंचा कर तथा निकालनेका विशेष आदि पक्षीका काम है। एक जातिका ऐसा भी पक्षी है जिस में एकमात्र पुरुषके ऊपर यह भार सौंपा जाता है। यह पक्षीगण बालुमय स्थान या मट्टीको खोद कर उसीमें डिम्ब दे रखते हैं और पीछे उन बच्चोंको मट्टीसे ढक देते हैं। सिर्फ बच्चा पालना ही मादाका काम है, उनको देखरेख नर करता है। डिम्बके समय में विशेष रूपसे बच्चे सूर्यके उत्तापसे उत्पन्न होते हैं। बादमें मादा आ कर बच्चोंको देखती है। कुछ पक्षी ऐसे हैं जो अपने बच्चे सेवना नहीं जानते। इस श्रेणीके देशकी कोयल और अमेरिकाका मकाइंपक्षी (Cowbird) दोनों ही दूसरेके घोंसलेमें अण्डे देते हैं।

डिम्ब सेवनेके चार दिन बाद ही अर्थात् चौथे दिन-के शेष भाग और पांचवें दिनके आरम्भसे डिम्बके भीतर का कुसुम और श्वेत रूपान्तरित होने लगता है अर्थात् शावकको खोपड़ीकी गठन। सूत्रपात इसी समय होता है। पहले यह तरल पदार्थमें ढका हो कर रूपान्तरमें परिणत होता है, पीछे धीरे धीरे यह खोपड़ी मजबूत और सुदृढ बिल्कुल मालूम पड़ती है। यह खोपड़ी भी कुछ दिन बाद क्रमश: स्वच्छ पर्दामें रूपान्तरित होती है। इस प्रकार क्रमश: शावकक्रमानुसार गरमी देनेके बाद डिम्बके भीतर पक्षीकी गठनप्रणाली किस प्रकार निष्पादित होती है यह अच्छी तरह समझा जा सकता है। डिम्बसे शावकके निकलने पर और उसकी नासिकाके गिर जाने पर पीला पक्षी दिखाई पड़ता है। किन्तु इस समय भी गरमी पानेके लिए उन शावक को पिता या माताके डैनेके नीचे रहना पड़ता है। क्रमश: दो चार दिन बाद उनके शरीरमें सूक्ष्म सूक्ष्म रोम निकलते देखे जाते हैं।

सभी जीवोंके शरीरके भीतर नाना अंशोंकी अस्थि है—अर्थात् मस्तिष्कावरक खोपड़ी और उसकी रक्षार्थ हृत्पिण्डावरक पञ्जरास्थि वक्ष और उदरावरक नमनशील वक्षास्थि प्रभृति। अण्डे फोड़ कर जब शावक बाहर निकलता है तब इस अस्थिसमूहके रूपान्तर या लड़की तरह सामान्य पतला कड़ा जैसा दीख पड़ता है।

पिता माताके यत्नसे पालित हो कर सदा उपयुक्त आहार पा कर जब शावक धीरे धीरे पुष्ट होने लगता है। क्रमश: दोनोंके वर्द्धित हो कर अनन्तर इन्द्रियां सब उन मांसपेशियोंके सूक्ष्म सूक्ष्म, चर्बीविशिष्ट पदार्थका कुछ अंश डैने और पुच्छके रोमाकार परमें तथा कुछ अंश पद, वक्ष और उदरके छोटे छोटे परोंमें परिणत होता है।

पक्षियोंको पाखिके अतिरिक्त परिचालनके कारण वक्षस्थलके नीचे और पुच्छ भागमें मांसपेशियोंकी अधिकता देखी जाती है।

इनकी वक्षास्थि (Sternum) बहुत दूर तक फैली रहनेके कारण उदरदेशमें साधारणत: पेशीकी न्यूनता देखी जाती है। केवल कुछ मांसपेशियोंके सूक्ष्म सूक्ष्म स्तरने ऐसी आच्छादन जिससे कुछ हो कर कुमशः उदरस्थ अन्त्रादिको आवरण किया है। इन सबकी क्रमिक परिपुष्टि ही पक्षियोंके आकाशमार्गमें विचरण का प्रधान कारण है। जिस प्रकार पक्षिगण अपनी इच्छा को ऊंचे और निम्न स्तरके वायुमार्गमें गमन करते हैं, उसका पहला कारण यह है कि वायुके गुरुत्वकी अपेक्षा पक्षीका गुरुत्व बहुत कम है और दूसरा उनकी वक्षस्थल स्थित पेशीके साथ जत्रुवत् स्कन्धास्थि (Scapulo-coracoid)-के मध्य हो कर आयतमें अधिक रहनेके कारण वह यथाक्रमसे मिल गई है। इसी पेशीके रहनेसे पक्षी कठिनकी तरह अपने डैनेको आसानीसे उठाता और फैलाता है। इसके निम्नस्थ और ऊर्ध्वस्थित प्रदेश की अपेक्षा ऊपरी भाग प्रायानुपातसे मोटा होता है। यही कारण है कि पक्षिगण अन्तरीक्षमार्गमें किसी शाखा पर पैर रख कर भी सकते हैं।

खोपड़ीके गर्त्तके मध्य ही मस्तिष्कका अवस्थान है। इसमें मस्तिष्क अन्यान्य शिराएं मस्तिष्कके दोनों पार्श्वों (अर्थात् कर्णके पश्चिमस्थ) गर्त्तके मध्य निहित रहती हैं। ये शिराएं मस्तिष्कसे निकलनेके समय दोनों गर्त्तके मध्यवर्ती अस्थि भागोंमें अनुप्रस्थ भावसे छिद्र करके उसके मध्य हो कर गमन करती हैं। जितनी शिराएं इसी प्रकार निकली हुई हो कर दो चतुष्कोणमें परिणमित पाता है। इनके साथ मूल

मस्तिष्कका संश्रव रहने पर भी दोनों चक्षु-गोलक विभिन्न अस्थि आवरकके मध्य सन्निविष्ट हैं। इसके सिवा मस्तिष्कके मज्जसे पीछे एक और भी आधार है। इस कोषके मध्य पृष्ठ वंशावलम्बी कशेरुक रज्जुको मध्यनली प्रवेश करके वृद्धिकी प्राप्ति हुई है। इसका मध्यभाग जालवत् मस्तिष्कावरक झिल्ली और अन्यान्य छोटी छोटी शिराओंसे आच्छादित है। यही शिरायें परस्परकी सहायतासे इन्द्रियज्ञान उत्पन्न करती हैं।

पक्षिजातिके चक्षुकी गठनप्रणाली गोधिका, कूर्म, कुम्भीर आदि सरीसृपजातिके साथ बहुत कुछ मिलती जुलती है। इनका अक्षिपल्लव कन्दार-रज्जु द्वारा पूर्ण भावसे चक्षुस्पन्दनकारी सूक्ष्मसूत्र समूहमें निबद्ध है। यही कारण है कि वे चक्षुपल्लवको सहजमें उठाते और बन्द कर सकते हैं। इसका चक्षुगोलक चार सम्तकपेशी और दो वक्रभावापन्न मांसपेशीकी सहायतासे इच्छानुसार विभिन्न और परिचालित होता है। चक्षुगोलकके योजकत्वक् (Conjunctive के अव्यवहित पश्चिदेशमें अवस्थित कठिन घनत्वक (Sclerotic के सामने अङ्गुरीयककी तरह गोलाकार सूक्ष्म अस्थिके शल्य अस्थिका पात (plate) है। चक्षुमणिके पार्श्ववर्त्ती तारकामण्डल सूक्ष्म सूक्ष्म मांसपेशी द्वारा आपसमें समान्तरभावसे संयोजित होता है। पक्षिजातिके चक्षुके सम्मुख भागका घनत्वक् Sclerotic) उपास्थिविशिष्ट (Cartilaginous) है। पक्षिमात्रको ही श्रवणेन्द्रिय वर्त्तमान रहने पर भी उनमेंसे सभी सुन नहीं सकते कुछ जातिके पक्षी ऐसे हैं जो दूसरेका स्वर और भाषा अच्छी तरह सुन सकते और उसे याद रखते हैं। फिर कुछ पक्षी ऐसे हैं जो कुछ भी नहीं सुनते। उनके श्रवणेन्द्रियस्थ कर्णपटह ऐसे छोटे छोटे परोंसे आवृत हैं, कि उनके मध्य हो कर कोई शब्द सहजमें प्रवेश नहीं कर सकता। कूर्म, कुम्भीर आदि सरीसृप जातियोंके साथ पक्षिजातिको श्रवणेन्द्रियका कोई पार्थक्य देखा नहीं जाता।

सरीसृप और सर्प शब्द देखो।

पक्षीकी जिह्वाके साथ सरीसृपजातिकी विशेष समानता है। कुछ पक्षियोंकी जिह्वा तीराकार सूच्यग्र और मूलदेश कण्टकयुक्त है और कुछ पक्षी ऐसे हैं जिनके कुम्भीरकी तरह जिह्वा नहीं होती। Totipalmatoe और Balaenicepa जातीय पक्षीकी जिह्वा छोटी और गोल होती है Rapaces जातीय पक्षीकी जिह्वा मोटी और किनारेसे कटी होती है Picidae श्रेणीकी जिह्वामूलास्थि विस्तृत करनेके कारण उनकी जिह्वा भी बड़ी और चौड़ी होती है तथा प्रकृत जिह्वाग्रभाग तीरके फलके जैसा और कण्टकमय होता है।

किसी किसी पक्षीके अन्त्रको उपरिस्थ अन्नवाली प्रसारणशील है। छोटे और बड़ेके भेदसे अन्त्र दो प्रकारका है। सभी पक्षियोंमें वृहत् अन्त्र अस्थिप्रतिनालामें मिला हुआ है। यह स्थान अन्त्रावरक झिल्ली द्वारा परिवेष्टित है। अधिकांश पक्षियोंके पाकाशयके अधोभागान्तक निकटस्थ रन्ध्र वा अन्त्र द्वारा और क्षुद्रद्वार एक दूसरेके सम्मुखवर्त्ती है। Alectoromorphae और Actomorphae शाखाओंमें ईगल और शिकरा (Hawk) आदि पक्षियोंके गलेका नाली बड़ा हो कर कण्ठनालास्थ पक्षियोंके खाद्याधारमें परिणत हुआ है, किन्तु पारावतादिके गलेकी नालीमें दो छेद होते हैं। जो सब पक्षी केवलमात्र मटर गेहूं आदि खा कर जीवनधारण करते हैं उनके पाकाशयकी झिल्लियां विशेष परिपुष्ट होती हैं और साथ साथ उनकी श्लेष्मिक झिल्लीका त्वक् बढ़ कर मोटा और कठिन तथा खाद्य परिपाकके उपयोगी हो जाता है। कोई कोई पत्थरको भी पचा सकता है, वैसे पक्षियोंका पाकाशय प्रस्तरचूर्णकारी पदार्थोंसे गठित है। पशुओंके जैसा पक्षिजातिके भी द्वादशाङ्गुलान्त्रके सन्धिस्थानके छिद्रमुखमें क्लोम है। पक्षियोंको अस्थिपूतिनालीका पश्चाद् प्रदेश सन्धिविशिष्ट कोषयुक्त है।

इन सब शिराओंकी सहायतासे खाद्यसमूह कण्ठनाली हो कर पाकाशयमें लाया जाता है और वहां परिपाक हो कर भिन्न भिन्न शिरा और धमनीके योगसे वह रस पहले रक्ताशयमें और पीछे हृदयकक्षमें प्रेरित हुआ करता है। पक्षिजातिका फुसफुस और शरीर सम्पर्कीय कोषिका नाड़ी ही रक्तप्रवाहका मूलयन्त्र है जिन दो कोषोंके कुञ्चनसे हृत्कोषसे रक्त अन्यान्य धमनियोंमें विक्षिप्त होता है, वे कोष परस्पर भिन्न और मध्यमें पतले परतके समान अस्थिपातद्वारा विभक्त हैं। पक्षियोंका

ऊर्ध्वग्रीवाग्रीव मिश्रोपटवत् होने पर भी बन्द हुए हैं और इनके चतुर्दिकस्थ वायुकोषमें बहिर्दङ्गका पार्श्वाशय है।

पाकाशयी परिपुष्टिके जिस प्रकार शरीरमें रक्तादिका सञ्चालन होता है, उसी प्रकार उक्त शिरा सम्बन्धीय कार्यप्रणालीसे उनके श्वासप्रश्वास और नाना प्रकारके स्वरका उत्थान दिया जाता है। कितने पक्षी ऐसे हैं जो केवल कर्कशस्वर बोलते हैं। जैसे—काक पेचक सारस आदि। फिर कितने ऐसे भी हैं जो गीतकी तरह मधुर सुमिष्ट स्वर उत्पन्न करते हैं। इन पक्षियोंमेंसे मध्य हम लोगों के देशके पपीहा, कोयल, मैना श्यामा मलिका और यूरोपका Nightingale तथा दक्षिण अमेरिकाके घण्टापक्षी (Bell-bird) आदि देखे जाते हैं। कुछ पक्षी गीत गा सकते हैं और कुछ नहीं इसका कारण जाननेके लिये प्राणितत्त्वविदोंने जो गम्भीर आलोचना की है, उसका बहुत कुछ अंश उल्लेखयोग्य है। उनका कहना है कि जिस वक्त शिराओंको सङ्कोचनताके वायु फुसफुसके मध्यमें धावित हो कर सामने और श्रुतिमधुरस्वर उत्थित होता है उसकी प्रणाली इस प्रकार है—पक्षीकी डाक या तरह ध्वनि कण्ठनलीसे नहीं निकलता वह कण्ठनलीके निम्नस्थ श्वासनली, श्वासनली और वायुनलीके संयोगस्थान तथा केवलमात्र वायुनलीसे ध्वनि पुष्ट हो कर कण्ठनलीसे प्रकाश पाती है। Ratitae और Cathartidae (अमेरिका देशीय गृध्र) पक्षीके केवलमात्र कण्ठनलीनलस्थ श्वास और वायुनलीसे मन्द निकलता है। इन लोगों के देशके सामान्य पक्षिविशेषकी आभ्यन्तरिक गठनप्रणाली भी उसी तरह है। काक प्रभृति पक्षियों की स्वरध्वनिके साथ प्रणालीगत होने पर भी वे गान नहीं कर सकते। कण्ठनलीके आभ्यन्तरिक छिद्रमुखमें एक कुण्डलित कोष है। उक्त कोषका दूसरा छिद्रमुखमें सम्बन्ध है। इसके ठीक पास देहमें वायुनलियां विभिन्न और गोल हो कर दोनोंको मध्यरेखामें अवस्थित हैं। यहां पर आवरणकी एक वायुनली दूसरीके भीतर हो कर चली गई है। इस आवरणका अग्रभाग सरल और सूक्ष्मतन्तुमय-झिल्ली-विशिष्ट है, किन्तु इसका पश्चभाग क्रमशः उपास्थिके आकारमें परिणत हो कर दोनोंके साथ मिल गया है। इसके दूसरी ओर वायुनलीमुखके आभ्यन्तरिक छिद्र अर्ध आकारमें परिणत हो कर वायुनली प्रणालीके अविरलांश में विस्तार प्राप्त करती है। इन्हें अवस्थामें स्थिति स्थापक अपूर्वतन्तु सञ्चित हो कर झिल्लीमें झिल्ली उत्पन्न करते हैं। झिल्लीसंसक्त और स्थितिस्थापक झिल्लीके मध्य जानेमें जो मार्ग अङ्कित होता है उसके मध्य हो कर फुस-फुसकी वायु बहिर्गमनकालमें उनकी स्थितिस्थापक आवरणको स्पन्दित और अनुरणन (Vibrating) करती है। इसी प्रकार कण्ठनलीके मध्य हो कर सुमिष्ट गीतिस्वर निकलता है। स्थितिस्थापक आवरणोंके विस्तार और वायुधारिणी श्वासनलीस्तम्भकी वृद्धिके अनुसार स्वरका तारतम्य हुआ करता है। उक्त शब्दोत्पादक दोनों यन्त्रमें मांसपेशीके सङ्कोचहेतु शब्दका तारतम्य होनेके कारण वह पेशी बाह्य और अन्तरके भेदसे दो प्रकारकी है। Alectoromorphae, Chenomorphae और Dysporomorphae आदि पक्षिजातियोंके अभ्यन्तर पेशी नहीं है। Coracomorphae शाखायुक्त पक्षीके पांच जोड़ा आन्तरिक मर्मयुक्त पेशी है। वह पेशी श्वासनली और इनके निकटसे ले कर वायुनली-अवयव तक विस्तृत है। तोतापक्षीके तीन जोड़ा आन्तरिक पेशी है किन्तु उनके व्यवधान-आवरक (Septum) नहीं है।

पक्षियोंकी मूत्रग्रन्थिमें त्रिभिन्नाकार बहुतसे उपखण्ड हैं। मूत्रकोषके समीप जिस समय आमवर्त्तो आकारमें सूक्ष्म दाना भागों (Lobes)-में इसका अण्डकोष स्थापित है। शीतकी प्रबलतासे वह अण्डकोष मात्र सङ्कुचित होता है और ग्रीष्मकी अधिकतामें अर्थात् वैशाख ज्येष्ठमासमें उसकी वृद्धि देखी जाती है। यही कारण है कि वे ग्रीष्मकालमें अधिक सन्तान उत्पन्न करती हैं।

पक्षियों के जिस उपायसे पर निकलते हैं जातिभेदसे उनमें भेद भी लक्षित किया जाता है। मस्तक, ग्रीवा देहयष्टि (वक्ष और उदरभाग) पुच्छ और पदद्वय आदि विभिन्न स्थानों के पक्ष परस्पर स्वतन्त्र हैं। कई जातिके शरीरके पर इतने कोमल होते हैं कि दूसरे किसी

पक्षीमें वैसे पर नहीं निकलते। इस कारण उनका गला विशेष आदरकी वस्तु और मूल्यवान् है। मयूरके पुच्छ और कण्ठके पर सुन्दर तथा नानावर्णोंसे रंगे होते तथा डैनेके पर भी हंस जातिके डैनेके परकी तरह कलमके लिए विशेष आदृत हैं। काकातुआ जातीय पक्षीके चूड़ामें और पारावतादिके पैरोंमें पर होते हैं। पक्षिजातिमात्रमें ही परकी विभिन्नता देखी जाती है। परकी उत्पत्ति और वृद्धि शरीरकी पुष्टिसे साधित होती है। प्रत्येक परकी जड़में गोशृङ्गके गूदेकी तरह रक्त-मिश्रित मांसका अस्तित्व देखा जाता है।

पक्षिशावकके गात्रमें पहले जो पर निकलते हैं वे कुछ दिन बाद झड़ जाते हैं और फिर नये पर निकल आते हैं। पक्षिमात्र ही वर्ष भरमें एक बार अपने पुरातन और वृष्टि आदिसे नष्ट परका त्याग करते हैं और नववस्त्रपरिधानवत् उनके अङ्गमें नये पर निकल आते हैं। साधारणतः जिस ऋतुमें जो पक्षी सन्तान उत्पादन करती है ठीक उसके अव्यवहित बाद ही उस पक्षीका पक्षत्याग हुआ करता है। इसके अलावा और भी दो एक समयमें किसी किसी पक्षीको पुच्छका परित्याग करते देखा जाता है। पक्षिगण पुरातन परोंको त्याग कर नये परोंको क्यों धारण करते हैं तथा चतुष्पदियोंको लोमका त्याग और सर्पजातिको केंचुलीका त्याग क्यों होता है इसकी अच्छी तरह आलोचना न कर संक्षेपमें केवल इतना ही कह देते हैं कि उनके डैनेके परके ऊपर उनके आकाशमार्गमें गमनागमन और जीविकार्जन होता है, इसी कारण उन्हें नूतन पक्षकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार उनके डैनेके नष्ट पर यदि परिवर्त्तित नहीं होते, तो वे उड़ नहीं सकते, यहां तक कि वे जड़वत् अकर्मण्य हो कर हिंस्रजन्तुसे खाये जाते अथवा विनष्ट हो जाते।

सभी पक्षी एकबारमें पर नहीं छोड़ते। पर छोड़नेका समय आनेसे ही वे डैनेके दोनों छोरोंसे एक एक परको छोड़ते हैं। क्रमशः उन दोनोंकी जगह जब नूतन पर निकल आते हैं तब पुनः वे दूसरे परको इसी प्रकार छोड़ते हैं। ऐसा करनेसे उन्हें उड़नेमें किसी प्रकारकी तकलीफ नहीं होती। अधिकांश श्रेणीके पक्षिशावकगण प्रायः वर्ष भरमें प्रथम बार पर नहीं छोड़ते, किन्तु Gallinae नामक श्रेणीके पक्षिशावकगण बहुत बचपनमें ही उड़ते हैं, इस कारण ये पूर्णावयव पानेके पहले ही एक बार पर छोड़नेमें बाध्य होते हैं। हंस श्रेणी (Anatidae)के मध्य पूर्वोक्त प्रथाका विशेष वैलक्षण्य है। ये एक ही समयमें डैनेके पर छोड़ते हैं और प्रायः एक ऋतुकालमें उन्हें उड़नेकी क्षमता नहीं रहती। Anatinae और Fuligulinae नामक हंसश्रेणीके नरके पर जब झड़ जाते हैं, तब वे अस्पष्ट दिखने लगते हैं। नूतन परके निकलने पर वे फिरसे आकाशमें उड़ सकते हैं, किन्तु इनके मध्य Micropterus cinereus आदिके हंसगण जब इस प्रकार पर छोड़ते हैं, तब वे आकाशमें उड़ नहीं सकते। टर्मिगन नामक (Ptarmigan = Lagopus mutus) एक प्रकारका पक्षी है जो सन्तानोत्पादक ऋतु (Breeding Season) के बाद यद्यपि नर मादा दोनों ही पक्ष त्याग करके नूतन पर धारण करते हैं, तो भी शीतसे अपनी रक्षाके लिये शीतकालमें नूतन पर धारण करते हैं और शीतकालके बीत जाने पर फिरसे तृतीय बार शीतवस्त्रका त्याग करके वसन्तऋतुमें विशिष्टवर्णयुक्त पक्षावरणसे अपनेको ढंक लेते हैं। यह परिवर्त्तन केवलमात्र उनके देहसम्बन्धमें ही हुआ करता है। पुच्छ वा डैनेके पर वे त्याग नहीं करते। एक श्रेणी वा जातिगत किसी किसी विभिन्न थाकके पक्षीको वर्ष भरमें दो बार पर छोड़ते देखा जाता है। जिस श्रेणीमें Garden Warbler (Sylvia salicaria) वर्ष भरमें दो बार पक्ष त्याग करता है, उसी श्रेणीमें Black-cap (S. atricapilla) नामक पक्षिगण वर्षके अन्दर केवल एक बार पर छोड़ा करते हैं। Emberizidae श्रेणीके पक्षी भी इसी नियमका प्रतिपालन करते हैं और Motacillidae जातिके मध्य भरतपक्षी (Alaudidae) वर्ष भरमें एक बार और पापिट नामक पक्षी (Papits = Authinae) वर्ष भरमें दो बार पर परिवर्त्तन करते हैं, किन्तु कोई भी डैने या पूछके पर नहीं छोड़ते। शाखाचारी पक्षियोंको भी कभी कभी पक्षका त्याग करते देखा जाता है। वे समयानुसार कभी पुच्छ, कभी गात्रके इसी प्रकार सभी स्थानोंके पर बदला करते हैं।

पक्षिजातिके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करने से देखा जाता है कि एक समय इस भूपृष्ठमें नाना जातिके पक्षियोंका वास था। कालप्रभावसे उनमें अनेक न कुछ जातियां कहां विलीन हो गई हैं, उसका निरूपण करना बड़ा ही कठिन है। भारतमहासागरस्थ मरिशस (Mauritius) द्वीपमें एक समय डोडो (Dodo) नामक एक जातिके पक्षीका वास था। विगत शताब्दीमें कोई कोई प्राणितत्त्वविद् इस पक्षीको अपनी आंखोंसे देख कर उसकी प्रकृतिको बतला गये हैं। किन्तु वर्त्तमान शताब्दीमें इस पक्षीकी सजीवताका चिह्नमात्र भी नहीं है। अस्थिकानिहित प्रस्तरीभूत अस्थिसे ही केवल उनके पूर्व अस्तित्वकी आलोचना की जा सकती है। इसी प्रकार गई शताब्दी तक भी जो सब पक्षिकुल कुटिलकालके गालमें पड़ कर इस पृथ्वीके मध्य लोपित हुए हैं और अभी जिनकी प्रस्तरीभूत अस्थि छोड़ कर एक भी सजीव पक्षी मिलनेकी सम्भावना नहीं है वे पक्षिगण जिन श्रेणीके हो सकते हैं प्राणितत्त्व विदोंने भूगर्भसे उत्तोलित प्राचीन पक्षी जातियोंकी प्रस्तरीभूत अस्थिसे उनकी श्रेणीका निर्धारण किया है।

न्यू इङ्गलैण्डकी कनेक्टिकट उपत्यकामें जिन सब पक्षियोंकी अस्थि पाई गई है, उनकी विशेष आलोचना करके प्राणिविदोंने उन्हें Amblonyx, Argozoum, Brontozoum, Grallator, Ornithopus, Platypterna, Tridentipes आदि श्रेणियोंमें विभक्त किया है। कोई कोई इनको कुछ पक्षियोंकी सरीसृपजातिकी अस्थि समझते हैं। Brontozoum श्रेणीके पक्षीकी आकृति बहुत बड़ी है। इनके पदचिह्न १६x१५ इञ्च हैं और एक एक पादक्षेपका व्यवधान ८ फुट है। अमेरिकाके जिस पथमें पक्षीकी कुछ प्रस्तरीभूत अस्थि और पद व चञ्चु हैं, उनके पुच्छकी कशेरु-अस्थिमें सरीसृपकी तरह बीस गांठें थीं और एक एक गांठके दो दो बगलमें पर निकले हुए हैं। इस जातिके पक्षीको प्राचीन Archaeopteryx श्रेणीके अधीन रखा है। इओसिन युग (Eocene period) में कुछ जिन पक्षियोंके अस्तित्वके प्रमाण हैं। उस समयके एक वृहत्काय पक्षी (Gastornis parisiensis) की अस्थि पाई गई है। इस पक्षीकी आकृति बड़ पक्षीकी तरह बड़ी है। इसके बाद गृध्र (Vulture) की तरह एक प्रकारके पक्षीका प्रभाव था। यह पक्षी एमेन नामक पक्षीकी अपेक्षा छोटा था किन्तु दोनों ही Lithornis श्रेणीभुक्त थे।

आपमिडवन नामक स्थानमें जहां पूर्वोक्त पक्षिजातिकी अस्थि थी, वहां एक और Dasornis जातीय वृहत् पक्षीकी खोपड़ी पाई गई है। इस पक्षीके (Odontopteryx toliapicus) दन्तमूलमें दांत है। इओसिन युगमें और भी अनेक पक्षियोंकी जीवितास्थि पाई गई हैं। किन्तु उनमें अधिकांश पक्षीजाति वर्त्तमानकालमें देखी जाती है, केवल Agnopterus श्रेणीकी सम्पूर्ण लोप हो गई है। इस समयके अमेरिकाके वोमिंग (Wyoming) प्रदेशमें जिन सब पक्षियोंकी प्रस्तरीभूत अस्थि पाई जाती है उनमेंसे एक मर्डीहसकी अस्थिका वजन प्रायः चालीस हजार मोहर है। टर्सियारि अस्थिका-स्तरनिहित (Tertiary deposits) हिमालय पर्वतके निम्नस्तरमें बड़ पक्षी Struthio और Phaeton श्रेणीके वृहदाकार पक्षीकी अस्थि पाई गई है। उत्तर अमेरिकाके टर्सियारि युगके निम्नस्तरमें Uintornis श्रेणीके एक प्रकारके पक्षीकी अस्थि पाई गई है, यह जाति भी अब बिलकुल लोप हो गई। यहां प्लाइसिन युगकी जो सब अस्थि पाई जाती है, उन सब जातियोंके पक्षी अमेरिकामें आज भी मिलते हैं। इसके परवर्ती प्लिसटोसिन युगमें नाना जातीय पक्षियोंकी अस्थिकाप्रोथित अस्थि पाई जाती है।

एकविध पराशोडेयाके गुहाभ्यन्तरमें नाना जातीय पक्षियोंका कङ्काल पाया गया है। यहां एक प्रकारके वृहदाकार वकजाति (Grus primigenia) की अस्थि और सफेद पेचक (Snowy Owl Nyctea scandiaca) और Willow grouse (Lagopus albus) पक्षीका निदर्शन है। माल्टाद्वीपका वृहदाकार हंस (Cygnus falconeri) और दक्षिण अमेरिकाके अनेक प्रदेशके Orux और Rhea नामक पक्षी उल्लेखयोग्य हैं, पीछे ये दोनों पक्षिजाति लुप्त हो गई हैं। Rhea नामक पक्षी बड़ पक्षीकी तरह दौड़ सकता था।

डिनमार्कके एक स्थानसे (Capercally-Tetrao urogallus और Great Auk or Garefowl-Alca impennis) दो पक्षिजातिकी अर्थमस्तरोभूत अस्थि पाई गई है। अभी उस जातिके पक्षी इस देशमें नहीं मिलते। इङ्गलैण्डके अन्तर्गत नारफोक प्रदेशमें और इलाईद्वीपमें कई एक (Pelecanus) श्रेणीके पक्षियों की अस्थि पाई जाती है। उनकी आकृति वर्त्तमान P. onocrotalus-को अपेक्षा बड़ी है। मडागास्कर द्वीपके दक्षिणांशसे कितनी Struthio श्रेणियोंको पक्षिजातिकी अस्थि पाई गई है उनमेंसे हिलोयर साहब (M. Is. Geoffroy St. Hilaire)ने १८५१ ई०में AEpyornis maximus श्रेणीके एक पक्षीका अंडा पेरी शहरमें भेज दिया था। न्यूजीलैण्डद्वीपमें भी नाना जातीय हृहदाकार पक्षीकी अस्थि पाई जाती है। इस द्वीपमें सैयरी उपनिवेश स्थापित होनेके पहले उस देश-के वासियोंने अनेक पक्षियोंको मार कर खा डाला है। यहांको Harpagornis श्रेणीभुक्त शिकारी पक्षी इतने बड़े होते हैं, कि वे Dinornis श्रेणीके पक्षीको पछाड़ सकते हैं। पहले आष्ट्रेलिया द्वीपमें ये पक्षी अधिक संख्यामें पाये जाते थे, किन्तु अभी उनका-संख्या बिलकुल गायब हो गई है। प्रसिद्ध एमन पक्षि-गण भी इसी श्रेणीके माने जाते हैं। ये उड़पक्षीकी तरह नहीं उड़ सकते, किन्तु दौड़नेमें बड़े तेज हैं।

पहले ही कहा जा चुका है कि कुछ जातिके पक्षी गत दो शताब्दीके मध्य कालके अनन्त स्रोतमें लुप्त हो गये हैं। मरीसस द्वीपमें जो दोदो (Dildus inpetus) पक्षीकी कथाका उल्लेख किया है, वह १६८१ ई०में 'बार्क काउन' नामक जहाजके मालिम बेंजामिन हैरी इस जातिके जीवित पक्षीका देख कर लिख गये हैं। उनके लिखित कागजादि आज भी इङ्गलैण्डीय जादुघरमें रक्षित हैं। इस द्वीपके दक्षिणस्थ बोर्वा रावनियन, मैसकारेग, नाम आदि द्वीपोंमें ऐसे अनेक पक्षियोंको निदर्शनास्थ पाई गई हैं जिनका वंश इस संसारसे बिलकुल लुप्त हो गया है। उक्त द्वीपोंके पूर्व ओर अवस्थित रड्रिगो नामक द्वीपमें एक और प्रकार (Pezophaps solitarius)का पक्षिजातिका वास था। ये दादोंसे सम्पूर्ण भिन्न थे। १६८१-८३ ई०में एक निर्वासित हिउजिनट इस पक्षीको प्रतिकृतिको अङ्कित कर गये हैं। पीछे १८६८ ई०में Edward Newton नामक किसी यूरोपवासीने इसकी अस्थि पा कर उसके पूर्वास्तित्वका स्वीकार किया है। अभी इस पक्षिजातिका चिह्नमात्र भी नहीं है। इसके अलावा मारिससद्वीपमें एक और प्रकारका तोता पक्षी (Lophopsittacus mauritianus) था। उनफार्ट हर्मान्सून १६०१ ई०में जब मारिससद्वीप भ्रमण करते करते पहुंचे, तब उन्होंने इस जातिके पक्षीको जीवित देखा था। मारिसस और समकारागनिस आदि द्वीपोंमें और भी कितने तोते, उल्लू आदि नाना जातीय पक्षियोंको अस्थिका निदर्श न पाया गया है। प्राणि-तत्त्वविदोंने उनको स्वतन्त्र आख्या प्रदान की है। यहां Aphanapteryx जातीय एक प्रकारका पक्षी था जिसको चोंच बहुत लम्बी थी। रावनियन और रड्रिगोद्वीपमें एक समय नाना जातीय पक्षियोंका वास था। धीरे धीरे वे सब पक्षी लयप्राप्त होते जा रहे हैं। प्राय: ४० वर्ष पहले Starling (Fregilupus varius) नामक पक्षी जीवित था। एतद्भिन्न एक प्रकार-का छोटा पेचक (Athene murivora), बड़ा तोता (Necropsittacus rodericanus) इस प्रकारका घूघू और एक जातिका बक (Ardea megacephala) Miserythrus liguati नामक नाना जातीय पक्षी जो एक समय उक्त द्वीपमें जीवित थे वह हम लोग भ्रमण कारियोंकी तालिकासे जानते हैं। फरासी-अधिकृत गोआडेलोप और मार्टिनिक द्वीपमें छः विभिन्न श्रेणियों-के पक्षी (Psittaci) ५०।६० वर्ष पहले जीवित थे, किन्तु उनमेंसे आज एक भी देखनेमें नहीं आता। लाब्रेडर देशीय हृहदाकार हंस (Somateria labradora) प्राय: सत्तर वर्ष पहले ग्रीष्मऋतुमें सेण्टलारेन्स और लाब्रेडरके मैदानमें विचरण करते थे। जब ठंढ अधिक पड़ती थी, तब वे इस स्थानको छोड़ कर नभा-स्कोसिया, न्यूब्रान्सविक आदि दक्षिणदिकस्थ उष्ण-प्रधान देशोंमें भाग जाते थे। शृगालादि मांसभुक चतु-ष्पद प्राणीसे ये अपने अंडोंकी रक्षा करनेके लिए पर्वत-मय छोटे छोटे द्वीपोंमें अण्डादि प्रसव करते थे। हिंस्र

जन्तुमें पक्षियोंको बचाये रखने पर भी वे मनुष्यके हाथोंसे अपनेको बचा नहीं सकते हैं। कौतुकप्रिय मानवोंने शिकार करनेकी अभिलाषासे इस द्वीपके सब पक्षी उच्छेद कर डाला, किन्तु किसीने इस ओर ध्यान न दिया कि ऐसा करनेसे वह द्वीप सदाके लिए इस मर्त्यभूमिको छोड़ कर चली जायगी। १८५८ ई०में कर्नल मैकर वारन् ब्रान्विकास्ल बन्दरमें इस पक्षीको देख कर उल्लेख कर गए हैं। फिलिपद्वीपके एक जातीय तोता पक्षी (Nestor productus) जिनका कई वर्षोंसे सब लोप हो गये हैं। इस प्रकार कितने पक्षी ऐसे हैं जिनकी संख्या एक देशमें लोप होने पर भी दूसरे किसी न किसी देशमें उन जातिकी सत्ता आज भी अक्षुण्ण होती है। कोई देशमें Capercally नामक पक्षी आयरलैण्ड और स्काटलैण्डमें देखा जाता था, किन्तु अभी आयरलैण्डमें इस जातिका एक भी पक्षी नहीं मिलता।

जिस प्रकार इन सब पक्षी जातियोंका ध्वंस हुआ, उसके प्रकृत कारणका पता लगाना कठिन है। लेकिन अनुमान किया जाता है कि इन सब द्वीपोंमें पाश्चात्य लोगोंके जब मनुष्य वास करने आये, तब उनके वासोपयोगी काम चलानेके लिए आस पासके वृक्ष-गुल्म जला दिए गए। ऐसा करनेसे कितने पक्षी जल मरे और जो कुछ बच रहे वे सुसभ्य यूरोपवासियोंके शिकार बन गये।

एतद्भिन्न नाना देशीय पौराणिक ग्रन्थोंमें बहुतेरे पक्षियोंका उल्लेख है जिनके स्वाभाविकके सिवा और कोई निदर्शन नहीं मिलता है। हिन्दुओंके पुराणमें वर्णित रामायणोक्त जटायु गिद्धोंका रक्षोक पारस्य वासियोंका हुमा और सायमुर्ग, अरबवासियोंका बड़ा तुर्कोमानोंका कार्किस, इजिप्त और योरोपका फिनिक्स, एशियावासियोंका नारुकिन और जापानवासियोंके किरनी नामक अति प्राचीन पक्षियोंका उल्लेख देखा जाता है।

पक्षीके प्राय सभी स्थानोंमें पक्षिजातिका वास है, किन्तु देश और जलवायुके पार्थक्यानुसार पक्षिजातिमें भी कितनी विभिन्नता देखी जाती है। यही कारण है कि प्राणितत्त्वविदोंने सारी पृथ्वीको छ भागों (Region) में विभक्त किया है और एक एक भागके अन्तर्भुक्त भिन्न भिन्न विभाग (Subregion) का पक्षिजातिका श्रेणी विभाग निर्धारित किया है। उन एक Region और सीमा उन्होंने अक्षांश और द्राघिमान्तर द्वारा निर्दिष्ट किया है, —

१। अष्ट्रेलियन (अष्ट्रेलिया अर्थात् भारतमहासागरके सभी द्वीप इस श्रेणी (Group) में निबद्ध हैं।) इसके मध्य चार उपविभाग (Subregion) हैं—(क) (Papuan Subregion) अर्थात् पपुआ द्वीपपुञ्जके अन्तर्गत मलक्का सिलिबिस आदि द्वीपजात पक्षी। (ख) Australian subregion अर्थात् अष्ट्रेलिया द्वीपान्तर्गत तासमानिया (Tasmania or Van Diemen's Land) आदि स्थानजात पक्षी। इस द्वीपके अन्यान्य सभी पक्षियोंकी अपेक्षा कृष्णवर्ण हंस (Black Swan) विशेष उल्लेखयोग्य है। (ग) Polynesian subregion अर्थात् पालिनेशिया द्वीपपुञ्जके अन्तर्गत विभिन्न द्वीपजात पक्षी। (घ) New Zealand Subregion अर्थात् न्यूजीलैण्ड द्वीप और तत्पार्श्ववर्त्ती लार्ड हौ, नारफोक, चार्लाटन, अकान्त आकलैण्ड आदि द्वीपजात पक्षी।

२। न्यूट्रपिकाल—अर्थात् समस्त दक्षिणी अमेरिका हर्न अन्तरीपसे ले कर ग्वाटामालाके तक तथा उत्तरी अमेरिकाके २२ उत्तर अक्षांश और मेक्सिको तथा वेष्ट इण्डीज द्वीप प्रभृति। इसके मध्य फिर चार उपविभाग (Sub-region) हैं, —

३। नियार्टिक—अर्थात् अलडियन पर्यन्त तमाम और उसके निकटवर्त्ती स्थानसमूह। कालिफोर्निया, फ्लोरिडा न्यूयार्क आदि स्थान इसीके अन्तर्गत हैं।

४। पेलियार्टिक (Palaeartic)—अर्थात् अफ्रिकाका उत्तरांश, समग्र यूरोप, आइसलैण्ड स्पिट्सबर्गेन, भूमध्यसागरस्थ द्वीप। एशियामाइनर, पलेष्टाइन, पारस्य अफगानिस्तान और हिमालय पर्वतके उत्तर-स्थित समुदाय एशियाखण्ड। इसमें इसके भी चार उप विभाग किए गये हैं—(क) European (ख) Mediterranean, (ग) Mongolian, (घ) Siberian प्रभृति।

५। इथियपियन—अर्थात् बर्बरी राज्य छोड़ कर समस्त अफ्रिका, केपभार्ड द्वीप मडागास्कर, सिचिलिस, मकोट्रा, अरब आदि स्थान। इसके मध्य—(क) Libyan, (ख) Guinean, (ग) Caffrarian, (घ) Mosambican, (ङ) Madagascarian,

इण्डियन—अर्थात् भारतवर्ष और तन्निकटवर्त्ती सिंहल, सुमात्रा, मलक्का, फर्मोसा, हेनान, कोचीन, चीन, ब्रह्म, श्याम आदि देशजात। फिर इसके मध्य भी कितने स्वतन्त्र थाक वा Sub region हैं:—(क) Himalo-chinese, (ख) Indian अर्थात् भारतवर्ष के अन्तर्गत राजपूताना, मालव, छोटानागपुर, सिंहल आदि स्थान। (ग) Malayan अर्थात् फिलिपाइन द्वीपपुञ्ज, मलय उपद्वीप, बोर्नियो, सुमात्रा, जावा, बाली आदि द्वीप।

प्राणितत्त्वविदोंने जो छः श्रेणीविभाग किये हैं, उनकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि उन छहोंके एक एक भाग (Region)में जितने पक्षियोंकी श्रेणी वा थाक हैं, वे प्रायः एक दूसरेके समान हैं और उन सब पक्षियोंकी श्रेणी वा थाकमें इतनी विभिन्नता है कि उसकी विस्तृत आलोचना करना बिलकुल असम्भव है। पहले ही लिखा जा चुका है कि चील (Kites) जातिका पक्षी स्थानभेदसे विभिन्न प्रकारका है। उन नानास्थानजात एक जातिके पक्षियोंका आकारगत वैलक्षण्य देख कर उन्हें विभिन्न थाकके अन्तर्गत करके विशेष विशेष संज्ञाओंसे अभिहित किया गया है,—जिस प्रकार Casuarius श्रेणी या जातिगत पक्षिगण विभिन्न स्थानवासी हैं और उस उस स्थानके जलवायुसेवी हो कर विभिन्न आकार धारण करते हैं, उसी प्रकार उनके नाममें भी पृथकता देखी जाती है—

पक्षिजाति		स्थान
C galeatus	..	Ceram
C Papuanus	...	Northern New guinea
C. Westermanni	...	Jobie Island
C. Uniappendiculates	...	New guinea
C. Picticollis	...	South New guinea
C beccarii	...	Wokun, Aru Island
C, Bicarunculatus	...	Aru Island
C. australis	...	North Australia
C. Bennetti	...	New Britain

इस प्रकार देखा जाता है कि प्रत्येक पक्षिजातिका एक पृथक् पृथक् नाम है। विस्तार हो जानेके भयसे उन सबका उल्लेख नहीं किया गया। ऋतु परिवर्त्तनके साथ ही साथ अनेक पक्षियोंका वास-परिवर्त्तन हुआ करता है। कुछ जातिके पक्षी ऐसे हैं जो एक ऋतुको पसन्द करते हैं और जब एक देशमें उस ऋतुका परिवर्त्तन हो कर एक दूसरी ऋतुका आगमन होता है, तब वे उस स्थानको छोड़ कर अपने अभ्यस्त ऋतुयुक्त स्थानमें फिर चले जाते हैं। कोकिल आदि पक्षिगण वसन्तप्रिय हैं। जब इस देशमें वसन्तका आगमन होता है, तब कोकिल जातिका भी अभ्युदय होता है। फिर जब वसन्तकाल चला जाता है और ग्रीष्मऋतु आती है, तब उक्त पक्षियोंका वास भी बदल जाता है अर्थात् कोकिल पक्षी इस देशको छोड़ कर वसन्ताश्रित स्थानको चले जाते हैं। इसी प्रकार चील जातिमें एक वैलक्षण्य देखा जाता है। शीत-ग्रीष्मादि ऋतुमें इस जातिके पक्षी हम लोगोंके देशमें अनेक देखे जाते हैं, किन्तु वर्षाके आरम्भ होते ही इनकी संख्या धीरे धीरे कम होने लगती है। इसका कारण यह है कि चीलजातिके पक्षी वर्षाकालके पक्षपाती नहीं हैं। हम लोगोंके देशमें प्रवाद है कि रावणका चूल्हा हमेशा जलता रहता है, पीछे वर्षाकालमें वह आग बुझ जाती है, इसी आशङ्कासे विष्णु भगवान् चीलोंको अपनी रक्षा करनेका आदेश देते हैं, यही कारण है कि चील पक्षी वर्षाके आरम्भ होते ही उसी देशमें चले जाते हैं। उत्तरी अमेरिकाके शोर (Shore) नामक पक्षी कभी कभी इङ्गलैण्ड और नोरवेके पश्चिम कूलमें आते देखे जाते हैं। अत्यन्त शीतप्रधान देशमें (High Northern latitudes) इनकी मादा सन्तानोत्पादन करती है। उत्तरदेशमें उनके चले जानेका यही कारण है। इस समय उत्तर अटलाण्टिक महासागरमें हवा जोरोंसे बहती है। उस पश्चिमी वायुसे कितने पक्षी अपने अभीष्ट पथमें जाने नहीं पाते और वायुके झोंकेसे वे जिधर तिधर जा लगते हैं। एतद्भिन्न कुछ श्रेणीके पक्षी ऐसे हैं जो

केवल शीतकालमें दिखाई देते हैं। बाज चिड़ियां आदि पक्षियोंको इसी ऋतुमें कोई पर्य्यटन में पकड़ते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें स्थानच्युत वृक्षदेशसमूह शोभित होने लगता है तब नाना जातिके पक्षी आ कर खाद्यादि ग्रहण करते हैं। इनमेंसे बहुई नामक एक प्रकारका छोटा पक्षी है जो केवल नाजको नष्ट करनेके लिए आता है। इस समयके सिवा ये किसी और समयमें दिखाई नहीं पड़ते। यूरोप देशमें भी इसी प्रकार Swallow, Nightingale, Cuckow Corncrake, Song-thrush, Red breast आदि पक्षी भी ऋतुकी विभिन्नताके अनुसार स्थान परिवर्त्तन करते हैं। कोई कोई अनुमान करते हैं कि केवल ऋतुके प्रभावानुसार हो ये स्थानपरिवर्त्तन करते हैं सो नहीं, सम्भवतः उस समय उस उस स्थानमें स्वास्थ्यके उपयोगी खाद्यादि नहीं मिलनेके कारण ये स्थानपरिवर्त्तन करनेको बाध्य होते हैं।

न्यूगिनी, मलक्का, आरुद्वीप आदि द्वीपपुञ्जमें एक जातिके पक्षीका वास है जिनके शरीरके पर इतने सुन्दर और उज्ज्वल होते तथा इस प्रकार सजे रहते हैं कि उन्हें देखनेसे ही यह अनुमान करना होता कि ये सभी पक्षियोंके राजा हैं। प्राणितत्त्वविदोंने इस पक्षीको पासाराइन (Passeres) में शामिल किया है। इस पक्षीको मलक्कावासी 'गुरुड़मति', मलक्कावासी 'मानुकदेवता' और मलयवासी 'गुरुड़देवता' कहते हैं। पोर्त्तुगीज वणिक्‌गण जब पहले पहल इस द्वीपमें आये, तो उन्होंने पक्षीके आश्चर्य्यजनक सौन्दर्य्यसे आकृष्ट हो कर इसका Birds of Paradise अर्थात् स्वर्गका नन्दनपक्षी नाम रखा। द्वीपवासियोंका विश्वास है, कि इस जातिके पक्षिगण स्वर्गधामसे मर्त्त्यपुरीमें आते हैं और कुछ काल यहां ठहर कर जब वृद्ध हो जाते तब मृत्युका आगमन जान कर वे पुनः स्वर्गको चले जाते हैं। किन्तु मनुष्य जगत्‌में रह कर उनका शरीर भारी हो जाता है। इस कारण वे ऊपर उठ कर जमीन पर गिर पड़ते और विनष्ट हो जाते हैं। इन पक्षियोंकी परस्पर विभिन्नताके तथा रंग और पुच्छ आदिकी सुन्दरताके कारण इनके मध्य विभिन्न श्रेणियों की सृष्टि हुई है। पहले लोगोंका विश्वास था, कि

द्वीपवासी जो यह स्वर्गपक्षी यूरोपीय वणिकोंके हाथ बेचते थे वे अपनी इच्छानुसार उनके पैर काट डालते थे। इन पक्षियोंमें जो पक्षी सबसे अधिक विशिष्ट और बड़े (Paradisea apoda) होते, जो कुछ छोटे (Paradisea minor) होते थे तथा राजनन्दनपक्षी (Cicinnurus regius) और लालवर्णके नन्दनपक्षी (P rubra) Paradiseidae familyके अन्तर्गत हैं। एक भिन्न श्रेणीके पक्षियोंको जिनके पक्षोंका अग्रभाग बारह पर्णोंको (Seleucides alba) होते, ये Epimachidae family-के अन्तर्गत माने गए हैं। इनमेंसे किसीके पुच्छके पर रस्सीके समान (Semioptera wallacei) होते हैं।

नाविकगण समुद्रपथ हो कर चलते समय महासागर पथमें भी अनेक पक्षियोंके दर्शन करते हैं किन्तु ये किस देशके रहनेवाले हैं, इसका आज तक भी निश्चय नहीं हुआ। उन पक्षियोंमें तिमिपक्षी (Prion Desolatus) झटकपक्षी (OEstrelata-Lessoni) और Black night Hawk प्रभृति पक्षी ही उल्लेखयोग्य हैं।

प्राणितत्त्वविदोंने विशेष पर्यवेक्षणके साथ पक्षियोंको उनकी गठनके पार्थक्यानुसार प्रायः ६१० प्रधान जातियों या श्रेणियोंमें विभक्त किया है।

पक्षीन्द्र (सं० पु०) पक्षिषु इन्द्रः श्रेष्ठः। १ पक्षिश्रेष्ठ, गरुड़। २ जटायु।

पक्षीश्वर (सं० पु०) पक्षियोंके ईश्वर। गरुड़।

पक्षेष्टि (सं० त्रि०) १ पाक्षिक यज्ञ पक्षमें होनेवाला। (पु०) २ पाक्षिक याग, वह यज्ञ जो प्रति पक्ष किया जाय।

पक्ष्मल (सं० त्रि०) पक्ष्मन् (सिध्मादिक्षुद्रजन्तुरोगेभ्यश्च। इति लच्) रोमवाला, रोयेंवाला।

पक्ष्म (हिं० पु०) आंखकी बिरनी बरौनी।

पक्ष्मकोप (सं० पु०) सुश्रुतोक्त नेत्ररोगभेद आंखकी बिरनी या पलकोंका एक रोग।

पक्ष्मपात (सं० पु०) पक्ष्मगत नेत्ररोगभेद। पक्ष्मपात रोग।

पक्ष्मन् (सं० क्ली०) पक्षति परिगृह्णाति पातपनादि-बाधनेन पक्ष-मनिन्। १ अक्षिलोम नेत्राच्छादकलोम आंखकी बिरनी, बरौनी। २ पक्षादिका केसर। ३ सूता

दिका मध्य भाग। ४ तराजूका पल्ला, पलड़ा।

पक्ष्मप्रकोप (सं० त्रि०) पक्ष्मकोपरोगभेद।

पक्ष्मल (सं० त्रि०) पक्ष्मन् सिध्मादित्वात् मत्वर्थे लच्। पक्ष्मयुक्त।

पक्ष्माघ (सं० त्रि०) पक्ष्मकोप-रोगभेद।

पक्ष्मार्श (सं० क्ली०) नेत्रवर्त्मगत रोग।

पक्ष्मोत्कट (सं० पु०) पक्ष्मकोपरोग।

पक्ष्य (सं० त्रि०) पक्ष दिगादित्वात् यत्। (पा ४।३।५४) पक्षीय, पक्षपातवाले।

पखंड (हिं० पु०) पाखंड देखो।

पखंडी (हिं० त्रि०) पाखंडी देखो।

पख (हिं० स्त्री०) १ ऊपरसे व्यर्थ बढ़ाई हुई बात, जुर्रा। २ ऊपरसे बढ़ाई हुई शर्त, व्यर्थका नियम, अड़ंगा। ३ झगड़ा, बखेड़ा, झंझट। ४ त्रुटि, दोष, नुक्स।

पखड़ी (हिं० स्त्री०) फूलोंका रंगीन अवयव जो खिलनेसे पहले आवरणसे ढका रहता है और खिलनेके बाद बीचमें कुछ खिसकाकर सबसे बाहर रहता है और खिलने पर फैला रहता है, पुष्पदल।

पखड़ारो (हिं० स्त्री०) चिड़ियोंके पंखोंका झब्बा। इसे जुलाहे करघेकी कंघीमें सिर्को रोकनेके लिए लगाते हैं।

पखपान (हिं० पु०) एक प्रकारका आभूषण जिसे पैरमें पहनते हैं। इसे कोई कोई पानपोश भी कहते हैं।

पखराना (हिं० क्रि०) पखारनेका काम करना, धुलाना।

पखरी (हिं० स्त्री०) पंखड़ी और पाखर देखो।

पखरैत (हिं० पु०) वह घोड़ा, बैल या हाथी जिस पर लोहेकी पाखर पड़ी हो।

पखरौटा (हिं० पु०) पानका बीड़ा जो सोने या चाँदीके वर्कमें लपेटा हुआ हो।

पखवाड़ा (हिं० पु०) पखवारा देखो।

पखवारा (हिं० पु०) १ महीनेके १५-१५ दिनके दो विभागोंमेंसे कोई एक। २ पन्द्रह दिनका समय।

पखावज (हिं० पु०) पखावज देखो।

पखाटा (हिं० पु०) धनुषका कोना।

पखाना (हिं० पु०) कथा, कहावत, कहनूत, मसल।

पखारना (हिं० क्रि०) पानीसे मैल आदि साफ करना, धोकर साफ करना, धोना।

पखान—हैदराबादके निजामराज्यके अन्तर्गत एक बड़ा [illegible] (पूर्व)देशान्तर [illegible] है। इसके [illegible] जिनमें [illegible] गाँव और [illegible] है और एक [illegible] है। [illegible] यहाँ [illegible] हैं।

पखाल (हिं० स्त्री०) १ पानी भरनेकी चमड़ेकी बड़ी थैली जो बैल आदि पर लादी जाती है। २ धौंकनी।

पखालपेटिया (हिं० पु०) १ वह जिसका पेट पखालकी तरह बड़ा हो, बड़े पेटवाला। २ वह व्यक्ति जो बहुत खाता हो, पेटू।

पखाली मुसलमान भिश्तियोंका एक सम्प्रदाय। पखाल या मशकमें पानी भर कर ढोना ही इनका प्रधान व्यवसाय है। ये लोग पहले हिन्दू थे, पीछे बादशाह औरङ्गजेबके (१६५८-१७०७ ई०के मध्य) मुसलमान धर्ममें दीक्षित हुए। ये लोग तब मुसलमानोंके साथ हिन्दुस्तानी भाषामें और अपने सजातियोंके साथ मराठी भाषामें बातचीत करते हैं। पुरुष दुबले और लम्बे होते तथा स्त्रियाँ अपेक्षाकृत नाटी, मोटी और दुबली होती हैं। इनमें पुरुषोंके और दाढ़ी रखनेकी प्रथा इस जातिमें प्रचलित है। स्त्रियाँ मात्र कोई कोई दाढ़ी भी रखते हैं। स्त्री पुरुष दोनों ही स्वभावतः परिष्कार और परिच्छन्न होते हैं। पुरुष पगड़ी कुरता पायजामा धारण करते हैं। ये लोग पखाल या मशकमें जल ढोकर, मुसलमान, पारसी तथा निम्न-श्रेणीके हिन्दुओंके यहाँ पहुँचा कर उससे अपना गुजारा करते हैं। इस प्रकार ये महीनेमें १५से २०) रु० तक उपार्जन कर लेते हैं। धार्मिक बातोंमें ये बहुत धार्मिक होते, किन्तु साधारणतः ताड़ी और दारू पीना ये पसन्द करते हैं। सामाजिक झगड़ा निबटानेके लिए इनमें एक 'पटेल' या चौधरी कहलाता है।

ये लोग हानिफी श्रेणीके सुन्नी सम्प्रदायभुक्त हैं, किन्तु कोई भी कलमा नहीं पढ़ता और न मसजिद ही जाता है। पर भी मुसलमानोंकी तरह ये लोग भी खतना करते हैं। केवल स्वजातियोंके मध्य ही विवाह-शादी

पड़ती है। मुसलमान होने पर भी ये लोग हिन्दूके त्योहारमें उत्सवादि करते हैं और इसे वे अपना कर्त्तव्य कार्य समझते हैं। आश्विनमासके दशहरा उत्सवमें ये हिन्दूका साथ देते हैं। धारवाड़, सतारा पूना शोलापुर बीजापुर आदि दाक्षिणात्यके प्रधान प्रधान नगरोंमें इनका वास है। इनका दूसरा नाम सिद्दी भी है।

पखावज (हि॰ स्त्री॰) मृदङ्गसे छोटा एक प्रकारका बाजा।

पखावजी (हि॰ पु॰) वह जो पखावज बजाता हो।

पखिहा (हि॰ पु॰) झगड़ालू, बखेड़ा मचानेवाला।

पखुड़ी (हि॰ स्त्री॰) पखड़ी देखो।

पखुवा (हि॰ पु॰) भुजमूलका पार्श्व, बाँहका वह भाग जो किनारे या बगलमें पड़ता है।

पखेरू (हि॰ पु॰) पक्षी, चिड़िया।

पखेव (हि॰ पु॰) गाय या भैंसका वह खाना जो बच्चा जनने पर छः दिन तक उसे दिया जाता है। इसमें सोंठ, गुड़, हलदी, मँगरैला और खर्दका काढ़ा होता है।

पखोआ (हि॰ पु॰) पख पर।

पखोटा (हि॰ पु॰) १ डैना, पर। २ मछलीका पर।

पखोड़ा (हि॰ पु॰) पखोटा देखो।

पखौआ (स॰ पु॰) पलपोट हुए एक पेड़का नाम।

पखोरा (हि॰ पु॰) स्कन्ध और भुजदण्डकी सन्धि, कंधे परकी हड्डी।

पग (हि॰ पु॰) १ पैर, पाँव। २ गमन करनेमें एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पैर रखनेकी क्रियाकी समाप्ति, डग, फाल। ३ जिस स्थानसे पैर उठाया जाय और जिस स्थान पर रखा जाय, दोनोंके बीचकी दूरी, डग, फाल।

पगडंडी (हि॰ स्त्री॰) जंगल या मैदानमें वह पतला रास्ता जो लोगोंके चलते चलते बन गया हो।

पगड़ी (हि॰ स्त्री॰) उष्णीष, पाग, चीरा, साफा।

पगतरी (हि॰ स्त्री॰) जूता।

पगदासी (हि॰ स्त्री॰) १ जूता। २ खड़ाऊँ।

पगना (हि॰ क्रि॰) १ रसके साथ परिपक्व हो कर मिलना, शरबत या शीरेमें इस प्रकार पकना कि शरबत या शीरा चारों ओर लिपट और घुस जाय। २ अत्यन्त अनुरक्त होना किसीके प्रेममें डूबना, मग्न होना। ३ रस आदिके साथ ओतप्रोत होना सनना।

पगनियाँ (हि॰ स्त्री॰) जूती।

पगपान (हि॰ पु॰) एक आभूषण जो पैरमें पहना जाता है। इसे कहीं कहीं पगपान या गोड़संकर भी कहते हैं।

पगरना (हि॰ पु॰) सोने चाँदीके गहनोंका एक औजार। यह औजार गहनोंकी करते समय मुहर बनानेके काममें आता है।

पगरी (हि॰ स्त्री॰) पगड़ी देखो।

पगला (हि॰ पु॰) पागल देखो।

पगहा (हि॰ पु॰) पशु बाँधनेकी रस्सी, गिराँव, पघा।

पघा (हि॰ पु॰) पुगहा, पगहा।

पगान—१ उत्तर ब्रह्मदेशके मेकटिला जिलेका एक उपविभाग। इसमें पगान, सैल और न्यौंगऊ नामके तीन शहर लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक सदर। यह अक्षा॰ २०° ५०´ से २१° २०´ उ॰ और देशा॰ ९४° ३८´ से ९५° १६´ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ९८२ वर्गमील और जनसंख्या करीब साठ हजार है।

३ ब्रह्मदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा॰ २१° १०´ उ॰ और देशा॰ ९४° ५२´ पू॰ इरावती नदीके बायें किनारे अवस्थित है। [illegible] के ऊपर है। वर्त्तमान राजधानीके दक्षिणमें प्रायः १ कोस तक प्राचीन पगानका ध्वंसावशेष पड़ा है। इसके बीच पयाथागमें आलौकिक नामक गिरिमाला रहनेके कारण नदी किनारेसे इसका दृश्य देखनेमें बहुत मनोरम लगता था। केवल मन्दिरादिके ऊँचे शिखर छोड़ कर कोई भी नगरको देखता नहीं था। अब [illegible] विशेष पर्यालोचना करके देखा है कि इस अल्पपरिसर क्षुद्र नगरमें एक समय हजार मन्दिर शोभा पाते थे। सभी मन्दिर हिन्दू और बौद्धधर्मके आयत्त रहे। [illegible] किसी बौद्धने जब यहाँ बौद्धमत फैलाया, तब उन्होंके मतानुसार बौद्धोंने [illegible] मन्दिरादिके अनुकरणमें यहाँ बहुतसे मन्दिर बनवाये। ९वीं शताब्दीके शेष भागमें यह नगर राज

पानीके रूपमें गिना जाने लगा। यहांकी शिलालिपि देखनेसे मालूम पड़ता है कि ८४७-८४८से ले कर १२वीं शताब्दी तक यह नगर विशेष उन्नत दशामें था। इरावती नदीके किनारे ब्रह्मको पूर्वतन राजधानीके उत्तर प्राचीन पगान नगर अवस्थित है। १२८४ ई०में कुब्लाई खांके राजत्वकालमें मुगलसेनाने आ कर इस नगरको तहस नहस कर डाला।

पगाना (हिं० पु०) १ पागनेका काम कराना। २ अनुरक्त करना, मस्त करना।

पगार—मध्यप्रदेशके होशङ्गाबाद जिलान्तर्गत एक छोटा राज्य। यह महादेवपर्वतके ऊपर बसा हुआ है। पर्वत पर जो मन्दिर है उसीके पंडासेमें यहांके सरदार हैं।

पगार (हिं० पु०) १ पैरोंसे कुचली हुई मट्टी कीचड़ या गारा। २ वह पानी या नदी जिसे पैदल चल कर पार कर सकें, पायाब। ३ ऐसी वस्तु जिसे पैरोंसे कुचल सकें। ४ वेतन, तनखाह।

पगाह (फा० स्त्री०) यात्रा आरम्भ करनेका समय, भोर, तड़का।

पगुराना (हिं० क्रि०) १ पागुर करना, जुगाली करना। २ हजम कर जाना, डकार जाना, ले जाना।

पग्गा (हिं० पु०) पीतल या तांबा गलानेकी घरिया, पागा।

पग्गी—गुजरातवासी भीलजातिकी एक शाखा। ये लोग पद-चिह्नका अनुसरण करके चोर और खनीको बहुत दूरसे भी पकड़ सकता है।

पघा (हिं० पु०) वह रस्सा जो गायों बैलों आदि चौपायोंके गलेमें बांधा जाता है। ढोरोंको बांधनेकी मोटी रस्सी।

पघाल (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत कड़ा लोहा।

पघिलना (हिं० क्रि०) पिघलना देखो।

पचंया (हिं० पु०) गावों आदिमें घूम घूम कर माल बेचनेवाला व्यापारी।

पङ्क (सं० पु० क्लो०) पच्यते व्याप्यते क्रियते वा अनेन पच-घञ, कुत्वञ्च। १ कर्दम कोचड़, कोच। २ पानीके साथ मिला हुआ पीसने योग्य पदार्थ, लेप। ३ पाप।

पङ्ककर्कट (सं० पु०) पङ्केषु कर्कटः, मनोहरः। जलयुक्त पङ्क, पानीके साथ मिला हुआ पीसने योग्य पदार्थ।

पङ्ककीर (सं० पु०) पङ्कप्रियः कीरः पक्षिविशेषः। कोयष्टिक पक्षी, टिटिहरी नामकी चिड़िया।

पङ्कक्रीड़ (सं० पु०) पङ्के पङ्केन वा क्रीड़ति पङ्क क्रीड़-अच्। १ शूकर, सूअर। (त्रि०) २ कर्दमखेलक, कीचड़में खेलनेवाला।

पङ्कक्रीड़नक (सं० पु०) पङ्कक्रीड़ स्वार्थे कन्। शूकर, सूअर।

पङ्कगड़क (सं० पु०) पङ्के स्थितो गड़कः। मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी छोटी मछली।

पङ्कगति (सं० स्त्री०) पङ्के गतिर्यस्य। पङ्कगडक मत्स्य, एक प्रकारकी छोटी मछली।

पङ्कग्राह (सं० पु०) पङ्के स्थितो ग्राहः। जलजन्तुभेद, मगर।

पङ्कज (सं० क्लो०) पङ्के पङ्काद्वा जायते पङ्क-जन कर्त्तरि-ड। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ कीचड़में उत्पन्न होनेवाला।

पङ्कजन्मन् (सं० स्त्री०) पङ्के जन्म यस्य। पद्म, कमल।

पङ्कजजन्मन् (सं० पु०) पङ्कजे जन्म उत्पत्तिस्थानं यस्य। १ ब्रह्मा, पद्मयोनि।

पङ्कजराग (सं० पु०) पद्मरागमणि।

पङ्कजवाटिका (सं० स्त्री०) तेरह अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक भगण, एक नगण, दो जगण और अन्तमें एक लघु होता है। इसका दूसरा नाम एकावली और कंजावली भी है।

पङ्कजात (सं० पु०) १ अङ्कराजसुत। १ पद्म, कमल।

पङ्कजावली (सं० स्त्री०) १ छन्दोभेद। २ पद्मसमूह।

पङ्कजासन (सं० पु०) ब्रह्मा।

पङ्कजित् (सं० पु०) गरुड़के एक पुत्रका नाम।

पङ्कजिनी (सं० स्त्री०) पङ्कजानि सन्त्यस्याम् इति इनि (पुष्करादिभ्यो देशे। पा ५।२।१३५) १ पद्माकर, कमलाकर। २ कमलिनी, कमलहृद। ३ पद्मसमूह, कमलका ढेर।

पङ्कण (सं० पु०) मांसादिनिमित्तके पापाचारकर्मविकणः कलङ्को यस्य सः, पृषोदरादित्वात् साधुः। पक्कण, शबरालय, चाण्डालका घर।

पङ्कदिग्ध शरीर (सं० पु०) दानवभेद, एक दानवका नाम। २ कर्दमाक्त देह, कीचड़से भरा हुआ शरीर।

पङ्कदिग्धाङ्ग (सं० पु०) कुमारानुचरभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

पङ्कधूम (सं० पु०) नरकभेद, जैनियोंके एक नरकका नाम।

पङ्कपर्पटी (सं० स्त्री०) सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपीचन्दन।

पङ्कप्रभा (सं० स्त्री०) पङ्कस्य प्रभा प्रकाशो यस्याः। कर्दमयुक्त नरकविशेष, कीचड़से भरे हुए एक नरकका नाम।

पङ्कमण्डूक (सं० पु०) पङ्के मण्डूक इव। १ शम्बूक, घोंघा। २ क्षुद्रशुक्ति, छोटी सीप, सुतही।

पङ्करुह् (सं० क्ली०) पङ्के रोहतीति पङ्क-रुह-क्विप्। पद्म, कमल।

पङ्करा—हिमालयवर्णित मरुभूमिकी एक नदी। यह विष्णुपुरसे दो कोस उत्तरमें प्रवाहित है।

पङ्कवत् (सं० त्रि०) पङ्क विद्यतेऽस्य, पङ्क मतुप् मस्य व। कर्दमयुक्त कीचड़से भरा।

पङ्कवारि (सं० क्ली०) काञ्जिक काँजी।

पङ्कवास (सं० पु०) पङ्के वासो यस्य। १ कर्कट, केकड़ा। २ मत्स्यादि, मछली आदि।

पङ्कशुक्ति (सं० स्त्री०) पङ्के स्थिता वा शुक्तिः। १ जल शुक्तिभेद, तालमें होनेवाली सीप, सुतही। २ शम्बूक, घोंघा।

पङ्कशूरण (सं० पु०) पङ्के शूरण इव। शम्बूक, घोंघा। २ पद्मकन्द।

पङ्कार (सं० पु०) पङ्कमृच्छति गच्छति प्राप्नोति इति यावत् पङ्क-ऋ-अण्। १ जलज वृक्षविशेष, एक पेड़ जो नदीके कीचड़में होता है। इस पौधेमें स्त्री और पुरुष दो अलग जातियाँ होती हैं। २ शैवाल सेवार। ३ सेतु, पुल। ४ सोपान, सीढ़ी। ५ बाँध। ६ जलकुब्जक, सिंघाड़ा।

पङ्किल (सं० त्रि०) पङ्कोऽस्त्यस्मिन् पङ्क-इलच् (पिच्छादिभ्यश्च। पा ५।२।१००) कर्दम, जिसमें कीचड़ हो, कीचड़वाला। पर्याय—कर्दमित, पङ्कयुत, कर्दमाक्त।

पङ्केज (सं० क्ली०) पङ्के जायते इति जन-ड (सप्तम्यां जनेर्डः। पा ३।२।९७) इति सप्तम्या अलुक्। पद्म, कमल।

पङ्केरुह (सं० क्ली०) पङ्के रोहतीति पङ्क-रुह-क ततो सप्तम्या अलुक्। १ पद्म कमल। (पु०) २ सारसपक्षी।

पङ्केशय (सं० त्रि०) पङ्के शेते शी-अच्, ततः सप्तम्या अलुक्। १ पङ्कशायी, कीचड़में रहनेवाला। (स्त्री०) २ जलौका, जोंक।

पङ्क्ति (सं० स्त्री०) पच्यते व्यक्तीक्रियते वा इति पचि—व्यक्तीकरणे-क्तिन्, दशत्वात् पञ्च वा पचि विस्तारे क्तिन्। १ श्रेणीबद्ध संस्थान विशेष, श्रेणी, पाँती, कतार, आवली। पर्याय—श्रेणी, आलि, आवलि, वीथी, वीथि, माला, आवली पङ्क्ति, ततिः, राजि, ततति लेखा, आलि, पङ्क्ति, वीथिका। २ पञ्चाक्षरपादक छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें पाँच पाँच अक्षर अर्थात् एक भगण और अन्तमें दो गुरु होते हैं। भागवतमें लिखा है—

"अक्षरैः पङ्क्तिश्छन्दसा ततो भगवतोऽभवत्।"
(३।१२।४६)

भगवान्के पङ्क्ति और ... उत्पन्न हुई है। ३ दशाक्षरपादक छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें पाँच पाँच अक्षर होते हैं। ४ दशम संख्या, दशका अङ्क। ५ पृथ्वी। ६ गौरव। ७ भोजमें एक साथ बैठ कर खानेवालों की श्रेणी। हिन्दू आचारके अनुसार पतित व्यक्तिके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन करनेका निषेध है।

"न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुल्कसैः।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः॥
एकशय्यासनं पङ्क्तिर्भाण्डपक्वान्नमिश्रणम्।
याजनाध्यापने योनिस्तथैव सह भोजनम्॥
सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च।
एकादश समुद्दिष्टा दोषाः साङ्कर्यसंज्ञिताः॥"
(कूर्मपु० १६ अ०)

पतित, चण्डाल, गौण और मूर्ख व्यक्तिके साथ वास, एक आसन पर बैठना, एक साथ खाना, उनका यज्ञ, अध्यापन प्रभृति दूषणीय है। यह दोष ग्यारह प्रकारका

है। एक पंक्तिमें बैठ कर यदि एक दूसरेको स्पर्श न करे अथवा भस्म और अग्निव्यवधान रहे, तो पंक्ति साङ्कर्य दोष नहीं लगता।

"एक पंक्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम्।
भस्मना कृतमर्यादा न तेषां संकरो भवेत् ॥
अग्निना भस्मना चैव पङ्क्तिः परिकीर्त्तिते।"

५ सेनामें दश दश योद्धाओंको श्रेणी। ६ कुलीन ब्राह्मणोंकी श्रेणी।

पङ्क्तिकण्टक (सं० पु०) पङ्क्तौ एकपङ्क्तौ कण्टक इव। पंक्तिदूषक।

पङ्क्तिकर (सं० वि०) श्रेणी, पांती।

पङ्क्तिकृत (सं० स्त्री०) पङ्क्ति-क्त प्रभूत तड़ागे चित्र। श्रेणीबद्ध।

पङ्क्तिग्रीव (सं० पु०) पङ्क्तिः दशसंख्यिका ग्रीवा यस्य। रावण।

पङ्क्तिचर (सं० पु०) पङ्क्त्या श्रेणीबद्धः सन् चरतीति पंक्ति-चर ट। कुररपक्षी।

पङ्क्तिच्युत (सं० त्रि०) किसी कलङ्क, दोष आदिके कारण जातिकी श्रेणीसे बाहर किया हुआ, बिरादरीसे निकाला हुआ।

पङ्क्तिदूष (सं० पु०) पंक्तिं एकपंक्तिं भोजने दूष्यति दूषि-अण्। पंक्तिदूषक।

पङ्क्तिदूषक (सं० पु०) श्राद्धकाले भोजनार्थमुपविष्टानां व्रतस्नातानां ब्राह्मणानां पंक्तिं श्रेणीं दूषयति यः, पंक्ति-दूष कर्त्तरि ण्वुल्। अपाङ्क्तेय, श्राद्धभोजनानर्ह ब्राह्मण, ऐसा ब्राह्मण जिसके साथ पंक्तिमें बैठ कर भोजन नहीं कर सकते। पद्मपुराणके स्वर्गखण्ड २५ अध्यायमें लिखा है—कितव, भृगाहा, यक्ष्मारोगी, पशुपालक, निराकृति, ग्रामप्रेष्य, वार्द्धुषिक, गायन, सर्वविक्रयी, अगारदाही, गरद, कुण्डाशी, सोमविक्रयी, सामुद्रिक, राजदूत, तैलिक, कूटकारक, पिताके साथ विवादकारी, अभिशस्त, स्तेन, शिल्पोपजीवी, मित्रद्रोही, पारदारिक, परिवृत्ति, दुश्चर्मा, गुरुतल्पग, कुशीलव, देवलक, नक्षत्रोपजीवी, खदष्ट, खसहगामी और जिसके घरमें उपपति आता जाता हो, ये सब ब्राह्मण अपाङ्क्तेय हैं।

जिस श्राद्धमें गुरुतल्पग और दुश्चर्मा भोजन करता है, उस श्राद्धमें पितृगण भोजन नहीं करते और वह श्राद्ध निष्फल होता है। जो ब्राह्मण शूद्रोंको उपदेश देते हैं, उन्हें भी श्राद्धमें खिलाना नहीं चाहिये।

(पद्मपु० स्वर्गख० २५ अ०)

मनुसंहितामें पंक्तिदूषकका विषय इस प्रकार लिखा है—

क्लीवता, नास्तिकता, ब्रह्मचारीका अनध्ययन, चर्मरोग, द्यूतक्रीड़ा, बहुयाजन, चिकित्सा, प्रतिमापरिचर्या, देवल ब्राह्मणका कार्य, मांसविक्रय, वाणिज्य, ग्राम वा राजाका सरकारी कार्य, कुनख, श्यावदन्त, गुरुके प्रतिकूलाचार, श्रौत और स्मार्त्त अग्निपरित्याग एवं कुसीद, यक्ष्मारोग, छाग, गो प्रभृति पशुपालन, पञ्चमहायज्ञ नहीं करना, ब्रह्मद्वेष, परिवित्ति, साधारणके लिये उत्सृष्ट धनादिका उपभोग, नर्त्तन वा गायनादिवृत्ति, स्त्रीसम्पर्क द्वारा ब्रह्मचर्य हानि, असवर्णा-विवाह, शूद्राविवाह और जिसकी जायाका उपपति है, वेतन ले कर वेद पढ़ाना, शूद्रको पढ़ाना, निष्ठुरवाक्य, जारजदोष, पिता माता और गुरुजनका अकारण परित्याग, पतितके साथ अध्ययनादि और कन्यादानादि द्वारा सम्बन्ध, प्राणनाशके लिये विष प्रदान, सोमविक्रय, समुद्रयात्रा, स्तुतिवादादि द्वारा जीविका, तेलके लिये तिलादि बीज पेषण, तुलामान वा निष्यादिविषय, द्यूतक्रीड़ा नहीं जानने पर भी अर्थ दे कर दूसरे द्वारा क्रीड़ा, मद्यपान, पापरोग, छद्मवेश, इक्षु आदिका रसविक्रय, धनुष और शरनिर्माण, ज्येष्ठाभगिनीका विवाह हुए बिना कनिष्ठा भगिनीका पाणिग्रहण, मित्रद्रोह, अपस्मार, गण्डमाला, श्वेतकुष्ठ, उन्माद और अन्धरोग, वेदनिन्दा, हस्ती, गो, अश्व और उष्ट्रका दमन वा पालन, नक्षत्रादिकी गणना, सेतुभेदादि द्वारा प्रवहमान स्रोतका अवरोध, वास्तुविद्या, दौत्यकार्य, वेतनभोगी हो कर वृक्षरोपण, क्रीड़ा दिखानेके लिये कुक्कुर पालन, श्येनपक्षीके क्रयविक्रयादि द्वारा जीविकानिर्वाह, कन्यकागमन, हिंसा, शूद्रसेवा, नानाजातीय लोक-याजकता, आचारहीनता, धर्मकार्यमें निरुत्साह, स्वयं कृषि द्वारा जीविकानिर्वाह, व्याघ द्वारा स्थलघटन, साधुओंकी निन्दा, परपूर्वा अर्थात् एक बार विवाह हो चुका है ऐसी स्त्रीका फिरसे पाणि-

—भक्ष्य, अनध्यय करने वाला ब्राह्मण और ब्राह्मणनिन्दित चोर; जिन ब्राह्मणों के उपरोक्त कोई दोष है, वे पंक्ति-दूषित अयोग्य हैं अर्थात् वे एक पंक्ति में बैठ कर भोजन नहीं कर सकते। अतएव इस प्रकार के ब्राह्मण अपाङ्क्तेय या पंक्तिदूषक कहलाते हैं। श्राद्ध में इन सब ब्राह्मणों को भोजन कराने से श्राद्ध निष्फल होता है। (मनु ३ अ०)

—पंक्तिदूषक का विषय श्राद्धकाण्ड में विशेष रूप से लिखा है।

पङ्क्तिपावन (सं० पु०) पङ्क्ति—भोजनार्थ उपविष्ट लोगों की पंक्तियों को पवित्र करने वाला—वेदविद्याविशारदादि ब्राह्मणादि। ये लोग पुनन्ति पङ्क्तिम्। पवित्र करते हैं पंक्ति को। १ ये षोडशविध कर्म, वह ब्राह्मण जिसको यज्ञादि में बुलाना, भोजन कराना और दान देना श्रेष्ठ माना गया है।

पद्मपुराण में लिखा है—

"इमे हि मनुजश्रेष्ठ! विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः।
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित्॥
महाव्रतपरा ये च विप्राः पंक्तिपावनाः।
मातापित्रोर्हिते युक्तः श्रोत्रियो दशपूरुषः॥
ऋतुकालाभिगामी च धर्मपत्नीषु यः सदा।
वेदविद्याव्रतस्नातो विप्रः पंक्ति पुनात्युत॥"

(पद्मपुराण स्वर्गख० २९ अ०) इत्यादि

ये तद्विद् ब्राह्मण, जो महाव्रतपरायण हैं, जो पिता और माताके हितमें रत हैं, श्रोत्रिय और जो ऋतुकालमें धर्मपत्नीमें उपगत रहते हैं, धर्मपरायण, वेदादि शास्त्र और ज्ञानवेत्ता हैं वह ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र करते हैं। सत्यवादी धर्मशील, स्वधर्मनिरत, तीर्थयात्री, क्रोधहीन, अनघ, शान्त, जितेन्द्रिय, भूतोंके हितकारक, ऐसे ब्राह्मणोंको दान देनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है और ये ही पंक्तिपावन कहलाते हैं। जिन में किसी प्रकारका दोषाघात नहीं है, अर्थात् पहले पंक्तिदूषककी जगह जिन सब दोषोंका उल्लेख किया गया है, वे ही दोषरहित ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं। २ पञ्चाग्निसम्पन्न, वह ब्राह्मण जो पञ्चाग्नियुक्त हो।

पङ्क्तिबद्ध (सं० त्रि०) श्रेणीबद्ध, पंक्तिमें लगा हुआ। २ कतारमें लगा हुआ।

पङ्क्तिरथ (सं० पु०) पङ्क्ति दशसु दिक्षु गतो रथो यस्य। राजा दशरथ।

"अयोध्याया महाराज पुत्र पंक्तिरथो बली।
तस्याहमग्री राजपत्नी धर्मपूर्णप्रियोऽस्मि ह॥"

(पद्मपुराण पातालख०) (रघु० ८।७४)

पङ्क्तिराधस् (सं० त्रि०) ब्राह्मणोंक हविष्पङ्क्त्यादि द्वारा साध्य यज्ञ।

पङ्क्तिशाक (सं० त्रि०) जातिच्युत, पंक्तिसे निकाला हुआ।

पङ्क्तिबीज (सं० पु०) पङ्क्तिभूतानि बीजानि यस्य। १ बबूल वृक्ष, बबूल। २ पारस्यवृक्ष, धराग। ३ कर्णिका वृक्ष, कर्णिकार।

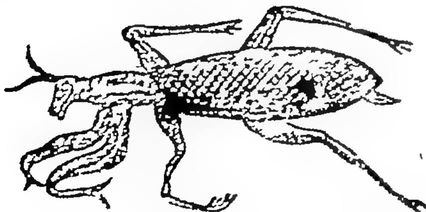
पड़्मो—नयपाल पार्वत्यप्रदेशवासी जातिविशेष। गङ्ग नदीके पूर्वी किनारे थोड़ोड़ प्रदेशकी धर्मकुशी नदीके किनारे तीन ग्रामोंमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। यहांके जनयोंकी जातिके लोग भी अपनेको इसी श्रेणीके बतलाते हैं। उनका कहना है, कि दोनों ही जाति एक पिताकी दो सन्तानसे उत्पन्न हुई हैं—एक पुत्रका वंश पड़्मो और दूसरेका वंश जनयोंगी कहलाता है। इन दो जातियोंकी भाषा आचारव्यवहार और रीतिनीति प्रायः एक-सी है। ये लोग अपनेको ब्रह्मके सामन्त बतलाते हैं। दोनों जातियोंमें फर्क इतना ही है कि जनयोंगी लोग मस्तकके अग्रभागमें जूड़ा बांधते हैं और पड़्मो लोग मस्तकके पश्चाद्भागमें।

जगत्की उत्पत्तिके विषयमें इन लोगों के मध्य एक आख्यान प्रचलित है। इनके पूर्वपुरुषों में अयम्बोफ्लपा नामक एक राजा हुए। वे विशेष क्षमतावान् थे। उनका विवाह किसी एक देवकन्यासे हुआ था। एक समय वह पर्वत प्रदेशमें भाग गये। देवकन्याकी सन्तानमें पर्वताधिपति महेन्द्रोत्स प्रसवन किसने उधर पाये और उन्होंने वे निम्नप्रदेशमें रहने लगे हैं। उनका कहना है, कि पहले सभी जीवजन्तु बात चीत कर सकते थे। एक दिन सबने मिल कर देवकन्यासे भी जानिको मांगा, इस पर देवकन्याने सब पशुओंको पकड़ कर बोलीको वाक्शक्ति हरण कर ली। उन्होंने लोग पुनः पश्चात्मनिंत कह बोध कर प्रणाम कर

नहीं सकते। पचेन श्रोर खोजिं यही दो इनके कुल-देवता हैं।

पहले इन लोगोंमें नरहत्या प्रचलित थी। अभी अंगरेज गवर्मेंटके कठोर शासनसे वह वीभत्स व्यापार बंद कर दिया गया है। इनमें कोई पर्व नहीं होता. केवल धानकी कटनीके समय ये लोग विशेष आमोद प्रमोद करते हैं। बनयोगी लोग शवदेहको गाड़ देते हैं, जलाते नहीं।

पङ्गपाल (टिड्डी)—पतङ्ग जातिविशेष, टिड्डी। प्राणि-तत्त्वविदोंने इन्हें (Orthoptera) अर्थात् प्रकृत डैनेके उपरिभागस्थ कठिन आच्छादनयुक्त और लम्फनशील (Saltatoria) बतलाया है। उन्होंने Gryllidae और Locustidae नामक दो जाति गतसंज्ञाका निर्देश कर पुनः इनके मध्य अनेक श्रेणियोंका विभाग किया है। इनके पश्चाद्भागके पैर साधारणतः शरीरकी अपेक्षा बड़े होते हैं। इन्हीं पैरोंके ऊपर शरीरका कुल भार दे कर ये उछलते कूदते हैं। किन्तु सामनेके पैर अपेक्षा-कृत छोटे होते हैं। मस्तकके सामने सूतकी तरह बहुत बारीक कड़े बाल रहते हैं उन्होंसे इनका स्पर्शज्ञान होता है। अन्यान्य पतङ्गोंकी तरह इनकी देहयष्टि भी तीन भागोंमें विभक्त हैं, यथा—मस्तक, वक्ष और उदर। गुल्फास्थि भी तीन ग्रन्थियोंमें आबद्ध है। इनके डैने पेटसे भी अधिक चौड़े होते हैं और उनके ऊपरमें जो कठिन ढक्कन (Elytra) होते हैं, उन्हींके परस्पर संघर्षणसे पुरुषजाति एक प्रकारका अस्फुट शब्द करती है। यह शब्द पीठ पर जो ग्रन्थि है उसीसे उत्पन्न होता है। नरके आकारसे मादाके आकारमें बहुत फर्क पड़ा।



पंगपाल।

विभिन्न देशोंमें इस पङ्गपाल जातिका विभिन्न नाम देखा जाता है। बिहारमें टिड्डी, या पङ्गपाल, उड़ीसामें फिफिटकी, पारस्यमें जरद और जरद-उल-बहर, ग्रीसमें फरिंदो, फ्रान्समें Sauterelle, जर्मनमें Heusbrecke, ग्रीसमें Opheomachez, हिब्रुमें भारगोल, भारबे, इटलीमें Locusta, अङ्गरेजीमें locust, पोर्तुगीजमें Logosta, स्पेनमें Langosta, पारसमें भाइग मलख, मलख-इ-इस्लाम, मलख-इ-कराम, मलख-इ-दरियाई आदि अनेक नाम पाए जाते हैं।

स्थान, वर्ण और आकृतिके तारतम्यानुसार इनमें भी श्रेणीविभाग हुए हैं।

(१) इङ्गलैण्डदेशका सब्ज रंगका पङ्गपाल (Acrida viridi-sima) प्रायः दो इञ्च लम्बा होता है।

(२) पङ्गपाल श्रेणीके मध्य Gryllus migro torius साधारणतः बड़े होते हैं। ये अनेक समय एक एक जिला नष्ट कर डालते हैं।

(३) वड़ोमाकी झिण्टकी प्रायः १ इञ्च लम्बी होती है।

(४) Phymatea punctata देखनेमें बड़े ही सुन्दर होते हैं। इनके पेटका तलभाग लाल और वक्ष-भाग जरद तथा नील रंगका होता है। इस जातिके छोटे छोटे कीट भी कृषकके विशेष हानिकारक हैं।

(५) अफ्रिका और एशियाके दक्षिणांशमें Acrydium (Oedipoda) migratorium देखनेमें सब्ज रंगके, डैनेका कठिन आवरक स्वच्छ, पांशु और सफेद तथा पैर लालपन लिए पीले रंगके होते हैं। ये शून्य-मार्गमें प्रायः १८ मील उड़ सकते हैं।

(६) सिनाई प्रदेशका Gryllus gregarius।

(७) A. peregrinum लाल और पीले रंगके होते और बानीगञ्ज तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें कभी कभी देखे जाते हैं।

(८) Acrydium lineole वागदादके बाजारमें खानेके लिए बिकते हैं।

(९) Oedipoda migratoria फ्रान्सकी राजधानी पेरिससे ले कर पारसकी राजधानी इस्पाहन तक और मध्य अफ्रिकासे ले कर तातार तकके सभी स्थानोंमें आ कर कभी कभी फसलको बड़ी हानि पहुंचाते हैं।

अष्ट्रेलिया द्वीपमें जो सब पङ्गपाल देखे जाते हैं, वे

Tettigoniae जातिके हैं। ये केवल वृक्षके ऊपर घूमते और पत्रादि खाते हैं। जातिभेदसे कोई सब्ज, कोई नारंगी रंगका और कोई काला होता है। इनमें बाज-वत् सूक्ष्म स्वच्छ विचित्र पर सुन्दर नम्रगुणके रंगोंमें रंगे होते हैं।

पङ्गपालका उपद्रव चिरप्रसिद्ध है। जिस समय इनका दल काल बादलकी घटाके समान उमड़ कर चलता है उस समय आकाशमें अन्धकार सा हो जाता है और मार्गके पेड़, पौधे तथा खेतोंमें पत्तियां नहीं रह जातीं। जिन जिन प्रदेशोंसे हो कर ये उड़ते हैं, उनको फसलको नष्ट करते जाते हैं। शास्त्रमें दुर्भिक्ष और मारी भय ऐसा ही बहुत निदारुण समय है, वैसा ही पङ्ग-पाल-पतन भी दुर्घट और ईश्वरकृत उपद्रवसमूहका निदर्शन है। दुर्भिक्षके बाद इनका आगमन भी हुआ करता है। इतिहासमें इनके भूरि भूरि प्रमाण मिले हैं। प्राचीन भाषामें इस जातिका पतङ्ग 'शलभ' नामसे प्रसिद्ध है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषिक और अवग्रावण जिस प्रकार दुर्भिक्षादि अमङ्गलका पूर्वलक्षण है, पङ्गपालका आगमन भी उसी प्रकार जानना चाहिये। पङ्गपाल और मूषिक आदिका उपद्रव राज्यके अमङ्गलकी सूचना करता है। विष्णुपुराणमें लिखा है—

"अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकाः शुकाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥"

(कामन्दक १३।६९-७०)

महाभारतमें लिखा है कि अग्नि इन्द्रके व्यापारसे जिस प्रकार पेड़ों या पौधोंको काट डालती है, पशु नष्ट करती है भी मधु पीकर अंगोंको हत्या हुई थी।

(विराटपर्व ३८।१३)

प्राचीन समयमें भी शलभोंका उपद्रव पर्यन्त विदित था, इसमें सन्देह नहीं। रामायणमें भी बाण-के साथ शलभकी तुलना की गई है। इसके अलावा बाइबलमें भी ईसामसीहके बहुत पहले पङ्गपालके भीषण उपद्रवकी कथा लिखी है। १८७५ ई०में अमेरिकाके किसी राज्यमें पङ्गपालका उपद्रव दूर करनेके अभिप्रायसे प्रजाको ईश्वरकी स्तवस्तुति करनेकी आज्ञा हुई थी। पङ्गपालकी अवस्थिति दुर्भिक्षार्थ है। जिस स्थान हो कर पङ्गपाल उड़ती है, वहां खाका सुन्दरका जोड़ा देखा जाता है। दिनके समय ये सब कोड़े बहुत छोटे दीख पड़ते हैं। रातको ये वास्के पैरों पर चढ़ जाते और सिरको जमीनमें काट गिराते हैं। इसी प्रकारसे कुछ कीड़ोंको पकड़ कर देखा गया है कि ८।१० दिनके बाद ही उनका आकार बड़ा हो जाता और तब खोल बड़े चतिंगी के दिखमें लगते हैं। मादा सुमेमें राजमें गई बना कर अंडे देती है। जिस खेतको हलसे सही चमस कर दी गई है, उसी तरह स्थानमें वे प्रायः अंडे देना पसन्द करती है। प्रत्येक गर्त्तमें प्रायः १०।१० अंडे रहते हैं। डाक्टर लिच परिहटनका कहना है कि वे ग्रीष्म कालमें (अर्थात् अगस्तमें या सितम्बरमें) अंडेको जमीनके अन्दर रखती हैं। वसन्तकालमें उन अंडोंके फूट जाने पर सावकाड़े बाहर निकल आते हैं। इसके बाद मादाके उदरके रासको तरह एक प्रकारकी श्लेष्मा निकलता है। उसीसे ये अंडोंको बचाये रखती हैं। अंडे के फूटने पर कीड़े जमीनके बाहर निकलते हैं। पीछे उनके पूर्णाङ्ग होनेमें प्रायः ठीक दो मास लगते हैं। जिस खेतमें गेहूंकी खेती होती है उस खेतमें पङ्गपालके अंडोंसे अधिक कोड़े निकलते हैं किन्तु मटरोंके खेतमें ११।१२से अधिक कोड़े कभी भी निकलते नहीं देखे जाते। ये सभी प्रकारकी फसल, कच्ची और सूखी पत्तियां, पेड़की सूखी छाल और लकड़ी, कागज, रुई, ऊनमेंसे वस्त्र, यहां तक कि भेड़ोंकी पीठ पर बैठ कर उनके शरीर परके पशम भी खा डालते हैं। तमाकू, तथा पान, मालपुवो, राहुर आदि इनके विशेष उपादेय हैं। सांप बिल्ली, बैल, सूअर तथा नाना जातिके पक्षी इनके विषम शत्रु हैं। अंडे या कोड़े पानेसे ही वे उसी समय निगल जाते हैं। इनके अंडोंको यदि नष्ट करना चाहें, तो आसानीसे कर सकते हैं। इनके सही भी इच्छा देनेसे अथवा जमीन पर मिट्टीका तेल छिड़क देनेसे प्रायः सभी अंडे नष्ट हो जाते हैं। पङ्गपालके आगमनसे खेतकी रक्षा करनेके और भी कितने उपाय हैं जिनका उल्लेख करना निष्प्रयोजन है।

अति प्राचीनकालसे ही चमड़े आदि पापाण जाति-योंके मध्य पङ्गपाल खाद्यपदार्थमें परिगणित होता था

रता है। यह्रदी लोग केवल मात्र पङ्गपाल खाते हैं। ये लोग इसे शुद्ध और भगवत्प्रेरित मानते हैं। बुमायाके मुसलमान भी एक जातिका पङ्गपाल खाते हैं। अरब-वासी लवणमें सिद्ध कर मक्खन वा चर्वीके साथ अथवा आगमें जला कर इसे खाते हैं। मरक्कोवासी भी पङ्गपाल को भुन कर खाते हैं। यहांके बाजारमें भुना हुआ पङ्ग-पाल बिकता है। अफ्रिका, रूस, अमेरिका, पर्शिया, इथिओपिया, ब्रह्म और आराकान आदि देशवासियोंमेंसे कोई जलाकर, कोई भुन कर कोई मसाले आदि डाल कर इसे खाते हैं। पङ्गपाल विशेषतः पर्वतकी कन्दराओं और रेगिस्तानोंमें रहते हैं।

पङ्गु (सं० पु०) खञ्जित गतिवैकल्यं प्राप्नोतीति खजि गतिवैकल्ये बाहुलकात् कु। ततः कस्य पत्वं जस्य गादेशः नुम् च (बाहुलकात् कु. खजगोःपगौ नुमागमश्च। उण् १।३७) १ शनैश्चर, शनिग्रह। २ परिव्राट्, परिव्राजक।

'भिक्षार्थं गमनं यस्य विण्मूत्रकरणाय च।
योजनान्न परं याति सर्वथा पङ्गुरेव सः॥"
(चिन्तामणि)

३ वातव्याधिविशेष, वातरोगका एक भेद। वैद्यक-का मत है कि कमरमें रहनेवाली वायु जांघोंको नसोंको पकड़ कर सिकोड़ देती है जिससे रोगीके पैर सिकुड़ जाते हैं और वह चल फिर नहीं सकता। खञ्ज देखो। (त्रि०) ४ खञ्ज, लंगड़ा। इसका पर्याय श्राण और जङ्घाहीन है।

पङ्गु (सं० पु०) १ सह्याद्रिखण्डवर्णित एक सोम-वंशीय राजा। ये सरस्वतीभक्त थे तथा अश्विन् (अश्विन्) राजाके औरससे उत्पन्न हुए थे। विश्वामित्र इनका गोत्र था। अङ्गहीन रहनेके कारण इनका पङ्गु नाम पड़ा था। ऋष्यशृङ्गके परामर्शसे इन्होंने अनेकों सत्कार्य करके भारपाक्ष नामक एक पुत्र प्राप्त किया था।
(सह्याद्रि० ३।३२ अ०)

२ चन्द्रवंशीय एक राजा, कामराजके पुत्र।

पङ्गुक (सं० त्रि०) पङ्गु स्वार्थे कन्। पङ्गु, लंगड़ा।

पङ्गुगति (सं० स्त्री०) वर्णिक छन्दोंका एक दोष। जब किसी वर्णिक छन्दमें लघुकी जगह गुरु और गुरुकी जगह लघु आ जाता है, तब यह दोष माना जाता है।

पङ्गुग्राह (सं० पु०) १ मकर नामक जलजन्तु, मगर। २ मकरराशि।

पङ्गुता (सं० स्त्री०) पङ्गोर्भावः, पङ्गु-तल्-टाप्। पङ्गुत्व, लंगड़ापन।

पङ्गुलहारिणी (सं० स्त्री०) पङ्गुत्वं हरति पङ्गुत्व-हृ-णिनि स्त्रियां ङीप्। शिमुड़ीक्षुप, चंगोनी।

पङ्गुल (सं० पु०) १ शुक्लवर्ण अश्व, सफेद रंगका घोड़ा। २ एरण्डवृक्ष, अंडीका पेड़। (त्रि०) ३ पङ्गु, लंगड़ा।

पङ्गुल्यहारिणी (सं० स्त्री०) सेवनेन पङ्गुल्यं पङ्गुत्वं हरति हृ-णिनि। शिमुड़ीक्षुप, चंगोनी।

पच (सं० त्रि०) पचति यः पच्-अच् (नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। पा ३।१।१३४) पाककर्त्ता, रसोई बनाने-वाला।

पचक (हिं० पु०) काश्मीरजात एक प्रकारके गुल्मकी जड़ Cossyphus; Aucklandia। स्थानभेदसे इसके विभिन्न नाम देखे जाते हैं, यथा—संस्कृत और बङ्गला कुष्ठ और कुड़, परव-कुष्ठ-इ हिन्दि, कुठ-इ-परवी, ग्रीक-Kust Kustus, हिन्दी—पचक, कुट, उप्लेत, लाटिन Costus Arabica, मलय पवा, सिंहल, गन्धमहनेल, सिरोयभाषामें—कुठा, तैलगु—चङ्गला प्रभृति। इसके पेड़ साधारणतः ४।५ हाथ लम्बे होते हैं। आश्विन कार्त्तिकमासमें इसकी जड़ खंड खंड कर बड़े बड़े शहरोंमें भेजी जाती है। चीनवासी धूप धूनेकी जगह इसको जड़को जलाते और सुगन्धसे विमोहित हो जाते हैं। वे लोग इसमें कामोद्दीपक गुण बतलाते हैं।

पचकना (हिं० क्रि०) पिचकना देखो।

पचकल्यान (हिं० पु०) पञ्चकल्याण देखो।

पचखना (हिं० वि०) जिसमें पांच खंड या मंजिल हों।

पचगुना (हिं० वि०) पञ्च गुणा, पांच गुना, पांच बार अधिक।

पचग्रह (हिं० पु०) मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिका समूह।

पचड़ा (हिं० पु०) प्रपञ्च, बखेड़ा, झंझट। २ लावनी या खयालके ढङ्गका एक प्रकारका गीत। इसमें पांच पांच चरणोंके टुकड़े होते हैं।

पचत (सं० पु०) पचतीति पच-अतच् (भृदृशियजिपर्वि पच्यमितमिनमिदिहर्य्योऽतच्। उण् ३।११०) १ सूर्य। २ अग्नि। ३ इन्द्र। (त्रि०) ४ परिपक्व।

पचतभृज्जता (सं० स्त्री०) पचत भृज्जत इत्युच्यते यस्यां क्रियायां मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। पाक करो भर्जन करो, ऐसी आदेशक्रिया।

पचति (सं० पु०) पच धातुस्वरूपे श्तिप्। पच धातु का स्वरूप।

पचतिकल्प (सं० स्त्री०) ईषदून पचतीति तिङन्तात् कल्पप्। ईषदून पाककर्त्ता, बहुत कम ऐसा पाक करनेवाला।

पचतूरा (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा।

पचतोलिया (हिं० पु०) पांच तोलेका बाट।

पचत् (सं० त्रि०) पचति पच-शतृ। पाककर्त्ता, रसोई करनेवाला।

पचत्पुट (सं० पु०) पचत् पुटं यस्य। सूर्यमणिवृक्ष।

पचत्य (सं० त्रि०) पचते पाके साधु यत्। पाकविषयमें साधु।

पचन (सं० क्ली०) पच्यते इति पच-भावे ल्युट्। १ पाक, पकानेकी क्रिया या भाव। २ पकने की क्रिया या भाव। ३ अग्नि। (त्रि०) ४ पाककर्त्ता, पकानेवाला।

पचना (हिं० क्रि०) १ खाये पदार्थोंका रसादिमें परिणत हो कर शरीरमें लगने योग्य होना, हजम होना। २ शरीर मस्तिष्क आदिका गलना, क्षय होना या क्षीण होना, बहुत हैरान होना। ३ क्षय होना, समाप्त या नष्ट होना। ४ दूसरेका माल इस प्रकार अपने काबूमें आ जाना कि फिर वापिस न हो सके, हजम होना। ५ अनुचित उपायसे प्राप्त किए हुए धन या पदार्थ का काममें आना। ६ एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें पचको साथ लीन होना, खपना।

पचनागार (सं० पु०) पाकशाला, रसोईघर, बावरचीखाना।

पचनाग्नि (सं० पु०) जठराग्नि, पेटकी आग जो खाये हुए पदार्थ को पचाती है।

पचनिका (सं० स्त्री०) कड़ाही।

पचनी (सं० स्त्री०) शुभमारोपादित्वात् पच्यतेऽनया पच करणे ल्युट् स्त्रियां ङीप्। वनबीजपूरक, बिजौरा नीबू।

पचनीय (सं० पु०) पचने योग्य, हजम होने लायक।

पचनेही—बांदा जिलेका एक ग्राम। यह बांदा नगरसे ८ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां ७ हिन्दू मन्दिर और १ मसजिद है।

पचन्ती (सं० स्त्री०) पोहमानीन् पचति पच-शतृ, स्त्रियां ङीप्। पाककर्त्री, पकानेवाली।

पचपच (सं० पु०) पचप्रकारः पचप्रकारे द्वित्व वा पचस्व पाकं कुरु इत्याहेऽपि पचो वा। महादेव, शिव।

पचपच (हिं० स्त्री०) १ पचपच शब्द होनेकी क्रिया या भाव। २ कीचड़।

पचपचा (हिं० वि०) १ इतना पचपचा गीला जिसका पानी अच्छी तरहसे सूखा या जला न हो।

पचपचाना (हिं० क्रि०) १ किसी पदार्थका अधिकतासे ज्यादा गीला होना। २ कीचड़ होना।

पचपन (हिं० वि०) १ पचास और पांच, पांच कम साठ। (पु०) २ पचास और पांचकी संख्या ५५।

पचपनवां (हिं० वि०) जो गिनतीमें चौवनके बाद पचपन का स्थान पड़े।

पचपल्लव (हिं० पु०) पंचपल्लव देखो।

पचप्रकुट (सं० स्त्री०) पच प्रकुट इत्युच्यते यस्यां क्रियायां मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। पाकच्छेदनादि निर्देश-क्रिया, पाक करो छेदन करो ऐसा आदेश।

पचमान (सं० त्रि०) पचतीति पच-शानच् (लटः शतृशानचौ। पा ३।२।१२४) १ पाककर्त्ता, पकानेवाला। (पु०) २ अग्नि।

पचमेल (हिं० वि०) जिसमें कई या सब मेल हो।

पचम्पचा (सं० स्त्री०) पच पचं पचति पचेः खच्, तता मुम् स्त्रियां टाप्। दारुहरिद्रा, दारुहलदी।

पचम्बा—बिहार० हजारीबाग जिलान्तर्गत गोरीडीह उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २४° १९' उ० और देशा० ८६° १८' पू० गिरिडीह रेलस्टेशनसे १ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजार से ऊपर है। यहांके एक कूटे पञ्चम सागर प्राय १०२१ बड़ा अलीवध मन्दिरमें पनिश मानिनिर्मित

पात्र और कुठार आदि पूजाकके सामान पाये गये हैं।

पचरंग (हिं॰ पु॰) चौक पूरनेकी सामग्री मेंहदीका चूरा, अबीर, बुका, हल्दी और सुरवालीके बीज। इस सामग्रीमें सब जगह ये ही ५ चीजें नहीं होतीं, कुछ चीजोंकी जगह दूसरी चीजें भी काममें लाई जाती हैं।

पचरंगा (हिं॰ वि॰) १ जिसमें भिन्न भिन्न पांच रंग हों, पांच रंगका। २ जो पांच रंगोंमें रंगा हुआ हो तथा जो पांच रंगोंके सूतोंसे बुना हुआ हो। ३ जिसमें बहुतसे रंग हों, कई रंगोंमें रंगा हुआ। (पु॰) ४ नवग्रह आदिकी पूजाके लिए पूरा जानेवाला चौक। इस चौकके खाने या कोठे पचरंगके पांच रंगोंसे भरे जाते हैं।

पचरा (हिं॰ पु॰) पचड़ा देखो।

पचरान—अयोध्या प्रदेशके गोण्डा महकमेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह जिलेके सदरसे ८ कोस उत्तर अवस्थित है। इसके पास ६० फुट ऊंचा एक स्तूप है जिसके ऊपर एक मन्दिरमें पृथ्वीनाथका लिङ्ग प्रतिष्ठित है। १८६० ई॰में राजा मानसिंहने स्तूपके ऊपर जो जङ्गल था उसे काटते समय एक विग्रह पाया था और मन्दिर निर्माण कर इसमें उनको प्रतिष्ठा की थी। सम्भवतः यही स्थान प्राचीन समयमें पञ्चारण्य नामसे प्रसिद्ध था। दूसरे स्तूपके ऊपर पृथ्वीनाथका मन्दिर स्थापित है। इसकी बाहरी ईंटोंकी गठन देखने होसे यह बौद्धस्तूपसा मालूम होता है।

पचलड़ी (हिं॰ स्त्री॰) एक आभूषण जो मालाकी तरह होता और जिसमें पांच लड़ियां रहती हैं। यह गलेमें पहना जाता है और इसकी अन्तिम लड़ी प्रायः नाभि तक पहुंचती है। कभी कभी प्रत्येक लड़ीके और कभी कभी केवल अन्तिमके बीचों बीच एक जुगनू लगा रहता है। इसके दाने सोने, मोती अथवा अन्य रत्नके होते हैं।

पचलवणा (सं॰ स्त्री॰) पच लवणमित्युच्यते यस्या क्रिया मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। लवण पाक करो ऐसा [illegible]।

पचलोना (हिं॰ पु॰) १ वह जिसमें पांच प्रकारके नमक मिले हों। २ पञ्चलवण देखो।

पचवाई (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी देशी शराब जो चावल, जौ, ज्वार आदिसे चुआई जाती है।

पचहत्तर (हिं॰ वि॰) १ सत्तर और पांच, सत्तरसे पांच अधिक। (पु॰) २ वह संख्या जो सत्तर और पांचके जोड़से बनी हो, ७५।

पचहत्तरवां (हिं॰ वि॰) जिसका स्थान क्रममें पचहत्तर पर हो, गिनतीमें पचहत्तरके स्थान पर पड़नेवाला।

पचहरा (हिं॰ वि॰) १ पांच बार मोड़ा या लपेटा हुआ, पांच परतों या तहोंवाला, पांच पाहलियोंवाला। २ पांच बार किया हुआ।

पचा (सं॰ स्त्री॰) पच्यते इति पचेर्भिदादङ्, ततष्टाप्। १ पाक, पकानेकी क्रिया या भाव। २ पाककर्त्री, पकानेवाली।

पचाड़—बम्बई प्रान्तके रायगढ़के निकटवर्ती एक ग्राम। यहां शिवाजीने रसदसंग्रह करनेके लिए एक किला बनवाया था। यहांका रामस्वामीका मन्दिर प्रसिद्ध है।

पचादि (सं॰ पु॰) पच आदिर्यस्य। पाणिन्युक्त गणभेद। यथा—पच, वच, वप, वद, चल, पत, नदट्, भषट्, प्लवट्, चरट्, गरट्, तरट्, चोरट्, गाहट्, सुरट्, देवट्, दोषट्, रज, मद, क्षप, सेव, मेष, कोप, मेध, नर्त्त, व्रण, दर्श, दम्भ, दर्प, जार, भर और श्वपच। इन पचादि धातुओंके उत्तर अच् प्रत्यय होता है, अच् प्रत्ययके कारण इन्हें पचादिगण कहते हैं।

पचानक (हिं॰ पु॰) एक पक्षी जिसका शरीर एक बालिश्त लम्बा होता है। इसके डैने और गर्दन काली होती है। दक्षिण भारत और बङ्गाल इसके स्थायी आवासस्थान हैं पर अफगानिस्तान और बलूचिस्तानमें भी यह पाया जाता है।

पचाना (हिं॰ क्रि॰) १ पकाना, आंच पर गलाना। २ खाई हुई वस्तुको जठराग्निकी सहायतासे रसादिमें परिणत कर शरीरमें लगाने योग्य बनाना, हजम करना, जीर्ण करना। ३ अवैध उपायसे हस्तगत वस्तुको अपने काममें ला कर लाभ उठाना। ४ पराए मालको अपना कर लेना, हजम कर जाना। ५ क्षय करना, समाप्त या नष्ट करना। ६ अत्यधिक परिश्रम ले कर या क्षोभ दे कर शरीर मस्तिष्क आदिको गलाना या सुखाना। ७ एक पदार्थका दूसरे पदार्थको अपने आपमें पूर्ण रूपसे लीन कर लेना, खपाना।

पचार (हिं॰ पु॰) बांस या लकड़ीका वह छोटा डंडा जो जूएमें दांई ओर होता है और बैलोंके गर्दनकी तरह उसके दहिने दोनों ओर झुका रहता है।

पचारना (हिं॰ क्रि॰) ललकारना, किसी कामके करनेके पहले उन लोगोंके बीच उसकी घोषणा करना जिनके विरुद्ध वह किया जानेवाला हो।

पचाव (हिं॰ पु॰) पचनेकी क्रिया या भाव।

पचास (हिं॰ वि॰) १ चालीस और दस, साठसे दस कम। (पु॰) २ चालीस और दसकी संख्या या अंक, ५०।

पचासवां (हिं॰ वि॰) गिनतीमें पचासके स्थान पर पड़नेवाला।

पचासा (हिं॰ पु॰) एक ही प्रकारकी पचास चीजोंका समूह।

पचासी (हिं॰ वि॰) १ नब्बेसे पांच कम, अस्सी और पांच। (पु॰) २ वह अंक या संख्या जो अस्सी और पांचके जोड़से बनी हो, अस्सी और पांचके योगकी सूचक संख्या, ८५।

पचासीवां (हिं॰ वि॰) जो क्रममें पचासीके स्थान पर हो, गिनतीमें पचासीकी जगह पर पड़नेवाला।

पचि (सं॰ पु॰) पचतीति पच-इन् (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११८) १ अग्नि, आग। २ पाचन, पचानेकी क्रिया या भाव।

पचित (हिं॰ वि॰) पच्ची किया हुआ, बैठाया हुआ, जड़ा हुआ।

पची (हिं॰ स्त्री॰) पच्ची देखो।

पचीस (हिं॰ वि॰) १ पांच ऊपर बीस, तीससे पांच कम, पांच और बीस। (पु॰) २ पांच और बीसके योगफलरूप अंक या संख्या, वह संख्या या अंक जो बीस और पांचको जोड़नेसे बने, २५।

पचीसवां (हिं॰ वि॰) जो क्रममें पचीसके स्थान पर पड़े, गणनामें पचीसके स्थान पर पड़नेवाला।

पचीसी (हिं॰ स्त्री॰) १ एक प्रकारका खेल जो चौसर की बिसात पर खेला जाता है। इसकी गोटियां और चाल भी चौसरकी तरह होती हैं। अन्तर केवल इतना है कि इसमें पांसेकी जगह सात कौड़ियां होती हैं जो खड़खड़ा कर फेंकी जाती हैं। चित और पट कौड़ियोंकी संख्याके अनुसार दांव नियत होता है। २ एक ही प्रकारकी पचीस वस्तुओंका समूह। ३ किसीकी आयुके पहले पचीस वर्ष। ४ एक विशेष गणना जिसमें सैकड़ा पचीस गाहियों अर्थात् १२५का माना जाता है। आम अमरूद आदि सस्ते फलोंकी खरीद बिक्रीमें इसीका व्यवहार किया जाता है।

पचुआ (हिं॰ पु॰) पिचकारी।

पचेलिम (सं॰ पु॰) पच्यमानो पच-एलिमच् (पच एलिमच्। उण् ४।३७) १ सूर्य। २ अग्नि, आग। (त्रि॰) ३ जो आपसे आप पका हो।

पचेलुक (सं॰ पु॰) पचतीति पच-ऊक, पचो आदुकवाला सिंधुक। सूद, पाचक वह जो भोजनादि पाक करे।

पचोतर (हिं॰ वि॰) किसी संख्याके पांच अधिक, पांच ऊपर।

पचोतरसौ (हिं॰ पु॰) एक सौ पांच, सौ और पांचका अंक या संख्या १०५।

पचोतरा (हिं॰ पु॰) ब्याहमें पुरोहितका एक नेग। इसमें उसे दायजमें आयवको निमित्त ये रुपये आदि सैकड़े पीछे पांच मिलता है।

पचोमी—युक्तप्रदेशके बस्ती जिलेका एक ग्राम। यह बस्तीसे ८ कोस दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। यहां का प्राचीन भग्नावशेष और स्तूप समूहका पर्यालोचना करनेसे पूर्व कीर्तिके अनेक निदर्शन पाये जाते हैं। शायद इतिहास समय अर्थात् बुद्धदेवके पूर्व भारतवर्षके एक राजवंशोंकी राजधानी प्रतिष्ठित हुई थी। ये सब भग्नावशेष देखनेसे इस स्थानको प्राचीन 'पवमुनि'के जैसा प्रतीत होता है।

पचौखा (हिं॰ पु॰) किसी कपड़े पर छींट छप चुकनेके पीछे ८ या १२ दिन पहले उसे पानीमें डुबा रखना। ऐसा करनेसे छापते समय जहां तहां जो धब्बा आ जाते हैं वे छूट जाते हैं।

पचौर (हिं॰ पु॰) गांवका प्रधान, गांवका मुखिया, सरदार, सरपंच।

पचौली (हिं॰ पु॰) १ गांवका सरदार सरपंच। २ मध्य भारत तथा दक्षिणके पश्चिमी किनारे मिलनेवाला एक प्रकार का पेड़। इसी पत्तोंसे एक प्रकारका तेल निकाला

जाता है जो विलायती ढंगसे न आदिमें पड़ता है।

पचीवर (हिं० वि०) पाँच तह या परत किया हुआ, पांच परतका।

पचड़ (हिं० पु० पच्चर देखो।

पच्चर (हिं० स्त्री०) लकड़ी या बांसकी फट्टी, काठका पेवन्द। इसे चारपाई, चौखट आदि लकड़ीकी बनी चीजोंमें माल या जोड़को कसनेके लिए उनमें छूटे हुए दरारमें ठोंकते हैं। छिद्रको भरनेके लिए इसका एक सिरा दूसरेसे कुछ पतला किया जाता है, लेकिन जब इससे दो लकड़ियोंको जोड़नेका काम लेना होता है, तब इसे उतार चढ़ाव नहीं बनाते, एक फट्टी या गुल्ली बना लेते हैं।

पच्ची (हिं० स्त्री०) १ किसी वस्तुके फैले हुए तल पर दूसरी वस्तुके टुकड़े इस प्रकार खोद कर बैठाना कि वे उस वस्तुके तलके मेलमें हो जांय और देखने या छूनेमें उभरे या गड़े हुए न मालूम हों तथा दरज या सीम न दिखाई पड़नेके कारण आधार वस्तुके ही अंग जान पड़ें। २ किसी धातुके बने हुए पदार्थ पर किसी अन्य धातुके पत्तरका जड़ाव।

पच्चीकारी (हिं स्त्री०) पच्ची करनेकी क्रिया या भाव।

पच्चीसे—गुजराती ब्राह्मण समुदायका एक भेद। पचीस ग्राम इन्हें जाविकाके लिए मिले थे, इसीसे ये लोग पच्चीसे कहाये।

पच्छकाट (सं० पु०) आलकी सभीली जड़ जो रंगाईके काममें आती है।

पच्छपात (हिं० पु०) पक्षपात देखो।

पच्छम (हिं० पु०) पश्चिम देखो।

पच्छिम (हिं० पु०) १ पश्चिम देखो। (वि०) २ पिछला, पीछेवाला।

पच्छिवँ (हिं० पु०) पश्चिम देखो।

पच्छी (हिं० पु०) पक्षी देखो।

पच्छस् (सं० अव्य०) वीप्सार्थे पाद पादमिति पद्भ्यः, ततः शस्। पद पदमें, चरण चरणमें।

पच्य (सं त्रि०) पच कर्मणि यत्। पाकार्ह, पकाने योग्य।

पच्यमान (सं० त्रि०) पच्यतेऽसौ पच कर्मणि शानच्। जो पकाया जा रहा हो।

पछड़ना (हिं० क्रि०) १ लड़नेमें पटका जाना। २ पिछड़ना देखो।

पछताना (हिं० क्रि०) किसी किये हुए अनुचित कार्यके सम्बन्धमें पीछेसे दुःखी होना, पश्चात्ताप करना, पछतावा करना।

पछताव (हिं० पु०) पछतावा देखो।

पछतावा (हिं० पु०) पश्चात्ताप, अनुताप, अपने किसेको बुरा समझनेसे होनेवाला रंज।

पछवत (हिं० स्त्री०) वह चीज जो फसलके अन्तमें बोई जाय।

पछवाँ (हिं० वि०) १ पश्चिम दिशाकी, पश्चिमदिशासम्बन्धी, पच्छिमी। (स्त्री०) २ अंगियाका वह भाग जो पीठकी तरफ मोढेमें पीछे रहता है।

पछाँह (हिं० पु०) पश्चिम पड़नेवाला प्रदेश, पश्चिमकी ओरका देश।

पछाँहिया (हिं० वि०) पश्चिम प्रदेशका, पछांहका।

पछाड़ (हिं० स्त्री०) मूर्च्छित हो कर गिरना, अधिक शोक आदिके कारण अचेत हो कर गिरना।

पछाड़ना (हिं० क्रि०) १ कुश्तीकी लड़ाईमें पटकना, गिराना। २ धोनेके लिए कपड़ेको जोर जोरसे पटकना।

पछाड़ी (हिं० स्त्री०) पिछाड़ी देखो।

पछाया (हिं० पु०) किसी वस्तुके पीछेका भाग, पिछाड़ी।

पछारना (हिं० क्रि०) कपड़ेको पानीसे साफ करना, धोना।

पछावरि (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पकवान।

पछाहीं (हिं० वि०) पश्चिम प्रदेशका, पछांहका।

पछियाना (हिं० क्रि०) पीछे पीछे चलना, पीछा करना।

पछिताना (हिं० क्रि०) पछताना देखो।

पछिताव (हिं० पु०) पछतावा देखो।

पछिनाव (हिं० पु०) पशुओंका एक रोग।

पछियाना (हिं० क्रि०) पछिआना देखो।

पछियाव (हिं० पु०) पश्चिमकी हवा।

पछिलना (हिं० क्रि०) पिछड़ना देखो।

पछिला (हिं० वि०) पिछला देखो।

पछियाँ (हिं० वि०) १ पश्चिमकी। (स्त्री०) २ पश्चिमको हवा।

पछुवाँ (हिं॰ वि॰) १ पश्चिमकी। (स्त्री॰) २ पश्चिमकी हवा।

पछेला (हिं॰ पु॰) कड़ेके आकारका हाथमें पहननेका एक गहना।

पछेगाम—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़के अन्तर्गत गोहेलवाड़ विभागका एक क्षुद्रराज्य। जूनागढ़के नवाब और बड़ौदेके गायकवाड़को यहांके अधिपति कर दिया करते हैं। यहां नागर ब्राह्मणोंका वास अधिक है।

पछेत (हिं॰ स्त्री॰) १ मकानके पीछेका भाग, घरका पिछवाड़ा। २ घरके पीछेकी दीवार।

पछेड़ा (हिं॰ पु॰) पोछा।

पछेलना (हिं॰ क्रि॰) आगे बढ़ जाना, पीछे छोड़ना।

पछेला (हिं॰ पु॰) १ हाथमें पहननेका स्त्रियोंका एक प्रकारका कड़ा जिसमें उभरे हुए दानोंकी पंक्ति होती है। २ पीछेकी मटिका। (क्रि॰) ३ पिछड़ना।

पछेली (हिं॰ स्त्री॰) पछेला देखो।

पछोड़ना (हिं॰ क्रि॰) सूप आदिमें रख कर साफ करना, फटकना।

पछोरना (हिं॰ क्रि॰) पछोड़ना देखो।

पछोहा—पश्चिमप्रदेशके हरदोई जिलान्तर्गत एक परगना। यहांके अधिवासिगण पमार जातिके हैं।

पछोरा (हिं॰ पु॰) पिछोरा देखो।

पछ्यावर (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका शरबत।

पजनकुमारि—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने छन्दोलक्षण बोलीमें बारहमासी नामक पुस्तक बनाई।

पजनसिंह—हिन्दीके एक कवि। ये जातिके ब्राह्मण और छन्दोलक्षणके ज्ञाता थे। इन्होंने पजनप्रकाशज्योतिष नामक ग्रन्थ बनाया है।

पजनेस—एक हिन्दी-कवि। ये बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे तथा इनका जन्म सं॰ १८७२में हुआ था। इनका बनाया मधुप्रिया नामक ग्रन्थ भाषासाहित्यमें उत्तम है। इनकी अनूठी उपमा अनूठे पद, अनुप्रास, यमक आदि सब भांति योग्य हैं। इन्होंने नखशिखवर्णन भी बनाया है।

पजर (हिं॰ पु॰) १ चूने या टपकनेकी क्रिया। २ झरना।

पजहर (फा॰ पु॰) एक प्रकारका पत्थर जो पीलापन या हरापन लिये सफेद होता है और जिस पर नक्काशी होती है।

पजावा (फा॰ पु॰) ईंट पकानेका भट्ठा, आवाँ।

पजूसण (हिं॰ पु॰) जैन मतका एक व्रत।

पजोखा (हिं॰ पु॰) किसीके मरने पर उसके सम्बन्धियोंसे शोक प्रकाश, मातमपुरसी।

पजोड़ा (हिं॰ पु॰) दुष्ट, पाजी।

पज्र (सं॰ पु॰) पद्भ्यां जात, पद्-रन् [illegible]। शूद्र। शूद्र पदसे जन्मग्रहण करता है, इसीसे इसे पज्र कहते हैं।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥" (श्रुति)

पज्झर (हिं॰ पु॰) झांझर देखो।

पज्झटिका (सं॰ स्त्री॰) १ मात्रावृत्तभेद, एक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें १६ मात्राएं इस नियमसे होती हैं— प्रथम पादमें प्रथम ८ लघु फिर ४ गुरु। द्वितीयपादमें प्रथम ४ लघु, पीछे १ गुरु उसके बाद दो लघु फिर एक गुरु पीछे दो लघु और दो गुरु। तृतीय चरणमें प्रथम गुरु पीछे ६ लघु, १ गुरु, २ लघु और २ गुरु। चतुर्थ चरण तृतीय चरणके जैसा होता है। २ क्षुद्र घण्टिका, छोटा घंटा।

पण्ड (सं॰ त्रि॰) १ [illegible]। २ [illegible]। (पु॰) १ [illegible] नामान्तर।

[illegible] (सं॰ पु॰) प्रसिद्ध होता इन्द्र और अग्नि।

पण्डज (सं॰ त्रि॰) पण्डराजकुमारात, पण्डराजकुमारसे उत्पन्न।

पञ्च (सं॰ पु॰) पञ्चन् देखो।

पञ्चक (सं॰ क्ली॰) पञ्च इति संख्यायाः कन्। १ पञ्च-संख्यान्वित पांचका समूह। २ पञ्चाधिकृत शास्त्र, शकुनशास्त्र। ३ धनिष्ठा आदि पांच नक्षत्र जिनमें किसी नए कार्यका आरम्भ निषिद्ध है।* ४ पांच सैकड़ेका व्याज। ५ वह जिसके पांच अवयव हों। ६ पाशुपत दर्शनमें गिनाई हुई आठ वस्तुएं जिनमेंसे प्रत्येकके पांच

* "[illegible] योग" [illegible] ।
[illegible] ॥" (चिन्तामणि)

पांच भेद किये गये हैं। वे आठ वस्तुएं ये हैं—लाभ, मन, उपाय, देश, अवस्था, विशुद्धि, दीचा, कारिक और बल। (त्रि०) ७ पञ्च, पांच। ८ पञ्चांगयुक्त। ९ पञ्चभुतियुक्त। १० पञ्चमुनान्वित।

पञ्चकन्या (सं० स्त्री०) पुराणानुसार पांच स्त्रियां जो सदा कन्या ही रहीं अर्थात् विवाह आदि करने पर भी जिन का कन्यात्व नष्ट नहीं हुआ। अहल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा और मंदोदरी ये पांच कन्याएं कही गई हैं।

पञ्चकपाल (सं० क्लो०) पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः (संस्कृतं भक्षाः। पा ४।२।१६) इत्यन् (ततो द्विगो र्लुगनपत्ये। पा ४।१।८८) इत्यणो लुक्। १ यज्ञविशेष। पञ्चानां कपालानां समाहारः परनिपातः। २ कपालपञ्चक वह पुरोडाश जो पांच कपालोंमें पृथक् पृथक् पकाया जाय।

पञ्चकर्ण (सं० क्लो०) उत्तम लोह द्वारा पञ्चचिह्नित कर्म।

पञ्चकर्पट (सं० पु० महाभारतके अनुसार एक देश। यह देश पश्चिम दिशामें था जिसे नकुलने राजसूययज्ञके समय जीता था।

पञ्चकर्मन् (सं० क्लो०) पञ्चानां कर्मणां समाहारः। १ वैद्यकोक्त कर्मपञ्चकभेद, चिकित्साकी पांच क्रियायें—वमन, विरेचन, नस्य, निरूहवस्ति और अनुवासन। कुछ लोग निरूहवस्ति और अनुवस्तिके स्थानमें स्वेदन और वस्तिकरण मानते हैं।

"वमनं रेचनं नस्यं निरूहस्त्वानुवासनम्।
पञ्चकर्मदमन्यच कर उत्क्षेपणादिकम्॥" (शब्दचन्द्रिका)

२ भाषापरिच्छेदोक्त पञ्चकर्म, वैशेषिकके अनुसार पांच प्रकारके कर्म—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन।

"उत्क्षेपणं ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चनं तथा।
प्रसारणञ्च गमनं कर्मण्येतानि पञ्च च॥"

(भाषापरिच्छेद ६ श्लो)

पञ्चकर्मेन्द्रिय (सं० क्लो०) हस्त, पाद, पायु, उपस्थ और जिह्वा। इन्हीं ५ इन्द्रियको पञ्चकर्मेन्द्रिय कहते हैं।

पञ्चकलस—बम्बई प्रदेशवासी शूद्रजातिभेद। पहले इनकी सामाजिक अवस्था अत्यन्त हीन थी। खेत जोतना, दूध दुहना और दूध बेचना इनका व्यवसाय था। अभी ये लोग पूर्व व्यवसायको छोड़ कर महाजनी अथवा सरकारी नौकरी करने लगे हैं तथा समाजमें उन्नति लाभ करके अपनेको राजपूत वंशीय क्षत्रिय सन्तान बतलाते हैं।

पञ्चकल्याण (सं० पु०) वह घोड़ा जिसका सिर और चारों पैर सफेद हों और शेष शरीर लाल, काला या और किसी रंगका हो। ऐसा घोड़ा शुभफल देनेवाला माना जाता है।

पञ्चकवल (सं० पु०) पांच ग्रास अन्न जो स्मृतिके अनुसार खानेके पहले कुत्ते, पतित, कोढ़ी, रोगी, कौए आदिके लिये अलग निकाल दिया जाता है। यह कृत्य बलिवैश्वदेवका अङ्ग माना गया है, अग्राशन, अग्रासन।

पञ्चकषाय (सं० पु०) पञ्चविधः कषायः अथवा पञ्चानां वृक्षाणां कषायः, वल्कलरसः। पांच प्रकारका कषाय द्रव्य, तन्त्रके अनुसार इन पांच वृक्षोंका कषाय—जामुन, सेमर, खिरेंटी, मौलसिरी और बेर। यह पञ्चकषाय भगवती दुर्गाका अत्यन्त प्रीतिकर है।

"जम्बूशाल्मलिवाट्यालं बकुलं वदरं तथा।
कषायाः पंच विज्ञेया देव्याः प्रीतिकराः शुभाः॥"

(दुर्गोत्सवप०)

पञ्चकाम (सं० पु०) पञ्च कामाः कर्मधारयः, संज्ञात्वात् न द्विगुः। पञ्चप्रकारकाम। तन्त्रके अनुसार पांच कामदेव जिनके नाम ये हैं—काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज और मीनकेतु।

"पंचकामा इमे देवि। नामानि शृणु पार्वति।
काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसंज्ञकाः॥
मीनकेतुर्महेशानि पंचमः परिकीर्त्तित॥" (तन्त्रसार)

पञ्चकारण—(सं० पु०) जैनशास्त्रके अनुसार पांच कारण जिनसे किसी कार्यकी उत्पत्ति होती है। उनके नाम ये हैं—काल, स्वभाव, नियति, पुरुष और कर्म।

पञ्चकीर (सं० पु०) जलकुक्कुभ।

पञ्चकुल—प्राचीन हिन्दूराजाओंकी अवर्त्तित एक नगररक्षिणी सभा। पांच सदस्य द्वारा सभाके सभी काम चलाये जाते थे। ये पांच व्यक्ति पांच सम्भ्रान्तवंशसे निर्वा

चित होते थे। धीरे धीरे यह भाषा पञ्चकुल कहलाने लगी। आज भी किसी किसी विशिष्ट व्यवसायी वर्गमें यह उपाधि अपभ्रंश होके 'पञ्चोली' नाममें परिणत हो गई है।

पञ्चकृत्य (सं० पु०) पञ्च विस्तृत कृत्य यागादयो हिय यत्र। १ पञ्चपीठस्थ पञ्चोडका पीठ। (क्ली०) पञ्च प्रयोजित कृत्य कार्यं सृष्ट्यादिकम्। २ सृष्टि प्रभृति पञ्च प्रकार कार्य, ईश्वर या महादेवके पांच प्रकारके कर्म।

"सृष्टिम् स्थितिस्थिति संहतितिरोभावानुग्रहात्मक।
कृत्यं च पञ्चकं यस्य नमस्ये तं शुभं शिवम्"

(चिन्तामणि)

सृष्टि, स्थिति, ध्वंस, तिरोधान और अनुग्रह यही पांच कार्य हैं, इन्हींका नाम पञ्चकृत्य है। जिनमें ये पांच कृत्य हैं, उन महादेवको नमस्कार करता हूं।

पञ्चकृष्ण (सं० पु०) सौम्यकीटभेद, सुश्रुतके अनुसार एक कीड़ेका नाम।

पञ्चकोट—मानभूम जिलेके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह बराकरसे १० कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इसके दक्षिण-पूर्व पादमूलमें पहले एक दुर्ग था। एक समय इस स्थानकी गिनती राजधानीमें होती थी। अभी वे सब प्राचीन कीर्त्तियां ध्वंसावशेषरूपमें परिणत हो गई हैं। इस पर्वतस्थित राजधानीका पञ्चकोट नाम क्यों पड़ा इस विषयमें बहुतेरे बहुत तरहकी बातें करते हैं। किसी किसीका कहना है कि यहांके राजा पांच विभिन्न सामन्त राजाओंके ऊपर शासन करते थे। फिर कोई अनुमान करते हैं कि 'कोट' पांच स्वतन्त्र प्राचीर द्वारा रक्षित रहनेके कारण इस स्थानका नाम 'पञ्चकोट' पड़ा है। स्थानवासी इस स्थानको 'पञ्चकोट'के अपभ्रंशमें पचेत या पचीत कहते हैं।

दुर्गके उत्तर उच्चगिरिमाला विराजित है तथा पश्चिम, दक्षिण और पूर्वकी ओर पहले आध कुनरा इस समयमें ३ कृत्रिम प्राचीर हैं और इनके भीतरकी ओर समतल पर्वतका उच्चभिन्न भूमिभाग एक स्वतन्त्र प्राचीरकी तरह दण्डायमान हो कर दुर्गकी रक्षा करता है। प्रत्येक प्राचीरके मध्यस्थलमें गहरी और चौड़ी खाई बनी हुई है जो पर्वतमालास्थ स्रोतमालाके साथ इस प्रकार संयोजित है कि उसमें इच्छानुसार जल रोक सकते हैं। आज तक भी उन खाइयोंमें जल जमा है। पहले प्राचीरमें अनेकों द्वार थे। अभी प्राचीर मात्र जो रहते हैं वही उसका प्रमाण देते हैं। अभी एकका भी द्वार दिखाई नहीं पड़ता। दुर्गके चारों ओर पत्थर काट कर जो चार वृहत् द्वार रक्षित थे, आज भी उनमेंसे तीन दिखाई पड़ते हैं। दुर्गके बाहरमें जो प्राचीर था उसकी लम्बाई पांच कोस थी। यहांके लोगोंका कहना है कि दुर्गके चारों ओरका पर्वतमाला परिवेष्टित स्थान प्रायः १२ कोस था।

यहांके अनेक प्राचीन ध्वंसावशेष दीख पड़ते हैं। जितने घरों या मन्दिरोंके चारों ओर खाई रहनेसे तथा कुछ अभी जङ्गलसे आवृत होनेसे उनके भीतर जानेमें बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। सुन्दर सुन्दर ईंटें तथा मट्टीकी पुत्तलिकाके साथ सभी स्थानोंमें देखी जाती हैं। पत्थरावमें प्रायः ३०१ फुटकी ऊंचाई पर दुर्गके ठीक सामने बहुत-से वृहत् तथा उत्कृष्ट कारुकार्ययुक्त मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंमें रघुनाथका मन्दिर और उसका सभामण्डप सर्वोत्तम है। राजा रघुनाथके नाम पर मन्दिरका नाम पड़ा है। पर्वतके पाददेशमें अनेक सुन्दर मन्दिर और बड़े बड़े मकानोंके ध्वंसावशेष नजर आते हैं। ये सब इतने विस्तृत व समाहित थे कि प्रायः सौ वर्षके अनन्तर ही गभीर जङ्गलमें परिणत हो गये हैं। दुर्गमध्यस्थ प्रासादमें जो पत्थरका और मकरमुखी फुहारा है वह देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता है। काशीपुरके राजा ज्योतिप्रसाद सिंहदेवके प्रपितामह रघुनाथनारायण सिंहदेव पहले पञ्चकोट छोड़ कर रघुनाथपुरमें आ कर रहने लगे थे, पीछे ज्योतिप्रसादके पिताने पुनः काशीपुरमें स्थानपरिवर्त्तन किया।

यहांके 'हारनाथ'के ऊपर बहुत-से पत्थरमें खोदित जो शिलालिपियां हैं उसमें 'सोमेश्वरधीर' नामका उल्लेख देखा जाता है। ये वनविष्णुपुर, बांकुड़ा, छातना आदि स्थानोंमें राज्य करते थे। यह सब देख कर अनुमान किया जाता है कि सम्राट अकबरशाह जब दिल्लीके सिंहासन पर और राजा मानसिंह बङ्गालके प्रतिनिधिरूपमें

प्रतिष्ठित थे, उस समय अथवा उससे कुछ पहलेसे ही पञ्चकोटकी श्रीवृद्धि हुई थी। पञ्चकोटके पूर्वतन राजवंशकी उत्पत्ति और राजपदप्राप्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार एक वंश इतिहास पाया जाता है।

काशीपुरके अनन्तलाल नामक किसी राजाने स्त्रीको साथ कर जगन्नाथपुरीको यात्रा की। राहमें गर्भवती रानीने अरुणवनमें एक पुत्र प्रसव किया। तीर्थयात्रामें विलम्ब होनेसे फल नहीं होगा, इस भयसे राजा और रानी दोनों की इच्छा नहीं रहते हुए भी उस पुत्रको वहीं छोड़ ठाकुरद्वारकी ओर चल दिए। इस समय अरुणवनमें कपिला गाय भ्रमण कर रही थी। दयापरवश हो वह उस शिशुका भरण-पोषण करने लगी। एक समय एक दल शिकारी वहां आया और शिशुको जीवित देख उसे पावापुर ले गया। यहां जब वह शिशु बड़ा हुआ, तब देशवासियोंने उसे मांझी वा दलपति बनाया। क्रमशः राजाके अभावमें चौरासी परगनोंके राजपद पर वही अभिषिक्त किया गया। अन्य वंशावलीमें लिखा है, कि राजा और रानीने स्व-इच्छासे पुत्रका परित्याग न किया। यात्राकालमें वह शिशु हाथीको पीठ परसे गिर पड़ा था। उन दोनोंने पुत्रको मरा जान वहीं छोड़ दिया। पुरुलियाके दक्षिणागस्थ कपिला पहाड़ पर कपिला गाय रहती थी। उसने दूध पिला कर उस पुत्रको जीवित रक्खा था। पीछे अदृष्टफलसे पांच राजाओंने उसे गोमुखीराज नामक पञ्चकोटमें प्रतिष्ठित किया। कोई कोई कहते हैं, कि वे राजपूतवंशीय थे। उत्तर-पश्चिम प्रदेशसे पहले मानभूममें और पीछे जयकी आशासे प्रणोदित हो उन्होंने इस स्थानमें आ कर राज्य संस्थापन किया।

बादशाहनामामें लिखा है, कि पञ्चकोटके जमींदार राजा वीरनारायण सम्राट् शाहजहान्‌के राजत्वकालमें ३०० सौ मनसबदारके पद पर अभिषिक्त हुए। उनके राजत्वके छठें वर्ष (१०४२-४३ हिजरी)में वीरनारायणका प्राणवियोग हुआ। नवाब अलीवर्दी खांके राजत्वकालमें राजा गरुड़नारायण राज्य करते थे। १७७७ ई० में रघुनाथ नारायणके शासनकालमें झलिदा परगना इनके हाथ लगा।

यहांको बौड़ी जातिके मध्य भद्रावतीकी पूजा और उत्सव प्रचलित है। भाद्रमासकी संक्रान्तिमें पूजा होनेके कारण यह उत्सव भादू कहलाता है। पूजाके बाद प्रतिमा जलमग्न की जाती है। प्रवाद है, कि पञ्चकोटके किसी राजाके एक अलौकिकसामान्यरूपसम्पन्ना और दयाशील कन्या थी। वहांके अधिवासिगण उनके दयागुण पर मुग्ध हो उन्हें भूमण्डल पर अवतीर्णा साक्षात् दयादेवी समझते थे। यह कन्या बौड़ी आदि निकृष्ट जातिकी दरिद्रता देख दुःखित होती और समय समय पर उन्हें प्रचुर धन दिया करती थीं। बाद वह थोड़े ही उमरमें कुटिल कालके गालमें फंस गई। काशीपुरके पार्श्ववर्त्ती ग्रामवासिगण उनके वियोग पर बड़े ही शोकसन्तप्त हुए और उनकी पूजा तथा उपासना करने लगे। भाद्रमें कन्याकी मृत्यु होनेके कारण यह उत्सव भादू कहलाता है। कोई कोई कहते हैं कि भादू उत्सव सबसे पहले पञ्चकोटके राजभवनसे जनसाधारणमें प्रचारित हुआ। कन्या भद्रावतीकी मृत्युसे नितान्त व्याकुल हो रानी स्वयं एक प्रतिमूर्त्तिका निर्माण कर उसकी पूजा करने लगीं। धीरे धीरे यह पूजा पद्धति बौड़ी आदि जातियोंके मध्य फैल गई।

पञ्चकोण (सं० क्ली०) १ पञ्चकोणात्मक क्षेत्रविशेष, पांच कोनेवाला खेत। २ तन्त्रसारोक्त यन्त्रविशेष, तन्त्रके अनुसार एक यन्त्रका नाम। ३ लग्नावधि नवम पञ्चमक स्थान, कुण्डलीमें लग्नसे पांचवां और नवां स्थान। (त्रि०) ४ पञ्चकोणयुक्त, जिसमें पांच कोने हों, पचकोना।

पञ्चकोल (सं० क्लो०) पाचनविशेष। पीपल, पिपरामूल, चई, चितकमूल और सोंठ इन पांच प्रकारके द्रव्योंको समभाग करके मिलानेसे पाचन बनता है। वैद्यकमें इन्हें पाचन रुचिकर तथा गुल्म और प्लीहा रोगनाशक माना है।

पञ्चकोलघृत (सं० क्लो०) चरकोक्त घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—गायका घी ४ सेर, चूर्णके लिये पिपरामूल, चई, चितक, नागर प्रत्येक एक पल, दूध ४ सेर। यथानियमसे घृत पाक कर सेवन करनेसे गुल्मरोग जाता रहता है।

पञ्चकोप (सं० पु०) पञ्च च ते कोपाश्चेति, संज्ञात्वात्

कर्मधारय। वेदान्तमतसिद्ध जीवपञ्चक उपनिषद् और वेदान्तके अनुसार शरीर संघटित करनेवाले पाँच कोष जिनके नाम ये हैं - अन्नमयकोष, प्राणमयकोष मनोमयकोष विज्ञानमयकोष और आनन्दमयकोष। इनमें स्थूल शरीरको अन्नमयकोष पाँचों कर्मेन्द्रियों सहित प्राण ही प्राणमयकोष पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके सहित मन को मनोमयकोष, पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके सहित बुद्धिको विज्ञानमयकोष तथा वह आत्मा जो अविद्यामलको आनन्दमयकोष कहते हैं। पहलेको स्थूल शरीर, दूसरे को सूक्ष्म शरीर और तीसरे, चौथे तथा पाँचवेंको कारण शरीर कहते हैं।

पञ्चक्रोशी (सं॰ स्त्री॰) पञ्चानां क्रोशानां समाहारः। काशीके अन्तर्गत दीर्घ और विस्तारयुक्त ५ क्रोश स्थान, पाँच कोसकी लम्बाई और चौड़ाईके बीच बसी हुई काशीकी पवित्र भूमि। काशीमें पापमात्र करनेसे पञ्चक्रोशीमें विनष्ट होता है। पञ्चक्रोशीगत पाप अन्तर्गृहमें नाश होता है।

'वाराणस्यां कृतं पापं पञ्चक्रोश्यां विनश्यति।

पञ्चक्रोश्यां कृतं पापं अन्तर्गृहे विनश्यति॥' (काशीख॰)

पञ्चक्लेश (सं॰ पु॰) योगशास्त्रानुसार अविद्या, अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश नामक पाँच प्रकारके क्लेश।

पञ्चक्षारगण (सं॰ पु॰) पञ्चानां क्षाराणां गणः। क्षार पञ्चक, पञ्चलवण।

'क्षारैश्च पञ्चभिः प्रोक्तः पञ्चक्षारमिति स्मृतः।

काचसामुद्रसैन्धवसौवर्चलैः रुचैः॥

स्यात् पञ्चलवणं तच्च रुचकोपेतं पञ्चक्षारम्॥'

(राजनि॰)

काच लवण, सैन्धव सामुद्र, विड् और रोमके लवण इन पाँच लवणको पञ्चक्षार कहते हैं।

पञ्चखट्‌ (सं॰ स्त्री॰) पञ्चानां खट्वानां समाहारः। पञ्च खट्वाका समाहार, खटियापञ्चक।

पञ्चगङ्गा (सं॰ स्त्री॰) १ पाँच नदियोंका समूह—गङ्गा यमुना, सरस्वती, किरणा और धूतपापा। इसे पञ्चनद भी कहते हैं। २ काशीका एक प्रसिद्ध स्थान जहाँ गङ्गाके साथ किरणा और धूतपापा नदियाँ मिली थीं। ये दोनों नदियाँ अब पट कर लुप्त हो गई हैं।

पञ्चगङ्गा—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत कोल्हापुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। इसके किनारेके नायरवाडा और बिड़ वा बिरड़ ग्राममें बहुतसे प्राचीन मन्दिरोंका भग्नावशेष दिखनेमें आता है।

पञ्चगङ्गाघाट—युक्तप्रदेश वाराणसीधामके अन्तर्गत एक पवित्र तीर्थ। वैष्णवधर्मप्रचारक रामानन्दने यहाँ रह कर अपना अवशिष्ट जीवन बिताया था। यहाँ वे रहते थे वहाँ भजन करनेका एक मन्दिर था। अभी केवल-मात्र पत्थरकी पैरी देखी जाती है।

पञ्चगड—जलपाईगुड़ीके अन्तर्गत एक परगना। इसमें कुल १० छोटे छोटे शहर लगते हैं। भूपरिमाण ३२८ वर्गमील है। यहाँके अधिवासियोंमें राजवंशी जातिकी गिनती ज्यादा हुई है। कृषिकार्य ही इनकी एक मात्र उपजीविका है।

पञ्चगण (सं॰ पु॰) पञ्चानां गणो यत्र। वैद्यकोक्त गण-विशेष, वैद्यक शास्त्रानुसार इन पाँच औषधियोंका गण—विदारीगन्धा, बृहती, पृश्निपर्णी, निदिग्धिका और भूकुष्माण्ड।

पञ्चगणि—बम्बई प्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक स्वास्थ्यनिवास। सह्याद्रि पर्वतकी जो शाखा महाबलेश्वरसे चारों ओर विस्तृत है उसी शाखाके ऊपर यह स्वास्थ्यनिवास बसा हुआ है। यह समुद्रपृष्ठसे ४३७८ फुट ऊँचा है।

पञ्चगत (सं॰ स्त्री॰) जैनगणितोक्त पञ्चवर्षयुक्त राशि, जैनगणितके अनुसार वह राशि जिसमें पाँच वर्ष हों।

पञ्चगवधन (सं॰ त्रि॰) पञ्चगावो धनं यस्य। पञ्चगो-स्वामी, गवपञ्चकस्वामी।

पञ्चगव्य (सं॰ क्ली॰) गोविकारः गव्यं पञ्चगुणितं गव्यं। गौसे उत्पन्न पाँच प्रकार द्रव्य जिनके खानेसे प्राण शोधित होते हैं। पाँच द्रव्य—दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र। पञ्चगव्यको मन्त्रपूत कर शोधन करके पीना चाहिये। मोदकादि भक्ष्यद्रव्य पायसादि भोज्यद्रव्य, मद्यादि पान, अथवा आसन पुष्पमूल और वस्त्रका अपहरण करनेसे जो पाप होता है, वह पञ्चगव्य पान करनेसे जाता रहता है।

"भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानांच पंचगव्यं विशोधनम् ॥"

(मनु ११।१६५)

पञ्चगव्यका परिमाण—दूध, घी और गोमूत्र एक एक पल, गोबर दो तोला और दही ३ तोला इन सब-को मिलानेसे पञ्चगव्य तैयार होता है। गौतमीयतन्त्रमें इसका भाग इस प्रकार लिखा है—

"पलमात्रं दुग्धभागं गोमूत्रं तावदिष्यते ।
घृतं च पलमात्रं स्यात् गोमयं तोलकत्रयम् ॥
दधि प्रसृतमात्रं स्यात् पंचगव्यमिदं स्मृतम् ।
अथवा पंचगव्यानां समानो भाग इष्यते ॥"

(गौतमीयतन्त्र)

फिर दूसरी जगह परिमाणका विषय इस प्रकार लिखा है—

"गोशकृद्‌द्विगुणं मूत्रं पयः स्यात्च्च चतुर्गुणम् ।
घृतं तद्‌द्विगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि ॥"

(गौतमीयतन्त्र)

जितना गोमय होगा, उसका दूना मूत्र, चौगुना दुग्ध तथा घृत और दधि इसका दूना होना चाहिये।

पञ्चगव्यपानफल—पञ्चगव्य द्वारा पवित्र होनेसे अश्व मेधका फल प्राप्त होता है। यह पञ्चगव्य परम मेध्य है। सौम्य मुहूर्त्तमें पञ्चगव्य पान करनेसे यावज्जीवन पाप विनष्ट होते हैं।

"पञ्चगव्येन पूतन्तु वाजिमेधफलं लभेत् ।
पञ्चगव्यन्तु परमं मेध्यं मङ्गलदन्तम्न विद्यते ॥
सौम्ये मुहूर्ते संयुक्ते पञ्चगव्यन्तु यः पिबेत् ।
यावज्जीवकृतात् पापात् तत्क्षणादेव मुच्यते ॥"

(वराहपुराण)

गरुड़पुराणमें पञ्चगव्यके विषयमें और भी एक विशेषता देखी जाती है। पञ्चगव्य लेनेमें काञ्चनवर्णा गाभीका दुग्ध, श्वेतवर्णा गाभीका गोमय, ताम्रवर्णा का मूत्र, नीलवर्णाका घृत और कृष्णवर्णा गाभीका दधि तथा उसके साथ कुशोदक लेनेसे पंचगव्य बनता है। इसका परिमाण—गोमूत्र ८ माशा, गोमय ४ माशा, दुग्ध १२ माशा, दधि १८ माशा और घृत ५ माशा इन पांचों द्रव्योंको मिलानेसे पंचगव्य बनता है।

"पयः कांचनवर्णायाः श्वेतवर्णाश्च गोमयम् ।
गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः नीलवर्णाभवं घृतं ॥
दधि स्यात् कृष्णवर्णाया दर्भोदकसमायुतम् ।
गोमूत्रमाषकास्त्वष्टौ गोमयस्य चतुष्टयम् ॥
क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश उच्यते ।
घृतस्य माषकाः पंच पंचगव्यं मलापहम् ॥"

(गारुडपु० प्रायश्चित्तअ०)

हेमाद्रिके व्रतखण्डमें पंचगव्यका विस्तृत विवरण लिखा है। यह प्रायः सभी पूजाओंमें होम और यज्ञमें व्यवहृत हुआ करता है। ताम्रपात्र या पलाशपत्रमें पञ्च गव्य मिला कर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि वैदिक मन्त्रसे पूत करके पान करना होता है। गायत्री द्वारा गोमूत्र, 'गन्धद्वारेति' मन्त्रसे गोमय, 'आप्यायस्वेति' मन्त्रसे दुग्ध, 'दधिक्राव्ण' मन्त्रसे दधि, 'तेजोऽसीति' मन्त्रसे घृत और 'देवस्येति' मन्त्रसे कुशोदक शोधन करके लेना होता है।

पञ्चगव्यघृत (सं० क्ली०) घृतौषधभेद, आयुर्वेदके अनुसार बनाया हुआ एक घृत जो अपस्मार (मिरगी) और उन्मादमें दिया जाता है। यह घृत स्वल्प और बृहत्‌के भेदसे दो प्रकारका है।

स्वल्पपञ्चगव्यघृत—इसकी प्रस्तुत प्रणाली—गव्यघृत ✓४ सेर, गोमयरस ✓४ सेर, अम्लगव्यदधि ✓४ सेर, गव्य-दुग्ध ✓४ सेर और गोमूत्र ✓४ सेर, पाकार्थ जल १६ सेर। यह घृत एक दिनमें पाक करना होता है। इसके पान करनेसे अपस्मार और ग्रहोन्माद जाता रहता है।

बृहत्पञ्चगव्यघृत—प्रस्तुत प्रणाली—गव्यघृत ✓४ सेर, क्वाथके लिये दशमूल, त्रिफला, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, कुटजकी छाल, अपाङ्गका मूल, नीलवृक्ष, कुटकी, डूमर की जड़, कुट, दुरालभा प्रत्येक २ पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; कल्कार्थ कलिका, अकवन, त्रिकटु, निसोथकी जड़, पिप्पलका बीज, गजपिप्पली, अरहरका फल, मूर्वामूल, दन्तीमूल, चिरायता, चितामूल, श्यामालता, अनन्तमूल, रक्तरोढा, गन्धतृण, मैनाफल प्रत्येक २ तोला; गोमयरस ✓४ सेर, गोमूत्र ✓४ सेर, गव्यदुग्ध ✓४ सेर, अम्लगव्यदधि ✓४ सेर। यथाविधान इस घृतको पाक कर सेवन करनेसे अपस्मार और ग्रहोन्माद दूर होता है।

(भैषज्य र० अपस्मारचिकि०, चक्रदत्त, चरक चिकि० २५ अ०)

पञ्चगांव—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां १००१ ई०में राजाओंने मुसलमानोंके सुलतानोंको परास्त किया था। यहां एक सुन्दर मन्दिर है।

२ बड़ोदाके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २८° १´ उ० और देशा० ८३° १०´ ३०˝ पूर्वके मध्य अवस्थित है।

पञ्चगोल (स० पु०) ज्योतिःशास्त्रके ग्रहसम्बन्धी अन्तर्गत पांच प्रसिद्ध प्रकरण। इनके नाम ये हैं—दीपगोल, मायागोल, भुवनगोल, भ्रमणगोल और अधियोगोल।

पञ्चगु (स० त्रि०) पञ्चभिः गोभिः क्रीतः द्विगुत्वाभावः तस्य लुक्। गोरतद्धितलुकि। पञ्चगोद्वारा क्रीत।

पञ्चगुण (स० पु०) पञ्चगुणित गुण सम्बन्धात्। १ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच गुण। (त्रि०) पञ्चगुणा वसुधा ८१८। २ इनको द्रव्योंमें पांच गुण हैं, इसीसे पृथ्वीका पञ्चगुण नाम पड़ा है। ३ पांच द्वारा गुणित, जिसको पांचसे गुणा किया गया हो। ४ पञ्चप्रकार, पांच तरह।

पञ्चगुप्त (स० पु०) पञ्चानामिन्द्रियाणां गोपकः गुप्त यस्य। १ चार्वाकदर्शन जिसमें पञ्चेन्द्रियका गोपन प्रधान माना गया है। २ कच्छप, कछुआ। कछुएके दो हाथ दो पैर और मस्तक छिपे रहते हैं इस कारण इसे पञ्चगुप्त कहते हैं।

पञ्चगुप्तिरसा (स० स्त्री०) स्पृक्का, असबरग।

पञ्चघातीत (स० त्रि०) पञ्चद्वारा क्षत।

पञ्चगौड़ (स० पु०) ब्राह्मणोंका एक विभाग। सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल और उत्कल इन पांचोंको ले कर पञ्चगौड़ विभाग कल्पित हुआ है। कुलीन ब्राह्मण पञ्चगौड़ 'आदि गौड़' कहलाते हैं। जिस कुलमें सरस्वतीतीरवासी ब्राह्मणगण जो सारस्वत कहलाते थे। वे गौड़ीय सारस्वत ब्राह्मण पञ्चगौड़में कान्यकुब्ज गौड़ आदि स्थानोंमें बस गये। धीरे धीरे वहां उनकी सन्तान सन्तति कान्यकुब्जादि कहलाने लगी। सारस्वत, कान्यकुब्ज आदि नाम देशवाची हैं। स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डमें लिखा है—

"ब्राह्मणा दशधा प्रोक्ताः पञ्चगौड़ाश्च द्राविड़ाः।"
"ब्राह्मणा दशधा चैव पञ्चविन्ध्योत्तरस्थिताः।
देशे देशे विभागेन ते एव विख्याता मही।" (सह्या० ३१।१५)

पञ्चगौड़ और पञ्चद्राविड़ ये दश प्रकारके ब्राह्मण जातिविभक्त थे। पीछे जो जिस देशमें बस गये उन्होंने उसी देशका आचारव्यवहार अवलम्बन कर लिया।

पञ्चद्राविड़ देखो।

राजतरङ्गिणीमें पञ्चगौड़ नामक विस्तृत जनपदका उल्लेख है। काश्मीरके राजा जयादित्यने पञ्चगौड़के राजाओंको जीता था। हरिमिश्ररचित कुलाचार्यकारिकामें महाराज आदिशूर पञ्चगौड़ाधिप उपाधिसे भूषित हुए थे (१)। इससे अनुमान किया जाता है कि पञ्चगौड़ नामक एक विस्तृत राज्य था। कूर्म और लिङ्गपुराणमें लिखा है, कि सूर्यवंशीय श्रावस्तीके पुत्र वंशकने गौड़देशमें श्रावस्ती नगरी बसाई (२)। रामचन्द्रजीको मृत्युके बाद जब अयोध्या नगरी जनशून्य हो गई, तब इसी श्रावस्ती नगरीमें उनका राजपाट प्रतिष्ठित हुआ*। वर्त्तमान अयोध्या प्रदेशका गोण्डा जिला तथा उसके निकटवर्ती कुछ स्थानोंको ले कर गौड़देश कल्पित था†। विष्णुशर्माने हितोपदेशमें लिखा है, "अस्ति गौड़विषये कौशाम्बी नाम नगरी‡।" हितोपदेश-रचनाकालमें प्रयागके पश्चिमस्थ कुछ जनपद गौड़विषय कहलाते थे। राष्ट्रकूटराज गोविन्द प्रभूतवर्षके ७३० शकमें उत्कीर्ण ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि राष्ट्रकूटवंशीय राजा ध्रुवने वत्सराजको परास्त कर गौड़ पर अधिकार

---

(१) मिश्रग्रन्थमें कुलीन शब्द देखो।

(२) "श्रावस्तेश्च महातेजा वंशकस्तु ततोऽभवत्।
निर्मिता येन श्रावस्ती गौड़देशे द्विजोत्तमाः॥"
(कूर्म और लिङ्गपुराण)

* रामायण उत्तरकाण्ड १०८ सर्ग।

† अयोध्याके दक्षिण प्रतापगढ़ जिलेमें गोड़ नामक एक अति प्राचीन ग्राम है। यहां ८वीं या ९वीं शताब्दीका बनाया हुआ एक सूर्य मन्दिर है। Cunningham's Arch. Sur. Re. Vol. XI 70.

‡ प्राचीन कोसम्बी नगरी अभी कोसम इनाम और कोसाम खिराज कहलाती है। यह प्रयागसे १२ कोस दूर यमुनाके किनारे अवस्थित है। Arch. Sur. of India by A. Fuhrer Vol. I. 140

जमाया। फिर ७५० शकके उत्कीर्ण एक दूसरे ताम्रशासनमें वत्सराजको अवन्तिपति बतलाया है। इसके सिवा नरचन्द्रसूरिके हम्मीरकाव्यमें मालवराज्य उदयादित्य भी गौड़ेश उपाधिसे भूषित हुए हैं। इससे यह जाना जाता है, कि मालवराज्यके कितने अंश एक समय गौड देश कहलाते थे। मुसलमान ऐतिहासिकोंने खान्देश और उडीसाके मध्यवर्ती एक विस्तीर्ण विभागका गोण्डवाना नामसे उल्लेख किया है। इस प्रदेशका अधिकांश पूर्व्वोक्त राज्यमें गौड़ नामसे अभिहित हुआ है। राष्ट्रकूटराज गोविन्ददेवके ७३० शकमें उत्कीर्ण ताम्रशासनमें इस गौड़देशका सर्वप्रथम उल्लेख देखनेमें आता है। विलफोर्ड साहब इस स्थानको 'पश्चिम गौड़' नामसे उल्लेख कर गए हैं।। पुराविद् कनिंहम् साहबके मतसे वेतुल, छिन्दवाड़ा, शिवनी और मण्डला इन चार जिलाओंको ले कर यह गोड़देश संगठित हुआ है।

ऊपरमें जो सब प्रमाण दिये गये हैं उनसे यह स्थिर किया जाता है कि विन्ध्यगिरिके उत्तर कुरुक्षेत्रसे ले कर बङ्गदेशकी पूर्वी सीमा तकके विभिन्न स्थान गौड़ नामसे प्रसिद्ध थे। सारस्वत, कान्यकुब्ज, मिथिला, गौड़ और उत्कल यह पांच जनपद जो पूर्वोक्त किसी न किसी एक गौड़में शामिल थे अथवा उनके अंश समझे जाते थे। इस कारण पञ्चगौड कहनेसे उक्त पञ्चजनपदवासी ब्राह्मण विशेषका बोध होता था। इस प्रकार एक समय समग्र आर्यावर्त्तके अधीश्वरका बोध करनेके लिये एक पंचगौड़ेश्वर शब्दका व्यवहार होता था। माधवाचार्यके चण्डीमंगलमें सम्राट् अकबर पंचगौड़ेश्वर नामसे अभिहित हुए हैं। पहले ही लिखा जा चुका है कि महाराज आदिशूरने भी पंचगौड़ेश्वरकी उपाधि पाई थी। पहले जो आर्यावर्त्तके सम्राट् होते थे, वे ही इस मर्य्यादाजनक उपाधिग्रहणसे अपनेको सम्मानित समझते थे। बहुपरवर्त्तीकालमें भी विद्यापतिके पृष्ठपोषक मिथिलाराज शिवसिंह, कृत्तिवासके आश्रयदाता गौड़ाधिप और सुलतान हुसेन शाह आदि इस समुच्च उपाधिसे भूषित रहे।

पञ्चग्रामी (सं० स्त्री०) पंचानां ग्रामाणां समाहारः, स्त्रियां ङीष्। पंचग्रामका समूह।

"पञ्चग्रामी [illegible]
पंचग्रामी वहिःशोभाद्दृष्टत्वाग्नयथवा पुनः॥"

(भाग० [illegible])

पञ्चचक्र (सं० क्ली०) पञ्चविधं चक्रं। तन्त्रशास्त्रानुसार पांच प्रकारके चक्र जिनके नाम ये हैं—राजचक्र, महाचक्र, देवचक्र, वीरचक्र और पशुचक्र। जो वीरभावसे यजन करते हैं, उन्हें पंचचक्रसे पूजा करनी चाहिए।

"चक्रं पंचविधं प्रोक्तं सत्र शक्तिं प्रपूजयेत्।
राजचक्रं महाचक्रं देवचक्रं तृतीयकम्॥
वीरचक्रं चतुर्थंच पशुचक्रंच पंचमम्।
पंचचक्रे यजेद्दिव्यो वीरश्च कुलसुन्दरि॥"

(प्राणतोषिणी)

पञ्चचत्वारिंश (सं० त्रि०) पंचचत्वारिंशत् संख्याका पूरण, पैंतालीसवां।

पञ्चचत्वारिंशत् (सं० स्त्री०) पैंतालीस।

पञ्चचामर (सं० क्ली०) छन्दोविशेष, छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर रहते हैं जिनमेंसे २रा, ४था, ६ठा, ८वां, १०वां, १२वां और १६वां अक्षर गुरु तथा शेष अक्षर लघु होते हैं।

पञ्चचितिक (सं० पु०) पंच चितयः प्रस्तारा यस्मिन्। अग्निभेद।

पञ्चचोर (सं० पु०) पंच चौराणि यस्य। १ मञ्जुघोषका नामान्तर। २ मञ्जुघोष।

पञ्चचूडा (सं० स्त्री०) पंचसंख्यकाः चूड़ा शिरोरत्नानि यस्याः। अप्सरोविशेष।

'उर्वशी मेनका रम्भा पंचचूडा तिलोत्तमा॥'

(रामा० ६।९२।७१)

पञ्चछत्र—एक पवित्र क्षेत्र और ब्राह्मणोंका पवित्र आश्रम। रामचन्द्रजी रावणको मार कर जब अयोध्या लौटे, तब उन्होंने राक्षसहत्याजनित पापक्षयके लिए यहांके छत्रा-हरण सरोवरके किनारे कुछ काल तक वास किया था।

पञ्चजटा (सं० स्त्री०) पंचमूल।

पञ्चजन (सं० पु०) पञ्चभिभूतैर्जन्यतेऽसौ पंच-जन कर्मणि घञ्, (जनिवध्योश्च। पा ७।३।३५) इति न वृद्धिः। १ पुरुष। पंचभूत द्वारा पुरुष उत्पन्न होते हैं, इसीसे पंचजन कहनेसे पुरुषका बोध होता है।

बहुलाश्वभाविता द्विजातैर्भोजकल्पिता ।
भव वंवमबेर्मच पुरे हरिमव निर्मिता ॥' (रामतर० १)

२ मनुष्यसम्बन्धी प्राणादि मनुष्य, क्षीन और शरीरमें सम्बन्ध रखनेवाले पांच प्राणादि । ३ मनुष्यतुल्य देवादि, गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस । ४ मनुष्यभेद ब्राह्मणादि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद । ५ ६ दैत्यविशेष । प्रजापतिकी पत्नी कृतिके गर्भसे इसका जन्म हुआ था । ६ एक असुर जो पातालमें रहता था । यह श्रीकृष्णचन्द्रके गुरु सान्दीपनाचार्यके पुत्रको चुरा ले गया था । कृष्णचन्द्र इसे मार कर गुरुके पुत्रको छुड़ा लाये थे । इसी असुरकी अस्थिसे पाञ्चजन्य शङ्ख बना था जिसे भगवान् कृष्णचन्द्र बजाया करते थे । ७ राजा सगरके एक पुत्रका नाम । हरिवंशमें लिखा है कि महाराज सगरके तपोबलसम्पन्ना दो स्त्रियां थीं, बड़ी स्त्रियोंका नाम केशिनी और छोटीका सुमति था । वे क्रमशः विदर्भराज और अरिष्टनेमिकी दुहिता थीं । और्व ऋषिने दोनों स्त्रियों पर प्रसन्न हो कर उन्हें वर मांगनेको कहा । इस पर केशिनीने एक वंशधर पुत्र लिये और सुमतीने असंख्य बलवान् पुत्रोंके लिये प्रार्थना की । और्व 'तथास्तु' कह कर चल दिये । तदनन्तर केशिनीके गर्भसे असमञ्ज नामक एक पुत्र हुआ । यही असमञ्जस भविष्यमें पञ्चजन नामसे प्रसिद्ध हुए । सुमतीके गर्भसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए । इन सब पुत्रोंमें पञ्चजन ही राजा बने । पञ्चजनके पुत्र अंशुमान् और अंशुमान्के पुत्र दिलीप हुए । (हरिव० १५अ०) ८ प्रजापतिभेद, एक प्रजापतिका नाम । ८ पांच या पांच प्रकारके जनोंका समूह ।

पञ्चजनालय (स० क्ली०) पाञ्चभौतिक शरीर ।

पञ्चजनी (स० स्त्री) पञ्चानां जनानां समाहारः ङीप् । १ पांच मनुष्योंकी मण्डली, पञ्चायत । २ छियाकी कथा ।

पञ्चजनीन (स० पु०) पञ्च जनेभ्यः हितः पञ्चजन प्राणादिभिर्नि समासः ख । ३ भाग्यमान पञ्चजन क्लीव

भूयत्वेन्त्यादिति ख । पा ५।१।९) १ भण्ड जो लोगोंका मनोरञ्जन करता है । २ नट, अभिनेता, स्वांग बनानेवाला । ३ पञ्च मनुष्योंका नायक या प्रभु । (त्रि०) ४ पञ्चजनहितकारी ।

पञ्चजन्य (स० पु०) एक प्रसिद्ध शङ्ख जिसे श्रीकृष्ण बजाया करते थे । यह पञ्चजन राक्षसकी हड्डीका बना हुआ था ।

पञ्चज्ञानसूत्र (स० पु०) पञ्चज्ञानोक्त गुह्योपनिषद् । यह शुक्लिकारोंमें लिखा है ।

पञ्चज्ञान (स० पु०) १ पांचों पदार्थोंका ज्ञान युक्त । २ बुद्ध । ३ पाशुपतदर्शनाभिज्ञ ।

पञ्चतप् (स० पु०) पञ्चतपपरिमाणयुक्त पञ्चतप् ति । पञ्च तपः पुरुष ।

पञ्चतत (स० क्लो०) पञ्चानां ततानां समाहारः । पञ्चतत का समाहार ।

पञ्चतत्त्व (स० क्ली०) पञ्चानां तत्त्वानां समाहार । १ पञ्चभूत पृथ्वी जल तेज, वायु और आकाश । २ पञ्चमकार, मद्य मांस मत्स्य, मुद्रा और मैथुन ।

मद्य मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां मैथुनमेव च ।
पञ्चतत्त्वमिदं देवि निर्वाणमुक्तिहेतवे ॥
मकारपञ्चकं देवि देवानामपि दुर्लभम् ।'

(कैवल्यतन्त्र १ प०)

मद्यादि पञ्चमकार निर्वाणमुक्तिके कारण हैं । यह पञ्चमकार देवताओंको भी दुर्लभ है । पञ्चतत्त्वविहीन मनुष्योंकी कभी सिद्धि नहीं होती । कुलार्णवमें कहा है,

"पञ्चतत्त्वविहीनानां नैव सिद्धिर्जायते ।"

(कुलार्णव)

शैवोंके लिये गुरुतत्त्व मन्त्रतत्त्व, मनस्तत्त्व देवतत्त्व और ध्यानतत्त्व यही पञ्चतत्त्व है ।

"तत्त्वज्ञानमिदं प्रोक्तं शैवानां शृणु पार्वति ।
गुरुतत्त्वं मन्त्रतत्त्वं मनस्तत्त्वं सुरेश्वरि ।
देवतत्त्वं ध्यानतत्त्वं पञ्चतत्त्वं वरानने ।'

(निर्वाणतन्त्र १२ प०)

वैष्णवोंके लिये यही पञ्चतत्त्वज्ञान तत्त्वज्ञान है । यह पञ्चतत्त्वज्ञान निम्नलिखित प्रकारसे प्राप्त किया जाता है । पहले शुद्धसत्त्व गुरुतत्त्व प्रदान करे । इससे मतीव अचिन्त्य निरवधि आनन्द उद्दीप होता बाद इस मध्यभागमें कल्पितनाम आदि उत्पन्न होता है । इष्टदेवादि सभी मन्त्र मन्त्रमय हैं । इस मन्त्रतत्त्वमें ईश्वर का आश्रय और निहित है, कोई मन भी मन उस मन्त्रमें

'मैं स्वयं देवतास्वरूप हूं' इत्यादि रूपमें चिन्ता करें। तदनन्तर उस मन्त्रमें ध्यान करें। मन्त्रध्यान करते करते सब प्रकारकी सिद्धियां लाभ होती हैं। यह पंचतत्त्व सिद्ध होने पर मनुष्य शिवस्वरूप हो जाते हैं और कदापि यममन्दिर नहीं जाते।

पंचभूत पंचतत्त्व है। तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—पञ्चतत्त्वका उदय स्थिर करके शान्तिकादि षट्कर्म करने होते हैं। शान्तिकार्यमें जलतत्त्व, वशीकरणमें वह्नितत्त्व, स्तम्भनमें पृथ्वीतत्त्व, विद्वेषमें आकाशतत्त्व, उच्चाटनमें वायुतत्त्व और मारणमें वह्नितत्त्व प्रशस्त है। पंचतत्त्वमें उदय-निर्णय करके शान्तिकादि कार्य करने होते हैं, इसीसे पंचतत्त्वोदयका विषय अति संक्षेपमें लिखा गया। भूमितत्त्वका उदय होनेसे दोनों नासापुटसे दण्डाकारमें श्वास निकलता है, जलतत्त्व और अग्नितत्त्वके उदयकालमें नासिकाके ऊर्ध्वभाग हो कर श्वास प्रवाहित होता है। वायुतत्त्वके उदयके समय वक्रभावमें तथा आकाशतत्त्वके उदय होनेसे नासिकाके मध्यभाग हो कर श्वास निकला करता है। इन सब श्वास निर्गमन द्वारा किस समय किस तत्त्वका उदय होता है उसका स्थिर करना होगा। पृथ्वीतत्त्वके उदयमें स्तम्भन और वशीकरण, जलतत्त्वके उदयमें शान्ति और पुष्टिकर्म, वायुतत्त्वके उदयमें मारणादि क्रूरकर्म तथा आकाशतत्त्वके उदयके समय विषादि नाशकार्य प्रशस्त है।

पञ्चतत्त्वक मण्डल—जिस तत्त्वके उदयमें जो सब कार्य कहे गये हैं, उस तत्त्वका मण्डल निर्माण कर कार्यसाधन करना होता है। आकाशतत्त्वमें ६ बिन्दुयुक्त मण्डल, वायुतत्त्वमें स्वस्तिकोपेत त्रिकोणाकार मण्डल, अग्नितत्त्वमें अर्द्धचन्द्राकृति, जलतत्त्वमें पद्माकार और पृथ्वीतत्त्वमें मवज्र चतुरस्र मण्डल बनाके कार्य करना होता है। (तन्त्रसार) तत्त्व देखो।

पञ्चतन्त्र (सं० क्ली०) नीतिशास्त्र विशेष, विष्णुशर्माविरचित एक संस्कृत ग्रन्थ। राजा सुदर्शनके पुत्रको धर्म और नीतिविषयमें ज्ञान देनेके लिए ही उन्होंने ५वीं शताब्दीमें यह ग्रन्थ बनाया। ६ठीं शताब्दीके प्रथम भागमें नौशेरवानके राजत्वके समय यह ग्रन्थ पह्लवी भाषामें और पीछे ८वीं शताब्दीके मध्य भागमें अबदुल्लाबिन मुक्ताफा कर्तृक अरबी भाषामें अनुवादित हुआ। पीछे यह उर्दूमें तथा तुर्कभाषामें 'हुमायुन् नामा' नामसे भाषान्तरित हुआ। इसके बाद इसका सिमन सेथ कर्तृक ग्रीक भाषामें और पीछे हिब्रु, आरामेइक, इटाली स्पेन और जर्मनभाषामें अनुवाद किया गया। १३वीं शताब्दीको हिब्रुके अनुकरणमें कपूआके जानके कहनेसे यह ग्रन्थ लैटिन भाषामें अनुवादित हुआ था। १६वीं शताब्दीको अङ्गरेजीमें; पीछे १६४४ और १७०८ ई०को फरासी भाषा तथा इनसे धीरे धीरे यूरोपको समस्त वर्त्तमान भाषाओंमें यह ग्रन्थ अनुवादित हो कर 'पिल्पका गल्प' (Pilpay's fables) नामसे प्रसिद्ध हुआ। तामिल और कणाडो प्रभृति दाक्षिणात्य भाषाओंमें भी इसका अनुवाद देखा जाता है। विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त पञ्चतन्त्र ग्रन्थका कुछ पाठान्तर देखनेमें आता है। संस्कृत और कणाडोमें जो पंचतन्त्र लिखा गया है उसके पढ़नेसे मालूम होता है कि गङ्गानदीके किनारे पाटलीपुत्र नगरमें राजभवन था, किन्तु अन्य किसी किसी ग्रन्थमें दाक्षिणात्यके महिलारोप्य नगरमें इस राजभवनकी कथा लिखी है। ईसाई धर्म-ग्रन्थ बाइबल छोड़ कर और कोई भी ग्रन्थ पंचतन्त्रकी अपेक्षा जगत्में विस्तृत और ख्यातिलाभ न कर सका।

पञ्चतन्मात्र (सं० क्ली०) पंचगुणितं शब्दादिभूत सूक्ष्मात्मकं तन्मात्रम्। सूक्ष्मपंच महाभूत, शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तन्मात्र ही पंचतन्मात्र है। इसी पंचतन्मात्रसे पञ्चमहाभूतकी उत्पत्ति हुई है। सांख्यके मतसे—प्रकृतिसे महत् (बुद्धि), महत्से अहङ्कार, अहङ्कारसे एकादश इन्द्रिय और पंचतन्मात्रको उत्पत्ति हुई है। यह पंचतन्मात्र प्रकृतिविकृति अर्थात् प्रकृतिको विकृति है। शब्दतन्मात्रसे आकाश है, इसी कारण आकाशके गुण शब्द है, शब्द और स्पर्शतन्मात्रसे वायु है, इसीसे वायुके दो गुण हैं, शब्द और स्पर्श, शब्द, स्पर्श और रूपतन्मात्र तेज है, इसीसे तेजके तीन गुण माने गये हैं, शब्द, स्पर्श और रूप; शब्द, स्पर्श, रूप और रसतन्मात्रसे जलको उत्पत्ति हुई है, इस कारण जलमें ४ गुण हैं, यथा—शब्द, स्पर्श, रूप और रस। गन्धतन्मात्र पृथिवी है, इसीसे पृथ्वीके पांच गुण हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध।

इस प्रकार पञ्चतन्मात्रमें पञ्चमहाभूतकी उत्पत्ति हुई। फिर जब पञ्चमहाभूत लीन हो जाता है तब आकाश शब्दतन्मात्रमें, वायु स्पर्शतन्मात्रमें, तेज रूपतन्मात्रमें, जल रसतन्मात्रमें और पृथ्वी गन्धतन्मात्रमें लीन हो जाती है। इसी प्रकार सभी भूतोंकी सृष्टि और लय हुआ करता है, जब तक प्रकृतिकी सृष्टि रहेगी, तब तक इसी प्रकार उत्पत्ति और लय हुआ करेगा। जब प्रलयकाल उपस्थित होगा तब पञ्चतन्मात्र बुद्धिमें और बुद्धि प्रकृतिमें लीन हो जायगी। (सांख्यदर्शन०)

पञ्चतप (सं० पु०) पञ्चभिरग्निभिः अग्निचतुष्टय सूर्यैस्तपति तप-अच्। वह जो पञ्चाग्नि द्वारा तपस्या करते हैं।

पञ्चतपस् (सं० त्रि०) पञ्चाग्निभिः पञ्चभिस्तैजःपदार्थैस्तपति यः पञ्च तप-असुन्। अग्निचतुष्टय और सूर्य यह पञ्चयुक्त तपस्वी। चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर के ग्रीष्मकालमें भी खुले मैदानमें बैठ कर तपस्या करते हैं उन्हींको पञ्चतपस् कहते हैं।

"तैजस्विनां तेजसी दधीनामपि मध्यते।
पञ्चेन्द्रः पञ्चतपस्तपसो भाजीयताम्॥"
(शिशुपा० २।५१)

पञ्चतपा (हिं० पु०) पञ्चतपस् देखो।

पञ्चतय (सं० त्रि०) पञ्च अवयवा अस्य अवयवे तयप्। पञ्चावयव, वह जिसका पांचका अवयव हो।

पञ्चतरु (सं० पु०) पांच वृक्ष मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन।

पञ्चता (सं० स्त्री०) पञ्चानां भूतानां भावः तल् टाप्। मृत्यु, मौत, विनाश। मृत्यु होनेसे पञ्चभूत अवयवी भाव त्याग करता है, इसीसे पञ्चता शब्दसे मृत्युका बोध होता है।

"न तु ममायितात सद्सर्थ मानता ते।
मारुर वन्धीन पञ्चतां यदनैत॥"
(भागवत ७।७।५२)

२ पञ्चभाव, पांचका भाव।

"भाने हरे हरे भाष्ये भाति सर्वाणि पञ्चता॥"
(मनु० ८।१२१)

पञ्चताल (सं० पु०) भरतताकका एक भेद। इस भेदमें पहले गुरु फिर लघु, फिर गुरु और अन्तमें गुरु होता है।

पञ्चतालेश्वर (सं० पु०) रुद्र जातिका एक राग।

पञ्चतिक्त (सं० क्ली०) पञ्चगुणित तिक्त। पञ्चविध तिक्त द्रव्य, पांच कड़ुई ओषधियोंका समूह—गिलोय कण्टकारी, सोंठ, कुट और चिरायता। पञ्चतिक्तका काढ़ा ज्वर में दिया जाता है। मतान्तरमें पञ्चतिक्त ये हैं—नीमकी छाल, परवलकी जड़ अड़ूसा, कण्टकारि और गिलोय। यह पञ्चतिक्त ज्वर अतिरिक्त विषम और कुष्ठ आदि रोग दोषके रोगों पर भी चलता है।

पञ्चतिक्तघृत (सं० क्ली०) घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—गव्यघृत ४ सेर; क्वाथार्थ नीमकी छाल, परवलकी जड़ कण्टकारी, गुलञ्च, अड़ूसेकी छाल, प्रत्येक १० पल; पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; कल्कार्थ त्रिफला मिलित ३२ सेर। पीछे यथानियम घृत पाक करके सेवन करनेसे कुष्ठ, दुष्टव्रण और ८० प्रकारके वातज व्याधि विनष्ट होता है। (भैषज्यर० कुष्ठरोगाधि०)

पञ्चतिक्तघृतगुग्गुलु (सं० पु०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—घृत ४ सेर। क्वाथार्थ नीमकी छाल, गुलञ्च, अड़ूसेकी छाल, परवलकी पत्तियां, कण्टकारी प्रत्येक १० पल। शोधितगुग्गुलु ५ पल; पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष ८ सेर, काढ़ेको छान कर जब वह उष्ण रहे उसी समय उसमें पोटलीका गुग्गुल मिला दे। बाद घीमें इस काथ जलको पाक करना होगा। कल्कार्थ अकवन, विड़ङ्ग, देवदारु, गजपिप्पली, यव क्षार, सज्जिक्षार, सोंठ, हलदी, सौंफ, चई कुट, ज्योतिष्मती, मिर्च, इन्द्रयव, जीरा, चितामूल, कुटकी, भिलावां, वच, पिपरामूल, मञ्जिष्ठा, अतीस, त्रिफला, अजवायन प्रत्येक ९ तोला। यथानियम घृतपाक करके सेवन करनेसे कुष्ठ नाड़ीव्रण, भगन्दर, गण्डमाला गुल्म, मेह आदि रोग जाते रहते हैं। (भैषज्यरत्ना० कुष्ठाधि०)

पञ्चतीर्थ (सं० क्ली०) पञ्चानां तीर्थानां समाहारः। तीर्थ-पञ्चक। यह पञ्चतीर्थ स्थान स्थानमें भिन्न प्रकारका है। यथा—काशीस्थित पञ्चतीर्थ।

"असिगङ्गादिसङ्गमेषु दृष्टैषु यथोत्पर्वेषु।
सारदेय यथोद्यत्य महाकाशेऽस्र तत्र।
ततः पुरं बहुपाप्मिभिस्तैषा पञ्चतीर्थिका॥"
(काशीख० १००।३०)

ज्ञानवापी, नन्दिकेश, तारकेश, महाकालेश्वर और दशाश्वमेध यही पंचतीर्थ हैं। पुरुषोत्तम स्थानमें मार्कण्डेयवट, कृष्ण, रोहिणेय, महासमुद्र और इन्द्रद्युम्न सरोवर यही पंचतीर्थ हैं। पुरुषोत्तममें पंचतीर्थ करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता।

"मार्कण्डेये वटे कृष्णे रौहिणेये महोदधौ।
इन्द्रद्युम्नसरः स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥" (तीर्थतत्त्व)

पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं उनमें स्नान करनेसे जो पुण्य लिखा है, एक एक पंचतीर्थमें स्नान करनेसे वही पुण्य प्राप्त होता है।

"पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वाण्येवाभिषेचनात्।
तत् पञ्चतीर्थस्नानेन समं नास्त्यत्र संशयः ॥"
(वराहपुराण)

एकादशीमें विश्रान्ति, द्वादशीमें शौकर, त्रयोदशीमें नैमिष, चतुर्दशीमें प्रयाग तथा कार्तिकमासमें पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है।

पञ्चतृण (सं० क्ली०) कुश, काश, शर, दर्भ और इक्षु यही पंचतृण।

"कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चैव तृणोद्भवम्।
पञ्चतृणमिदं ख्यातं तृणजं पञ्चमूलकम् ॥"
(परिभाषाप्र०)

भावप्रकाशके मतसे पंचतृण यह है—शालि, इक्षु, कुश, काश और शर।

पञ्चत्रिंश (सं० त्रि०) ३५ संख्याका पूरण, पैंतीसवां।

पञ्चत्रिंशत् (सं० त्रि०) ३५, पैंतीस।

पञ्चत्रिंशति (सं० स्त्री०) ३५की संख्या।

पञ्चत्व (सं० क्ली०) पंचानां क्षित्यादि भूतानां भावः। १ मरण, शरीर संघटित करनेवाले पांचों भूतोंका अलग अलग अवस्थान। २ पंचका भाव, पांचका भाव।

पञ्चथ (सं० त्रि०) पंचानां पूरणः, (थट् च छन्दसि। पा ५।२।५०) इति वेदे थट्। पंचसंख्याका पूरण, पांचवां।

पञ्चश् (सं० पु०) कोकिल, कोयल।

पञ्चदक (सं० पु०) देशभेद, एक देशका नाम।

पञ्चदश (सं० त्रि०) पंचदशानां पूरणः, पूरणे डट्, पंचाधिका दश यत्र वा। १ पंचदश संख्याका पूरण, पन्द्रहवां। (पु०) २ पन्द्रहकी संख्या। ३ तिथि।

पञ्चदशकृत्वस् (सं० अव्य०) पंचदश कृत्वस्। पंचदशवार, पन्द्रह बार।

पञ्चदशधा (सं० अव्य०) पंचदश प्रकारे धाच्। पंचदश प्रकार, पन्द्रह तरहका।

पञ्चदशन् (सं० त्रि०) पंचाधिका दश। पंचाधिक दशसंख्या, पन्द्रह।

पञ्चदशाह (सं० पु०) पंचदश-अहन्। १५ दिन।

पञ्चदशाहिक (सं० त्रि०) पंचदश दिन साध्य व्रतभेद १४, १५ दिनमें होनेवाला व्रत।

पञ्चदशिन् (सं० त्रि०) पंचदश परिमाणमस्य परिमाणार्थे डिनि। पंचदश परिमाणयुक्त, पन्द्रहवां।

पञ्चदशी (सं० स्त्री०) पंचदशानां पूरणी-डट्, स्त्रियां ङीप्। १ पूर्णिमा, पूर्णमासी। २ अमावस्या। ३ वेदान्तका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ।

पञ्चदीर्घ (सं० त्रि०) पंचसु अवयवेषु दीर्घः शरीरस्य समुद्रिकाशास्त्रोक्तलक्षण पंचस्थलं। शरीर पंचावयवलक्षणविशेष। शरीरके पांच स्थान जिनके दीर्घ होते हैं, वे सुलक्षणाक्रान्त हैं।

"बाहू नेत्रद्वयं कुक्षिर्द्वे तु नासे तथैव च।
स्तनयोरन्तरञ्चैव पञ्चदीर्घः प्रशस्यते ॥" (सामुद्रिक)

बाहु, नेत्र, कुक्षि, नासा और वक्ष दीर्घ होनेसे शुभजनक समझा जाता है।

पञ्चदेव (सं० पु०) पञ्चदेवता देखो।

पञ्चदेवता (सं० स्त्री०) पंचदेवताः संख्यात्वात् कर्मधारयः। पांच प्रधान देवता जिनकी उपासना आज कल हिन्दुओंमें प्रचलित है—आदित्य, गणेश, देवी, रुद्र और केशव। सभी पूजामें इस पंचदेवताकी पूजा करनी होती है। पंचदेवताकी पूजा किये बिना अन्य किसी देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिए।

"आदित्यं गणनाथञ्च देवीं रुद्रञ्च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥" (आह्निकतत्त्व)

इन देवताओंमें यद्यपि तीन वैदिक हैं पर उनका ध्यान और पूजन पौराणिक तथा तान्त्रिकपद्धतिके अनुसार होता है। इन देवताओंमें प्रत्येकके अनेक विग्रह हैं जिनके अनुसार अनेक नाम रूपोंसे उपासना होती है। कुछ लोग तो पांचों देवताओंकी उपासना समान

साधन करते हैं और कुछ लोग किसी विशेष सम्प्रदायके अन्तर्गत हो कर किसी विशिष्ट देवताकी उपासना करते हैं। विष्णुके उपासक वैष्णव, शिवके उपासक शैव, सूर्यके उपासक सौर और गणपतिके उपासक गाणपत्य कहलाते हैं।

पञ्चद्राविड़—द्राविड़राजके अधीन पांच विभिन्न जनपद। राजा राजेन्द्रचोलदेवके शासनकालमें उक्त पञ्च जनपद (९८०-१० शकमें) दक्षिण भारतमें विशेष प्रसिद्ध हो गये थे। आर्यावर्त्तमें जिस प्रकार एक समय 'पञ्चगौड़' नामक एक विशिष्ट ब्राह्मणसमाज स्थापित हुआ था उसी प्रकार दाक्षिणात्यमें ब्राह्मणगण भी पञ्चद्राविड़ नामक एक स्वतन्त्र समाजमें गठित हुए। विन्ध्यगिरिके दक्षिण भागमें द्राविड़, अन्ध्र, कर्णाट, महाराष्ट्र और गुर्जर नामक पञ्च जनपद ब्राह्मणगणोंके अधीन उन्नतिके उच्च सोपान पर पहुंच गये थे। स्कन्दपुराणमें लिखा है—

"कर्णाटाश्च तैलङ्गा गुर्जरा राष्ट्रवासिनः।
आन्ध्राश्च द्राविड़ाः पञ्च विन्ध्यदक्षिणवासिनः॥"

दाक्षिणात्यके ये पांच स्थान और उनके अधिवासिगण पाश्चात्य द्राविड़ प्रभृति नामोंसे शीर्षस्थान पाते रहे हैं। इन पांच स्थानोंको साधारणतः तामिल, तेलगु, कनाड़ी, मराठी और गुजराती भी कहते हैं। पाण्ड्यराज राजेन्द्रचोल 'पञ्चद्रमिलाधिपति' उपाधिसे विभूषित थे।

पञ्चधा (सं० अव्य०) पञ्चन्-धा (संख्याया विधार्थे धा पा ५।३।४२) पञ्चप्रकार।

पञ्चधूनी—कबीरपन्थी वैष्णव सम्प्रदाय पर मार्गसाधनके लिए शरीरमें कष्ट दे कर तपस्या करना ही इसका प्रधान लक्षण है। इनमेंसे कोई कोई अपने शरीरके चारों तरफ धीरे आगमें धाम जला कर तपस्या और होम करते तथा अभिलषित फलादि भोग किया करते हैं। इनका पञ्चधूनी नाम पड़नेका यही कारण है। इनमेंसे कुछ साधु ऐसे हैं जो चारों ओर कोनोंमें धूनी प्रज्वलित कर उनके बीचमें बैठते और तपस्या करते हैं।

पञ्चन् (सं० त्रि०) पचि-कनिन्। १ संख्याविशेष, पांच।

पञ्चवाचकशब्द—पाण्डव, शिवास्य, इन्द्रिय, बाण, प्राणाग्नि, महाय०, महाभूत, महाकाव्य, महायज्ञ, पुराण लक्षण, अङ्ग, प्राण, व्रत, इन्द्रियार्थ, बाण। २ पञ्चसंख्यायुक्त, जिसमें पांचका अङ्क हो।

पञ्चनख (सं० पु०) पञ्च नखा यस्य। १ हस्ती, हाथी। २ कूर्म, कछुआ। ३ व्याघ्र, बाघ। जिन सब जन्तुओंके पञ्च नख होते हैं उन्हींको पञ्चनख कहते हैं। जितने पञ्चनख जीव हैं उनका मांस अभक्ष्य माना गया है।

"[illegible] शशको गोधा खड्गो कूर्मश्च पञ्चमः॥" (श्रुति)

शशक, शल्लकी, गोधा, खड्गी और कूर्म ये पञ्च नख हैं।

"भक्ष्याः पञ्चनखाः सेधागोधाकच्छपशल्लकाः।
शशश्च मत्स्येष्वपि हि सिंहतुण्डकरोहिताः॥"
(याज्ञवल्क्य १।१७७)

सेधा, गोधा, कच्छप, शल्लक और शश इन पञ्चनखोंका मांस खाया जा सकता है।

पञ्चनद (सं० पु०) पञ्च पञ्चानां नदानां समाहारः। १ पञ्चनदीयुक्त देशविशेष, पञ्जाब प्रदेश जहां पांच नदियां बहती हैं। इसका नामान्तर वाहीक और मद्र देश है। शतद्रु, व्यास, रावी, चनाब और झेलम यही पांच नदियां जिनसे पञ्जाब नाम पड़ा है, मूलतान नगरके दक्षिण भागमें जा कर सिन्धुनदीमें मिल गई हैं। पञ्जाब देखो।

"इह पञ्चनदे भावु [illegible] सिन्धुषष्ठैः॥"
(महाभा० ८।२४८)

सिन्धुनदके उत्तरदेशमें एक समय और भी सात नदियोंका सङ्गम देखा जाता है। ये सात नदियां सप्तसिन्धु नामसे प्रसिद्ध हैं। सप्तसिन्धु देखो।

(क्ली०) पञ्चानां नदानां समाहारः। २ पांच नदियोंका समाहार। शतद्रु, व्यास, रावी, चनाब और झेलम ये पांच नदियां। ३ काशीस्थित तीर्थविशेष। काशीखण्डमें इस पञ्चनद तीर्थका विवरण इस प्रकार लिखा है—धूतपापा सब प्रकारके पाप दूर करनेमें समर्थ है। इसके साथ पहले धर्मनद अर्थात् पवित्र मङ्गलमय धर्मनद हृदमें सर्वपापापहारिणी धूतपापा और किरणा आ कर मिल गई है। पीछे पद्मासमय भगीरथानीत भागीरथी यमुना और सरस्वती ये तीनों नदियां आ कर मिली हैं। धर्मनदमें ये पांच नदियां

द्वारा पराजित हुआ वा असम्भ, कुक्कुट द्वारा मध्यम स्थान और मयूर द्वारा जानना होगा कि शत्रुपक्ष युद्ध सभा भग्न स्थान और पेचक द्वारा यह निरूपण करना चाहिए कि शत्रुगण ग्राममें मध्य है। काक द्वारा यह जाना जाता है, कि किसी ग्रामोंसे कहीं पाया है मयूर द्वारा शत्रुगण दूसरे ग्राममें पहुँच गया है ऐसा स्थिर करना चाहिए। इत्यादि प्रकारसे शत्रुओंको प्रश्न गणना की जाती है।

इन पञ्चपक्षियोंमें फिर शत्रु मित्र हैं। स्थेनका मित्र मयूर, मयूरका मित्र पिङ्गल, कुक्कुटका मयूर और पिङ्गल, काकका मयूर पिङ्गलका मयूर और कुक्कुट तथा काक और कुक्कुट स्थेनके शत्रु, स्थेन और काक कुक्कुटके शत्रु पिङ्गल, स्थेन और कुक्कुट काकके शत्रु माने गए हैं।

रवि और मङ्गलवार तथा शुक्ल और कृष्णपक्षमें स्थेन पक्षी, शनिवार शुक्लपक्षमें मयूर, कृष्णपक्षमें काक गुरुवार शुक्लपक्षमें मयूर और कृष्णपक्षमें कुक्कुट बृहस्पतिवार शुक्लपक्षमें काक और कृष्णपक्षमें पिङ्गल, सोम और बुधवार शुक्लपक्षमें पिङ्गल और कृष्णपक्षमें कुक्कुट अधिपति हुआ करता है। इसीका नाम दिनपक्षी है। इस दिनपक्षी द्वारा प्रश्न शुभका निरूपण किया जाता है। शुक्लपक्षके दिन जिस वारमें जिस पक्षीके बाद जिस पक्षीका जन्म होता है, कृष्णपक्षकी रातको उस वारमें उस पक्षीके बाद उसी पक्षीका उदय हुआ करता है। कृष्णपक्षके दिन जिस वारमें जिस पक्षीके बाद जिस पक्षीका उदय होता है, शुक्लपक्षकी रातको भी उस वारमें उस पक्षीके बाद उसी पक्षीका उदय होता है। कृष्णपक्षके दिन पहले जिस पक्षीका उदय होता है उसके एक एक पक्षीके बाद एक एक पक्षीका उदय होगा। परवर्ती सभी पक्षी क्रमशः उदय हुआ करते हैं।

शुक्लपक्षके दिन और कृष्णपक्षकी रातको रवि और मङ्गलवारके सूर्योदयके पहले स्थेन, पीछे क्रमशः पिङ्गलादि पक्षीका जन्म हुआ करता है। इन पक्षियोंकी बाल्य, कुमार, तरुण, वृद्ध और मृत ये पाँच अवस्थाएँ हैं। इन सब अवस्थाओं और तत्त्वादिको गणना करके जान कर ऐसे प्रश्नका उत्तर करें। पञ्चपक्षी द्वारा सभी प्रश्नोंकी गणना की जा सकती है।

(ज्योतिष सारणी)

इस शिवोक्त पञ्चपक्षीके सिवा कार्त्तिकोक्त पञ्च पक्षी भी देखनेमें आते हैं। इससे पारिभाषिक पञ्चपक्षी भी कहते हैं। कार्त्तिकेय यह महादेवसे सीख कर मुनियोंके निकट लोकहितार्थ प्रकाशित किया था।

"शृणुष्व सुभग वक्ष्ये प्रश्नज्ञानमनुत्तमम्।
मूलमाध्यायविज्ञानं एकरूपेण महार्णवम्॥
पार्वतीनियतज्ञानं स्कन्दः श्रुत्वा महावचः।
प्रश्नज्ञानमनुस्मृत्य प्रोक्तवान् महात्मकम्॥" (पञ्चपक्षी)

कार्त्तिकोक्त पाँच पक्षी ये हैं—भेरुण्ड, चकोर, काक, कुक्कुट और मयूर। श्वेत, पीत, अरुण, श्याम और कृष्ण क्रमशः इन पाँचोंके वर्ण हैं। इस पञ्चपक्षी द्वारा भी शुभाशुभ जाने जा सकते हैं।

पञ्चपञ्चाश (सं० त्रि०) पञ्चपञ्चाशत्‌की संख्या, ५५।

पञ्चपञ्चाशत् (सं० स्त्री०) पञ्चाधिका पञ्चाशत्। पाँच अधिक पचास गणित का पूरण पचपनवाँ।

पञ्चपर्विन् (सं० पु०) मानव यज्ञ।

पञ्चपर्विनी (सं० स्त्री०) पञ्च पञ्च पर्वाणि परिमाणमस्याः [illegible]। पञ्चदशस्तोमकी सिद्धिसिमिद।

पञ्चपत्र (सं० पु०) वच्छनाभवृक्ष, एक पेड़।

पञ्चपत्रा (सं० स्त्री०) गोरखी नामकी पौधा।

पञ्चपथ—उत्तर पश्चिम भारतमें यमुनानदीके दक्षिण तारवर्ती पाँच ग्राम जिनके नाम ये हैं—पाणिपथ (पानीपत), सोनपथ, इन्द्रपथ, तिलपथ और बाघपथ। ये पाँच ग्राम कुरुराजने पाण्डु पुत्रोंको दान किये थे।

पञ्चपदी (सं० स्त्री०) पञ्च पादा अस्या' पञ्चशोभा ततो ङीप् [illegible]। (ऋक् ८।१४ कुम्भीपक मण्डोमेद।

पञ्चपरिषद्—पञ्चमहापरिषदोकी सभा। इसका दूसरा नाम मोक्षमहापरिषद है। बौद्धपरिव्राजक जब काम्य कुब्ज राज शिलादित्यको परिक्रमा कर आये, तब प्रायः ६४० ई०में अपने राजधानीमें राजाने इसी प्रकारकी १ठी सभा की थी।

पञ्चपर्णिका (सं० स्त्री०) पञ्च पञ्च पर्णान्यस्याः ततः कप्, टापि अत इत्वम्। गोरखोलुप, गोरखी नामका पौधा।

चाई पर्वतके समतलक्षेत्रके निकटवर्ती एक छोटा पहाड़। यह समुद्रतलसे २१४० फुट और उपत्यकाकी समतलभूमिसे ८३० फुट ऊँचा है। इस शिखर पर केवल एक वाटिका है जो पाँच मुसलमान महापुरुषोंके नाम पर उत्सर्ग की हुई है। पाँच पीरोंका आवास होनेके कारण इस पहाड़का नाम पञ्चपीर पड़ा है। सर्वप्राचीन महात्माका नाम था शाह-उद्दीन जकारिया। ये मुलतानवासी थे और लोग इन्हें बहावलहक कहा करते थे। निकटवर्ती हिन्दू अधिवासियोंका कहना है, कि यह स्थान पहले 'पाण्डवपाठ' नामसे प्रसिद्ध था, पीछे मुसलमानोंके अधिकारमें आनेसे इन लोगोंकी कीर्त्ति प्रकाशित करता है।

पञ्चपीर—मुसलमानोंके पाँच महात्मा वा पीर। मुसलमान लोग पञ्चपीरके मानके लिए उन्हें धन्यवाद करते हैं, किन्तु नीचेके हिन्दुओंमें भी वैसे ही पञ्चपीरकी पूजा प्रचलित देखी जाती है। जब छोटे छोटे बच्चोंके सिर अथवा और किसी अङ्गमें दर्द होता है, तो उनके मातापिता पञ्चपीरको दूध, जल अथवा मिठाई, खिचड़ी आदि भोग दे कर उन्हें पूजा करते हैं। उन लोगोंका विश्वास है कि ऐसा करनेसे उनकी पीड़ा बहुत जल्द जाती रहती है। कहीं मुसलमान मुल्ला और कहीं निम्न हिन्दूका पुरोहित उनकी पुरोहिताई करते हैं।

पञ्चपुष्करिका—त्रिपुरा राज्यान्तर्गत एक ग्राम। यहां पाट चावल और चमड़ेका व्यवसाय जोरोंसे चलता है।

पञ्चपुर—पञ्जाबप्रान्तके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। इसका वर्त्तमान नाम पञ्जोर है। १०३० ई०में अल्बेरूनि इसके उस स्थान पर मधु वर्णिका इस प्रकार पद बतलाया है—कनौजसे ५० फरसङ्ग उत्तर-पश्चिममें जमना है वहांसे १८ फरसङ्ग और दूर जानेसे पञ्जोर नगर मिलता है। यहां प्राचीन बौद्धस्तूपके अनेक निदर्शन पाये गये हैं। किन्तु मुसलमान प्रादुर्भावसे ये बिलकुल नष्ट हो गए हैं। आज भी यहां एक पुष्करिणीके किनारे कितने प्राचीन हिन्दुओंके निर्मित स्तम्भ देखनेमें आते हैं। इस पुष्करिणीका जल पवित्र और पुण्यप्रद समझ कर बहुत से लोग आज भी यहां स्नान करने आते हैं। इस प्राचीन हिन्दूकीर्त्तिके ऊपर मुसलमानोंने जो मसजिद बनाई है उसकी मातबर पत्थरादिमें पञ्चपुर नाम खोदा हुआ है। यहां तीन शिलालिपियां हैं जिनमेंसे सबसे पुरानी टूट फूट गई है।

पञ्चपुराणीय (सं० त्रि०) प्राक्पिताके पञ्चकार्षापणसम्बन्ध पैतृक।

पञ्चपुष्प (सं० क्ली०) पञ्चसंख्यक पुष्प। देवीपुराणके अनुसार ये पाँच फूल जो देवताओंको प्रिय हैं—चम्पा, आम, शमी, कमल और कनेर।

"चम्पकाम्रशमीपद्मकरवीरञ्च पञ्चकम्॥"

(देवीपुराण १०७ अ०)

पञ्चप्रदीप (सं० पु०) पञ्च प्रदीपा यत्र। १ पञ्चदीपयुक्त आरती। २ पञ्चप्रदीपयुक्त आलोक प्रदीप।

पञ्चप्रस्थ (सं० स्त्री०) पञ्च विषयाः प्रस्थाः यस्याः। मानव रूप अर्थ। १ पुरञ्जनपुर। भागवतमें इसका विषय यों लिखा है—

एक समय राजा पुरञ्जन रथ पर (स्वदेह पर) चढ़ कर जहां पञ्चप्रस्थ पाँच धातु (शब्दादिविषय) हैं, उसी वन (भजनीय देश)-में गये थे अर्थात् पुरञ्जनने संसारमें प्रवेश किया था। इसका प्रग्रहण (वर्त्मत्मोम, आथ-मिधा०) बहुत बड़ा था। वे जिस रथ पर सवार हुए थे, वह रथ बड़ा ही विचित्र था। उसमें अत्यन्त द्रुतगामी पाँच घोड़े (ज्ञानेन्द्रिय) थे। ये पाँचों घोड़े दो इषा (अहन्ता और ममता)-में निबद्ध थे। उसमें चक्र दो (पाप और पुण्य) अक्ष एक (प्रधान), ध्वजा तीन (सत्त्व रज और तम) बन्धन पाँच (प्राणादि पञ्च वायु), रश्मि एक (मन) सारथि एक (बुद्धि), रथीका उपवेशन स्थान एक (हृदय) और युगबन्धनस्थान दो (शोक और मोह) तथा विचरण पाँच (पाँच कर्मेन्द्रिय) थे। इस प्रकार पुरञ्जय अश्वकावचोंके वेशमें रथ पर बैठे हुए थे। इनके पासमें स्वर्णमय कवच (रजो गुण) और एकटेक पर अक्षय तूण था। एकादश अर्थात् दश इन्द्रियाँ और मन उनका सेनापति हो कर इनके साथ गया था। राजा पुरञ्जय अरण्य (संसारवन)-में बहुत बार धनुर्बाण (मोहाभिनिवेश और रागद्वेषादि) धारण कर के शिकारको बाहर निकले। शिकारके ये बड़े प्रिय थे।

इस अनुरक्तिसे ममोपवन्तिनो धर्मपत्नी 'विवेकबुद्धि'ने उन्हें परित्याग कर दिया था। यद्यपि धर्मपत्नी त्यागको अयोग्य थीं, तो भी राजा उन्हें छोड़ चले गए थे। धर्मपत्नीके साथ रहनेसे स्वेच्छानुसार कार्य करना कठिन हो जाता है इस कारण उन्हें परित्याग कर राजाने कार्यका पथ सुगम कर लिया था। बाद उन्होंने अरण्यप्रदेशमें यथेच्छरूपसे आसुरी वृत्तिका अवलम्बन कर निशित वाण (नाराच) द्वारा वहां जितने वनचारी (भजनीय विषय) थे सभी (आत्मीय भी) को मार डाला। इस प्रकार पुरञ्जयने शिकारमें अनेक पशुओंकी हत्या की अर्थात् वे संसारवनमें विचरण कर विवेकबुद्धिहीन हो वापस लौटे। घर आ कर वे नाना प्रकारसे कामोपभोग करने लगे। इस प्रकार संसारारण्यमें विचरण करते करते उनकी नवीन वयस मुहूर्त्तकी तरह बीत गई। अन्तमें पुरञ्जयने संसारारण्यमें विचरण कर देहका परित्याग किया। पीछे उन्होंने फिरसे जन्म लिया, इसी प्रकार वे अनियत जन्मग्रहण करने लगे। भागवत ४र्थ स्कन्धके २५, २६, २७, २८, २९ अध्यायमें इनका विषय विस्तृत रूपसे लिखा है।

इस संसारारण्यका विषय जो लिखा गया उसका तात्पर्य यह कि पुरञ्जय शब्दका अर्थ पुरुष अर्थात् जीव है। वे पुर अर्थात् देहको प्रकटित करते हैं, इसीसे उनका नाम पुरञ्जय पड़ा। यह पुर एक प्रकारका नहीं, अनेक प्रकारका है। इस पुरपदके सखा ईश्वर हैं जो अज्ञेय हैं। पुरुष पुरमात्रका अवलम्बन करते हैं, पर यही संसारारण्य है। पुरुष प्रकृतिकी मायामें विमोहित हो कर अपना स्वरूप नहीं पहचानता और बारम्बार जन्म और मृत्युमुखमें पतित होता है।

विशेष पुरञ्जय शब्दमें देखो।

२ धृतराष्ट्रप्रदत्त पांच ग्राम। पञ्चपथ देखो।

पञ्चप्राण (सं० पु०) पञ्च च ते प्राणाश्च। देहस्थित वायुपञ्चक। शरीरके मध्य जो वायु रहती है, उसे प्राण कहते हैं। यह प्राण पांच है—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।

"प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः॥" (अमर)

यह पंचप्राण सारे शरीरमें फैले हुए हैं जिनमेंसे हृदयदेशमें प्राणनामक वायु, गुह्यदेशमें अपानवायु, नाभिदेशमें समानवायु, कण्ठदेशमें उदानवायु और सारे शरीरमें व्यानवायु अवस्थान करती है।

"हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः।
उदानः कण्ठदेशे च व्यानः सर्वशरीरगः॥" (तर्कामृत)

वेदान्तके मतसे—इस पंचप्राणके मध्य ऊर्ध्वगमनशील नासाग्रस्थायी वायुका नाम प्राण, अधोगमनशील वायुके पायुस्थानमें स्थायी वायुका नाम अपान, सभी नाड़ियोंमें गमनशील समस्त शरीरस्थित वायुका नाम व्यान है। ऊर्ध्वगमनशील कण्ठस्थित उत्क्रमण वायुको उदान और जो वायु भुक्त अन्नपानादिको समीकरण है अर्थात् रस रुधिर शुक्र पुरीषादि करती है उसे समान वायु कहते हैं। इसके अलावा कोई कोई (सांख्यमतावलम्बी) कहा करते हैं कि नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय नामक और भी पंचवायु है। इनमें उद्गिरणकारी वायुको नाग, उन्मीलनकारी वायुको कूर्म, क्षुधाजनक वायुको कृकर, जृम्भनकारी वायुको देवदत्त और पोषणकर वायुको धनञ्जय कहते हैं। किन्तु वेदान्तिक आचार्य प्राणादि पंचवायुमें इस नागादि पंचवायुका अन्तर्भाव करके प्राणादि पंचवायु ही कहा करते हैं। यह मिलित पंचवायु आकाशादि पंचभूतके रजः अंशसे उत्पन्न होती है।

यह पंचप्राण पंचकर्मेन्द्रियके साथ मिल कर प्राणमय कोष कहलाता है। वेदान्तदर्शनके मतसे प्राणकी ५ वृत्तियां हैं, *यथा*—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। प्राग्वृत्तिका नाम प्राण है इसका काम उच्छ्वासादि है। अवाग्वृत्तिका नाम अपान है, इसका काम मलमूत्रत्याग प्रभृति। जो उक्त दोनोंकी सन्धिस्थलमें वृत्तिमान है, उसका नाम व्यान है, इसका काम वीर्यवत् कार्यनिर्वाह और जो सारे शरीरमें समवृत्ति है, उसका नाम समान है। इस समान वायु द्वारा भुक्तान्न रसरक्तादि भाव प्राप्त हो कर सारे अङ्गोंमें लाया जाता है।

(वेदान्तद० २।४।१२)

पञ्चप्रासाद (सं० पु०) प्रसीदन्ति मनांसि अत्र, प्र-सद अधिकरणे घञ्, उपसर्गस्य दीर्घत्वं। १ पंचचूड़ान्वित

प्रासाद वह प्रासाद जिसमें पाँच शिखर हों। २ देव-मन्दिरविशेष जिसे पञ्चरत्न भी कहते हैं।

"पञ्चकोणेषु रत्न ५ पञ्चानामेकमुत्तमम्।
कारयित्वा हरेर्धाम पूजयेन्मध्ये हरिम् ॥" (अग्निपु॰)

पञ्चबन्ध (सं॰ पु॰) पञ्चमः बन्धः भागो यत्र। नष्टद्रव्यका पञ्चमांश दण्ड।

पञ्चबला (सं॰ स्त्री॰) वैद्यकोक्त पाँच प्रकारकी बला जिनके नाम ये हैं यथा— बला, अतिबला, नागबला, राजबला और महाबला।

पञ्चबाण (सं॰ पु॰) पञ्च बाणा यस्य। १ काम-देव। कामदेवके पाँच बाण हैं।

"द्रवणं शोषणं बाणं तापनं मोहनाभिधम्।
उन्मादनञ्च कामस्य बाणाः पञ्च प्रकीर्त्तिताः ॥"

द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन यही पञ्च बाण हैं। कामदेवके पाँच पुष्पबाणोंके नाम ये हैं— कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल।

"अरविन्दमशोकञ्च चूतञ्च नवमल्लिका।
नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥"
(शब्दकल्पद्रुम)

(त्रि॰) २ पञ्चबाणविशिष्ट, जिसके पाँच बाण हों।

पञ्चबाहु (सं॰ पु॰) पञ्च बाहवो यस्य। एक देव।

पञ्चब्रह्म (सं॰ क्ली॰) उपनिषद्भेद।

पञ्चभद्र (सं॰ पु॰) पञ्चसु स्थानेषु भद्रः शुभः पुष्पितत्वात्। १ अश्वभेद, जिस घोड़ेके पाँच अङ्ग पुष्पचिह्न हों, उसे पञ्चभद्र कहते हैं। २ पाचनविशेष, वैद्यकमें एक औषधविशेष जिसमें गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ हैं।

पञ्चभूत (सं॰ क्ली॰) पञ्चानां भूतानां समाहारः द्विगु, स पात्रादित्वात् पक्षे पञ्च च तानि भूतानि चेति कर्मधारयः। क्षिति, अप्, तेज, मरुत् और व्योम यह भूतपञ्चक (अर्थात् पञ्चभूतात्मक) है। इस पञ्चभूतके संमिश्रण तथा विश्लेषणसे इस जगत्की सृष्टि और नाश होता है। शास्त्रके मतसे इस पञ्चभूतका विषय लिखा जाता है।

"अकूतमात्रेऽहङ्कारस्त्रिविधः श्रुतिचोदनात्।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा।
विकारात्सत्त्वयोगाद्देवा वैकारिकाश्च दश।
तैजसादिन्द्रियाण्यासंस्तन्मात्राः क्रमयोगतः।
भूतादिकादहङ्कारात् पञ्चभूतानि जज्ञिरे ॥" (भागवत १ प॰)

सृष्टिमें इसी तीन प्रकारके अहङ्कार उत्पन्न होते हैं। इन तीन प्रकारके अहङ्कारोंमेंसे वैकारिक अहङ्कारसे वैकारिक दश देवता, तैजस अहङ्कारसे समस्त इन्द्रियाँ और भूतादिक अहङ्कारसे पञ्चभूत उत्पन्न होता है। इस मतसे अहङ्कार ही पञ्चभूतका कारण है।

शास्त्रमें भूत पञ्चमें माना जाता है, कि वैकारिक अहङ्कार सात्त्विक, तैजस अहङ्कारका नाम राजस और भूतादि अहङ्कार ही तामस अहङ्कार पदवाच्य है। इसी भूतादिसे पञ्चभूतकी उत्पत्ति हुई है।

सांख्यदर्शनके मतसे पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूत हुआ है। प्रकृतिसे महान् (बुद्धि), महत्से अहङ्कार, अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्र और इन पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूतकी उत्पत्ति होती है। शब्दतन्मात्रसे आकाश, इसी प्रकार स्पर्श, रूप, रस और गन्धतन्मात्रसे यथाक्रम वायु, तेज, जल और पृथ्वीकी उत्पत्ति मानी जाती है। इसी प्रकार पञ्चमहाभूतकी उत्पत्ति होती है और प्रलयकालमें यह पञ्चमहाभूत तन्मात्रमें लीन हो जाता है। वेदान्तके मतानुसार पहले आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथिवी इस प्रकार पञ्चभूत उत्पन्न हुआ है।

नैयायिकोंका कहना है, कि क्षित्यादिभूतसमूह द्रव्यपदार्थके अन्तर्गत है। क्षिति, जल, तेज, मरुत् और व्योम यह पञ्चभूत तथा काल, दिक्, देह और मन ये ही नौ द्रव्य पदार्थ हैं।

जिसमें गन्ध है, उसे पृथ्वी कहते हैं। वायु और जलादिमें जो गन्ध मालूम होता है, वह पृथ्वीका ही है। इसके सिवा पृथ्वीके और भी कई गुण हैं यथा— गन्धवत्त्व नाना जातीय रूपवत्त्व, षड्विधरसवत्त्व और पाकजस्पर्शवत्त्व। पृथ्वी छोड़ कर और किसीमें गन्ध नहीं है, इसीसे गन्धवत्त्व कहनेसे पृथ्वीका बोध होता है, अतः गन्धवत्त्व पृथ्वीका लक्षण है। पाषाणादिमें गन्ध मालूम नहीं होता, किन्तु जब पाषाण भस्म किया जाता है तब उसमें एक प्रकारका गन्ध निकलता है। कोई कोई कहते हैं कि प्रस्तरादि स्वभावतः ही गन्ध

हीन है ; उसे भस्म करते समय पाकज गन्ध उत्पन्न होती है। पाकज गन्धादि भी पृथिवी भिन्न और किसी भी पदार्थमें नहीं रहती । कारणमें जो गुण नहीं है, कार्यमें वह गुण कभी भी नहीं रह सकता। पाषाणमें गन्ध थी, इसीलिये पाषाणभस्मसे गन्धानुभूति हुई। वायुमें गन्ध नहीं है किन्तु पुष्पादिपराग जब वायुके साथ मिल जाता है, तब वायुसे गन्ध निकलती है । इसीसे वायुको गन्धवह कहते हैं ; पर यह गन्धवान् नहीं है।

नाना जातीय रूप पृथिवी भिन्न और किसीमें नहीं है, इसीसे नानाजातीय रूपवत्त्व पृथ्वीका लक्षण है। जल और तेजमें रूप है सही, पर वह सफेद है। पार्थिवांशवशतः| जलमें वर्णभेद देखा जाता है और अग्निका भी पार्थिवांश ले कर विभिन्न रूप हुआ करता है। नाना जातीय रूप केवल पृथिवीमें ही है ।

षड्विध रस केवल पार्थिव पदार्थमें वर्त्तमान है; इसीसे षड्विधरसवत्त्व पृथिवीका लक्षण है। जलका स्वाभाविक रस मधुर है। कषाय, लवण आदि रस पार्थिवांशसे उत्पन्न होते हैं। पाकजस्पर्श पृथिवी भिन्न और किसीमें भी नहीं है, इसीलिए पाकज स्पर्शवत्त्व पृथ्वीका लक्षण है। पार्थिव घटशरावादिका जो आमावस्थामें एक प्रकारका स्पर्श रहता है, पीछे अग्निमें पाक होने पर एक और प्रकारका स्पर्श हो जाता है। अग्निमें पाक होनेके बाद कठिनत्व स्पर्श होता है, अथच जल वायु वा विशुद्ध तेजका स्पर्श रहता है, यह विभिन्न नहीं होता। इससे देखा जाता है, कि पाकज स्पर्श केवल पृथ्वीमें ही है, पृथ्वीका स्पर्श उष्ण वा शीत नहीं है। लेकिन उष्णशीतस्पर्श जो देखा जाता है वह जलीयांश और अग्नि योगसे हुआ करता है।

पृथिवीमें कुल १४ गुण हैं, यथा—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग, गुरुत्व और नैमित्तिक द्रवत्व। इनमेंसे रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये चार विशेष गुण हैं। यह पृथिवी दो प्रकारकी है, नित्य और अनित्य। पार्थिव परमाणु नित्य और दूसरी सभी पृथिवी अनित्य है। इसी नित्य पृथ्वी अर्थात् पार्थिव परमाणुसे इस सुविशाल पृथिवीकी सृष्टि हुई है । परमाणुके अवयव नहीं है ।| इस पार्थिवपरमाणुमें भी गन्ध तथा जो सब गुण उल्लिखित हुए हैं, वे सभी गुण हैं, किन्तु वे अनुभूत नहीं होते। मूल पृथिवीमें गुण नहीं रहने पर स्थूल पृथिवीमें गुण नहीं रह सकता। स्थूल पृथिवीकी आदि और अन्त अवस्था परमाणु है।

अनित्य पृथिवी तीन भागोंमें विभक्त है—देह, इन्द्रिय और विषय। यह पार्थिव देह चार प्रकारको है—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। मनुष्यादिकी देह जरायुज, पक्षीकी अण्डज जूं, खटमल आदिकी स्वेदज और लतागुल्मादिकी देह उद्भिज्ज है। इन चार प्रकारकी देहोंमें पूर्वोक्त दो प्रकारका देह योनिज और शेषोक्त दो अयोनिज है। घ्राणेन्द्रिय ही पार्थिवेन्द्रिय है। जिस इन्द्रिय द्वारा गन्ध मालूम की जाती है, वही घ्राणेन्द्रिय है। नासिकाका नाम घ्राणेन्द्रिय नहीं है। इन्द्रियका अधिष्ठानस्थान नासिका पर्यन्त है। जो देह नहीं है, इन्द्रिय भी नहीं है, अथच पृथिवी है, वही विषय है।

जल यह द्वितीय भूत है। इसके भी अनेक गुण हैं यथा—शुक्लरूप मात्रवत्त्व, मधुर रसमात्रवत्त्व, शीतल स्पर्शवत्त्व, स्नेहवत्त्व और सांसिद्धिक द्रवत्ववत्त्व। जलमें शुक्लरूपके सिवा और कोई रूप नहीं है। पृथिवीमें नाना प्रकारके रूप हैं, इसीसे शुक्लरूपमात्र-विशिष्ट कहनेसे केवल जलका ही बोध होता है। इसीसे शुक्लरूपमात्र-वत्त्व जलका लक्षण है। जलमें केवल मधुर रस है और कोई रस नहीं। पृथिवीमें षड्विध रस हैं, केवल मधुर-रस पृथिवीमें नहीं है। सुतरां मधुर रसमात्र-विशिष्ट कहनेसे जलका ही बोध होता है। इसीसे मधुर रसमात्र-वत्त्व जलका लक्षण है। शीतलस्पर्श केवल जलमें है और किसीमें भी नहीं ; पृथिवी आदिमें जो स्पर्श है, वह शीतल नहीं है, इसीसे शीतल स्पर्शमात्र जलका लक्षण है। स्नेहवत्त्व और मसृणता जलका लक्षण है, स्नेह और किसीमें भी नहीं है। घृतादिमें जो स्नेह है वह जलका है, इसीसे स्नेहविशिष्ट कहनेसे जलका ही बोध होता है। जलमें एक और गुण सांसिद्धिक द्रवत्व और स्वाभाविक तरलता है। जलमें कुल १४ गुण हैं। नित्य और अनित्यके भेदसे जल दो प्रकारका है।

तेज यह तृतीय भूत है। तेजका लक्षण है—उष्ण

स्पर्श वास्तव भास्वर शुक्लरूपवत्त्व और नैमित्तिक द्रवत्व । जिसमें उष्ण स्पर्श, भास्वर शुक्ल और नैमित्तिक द्रवत्व है, वही तेज है। तेजमें कुल ११ गुण हैं। तेज दो प्रकारका है नित्य और अनित्य। परमाणुरूप तेज नित्य और सब अनित्य है।

शायद, यह चतुर्थ भूत है। वायुमें अपाकज अनुष्णा शीत स्पर्शवत्त्व और तिर्यक्‌गमनवत्त्व गुण है। वायुमें न रूप है, न रस और न गन्ध केवल स्पर्श है। तिर्यक्-गमन वायुके लक्षण और स्पर्शादि द्वारा अनुमेय है। यह वायु भी दो प्रकारकी है, नित्य और अनित्य। परमाणुरूप नित्य नित्य और सब अनित्य है।

आकाश पञ्चम भूत है। जो शब्दका आश्रय है वह आकाश है। शब्दका आश्रय और कोई नहीं है केवल आकाश है। शब्द और किसी भी द्रव्यमें नहीं रहता, केवल आकाशमें रहता है। विशेष विवरण तत्तत् शब्दमें देखो।

सांख्य और वेदान्तके मतसे—आकाश ही मूल समूहका उपादान है। इस आकाशसे क्रमशः अन्य सभी भूतोंकी उत्पत्ति हुई है। यह जगत् पञ्चभूतात्मक है मनुष्य धर्म अधर्म अदृष्टवशसे नाना योनियोंमें भ्रमण करते हैं, जीव इ पञ्चभूतात्मक देह धारण करता है। जब इस भौतदेहका अवसान होता है, तब मनुष्य अदृष्ट हो कर समस्त पञ्चदशविशिष्ट सूक्ष्मदेहमें इस पाञ्चभौतिक देहका परित्याग करता है। पञ्चमहाभूत पञ्चतन्मात्रमें लीन हो जाता है। मातापितृज जो शरीर रहता है वह श्मशान या भस्मसात् हो जाता है। सूक्ष्म शरीर शब्द [illegible] एकादश इन्द्रिय पञ्चतन्मात्र और महत् यही षोडश है। (१।३१०) वेदान्तके मतसे पञ्चभूत पञ्चीकृत है। पञ्चीकरण आकाशादि पञ्चभूतके मध्य प्रत्येक भूत को दो समान भागोंमें विभक्त करनेसे जो दश भाग होते हैं उनमेंसे प्रत्येक पञ्चभूतके प्रथम भागमेंसे पञ्च भाग को समान चार अंशोंमें विभक्त करते हैं, फिर वह प्रथम चार अंश स्व स्व अपने द्वितीयार्द्ध भागको परित्याग कर इतर चार भूतके द्वितीयार्द्ध भागके साथ मिल जाता है तब पञ्चीकृत होता है। पञ्चभूत पञ्चीकृत रूपमें समान होने पर भी [illegible] पृथक् पृथक् आकाशादिका व्यवहार होता है। इस प्रकार पञ्चीकृत पञ्चभूतसे भू आदि लोक और ब्रह्माण्ड तथा चतुर्विध स्थूल शरीर तथा उनके भोगोपयुक्त अन्नपानादि उत्पन्न हुए हैं। (वेदान्तसार)

पञ्चीकरण देखो।

ब्रह्मज्ञानतन्त्र और निर्वाणतन्त्रमें देखा जाता है कि पञ्चभूतसे सृष्टि होती है। अन्तमें प्रलयकाल उपस्थित होने पर सभी भूत अपनी पृथिवी जलमें, जल तेजमें, तेज वायुमें और वायु आकाशमें लीन हो जाती है।

"मही संलीयते तोये तोयं संलीयते रवौ।
रविः संलीयते वायौ वायुर्नभसि लीयते।
पञ्चतत्त्वाद्भवेत् सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं विलीयते॥"

(ब्रह्मज्ञान और निर्वाणतन्त्र)

ब्रह्मज्ञानतन्त्रमें पञ्चभूतोंमेंसे एक एक भूतके अस्थि आदि पाँच पाँच करके गुण लिखे हैं। यथा—अस्थि मांस, नख नाड़ी और त्वक् ये पाँच पृथिवीके गुण, मल, मूत्र, शुक्र, श्लेष्मा और शोणित जलके गुण; आलस्य, निद्रा, क्षुधा, भ्रान्ति और आलस्य तेजके गुण; धारण, चालन, क्षेप, संकोच और प्रसर ये पाँच वायुके गुण तथा काम, क्रोध लोभ, लज्जा और मोह ये पाँच आकाशके गुण हैं।

पञ्चभूतके सभी नक्षत्रोंको एक एक भूत मान कर ये सब नक्षत्र गाये जाते हैं। धनिष्ठा, रेवती ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवणा अभिजित और उत्तराषाढ़ा इन सब नक्षत्रोंको पृथ्वी कहते हैं। इसी प्रकार पूर्वाषाढ़ा, अश्लेषा, मूला, आर्द्रा रोहिणी और उत्तरभाद्रपद ये सब नक्षत्र जल; भरणी कृत्तिका पुष्या मघा, पूर्वाषाढ़ा और पूर्व फल्गुनी, पूर्वभाद्रपद तथा स्वाति ये सब तेज तथा विशाखा उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, पुनर्वसु और अश्विनी ये सब नक्षत्र वायु नामसे पुकारे जाते हैं।

(स्वरशास्त्रोदय)

पञ्चभद्र (सं० क्ली०) वैद्यकोक्त पाँच प्रकारके द्रव्य देवताड़ यथा, भद्र (सिद्धि), नागमोथा और निशिन्दा।

पञ्चभ्र—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेलवाड़के अन्तर्गत एक क्षुद्र सामन्तराज्य। यह पलिताणासे ११ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। भूपरिमाण ७८ वर्ग-मील है।

पञ्चम (सं० त्रि०) पंचानां पूरणः (पूरणे डट्, तत. मट्, डिति मट्।) १ पंचसंख्याका पूरण, पांचवां। २ रुचिर, सुन्दर। ३ दक्ष निपुण। (पु०) पंचानां स्वराणां पूरणः। ४ तन्त्रीकण्ठोत्थित स्वरविशेष, सात स्वरोंमेंसे पांचवां स्वर। इसका उत्पत्तिस्थान—

"वायुः समुद्गतो नाभेरुरो हृत्कण्ठमूर्द्धसु।
विचरन् पंचमस्थानप्राप्त्या पंचम उच्यते॥" (नारद)

नाभिदेशसे वायु निकल कर वक्ष, हृदय, कण्ठ और मूर्द्धा इन पांचों स्थानमें विचरण करती है, पञ्चम स्थान प्राप्तिके कारण इसे पञ्चम कहते हैं।

"प्राणोऽपानः समानश्च उदान व्यान एव च।
एतेषां समवायेन जायते पञ्चमः स्वरः॥"
(सङ्गीतदामोदर)

प्राण अपान, समान उदान और व्यान इन पञ्च-वायुसे जिनसे पञ्चमस्वरकी उत्पत्ति हुई है। सङ्गीतशास्त्र में इस स्वरका वर्ण ब्राह्मण, रंग श्याम देवता महादेव, रूप इन्द्रके समान पर स्थान क्रौंचद्वीप लिखा है। यमनी, निर्मली और कोमली नामकी इसकी तीन मूर्च्छनायें मानी गई हैं। इसके कूटतान १२० हैं, प्रत्येक तान ४० दरसे कुल ४८०० तान हैं। यह स्वर पिक वा कोकिल स्वरके अनुरूप माना गया है। ५ रागभेद, एक राग जो छः प्रधान रागोंमें तीसरा है। कोई इसे हिंडोल रागका पुत्र और कोई भैरवका पुत्र बतलाते हैं। कुछ लोग इसे ललित और वसन्तके योगसे बना हुआ मानते हैं और कुछ लोग हिंडोल गांधार तथा मनोहरके मेलसे। सोमेश्वरके मतानुसार इसके गानेका समय शरदृतु और प्रातःकाल है। विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, वडहंसिका, मालश्री, पटमञ्जरी नामकी इसकी छः रागिनियां हैं, पर कल्लिनाथ त्रिवेणी, स्तम्भतीर्था, आभीरी, ककुभ, वरारी और सावेरीको इसकी रागिनियां बतलाते हैं। कुछ लोग इसे ओडव जातिका राग मानते हैं और ऋषभ कोमल पञ्चम तथा गान्धार स्वरोंको इसमें वर्जित बतलाते हैं। ६ मैथुन, स्त्रीप्रसङ्ग।

पञ्चम—१ दाक्षिणात्यवासी लिङ्गायतोंकी शाखाभेद।
लिङ्गायत् देखो।

२ जैनोंके ८४ गच्छोंमेंसे एक।

पञ्चम—हिन्दीके एक प्राचीन कवि। ये जातिके बन्दी और बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे। इनका जन्म संवत् १७३५में हुआ था। पहले महाराज छत्रसाल बुन्देलाके दरबारमें ये रहते थे।

पञ्चमऋषि—हिन्दुओंका एक उत्सव। भाद्रमासमें सप्तर्षि नक्षत्रके उदय होने पर यह उत्सव मनाया जाता है।

पञ्चम। सिंह—१ बुन्देलखण्डवासी एक गायक कवि। ये अजयगढ़के राजा गुमानसिंहकी सभामें विद्यमान थे। इनका जन्म १८५४ ई०में हुआ था।

२ रायबरेली जिलेके डलमऊ नगरवासी एक गायक कवि। ये १८९७ ई०में विद्यमान थे।

पञ्चमकार (सं० क्ली०) पञ्चसंख्यकं मकारं तत्त्वं यत्र। मद्यादि मकारपञ्चक, मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन।

"मद्यं मांसं तथा मत्स्यो मुद्रा मैथुनमेव च।
पञ्चतत्त्वमिदं देवि निर्वाणमुक्तिहेतवे।
मकारपञ्चकं देवि देवानामपि दुर्लभम्॥"
(गुप्तसाधनतन्त्र)

यह मद्यादि पञ्चमकार निर्वाणमुक्तिका कारण और देवताओंको दुर्लभ है।

महासाधुओंको पञ्चमुद्रा द्वारा अम्बिकाकी पूजा करनी चाहिये। निम्नलिखित नियमसे यदि उनकी पूजा न की जाय, तो देवता और पण्डितगण उनकी निन्दा करते हैं। इस कारण कायमनोवाक्यसे पंचतत्त्वपर होना चाहिये।

"मद्यमांसैस्तथामत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनैरपि।
स्त्रीभिः सार्द्धं महासाधुरर्च्चयेज्जगदम्बिकाम्॥
अन्यथा च महानिन्दा गीयते पण्डितैः सुरैः।
कायेन मनसा वाचा तस्मात्तत्परो भवेत्॥"
(कामाख्यातं ५ प०)

इस पंचमकारके मध्य मद्यादि प्रसिद्ध है। जो सुरा सभी शास्त्रोंमें बतलाई गई है, वैसा ही सुरापान श्रेयस्कर है। शूद्रोंके खाने योग्य जो सब मांस कहे गये हैं, वही मांस है, जिन सब मत्स्यभोजनका विधान है, वही मत्स्य है। पृथुक, तण्डुल, गोधूम और चणकादि

जब सुने जाते हैं, तब उन्हें मुद्रा कहते हैं। पांचवां मैथुन है। यही पञ्चमकार है।

मद्यादिकी व्युत्पत्ति—मायामलादि प्रशमन, मोक्ष-मार्ग निरूपण और षट्विध दुःखादि नष्ट होते हैं, इसीसे मद्य नाम पड़ा है। मांगल्यजनन, सच्चिदानन्ददान और सब देवताओंका प्रिय है इसीलिए मांस नाम रखा गया है। बिना पञ्चमकारके जपादि वृथा हैं। पञ्चमकार बिना सिद्धि भी दुर्लभ है। पञ्चमकारका शोधन कर अनुष्ठान करना चाहिए।

पञ्चमकारके मध्य मद्य प्रधान है, किन्तु अनेक शास्त्रोंमें मद्यपानकी विशेष निन्दा और प्रायश्चित्त विधान है। अतएव पञ्चमकारानुष्ठानमें यदि मद्यपान किया जाय, तो प्रायश्चित्त नहीं होता, सो क्यों? शाक्ततोषिणी में इसकी मीमांसा इस प्रकार लिखी है। जो केवल मद्यादि पान करते हैं उन्हींके लिये यह विधि है। किन्तु पञ्चमकार शोधन करके खानेसे प्रायश्चित्त करना नहीं पड़ता पर पञ्चमकारानुष्ठान नहीं करनेसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती। पञ्चमकारके शोधनका विषय शाक्ततोषिणीमें इस प्रकार लिखा है—

पहले अपने वामभागमें घट रखके उसके त्रिकोण बिन्दु लिख कर और बाहरदेशमें चतुरस्र मण्डल अङ्कित कर सामान्यार्घ्य जलसे अभ्युक्षण करे। पीछे 'आधार शक्तये नमः।' इस मन्त्रसे पूजा कर 'नमः' इस मन्त्रसे प्रक्षालन बादमें मण्डलोपरि स्थापन करके 'मं वह्नि मण्डलाय दशकलात्मने नमः' इस मन्त्रसे पूजन करके बाद 'फट्' इस मन्त्रसे कलसको प्रक्षालित करे। तदनन्तर उस कलसमें सुरा भर कर रक्त वस्त्र और माल्यादि विविध भूषणसे भूषित करके उसे देशी समक्ष स्थापित करे। मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः इस मन्त्रसे आधारपूजा, 'अर्क मण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' इस मन्त्रसे कलसपूजा 'ओं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' इस मन्त्रसे पूजा करे। बादमें 'हूं' इस मन्त्रसे द्रव्य सन्ताड़न, 'हूं' इस मन्त्र और अवगुण्ठन मुद्रा द्वारा वेष्टन, 'नमः' इस मन्त्रसे अभ्युक्षण पीछे मूलमन्त्रसे तीन बार मद्य आघ्राण करके 'वं' इस मन्त्रसे कुसुम पुष्प डालके बाद 'हसौं' इस मन्त्रसे त्रिकोणमण्डल बनावे। पीछे 'हसौं' इस मन्त्रके तथा 'ह्रीं क्रीं परम स्वामिनि परमाकाशशून्यवाहिनि चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणि पात्रं विश विश स्वाहा।' इस मन्त्रसे घट पकड़ कर दश बार जप करे। बादमें 'ऐं ह्रीं श्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै धीमहि तन्नोऽर्द्धनारीश्वर प्रचोदयात्।' यह गायत्री जप करके मद्यका शापविमोचन करना होगा।

शाप-विमोचनका मन्त्र—

"एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवं।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहं॥
सूर्य्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्॥"

इत्यादि मन्त्रसे घट पकड़ कर तीन बार पढ़ने होते हैं। तदनन्तर 'ओं वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापविमोचिताये सुधादेव्यै नमः' यह मन्त्र तीन बार पढ़ना होता है। पीछे 'ओं शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापविमोचिताये सुधादेव्यै नमः' इस मन्त्रका दश बार जप करके शुक्रशाप विमोचन करनेका विधान है। तत्पश्चात् 'ऐं ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः कृष्णशाप विमोचय अमृतं स्रावय स्वाहा।' यह मन्त्र दश बार जप करके कृष्णशाप विमोचन करना होता है। 'ओं हंसः शुचिषद्वसुरन्तरीक्ष सद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्' यह मन्त्र द्रव्यके ऊपर तीन बार पढ़ना होता है। इसके बाद द्रव्यके मध्य आनन्दमैरव और आनन्द-भैरवीका ध्यान करना पड़ता है। ध्यान और इनकी पूजा करके अभिवादन लिखना होता है। इस जलमें शिव और शक्तिका समायोग स्थिर करके मद्य अमृतस्वरूप है, ऐसा समझना होता है। पीछे धेनुमुद्रा प्रदर्शन करके 'वं' यह वरुणबीज और मूलमन्त्र ८ बार जप करके मद्यको देवतास्वरूप मानना चाहिए। ऐसा करनेसे मद्य शोधित होता है।

मांसशोधन—'प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा' इस मन्त्रसे मांस शोधन करना होता है। मीनशुद्धि—

"ओं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥"

—द्रव्यशोधन—

"ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः
दिवीव चक्षुराततम् ।
ओं तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः ।
स समिन्धते विष्णो यत् परमं पदं ॥"

मैथुनशुद्धि—

"ओं विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥
गर्भं धेहि सिनीवाली गर्भं धेहि सरस्वती ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥"

इसी मन्त्रसे मैथुन शोधन करना पड़ता है। इस प्रकार पञ्चमकारका शोधन किए बिना सेवन करनेसे पद पदमें विघ्न हुआ करता है। (प्राणतोषिणी)

पञ्चमढ़ी—मध्यप्रदेशके होसेङ्गाबाद जिलान्तर्गत एक अधित्यका। इसके चारों ओर चौरादेव, जाटपहाड़ और धूपगढ़ गिरिमाला विराजित है। यहां समतलक्षेत्रसे २५०० फुटकी ऊंचाई पर सोहागपुर नगर बसा हुआ है जहां अनेक प्राचीन सुदृश्य मन्दिर सुशोभित हैं। यहांके सरदार काकु वंशके हैं और महादेवपर्वतके भोपाओंके प्रधान व्यक्ति ही मन्दिरादिकी देखरेख करते हैं।

पञ्चमण्डली ग्राम्यपञ्चायत। अभी जिस प्रकार बड़े बड़े ग्रामोंमें पंचायतसे नाना विषयकी मीमांसा होती है, पूर्वकालमें उसी प्रकार इसी पंचमण्डलीसे ग्रामके सभी विवादोंकी मीमांसा और सभी प्रकारके विचार कार्य सम्पन्न होते थे। गुप्तसम्राट् २य चन्द्रगुप्तकी साञ्चिकी शिलालिपिमें (८३ गुप्तसम्वत्में) सबसे पहले इस 'पंचमण्डली' शब्दका उल्लेख देखा जाता है।

पञ्चमनगर—मध्यप्रदेशके दामो जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २४° ३' उ० और देशा० ७८° १३' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां बढ़िया कागज तैयार होता है।

पञ्चमय (सं० त्रि०) पंच मयट्। पंचम भागीय।

पञ्चमवत् (सं० त्रि०) पंचम मतुप्, मस्य वः। पंच संख्यायुक्त।

पञ्चमहल—बम्बई प्रदेशके गुजरात विभागका एक जिला। यह अक्षा० २२° १५' से २३° ११' उ० और देशा० ७३° २५' से ७४° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६०६ वर्गमील है। यहां बहुतसी छोटी छोटी नदियां हैं जो प्रायः ग्रीष्मके उत्तापसे सूख जाती हैं। सभी नदियोंमेंसे माहीनदी बड़ी है जो जिलेके उत्तर पश्चिम दिशासे बह गई है। जिलेके गोधरा (गोध्रा) उपविभागमें ओरवाड़ा नामक एक हृद है। इसका जल कभी भी नहीं सूखता। इसके अलावा यहां प्रायः ७५० छोटे बड़े जलाशय और असंख्य कूप हैं।

जिलेके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें पावागढ़ नामक एक पहाड़ है। इसका शिखरदेश यहांके समतलक्षेत्रसे प्रायः २५०० फुट ऊंचा है। पूर्व समयमें पहाड़के शिखर पर एक किला था। १०२२ ई०में तुवरके राजगण इस प्रदेशके तथा पावा दुर्गके अधीश्वर थे। पीछे चौहान राजाओंने दुर्गको अपने दखलमें कर लिया। १४१८ ई०में मुसलमानोंने इस स्थान पर आक्रमण किया सही, लेकिन कृतकार्य न हो सके और भाग गए। १७६१-१७७० ई०के मध्य सिन्दियाराजने इस प्रदेश पर अधिकार जमाया और १८०३ ई० तक उन्हींके वंशधर यहां राज्य करते रहे। उसी सालके अन्तमें कर्नल विडिंटनने उसे चढ़ाई कर अपने कब्जेमें कर लिया। १८०४ ई०में अङ्गरेजोंने पुनः यहांका शासनभार सिन्दियाके राजाके हाथ सौंप दिया। पीछे १८५३ ई०में अङ्गरेजोंने फिरसे इसका शासनभार अपने हाथमें ले लिया।

चम्पानेर नगरका इतिहास ही यहांका प्राचीन इतिहास समझा जाता है। उक्त नगरका ध्वंसावशेषमात्र देखनेमें आता है। ३५०-१३०० ई० तक यहां अनहलवाड़ाके तुआर राजाओंने और पीछे १४८४ ई० तक चौहान राजाओंने राज्य किया। इसी समयसे ले कर १५३६ ई० तक चम्पानेरनगर गुजरातको राजधानीके रूपमें गिना जाता था।

१५३५ ई०में हुमायुन् इस नगर पर आक्रमण और ध्वंस कर दूसरे वर्ष अहमदाबादमें राजधानी उठा कर ले गए। यहांके नायकड़ा अधिवासिगण चम्पानेरके प्राचीन अधिवासियोंके वंशधर हैं।

जिसमें ४ शहर और ६८८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है जिसमेंसे सैकड़े पीछे ८० हिन्दू, ५ मुसलमान और शेषमें अन्यान्य जातियां हैं। अधिकांश लोगोंकी भाषा गुजराती है। जिलेकी प्रधान उपज गुड़ चना, चना, गेहूं बाजरा धान और तिल है। जिलेमें ३३१ वर्गमील वनविभाग है। पहले यहां सागू लकड़ी बहुत, इससे नया माल पाए जाते थे। अभी उनको संख्या बहुत कम हो गई है। वनविभागसे १२ हजारकी आमदनी है। गुजरातकी अपेक्षा इस जिलेमें ज्वार भी अधिक परिमाणमें होती है। पहाड़ पर कोइले, लौह और मैंगनीजकी खान है। इस जिलेसे अनाज, महुवेके फूल, तिलहन और लकड़ी अनाज गुजरात भेजे जाते हैं और बाहरसे तमाकू, नमक, नारियल, धातुकी बनी चीजें तथा कपड़ेकी आमदनी होती है।

१८७५ ई०में रिवेन्यू सर्वे का काम आरम्भ और १८९९ ई०में अनावृष्टिके कारण यहां भारी अकाल पड़ा था। जिलेकी आबहवा एक प्रकार अच्छी है। साक्षरता साफ ८३ है। विद्याशिक्षामें यह जिला अधम है। जिलेमें चार हाईस्कूल, मिडिल स्कूल और प्राइमरी स्कूल हैं, इस प्रकार स्कूलोंकी संख्या कुल १२४ है। स्कूलके अलावा एक अस्पताल और सात चिकित्सालय भी हैं।

पञ्चमहापातक (सं० क्ली०) मनुस्मृतिके अनुसार पांच महापातक जिनके नाम ये हैं—ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुकी स्त्रीसे व्यभिचार और इन पातकोंके करनेवालोंके साथ संसर्ग। ब्राह्मण यदि एक सेर सोना चुरावे, तो वह स्तेयपातकी होगा। स्तेय शब्दसे चोरी का ही बोध होता है, किन्तु पाञ्चालमें विशेषत्वके अधीन रहनेके कारण यहां ऐसा अर्थ होगा, थोड़ामात्र भी महापातक नहीं होगा।

'ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥' (मनु)

जो मनुष्य पाप करते हैं, उन्हींको महापातकी कहते हैं। महापातकीका संसर्ग भी महापातक है इसीसे यत्नपूर्वक उनका संसर्ग छोड़ देना चाहिए।

महापातक देखो।

पञ्चमहायज्ञ (सं० पु०) पञ्चगुणितो महायज्ञः। गृहस्थको प्रतिदिन कर्त्तव्य देव और पैत्रादि पांच यज्ञ, पांच प्रकार जिनका नित्य करना गृहस्थोंके लिए आवश्यक है। गृहस्थ प्रतिदिन पञ्चसूनाजनित जो पाप उपार्जन करते हैं, वह पञ्चयज्ञ द्वारा विनष्ट होता है। इस पञ्चयज्ञका विषय भगवान् मनुने इस प्रकार कहा है— 'पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।

कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च कॢप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥"

(मनु ३।६८-७०)

चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली और जलपात्र बिना गृहस्थका काम नहीं चलता, अतएव ये सब पञ्चसूना अर्थात् प्राणिवधके स्थान हैं। चूल्हेमें आग देनेसे रसोई बनती है, किन्तु उस जलते हुए चूल्हेमें कितने कीड़े मरते हैं, उनकी शुमार नहीं। कण्डनी अर्थात् ओखली आदिसे भी अनेक जीव मरते हैं। चूल्हे आदि पञ्चस्थान द्वारा जो पाप उत्पन्न होता है, उस पापसे निष्कृति पानेके लिए महर्षियोंने गृहस्थके लिए प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञका विधान कर दिया है। अध्ययन अध्यापनका नाम ब्रह्मयज्ञ सन्ध्यादि वा तर्पण द्वारा पितृलोकको तर्पण देनेका नाम पितृयज्ञ, होमका नाम देवयज्ञ, पशुपक्ष्यादिको अन्नादि प्रदानरूप बलिका नाम भूतयज्ञ और अतिथि सेवाका नाम मनुष्ययज्ञ है। शक्ति रहते जो गृहस्थ इस पञ्चमहायज्ञका एक दिन भी परित्याग नहीं करते, वे नित्य गृहमें वास करते हुए भी पञ्चसूनापापसे लिप्त नहीं होते। देवता, अतिथि, पोष्यवर्ग पितृगण और आत्मा इन पांचोंको जो मनुष्य अन्न पञ्चयज्ञ द्वारा अर्पित नहीं देते, वे निःश्वासमात्र जीवित होते हुए भी जीवित नहीं है अर्थात् उनका जीवन निष्फल है। किसी किसी वेदशाखामें यह पञ्च महायज्ञ अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्म्यहुत और प्राशित इन पांच नामोंसे वर्णित हुआ है। ब्रह्मयज्ञ वा वेदपाठका नाम अहुत, होमका नाम हुत, भूतयज्ञका नाम प्रहुत, ब्राह्मण वा ब्राह्मणोंकी अर्चनाका नाम ब्राह्म्यहुत और

पितृतर्पणका नाम प्रसिद्ध है। (मनु ३ अ०) तैत्तिरीय आरण्यकमें इस पंचमहायज्ञका विधान इस प्रकार लिखा है -

"पञ्च वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते । देवयज्ञः पितृयज्ञः मनुष्ययज्ञः भूतयज्ञः ब्रह्मयज्ञः इति ।" (तैत्तिरीय आर०)

इस पञ्चयज्ञके मध्य वेदपाठ और वेदाध्यापन ब्रह्मयज्ञ कहलाता है। इस ब्रह्मयज्ञका अनुष्ठान करनेसे तत्त्व ज्ञान होता है। तत्त्वज्ञान होनेसे सब प्रकारके दुःख जाते रहते हैं। गृहस्थ यदि आहार न करे, तो भी उसे पञ्च- यज्ञानुष्ठान कर्त्तव्य है, साग्निक ब्राह्मणको वैश्वदेव और निरग्निक मनुष्योंको होम करना चाहिए। इस प्रकार होम समाप्त करके विश्वदेव, सभी भूतवृन्द और पितृ- लोकके उद्देशसे बलिदान करनेका विधान है। पीछे देवता और पितरोंके उद्देशसे बलि दे कर यदि मन तृप्त न हुआ हो या इच्छा बनी हो रहे, तो निम्नलिखित मन्त्रसे बलिप्रदान करना चाहिए।

"देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः ।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥
भूतानि सर्वाणि तथान्नमेतदहञ्च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति ।
तस्मादहं भूतनिकायभूतमन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥
येषां न माता न पिता न बन्धुर्नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति ।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयान्तु तृप्तिं मुदिता भवन्तु ॥"
(आह्निकतत्त्व)

गृहस्थ दोपहर दिनको चतुष्पथमें पवित्र भूभाग पर बैठ कर सभी जीवोंके उद्देशसे इस प्रकार मन्त्रपाठ करे—देवगण, दैत्यगण, पशुपक्षिगण, यक्षसिद्धसर्पगण, प्रेतपिशाचगण, वृक्षगण, कीटपतङ्गपिपीलिकावृन्द और समस्त अन्नभोजनाभिलाषी जीववृन्दके उद्देशसे मैं अन्न दान करता हूं, अतएव भोजन करके वे तृप्ति लाभ करें। जो निराश्रय हैं, जिनके पिता, माता, भ्राता और बन्धु कोई भी नहीं हैं, इस भूतल पर उनकी तृप्तिके लिये मैं अन्न दान करता हूं, वे तृप्ति लाभ करें, इत्यादि। इस प्रकार भूतसमूहके उद्देशसे बलि देनेके बाद गृहस्थ स्वयं भोजन करे। इत्यादिरूपसे पंचमहायज्ञका अनुष्ठान करना गृहस्थका मुख्य कर्त्तव्य है। जो इस महायज्ञ- का अनुष्ठान नहीं करते वे आखिरको घोर नरकमें जाते हैं।

पञ्चमहाव्याधि (सं० पु०) वैद्यकशास्त्रके अनुसार ये पांच बड़े रोग—अर्श, यक्ष्मा, कुष्ठ, प्रमेह और उन्माद।

पञ्चमहाव्रत (सं० पु०) योगशास्त्रके अनुसार ये पांच आचरण—अहिंसा, सूनृता, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन्हें पतञ्जलिजीने 'यम' माना है। जैन जातियोंके लिए इसका ग्रहण जैनशास्त्रमें आवश्यक बतलाया गया है।

पञ्चमहाशब्द (सं० पु०) पांच प्रकारके बाजे जिनके एक साथ बजवानेका अधिकार प्राचीनकालमें राजाओं महा- राजाओंको ही प्राप्त था। इसमें ये पांच बाजे माने गए हैं—सींग, खंजड़ी, शङ्ख, भेरी और जयघण्टा।

पञ्चमहिष (सं० क्ली०) पंचगव्यवत् महिषके मूत्रादि पंचक, सुश्रुतके अनुसार भैंससे प्राप्त पांच पदार्थ— मूत्र, गोबर, दही, दूध और घी।

पञ्चमार (सं० पु०) १ बलदेवके पुत्रका नाम। २ पांच प्रकारके काम। ३ एक जैनधर्मसंस्कारक। ये महावीर- के शिष्य थे। महावीरके मरनेके बाद इन्होंने ही उनका पद प्राप्त किया था।

पञ्चमाषिक (सं० त्रि०) पंचमाषाः प्रमाणमस्य ठञ्, न पूर्वपदवृद्धिः। स्वर्णमाषपंचकमित दण्डादि, पांच माशेकी तौलको सजा।

पञ्चमास्य (सं० पु०) पंचमो रागः स्वरो वा आस्ये यस्य। १ कोकिल, कोयल। पञ्चसु मासेषु भवः यत्। (त्रि०) २ पंचमासभव, पांच महीनेका।

पञ्चमिन् (सं० त्रि०) पञ्चयुक्त।

पञ्चमी (सं० स्त्री०) पंचानां पाण्डवानामियम् अथवा पञ्चपतीन मिनोति सेवासंवादिभिर्बध्नाति या पंच-मी- क्विप्। १ पाण्डव-पत्नी, द्रौपदी। पंचानां पूरणी डट्, ततो मट्, स्त्रियां ङीप्। २ व्याकरणमें अपादानकारककी विभक्ति। ३ तिथि- विशेष, शुक्ल या कृष्णपक्षकी पांचवीं तिथि। पत्रिकाके सङ्केतसे शुक्लपक्षकी पंचमी होनेसे ५ संख्या और कृष्ण- पक्षकी पंचमी होनेसे २० संख्या लिखी जाती है।

व्रत आदिके लिए चतुर्थीयुक्ता पंचमी तिथि ग्राह्य मानी गई है।

"मा च चतुर्थीयुता कार्या युग्मात् ।
पञ्चमी च प्रकर्तव्या चतुर्थीसहिता विभो ॥"

(तिथितत्त्व)

आषाढ़मासकी शुक्लापञ्चमीमें मनसा और अष्टनाग-पूजा करनी होती है। माघ मासकी शुक्लापञ्चमीका नाम श्रीपञ्चमी है। इस दिन लक्ष्मी और सरस्वतीकी पूजा की जाती है। नागपञ्चमी और श्रीपञ्चमी देखो।

माघमासकी शुक्लापञ्चमीके दिन जो व्रत किया जाता है उसे पञ्चमीव्रत कहते हैं। यह व्रत ६ वर्ष तक करना होता है, इसीसे इसका दूसरा नाम षट्पञ्चमीव्रत भी है। पहले माघमासकी शुक्लापञ्चमीसे इस व्रतका आरम्भ करके प्रति शुक्लापञ्चमीको यथोक्त नियमसे पूजा और कथादि श्रवण करना होता है। इस प्रकार ६ वर्ष तक अनुष्ठित होने पर इसका उद्यापन होता है। इस पञ्चमी व्रतका विषय ब्रह्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

"क्षीरोदे च पुरा सुप्तं लक्ष्मीसमन्वितं हरिम् ।
प्रणम्य परिपप्रच्छ नारदो मुनिसत्तमः ॥
नारद उवाच । केनोपायेन देवेश नारीणां सुखं भवेत् ।
सौभाग्यमतुलं चापि तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥
श्रुत्वा तद्वचनं देवो नारदस्य महात्मनः ।
केशवः वचनं श्रुत्वा मुनि देवो जनार्दनः ॥
स्मित पश्यन्तुवाच पद्मनाभो रमापतिः ।
सर्वस्य च सुरश्रेष्ठ श्रोता व्रतमुत्तमम् ॥
श्रीदेव उवाच । अस्ति श्रीपञ्चमी नाम व्रतं परमदुर्लभम् ।
यस्मान्नारी भवेद् भुवि सौभाग्यमुत्तमम् ॥"

(ब्रह्मपुराण)

एक समय क्षीरोदसमुद्रमें लक्ष्मी और नारायण सोये हुए थे। उसी समय नारद वहां पहुंच गए और उनसे बोले, 'भगवन्! ऐसा कौन सा उपाय है जिससे नारी सुखी और अतुल सौभाग्यवती हो।' इस पर लक्ष्मीने भगवान्‌के इच्छानुसार नारदसे कहा था 'श्रीपञ्चमी नामक एक परमदुर्लभ व्रत है। इस पञ्चमीको मेरी और नारायणकी विधि तथा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। जो स्त्री भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करती हैं, वे लक्ष्मीयुक्त हैं। इसका विधान इस प्रकार है— माघमासकी शुक्लापञ्चमीसे इस व्रतका आरम्भ है और ६ वर्ष तक किया जाता है। इसमें प्रथम दो वर्ष तक पञ्चमीके दिन लवण खाना निषेध है। पीछे दो वर्ष तक हविष्यान्न, बादमें एक वर्ष तक फल और अन्तिम वर्षमें उपवास विधेय है। ६ वर्ष पूरे हो जाने पर व्रतप्रतिष्ठाके विधानानुसार इस व्रतकी प्रतिष्ठा की जाती है। यही व्रत नारियोंका एकमात्र सौभाग्यवर्द्धक है।' व्रतमाला और हेमाद्रिके व्रतखण्डमें इस व्रतका विशेष विवरण लिखा है।

अग्निपुराणमें पञ्चमी व्रतका जो विवरण लिखा है, वह इस प्रकार है—श्रावण भाद्र आश्विन और कार्त्तिक मासमें शुक्लापञ्चमीको व्रत करके यथाविधान पूजा करनी चाहिए। वासुकि, तक्षक, कालीय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनञ्जय, इनकी पूजा करके व्रतानुष्ठान करना होता है। इस प्रकार व्रतानुष्ठान करनेसे आयु विद्या यश और सम्पत्ति आदिकी प्राप्ति होती है। (अग्निपुराण ११५ अ०)

पहले ब्रह्मपुराणोक्त पञ्चमी व्रतका विषय जो लिखा गया है भविष्यपुराणमें भी उस व्रतका उल्लेख है। इस व्रतको षट्पञ्चमीव्रत कहते हैं, व्रतकी जो कथा है, वह भविष्यपुराणोक्त है। ब्रह्मपुराणोक्त व्रतका विषय जैसा लिखा गया है, भविष्यपुराणमें भी ठीक वैसा ही है।

पञ्चमी तिथिको जन्म होनेसे भूपालमान्य, धनाढ्य, पण्डितानुरक्त, मानी, सुखी और बन्धुओंके निकट माननीय होता है।

"भूपालमान्यो मनुजः प्रगल्भः कलासमेतो विभवी दयालुः ।
मानी सुखी बन्धुजनैकमान्यः प्रसूतिकाले यदि पञ्चमी स्यात् ॥"

(कोष्ठीप्र०)

५ तन्त्रोक्त विद्याविशेष। तन्त्रसारमें इस विद्याका विषय इस प्रकार लिखा है—

"वाग्भवं प्रथमं दद्यादङ्कुशं च ततः परम् ।
कामबीजं ततो देवि भुवनं च मनोहरम् ।
कथिता पञ्चमी विद्या त्रैलोक्यसुमनोहरा ॥"

(तन्त्रसार)

पञ्चमी विद्याका विषय लिखा जाता है यथा— अ, ए, ई, ल, ह्रीं इसीका नाम वाग्भवकूट है।

कामराजमन्त्रका प्रथमकूट यह है—ह, स, क, ल, ह्रीं। यह मन्त्र परमदुर्लभ है। ह, क, ह, स, ह्रीं इसका नाम स्वप्नावती मन्त्र है, इसे द्वितीय कामराजकूट कहते हैं। क, ह, ए, ल, ह्रींका नाम मधुमती मन्त्र और ह, क, ल, स, ह्रीं का नाम शक्तिकूट है। कुलोड्डीशमें लिखा है, कि पहले वाग्भवकूट और मध्यमें कामराजकूटत्रय इस पञ्चमीकूटमें पंचमीविद्या होगी। यह पञ्चमीविद्या त्रिभुवनको सौभाग्यप्रदा है।

इस पञ्चमीविद्याके विषयमें महादेवने स्वयं कहा था, 'हे देवि! अति दुर्लभ शक्तिकूट मैं कहता हूं, ध्यान दे कर सुनो। पहले वाग्भवकूट और पीछे कामराजकूटत्रय योग करनेसे जो मन्त्र होता है, उसका नाम शक्तिकूट है। अथवा स, ह, क, ल, ह्रीं इसका नाम शक्तिकूट है। वाग्भवकूट और शक्तिकूट यह कूटत्रयात्मिका विद्या शत्रुनाशिनी, सिद्धिप्रदा और सर्वदोषविवर्जिता है। वाग्भवकूट चार प्रकारका और शक्तिकूट दो प्रकारका है, अतएव पंचमी-विद्या आठ प्रकारकी हुई। यामलमें लिखा है, कि पंचमीविद्या दो प्रकारकी है। उसके आद्यकूटत्रय और पंच पंचाक्षर है। कामराज विद्याका मध्यकूटपञ्चाक्षर और कामराजविद्याका शक्तिकूट चतुरक्षर है। वाग्भवकूट चार प्रकारका होनेके कारण उक्त विद्या भी चार प्रकारकी है। यामलमें और भी लिखा है, कि क, ह, हं, सः, ल, ह्रीं यह कूट परमदुर्लभ है। तत्त्वबोधमें क, ह, स, ल, ह्रीं यह मन्त्र लिखा है। तन्त्रसारमें क, ह, स, ल, ह्रीं इस कूटको परम दुर्लभ बतलाया है। उक्त विद्या भी पूर्ववत् ८ प्रकारकी और अन्य विद्या ४ प्रकारकी है, सुतरां कुल पंचमीविद्या ३६ प्रकारकी हैं।' श्रोक्रममें लिखा है, कि महादेवने भगवतीसे कहा है, 'देवि! पूर्वोक्त विद्यासमूहका प्राण-मन्त्र सुनो। श्रीं, ह्रीं, हं, सः, इस मन्त्रको वाग्भवकूटके आदिमें योग करके ७ बार जप करो। पंचमीविद्याके विशेष इस वाग्भवकूटके आदिमें श्रीं, ह्रीं, हं, सः, शक्तिकूटके अन्तमें हं सः ह्रीं श्रीं और कामराजमन्त्रके प्रथमकूटके आदिमें क्लीं, मध्यकूटके आदिमें स्त्रीं और तृतीयकूटके आदिमें ह्रीं यह बीज योग करके जप करनेसे सर्व काम सिद्ध होता है। (तन्त्रसार)

५ रागिणीविशेष। यह रागिणी वसन्तरागकी स्त्री मानी जाती है।

"वसन्ती पञ्चमी दोली वहारी रूपमञ्जरी।
रागिण्य ऋतुराजस्य वसन्तस्य प्रिया इमाः ॥" (संगीतद०)

वसन्तरागिणीका ध्यान—

"संगीतगोष्ठीषु नरीश्वमार्गे कुर्वाणिनी गान्धर्वस्वरांश्च।
सर्वाङ्गिनी नूपुरनादपदा सा पञ्चमी पञ्चनादिनेत्री॥"
(संगीतदर्पण)

६ नदीविशेष। ७ व्याकरणमें अपादान कारक। ८ एक प्रकारकी ईंट जो एक पुरुषकी लम्बाईके पांचवें भागके बराबर होती थी और यज्ञोंमें वेदी बनानेमें काम आती थी।

पञ्चमीव्रत (सं० क्लो०) पंचम्यां माघशुक्लपंचमीमारभ्य षड्वर्षं यावत् प्रतिमासीयशुक्लपंचम्यां क्रियया कर्त्तव्यं व्रतं नियमविशेषः। स्त्रियोंके करने योग्य व्रतविशेष। यह माघमासकी शुक्लापंचमीसे आरम्भ करके ६ वर्ष तक प्रति मासकी शुक्लापंचमीको किया जाता है।
पञ्चमी शब्द देखो।

पञ्चमुख (सं० पु०) पंच विस्तृतं मुखं यस्य। १ सिंह। पंच मुखानि यस्य। २ शिव, महादेव।

"शिवस्तत्र स्थितः साक्षात् सर्वपापहरः शुभः।
स तु पञ्चमुखः ख्यातो लोके सर्वार्थ-साधकः॥
पञ्चब्रह्मात्मको यस्मात् तेन पञ्चमुखः स्मृतः।
पश्चिमे तु मुखे सद्यो वामदेवस्तथोत्तरे॥
पूर्वे तत्पुरुषं विद्यादघोरञ्चापि दक्षिणे।
ईशानः पञ्चमो मध्ये सर्वेषामुपरि स्थितः।
एवं पञ्चमुखा यस्य पापघ्ना ग्रहनाशनाः॥"
(देवीपुराण)

महादेवके पांच मुख हैं, इसीसे उनका पंचमुख नाम पड़ा है। इन पांचों मुखमेंसे पश्चिम मुखका नाम सद्योजात, मध्यका वामदेव, पूर्व ओरका तत्पुरुष, दक्षिण ओरका अघोर और सबसे ऊपर मध्यभागमें जो मुख है उसका नाम ईशान है। यह पंचवदन पाप और ग्रहनाशक है। इस पंचमुखके मध्य सद्योजात शुक्ल, वामदेव पीतवर्ण, तत्पुरुष रक्त, अघोर कृष्णवर्ण और ईशान नानावर्णात्मक है। यह पंचवक्त्र शिव कामद, कामरूपी और ज्ञानस्वरूप है।

'पर्य्यङ्कात् भवेद् हृद्य वामदेवम् योजक ॥
तत्पश्चात्तु ततो सद्योजात: ईशानः स एव च ।
ईशानः पञ्चमस्तेषां सर्वेषामभिपूजित ।
कामरूपा कामदा स्यात् तन्मात्रा सितात्मक ॥"

(दत्तीपराण)

३ रुद्राक्षविशेष, यह रुद्राक्ष जिसमें पाँच धारियाँ होती हैं। यह पञ्चमुख रुद्राक्षविशेष शुभ फलद है। (रुद्राक्ष देखो।)

४ रुद्राक्षादि विशेषज्ञ रुद्रोंका तत्त्वोंका एक भाग।

पञ्चमुखी (सं० स्त्री०) पञ्चमुखानीव मन्यन्ते। १ वासक, अडूसा। २ जपापुष्पविशेष, गुडहलका फूल। पाँच विभक्त मुख वाला। स्त्रियां ङीप्। ३ सिंहनी, सिंहिनी। महिलायाँ पञ्चदलपुष्पादेव पञ्चमुखानीव यस्याः सा। ४ गिरिपर्णी वाकुली।

पञ्चमुद्रा (सं० स्त्री०) पञ्चविधा मुद्रा। पूजाविधिमें कही हुई पाँच प्रकारकी मुद्राएँ—आवाहनी स्थापनी सन्निधापनी सम्बोधिनी और सम्मुखीकरणी। पूजाप्रदीपमें पञ्चमुद्राका विषय इस प्रकार लिखा है—

'मन्त्रमुद्रयेन कुर्यात् आवाहनी सन्निधापनी ।
स्थापनी सम्बोधनी मुद्रा इत्यादि सम्मुखी ॥
सर्वेषु तेषु प्रयेत् स्यात् तत्त्वमुद्रा इत्येव ।
अतिसूक्ष्माङ्गुष्ठेषु संयोज्य प्रतिष्ठानी ॥
सम्भावयेदिमारुढा चैव आवाहनी मता ।
उच्चाङ्गुलिभुजयो सम्मुखीकरणी मता ॥"

(पूजाप्रदीप०)

इस पञ्चमुद्रा द्वारा देवताओंका आवाहन करना चाहिए। तन्त्रमतमें योनि प्रभृति मुद्राएँ पञ्चका नाम पञ्चमुद्रा है। (तन्त्रसार)

पञ्चमुष्टिक (सं० पु०) १ मांसिकज्वरमें देय ओषधविशेष एक ओषध जो मंड तैयार करके दिया जाता है। जौ, बदरीफल, कुलथी, मूंग और आमलक इन पाँच प्रकारके द्रव्य एक एक मुट्ठी ले कर इनका चौगुने जलमें पाक करते हैं। यह यूष गुल्म, शूल, श्वास, कास, क्षय और ज्वरनाशक माना गया है। २ सोनेके तोलेका चौथा भागका मान।

पञ्चमूत्र (सं० क्ली०) पञ्चविधं मूत्रम्। गौ, बकरी, भेड़, भैंसी और गदहीके इन पाँच जन्तुओंका मूत्र।

पञ्चमूल (सं० क्ली०) पञ्चप्रकारम् पञ्चगुणितं वा मूलम्। पाचनविशेष। पाँच द्रव्योंके मूलसे यह पाचन बनता है, इसीसे इसे पञ्चमूल कहते हैं। यह पञ्चमूल पाचन बृहत्, स्वल्प, तृण, जलाशयमें जीवन, बला, गोक्षुर, गुडूची प्रभृतिके भेदसे नाना प्रकारका है। यथाक्रम इन सब पाचनोंका विषय लिखा जाता है।

बृहत् पञ्चमूल—बिल्व, श्योनाक, गाम्भारी पाटला और अग्निमन्थ इन पाँच द्रव्योंके मूलसे जो पाचन बनता है, उसे बृहत् पञ्चमूल कहते हैं।

स्वल्प पञ्चमूल—शालपर्णी पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारिका और गोक्षुर, इन पाँच द्रव्योंका मूल। यह वातरोगनाशक और बलकर अग्निसन्दीपक माना गया है।

तृणपञ्चमूल—कुश, काश, शर, इक्षु और दर्भ इन पाँच प्रकारके मूलोंका नाम तृणपञ्चमूल है।

शतावर्य्यादिपञ्चमूल-शतावरी विदारीकन्द जीवन्ती, जीवनी और मोचरस इन पञ्चविध द्रव्योंके मूलसे यह पाचन बनता है। इसका गुण स्तन्यकर, गुरु, रक्त और शोणित स्थापक और अग्निवृद्धिकर है।

जीवकादि पञ्चमूल—जीवक, ऋषभ मेदा महा मेदा और जीवन्ती इन पाँच प्रकारके द्रव्योंका मूल। गुण—इसका रस शीतल, वातपित्तघ्न, दाह, पित्त ज्वर और तृष्णानाशक।

बलादिपञ्चमूल—बला, पुनर्नवा, एरण्ड, मुद्गपर्णी और माषपर्णी इन पाँच प्रकारके द्रव्योंका मूल। गुण—स्निग्ध शोथ और ज्वरनाशक।

गोक्षुरादिपञ्चमूल—गोक्षुर, बदरी, इन्द्रवारुणी, कासमर्द और सर्पगन्धा मूल।

गुडूच्यादिपञ्चमूल—गुडूची, मेषशृङ्गी, सारिवा, विदारि और हरिद्रा इन पाँचोंका मूल।

जम्बीरपञ्चमूल—अश्मन्त बिल्वपत्र, बृहती गन्धा कण्टी और श्वेतपर्णी, इन पाँच द्रव्योंका मूल। पञ्चमूलके और भी भेद हैं।

पञ्चमूत्रमृत्तिका (सं० स्त्री०) १ पैत्तिक सन्निपातज्वरको

गोक्षुरविशेष। यह गोमोकटसरैया, वंशपमारो, कचूर, सोना, गुलचके मेलसे बनती है। इसमें स्वल्पपंचमूल मिलानेसे बृहिका-दशमूल बनता है। २ मूलपंचक, पांच मूलोंका समाहार।

पञ्चमूली (सं० स्त्री०) पंचानां मूलानां समाहारः (द्विगो। पा ४।१।२१) इति ङीप्। स्वल्पपंचमूल-पाचन।

पञ्चमूलादि (सं० क्ली०) १ पाचनभेद। पंचमूली, बला, बेलसोंठ, धनिया, नीलोत्पल और कचूर इन सब द्रव्योंका क्वाथ पीनेसे वातातिसार नष्ट होता है। २ चक्रदत्तोक्त पाचनभेद, स्वल्प और बृहत्के भेदसे यह दो प्रकारका है।

स्वल्पपञ्चमूलादि—शालपर्णी, पिठवन, बृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, बला, बेलसोंठ, गुलञ्च, मोथा, सोंठ, आकनादि, चिरायता, बाला, कटजकी छाल और इन्द्रयव कुल मिला कर २ तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला। इससे सब प्रकारके अतीसार, ज्वर और वमि आदि उपद्रव नष्ट होते हैं।

बृहत् पञ्चमूलादि—बिल्व, श्योनाक (सोनापाठा), गाम्भारी, पदार, गनियारी, सोंठ, पाणिफलपत्र, मोथा, धातक, दाड़िमपत्र, विजबन्दकी जड़, बाला, गुलंच, आकनादि, बेलसोंठ, बराहक्रान्ता, कटजकी छाल, इन्द्रयव, धनिया, धवका फूल, कुल मिला कर २ तोला; जल ३२ तोला, शेष ८ तोला; प्रक्षेप अतीसका चूर्ण २ माशा, शोंगचूर्ण २ माशा। इसके सेवन करनेसे सब प्रकारके अतीसार रोग जाते रहते हैं।

वैद्यकमें स्वल्प पंचमूलादि और वातश्लेष्मज्वराधिकारमें बृहत्पंचमूलादि व्यवस्थित है।

पञ्चमेश (सं० पु०) फलित ज्योतिषके अनुसार पांचवें घर-का स्वामी।

पञ्चयमा (सं० स्त्री०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

पञ्च[illegible] (सं० पु०) पंचविधाः दशाः। ग्रहस्पष्टकर्मोक्त पांच प्रकारका दशाविशेष। पञ्चस्वरदशा देखो।

पञ्चयाम (सं० पु०) पञ्च यामा यत्र। १ दिवस, दिन।

"त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टये।
नाड़ीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते॥"

(आह्निकतत्त्व)

शास्त्रोंमें पांच पहरका दिन और तीन पहरकी रात मानी गई है। रातके पहले चार दण्ड और पिछले चार दण्ड दिनमें लिए गए हैं। २ तदभिमानी देवताभेद।

"विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम्।
पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु॥"

(भागवत ६।६।१५)

पञ्चयुग (सं० क्ली०) पंचभिः पंचभिः युगम्। इन्द्रादि पांच पांच वर्ष द्वारा द्वादश वर्षात्मक षष्टिसंवत्सर।

पञ्चरक्तक (सं० पु०) पत्रपोड़वृक्ष, पत्रोडेका पेड़।

पञ्चरत्न (सं० क्ली०) पञ्चानां रत्नानां समाहारः वा पंचविधं पंचगुणितं रत्नं। १ पांच प्रकारके रत्न। कुछ लोग सोना, हीरा, नीलम, लाल और मोतीको पञ्चरत्न मानते हैं और कुछ लोग मोती, मूंगा, वैक्रान्त, हीरा और पन्नाको।

"कनकं हीरकं नीलं पद्मरागञ्च मौक्तिकम्।
पंचरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः॥
रत्नानांचाप्यभावे तु स्वर्णं कर्षार्द्धमेव वा।
सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं ज्ञेयं विचक्षणैः॥" हेमाद्रि)

इस पंचरत्नके अभावमें कर्षार्द्ध परिमाण सुवर्ण और उसके अभावमें आज्य ग्रहणीय है, यही पण्डितोंका मत है। विधानपारिजातके मतसे पञ्चरत्न नीलक, वज्रक, पद्मराग, मौक्तिक और प्रवाल है।

"नीलकं वज्रकञ्चेति पद्मरागश्च मौक्तिकम्।
प्रवालं चेति विज्ञेयं पञ्चरत्नं मनीषिभिः॥"

(विधानपारि०)

हेमाद्रिकव्रतखण्डमें लिखा है—

"सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्त्तं प्रवालकम्।
रत्नपंचकमाख्यातम्" (हेमाद्रिव्रतख०)

सुवर्ण, रजत, मुक्ता, राजावर्त्त और प्रवाल यही पञ्चरत्न है। पञ्चरत्नानीव उपदेशकत्वात् यत्र। २ नीति-गर्भ कवितापंचक।

"नाग. पोतस्तथा चैव शान्तिशतकयो यथाक्रमम्।
पंचरत्नमिदं प्रोक्तं विदुषाऽपि सुदुर्लभम्॥" (काव्यस०)

३ कामरूपके अन्तर्गत 'योगीगुफा'के सन्निकटस्थ नदीतीरवर्त्ती एक पर्वत। (क्ली०)४ पञ्चचूड़ देवदारु-विशेष।

पञ्चरश्मि (स॰ पु॰) पञ्च पञ्चवर्णा रश्मयो यस्य। पिङ्गलादि पञ्चवर्ण रश्मियुक्त, सूर्य। सूर्यकी किरणमें पिङ्गलादि पांच वर्ण हैं, इसीसे पञ्चरश्मि शब्दसे सूर्यका बोध होता है छान्दोग्य उपनिषद्‌में यह प्रतिपादित हुआ है। यथा— सूर्यरश्मिमें पिङ्गल, शुक्ल, नील, पीत और लोहित ये पांच वर्ण हैं।

पञ्चरसमोल (स॰ स्त्री॰) मसमोल।

पञ्चरसा (स॰ स्त्री॰) पञ्चविधाश्चरसा रसा यस्याम्। १ आमलकी, आंवला। २ हरीतकी वृक्ष।

पञ्चराजादिकाथ (स॰ स्त्री॰) रास्ना, गुलञ्च, एरण्ड, कचूर और एरण्डमूलका काढ़ा। यह आमवातनाशक माना गया है।

पञ्चरात्रिक (स॰ पु॰) पटोलपता, परवलको लता।

पञ्चरात्र (स॰ क्ली॰) पञ्चानां रात्रीणां समाहारः समाहारे अच्। १ रात्रिय पक्ष, पांच रातोंका समय।

"विरात्र पञ्चरात्र वा दशरात्रमथापि वा॥

(मार्कण्डेय)

२ पञ्चरात्रसाध्य अहीनयागभेद, एक यज्ञ जो पांच रातमें होता था। ३ वैष्णवशास्त्रभेद वैष्णव धर्मका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ। इस शास्त्रका नाम पञ्चरात्र पड़नेका कारण नारदपञ्चरात्रमें इस प्रकार लिखा है—

'रात्रञ्च ज्ञानवचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्।

तेनेदं पञ्चरात्रञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः॥" (११२ अ॰)

रात्रका अर्थ ज्ञानसम्बन्ध है, यह ज्ञान पांच प्रकारका है, इसीसे इसका नाम पञ्चरात्र पड़ा है।

पञ्चरात्र मतावलम्बीगण पञ्चरात्र का भागवत नाम से प्रसिद्ध हैं।

पञ्चरात्रमत अति प्राचीन है। बहुतोंका विश्वास है, कि पञ्चरात्र वा सात्वतमतसे ही आदि वैष्णवधर्म निकला है। वासुदेवादि चतुर्व्यूह, प्रेम और भक्ति इस मतका प्रधान तत्त्व है।

महाभारतके मोक्षधर्ममें सांख्य योग पाशुपत, वेद आदिके साथ पञ्चरात्रमतका उल्लेख मिलता है।

(मोक्षधर्म ३४० अ॰)

भारतमें लिखा है "पुराकालमें उपरिचर (वसु) नामक हरिमेधिपरायण परम धार्मिक एक राजा रहते थे। वही राजा सबसे पहले सूर्यमुखनिःसृत पञ्चरात्रशास्त्रका अवलम्बन करते हुए विष्णुकी अर्चना करके अन्तमें पितरोंकी पूजा करते थे। वे पञ्चरात्रशास्त्रका मत मान कर नित्यकार्य और नैमित्तिक यज्ञीय सभी कार्य किया करते थे। उनके भवनमें पञ्चरात्रवित् प्रधान प्रधान ब्राह्मणगण शास्त्रनिर्दिष्ट भोज्यद्रव्य प्रीतिपूर्वक सबसे पहले भोजन करते थे। (मोक्षधर्म ३३६ अ॰)

पञ्चरात्रकी उत्पत्ति और मुख्य विषयके सम्बन्धमें महाभारतमें दूसरी जगह लिखा है—"कुरु पाण्डवकी लड़ाईमें जब महावीर अर्जुन युद्ध हो पड़े, तब महात्मा मधुसूदनने उन्हें जो ऐकान्तिक धर्म (गीताधर्म)-का उपदेश दिया था वह सबको विदित है। यह धर्म अति दुर्ज्ञेय है, मूढ़ व्यक्ति उसे नहीं जान सकते। सत्ययुगमें भगवान् नारायणने इस सामवेदसम्मत ऐका-न्तिक धर्मकी सृष्टि की, तभीसे ये इसे धारण किये हुए हैं। पहले धर्मपरायण महाराज युधिष्ठिरने जब वासुदेव और भीष्मके सामने नारदको धर्मविषय पूछा, तब उन्होंने उन्हें जो कहा था उसे वैशम्पायनने वैशम्पायनके निकट वर्णन किया।

'ब्रह्मा नारायणकी इच्छानुसार जब उनके मुखसे निकले, तब उन्होंने आत्मज्ञान धर्मका अवलम्बन कर देवों और पितरोंकी आराधना की थी। पीछे फेनप नामक महर्षिगण उस धर्मके अनुवर्ती हुए। बादमें वैखानस नामक महर्षियोंने फेनपोंसे यह धर्म ले कर चन्द्रमाको प्रदान किया। इसके बाद यह धर्म अन्तर्हित हो गया। फिर ब्रह्माने नारायणके चक्षुसे द्वितीय बार जन्म ले कर चन्द्रमासे यह धर्म ग्रहण किया और रुद्रदेवको दे दिया। रुद्रदेवसे बालखिल्योंने इसे प्राप्त किया। पीछे यह सनातन धर्म नारायणके मायाप्रभावसे पुनः तिरो-हित हो गया। अनन्तर ब्रह्माने नारायणके वाक्यसे तृतीय बार जन्म ले कर फिरसे उस धर्मका आविष्कार किया। महर्षि सुपर्ण तपस्या नियम और दमगुणके प्रभाव द्वारा नारायणसे यह धर्म पा कर प्रति दिन तीन बार करके उसका पाठ करने लगे। उस धर्मका त्रिसौपर्ण नाम पड़नेका यही कारण है। तदनन्तर वायुने सुपर्णसे, पीछे महर्षि वर्गने वायुसे और अन्तमें समुद्रने महर्षियोंसे

इसे पाया। बादमें वह फिरसे नारायणमें विलीन हो गया। इस बार ब्रह्माने नारायणके कानसे पुनः जन्म ले कर आरण्यक वेदके साथ सरहस्य उस श्रेष्ठ धर्मको प्राप्त किया। पीछे उन्होंने स्वारोचिष मनुको, स्वारोचिष मनुने अपने लड़के शङ्खपदको और शङ्खपदने पुनः दिक्पाल सुवर्णाभको प्रदान किया। त्रेतायुगमें वह धर्म अन्तर्हित हुआ था। इस बार ब्रह्माने जब नारायणकी नासिकासे जन्म लिया, तब नारायणने उसे ब्रह्माको, ब्रह्माने सनत्कुमारको, सनत्कुमारने प्रजापति वीरण-को वीरणने अपने लड़के रैभ्यको और रैभ्यने दिक्पति कुक्षिको वह धर्म अर्पण किया। अन्तमें वह धर्म पुनः अन्तर्हित हो गया।

इसके बाद ब्रह्माने अण्डसे जन्म ले कर नारायणके मुखसे पुनः उस धर्मको पाया। पीछे ब्रह्माने वर्हिषदों को, वर्हिषदोंने ज्येष्ठ नामक एक सामवेदपारदर्शी ब्राह्मणको और ज्येष्ठने महाराज अविकम्पनको यह धर्म सिखलाया था। अन्तमें वह सनातनधर्म तिरोहित हो गया। पश्चात् ब्रह्माने जब सातवीं बार नारायणकी नाभिसे जन्म लिया, तब नारायणने उनके सामने यह धर्म गाया। पीछे ब्रह्माने दक्षको, दक्षने अपने बड़े लड़के आदित्यको, आदित्यने विवस्वान्‌को, विवस्वान्‌ने मनुको और मनुने पुत्र इक्ष्वाकुको वह धर्म अर्पण किया। तभी से ले कर आज तक वही धर्म चला आ रहा है। प्रलय-काल उपस्थित होने पर वह पुनः भगवान्‌में लीन हो जायगा। हरिगीता (भगवद्गीता)-के यतिधर्मप्रसङ्गमें वह धर्म कीर्त्तित हुआ है। देवर्षि नारदने नारायणसे वह ऐकान्तिक धर्म प्राप्त किया। वह सनातन सत्य धर्म जो सबो ॰ आदि, दुर्ज्ञेय और दुरनुष्ठेय है। किन्तु संन्यास धर्मावलम्बी ही उसका प्रतिपालन किया करते हैं। ऐकान्तिक धर्म और अहिंसाधर्मयुक्त सत्कर्मके प्रभावसे नारायण प्रसन्न होते हैं। उस महात्माको कोई तो केवल अनिरुद्धमूर्त्तिमें, कोई अनिरुद्ध और प्रद्युम्न-मूर्त्तिमें तथा कोई अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण और वासुदेव मूर्त्तिमें उपासना किया करते हैं। ये ममतापरि-शून्य, परिपूर्ण और आत्मस्वरूप हैं। इन्होंने पृथिव्यादि पञ्चभूतके गुणोंको अतिक्रम किया है। ये मन और पञ्च इन्द्रियस्वरूप हैं। ये त्रिलोकके नियन्ता, सृष्टि-कर्त्ता, अकर्त्ता, कार्य और कारण हैं। ये ही इच्छा-नुसार जगत्‌के साथ क्रीड़ा किया करते हैं।"

(मोक्षधर्म ३४८ अध्याय)

मोक्षधर्मके अन्यस्थानमें लिखा है,—

"नरनारायणने नारदको सम्बोधन करके कहा, 'देवर्षि! तुमने श्वेतद्वीपमें भगवान् नारायणकी जो अनिरुद्ध मूर्त्तिमें देखा है, दूसरेकी बात तो दूर रहे, प्रजापति ब्रह्माको भी आज तक उनके दर्शन नहीं हुए हैं। तुम उनके नितान्त भक्त हो, इसी कारण उन्होंने तुम्हें अपनी मूर्त्ति दिखलाई है। वे परमात्मा जहां तपो-निमग्न हैं, वहां हम दोनोंको छोड़ तीसरे नहीं जा सकते। वे स्वयं जहां विराजित हैं, वहांकी प्रभा सहस्र सूर्य समान समुज्ज्वल है। उसी विश्वपतिसे क्षमागुण उत्पन्न हुआ था जिस क्षमागुणसे पृथ्वी भूषित है। रस उन्हीं सर्वलोकहितकर देवतासे उत्पन्न हो कर सलिलमें आश्रय किये हुए है। सूर्यरूपात्मक तेज लाभ करके प्रभाजाल फैला रहे हैं वायु उन्हीं पुरुषोत्तमसे समुत्पन्न स्पर्शगुण लाभ करके बह रही है। शब्दके उन्हींसे निकल कर आकाशमें आश्रय लेनेसे आकाश अन्य वस्तु द्वारा अनावृत रहता है। सर्व भूतगत मन उनसे समुत्पन्न हो कर चन्द्रमाको आश्रय किये हुए उन्हें प्रकाशशाली कर रहा है। तमोनाशक दिवाकर सभी लोकोंके द्वारस्वरूप हैं। मुमुक्षु व्यक्ति-गण सबसे पहले उस सूर्यमण्डलमें प्रवेश करते हैं। पीछे वे आदित्यसे दग्धदेह, अदृश्य और परमाणुस्वरूप हो कर उस सूर्यमण्डलके मध्य नारायणमें, नारायणसे निष्क्रान्त हो कर अनिरुद्धमें, पीछे मनःस्वरूप हो कर प्रद्युम्नमें, प्रद्युम्नसे निर्गत हो कर जीवसंज्ञक सङ्कर्षणमें और अन्तको सङ्कर्षणसे त्रिगुणहीन हो कर निर्गुणात्मक सबोंके अधिष्ठानभूत क्षेत्रज्ञ वासुदेवमें प्रवेश किया करते हैं।' (शान्तिपर्व मोक्षधर्म ३५ अ०)

महाभारतके श्रेष्ठधर्मकीर्त्तनप्रसङ्गमें वासुदेव सम्बन्धीय जो सब कथाएं लिखी हैं, वे ही पञ्चरात्रके प्रतिपाद्य विषय हैं। वासुदेवको परब्रह्मरूपमें स्वीकार करना ही पञ्चरात्रका उद्देश्य है।

पञ्चरात्रके प्रति प्राचीनत्वको स्थापनाके लिए महाभारतमें जो जो आख्यायिकायें वर्णित हुई हैं, सुधी विद्वद्गण उन्हें स्वीकार नहीं करते। महाभारतमें पञ्चरात्रका दूसरा नाम सात्वत धर्म बतलाया है (१)। वह चराचर इसी सात्वत विधिके (२) अनुसार धर्मानुष्ठान करते थे। फिर महाभारतमें ही लिखा है कि रणस्थलमें अर्जुनको युद्ध दिये वासुदेवने उस धर्मका प्रकाश किया था (३)। रामानुजस्वामीने 'सात्वत-संहिता' नामक एक पञ्चरात्रग्रन्थका उल्लेख किया है। भागवतमें श्रीकृष्ण सात्वतपति (९।११।११) और सात्वत पुरुष (१८।१२) नामसे अभिहित हुए हैं। भागवतमें लिखा है, कि सात्वतगण यादवोंकी एक शाखा (११।१४।११ ९।२४।१८) हैं, वे लोग वासुदेवको परब्रह्म समझ कर उनको अर्चना करते थे। भागवतमें सात्वतगण चतुर्व्यूह की हरिकी विशेष उपासना किये हैं वह पञ्चरात्रशास्त्रानुमोदित है। इन सब प्रमाणोंसे ज्ञात होता है कि वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने ही इस पञ्चरात्र वा भागवत-मतका प्रचार किया होगा। श्रीकृष्णके अनुरक्त सात्वतोंने ही सबसे पहले यह धर्ममत ग्रहण किया था इस कारण महाभारतादिमें इसे सात्वतधर्म बतलाया है। वासुदेवको भगवान् समझ कर भक्तावलम्बिगण उनकी पूजा करते थे इस कारण वे भागवत कहलाते थे अतएव इन्हें महाभाष्यमें उनका नाम पाया जाता है। पाञ्चरात्रगण वासुदेवको नारायण समझते थे। इसीसे पञ्चरात्रशास्त्रका नाम पञ्चरात्र आगम भी मानते हैं।

डाक्टर भण्डारकरने लिखा है—"वासुदेव सात्वत वा भोज एक प्रसिद्ध राजा थे। सम्भवतः उनको मृत्युके बाद वे सात्वतोंके निकट देवस्वरूप पूजित हुए होंगे और उनकी उपासनासे विशेष मत निकला होगा। धीरे धीरे सात्वतोंसे दूसरे दूसरे भारतवासियोंने यह मत ग्रहण किया। पहले जब इस मतकी सृष्टि हुई, तब वह उतना जटिल न था। बादमें यह परिपक्व हो कर पञ्चरात्रशास्त्रमें परिणत हुआ। इस समय नाना संहितादि रचे गये। इस वासुदेव धर्ममें परवर्त्ति-कालको विष्णु, नारायण, गोविन्द और कृष्णके नाम आये और उन्होंसे नाना प्रकारके आधुनिक वैष्णव धर्मोंकी सृष्टि हुई।"

पाञ्चरात्रमत वेदमूलक है वा नहीं, यह ले कर एक समय घोर आन्दोलन चल रहा था। शङ्कराचार्यने शारीरकभाष्यमें पञ्चरात्र मतको वेदविरुद्ध बतला कर उसका खण्डन इस प्रकार किया है।

"भागवत (पाञ्चरात्र)-गण समझते हैं कि भगवान् वासुदेव एक हैं वे निरञ्जन, ज्ञानवपुः और परमार्थ तत्त्व हैं। वे अपनेको चार प्रकारोंमें विभक्त करके प्रतिष्ठित हैं। वासुदेवव्यूह, सङ्कर्षणव्यूह, प्रद्युम्नव्यूह और अनिरुद्धव्यूह ये चार प्रकारके व्यूह उन्हींके स्वरूप हैं। वासुदेवका दूसरा नाम परमात्मा, सङ्कर्षणका जीव, प्रद्युम्नका मन और अनिरुद्धका दूसरा नाम अहङ्कार है। इन चार प्रकारके व्यूहोंमें वासुदेवव्यूह ही परा प्रकृति वा मूलकारण है, सङ्कर्षण आदि उन्होंसे समुत्पन्न हुए हैं। उनसे सङ्कर्षणादि उसी पराप्रकृतिका कार्य है। सौ वर्ष तक काय तथा वाक्यमनोवाक्यसे भगवद्भजन, पूजाद्रव्यादि आहरण, पूजा, अष्टाचारादि मन्त्रका जप और योगसाधनमें रत रहनेसे निष्पाप होता है। भागवतगण जो कहते हैं कि नारायण प्रकृतिसे अतिरिक्त, परमात्मा नामसे प्रसिद्ध और सर्वात्मा हैं सो श्रुतिविरुद्ध नहीं है तथा वे जो अपनेको अनेक प्रकारों वा व्यूहोंमें अवस्थित बतलाते हैं, सो भागवतमतका यह

(१) "एष ते विहितो धर्मः सात्वतो यो महायशः।"
(१२।३४८।३४)

"कुर्वन्ति पूजनं सर्वे सात्वतैर्विधिवत् सदा।"
(१२।३३६।५२)

(२) "सात्वतं विधिमास्थाय प्राक् सूर्यमुखनिःसृतम्।
पूजयामास देवेशं तच्छेषेण पितामहान्॥"
(१२।३३५।१९)

(३) "एवमेव महान् धर्मः स ते पूर्वं नृपोत्तम।
कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः॥"
(१२।३४८।११)

"समुपोढेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवयोर्मृधे।
अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम्॥" (१२।३४८।८)

अंश निराकरणीय नहीं है अर्थात् श्रुतिसङ्गत है। केवल परमात्मा 'एक प्रकारके होते और अनेक प्रकारके भी होते' इत्यादि श्रुतिमें परमात्माके बहुभावमें अवधान कहा गया है। 'निरन्तर अनन्यचित्त हो कर अभिगमनादिरूप आराधनामें तत्पर होना होगा' यह अंश भी विरुद्ध नहीं है। क्योंकि श्रुति-स्मृति दोनोंमें ही ईश्वरप्रणिधानका विधान है। वे लोग कहते हैं, 'वासुदेवसे सङ्कर्षणका, सङ्कर्षणसे प्रद्युम्नका और प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका जन्म होता है।' इस अंशके निराकरणके लिए यह वेदान्तसूत्र कहा गया। सूत्रका अर्थ यह है 'अनित्यत्वादि दोष प्रयुक्त होता है, इस कारण वासुदेवसंज्ञक परमात्मासे सङ्कर्षणसंज्ञक जीवकी उत्पत्ति असम्भव है।' जीवकी यदि उत्पत्तिमान् मान लें, तो उसमें अनित्यादि दोष रहेगा ही। जीव यदि अनित्य अर्थात् नश्वरस्वभावका हो, तो उसे भगवत्प्राप्तिरूप मोक्ष हो ही नहीं सकता। कारणके विनाशमें कार्यका विनाश अवश्यम्भावी है। आचार्य व्यासने जीवकी उत्पत्ति (२।३।७) सूत्रमें यह निषेध नहीं किया है। अतएव भागवतोंकी यह कल्पना असङ्गत है।

वह कल्पना जो असङ्गत है, उसके लिए हेतु भी है। क्योंकि लोक-मध्य देवदत्तादि भी कर्त्तासे दात्रादि करणकी उत्पत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। अथच भागवतोंने वर्णन किया है, कि सङ्कर्षण नामक कर्त्ता, प्रद्युम्न नामक करण मनको उत्पादन करते हैं। फिर कोई कर्तृजन्मा प्रद्युम्न (मनु)-से अनिरुद्ध (अहङ्कार)-की उत्पत्ति बतलाते हैं। भागवतोंकी इन सब कथाओंको हम लोग बिना दृष्टान्तके ग्रहण और मान नहीं सकते। उस तत्त्वका अवबोधक श्रुतिवाक्य भी नहीं है।

भागवतोंका ऐसा अभिप्राय हो सकता है कि उक्त सङ्कर्षणादि जीवभावान्वित नहीं हैं। ये सभी ईश्वर हैं, सभी ज्ञानशक्ति और ऐश्वर्यशक्ति, बल, वीर्य तथा तेजसम्पन्न हैं, सभी वासुदेव हैं, सभी निर्दोष, निरधिष्ठित और निरवद्य हैं। सुतरां उनके सम्बन्धमें उत्पत्ति-असम्भव-दोष नहीं है, यह पहले ही कहा जा चुका है। उक्त अभिप्राय रहते भी उत्पत्ति-असम्भव-दोष आ जाता है, सो क्यों? कारण यों है—वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये परस्पर भिन्न हैं, एकात्मक नहीं है, अथच सभी समधर्मी और ईश्वर हैं, इस प्रकार अभिप्रेत होनेसे अनेक ईश्वर स्वीकार किए जा सकते हैं। किन्तु अनेक ईश्वर स्वीकार करना वृथा है। क्योंकि एक ईश्वर स्वीकार करनेसे ही कार्यसिद्धि हो सकती है। फिर भगवान् वासुदेव एक अर्थात् अद्वितीय और परमार्थतत्त्व हैं, इस प्रकार प्रतिज्ञा रहनेसे सिद्धान्तहानिदोष लगता है। ये चतुर्व्यूह भगवान्के ही हैं तथा वे सभी समधर्मी हैं, ऐसा होने पर भी उत्पत्ति-असम्भव-दोष रह जाता है। कारण छोटा बड़ा नहीं होनेसे वासुदेवसे सङ्कर्षणका, सङ्कर्षणसे प्रद्युम्नका और प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका जन्म नहीं हो सकता। कार्यकारणके मध्य अतिशय अर्थात् छोटा बड़ा रहना ही नियम है, जैसे मट्टी और घड़ा। अतिशय नहीं रहनेसे कौन कार्य और कौन कारण है, उसका निर्देश नहीं किया जा सकता। फिर भी देखो, पञ्चरात्रसिद्धान्तीगण वासुदेवादिका ज्ञानैश्वर्यादि तारतम्यकृत भेद नहीं मानते, बल्कि चारों व्यूहोंको अन्तमें वासुदेव मानते हैं। भगवान्के व्यूह चार ही संख्यामें पर्याप्त हैं, सो नहीं। ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त समस्त जगत् भगवान्-व्यूह है, यह श्रुति और स्मृतिमें दिखलाया गया है।

भागवतों (पंचरात्रादि)-के शास्त्रमें गुण, गुणिभाव आदि नाना विरुद्ध कल्पनायें देखी जाती हैं। स्वयं ही गुण और स्वयं ही गुणी हैं, यह अवश्य ही विरुद्ध है। भागवतोंका कहना है कि ज्ञानशक्ति, ऐश्वर्यशक्ति, बल, वीर्य, तेज ये सब गुण हैं और प्रद्युम्नादि भिन्न होने पर भी आत्मा भगवान् वासुदेव है और भी उनके शास्त्रमें वेदनिन्दा भी की गई है। यथा—

"शाण्डिल्यने चारों वेदमें परम श्रेयः न पा कर अन्तमें यह शास्त्र प्राप्त किया था इत्यादि। इन सब कारणोंसे भागवतोंकी उक्त कल्पना असङ्गत और असिद्ध है।" (१)

(१) आनन्दगिरिके शंकरदिग्विजयके ८वें प्रकरणमें 'पञ्चरात्र निराकरण प्रसंग है।

शङ्कराचार्यने पञ्चरात्रमतका खण्डन कर उसका जो अप्रमाण किया है, पञ्चरात्र मतावलम्बी रामानुज और मध्वाचारी आदि उसे अप्रमोचीन मानते हैं। परम वैष्णव रामानुजाचार्यने अपनी मीमांसामें पूर्वपक्षके जैसा उपरोक्त शङ्कराचार्यको युक्तियोंका उद्धार कर जिस प्रकार उसका निराकरण किया है, उससे पढ़नेसे पञ्चरात्रमतके सम्बन्धमें बहुत कुछ जाना जा सकता है। रामानुजका मत नीचे उद्धृत किया गया है—

'कपिलादि शास्त्रकी तरह भगवदुक्त पाञ्चरात्रशासन पञ्चरात्रशास्त्रका भी कोई कोई अश्रुतिमूलक कह शङ्कराचार्यने अप्रामाण्य निराकरण हुआ है। उस पञ्च-रात्रशास्त्रमें यह भागवत प्रक्रिया दी गई है कि परम कारण ब्रह्मस्वरूप वासुदेवसे सङ्कर्षण नामक जीवकी उत्पत्ति, सङ्कर्षणसे प्रद्युम्न नामक मनकी उत्पत्ति और मनसे अनिरुद्ध नाम अहङ्कारकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु यहां जीवकी उत्पत्ति नहीं बतलाई जा सकती; क्योंकि वह श्रुतिविरुद्ध अर्थात् अश्रुतिमूलक है। 'ज्ञान स्वरूप जीव कभी नहीं जनमता और न कभी मरता ही है' इस वाक्य द्वारा सभी श्रुतियोंमें जीवको अजा नित्य अर्थात् उत्पत्तिरहित कहा है। सङ्कर्षणसे प्रद्युम्न संज्ञक मनकी उत्पत्ति बतलाई गई है। यहां पर कर्त्ता जीवसे करण मनका उत्पत्तिसम्भव नहीं। कारण परमात्मासे ही प्राण, मन और सभी इन्द्रिय उत्पन्न हुई हैं, श्रुतिमें भी यही कहा है। अतएव यदि जीव सङ्कर्षण-से करण मनकी उत्पत्ति हुई, तो परमात्मासे जो उत्पत्ति कही गई है श्रुतिसे उसका विरोध होता है। अतएव यह शास्त्र श्रुतिविरुद्ध अर्थका प्रतिपादन करता है इस कारण इसका प्रामाण्य प्रतिषिद्ध होता है। 'वा' शब्द द्वारा वे पक्षका मैं परोक्ष अनुमान करके कहते हैं, कि ब्रह्मविज्ञानादि सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध उनका परब्रह्मभाव विद्यमान रहनेसे उत्पत्तिप्रतिपादक शास्त्रका प्रामाण्य प्रतिषिद्ध नहीं हो सकता अर्थात् वे सङ्कर्षणादि साधारण जीवकी तरह अभिप्रेत नहीं हैं, वे सभी ईश्वर हैं, सभी ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि ऐश्वर्य धर्मोंसे युक्त हैं। अतएव वह आदि-शास्त्रका मत अप्रमाणित नहीं है। 'जीवोत्पत्तिविरुद्ध अभिहित हुआ है जो भागवतप्रक्रियामें अभिमत है वह सभी भी उचित हो सकती है। भागवतप्रक्रिया इस प्रकार है कि जो स्वाश्रितवत्सल वासुदेवाख्य परब्रह्म हैं जैसा अभिमत है, वे अपनी इच्छानुसार आश्रित और सब भक्तोंपरायणता चार प्रकारसे अवस्थान करते हैं। पौष्करसंहितामें इस प्रकार लिखा है कि ब्राह्मण आम्नायोंसे कर्त्तव्यतावेतु स्वनाम द्वारा ब्रह्म चातु रात्म्य उपासित होता है, वही शास्त्र है।' यह चातुरात्म्य उपासना जो वासुदेवाख्य परब्रह्मको ही उपासना मानी गई है वह सात्वतसंहितामें भी उक्त हुआ है। वासुदेवाख्य परब्रह्म, सम्पूर्ण, षाड्गुण्य वपु सूक्ष्म व्यूह और विभव से सब भिन्न भिन्न हैं और अधिकारानुसार भक्तोंसे ज्ञानपूर्वक कर्म द्वारा अर्चित हो कर सम्यक्रूपसे लब्ध हुआ करता है। विभवार्चनसे व्यूहप्राप्ति और व्यूहार्चनसे वासुदेवाख्य सूक्ष्म परम-ब्रह्म प्राप्त हुआ करता है। विभव अर्थात् राम आदि प्रादुर्भावसमूह, सूक्ष्म अर्थात् केवलमात्र षाड्गुण्यविग्रह, व्यूह अर्थात् वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध रूप चतुर्व्यूह है। पौष्करसंहितामें लिखा है 'इस शास्त्रसे शास्त्रपूर्वक कर्म द्वारा वासुदेवाख्य अव्यय पर-ब्रह्म प्राप्त हुआ करता है।' अतएव सङ्कर्षणादिका भी परब्रह्मत्व सिद्ध हुआ। कारण वे भी स्वेच्छानुसार विग्रह धारण करते हैं। उत्पत्तिविषयक न जन्मे बहुरूपोऽ जन्म लेते हैं, यह श्रुतिसिद्ध और सम्प्रदायागत है। इस कारण ये स्वेच्छाधीन विग्रह धारण करनेके हेतु तद् विभावक शास्त्रका प्रामाण्य प्रतिषिद्ध नहीं है। इस शास्त्रमें सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये तीनों जीव, मन और अहङ्कार तत्त्वके अधिष्ठाता हैं इसीसे इन्हें जीवादि शब्दसे जो अभिहित किया गया है उसमें विरोध नहीं है। जिस प्रकार आकाश और प्राणादि शब्द द्वारा परब्रह्मका अभिधान हुआ करता है अर्थात् जिस प्रकार आकाश और प्राण परब्रह्मके स्वरूप नहीं होने पर भी आकाश और प्राण परब्रह्म माने जाते हैं उसी प्रकार जीव, मन और अहङ्कारतत्त्वके अधिष्ठाता सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूपसे अभिहित हुए हैं।

शास्त्रमें जीवोत्पत्ति प्रतिषिद्ध हुई है, कारण परम

संहितामें लिखा है, कि चेतनारहित, केवल परप्रयोजन-साधक, अथच नित्य, सर्वदा विक्रियायुक्त, त्रिगुण और कर्मियोंका क्षेत्र यही प्रकृतिका रूप है। इसके साथ साथ पुरुषका सम्बन्ध स्वामिरूपमें है, यह सम्बन्ध अनादि और अनन्त है, यह परमार्थ सत्य है। इस प्रकार सभी संहिताओंमें जीवको नित्य माना है, इस कारण उनकी उत्पत्ति पञ्चरात्रके मतमें प्रतिषिद्ध हुई है। जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। जीवको उत्पत्ति स्वीकार करनेसे उसका विनाश भी स्वीकार करना होगा। जीव जब नित्य है, तब नित्यत्व स्थिरीकृत होने पर उत्पत्ति आप ही आप प्रतिषिद्ध होगी। पहले परमसंहितामें लिखा है, कि प्रकृतिका रूप सतत विक्रियायुक्त है, उत्पत्ति विनाश आदि जो हैं उन्हें सततविक्रियाके मध्य अन्तर्निविष्ट जानना होगा। अतएव सङ्कर्षणादि जीवरूपमें उत्पन्न होते हैं, यह जो दोष शङ्कराचार्यने लगाया था सो निराकृत हुआ।

कोई कोई कहते हैं, कि 'शाण्डिल्य साङ्गवेदमें पराशक्ति न पा कर पञ्चरात्रशास्त्र अध्ययन करते हैं, इससे वेदकी निन्दा हुई। क्योंकि वे वेदमें पराशक्ति लाभ नहीं कर सकते, अतएव यह पञ्चरात्रशास्त्र वेदविरुद्ध है।' जो वेदविरुद्ध है, वह कभी भी ग्रहणीय नहीं है। इस कारण यह शास्त्र प्रामाण्य नहीं है। इसके उत्तरमें ये लोग कहते हैं, कि नारद और शाण्डिल्य ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और इतिहास पुराण आदि ये सभी विद्यास्थान होनेके कारण सर्वविद् और आत्मविद् थे। शाण्डिल्य वेदान्तवेद्य वासुदेवाख्य परब्रह्मतत्त्वसे अवगत हुए हैं। वेदका अर्थ अत्यन्त दुर्ज्ञेय है, इसीसे सुखावबोधके लिए इस शास्त्रका आरम्भ हुआ है परमसंहितामें इस प्रकार लिखा है,—

'हे भगवन्! मैंने साङ्गोपाङ्ग सभी वेद विस्तृतरूपसे अध्ययन किए हैं और वाक्ययुत वेदाङ्ग आदि भी सुने हैं, किन्तु इनमेंसे जिससे सिद्धि लाभ हो, ऐसा श्रेय पथ विना संशयके कहीं भी देखनेमें नहीं आता।' फिर भी लिखा है, 'निखिलविद्यावित् भगवान्‌ने हमलोगोंके प्रति दया दिखला कर सभी वेदान्तोंका यथासार संग्रह कर डाला है। अतएव उस निखिल हेयके विरोधस्वरूप और कल्याण, तदेकमात्र और अनन्त ज्ञानानन्दादि अपरिमित सद्गुणसागर वेदान्तवेद्य परब्रह्म हैं, उन्होंने अपरिमित कारुण्य सौशील्य वात्सल्य और औदार्यशाली भगवान्‌ने पहले स्वयं वासुदेवने चातुर्वर्ण्य और चातुराश्रम्य मर्यादामें अवस्थित भक्तोंको धर्म अर्थ, काम और मोक्षाख्य पुरुषार्थचतुष्टयमें उन्मुख देख तथा स्वस्वरूप, स्वविभूतिस्वरूप स्वस्वरूपप्राप्तिके आराधन और आराधनाके लिए फलके यथायथरूपसे, अपरिमित नाम समन्वित ऋग् यजु आदि चारों वेदोंको दुरवगाह समझ कर स्वयं उस वेद समुदायका यथायथ अर्थज्ञापक पञ्चरात्र नामक शास्त्र प्रणयन किया है, यह स्पष्टरूपसे प्रतीत होता है। पर हां, दूसरे दूसरे व्याख्यातागण किसी एक विरुद्धांशके सूत्रचतुष्टयको अप्रामाण्य समझ कर उसकी जो व्याख्या की है, वह सूत्राचार्यके अननुगुण और सूत्रकारका अभिप्रेत नहीं है। सूत्रकारने वेदान्ताभिधायि सूत्रोंका प्रणयन कर वेदोपबृंहणके निमित्त जो लक्षश्लोकी भारतसंहिताकी रचना की है, उसके मोक्षधर्मपर्वके ज्ञानकाण्डमें कहा है, कि गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और भिक्षुक, इनमेंसे यदि कोई व्यक्ति सिद्धि अवलम्बन करने की इच्छा करें, तो पहले उसे किसी देवताकी उपासना करनी चाहिये 'इससे आरम्भ कर प्रतिमहत् प्रबन्ध द्वारा उन्होंने पञ्चरात्र-शास्त्रको प्रक्रिया भी प्रतिपादन की है। इस प्रकार लिखा है कि 'यह शास्त्र अतिविस्तृत भारताख्य दधिसे मतिरूप मन्थन-दण्ड द्वारा दधिसे घृत और नवनीतकी तरह उद्धृत हुआ है। जिस प्रकार द्विपदोंके मध्य ब्राह्मण, निखिल वेदमें आरण्यक और औषधियोंमें अमृत श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी शास्त्रोंमें चतुर्वेदसमन्वित और पञ्चरात्रानुशब्दित यही शास्त्र श्रेष्ठ माना गया है। यह महोपनिषद् है, यह परमश्रेय है, यही परब्रह्म है और यही ऋक्, यजु, साम और आङ्गिरस द्वारा सम्वलित अनुत्तम हित है।' अथवा यही अनुशासन प्रमाणरूपमें ग्राह्य होगा। यहां सांख्ययोग शब्द द्वारा ज्ञानयोग और कर्मयोग निर्दिष्ट हुआ है।

वेदव्यासने भीष्मपर्वमें भी कहा है—'सात्वतविधि-

पञ्चरात्रकारों सङ्कर्षण द्वारा जो कीर्तित हुए हैं शाश्वत शिव, ब्रह्म और अनन्तरूप प्रभुको वहां माधवको अर्चना, सेवा और पूजा करनी चाहिए।'

अतएव जिन्होंने सात्वतशास्त्रको इस प्रकार श्रुति सम्मत और वेदसम्मत प्रतिपादन की है, वे वेदविद्‌श्रेष्ठ भगवान् बादरायण जिस प्रकार वेदमार्गीय पर ब्रह्मस्वरूप वासुदेव [illegible] सात्वतशास्त्रका अप्रामाण्य कहेंगे ?

फिर भी उन्होंने कहा है 'हे मुनि! सांख्य योग पञ्चरात्र वेद और पाशुपत इन सबका हम शास्त्रमें आदर है। शारीरकभाष्यमें भी शङ्कराचार्य प्रतिपन्न हुए हैं अतएव यह उनके समान है या नहीं ? उसमें भी उन्होंने शारीरकीय भाष्यको व्याख्याना की है। वे सब क्या एक निष्ठ हैं अथवा पृथक्‌निष्ठ ? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि — सांख्य योग पाशुपत, वेद और पञ्चरात्र ये सब क्या एकतत्त्वप्रतिपादनकारी हैं अथवा पृथक् पृथक् तत्त्वके प्रतिपादयिता ? अथवा ये जो एकतत्त्वका प्रतिपादन करेंगे, क्या वही तत्त्व है ? जिस समय पृथक् पृथक् तत्त्वको प्रतिपादयिता होंगी उस समय इन्हें परस्पर विरुद्ध अर्थको प्रतिपादकता और बहुविकल्पासम्भवके हेतु एकको प्रमाण स्वीकार्य होगा। यह प्रश्न उठा था ? इसका उत्तर लिखेंगे हे राघवें! इन सब ज्ञानोंको नानामत समझो। सांख्यका वक्ता कपिल हैं' इत्यादि रूपसे आरम्भ कर [illegible] हिरण्यगर्भ और अपान्तरतम [illegible] तथा पाशुपतका [illegible] प्रतिपादन कर वेदका [illegible] स्थापन किया है। [illegible] भिन्न भिन्न [illegible] सभी वस्तुएं [illegible] हैं और तन्मार्गाभिहित तत्त्वोंके [illegible] इत्यादि वाक्य द्वारा [illegible] नारायण ही निष्ठा हैं, वही [illegible] एक वेदान्तवेद्य [illegible]। इस पञ्चरात्रमें कहा है और वह तत्त्व भी तत्स्वरूप तथा तदुपासनाविधायक है। इसीलिए उस तत्त्वमें इनका तात्पर्य है। यदि कोई भी अप्रामाण्य नहीं कर सकता।

उसी तत्त्वमें निष्ठा है, कि सांख्य, योग, वेद और पाशुपत ये परस्पर भले ही [illegible] एक ही तत्त्वका प्रतिपादन करते हैं, इस कारण उसका पञ्चरात्र नाम रखा गया है।

भोक्ता, प्रकृति प्रतितत्त्व, अग्निहोत्रादि यज्ञ और वेदोक्त कर्मस्वरूप [illegible] [illegible] [illegible] योगको [illegible] वासना [illegible] और [illegible] परिहार कर जो एकमात्र ब्रह्मस्वरूपका प्रतिपादन किया है उस पञ्चरात्रतन्त्रमें भी परब्रह्म नारायणने स्वयं ही उन समुदायको विशदरूपसे अभिव्यक्त किया है। अतएव सांख्य योग पञ्चरात्र, वेद और पाशुपत ये आप्तप्रमाण हैं इस हेतु द्वारा खण्डन करना उचित नहीं। तत्त्व परिनिष्ठित [illegible] को ही अङ्गीकार करना विधेय है।

रामानुजके श्रीभाष्य मूलभाष्यकी टीकामें सुदर्शनाचार्यने [illegible] आलोचना द्वारा वराहपुराणादि नाना शास्त्रोंके प्रमाणादि उद्धृत करके पञ्चरात्रशास्त्रके प्रामाण्य स्थापनकी चेष्टा की है।

पाञ्चरात्रगण यजुर्वेदके वाजसनेय शाखानुसार संस्कार किया करते हैं। इनमेंसे किसी के [illegible] शाखानुसार संस्कारादि सम्पन्न होते हैं। पाञ्चरात्रोंका कहना है कि संसार बन्धनसे मुक्तिलाभ करनेके पाँच उपाय हैं। १म कायमनोवाक्य [illegible] देवमन्दिर मार्जन, प्रातःस्नान और [illegible] समयद्वारा [illegible]। २य भगवदाराधनाके लिए पुष्पचयन और पुष्पादि आयोजन। ३य भगवत्पूजा। ४र्थ भागवतशास्त्रपठन श्रवण और मनन तथा ५म सन्ध्या पूजा ध्यान और धारणा एवं भगवान्‌के ऊपर सम्पूर्ण निर्भरता। इस प्रकार क्रियायोग और ज्ञानयोग द्वारा वासुदेवलाभ होते हैं तथा उनके सान्निध्यलाभके साथ भक्तगण परमैश्वर्य [illegible] निर्वाण मुक्तिलाभ करते हैं।

नारदीय पञ्चरात्रमें — १ ब्राह्म, २ शैव, ३ कौमार, ४ वाशिष्ठ, ५ कापिल, ६ गौतमीय और ७ नारदीय इन सात प्रकारके पञ्चरात्रोंका उल्लेख है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके मतसे—पञ्चरात्र ५ हैं १ वाशिष्ठ २ नारदीय, ३ कापिल, ४ गौतमीय और ५ सनत्कुमा

रीय पंचरात्र। (ब्रह्मवै० जन्मख० १३२ अ०) रामानुजके ग्रोभाष्यमें सात्वतसंहिता, पौष्करसंहिता और परमसंहिता इन तीन पंचरात्रशास्त्रोंका प्रमाण मिलता है।

आनन्दगिरिकृत शङ्करविजयमें पंचरात्रागमटीचित माधवकी उक्ति और पंचरात्रागम नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ पाया जाता है। पंचरात्रमतावलम्बी वैष्णवगण गीता, भागवत, शाण्डिल्यसूत्र और इत्यादि ग्रन्थोंको अपना धर्मग्रन्थ मानते हैं।

एतद्भिन्न हयगीर्ष, पृथु, ध्रुव आदि कई एक पंचरात्र नामक ग्रन्थ पाये जाते हैं।

हयगीर्षके मतानुसार पचरात्र २५ हैं। यथा— १ हयगीर्ष, २ त्रैलोक्यमोहन, ३ वैभव, ४ पौष्कर, ५ नारदीय, ६ प्रह्लाद, ७ गार्ग्य, ८ गालव, ९ श्रीप्रश्न (लक्ष्मी), १० शाण्डिल्य, ११ ईश्वरसंहिता, १२ सात्वत, १३ वाशिष्ठ, १४ शौनक, १५ नारायणीय, १६ ज्ञान १७ स्वायम्भुव, १८ कापिल, १९ गारुड, २० आत्रेय, २१ नारसिंह, २२ आनन्द, २३ अरुण, २४ बोधायन और २५ विश्वामित्र।

ये २५ पंचरात्र छोड़ कर शिवोक्त और विष्णुप्रोक्त भागवत, पद्मपुराण, वाराहपुराण, सामान्यसंहिता, व्यासंहिता और परमसंहिता ये भी भागवतोंके शास्त्र समझे जाते हैं*।

उपरोक्त २५ पंचरात्रोंके मध्य श्री वा लक्ष्मीसंहिता (३३५० श्लोक), ज्ञानामृतसार (१४५० श्लोक), परमसंहिता वा परकागम (१२५०० श्लोक), पौष्करसंहिता (६३५०), पद्मसंहिता (९०००) और ब्रह्मसंहिता (४५००) ये छः नारदीय पंचरात्रके भी अन्तर्गत लिए गये हैं†।

* "तन्त्रं भागवतञ्चैव शिवोक्तं विष्णुभाषितम्।
पद्मोद्भवं पुराणहि वाराहं न तथा परम् ॥
इमे भागवतानान्तु तथा सामान्यसंहिता।
व्यासोक्ता संहिता चैव तथा परमसंहिता ॥
यदन्यत् मुनिभिर्गीतं एतेष्वेवाधितं हि तत् ॥"
(हयशीर्षप०)

† Dr. R. G Bhandarkar's Report of the Sanskrit Mss

पञ्चरात्रिक (सं० पु०) पंचरात्रमुपासनासाधनतयाऽस्त्यस्य ठन्। विष्णु।

पञ्चराशिक (सं० पु०) पञ्च राशयो यत्र कप्। लीलावती-उक्त पञ्चराशिकके अधिकारभेदमें गणितभेद। गणितमें एक प्रकारका हिसाब जिसमें चार ज्ञात राशियोंके द्वारा पांचवीं अज्ञात राशिका पता लगाया जाता है।

पञ्चरीक (सं० पु०) सङ्गीतशास्त्रके अनुसार एक ताल।

पञ्चरोहिणी (सं० स्त्री०) वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज रोग।

पञ्चल (सं० पु०) शकरकन्द।

पञ्चलक्षण (सं० क्ली०) सर्गादीनि पंचविधानि लक्षणानि यत्र। पुराणके पांच लक्षण जो ये हैं—सृष्टिकी उत्पत्ति, प्रलय, देवताओंकी उत्पत्ति और वंशपरम्परा, मन्वन्तर, मनुके वंशका विस्तार।

पञ्चलवण (सं० क्ली०) पंचानां लवणानां समाहारः वा पंचगुणितं लवणं। वैद्यकके अनुसार पांच प्रकारके लवण—कांच, सेंधा, सामुद्र, विट् और सोंचर। इसका गुण—मधुर, विस्मृवक्तत्, स्निग्ध, वलापह, वीर्यकर, उष्ण, दीपन, तीक्ष्ण, कफ और पित्तवर्द्धक।

पञ्चलाङ्गलक (सं० क्ली०) मुक्तादिविभूषितदशवृषयुक्तानि सारदारुनिर्मितानि पंचलाङ्गलकानि यस्मिन्। महादानभेद। मत्स्यपुराणमें इस दानका विषय इस प्रकार लिखा है—

"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम् ॥
पुण्यां तिथिं समासाद्य युगादिग्रहणादिकम्।
भूमिदानं ततो दद्यात् पञ्चलागलकान्वितम् ॥"
((२८७ अ०)

जो सब महादान कहे गये हैं, उनमें पंचलाङ्गलक एक है। यह दान महापातक नाशक माना गया है। शुभ तिथिको पुण्यकालमें संयतचित्त हो यह दान करना होता है। इस दानमें पांच लाङ्गल (हल) और दश वृष भूमिके साथ विशुद्ध ब्राह्मणको दान करनेका विधान है। वे पांचो हल उत्तम सारयुक्त काष्ठके बने हों तथा वृष उत्तमरूपसे स्वर्णादि द्वारा विभूषित हों। इस दानसे अशेष पुण्य प्राप्त होते तथा महापातकजन्यपाप जाते

रहती है। मत्स्यपुराणके २८० अध्यायमें और हेमाद्रिके दानखण्डमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

पञ्चलिङ्गकोष—मन्द्राजप्रदेशके बड़ापा जिलान्तर्गत एक नगर। यह तिरुपुर शोमान्तवर्त्ती भवानकोषका पर्वतके मध्य बसा हुआ है। यहांकी एक गुहामें ५ शिवमूर्त्ति आविष्कृत हुई हैं।

पञ्चलिङ्गाम—मन्द्राजके कर्नूल जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह तुङ्गभद्रानदीके उत्तर आलमपुरसे २। मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। यहांके पञ्चलिङ्गेश्वर मन्दिरमें एक प्राचीन शिलालिपि उत्कीर्ण है।

पञ्चलोकपाल (सं॰ पु॰) पञ्च च ते लोकपालाश्चेति समाहार कर्मधारय। पञ्चयज्ञाद्यङ्ग विनायकादि देवपञ्चक। विनायक दुर्गा वायु ओर दोनों अश्विनीकुमार ये पञ्च देवता पञ्चलोकपाल कहलाते हैं।

'विनायकं तथा दुर्गा वायुमाकाशमेव च।
अश्विनौ कमनं पञ्चलोकपालान् प्रपूजयेत्॥"
(तिथ्यादितत्त्व॰)

पञ्चलोह (सं॰ क्ली॰) पञ्च विलोहानि लोहम्। १ लोहादिक धातु। २ पञ्चविध लौहम्। २ पांच प्रकारका लोहा; सुवर्ण, रजत ताम्र, लोहक और रङ्ग इन पांच धातुओंको पञ्चलोह कहते हैं।

पञ्चलोहक (सं॰ क्ली॰) पञ्चानां लोहकानां धातूनां समाहार। पांच धातुएं—सोना चांदी, तांबा लोहा और रांगा।

'सुवर्णं रजतं ताम्रं बङ्गसीसं विलोहकम्।
धातुनागसमायुक्तं कथ्यते पञ्चलोहकम्॥"
(राजनि॰ व॰ १३)

वामदेवके मतमें सुवर्ण, रजत, ताम्र, त्रपु और अयस्कान्त यही पञ्चधातु पञ्चलोह है।

पञ्चलौह (सं॰ क्ली॰) पांच प्रकारका लोहा—कान्तलौह, मुण्डलौह, कान्तलौह, पिण्डलौह और क्रौञ्चलौह।

पञ्चवक—भारतवर्षके मध्यप्रदेशवासी हलवाई जाति।

पञ्चवक्त्र (सं॰ पु॰) पञ्च वक्त्राणि यस्य। १ शिव महादेव।

"विस्तारविस्तरोयं निखिलभवहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥"
(शिवध्यान)

इनके मन्त्रादिका विषय कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—

"तत्पुरुषाघोर सद्योजातानां तु कीर्त्तितैः। शिवाः पविन्तुध।
महादेवस्य... मानशेषाः...॥
पूर्णैः पञ्चाक्षरैमन्त्रैः पञ्चवक्त्रस्य कीर्त्तितम्।
...॥
...पञ्चवक्त्राः प्रकीर्त्तिताः।
पूर्वेणैव तथैव च ... पूजयेत्॥"
(कालिकापु॰ ५० अ॰)

महादेवके नमक, सन्दोह, माद, गोरव और प्रासाद ये पांच मन्त्र हैं, इन पांच मन्त्र द्वारा एक एक मुखको पूजा करनी होती है अथवा केवल प्रासादमन्त्रसे भी पूजा कर सकते हैं। पांच मन्त्रमें प्रासाद नामक मन्त्र श्रेष्ठ है। महादेवको प्रसन्नता लाभ करनेके कारण इस मन्त्रका नाम प्रासाद पड़ा है तथा महादेवके आनन्दप्रद होनेके कारण नन्ददमन्त्र, मनके अभिलाष पूरणके कारण सन्दोहमन्त्र, आकर्षक होनेके कारण माद और गुरु होनेके कारण गौरवमन्त्र नाम पड़ा है। महादेवके पांच मुखोंके नाम ये हैं—सद्योजात, वामदेव तत्पुरुष अघोर और ईशान। इन पांचों मुखोंमें सद्योजात शिव स्फटिकवर्ण, वामदेव पीतवर्ण अथच सौम्य और मनोरम अघोर नीलवर्ण भयङ्कर और दन्त (विशिष्ट) तत्पुरुष रक्तवर्ण देवमूर्त्ति और मनोरम तथा ईशान श्यामवर्ण और नित्य शिवरूप है। महादेवकी पञ्चमूर्त्ति का स्वरूप इसी प्रकार है। दक्षिण ओरके ५ हाथोंमें यथाक्रम शक्ति त्रिशूल, खट्वाङ्ग वर और अभय तथा वाम ओरके ५ हाथोंमें अक्षसूत्र नागसूत्र, सुमङ्ग, डमरू और उत्पल नामक पांच द्रव्य वर्त्तमान हैं। पूर्वोक्त नमकादि मन्त्र द्वारा महादेवकी पूजा करनेसे सब प्रकारकी सिद्धियां लाभ होतीं हैं और इस पञ्चवक्त्र शिवपूजामें ब्राह्मी माहेश्वरी, कौमारी वैष्णवी वाराही चामुण्डा और महालक्ष्मी इन अष्ट देवीको पूजा करनी होती है। २ सिंह। ३ पञ्चमुख रुद्राक्ष। यह पञ्चमुख रुद्राक्ष धारण करनेसे सब प्रकारके पाप कटते रहते हैं।

"पञ्चवक्त्र रुद्र हरः रात्रिर्निशापि नादतः।
आगत्यागमनाभेद उभयस्य न भक्षणात् ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पञ्चवक्त्रस्य धारणात् ॥"
(तिथितत्त्व)

पञ्चवक्त्ररस (सं॰ पु॰) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली गन्धक, पारद, सोहागेकी खोई, मिर्च और विष इन सब वस्तुओंको धतूरेके पत्तोंके रसमें एक दिन भिगो कर सुखा लेते हैं, पीछे २ रत्तीकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान अदरकका रस है। इसका सेवन करनेसे सान्निपातिकज्वर जाता रहता है। (भावप्र॰ ज्वराधिका॰)

पञ्चवट (सं॰ पु॰) पञ्चो विस्तीर्णो वटः। १ उपवीत। इसका पर्याय जोड़ि, ब्रह्मसूत्र और वामस्कन्धोपवीतक है। (त्रि॰) पञ्च वटा यत्र। २ पञ्चवटी वन।

पञ्चवटी (सं॰ स्त्री॰) पञ्चानां वटानां समाहारः, ङीप्। १ पांच प्रकारका वृक्ष अश्वत्थ, बिल्व, वट, धात्री और अशोक।

इस पञ्चवटीको यत्नपूर्वक पांच ओर लगाना चाहिये। इनमेंसे अश्वत्थको पूर्वकी ओर, बिल्वको उत्तर, वटको पश्चिम, आमलकीको दक्षिण और अशोकको अग्निकोणमें स्थापन कर पांच वर्ष बाद उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए। जो इस प्रकार पंचवटीकी स्थापना करते हैं, उनको अनन्त फल लाभ होते हैं। इस पंचवटीके मध्यस्थलमें चार हाथ परिमित वेदी बनानी पड़ती है। यह पंचवटी सामान्य पंचवटी है। इसके अलावा वृहत् पंचवटी भी है। वृहत्पंचवटी स्थापनका नियम इस प्रकार है—चारों ओर चार बिल्ववृक्ष और मध्यभागमें एक बिल्व, चारों कोनेमें ४ वटवृक्ष, २५ अशोक वर्त्तुलाकारमें और दिक्‌विदिक्‌में एक एक तथा चारों ओर अश्वत्थवृक्ष लगाना पड़ता है। इस नियमसे जो वृक्ष लगाया जाता है उसीको वृहत्पंचवटी कहते हैं। नियमपूर्वक जो इस वृहत् पंचवटीको स्थापना करता है, वह साक्षात् इन्द्रतुल्य है और इस लोकमें सर्वसिद्धि तथा परलोकमें परमगति प्राप्त होती है। प्रतिष्ठाविधिके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा करनी होती है। वृहत् पञ्चवटीके मध्यस्थलमें भी वेदिका बनानी पड़ती है। २ दण्डकारण्यस्थ वनविशेष। रामचन्द्रजी वनवासके समय इसी अरण्यमें रहे थे। यह स्थान गोदावरीके किनारे नासिकके पास है। लक्ष्मणने जहां सूर्पणखाकी नाक काटी थी, वहां रामचन्द्रजीका बनाया हुआ एक मन्दिर आज भी भग्नावस्थामें पड़ा है। सीता-हरण यहीं हुआ था। नासिक देखो।

पञ्चवदन (सं॰ पु॰) शिव, महादेव।

पञ्चबदरी—बदरीनाथतीर्थके अन्तर्गत तीर्थभेद। यहां बदरीनाथ मन्दिरके पास ही योगबदरी, ध्यानबदरी, वृद्धबदरी, आदिबदरी और भविष्यबदरी नामक और भी पांच मन्दिर हैं जो पंचबदरी नामसे प्रसिद्ध हैं। बदरीनाथमें नरनारायणमूर्त्ति, योगबदरीमें वासुदेव मूर्त्ति, ध्यानबदरीमें पुरुषोत्तम और कपिलेश्वर मूर्त्ति, वृद्धबदरीमें गौतम मुनिके सामने प्रतिष्ठित विष्णुमूर्त्ति और श्रीमानीके आदिबदरी तथा धौलीतीरवर्त्ती योशीमठमें भविष्य बदरी मन्दिर वर्त्तमान है। शेषोक्त दोनों मन्दिरोंमें विष्णु, गरुड़ और भगवतीको मूर्त्ति विराजमान है।

पञ्चवर्ग (सं॰ पु॰) पंचवर्गाः प्रहारा यत्र। १ पंचप्रहरणान्वित व्यायामभेद, पांच पहरमें होनेवाला एक यज्ञ। पंचानां चाराणां वर्गः। २ चारपंचक, पांच प्रकारके चर।

'कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गञ्च तत्त्वतः।
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥"
(मनु ७.१५४)

आय, व्यय, कर्मचारियोंके आचरण प्रभृति अष्टविध राजकर्मके प्रति और पंचविध चार अर्थात् कापटिक, उदास्थित, गृहपतिव्यञ्जन, वैदेहिकव्यञ्जन और तापसव्यञ्जन इनके प्रति राजाको दृष्टि रखना कर्त्तव्य है। पंचानां वर्गाणां समाहारः, ङीप्। ३ पंचवर्गी। ४ चेतक्षेत्रादि पंचक। यह पंचवर्गी बलानयनकी क्रियाविशेष है।

पञ्चवर्ण (सं॰ क्ली॰) पंचवर्णा यस्य। १ पंचवर्णान्वित तण्डुलचूर्ण। चावलको चूर कर उसमें पांच रंग मिलानेसे पंचवर्ण बनता है।

"रजांसि पञ्चवर्णानि मण्डलार्थं हि कारयेत्।
शालितण्डुलचूर्णेन शुक्लं वा यवसम्भवम् ॥

रक्तं कुङ्कुमसिन्दूरगैरिकादिसमुद्भवम् ।
हरितालोद्भवं पीतं शुक्लं शालकमुच्यते ॥
कृष्णं राजपट्टकैस्तु कुर्य्यात्तैरपि वा ।
इति विहितमात्यं पीतकृष्णसितैर्मिश्रितम् ॥"

(हेमाद्रि व्रतख०)

मण्डलमें लिखित पञ्चवर्णका चूर्ण। कहीं सर्वतो भद्रमण्डल पद्ममण्डलादि बनानेमें पञ्चवर्णके चूर्ण द्वारा मण्डल बनते हैं। तण्डुलका समचूर्ण करके उसमें श्वेत चूर्ण और तण्डुलचूर्णमें कुङ्कुम, सिन्दूर और गैरिकादि द्वारा रक्तवर्ण, तण्डुलचूर्णमें हरितालमिश्रित करके पीतवर्ण, हरिद्राक (कज्जलादि) मिश्रित करके कृष्णवर्ण और पीत तथा कृष्णवर्ण मिश्रित बिल्वपत्रीय हरित वर्णो पञ्चवर्ण हैं। पूजा प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें इस पञ्चवर्णका चूर्ण विशेष आवश्यक है। २ प्रणवके पांच वर्ण अर्थात् अ उ म नाद और बिन्दु। ३ नावालो। ४ वनभेद, एक जङ्गलका नाम। ५ पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम।

पञ्चवर्णक (सं० पु०) मुसूरदण्ड, मयूरक, पैड़।

पञ्चवर्णसुहिका (सं० स्त्री०) पञ्चवर्णका चूर्ण। पञ्चवर्ण देखो।

पञ्चवर्तन (सं० पु०) पञ्चोद्धवक।

पञ्चवर्षीय (सं० त्रि०) १ पञ्चवर्षव्यापी। २ पञ्चवर्ष वृद्ध। ३ पांच वर्षका पुराना।

पञ्चवन—मणिपुरवासी कूकीकी एक जाति। पञ्चवनवास देखो।

पञ्चवल्कल (सं० क्ली०) पांचों वृक्षोंकी छालका समाहार। वल्कलपञ्चक। वट, गूलर, पीपल, पाकड़ और बेत या शिरीषको छाल अथवा वट, पीपल, कठूमर, पाकड़ और बेंतकी छालको तथा कोई वट, गूलर, पाकर, पारिस और पीपलकी छालको पञ्चवल्कल कहते हैं। गुण—हिम, योनिरोग और व्रणनाशक रक्त, कषाय, मेदोघ्न, विसर्प, शोथ पित्त, कफ और व्रणनाशक, मलरोधक और भग्नास्थियोजक।

पञ्चवाण (सं० पु०) १ कामदेवके पांच वाण जिनके नाम ये हैं—द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन। कामदेवके पांच पुष्पवाणोंके नाम—कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल। २ कामदेव मदन।

पञ्चवातीय (सं० क्ली०) राजसूय यागमें फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदसे कर्त्तव्य पञ्चवातिसाध्य होमकर्मभेद। यह पञ्चवातीय राजसूय यज्ञका अङ्ग है। यह फाल्गुन मासकी शुक्लप्रतिपदसे आरम्भ करना पड़ता है।

पञ्चवाद्य (सं० पु०) तत, आनद्ध, सुषिर, घन और वीरोंका गर्जन।

पञ्चवायु (सं० पु०) शरीरमें सदा प्रतिष्ठित प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान आदि वायु।

पञ्चवारि (सं० क्ली०) कौप, नादेय, आन्तरीक्ष, ताड़ाग और सामुद्र जल।

पञ्चवार्षिक (सं० त्रि०) पञ्चसु वर्षेषु भव। पञ्चवर्ष साध्य कार्य जो पांच वर्षोंमें होता है। जैसे—बौद्धगण पञ्चवर्षव्यापी महोत्सव करते थे। अशोक प्रतिष्ठित पञ्च वर्षव्यापी बौद्धसङ्घ या महापरिषद्।

पञ्चवाहिन् (सं० त्रि०) पञ्चवाह जिसे पांच घोड़ा खींच कर ले जा सकें।

पञ्चविंश (सं० त्रि०) २५ संख्यापूरक।

पञ्चविंश—१ सामवेद अन्तर्गत ब्राह्मणभेद। पचीस अध्यायोंमें विभक्त होनेके कारण इसका नाम पञ्चविंश ब्राह्मण पड़ा है। २ स्तोमभेद। स्तोम शब्द देखो।

पञ्चविंशक (सं० त्रि०) १ पञ्चविंशति संख्यापूरक, पचीस वर्षका। २ पचीस वर्षका पुराना।

पञ्चविंशति (सं० स्त्री०) पञ्चाधिका विंशति। पचीसकी संख्या।

पञ्चविंशतितम (सं० त्रि०) पचीसवां।

पञ्चविंशतिम (सं० त्रि०) पचीस।

पञ्चविध (सं० त्रि०) पञ्चविधा यस्य। पांच प्रकार।

पञ्चविधप्रकृति (सं० स्त्री०) पञ्चविधा प्रकृति। १ पांच प्रकारका राज्याङ्ग। यथा स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल और दण्ड। २ पञ्चभूत। पञ्चभूत देखो।

पञ्चविधि (सं० त्रि०) पञ्चप्रकार, पांच तरहका।

पञ्चविन्दुप्रसृत (सं० क्ली०) नृत्यकी एक जाति।

पञ्चविष (सं० क्ली०) ताम्र, हरिताल, सर्पगरल आदि घोर घोर आत्मनाशक व्यापार और ब्रह्मशासक नाना प्रकारके रहने पर भी ये सब प्रधानतम तथा पीपयाद्र में अधिक भयोत्पादक हैं।

पञ्चविसूचिकायोग (सं० क्लो०) अपामार्गमूलक्काथ, कारवेल्लपत्रक्काथ और तिल, कचिमूलाका क्वाथ और पीपरका चूर्ण वेलसोंठ, कचूरका क्वाथ तथा वेल-सोंठ कचूर और कटफलका क्वाथ। यह पञ्चयोग विसूचिकारोगमें उपकारी है।

पञ्चबीज (सं० क्लो०) पांच प्रकारका बीज, जैसे—ककड़ी खीरा, अनार, कमल और अलकुशीका बीज। अन्यविध-रायसरसों, अमानी, जीरा, तिल और पोस्ता।

पञ्चवीरगोष्ठ (हिं० पु०) पञ्चवीरोंके बैठनेका स्थान, वह स्थान जहां युधिष्ठिरादि पांचों भाई बैठ कर मन्त्रणा करते थे।

पञ्चबुद्धीन्द्रिय (सं० क्लो०) इन्द्रियादि ज्ञानपञ्चक, यथा,—स्पर्शन, रसन, घ्राण, दर्शन और श्रोत्र।

पञ्चवृक्ष (सं० क्लो०) पांच वृक्ष, मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन नामक स्वर्गस्थ पांच वृक्षोंके नाम।

पञ्चवृत्ति (सं० स्त्री०) पंचगुणिता वृत्तिः। पातञ्जलोक्त पांच प्रकारकी मनोवृत्ति। चित्तकी परिणामी वृत्तियां ५ प्रकारकी हैं। इन वृत्तियोंमें कुछ क्लिष्ट और कुछ अक्लिष्ट हैं। जिस वृत्ति द्वारा चित्त क्लिष्ट होता है उसे क्लिष्टवृत्ति कहते हैं, जिसमें क्लेश न रहे, वह अक्लिष्टवृत्ति है। वृत्ति पांच प्रकारकी है, यथा—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष अनुमान और आप्तवाक्यको प्रमाणवृत्ति कहते हैं। इस प्रमाण द्वारा सभी स्वरूप जाने जाते हैं। एक वस्तु भ्रमवश यदि अन्य वस्तु समझी जाय, तो उसे विपर्यय कहते हैं, जैसे शुक्तिमें रजतज्ञान। वस्तुके स्वरूपकी अपेक्षा न कर केवल शब्दजन्य ज्ञानानुसार जो एक प्रकारका बोध होता है, उसीको विकल्पवृत्ति कहते हैं, जैसे देवदत्तका कम्बल। यहां पर देवदत्तके स्वरूप जो चैतन्य है उसकी अपेक्षा न कर देवदत्त और कम्बलमें जो भेद ज्ञान होता है, वही विकल्पवृत्ति है। जिस अवस्थामें चित्तमें अभाव उपलक्षित होता है, उसका नाम निद्रा है। पहले प्रमाण द्वारा जो जो विषय अनुभूत हुए हैं, कालान्तरमें संस्कार द्वारा उन विषयोंका बुद्धिमें जो आरोप होता है, उसे स्मृति कहते हैं। अभ्यास और वैराग्य द्वारा यह पंचवृत्ति निरुद्ध होती है। (पातञ्जलदर्शन)

पञ्चशत (सं० क्लो०) पंचाधिकं शतं। १ पांच सौकी संख्या। २ एक सौ पांचकी संख्या।

"क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः॥"

(मनु ८।३८४)

पञ्चशततम (सं० त्रि०) ५००, पांच सौ।

पञ्चशतिकावर्त्ति (सं० स्त्री०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली नीलोत्पलपत्र १००, मिस्तुपयव १००, मालती-फूल १००, पीपरका चावल १०० इन सबको पीस कर बत्ती बनाते हैं। इससे तिमिरादिरोग जाते रहते हैं।

त्रिकुट, त्रफला, हरीतकी, कुट, रसाञ्जन आदिकी बत्तीके अञ्जनसे अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, अर्म और अश्रुपात निवारित होते हैं।

पञ्चशब्द (सं० पु०) १ पांच मङ्गलसूचक बाजे जो मङ्गल कार्योंमें बजाये जाते हैं—तन्त्री, ताल, झांझ, नगारा और तुरही। पञ्चमहाशब्द देखो। २ पांच प्रकारका ध्वनि—वेदध्वनि, वन्दीध्वनि, जयध्वनि, शङ्खध्वनि और निशानध्वनि। ३ व्याकरणके अनुसार सूत्र, वार्त्तिक, भाष्य, कोष और महाकवियोंके प्रयोग।

पञ्चशर (सं० पु०) पंचशरा यस्य। १ कन्दर्प, कामदेव। २ पंचगुणिताः शराः। ३ पंचवाण, कामदेवके पांच वाण।

"सम्मोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा।
स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चवाणा प्रकीर्त्तिताः॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० कृष्णज० ३२ अ०)

पञ्चशर (सं० पु०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारद और गन्धकको शिमुलमूलके रसमें पृथक् पृथक् २१ बार भावना दे कर कज्जली बनावे। पीछे उसे बालुका-यन्त्रमें पाक करे। इसकी मात्रा २ रत्ती और अनुपान पान है। मांस, मद्य, पायस, महिषदुग्ध आदि पथ्य है। इसके सेवन करनेसे निश्चय ही वीर्यकी वृद्धि होती है।

पञ्चशलाकाचक्र—ज्योतिषोक्त चक्रभेद।

सप्तशलाकाचक्र देखो।

पञ्चशस् (सं० अव्य०) पंच पंच वारार्थे शस्। पंच पंच, पांच पांच।

पञ्चरस (सं॰ क्ली॰) पञ्चानां रसानां समाहारः। पाँच पदार्थ, धान, गुड़, तिल और खदिर रस। कोई कोई खदिर रसोंको जगह बदरको लेते हैं।

(दुर्गोत्सवपद्धति)

पञ्चरात्र (सं॰ पु॰) एक याग का नाम पञ्चाहसाध्य यज्ञ। २ पञ्च, रात्र। पञ्चानां रात्रीणां समाहारः। (क्ली॰) ३ पञ्चरात्रका समाहार, पञ्चरात्र। ४ पञ्चरात्रविशिष्ट, जिसमें पाँच रात्रियाँ हों।

पञ्चशारदीय—शरत्कालमें अनुष्ठेय प्राचीन यागभेद। आश्विन अथवा कार्त्तिकमासमें विशाखा नक्षत्रयुक्त अमावस्यामें यह यज्ञ आरम्भ किया जाता था। मरुत्‌के लिये इस यज्ञमें बहुत सी गौओंको हत्या की जाती थी। यज्ञमें आहुति देनेके लिये १७ बहुरङ्ग पृश्निवर्ण और तीन वर्षकी उमर एक बछियोंकी आवश्यकता होती थी। पहले यथाविहित पूजा और उत्सर्गके बाद उन्हें उपसथमें छोड़ दिये जाते थे। पीछे उनमेंसे यथायोग्य प्रक्रियानुसार आहुति देनेके बाद प्रति दिन तीन तीन करके गायोंको दिवौकसोंको बलि देते थे। पाँचवें दिन दो और पश्चात् पाँच गो-हत्या करके यज्ञ समाप्त करते थे। शरत्कालमें पाँच दिन तक यह यज्ञ होता था, इसीसे इसका नाम पञ्चशारदीय पड़ा है। सामवेदके अन्तर्गत ताण्ड्य-ब्राह्मणमें लिखा है, कि इस यज्ञमें प्रत्येक वत्सरों एवं विशिष्टवत्सरोंकी भी आवश्यकता है। उक्त ग्रन्थके मतसे—प्रथम वर्षमें आश्विनमासकी शुक्ला सप्तमी या अष्टमीको यज्ञारम्भ करना होता है और पर-वर्त्ती वर्ष कार्त्तिकमासको पञ्चाहका यज्ञानुष्ठान विहित है। मैत्रायणी संहितामें माना जाता है कि पहले पहल प्रजापतिने स्वयं इस यज्ञका अनुष्ठान किया था। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें लिखा है कि जो बलशाली और श्रीमान् होना चाहते उन्हें पञ्चशारदीय यज्ञानुष्ठान द्वारा देवपूजा करनी चाहिये।

पञ्चशिख (सं॰ पु॰) पञ्च शिखा शिरसि यस्य। १ सिंह। २ मुनिविशेष। सांख्यशास्त्रके आदि एक प्रधान आचार्य थे। वामनपुराणमें लिखा है कि वर्षमें कपिला नामक एक स्त्री थी जिसके गर्भसे पञ्चशिखमुनि उत्पन्न हुए थे। महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है, कि एक

समय कपिलापुत्र पञ्चशिख नामक एक महर्षि सारी पृथ्वी पर पर्यटन करते हुए मिथिला नगरीमें पहुँचे। ये समस्त संन्यासधर्मका यथार्थतत्त्व जाननेमें समर्थ, निर्द्वन्द्व, असन्दिग्धचित्त ऋषियोंके मध्य अद्वितीय, कामनापरिशून्य और मनुष्योंके मध्य शाश्वत सुखका पाने अभिलाषी थे। उन्हें देखनेसे मालूम पड़ता था कि सांख्यमतावलम्बी जिन्हें कपिल कहते हैं मानो ये ही पञ्चशिख नाम धारण कर सभी मनुष्योंके हृदयमें विस्मय उत्पादन करते हैं। ये महात्मा आसुरिके प्रधान शिष्य और चिरजीवी थे तथा इन्होंने सहस्र वर्ष तक मानस यज्ञका अनुष्ठान किया था।

भगवान् मार्कण्डेयने पञ्चशिखका वृत्तान्त इस प्रकार कहा है—एक समय कपिलमतावलम्बी सब मुख्य महर्षि एक साथ बैठे हुए थे। इसी बीच ब्रह्मपरम्परा वश पञ्चमयादि पञ्चकोषातिक्त शमदमादिगुणान्वित पञ्च शिख महर्षि वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने उनसे पर-मार्थ विषय उन समागत ऋषियोंसे पूछा। उस समय महामति आसुरि भी उपस्थित थे। उन्होंने ही पञ्चशिखको शिष्यके उपयुक्त समझ कर उन्हें अपना शिष्य बना लिया। महात्मा आसुरि आत्मज्ञान लाभके लिये कपिलके शिष्य हो शरीर और शरीरीके विषय उनसे अच्छी तरह जान गये थे। कपिलकी कृपासे उन्होंने सांख्ययोग जान कर आत्मतत्त्वको साक्षात्कार किया था। आसुरिके कपिला नामक एक सहधर्मिणी थी। पञ्चशिख उन्हींके शिष्य थे अतएव पुत्रभावसे कपिलाका स्तन्यपान करते थे। इस कारण उन्हें ब्रह्मनिष्ठ बुद्धि और कपिलाका पुत्रत्व लाभ हुआ था। कपिलाका स्तन्यपान करनेसे ये 'कपिलापुत्र' कहलाने लगे। (महाभारत १२।२१८ अ॰)

ईश्वर कृष्णकी सांख्यकारिकामें लिखा है—कपिल-ने आसुरिको और आसुरिने पञ्चशिखको सांख्यशास्त्रका उपदेश दिया। इन्हीं पञ्चशिखसे ही सांख्यशास्त्र प्रचा-रित हुआ। सांख्य देखो।

पञ्चशिर—पघमान-सोमनाथसे हिन्दूकुशपर्वत तक प्राचीन एक उपत्यकाभूमि। यह काबुल नगरके उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ प्राचीन कपिश नगर बसा हुआ था। १५० फिटरोंका आधुनिक काबुल नगर

जीत कर यहांके राजा बन गये और उन्होंने पंचगिर नगरमें अपने नाम पर सिक्का चलाया। यहां पहले परिजख नामक स्थानमें एक दुर्ग अवस्थित था।

पञ्चशील—बुद्धप्रोक्त धर्मप्रकरण या आचारभेद।

पञ्चशीर्ष (सं० पु०) पंचशीर्षाणि यस्य। १ सर्पभेद। २ चीनटेंगस्थ मञ्जुश्री पर्वतका प्राचीन नाम। इसके पांच शिखर होनेके कारण लोग इसे पहले पञ्चशीर्ष कहा करते थे। प्रवाद है, कि प्रत्येक शिखर पूर्व समयमें हीरा, सोना, पन्ना आदि धातुओंसे मण्डित था।
(स्वयम्भुपुराण)

पञ्चशुक्ल (सं० पु०) पञ्चसु शुक्लः। कीटभेद, एक प्रकार का कीड़ा। यह सोमकीटजातिका है। इसके काटनेसे कफजन्यरोग होता है। कीट देखो।

पञ्चशूरण (सं० क्ली०) पंच शूरणा यत्र। पांच प्रकारका शूरण या कन्द—अत्यम्लपर्णी, काण्डवेल, मालाकन्द, सूरन, सफेद सूरन।

पञ्चशैरीषक (सं० क्ली०) शिरीषवृक्षस्य इदम् शैरीषकं, पञ्चसंख्यकं शैरीषकम्। सिरीसवृक्षके पांच अंग जो औषधके काममें आते हैं जड़, छाल, पत्ते, फूल और फल।

पञ्चशैल (सं० पु०) १ मेरुके दक्षिणस्थित पर्वतभेद। (मार्कण्डेयपुराण ५५ अ०) २ राजगृहके चारों ओर अवस्थित वैभार, विपुल, रत्नकूट, गिरिव्रज और रत्नाचल नामक पांच शैल। बौद्ध, जैन और हिन्दू इन तीनों सम्प्रदायके निकट यह पञ्चशैल महातीर्थरूपमें गिना जाता है। महाभारतके मतसे—वैभार, विपुल, ऋषिगिरि, चैत्यक और गिरिव्रज इन पांचोंको ले कर पञ्चशैल हुआ है। (महाभारतसभा०)

रामायणके मतसे इस पञ्चशैलके मध्य गिरिव्रजनगर अवस्थित है।

"पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते॥"
(रामा० आदि० ३२ सर्ग)

पञ्चश्वास—महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, क्षुद्रश्वास और तमकश्वास।

पञ्चष (सं० त्रि०) पंचवा षड्वा परिमाणं येषां ते। जिसका परिमाण पांच या छः हो। यह शब्द बहुवचनान्त है।

पञ्चषष्ट (सं० त्रि०) पैंसठ।

पञ्चषष्टि (सं० स्त्री०) पैंसठकी संख्या।

पञ्चषष्टितम (सं० त्रि०) पैंसठवां।

पञ्चसत (सं० क्ली०) जनपदभेद।

पञ्चसन्धि (सं० स्त्री०) व्याकरणमें सन्धिके पांच भेद—स्वरसन्धि, व्यञ्जनसन्धि, विसर्गसन्धि, स्वादिसन्धि और प्रकृतिभाव।

पञ्चसप्त (सं० त्रि०) पचहत्तर।

पञ्चसप्तति (सं० स्त्री०) पचहत्तरकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है, ७५।

पञ्चसप्ततितम (सं० त्रि०) पचहत्तरवां।

पञ्चसप्तन् (सं० त्रि०) पांच गुना सात, पैंतीस।

पञ्चसर्पिणी (सं० स्त्री०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा जो स्वर्णवर्णके विचित्र मण्डलविशिष्ट, सर्पाकार और पञ्च अङ्गुलिप्रमाण दीर्घ होती है।

"नकुलैः कपिलैश्चित्रैः सर्पाभा पञ्चसर्पिणी॥"
(सुश्रुतचिकि० ३ अ०)

पञ्चसारपानक (सं० पु० क्ली०) पानीयविशेष। द्राक्षा, मधुक, खर्जुर, काश्मर्य और परूषक इन पांच द्रव्योंके बराबर बराबर भागको मिला कर पानक बनानेसे पंचसारपानक होता है।

वैद्यक द्रव्यगुणके मतसे काश्मीर, मधु, खर्जुर, मुनक्का और फालसेका फल, इन सब द्रव्योंका जल जमा कर उसमें मिर्च, शर्करा और आद्रकादि मिलाते हैं, पीछे भलाभांति छान लेनेसे पानक तैयार होता है। इसका गुण—हृद्य, गुरु, धातुकर, पित्त, तृष्णा, श्रम और दाहनाशक है। (द्रव्यगुण)

पञ्चसिद्धान्त (सं० क्ली०) ब्रह्मसूर्यसोमादियुक्त पञ्चज्योतिष सिद्धान्त।

पञ्चसिद्धौषधिक (सं० पु०) पञ्च सिद्धौषधयो यत्र कप्। वैद्यकमें पांच औषधियां जिनके नाम ये हैं—तैलकन्द, सुधाकन्द, क्रोडकन्द, रुदन्ती और सर्पाक्ष।

पञ्चसुगन्धक (सं० क्ली०) पञ्च सुगन्धा यत्र, कप्। पांच सुगन्ध द्रव्य—लौंग, शीतलचीनी, अगर, जायफल, कपूर अथवा कपूर, शीतलचीनी, लौंग, सुपारी और जायफल।

पञ्चगुणमिश्र (सं॰ क्लो॰) पञ्चगुणमय।

पञ्चसूना (सं॰ स्त्री॰) सूना प्राणिवधस्थान व्यापृविता सूना। पांच प्रकारका प्राणिवध-स्थान। गृहस्थोंके घरमें प्रतिदिन पांच प्रकारसे प्राणिहिंसा होती है, इसी से इसका नाम पञ्चसूना पड़ा है।

"पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च वध्यते यास्तु वाहयन्॥"
(स्मृति)

चूल्हा जलाना, आटा आदि पीसना, झाड़ू देना, कूटना और पानीका घड़ा रखना यही पांच गृहस्थोंकी पञ्चसूना है। प्रतिदिन इन पञ्चसूनाके पापका भागी होना होता है। इन्हीं पांच प्रकारकी हिंसाओंके दोषोंकी निवृत्तिके लिये पञ्च महायज्ञों का विधान किया गया है। पञ्चमहायज्ञ देखो।

पञ्चस्कन्ध (सं॰ पु॰) बौद्धोंके मोक्षनिरूपण और प्राणी तथा जड़जगत्‌की उत्पत्तिका कारण समझानेके लिये बौद्ध शास्त्रकारोंने हिन्दूशास्त्रोक्त पञ्चतन्मात्राके आधार पर और भी पांच गुणमय पदार्थोंका कल्पन किया है वही पञ्चस्कन्ध है। रूप, रस, गन्ध स्पर्श और शब्द इन पांच गुणोंके योगसे जिस प्रकार पञ्चभूत-की उत्पत्ति हुआ करती है, उसी प्रकार बौद्धोंके मतसे भी पांच वस्तुओं या विभिन्न गुणसमष्टिसे मानव जातिका उद्भव हुआ है। किन्तु हिन्दुओंके मत पञ्चतन्मात्रमें और किसी भी धर्ममें इसका माहात्म्य नहीं देखा जाता। पञ्चतन्मात्र और पञ्चभूत देखो।

बौद्धोंके मतसे रूप वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान ये पांच स्कन्ध हैं—गुणकी समष्टिका नाम स्कन्ध है। बौद्धमत ग्रहण करनेमें इन पांचोंकी अनुभूति और प्रकृत ज्ञानलाभ करना आवश्यक है। इसी उद्देश्यसे यद्यपि ये पञ्चगुण शास्त्रमें अधिकमात्रासे अतिरंजित हुए हैं तो भी उनका मर्म ग्रहण करनेके लिये यथासम्भव व्याख्या की गई है। बौद्धोंने पञ्चस्कन्धकी जो एक तालिका दी है वह इस प्रकार है,—

१। रूपस्कन्ध—पञ्चभूत या भूततन्मात्र।

क्षिति अप्, तेज और मरुत् आदि चार भूत। चक्षु, कर्ण नासिका, जिह्वा और त्वक् (देह) ये पांच इन्द्रिय; यथाक्रम गन्ध, रस, स्वाद और स्पर्शादि ये पांच पदार्थ पञ्चतन्मात्र। स्त्री और पुरुष ये दो लिङ्ग तन्मात्र; चेतना जीवितेन्द्रिय और आहार ये तीन मूल अवस्था; अङ्गसञ्चालन और वाक्स्फूर्ति यह मनोभाव-ज्ञापक। प्रकाश आकाश और शून्यतादैत्यको चित्तजन्य लघुता, स्थितिस्थापकता, समताकरण, समष्टिकरण स्थायित्व, क्षय और परिवर्त्तनशीलता आदि इन सातों विभिन्नगुणोंसे परिपूर्ण हैं। इस प्रकार कुल २८ गुण माने गये हैं।

२। वेदनास्कन्ध—रूपस्कन्धसे ही वेदनास्कन्धकी उत्पत्ति होती है। यह वेदनास्कन्ध पांच ज्ञानेन्द्रियों और मनके भेदसे छः प्रकारका होता है जिनमें प्रत्येक के शुभ, अशुभ और उदासीनता ये तीन तीन भेद होते हैं।

३। संज्ञास्कन्ध—इसे अनुमितितन्मात्र भी कहते हैं। इन्द्रिय और मन कार्यके अनुसार इसके छः भेद हैं। वेदना होने पर ही संज्ञा होती है।

४। संस्कारस्कन्ध—यह साधारणतः ५२ संज्ञाओंमें विभक्त है। किन्तु इनमेंसे प्रत्येक स्वतन्त्र भाव पर नहीं है। इनमें कितने पूर्ववर्णित तीन भागोंके अन्तर्गत और मनसंज्ञापक है। पूर्वोक्त रूप, वेदना और संज्ञा ये तीनों आत्मभावके अवलम्बन पर गठित हैं और संस्कारतत्त्व मानसिक कारण की सहायता से उत्पन्न हुआ है। इसके ५२ भेदोंके नाम ये हैं—१ स्पर्श २ वेदना ३ संज्ञा, ४ चेतना ५ मनसिकार, ६ स्मृति ७ जीवितेन्द्रिय, ८ एकाग्रता ९ वितर्क १० विचार, ११ वीर्य जो अन्यान्य शक्तियों को उन्नतिमें सहायता करता है १२ अधिमोक्ष १३ प्रीति, १४ छन्द १५ मध्यस्थता, १६ निद्रा, १७ मिद्ध या तन्द्रा १८ मोह, १९ प्रज्ञा, २० लोभ २१ अलोभ २२ अशाठ्य २३ अनुत्ताप, २४ ह्री (लज्जा) २५ अक्रोध २६ द्वेष २७ अद्वेष २८ विचिकित्सा, २९ श्रद्धा ३० दृष्टि ३१ ३२ शारीर और मानस प्रशान्ति ३३ ३४ शारीर और मानस लघुता, ३५ ३६ शारीर और मानस मृदुता ३७-३८ शारीर और मानस कर्मण्यता ३९ ४० शारीर और मानस प्राञ्जलता ४१-४२ शारीरिक और मानसिक उद्यतता ४३ ४४ शारीर और मानस साम्य, ४५ करुणा, ४६

मुदिता, ४८ ईर्षा, ४६, मात्सर्य, ५० कार्कण्य, ५१ औद्धत्य और ५२ मान वा अभिमान।

५। चित्त, आत्मा और विज्ञानको समष्टिसे ही इस पञ्चस्कन्धको उत्पत्ति है। हिन्दूशास्त्रोंमें कहे हुए चित्त आत्मा और विज्ञान इसके अन्तर्भुत हैं। इस स्कन्धके चेतनाके धर्माधर्म भेदमें ४८ भेद किये गये हैं। बौद्धदर्शनोंके मतानुसार विज्ञानस्कन्धके लय होनेसे ही निर्वाण होता है।

ऊपरमें लिखित अभिव्यक्तियोंसे जाना जाता है, कि मनुष्यमात्रको ही शारीरिक और मानसिक गठन तथा मानसशक्तिगुणादि विज्ञानको प्रक्रियाके ऊपर निर्भर है; किन्तु इनमेंसे कोई भी स्थायी नहीं है। रूपतन्मात्र जनित पदार्थादि फेनकी तरह क्रमशः संचित हो कर पीछे रूपान्तरित वा लोप हो जाते हैं। वेदनाजनित पदार्थादि जलबुदबुदकी तरह क्षणस्थायी हैं। संज्ञाप्रकरणमें अनुमितिसे सूर्यरश्मिमें अनिश्चित मरीचिकाकी तरह अनुमान है, चतुर्थ अर्थात् संस्कारसे मानसिक और नैतिक पूर्वानुरागका उद्भव हुआ करता है, किन्तु वे आसक्तियां कदलीस्तम्भकी तरह अस्थायी और सारवत्ताहीन हैं तथा पंचम वा विज्ञान जो जन्म है, वह छाया वा इन्द्रजालिक मायाकी तरह भ्रमदृश्य समझा जाता है।

बौद्धोंके त्रिपिटक ग्रन्थमें इसका विषय साफ साफ लिखा है। उक्त ग्रन्थ पढ़नेसे जाना जाता है, कि ज्ञान विशिष्ट जीवान्तर्गत यह पंचस्कन्ध वा गुण आत्मासे बिलकुल स्वतन्त्र है। मनुष्यकी देह परिवर्त्तनशील है। जीवदेहस्थ इन्द्रियोंके साथ वाह्यजगत्के पदार्थोंके स्पर्श-हेतु जीवित देहके परिवर्त्तनके साथ साथ इस पंचगुणका परिवर्त्तन भी जीवदेहमें हुआ करता है, बौद्धोंके पंचस्कन्धका मर्म इतना कठिन और दुर्बोध्य है कि सुदूरविस्तृत इस बौद्धधर्मके अन्तर्गत पंचस्कन्धकी विभिन्न धर्मावलम्बियोंमेंसे कोई भी तत्प्रतिष्ठित धर्ममतका मूल धर्म नहीं मानते। सूत्रपिटकमें गौतमकी प्रथम उक्तिमें लिखा है—"हे भिक्षुगण! आचार्य लोग (श्रमण और ब्राह्मण) आत्माको पंचस्कन्ध मानते हैं, किन्तु जो स्वल्पज्ञानी हैं अर्थात् जो धार्मिकका साथ नहीं करते अथवा धर्ममत नहीं सीखते, वे ही रूप, वेदना संज्ञा, संस्कार, चेतना आदि एक एक गुणको स्थिति, द्युति और व्याप्तिके कारण आत्माका अनुरूप मानते हैं। इसके बाद पंचेन्द्रिय मन, अविद्या और गुण इन सबमें 'मैं कौन हूं' इस प्रकार एक ज्ञानकी उपलब्धि होती है। स्पर्श और अविद्याजनित वेदनासे कामासक्त अज्ञानी व्यक्तिगण भी 'मैं कौन हूं" इस प्रकार एक धारणा पर पहुंच जाते हैं सही, किन्तु हे भिक्षुगण! जो उचित आचार्यके ज्ञानवान् शिष्य है, वे ही पंचेन्द्रियकी सहायतासे अविद्याको दूर करके ज्ञान मार्ग-पर चढ़ सकते हैं। अविद्यारूप अन्धकार उनके अन्तःकरणसे दूर हो जाने पर तथा ज्ञानके विकाश होने पर 'मैं कौन हूं" ऐसा जो अनुमान है, वह उनके हृदयमें स्थान नहीं पाता।

बौद्धगण पंचस्कन्धातिरिक्त आत्माको स्वीकार नहीं करते। इसीसे जीव वा आत्माका पूर्वोक्तरूप अस्तित्व उनके प्रचारित धर्ममतके विरुद्ध है। यही कारण है कि बौद्धशास्त्रमें स्वकीय दृष्टि और आत्मवाद नामक दो शब्द कल्पित हुए हैं। सत् और ज्ञानी बौद्धमात्रको ही वह परिवर्जनीय है, कारण दोनों ही मोहवशसे मानवको कुपथ पर विचरण कराते हैं। कामाचार, अनन्तत्व और ध्वंसका विरुद्धवाद, व्रतादि क्रियाकलापको कार्यमें आस्था और उपादान आदि विषय उनके समयोगीका और जन्म, मरण, जरा, शोक, परिवेदना, दुःख दौर्मनस्य तथा हताश आदिका एकमात्र कारण है। एतद्भिन्न नागार्जुनकृत माध्यमिकसूत्रमें भी पंचस्कन्धकी कथा विशेषरूपसे लिखी है। स्वयं नागार्जुन वा नागसेनने पञ्जाबके अन्तर्गत शाकलाधिपति ग्रीकराज मिनान्दरको पंचस्कन्द समझाते समय कहा था, कि जिस प्रकार चक्र, चक्रदण्ड रज्जु, और काष्ठादि ले कर एक यान तैयार होता है और इसके सिवा कोई द्रव्य रथ वा यानकी समष्टि नहीं हो सकता, केवल शब्दमात्र ही उसका भाव ज्ञापन करता है और रथकी आकृति तथा गठनके अनुमान द्वारा मानसनेत्रमें वहन करता है, उसी प्रकार मनुष्यमात्र ही इस पंचस्कन्धके गुण द्वारा कार्यकारी हो कर सभी द्रव्य अनुमिति और ज्ञान द्वारा

हृदयमें ग्रहण किया जाता है। आद्य बुद्धदेवने कहा था कि जिस प्रकार केवल काष्ठ वा रज्जु, कण, चाक वा मिट्टी प्रभृति एक एक पदार्थ रथस्वरूप नहीं हो सकता, समस्त काष्ठरज्ज्वादिके संयोगसे रथादिका अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता है उसी प्रकार रूप विज्ञान वेदना संज्ञा और संस्कार इन पांच चीजोंसे जीवदेहकी उत्पत्ति और आत्माका विकाश हुआ करता है। जो कुछ हो, सभी बौद्धोंने थोड़ा बहुत कर के जीवात्माका अस्तित्व स्वीकार किया है।

पञ्चरक्षविमोचन—बुद्धदेवकी एक उपाधि।

पञ्चर्षेय (सं० पु०) घो, मित्र, वरुण, मरुत् और सोम।

पञ्चश्लोकम् (सं० क्ली०) पञ्च श्लोका यत्र। १ लोकसंघट्ट। २ सामसंघट्ट। महर्षि पञ्चशिखने हजार वर्ष तक यह पञ्चश्लोकीयज्ञ किया था।

पञ्चस्वरा (सं० स्त्री०) पञ्च स्वरा यत्र। ग्रन्थ प्रतिपाद्य ज्योतिर्ग्रन्थभेद। इस ग्रन्थमें ७ अध्याय हैं जिनमें तिथ्यादि साध्यादि [illegible], कालज्ञान शरादि ज्ञान, शुभाशुभ, रिष्टज्ञानादियोग और आयुज्ञान निर्णय आदि निरूपित हुए हैं।

"पञ्चस्वराभिधानञ्च ग्रन्थं विज्ञानदायकम्।
शिवेनोद्धृतमन्त्रं च स्वरं वक्ष्यामि साम्प्रतम्॥"
(पञ्चस्वरा)

मानव जबकि शुभाशुभ विषयकी गणना करेंगे, उससे पहले आयुकी गणना करना आवश्यक है। पहले आयुका निर्णय किये बिना शुभाशुभ गणना निष्फल है। क्योंकि मनुष्यका मरण होनेसे उस शुभाशुभका फल कौन भोगेगा। इसलिये सबसे पहले आयु निर्णय करना चाहिए। जन्मसमयसे ले कर १६ वर्ष तक रिष्ट रहता है, इस समय आयुगणना न कर रिष्टगणना करनी होती है। इस ग्रन्थमें रिष्टगणनादिका विषय पञ्चस्वरोंमें विशेषरूपसे लिखा है। यह सर्वसाधारण नहीं है और विस्तार हो जानेके भयसे नहीं दिखलाया गया। अ इ उ ए ओ इन पांच स्वरोंको प्रधान मान कर यह गणना हुई है, इसीसे इसका नाम पञ्चस्वरा पड़ा है।
(नरपतिजयचर्या [illegible])

इस प्रकार स्वरादिका निर्णय करना होता है। प्रथमतः चक्राङ्कितरूपमें ५ पङ्क्तियोंकी स्थापना करके उसके नीचे क्रमशः अ, क, ख आदि क्रमसे सभी वर्णोंको रखे। ५ स्वरोंके नीचे ङ ञ, ण भिन्न ककारादि ह पर्यन्त सभी वर्णोंको ५ भागोंमें विभक्त कर संस्थापन करे। ङ ञ, ण ये तीन वर्ण नामके आदिमें प्रायः नहीं लगते इस कारण ये तीनों वर्ण छोड़ दिये गये। यदि ये तीनों वर्ण किसीके नामके आदिमें रहें तो ग ज ड ये तीन अक्षर ग्रहण करने होते हैं। यदि किसीके भी नामके आदिमें संयुक्तवर्ण रहे, तो उस संयुक्तवर्णके आदिमें जो अक्षर रहेगा वही वर्ण ग्रहण करना होगा। इस पञ्चस्वरमें प्रथम पङ्क्तिके नीचे [illegible] ये ७ वर्ण, द्वितीय पङ्क्तिके नीचे [illegible], तृतीय पङ्क्तिके नीचे [illegible], चतुर्थ पङ्क्तिके नीचे [illegible] और पञ्चम पङ्क्तिके नीचे [illegible] वर्ण रखे। इससे पांच प्रकारके स्वर निर्णीत होते हैं। जिसके नामके आदिमें जो अक्षर पड़ता है उस नामके स्वराङ्कको ग्रहण करके गणना करनी होती है। इस पञ्चस्वरके पांच नाम हैं, यथा—प्रथम स्वरका नाम उदित, द्वितीय स्वरका नाम भ्रमित, तृतीयका [illegible], चतुर्थका [illegible] और पञ्चम स्वरका नाम अस्त है। इनके और भी पांच नामान्तर हैं जैसे [illegible] विपद और सिद्ध। इन पांच स्वरोंके मध्य अकार स्वरके नीचे मेष सिंह और वृश्चिक, इकार स्वरके नीचे वृष तुला और कर्कट, उकार स्वरके नीचे धनु और मीन तथा एकार स्वरके नीचे मकर और कुम्भराशि स्थापन करनी पड़ती है। राशिविन्यास इसी प्रकार करना होता है। राशिनिर्णय करके स्वरके नीचे राशि और राशिके नीचे उनके अधिपति ग्रहोंको संस्थापन करे। जिस राशिका अधिपति जो ग्रह होगा उस राशिके स्वरको उस ग्रहका स्वर कहते हैं। अकारमें रवि और मङ्गल, इकारमें चन्द्र और बुध, उकारमें बृहस्पति, एकारमें शुक्र और ओ स्वरमें शनि इस प्रकार ग्रहविन्यास होगा।

इस पञ्चस्वरके पांच नाम और भी हैं, यथा—प्रथम बाल, इस प्रकार यथाक्रम कुमार, युवा, वृद्ध और मृत। इनके अवस्थानुसार शुभाशुभ फल निर्णय किया जाता है।

उक्त उदितादि पञ्चस्वरको बालादि पञ्च अवस्था जान कर नामके आदि अक्षरके अनुसार स्वरनिश्चित कर उसके फलका निरूपण करना होता है। जिस वर्णमें जिस नामका आदि अक्षर होगा, उस वर्णमें जो स्वर रहेगा, वही उस व्यक्तिके सम्बन्धमें उदित स्वर समझा जायगा। एक एक स्वरके नीचे २ मास १२ दिन करके रख देनेसे इस प्रकार पञ्चस्वरके नीचे स्थापित मासादिमें एक वर्ष पूरा होगा।

कार्त्तिकके शेष ६ दिनसे आरम्भ करके मास स्थापन करना होता है। अ-स्वरमें कार्त्तिकके शेष ८ दिन, अग्रहायण, पौष और माघमासके तीन दिन; इ स्वरमें माघके २७ दिन, फाल्गुन और चैत्रके १५ दिन; उ स्वरमें चैत्रके १५ दिन, वैशाख और ज्येष्ठके २७ दिन; ए स्वरमें ज्येष्ठके तीन दिन, आषाढ़, श्रावण और भाद्रके ८ दिन; ओ स्वरमें भाद्रके २२ दिन, आश्विन और कार्त्तिकके २१ दिन, इस प्रकार प्रति स्वरमें ७२ दिन करके पञ्चस्वरमें समस्त वर्ष पूर्ण होंगे। तिथियोग करनेसे अ-स्वरमें नन्दा, इ स्वरमें भद्रा, उ-स्वरमें जया, ए-स्वरमें रिक्ता और ओ-स्वरमें पूर्णातिथि होगी। प्रत्येक स्वरकी तिथिका अङ्क पृथक् पृथक् योग करनेसे अ स्वरमें ८१, इ-स्वरमें ८७, ओ स्वरमें ९३, ए-स्वरमें ९९, ओ स्वरमें १०५ अङ्क होंगे। यही सब अङ्क स्वराङ्क हैं। इनके द्वारा मृत्यु वर्षका पहले निर्णय कर पीछे वार, तिथि, मास, आदिका विषय स्थिर करना होगा। इस पञ्चस्वराके मध्य समशून्य गणनानुसार आयुवर्ष स्थिर कर लेना होगा।

वयसके अङ्क, स्वराङ्क और राशिके अङ्कको एक साथ जोड़ कर ५से भाग देनेसे अवशिष्टाङ्क द्वारा नन्दादि तिथि निर्णीत होगी अर्थात् १ अवशिष्ट रहनेसे नन्दा होगी, इत्यादि। वयस, राशि, स्वराङ्कको एक साथ जोड़ कर ६से भाग देनेसे अवशिष्टाङ्क द्वारा नन्दादि तिथिके मध्य किस तिथिमें मृत्यु होगी, सो मालूम हो जायगा। वयस, राशि और स्वरके अङ्कको एकत्र योग कर ७से भाग देनेसे जो अवशिष्ट बचेगा, उस अङ्क द्वारा वार जाना जायगा। यदि गणित तिथिमें वारका मिलन न हो, तो तिथि अथवा वारमें १ योग वा वियोग करनेसे जिससे तिथि वार मिल जाय इस प्रकार कर लेना चाहिये। अष्टमी तिथिमें एक योग वा वियोग करना नहीं होगा। पञ्चस्वरामें समशून्य होनेसे उसी वर्ष मृत्यु होगी ऐसा जानना चाहिये। समशून्य देखो।

पञ्चस्वरोदय (सं० पु०) पञ्चानां स्वराणामुदयो यत्र। ज्योतिषभेद।

"ज्ञानं वक्ष्यामि सर्वज्ञं हर पंचस्वरोदयात्।
बाल: बाला कुमारा च वृद्धा मृत्युस्तथैव च॥"

(गरुडपुराण)

गरुडपुराणमें इस पंचस्वरोदयका विषय लिखा है। पांच घर काट कर उन घरोंमें पांच वर्ण विन्यास करके गणना करनी होती है, इसीसे इसका नाम पञ्चस्वरोदय पड़ा है।

पांच घरोंमें अ, इ, उ, ए, ओ ये पांच स्वर लिखने होते हैं। विशेष विवरण गरुडपुराणमें देखो।

पञ्चस्वेद (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार लोष्टस्वेद, वालुकास्वेद, वाष्पस्वेद, घटस्वेद और ज्वालास्वेद।

पञ्चहस्त (सं० क्लो०) काश्मीरस्थ स्थानभेद।

पञ्चहिक्का (सं० स्त्री०) अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा और महाहिक्का प्रभृति।

पञ्चहोत्र (सं० पु०) वैवस्वत मनुके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ७ अ०)

पञ्चह्रदमार्ग (सं० क्लो०) तीर्थभेद।

पञ्चहृद्रोग (सं० क्लो०) वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और कृमिज रोग होनेसे उसे पञ्चहृद्रोग कहते हैं।

पञ्चांश (सं० पु०) पञ्च इति अंशा यस्येति कृत्वा संख्यानस्य पूरणार्थे त्वस्याकारेण पञ्चशब्दात् पञ्चमार्थे कमधा०। त्रिंशदंशात्मक राशिका पञ्चम अंश। नीलकण्ठोक्त ताजिकमें लिखा है, कि राशिका फलाफल जाननेमें किस राशिका अधिपति कौन ग्रह है वह जानना आवश्यक है। क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, चतुर्थांश पञ्चमांश आदिमें किस अंशका अधिपति कौन ग्रह है यह जानना विशेष है। यहां पर पञ्चमांश चक्र दिया जाता है, इससे किस किस अंशका अधिपति कौन ग्रह है, वह सहजमें मालूम हो जायगा।

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	

पञ्चाक्षर (सं० पु०) पञ्च अक्षराणि यस्य। १ मन्त्रभेद। २ प्रतिष्ठा नामक छन्दोभेद। ३ प्रणव। इसमें पाँच अक्षर यौगिक कारण इसे पञ्चाक्षर कहते हैं। ४ 'नमः शिवाय' यह पाँच अक्षरयुक्त मन्त्र। लिङ्गपुराणके ८५ अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। (वि०) ५ जिसमें पाँच अक्षर हों।

पञ्चाख्यान (सं० क्ली०) पञ्चाख्यायिकायुक्त ग्रन्थ पञ्चतन्त्र।

पञ्चाम्लफलि (सं० स्त्री०) बीजपूरक, दाड़िम, अम्ल [illegible] और पञ्चाम्र आदि भेद।

पञ्चाग्नि (सं० पु०) पञ्चानां अग्नीनां समाहारः। १ पञ्च अग्निका समाहार, चारों ओर प्रज्वलित चार अग्नि और मध्यमें सूर्याग्नि। (पु०) पञ्च अ अग्नि अस्मयोंति न करनात् कर्मधारय। २ पाँच प्रकारकी अग्नि यथा— अन्वाहार्यपचन गार्हपत्य सभ्य, आहवनीय और आवसथ्य।

"अन्न गाहन जिता वस पञ्चाग्नी हुई ॥" ([illegible])

३ तन्त्र प्रसिद्ध [illegible] विहित आर्यकारक तदग्नि भेद।

जिन सब अग्निक ब्राह्मणोंके अर्थात् जिनके ये सब अग्नि हैं उन्हें पञ्चाग्नि कहते हैं। दक्षिण गार्हपत्य और आहवनीय इस अग्नित्रयको त्रेताग्नि कहते हैं।

"उदरे गार्हपत्याग्निर्मध्ये तु दक्षिणः।
आस्ये आहवनीयोऽग्निश्च पुरः पश्चाच मूर्द्धनि॥
सा पञ्चाग्नीविधान् देह आहिताग्निः स उच्यते॥"
(गरुडपुराण)

उदरमें जो अग्नि है, उसका नाम गार्हपत्य, मध्य देहको अग्निका नाम दक्षिण, मुखकी अग्निका नाम आहवनीय अग्नि और मस्तककी अग्निका नाम सभ्य और आवसथ्य है यही पञ्चाग्नि है। मनुमें लिखा है कि जिनके घरमें पञ्च अग्नि है उन्हें पञ्चाग्नि कहते हैं।

"त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित्॥"
(मनु ३।१८५)

छान्दोग्य उपनिषद्‌के मतसे स्वर्ग, पर्जन्य, पृथ्वी, पुरुष और योषा अग्नितुल्य आकृतिके आधार पदार्थ हैं।

४ आयुर्वेदके अनुसार चीता, चिचड़ा, भिलावाँ, गन्धक और मदार नामक ओषधियाँ जो बहुत गरम मानी जाती हैं। (वि०) ५ पञ्चाग्निकी उपासना करनेवाला। ६ पञ्चाग्नि तथा आत्मवेत्ता। ७ पञ्चाग्नि तापनेवाला।

पञ्चाङ्ग (सं० क्ली०) पञ्चानां अङ्गानां [illegible] त्वक्पत्रपुष्पमूलफलानां समाहारः। १ एक वृक्षका त्वक्, पत्र, पुष्प, मूल और फल। २ पुरश्चरणविशेष। जप, होम तर्पण अभिषेक और विप्रभोजन इसको पञ्चाङ्ग कहते हैं।

"जपहोमौ तर्पणञ्चाभिषेको विप्रभोजनम्।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमिष्यते॥" (तन्त्रसार)

३ वार, तिथि नक्षत्र योग और करणात्मक पञ्जिका।

यह पंचाङ्गफल सुननेसे गङ्गास्नानका फल मिलता है।
पञ्जिका देखो।

"तिथिर्वारश्च नक्षत्रं योगः करणमेव च।
पञ्चाङ्गस्य फलं श्रुत्वा गङ्गास्नानफलं लभेत्॥"
(ज्योतिष)

(पु०) पञ्च अङ्गानि यस्य। ४ कमठ, कच्छप, कछुआ। ५ अश्वविशेष, एक प्रकारका घोड़ा। पर्याय पंचभद्र, पुष्पिततुरङ्गम। ६ प्रणामविशेष।

"बाहुभ्यां चैव जानुभ्यां शिरसा वचसा दृशा।
पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमौ॥"
(तन्त्रसार)

बाहु, जानु, मस्तक, वाक्य और दृष्टि इस पंचाङ्ग द्वारा जो प्रणाम किया जाता है, उसे पंचाङ्ग-प्रणाम कहते हैं। ७ राजनीति, राजाओंकी पंचसिद्धि।

"सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः।
विनिपातप्रतीकारः सिद्धिः पञ्चाङ्ग इष्यते॥"
(कामन्दक)

सहाय, साधन, उपाय, देश और कालका विभाग तथा विपद् प्रतीकार इन पांचोंको पंचाङ्ग कहते हैं। यही पंचाङ्गसिद्धि है। ८ आगमादिपंचकयुक्त भोग।

"आगमो दीर्घकालश्च निश्छिद्रोऽन्यत्वोज्झितः।
प्रत्यर्थिसन्निधानञ्च पञ्चाङ्गो भोग इष्यते॥"
(कात्यायन)

आगम, दीर्घकाल, निश्छिद्र, अन्यत्वोज्झित और प्रत्यर्थिसन्निधान यही प्रकारके भोग हैं। ९ पांच अङ्ग या पांच अङ्गोंसे युक्त वस्तु।

पञ्चाङ्गगुप्त (सं० पु०) पंचसु स्वकानि अङ्गानि गुप्तानि यस्य। कच्छप, कछुआ।

पञ्चाङ्गपत्र (सं० क्लो०) पञ्जिका। पञ्चाङ्ग देखो।

पञ्चाङ्गशुद्धि (सं० स्त्री०) पंचाङ्गस्य शुद्धिः। पंचाङ्गविषयक शुद्धि, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण यही पंचाङ्गविषयक शुद्धि है।

पञ्चाङ्गाविप्रहीन (सं० क्लो०) बुद्धदेवकी एक उपाधि।

पञ्चाङ्गिकपञ्चगण (सं० पु०) पांच प्रकारका पंचमूल, स्वल्प, महत्, तृण, वल्ली और कण्टक इन पांचोंकी जड़।
पञ्चमूल देखो।

पञ्चाङ्गी (सं० स्त्री०) करिणा कटिबन्धनदाम, वह रस्सी जो हाथीकी कमरमें बंधा रहता है।

पञ्चाङ्गुलि (सं० त्रि०) १ पंच अङ्गुलिविशिष्ट, जिसमें पांच उंगलियां हों। (स्त्री०) २ हस्त, हाथ।

पञ्चाङ्गुल (सं० पु०) पंच अङ्गुलय इव पत्राणि यस्य। १ एरण्डवृक्ष, अण्डी, रेंड़। २ तेजपत्र, तेजपत्ता। (त्रि०) ३ पंचाङ्गुलपरिमाणयुक्त, जो परिमाणमें पांच अङ्गुल का हो।

पञ्चाङ्गुलि (सं० त्रि०) पञ्च अङ्गुलियुक्त, जिसमें पांच उंगलियां हों।

पञ्चाङ्गुली (सं० स्त्री०) तक्रारी क्षुप, एक प्रकारका बेल।

पञ्चाज (सं० क्लो०) अजाया पुरीषादि पञ्चक, बकरीका मूत्र, विष्ठा, दही, दूध और घी।

पञ्चाञ्जन (सं० क्लो०) रसाञ्जन, स्रोतोऽञ्जन, सौवीराञ्जन, कर्पूर और मान इन पांच द्रव्यों द्वारा जो अञ्जन प्रस्तुत होता है उसे पञ्चाञ्जन कहते हैं।

पञ्चातप (सं० पु०) पंचभिरग्निभिः सूर्येण आतप्यते इति आङ्-तप अच्। तपस्याविशेष, एक प्रकारकी तपस्या जो चारों ओर आग जला कर ग्रीष्म ऋतुमें धूपमें बैठ कर की जाती है। यह तपस्या बहुत दुःसाध्य है।

पञ्चात्मक (सं० पु०) पंच आकाशादयः आत्मा स्वरूपं वा यस्य। आकाशादि पंचभूत स्वरूप, जो सब वस्तु पञ्चभूतोत्पन्न हैं वे सभी पंचात्मक हैं।

पञ्चात्मन् (सं० पु०) शरीरस्थित पंचवायु, प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। श्रुति आदिमें प्राणको ही आत्मा बतलाया है। प्राण पंचाङ्ग हैं, इस कारण पंचात्मन् शब्दसे पंचप्राणका बोध होता है।

पञ्चान—बिहार विभागके राजगृह पर्वतमालाके दक्षिण ओर प्रवाहित एक नदी। अभी यह नदी प्रायः सूखी पड़ी हुई है। वर्षाकालमें पहाड़से जो पानी निकलता है, वह इसी नदी हो कर गङ्गामें गिरता है।

पञ्चानन (सं० पु०) पंच आननानि यस्य। १ शिव, महादेव। पंचं विस्तृतं आननं यस्य। २ सिंह। ३ ज्योतिषोक्त सिंहराशि। ४ रुद्राक्षविशेष, एक प्रकारका रुद्राक्ष जिसके पहननेसे मङ्गल होता है। ५ सङ्गीतमें स्वरसाधनकी एक प्रणाली।

सा रे म म प। रे ग म म प ध। ग म प ध नि। म प ध नि सा।

अवरोही—सा नि ध प म। नि ध प म ग। ध प म रे। प म ग रे सा।

(त्रि०) ६ जिसके पांच मुख हों, पञ्चमुखी।

पञ्चाननगुटिका (सं० स्त्री०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—शुद्ध पारा ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला इन दोनोंकी कज्जली बना कर उसे १ पल परिमित ताम्रपात्रके चारों ओर लेप दे। पीछे उस ताम्रपात्रको सुवासक और पञ्चलवण द्वारा आच्छादित करके गजपुटमें पाक करे। इस प्रकार प्रस्तुत ताम्रचूर्ण १ पल, पारद, गन्धक, पुटदग्ध लौह, समानी अभ्र, शतपुष्पा, त्रिकटु, त्रिफला, चितेका मूल, चव्य, दन्तीमूल, अपामार्गमूल, जीरा, कृष्णजीरा प्रत्येक १ पल भाग, अम्लवेतस चित्रक, कुष्ठ प्रत्येक आध पल। इन सब द्रव्योंको अदरखके रसमें कूट कर १ माषेकी गोली बनावे। इससे अम्लपित्त आदि रोगोंकी शान्ति होती है। अम्ल दूध और मांसका निषेध। इसमें मुख्य द्रव्यका विस्तार बतलाया है।

पञ्चाननघृत (सं० क्ली०) औषधभेद। घृत वा तैल ६४ सेर क्वाथार्थ मालिक्ष २ पल, पुनर्नवा २ पल क्वाथार्थ जल ६४ सेर, शेष ६१ सेर। पाक सिद्ध होने पर इसे तकी, चितामूल यवक्षार सेंधा और सोंठको अच्छी तरह कपड़ेमें छान कर प्रत्येक दो तोला काढ़ेमें डाल दे। यो खाने और देह लगानेके काममें आता है। यह श्लीपद आदि पीड़ाका शान्तिकारक है। श्लीपदमें गोमूत्र और वात तथा पित्तकी अधिकतामें दुग्धसेवनीय है।

पञ्चाननमहाचार्य—द्वितीय रामवेदकोष नामक एक अभिधान ग्रन्थके प्रणेता।

पञ्चाननरस (सं० पुं०) रसौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, तूतिया गन्धक जयपाल, पीपर इन सबको बराबर भागको पीस कर उसे धतूरेके दूधके साथ घोटे। इसका अनुपान सोंठका रस है। इसके सेवन करनेसे गुल्मरोग जाता रहता है।

अन्यविध—विष ३ भाग, मिर्च ३ भाग, हिङ्गुल १ भाग, गन्धक १ भाग, ताम्र १२ भाग, इन्हें अदरखके दूधके साथ पीस कर एक रत्तीकी गोली बनावे है। अनुपान अवस्था जान कर दिया जाता है।

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—पारा हरिताल, तूतिया सोहागा अड़ूस और गन्धक इनके समभागको करेलेके रसमें एक दिन तक पीस कर उसे ताम्रपात्रमें रख दे। पीछे उस ताम्रपात्रको ढक कर उसके ऊपर बालू रख कर पाक करे। अच्छी भांति पाक हो जाने पर उसे तुलसीपत्रके रसमें तीन पहर तक घोंट कर तीन रत्तीकी गोली बनावे। इसका अनुपान तुलसीका रस और मिर्च है। इसके सेवनसे विषम त्रिदोष और दाहयुक्त सब प्रकारके ज्वर जाते रहते हैं। वातमत ज्वरमें पीपरचूर्ण और मधु अनुपान है तथा पथ्य दोनोंके साथ दूध, भात और मूंगकी दाल।

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—पारा और गन्धकको पांचमिर्चके रसमें घोंट कर द्राक्षा, यष्टिमधु और खजूर इनमेंसे प्रत्येकके काढ़ेमें एक एक दिन भावना देवे और [illegible] १ रत्तीकी गोली बनावे है। अनुपान पीपलका चूर्ण और चीनी है। इसके सेवनसे प्रदोषकी शान्ति होती है।

पञ्चाननरसलौह (सं० क्ली०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—जारित और मुण्डित लौह ५ पल, गुग्गुल ५ पल, अभ्र ५ पल पारद २॥ पल, गन्धक २॥ पल, क्वाथार्थ त्रिफला प्रत्येक १ पल जल १० सेर, शेष २ सेर ६ पल। इस क्वाथमें लौह अभ्र, गुग्गुलको पाक करे। घृत १२ पल, शतमूलीका रस १२ पल और दुग्ध १२ पल इसे लोहे वा तांबेके बरतनमें लोहदर्वी द्वारा धीमी आंचमें पाक करे। पाकके पात्रमें त्रिकटु, सोंठ, धनिया, गुलञ्चरस, जीरा, पञ्चकोल, निसोथ, दन्तीमूल, त्रिफला, इलायची और मोथा इन सबको अच्छी तरह पीस कर प्रत्येक आध तोला डाल दे। पीछे रस और गन्धकको कज्जली करके कुछ गरम रहते ही मिला देना कर्तव्य है। बादमें औषधको नीचे उतार कर ठण्डे बरतनमें रखे। घृत और मधुके साथ इसे मिला कर गुडूच लौह और एरण्डमूलके काढ़ेके साथ पेय है। औषध सेवन करनेके पहले विरेचनादि द्वारा देहको शोध लेना उचित है। इससे आमवात, सन्धिवात, कटीशूल, कुक्षिशूल आदि अष्टरोग दूर हो जाते हैं।

पञ्चाननवटो (स'० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रससिन्दूर, अभ्र, लौह, ताम्र और गन्धक प्रत्येक एक तोला, शिलाजीत ५ तोला इन्हें ८ तोले चीतेके रसमें एक दिन तक घोंट कर एक माशेकी गोली बनाते हैं। अनुपान घृत है। इसका सेवन करनेसे सब प्रकारके अर्श और कुष्ठरोग नाश होते हैं। यह औषध स्वयं शङ्कर-कथित है।

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्र, गुग्गुल और जयपालबीज, इनके समान भागोंको घीके साथ पीस कर बेरकी गुठलीके बराबर गोली बनाते हैं। इनके सेवनसे शोथ और पाण्डुरोगकी शान्ति होती है।

पञ्चाननी (स'० स्त्री०) शिवकी पत्नी, दुर्गा।

पञ्चानन्तरीयकर्म न्—मातृहत्या, पितृहत्या, अर्हत्‌नाश, किसी बुद्धका रक्तपात और याजकसम्प्रदायके मध्य विवादसंघटन आदि पंचमहापाप हैं। ऐसे पापोंकी सुक्ति नहीं है।

पञ्चानन्द—हिन्दूके उपास्य ग्राम्य देवताभेद। बङ्गाल और मणिपुर प्रदेशमें कैवर्त्त, बाइती, जलिया, चण्डाल आदि जातियोंके मध्य इस देवताकी उपासना अधिक प्रचलित है। बहुत-से स्थानोंमें उच्चश्रेणीकी हिन्दू-महिलागण अपनी अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिए इस देवताकी पूजा किया करती हैं। वृक्षके नीचे, मैदानमें वा सरोवरके किनारे इनकी पूजा होती है। कहीं इनकी मूर्त्ति बना कर अथवा कहीं कलस बैठा कर पूजन किया जाता है। किसी भी प्राचीन हिन्दूशास्त्रमें इस पञ्चानन्दकी उपासना-कथा नहीं लिखी है। मणिपुरके मनुष्य इन्हें महादेव समझते हैं और इनकी माहात्म्य-घोषणाके लिए पंचानन्द माहात्म्य नामक एक अप्राचीन संस्कृत ग्रन्थकी दुहाई देते हैं। नेपालके बौद्धगण चैत्रपालकी पूजा करते हैं। इस चैत्रपालके साथ पंचानन्दका बहुत कुछ सादृश्य देखा जाता है।

पञ्चानन्द (स'० पु०) तञ्जोरके निकटवर्त्ती तिरुवैद ग्रामस्थ शिवलिङ्गभेद। पंचानन्दमाहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

पञ्चानुगान (स'० स्त्री०) सामभेद।

पञ्चान्नग्राम—कलकत्तेके उपकण्ठस्थ ५५ ग्राम। ये सब ग्राम १७५७ ई०में अङ्गरेज वणिक्के साथ मीरजाफरकी जो सन्धि हुई, उसी सन्धि-शर्तके अनुसार इष्ट-इण्डिया कम्पनीको मिले थे। अभी ये २४ परगनेके अन्तर्भुक्त हो गये हैं।

पञ्चाप्सरस (स'० स्त्री०) रामायण और पुराणोंके अनुसार दक्षिणमें पंपा नामक तालाब। इस तालाब पर शातकर्णि मुनि तपस्या करते थे। इनके तपसे भय खा कर इन्द्रने इनका तप भङ्ग करना चाहा और इस उद्देश्यसे उन्होंने पांच अप्सराएं भेजी थीं। रामायणमें शातकर्णिको जगह माण्डकर्णि लिखा है। रामचन्द्रजीने स्वयं इस तालाबको देखा था। (रामायण ३।११।११)

पञ्चाब्जमण्डल (स० क्ली०) सर्वतोभद्रमण्डलान्तर्गत पंचपद्मात्मक मण्डलभेद। पृथिवी पर चौकोण मण्डल बना कर उसमें ६४ कोठे अङ्कित करना चाहिए। इस प्रकार अङ्कित चैत्रके मध्य चारों कोनेमें चार और बीचमें एक पद्म अङ्कित करना होता है। यह पंचाब्जमण्डल दीक्षा और देव-पूजाकार्यमें आवश्यक है। (तन्त्रसार)

पञ्चाभिज्ञा—बौद्धके मतसे ५ ऐश्वरिक गुणग्रामी।

पञ्चाभिषेक—नेपालवासी नेवारी बौद्धोंमेंसे जो 'बाड़ा' होना चाहते हैं, उन्हें पूर्वापर कई एक संस्कारोंका पालन करना होता है। गुरुको सूचना देनेके बाद, उनकी सम्मति ले कर गुरुदेव आशीर्वादी उपहारग्रहण करते हैं और शिष्यको भलाईके लिए पहले पहल 'कलसी-पूजा' तथा इसके बाद 'कलसी'-का अभिषेक करना होता है। इसे 'दूसल' कहते हैं। इस दिन निकटवर्त्ती विहारसे,चार और नायक-'बाड़ा' ला कर गुरुदेव शिष्यकी मङ्गल कामनाके लिये उसके मस्तक पर शान्तिजल देते और सब कोई मन्त्र-पाठ करते हैं। तीसरे दिन 'प्रव्रज्याव्रत'-की समाप्ति होती है और बादमें 'पंचाभिषेक'-की। इस दिन गुरु और चार नायक मिल कर कलसीसे जलको शङ्खमें ले शिष्यके माथेके ऊपर गिराते हैं। इसके बाद नायक उसे ऊपरमें बैठाते और गुरुमण्डल पूजाके बाद गुरुदेव उसको 'चीवर' और 'निवास' दान देते हैं। इसी समय उसका पहला नाम बदल कर दूसरा नाम रखा जाता है। शिष्य भी धीरे धीरे अपने इस नूतन 'बाड़ा' धर्मग्रहणके लिए

संसारसे त्याग प्राप्त करता और इस जन्ममें विषय सम्पत्तिसे कोई सम्पर्क नहीं रखता है।

पञ्चामरा (स० स्त्री०) पञ्च अमरा यत्र बहुव्रीहि कर्मधारय। पञ्चसंख्यक। दूर्वा, विजया, बिल्वपत्र, निर्गुण्डी और काली तुलसी, ये ही पांच द्रव्योंको पञ्चामरा कहते हैं। (रत्नमाला)

पञ्चामरादियोग (स० पु०) ज्योतिर्विदुक्त पांच प्रकारके योगभेद। ज्योतिर्विदोंके कहे हुए पांच प्रकारके योग। यथा—सिद्धि, दण्डयोग, सेतो, अमृत और आनन्द यही पांच प्रकारके योग सब योगोंमें श्रेष्ठ हैं। जो इस पञ्चामराका योगानुष्ठान करते वे अमर होते हैं। इसीसे इसका नाम पञ्चामरादियोग पड़ा है। यह योग अनुष्ठान कर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णनामादिका अष्टोत्तरशत पाठ करना चाहिये।

पञ्चामृत (स० क्ली०) पञ्च अमृतानां समाहारः। १ एक प्रकारका सात्विक पेय द्रव्य जो दधि, दुग्ध, घृत, मधु और चीनी मिला कर बनाया जाता है।

"दुग्धं च शर्करा चैव घृतं दधि तथा मधु।
पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं विधेयं सर्वकर्मसु॥" (ज्योतिस्तत्त्व)

गर्भवती स्त्रीको पञ्चामृत पिलाना चाहिए किन्तु इसके पिलानेका विशेष दिन होना आवश्यक है। ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है—पञ्चामृतको गर्भावस्थामें रवि, बृहस्पति और शुक्रवारको, रिक्ता भिन्न तिथियोंमें, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाति, मूला, मघा, अनुराधा हस्ता और उत्तरफल्गुनी नक्षत्रमें पुरुष और स्त्रीको गर्भके पांचवें मासमें पञ्चामृत दान करना होता है। इसमें देवपूजा और महास्नान आदि भी कहे हैं। २ वैद्यकमें पांच गुणकारी औषधियां—गिलोय, गोखरू, मूसली, गोरखमुण्डी और सतावरी।

पञ्चामृतपर्पटी (स० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—गन्धक ८ माशा, पारा ४ माशा, लोहा २ माशा, अभ्रक १ माशा इन सब द्रव्योंको मिला कर लोहेके बर्तनमें गलाते और बेरकी लकड़ीकी आंचमें गलाते हैं। बाद पर्पटीको गोबरके ऊपर रखे केलेके पत्ते पर डाल देते हैं। इसके सेवनकी मात्रा २ रत्तीसे ले कर ८ रत्ती तक बतलाई गई है। इसका अनुपान घी और मधु है। इस औषधका सेवन करनेसे सब प्रकारकी ग्रहणी, अर्श, छर्दि, अतीसार, ज्वर, रक्तपित्त, क्षय, अम्लपित्त, नेत्ररोग प्रभृति जाते रहते हैं। यह हृद्य और आग्नेय है। (भैषज्यर० ग्रहणीचि०)

भैषज्यरत्नावलीके मतसे—गन्धक ८ तोला, पारा ४ तोला, लोहा ३ तोला, अभ्रक १ तोला और तांबा आध तोला इन पांच द्रव्योंको एकमें एक साथ मिला कर लोहेके खरलमें घोटना चाहिये। बाद एक दूसरे लोहपात्र (कड़ाही आदि)में रख कर धीमी आंचमें पाक करते और केलेके पत्ते पर डाल कर उसको ठंढा करते हैं। इसीको पञ्चामृतपर्पटी कहते हैं। इसके सेवनकी मात्रा २ रत्ती तथा अनुपान घी और मधु है। प्रतिदिन सेवन मात्रा बढ़ा कर ८ या १० रत्ती तककी व्यवस्था करनी होती है। एक सप्ताह तक सेवन करनेसे नाना प्रकारकी ग्रहणी, अरुचि, अग्नि, अजीर्ण, दिनका अतीसार और नेत्ररोग आदि जाते रहते हैं। दोषातीसार या विषूचिकातीसारमें गन्धकका परिमाण उस परिमाणसे आधा कम कर देना चाहिये।

पञ्चामृतबिन्दु (स० पु०) बच्चोंके मसूढ़ोंका विकृ- विविध दांतोंको ताकतको बढ़ानेवाली एक प्रकारकी औषध। बट या बबूलकी छाल, मुश्क और ... ये पांच प्रकारके अमृत सभी दांतोंके लिये उपकारी हैं।

पञ्चामृतयूष (स० पु०) कुलत्थादि पञ्चद्रव्यकृत यूषविशेष। कुलथी, मूंग, अरहर, अरट और मटर इन पांच चीजोंका यूष बनानेसे पञ्चामृतयूष होता है। गुण—अग्नि, पाचन, वातरुचिकर, लघु, अग्निवर्धक, बलकर, ज्वर, वात और शूलनाशक। (वैद्यनि०)

पञ्चामृतरस (स० पु०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सोहागा ३ भाग, विष ४ भाग, मिर्च ५ भाग इन सब द्रव्योंको अदरखके रसमें घोट कर चार रत्तीकी गोली बनाते हैं। इस औषधका अनुपान विधिके साथ सभी रोगोंमें व्यवहार किया जा सकता है। यह ग्रहणीरोग, अतिसार, आमवात, पैत्तिक शूल, अम्लपित्त, भगन्दर, नाड़ीव्रण, ज्वर, मन्दाग्नि, कफवात और वात आदि रोगोंमें प्रशस्त है।

(रसेन्द्रसा० ज्वराधि०)

भैषज्यरत्नावलीके मतसे शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सोहागेकी खोई ३ तोला, विष ३ तोला, मिर्च ३ तोला इन सबको चूर्ण कर जलके साथ अच्छी तरह पीसते हैं। पीछे एक रत्तीकी गोली बना कर सेवन करते हैं। इसका अनुपान अदरकका रस है। इससे शोथ आदि नाना रोग उपशम होते हैं।

अन्यप्रकार—शोधित पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, अभ्रक २ तोला, मिर्च १० भाग और विष १ तोला इन्हें नीबूके रसमें पीस कर उरदके बराबर गोली बनाते हैं। इसका अनुपान बहेड़े फलकी छालका चूर्ण और मधु है। इससे वातकास नष्ट होता है।

पञ्चामृतलौहमण्डूर (सं० पु०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली लोहा, तांबा, गन्धक, अभ्रक, पारा, त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग, चीता, चिरायता, देवदारु, दारुहल्दी, हल्दी, कुट, यमानी, जीरा, कृष्णजीरा, कपूर, धनिया, चव्य प्रत्येकका चूर्ण १ तोला, कुल मिला कर जितना चूर्ण हो, उसका आधा शोधितमण्डूर, मण्डूर चूर्णका ४ गुण गो-मूत्र, ८ गुण पुनर्णवाका क्वाथ इन सबको एक साथ पाक कर आसन्न पाकमें लौहादि चूर्णको डाल दे और अच्छी तरह मिला कर उतार ले। शीतल हो जाने पर उसमें एक पल मधु डाल दे। इसकी मात्रा रोगीकी अवस्थाके अनुसार होगी। इससे ग्रहणी, कामला और शोथ आदि रोग जाते रहते हैं।

पञ्चाम्नाय (सं० पु०) पंचसंख्यकः आम्नायः। महादेवके पञ्चवक्त्रविनिर्गत तन्त्रशास्त्रविशेष। महादेवने पूर्वमुखसे जिस तन्त्रका विषय कहा है, वह पूर्वाम्नाय है। इस प्रकार पांचों तन्त्रके नाम ये हैं—पूर्वाम्नाय, शब्दरूप, दक्षिण कर्णरूप, पश्चिम प्रश्नाम्नाय, उत्तर उत्तरात्मक और ऊर्ध्व ऊर्ध्वाम्नाय तत्त्वबोध वा कैवल्यानुभवात्मक।

"पूर्वाम्नायः शब्दरूपः दक्षिणः कर्णरूपकः।
पश्चिमः प्रश्नरूपः स्यात् उत्तरश्चोत्तरस्तथा।
ऊर्ध्वाम्नायस्तत्त्वबोधकैवल्यानुभवात्मकः॥"

(भैरवतन्त्र)

महादेवने स्वयं कहा था, कि हमारे ५ मुखसे यह तन्त्र निकला था, इसलिए इसका नाम पञ्चाम्नाय पड़ा है।

"मम पञ्चमुखेभ्यश्च पञ्चाम्नायाः समुद्गताः॥"

(कुलार्णवतन्त्र)

पञ्चाम्र (सं० क्ली०) अमन्ति रसानि प्राप्नुवतीति अमरक, दीर्घश्चोपधयो इति आम्राः वृक्षाः (अमितम्योदीर्घश्च। उण् २।११६) पंचानां आम्राणां अश्वत्थादीनां समाहारः। वृक्षविशेषका समाहार, अश्वत्थ आदि कई एक वृक्ष।

एक अश्वत्थ, एक पिचुमर्द (नीम), एक न्यग्रोध (बरगद), दश प्रकारके फूल, दो मातुलङ्ग ये सब वृक्ष पंचाम्र हैं। जो यह पंचाम्र लगाते हैं, उन्हें नरक भुगतना नहीं पड़ता।

तिथितत्त्वके मतसे पीपर १, नीम १, चम्पा २, केशर ३, ताड़ ७ और नारियल ८ यही पंचाम्र हैं।

पञ्चाम्ल (सं० क्ली०) पञ्चानामाम्लानां कोलादीनां समाहारः। अम्लपंचक, वैद्यकमें ये पांच अम्ल या खट्टे पदार्थ—अमलबेद, इमली, जँभीरी नीबू, कागजी नीबू और बिजौरा। मतान्तरसे—बेर, अनार, विषाबलि, अमलबेद और बिजौरा नीबू। अधिक प्यास लगने पर पंचाम्लका लेप मुहमें देनेसे प्यास बुझ जाती है।

"कोलदाडिम्बवृक्षाम्लचुक्रीकाचुलिकारसः।
पञ्चाम्लको मुखे लेपः सदा तृष्णां नियच्छति॥"

(सारकौमुदी)

पञ्चायत—भारतवर्षको सर्वव्यापी ग्राम्यविचारसभा। किसी जाति वा किसी विशिष्ट समाजके मध्य किसी प्रकारका गोलमाल उपस्थित होने पर ग्रामस्थ गण्यमान्य व्यक्तियोंको मध्यस्थ बना कर एक सभा गठित होती है। उनके पास विवाद वा मनोमालिन्यकी प्रकृत घटनाको दोनों पक्षके लोग सुनाते हैं। इस प्रकार व्यक्तिसमष्टिके विचारको ही पंचायतका विचार कहते हैं। पांच व्यक्ति ले कर सभा गठित होती है, इसीसे इसका नाम पंचायत पड़ा है। प्रायः देखा जाता है, कि सभी देशोंमें निम्नश्रेणीके व्यक्तियोंके मध्य जब कोई विवाद खड़ा होता है, तब पंचायतसे ही उसका निबटेरा होता है। एलफिन्स्टन साहबने स्वीकार किया है, कि

'राजकीय शासनप्रणालीसे प्रजा जिन सब विषयोंमें न्यायसङ्गतरूपसे विचार पानेकी आशा नहीं करती, एक मात्र पञ्चायत ही उनके इस अभावको पूरा करती है।' जब ब्रिटिश पार्लियामेंट सभासे शासनकर्त्ता नियुक्त हुए (१६९८-१७००), उस समय उन्होंने हिन्दू, पारसी और मुसलमानोंके विचारके लिए प्रत्येक सम्प्रदायसे ५ व्यक्तियोंको चुन कर न्यायसङ्गत शासनविधिके अनुसरण पर पञ्चायतकी संगठन की थी। पेशवा महाराष्ट्र प्रभुओंके समय दाक्षिणात्य प्रदेशमें पेशवाओंमें इस प्रकार पञ्चोंका विचारकार्य राजपुरुषोंके हाथ सौंपा था सही, लेकिन अधिकांश सभी कार्य साधारण पञ्चायतीसे ही हुआ करते थे। उस समय दीवानी अदालतमें इसको जो सबोंसे अधिकार दे कर जो सामान्य जमता था, वह पञ्चायत सभा ही उसका चूड़ान्त विचार करती थी। व्यवसायी व्यक्तियोंमेंसे ही अथवा उस जातीय सम्प्रदायोंमेंसे ही पाँच आदमी चुन लिए जाते थे। सामरिक विभागका विचारकार्य सरदारों की पञ्चायत द्वारा निष्पन्न होता था। पञ्चायत द्वारा निर्धारित मुकदमेके कागजादि राजदरबारके कागजातोंके साथ मिले जाते थे। आज भी सभी स्थानोंमें निम्नश्रेणीके मध्य पञ्चायतका विचारकार्य दृष्टिगोचर होता है। जमा किसी मुकदमे में दानमें अथवा उत्तराधिकार लगे ही रहते हैं। इस प्रकारकी पञ्चायतमें केवल पाँच ही आदमी बैठते हैं सो नहीं, उनसे पाँचसे अधिक व्यक्ति भी नियत होते हैं। विचारके पहले वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षोंको ही पञ्चायत तथा उभयपक्षीय साक्षी और स्वजातीय सम्भ्रान्त व्यक्तियोंको निमन्त्रण दिलाना होता है। इसके बाद पञ्चायतके विचारमें जो निर्णय होता है उसे दोनों पक्ष माननेको बाध्य हैं। वर्त्तमान यूरोपीय शासनप्रणालीमें जिस प्रकार जूरीकी प्रथा तथा प्रजातन्त्र शासनप्रणाली प्रचलित है, उसी प्रकार इस देशमें पञ्चायत-प्रथा भी प्रचलित देखी जाती है। इस लोगोंके देशमें प्राचीनकालमें भी पञ्चायत प्रथा प्रचलित थी, शास्त्र-शासनादिसे उसका प्रमाण मिलता है।

पञ्चायतकी डिक्री।

इस लौकिक डिक्रीमें यह भी देखा जाता है कि जहाँ स्मृतिप्रसिद्धि नहीं है, वहाँ घाट रास्ता, पुष्करिणी, पानीका प्रबन्ध यहाँ तक कि चौकीदार आदिका नियोग भी इसी पञ्चायत द्वारा होता है।

पञ्चायतन (सं० क्लो०) पञ्चानामुपास्य देवरूपाणामायतनानां समाहारः। पञ्च उपास्य देवताका समाहार। एक प्रकारका टोना। तन्त्रसारमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है,—पञ्चायतनी टोनामें शक्ति विष्णु शिव, सूर्य और गणेश इन पञ्च देवताओंके ५ यन्त्र बना कर उनमें शक्ति, विष्णु शिव सूर्य और गणेश इन पञ्च देवताओंकी पूजादि करनी होती है। इसीसे इस का नाम पञ्चायतनी टोना पड़ा है। इसमें विशेषता यह है कि गुरु यदि इस पञ्चदेवताके मध्य शक्तिको प्रधान समझें, तो उनके यन्त्रको मध्यस्थलमें विन्यस्त कर पूजा करें और उस यन्त्रके ईशानकोणमें विष्णु अग्निकोणमें शिव, नैऋतकोणमें गणेश तथा वायुकोणमें सूर्यका यन्त्र बना कर इन सबकी पूजा विधेय है। यदि मध्यस्थलमें विष्णुकी अर्चनाकी जाय तो ईशानकोणमें शिव अग्निकोणमें गणेश, नैऋतकोणमें सूर्य और वायुकोणमें शक्तिका यन्त्र विन्यस्त कर पूजा करें। यदि मध्य भागमें शङ्करकी पूजा करनी हो तो ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें सूर्य, नैऋतकोणमें गणेश और वायुकोणमें पार्वतीकी पूजा; यदि मध्यमें सूर्यकी पूजा करनी हो, तो ईशानकोणमें शिव अग्निकोणमें गणेश नैऋतकोणमें विष्णु और वायुकोणमें भवानीपतिकी पूजा; यदि मध्य भागमें गणेशकी पूजा करनी हो तो ईशानकोणमें विष्णु अग्निकोणमें शिव नैऋतकोणमें सूर्य और वायुकोणमें पार्वतीवल्लभकी पूजा करनी होती है। इस क्रम व्यवस्थाको छोड़ कर अन्यत्र पूजा करनेसे अपराध होता है ऐसा शास्त्रविशारदोंने तन्त्रमें लिखा है। रामार्चनचन्द्रिका और शौनकागमतन्त्रके मतसे—मध्यस्थलमें विष्णु, अग्निकोणमें गणेश ईशानकोणमें सूर्य, वायुकोणमें पार्वती और नैऋतकोणमें महादेवकी पूजा विधेय है। किसी किसीके मतसे ईशानादिकोण विभागमें विकल्प होता है। तन्त्रादि द्वारा पञ्चक करके पञ्चमें पूजा करनी होती है। पूजाके बाद ५ बार प्रदक्षिण और नमस्कार करके जप समाप्त करना पड़ता है। पाठ

देवताकी पूजाके बाद भद्रदेवतापूजा, पीछे पीठन्यास प्राणप्रतिष्ठा, आवाहन आदि करके पूजा करना विधेय है। प्रतिष्ठित यन्त्रादिस्थलमें देवताकी पुष्पाञ्जलि दे कर भद्रदेवताकी पूजा करनी होती है। श्यामा, भैरवी, तारा, छिन्नमस्ता, मञ्जुघोष और रुद्रमन्त्र इन सबकी पंचायतनोद्देश्या पण्डितोंका अभिमत नहीं है।

(तन्त्रसार)

पञ्चायुध (सं० पु०) विष्णुका एक नाम।

पञ्चारी (सं० स्त्री०) पंचजन्यसंख्यामृच्छतीति ऋगतौ अण्, (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) ततो गौरादित्वात् ङीष्। शारिफलक, चौसरकी बिसात।

पञ्चार्चिस् (सं० पु०) पंच अर्चिः यस्य। बुधग्रह।

पञ्चाल (सं० पु०) पचि विस्तारवचने कालन् (तमिविशिविडिमृणिकुलीति। उण् १।११७) १ देशविशेष। विष्णुपुराणमें पंचाल नामकी इस प्रकार व्युत्पत्ति लिखी है—महाराज हर्यश्वके ५ पुत्र थे, मुद्गल, सृञ्जय, बृहदिषु, प्रवीर और काम्पिल्य। पिता अपने पुत्रोंको देख कर कहा करते थे कि ये पांचों मेरे अधीन ५ देशों की रक्षा भलीभांति कर सकते हैं। इसीसे वे सब देश पंचाल नामसे प्रसिद्ध हुए।

महाभारतमें लिखा है, कि नीलराजकी पांचवीं पीढ़ीमें हर्यश्व नामक राजा हुए। महाराज हर्यश्व अपने भाईसे लड़ कर अपनी ससुराल मधुपुरी चले गये और ससुर मधुकी सहायतासे उन्होंने अयोध्याके पश्चिमके देशों पर अधिकार कर लिया। जब लोगोंने आ कर उनसे अयोध्याके राजाके आक्रमणकी बात कही, तब उन्होंने पांच पुत्रोंको और देख कर कहा, ये पांचों हमारे राज्यकी रक्षाके लिए अलम् (पंचालम्) हैं। तभीसे उनके अधिकृत देशका नाम पंचाल पड़ा।

हरिवंशमें 'हर्यश्वको जगह बाह्याश्व ऐसा नाम लिखा है। उनके मुद्गल, सृञ्जय, बृहदिषु, यवीनर और क्रमिलाश्व नामक पांच महावीर्यशाली अमृततुल्य पुत्र थे। उन्हीं पंचपुत्रोंसे इस प्रदेशका पंचाल नाम पड़ा था।

तन्त्रसारमें लिखा है—

"कुरुक्षेत्रात् पश्चिमेषु तथा चोत्तरभागतः।
इन्द्रप्रस्थान्महेशानि दशयोजनकद्वये॥
पंचालदेशो देवेशि सौन्दर्यगर्वभूषितः॥"

(शक्तिसंगम)

कुरुक्षेत्रके पश्चिम और इन्द्रप्रस्थके उत्तर बीस योजन विस्तृत भूभाग पंचालदेश कहलाता था।

वर्त्तमान अयोध्याप्रदेश और दिल्लीनगरके उत्तर-पश्चिमस्थ गङ्गानदीके उभयतीरवर्त्ती स्थान इसी राज्यके अन्तर्गत थे। पर महाभारतमें हिमालयके अंचलसे ले कर चंबल तक फैले हुए गङ्गाके उभय पार्श्वस्थ देशका ही वर्णन पंचालके अन्तर्गत पाया है। अति प्राचीन वैदिक ग्रन्थादिमें भी पंचालराज्य और वहांके अधिपति राजाओंका उल्लेख देखनेमें आता है। रामायणमें लिखा है—

'ते हस्तिनापुरे गंगां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखा ययुः।
पाञ्चालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजाङ्गलम्॥"

(राम० २।६८।१३)

इससे अच्छी तरह अनुमान किया जाता है, कि वर्त्तमान दिल्ली नगरके उत्तर और पश्चिमवर्त्ती स्थानसमूह पांचालराज्यके अन्तर्भुक्त था। महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है,—

पंचालराज पृषतने अपने लड़के द्रुपदको शास्त्राध्ययनके लिए महामुनि भरद्वाजके आश्रममें भेजा था। यहां द्रोणाचार्यके साथ द्रुपदने खेल कूद तथा पढ़नेलिखनेमें बड़े चैनसे दिन बिताते थे। पिताके मरने पर द्रुपद पंचालके राजा हुए। एक समय द्रोण जब द्रुपदके समीप पहुंचे, तो दाम्भिक पांचालराजने उनकी अवहेला तथा उपहास किया। इस पर रुष्ट हो कर द्रोणने पञ्चपाण्डवकी सहायतासे छत्रावतीके* राजा द्रुपदको निर्जित और कैद कर लिया था। अन्तमें उन्होंने उनके राज्यको दो भागोंमें बांट कर उत्तरभाग तो आपने ग्रहण किया और दक्षिणभाग द्रुपदके हाथ रहने दिया।

भागीरथीके उत्तरतीरस्थ छत्रावती-नगरीसमन्वित स्थान उत्तर पञ्चाल और द्रुपदाधिकृत भागीरथीके

* महाभारतोक्त यह नगरी अहिक्षेत्र या अहिच्छत्र नामसे प्रसिद्ध था। अहिच्छत्र शब्द देखो।

अहिच्छत्रमय भूभाग दक्षिण पञ्चाल कहलाता था। दक्षिण पञ्चालकी राजधानी काम्पिल्यनगरमें थी। इसी राजधानीमें पाञ्चाली अर्थात् द्रौपदीका स्वयम्वर रचा गया था।

प्राचीन दक्षिण पञ्चालराज्यका पूर्ण चिह्न अभीतक नहीं मिला। किन्तु आज तक अलग और एटा जिलेके अन्तर्वर्ती दोआबप्रदेशमें बहुतसे प्राचीन खण्डहर पाये और कितने स्तम्भ रत्नादि पाये गए हैं। यहां तथा अन्य पञ्चालके अहिच्छत्रादिपुरोंमें भी सब बौद्ध स्थानों पर तोड़ फोड़ और धर्मान्धताकी मूर्त्तियां पाई गई हैं। ये बौद्ध और जैनधर्मके प्रतिपत्तिकालमें स्थापित हुई थीं, ऐसा बोध होता है। पुरातत्त्ववित् कनिंघम इन सब मूर्त्तियोंको देख कर लिख गये हैं कि ये मूर्त्तियां ईसाजन्मके प्रथम शताब्दीसे ले कर ७वीं शताब्दीकी होंगी।(१) रोहिलखण्डके अन्तर्गत अहिच्छत्रमें भास्करकार्यपूर्ण एक प्राचीन चतुरस्र ईंटों भारतीय वास्तु पाई गई है।

अहिच्छत्रमें प्राप्त मत्स्यपाणकी शिलालिपिसे हम लोग मालूम कर सकते हैं कि पञ्चालके अन्तर्गत कोशाम्बी नगरमें राष्ट्रकूटसम्बन्धीय राजाओंने अश्वमेधयज्ञ सम्पादन किया था। उस शिलालिपिमें अश्वमेधके पुत्र मन और [illegible] १० राजाओंके नामोंका उल्लेख है।

पञ्चालः [illegible] गंगा या [illegible]। २ पञ्चालदेशवासी। ३ पञ्चाल देशका राजा। ४ एक ऋषि जो बाभ्रव्य गोत्रके थे। ५ महादेव, शिव। ६ छन्दोभेद एक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें एक तगण होता है। ७ एक विषैले कीटका नाम। ८ विषयुक्त कीट, विषैला कीड़ा।

पञ्चाल—सौराष्ट्रके अन्तर्गत एक उपविभाग। इसके पश्चिममें बरावदा और पूर्वमें भावनगर है। आज कल यह स्थान देवथान नामसे प्रसिद्ध है। यह जनपद प्रसिद्ध आनर्तराजवंश [illegible] सौराष्ट्र मध्यस्थित (वडनगर अधीन) आनन्दपुर नामसे भी ज्ञात हुआ है। कनिंघमने लिखा है कि आनन्दपुरसे वलभी प्रायः ८० कोस है, किन्तु यथार्थमें आनन्दपुर वलभीसे ५५ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। पूर्व समयमें वलभी और आनन्दपुरके मध्य जो सब मार्ग थे वे क्रमसे बन्द और दुर्गम थे। इस कारण उस समय घूम कर (अर्थात् मोहा हो कर आनेमें करनेमें प्रायः ११५से १२० कोसका रास्ता तय करना) जाना होता था। यही आनन्दपुर यथार्थमें देवथान कहलाता था। यहां अनेक प्राचीन निदर्शन पाये जाते हैं।

महाभारतमें लिखा है—इक्ष्वाकुवंशसम्भूत राजा हर्यश्व अपने भाईसे पराजित हो निकाल दिए जाने पर भाग चले गये। साथमें उनकी एकमात्र स्त्री मधुमती थी। मधुमतीके कहनेसे हर्यश्व मधुवन चले गये। मधुदानवने जामाताके आगमन पर बड़े प्रसन्न हो मधुवनको छोड़ समस्त सौराष्ट्रराज्य उन्हें प्रदान किया और आप लवणासुर लिए समुद्रके किनारे चल दिये। हर्यश्व भी वहां अपर आनर्त नामक एक राजधानी बसा कर वहीं आनन्दसे रहने लगे।

प्रवाद है, कि सौराष्ट्रके अन्तर्गत इसी पञ्चाल जनपदमें द्रौपदीका जन्म हुआ था, इसी कारण उस स्थानको अभी देवथान कहते हैं। यहांके वर्त्तमान थान नामक नगरके प्राचीनत्वकी कथा भी लिखने लायक है। यह स्थान पहले 'त्रिनेत्रेश्वर' नामसे प्रसिद्ध था। स्कन्दपुराणान्तर्गत त्रिनेत्रेश्वर माहात्म्यमें उसकी वर्णना पाई जाती है। सौराष्ट्रमें आनन्दपुरके पूर्व कीर्त्तियोंका आख्यान तथा बहुत [illegible] भीमार्जुन और अन्य आदिम समयका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है कि इसीमें सौराष्ट्रान्तर्गत हर्यश्व का बनाया हुआ आनर्त पुर ही परवर्त्तिकालमें आनन्दपुर या 'देवथान' नामसे मशहूर हुआ है।

यहां एक अत्यन्त सुन्दर मन्दिर है जिसे सब कोई पाण्डवोंका निर्मित बतलाते हैं। इसके अलावा और अन्यान्य मन्दिरोंमें नाग देवताओंकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। इस उपविभागमें वासुकि आदि सर्पराजाओंकी पूजा प्रचलित है।

आनन्दपुरसे ५ कोस पूर्व [illegible] नगरके समीप सुन्दर पर्वत और नगर अवस्थित है। इस पर्वत पर पहले

(१) Cunningham's Arch. Report Vol I p 264.

धुम्र नामक एक राक्षस रहता था। मुङ्गीपुर पाटनके अधिपति शाकवन्धि शालिवाहनके पुत्र गोहिलवंशीय राजा रसालुने उस राक्षसका नाश किया था।

आनन्दपुरके राजाओंकी प्रतिष्ठाप्रकाशक अनेक कविता और दोहा प्रचलित हैं जिनसे कितने ऐतिहासिक आभास पाये जाते हैं। लेकिन उनमें सन् तारीख आदिकी गड़बड़ी दीख पड़ती है। कनकके पुत्र अनन्तरायने पंचालके अन्तर्गत अनन्त वा आनन्दपुर नगर बसाया। इनके वंशधरोंने १९२० सम्वत् तक यहां का शासन किया था। शेष वंशधर अमरसिंहके अधिकारकालमें दिल्लीपति महम्मद तुगलक और गुजरातके सुलतानोंकी उपर्युपरि चढ़ाईसे पंचालराज्य ध्वंसप्राय हो गया। क्रमशः चारों ओर वनाकीर्ण हो जानेसे काठोकी सरदारोंने १६६४ सम्वत्में प्राचीन ध्वंसप्राप्त नगरके शेष ऐश्वर्यका उपभोग करनेके लिये इस वन्यभूमि पर अपना दखल जमाया।

वसुबन्धुके शिष्य स्थिरमती स्थविर इसी देवपञ्चाल नगरमें रहते थे। तारानाथकृत ग्रन्थमें मगधराजवंशावलीके वर्णनमें लिखा है, कि गम्भीरपक्ष नामक किसी बौद्धराजाने पञ्चालनगरमें आ कर राज्य स्थापन किया और ४० वर्ष तक वे इसी नगरमें रहे। कहना नहीं पड़ेगा, कि यही नगर बौद्धप्रभावापन्न आनन्दपुर है। परिव्राजक यूएनचुवङ्गके समयमें यहांके १० सङ्घारामोंमें प्रायः हजार यति सम्मतीय शाखाका हीनयान मत सीखते थे।

पञ्चाल—दाक्षिणात्यवासी एक परिश्रमी जाति। ये लोग हमेशा एक जगह वास नहीं करते। जब जहां ये रहते हैं, तब वहीं अपने रहनेके लिये एक बासकी झोंपड़ी बना लेते हैं। इनके नामकी उत्पत्तिके विषयमें लोगोंका कहना है, कि उनको पांच 'चाल' अर्थात् सोना, रूपा, लोहा, तांबा और पीतल, इस पंचधातुने उनकी जीविका चलती है, इसीसे उनका पंचाल नाम पड़ा है। स्थानभेदसे ये लोग कहीं कहीं रंगसाज और पत्थरके भी काम करते हैं। ये लोग जनेऊ पहनते हैं*। दाक्षिणात्य ब्राह्मणोंके साथ इनका हमेशा वैरिभाव होते देखा जाता है। ब्राह्मणगण दक्षिणमार्गी और पंचालगण वाममार्गी हैं। कुछ प्रांतोंमें बौद्धाचारी हो जानेसे इनकी शिष्यसंख्या बहुत थोड़ी है। आज भी ये लोग छिप कर बुद्धकी पूजा करते हैं, किन्तु दिखलानेके लिये हिन्दू देवदेवियोंका पूजन करते हैं। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि ये लोग पहले पंचगोत्र मान कर चलते थे। शायद इसी कारण धीरे धीरे ये लोग अपभ्रंशमें 'पंचाल' कहलाने लगे हैं। इनका कहना है कि स्वजातिके मध्य बुद्धदेवकी पूजाके लिए इनके स्वतन्त्र पुरोहित हैं। एतद्भिन्न कोङ्कण, कर्णाट और दक्षिण पंचालोंके मध्य बौद्ध धर्मविषयक अनेक ग्रन्थ हैं। किन्तु पूना आदि स्थानोंके पंचालगण प्राचीन ग्रन्थादिकी कथाओंको जरा भी नहीं मानते। ये लोग अपनेको विश्वकर्माके वंशज बतलाते हैं।

पञ्चालक (सं० पु०) अग्नि प्रकृति कीटविशेष।

पञ्चालचण्ड (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

पञ्चालपदवृत्ति (सं० पु०) छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्तका नाम।

पञ्चालर—मन्द्राजप्रदेशके चित्तूर जिलावासी बढ़ई जाति। पांच श्रेणियोंमें विभक्त होनेके कारण ये लोग पञ्चालर कहलाते हैं। ये लोग अपनेको विश्वब्राह्मण बतलाते हैं और जनेऊ पहननेके बाद आचार्यकी उपाधि धारण करते हैं। यथार्थमें ये लोग ब्राह्मणोंको अपवित्र और विद्वेषीय समझ कर उनको घृणा करते हैं। इन लोगोंकी धारणा है कि पहले पांच वेद थे, पीछे वेदव्यास आदि अन्यान्य ऋषियोंने तोड़ ताड़ कर चार वेद कायम किये।

धर्मार्थ क्रिया काण्ड, विवाह आदि कार्य ये लोग अपनेसे ही कर लेते हैं। स्वजातिमेंसे ही किसीको अपना 'गुरु' बनाते हैं। वही मनुष्य सभी शुभ कार्योंमें उपस्थित हो कर कार्य कराता है। यहांके पुरोहित ब्राह्मणगण ऐसे आचार पर असन्तुष्ट हो कर उनका विवाह-'पण्डाल' तोड़ फोड़ डालनेकी चेष्टा करते हैं। इधर पञ्चालरगण भी विश्वब्राह्मणके अनुष्ठेय 'पण्डाल'-प्रचारको विवाहके समय विशेषरूपसे सम्पादन करनेको

* वसुपके अधिकार ले कर वीरशैवों और वीरवैष्णवोंमें एक समय विवाद खड़ा हुआ था। इसी सुअवसरमें पंचालोंने उपवीत धारण किया।

कोशिश करते हैं। इस विचारको ले कर लोगोंमें समय समयके मध्य अकसर विवाद हुआ करता है। कहीं कहीं देखा गया है, कि इस प्रकार मतके झगड़ेने भी पदाघात तक भी पहुंच गये हैं और आखिरको विप्रश्रावकोंकी ही जीत हुई है।

पञ्चाननने किस प्रकार वाममार्गियोंके समयमें हुए इसके उत्तरमें वे कहते हैं कि जैनराज परिमर्दके समयमें वेदव्यास नामक कोई ब्राह्मण राजदरबारमें आये और राजपरिवारके पवित्र जातकर्मादि करानेके लिए राजासे प्रार्थना की। इस पर राजाने जवाब दिया कि पञ्चाननगण (विप्र-श्रावक) इस विषयमें विशेष कार्यदक्ष हैं, इस कारण आपकी प्रार्थना मैं स्वीकार नहीं कर सकता। राजाकी मृत्युके बाद उस व्यास पुनः दरबारमें पहुंचे। राजपुत्रने भी पूर्ववत् उत्तर दिया। इसके बाद व्यासने राजाके एक दूसरे लड़केके पास जा कर पूर्वतन राजा और पञ्चाननके सम्बन्धमें अनेक तरहकी झूठी बातों से उसका कान भर दिया। इस प्रकार राजपुत्रने उनको अपनी ओर खींच कर भविष्यमें पुनः उनके पद पर बरण करनेके लिये भी उनसे स्वीकारता ली थी। कुछ दिन बाद जब राजपुत्र सिंहासन पर बैठे तब अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके पालनमें विशेष यत्नवान् हुए। किन्तु वे पञ्चाननोंको उस अधिकारसे च्युत न कर सके। दोनोंके बीच सुलह कराना तथा क्रियाकलापादिको बांट देना ही उनका उद्देश्य था। पञ्चाननगण इस प्रस्ताव पर सहमत न हुए। इस पर राजाने उन्हें निकाल भगाया। पीछे राज्य भरमें आग लगा कर अशान्ति फैला दी। प्रजाने जब देखा कि पञ्चाननको धर्मकार्य करनेका पूरा अधिकार नहीं दिया गया तब उन्होंने चीता-चारी छत्र आगे ही दी। इस प्रकार चारों ओर हलचल मच गई। व्यासको समझानेसे राजाने जनसाधारणमें यह घोषणा कर दी, कि जो राजपक्षका अवलम्बन करेंगे वे दक्षिणाचारी और जो पञ्चाननोंका पक्षावलम्बन करेंगे, वे वामाचारी समझे जावेंगे।

पञ्चाननोंके प्रति इस प्रकार अपमानसूचक बर्ताव देख कर निकटवर्त्ती राजाओंने उनके राज्य पर आक्रमण किया। अन्तमें अत्यधिक लोभ और असहाय हो कर साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। व्यास भी उस समय काशीधामको भाग गये। पूर्वोक्त उपाख्यान ही दक्षिणाचारी और वाममार्गियोंकी उत्पत्तिका एकमात्र कारण है।

पञ्चाग्नि (सं॰ स्त्री॰) पाञ्चाग्नि देखो।

पञ्चालिका (सं॰ स्त्री॰) प्राच्य पञ्चायत। नेपालकी प्राचीन शिलालिपिमें इस पञ्चालिकाका उल्लेख है।

पञ्चालिका (सं॰ स्त्री॰) पञ्चाल प्रपञ्चार्थ अस्ति अस्, पृषोदरादिवत् साधु कार्ये कन् टापि अत इत्वं च। वस्त्रादिकृत पुत्तली, पुतली गुड़िया।

पञ्चाली (सं॰ स्त्री॰) पञ्चाल गौरादित्वात् ङीष्। १ वस्त्रादिकृत पुत्तलिका, पुतली गुड़िया। २ गीतिविशेष, एक प्रकारका गीत। ३ पाञ्चाली, द्रौपदी। ४ सारि-फलक, चौसरकी बिसात।

पञ्चालीश्वर—तूनाके अन्तर्गत एक प्राचीन शिवमन्दिर। अभी यह वृहत् मन्दिर भग्नावस्थामें पड़ा है।

पञ्चावट (सं॰ स्त्री॰) पञ्च विस्तृतमुरोऽस्य अमायवटति पञ्च-अट-अच्। १ उपवीत, ब्राह्मणका यज्ञोपवीत विशेष यह बनिया या लड़कोंको किसी त्योहार पर माताकी तरह पहनाया जाता है। पञ्चानां वटानां समाहारः, निपातनात् साधुः। २ पञ्चवटी।

पञ्चावयव (सं॰ स्त्री॰) पांच भागोंमें विभक्त यज्ञीय चरु प्रभृति।

पञ्चावर्त्तिन् (सं॰ स्त्री॰) पञ्चधा आवर्त्तं अस्त्यस्य। पञ्चधा वर्त्तित चरु प्रभृति।

पञ्चावर्त्तीय (सं॰ त्रि॰) पञ्चावर्त्त सम्बन्धीय।

पञ्चावयव (सं॰ पु॰) पञ्च प्रतिज्ञादयोऽवयवा यस्य। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण उपनय और निगमनात्मक पञ्चावयवयुक्त न्यायवाक्य। न्यायके यही पांच अवयव हैं।

पञ्चावस्थ (सं॰ पु॰) पञ्चसु भूतेषु आकारेषु अवस्था यस्य। शव, मृत देह। देहावसान होने पर पञ्चभूत अपने अपने कारणमें लीन हो जाता है।

पञ्चाविक (सं॰ क्ली॰) भेड़ीका दही, दूध, घी, मूत्र और मल यही पांच द्रव्य।

पञ्चाशी (सं॰ स्त्री॰) पञ्च अवयवा यस्याः समासान्तः डीष्। जाति वयोऽवयवपरिमित उपचित

स्त्री गवी, वह गाय जिसका बछड़ा केवल ढाई वर्षका हुआ हो।

पञ्चाश (सं० त्रि०) पचासवां।

पञ्चाशक (सं० त्रि०) पंचाश स्वार्थे कन्। पचास, साठ से दश कम।

पञ्चाशत् (सं० त्रि०) पंचदशतः परिमाणस्य (पंक्ति विंशतित्रिंशदिति। पा ५।१।५९) इति निपातनात् साधुः। १ संख्याविशेष, पचास। २ पंचाशसंख्यायुक्त, जिसमें पचासकी संख्या हो।

पञ्चाशत्तम (सं० त्रि०) पंचाशत् तमप्। पंचाशत् संख्याका पूरण, पचासवां।

पञ्चाशति (सं० त्रि०) पचासी।

पञ्चाशत्क (सं० त्रि०) पंचाशत्सम्बन्धीय, पचासका।

पञ्चाशद्भाग (सं० पु०) ५० भाग।

पञ्चाशिका (सं० स्त्री०) पञ्चाशिन् स्वार्थे-क, टाप्, टापि अत इत्वं। १ पंचाश अधिक शत वा सहस्रयुक्त। २ वह पुस्तक जिसमें पचास श्लोक वा कविता आदि हों।

पञ्चाशिन् (सं० त्रि०) पंचाशत्-डिनि। पंचाशत् अधिक शत और सहस्र संख्या।

पञ्चाशीत (सं० त्रि०) पचासीवां।

पञ्चाशीति (सं० स्त्री०) पंचाधिका अशीतिः। पचासीकी संख्या।

पञ्चाशीतितम (सं० त्रि०) पंचाशीति तमप्। पचासीवां।

पञ्चास्य (सं० पु०) पंचं विस्तृतं आस्यं यस्य। १ सिंह। पंचानि आस्यानि यस्य। २ शिव, महादेव। (त्रि०) ३ पंचमुखविशिष्ट, पांच मुखवाला।

पञ्चाह (सं० पु०) १ पंचदिनव्यापी यज्ञीय कार्य, एक यज्ञका नाम जो पांच दिनमें होता था। २ सोमयागके अन्तर्गत वह कृत्य जो सुत्याके पांच दिनोंमें किया जाता है। (त्रि०) ३ पांच दिनमें होनेवाला।

पञ्चाहिक (सं० त्रि०) पांच दिनमें होनेवाला।

पञ्चिका (सं० स्त्री०) पुस्तकादिका विभाग वा खण्ड, पांच अध्यायों वा खण्डोंका समूह।

पञ्चिन् (सं० त्रि०) पंचपरिमाणस्य डिनि। पंच परिमाणयुक्त।

पञ्चीकरण (सं० क्ली०) पंचभूतानां भागविशेषेण मिश्रीकरणम्। अपंचतात्मक वस्तुका पंचात्मकतासम्पादन पंचभूतोंका विभागविशेष। वेदान्तसारमें पंचीकरणका विषय इस प्रकार लिखा है—भूतोंकी यह स्थूलस्थिति पञ्चीकरण द्वारा होती है जो निम्नलिखित प्रकारसे होता है। पांचों भूतोंको पहले दो समान भागोंमें विभक्त करते हैं, फिर प्रत्येकके प्रथमार्द्धको चार भागोंमें बांटते हैं। पुनः इन सब चारों भागोंको ले कर अलग रखते हैं। अन्तमें एक एक भूतके द्वितीयार्द्धमें इन बीस भागोंमेंसे चार भाग फिरसे इस प्रकार रखते हैं कि जिस भूतका द्वितीयार्द्ध हो उसके अतिरिक्त शेष चार भूतोंका एक एक भाग उसमें आ जाय, इस को पंचीकरण कहते हैं। इस विषयमें श्रुति प्रमाण है। प्रत्येक पंचभूतको समान दो भागोंमें बांट कर पीछे प्रत्येक पञ्चभूतके प्रथम भागको चार अंशोंमें करते हैं। बादमें अपर पंचभूतके प्रत्येक प्रथमांशमें उन चार अंशोंका एकांश कर योग करनेसे पंचीकृत होता है। श्रुतिमें पञ्चीकरणका साफ साफ उल्लेख नहीं रहने पर भी त्रिवृत्करण श्रुति द्वारा वह सिद्ध हुआ है। सभी भूत पंचीकृत हो कर आकाशादि पृथक् पृथक् नामसे व्यवहृत हुआ करते हैं। भूतोंके इस प्रकार पञ्चीकरणकालमें आकाशमें शब्दगुण; वायुमें शब्द और स्पर्श, अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप, जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथिवीमें शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध और रस अभिव्यक्त होता है।

इस प्रकार पंचीकृत पंचभूतसे परस्पर ऊपरमें विद्यमान जो भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, मह, जन, तप और सत्यलोक हैं तथा नीचेमें विद्यमान जो अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल लोक, ब्रह्माण्ड, चतुर्विध स्थूल शरीर और इनके भोगोपयुक्त अन्नपानादि हैं, वे सबके सब उत्पन्न हुए हैं। पंचीकृत पंचभूत ही इनकी उत्पत्तिका कारण है। (वेदान्तसार)

देवीभागवतमें पंचीकरणका विषय इस प्रकार लिखा है—

ज्ञान और क्रियासंयुक्त निखिल कर्मके घनीभूत होने पर वह ओङ्कार मन्त्रका वाच्य होता है। तत्त्वदर्शी महोदयोंने इस ओङ्काररूप मायाबीजको ही अखिल

ब्रह्माण्डका आदि तत्त्व माना है। इस ब्रह्माण्डनाथ मायाशोधरूप आदि तत्त्वसे प्रथम शब्दतन्मात्ररूप पञ्चीकृत आकाश उत्पन्न होता है। इस आकाशसे स्पर्शात्मक वायु, वायुसे रूपात्मक तेज, तेजसे रसात्मक जल और जलसे गन्धगुणात्मक पृथ्वी उत्पन्न होती है। इस पञ्चीकृत पञ्चभूतसे ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है जो लिङ्गदेह नामसे परिचित है। यह लिङ्गदेह मन प्राणात्मक है और इसका अभिमानी सूक्ष्म देह कहते हैं। यह पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत पञ्चीकृत हो कर जगत् उत्पादन करता है। इस पञ्चीकृत भूतका कार्य विराट् देह है, इसीका अभिमानी वैश्वानर कहलाता है। इस पञ्चीकृत पञ्चभूतस्थित प्रत्येकका सात्त्विक भाग श्रोत्र और त्वगादि पञ्चज्ञानेन्द्रियकी उत्पत्ति होती है। फिर इन ज्ञानेन्द्रियोंमें प्रत्येकका सात्त्विक मिल कर एक अन्तःकरण होता है। पञ्चीकृत पञ्चभूतमें प्रत्येकके रजो अंशसे वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ नामक पञ्चकर्मेन्द्रियकी उत्पत्ति होती है। इनमें प्रत्येकका रजो अंश मिल कर प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यह पञ्च वायु उत्पन्न होता है। इस प्रकार पञ्चीकृत पञ्चभूतसे ही सभी उत्पन्न हुए हैं।

(देवीभा० ७।१२ अ०)

श्रुतिमें त्रिवृत्करणका विषय लिखा है। त्रिवृत्करणसे पञ्चीकरणका उपलब्धि होती है। सुरेश्वराचार्यने पञ्चीकरण वार्त्तिकमें इसका विषय बढ़ा चढ़ा कर लिखा है।

पञ्चीकृत (सं० त्रि०) जिसका पञ्चीकरण हुआ हो।

पञ्चेध्म (सं० पु०) पञ्चाग्निहोत्रे निर्दिष्टः। पञ्चेध्म-साध्य होमभेद।

"षष्ठो विहारो पञ्चेध्मीयेन च।" (आपस्तम्ब)

पञ्चेन्द्र (सं० त्रि०) पञ्च इन्द्राद्यो देवता यस्य। इन्द्रादि पञ्चदेवताके उद्देशसे देय हविः प्रभृति।

पञ्चेन्द्रिय (सं० क्ली०) पञ्चानां ज्ञानेन्द्रियाणां समाहारः। श्रोत्र त्वक्, नेत्र रसना और घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय। इनके सिवा पाँच कर्मेन्द्रिय हैं, यथा— वाक्, पाणि, पायु पाद और उपस्थ। इन्द्रिय ग्यारह हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक मन।

पञ्चेषु (सं० पु०) पञ्च इषवो यस्य। कामदेव जिनके पाँच इषु या शर हैं।

पञ्चोपविष (सं० क्ली०) पञ्चसंख्यकं उपविषम्। उपविष पञ्चक पाँच प्रकारके उपविष। स्नुही अर्क, करवी, विषलाङ्गली और विषमुष्टि ये पाँच द्रव्य पञ्चोपविष कहलाते हैं।

पञ्चोषण (सं० क्ली०) चित्रक, मिर्च, पिप्पली, पिप्पली मूल और चव्य नामक पाँच ओषधियाँ। (राजनि०) वैद्यनिघण्टुके मतसे पञ्चकोल पिप्पली पिप्पलीमूल, चव्य चित्रक और सोंठी नामक पञ्चविध द्रव्य।

पञ्चोष्मन् (सं० पु०) पञ्च ऊष्माणः समाहारात् कर्म- धारयः। आकाशादि भूतस्थित पञ्चाग्नि शरीरके भीतर भोजन पचानेवाली पाँच प्रकारकी अग्नि।

पञ्चौदन (सं० पु०) पञ्चधा विभक्तः ओदनः। १ पञ्चकृति द्वारा पाँच भागमें विभक्त ओदन पाँच ऋत्विकोंके बीच भागोंमें बाँटा हुआ चावल। २ एक यज्ञका नाम।

पञ्जनियार—बम्बई प्रदेशकी शोलापुरवासी एक जाति। ये लोग काले, मजबूत और डीलडौलमें उतने बड़े नहीं होते। पुरुष दाढ़ी रखते और मुसलमानके जैसा कपड़ा पहनते हैं। स्त्रियाँ अपेक्षाकृत सुन्दरी और सुखी होती हैं। इनका आभूषण मराठोंकी तरह का है। स्त्री पुरुष दोनों ही कष्टसहिष्णु होते हैं। इन लोगोंमें एक सरदार होता है। ये लोग आपसमें ही विवाह-शादी करते हैं। ये यद्यपि अपनेको सुन्नी-सम्प्रदायभुक्त हैं, किन्तु सभी कलमा नहीं पढ़ते।

पञ्जर (सं० क्ली०) पञ्ज्यते रुध्यते उदरपञ्चकमनेन, पचि-रोधे अरन्। १ कायाश्रित देहको अस्थिसमूह, शरीरका अस्थिपञ्जर। २ शरीरका वह बड़ा भाग जो पसलियों तथा जिस ढाँचे और छाती वालोंमें कोश या आवरण आदिके रूपमें ऊपर और रीढ़वाले जोड़में जुड़ी हड्डियोंके अंशके रूपमें भीतर होता है। हड्डियोंका ठठर या ढाँचा जो शरीरके कोमल भागोंको अपने ऊपर ठहराये रहता है अथवा बन्द या रक्षित रखता है। ठठरी, कङ्काल। ३ पक्षी बन्धन पक्ष्यादिगृह। ३ पक्षी आदिका बन्धनगृह, पिंजड़ा। ४ देह, शरीर। आत्मा

शरीरमें रुद्ध रहती है, इसलिए पंजर शब्दसे शरीरका बोध होता है। ५ कलियुग। ६ गायका एक संस्कार ७ कोलकन्द।

पञ्जरक (सं॰ पु॰) खांचा, झाबा, बेंत या लचीली डण्ठलों आदिका बुना हुआ बड़ा टोकरा।

पञ्जराखेट (सं॰ पु॰) पञ्जरेणेव यन्त्रेण आखेटो मृगया यस्मात्। मछली पकड़नेका यन्त्रविशेष, टापा।

पञ्जल (सं॰ पु॰) पंज-अलच्, कोलकन्द।

पञ्जाव—भारतवर्षके उत्तर पश्चिम सीमान्तमें अवस्थित एक देश। प्राचीन ग्रन्थादिमें यह स्थान पञ्चनद नामसे प्रसिद्ध है। झेलम, चनाव, रावी, व्यासा, शतलज नामक पांच नदियां इस जनपदके मध्य प्रवाहित हो कर सिन्धु नदीमें गिरती हैं। मुसलमान ऐतिहासिकोंने पंचनदीके कारण पंचनद प्रदेशका नाम स्वजातीय भाषामें पंज अर्थात् पंच और आव (अप्) अर्थात् जल इस अर्थमें 'पञ्जाव' नाम रखा है।

पहले पंचनद और काश्मीर दो स्वतन्त्र जनपद थे। पञ्जावकेशरी रणजित्‌सिंहके अभ्युदयमें उक्त दो जनपद तथा पार्श्ववर्ती अनेक भूभाग पञ्जावके सीमाभुक्त हुए थे। वर्त्तमान अंग्रेजी शासनमें काश्मीर प्रदेशके स्वतन्त्रभावसे अंगरेज गवर्मेंट कर्त्तृत्वाधीन रहनेसे उसका शासनकार्यादि निर्वाह होता है। किन्तु देशीय सरदारोंके अधीन पञ्जावके अवशिष्ट छोटे छोटे राज्य पञ्जावके छोटे लाटके अधीन हैं। छोटे छोटे सामन्त राज्योंको ले कर सारा पञ्जावप्रदेश भारतवर्षका दशांश होगा और जनसंख्या भी प्रायः भारतवर्षकी एक दशांश होगी। इसके उत्तरमें काश्मीरराज्य, ब्लास और चीनका सामन्तराज्य; पूर्वमें हिमालयविहित यमुनानदी, युक्तप्रदेश और चीनसाम्राज्य; दक्षिणमें सिन्धुप्रदेश, शतद्रुनदी और राजपूताना तथा पश्चिममें अफगानिस्तान और वेलुचिस्तानराज्य है। इसकी राजधानी लाहोर है, किन्तु मुगलराजत्वकी राजधानी दिल्लीनगरका इतिहास ही उल्लेखयोग्य विषय है। यह भूभाग २७° ३९´ से ३४° २´ उ० अक्षा० और ७०° ३७´ से ७७° ५०´ पू० देशा० के मध्य अवस्थित है। इसका भूपरिमाण कुल १४२०५१ वर्गमील है। [illegible]

पञ्जाब कहनेसे एकमात्र शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा और इरावती-परिवेष्टित भूखण्डका ही बोध होता है। किन्तु वर्त्तमान बन्दोबस्तमें सिन्धुसागर दोआब, सिन्धु और सुलेमान पहाड़के मध्यस्थित डेराजात विभाग और शतद्रु तथा यमुनाके मध्यवर्ती सरहिन्दकी उपत्यका भूमि तक इसकी सीमामें सन्निविष्ट हुई है। पहले लिखा जा चुका है, कि पञ्जाबका कुछ अंश अंग्रेजोंके अधीन और कुछ सामन्तराजाओंके कर्तृत्वाधीन है। सारा पञ्जाव प्रदेश अंगरेजोंके अधीन ३२ जिलाओंमें और देशस्थ सामन्तराजाओंके अधीन ३४ छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त है। इन सब राज्योंमें से पटियाला और बहावलपुर सबसे बड़ा तथा चम्बा मन्दी, सुकेत, नाहन, बिलासपुर, बसहर, नालगढ़ आदि हिमालय पर्वतस्थ २० सामन्तराज्य मझोरा और दरकुटीका सामन्तराज्य सबसे छोटा है।

यहांकी पर्वतमाला साधारणतः ४ भागोंमें विभक्त है। उत्तरपूर्वांशमें हिमालयपर्वत संलग्न शिवालिक, बरा, लाचा, पीरपञ्जाल आदि पर्वतमाला, दक्षिणपूर्वांशमें गुरगांव और दिल्ली जिला तक विस्तृत अरवली पर्वतश्रेणीकी विस्तृत शाखा; पश्चिम ओरके दक्षिणांशमें सुलेमान पहाड़ और उत्तरपश्चिमांशमें काश्मीर देशमें विस्तृत हिमालय-श्रेणी, सिमला और हजारा पर्वतश्रेणी सुफेतकी, लवणपर्वत और पेशावर पर्वतमाला है। इन सब पहाड़ोंसे असंख्य नदियां निकली हैं जिनमेंसे विपाशा, यमुना, इरावती, चन्द्रभागा, पुष्प, वितस्ता, शतद्रु, सिन्धु आदि प्रधान प्रधान ॰दियां दक्षिणकी ओर बहती हुई सिन्धुनदमें मिल कर अरब सागरमें गिरती हैं। इन सब नदियोंमें शीतकालमें बहुत कम जल रहता है। जब गरमी अधिक पड़ती है, तब हिमालयके शिखर परकी बरफ-राशि गल कर प्रबल स्रोतसे नदीमें आ मिलती है। इस समय नदीका जल इतना बढ़ जाता है, कि नदीके उभय तीरवर्ती बहुत दूर तकके स्थान बह जाते हैं। वर्षा ऋतुके बाद ही शीतका प्रादुर्भाव देख पड़ता है और साथ साथ जलस्रोत भी धीरे धीरे घटने लगता है। जब जल घट जाता है, तब जमीनके ऊपर पहलेसा हुआ

मालूम पड़ता है। यह जमसिक्त मट्टी जमीनको नरम बना देती है और यह इतनी उपजाऊ होती है कि कृषकों को इस खेतमें खाद देनेकी जरूरत नहीं रहती।

पञ्जाबके चारों ओर पर्वतश्रेणी होने पर भी पूर्वमें यमुना नदी और पश्चिममें सुलेमान पहाड़का मध्यवर्ती स्थान समतल है और अधित्यकाके लिये उनके बीच कोई भेद नहीं रह गया है। अरवली पर्वतकी एक शाखा और बड़े राज्यके पश्चिमी कोहीस्ट और कराना पर्वतमालाने पञ्जाबके दक्षिणांशको उन्नत कर रखा है। शिवालिक उत्तर पश्चिममें रोहतक और हिमालयके दक्षिणमें हिसार और दोनोंके मध्य भागमें हिमालयके ठीक पश्चिममें भी कर लाहोरके दक्षिण तक विस्तृत भूभाग तथा दक्षिण पश्चिममें अरवली पर्वतके तटदेशमें ले कर मोकामीर राज्यके पश्चिम तक विस्तृत भूखण्ड प्रायः समतल है। हिमालय और अरवलीका ढालू देश ऐसा समतल है कि यहांके लोगोंमें बहुत मुश्किलसे दो अथवा तीन फुटसे अधिक ऊंचा स्थान दीख पड़ता है।

प्रायः सभी समतल क्षेत्रों पर यह जल आनेसे फसल अच्छी लगती है। पहाड़का किनारा छोड़ कर कहीं भी वहां पत्थर नजर नहीं आता। अधरकको साथ मिलने बालूके कण तमाम पाये जाते हैं। यहां कहीं भी प्रकृत मट्टी नहीं पाई जाती, तमाम बलुआ सब पहले जमीन आच्छादित मालूम पड़ती है। बालूके तारतम्यानुसार सब पहला शुभाशुभ निर्दिष्ट हुआ करता है। शितद्रु चन्द्रभागा और सिन्धु नदीके मध्यभागमें जो वृहत् 'बर' भूमि नजर आती है वह दक्षिणमें राजपूतानेकी मरुभूमि तक विस्तृत है। यहां कृत्रिम उपायसे नदी आदिका जल बांध कर रखा जाता है। बहांकी जमीनके ऊपर नमक पड़ जाता है। ऐसी जमीनको 'रे' कहते हैं। रेके उठनेसे जमीनकी सारी उपज नष्ट हो जाती है। जिस जमीनमें रे नहीं निकलता बल्कि जो स्थान बालुकामय नहीं है वह स्थान हमेशा उर्वरा रहता है। किन्तु पीलोंके बाद अग्नि जलकी जरूरत पड़ती है। पञ्जाबके पश्चिम सीमान्तवर्ती स्थान यद्यपि उर्वरा नहीं है, तो भी यहां

अच्छी अच्छी घास उगनेसे आरम्भ जमीन थोड़ी कुछ उर्वरा हो जाती है। यह स्थान 'थाल' नामसे प्रसिद्ध है। यहां अक्सर मवेशी आदि चरा करते हैं। इस स्थानमें जमीनके नीचे कहीं तो कम गहराईमें और कहीं अधिक गहराईमें जल मिलता है। नदी या पर्वतादिके निकट प्रायशः १ से १० फुट नीचे और सुदूर वर्ती स्थानमें प्रायः १५० से २०० फुट नीचेमें जल पाया जाता है। यह जल प्रायः लवणाक्त होता है इससे जन्तु और वृक्षलतादिके लिये विशेष उपकारी नहीं है।

पूर्वोक्त विभागानुसार देखा जाता है, कि हिमालय पर्वतके उपरिस्थ कामनराज्यादि शिवालिक पर्वत श्रेणी और पूर्व पश्चिमदिक्‌स्थ समतल भूमि पर ठाकुर राठी और रावत आदि पार्वतीय राजपूत शिकारी, ब्राह्मण, कुनैत दाबि, गुजर, पठान, बेलुची आदि पहाड़ी जातियोंका वास देखा जाता है। पर्वतवासी जातियोंमेंसे कुछ अपनेको मुसलमान और कुछ हिन्दू बतलाते हैं।

पश्चिमदिक्‌स्थ गुल्मादिपरिवृत 'थाल' नामक स्थान में बलूची एक जाति रहती है। ये लोग यहां स्थानस्थानके ऊपर अपने अपने ऊँट, गाय बैल, भेड़ बकरे आदिको चराया करते हैं। इस स्थानके तृणादि शेष हो जाने पर वे अन्यान्य तृणाच्छादित क्षेत्रमें जाते हैं। वैसे ऊँट नई नई ऋतुओंमें नये नये गुल्मादि खाना पसन्द करते हैं, वैसे ही यहांके मरुमें प्रायः वर्षा ही उनके उपयोगी नये नये वृक्षादि उत्पन्न हुआ करती है। पश्चिमांशवर्ती इस भूमि पर एकमात्र मुलतान नगर प्रतिष्ठित है।

पञ्जाबका पश्चिमांश सिन्धु शतद्रु आदि नदियोंसे विच्छिन्न हो कर कई भागोंमें परिणत हो गया है। इस राज्यका पूर्वांश नदी द्वारा और पश्चिमांश पर्वत द्वारा विभक्त है। इनके मध्य विभिन्न जातिके लोगोंका वास है। उत्तर पश्चिम सीमान्तप्रदेश जो लवणपर्वतवेष्टित है वहां पिशावर राज्यविभागके अटक, कोहाट और बन्नू आदि कई एक जिले हैं। राज्यविभाग जिसमें पर्वत हजारा, मूरी और कहुटा तहसील ही प्रधान है। इस पार्वतीय अंशमें पिशावर और राजपिण्डीके सिवा

और कोई नगर नहीं है। डेराइस्माइल खाँ छोड़ कर मध्य-एशिया और काबुल आदि स्थानोंका वाणिज्यद्रव्य एकमात्र पेशावर हो कर भारतवर्षमें लाया जाता है। यहां कई और रेशमके वस्त्र प्रस्तुत हो कर दूर दूर देशोंमें भेजे जाते हैं। स्थानीय अधिवासियोंकी जीविका खेतीके ऊपर ही निर्भर है और पार्वतीयगण गो-मेषादिका पालन कर अपना गुजारा करते हैं।

यहांके जङ्गलमें खजूर, पीपल, वट आदि तरह तरहके पेड़ और बाघ, नीलगाय, हरिण, गोमेषादि नाना जन्तु तथा विभिन्न वर्णके पक्षी देखे जाते हैं।

यहां मुसलमानोंके मध्य पठान, शेख, बेलुची वा अफगान, सैयद, काश्मीरी और थोड़े मुगल लोग बसे। हिन्दुओंके मध्य ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अनेक ही पूर्वकालसे मुसलमान धर्ममें दीक्षित हुए हैं। हिन्दुओंमें राजपूत और जाटराजपूतकी संख्या ही अधिक है। जाटराजपूतोंमेंसे जो इस्लाम-धर्ममें दीक्षित हुए हैं, वे मुसलमान जाट नामसे प्रसिद्ध हैं। एतद्भिन्न मुसलमानोंके मध्य अराइन, अवान, जुलाहा, गुजर, चूहड़ा, मोची, कुम्भार, तर्खान, तेली, मिरासी, नाई, लोहारमच्छ, कस्सब, झीनवरमाछी, धोबी, फकीर, ख्वाजा, मनियार, दुगड़, बर्कन्दाज, कुम्हा, चमारमोची और चक्कर आदि कई एक विभिन्न श्रेणीके लोग देखे जाते हैं। शतद्रुके पूर्वांशमें दिल्ली, हिसार, काङ्गड़ा, रोहतक, जलन्धर, अमृतसर, लाहोर आदि स्थानोंमें अधिकांश मनुष्य हिन्दू-मतानुयायी हैं। उधर रावलपिण्डी, कोहाट और पेशावरप्रदेशके अधिवासियोंके मध्य मुसलमानोंका अनुकरण देखा जाता है। सभी अधिवासी सिख कहलाते हैं। ये लोग गुरु नानकके शिष्य हैं। युद्धविद्या और साहस इनका एक अद्वितीय गुण है। ऐसी अनेक ऐतिहासिक कहानियां सुनी गई हैं जिनमें सिखसैन्यके अमित तेज, अतुल साहस और युद्धकौशलने उन्हें वीरत्वकी चरमसीमा तक पहुंचा दिया है। साधारणतः ये लोग मूर्ख होते हैं। स्वयं महाराज रणजित्सिंह भी लिखना पढ़ना नहीं जानते थे। उनके अद्भुत वीर्यकी कहानी किसी भारतवासीसे छिपी नहीं है। सिख, नानक, रणजित् शब्द देखो।

हिन्दू लोग प्रधानतः सिख, जैन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया, हिन्दूजाट आदि उच्च श्रेणियोंमें हैं तथा हिन्दू सिखोंकी निम्नश्रेणीमें चमार, चूहड़ा, अघोरा, तर्खान, झिनवार, कुम्हार, घराठ गुजर, नाई, अहीर, सोनार, लोहार, जुलाहा, रथी आदि विभिन्न जातियां देखी जाती हैं। काङ्गड़ा जिलेके कुलू उपविभागमें तथा तिब्बत-सीमान्त स्थित राज्योंमें बौद्धधर्मावलम्बीकी संख्या अधिक है। एतद्भिन्न यहां पारसी और विभिन्न सम्प्रदायी ईसाई रहते हैं।

पञ्जाबका सामाजिकगठन देखनेसे दो स्पष्ट चित्र दिखाई देते हैं। यहांके पूर्वांशवर्त्ती और हिमालय-पर्वतके पादाश्रयी स्थानोंमें जातीय व्यवसायसे पहचान कर आपसमें पृथकता निर्देश की जाती है। कायिक परिश्रमार्जित वृत्ति द्वारा सामान्य व्यक्तिगण जिस प्रकार तंगहाली पाते हैं, जमींदारोंके मध्य भी जो राजकीय शासनादि कार्यमें व्यापृत रहते हैं, वे भी उसी प्रकार पदमर्यादा प्राप्त करते हैं। प्रायः अधिकांश मनुष्योंका जातीय व्यवसाय परम्परासे चला आ रहा है। इनके मध्य असवर्ण वा असाम्प्रदायिक विवाह प्रचलित नहीं है। पश्चिमभागवर्त्ती डेरा स्थान और सिन्धुप्रदेशमें जो सब जाति हैं वे प्रकृत एक जाति नहीं हैं। सम्प्रदाय और सामाजिक क्रियाकलापके भेदसे ये लोग भिन्न भिन्न थाकमें विभक्त हो गए हैं।

यहां यदि कोई अपवित्र कर्मानुष्ठान अथवा गर्हित द्रव्यका व्यवसाय करे, तो उसकी जातीयता हानि होती है और उसे समाजमें घृणित तथा अपदस्थ होना पड़ता है। इसीसे इस प्रकारका कार्य उनके मध्य बिलकुल निषिद्ध है। स्वजाति विवाहमें इनके मध्य कोई रोक-टोक नहीं है। एकमात्र धनरत्न ही उनका अन्तराय है। जिसकी सामाजिक अवस्था जितनी उन्नत है, वह वैसा ही घर पा कर विवाह करता है। धनी व्यक्ति कभी भी गरीबके साथ विवाह सम्बन्ध स्थिर नहीं करता। यहां जातीयताका विशेष समादर नहीं है। पूर्वोक्त दोनों स्थानोंकी सामाजिक गठनकी अपेक्षा लवण-पर्वत और सिन्धुनदके पार्श्ववर्त्ती स्थानोंका सामाजिक चित्र मध्यम प्रकारका है। धर्ममतके वैषम्यके कारण

हो रहा था। इसका प्रधान कारण उत्पादित हुई है सो नहीं। पश्चात्‌के पूर्वाञ्चलमें मुसलमानोंने इसलाम धर्मका प्रचार करके साम्प्रदायिकताकी जड़ यद्यपि मजबूत की थी, तो भी इसलाममें दीक्षित पूर्वतन हिन्दुओंने अपने नाम, सदाचार, जाति और वंशके पवित्रताको यथासम्भव रक्षा की है। समस्त पञ्जाब प्रदेशमें जाति और सम्प्रदायगत और मौलिक पार्थक्य रहने पर भी पूर्वतन आचार व्यवहारके सम्बन्धमें इन लोगोंने धर्म और बलका पालन किया था। इसका कारण यह है कि पूर्व समयमें मध्यभारतकी मर्यादा जिस प्रकार उत्तर पश्चिमाञ्चलवासी मरणीय हिन्दुओंने और आचार व्यवहारका अनुकरण करते हैं, ठीक उसी प्रकार बहुत पहलेसे ही पश्चिमाञ्चलमें आये हुए मुसलमानोंने भी साथ साथ रह कर उनकी प्रथाके अनुसार अपने विवाहादि सम्पन्न करने लग गये हैं। मुसलमान अधिकांश सब मनुष्योंमें ही मुसलमान धर्मका प्रवेश है।

पञ्जाबमें १५० नगर और ३४६१० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ढाई करोड़से ऊपर है। इसके अलावा १ दिल्ली, २ जलन्धर ३ लाहोर, ४ मुलतान ६ अम्बाला, ७ रावलपिण्डी, ८ अमृतसर, ९ सियालकोट, १० लुधियाना ११ फिरोजपुर १२ शिमला, १३ पानीपत, १४ बटाला, १५ हिसार, १६ कथाल १७ गुजरानवाला, १८ डेरागाजी खां, १९ डेरा इसमाइल खां २० होशियारपुर २१ झेलम आदि स्थान राजधानीमें गिने जाते हैं। हिमालय पर्वतके ऊपर शिमला (गवर्नर जनरलका ग्रीष्मावास) मुरी (रावलपिण्डी जिलेमें), धर्मशाला (काँगड़ा पर्वत पर) और डलहौसी (गुरदासपुरमें) आदि स्थान ग्रीष्मकालमें रहनेके लिये विशेष हितकारी और मनोरम हैं।

अधिवासियोंमेंसे अधिकांश खेती बारी करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। अति प्राचीनकालसे अर्थात् दो तीन हजार वर्ष पहले जिस प्रकार सरस्वतीमें खेती चलती थी, आज भी उसी प्रकार चल रही है। यहाँ साधारणतः दो प्रकारकी खेती होती है, वसन्तमें रब्बी और शरत्‌कालमें खरीफ धान। धान, ईख, रुई, मकई, ज्वार, कोदो आदिकी खेती खरीफके अन्तर्गत है; तमाकू, सरसों और जौ आदि सबकी रब्बी फसलमें गिनती आती है। उत्तर पश्चिम भारतमें जिन सब अनाजोंकी खेती होती है यहाँ भी वही सब अनाज उपजाये जाते हैं। खेती छोड़ कर दासवृत्ति, वाणिज्य, मसीजीवि, अन्य कारजीवि प्रभृतिके कार्य भी जनसाधारणमें देखे जाते हैं। पञ्जाबके सवर्ण और साधारण मनुष्य पशु पक्षादिका पालन करते हैं। जब वे बड़े जनते हैं, तब उन्हें बड़े होने पर वे बाजारमें बेच डालते हैं। मौण्टके पश्चिमस्थ मरुप्रदेशमें भरुच तरहके पेड़ हैं, इनका अधिकांश मामलतदारोंके अधीन है। किन्तु सवर्णोंका सम्बन्धी है और डिपटी कमिश्नर उसकी रक्षा करते हैं।

वाणिज्यादिकी सुविधाके लिये यहाँ अनेक नहर काटी गई हैं। यहाँ दोआब, पश्चिम यमुना सरहिन्द और व्यास नदीकी खाईमें सब समय जल रहता है। ऊपर शतद्रु, दक्षिण शतद्रु, चन्द्रभागाकी नहर, शाहपुर जिलेकी तीन नहर, सिन्धुनदीकी नहर और मुजफ्फरगढ़की नहर ये सब नहरें खेतादिमें जलसिञ्चनके लिए काटी गई थीं। इसके अलावा अम्बाला, लुधियाना, जलन्धर, अमृतसर, लाहोर, मुलतान, सक्खर, पेशावर आदि प्रधान प्रधान स्थानोंमें रेलवे हो जानेसे वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। ये सब रेलपथ दिल्ली हो कर उत्तरपश्चिम प्रदेश, कलकत्ता और राजपूताना होते हुए करांची तथा बम्बई शहरसे साथ मिल गये हैं। आज भी यहाँ ऊँट द्वारा वाणिज्यद्रव्य समुद्रके किनारे लाये जाते हैं।

पञ्जाब प्रदेशके शिल्पजात द्रव्योंमें विभिन्न वस्त्रादि, रुई, पशम और तदुत्पन्न अन्यान्य पशमीनादिकी नाना स्थानोंमें उत्पत्ति तथा कपासके कपड़े, शाल, लकड़ी और धातुके व्यवहार्य द्रव्योंकी भिन्न भिन्न देशोंसे यहाँ आमदनी होती है। इसके सिवा यहाँ सोने वा चाँदीकी जड़ा, ताम्र, कलम कारकार्ययुक्त काष्ठ निर्मित द्रव्यादि शोरादि तथा चमड़ेका काम होता है। खनिज पदार्थोंमें एकमात्र सैन्धवलवण ही प्रधान है। मियानी, कालाबाग, लवणपर्वत, झेलम, शाहपुर और कोहाट जिलेमें काफी नमक पाया

जाता है। उत्तर और पश्चिम सीमान्तवर्त्ती पथ हो कर इस देशमें चरस, तरह तरहके रंग, काबुलके पशम, रेशम, सुपारी और फल, काठ, लोम तथा घास आदि द्रव्योंका व्यवसाय होता है।

यहां साधारणतः शीतका प्रकोप अधिक देखा जाता है। ग्रीष्मकालमें भी कुछ कुछ जाड़ा मालूम पड़ता है। अक्तूबर मासमें दिनको गरमी रहने पर भी रात को खूब जाड़ा पड़ता है। इसके बाद क्रमशः जाड़े की वृद्धि हो कर जनवरी मासमें तुषारराशि पतित होती है। पार्वत्य प्रदेशोंमें दिसम्बर मासके मध्य भागसे ले कर जनवरीके मध्य तक तूफान और तुषार पात देखा जाता है। अत्यन्त ग्रीष्माधिक्यमें यहां ८०के अधिक उत्ताप लक्षित नहीं होता।

पञ्जाबके सीमान्तवर्त्ती ३६ सामन्तराजाओंके अधिकारभुक्त सभी स्थान यहांके लेफ्टिनेण्ट गवर्नरके अधीन हैं। उक्त ३६ राज्योंमें पटियाला, बहवलपुर, झिन्द और नाभा नामक जनपद ही श्रेष्ठ तथा छोटे लाटके शासनाधीन हैं। चम्बा भूभाग अमृतसरके कमिश्नरके और मालकोटला, कालसिया तथा २२ हिमालय पर्वतस्थित राज्य अम्बालाके कमिश्नरके अधीन हैं। कपूरथला, मन्दी और सुखेत जलन्धरके पतौदी दिल्लीके तथा लाहोर और दुजाना आदि स्थान हिस्सारके कमिश्नरके अधीन हैं। पूर्वोक्त सामन्तराज्योंमेंसे कुछ तो समतल क्षेत्रके ऊपर और कुछ पहाड़के ऊपर बसे हुए हैं। उक्त राज्यों के परिमाण और नाम नीचे दिये जाते हैं।

समतलक्षेत्र पर पटियाला (५८८७ वर्गमील), नाभा (८२८), कपूरथला (६२०), झिन्द (१२३२), फरीदकोट (६१२), मालकोटला (१६४), कालसिया (१७८), दुजाना (११४), पतौदी (४८), लोहारु (२८५) और बहवलपुर (१५०००) तथा पार्वत्य प्रदेश पर मन्दी (१०००), चम्बा (३१८०), नाहन (१०७७), बिलासपुर (४४८), बसाहर (३३२०) नालागढ़ (२५२), सुखेत (४७४), क्योन्थल (११६), बाघल (१२४), जुब्बल (२८८), भज्जी (८६), कुम्हारसाईं (८०), महैलोग (४८), बाघत (३६), बलसन (५१), कुठार (७), धामी (२६), तरोक (६७), माँगो (१६), कुनिहार (८), बोजा (४), मङ्गल (१२), बेजे (३), अरकोटा (५), दाभी (१) आदि।

इन सब सामन्तराज्योंमें बहवलपुराधिपति अंगरेजोंके साथ सन्धिसूत्रमें आबद्ध हैं तथा दूसरे दूसरे राजगण गवर्नर जनरलसे प्राप्त सनदकी शर्तके अनुसार आबद्ध हो कर इन सब स्थानोंका भोग कर रहे हैं। पटियाला, झिन्द और मालकोटला राज्यके सामन्त राजगण अपने मुकाबलोंके फलस्वरूप अंगरेजोंको युद्धविग्रहके समय अश्वारोही सैन्य दे कर सहायता पहुंचानेमें बाध्य हैं। दूसरे दूसरे राजाओंको करमें रुपये देने पड़ते हैं। पटियाला, झिन्द और नाभा राज्यके राजवंशधरगण 'फुलकिया' वंशीय हैं। यदि कोई राजवंश पुत्रादिके अभावमें लोप होता हो, तो पूर्व सनदकी शर्तके अनुसार वे निकटवर्त्ती सगोत्र तथा अपनी मर्यादाके समकक्ष किसी सामन्तराजके पुत्रको गोद ले सकते हैं। अन्य वंशीय जो पुत्र पोष्यपुत्ररूपमें सिंहासन पर बैठते हैं उन्हें नजराना स्वरूप अंगरेज गवर्मेण्टको कुछ रुपये देने पड़ते हैं।

पूर्वोलिखित तीन राज्योंके फुलकिया वंशीय सरदारगण तथा फरीदकोटके राजा जो अंगरेजोंके साथ नियमसूत्रमें आबद्ध हैं, उसमें शर्त यह है कि वे अपने अपने राज्यके मध्य न्याय विचार करेंगे तथा प्रजावर्गकी भलाईकी ओर विशेष लक्ष्य रखेंगे। जिससे उनके राज्यमें सतीदाह, दासविक्रय और शिशुकन्या हत्यारूप जघन्यकार्य होने न पावें, इस विषयमें वे यत्नपर होंगे। यदि अंगरेजों पर कोई शत्रु आक्रमण करे, तो वे सैन्य और रसदसे उन्हें मदद देंगे। जब कभी अङ्गरेज सरकार उनके राज्य हो कर रेलपथ वा सरकारी (Imperial) रास्ता ले जाना चाहेगा, तभी उक्त राजगण बिना मूल्यके जमीन छोड़ देनेको बाध्य होंगे। इधर अंगरेजोंने भी उक्त राज्योंका भाग करनेका पूरा अधिकार दे दिया है। केवलमात्र पटियाला, नाभा, झिन्द, फरीदकोट और बहवलपुर आदि सामन्तराजगण दोषी व्यक्तिको फाँसी दे सकते हैं, किन्तु दूसरे दूसरे राजाओंको ऐसी क्षमता नहीं है।

बहावलपुर मालेरकोटला, पतौदी लोहारू और दुजाना आदि स्थानोंके सामन्तराजगण मुसलमान संप्रदाय हैं। पटियाला झिन्द नाभा कपूरथला फरीदकोट और कलसियाके राजगण सिख सम्प्रदायभुक्त तथा अवशिष्ट सभी राजगण हिन्दू हैं। बहावलपुरके नवाब दाउदपुत्र गोत्र मुसलमानोंमें श्रेष्ठ तथा बलवान जातिके अग्रवर हैं। मालेरकोटलाके नवाब अफगान जातिके हैं। भारतवर्षमें इनका शुभागमन मुगलोंके पहले ही हुआ था और मुगलसम्राट्के पतनके बाद भी इन्होंने अपनी स्वाधीनता कायम की थी। पतौदी और दुजानाके सरदार-गण अफगानजातिसम्भूत और लोहारूके नवाब मुगल वंशीय हैं। एक समय इन्होंने बड़े वेगसे अंगरेजोंको सहायता पहुंचाई थी। इससे अंगरेजराजमें इनका सम्मान और भी कुछ सम्पन्न हो गया है।

यहांके सिख सरदारगण प्रधानतः उल्लेखनीय हैं। पटियाला आदि फुलकियां राजाओंके पूर्व पुरुष चौधरी फूल १६५२ ई०में परलोकको सिधारे। १८वीं शताब्दीमें मुगलसाम्राज्य विलुप्त होनेके समय तथा पारस्य अफगान और महाराष्ट्रीयगणके उपर्युपरि आक्रमणसे भारतवर्षमें विशेष अशान्ति फैल गई। ठीक उसी समय चौधरी फूलके वंशधरोंने स्वत्वरक्षाकी इच्छासे सिख सम्प्रदायका नेतृत्व ग्रहण किया। कपूरथलाके राजा कलाल जातिभुक्त हैं और उन्नति करके अग्रसर होते होते विगत शताब्दीके मध्यभागमें सिख-सरदार हुए थे। फरीदकोटके राजा बराड़ जाटवंशीय हैं। सम्राट् बाबरको सहायता करनेके कारण ये विशेष माननीय हो गये और उच्च मर्यादाको प्राप्त हुए। [illegible] पर्वतमालाके अन्यान्य सरदारगण अपनेको राजपूत तथा अति प्राचीन सम्भ्रान्त राजपूतोंकी सन्तान बतला कर अपना परिचय देते हैं।

प्राचीन इतिहास।

पञ्जाब या पञ्चनद प्रदेश वैदिक आर्योंका लीलाक्षेत्र है। ऋक्संहितामें जो सब सिन्धुका उल्लेख है बहुतोंका विश्वास है कि वह इसी पञ्चनद प्रदेशमें प्रवाहित है। उक्त आदि नदियोंमें अंशुमती, अञ्जसी, अनितभा, अश्मन्वती, असिक्नी (Akesines), आपया, आर्जीकीया कुभा (Kophen या काबुल नदी), कुलिशी, क्रुमु गङ्गा, गोमती गौरी, जाह्नवी, तृष्टामा दृषद्वती, परुष्णी मरुद्वृधा, मेहत्नु विपाट् (विपाशा), यमुना, रसा, वितस्ता वीरपत्नी, शिफा शुतुद्री, श्वैत्यवती श्वेतयावरी श्वेती सरयू सरस्वती, सिन्धु (Indus), सुवास्तु सुषोमा, सुसर्तु, सीता हरियूपीया वा यव्यावती इन सब नदियोंका जो उल्लेख है वे सभी वर्त्तमान पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत हैं। आर्यगणमें विस्तृत विवरण देखो। मनुसंहितापठित ब्रह्मर्षिदेश एक समय इसी पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत था। जिस कुरुक्षेत्रके महासमरके ऊपर महाभारतकी उत्पत्ति है वह कुरुक्षेत्र इसी प्रदेशके अन्तर्वर्ती है।

महाभारतमें जो मद्र, बाल्हिक, आरट्ट और सैन्धव राज्यका उल्लेख है वे सब राजा इसी पञ्चनद प्रदेशके अन्तर्गत स्थानविशेषमें राज्य करते थे। अभी जैसे पञ्जाब प्रदेशमें अभी पटियाला झिन्द नाभा आदि देशीय सामन्तराजाओंके अधीन विभिन्न जनपद देखे जाते हैं महाभारतके समयमें भी इस पञ्जाब प्रदेशमें मद्र, आरट्ट, वशाती आदि वैसे ही विभिन्न जनपद थे।

पञ्चनदके लोगोंकी रीति नीतिके सम्बन्धमें महाभारतके कर्णपर्वमें इस प्रकार है—"मद्रदेशमें पिता पुत्र माता, सास ससुर, मातुल, जामाता, दुहिता, भ्राता, नाती बन्धुबान्धव दासदासी सभी मिल कर मद्यपान करते थे। स्त्रियां इच्छानुसार परपुरुषके साथ सहवास करती थीं। सत्तू, मछली, गोमांस आदि उनका खाद्य पदार्थ था। नशेमें चूर हो कर वे गाते रोते, कभी हंसते और असम्बद्ध प्रलाप करते थे। सदाचारके योग्य और मद्रकोंकी प्रकृति नहीं थी। मद्रदेशकी कामिनियां निर्लज्ज, कामासक्त, उदरपरायण और अशुचि होती थीं। काञ्जिक उनका अत्यन्त प्रिय था। उनका कहना था कि वे पति या पुत्रको छोड़ भी सकती पर काञ्जिकको कभी नहीं छोड़ सकती हैं।"

महाभारतमें मद्रदेशका जो परिचय है आज भी पञ्जाबके पश्चिम भाग आप्तदेशमें वैसा ही व्यवहार देखा जाता है। महाभारतमें जनपदके सम्बन्ध नाम तक पाया जाता है। उसके बादसे लेकर बुद्धदेवके अभ्युदय

तक किसने कब तक राज्य किया, इसका विवरण नहीं मिलता।

माकिदनराज अलेकसन्दरके आगमनकालमें यह प्रदेश तक्षशिला, पुरु, चान्द्रगीस* आदि राजाओंके अधीन नाना अंशोंमें विभक्त था। तक्षशिला राजाके अलेकसन्दरकी अधीनता स्वीकार करने पर भी पुरुराजने बड़ी वीरता और साहससे माकिदन वीरोंकी गतिको रोक रक्खा था। अन्तमें वे यद्यपि परास्त भी हो गये, तो भी अलेकसन्दरने उनके वीरत्वकी भूरि प्रशंसा की थी और उन्हें अपना सखा बना लिया था।

पुरु देखो।

उनके परवर्त्तीकालमें सुगसेन, अमितवर्द्धन, मिलिन्द (Menander), कनिष्क, तोरमानशाह प्रभृति मद्र और शक-राजाओंका उल्लेख मिलता है।

सम्राट् अशोकके राजत्वकालमें यहां बौद्धधर्मका यथेष्ट प्रचार हुआ था। पेशावरके अन्तर्गत युसुफजाई उपत्यकामें प्राप्त अशोकको उत्कीर्ण शिलालिपि ही इसका प्रमाण है। सातवीं शताब्दीमें जब चीनपरिव्राजक यूएनचुअङ्ग इस देशमें आए थे, तब वे ध्वंसावशिष्ट बहुत-सी बौद्धकीर्त्तियोंका उल्लेख कर गये हैं। बौद्ध प्रभावके अवसान होने पर किसी समय यहां हिन्दू-धर्मकी पुनःप्रतिष्ठा हुई थी, ऐसा जाना जाता है। ब्राह्मणधर्मके विस्तार और मुसलमानोंके अभ्युदयमें बहुतसे बौद्ध-मन्दिर महाराम मसजिद तथा ब्राह्मणोंके देवमन्दिरमें रूपान्तरित अथवा पुनर्निर्मित हुए हैं। सातवीं शताब्दीसे ही पञ्जाब प्रदेशमें मुसलमानोंका आगमन हुआ। फिरिस्ता पढ़नेसे जाना जाता है कि ६८२ ई०में अर्मानसे एक दल मुसलमानने पञ्जाब आ कर लाहोरके हिन्दूराजासे कुछ जमीन छीन ली थी। बाद लगभग ९७५ ई०में महमूदके पिता खुरासानराज सबक्तगीनने सिन्धुनद पार कर इस प्रदेशमें मुसलमानोंकी गोटी जमाई। लाहोरके अधिपति जयपालने पहले निडर हो कर इनका विरुद्धाचरण किया। पीछे गजनीके सुलतान सबक्तगीन द्वारा भेजे हुए दूतको इन्होंने कैद कर लिया। इस पर गजनीपतिने अपमानित और क्रुद्ध हो कर इनके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी। इस युद्धमें जयपाल पराजित हो कर अपनी राजधानी चले आये और पञ्चत्वको प्राप्त हुए। इनके मरने पर इनका लड़का अनङ्गपाल यत्नपूर्वक स्वदेशको विदेशियोंके आक्रमणसे रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। इसके बाद १०२२ ई०में द्वितीय जयपालके राजत्वकालमें सबक्तगीनके पुत्र गज़नीपति महमूदने काश्मीरसे आ कर अनायास लाहोर पर दखल जमाया। हिन्दू राज भाग कर अजमेर चले गये। १०४५ ई०में मोदूदके नेतृत्वमें हिन्दूसेना लाहोर पर चढ़ आई और छः मास अवरोधके बाद अकृतकार्य हो राजधानी छोड़ कर वहांसे नौ दो ग्यारह हो गई। अलबिरूणीने लिखा है, "यहीं पर हिन्दूराजाओंका राज्याधिष्ठान लोप हो गया। ऐसा कोई वंशधर न था जो प्रदीपको जला सकता।" गजनीपतिके लाहोर पर दखल जमानेके समय पहले पहल यहां एक शासनकर्त्ता नियुक्त हुए, किन्तु इन्होंने शेष मसाउद ईरान और तुरान नामक देशस्थित अपने अधिकृत देशोंको शत्रुके हाथ सौंप कर बारहवीं शताब्दीके आरम्भमें इरावती नदीके किनारे अपना राज्य बसाया। उक्त शताब्दी (लगभग ११८३ ई०)-में द्वितीय राजवंशके प्रतिष्ठाता महम्मदगोरी लाहोरसे दिल्ली नगरमें राजधानी उठा लाये। पठानराजाओंके समयमें पञ्जाब-प्रदेशका शासनभार राजप्रतिनिधि द्वारा परिचालित होता था। इस समय आगरा और दिल्ली नगरी ही अफगानवासी मुसलमान राजाओंकी राजधानी थी और लाहोरनगरमें उनके वंशधरगणने आधिपत्य जमाया था। लगभग १२४५ ई०में चङ्गेज खां और १३९८में तैमूरशाह इस प्रदेश पर आक्रमण कर इसे लूट ले गये थे। इसके बाद रावलपिण्डीसे गक्खर-जातिका अभ्युत्थान और एकिमान पहाड़ तथा सिन्धुनदके मध्यवर्त्ती स्थानमें यदुनाथ या यदुवीरगणका बस जाना ही एक ऐतिहासिक घटना हुई।

---

* ग्रीक इतिहासमें Sandrakouptos नामसे वर्णित है। पाश्चात्य पुराविदोंने इनको मगधराज चन्द्रगुप्त बतलाया है, किन्तु जैन तथा बौद्ध आचार्य प्रवीण जाना जाता है, कि चन्द्रगुप्त अलेकसन्दरके आनेसे बहुत पहले ही राज्य करते थे।

१५२४ ई०में लाहोरराज दौलत खाँ लोदीके आमन्त्रण करने पर मुगलसम्राट् बाबर भारतमें आये और उन्होंने सारे पञ्जाबको ले कर कालिन्द तकका स्थान अपने अधिकारमें कर लिया। इसके दो वर्ष बाद फिर इन्होंने अफगानिस्तानसे आ कर पानीपतकी लड़ाईमें अफगानी सेनाको परास्त कर दिल्लीके सिंहासन पर मुगल-साम्राज्य कायम किया। इनके समयमें लाहोर दिल्ली और आगरा ये तीनों नगर राजधानीके रूपमें गिने जाते थे। औरङ्गजेबकी लड़ाईके समय पञ्जाब राज्यने दुर्गरूपमें मुगलोंकी रक्षा की थी। जिस समय मुगलराज अवनतिकी चोटी पर थे, उसी समय सिख जातिकी पञ्जाब राज्यमें तूती बोल रही थी। धीरे धीरे इन्होंने मुगलराजकी अधीनताकी उपेक्षा कर पञ्जाब प्रदेशमें स्वाधीनराज्य विस्तार किया।

१५वीं शताब्दीके अन्तमें लाहोरमें बाबा नानकने जन्म ग्रहण किया। उन्हींके शिष्य "सिख" नामसे प्रसिद्ध हैं। यह सिखजाति इतनी प्रबल हो उठी थी कि पञ्जाबदेशमें उस समय इनका सामना करनेवाला कोई न था। सिखोंके चतुर्थ गुरु रामदासने सम्राट् अकबरसे सिखधर्मके प्रचारके लिये अमृतसर नामक स्थान पाया था। यहां इन्होंने पुष्करिणी खुदवा कर एक मन्दिर बनवाना शुरू किया, किन्तु काम पूरा होने भी न पाया था कि इनकी मृत्यु हो गई। बाद इनके लड़के तथा सिख गुरु अर्जुनमल्लने इस मन्दिरका गठनकार्य सम्पन्न किया। सिखोंके इस ऐश्वर्यको देख कर मुगलराजगण जल मरे और दोनों परस्पर विरोधी हो गये। लाहोरके मुगलशासनकर्त्ताने सिखजातिके साथ लड़ाई ठान दी और अर्जुनमल्लको बन्दी तथा कारागार किया।

अमृतसर देखो।

इस अत्याचार पर सिखसम्प्रदाय बड़े ही उत्तेजित हो उठे। वे विद्रोह और प्रजाकष्टमें रत हो राजाकी आज्ञाको उल्लङ्घन कर देश भरमें उत्पात मचाने लगे। अर्जुनमल्लके पुत्र हरगोविन्दको अपना नेता बना कर वे गुरु-हत्याका प्रतिशोध लेनेके लिए अग्रसर हुए। मुगलशासनकर्त्ताने सिखोंको ऐसी अवस्थामें देख लाहोरसे निकाल भगाया। पार्वत्यप्रदेशमें जा कर भी सिखोंने अपनी युद्ध-शिक्षा न छोड़ी और न वे पूर्वकृत अत्याचारकी कथा विस्मृत हो कर मुसलमानोंसे शत्रुता करनेको ही भूले। अन्तमें १६७५ ई०में हरगोविन्दके पौत्र गुरुगोविन्द (ये नानकसे दशम थे)-के ही इनके धर्म और युद्ध-प्रथाने जन-साधारणमें प्रतिपत्ति लाभ की थी। पहले सिखसैन्यकी संख्या बहुत कम रहनेके कारण गुरुगोविन्द पराजित हुए और उनकी माता तथा पुत्रगण यवन शत्रुसे समूल नष्ट हो गई। १७०८ ई०में गुरुगोविन्द जब दक्षिण प्रदेशके नन्देर ग्राममें गुप्तरूपसे मुसलमानों द्वारा मार दिए गए तब सिखसम्प्रदाय और भी क्षिप्त हो उठे तथा उन्होंने प्रतिहिंसाके वशवर्ती हो कर गोविन्दके शिष्य बन्दाके अधीन पञ्जाबकी पूर्व प्रभुताको पाने पर धावा बोल दिया। उन्मत्त सिखोंके ऐसे आक्रमणमें पड़ कर कितने मुसलमान अपने दुर्लभ जीवनको खो बैठे थे, उसकी शुमार नहीं। कितनी मसजिदें तोड़ फोड़ कर भूमिसात कर दी गई थीं और बालक बालिका स्त्री-पुरुष आदि हजारों मुसलमान इस आक्रमणमें पड़ कर भस्म-भूत हो गये थे। कब्रमें गड़े जो सब मृत देह गाड़ी गई थीं उन्हें निकाल कर गीदड़, कुत्ते, गीध आदिको खिला दिए गये। सरहिन्दमें मुसलमानशासनकर्त्ताको पराजित करनेके बाद वीभत्स अत्याचार चला रहा था उसकी शेष सीमा सहारनपुर तक पहुंच गई थी। पीछे जब वे मुगलसेनाने जब उनका सामना किया तब सिख जातिने लुधियाना और पार्वत्य प्रदेशमें आश्रय लिया। दूसरी बारके आक्रमणमें सिख लोग इधर लाहोर और उधर दिल्ली तकके स्थानोंमें लूट पाट तथा मुसलमान-हत्या करने लग गये।

सिखोंके ऐसे अत्याचार पर क्रुद्ध हो कर सम्राट् बहादुरशाह उनको दमन करनेके लिए दाक्षिणात्यसे लौटे। किन्तु दावर नामक दुर्गमें सिखोंके मुगलसैन्य कर्त्तृक अवरुद्ध होने पर भी बन्दा अनुचरोंको साथ ले पहाड़की ओर भाग गये। बहादुरशाहकी मृत्युके बाद सिखोंने पुनः सेना संग्रह करके राज्यादिमें लूट पाट मचाना आरम्भ कर दिया। १७१६ ई०में सम्राट् फर्रुखसियरके आदेशसे काश्मीरके शासनकर्त्ता अब्दुस समद खाँने कई बार सिखों पर आक्रमण किया और

आखिर वंदाको युद्धमें परास्त कर दिल्ली भेज दिया। यहीं पर वंदा और अन्यान्य सिखसरदारोंकी मृत्यु हुई।

१७३८ ई०में नादिरशाहने दलबलके साथ पञ्जाब पर आक्रमण किया और कर्णाल नगरके समीप मुगल सेनाको परास्त कर दिल्लीकी राजधानी लूटी। इसके बाद सिखगण पुनः उत्साहसे सैन्यसंग्रह कर मुगलसेनाके विरुद्ध अग्रसर हुए। इस बार भी वे मुगलोंसे पराजित और विध्वस्त हुए। किन्तु कई बार पराजित होने पर सिखगण जरा भी विचलित न हुए। १७६१ ई०को पानीपतके युद्धक्षेत्रमें जब महाराष्ट्रीयगण अहमदशाहसे परास्त हुए, तब सिखगण भी बलहीन हो पड़े। स्वदेश लौटते समय अहमदशाहने अमृतसरको तहस नहस कर डाला। इतना ही नहीं, उन्होंने मन्दिर भी तोड़ फोड़ डाला, पुष्करिणीको भरवा दिया और पीछे गो-हत्या करके उस पवित्र स्थानमें चारों ओर रक्त लगा दिया। अहमदशाहके चले जाने पर सिखगण इस अत्याचारका प्रतिशोध लेनेके लिये पुनः अग्रसर हुए। इस बारके युद्धमें सिखोंने अपनी खोई हुई स्वाधीनता पुनः प्राप्त की।

उसी समय नानक प्रवर्त्तित शान्तिमय धर्मका बहुत कुछ परिवर्त्तन हुआ। धीरे धीरे सिखगण शान्तिमय जीवनका विसर्जन कर एक एक योद्धृ-दल वा 'मिशल' अर्थात् दलमें विभक्त हो पड़े। किन्तु सभीको पवित्र अमृतसर नगरमें आ कर मिलना पड़ता था। मुगलराज दुरानीको पञ्जाब राज्य दे देने पर भी सिखोंने १७६३ ई०से पञ्जाबके पूर्वांशवर्त्ती स्थानों पर आधिपत्य फैला लिया था। १८०९ ई०में अफगान राज्यमें विप्लव उपस्थित होने पर भी सिख-सरदार रणजित्‌सिंहका अभ्युत्थान हुआ। १७९९ ई०में काबुलके दुरानीवंशीय शासनकर्त्ता जमालशाहने रणजित्‌को लाहोरका शासनभार अर्पण किया। धीरे धीरे अपने बाहुबलसे पञ्जाबकेशरीने इस प्रदेशके अधिकांश स्थानों पर अपना प्रभाव फैलाना चाहा। इसी उद्देश्यसे उन्होंने १८०८ ई०में शतद्रु नदीके वामकूलस्थित अन्यान्य सिखसरदारोंके अधिकृत राज्यों पर धावा बोल दिया। वहांके सामन्त राजाओंने उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें अङ्गरेजोंका आश्रय ग्रहण किया। इस समय रणजित्‌ने अङ्गरेजोंके साथ मित्रता कर ली और शतद्रुके वामकूलवर्त्ती राज्यों पर जो आक्रमण करना चाहा था उसे कुछ कालके लिये रोक दिया। उसी समय अङ्गरेजोंने शतद्रुके उत्तरस्थित स्थानों पर अपना अधिकार जमाया। १८१८ ई०में रणजित्‌ने मुलतान पर आक्रमण किया और उसे अपने दखलमें कर लिया, पीछे सिन्धुनद पार कर पेशावर, डेराजात और काश्मीर जीता। इस प्रकार उन्होंने वर्त्तमान पञ्जाबप्रदेश और काश्मीरके अधिकारभुक्त सामन्त राज्यों पर अपना पूरा अधिकार जमाया। रणजित्‌के जीते जी सिखबल उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था। १८३९ ई०में रणजित्‌के मरने पर उनके लड़के खड्गसिंह लाहोरके सिंहासन पर बैठे। किन्तु दूसरे ही वर्ष विषप्रयोगसे उनकी मृत्यु हो गई।

रणजित्‌सिंह और खड्गसिंह देखो।

खड्गसिंहकी मृत्युके बाद पञ्जाबमें अराजकताका सूत्रपात हुआ। उद्धत सिखसेना अङ्गरेजी राज्य पर चढ़ाई करनेका उद्योग करने लगी। तदनुसार उन्होंने ६०००० सैन्य और १२५ कमान ले कर शतद्रु पार हो मुदकी नगरमें (१८४५ ई० १८ दिसम्बर) अङ्गरेजों पर आक्रमण कर ही दिया। इसके तीन दिन बाद फिरोज शहरमें लड़ाई छिड़ी। इसके बाद सोब्राउन नगरके समीप सिख और अङ्गरेजी सेनामें चौथी बार युद्ध हुआ। इसी युद्धमें सिखगण अच्छी तरह परास्त हो कर सन्धि करनेको बाध्य हुए। सन्धिके अनुसार लाहोर नगर अङ्गरेजोंके हाथ लगा। इतना ही नहीं, लाहोरके दरबारमें जो सन्धि हुई उसके अनुसार अङ्गरेजोंने शतद्रु और विपाशा नदीके मध्यवर्त्ती स्थानोंको वृटिश गवर्मेण्टके अधिकारभुक्त कर लिया। युद्धके खर्चमें रुपये देनेकी जो बात थी उसके लिए सिखोंने हजारा और काश्मीर तथा विपाशा और सिन्धुके मध्यवर्त्ती सामन्तराज्य अङ्गरेजोंको अर्पण किए। महाराज गुलावसिंहको हाथ अङ्गरेज बहादुरने काश्मीरका शासनभार सौंपा। किन्तु काश्मीरके इस प्रकार दूसरेके हाथ चले जानेसे बड़ी गड़बड़ी हलचल मच गई। लाहोर दरबारके अमात्य, लालसिंहकी प्ररोचनासे सिखसरदार प्रतिद्वन्द्वी हो गए। अन्तमें लालसिंहकी पदच्युति हुई

और फिरसे नई सन्धि की गई। तदनुसार नाबालिग दलीपसिंह की राज्यपरिचालनके लिये राजकार्यका भार अङ्गरेज रेसिडेण्ट और अभिभावक सभा (Council of regency)-के ऊपर रखा गया।

इस समय सिक्ख लोग सन्धिभंग करने लगे। किन्तु उनके मन करणको जलती हुई आग न बुझी थी। किसी एक सामान्य बातको लेकर वे अपना आक्रोश प्रकाश करने लगे। अन्तमें १८४८ ई०को पदच्युत दीवान मूलराजको उत्तेजनासे विद्रोही हो कर उन्होंने दो अङ्गरेज सेनापतिको मार डाला। धीरे धीरे चारों ओरसे सिक्ख सेना मुलतान नगरमें एकत्रित हुई और मध्य भाव सीमान्तवर्ती शासकोंने भी आ कर उनका साथ दिया। पीछे अङ्गरेज सेनापति विश (General Whish) इस दलके साथ विपक्ष दलमें आ मिले। इसलिये चार सिरदार इसी सुयोगसे अफगानपति अमीर दोस्त महम्मदसे सिक्खजातिको सहायताके लिए सेना भेज दी। १८४८ ई०में अङ्गरेज सेनाध्यक्ष लार्ड गफ शतद्रुको पार कर गये। रामनगरके निकट सिरदार इसी साथ उनकी मुठभेड़ हो गई। इस युद्धमें पराजय हो कर सिक्खोंने अपनी पीठ दिखाई। बादमें १८४९ ई० को १३वीं जनवरीको चिलियनवालाके रणक्षेत्रमें सिक्ख-सेना प्रबल प्रताप से सिक्ख-गौरवकी रक्षा करनेमें समर्थ हुई थी। इस युद्ध में अङ्गरेजोंको अतिशय क्षति उठाना पड़ा था। चिलियनवाला के विख्यात युद्धके दो सप्ताह बाद मूलराजने उनके हाथ आत्मसमर्पण किया और उनके पिता छत्तरसिंह १०००० सवार सिपाहियोंके साथ मिल गए। २१वीं फरवरीको लार्ड गफने गुजरातके युद्धमें पुनः वीरदर्पके साथ आक्रमण किया। सिक्खोंके पराजित होने पर अङ्गरेजी सेनाने पेशावरमें अमीर दोस्त महम्मद पर चढ़ाई कर दी। अमीर किसी तरह प्राण ले कर भागे।

१८४९ ई०को २९वीं मार्चको महाराज दलीपसिंह के साथ सन्धिपत्रमें आबद्ध हुए थे उसका मर्म इस प्रकार है—(१) महाराज दलीप राज्यसम्बन्धी अधिकारको छोड़ देंगे। (२) जहां जो राजकीय सम्पत्ति पाई जायगी उसे तथा दरिया-ए-नूरको युद्धके पर्चे तथा अङ्गरेज गवर्मेण्टके निकट लाहोरराजके अपराधके बदलेमें देंगे। (३) महाराज रणजित्‌के आदेशानुसार जो कोहिनूर पाया है उसे लाहोरके महाराज इङ्गलैण्डकी महारानीको दे देंगे। (४) महाराज दलीप सिंह सपरिवारके भरणपोषणके लिए वार्षिक ४ या ५ लाख रुपये पावेंगे। (५) महाराजको अङ्गरेज गवर्मेण्ट मान्य और सम्मानको निगाहसे देखेंगे। इत्यादि इत्यादि।

पञ्जाब अङ्गरेजोंके हाथ लगा। १८४९ ई०से आरम्भ में इसका शासनकार्य तीन सभा द्वारा परिचालित होता था। पीछे इसे अङ्गरेजी शासनानुसार विभिन्न जिलोंमें विभक्त कर एक चीफकमिश्नरके हाथ रखा गया। सिपाही विद्रोहके बाद भी यह प्रदेश छोटे लाटके शासनाधीन हुआ।

१८५७ ई०को दिल्ली नगरमें सिपाही विद्रोहका सूत्रपात हुआ। पञ्जाब प्रदेशमें अवस्थित देशीय सेनाओंके मध्य असन्तोष भाव दिखाई देता था। १२वीं मईको जब दिल्लीके भयानक हत्याका सम्वाद लाहोर पहुंचा तब मण्टगोमरी (Sir R. Montgomery) साहबने सहिष्णुताका अवलम्बन करके मियांमीरमें ३००० सिपाही अस्त्रादि छीन लिये। फिरोजपुरके अस्त्रागार सुरक्षित होनेके बाद १३वीं मईको सिपाहीगण स्पष्टतः विद्रोही हो उठे। उसी मासकी २१वीं तारीखको ५५ नं० देशीय पदातिकने अङ्गरेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। बहुतों को इस कारण पार्वत्यभूमिमें भाग गये। उन्हीं और दलों कुछको अनुसरणमें सिपाहियोंने विद्रोही हो कर दिल्लीके विद्रोहियोंका साथ दिया। जुलाई और अगस्त मासमें अवशेष पेशावर, झेलम, सियालकोट, मूरि और लाहोरके दक्षिण इरावती तथा शतद्रु नदीके मध्यवर्ती स्थानों की सेनाने अङ्गरेजोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। पटियाला, झिन्द, नाभा, कपूरथला आदि सामन्तराजाओं ने इस दारुण विप्लवके समय अङ्गरेजोंकी विशेष सहायता की थी। इस उपकारके प्रत्युपकारस्वरूप अङ्गरेज-राजने भी उन्हें काफी पुरस्कार दिया था।

सिपाहीविद्रोह देखो।

सिपाहीविद्रोहके बादसे ही पञ्जाबमें वाणिज्य और व्यापारकी उन्नतिका आरम्भ हुआ। प्रथम अवस्था में अमृतसरसे मुलतान तक रेलपथ बनाया गया और

बड़ी दोआबकी नहर काटी गई। १८७६ ई०में महारानीके ज्येष्ठ पुत्र प्रिंस आव वेल्स यहां पधारे थे। १८७७ ई०में यहांके सामन्तराजगण दिल्लीकी महासभामें एकत्र हुए थे। अफगान युद्धकालमें यह स्थान युद्धके सरञ्जामादिके केन्द्रस्थलरूपमें गिना जाने लगा था। पटियाला, बहावलपुर, भिन्द, नाभा, कपूरथला, फरीदकोट और नाहन आदि स्थानोंके सामन्तराजाओंने अफगान्युद्धमें विशेष सहायता की थी। १८७४-१८८० ई० तक यहां जलाभावके कारण भारी अकाल पड़ा था जिससे लाखोंकी जान गई थी। युद्धविग्रहके कारण पश्चिमदेशका वाणिज्य बन्द हो गया जिससे प्रजाके कष्टका पारावार न था। किन्तु कोहाटसे पेशावर तक जो रेल पथ खोला गया उसीमें काम करके बहुतोंने अपनी जान बचाई थी। युद्धावसानके बाद ही सरहिन्दकी नहर काटी गई। इससे पञ्जाबके अनेक स्थानोंका जलकष्ट दूर हो गया।

विद्याशिक्षाकी ओर यहां विशेष ध्यान दिया जाता है। लाहोरमें एक विश्वविद्यालय है जो १८८२ ई०में स्थापित हुआ है। इस विश्वविद्यालयको विज्ञान, शिल्प, कला, डाक्टरी, कानून, इन्जिनियरिंग परीक्षोत्तीर्ण छात्रोंको खिताब देनेका भी अधिकार है। पञ्जाब भरमें ४० हाई स्कूल, नारमल स्कूल, २०० मिडिल स्कूल, प्राय मरी स्कूल, इञ्जिनियरिंग स्कूल और १२ शिल्पकलाके स्कूल हैं। इनके सिवा कुछ ऐसे भी कालेज और स्कूल हैं जिनमें सरकारसे कुछ भी सहायता नहीं ली जाती है, जैसे, लाहोरमें मुसलमान सम्प्रदायसे १८९२ ई०में स्थापित इस्लामिया कालेज, अमृतसरमें सिखोंसे १८९७ ई०में स्थापित खालसा कालेज। १८८८ ई०में आर्यसमाजकी ओरसे लाहोरमें एक स्कूल खोला गया जिसका नाम दयानन्दएङ्गलोवैदिक स्कूल है। १८९० ई०के अक्तूबरमासमें मेडिकल कालेज स्थापित हुआ है जहां व्यवसाय-सम्बन्धी विषयोंमें उच्च शिक्षा दी जाती है। फिलहाल पञ्जाबकी हर हालतमें उन्नति होती जा रही है।

पञ्जि (सं० स्त्री०) पञ्ज-इन्। १ सूतनालिका, नरी। २ पञ्जिका, पञ्चांग।

पञ्जिका (सं० स्त्री०) पञ्जि-स्वार्थे कन् टाप। १ तूलनालिका, रूईकी नरी। २ व्याख्यानग्रन्थ, टीकाविशेष।

"टीका निरन्तरव्याख्या पंजिका पदभंजिका॥"

(हेमचन्द्र)

जिसमें निरन्तर व्याख्यान हो, उसे टीका और जिसमें निरन्तर पदभञ्जन हो, उसे पञ्जिका कहते हैं। ३ पाणिनीय सूत्रवृत्तिभेद। ४ तिथिवारादि पञ्चाङ्गयुक्त पत्रिका, पञ्चांग। वर्षके प्रारम्भमें ज्योतिषीसे पञ्जिका सुननी चाहिये, इसके सुननेसे अशुभ जाता रहता है।

"वारो हरति दुःस्वप्नं नक्षत्रं पापनाशनं।
तिथिर्भवति गंगाया योगः सागरसङ्गम।
करणं सर्वतीर्थानि शृण्वन्ते दिनपंजिकाः॥" (देवध०)

दिनपंजिका सुननेसे वारफलसे दुःस्वप्ननाश, नक्षत्रसे पापनाश, तिथिसे गंगातुल्यफल, योगसे सागरसङ्गम सदृश और करणसे सब तीर्थोंका फल होता है। ज्योतिस्तत्त्वधृत वराहपुराणमें लिखा है, कि वार और नक्षत्र ये दुःस्वप्न और पापनाशक हैं, तिथि आयुष्करी, योग वृद्धिवर्द्धक, चन्द्र सौभाग्यप्रद आदि। जो प्रतिदिन पञ्जिका श्रवण करते हैं उन्हें ये सब फल प्राप्त होते हैं।

"दुःस्वप्ननाशको वारो नक्षत्रं पापनाशनम्।
तिथि आयुष्करी प्रोक्ता योगो वृद्धिविवर्द्धकः॥
चन्द्रः करोति सौभाग्यमंशकः शुभदायकः।
करणं लभते लक्ष्मीं यः शृणोति दिने दिने॥'

(ज्योतिस्तत्त्वधृतवचन)

पञ्जिकामें तिथि, वार, नक्षत्र, करण और योग आदि दैनन्दिन विषय लिखे हुए हैं।

चिरपञ्जिका—शकाब्दानुसार वारगणना होती है। जिस शकाब्दमें जिस मासके जिस दिवसका वार जानना होगा उस शकाब्दकी अङ्कसंख्यामें शकाब्दका चतुर्थांश जोड़ कर उसमें फिर निम्नलिखित मासाङ्क और उस मासकी दिनसंख्या तथा अतिरिक्त दो जोड़ते हैं। इस प्रकार जो योगफल होगा उसको सातसे भाग दे कर जो बचेगा, उससे वार जाना जाता है। एक अवशिष्ट रहनेसे रविवार, दोसे शनिवार इत्यादि। मासाङ्क यथा—

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	मासाङ्क
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	

यदि शकाब्दका चतुर्थांश पूर्णाङ्क न हो कर भग्नाङ्क हो तो उस भग्नाङ्कके बदलेमें १ मानना होता है। फिर जिस शकाब्दका चतुर्थांश भग्नाङ्क न हो उस शकाब्दके केवल माघमें ६ और फाल्गुनमें २ मासाङ्क लेने होते हैं। इस गणनामें यदि नहीं मिले, तो उसमेंसे एक निकाल लेने पर वह अङ्क मिल जायगा, इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

उदाहरण—१८८८ शकाब्दमें ११ चैत्र कौन वार होगा। यहां शकाब्द १८८८ है जिसमें इसका चतुर्थांश ४७२, मासाङ्क ६, दिनाङ्क ११ और अतिरिक्त २ जोड़नेसे २३८८ हुआ। इसमें जब सातसे भाग देते हैं, तब शेष ६ बच रहता है। अतएव यह मालूम हुआ कि वह दिन शुक्रवार होगा।

सनको जगह भी इसी तरह किया जाता है। इस प्रकार वारको गणना करके तिथिकी गणना करनी होती है। तिथिगणना इस प्रकार है—शकाब्दको संख्याको १८से भाग दे कर जो बच रहे उसे ११से गुणा करते हैं। अब इस अङ्कमें निम्नलिखित मासाङ्क, दिनसंख्या और अतिरिक्त ६ जोड़ कर ३०से भाग देने पर जो बचेगा उस अङ्कमें जो तिथि होगी, उसी दिनमें वह तिथि जाननी होती है। इसी नियमसे तिथि स्थिर की जाती है। मासाङ्क यथा—

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	मासाङ्क
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	०	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	

ऐसी गणनासे यदि ठीक न मिले, तो मासके प्रथममें होनेसे १ बाद और शेषमें होनेसे १ जोड़ देना पड़ता है।

नक्षत्रगणना—तिथि गणनाके अनुसार उस दिनको तिथि स्थिर करके उसमें निम्नलिखित मासाङ्क जोड़ देते हैं। यदि वह योगफल २८से अधिक हो, तो उसमेंसे २० बाद दे कर जो बच रहे उसी अङ्कके अनुसार नक्षत्र स्थिर किया जाता है। इसमें यदि ठीक न मिले, तो मासका पूर्वार्द्ध होने पर १ योग और शेषार्द्ध होने पर १ बाद देने से मिल जायगा। किन्तु उस दिनकी जो संख्या होगी यदि उसको अपेक्षा उस दिनकी तिथिका अङ्क अधिक हो, तो उस मासका मासाङ्क न जोड़ कर उसके पूर्व मासका मासाङ्क जोड़ना होता है।

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	मासाङ्क
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	७	[illegible]	[illegible]	[illegible]	

राशिगणना।—पूर्व नियमके अनुसार नक्षत्र स्थिर करके उसे ४से गुणा कर ९से भाग देते हैं। अवशिष्ट जो रहता है उसमें १ जोड़ कर जो योगफल हो उसी संख्याके अनुसार राशि होगी। १ होनेसे मेष २ होनेसे वृष इत्यादि। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है। १८८८ शकको १८वीं चैतको जिसका जन्म हुआ है उसकी क्या राशि है ? ऐसे प्रश्न पर पूर्व नियमसे नक्षत्र गणनामें २१ संख्या अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्र होता है। पीछे उस संख्याको ४से गुणा करनेसे ८४ तथा ८४को ९से भाग देनेसे भागफल १० हुआ और अवशिष्ट २ रहा। उस १० संख्यामें १ जोड़नेसे ११ हुआ। ११ संख्यामें कुम्भराशि स्थिर हुई। जिससे तिथि वार और नक्षत्र आदिका विवरण जाना जाता है उसीका नाम पञ्जिका है। सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थानुसार पञ्जिकाकी गणना की जाती है। आज कल बहुतसी पञ्जिकाओंका प्रचार देखा जाता है। दिनचन्द्रिकाके मतसे भी पञ्जिकागणना हुआ करती है। इसे पञ्चाङ्गसाधन कहते हैं। वार, तिथि नक्षत्र योग और करण इन पञ्चाङ्गोंकी गणना रहती है, इसीसे इसका पञ्चाङ्गसाधन नाम पड़ा है। इस पञ्जिकागणनाका विषय बहुत संक्षेपमें लिखा गया है।

दिनचन्द्रिकाके मतसे पञ्जिका गणना —

जिस शकाङ्कमें जिस वर्षको पञ्जिकागणना करनी होगी, उस वर्षमें १५२२ घटा देनेसे जो बच रहेगा, उसे अब्दपिण्ड जानना होगा। इस अब्दपिण्डको १५८४से

गुना करके उसमें ४३०० जोड दे। योगफलको ६०००० से भाग देनेसे जो लब्धाङ्क होता है, उसका नाम तिथि-दिन है। पहले इसी प्रकार तिथि-दिन स्थिर करना होगा।

अब्दपिण्डको ८३३से गुणा कर, गुणनफलमें १५१०० जोड कर २०००० हजारसे भाग दे। इस प्रकार भाग देनेसे जो लब्धि होगी, वही नक्षत्रदिन और भोगदिन है। अब्दपिण्डको ११से गुणा करके उसमें १२ और पूर्वोक्त मतसे जो तिथिदिन हुआ है उसे एकत्र जोड कर ३०से भाग दे। भाग देनेसे जो शेष बचेगा वह उस वर्षकी प्रथम तिथि है। यदि शून्य अवशिष्ट रहे, तो ३० अमावस्या प्रथम तिथि होगा। अब्दपिण्डको १०से गुणा कर ११ जोड दे और पूर्वोक्त मतसे जो नक्षत्रदिन और योगदिन हुआ है उस अङ्कको उसमेंसे घटा कर २७से भाग दे। भागसे जो अवशिष्ट रहेगा, वह अङ्क उस वर्षका प्रथम नक्षत्र होगा। यदि शून्य रहे, तो २७ नक्षत्र होता है। वही प्रथम नक्षत्र है।

अब्दपिण्डको ७।७।८।५।५।१।२७ इस प्रत्येक अङ्कसे गुणा करके पृथक् पृथक् स्थानोंमें रखते हैं। उसके बाद शेषको अर्थात् २७ पूरित अब्दपिण्डाङ्कको ६०से भाग देनेसे जो लब्धि होगा उसे ५१ पूरित अब्दपिण्डमें जोड देते हैं। अब इस योगफलमें ६०से भाग और ५ पूरित अब्दपिण्डाङ्कका योग देना होता है। फिर इसे ६०से भाग और ८ पूरित अब्दपिण्डाङ्कका योग पीछे पुनः इसे ६०से भाग और ७ पूरित अब्दपिण्डाङ्क योग विधेय है। तदनन्तर इसे ६०से भाग और ८ पूरित अब्दपिण्डाङ्कका योग देना होता है। पीछे उसे भी ६०से भाग करके भागफलमें ७ पूरित अब्दपिण्डाङ्कको जोडते हैं।

तिथि-दिनको दो स्थानोंमें रख कर एक स्थानके तिथि-दिनको ३०२से भाग दे कर दूसरे स्थानके तिथि-दिनके साथ योग करते हैं। यह योगाङ्क और पूर्वकथित नियमानुसार जो अङ्क हुआ है उसे यथाक्रम ०।११।५८ सेवाङ्कके साथ योग करना होता है। योग करके जो समष्टि होगी उसके प्रथमाङ्कको ६०से गुणा करके द्वितीय अङ्कके साथ जोड देते हैं। पीछे उसे १६८५से भाग देने पर,जो अवशिष्ट रहेगा उसे ६०से भाग करके लब्धाङ्कको बाईं ओर रखनेसे जो होता है, वही तिथिकेन्द्र है। १६८५से भाग देनेसे जो भागफल होता है उसका नाम है तिथिकेन्द्रभ्रम।

अब्दपिण्डको पूर्वोक्तरूपसे यथाक्रम ११।८।४८।२१से गुणा करके पूर्वोक्त रीतिसे ६० द्वारा भाग करते हैं और और भागफलको ४८।१८।१ पूरिताब्द पिण्डाङ्कमें योग करके योगफलमेंसे ३।२०।१५।१४ घटाने होते हैं; बादमें पूर्वोक्त तिथिकेन्द्रभ्रमको ३२से गुणा करके उसे ८ मे भाग देते हैं और भागफल तथा अवशिष्टको पूर्णाङ्क (३।२०।१५।१४ घटानेसे जो बच रहता है, उस अङ्क) मेंसे घटाते हैं। पीछे पहलेके जैसा तिथिदिनको दो स्थानमें रख कर एक स्थानके तिथिदिनको ३००से भाग देते और भागफलको दूसरे स्थानके तिथि-दिनके साथ जोड कर पूर्वाङ्कमें जोडते हैं। इस प्रकार गणना करनेसे वार, तिथि और तिथिके दण्डपलादि स्थिर हो जाते हैं। अब्दपिण्डको १५००से भाग देने पर जो भागफल होता है, उसे तिथि वारादिके फलके साथ योग करते हैं और वाराङ्कको ७से भाग देने पर जो भागशेष रह जाता है वही वार है तथा उसके पहले यदि प्रथम तिथिको पृथक् करके रखें, तो वे तिथि वारादि होंगे। अब्दपिण्डको पहलेके जैसा यथाक्रम ७।०।४।४५।५३।३। २४।१२से गुणा कर पूर्ववत् शेषको ६०से भाग देते हैं। भागफल जो होता है उसे यथाक्रम २४, ३, ५३, ४५, ०, ७ पूरित अब्दपिण्डाङ्कमें योग करना होता है। नक्षत्र-दिनको दो स्थानमें रख कर एक स्थानके नक्षत्र-दिनको १२००से भाग दे कर उसमें अन्य स्थानके नक्षत्रदिनको जोड देते हैं। अब योगफलको पूर्णाङ्कमें घटाते हैं और उसमें ०।२५।१७ योग करके प्रथमाङ्कको ६०से गुणा और द्वितीयाङ्कको उसके साथ योग करते हैं। पीछे उस योग-फलको १६३५से भाग करके जो भागशेष रह जाता है उसे पुनः ६०से भाग दे कर भागफलको बाईं ओर रखते हैं, इसका नाम नक्षत्रकेन्द्र है। इस नक्षत्रकेन्द्रको १६३५ से भाग देनेसे जो भागफल हुआ था, उसका नाम नक्षत्रकेन्द्रभ्रम है।

अब्दपिण्डको पहलेके जैसा यथाक्रम १।१३।२५।१८। १४।३१।१२से गुणा करके पूर्ववत् ६०से भाग देते हैं,

पीछे भागफलको यथाक्रम १६, ४४, १८, २२, १९, १ पुरित चन्द्रपिण्डाङ्कमें जोड़ते हैं। नक्षत्र दिनको दो स्थानमें रख कर एक स्थानके नक्षत्र दिनको १२००से भाग करके बचे अन्य स्थानके नक्षत्रदिनमें जोड़ देते हैं। योगफल जो होता है, उसे पूर्वाङ्कमें घटा देते हैं। इस प्रकार घटानेसे जो बच रहता है, उसमें ३।१८।४४।२४।२६ योग करते हैं। पूर्वोक्त नक्षत्रकेन्द्रफलको १८से गुणा करके उसमें ६०का भाग देते हैं। भागफल जो होता है तथा अवशिष्ट जो रह जाता है, उसे पूर्वाङ्कमें (३।१७।१२।२६ योग करनेके बाद जो चन्द्र हुआ है उस अङ्कमें) योग करते हैं। इससे वार, दण्ड पल आदि निकल आते हैं। वारको ७से भाग देने पर जो शेष रहेगा वह वार दिन होगा और उसके पहले नक्षत्रको पृथक करके रखना होगा, यही नक्षत्र वारादि है।

चन्द्रपिण्डको पूर्ववत् यथाक्रम ७।२१।१४।११।४७ १८।१८से गुणा करके पूर्व नियमानुसार ६०से भाग देते हैं। भागफल जो होते हैं उन्हें २८ ५५ ३६ १६ २२ ७ पूरित चन्द्रपिण्डाङ्कमें योग करते हैं। बादमें योगदिनको दो स्थानोंमें रख कर एक स्थानमें योगदिनको ६००से भाग और दूसरे स्थानके योगदिनके साथ योग करते हैं। पीछे उस अङ्कको पूर्वाङ्कसे घटा देते हैं। उसमें यदि ०।१८।१८ योग करें तो वह ध्रुवाङ्क होगा। इस ध्रुवाङ्कको ६०से गुणा करनेसे गुणनफलमें इसके बाद अङ्कको जोड़ देते हैं। अब इस योगफलको १०५२से भाग देनेसे जो अवशिष्ट रहेगा उसे पुनः ६०से भाग देते हैं। भागफल जो होगा उसे बाद और रखनेसे योगकेन्द्र होगा। फिर इस योगकेन्द्रमें १०६२का भाग देनेसे जो भागफल होगा, उसका नाम योगकेन्द्रफल है।

चन्द्रपिण्डको पहलेसे यथाक्रमसे जैसा ११।४६।१० १८।३० १८से गुणा करके पूर्व नियमानुसार ६०से भाग देते हैं। पीछे प्रथम अङ्कमें क्रमसे १०, ५८, १०, ३६, १ पूरित चन्द्रपिण्डाङ्कमें योग करना होता है। बादमें योगदिनको दो स्थानोंमें रख कर एक स्थानके योगदिनको २००से भाग दे कर उसे अन्यस्थानके योगदिनके साथ योग और उस पूर्वाङ्कसे वियोग करना होता है। पूर्वोक्त योग-केन्द्रफलको ११०से गुणा करके उसे ६०से भाग दे कर पूर्वाङ्कमें वियोग करना होता है। ऐसा करनेसे वार, दण्ड, पल आदि होंगे। वारको ७का भाग देनेसे शेष जो बचेगा, वह वार होगा। इसके पहले प्रथमयोगको पृथक् करके रखना होगा ऐसा होनेसे ही योग वारादि होंगे।

सुमेरु पर्वत और लङ्काको मध्यगत भूमिके ऊपर हो कर उत्तर-दक्षिणमें विस्तृत जो एक रेखा कल्पित हुई है, उसका नाम मध्य रेखा है। उस मध्य रेखासे अपना देश जितने योजनके अन्तर पर रहेगा उस योजनको इससे गुणा करके ११से भाग देते हैं, भागफल जो होता है वह पल है। वह पल यदि ६०से अधिक हो, तो उसे ६०से भाग करके जो दण्डपलादि होंगे उन्हें मध्यरेखाके पूर्व देशमें जो सब तिथिवारादि, नक्षत्रवारादि, योगवारादि और मेषक्रान्ति प्रस्तुत हुए हैं उनके साथ जोड़ना होता है।

विषुवदिनके वारादि ध्रुव और केन्द्रध्रुवको दो स्थानोंमें पृथक् करके उन वारध्रुव और केन्द्रध्रुवके साथ प्रतिदिनके वारध्रुवक्षेपाङ्क और केन्द्रध्रुवक्षेपाङ्कका योग करते हैं। योगफल प्रतिदिनका शुद्धवारध्रुव और शुद्धकेन्द्रध्रुव होगा। उस शुद्धकेन्द्रध्रुव से स्थानीय लग्नका पलत्व करके उसे एक स्थानमें रखते हैं। बादमें लग्न उस स्थापित पलाङ्कसे जितना अधिक होगा उसका नाम धनभोग्य है और स्थापित पलाङ्कसे जितना कम होगा उसका नाम ऋणभोग्य है। केन्द्रका अङ्क जो अवशिष्ट रहेगा उसे भोग्य द्वारा गुणा करके पञ्चिकाको शोधित करना होगा तथा धनभोग्यस्थान पर स्थापित पलाङ्कके साथ योग तथा ऋणभोग्यस्थान पर स्थापित पलाङ्कके साथ वियोग करना होता है।

उस पलाङ्कको वारादि ध्रुवफलके साथ योग करनेसे जो प्रतिदिनकी तिथि आदि दण्डादि होंगे। वह दण्डादि यदि ६० दण्डसे अधिक हो, तो उसे ६०से भाग करके लब्धाङ्कवारमें जोड़ना होता है। अवशिष्ट दण्डादि रहेगा। इसमें प्रथम रात्रि तिथि होगी, इसी प्रकार वार दिवसमें तिथिका स्थितिकाल पूरा करता है। एक दिनकमें यदि वार क्षय न हो अर्थात् रविवारसे

बाद मङ्गलवार हो, तो जानना होगा कि सोमवारको वह तिथि ५० दण्ड है तथा मङ्गलवार दिनमें लब्ध दण्ड है। दोनों दिनमें यदि एक ही बार लब्ध हो, तो प्रथम लब्ध दण्ड तक एक तिथि तथा द्वितीय लब्धदण्ड तक एक और तिथि होगी। इससे जाना जाता है, कि यह दिन त्र्यहस्पर्श होगा। यह त्र्यहस्पर्श गणनास्थलमें परलब्ध दण्डसे पूर्वलब्धदण्ड बाद देनेसे स्थिर किया जाता है।

केन्द्र यदि अपने अपने भ्रमसे अधिक हो अर्थात् तिथिकेन्द्र यदि २८।५, नक्षत्रकेन्द्र २७।१५ तथा योगकेन्द्र यदि २८।२२ संख्यासे अधिक हो, तो उसे अपने अपने केन्द्रमें बाद दे कर तिथि वारादि दण्डमें ३२ बाद, नक्षत्र वारादिके दण्डमें १८ योग और योग वारादिके दण्डमें ११०का वियोग करना होता है। ऐसा करनेसे शुद्ध वारादि होंगे। तिथिकेन्द्रका भ्रम २८।५, नक्षत्रकेन्द्रका भ्रम २७।१५ और योगकेन्द्रका भ्रम २८।२२ है।

तिथिकी अङ्कसंख्या जितनी होगी उसे द्विगुण करके यदि तिथिमानके पूर्वार्द्धमें करण करनेको आवश्यकता हो, तो द्विगुणाङ्कमें २ बाद और तिथिमानके परार्द्ध होने पर १ बाद देना होता है। अवशिष्ट अङ्कमें ७ बाद दे कर भाग देनेसे जो अवशिष्ट रहेगा उसीका वव, वालव इत्यादि क्रमसे करण जानना होगा।

अब्दपिण्डको १००७से गुणा करके ८००का भाग दो, लब्धाङ्क वार, दण्ड इत्यादि होगा फिर अब्दपिण्डको ७से गुणा करके ३०=से भाग दो और भागफलको पलमें जोड़ दो। उसके बाद ४।४४।८।१३ इस क्षेपाङ्कको जोड़ो और योगफलको ७से भाग दो. इस प्रकार जो अवशिष्ट रहेगा, वह विषुवसंक्रान्तिका वारादि होगा। इसमें पूर्व नियमसे देशान्तरसंस्कार और चरार्धसंस्कार करनेसे ही विषुवसंक्रान्तिका शुद्ध वारादि होगा। इसी समय सूर्य मेषराशिमें जाते हैं। सूर्यके मेषराशिमें जानेसे वैशाखमास हुआ। उस वैशाखसे आरम्भ कर पुनः चैत्र तक गणना करनेसे एक वर्षकी गणना हुई। मेषादिके क्षेपवारादि अङ्क इस प्रकार हैं।

मेषक्षेपवारादि —४।४४।८।१३,
वृषक्षेपवारादि —२।५६।४८,
मिथुनक्षेपवारादि—६।२२।२८,
कर्कटक्षेपवारादि—३।१ ३,
सिंहक्षेपवारादि—६।२८।०,
कन्याक्षेपवारादि—२।२८।२०,
तुलाक्षेपवारादि—४।५५।०,
वृश्चिकक्षेपवारादि—६।४७।५१,
धनुःक्षेपवारादि २।१६।५२,
मकरक्षेपवारादि—२ ३६।११,
कुम्भक्षेपवारादि ४।३।२४,
मीनक्षेपवारादि— ५।५३।८।

विषुवसंक्रान्तिके शुद्ध वारादिमें इन वृषादिके क्षेपाङ्कका योग करनेसे उस समय सूर्य वृष मिथुन इत्यादि राशिमें गमन करते हैं अर्थात् मासके शेषमें उस उस वारमें उस उस समय संक्रमण होता है। कौन मास कितने दिनोंमें शेष होगा उसका विवरण नीचे दिया जाता है—

	दिन,	दण्ड,	पल,		दिन,	दण्ड,	पल
वैशाख	३०	५६	४८	कार्तिक	२९	५२	५१
ज्यैष्ठ	३१	२५	३९	अग्रहायण	२९	२९	१
आषाढ़	३१	३८	३५	पौष	२९	१९	९
श्रावण	३१	२७	५७	माघ	२९	२७	२३
भाद्र	३१	०	२०	फाल्गुन	२९	५०	४
आश्विन	३०	२५	४०	चैत्र	३०	३२	३

स्थूलगणनासे ३६५।१५।३१ पलका एक संवत्सर, पर सूक्ष्म गणनासे ३६५।१५।३१।३१।२४ अनुपलका वत्सर होता है। किस प्रणालीसे पञ्जिका तैयार होती है, उसीका साधारणभावमें दिखाना उचित है। जो पञ्जिका बनाते हैं, उन्हें मूलग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये।

वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण यही पांच पञ्जिकाके प्रधान विषय हैं। इन सब गणनाओं द्वारा स्थिर हो जाने पर राशि, राशिमें ग्रहोंका अवस्थान, संक्रान्ति, त्र्यहस्पर्श, ग्रहण आदि गणना उन्हीं सब नियमोंके अनुसार हुआ करती है। (दिनचन्द्रिका०)

आज कल अनेक पञ्जिकाएं छपती हैं जिनमें पञ्जिकाके

सभी विषय और तदानुषङ्गिक नाना प्रकारकी गणनायें रहती हैं। वार, तिथि नक्षत्र योग, करण प्रभृति, मासस्पर्श, ग्रहोंका चरस्थान ग्रहस्फुट, शुभाशुभ दिनकी तालिका आनाकाम ग्रहण और उसकी व्यवस्था राशियोंके सञ्चार आदिकी गणनामें परिस्फुटभावसे सन्निवेशित होते हैं। पहले जब मुद्रायन्त्र नहीं था, तब हाथसे पञ्जिका लिखी जाती थी। उस समय वार तिथि नक्षत्रयोग, करण और राशिचक्रमें ग्रहोंकी अवस्थान ग्रहोंके सञ्चार और ग्रहणमात्र गणना रहती थी।

हिन्दपञ्जिकाके मतसे पञ्जिकागणनाका विषय संक्षेपसे लिखा जा चुका। इस पञ्जिकागणनामें पहले अब्दपिण्ड और तिथि दिन आनयन, पीछे नक्षत्रदिन और योगदिन, बादमें प्रथम तिथि प्रथम नक्षत्र और प्रथम योग निर्णयादि नक्षत्रकेन्द्र नक्षत्रवारादि, योगकेन्द्र, योगवारादि प्रतिदिवसकी तिथि नक्षत्र, योगका स्थितिदण्ड और ग्रहादि साधन, नक्षत्रानयन योगानयन, करण और संक्रान्ति इत्यादि इन सबकी गणना करनेसे ही पञ्जिका प्रस्तुत होती है।

पञ्जिकाकारक (सं० पु०) पञ्जिं करोतीति कृ-ण्वुल्। १ कायस्थजाति। २ पञ्जिकाकार, दैवज्ञ ज्योतिषी।

पञ्जी (सं० स्त्री०) पञ्जि बाहुल्यात् ङीष्। १ सूत्र नालिका, नली। २ पञ्जिका, पत्रा। जैसा कुलपञ्जी। इसमें वंश और पदका विवरण विशेषरूपसे वर्णित है।

पञ्जीकर (सं० पु०) पञ्जीं पञ्जिकां करोतीति कृ-ट। कायस्थजाति।

पट (सं० पु० क्ली०) पटत्यनेन पट णिच् करणे-क। १ वस्त्र, कपड़ा। इसका पर्याय सुचेलक है। २ चित्रपट कागजका वह टुकड़ा जिस पर चित्र खींचा या उतारा जाय। देवीपुराणमें पटका विषय इस प्रकार लिखा है। जो देवोंका पट बनाता है उसे [illegible] होता है। नूतन वस्त्र पर पट बनाना होता है। वह पट सर्वाङ्गसुन्दर, समान सम्पूर्णचिह्नित और पवित्र तथा छेदरहित होना आवश्यक है। पटमें यदि कोई छेद रहे, तो बनानेवालेका अमङ्गल होता है।

नवधा विभक्त वस्तुत भागो कोठोंमें देवता स्थापन और पाद्यान्तसे मध्य मण्डल तथा पश्चिम तीन पंक्तिमें राक्षसोंका आवास स्थान है। नूतन वस्त्र विचित्र दिन दिन पर पहनना चाहिए। बृहत्संहिताके ७१वें अध्यायमें इसका विवरण विस्तृतरूपसे लिखा है। (पु०) ३ किवाड़, किवाड़ोंका [illegible]। ४ भूसा [illegible] ५ पर्याप्त अवकाश। ६ कोई आड़ करनेवाली वस्तु पर्दा, चिक। ७ लकड़ी, धातु आदिका वह चिकना टुकड़ा या पट्टी जिस पर कोई चित्र या लेख खुदा हुआ हो। ८ वह चित्र जो जगन्नाथ-बदरिकाश्रम आदि मन्दिरोंमें दर्शक यात्रियोंको मिलता है। ९ छप्पर छान। १० सरकण्डे आदिका बना हुआ वह छप्पर जो नाव या बहलीके ऊपर डाल दिया जाता है।

पट (हिं० पु०) १ साधारण दरवाजोंके किवाड़। २ सिंहासन। ३ किसी वस्तुका तलप्रदेश जो चिपटा और चौरस हो, चिपटी और चौरस तलभूमि। ४ पालकीके दरवाजेके किवाड़ जो सरकानेसे खुलते और बन्द होते हैं। ५ टांप। ६ कुश्तीका एक पेंच। इसमें पहलवान अपने दोनों हाथको जोड़को पांवोंकी तरफ इसलिये बढ़ाता है कि वह उसके सिरे पावों पर झपट मारा जायगा और फिर फुरतीसे झुक कर उसके दोनों पैर अपनी तरफ खींच कर तुरत उठा लेता और गिरा कर चित कर देता है। यह पेंच और भी कई प्रकारसे किया जाता है। ७ किसी हलकी छोटी वस्तुके गिरनेसे होनेवाली आवाज शब्द। (वि०) ८ ऐसी स्थिति जिसमें पेट भूमिकी ओर हो और पीठ आकाशकी ओर चितका उलटा औंधा। (क्रि० वि०) ९ चोट, तुरत, फौरन।

पटइन (हिं० स्त्री०) पटवा जातिकी स्त्री, पटहार जातिकी स्त्री।

पटक (सं० पु०) पटेन पटगेन कायति प्रकाशते इति कै-क। १ शिविर तम्बू, खेमा। २ सूती कपड़ा।

पटकन (हिं० स्त्री०) १ पटकनेकी क्रिया या भाव। २ थप्पड़, तमाचा। ३ छोटा डंडा, छड़ी।

पटकना (हिं० क्रि०) १ झटकेके साथ ऊंचाईसे भूमिकी ओर झोंक देना, किसी चीजको झोंकेके साथ नीचेकी ओर गिराना। २ किसी खड़े या बैठे व्यक्तिको उठा कर जोरसे नीचे गिराना। 'पटकना' और 'दे मारना'में यह

इतना ही है, कि जहां ऊपरसे नीचेकी ओर झोंका देने या जोर करनेका भाव प्रधान है, वहां पटकना और जहां बगलसे झोंका दे कर किसी खड़ी या ऊपर रखी चोजको गिरावें, वहां ढकेलना वा गिराना कहेंगे। २ कुश्तीमें प्रतिद्वन्द्वीको पछाड़ना, गिरा देना या दे मारना। ३ पट शब्दके साथ किसी चीजका दरक या फट जाना। ४ गेहूं, चने, धान आदिका गोल या जलमें भीग कर फिर सूख कर सिकुड़ना। ५ सूजन बैठना या पचकना।

पटकनिया (हिं० स्त्री०) १ पटकनेकी क्रिया या भाव, पटकान। २ भूमि पर गिर कर लोटने या पछाड़ें खानेकी क्रिया या अवस्था, लोटनिया, पछाड़।

पटकनी (हिं० स्त्री०) १ पटकनेकी क्रिया या भाव। २ भूमि पर गिर कर लोटने या पछाड़ें खानेकी क्रिया या अवस्था। ३ पटके जानेकी क्रिया या भाव।

पटकरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बेल।

पटका (हिं० पु०) १ कमर बांधनेका रूमाल या दुपट्टा, कमरबन्द, कमरपेच। २ सुन्दरता बढ़ानेके लिये दीवारमें जोड़ी हुई पट्टी या बंद।

पटकान (हिं० स्त्री०) १ पटकनेकी क्रिया या भाव। २ भूमि पर गिर कर लोटने या पछाड़ खानेकी क्रिया या अवस्था। ३ पटके जानेकी क्रिया या अवस्था।

पटकार (सं० पु०) पटं शोभनवस्त्रं चित्रं वा करोति कृ-अण्। १ कपड़ा बुननेवाला, जुलाहा। २ चित्रपट बनानेवाला, चित्रकार।

पटकुटी (सं० स्त्री०) पटस्य पटनिर्मिता वा कुटी। कपड़े का घर, खेमा, तंबू। पर्याय—केणिका, गुणालयनिका।

पटच्चर (सं० क्लो०) भूतपूर्वं पटत् भूतपूर्वे चरट् वा पटदित्यव्यक्त शब्दं चरतीति पटत्-चट-पच्। १ जीर्ण-वस्त्र, पुराना कपड़ा। २ चोर, चोर। ३ महाभारत और पुराणोंमें वर्णित एक प्राचीन जनपद। महाभारतके टीकाकार नीलकण्ठके मतमें यह देश प्राचीन चोल है। लेकिन महाभारत सभापर्वमें सहदेवका दिग्विजय प्रकरण पढ़नेसे जान पड़ता है, कि इसका स्थान मत्स्यदेशके दक्षिण चेदिके निकट है।

पटड़ी (हिं० स्त्री०) पटरी देखो।

पटत् (सं० अव्य०) १ अव्यक्तानुकरण शब्दभेद। (त्रि०) २ पट।

पटत्क (सं० पु०) पटदिव चेष्टितं इव कायति कै-क। चोर, चोर।

पटत्कत्व (सं० क्लो०) पटत्कस्य कत्वा कौवत्वं। चोरकी गुदड़ी।

पटतर (हिं० पु०) १ समता, तुल्यता, समानता, बराबरी। २ सादृश्यकथन, उपमा, तशबीह।

पटतरना (हिं० क्रि०) बराबर ठहराना, उपमा देना।

पटताना (हिं० क्रि०) १ भाड़ू, भाला आदि शस्त्रोंको किसी पर चलानेके लिए पकड़ना या खींचना, संभालना। २ असमतल भूमिको समतल करना, पटतारना।

पटताल (हिं० पु०) मृदङ्गका एक ताल। यह ताल १ दीर्घ या २ ह्रस्व मात्राओंका होता है। इसमें एक ताल और एक खाली रहता है।

पटद (सं० पु०) कार्पासवृक्ष, कपास।

पटधारी (हिं० वि०) १ जो कपड़े पहने हो। (पु०) २ तोशाखानेका अधिकारी, तोशाखानेका मुख्य अफसर।

पटना (हिं० क्रि०) १ समतल या चौरस होना। २ मकान कुएं आदिके ऊपर कच्ची या पक्की छत बनना। ३ सींचा जाना, सेराब होना। ४ किसी स्थानमें किसी वस्तुकी इतनी अधिकता होना कि उससे शून्य स्थान न दिखाई पड़े, परिपूर्ण होना। ५ मकानकी दूसरी मंजिल या कोठा उठाया जाना। ६ खरीद, बिक्री, लेन देन आदिमें उभय पक्षका मूल्य, सूद, शर्त आदि पर सहमत हो जाना, तै हो जाना, बैठ जाना। ७ मन मिलना, बनना। ८ ऐसी मित्रता होना जिसका कारण मनोंका मिल जाना हो। ९ ऋणका देना, चुकता हो जाना, पाई पाई अदा हो जाना।

पटना—१ बिहारका एक प्रादेशिक विभाग। यह अक्षा० २४° १७´ से २७° ११´ उ० तथा देशा० ८३° १९´ से ८६° ४४´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें नेपाल, पूर्वमें भागलपुर और मुङ्गेर जिला, दक्षिणमें लोहरडङ्गा और हजारीबाग तथा पश्चिममें मीर्जापुर, गाजीपुर और गोरखपुर है। पटना, गया, शाहाबाद, दरभङ्गा, मुजफ्फरपुर, सारण और चम्पारण आदि जिलोंको ले कर पटना विभाग सङ्गठित हुआ है। जनसंख्या

प्राय: १६५१६८८० है। इसमें १४ नगर और ४८१८ ग्राम लगते हैं। पटना शहर जो सब शहरोंसे बड़ा है। यह वाणिज्य तथा शिल्पकार्यका एक प्रधान स्थान है।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा० २४° ५७' से २५° ४४' उ० और देशा० ८४° ४२' से ८६° ४' पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २०७५ वर्गमील है। इस जिलेके उत्तरमें गङ्गा, पूर्वमें मुङ्गेर, दक्षिणमें गया और पश्चिममें शोननद है।

पटना जिलेका अधिकांश समतल भूमि है, केवल दक्षिणांशमें छोटे छोटे गण्डशैल वा पहाड़ देखनेमें आते हैं। गङ्गातटवर्ती प्रदेश अत्यन्त उर्वरा है। इन सब स्थानोंमें सभी प्रकारके शस्य उत्पन्न होते हैं। इस जिलेके दक्षिणपूर्वांशमें राजगृहशैलमाला है। इस पर्वतकी चोटी कहीं कहीं १००० फुट है और छोटे छोटे वन जङ्गलोंसे आच्छादित है। बौद्ध धर्मके प्राचीन ऐतिहासिक स्थलोंके कारण राजगृहशैलमाला प्रत्नतत्त्वविदोंके निकट समधिक विख्यात है। इस शैलमालाके उत्तर एक और पहाड़ है जिसे जनरल कनिङ्गम् साहबने चीन परिव्राजक यूएनचुअङ्ग वर्णित कपोतिका बतलाया है। राजगृहशैलमालामें अनेक उष्ण प्रस्रवण हैं। राजगृह देखो।

पटना जिलेके मध्य प्रवाहित नद नदियोंमें गङ्गा और शोन नदी प्रधान है। एतद्व्यतीत पुनपुन नामकी एक और नदी उल्लेखयोग्य है।

पटना जिलेमें वन जङ्गल, मरुभूमि और ऊषर भूमि नहीं है। प्राय: सभी जमीन आबाद होती है। खनिज पदार्थोंमें [illegible] पत्थर, कङ्कर और खनिज लवण ही प्रधान है।

वन्यजन्तुओंमें तथा राजगृहशैल पर भालू, भेड़िया, शृगाल और नीलगाय आदि देखनेमें आता है।

पटना जिला ऐतिहासिक प्रत्नतत्त्वविदोंके पक्षमें विशेष आदरणीय है। कहते हैं कि ई० सनके पूर्व शताब्दी पहले गौतमके समसामयिक राजा अजातशत्रुने पटना शहर बसाया और उस समय यह पाटलिपुत्र नामसे प्रसिद्ध था। पटना जिलेके दक्षिणांशमें मगधका प्राचीन विहार शहर अवस्थित है। इसके अलावा इस जिलेमें चीनपरिव्राजक फाहियान और यूएनचुअङ्ग द्वारा वर्णित अनेक स्थानोंका निर्देश पाया जाता है। पाटलिपुत्र देखो।

पटना जिला दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाका क्षेत्र है। १७६३ ई०में अंगरेजोंके साथ जब नवाब मीर कासिमका विवाद खड़ा हुआ, तब पटना कोठीके अध्यक्ष एलिस साहब अपने सिपाहियों द्वारा पटना शहर पर अधिकार कर बैठे। इस पर नवाब बड़े बिगड़े और सैन्य भेज कर उन्होंने पटना शहरमें घेरा डाला तथा अङ्गरेजोंको वहांसे कोठीमें बन्द किया। पीछे इन लोगोंने शाहाबादकी कोठीके अङ्गरेज कर्मचारी तथा मुङ्गेरमें भी साहब लोग मारे गये। इस घटनाके बाद गड़िया और उदयनालाके युद्धमें पराजयके बाद नवाबने अङ्गरेज सेनापति मेजर आडम्सको कहला भेजा कि यदि हमारे विरुद्ध विवाद और बढ़ता ही जायगा तो हम एलिस साहब तथा पटनाके अन्यान्य अङ्गरेज कैदियोंके सिर कटवा डालेंगे। तदनन्तर समरु नामक सेनापतिकी सहायतासे नवाबने वह काम करके ही दिखला दिया। यही घटना इतिहासमें पटना हत्याकाण्ड कहलाती है। प्राय: ६० अङ्गरेजोंकी लाशें निकटवर्ती कूपमें फेंक दी गई थीं। उनका स्मृतिचिह्न आज भी पटनेमें विद्यमान है।

दूसरी ऐतिहासिक घटना थी पटनेके निकटवर्ती दानापुरका गदर। १८५७ ई०में ७, ८ और ४० नम्बर सेना दानापुरमें रहती थी। सेनाध्यक्ष मेजर साहबको उन सिपाहियोंके ऊपर अटूट विश्वास रहनेके कारण उनके अस्त्रशस्त्र छीने नहीं गये। पीछे पटना विभागके कमिश्नर टेलर साहब तथा अन्यान्य अङ्गरेजोंकी उत्तेजनासे सेनाध्यक्षने उन्हें निरस्त्र करना चाहा। पर उनकी सभा बेकार निष्फल हुई, उलटे उन्हें यह मालूम हुआ कि तीन रेजिमेण्टमेंसे उसी समय विद्रोही हो कर अपना अस्त्र लिए चली गई। इस लिए दिन भर बहुतोंने गङ्गा पार होनेकी चेष्टा की। पर उनकी नावों पर गोली बरसने लगी और डाकरोंसे नावें डुबाई जाने लगीं जिससे अधिकांश बन्दूकको

मुसलमान शासनकर्त्ताओंका चहालसातून नामक एक विख्यात राजप्रासाद था। १८६२ ई० तक भी इसका ध्वंसावशेष देखा गया था।

वाणिज्य—शहरके मध्य मारूफगञ्ज, मनसूरगञ्ज, किला, मिरचाईगञ्ज, महाराजगञ्ज, मादकपुर, अलावक्सपुर, गुलजारबाग और कर्णलगञ्ज ये सब स्थान व्यवसायके प्रधान अड्डे हैं। इन सब स्थानोंमेंसे मारूफगञ्ज बाजार ही सबसे बड़ा है। इस प्रदेशके सभी प्रकारके तैलबीजको इस बाजारमें आमदनी होती है। जलपथको सुविधा रहनेके कारण बिहारके उत्तर भाग और उत्तर-पश्चिम प्रदेशसे यह पण्यद्रव्य मारूफगञ्ज, कर्णलगञ्ज और गुलजारबागके बाजारमें आते हैं। मनसूरगञ्जका बाजार मारूफगञ्जके बाजारसे बड़ा नहीं होने पर भी शाहाबाद, आरा और पटना जिलेमें उत्पन्न शस्यादि गाड़ी पर लाद कर यहां लाये जाते हैं। पटनेमें प्रधानतः कपासद्रव्य, तेलबाज, सज्जीमट्टी, खड़ी, लवण, चीनी, गेहूं, दाल, चावल और अन्यान्य शस्यादिकी आमदनी होती है।

ऐतिहासिक विवरण पाटलिपुत्र शब्दमें देखो।

पटना—मध्यप्रदेशके संबलपुर जिलान्तर्गत एक क्षुद्र राज्य। यह अक्षा० २०° ८' से २१° ४' उ० और देशा० ८२° ४१' से ८३° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २३८८ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है। इसके उत्तर और पश्चिममें बड़सम्बर और खड़ियार सामन्तराज्य तथा दक्षिण और पूर्वमें कलाहन्डी और सोनपुर राज्य है। यह राज्य तरङ्गायित समतल है, बीच बीचमें पहाड़ है। इसका उत्तरी भाग उच्च गिरिमालावेष्टित है। यहांके महाराज अपनेको मैनपुरीके निकटवर्त्ती गढ़सम्बरके राजपूत राजवंशीय बतलाते हैं। उक्त राजवंशके शेष राजा हिताम्बरसिंह दिल्लीपतिके विरुद्ध खड़े हुए और मारे गये। उनकी स्त्री इस पटना राज्यमें भग आई। यहां उनके एक पुत्रने जन्मग्रहण किया जिसका नाम रामदेव रखा गया। उस समय यह राज्य आठ गढ़ोंमें विभक्त था। कोलागढ़के सरदारने रामदेवको गोद लिया और पीछे उसीको अपना राज्य प्रदान किया। उस समय ऐसा नियम था कि आठ गढ़ोंके प्रत्येक सामन्त एक एक दिन करके समस्त राज्यका शासन कर सकते थे। जब रामदेवकी बारी आई तब उन्होंने शेष सामन्तोंको मरवा कर आठों गढ़ पर अधिकार जमाया और महाराजकी उपाधि ग्रहण की। पीछे रामदेव उदयलको राजकन्याका पाणिग्रहण करके और भी शक्तिशाली हो उठे।

रामदेवसे अधस्तन १०वीं पीढ़ीमें वैजलदेवने जन्म लिया। ये स्वयं विद्वान् थे और पण्डितोंका विशेष आदर करते थे। इन्होंने कितने ही संस्कृत ग्रन्थकी रचना कर अपनी विद्यावत्ता दिखलाई है। इनके समयमें पटना राज्य भी बहुत विस्तृत था। उत्तरमें फुलझर और माझुगढ़, पूर्वमें गाङ्गपुर, बामडा और विन्द्रानवगढ़ तथा पश्चिममें खरियार राज्य यहां तक कि महानदीके वाम कूलवर्त्ती भूभाग, रायराखोल और रतनपुर तकके साथ पटना राज्यके अन्तर्गत थे। फुलझर दुर्भेद्य दुर्ग बनाया गया। वैजलके पौत्र राजा नरसिंहदेवने अपने अधिकारभुक्त और महानदीके उत्तरकूलवर्त्ती समस्त राज्य अपने छोटे भाई बलरामदेवको अर्पण किया। इसी बलरामदेवने सम्बलपुर नगर बसाया। पीछे नाना स्थान इनके अधिकारभुक्त हो जानेसे धीरे धीरे सम्बलपुर ही सर्वप्रधान गिना जाने लगा। इसी समयसे पटनेके अधःपतनका सूत्रपात हुआ। नरसिंहदेवके बाद कई पीढ़ी तक दूसरे गढ़के सरदार लोग पटनाराजको प्रधानता स्वीकार करते थे। धीरे धीरे शेष सभी गढ़ोंसे पटना नितान्त हतश्री हो गया है।

यहां धान, उरद, सरसों, ईख और कपासकी खेती होती है। पटना शहरके चारों ओर प्रायः २६ मील तक विस्तृत वन है जहां तरह तरहके पेड़ पाये जाते हैं। इस वनमें बड़े बड़े बाघ, भालू, चीते और महिष मिलते हैं।

१८७१ ई०में पटनाराजकी मृत्युके बाद वृटिश-गवर्मेण्ट उनके नाबालिग पुत्रकी अभिभावक नियुक्त हुई। वृटिश-गवर्मेण्टके यत्नसे इस राज्यकी यथेष्ट उन्नति हुई। १८७८ ई०में महाराजाके मरनेके बाद उनके भतीजे रामचन्द्र सिंह गद्दी पर बैठे। इन्होंने १८७२ ई०में जन्म ग्रहण किया था और राजकुमार कालेजमें

पड़ना निकला जाता था। १८८१ ई०में इन्होंने राज प्रासादके भीतर गोलीसे अपनी स्त्रीको मार डाला और आप भी उसी समय मर गये। इनके कोई सन्तान न थी, इस कारण गवर्मेण्टकी ओरसे उनके चाचा आनन्दचन्द्र सिंह राज्याधिकारी ठहराये गये। गवर्मेण्टने उनको देखरेख करनेके लिए एक दीवान नियुक्त किया। राज्यकी आमदनी २०००००) रु०की है। यहां दो मिडिल स्कूल और १० प्राइमरी स्कूल है। यहां दातव्य चिकित्सालय भी खुला है।

पटनाखाल (Patna Canal)—गया जिलेके अन्तर्गत एक खाल। यह बरुनपासके ६ मील दूर जहां शोण नदीका बांध (Anicut) पूर्व और पश्चिम खालको विभिन्न करता है, वहां पूर्व खाल (Eastern Canal)-से पटना खाल निकली है। इसकी लम्बाई ७८ मीलके करीब है।

पटनिया (हि० वि०) १ जो वस्तु भी पटना नगर या प्रदेशमें बनी हो। २ पटना नगर या प्रदेशसे सम्बन्ध रखनेवाला।

पटनी (हि० स्त्री०) १ कोठेके नीचेका कमरा, पटौंहा। २ जमींदारीका वह अंश जो निश्चित लगान पर सदाके लिये बन्दोबस्त कर दिया गया हो। ३ खेत उठानेकी वह पद्धति जिसमें लगान और किराया या असामीके अधिकार सदाके लिये निश्चित कर दिये जाते हैं। ४ कोई चीज रखनेको दो खूंटियोंके सहारे लगाई हुई पटरी।

पटपट (हि० स्त्री०) १ हलकी वस्तुके गिरनेसे उत्पन्न शब्द की बार बार आवृत्ति। (क्रि० वि०) २ लगातार पट ध्वनि करता हुआ 'पटपट' आवाजके साथ।

पटपटाना (हि० क्रि०) १ भूख प्यास या सरदी गरमीके मारे बहुत कष्ट पाना, बुरा हाल होना। २ किसी वस्तुसे पटपट ध्वनि निकलना। ३ पश्चात्ताप करना, खेद करना, शोक करना। ४ किसी चीजको मार पीट कर पट पट शब्द उत्पन्न करना।

पटपर (हि० वि०) १ समतल, बराबर, चौरस। (पु०) २ नदीके आसपासकी वह भूमि जो बरसातके दिनोंमें प्रायः सदा डूबी रहती है। इसमें केवल रब्बीकी खेती की जाती है। ३ ऐसा जंगल जहां घास पेड़ और पानी तक न हो, अत्यन्त उजाड़ स्थान।

पटबंधक (हि० पु०) एक प्रकारका रेहन। इसमें महाजन या रेहनदार रेहन रखी हुई सम्पत्तिकी आमदनीसे सूद लेनेके बाद जो कुछ बच जाता है उसे मूलधनमें मिनहा करता जाता है। इस प्रकार जब सारा ऋण परिशोध हो जाता है तब सम्पत्ति उसके वास्तविक स्वामी को लौटा देते हैं।

पटबीजना (हि० पु०) खद्योत, जुगनू।

पटवेकर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सतारा, पाटन और शोलापुरवासी एक जाति। प्रायः २०० वर्ष पहले ये लोग कार्य उपलक्षमें गुजरातसे इन स्थानोंमें आ कर बस गये। इनके मध्य कवाड़, बुलाके, पीवर, भाणगर और निराम्बर नामक कई एक पदवियां और भारद्वाज, काश्यप, गौतम और नारदिय आदि चार गोत्र देखे जाते हैं। एक पदवी और समगोत्र होनेसे विवाह नहीं होता। ये लोग देखनेमें अपने चौके हिन्दू मराठेसे होते हैं। पुरुष सिर पर शिखा और जूड़ा रखता है, लेकिन दाढ़ी सभी मुड़वा देते हैं। साधारणतः ये लोग घरमें गुजराती और बाहरमें मराठी भाषा बोलते हैं। निरामिषाशी होने पर भी ये लोग केवल पूजोत्सवमें एक दिन भेड़का मांस खाते हैं, अधिकांश ही मद्यपायी हैं। पुरुष कुरता टोपी, जूता आदि पहनते हैं और स्त्रियां मराठी रमणियोंकी तरह वेशभूषा करती हैं तथा मांगमें सिन्दूर लगाती हैं। इनमें से प्रायः सभी सरल, मितव्ययी, कर्मठ और आतिथेयी होते हैं। रेशमकी पगड़ी पाजकी सनमल्मा और आभूषण आदि बनानेके लिये नानावर्णोंमें रेशम रंगाना ही इनका जातीय व्यवसाय है। ये इन सब द्रव्योंको ले कर निकटवर्ती स्थानोंमें बेचनेके लिये निकलते हैं। ये लोग स्थानीय सभी देवदेवियों और ब्राह्मणोंकी तथा देवदेवियोंकी पूजा करते हैं। तुलजापुरकी जगदम्बादेवी ही इनकी कुलदेवी हैं। यजुर्वेदी ब्राह्मण ही इनका पौरोहित्य करते हैं। जो ब्राह्मण इनके धर्मोपदेष्टा हैं वे 'गोपालनाथ' नामसे पूजित होते हैं। विधवाविवाह और बहुविवाह इनमें प्रचलित है। ये लोग शवदाह करते हैं। सामाजिक विवाद विसम्वाद की सजातीय पञ्चायतसे ही निष्पत्ति हुआ करती है।

पटेगार—१ बम्बई प्रदेशकी मुसलमान-जाति। रेशमका

फुंदना, धागा आदि बनाना ही इनका प्रधान व्यवसाय है। ये लोग पहले हिन्दू थे। पीछे औरङ्गजेब राजत्वकालमें इसलाम धर्ममें दीक्षित हुए। स्त्री और पुरुषोंकी वेशभूषा प्रायः पटवेकारों-सा होता है। फर्क इतना ही है, कि ये लोग दाढ़ी रखते हैं तथा स्वच्छ परिष्कार और परिच्छन्न रहते हैं। आचार व्यवहार प्रायः साधारण मुसलमान सरीखा होता है। ये लोग सद्बंश अथवा निम्न श्रेणीके मुसलमानोंसे विवाह शादी करते हैं। सभी इनकी शाखाभुक्त सुन्नी सम्प्रदायी मुसलमान हैं। काजीकी सभी खातिर करते हैं। विवाह और मृत्यु कार्यों आ कर याजकता करते हैं। इस जातिका कोई भी मुसलमान कलमा नहीं पढ़ता। हिन्दूधर्मके ऊपर इनकी पूरी श्रद्धा है। हिन्दू देव देवियोंकी पूजा, हिन्दूके पर्वमें योगदान और हिन्दू-उत्सवादिके पालन आदि विषयोंमें इनका सख्य है।

२ एक जातिकी प्राचीन हिन्दू शाखा। रेशमका फुंदना आदि बनाना इनका भी व्यवसाय है। आमन-कोटवासी पटवेगारोंका कहना है कि ये लोग भी एक ही समय गुजरात से यहां आ कर बस गए हैं। प्रति दो वर्षमें बड़ोदासे एक भाट (घटक) आ कर इनकी वंश-तालिका लिख जाते हैं। लिङ्गायतोंके ऊपर इनकी उतनी श्रद्धा नहीं है। ये लोग शिखा रखते और जनेऊ पहनते हैं। तुलसीपत्रमें इनकी विशेष भक्ति है, ग्रामके नामसे वा इन्हें पदवी प्राप्त होती है और उस ग्रामके नामसे ही इनकी विभिन्न शाखायें जानी जा सकती हैं। इनके मध्य भर्त्तारगढगण काश्यपगोत्रमें कठवशाखा-सम्भूत हैं। इसी प्रकार दाजीगण पाणिन्नगोत्रमें दानी शाखा, जालनापूरकरगण गोकुल गोत्रमें रूपेशतरशाखा, कलवर्गीकारगण गोकुलगोत्रमें गमवशाखा और मालजी-गण गौतमगोत्रमें सोनिकतरशाखासम्भूत हैं। इनके मध्य एक गोत्रमें विवाह प्रचलित होने पर भी पात्र पात्रीका विभिन्न शाख युक्त होना जरूरी है। रङ्गारी जातिके साथ इनका आचारगत कोई वैलक्षण्य नहीं देखा जाता। खाद्यादि रीति नीति और परिच्छद दोनोंका ही एक-सा है, रेशम रंगाना इनका जातिगत व्यवसाय होने पर भी इनमेंसे किसी किसीने रेशमी वस्त्र बुनना सीखा है।

ये लोग अपनेको क्षत्रियसम्भूत बतलाते हैं, अन्य किसी जातिके हाथका पक्व खाद्य नहीं खाते। स्वजाति छोड़ कर अन्य किसीके हाथका ये लोग अन्नादि ग्रहण नहीं करते हैं। इस प्रकार सामाजिक दृढ़ता रहते भी लोगोंने इन्हें तत्सम्प्रदायभुक्त किया है। तुलजापुरकी अम्बाबाई भी इनकी उपास्य देवी है। इनका कहना है कि परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर डाला, तब तुलजादेवीने आश्रय दे कर उनकी रक्षा की थी। इस अम्बाबाईके ये वंशसम्भूत हैं। अम्बाबाई छोड़ कर पण्ढरपुरके विठोबा मूर्त्तिकी पूजा करनेके लिये ये लोग सोलापुर जाया करते हैं। प्रत्येक मनुष्यके घर गृहदेवताके रूपमें रुक्मादेवी अवस्थान करती हैं। रुक्मादेवीकी पूजार्थ ये लोग उन्हें दूध और गुड़ चढ़ाते हैं। किन्तु उन्हें रक्तादि चढ़ानेका इन्हें अधिकार नहीं है। हिन्दू-पर्वमें ये लोग उपवास और पारणादि करते हैं। शिवचतुर्दशी और आषाढ़मासकी शुक्ला एकादशी इनकी पुण्यतिथि है। शङ्कराचार्यको ये अपना गुरु मानते हैं। इसके सिवा इनके एक और भी गुरु या धर्मोपदेष्टा हैं जो जातिके भाट हैं। शिष्य-गण उनकी खातिर करते और भेंटमें रुपये पैसे देते हैं। ये लोग भविष्यत्वक्ताकी बात पर विश्वास करते और विवाहादि कार्यमें इनका परामर्श ले कर शुभ-दिनका निर्णय करते हैं।

बालकोंका ५से १० वर्षके भीतर जनेऊ होता है। अन्यान्य सभी क्रियाकलाप रङ्गारीके जैसे होते हैं। इनके मध्य बाल्यविवाह प्रचलित है। स्त्रियां जब विधवा होती हैं, तब वे केवल एक बार विवाह कर सकती हैं। किन्तु पूर्व स्वामीके जीवित रहते वे अन्य स्वामी ग्रहण नहीं कर सकतीं। पुरुषोंके मध्य बहुविवाह देखा जाता है। विवाहकालमें पहले वर और कन्या दोनोंको एक गलीचेके ऊपर आमने सामने बैठाते हैं और सामनेमें एक सफेद चादर बिछा देते हैं। पीछे पुरोहित और समवेत भद्रलोकगण आ कर वर और कन्याको धान्यसे आशीर्वाद देते हैं। पीछे कन्याकर्त्ता कन्यादान करता है। इस समय नवग्रह-पूजा करनी होती है। विवाह हो जाने पर कन्याका पिता जब यौतुक देता है, तब

उपस्थित बन्धुबान्धव और कुटुम्बगण भी यथासाध्य यौतुक देते हैं। वर कन्याको ले कर जब घर पहुंचता है तब उसे २ सवासोंके साथ ब्राह्मणोंको भोजन कराना पड़ता है।

ये लोग शवदाह करते हैं। जो उत्तराधिकारी है वह एक वस्त्र और ५ पैसे कन्याकुमारी मन्दिरमें चढ़ाता है। दाहके बाद उसी स्थान पर वे पिण्डदान करते हैं। जो सब उसके कुल पर आत्मीय नहीं होते तीसरे दिन मुखाग्निका अधिकारी जाता था कर उन अस्थियोंको चूर करके जलमें फेंक देता है। ग्यारहवें दिन बन्धुओं को भोज दिया जाता है। अशौचमें ये लोग अशौच रखते हैं, इस कारण तेरहवें दिन कोई कार्य नहीं करते। सामाजिक विवादकी निष्पत्ति पञ्चायतसे होती है।

बेलगाम जिलावासियोंमें राजा पोवरो, नायकवाड़ पवार, शिरोलकर, मानपुत्र और रघुराज आदि उपाधियां देखी जाती हैं। ये लोग आपसमें भोजन और पुत्रकन्यादिका आदानप्रदान करते हैं। देशस्थ ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं। पुत्रको जब एक वर्षकी होनेसे ही उसका उपनयन होता है। उस समय पुरोहित यथाविहित होम और मन्त्रपाठ करते हैं। मद्य, मांस, मत्स्य और धूम्रपान प्रभृतिका पुरुषमात्र ही व्यवहार करते हैं।

विवाहके पहले एक दिन 'गोन्धल' नृत्य होता है। दोनों पक्षोंके ब्राह्मण और जातिकुटुम्बको भोजन कराते हैं। उस दिन ग्रामको उपस्थित कुटुम्बगण वर और कन्याको मारुति देवमन्दिरमें ले जाते हैं। यहां कन्याका पिता वरकी पूजा करता है और कन्याकी माता वरके दोनों पैरों पर जल चढ़ाती है। पीछे पिता पैरोंको रगड़ता और अपनी पगड़ीसे जल पोंछ डालता है। तदनन्तर उपस्थित व्यक्तियोंको पान और सुपारी दे कर विदा करना होता है। दूसरे दिन कन्याके घर अथवा गोधूलि समयमें विवाहकार्य सम्पन्न हो जाता है। विवाहके दूसरे दिन कन्याकर्ता वर यात्रियोंको एक भोज देता है। इनमें विधवाविवाह और बहुविवाह प्रचलित है। ये लोग शवदाह करते हैं और १० दिन तक सूतकाशौच मानते हैं। खण्डोबा, भवानी आदि इनके उपास्य देवता हैं। बेलगामके पटवेगार रेशमके सिवा रुईका भी व्यवसाय करते हैं।

धारवाड़ जिलावासियोंके साथ इनका अनेक विषयोंमें सादृश्य है। ये लोग अपने को क्षत्रिय बतलाते हैं। भरद्वाज, जामदग्न्य, काश्यप, कात्यायन, कौण्डिन्य, वशिष्ठ और विश्वामित्र आदि इनके गोत्र देखे जाते हैं। आश्विनमासकी शुक्लप्रतिपद्को ये एक पात्रके ऊपर मट्टी बिछा कर उसमें पांच प्रकारके बीज बोते और उस पात्रको गृहदेवताके सामने रखते हैं। उस मासकी शुक्लाष्टमीमें दुर्गादेवीको एक छागबलि दी जाती है। दशमीके दिन जब उस पात्रसे कोपल निकलती है तब स्त्रियां उसे ले कर बड़ी धूमधामसे गाती बजाती हुई नदी अथवा किसी सड़के जलमें फेंक देती हैं। दीपपूर्णिमाके समय इनकी स्त्रियां दल बांध कर मन्दिर जातीं और वहां नाच कर देवार्चना करती हैं। इन लोगोंमें विधवाविवाह निषिद्ध है।

पटमाप (सं० पु०) ग्रहसाधन यन्त्रभेद, प्राचीनकाल का एक यन्त्र जिससे आकाश देखनेमें सहायता मिलती थी।

पटमेदन (सं० क्ली०) पुटभेदन, नगर।

पटम (हिं० वि०) वह जिसकी आंखें सूजनेसे पलकोंका मेल सट गई हो, जो सूजनेके मारे अन्धा हो गया हो।

पटमञ्जरी (सं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक रागिनी जो हिन्दोल रागकी स्त्री है। हनुमत्के मतसे इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स ध नि सा रे ग म प। इसका आलापसमय १ दण्डसे १० दण्ड तक है। कोई कोई इसे श्रीरागकी रागिनी मानते हैं। इसका गान समय एक पहर दिनके बाद है।

पटमण्डप (सं० पु०) पटानां वस्त्राणां मण्डपः। पटकुटी, वस्त्रगृह, तम्बू, खेमा।

पटमय (सं० क्ली०) पट-मयट्। १ वस्त्रगृह, तम्बू। २ साड़ी, लहंगा।

पटर (सं० त्रि०) पट बाहुलकात् अरच्, या पट गति वाचा। १ गतिशील। २ कम्पनशील।

पटरक (सं० पु०) पटर-स्वार्थे कन्। सुन्दवृक्ष, पिटर, मोंदपटेर।

पटरा (हिं० पु०) १ तख्ता, पल्ला, काठके ऐसे भागे टुकड़ेको जिसके चारों पहल बराबर या करीब करीब बराबर हों अथवा जिसका घेरा गोल हो, 'कुंदा' कहते हैं। कम चौड़ पर मोटे लम्बे टुकड़ेको 'बल्ला' या 'बल्ली' कहते हैं। जो बहुत ही पतली बल्ली है वह छड़ कहलाती है। २ धोबीका पाट। ३ हेंगा, पाटा।

पटरानी (हिं० स्त्री०) किसी राजाकी विवाहिता रानियोंमें सर्वप्रधान, राजाकी सबसे बड़ी या मुख्य रानी।

पटरी (हिं० स्त्री०) १ काठका पतला और लम्बोतरा तख्ता। २ लिखनेकी तख्ती, पटिया। ३ नरिया जमानेका चौड़ा खपड़ा। ४ वे रास्ते जो सड़कके दोनों किनारों हो कर गये हों। ५ एक प्रकारकी पट्टीदार चौड़ी चूड़ी जो हाथमें पहनी जाती है और जिस पर नक्काशी बनी होती है। ६ जन्तर, चौकी, तावीज। ७ उद्यानमें क्यारियोंके इधर उधरके तंग रास्ते जिनके दोनों ओर सुन्दरताके लिये घास लगा दी जाती है, रविश। ८ सुनहले या रुपहले तारोंसे बना हुआ वह फीता जिसे साड़ी, लहंगे या किसी कपड़ेकी कोर पर लगाया जाता है। ९ सड़कके दोनों किनारोंका वह कुछ ऊंचा और कम चौड़ा भाग जो पैदल चलनेवालोंके लिये होता है।

पटल (सं० क्लो०) पटं विस्तृतं लाति पट-ला-क, या पटतीति पट-कलच् (वृषादिभ्यश्चित्। उण् १।१०८) १ छप्पर, छान, छत। २ नेत्ररोग, मोतियाबिन्द नामक आंखका रोग, पिटारा। ३ परिच्छद, लाव-लश्कर, लवाजमा। ४ पिटक, पुस्तकका भाग या अङ्गविशेष। ५ तिलक, टीका। ६ समूह, ढेर, अंबार। ७ दृष्टिका आवरक, आंखके पर्दे। माधवकरके निदानमें लिखा है, कि चक्षुमें ४ पटल हैं, प्रथम वाह्यपटलरस और रक्ताश्रय, द्वितीय मांससंश्रय, तृतीय मेदसंश्रित तथा चतुर्थ कालकास्थिसंश्रित।

सुश्रुतके मतसे पटल पांच हैं—वाह्यपटल अथवा प्रथम पटल, यह तेज और जलाश्रित है। द्वितीय मांसाश्रित, तृतीय मेद-आश्रित, चतुर्थ अस्थि-आश्रित और पञ्चम दृष्टिमण्डलाश्रित।

सुश्रुतमें लिखा है, कि दृष्टि पञ्चभूतके गुणसे उत्पन्न हुई है। इसका वाह्यपटल अभ्यन्तरमें आश्रित है। दोषसमूह विगुण हो कर सभी शिराओंके अनुसार गमन करता है और सभी रूप अस्पष्टभावसे दृष्ट होते हैं। विगुणित दोष जब द्वितीय पटलमें रहता है तब दृष्टि विकृति होती है। दोषके तृतीय पटलमें रहनेसे सभी वस्तु विकृतभावसे दिखाई देती हैं और चतुर्थ पटलमें रहनेसे तिमिररोग होता है। (सुश्रुत उत्तर० ८ अ०)

भावप्रकाशके मतसे प्रथम पटलमें दोषका सञ्चार होनेसे कभी अस्पष्ट, कभी स्पष्टभावसे दिखाई पड़ता है। प्रथम पटल शब्दसे चतुर्थ पटल समझना चाहिए, बाह्य पटल नहीं। दृष्टिके अभ्यन्तरस्थ पटलमें दोष सञ्चित हो कर पर्यायक्रमसे एक एक पटल प्राप्त होता है। दोषके द्वितीय पटलाश्रित होनेसे नाना प्रकारका दृष्टिविभ्रम होता है, दूरस्थित वस्तु निकटमें और निकटस्थित वस्तु दूरमें दिखाई देती है। बहुत कोशिश करने पर भी सूईका छेद देखनेमें नहीं आता।

तृतीय पटलमें दोष अधिष्ठित होनेसे ऊपरको और दिखाई देता और नीचेको ओर कुछ भी नहीं। ऊपरकी ओर स्थूलकाय पदार्थ वस्त्रावृतकी तरह मालूम पड़ते हैं और एक वस्तु नाना रूपोंमें दिखाई पड़ती है।

कुपित दोषके वाह्यपटलमें रहनेसे दृष्टिरोध होता है जिसे कोई तिमिर और कोई लिङ्गनाश कहते हैं।

अन्यान्य विवरण नेत्ररोगमें देखो।

पाटयति दोष्यते यः, पट-अलच्। (पु० स्त्री०) ८ ग्रन्थ, पुस्तक। ९ वृक्ष, पेड़। १० कासमर्द वृक्ष, कसौंदा। ११ कार्पासवृक्ष, कपास। १२ पटलवृक्ष, परवलकी लता। १३ आवरण, पर्दा। १४ परत, तह, तबक। १५ पार्श्व, पहल। १६ लकड़ी आदिका चौरस टुकड़ा। पटरा, तख्ता।

पटलक (सं० पु०) १ राशि, स्तूप, समूह, ढेर। २ आवरण, पर्दा, झिलमिली, बुरका। ३ कोई छोटा सन्दूक।

पटलप्रान्त (सं० क्लो०) पटलस्य छदिसः प्रान्तं। गृहचालिकाका अन्तभाग, छप्परका सिरा या किनारा। पर्याय—वलीक, नीव्र।

पटनी (स० स्त्री०) पटल-ङीष्। छप्पर, छान, छत।

पटब (स० पु०) जनपदभेद, एक देशका नाम।

पटवर्द्धन—दाक्षिणात्यवासी महाराष्ट्रीय ब्राह्मणोंका भेद। इनके मध्य वशिष्ठ, शाण्डिल्य, भारद्वाज, गौतम, काश्यप आदि चार गोत्र देखे जाते हैं। प्राचीन शिलालिपिमें यह वंश पटवर्द्धनके नामसे उल्लिखित है।

पटवा (हिं० पु०) १ वह जो रेशम या सूतमें गहने गूथता हो, पटहार। २ नारंगी रंगका एक प्रकारका बैल। यह बैल मजबूत और तेज चलनेवाला होता है।

पटवाद्य (स० पु०) एक प्रकारका प्राचीन बाजा जो झांझके आकारका होता था और जिससे ताल दिया जाता था।

पटवाना (हिं० क्रि०) १ पाटनेका काम दूसरेसे कराना। २ पाटकाटित कराना छत बनवाना। ३ गड्ढे आदिको पूर्ण कर आस पासकी जमीनके बराबर कराना, भरवा देना। ४ पानीसे तर कराना। ५ दाम दिलवा देना, चुकवा देना। ६ शान्त करना, मिटाना, दूर कर देना।

पटवाप (स० पु०) पट उप्यते अनुर्येन टोयते यत्र। पटवपनस्थान। वस्त्रमण्डप, तम्बू, खेमा।

पटवारगरी (हिं० स्त्री०) १ पटवारीका काम। २ पटवारीका पद।

पटवारी (हिं० पु०) १ वह छोटा राज कर्मचारी जो गांवकी जमीन और उसके लगानका हिसाब किताब रखता हो। (स्त्री०) २ कपड़े पहनानेवाली दासी।

पटवास (स० पु०) पटस्य पटनिर्मितो वा वासः। १ वस्त्रगृह, तम्बू, खेमा। २ लहंगा, लहंगा। पट वासयति सुरभि करोति-पट वास अण्। ३ वस्त्रसुगन्धिकारक चूर्णभेद, वह वस्तु जिससे वस्त्र सुगन्धित किया जाय। हरदत्त चिन्तामें इसका प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—लाख और उशीरचन्दनके समान भागमें लेकर पर्दन माघ घोंटे इत्यादि काम कर उसे चूर्ण करते हैं। पीछे उसे मृगनाभिमें मर्दित करनेसे जो एक गन्धद्रव्य प्रस्तुत होता है, उसीका नाम पटवास है।

पटवासक (स० पु०) पटो वास्यतेऽनेनेति पट वास-णिच्, ततः कर्मणि अच्। पटवासचूर्ण, वस्त्र वसानेवाले सुगन्धियों का चूर्ण। इसका नामान्तर पिष्टात है।

पटवेश्मन् (स० क्ली०) पटनिर्मितं वेश्म। वस्त्रगृह, तम्बू, खेमा।

पटव्य (स० त्रि०) पटवे हितं यत्। (तस्मै हितम्। पा ५।१।५) पट् विषयमें हितकर।

पटसन (हिं० पु०) १ एक प्रसिद्ध पौधा जिसके रेशेसे रस्सी, बोरे, टाट और वस्त्र बनाए जाते हैं। यह गरम जल वायुवाले प्रायः सभी देशोंमें उत्पन्न होता है। विशेष विवरण पाट शब्दमें देखो। २ पटसनके रेशे, पाट, जूट।

पटसाली (हिं० पु०) बारवाड़ प्रान्तको कुनालोंकी एक जाति जो रेशमी वस्त्र बुनती है।

पटमञ्जरिका (स० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह रात्रि १६ दण्डसे २० दण्ड तकके बीचमें गाई जाती है।

पटह (स० पु० क्ली०) पटेन स्वरेण हन्ति पट हन् ड वा पटत् शब्द कृत्वा हन्यते पट-हन् ड निपातनात् साधु। १ आनकवाद्य, दुन्दुभी, नगाड़ा। २ बड़ा ढोल। ३ समारम्भ। ४ हिंसन।

पटहघोषक (स० पु०) वह मनुष्य जो ढोल बजा कर घोषणा करता है।

पटहता (स० स्त्री०) पटहका भाव या धर्म।

पटहभ्रमण (स० त्रि०) जो ग्रामवासियोंको एकत्रित करनेके लिये ढोल बजाता फिरता है।

पटहार (हिं० पु०) १ जो रेशमके डोरे बनाता हो, रेशम या डोरोंमें गहना गूथनेवाला। (पु०) २ रेशम या सूतके डोरेमें गहने गूथनेवाली एक जाति, पटवा।

पटहारिन (हिं० स्त्री०) १ पटहारकी स्त्री। २ पटहार जातिकी स्त्री।

पटा (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी लोहेकी फट्टी जो दो हाथ लम्बी और किर्चके आकारकी होती है। इससे तलवारकी काट और बचाव सीखे जाते हैं। २ पटाई। ३ चौड़ी लकीर, धारी। ४ लेनदेन, सौदा। ५ जमावको सुबहो। ६ अधिकारपत्र, सनद पट्टा।

पटाई (हिं० स्त्री०) १ पटानेकी क्रिया या भाव, सिंचाई, आबपाशी। २ सिंचाईकी मजदूरी। ३ पाटनेकी क्रिया या भाव। ४ पाटनेकी मजदूरी।

पटाक (स० पु०) पटति गच्छतीति पट गतौ बाहु निपातनात् साधु। पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

पटाक (हिं० पु०) किसी छोटी चीजके गिरनेका शब्द।

पटाका (सं० स्त्री०) पटाक-टाप्। पताका, झंडा।

पटाका (हिं० पु०) १ पट या पटाक शब्द। २ पट या पटाक शब्द करके छूटनेवाली एक प्रकारकी आतश बाजी। ३ पटाकेकी ध्वनि कोड़े या पटाकेकी आवाज। ४ तमाचा, थप्पड़, चपत।

पटाक्षेप (सं० पु०) रङ्गभूमिमें नाटकके प्रति गर्भाङ्कमें दृश्य परिवर्त्तन के लिये जो निर्दिष्ट चित्रपट रहता है, उसका नाम क्षेपण है।

पटाखा (हिं० पु०) पटाका देखो।

पटाना (हिं० क्रि०) १ पटानेका काम कराना, गड्ढे आदिको भर कर आस पासकी जमीनके बराबर कराना। २ छतको पीट कर बराबर कराना। ३ छत बनवाना, पाटन बनवाना। ४ बेचनेवालेको किसी मूल्य पर सौदा देनेके लिये राजी कर लेना। ५ ऋण चुका देना, अदा कर देना।

पटापट (हिं० क्रि० वि०) १ निरन्तर पटपट शब्द करते हुए, लगातार बार बार 'पटध्वनि'के साथ। (स्त्री०) २ निरन्तर पटपट शब्दकी आवृत्ति।

पटापटी (हिं० स्त्री०) वह वस्तु जिसमें अनेक रंगोंके फूल पत्ते कढ़े हों, वह वस्तु जो कई रंगसे रंगी हुई हो।

पटार (हिं० स्त्री०) १ पिंजड़ा। २ मञ्जूषा, पेटी, पिटारा। ३ रेशमकी रस्सी या निवार। ४ कनखजूरा।

पटालुका (सं० स्त्री० पट इव अलतीति पट-अल्-बाहु० ऊकात् उक ततटाप्। जलौका, जोंक।

पटाव (हिं० पु०) १ पाटनेकी क्रिया। २ पटा हुआ स्थान। ३ पाटनेका भाव। ४ लकड़ीका वह मजबूत तख्ता जिसे दरवाजेके ऊपरी भाग पर रख कर उसके ऊपर दीवार उठाते हैं, भरेठा। ५ दीवारोंके आधार पर पाट कर बनाया हुआ ऊंचा स्थान, पाटन।

पटि (सं० स्त्री०) पट इक्। १ पटभेद, कोई छोटा वस्त्र या वस्त्रखंड। २ कुम्भिका, जलकुंभी।

पटिका (सं० स्त्री०) पटि स्वार्थे कन्, ततटाप्। १ पटि, वस्त्र, कपड़ा। २ यवनिका, पर्दा।

पटिमन् (सं० पु०) पटोर्भावः पटु पृषोदरादित्वात् इमनिच्, (पा ५।१।१२२) पटुत्व।

पटिया (हिं० स्त्री०) १ चिपटा चौरस शिलाखंड, फलक। २ काठका छोटा तख्ता, खाट या पलंगकी पट्टी, पाटी। ३ पट्टी, माँग। ४ संकरा और लम्बा खेत। ५ लिखनेकी पट्टी, तख्ती। ६ हेंगा, पाटा। ७ कम्मल या टाटकी एक पट्टी।

पटियाला—१ पञ्जाब गवर्मेण्टके अधीन एक बड़ा देशीय राज्य। यह अक्षा० २९° २३ से ३०° ५५´ उ० और देशा० ७४°४० से ७६°५९´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह राज्य दो भागोंमें विभक्त है जिनमेंसे बड़ा भाग शतद्रुनदीके दक्षिण भागमें अवस्थित है और दूसरा भाग पहाड़से परिपूर्ण तथा शिमला तक विस्तृत है। भूपरिमाण ५४१२ वर्गमील है। इसमें १४ शहर और ३५८० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या पन्द्रह लाखसे ऊपर है।

इस राज्यमें शिमलेके निकट स्लेटकी खान और सुबाथूके निकट सीसेकी खान है। प्रतिमासमें प्रायः ४० टन सीसा खानसे निकाला जाता है। इसके अलावा यहां मार्बल और तांबेकी भी खान है।

पटियालाके वर्त्तमान राजा फुलके द्वितीयपुत्र रामके वंशोद्भव और सिधु जाट सम्प्रदायके शिखधर्मावलम्बी हैं। अधिकांश जाटोंकी तरह सिधुवंशधर अपनेको राजपूत तथा जयसलमीर नगरके स्थापयिता जयसालके वंशधर बतलाते हैं। जयसालके पुत्र सिधु और सिधुके पुत्र चौधर थे। इन्होंने पानीपतकी लड़ाईमें बाबरको सहायता दी थी। इस उपकारमें बाबरने इनके लड़के रवियामके ऊपर एक जिलेका राजस्व वसूल करनेका भार सौंपा था। फुल इन्हींके वंशधर थे। सम्राट् शाह जहान्ने इन्हें चौधरी वा ग्रामका मंडल-पद प्रदान किया था।

राजा फुल ही पटियाला, झिन्द और नाभा राजवंशके आदि पुरुष हैं। रामके पुत्र और फुलके प्रपौत्र आलासिंहने सम्राट्के सेनापतित्वमें नवाब सैयद-आसद-अली खांको कर्णालके युद्धमें परास्त किया था। उन्हींके यत्नसे पटियालामें एक दुर्ग बनाया गया। उन्होंने १७६२ ई०में अहमदशाह दुरानीसे परास्त हो कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और उनसे राजाकी उपाधि

प्राप्त की। अहमदशाह दुर्रानी जब भारतवर्षसे लौटे, तब आलासिंहने सरहिन्द प्रदेशके मुसलमान शासनकर्त्ताको आक्रमण किया और मार डाला। अहमदशाहने जब दूसरी बार भारतवर्ष पर चढ़ाई की तब आलासिंहने कुछ रुपये दे कर उनका अपराध क्षमा कर दिया। आलासिंह पटियालाराज्यका स्थापन करके १७६५ ई०में इस असारसंसारको छोड़ स्वर्गधामको सिधारे।

आलासिंहके उत्तराधिकारी अमरसिंहने अहमदशाह दुर्रानीसे 'राजा-इ-राजगान बहादुर'की उपाधि पाई। १७७८ ई०में मरहट्ठोंने इस राज्य पर आक्रमण करनेका भाव दिखलाया और उसी समय अमरसिंहके भाई विद्रोही हो गये। १७८१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। १७८३ ई०में पटियाला राज्यमें घोरतर दुर्भिक्ष और अराजकता फैली। राजाके दीवानके समझसे यह घोरतर विपद दूर हुई।

१८०३ ई०में जनरल लेक द्वारा दिल्लीविजयके बाद अंगरेजोंने उत्तर भारतमें अपना अपना नाम किया। इस समय रणजित्सिंहने पटियाला राज्यको अपने अधीन लानेकी चेष्टा की। किन्तु अंगरेजोंने पटियाला राज्यको सहायता देनेका वचन दे कर रणजित्से सन्धि कर ली।

१८१४ ई०में जब गुर्खा और अंगरेजोंमें घोर लड़ाई छिड़ी, तब पटियालाके राजाने अंगरेजोंको अच्छी मदद पहुंचाई थी। इस मदद पहुंचानेके लिए इन्हें कुछ जागीर मिली। १८४५-४६ ई०में जब सिखोंने शतद्रु नदी पार कर अंगरेजोंके राज्य पर आक्रमण किया, उस समय पटियालाके महाराजने अंगरेजोंका पक्ष लिया था। १८५७ ई०के गदरमें राजाने धन और सेनासे अंगरेजोंकी सहायता की थी। इस कारण अच्छा पुरस्कारके सिवा इन्हें अन्यान्य राज्यका नार्णौल विभाग मिला। १८६२ ई०में नरेन्द्रसिंहके पुत्र महेन्द्रसिंह राजा हुए। इन्होंके समयमें १८७२ ई०को सरहिन्द नहर काटी गई थी जिसमें १ करोड़ २३ लाख रुपये खर्च हुए थे। ये बड़े उदारचेता थे और प्रजाकी भलाईके लिए अनेक काम कर गए हैं। १८७०ई०में इन्होंने एक मुश्तमें ७००००) रु० लाहोर विश्वविद्यालयमें दान दिए थे और बङ्गालके दुर्भिक्ष पीड़ित मनुष्योंकी रक्षाके लिए १० लाख रुपये सर्वसाधारणके अधीन रख छोड़े थे। १८७५ ई०को इन्हींके सम्मानार्थ-लार्ड नार्थब्रुकने पटियाला पधार कर 'महेन्द्रकालिज' खोला था। १८७१ ई०में इन्हें जी० सी० एस० आई०की उपाधि मिली थी। १८७६ई०को आप इस असारसंसारको छोड़ सुरधामको चल बसे। उस समय इनके लड़के राजेन्द्रसिंह केवल चार वर्षके थे। इनके नाबालिग काल तक कौन्सिल आव रिजेन्सी (Council of Regency)-ने सरदार सर देवासिंह के० सी० एस० आई०के अधीन राज्य कार्य चलाया। १८९० ई०में राजेन्द्रसिंहने राज्यका कुल भार अपने हाथमें ले लिया। इन्होंने १९०० ई० तक सुचारुरूपसे राजकार्य चलाया। पीछे इसी साल उनकी मृत्यु हुई। बादमें उनके लड़के भूपिन्दरसिंह राजगद्दी पर बैठे। ये ही वर्तमान महाराजा हैं। इनकी उपाधि G C I E, G C S I, G C B L है। ये इण्डिय सम्राट्को १०० अश्वारोहीसे सहायता देनेमें बाध्य हैं। इन्हें सरकारकी ओरसे १७ सलामी तोपें मिलती हैं। राज्यकी आमदनी एक करोड़से ज्यादा है। सैन्य संख्या २०५० अश्वारोही, ५०० पदातिक, १०८ कमान और ११८ गोलन्दाज हैं।

शिक्षाविभागमें यह जिला बहुत पीछे पड़ा हुआ है। कुछ दिन हुए महाराजाका इस ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है। अभी यहां एक हाई स्कूल, ११ वेरनाकुलर, ८३ प्राइमरी और १२८ एलिमेण्टरी स्कूल हैं। शिक्षाविभागमें प्रति वर्ष ८३३०१ रुपये व्यय होते हैं। स्कूलके अलावा राजधानीमें १४ अस्पताल और चिकित्सालय हैं। इनमेंसे १० अस्पतालमें रोगियोंके रहनेके लिये अच्छी व्यवस्था की गई है। इस ओर राज्यकी ओरसे वार्षिक ८०००१ रु० व्यय होते हैं। यहांका गदर और लेडी डफरिन अस्पताल बड़ा उपयोगी है। १८०६ ई में नर्सके लिए एक ट्रेनिंग स्कूल खुला है। इस जिलेका राज्यकी आवश्यक ... है। वार्षिक इतिहास १५ सेट० ... है।

२ पटियाला राज्यके अन्तर्गत निजामतकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° ८ से ३०° १७ उ० और देशा०

७६° १७' से ७६° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७३ वर्गमील और जनसंख्या १०१२२४ है। इसमें पटियाला और सनोर नामके दो शहर तथा १८७ ग्राम लगते हैं।

२ पटियाला राज्यको राजधानी। यह अक्षा० ३० २०' उ० और देशा० ७६° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या पचास हजारसे ऊपर है। राजधानीके दर्शनयोग्य स्थान ये सब हैं, महेन्द्रकालेज, राजेन्द्र विक्टोरिया डायमण्ड जुबली लाइब्रेरी, राजेन्द्र अस्पताल, मोतीबाग, विक्टोरिया मिमोरियल टौनभवन। यहां हालमें ही म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

पटियाली—युक्तप्रदेशके एटा जिलान्तर्गत अलीगञ्ज तहसीलका एक प्राचीन नगर। यह एटा नगरसे २० मील उत्तर पश्चिम गङ्गाके किनारे अवस्थित है। वर्त्तमान पटियाली नगर प्राचीन नगरके ध्वंसावशेषके ऊपर अवस्थित है। महाभारतके समयमें भी यह नगर विद्यमान था। शाहबुद्दीन घोरीने यहां एक दुर्ग बनाया था जिसका भग्नावशेष आज भी देखनेमें आता है। गोडि-लाओंके समय यह एक समृद्धिशाली नगरमें गिना जाता था। किन्तु अभी यह सामान्य ग्राममें परिणत हो गया है। अङ्गरेजोंने १८५७-५८ ई०में यहां विद्रोहियोंको परास्त किया था।

पटिष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन पटुः पटु इष्ठन् (अतिशायने तमविष्ठनौ। पा ५।३।५५) अतिशय पटु, बहुत होशियार।

पटी (सं० स्त्री०) पट-इन्, बाहुलकात् ङीप्। १ वस्त्रभेद, कपड़ेका पतला लम्बा टुकड़ा, पट्टी। २ यवनिका, पर्दा। ३ नाटकका पर्दा। ४ पटका, कमरबंद।

पटीमा (हिं० पु०) छीपियोंका वह तख्ता जिस पर वे छापते समय कपड़ेको बिछा लेते हैं।

पटीयस् (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन पटुः, पटु-ईयसुन्। अतिशय पटु, बहुत चालाक।

पटीर (सं० क्लो०) पटतीति पट-गतौ ईरन्। १ मूलक, मूली। २ केदार। ३ ऊंचाई। ४ वारिद, मेघ, बादल। ५ वेणुसार, वंशलोचन। ६ चन्दन। ७ खदिर, कत्था। ८ जठर, पेट। ९ कन्दर्प। १० कल्पेका वृक्ष। ११ वटवृक्ष। १२ न्यग्रोध। १३ चालनी। १४ सन्निपात।

पटोलना (हिं० क्रि०) १ किसीको उलटी सीधी बातें समझा बुझा कर अपने अनुकूल करना, ढंग पर लाना। २ परास्त करना, नीचा दिखाना। ३ सफलतापूर्वक किसी कामको समाप्त करना, पूर्ण करना, खतम करना। ४ ठगना छलना। ५ मारना, पीटना। ६ अर्जित करना, प्राप्त करना, कमाना।

पटु (सं० त्रि०) पाटयतीति पट-गतौ णिच्, तत उ, पटादेशश्च। (उणादि पातीति। उण् १।१८) १ दक्ष, निपुण, कुशल। २ निरोग, रोगरहित, स्वस्थ। ३ चतुर, चालाक, होशियार। ४ मधुर, सुन्दर, मनोहर। ५ तीक्ष्ण, तेज, तीखा। ६ स्फुट, प्रकाशित, व्यक्त। ७ निठुर, अत्यन्त कठोर हृदयवाला। ८ धूर्त, छलिया, मक्कार, फरेबी। ९ उग्र, प्रचण्ड। (क्लो०) १० छत्ता, खुमी। ११ लवण, नमक। १२ पांशुलवण, पांगा नमक। १३ पटोल, परवल। १४ पटोलपत्र, परवलका पत्ता। १५ कांडीरलता, चिटपिटा नामकी बेल। १६ कारवेल्ल, करेला। १७ चोरक नामक गन्धद्रव्य। १८ शिग्रु। १९ चीन-कर्पूर, चीनका कपूर। २० जीरक, जीरा। २१ वचा, बच। २२ छिक्किणी, नकछिकनी।

पटु—श्रीकण्ठचरितके रचयिता मङ्खके समसामयिक एक कवि।

पटुआ (हिं० पु०) पटवा देखो।

पटुक (सं० पु०) पटु-स्वार्थे कन्। पटोल, परवल।

पटुकल्प (सं० त्रि०) ईषदूनः पटुः पटु-कल्पप्। ईषदून पटु, कुछ कम पटु, जो पूर्ण कुशल या चालाक न हो।

पटुका (हिं० पु०) १ पटका देखो। २ चादर, गलेमें डालनेका वस्त्र। ३ धारीदार चारखाना।

पटुकोटाई—१ मन्द्राज प्रदेशके तञ्जोर जिलेके अन्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ८०८ वर्गमील है।

२ उक्त तहसीलका सदर। यह तञ्जोरसे २७ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां ७वीं शताब्दीके

मालवके गोप राजा विजयराघवका बनाया हुआ एक लिया है।

पट्टजातीय (स० वि०) पट्ट प्रकार, पट्ट जातीयर्। पट्ट प्रकार।

पट्टता (स० स्त्री०) पटोर्भावः पट्ट तल टाप्। १ दक्षता चतुराई चालाकी। २ पट्ट होनेका भाव प्रवीणता।

पट्टतूलक (स० क्ली०) गवल-तृण, एक घास।

पट्टतृणक (स० क्ली०) पट्ट नवव ततपुरुष तृण सतः कन्। मत्स्यतृण, एक प्रकारकी घास।

पट्टत्रय (स० क्ली०) नवनमय विट्, सैन्धव और सोवर्चल नमक।

पट्टत्व (स० क्ली०) पट्ट भावे त्व। पट्टता, दक्षता।

पट्टपत्रक स० क्ली०) सुवर्चलक।

पट्टपर्णिका (स० स्त्री०) पट्ट पर्ण यस्याः, कप टापि अत इत्व। १ क्षुद्र चञ्चुक्षुप, छोटे पेडका चोला। २ चोरिका चिपचपूर।

पट्टपर्णिका (स० स्त्री०) पट्ट पर्ण यस्याः, कप् टाप् अत इत्व। चोरिचीहक, एक प्रकारकी कटेहरी।

पट्टपर्णी (स० स्त्री०) पट्ट पर्ण ङीष् (पाककर्णपर्णपुष्प इत्यादि। पा ४।१।६४) स्वर्ण क्षीरी नामक कटेहरी।

पट्टमिट्टिका (स० स्त्री०) कृष्णजीरक काला जीरा।

पट्टमत् (स० पु०) कच्छके गोप एक राजा। किसी किसी पुराणमें इनका नाम पट मान् और पट्टमाषि मिलता है।

पट्टमित्र (स० पु०) राजपुत्रभेद।

पट्टरूप (स० त्रि०) प्रकृष्ट पट्ट। पट्ट-रूपप्। अति शय पट्ट, बहुत चालाक।

पट्टलिका (स० स्त्री०) नामकर्णभेद।

पट्टली (हि० स्त्री०) १ चौखटेके नीचे पटरी जो भूमिसे लगी पर रखी जाती है। २ वह नक्काशी चिपटा डंडा जो गाड़ी या बघड़ेमें लगा रहता है। ३ चौकी, पीढ़ी।

पट्टवा—एक जाति। ये लोग अपनेको ब्राह्मण वर्णमें मानते हैं, परन्तु यह मत सर्वसम्मत नहीं है। इनकी विशेष बस्ती गुजरात तथा राजपूतानेमें है। ये सबके सब यज्ञोपवीत धारण करते चले आये हैं। पान वानमें इस है और वैष्णव सम्प्रदायी हैं। इनका विवरण स्कन्द पुराणमें मिला है। रेशमी वस्त्रों पर कसीदा काढ़ना और रेशमी डोरोंमें गहनोंको पोना इनकी मुख्य जीविका है।

पट्टवा (हि० पु०) १ पटसन जूट। २ वीरबहूटी। ३ गुलके सिरे पर बँधा हुआ डंडा जिसे पकड़ कर माँझी बीच भूल खींचती है। ४ शुक, तोता।

पट्टश (स० पु०) राजपुत्रभेद।

पट्टस (स० पु०) राजभेद।

पट्टलवण (स० क्ली०) सैन्धव नमक।

पटेबाज (हि० पु०) १ वह जो पटा खेलता हो, पटेसे लड़नेवाला। २ वह छिनाला जो छिपालमिसे पटा खेलता है। ३ व्यभिचारी और धूर्त पुरुष। ४ कुलटा परन्तु चतुरा स्त्री छिनाल औरत।

पटेर (हि० स्त्री०) सरकण्डेको जातिका एक प्रकारकी घास जो पानीमें होती है। इसकी पत्तियाँ प्रायः एक इंच चौड़ी और चार पाँच फुट तक लम्बी होती हैं। इन पत्तियोंसे चटाइयाँ आदि बनाई जाती हैं। इसमें बाजरेकी बालकी तरह बाल लगती है जिसके दानोंका आटा कि कहीं कहीं दरिद्र निवासी खाते हैं। वैद्यकमें यह कसैली, मधुर शीतल, रक्तपित्त नाशक और मूत्र शुक्र, रज तथा स्तनोंके दूधको शुद्ध करनेवाली मानी जाती है।

पटेरक (स० क्ली०) मुस्तकतृण, मोथा।

पटेरा (हि० पु०) १ पटेला देखो। २ पटेर देखो।

पटेल (हि० पु०) १ ग्रामका प्रधान गाँवका मुखिया, गाँवका चौधरी। २ एक प्रकारको उपाधि। इस उपाधिके लोग मध्य और दक्षिण भारतमें पाये जाते हैं।

पटेलना (हि० क्रि०) पटीलना देखो।

पटेला (हि० पु०) १ वह नाव जिसका मध्यभाग पटा हो। जैसे घोड़े आदिको ऐसी ही नाव पर पार उतारते हैं। २ एक घास जिसकी चटाइयाँ बनाते हैं। ३ हेंगा। ४ सिल, पटिया। ५ कुश्तीका एक पेंच जिसमें भीड़े पड़े हुए जोड़को चित किया जाता है। बाएं हाथसे जोड़े की गरदन पर चपाटे जमा कर उसकी दाहिनी बगल पकड़ लेते और दाहिने हाथसे उसकी दाहिनी औरका

जांघिया पकड़ कर स्वयं पीछे हटते हुए उसे अपनी ओर खींचते हैं, जिससे वह चित हो जाता है।

पटेली (हिं० स्त्री०) छोटी पटेला नाव।

पटेश्वर—वम्बई प्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक नगर। यह सतारासे ६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहांके पटेश्वर नामक पहाड़की चोटी पर ५ गुहाएं हैं। इन गुहाओं तथा इनमें संलग्न वाटिकादिके सिवा यहां और भी कई एक मन्दिर हैं। मन्दिर और गुहामें महादेवकी लिङ्गमूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

पटैत (हिं० पु०) पटेबाज, पटा खेलने या लड़नेवाला।

पटैला (हिं० पु०) १ लकड़ीका बना हुआ चिपटा डंडा जो किवाड़ोंको बन्द करनेके लिये दो किवाड़ोंके मध्य आड़े बल लगाया जाता है। इसे एक ओर सरकानेसे किवाड़ बन्द होते और दूसरी ओर सरकानेसे खुलते हैं, डंडा, ब्योंड़ा। २ पटेला देखो।

पटोटज (सं० क्ली०) पटस्य छदिः पटे तृणादौ जायते यत्, जन-ड। छत्राक, जलबबूल।

पटोर (हिं० पु०) १ पटोल। २ कोई रेशमी कपड़ा।

पटोरी (हिं० स्त्री०) १ रेशमी साड़ी या धोती। २ रेशमी किनारेकी धोती।

पटोल (सं० क्ली०) पट गतौ पट-ओलच् (कपिगडि गण्डीति। उण् ११६७) १ वस्त्रभेद, एक प्रकारका रेशमी कपड़ा जो प्राचीनकालमें गुजरातमें बनता था। २ स्वनाम प्रसिद्ध लतिकाफल, परवलकी लता। (Trichosanthes dioica)। पर्याय—कुलक, तिक्तक, पटु, कर्कशफल, कुलज, वाजिमान, लताफल, राजफल, वरतिक्त, अमृताफल, कटुफल, कटुक, कर्कशच्छद, राजनामा, अमृतफल, पाण्डु, पाण्डुफल, बीजगर्भ, नागफल, कुष्ठारि, कासमर्दन, पञ्जर, ज्योत्स्नी, कच्छुघ्नी। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, सारक, पित्त, कफ, कण्डुति, असृक्, ज्वर और दाहनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—पाचन, हृद्य, वृष्य, लघु, अग्निदीपक, स्निग्ध, कासदोष और क्रिमिनाशक। परवलकी जड़ विरेचनकर और पत्तियां पित्तनाशक तथा तिक्त होती हैं। (भावप्रकाश)

यह लता सारे उत्तरीय भारतवर्षमें पञ्जाबसे ले कर बङ्गाल आसाम तक होती है। पूरबमें पानके भीटों पर परवलकी बेलें चढ़ाई जाती हैं। फल चार पांच अंगुल लम्बे और दोनों सिरोंकी ओर पतले या नुकीले होते हैं। फलोंके भीतर गूदेके बीच गोल बीजोंकी कई पंक्तियां होती हैं। स्थानभेदसे इसके नाममें विभिन्नता देखी जाती है, जैसे—हिन्दीमें परवल, बङ्गालमें पटोल, उड़ीसामें पटल, गुजराती पोटल, तामिल—कम्बु, पुडालई, तैलगु—कम्भु पोटला, मलय—पटोलम्।

इस लताकी पत्तियां, फल और जड़ औषधके काममें आती हैं। पित्तकी अधिकता और ज्वरमें पत्तियां विशेष उपकारी है। इनमें वीर्यकर, लघु मुखरोचक, तिक्त और पुष्टिकर गुण माना गया है। परवलके कच्चे फलका गुण शीतल और रोचक है। कच्चे फलको छिल कर उसका रस अन्यान्य औषधके अनुपानरूपमें व्यवहृत होता है। सुश्रुतके मतसे इसकी जड़के कन्दका गुण विरेचक है। पित्ताधिक्य ज्वरमें इसकी पत्ती और धनियेके समभागको सिद्ध कर खिलानेसे ज्वर नाश होता तथा दस्त साफ उतरता है। सुराष्ट्रमें रख कर कच्चे परवलसे जो निर्यास निकलता है वह रेचक औषधमें गिना जाता है। आयुर्वेद शास्त्रके मतसे उदरी और कुष्ठरोग चिकित्सामें पटोल विशेष उपकारी है। परवलका मुरब्बा खानेमें बड़ा उमदा लगता है।

पटोलक (सं० पु०) पटोल इव कायति प्रकाशते इति कै-क। शुक्ति, सीपी, सुतुही।

पटोलपत्र (सं० क्ली०) १ वल्लीशाकभेद, एक प्रकारकी पोई। २ परवलके पत्ते।

पटोलादि (सं० पु०) सुश्रुतोक्त गणभेद। पटोलपत्र, चन्दन, मूर्वा, गुड़ूची, पाकनादि और कटुकीके मेलको पटोलादिगण कहते हैं। इसका गुण—पित्त, कफ और अरुचिनाशक, व्रणका हितकर तथा वमन, कण्डु और विषनाशक है।

भैषज्यरत्नावलीके मतसे—पटोलपत्र, गुलञ्च, मोथा, अड़ूसकी छाल, दुरालभा, चिरायता, नीमकी छाल, कटकी और पित्तपापड़ा कुल मिला कर दो तोलेको आध सेर जलमें सिद्ध करते हैं। जब जल आध पाव रह जाता है, तब उसे उतार लेते हैं। इस काढ़ेको पीनेसे

अपक्व समस्त प्रशमित और पक्व बहुत शीघ्र ही जाता है। विस्फोटक ज्वरमें यह विशेष उपकारी है।

पटोलादिक्वाथ (सं० पु०) पटोलपत्र, कटकी, यष्टिमधु, त्रिफला, गुलञ्च इन सब मिला कर २ तोला, जल आध सेर, शेष आध पाव। इस काढ़ेको पीनेसे दाहयुक्त पैत्तिक वातज्वर अच्छा हो जाता है।
(भैषज्यरत्ना० ज्वराधिकार)

पटोलाद्यघृत (सं० क्लो०) कुष्ठरोगका घृतौषध। घृत ४८ सेर, क्वाथार्थ पटोलपत्र, कटकी, दारुहरिद्रा, नीमकी छाल, पद्मकी छाल, त्रिफला, दुरालभा, त्रायमाण प्रत्येक १ पल, पानी ? सेर, कुटजकी छाल तोला, यष्टिमधु, रक्तचन्दन और पीपर कुल मिला कर १ सेर। यथानियम इस घृतका सेवन करनेसे कुष्ठ-रोग और अन्यान्य रोग प्रशमित होते हैं।

पटोलिका (सं० स्त्री०) ज्योत्स्नी, सफेद फूलकी तुरई या तोरई। गुण—स्वादु, तिक्त, वस्तिकर, ज्वरघ्न, कफ-कर, शोधन और पाचन।

पटोली (सं० स्त्री०) पटोल जातित्वात् ङीष्। ज्योत्स्नी तुरई।

पटोर (हिं० पु०) सराव, मीमको।

पटौहाँ (हिं० पु०) १ पटा हुआ स्थान। २ पटावके नीचेका स्थान। ३ वह कमरा जिसके ऊपर कोई और कमरा हो। ४ पटल छत।

पट्ट (सं० क्लो०) पट-भावे क्त, बाहुलकात्। १ नगर। (पु०) २ पेषण-पाषाण, सिल, पटिया। ३ व्रणादिका बन्धन, घाव पर बाँधनेका लम्बा कपड़ा, पट्टी। ४ राजादिका शासनपत्र, पट्टा। ५ पाट, पाटा, पीढ़ा। ६ ढाल। ७ उष्णीषादि कपड़ा। ८ दुपट्टा। ९ कौषेय रेशम। १० लोहित वर्णके वस्त्रादि, लाल रंगका कपड़ा।

राजगण मस्तक पर किरीटस्वरूप जो पट्ट धारण करते हैं, उसका विषय बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—

"आचार्योंने पट्टका निम्नलिखितरूप लक्षण बतलाया है। जिस पट्टका मध्य आठ अङ्गुल विस्तृत होता है, वह राजाओंके लिए शुभजनक है। सात अङ्गुल विस्तृत होनेसे राजमहिषीका, ६ अङ्गुल विस्तृत होनेसे युवराजका और ४ अङ्गुल विस्तृत होनेसे सेनापतिका शुभ जाता है। दो अङ्गुल विस्तृत पट्ट प्रासादपट्ट कहलाता है। यही पाँच प्रकारका पट्ट है। सभी पट्ट विस्तारका दूना और पार्श्व विस्तारका आधा होना चाहिये। पञ्चशिखायुक्त पट्ट भूपतिके लिये, त्रिशिखायुक्त पट्ट युवराज और राजमहिषीके लिये तथा एकशिख पट्ट सेनापतिके लिये शुभजनक है। शिखाहीन प्रासादपट्ट भी राजाओंका शुभद माना गया है। यदि पट्टका मध्य भाग जलानेमें फटाया जा सके, तो भूमिपतिकी वृद्धि और जय होती तथा प्रजा सुखसम्पद् लाभ करती है। पट्टमध्य व्रण उत्पन्न होनेसे राज्य विनष्ट होता है। जिसका मध्यदेश स्फुटित हो, वह परित्याज्य है। जिस पट्टमें किसी प्रकारका व्रण चिह्न न रहे, राजाओंके लिये वही शुभफलप्रद है।" (बृहत्संहिता ४८ अ०)

१० राजसिंहासन। ११ चतुष्पथ, चौराहा। १२ शाक भेद, एक प्रकारका साग। १३ पट्टी तख्ता, लिखनेकी पटिया। १४ ताँबे आदि धातुओंका वह चिपटा पट्टा जिस पर राजकीय आज्ञा या दान आदिकी सनद खोदी जाती थी। १५ किसी वस्तुका चिपटा या चौरस तल भाग। १६ पाट पट्टन। (त्रि०) १७ मुख्य, प्रधान।

पट्टक (सं० पु०) पट्ट एव स्वार्थे कन्। १ पट्ट, लिखनेकी पट्टी या पटिया, तख्ता। २ ताम्रपट्ट या चित्रपट। ३ ताम्रपट पर खुदा हुई राजाज्ञा या दान विषय। ४ पटका, कमरबन्द। ५ वह रेशमी वस्त्र जिसकी पगड़ी बनाई जाय। ६ एक विशेष पेड़का नाम।

पट्टज (सं० क्लो०) पट्टात् कोषसात् जायते जन-ड। वस्त्रभेद, टसरका कपड़ा।

पट्टदकल—बम्बई प्रदेशके बीजापुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। इसका प्राचीन नाम किसुवोलल वा पट्टद किसुवोलल है। यह अक्षा० १५° ५७´ उ० तथा देशा० ७५° ५२´ पू०के मध्य मालप्रभा नदीके बाएँ किनारे बदामीसे ९ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। यहाँ अनेक प्राचीन मन्दिर और शिलालिपि विद्यमान हैं। प्राकारपरिवेष्टित ४ पक्की भूमिके मध्य ४ बड़े और ६ छोटे मन्दिर हैं। बड़े मन्दिरोंकी गठन और कारुकार्य द्राविड़ देशके जैसा प्रतीत होता है। इनमेंसे सबसे बड़े मन्दिरमें विरूपाक्षकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। संगमेश्वरादि जैसा इस मन्दिरके चारों ओर चार या तीन विभिन्न

देव-देवियोंकी मूर्त्ति छोटी छोटी गुहाके मध्य सन्निविष्ट देखी जाती हैं। विरूपाक्षके सम्मुखस्थ स्तम्भमें तीन पद्मके ऊपर लक्ष्मीदेवी बैठी हुई हैं जिनके दोनों हाथ सिरके ऊपर और शुण्डमें कलसी है। प्राचीरके गात्रमें जो चतुष्कोणाकृति स्तम्भ बाहर निकाला हुआ है उसके गात्रमें स्त्रीमूर्त्ति खोदित हैं। उन मूर्त्तियोंका केशविन्यास देखनेसे कोङ्कणस्थ देवदासी रमणियोंका ख्याल आ जाता है। इसके ऊपरी भाग पर कीर्त्तिमुखोंके चित्र अङ्कित हैं। गर्भगृहके द्वारके सामने और भी कितनी स्त्री मूर्त्तियां शोभा दे रही हैं। बाहरकी दीवार पर विष्णु और शिवकी नाना प्रकारकी मूर्त्ति खुदी हुई देखनेमें आती हैं। ये सब मन्दिर चालुक्य आदि राजाओंके समयके बने हुए हैं। कुल १२ शिलालिपि उत्कीर्ण हैं। अन्यान्य मन्दिरोंके मध्य मल्लिकार्जुन, संग्रामेश्वर, चन्द्रशेखर, वेलगुडी, गालोकनाथ, आदिकेश्वर, विजयेश्वर, पापविनाशन वा पापनाथ आदि देवमूर्त्तियां प्रतिष्ठित देखी जाती हैं। पापविनाशन आदि दो एक शिवमन्दिरके द्वारदेशके ऊपरी भाग पर राम, रावण खर, दूषण, सूर्पनखा, लक्ष्मण, सीता, जटायु शेषनाग आदिके चित्र अङ्कित हैं। संग्रामेश्वरके मन्दिरमें उत्कीर्ण सिन्धराज २य चावुन्दाकी शिलालिपिसे जाना जा सकता है कि वे पश्चिम चालुक्यराज २य तैलका अधिकार स्वीकार करते थे। ये स्वयं, स्त्री देमालदेवी तथा पुत्र २य आदि तीनों किशुवोलनका विजयेश्वर शिव पूजाके खर्च वर्चके लिए बहुत-सी जमीन दान कर गए हैं। पट्टद किशुवोलनमें इनकी राजधानी थी।

पट्टदेवी (सं० स्त्री०) पट्टे सिंहासने स्थिता, तदर्हा वा देवी। महादेवी, राजाकी प्रधान स्त्री, पटरानी।

पट्टदोल (सं० स्त्री) कपड़ेका बना हुआ झूला या पालना।

पट्टन (सं० क्ली) पटन्ति गच्छन्ति वाणिज्ये यत्र। पट गतौ बाहुलकात् तनप्। १ पत्तन, नगर। २ बड़ा नगर।

पट्टना (सं०स्त्री०) पट्टन गौरादित्वत् ङीष्। पत्तन, नगर।

पट्टमङ्गलम्—मदुरा जिलेके अन्तर्गत एक नगर जो रामनादसे १२ कोस उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहां पाण्ड्य राजाओंका निर्मित शिव-मन्दिर है।

पट्टमहिषी (सं० स्त्री०) राजाकी प्रधान स्त्री, पटरानी।

पट्टरङ्ग (सं० क्ली०) पट्टं वस्त्रं रज्यतेऽनेन पट्ट-रन्ज-घञ्। पतरङ्ग, बक्कम।

पट्टरञ्जक (सं० क्ली०) पट्टानां वस्त्राणां रञ्जनं ततः कन्। पतरङ्ग, बक्कम।

पट्टराज (सं० पु०) महाराष्ट्रके एक ब्राह्मणोंकी उपाधि जो पुजारीका काम करते हैं।

पट्टराज्ञी (सं० स्त्री०) पट्टार्हा राज्ञी, पटरानी।

पट्टला (सं० स्त्री०) १ जमीनविभाग, जिला। २ समुदाय।

पट्टबन्धोत्सव—दाक्षिणात्यवासी हिन्दूराजाओंके राज्याभिषेक समयका एक उत्सव। शायद अभिषेककालमें उनकी कमरमें पट्टबन्धनी दी जाती होगी, इसीसे ऐसा नाम पड़ा है। चालुक्यवंशीय राजा विक्रमवर्षकी शिलालिपिमें इस उत्सवकी कथा लिखी है। उत्सव पलक्षमें राजगण अनेक भूमिदान करते थे।

पट्टशाक (सं० पु०) शाकभेद, पटुआ नामका साग जो रक्तपित्त-नाशक, विष्टम्भी और वातवर्द्धक माना जाता है।

पट्टशाली—धारवाड़ प्रदेशवासी तन्तुवाय जाति। रेशमके वस्त्रादि बुननेके कारण इनका यह नाम पड़ा है*। इनके किसी प्रकारकी पदवी नहीं है, एकमात्र नाम ही इनका जातिसंज्ञानिर्देशक है। कर्णाटके उत्तरस्थ वासवमूर्त्ति, वेल्लारीके निकटवर्त्ती पार्वती और वीरभद्रकी मूर्त्ति ही इनकी प्रधान उपास्य हैं। स्वभावतः ये लोग दृढ़काय और सबल, साधारणतः लिङ्गायतोंके जैसे होते हैं और खूब परिष्कार परिच्छन्न रहते हैं। इनका खाद्यादि उच्चश्रेणीके हिन्दूके जैसा होता है। सभी निरामिषभोजी हैं, मछली मांस या शराब कोई छूता तक भी नहीं। वेशभूषा भी साधारण हिन्दू सरीखा है। पुरुष स्त्रीकी तरह कानमें कनैठी और हाथमें कंकण पहनते हैं। स्त्रियां कान, उंगली, नाक और पैरकी उंगलीमें कनैठीकी तरह आभूषण और हाथमें कंकण तथा गलेमें हार पहनती

* कनाड़ीभाषामें 'पट' शब्दका अर्थ रेशम और मराठी भाषामें 'शाली'का अर्थ तन्तुवाय या तांती है।

है। स्त्रीपुरुष दोनों ही 'लिङ्ग' धारण करते हैं। कपड़ा बुनना ही इनका जातीय व्यवसाय है। प्रतिदिन सुबह से ले कर शाम तक ये परिश्रम करते हैं। सिर्फ पर्व दिन ये लोग कोई काम काज नहीं करते। काम पर इनको उतना ध्यान नहीं है इसीसे जङ्गमोंके उपास्य देवताको भी ये लोग विशेष मान्य नहीं करते। ये लोग कट्टर लिङ्गायत हैं। विवाह तथा श्राद्धादि कार्य में ये लिङ्गायत पुरोहितको बुला कर उन्हींसे काम कराते हैं। सिद्दरियामो नामक इनके एक साधारण गुरु हैं जिनका वास निजाम राज्यके अन्तर्गत गुलगाम पुरमें है।

मौलिक लिङ्ग मोझिया जातिमें इनका बड़ विश्वास है। लड़केके जन्म होने पर उसकी नाड़ी काट कर उसे मुखमें पञ्चामृत दिया जाता और तब माता तथा बालपुत्र दोनोंका स्नान कराया जाता है। पाँच दिन तक सब परिवारमें अशौच रहता है। पाँचवें दिन चाई ला कर सब मूर्त्तिकी स्थापना करती है। पीछे वो माताको उस मूर्त्तिकी पूजा करनी होती है पीछे उपस्थित पाँच सधवाओंको पान दिये जाते हैं। छठे दिन लिङ्गायत पुरोहित आ कर जमीन पर चावलके चूरको पानीमें घोलता और उससे आठ रेखा युक्त एक चित्र अङ्कित करता है। पीछे उस पर २ पान १ सुपारी और २ पैसे रख कर बालशिशुको सुलाता है। अनन्तर वह पुरोहित बालशिशुके पिता वा माताके हाथमें एक लिङ्ग रख उसे पानी, मधु, दूध और दहीसे पाँच बार धुलाता है। पीछे उसके ऊपर १०८ बार बिल्व पत्रको स्पर्श कर रखता है। उस समेत लिङ्गको रेशमके वस्त्रमें आवृत कर शिशुके गलेमें बाँध दिया जाता है। बाद पुरोहित शिशुके शरीर पर अपना पैर रख कर आशीर्वाद करता और उसे माताकी गोदमें सुला देता है। माता भी पुरोहितको प्रणाम करती है। तेरहवें दिन बालबालिकाओंको पोला ला कर पुत्रका नामकरण करती है, क्योंकि उसे एक दूसरा नाम दिया जाता है।

विवाहके प्रथम दिन वर और कन्या दोनोंको हल्दी और तेल लगा कर स्नान कराते हैं। पीछे लिङ्गायत पुरोहित मङ्गलाचरण और आत्मीय कुटुम्ब एक साथ भोजन करते हैं। इस भोजका नाम है परिपानद तथा अर्थात् वर वा कन्याकी मङ्गलकामना और सम्मान भोज। दूसरे दिन 'देवकार्य उता' (अर्थात् देवताके उद्देशसे दत्त भोज्यदान) सम्पादन होता है। विवाहवासरमें ज्ञातिकुटुम्ब एकत्र हो कर विवाहसभामें उपस्थित होते और आनेके समय उन्हें पान सुपारी मिलता है। पाँच सधवा स्त्रियाँ जो कन्याका भार ग्रहण करती हैं वे 'पदमिट्टेर' और जो दो पुरुष वरके साहचर्यमें नियुक्त रहते हैं वे वसुमित्र कहलाते हैं। उस दिन जातिके लोगोंको 'भद्र'को भी निमन्त्रण दिया जाता है। उन्हें पाँच बार पान और सुपारी उपढौकनमें दिये जाते हैं। विवाहके बाद तीसरे दिन कन्याका पिता वरके हाथमें कपड़ा, बासन, जलपात्र आदि देता है। पीछे वर और कन्या दोनोंको उच्चासन पर बिठा कर लिङ्गायत पुरोहित आशीर्वादसे उनके सिर पर धान फेंकता है। साथ साथ मन्त्र पढ़ कर कन्याके गलेमें मङ्गलसूत्र बाँधता है। बादमें रोपनी मला कर दोनोंका जो वरण किया जाता है। यही विवाहका शेष कार्य है। जो सब स्त्री और पुरुष वर तथा कन्याकी परिचर्यामें नियुक्त रहते हैं वे भी उपयुक्त पारितोषिक उपहार पाते हैं।

लिङ्गायतोंकी तरह ये लोग शवको जमीनमें गाड़ देते हैं। जन्म और मृत्यु दोनोंमें केवल पाँच दिन तक अशौच रहता है। विवाह पार्वणमें भी तीन दिन अशौचविधि प्रचलित है। बाल्यविवाह और विधवाविवाहमें कोई दोष नहीं है। सामाजिक गोलमाल उपस्थित होने पर ग्राम्य पञ्चायत द्वारा उसका निपटेरा होता है।

पट्टकार—जातिविशेष। रेशमके कीड़े तथा रेशमकी सूतादि प्रस्तुत करना इनका जातिगत व्यवसाय है।

पट्टा (हिं० पु०) १ किसी स्थावर सम्पत्ति विशेषतः भूमिके उपभोगका अधिकारपत्र जो स्वामीकी ओरसे असामी, किरायेदार या ठेकेदारको दिया जाय।

मालिक अपनी सम्पत्तिको जिस कामके लिये और जिन शर्तों पर देता है तथा जिनके विरुद्ध आचरण

करनेमें उसे अपनी वस्तु वापस ले लेनेका अधिकार होता है वे शर्तें इसमें लिख दी जाती हैं। साथ हो उसकी सम्पत्तिसे लाभ उठानेके बदले असामीसे वह वार्षिक या मासिक धन या लाभांश उसे देनेको जो प्रतिज्ञा कराता है उसका भी इसमें निर्देश कर दिया जाता है। पट्टा साधारणतः दो प्रकारका है, मियादी या मुद्दती पट्टा और इस्तमरारी पट्टा। मियादी पट्टेके द्वारा मालिक कुछ निश्चित समय तकके लिये प्रजाको अपनी चीजसे लाभ उठानेका अधिकार देता है और उतना समय जब बीत जाता है, तब मालिकको उसे वे दखल कर देनेका अधिकार होता है। इस्तमरारी पट्टेके द्वारा मालिक प्रजाको हमेशाके लिये अपनी वस्तुके उपभोगका अधिकार देता है। प्रजा यदि चाहे, तो उस जमीन को दूसरेके हाथ बेच भी सकती है इसमें मालिक कुछ भी छेड़ छाड़ नहीं कर सकता। जमींदारोंका अधिकार जिस पट्टेके द्वारा निश्चित समय तकके लिये दूसरे-को दिया जाता है उसे ठेकेदारी वा मुस्ताजिरी पट्टा कहते हैं। प्रजा जिस पट्टेके द्वारा असल मालिकसे प्राप्त अधिकार या उसका अंश विशेष दूसरोंको देता है उसे शिकमी पट्टा कहते हैं। पट्टेकी शर्तोंका स्वीकार सूचक जो कागज प्रजाकी ओरसे लिखकर मालिक या जमींदारको दिया जाता है उसे कबूलियत कहते हैं। पट्टे पर मालिकका और कबूलियत पर प्रजाका हस्ताक्षर अवश्य होना चाहिये।

२ चूड़ियोंके बीचमें पहननेका एक गहना। ३ पीढ़ा। ४ कोई अधिकारपत्र, सनद। ५ कुत्तों, बिल्लियोंके गलेमें पहनाई जानेकी चमड़े या बानात आदिकी बद्दी। ६ एक प्रकारका गहना जो घोड़ोंके मस्तक पर पहनाया जाता है। ७ चमड़ेका कमरबंद, पेटी। ८ कन्या पक्षके नाई, धोबी, कहार आदिका वह नेग जो विवाहमें वरपक्षसे उन्हें दिलवाया जाता है। देहातके हिन्दुओंमें यह रीति है कि नाई, धोबी, कहार, भंगी आदिको मजदूरोंमेंसे उतना अंश नहीं देते जितना पड़तेसे अविवाहिता कन्याके हिस्से पड़ता है। जब कन्याका विवाह हो जाता है, तब सारी रकम इकट्ठी कर वरके पितासे उन्हें दिलवाई जाती है। ९ एक प्रकारकी तलवार जो महाराष्ट्रदेशमें काममें लाई जाती है। १० कामदार जूतियों परका वह कपड़ा जिस पर काम बना होता है। ११ घोड़ेके मुंह परका लम्बा सफेद निशान। यह निशान नथुनोंसे ले कर माथे तक होता है। १२ पुरुषके सिरके बाल जो पीछेकी ओर गिरे और बराबर कटे होते हैं। १३ वह वृत्ताकार पट्टी जिसमें चपरास टंकी रहती है। १४ चपरास।

पट्टाचार्य (सं॰ पु॰) दक्षिणदेशमें बसनेवाले प्राचीन पण्डितोंकी उपाधि।

पट्टाभिरामशास्त्री—तैलङ्गवासी एक विख्यात पण्डित। इन्होंने कई एक न्याय ग्रन्थोंकी रचना की।

न्याय शब्द देखो।

पट्टार (सं॰ पु॰) एक प्राचीन देश।

पट्टारक (सं॰ त्रि॰) पट्टारे देशे भवः धूमादित्वात् वुन्। पट्टार-देशभव, पट्टारमें उत्पन्न।

पट्टार्हा (सं॰ स्त्री॰) पट्टे नृपासने अर्हा योग्या। पटरानी।

पट्टिका (सं॰ स्त्री॰) पट्टिरिव कायति कै-क, स्त्रियां टाप्। १ पट्टिकाख्य लोध्र, पठानी लोध। २ वितस्ति प्रमाण वस्त्र, एक बित्ता लम्बा कपड़ा। ३ छोटी तख्ती, पटिया। ४ छोटा ताम्रपट या चित्रपट। ५ कपड़ेकी छोटी पट्टी। ६ रेशमका फीता।

पट्टिकाख्य (सं॰ पु॰) पट्टिका आख्या यस्य। रक्तलोध्र, पठानी लोध।

पट्टिकार (सं॰ त्रि॰) पट्टवस्त्रवयनकारी, रेशमोंके कपड़े बुननेवाला।

पट्टिकालोध्र (सं॰ पु॰) पट्टिका एव लोध्रः। रक्तलोध्र, पठानी लोध। पर्याय—क्रमुक, वल्कलोध्र, बृहद्दल, जीर्णबुध्र, बृहद्वल्क, शीर्णपत्र, अक्षिभेषज, शावर, श्वेतलोध्र, गालव, बृहत्त्वच, पट्टी, लाक्षाप्रसाद, वल्क, स्थूलवल्कल, जीर्णपत्र, बृहत्पत्र। इसका गुण—कषाय, शीतल, वात, कफ, अस्त्र और विषनाशक तथा चक्षुका हितकर है। लोध्रकोंके मध्य वल्कलोध्रक श्रेष्ठ है। इसमें ग्राही, लघु, पित्तरक्त, पित्तातिसार और शोथनाशक गुण माना गया है। (भावप्र॰)

पट्टिकावापक (सं॰ पु॰) वह जो लोध्र वपन करता है।

पट्टिकावायक (सं॰ पु॰) वह जो रेशमका फीता बुनता है।

पट्टिकिणपन्नगु—मि हजरोवकासी कोयकानियों एक शाखा। ये लोग मनिमीदेवोकी उपासना करते हैं, समय समय पर नरबलि भी देते हैं। ये लोग सन्दिग्ध दाह करते हैं और पीछे उन मरनेवालोंकी गोलोंकी तरह बना कर जमीनमें गाड़ देते हैं। गो-मांस भी ये लोग खाते हैं।

पट्टिन् (सं॰ पु॰) पट्टिका लोध, पठानी लोध।

पट्टिम (सं॰ पु॰) पट्टी विद्यतेऽस्य पट्ट मत्वर्थे इनच्। पूतिकरज्ज वृक्ष।

पट्टिलोध्र (सं॰ पु॰) पट्टिकालोध, पठानी लोध।

पट्टिलोध्रक (सं॰ पु॰) पट्टिलोध्र स्वार्थे कन्। पट्टिका लोध, पठानी लोध।

पट्टिश (सं॰ पु॰) पट्ट गतौ बाहुलकात् तिशच्। अस्त्र विशेष, यह तलवारके जैसा होता है। वाम्वेय धनुर्वेद, वैशम्पायनीय धनुर्वेद और शुक्रनीति इन तीन ग्रन्थोंमें इस अस्त्र का उल्लेख देखनेमें आता है।

"पट्टिश तु समानः स्यात् द्विधारस्तीक्ष्णशृङ्गकः।
हस्तत्राणसमायुक्तोमुष्टि खड्गवदीरितः॥" (वैशम्पायन)

पट्टिश एक लम्बा लठोदर है अर्थात् इसका आकार खड्ग जैसा होता है। इसकी लम्बाईके तीन माप हैं। उत्तम ४ हाथ, मध्यम ३॥ हाथ और अधम ३ हाथ लम्बा होता है। मुठियाके ऊपर चलानेवालेकी कलाईके बचावके लिये लोहेकी एक जाली बनी होती है। धार इसमें दोनों ओर और पत्ता तीखा होता है। यह प्राचीन कालका अस्त्र है। आज कल जिसे पटा कहते हैं, वह इससे बहुत लम्बाईमें कम होता है और सब बातें दोनोंमें समान हैं।

पट्टिशी (सं॰ पु॰) १ वह जो पट्टिश बाँधता हो। २ वह जो पट्टिशसे लड़ाई करता हो।

पट्टिस (सं॰ पु॰) पट्ट-टिसच्। पक्षान्तरमें, पट्टिश, पटा।

पट्टी (सं॰ स्त्री॰) पट्ट बाहुलकात् ङीष्। १ पट्टिकालोध, पठानीलोध। २ ललाटभूषा, एक गहना जो पगड़ीमें लगाया जाता है। ३ तलवारका, तोबड़ा। ४ घोड़ेका जीन कसनेका तंग, घोड़ेको तंग।

पट्टी (हिं॰ स्त्री॰) १ लकड़ीकी वह लम्बोतरी चौरस और चिपटी पटरी जिस पर प्राचीन कालमें विद्यार्थियोंको पाठ दिया जाता था और अब प्रारम्भिक छात्रों को लिखना सिखाया जाता है, पाटी, पटिया, तख्ती। २ लकड़ीकी वह बल्ली जो चारपाईके ढांचेकी लम्बाईमें लगाई जाती है, पाटी। ३ धातु, कागज या कपड़ेकी धज्जी। ४ कपड़ेकी वह धज्जी जो घाव या अन्य किसी काममें बाँधी जाती है। ५ वह उपदेश जो अपदेशक स्वार्थ साधनके लिये दे, बहकानेवाली शिक्षा। ६ उपदेश, शिक्षा, सिखावन। ७ पत्थरका पतला, चिपटा और लम्बा टुकड़ा। ८ पाठ, सबक। ९ मांगके दोनों ओरके बालोंके खूब बैठाये हुए भाग जो पट्टेसे दिखाई पड़ते हैं, पाटी, पटिया। १० पंक्ति, पांती, कतार। ११ सूती या ऊनी कपड़ेकी धज्जी जिसे सर्दी और थकावटसे बचनेके लिये टांगोंमें बांधते हैं। यह चार पांच अंगुल चौड़ी और सात पांच हाथ लम्बी होती है। इसके एक सिरे पर मजबूत कपड़ेकी एक और लम्बी धज्जी टंकी रहती है जिससे लपेटनेके बाद लपेटको और कस कर बांध देते हैं। बहुतसे लोग ऐसे हैं जो इसे केवल जाड़ेमें बांधते हैं, पर सेना और पुलिसके सिपाहियों को इसे सभी ऋतुओंमें बांधना पड़ता है। १२ एक प्रकारकी मिठाई जिसमें चाशनीमें अन्य चीजें जैसे चना, तिल मिला कर जमाते और फिर उसके चिपटे पतले और चौकोर टुकड़े काट लिये जाते हैं। १३ टाटके चोरकी बधिया या पाता। १४ सनकी बुनी हुई पट्टियाँ जिनके जोड़नेसे टाट तैयार होते हैं। १५ कपड़ेका कोर या किनारी। १६ वह तख्ता जो नावके बीचो बीच रहता है। १७ लकड़ीकी वह बड़ी जो छत या छाजनके ठाठमें लगाई जाती है। १८ किसी जमींदारीका, उतना भाग जो एक पट्टीदारके अधिकारमें हो, थोकका एक भाग। १९ हिस्सा, भाग, विभाग, पट्टी। २० वह अतिरिक्त कर जो जमींदार किसी विशेष प्रयोजनके लिये आवश्यक धन एकत्र करनेके लिये असामियों पर लगाता है, बेहरी, अबवाब। २१ घोड़ेकी वह दौड़ जिसमें वह बहुत दूर तक सीधा दौड़ता चला जाय, लम्बी और सीधी सरपट।

पट्टी—१ युक्त प्रदेशके प्रतापगढ़ जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° ३८' से २६° ४' उ० और देशा० ८१° ५६' से ८२° २७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४६७ वर्गमील और जनसंख्या लगभग तीन लाखकी है। इसमें ८०२ ग्राम लगते हैं। शहर एक भी नहीं है। इस तहसीलमें साई और गोमती नामकी दो नदी बह गई हैं। तहसीलका उत्तरी भाग दक्षिण भागसे उपजाऊ है। जिले भरकी अपेक्षा यहां ऊखकी खेती बहुत होती है।

२ पञ्जाबके लाहोर जिलान्तर्गत कसूर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° १७' उ० और देशा० ७४° ५२' पू०, लाहोर शहरसे ३८ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८६८० है। ७वीं शताब्दीमें प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग चीनपती नामसे इस नगरका उल्लेख कर गये हैं।

वार्नेग साहबने लिखा है, कि यह नगर सम्राट् अकबरके समयमें बसाया गया था। किन्तु अकबरके पहले हुमायूँने यह परगना अपने नौकर जौहरको दान किया था। अबुलफजल इस स्थानको पट्टी-हैबतपुर नामसे उल्लेख कर गये हैं। यहां जो बड़ी बड़ी कब्र हैं उन्हें स्थानीय अधिवासिगण 'नौगज' या नौगज कहा करते हैं। उनका विश्वास है, कि वृहदाकार राक्षस सदृश मनुष्यगण उक्त कब्रमें गाड़े गये हैं। उत्तर-पश्चिम भारतमें इस प्रकारकी अनेक कब्रें देखी जाती हैं। उन्हें देख कर अनुमान किया जाता है, कि गजनीपति महमूदके समयमें जो सब गाजी सेना मारी गई थीं, उन्हींकी कब्रोंके ऊपर अकबरके समयमें स्तम्भ खड़ा किया गया था।

यूएनचुवङ्गके वर्णनानुसार चीनपती जिलेकी परिधि ३३३ मील थी। शकराज कनिष्कके समयमें भी इस नगरका उल्लेख पाया जाता है। उक्त राजाने चीन प्रतिधियोंके रहनेके लिये यह स्थान पसन्द किया था। चीनपरिव्राजकने लिखा है, कि भारतवर्षमें पहले अमरूद फल नहीं था। चीनवासिगण ही उक्त फल इस देशमें लाये थे।

नगरके चारों ओर प्राचीरपरिवेष्टित और सभी गृहादि इष्टकनिर्मित हैं। नगरसे २०० गज उत्तर पूर्वमें एक प्राचीन किला है जो अभी पुलिस और पथिकोंके विश्रामावासमें परिणत हो गया है। यहांके अधिवासी साधारणतः बलिष्ठ हैं। अधिकांश मनुष्योंने सैनिक-वृत्तिका अवलम्बन किया है। ३ जमीनका एक परिमाणभेद, जमीनकी एक माप। ४ गन्धभेद, एक प्रकारका गंध।

पट्टीकाडु—मन्द्राज प्रदेशके कोचीन जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह त्रिचूरसे ४ कोस दूरमें अवस्थित है। यहांके निकटवर्त्ती वनमें अनेक देवमन्दिर देखे जाते हैं।

पट्टीकोण्डा—१ मन्द्राज प्रदेशके कर्नूल जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १५° ७' से १५° ५१' उ० और देशा० ७७° ११' से ७८° १' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११३४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १४३०३२ है। इसमें १०४ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है। १८७६-७७में यहां भारी अकाल पड़ा था। तुङ्गभद्रा और हिन्द्री नामकी दो नदी इस उपविभागमें बहती है।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० १५° २४' उ० और देशा० ७७° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या चार हजारसे ऊपर है। यहां १८२७ ई०में अङ्गरेज सेनापति सर टामस मनरोकी प्लेगसे मृत्यु हुई थी। उनके स्मरणार्थ यहां कूप और टोले बनाये गये हैं।

पट्टीदार (सं० पु०) १ वह व्यक्ति जिसका किसी सम्पत्तिमें हिस्सा हो, हिस्सेदार। २ वह व्यक्ति जो किसी विषयमें दूसरेके बराबर अधिकार रखता हो, बराबरका अधिकारी। ३ संयुक्त सम्पत्तिके अंशविशेषका स्वामी, पट्टीदारीके मालिकोंमेंसे एक। ४ हिस्सा बटानेके लिये झगड़ा करनेका अधिकार रखनेवाला।

पट्टीदारी (हिं० स्त्री०) १ पट्टी होनेका भाव, बहुतसे हिस्से होना। २ वह जमींदारी जिसके बहुतसे मालिक होने पर भी जो अविभक्त सम्पत्ति समझी जाती हो, भाईचारा।

पट्टीदारी जमींदारीमें अनेक विभाग और उपविभाग होते हैं। प्रधान विभाग थोक और उसके अन्तर्गत उप-

विभाग पट्टी कहलाता है। प्रत्येक पट्टीका मालिक अपनी हिस्सेकी जमीनका अलग प्रबन्ध करता और सरकारी कर देता है। परन्तु किसी एक पट्टीमें मालगुजारी बाकी रह जाने पर वह सारी जायदादसे वसूल की जा सकती है। प्रायः प्रत्येक थोकमें एक एक नम्बरदार होता है। जिन पट्टीदारोंकी सारी जमीन हिस्सेदारोंमें बँट गई हो उसे पूर्ण पट्टीदारी और जिसमें कुछ जमीन तो अलग बाँट दी गई हो और कुछ सरकारी कर तथा गाँवकी व्यवस्थाका खर्च देनेके लिये शामिलमें हो अलग न की गई हो उसे अपूर्ण पट्टीदारी कहते हैं। अपूर्ण पट्टीदारीमें जब शामिल रक्खी हुई जमीनका मुनाफा सरकारी कर देनेके लिये पूरा नहीं पड़ता, तब पट्टीदारोंके सिर पर अलग कर लगा कर वह पूरा किया जाता है। २ पट्टीदार होनेका भाव हिस्सेदारी।

पट्टीवार (हि० क्रि० वि०) १ इस प्रकार जिसमें हर पट्टीका हिसाब अलग अलग हो जाय। (वि०) २ जो पट्टीके भेदको ध्यानमें रख कर तैयार किया गया हो।

पट्टीश (सं० पु०) १ महादेव शिव। २ पट्टामेद। पट्टिश देखो।

पट्टेस्सम्—मन्द्राज प्रदेशके तञ्जोर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह कुम्भकोणसे ४॥ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन शिव मन्दिर है जिसके गात्रमें शिलाफलक देखा जाता है।

पट्टू (हि० पु०) १ एक ऊनी वस्त्र जो पट्टीके रूपमें बुना जाता है। इस प्रकारका कपड़ा काश्मीर, अमृतसर आदि पहाड़ी प्रदेशोंमें तैयार होता है। यह खूब गरम होता है पर कम्बल मोटा और कड़ा होता है। २ धारीदार एक प्रकारका चारखाना। ३ [illegible] तोता, सुआ।

पट्टुकोट—१ मन्द्राज प्रदेशके तञ्जोर जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० ८ १८ से १० ३५´ उ० तथा देशा० ७८ ५१´ से ७८ ११´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८०६ वर्गमील और जनसंख्या लगभग १८१५८३ है। इसमें १ शहर और ७८१ ग्राम लगते हैं। विद्या-शिक्षामें यह तालुक बहुत पीछे पड़ा हुआ है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १० २६´ उ० और देशा० ७९ १८ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः साढ़े दश हजारसे ऊपर है। नगरके चारों ओर एक चारकार्यविशिष्ट प्राचीन शिवमन्दिर और तद्गात्रमें एक शिलालिपि है। नगरके उपकण्ठवर्ती मनोरमुद्रम् नामक स्थानमें एक और मन्दिर है। यहाँ एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। १८१५ ई०में फरासीसोंके ऊपर अंगरेजोंकी जयके उपलक्षमें तञ्जोरराज सरफोजीने प्राचीन दुर्ग पर एक नूतन दुर्ग बनवाया। इस दुर्गके अभ्यन्तर एक स्तम्भ है जिसमें बोनापार्टके अधःपतन और अंगरेजोंकी जयकी बातें लिखी हैं। शहरमें तांबेके बरतन, चटाई और मोटे कपड़े प्रस्तुत होते हैं।

पट्टूभट्ट—दाक्षिणात्यवासी एक कवि। प्रसङ्गरत्नावली नामक इनका काव्य पढ़नेसे मालूम होता है कि इन्होंने राजा [illegible] के अनुरोधसे १३१८ शकमें इस ग्रन्थकी रचना की। ये आर्जुन गोत्रीय ब्राह्मण थे। राजप्रासादमें रहनेके लिये इन्हें महम्मोपत्तनसे ३० कोस दूर [illegible] नामक स्थान मिला था।

पट्टूर—मन्द्राज प्रदेशके कडापा जिलान्तर्गत एक ग्राम। यहाँ रङ्गनाथ स्वामीका एक प्राचीन मन्दिर है। लोगोंका विश्वास है, कि कलियुगके प्रारम्भमें स्वयं इन्द्रने इस मन्दिरको बनवाया था। वे यह भी कहते हैं कि इस स्थानके माहात्म्यके सम्बन्धमें विस्तृत विवरण ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है। इसके सिवा यहाँ दो और भी प्राचीन मन्दिर देखे जाते हैं। गदाधर स्वामीके मन्दिरके दक्षिणभागमें भी दो मन्दिर और एक मण्डप बने हुए हैं। प्रवाद है कि ये चोल राजाओंके कीर्त्तिस्तम्भ हैं।

पटपछाड़ (हि० पु०) कुश्तीका एक पेंच। यह पेंच उस समय चित करनेके लिये काममें लाया जाता है जिस समय जोड़ कुहनियाँ टेक कर पट पड़ा हो और इस कारण उसे चित करनेमें कठिनाई पड़ती हो। इसमें उसके एक हाथ पर जोरसे थाप मारी जाती है और साथ ही उसी बांहको इस जोरसे खींचा जाता है कि वह उलट कर चित हो जाता है। यदि थाप दाहिने

हाथ पर मारी जाय, तो बाईं जांघ और यदि बाएं हाथ पर मारी जाय तो दाहिनी जांघ खींचनी पड़ेगी।

पट्टेबैठक (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेंच। इसमें जोड़का एक हाथ अपनी जांघोंमें दबा कर और अपना एक हाथ उसकी जांघोंमें डाल कर अपनी कुहनीका बल देते हुए उसे चित कर फेंक दिया जाता है।

पट्टेगाम—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह गोदावरी नदीके गर्भस्थ एक छोटे द्वीपमें पहाड़के ऊपर अवस्थित है। यहां प्राचीन चार मन्दिरोंमें चार शिलालिपि हैं। स्थानमाहात्म्य रहनेके कारण दाक्षिणात्य वासियोंके मध्य यह स्थान प्रसिद्ध तीर्थस्थानके रूपमें गिना जाता है।

पट्टेत (हिं० पु०) १ पटेत। २ बेवकूफ। ३ वह कबूतर जो बिलकुल लाल, काला वा नीला हो और जिसके गलेमें सफेद कंठा हो।

पट्टोपाध्याय (सं० पु०) वह जो दानपट्ट वा दानविषयक पट्टा लिखता है।

पट्टोलिका (सं० स्त्री०) पट्टं पट्टाख्यं उलति प्राप्नोतीति उल-गतौ ण्वुल्, टापि इत्वं। भूमिके करग्रहणका व्यवस्थापत्र, पट्टा।

पट्ठा (हिं० पु०) १ तरुण, जवान। २ मनुष्य पशु आदि चर जीवोंका वह बच्चा जिसमें यौवनका आगमन हो चुका हो, नवयुवक, उठंत। चौपाइयोंमें घोड़े, पक्षियोंमें कबूतर तथा उल्लू और सरीसृपोंमें सांपके यौवनोन्मुख बच्चेको पट्ठा कहते हैं। ३ दलदार या मोटा पत्ता। ४ स्नायु, मोटी नस। ५ कुश्तीबाज, लड़ाका। ६ पेड़ूके नीचे कमर और जांघके जोड़का वह स्थान जहां छूनेसे गिल्टियां मालूम होती हैं। ७ एक प्रकारका चौड़ा गोटा जो सुनहला और रुपहला दोनों प्रकारका होता है। ८ अतलस, मासनपेट आदिकी पट्टी पर बेल बुन कर बनाई हुई गोट।

पट्ठापछाड़ (हिं० वि०) खूब हृष्टपुष्ट और बलवती।

पट्ठी (हिं० स्त्री०) पठिया देखो।

पठ (हिं० स्त्री०) वह जवान बकरी जो ब्याई न हो, पाठ।

पठक (सं० पु०) पठतीति पठ ण्वुल्। पाठक, पढ़नेवाला।

पठदशा (सं० स्त्री०) पाठकी अवस्था, पढ़नेका समय।

पठन (सं० क्ली०) अध्ययन, पाठ, पढ़ना।

पठनीय (सं० त्रि०) पठ-अनीयर्। पढ़ने योग्य।

पठमञ्जरी (सं० स्त्री०) श्रीरागकी चतुर्थ रागिणी। इसका व्यासांश ग्रह पञ्चम है और गान समय एक दिनके बाद है। इसका ध्यान वा लक्षण—

"वियोगिनी कान्तवितीर्णपुष्पा स्रजं दधाना बहुधा विमुग्धा।
आश्वासयन्ती प्रियया न सख्या विधूसराङ्गी पठमञ्जरीयम्॥"
(संगीतदामो०)

पठान—महम्मदीय धर्मावलम्बी एक प्रधान जाति।

'पठान' शब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक मतभेद है। डाक्टर बेलू (Dr. Bellew) साहब कहते हैं, कि पठान शब्दकी उत्पत्तिका निर्णय करनेमें अति प्राचीनसे इसका अनुसन्धान करना होता है। पठान शब्द अरबी वा पारसी शब्द नहीं है, यह अफगानदेशीय 'पुख्टाना' शब्दका हिन्दी अपभ्रंश मात्र है। पुख्टुन्ख्वा नामक स्थानके लोगोंको पुखटन और वहांकी प्रचलित भाषाको पुखटा वा पुखटो कहते हैं। पुखटो शब्दका असल अर्थ क्या है, ठीक ठीक मालूम नहीं। पर पुखट शब्दका अर्थ शैल वा छोटा पहाड़ है, इसका फारसी प्रतिशब्द 'पुषट्' है।

ईसाजन्मके चार सौ वर्ष पहले ग्रीक ऐतिहासिक हेरोदोतस उक्त स्थानको पाक्टिया वा पाक्टियाका (Pactya, Pactyaca) नामसे उल्लेख कर गये हैं। अफगानिस्तानके पूर्वांशमें चलित ख अक्षरके उच्चारणकालमें पश्चिमांशके अधिवासी 'ष'-का व्यवहार किया करते हैं जिससे पुख्टुन शब्दका उच्चारण पुष्टुन होता है। आफ्रिदी पुख्ट् और हेरोदोतस्-कथित पाकटिया (Pactya) शब्द एक है और एक स्थानके अधिवासियोंके लिये प्रयुक्त हुआ है।

आधुनिक वंशविदोंका कहना है, कि साल (Saul) के पिता केस् वा किश्रोस (Kais or Kiohs)-के वंशसे पठान लोग उत्पन्न हुए हैं। पैगम्बर महम्मदने केसके कार्यसे खुश हो कर उन्हें पठानकी उपाधि दी और

अपनेको पख्तान सन्ततिको तत्प्रवर्त्तित वंश पर अपनेको परमाता। इसीके अनुसार उनको सन्तान सन्तति गण 'पठान' कहलाने लगी। फिर बहुतेरे लोगोंका कहना है कि अफगान शब्दका अर्थ विद्यमान है। लेकिन कुछ लोग इस सिद्धान्तको समीचीन नहीं मानते। मारवाड़ देशका प्राचीन अध्याय है। पश्चात्के लोग कुभा वा काबुल नामक स्थानके अधिवासियोंको पख्त देशमें लगाकर पख्त मिलनेके कारण पख्तक देशवासी कहते थे। अलेक्जन्दरके समकालवर्त्ती ग्रीक ऐतिहासिकगण 'पख्त्यकानि' वा 'पख्तर्केनि' शब्दका व्यवहार कर गये हैं। कोई कोई समझते हैं, कि पख्तर्केनि और पख्तान वा अफगान एक ही शब्द है। कोई कोई हिन्दी शब्द पठसे पठान शब्दकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

अफगानियोंके मध्य किंवदन्ति है कि उनका आदिम वासस्थान सिरिया देशमें था। उनके पूर्वपुरुषको जब नबूकादर (Nebuchadnezzar) ने कैद कर पकड़ लिया सिरियाके विभिन्न स्थानोंमें निर्वासित किया तब वे वहाँसे धीरे धीरे घोर देश तक फैल गये। यहांके अधिवासी इन्हें बनि-अफगान वा बेनी इस्राइल अर्थात् अफगान वा इस्राइल सन्तान कहते थे। इन्छूलका कहना है कि इस्राइलीयोंकी जो दस जातियें दूर हो गई थीं वे पहले असीरिया नामक स्थानको भाग गईं और असीरियाका जो वर्त्तमान समयमें हजारा प्रदेश नामसे प्रसिद्ध है जो घोर प्रदेशका एक अंश समझा है। तबकात् ई नासिरी नामक ग्रन्थमें लिखा है कि घोरदेशमें सनसबनी राजत्वकालमें बेनि-इस्राइल नामक एक जातिके लोग रहते थे जिनमेंसे अधिकांश वाणिज्यकार्यमें लगा रहता था। भारतवर्ष आकर कहते हैं, कि वे यहूदोंके वंश हैं, यहूदियोंके आचार व्यवहारके साथ इनका आचार व्यवहार बहुत कुछ मिलता जुलता था। विधवाके मरनेके लिये आदि इसका बदले रक्षा बड़े भाईको देवरको पंगाना, देवरोंके मध्य बलिदान देना, अस विन्दाकारियोंको हत्या करना, सामयिक भूमिदान आदि अनेक आचार व्यवहार दोनों ही जातिके मध्य प्रचलित हैं।

पख्तानके पश्चिम सीमान्तवर्त्ती पठानोंके मध्य जो समाज बन्धन अति दृढ़ है। अन्य किसी भी अपेक्षा पठानोंमें ही अनेक एक श्रेणीके लोगोंका समावेश देखा जाता है अर्थात् विभिन्न वर्णोंका समावेश सही है। सैयद, तुर्क और अन्यान्य श्रेणी पठानोंके अन्तर्भुक्त होने पर भी इनके साथ बिलकुल सम्मिलित नहीं हो सकते। अनेक विशुद्ध पठान नहीं होने पर भी वे आत्मकुलके संस्रवसे अपनेको पठान बतलाते हैं। पठानों की प्रत्येक श्रेणीके मध्य भिन्न भिन्न सम्प्रदाय हैं। प्रत्येक सम्प्रदायके सरदारका नाम है मलिक वा मालिक। अनेक जातियोंके भीतर एक एक शाखा है जिसे खाँ खेल वा प्रधानवंश कहते हैं। इस खाँ खेलके मालिकका नाम खाँ है जिसके ऊपर समस्त आत्मीयोंका कर्त्तृत्वभार सौंपा रहता है। सब जातिके ऊपर प्रभुत्व स्थापन रहने पर भी उसे उतनी क्षमता नहीं है। युद्धविग्रहका भार और अन्यान्य जातिके साथ सन्धि स्थापनका भार उन्हींके हाथ है। जिरगा नामक मालिकोंकी प्रतिष्ठित एक सभा है जिसके हाथ प्रकृत क्षमता रहती है। व अफगान शब्दमें खेल वा जाई यह शब्द जोड़ कर एक एक जाति वा सम्प्रदायका नामकरण हुआ करता है। पुश्तु 'जाई' शब्दका अर्थ है सन्तति वा वंश और अरबी 'खेल' शब्दका सभा वा सम्प्रदाय वाचक। ये नाम सभी समय यथाक्रमसे व्यवहृत नहीं होते। एक नामसे भिन्न जाति और सम्प्रदायका भी बोध होता है। ये सब नाम इस प्रकार मिश्रित हो गये हैं कि वैज्ञानिक नाम द्वारा सम्प्रदायनिर्णयकार्यमें बहुत भ्रम पड़ जाते हैं। अनेक जातियोंने प्राचीन पूर्वपुरुषोंके नामका परित्याग कर अपेक्षाकृत आधुनिक पूर्वपुरुषोंके नाम पर अपने सम्प्रदायका नाम रख लिया है। इस प्रकार एक जातिके मध्य विभिन्न सम्प्रदायकी सृष्टि हुई है। पश्चिमोत्तर अधिकारके मध्यस्थ हिन्दूकुशकी उपत्यकामें सामान्त प्रदेशवासी पठानोंको अपनी समान है। जो सब हिन्दू इनके पठान समान ही कर व्यवहार करते हैं उन्हें ये लोग बड़े घृणापूर्वक हिन्दकी नामसे पुकारते हैं। जिन सब हिन्दुओंने मुसलमानी धर्म ग्रहण किया है वे भी इसी नामसे पुकारे जाते हैं।

गत लोकगणनामें इस प्रदेशके पठान निम्नलिखित विभागोंमें विभक्त किये गए हैं।

आफ्रिदी, बगरजाई, बङ्गास, बरेक, बुनारवल, दाऊदजाई, दिलजाक, दुरानी, गिलजाई, घोरगस्ति, घोरी, काकर, काजिलबाश, खलिल, खटक, लोदी, मोहमन्द, मुहम्मदजाई, शाहिला, तरिन, उर्मुर, उस्तरियानी, वरदकजाई, वाजिरी, याकूबजाई और यूसुफजाई।

आफ्रिदीपठान—ऐतिहासिक हिरोदोतस आफ्रिदी पठानोंका 'अपारिटी' नाम रक्खा है। उन्होंने पाक्टियानी वा पठानोंको ४ श्रेणियोंमें विभक्त किया है,—अपारिटी वा आफ्रिदीगवशिष्टि वा खटक, दादिको वा दादि और गन्धारी। आफ्रिदिदेशका प्राचीन सीमा उत्तर दक्षिणमें सुफेदपर्वत और उसकी उत्तर तथा दक्षिणस्थ कुरम और काबुल नदीके मध्यस्थ समस्त प्रदेश, पूर्व पश्चिममें पेशावर पर्वतश्रेणीसे सिन्धुनदी जिस स्थान पर काबुल और कुरम् नदियोंके साथ मिली है, वहां तक विस्तृत है। आफ्रिदि देशके प्राचीन अधिवासिगण शान्तिप्रिय परिश्रमी और जीवहिंसा-निरत थे। वर्त्तमान आफ्रिदियोंको देखनेसे वे निरीह बौद्ध वा अग्नि उपासकोंकी सन्तान सन्तति सरीखे नहीं मालूम पड़ते। वर्त्तमान आफ्रिदिगण धर्मतः मुसलमान होने पर भी उनके किसी प्रकारका धर्म-जीवन है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। मुसलमानी धर्मका प्रकृततत्त्व क्या है उसे आफ्रिदिगण कुछ भी नहीं जानते। ये लोग सम्पूर्ण निरक्षर होते हैं, किसीके शासनाधीन रहना नहीं चाहते। इनकी जनसंख्या तीन लाखसे कुछ कम है। अधिकांश चोरी और डकैती करके अपना गुजारा चलाते हैं। इनका चरित्र इतना हीन है, कि इन पर जरा भी विश्वास नहीं किया जा सकता। इनके स्वजाति पठान लोग भी इन्हें विश्वासघातक कहा करते हैं। ये लोग धूर्त्त, सन्दिग्धचित्त और व्याघ्रवत् हिंसक होते हैं। नरहत्या और दस्युवृत्ति इनके जीवनका प्रधान अवलम्बन है।

बङ्गास पठान शकवंशोद्भूत है, तुर्मानके अन्तर्गत गुर्देज प्रदेशमें इनका आदि निवास था। ये लोग चौदहवीं शताब्दीमें गिलजाइयोंसे उत्पीड़ित हो कर कुरमनदीके किनारे आ कर रहने लगे। गिलजाई लोग लुकमानके वंशोद्भव हैं। उत्तर-पश्चिमके अन्तर्गत फरक्काबादमें इस जातिके अनेक पठानोंने उपनिवेश स्थापित किया है।

बुनारवल पठान—पेशावर उत्तरपश्चिमस्थ बुनार देशके ये लोग अधिवासी हैं।

दाऊदजाई पठान—काबुलनदीके बामकूलमें बारनदीके सङ्गम तक इन लोगोंका वासभूमि है।

दिलजाक पठान शकवंशसम्भूत है। पठानोंके आगमनके पहले पेशावर उपत्यका इनकी वासभूमि थी। ५वीं और ६ठीं शताब्दीमें जाट और काठियोंके साथ ये लोग पञ्जाबमें आ कर बस गये। धीरे धीरे वे इतने क्षमताशाली हो उठे कि सिन्धुनदके पूर्व उपकूल तक इनकी क्षमता फैल गई। १६वीं शताब्दीमें यूसुफजाई और मोमन्द पठानोंने इन्हें सिन्धुनदके पार चकपाखलीका मार भगाया। पीछे स्वत्व अधिकार ले कर जब दोनोंमें कुछ काल तक विवाद चलता रहा, तब बादशाह जहांगीरने हिन्दुस्तान और दाक्षिणात्यके विभिन्न स्थानोंमें उन्हें बसा दिया।

दुरानी पठान—दुरानी शब्द सम्भवतः दुर-इ-दौरान (अर्थात् उस समयकी सर्वोत्कृष्ट मुक्ता अथवा दुर-इ दुरान अर्थात् सर्वोत्कृष्ट मुक्ता) शब्दसे उत्पन्न हुआ है। अहमदशाह अबदलीके सिंहासनारोहणके समय सांग्रामिक नियमानुसार उन्होंने अपने दाहिने कानमें मुक्ताका कुंडल पहना था। उसी समयसे उक्त नामकी सृष्टि हुई है। दुरानी पठान साधारणतः निम्नलिखित सम्प्रदायोंमें विभक्त है—सदोजाई, पपलजाई, बराकजाई, आलकोजाई, आचाकजाई, नूरजाई, ईशाकजाई और खागवानी। कन्धारमें इनका आदिम वासस्थान था। पहली शताब्दीमें इन्होंने हेलमण्ड और अरगन्दाब नदीके तीरवर्त्ती हजारा प्रदेश तक विस्तृति लाभ की थी। काबुल और जलालाबाद तक समस्त अफगानिस्तानमें ये लोग छोटे छोटे दलोंमें विभक्त हो कर भिन्न भिन्न स्थानोंमें वास करते हैं। इस दलके सर्दारोंने युद्धकालमें सहायता दे कर पुरस्कारस्वरूप जागीर पाई है। स्थानीय अधिवासिगण इनके अधीन कृषिकार्य करते हैं।

गिलजाई पठान तुर्कोवंशसम्भूत है। ये गिलजाई

शब्द तुर्की 'खिलची' शब्दसे उत्पन्न हुआ है, 'खिलची' शब्दका अर्थ है तलवारधारी। ये लोग और पहिले सिन्धुनदके गिरिप्रान्तमें रहते थे। अब अनेक इनका जातिगत व्यवसाय था। यहीं इस जातिके कारण ये लोग पार्वतीयोंके साथ मिल गये।— खिलजाई शब्दका जातीय उच्चारण गाजीका है। जब सुलतानोंने जब भारतवर्ष पर आक्रमण किया था तब ये लोग उनके साथ आये थे। ये ही जलालुद्दीनसे ले कर गियासुद्दीन खिलजाई तकके समस्त शहीदों पर इन्होंने अधिकार जमा लिया। आठवीं शताब्दीके आरम्भमें ये गिलजोई हो कर बेगमायत मरवारके अधीन कन्दहारमें प्रतिष्ठित हुए और पीछे इन्होंने पारस्य देश तक अपना दखल किया। अनन्तर पारस्याधिपति नादिरशाहने इन लोगोंको अपने देश भगाये। अब लिख सकते हैं, कि पारस्य देशके पिताने अपनी कन्याका धर्म नष्ट किया था इस कारण लोग तुर्कोंके पुत्रको गिलजी अर्थात् चोर पुत्र कहा करते थे। इसीसे गिलजाई शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

गिलजाई पठान साधारणतः अन्यान्य जातियोंके संस्रवमें आना नहीं चाहते और उनका आचार व्यवहार भी अफगानिस्तानके अन्यान्य जातीय अधिवासियोंके आचार-व्यवहारसे बिलकुल भिन्न है। खिलजाइयोंमें प्राय कोई कोई सम्प्रदाय ग्राममें जा कर कृषिकार्य अवलम्बनपूर्वक बस गया है। किन्तु इस जातिके अधिकांश मनुष्य नाना स्थानोंमें घूम घूम कर जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं। अधिकांश गिलजाई लोग अत्यन्त कलहप्रिय होते हैं और अपनी तथा अन्यान्य जातिके साथ अक्सर लड़ाई झगड़ा किया करते हैं। ये लोग देखनेमें बड़े सुन्दर होते हैं। देहकी गठन और बलवीर्यके सम्बन्धमें ये लोग अफगानिस्तानकी अन्यान्य जातियोंसे किसी अंशमें कम नहीं हैं। ये अत्यन्त अतिथिवात्सल्यपरायण होते और सुसभ्य भद्रकी तरह व्यवहार करते हैं। ये लोग भी देशमें घोड़े ऊंट तथा अन्यान्य पशुओंसे प्रसूत करते हैं। खिलजाई जातिकुल अनेक स्थानोंमें मध्य एशिया, भारतवर्ष और अफगानिस्तानमें सब जगह व्यवसाय करते हैं। इनमें नियाजी नासर, खरोटी और सुलेमान खेल ये ही व्यवसायीयोंमें हैं। इसीसे इन्हें पोविन्द नसारी वा लोहानी कहते हैं।

घोरगस्ति पठान—घोरगस्ति शब्द खिरशिप्त वा घरगस्त शब्दका अपभ्रंश है। पठानके अति आदिपुरुष कैसके तृतीय पुत्रका नाम खिरशिप्त वा घरगस्त था। यह शब्द गिरशिप वा खिरशिप शब्दका रूपान्तर मात्र है जिसका अर्थ होता है "प्रान्तर भ्रमणकारी।" इससे अनुमान किया जाता है कि तुर्किस्तानके प्रस्तरोंसे ये लोग आये हैं।

घोरी पठान—घोरके पूर्ववर्ती और देशमें इनका आदिम वासस्थान था, इस कारण इस नामसे ख्याति मिली है।

काकर पठान—ऐतिहासिकोंका कहना है, कि काकर पठान प्रायः तातारमूल हैं और राजपूतोंको तथा भारतके अन्य अन्य जातीय अधिवासी गोखर अथवा गोखरोंके एक ही गोत्र हैं। अफगानिस्तानके प्रचलित प्रवादके अनुसार काकर घरगस्तके पौत्र अर्थात् घरगस्तके द्वितीय पुत्र दानीके सन्तान थे। इस सम्प्रदायके पठान लोग जो राजपूत व सन्तान माने गये हैं सो एक प्रकारसे ठीक है। ... सारबनके दो पुत्र थे, शर्बन और करशबून। ये दोनों नाम सूर्य और चन्द्र शब्दके अपभ्रंश हैं यह साफ मालूम पड़ता है। पीछे ये दोनों नाम रूपान्तरित हो कर यथाक्रम सरबंगोन और करबूगोन नामसे ख्यात हुए हैं। पठानोंने जब गजनी और कन्दहार तक अपना राज्य फैला लिया था, तब उस समय कुछ भी असम्भव नहीं है।

खलिलजाल पठान—खैबर पर्वतके पूर्वप्रान्त स्थित प्रदेशमें इनका आदि वासस्थान था। एक समय इन्होंने अधिकांश पारस्याधिपतिके अधीनता स्वीकार की थी। ये लोग तातार जातिके हैं। नादिरशाहने जब भारत पर आक्रमण किया, तब खलिलजाल पठान उनके अनुगामी थे।

मुगल सम्राटोंके समय अनेक राजमन्त्री खलिल जातिके थे। सम्राट् औरङ्गजेबके विख्यात मन्त्री और उनका उनके अन्यतम थे। एक प्रकारका नाम

टोपी सिर पर धारण करनेके कारण ये लोग काजिल-वास कहलाते थे। पारस्यदेशीय सोफी राजवंशके प्रतिष्ठाताने इस प्रथाका प्रचार किया, सिया सम्प्रदाय-का यह एक विशेष चिह्न है।

खलील पठान—खैबर गिरिसङ्कटके सम्मुखस्थ बारा-नदीके वामतीरवर्त्ती प्रदेश इनका वासस्थान था। ये लोग अभी चार सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं—माटुजाई, बारोजाई, ईशाकजाई और तिमारजाई। इनमेंसे बारो-जाई सम्प्रदाय ही सबसे क्षमताशाली हैं।

खटक पठान—खटकके वंशोद्भव होनेके कारण इनका यह नाम पड़ा है। खटकके दो पुत्र थे तुर्कमान और बुलाक। बुलाकके वंशधरोंको बुलाकी कहते हैं। तुर्कमानके पुत्र तराईने इतनी प्रतिपत्ति लाभ की, कि दो प्रधान सम्प्रदाय 'तरिन्' और 'तरकाई' उन्हींके नामसे पुकारे जाते हैं। खटक पठान साधारणतः सुन्नी और वीर्यवान् होते हैं। अन्यान्य पठान जातियोंसे इनकी आकृति और आचारमें बहुत अन्तर पड़ता है। ये लोग सातिशय युद्धप्रिय होते और निकटवर्त्ती अन्यान्य जातियोंसे सर्वदा युद्धविग्रहादि किया करते हैं। कुछ व्यवसाय और कुछ कृषिकार्यसे अपना गुजारा चलाते हैं। सीयत और बुनार प्रदेशके लवण व्यवसायको खटक पठानोंका एक प्रकारका खास व्यवसाय कह सकते हैं। ये लोग सभी सुन्नी-सम्प्रदायभुक्त हैं।

लोदी पठान—दिल्लीके लोदीवंशीय पठान बादशाह धर्मश्रेणीके अन्तर्गत थे। लोदी पठान प्रधानतः व्यव-सायजीवी हैं और भारतवर्ष, अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया इन कई एक प्रदेशोंमें व्यवसाय कार्य करते हैं। शरत्कालके पहले ये लोग बुखारा और कन्दहारसे पण्यद्रव्य, मेष, उष्ट्र, गवादिपशु लाते और स्त्रीपुत्र परि-वार सहित गजनीके पूर्वस्थित प्रान्तरमें समागम होते हैं तथा वहांसे आकर तथा वजीरी देश होते हुए सुलेमान पर्वतश्रेणीको पार कर डेरा-इस्माइल खां जिलेमें आते हैं। यहां स्त्री-पुत्रादि तथा पश्वादिको रख कर पण्यद्रव्य ऊंटकी पीठ पर लादते और मुलतान, राजपूताना, लाहोर, अमृतसर, दिल्ली, कानपुर, काशी और पटना तक उन्हें बेचने चले जाते हैं। वसन्तकाल आने पर सभी इकट्ठे हो पूर्वपथ होते हुए गजनी और खिलात-इ गिलजाईके निकटवर्त्ती स्वदेश लौटते हैं। ग्रीष्मा-रम्भमें भारतसे लाये हुए पण्यद्रव्यको ले कर वे अफगानि-स्तान और मध्यएशियाके अनेक स्थानोंमें चले जाते हैं।

महम्मदजाई—दौलतजाई जातिके मध्य यही सम्प्र-दाय सबसे बड़ा है। भूपालका वर्त्तमान नवाब वंश इसी सम्प्रदायका है।

रोहिला पठान—पूर्वोक्त पाखटुनख्वा नामक प्रदेश-को विदेशिगण 'रो' कहते हैं। 'रो' शब्दसे पर्वत और रोहिलासे पर्वतवासीका बोध होता है। वर्त्तमान रोहिलखण्डका नाम सम्पूर्ण आधुनिक है। १७०७ ई०में बादशाह औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद जब बरेली वासी हिन्दुओंके मध्य विवाद खड़ा हुआ, तब रोहिला पठानोंके सरदार अली महम्मद खांने इस प्रदेश पर आक्रमण किया। १७४४ ई०में कुमायुनके अलमोरा तकका स्थान उनके अधिकारमें आ गया। दो वर्ष पीछे वे बादशाह महम्मद शाहसे परास्त हुए। बादमें हाफिज रहमत खांके समय वारेन हेष्टिंस रोहिलोंके संस्रवमें आ गये। रोहिलोंके मतसे वे इजिप्ट देशीय कोप्त-जाति सम्भूत हैं। फेरासे विताड़ित हो कर उन्होंने अन्यान्य देशोंमें आश्रय लिया है। रोहिला पठान बड़े साहसी और अत्यन्त कलहप्रिय होते हैं।

तरिन् पठान—जातीय प्रवाद है, कि प्रायः तीन चार सौ वर्ष पहले यूसुफजाई और मोमन्द जातीय पठान लोग तर्णक तथा अवासन नदीके किनारे आ कर वास करने लगे। उक्त स्थानसे और भी नीचे तरिन्-जातीय पठान रहते थे। उनकी कर्षित जमीन अमु-वर थी और उसमें जलसिञ्चनका कोई उपाय न था। इसीसे तरिनोंने क्रमशः मन्दार और मोमन्द पठानोंको जमीन छीन ली है।

उस्तुरियानीपठान—ये लोग उस्तरियानीके पुत्र हनरके वंशोद्भूत हैं। हनर शिराणीसम्प्रदायस्थ एक रमणीका पाणिग्रहण करके उसी स्थानमें बस गये। प्रायः एक शताब्दी पहले व्यवसाय और पशुपालन ही इनके जीवनका प्रधान अवलम्बन था। पीछे मुसाखेलोंके साथ विवाद उपस्थित हो जाने पर जब पश्चिमकी ओर जाने

आमीको सुविधा न रह गई, तब इन लोगोंने व्यवसाय करना बिलकुल छोड़ दिया। अभी ये लोग खेती-बारी करके अपना गुजारा करते हैं। सुलेमान पर्वतके पूर्वी किनारे इनका वासस्थान है। इनके मध्य और भी अनेक सम्प्रदाय हैं जिनमेंसे अहमदजाई और गपन्नजाई ये दो सम्प्रदाय प्रधान हैं। ये लोग निरीह और शान्तिप्रिय होते हैं। अंग्रेजी सरकारके पुलिस सैन्यविभागमें नौकरी करते हैं। ये सबके सब सुन्नीसम्प्रदायभुक्त हैं।

वाजिरी पठान—अदकोंको दूरीभूत करके सुलेमान पर्वतके पर बस गये। ये लोग लोहाजातीय पठानोंको एक अंशसे विशेष हैं। लोहा पठान प्रायः राजपूतोंके एक शाखा माने जाते हैं। आज पाँच या छः शताब्दी पहले इन्होंने अदकों पर आक्रमण कर कोहाट उपत्यकासे थाल तक अपना अधिकार फैला लिया। ये लोग असभ्यतामात्रके अधीन जाति हैं, अधिकांश एक जगह वास नहीं करते नाना स्थानोंमें घूम फिर कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। इनकी आकृति और आचार-व्यवहारमें अन्यान्य पठानोंसे बहुत अन्तर पड़ता है।

यूसुफजाई पठान—बोनेर बुनार, स्वातपार और रानिजाई उपत्यकामें इनका वास है।

पठानोंका चरित्र और आचार व्यवहार।—सीमान्तवासी और अफगानके अतिपय जातोंके अधिकांश प्रधान पठान अत्यन्त असभ्य हैं। ये लोग अति निर्दय, प्रतिहिंसापरायण तथा अविश्वस्त होते हैं। धर्म और सत्यवादिता किसे कहते हैं ये लोग जानते तक भी नहीं। पठान विश्वासघातक होते हैं, यह प्रवाद अन्यान्य जातिके मध्य प्रचलित है। इनसे, चाहे जिस किसी प्रकारसे क्यों न हो, ये शत्रुका विनाश कर ही डालते। जो कुछ हो, इनमें तीन बातें सदा प्रचलित हैं,—(१) शत्रुके शरणागत होने पर उसकी रक्षा अवश्य करनी होगी (२) अनिष्ट करने पर उसकी प्रतिहिंसा लेना अवश्य कर्त्तव्य है तथा (३) आतिथ्य सत्कार अवश्यकरणीय है। अपिच प्रवाद है, कि पठान एक मुहूर्त्तमें देव और एक मुहूर्त्तमें दानव है। सीमान्तवासी पठान भी कई शताब्दीसे अपनी स्वाधीनताकी अक्षुण्णभावसे रक्षा करते आ रहे हैं, यह उनकी गौरवसमुज्ज्वल आकृतिसे ही देदीप्यमान है। ये लोग दीर्घाकार और गौरवर्ण होते तथा सुगठित सौंदर्ययुक्त होते हैं। देखनेसे जो ये आत्मस्वाधीन ज्ञात न होते हैं। सीमान्तप्रदेशस्थित पठान बड़े बड़े बाल रखते हैं। इनका पहनावा ढीला पाजामा ढीली अचकन, वासकटीमलमलिंस कोट, कम्बल वा इसी प्रकारका मैला कपड़ा है। पठान स्त्रियाँ भी ढीला पाजामा पहनती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही अत्यन्त अपरिष्कार रहते हैं।

भारतवर्षीय पठान बहुत कुछ सभ्य हैं। इनमेंसे कितने खेती बारी करके अपनी जीविका चलाते हैं। कितने ही मनोलत्वादि अवस्थामें पठान विशेष ध्यान देते हैं। इनमेंसे अधिकांश विवाह चचा के घर ही होता है। स्वजातिमें ही इनकी विवाहप्रथा चलती है। भारतवर्षीय पठानोंके सम्बन्धमें यह बात यद्यपि नहीं होती पर भी सीमान्त प्रदेशके पठानोंके विषयमें ठीक है। इनके मध्य उत्तराधिकारप्रथा महम्मदीय नियमानुसार न हो कर जातीय नियमानुसार हुआ करती है। अभी दो एक जो लिखित बातें हैं वे महम्मदीय आईनके अनुसार चलती हैं। इनमें विभिन्न जातिके मध्य भिन्न भिन्न प्रथा प्रचलित है। रोहिलखण्डके पठान ही सर्वापेक्षा शिक्षित हैं जिनमेंसे अधिकांश अंगरेज गवर्मेण्टके अधीन राजस्व पुलिस और अन्यान्य विभागोंके उच्च कार्यमें नियुक्त हैं।

पठान-स्थापत्य और शिल्प।

पठान-राजाओंकी जब इस देशमें जड़ मजबूत हो गई, तब उन्होंने स्थापत्यकार्यकी ओर ध्यान दिया। पहले पहल उन्होंने जयविजयस्तम्भ अजमेर और दिल्लीमें दो मसजिद बनवाई। युद्धकार्यमें व्यस्त रहनेके कारण वे शहाबुद्दीनादि प्रस्तुतकार्यमें निपुण शिल्पीको ला न सके थे। उनका वह अभाव हिन्दुओंके द्वारा ही पूरा हुआ था। अनेक जैन मन्दिरोंको पठानोंने मसजिदमें परिणत किया। दिल्लीके निकट की मसजिद भी उनके आय अजमेरकी मसजिदकी तुलना नहीं हो सकती। दिल्लीकी मसजिद यद्यपि अभी भग्नावस्थामें है, तो भी उसका दृश्य अतीव सुन्दर है। यह

मसजिद एक पहाड़की ढालवीं जमीन पर बनी हुई है। इसके सामने पहले एक कूट था। मसजिदके स्तम्भ हिन्दू मन्दिरके जैसे बने हुए थे।

कन्नौजमें अभी जो मसजिद है वह पहलेमें जैन मन्दिर था, इसमें कोई सन्देह नहीं। मस्जिदकी छत और गुम्बज जैनमन्दिरके जैसे हैं। केवल इसका बहिर्भाग मुसलमानी प्रथानुसार बना हुआ है। इस मसजिदमें जो गुम्बज है वह बहुत बड़ा और बढ़िया है। मध्यस्थलके गुम्बजका परिमाण चौड़ाईमें २२ फुट और ऊंचाईमें ५३ फुट है। गुम्बज किस तरह बनाया जाता है वह पठान लोग अच्छी तरह जानते थे, किन्तु संस्थानिक ज्ञान उतना नहीं रहनेके कारण उन्होंने हिन्दू शिल्पियों पर इसका कुल भार सौंप दिया था।

कुतबमिनार पठानोंकी एक और कीर्त्ति है इसके तलप्रदेशका घेरा ४८ फुट ४ इञ्च है। १७८४ ई०में इसकी ऊंचाई २४२ फुट थी। इसमें ४ बरामदे हैं। पहला बरामदा ८ फुट ऊंचे पर दूसरा १४८ फुट, तीसरा १८८ फुट और चौथा २१४ फुट ऊंचे पर अवस्थित है। इसके सिवा चारों ओर विस्तर कारुकार्य हैं। इसके वितल्का ऊपरी भाग सफेद पत्थरका बना हुआ है और निचला भाग लाल बालुकापत्थरका।

कुतबमिनारसे ४७० फुट उत्तरमें अलाउद्दीनने एक दूसरा स्तम्भ बनवाना शुरू किया था, पर राजधानी दूसरी जगह चली जानेके कारण उसका निर्माणकार्य पूरा होने न पाया, अधूरा ही रह गया। इसकी ऊंचाई केवल ४० फुट मात्र हुई थी।

यहां एक और विस्मयजनक लौहस्तम्भ है जिसकी ऊंचाई २३ फुट २ इञ्च है। यह स्तम्भ बहुत पुराना है। इसमें जो खोदित लिपि है उसमें कोई तारीख लिखी न रहनेके कारण इसके निर्माणकालका पता नहीं चलता। कोई इसे ३री और कोई ४थी शताब्दीका बना हुआ मानते हैं। जो कुछ हो, वाह्लिकोंके सिन्धुदेशमें पराजित होनेके बाद विजयस्तम्भ स्वरूप यह स्तम्भ निर्मित हुआ है।

अजमेरकी मसजिदकी कथा जो ऊपर कही आ चुकी है वह १२०० ई०में आरम्भ हो कर अलतमशके शासनकालमें शेष हुई। किंवदन्ती है, कि इस मसजिदका निर्माण ढाई दिनमें शेष हुआ, लेकिन जान पड़ता है कि जैनमन्दिरका भग्नावशेष अलग करनेमें ढाई दिन लगे होंगे, इसीसे इस प्रकारकी किंवदन्ति प्रचलित है। मसजिदका गुम्बज ही इसका सौन्दर्य है। इसमें जो सब खोदित शिलालिपि हैं, वह बहुत बढ़िया है।

अलाउद्दीनकी मृत्युके बाद पठान-स्थपति-विद्याकी विभिन्नता परिलक्षित हुई। पहले पठान लोग अपने घरों, मसजिदों आदिमें तरह तरहका नक्काशी किया करते थे और निर्माणकार्यमें हिन्दुओंसे सम्पूर्ण सहायता लेते थे। किन्तु तुगलकशाहके समयसे पठान लोग बिना हिन्दूकी सहायताके मसजिदादि बनाने लगे। इन सब मसजिदों और अट्टालिकाओंमें विशेषता यह कि उनमें इतने चित्रादि नहीं होते थे।

समाधिगृह बनानेमें पठानोंने जो निपुणता दिखलाई उसका शेष शेरशाहके समयसे हुआ। शाहाबादमें शेरशाहका समाधिमन्दिर है जिसका चित्र ६४१ पृष्ठमें दिया गया है।

ऐसा सुन्दर समाधिमन्दिर भारतवर्षमें बहुत कम देखनेमें आता है।

भारतमें पठान शासन।

एक समय पठानोंने सारे भारतवर्ष पर अपना अधिकार जमा लिया था। मुगलोंके प्रभावसे भारतीय पठानोंका गौरवरवि अस्तमित हुआ।

भारतवर्ष और बङ्गदेश देखो।

नीचे दिल्लीके पठान राजाओं और बङ्गके शासनकर्त्ताओं तथा स्वाधीन पठान राजाओंकी वंशतालिका दी गई है।

पठान-शासनकर्त्तृगण।

१।	महम्मद-इ-बख्तियार खिलजी	११९८-१२०५ ई०
२।	महम्मद इ-सिरान्	१२०५—१२०८ „
३।	अलीमर्दन	१२०८-१२११ „
४।	सुलतान गयासुद्दीन	१२११-१२२७ „
५।	नसिरुद्दीन	१२२७-१२२९ „
६।	अलाउद्दीन	१२२९ „
७।	सैफुद्दीन आइबक	१२३२ „
८।	इज्जुद्दीन अबुलफते तुघिल-तुघाद खां	१२३३-१२४५

शेरशाहका समाधिमन्दिर।

९। कमरुद्दीन तैमुर खाँ १२४५ १२४७ ई०

१० इख्तियार-उद्दीन युजबको तुघ्रिल खाँ (सुलतान मुग़िसुद्दीन) १२४७-१२५८ ई

११। जलालुद्दीन मसाऊद मालिकजानी १२५८-१२५८ ई०

१२ इज़्ज़ुद्दीन बलबन १२५८ ई०

१३। महम्मद अर्सलन तातार खाँ १२६१ „

१४। तुघ्रिल (सुलतान मग़िसुद्दीन) १२७९ „

१५। नासिरुद्दीन महमूद (बगरा खाँ) १२८२

१६। रुकन उद्दीन कैकाउस शाह १२९१ १२९६ ई०

१७। शमसुद्दीन अबुल मुजफ्फर फिरोजशाह १३०२ १३२२ „

१८। गयासुद्दीन बहादुरशाह १-१३३१ ई०

१९। बहर खाँ १३२६-१३३८ ई०

२०। बहराम खाँ १३३३-१३३८ ई०

२१। फक्रीम दस-मुज्ज १३२५-१३३८ ई०

बङ्गके प्राचीन पठान-सुलतानगण।

१। शमसुद्दीन अबुल मुजफ्फर मुबारकशाह १३३८-१३४९

२। अलाउद्दीन अबुल मुजफ्फर अलीशाह १३३९ १३४५

३। इख्तियारुद्दीन अबुल मुजफ्फर गाजीशाह १३४९ १३५२

४। शमसुद्दीन अबुल मुजफ्फर इलियसशाह १३४२ १३५७

५। अबुल मजाहिद सिकन्दरशाह १३५७-१३८९

६। गयासुद्दीन अबुल मुजफ्फर आजमशाह १३८९ १३९६

७। सैफउद्दीन अबुल मजाहिद हामजाशाह १३९६ १४००

८। शमसुद्दीन १४०१ १४०२

इलियस शाहीवंश।

९। नासिरउद्दीन अबुल मुजफ्फर महमूदशाह १४४२-१४६०

(४३१ पृष्ठमें देखो)

दिल्लीके पठानराजवंश ।

- कुतुब-उद्दीन् एबक (१२०६से १२१० ई० तक)
  - आराम
  - कन्या
    पति—शमसुद्दीन् अल्तमश (१२१०-१२३५)
    - नासिर-उद्दीन महमूद् एमन कुराल
    - रुकन उद्दीन् फिरोज (१२३५-१२३६)
      - अला-उद्दीन् मसाउद (१२४१-१२४६)
        - ग्यास-उद्दीन् बलबन (१२६५-१२८७)
          - महम्मद
            - कैखुसरु
          - बुगरा खाँ
            - मुइज-उद्दीन् कैकोबाद (१२८७-१२९०)
    - सुलताना रजिया (१२३६-१२३९)
    - मुइजउद्दीन् बहरामशाह (१२३९-१२४१)
      - नासिर-उद्दीन् महमूद (१२४६-१२६५)

खिलजी-वंश ।

- जलाल-उद्दीन् फिरोजशाह (१२९०-१२९५)
  - खान-ई खानान्
  - अर्कलीखाँ
  - कादिरखाँ (१२९५-१२९६)
- अला-उद्दीन महम्मदशाह (१२९५-१३१५)
  - खिजिरखाँ
  - सादीखाँ
  - मुबारक कुतब-उद्दीन् (१३१६-१३२०)
  - साहाब उद्दीन्

तुगलक वंश ।

- गाजीबेग वा ग्यास-उद्दीन् तुगलकशाह (१३२०-१३२५)
  - महम्मदखान् तुगलक (१३२४-१३५१)
  - सिपहसालार रजब्
    - फिरोजशाह (१३५१-१३८८)
      - नासिर-उद्दीन् महम्मदशाह (१३८८-१३९२)
        - हुमायूं सिकन्दरशाह (१३९२ ई० सिर्फ ४५ दिन)
        - महमूदशाह (१३९२-१४१२) (तैमुर द्वारा दिल्ली पर आक्रमण)
      - जाफरखाँ
        - अबूबकर (१३८८-१३८९)
      - फतेखाँ
        - ग्यास-उद्दीन् तुगलकशाह (१३८८-१३८९)

लोदी-वंश ।

- दौलतखाँ लोदी (१४१२-१४१४)

सैयद-वंश

सैयद खिजिर खाँ (१४१४-१४२१)

सैयद मुबारकशाह (१४२१-१४३३)

महम्मद-बिन् फरीद (१४३३-१४४३)

अला-उद्दीन (आलमशाह) (१४४३-१४५०)

लोदी-वंश

बहलोललोदी (१४५० १४८८)

सिकन्दरलोदी निजाम खाँ (१४८८ १५१०)

इब्राहिमलोदी (१५१०-१५२६)

१०। शमसुद्दीन अबुल मजाहिद बार्बकशाह १४५८-१४७४

११। शमसुद्दीन अबुल मुजफ्फर यूसुफशाह १४७४-१४८१

१२। सिकन्दरशाह (२य) १४८१

१३। जलालुद्दीन अबुल मुजफ्फर फतेशाह १४८१-१४८७

हुसैनी-वंश।

१४। अलाउद्दीन अबुल मुजफ्फर हुसेनशाह १४९३-१५२० या-२१

१५। नासिरुद्दीन अबुल मुजफ्फर नसरतशाह १५२१-१५३२

१६। अलाउद्दीन अबुल मुजफ्फर फिरोजशाह (३य) १५३२

१७। गयासुद्दीन अबुल मुजफ्फर महमूदशाह (३य) १५३२-१५३८

सूर-वंश।

१८। शेरशाह सूर १५३९-१५४५

१९। महम्मद खाँ १५४५-१५५५

२०। बहादुरशाह १५५५-१५६१

२१। जलालशाह और उनके पुत्र
२२। गयासुद्दीन } १५६१-१५६४

करानी-वंश।

२३। ताजखान-व-भाई मोला सुलेमान १५६४-१५७२

२४। बयाजिद १५७२

२५। दाऊद १५७२-१५७६

पठानकोट—विपाशा और इरावती नदीके मध्य भागमें अवस्थित एक प्राचीन दुर्ग। बहुतोंका अनुमान है कि पठानोंके नाम पर ही इस दुर्गका नामकरण हुआ है। किन्तु हिन्दुओंके मतसे पठानिया (नूरपुरके राजाकी उपाधि)-से इसका नाम पठानकोट पड़ा है। यह प्राचीन दुर्ग अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। यहां हिन्दू और मुसलमानकी अनेक मुद्राएं पाई गई हैं।

पठानिन (हिं० स्त्री०) पठानी देखो।

पठानी (हिं० स्त्री०) १ पठान जातिकी स्त्री, पठान स्त्री। २ पठान जातिकी चरित्रगत विशेषता, रक्तपात-प्रियता आदि पठानोंके गुण, पठानपन। ३ पठान कौमका भाव। (वि०) ४ पठानोंका। ५ जिसका पठान या पठानोंसे सम्बन्ध हो, पठानोंसे सम्बन्ध रखनेवाला।

पठानीलोध (हिं० पु०) एक जङ्गली पेड़ जिसकी छाल और फूल औषध तथा रंग और छिपी रंग बनानेके काममें आते हैं। यह रोपा नहीं जाता, केवल जङ्गली रूपमें पाया जाता है। इसकी छालको उबालनेसे एक प्रकारका पीला रंग निकलता है। यह रंग कपड़ा रंगनेके काममें लाया जाता है। बिजनोर कुमाऊं और गढ़वालके जङ्गलोंमें इसके पेड़ बहुतायतसे पाये जाते हैं। चमड़े पर रंग चढ़ाने और अबीर बनानेमें भी इसकी छाल व्यवहृत होती है।

विशेष विवरण पट्टिकालोध शब्दमें देखो।

पठार (हिं० पु०) एक पहाड़ी जाति।

पठावन (हिं० पु०) संदेशवाहक दूत।

पठावनि (हिं० स्त्री०) १ किसीको कहीं कोई वस्तु या सन्देश पहुंचानेके लिये भेजना। २ किसीके भेजनेसे कहीं कुछ ले कर जाना।

पठासन (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास।

पठि (सं० स्त्री०) पठ-इन् (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११०) पठन, पाठ।

पठित (सं० त्रि०) पठ-क्त। १ वाचित, ज्ञातपाठ, जिसे पढ़ चुके हों। २ शिक्षित, पढ़ालिखा।

पठितव्य (सं० त्रि०) पठ-तव्य। पढ़नेके योग्य।

पठिताङ्ग (सं० क्लो०) मेखलाभेद।

पठिति (सं० स्त्री०) शब्दालङ्कारभेद।

पठियर (हिं० स्त्री०) वह तख्ता या पटिया जो कुएँके मुंह पर बीचोबीच रख दी जाती है। पानी निकालनेवाला उसी पर पैर रख कर पानी निकालता है। इस पर खड़े हो कर पानी निकालनेसे घड़ेके कुएँकी दीवार से टकरानेका भय नहीं रहता।

पठिया (हिं० स्त्री०) यौवनप्राप्त स्त्री जवान और तगड़ी औरत।

पठोर (हिं० स्त्री०) १ जवान पर बिना व्याई बकरी। २ जवान पर बिना व्याई मुर्गी।

पठौनी (हिं० स्त्री०) १ किसीको कुछ दे कर कहीं भेजनेकी क्रिया या भाव। २ किसीको कोई चीज ले कर कहीं जानेकी क्रिया या भाव।

पठ्यमान (सं० त्रि०) पठ-शानच्। जो पढ़ा जाता हो।

पड़छत्ती (हिं० पु०) १ दीवारको पानीसे बचानेके लिये लगाया जानेवाला छप्पर या टट्टी। २ कमरे आदिके बीचमें तख्ते या लट्ठे आदि ठहरा कर बनाई हुई पाटन जिस पर चीज असबाब रखते हैं, टांड़।

पड़ता (हिं० पु०) १ किसी वस्तुकी खरीद या तैयारीका दाम। २ सामान्य दर, औसत, सरदर, शरह। ३ दर, शरह। ४ भू-करकी दर, लगानकी शरह।

पड़ताल (हिं० स्त्री०) १ किसी वस्तुकी सूक्ष्म छानबीन, गौरके साथ किसी चीजकी जांच। २ ग्राम अथवा नगरके पटवारी द्वारा खेतोंका एक विशेष प्रकारकी जांच। यह जांच खरीफ, रब्बी और फस्ल जायद नामक तीनों फसलोंके लिए अलग अलग तीन बार होती है। खेतमें कौन-सी चीज बोई गई है, किसने बोई है, खेत सींचा गया है या नहीं आदि बातें इस जांचमें लिखी जाती हैं। ग्रामका पटवारी हरएक पड़तालके बाद जिंसवार एक नकशा बनाता है। इस नकशेसे मालके अधिकारियोंको यह मालूम होता है, कि इस वर्ष कौन सी चीज कितने बीघेमें बोई गई है, उसकी क्या अवस्था है और कितनी उपजेगी आदि। ३ मार।

पड़तालना (हिं० क्रि०) अनुसन्धान करना, छान बीन करना।

पड़ती (हिं० स्त्री०) भूमि जिस पर कुछ कालसे खेती न की गई हो। मालके कागजातमें पड़तीके दो भेद किए जाते हैं—पड़ती जदीद और पड़ती कदीम। जो भूमि केवल एक सालसे न जोती गई हो उसे पड़ती जदीद और जो एकसे अधिक सालोंसे न जोती बोई गई हो उसे पड़ती कदीम कहते हैं।

पड़ना (हिं० क्रि०) १ पतित होना, गिरना। 'गिरना' और 'पड़ना'के अर्थोंमें फर्क यह है, कि पहली क्रियाका विशेष लक्ष्य गति व्यापार पर और दूसरीका प्राप्ति या स्थिति पर होता है, अर्थात् पहली क्रिया वस्तुका किसी स्थानसे चलना या रवाना होना और दूसरी उसका किसी स्थान पर पहुंचना या ठहरना सूचित करती है। २ बिछाया जाना, डाला जाना। ३ अनिष्ट या अवाञ्छनीय वस्तु या अवस्था प्राप्त होना। ४ हस्तक्षेप करना, दखल देना। ५ प्रविष्ट होना, दाखिल होना। ६ विश्रामके लिये सोना या लेटना। ७ डेरा डालना, पड़ाव करना, ठहरना। ८ मार्गमें मिलना, रास्तेमें मिलना। ९ आय, प्राप्ति आदिका औसत होना, पड़ता होना। १० प्राप्त होना, मिलना। ११ पड़ता खाना। १२ खाट पर पड़ना, बीमार होना। १३ जांच या विचार करने पर ठहरना, पाया जाना। १४ प्रसङ्गमें आना, उपस्थित होना, संयोगवश होना। १५ उत्पन्न होना, पैदा होना। १६ स्थित होना। १७ मैथुन करना, सम्भोग करना। यह केवल पशुओंके लिये व्यवहृत होता है। १८ देशान्तर या अवस्थान्तर होना। १९ अत्यन्त इच्छा होना, धुन होना।

पड़पड़ (हिं० स्त्री०) १ निरन्तर पड़पड़ शब्द होना। २ पटपट देखो। (पु०) ३ मूलधन, पूंजी।

पड़पड़ाना (हिं० क्रि०) १ पड़पड़ शब्द होना। २ मिर्च, सोंठ आदि कड़वे पदार्थोंके स्पर्शसे जीभ पर जलन-सी मालूम होना, चरपराना।

पड़पड़ाहट (हिं० स्त्री०) पड़पड़ानेकी क्रिया या भाव, चरपराहट।

पड़पूत—विवाङ्कुड़के अगस्त्येश्वर तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह तिवाङ्कुड़नगरसे ३८ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां बहुतसे प्राचीन मन्दिर हैं जिनमें शिलालिपि उत्कीर्ण हैं।

पड़पोता (हिं॰ पु॰) प्रपौत्र, पौत्रका पुत्र, पुत्रका पोता।

पड़वेडु,—उत्तर आर्काट जिलेके पोलूर तालुकके अन्तर्गत एक विध्वस्त नगर। कोई कहते हैं, कि यहीं पर कुरुम्बरोंकी राजधानी थी। प्रायः १६ मील तकके अन्दर प्रासाद, देवमन्दिर और दुर्ग आदिके ध्वंसावशेष पड़े हैं जिनसे नगरकी प्राचीन समृद्धिका यथेष्ट परिचय मिलता है। प्रवाद है, कि कुलोत्तुंग चोल॰ पुत्र अडोण्डईने इस नगरको विध्वस्त और प्रायः जनशून्य कर डाला था, तभीसे इसकी अवस्था सुधरी नहीं है। पड़वेडु नामक यहांके नूतन ग्राममें बहुत कम लोग रहते हैं। इसी ग्राममें रेणुका और रामस्वामीके मन्दिरमें शिलालिपि देखी जाती है। १२६८ ई॰में उत्कीर्ण शिलालिपिमें 'पड़वेडु' का उल्लेख है।

पड़ल (हिं॰ पु॰) पैसे आदि रखनेके काममें आनेवाला एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा।

पड़वा (हिं॰ स्त्री॰) प्रत्येक पक्षकी प्रथम तिथि।

पड़वाना (हिं॰ क्रि॰) पड़नेका काम दूसरेसे कराना, गिरवाना।

पड़वी (हिं॰ स्त्री॰) बैसाख या जेठ मासमें बोई जानेवाली एक प्रकारकी ईख।

पड़ाइन (हिं॰ स्त्री॰) पंडाइन देखो।

पड़ाका (हिं॰ पु॰) पटाका देखो।

पड़ाना (हिं॰ क्रि॰) लुढ़काना, गिराना।

पड़ापड़ (हिं॰ क्रि॰ वि॰) पटापट देखो।

पड़ाव (हिं॰ पु॰) १ यात्रीसमूहका यात्रामें बीचमें ठहरनेका स्थान। २ वह स्थान जहां यात्री ठहरते हों, चट्टी, टिकान।

पड़ाली (सं॰ स्त्री॰) पत्राङ्गक, जामका पेड़।

पंड़िया (हिं॰ स्त्री॰) भैंसका मादा बच्चा।

पंड़ियाना (हिं॰ क्रि॰) १ भैंसका भैंसेसे संभोग करना, भैंसाना। २ भैंसको भैंसानेके लिये भैंसेके समीप पहुंचाना।

पड़िवा (हिं॰ स्त्री॰) प्रत्येक पक्षकी प्रथम तिथि, पड़वा प्रतिपदा।

पड़ोह (हिं॰ पु॰) पड़ुक देखो।

पड़ोरा (हिं॰ पु॰) परवल देखो।

पड़ोस (हिं॰ पु॰) १ प्रतिवेश, किसीके समीपका घर। २ किसी स्थानके समीपवर्ती स्थान।

पड़ोसी (हिं॰ पु॰) प्रतिवासी, प्रतिवेशी, पड़ोसमें रहनेवाला।

पड़ोसो (हिं॰ पु॰) पड़ोसी देखो।

पड्गृभि (सं॰ पु॰) असुरभेद, एक राक्षसका नाम।

पड्वीश (सं॰ स्त्री॰) १ पादबन्धन। २ पादबन्धनयोग्य रज्जु।

पढ़त (हिं॰ स्त्री॰) १ पढ़नेकी क्रिया या भाव। २ मंत्र, जादू।

पढ़ना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी पुस्तकका लेख आदिको इस प्रकार देखना कि उसमें लिखी बात मालूम हो जाय। २ मधुर स्वरसे कहना, उच्चारण करना। ३ किसी लेखके अक्षरोंसे सूचित शब्दोंको मुखसे बोलना। ४ नया पाठ प्राप्त करना, नया सबक लेना। ५ स्मरण रखनेके लिये किसी विषयका बार बार उच्चारण करना। ६ मन्त्र फूंकना, जादू करना। ७ विद्या प्राप्त करना, अध्ययन करना। ८ तोते मैना आदिका मनुष्योंके सिखाये हुए शब्द उच्चारण करना। ९ एक प्रकारकी मछली।

पढ़िना देखो।

पढ़नो (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका धान।

पढ़नी पड़ी (हिं॰ स्त्री॰) कसरतमें एक प्रकारका व्यायाम जिसमें आदमी टोंगा या अन्य कोई उसे पीठ उचक कर फांदी जाती है। इसके दो भेद हैं—एकमें सामनेकी ओर और दूसरेमें पीछेकी ओर उछलते हैं। उछलनेवालोंके पक्ष अनुसार टोपको कम बढ़ रखता है।

पढ़वाना (हिं॰ क्रि॰) १ किसीसे पढ़नेकी क्रिया कराना या कराना। २ किसीके द्वारा किसीको शिक्षा दिलाना।

पढ़वैया (हिं॰ पु॰) १ विद्यार्थी, पढ़नेवाला।

पढ़ाई (हिं॰ स्त्री॰) १ विद्याभ्यास, अध्ययन, पढ़नेका काम। २ वह धन जो पढ़नेके बदलेमें दिया जाय। ३ पढ़नेका भाव। ४ अध्यापन, पाठन, पढ़ानेका काम। ५ पढ़ानेका भाव। ६ अध्यापन शैली, पढ़ानेका ढंग। ७ वह धन जो पढ़ानेके बदलेमें दिया जाय।

पढ़ाना (हिं॰ क्रि॰) १ अध्यापन करना, शिक्षा देना। २

सिखाना, समझाना। ३ कोई कला या हुनर सिखाना। ४ तोते, मैना आदि पक्षियोंको बोलना सिखाना।

पढ़िना (हिं॰ पु॰) तालाब और समुद्रमें पाई जानेवाली एक प्रकारकी बिन सेहरेकी मछली। यह मछली प्रायः सभी मछलियोंसे अधिक दिन तक जीती है और डील-डौलवाली होती है। कोई कोई पढ़िना दो मनसे अधिक भारी होता है। यह मांसाशी है। इसके सारे शरीरके मांसमें बारीक बारीक कांटे होते हैं जिन्हें दांत कहते हैं। वैद्यकमें इसे कफपित्तकारक, बलदायक निद्राजनक, कोढ और रक्तदोष उत्पन्न करनेवाला लिखा है। इसके और भी नाम हैं, जैसे पाठीन सहस्रदंष्ट्र, बोदालक, वदालक पढ़ना और पहिना।

पढ़ैया (हिं॰ पु॰) पाठक, पढ़नेवाला।

पण (सं॰ पु॰) पण्यतेऽनेन पण व्यवहारे अप्। (नित्यं पण परिमाणे। पा ३।३।६६)। १ कर्षपरिमित ताम्र, किसीके मतसे ११ और किसीके मतसे २० माशेके बराबर तांबेका टुकड़ा। इसका व्यवहार प्राचीनकालमें सिक्केकी भांति किया जाता था। २ निर्वेश, वेतन, तनखाह। ३ भृति, नौकरी। ४ द्यूत, जुआ। ५ ग्लह, बाजी। ६ मूल्य, कीमत। ७ अशीति-वराटक, अस्सी कौड़ी। ८ धन, सम्पत्ति, जायदाद। ९ कार्षापण। १० प्रतिज्ञा, शर्त्त, कौलकरार। ११ वह वस्तु जिसके देनेका करार या शर्त्त हो। १२ शुल्क, फीस १३ व्यवहार, व्यापार, व्यवसाय। १४ स्तुति प्रशंसा। १५ प्राचीन कालकी एक विशेष माप जो एक मुट्ठी अनाजके बराबर होती थी। १६ शौण्डिक, कलवार। १७ गृह, घर। १८ विष्णु। विवाहादिमें कन्याकर्त्ता वरकर्त्ताको अथवा वरकर्त्ता कन्याकर्त्ताको जो रुपया देता है, उसे भी पण कहते हैं। (त्रि॰) २० क्रयविक्रयादिकारक, खरीदने बेचनेवाला।

पणग्रन्थि (सं॰ पु॰) पणस्य विक्रयादेर्ग्रन्थिरिव। हट्ट, हाट, बाजार।

पणधा (सं॰ स्त्री॰) पणाम्धा तृण, एक प्रकारकी घास।

पणन (सं॰ क्ली॰) पण व्यवहारे ल्युट्। १ विक्रय, बेचनेकी क्रिया या भाव। २ खरीदनेकी क्रिया या भाव। ३ व्यापार या व्यवहार करनेकी क्रिया या भाव। ४ शर्त्त लगाने या बाजी बदनेकी क्रिया या भाव।

पणनीय (सं॰ त्रि॰) १ धन देकर जिससे काम लिया जा सके। २ जिसे खरीदा या बेचा जा सके।

पणफर (सं॰ क्ली॰) लग्नस्थानसे द्वितीय, पञ्चम, अष्टम और एकादश स्थान, कुण्डलीमें लग्नसे २रा, ५वां और ११वां घर।

पणव (सं॰ पु॰) पणं स्तुतिं वातीति पण वा-क। १ एक प्रकारका वाद्ययन्त्र, छोटा नगाड़ा। २ छोटा ढोल। ३ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक मगण, एक नगण, एक यगण और अन्तमें एक गुरु होता है। इसमें ६६-१६ मात्राएं होती हैं, इस कारण यह चौपाई-के भी अन्तर्गत आता है।

पणबन्ध (सं॰ पु॰) पणस्य बन्ध। ग्लह, बाजी बदना, शर्त्त लगाना।

पणवा (सं॰ स्त्री॰) पणव टाप्। पणव, छोटा नगाड़ा या छोटा ढोल।

पणवानक (सं॰ पु॰) नगाड़ा, धौंसा।

पणविन् (सं॰ पु॰) महादेव, शिव।

पणश (सं॰ पु॰) कण्टाकुफलवृक्ष। (Artocarpus integrifolia) कटहलका पेड़। भिन्न भिन्न स्थानमें यह भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है, जैसे—हिन्दी—कटहल, महाराष्ट्र—फणस, कर्णाट—हलसिन, तैलङ्ग—पनस, तामिल—पिला। इसके फलका गुण—मधुर, पिच्छिल, गुरु, हृद्य, बलवीर्यवृद्धिकर, श्रम, दाह और शोषघ्न, रुचिकर, ग्राहक और दुर्जर। बीजका-गुण—ईषत् कषाय, मधुर, वातल, गुरु और त्वग्दोष नाशक। कच्चे कटहलफलका गुण—नीरस और हृद्य। मध्यपक्वका गुण—दीपन, रुचिकर और लवणादियुक्त। पक्वफलका गुण—रक्तवर्द्धक, मधुर, शीतल, दुर्जर, वातपित्तनाशक, श्लेष्म, शुक्र और बलकर। मज्जाका गुण-शुक्रल, त्रिदोषनाशक, गुल्मरोगमें विशेष हितकर। इस-का काथ मास ग्रन्थिशोफमें हितकर तथा कोमल पल्लव चर्मरोगमें हितकर है। कटहल देखो।

पणस (सं॰ पु॰) पणायते इति पण-असच्, (अत्यविचमीति। उण् ३।११७) पण्य द्रव्य, क्रय विक्रयकी वस्तु, सौदा।

पणसुन्दरी (सं॰ स्त्री॰) बाजारी स्त्री, रंडी, वेश्या।

पण्यस्त्री (सं॰ स्त्री॰) पणेन धनेन लभ्या स्त्री। वेश्या, रंडी।

पणतीर्थ — मोहीन में स्थित एक पवित्र तीर्थ। शोलापुर उपविभागके अधीन माढ़ परगना है और माढ़ परगनेके अधिवासियोंका यही पणतीर्थ अवस्थित है। यह एक प्रसिद्ध ग्राम है। प्रति वर्ष आश्विन मासमें अनेक मनुष्य यहां आकर तीर्थके लिये आते हैं।

पणाङ्गना (सं० स्त्री०) पणेन अङ्गना अङ्गना। १ वेश्या, २ रंडी।

पणाया (सं० स्त्री०) पणायतेर्भावः इति पण आय-अ, टाप्। १ स्तुति प्रशंसा। २ व्यवहार, ३ क्रयविक्रय, व्यवहार, लेन देन, कारबार।

पणायित (सं० त्रि०) पणाय्य क्त। १ स्तुत (भाग्यशालिनः भारविकृत पणा। भा ११।३१) १ स्तुत जिसकी प्रशंसा की गई हो। २ व्यवहृत, जिसका व्यवहार किया गया हो। ३ क्रीत जो खरीदा गया हो।

पणाय्य (सं० त्रि०) पणाय-यत्। स्तुत्य प्रशंसनीय। व्यवहार्य, व्यवहार करने योग्य।

पणास्यक (सं० स्त्री०) पणास्य स्वार्थे कन्। व्यवहार करने योग्य।

पनाहाट—१ बुलन्दशहर जिलान्तर्गत एक परगना। इसके उत्तर यमुनानदी और दक्षिण चम्बलनदी पूर्व-पश्चिममें विस्तृत है। इसका भूपरिमाण १७१ वर्गमील है। यहां सब जगह हिरमुल व्यवसाय होता है।

२ उक्त तहसीलका सदर और प्रधान नगर। यह अक्षा० २६ ५१´ १८´´ उ० तथा देशा० ७८ २३ ४८ पू० के मध्य अवस्थित है। यहां नाना कारुकार्ययुक्त सुन्दर हिन्दू देवमन्दिर है।

पणि (सं० स्त्री०) पण व्यवहारे इन्। पण्यवीथिका, क्रयविक्रयका स्थान, हाट बाजार।

पणिक (सं० पु०) पण।

पणिकावर्त (सं० पु०) [illegible]

पणित (सं० त्रि०) पण्यते स्म इति पण-क्त। पणायादेश विकल्पत्वात्। १ व्यवहृत। २ स्तुत, ३ कथित। ४ विक्रीत। (क्ली०) ५ बाजी। ६ जुआ।

पणितव्य (सं० त्रि०) पण्यते इति पण-तव्य। १ विक्रेय द्रव्य बेचनेयोग्य। खरीदने योग्य। ३ स्तुत्य प्रशंसा करने योग्य। ४ व्यवहार्य व्यवहार करने योग्य।

पणित्र (सं० त्रि०) पण मत्। विक्रेता बेचनेवाला।

पणिन् (सं० त्रि०) व्यवहारी स्तुति कर्त्ता वा पणः प्रशस्तार्थे इनि। १ कृपण व्यवहारयुक्त। २ स्तुतियुक्त। (पु०) ३ ऋषिभेद।

पण्ढरपोरी—बम्बई प्रेसिडेन्सीके सितारा जिलान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। भूपरिमाण ४ वर्गमील है। यहां माधुवी और माचियमी नामक दो सरदार रहते थे।

पण्डावियर—एक प्राचीन चोलराजा। पण्डावर किसी समयमें राज्य करते थे। नाचनिका नामक स्थानमें इसके समयकी मुद्रा पाई गई है।

पण्ड (सं० पु०) पणते लिङ्गस्य प्रक्षोभोऽस्ति पण्डि गतौ पण ड। १ क्लीव नपुंसक हिजड़ा। (त्रि०) २ निष्फल जिसमें फल न लगे।

पण्डक (सं० पु०) १ सावर्णि मनुके एक पुत्रका नाम। २ नपुंसक हिजड़ा।

पण्डग (सं० पु०) १ षोडा, नपुंसक। २ पण्डकका पाठान्तर।

पण्डरदेवी—निजाम राज्यके बरार प्रदेशान्तर्गत एक ग्राम। यह मूल नगरसे १० कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहां हेमाड़ पन्थियोंका एक सभामण्डपीय मन्दिर देखनेमें आता है। जिन सब खम्भोंके ऊपर छत अवस्थित था, उनका अधिकांश टूट फूट गया है, केवल १० खम्भे रह गये हैं। इनकी कारीगरी आज सुन्दर शिल्पकार्य विशिष्ट है।

पण्डरानी—मलबार उपकूलवर्ती एक प्रधान बन्दर। दक्षिण पश्चिम मोनसूनवायुके समय भी यहां जहाज आदि ठहरनेकी विशेष सुविधा है। इसके पूर्व सौन्दर्यका ह्रास हो गया है। वर्तमान कालमें कुछ माप्पिलोंके इस ग्राम के अधिवासी हैं। प्रसिद्ध पोर्तुगीज भ्रमणकारी बार्बोसाने भारतवर्षमें पदार्पण करते समय इसके पत्तन इसी बन्दरमें ठहरे थे। १५१० ई० के पहिलेसे यह जाना जाता है, कि यह नगर समबार उपकूलके मध्य मुख्य पर स्थापित था। पहले यहां नाना द्वीपोंसे व्यवसाय चलता था और एक बड़ी जामा मसजिद यहां रहने

थे। भारतवर्षके नाना स्थान मिस्र और चीन आदि देशोंके व्यापारी इस बन्दरमें लंगर डाल कर बहुमूल्य द्रव्यादि खरीदते थे।

पण्डा (सं० स्त्री०) पण्ड-टाप। १ तीक्ष्ण बुद्धि। २ शास्त्रज्ञान। ३ वेदोज्ज्वला बुद्धि।

पण्डापूर्व (सं० क्ली०) पण्डं निष्फलं अपूर्वं अदृष्टं। १ फलसाधनयोग्य फलानुपहित धर्माधर्मात्मक अदृष्ट, मीमांसा शास्त्रानुसार वह धर्माधर्मात्मक अदृष्ट जो अपने कर्मका फल देनेमें अयोग्य हो। मीमांसाका मत है, कि प्रत्येक कर्मके करते ही चाहे वह अधर्म हो या धर्म एक अदृष्ट उत्पन्न होता है। इस अदृष्टमें अपने कर्मके शुभाशुभ फल देनेकी योग्यता होती है परन्तु कितने कर्मोंके शुभाशुभ फल तो मिलते हैं और उनके फलोंके मिलनेका वर्णन अर्थवाद वाक्योंमें है, पर कितने ऐसे भी हैं जिनका फल नहीं मिलता। मीमांसकोंका मत है, कि सन्ध्यावन्दनादिका अनुष्ठान नहीं करनेसे दुरदृष्ट उत्पन्न होता है। इसके अनुष्ठानसे किसी प्रकारका शुभादृष्ट नहीं होता, किन्तु पापक्षय होता है, इसीसे इसको फलानुपहित धर्माधर्मात्मक अदृष्ट कहते हैं। २ फलका अप्रतिपादक अदृष्टभेद। नैयायिक लोग इस प्रकारके अदृष्टको नहीं मानते।

पण्डारम—नीच वा शूद्रश्रेणीका हिन्दूसंन्यासी। ये लोग दक्षिण भारत और सिंहलद्वीपमें निम्नश्रेणीके हिन्दुओंका पौरोहित्य करते हैं। इनमें कितने वैष्णव और शैव हैं। सिंहलद्वीपके नागतश्वोरण देवमन्दिरमें और महिसुरके अन्तर्गत चेर नामक स्थानके शिवमन्दिरमें ये लोग पुजारीका काम करते हैं।

पण्डारदेव—विजयनगरके राजा। १४१४ ई०में विजयरायके मरने पर ये सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। राज पद पानेके साथ ही इनका राज्यवृद्धिकी ओर ध्यान दौड़ा। नाना आयोजनके बाद १४४३ ई०में इन्होंने तुङ्गभद्रानदी पार कर सागर और वीजापुर पर आक्रमण किया। यहां मुद्गल और तुङ्गभद्रा नदीके मध्यस्थलमें हिन्दू और मुसलमानोंके बीच तीन बार युद्ध हुआ *। युद्धमें दो मुसलमान सेनापति बन्दी हो कर राजाके समीप भेज दिये गए थे। १४५० ई०में पण्डारदेवकी मृत्यु हुई।

पण्डित (सं० पु०) पण्डा वेदोज्ज्वला तत्त्वविषयिणी वा बुद्धिः सा जाताऽस्य, इतच्। (तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्। पा ५।२।३६), वा पण्डते तत्त्वज्ञानं प्राप्नोतिऽस्मात् गत्यर्थे क्त। १ शास्त्रज्ञ, वह जो शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यमें अवगत हो।

"निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्धधान एतत् पण्डितलक्षणम्॥"

(चिन्तामणि)

जो प्रशस्त कार्योंका अनुष्ठान करते हैं और निन्दित विषयोंकी सेवा नहीं करते तथा जो अनास्तिक और श्रद्धावान् हैं, वही पण्डित कहलाते हैं। महाभारतमें लिखा है—

"पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः॥"

(भारत वनपर्व)

पठक और पाठक, जो सर्वदा शास्त्रकी आलोचना करते तथा जो क्रियावान् हैं उन्हें पण्डित और जो व्यसनासक्त हैं उन्हें मूर्ख कहते हैं। गीतामें लिखा है—

"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥"

(गीता ५।१८)

विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मण, गो, हस्ती, कुक्कुर, चण्डाल आदि सभी जीवोंमें पण्डितगण समदर्शी होते हैं। जो कोई वस्तु परिदृश्यमान होगी, उसे ही जो ब्रह्मभावसे देखते हैं, वही पण्डित हैं। जिन्होंने श्रवणादि द्वारा आत्मतत्त्वका साक्षात्कार किया है, वे ही पण्डित पदवाच्य हैं।

पण्डित शब्दके पर्याय—विद्वान्, विपश्चित्, दोषज्ञ, सत्, सुधी, कोविद, बुध, धीर, मनीषी, प्राज्ञ, संख्या-

* खुरासान राजदूत अबदुल रज्जाक (१४४२-४३ ई०में) जब भारतवर्ष पधारे, तब वे इस युद्ध तथा विजयनगरके अतुल ऐश्वर्य और हिन्दूधर्मके अविचलित प्रतापको देख कर अपने रोजनामचेमें इसका उल्लेख कर गये हैं। W Major ने उक्त पुस्तिकाका अनुवाद कर India in the fifteenth century नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया।

मान्, कवि धीमान्, सूरि, ज्ञो, कृष्टि, सम्यर्थ विचक्षण दूरदर्शी दीर्घदर्शी, विशारद, कवो, विज्ञ, दूरदृश्, पैठी बुध बुध विद्यागम, प्रवीण, कवि, विद्र, मेधावी और निपुण।

२ महादेव। (त्रि॰) १ कुशल प्रवीण, चतुर। ४ संस्कृत भाषाका विद्वान्।

पण्डितक (सं॰ पु॰) १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। पण्डित स्वार्थे कन्। २ पण्डित शब्दार्थ।

पण्डितजातीय (सं॰ त्रि॰) १ मान्यमानभेद। २ महा मानभेद।

पण्डितता (सं॰ स्त्री॰) पण्डित-भावे तल्, स्त्रियां टाप्। पण्डितत्व पाण्डित्य।

पण्डितमानिक (सं॰ त्रि॰) जो अपनेको पण्डित समझ कर अभिमान करता है मूर्ख।

पण्डितमानिन् (सं॰ त्रि॰) आत्मानं पण्डितं मन्यते पण्डित मन-णिनि। मूर्ख।

पण्डितम्मन्य (सं॰ त्रि॰) आत्मानं पण्डितम्मन्यते मन् पण्डित मन खश् मुम् (आत्ममाने खश्। पा ३।२।८३) अपनेको विद्वान् माननेवाला मूर्ख।

पण्डितम्मन्यमान (सं॰ त्रि॰) पण्डिताभिमानी, मूर्ख।

पण्डितराज (सं॰ पु॰) पण्डितानां राजा टच् समासान्त। पण्डितश्रेष्ठ।

पण्डितस्वामि—नरदेव यजुर्वृत्ति प्रणेता।

पण्डिता (सं॰ त्रि॰) विदुषी।

पण्डिताइन (हिं॰ स्त्री॰) पण्डितानी देखो।

पण्डिताई (हिं॰ स्त्री॰) विद्वत्ता, पाण्डित्य।

पण्डिताऊ (हिं॰ वि॰) पण्डितोंके ढंगका।

पण्डितानी (हिं॰ स्त्री॰) १ पण्डितकी स्त्री। २ ब्राह्मणी।

पण्डितिमन् (सं॰ पु॰) पण्डितस्य भावः दृढ़ादित्वात् इमनिच्। पाण्डित्य।

पण्डु (सं॰ त्रि॰) १ पीलापन लिये सफेदी। २ पीला। ३ श्वेत सफेद।

पण्डुआ—बङ्गाल प्रदेशमें इस नामके तीन ग्राम हैं, पहला मालदह जिलेमें, दूसरा हुगली जिलेमें और तीसरा मान भूम जिलेमें।

मालदह जिलेमें जो पण्डुआ ग्राम है उसे बोलचाल-में पेंडुआ या बड़ा पेंडो और हुगली जिलेके पण्डुआ ग्रामको पेंडो या छोटा पेंडो कहते हैं। मालदह जिलेका पण्डुआ अक्षा॰ २५° ८´ उ॰ और देशा॰ ८८° १०´ पू॰ तथा हुगलीका पण्डुआ अक्षा॰ २२° ५´ उ॰ और देशा॰ ८८° १०´ पू॰के मध्य अवस्थित है। बड़ा पेंडो अभी जनशून्य है और छोटे पेंडोमें करीब तीन हजार मनुष्योंका वास है। एक समय ये दोनों स्थान बड़े ही समृद्धिशाली थे, पर अभी यहांकी पूर्वश्री बिलकुल जाती रही। पहले यह बङ्गालकी राजधानी थी। सुविख्यात गौड़ नगरकी अपेक्षा इसकी प्रतिपत्ति किसी अंशमें कम न थी। अब भी यहां प्राचीन कीर्तियोंके अनेक भग्नावशेष देखनेमें आते हैं। हुगली जिलेमें जो पण्डुआ ग्राम है उसीका संक्षिप्त विवरण यहां पर दिया जाता है। १०५० ई॰में यह स्थान हिन्दुओंके अधीन तथा वर्द्धमानराजके जमींदारीभुक्त हुआ था। यहांके प्राचीन दुर्गकी खाई आज भी विद्यमान है। प्राचीन मसजिद तथा एक बड़े सुदृढ़ गाठ आदिका भग्नावशेष देखनेसे स्पष्ट होता है कि यह एक समय अतिसमृद्धिशाली नगर था। १८वीं शताब्दीके आरम्भमें भी यहांका कागजका कारबार विशेष प्रसिद्ध था। 'पेंड़ुई' कागजकी कथा आज भी वृद्ध लोगोंके मुखसे सुनी जाती है। कहते हैं कि पण्डुआका कागज दीर्घकालस्थायी और उम्दा होता था। लोग विशेषतः इसी कागजको काममें लाते थे।

पण्डुआके अधिवासी अधिकतर मुसलमान हैं, हिन्दूओंकी संख्या प्रायः आधीके समान है। यहांके कितने मुसलमान अपनेको शाह सफीउद्दीन नामक एक पीरके वंशधर बतलाते हैं।

आईन-इ-अकबरीके सिवा उससे भी प्राचीन किसी मुसलमानी इतिहासमें छोटे पण्डुआका नाम नहीं मिलता।

इसकी नामोत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार अनुमान किया जाता है,—गौड़की प्राचीनतम राजधानी पौण्ड्रवर्द्धनसे जब आदिशूरके वंशधर पालराज द्वारा भगाये गये तब शूरवंशीय नृपतिगण हस्तिपुरराढ़में आ कर राज्य करने लगे। सम्भवतः उन्होंने ही पूर्वतन पौण्ड्रकी

नामानुसार नव राजधानीका नाम 'पौण्ड्र' वा 'पुण्ड्र' रखा। उसी पौण्ड्रका अपभ्रंश रूप पण्डुआ वा छोटा पुंडो हुआ है। यहां जो पहले शूर पीछे सेनराजगण राज्य करते थे, वह प्राचीन कुलाचार्यग्रन्थ और वर्त्तमान पण्डुआसे ढाई कोसकी दूरी पर रणपुर, बल्लाल दिग्गी आदिके नाम देखनेसे ही सहजमें अनुमित होता है। पाल, सेन और शूरराजगण देखो।

यहां पेंडोका मन्दिर नामक स्तम्भ, एक भग्न प्राचीन मसजिद और सफीउद्दीन् समाधि मन्दिर ही प्राचीन कीर्त्तियोंमें प्रधान हैं। रेल-ष्टेशनसे ये सब प्रायः आध घण्टेके पथ पर अवस्थित हैं। उक्त भग्न-मसजिदके सिवा अभी कुतुबशाही नामकी एक और मसजिद विद्यमान है। कहते हैं, कि ११४० हिजरीमें (१७२७-२८ ई०में) सुरवंशीय शुजाखांके पुत्र फतेखां-ने इस मसजिदका निर्माण किया।

अब मालदह जिलेके पण्डुआका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है,—इसे लोग हजरत पण्डुआ भी कहते हैं। यह अभी बङ्गालकी राजधानी गौड़ नगरीके ध्वंसावशेषसे १० कोस और मालदह नगरसे ३ कोस दूर उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। गौड़की तरह यह उतना विख्यात तो नहीं है, पर एक समय मुसलमान शासकोंकी यहां राजधानी होनेके कारण इसके अनेक ऐतिहासिक विवरण मिलते हैं। दुर्गप्रासादादिका भग्नावशेष अब भी देखनेमें आता है। मालदह जिलेका यह अंश तथा इसके पार्श्ववर्त्ती दिनाजपुर जिलेके भूभाग महास्थानगढ़ प्रभृति स्थान ऐतिहासिक अनुसन्धित्सुके निकट बड़े ही प्रयोजनीय हैं। दुःखका विषय है, कि अंगरेजी मानचित्रमें गौड़ अञ्चलका स्थान तो निर्दिष्ट है, पर पण्डुआका स्थान निर्दिष्ट नहीं है। पूर्वोक्त हुगली जिलेमें जो पण्डुआ है उसके साथ इस पण्डुआ नगरीका कोई गोलमाल न हो जाय, इस कारण डा० कनिंहम इसका नाम 'हजरत पण्डुआ' रख गये हैं।

पण्डुआके नामके सम्बन्धमें कनिंहम साहब कह गये हैं, कि हिन्दू लोगोंने पाण्डवके संश्रवसे इसका नाम 'पाण्डवोय' पीछे 'पण्डुआ' रखा है, किन्तु इस प्रदेशमें 'पाण्डुबी' नामक एक प्रकारका जलचर पक्षी अधिक संख्यामें पाया जाता है, शायद इसी सबबसे पण्डुआ नाम पड़ा होगा। कनिंहमने यहां पर एक अद्भुत नामतत्त्व प्रकाशित किया है, किन्तु अनेक ऐतिहासिकोंने अभी यही सिद्धान्त किया है, कि यह 'पौण्ड्रवर्द्धन' नामका ही अपभ्रंश है। महाभारतीय कालसे पौण्ड्र राज्य विख्यात है। बौद्धयुगमें पौण्ड्र-वर्द्धनका विशेष प्रभाव था। डा० कनिंहमने महास्थानगढ़के ऐतिहासिकतत्त्व विचारके समयमें पौण्ड्र-वर्द्धन नाम ले कर एक और अद्भुत युक्तिकी अवतारणा की है। वहां पर उन्होंने कहा है, कि पुण्ड्र नामक ताम्रवर्ण इक्षुकी प्रचुरतासे इस अञ्चलका नाम पौण्ड्र पड़ा है। जो कुछ हो, ये सब तर्क 'पौण्ड्र-वर्द्धन' शब्दमें मीमांसित होंगे।

मुसलमानी प्राचीन इतिहासमें सुलतान अलाउद्दीन अलीशाहके राजत्वकालमें पण्डुआका उल्लेख देखा जाता है। इन्होंने ही फकीर जलालउद्दीन ताब्रेजीका समाधि मन्दिर बनवाया। अलाउद्दीन अलीशाहके राजत्वसे सौ वर्ष पहले (६४१ हिजरी वा १२४४ ई० में) फकीर जलाल उद्दीनकी मृत्यु हुई। सुतरां उस समय भी पण्डुआकी प्रसिद्धि थी, ऐसा कहना होगा। इस हिसाबसे अन्ततः १२४४ ई०में भी पण्डुआका अस्तित्व पाया जाता है। उसके बाद इलियस शाहके राजत्वकालमें इसका द्वितीय बार उल्लेख देखा जाता है। तुगलक वंशीय फिरोज शाहके आक्रमण पर इलियस शाह पण्डुआका परित्याग कर एकडाला नामक स्थानको भग गये। फिरोज शाह एकडालेमें घेरा डाल कर पण्डुआ ला कर ही लौटे थे। पीछे ७५८ हिजरी (१३५८ ई०)में सिकन्दर शाह कर्त्तृक पण्डुआ फिर-से स्थायी राजधानीरूपमें परिगृहीत हुआ। इस समय उसने पण्डुआकी विख्यात अदीना मसजिद बनाई। तदनन्तर जलालउद्दीन और अहमदके राजत्वकालमें भी पण्डुआमें ही राजधानी थी। किन्तु प्रथम महम्मदके राज्यारोहणके साथ साथ पण्डुआसे राजधानी उठा कर पुनः गौड़में लाई गई। इसी समयसे पण्डुआकी भग्न-दशा आरम्भ हुई है।

यहांकी आदिना मसजिद, कुतुबशाहकी मसजिद, सोना मसजिद, एकलाखी-मसजिद, चाँदी मसजिद लिखन्द्राकी कब्र और सतासीम घर विशेष प्रसिद्ध हैं।

विशेष विवरण पाण्डुनगर शब्दमें देखो।

पण्डुक (सं० पु०) १ पाण्डुरोगयुक्त, जिसे पाण्डुरोग हुआ हो। २ षण्ड, नपुंसक।

"…पूर्वाह्णे …पण्डुकाः।"

(मार्कण्डेय पुराण)

माघ मासमें स्त्रीगमन करनेसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह पण्डुक होती है। ३ पोत्रा, …।

पण्ढरपुर—१ बम्बई प्रदेशके शोलापुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १७ २८' से १७ ५६' उ० तथा देशा० ७५ ६' से ७५ ३१' पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०८ वर्गमील और जनसंख्या लाखके करीब है। इसमें २ शहर और ८६ ग्राम लगते हैं। यहांकी प्रधान नदी भीमा और मान है। जलवायु शुष्क है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १७ ४१' उ० तथा देशा० ७५ २६' पू० भीमानदीके दक्षिण किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३२४०५ है। वर्षाकालमें जब नदीका जल खूब बढ़ जाता है तब चारों ओर पानीसे उसी समयमें पण्ढरपुर नगर देखनेमें बहुत सुन्दर लगता है। नदी तटमें घाटके ऊपर विठोबा और अन्यान्य मन्दिर तथा पार्श्ववर्ती तीरभूमिमें … सोपानावली हैं और उन सोपानोंके ऊपर कहीं तो … कहीं … हैं तथा … और कहीं … ऊपर … विराजित हैं। इन सबसे नगरकी शोभा और भी बढ़ जाती है। दाक्षिणात्यमें यहांका स्थानमाहात्म्य सर्वप्रसिद्ध है। हिन्दुस्तान तथा पूर्वापर जिस प्रकार मथुरा, … और … आदिका तीर्थमाहात्म्य तथा … आदि विदित है उसी प्रकार दाक्षिणात्यमें भी हिन्दू धर्मके विस्तारके साथ साथ … दाक्षिणात्यका … मानते हैं। … और … यहां … हैं। यहां तक कि … भी … द्वारा … हो कर … हैं। इसी

कारण पण्ढरपुरमें सभी समय अनेक तीर्थयात्रियोंका समागम हुआ करता है।

दाक्षिणात्यवासी साधारणतः पण्ढरपुरके विठोबादेव का अधिकतर मान्य करते हैं। उक्त विग्रहमूर्त्ति विष्णुमूर्त्तिका एक भेद है। नगरके मध्यस्थलमें जहां विठोबाका मन्दिर प्रतिष्ठित है उसके निकटस्थ स्थान उत्तरद्वारके नाममें प्रसिद्ध है। यहां आषाढ़ और कार्त्तिकमासमें प्रायः तीस हजारसे ले कर … लाख तक मनुष्य एकत्रित होते हैं। प्रति मासकी शुक्ला एकादशीको यहां प्रायः दस हजार यात्रियोंका समागम होता है।

पण्ढरपुर नगर पहले बौद्धोंका वासस्थान था। हिन्दूधर्मके प्रचार और आधिपत्य विस्तारके साथ साथ पण्ढरपुरका बौद्धाधिकार लोप हो गया है। सम्भवतः विठोबाकी प्रतिमूर्त्ति देखनेसे ही बुद्धकी मूर्त्ति सी मालूम पड़ती है। पण्ढरपुरके पास भी ७५ घर जैन वास करते हैं। उनका मत है कि विठोबा नेमिनाथ एक तीर्थङ्कर हैं। उन ७५ घरोंमेंसे ८ घरकी उपाधि '[illegible]' है। ये लोग देवमन्दिरके सामने … और नाच करते हैं। यहांके 'बड़वे' नामक महापुरुषगण ब्राह्मण … हैं। ये लोग यात्रियोंको साथ करके देवमूर्त्ति दिखाते और उनसे दिए हुए उपहारादि ग्रहण करते हैं। प्रसिद्ध विष्णुभक्त तुकाराम पण्ढरिविठोबाको अपना … मानते थे। … तथा उनके गुरु ज्ञानदेवने अपना जीवनलीला यहीं पर शेष किया था।

तुकाराम और ज्ञानदेव देखो।

१६५८ ई० में बीजापुरके सेनापति अफजल खाँने यहां छावनी डाली थी। १७७४ ई०में पेशवा रघुनाथ राव और … सेनाका युद्ध हुआ। उसी साल नाना फड़नवीस और हरिपन्थ फड़के नारायणरावकी विधवा पत्नी गङ्गाबाईको यहां … करके राजकार्यकी पर्यालोचना करते थे। नाना फड़नवीस देखो।

१८१५ ई०में पेशवा बाजीरावकी प्ररोचनासे गङ्गाधर शास्त्री विठोबा मन्दिरके सामने … मार डाले गए थे। १८१७ ई०में यहां अङ्गरेजोंके साथ पेशवाका एक युद्ध हुआ था।

१८४७ ई०में दस्युसरदार रघुजी अङ्ग्रिया जनरल गेलसे पकड़े गये और पण्ढरपुर भेज दिये गये। इसके बाद प्रायः १० वर्ष तक उन्होंने धनागार आदि लूटा। १८७८ ई०में वासुदेव बलवन्त फड़के नामक कोई विख्यात दस्युसरदार पण्ढरपुर जाते समय अङ्गरेजोंके पञ्जे में पड़ गये थे। यहांसे प्रतिवर्ष 'बूका' नामक गन्धद्रव्य, उरद, धूप, कुसुमफूलके तेल, कुङ्कुम, मद्य आदि द्रव्योंकी नाना स्थानोंमें रफ्तनी होती है।

पण्य (सं० त्रि०) पण्यते इति पण य, निपातनात् साधुः (अवद्यपण्य-वर्य्यागर्येति। पा ३।१।१३१) १ पणितव्य, बेचने योग्य। २ खरीदने योग्य। ३ व्यवहार्य, व्यवहार करने योग्य। ४ स्तोतव्य, प्रशंसा करने योग्य। (पु०) सौदा, माल ५ व्यापार, व्यवसाय। ६ हट्ट, हाट बाजार। ७ दूकान।

पण्यता (सं० स्त्री०) पण्यस्य भावः पण्य-तल-टाप्। पण्यका भाव पणविषयता।

पण्यदासी (सं० स्त्री०) धन ले कर सेवा करनेवाली स्त्री, लौंडी, मजदूरनी, बांदी।

पण्यपति (सं० पु०) पण्येन लब्धः यः पतिः। १ भारी व्यापारी, बहुत बड़ा रोजगारी। २ बहुत बड़ा साहूकार, नगरसेठ।

पण्यपरिणीता (सं० स्त्री०) १ मूल्य दे कर विवाहिता स्त्री। २ राजाओंके भोगविलासके लिये रक्षिता स्त्रीविशेष।

पण्यफल (सं० पु०) व्यापारमें प्राप्त लाभ मुनाफा, नफा।

पण्यभूमि (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां माल या सौदा जमा किया जाता हो, कोठी, गोदाम, गोला।

पण्यमूल्य (सं० क्ली०) वह मूल्य जिसने पण्यद्रव्य खरीदना होता है।

पण्ययोषित् (सं० स्त्री०) पण्यस्त्री, कुलटा, वेश्या, रंडी।

पण्यविक्रयशाला (सं० स्त्री०) पण्यका विक्रयगृह, दूकान।

पण्यविक्रयिन् (सं० पु०) वणिक्, सौदागर।

पण्यविलासिनी (सं० स्त्री०) पण्यस्त्री, वेश्या, रंडी।

पण्यवीथिका (सं० स्त्री०) पण्यानां विक्रयस्थानः वीथिका गृहं। क्रय-विक्रयका स्थान, बाजार, हाट।

पण्यवीथी (सं० स्त्री०) पण्यानां वीथी विक्रयगृहं। क्रयविक्रय स्थान, हाट बाजार।

पण्यशाला (सं० स्त्री० पण्यानां विक्रयस्य शाला शाला। विक्रयगृह, दूकान।

पण्यस्त्री (सं० स्त्री०) पण्यः मूल्येन लभ्या या स्त्री, या पण्ये इतिस्थले स्थिता स्त्री। वेश्या, रंडी।

पण्या (सं० स्त्री०) मालकंगनी।

पण्याङ्गना (सं० स्त्री०) वेश्या रंडी।

पण्याजीव (सं० पु०) पण्यैः, क्रयविक्रयद्रव्यैराजीवति प्राणिति या जीव-क। क्रयविक्रयिक, वणिक, सौदागर।

पण्याजीवक (सं० क्ली०) पण्यैः क्रयविक्रयद्रव्यैराजीवति तिष्ठतीति, पण्याजीवस्तत, स्वार्थे कन् अभिधानात् क्लीवत्वं या पण्याजीवैः वणिग्भिः कायति शब्दायते कै-क। हट्ट हाट, बाजार।

पणयान्धा (सं० पु०-स्त्री०) पणय अन्धयति स्वगुणेन या अन्ध अच् टाप। तृणविशेष कंगनी नामका धान। पर्याय—कङ्गुनीपत्रा, पणान्धा, पणाधा। गुण—मधुरार्थ तिक्त, क्षार, मारक।

पण्छन—युक्त प्रदेशके उनाव जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह तहसीलसे सदरसे ५ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां भरराजाओंका बनाया हुआ एक दुर्ग था जिसका अभी सिर्फ भग्नावशेष देखनेमें आता है। उक्त दुर्गके शिखर पर अचलेश्वर महादेवको लिङ्गमूर्त्ति प्रतिष्ठित है। यहांकी फकीर महम्मदशाहकी दरगाह जनसाधारणमें प्रसिद्ध है।

पतंखा (हिं० पु०) एक प्रकारका बगला जिसे पतोखा भी कहते हैं।

पतंग (हिं० पु०) १ पतङ्ग देखो। २ भारत तथा कटक प्रान्तमें अधिकतासे होनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। ग्रीष्म ऋतुमें अर्थात् वैशाख ज्येष्ठमासमें जमीनको अच्छी तरह जोत कर इसके बीज बो दिये जाते हैं। प्रायः बीस वर्षमें जब इसका पेड़ चालीस फुट ऊंचा होता है तब काट लिया जाता है। इसकी लकड़ीको छोटे छोटे टुकड़ोंमें काट कर प्रायः दो पहर तक

पानीमें उबालते हैं जिससे एक प्रकारका बहुत बढ़िया लाल रंग निकलता है। पहले यह रंग बहुत बिकता था और अधिक परिमाणमें भारतवर्षसे विदेशोंमें भेजा जाता था। परन्तु जबसे विलायती नकली रंग तैयार होने लगा तबसे इसकी मांग घट गई है। आज कल कई प्रकारके विलायती लाल रंग भी 'पतंग'के नामसे ही बिकते हैं। कुछ लोग इसे 'लालचन्दन' भी समझते हैं परन्तु यह बात ठीक नहीं है। इसको बक्कम भी कहते हैं। (स्त्री०) ३ हवामें ऊपर उड़ानेका एक खिलौना। यह बांसकी तीलियोंके ढांचे पर एक ओर चौकोना कागज और कभी कभी बारीक कपड़ा मढ़ कर बनाया जाता है, इसका ढांचा दो तीलियोंसे बनाया जाता है। एक बिलकुल सीधी रखी जाती है, पर दूसरीको झुका कर धनुषाकार कर देते हैं। सीधी तीलीका नाम ठड्ढा और धनुषाकारका नाम कमान या कांप है। ठड्ढेका एक सिरा पुछल्ला और दूसरेको मुड्ढा कहते हैं। मुड्ढेपर एक ओर तिकोना कागज मढ़ देते हैं। कमानके दोनों सिरोंको कुम्मे कहते हैं। ठड्ढे पर कागजके दो छोटे चौकोर टुकड़े लगे होते हैं; एक उस स्थान पर जहां ठड्ढा और कमान एक दूसरेको काटते हैं दूसरा मुड्ढेके पास कुछ नीचेकी तरफ। इन्हींमें सूराख करके डोर अर्थात् तागा बांधा जाता है जिसमें चरखी या परेते की डोरीका सिरा बांध कर पतंग उड़ाया जाता है। यद्यपि देखनेमें सब तरहके पतंगोंका आकार बराबर मालूम पड़ता है पर मुड्ढे और कुम्मोंका अन्तर कुम्मे और पुछल्लेके अन्तरसे अधिक होता है। जिन डोरोंसे पतंग उड़ाते हैं वह सन, ताना, रेशम आदि कई प्रकारकी होती है। डोरके जिस विशेष ढांचे पर डोर लपेटी रहती है उसके भी दो भेद हैं—एक चरखी और दूसरा परेता। विस्तारभेदसे पतंग कई प्रकारको होते हैं। बहुत बड़ी पतंगको तुक्कल कहते हैं। बनावटका दोष वायुको प्रबलता आदि कारणोंसे अकसर पतंग वायुमें चक्कर खाने लगती है। इसे रोकनेके लिये पुछल्लेमें कपड़े की एक लम्बी धज्जी बांध देते हैं जिसे पुछल्ला ही कहते हैं। भारतवर्षमें सिर्फ बच्चे खेलनेके लिये पतंग उड़ाते हैं, परन्तु पाश्चात्य देशोंमें इसका कुछ व्यावहारिक उपयोग भी किया जाने लगा है।

पतंगसुरी (हिं० स्त्री०) जिगन, जुगनू आदि।

पतंगबाज (हिं० पु०) १ वह जिसका प्रधान कार्य पतंग उड़ाना हो। २ पतंग उड़ानेका मनोरञ्जन करने वाला पतंगका शौकीन।

पतंगबाजी (हिं० स्त्री०) १ पतंग उड़ानेकी कला। २ पतंग उड़ानेकी क्रिया या भाव, पतंग उड़ाना।

पतंगा (हिं० पु०) १ पतङ्ग, फतिंगा। २ परदार कोई कीड़ा। ३ एक विशेष कीड़ा जो प्रायः धानकी पत्तियों पर रहता है। ४ स्फुलिंग, चिनगारी। ५ दीपककी बत्तीका वह अंश जो जल कर उसमें अलग हो जाता है, फूल, गुल।

पत (सं० त्रि०) पततीति पत-अच्। १ पुष्ट। (पुं०) २ पतनकर्ता।

पत (हिं० स्त्री०) १ लज्जा, शर्म। २ प्रतिष्ठा, इज्जत।

पतई (हिं० स्त्री०) पत्ता, पत्ती।

पतक (सं० पु०) पतनशील व्यक्ति या वस्तु।

पतगुन्ध (सं० पु०) पक्षिविशेष, कोई चिड़िया।

पतखोवन (हिं० पु०) वह जो प्रायः ऐसे कार्य करता फिरे जिनसे अपनी या दूसरेकी बेइज्जती हो।

पतग (सं० पु०) पत-गम्यतिना सन् गच्छति वा पतेन गच्छति वा। पत-ग-ड। १ पक्षी, चिड़िया। (त्रि०) २ गतिमान्। ३ पक्षिविशेष।

पतङ्ग (सं० पु०) पतन् गच्छतीति पत-गम-खच्। (पतं ... ३।२।३८) १ पक्षी, चिड़िया। २ सूर्य। ३ उड़नेवाले कीटमात्र, फतिंगा। इसका शरीर खण्डयुक्त होनेके कारण इसको खण्डितशरीर जीवमें गिना जाता है। इनके छह पैर और पांच भागोंमें विभक्त है—१ कर्कटक (Crustacea) २ अष्टपाद (Arachnida), ३ शतपदिक या शतपादिक (Myriapoda) ४ पतङ्गवर्ग (Insecta) और ५ कृमिक (Vermes)। ये सभी जीव कीटजातिके अन्तर्गत हैं। इनकी उत्पत्ति और पतनको परिपुष्टि एक ही प्रकारकी है। प्राकृतिक भेद और

अवस्थामें परिवर्त्तन से इनके नामोंमें विभिन्नता देखी जाती है। वृश्चिक, केन्नो आदि कीट बहुग्रन्थिविशिष्ट होने पर भी वे कीटश्रेणीके अन्तर्गत हैं।

विशेष विवरण कीट और पतङ्गशब्दमें देखो।

जिन सब कीड़ोंके तीन ग्रन्थि हैं, वे पतङ्ग कहलाते हैं। पतङ्गके मध्य फिर तीन विभाग देखे जाते हैं, १म, पूर्ण परिवर्त्तक (Metabola) अर्थात् जो जन्मसे ही इसीगा देह परिवर्त्तन करते हैं—जैसे डांस, टंग, मसक, मक्षिका और प्रजापति। २य, ईषत परिवर्त्तक (Hemi-metabola) अर्थात् जो जन्मसे ही बहुत कम देह-परिवर्त्तन करते हैं, जैसे फतिंगा, टिड्डो, वल्मीक। ३य, अपरिवर्त्तक (Ametabola) अर्थात् जो अंडेसे निकलनेके बाद कभी देहावयवको बदलते ही नहीं। जैसे पिपीलिकादि।

मक्खी, मधुमक्खी आदि नाना जातीय छोटे छोटे पक्षयुक्त कीट हैं, ऐसा कि पंखयुक्त पिपीलिकाको भी पतङ्ग कहते हैं। किन्तु साधारणतः पतङ्ग शब्दसे अन्य प्राणीका बोध न हो कर एक मात्र फतिंगेका ही बोध होता है। प्रजापति पतङ्गश्रेणीके अन्तर्भुक्त होने पर भी अभी विशिष्ट अभिधान प्राप्त हुआ है। प्रजापति शब्द देखो।

ग्रीष्मप्रधान देशोंमें अधिक उत्तापके समय पतङ्गका उपद्रव देखा जाता है। इस समय मक्खीकी तरह छोटे छोटे कीड़ोंकी उत्पत्ति अधिक संख्यामें देखी जाती है। ये कीड़े मनुष्यको विरक्त किया करते हैं।

हेमन्तकालमें गङ्गा फतिंगेकी तरह 'श्यामा कीड़ा' नामक एक जातिका छोटा पतङ्ग उत्पन्न होता है। ये रातको आ कर प्रदीपों पर गिर पड़ते और अपने प्राण गंवाते हैं। अफ्रिकादेशमें एक प्रकारका पतङ्ग (Tsetse-fly) पाया जाता है जिसके डंसनेसे गाय, घोड़े, भैंस आदि मर जाती हैं। Quassia Sima ruba नामक एक प्रकारके तिक्त वृक्षपत्रके साथ चीनी पीस कर उसे बरतनमें रख देनेसे पतङ्गादि आ कर उसमें गिर पड़ते और नष्ट हो जाते हैं। इटली देशमें Erigreon viscosum नामक एक प्रकारका छोटा गुल्म पाया जाता है जिसे इटलीके लोग दूधमें डुबो कर घरमें लटका देते हैं। पतङ्गगण उड़ कर उस पात्र पर बैठनेसे मर जाते हैं। साधारणतः वे वृक्षादिकी पत्तियां खा कर जीवनधारण करते हैं। कहीं कहीं इन्हें सड़ा हुआ मांस खानेको दिया जाता है। उधर चीन, ब्रह्म आदि देशवासिगण पतङ्गको रांध कर खाते हैं। मादा कहीं वृक्षपत्र पर, कहीं मट्टीके नीचे अंडे देती है, प्रसवके बाद गर्भिणी मर जाती है। पीछे जगदीश्वरकी कृपासे सूर्यके उत्ताप द्वारा वह अंडा फुट जाता और बच्चा बाहर निकल आता है।

४ शलभ, टिड्डी। ५ शालिप्रभेद, एक प्रकारका धान, जड़हन। ६ मन। ७ पारद, पारा। ८ चन्दन-भेद, एक प्रकारका चन्दन। ९ शर, वाण। १० अग्नि, आग। ११ अश्व, घोड़ा। १२ मक्षिकादि, मक्खी। १३ कोई उड़नेवाला कीड़ा जो आग देखनेसे ही पहुंच जाता है। १४ पिशाच। १५ कृष्णका एक नाम। १६ प्रजापतिके पुत्रका नाम। १७ पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम। १८ ग्रामका नाम। १९ प्लक्षद्वीपवासी जातिभेद। २० तार्क्ष्यकी स्त्रीका नाम। २१ नौका, नाव। २२ शरीर, देह। २३ जलमधुक वृक्ष, जल महुआ। २४ जैनोंके एक देवता जो वाणव्यन्तर नामक देवगणके अन्तर्गत है। २५ एक गन्धर्वका नाम। २६ चिनगारी।

पतङ्गकवच—ह्रद, बिल, पुष्करिणी आदिमें मिलनेवाला एक प्रकारका कीट। इसकी साधारण आकृति पतङ्गकी जैसी होती और देह पतङ्गके कवचकी तरह दृढ़ कवचसे आवृत रहती है। अंगरेजीमें इसे Entromostraca कहते हैं। त्रिदलक (Trilobites), कालिगस (Calegus) आदि जलजकीट इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

पतङ्गम (सं० पु० स्त्री०) पतन उत्प्लवन् सन् गच्छति गम खच्, मुमश्च। १ पक्षी, चिड़िया, पखेरू। स्त्रियां जातित्वात् ङीष्। २ शलभ, टिड्डी।

पतङ्गर (सं० पु०) पतङ्ग पतनेन उत्प्लवनेन गमनं अस्त्यर्थे क। उत्प्लवन द्वारा गतियुक्त।

पतङ्गवृत्त (सं० त्रि०) पतङ्गस्य वृत्तं इव वृत्तं यस्य। १ पतङ्गकी तरह आचारविशिष्ट। (क्ली०) २ पतङ्गका आचरण।

पतङ्गा (सं॰ स्त्री॰) १ बाण, घोड़ा। २ नदीविशेष, एक नदीका नाम।

पतङ्गिका (सं॰ स्त्री॰) पतङ्ग अल्पार्थे स्वार्थे वा कन्, स्त्रियां टाप्, अत इत्वं। मधुमक्षिकाविशेष, मधु मक्खीका एक भेद। इसका पर्याय पुत्तिका है।

पतङ्गिन् (सं॰ पु॰) पतङ्ग उत्प्लवनेन गमनमस्त्यस्य इनि। खग, पक्षी चिड़िया, पखेरू।

पतङ्गेन्द्र (सं॰ पु॰) पक्षिराज गरुड़।

पतखोली (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका पौधा।

पतझड़ (हिं॰ स्त्री॰) १ वह ऋतु जिसमें पेड़ोंकी पत्तियां झड़ जाती हैं, शिशिर ऋतु, माघ और फाल्गुन मास। इस ऋतुमें वायु प्रबल रूखी और सरदीली हो जाती है। इस कारण पदार्थोंके रस और स्निग्धताका शोषण होता है और वे अत्यन्त रूखे हो जाते हैं। वृक्षोंकी पत्तियां इसी कारण सूख कर झड़ जाती हैं और वे ठूंठे हो जाते हैं। चांदका सौन्दर्य और शोभा इस ऋतुमें बहुत बढ़ जाती है तथा वे अमलीन हो जाती हैं। वैद्यकके अनुसार इस ऋतुमें कफका सञ्चय होता है और पाचकाग्नि प्रबल रहती है। इस समय स्निग्ध और भारी आहार लाभदायक होता है। संस्कृतके मतसे माघ और फाल्गुन ही पतझड़के महीने हैं, पर अन्य अनेक वैद्यक ग्रन्थोंमें पूस और माघको पतझड़ माना है। लेकिन यथार्थमें माघ और फाल्गुन ही पतझड़ माने गये हैं। २ अवनतिकाल, खराबी और तबाहीका समय।

पतझर (हिं॰ स्त्री॰) पतझड़ देखो।

पतञ्चल (सं॰ पु॰) गोत्र प्रवर्त्तक ऋषिभेद। इनका दूसरा नाम काप्य भी है। शतपथ ब्राह्मणमें इनका उल्लेख आया है।

पतञ्जिका (सं॰ स्त्री॰) पतं अभिमतं ग्राम्यं जिज्ञपति पीडयति स्वारोपित शरैरिति, पृषोदरादित्वात् साधुः। धनुर्ज्या, धनुषकी डोरी कमानकी तांत चिल्ला।

पतञ्जलि (सं॰ पु॰) पतन् अञ्जलिर्यस्मात् यस्मिन्, शकन्ध्वादित्वात् साधुः। १ योगशास्त्रप्रणेता मुनिभेद पातञ्जलदर्शनकर्त्ता। पातञ्जलदर्शन देखो।

२ पाणिनिके महाभाष्यप्रणेता।

महाभाष्य पतञ्जलिकी असाधारण कीर्त्ति है। केवल संस्कृत ही नहीं संसारकी किसी भी भाषामें ऐसा विचारमूलक सुविस्तृत व्याकरण अन्य दिखाई नहीं पाता। किस समय और किस उद्देश्यसे यह महाभाष्य रचा गया, यह भी कह बहुत दिनोंसे पाश्चात्य और देशीय संस्कृतविदोंके मध्य वादानुवाद चला आ रहा है। किसीके मतसे पतञ्जलिका महाभाष्य १ली शताब्दीमें, किसीके मतसे ५वीं शताब्दीमें और फिर किसीके मतसे २री शताब्दीमें रचा गया।

अब किसका मत समीचीन है, सो देखना चाहिये। कोई कहते हैं, कि पाणिनिका मत निरास कर निजमत स्थापन करनेके लिये कात्यायनने वार्त्तिककी रचना की और पाणिनिको वार्त्तिककारके आक्रमणसे बचानेके लिये तथा कात्यायनके विरुद्ध व्याकरणज्ञान और पाणिनीय मतका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही पतञ्जलिने महाभाष्य बनाया,—डाक्टर गोल्डष्टुकर आदि इस मतका बहुत कुछ प्रचार किया है।

किन्तु महाभाष्य केवल वार्त्तिककी समालोचनाके जैसा प्रतीत नहीं होता। वार्त्तिक पाणिनिसूत्रका परिशिष्ट और वृत्तिस्वरूप है। पाणिनिका जो मत कात्यायनके समयमें आर्ष या तत्कालप्रचलित व्याकरणके विरुद्ध हुआ था, कात्यायनने तत्कालीन भाषाको उपयोगी करनेके लिये उस उस स्थानकी समालोचना की है। पतञ्जलिने फिर पाणिनिसूत्र और कात्यायनके वार्त्तिकको विस्तृतभावसे समझानेके लिये ही महाभाष्यकी रचना की है। वार्त्तिक और महाभाष्यका उद्देश्य एक सा है। दोनोंका ही उद्देश्य सामयिक भाषाके साथ सामञ्जस्य करके पाणिनिके मतका प्रकाश करना है। प्रचलित संस्कृत भाषाका अनुगत करनेके लिये ही पतञ्जलि कहीं कहीं कात्यायनके मतकी समालोचना और अपना मत प्रकाशित करनेमें बाध्य हुए हैं। इसीसे जहां जहां भूल या वार्त्तिकमें अभाव है, वहीं वहीं पतञ्जलिने पूरा करनेकी चेष्टा की है। मानो जिसमें संस्कृत भाषाकी प्रकृति क्या है जिस वैज्ञानिक उपादानसे संस्कृत भाषा गठित हुई है, उसका प्रदर्शन करनेमें ही पतञ्जलिका भाष्य इतना विस्तृत हो गया

है। इस महाभाष्यमें यदि प्रविष्ट होना चाहें, तो संस्कृतशास्त्रमें पतञ्जलिका होना प्रयोजन है। इसीसे इस महाग्रन्थका दूसरा नाम फणिभाष्य वा महाभाष्य पड़ा है। महाभाष्यमें भारद्वाजीय, सौनाग, कुणरवाड़व, वाड़व, सौर्य्यभगवत्, वार्त्तिककार व्याघ्रभूति और श्लोकवार्त्तिककार कात्यायन आदि वैयाकरणों का उल्लेख है। सुतरां उक्त वैयाकरणगण पतञ्जलिके पूर्ववर्त्ती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

महाभाष्यसे पतञ्जलिका अति सामान्य परिचय पाया जाता है। (प्रथमाध्यायके ३य पादके ३य आह्निकमें) उन्होंने गोणिकापुत्र और (प्रथम अध्यायके प्रथमपादके ४र्थ आह्निकमें) गोनर्दीय नामसे अपना परिचय दिया है। हेमचन्द्रको अभिधान-चिन्तामणि और त्रिकाण्डशेष अभिधानमें पतञ्जलिका दूसरा नाम गोनर्दीय और 'चूर्णिकृत्' लिखा है। शब्दरत्नावलीमें पतञ्जलिका दूसरा नाम है 'वररुचि'। किन्तु इस नामके ऊपर कोई आस्थावान् नहीं है। कारण कात्यायनका भी दूसरा नाम वररुचि है, किन्तु पतञ्जलिका दूसरा नाम जो वररुचि है उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। काशिका-(१।१।७५)-में पूर्वदेशव्यापी उदाहरणस्वरूप 'गोनर्दीय' शब्द व्यवहृत हुआ है। पुराणमें भी भारतको पूर्वविभाग-वर्णनामें गोनर्द देशका उल्लेख मिलता है।

डाक्टर भण्डारकरका कहना है, कि अयोध्या प्रदेशके मध्य जो गोण्डा जिला है और उस जिलेके मध्य इसी नामका जो एक नगर है, वही प्राचीन गोनर्द है। यहीं पर भाष्यकार पतञ्जलिका जन्म हुआ था।

महाभाष्यमें एक जगह लिखा है कि 'पुष्यमित्रने यज्ञ किया। याजकोंने उनका याजन किया।' इसके सिवा और भी दो एक जगह पुष्यमित्रके नाम और पुष्यमित्रकी सभाका उल्लेख है। इससे पुराविद्गण अनुमान करते हैं, कि पतञ्जलि पुष्यमित्रकी यज्ञसभामें उपस्थित थे। विष्णु, मत्स्य आदि पुराणोंसे जाना जाता है, कि मौर्यवंशीय शेष राजा वृहद्रथको मार कर उनके सेनापति (शुङ्गवंशीय) पुष्यमित्रने पाटलिपुत्रके सिंहासन पर अधिकार जमाया था। महाभाष्यमें भी लिखा है, 'मौर्य्योंने हिरण्यके लोभसे देवपूजा प्रकल्पित की है।'

फिर एक दूसरी जगह लङ् उदाहरणके स्वरूप पतञ्जलिने लिखा है, 'यवनने साकेत (अयोध्या) पर आक्रमण किया है। उन्होंने माध्यमिकों पर भी आक्रमण किया है।' इस पर डाक्टर गोल्डष्टकर और भण्डारकर कहते हैं, कि जिस समय ग्रीक यवनोंने अयोध्या प्रदेश पर चढ़ाई की थी, उस समय पतञ्जलि विद्यमान थे। ग्रीक ऐतिहासिक ष्ट्राबोने लिखा है,—'मिनान्द्रस' (Menandros) ने यमुना तक आक्रमण किया था। पालिग्रन्थमें ये ग्रीकराज मिलिन्द नामसे प्रसिद्ध थे और पञ्जनदके अन्तर्गत शाकल नामक स्थानमें इनकी राजधानी थी। पुराविदोंने अभी स्थिर किया है, 'पुष्यमित्रके समकालमें ही मिलिन्द राज्य करते थे। पतञ्जलिने इस मिलिन्दके अयोध्याक्रमणकी कथाका उल्लेख किया है।'

भर्त्तृहरिने वाक्यपदीय नामक ग्रन्थमें लिखा है, 'संक्षेप या सम्यक् भावसे नवाविद्याप्रिय अल्प वैयाकरणोंको महायत्नसे तथा 'संग्रह' लाभ करके उस तीर्थदर्शी गुरु पतञ्जलिने समस्त न्यायवीजको महाभाष्यमें निबद्ध किया था। किन्तु जो शास्त्र गभीरताप्रयुक्त अगाध है और जिनकी बुद्धि परिपक्क नहीं हुई है, ऐसे मनुष्य केवल ऊपर ही ऊपर बह चलेंगे, ऐसा निश्चय कर शुष्कतर्कानुसारी, संग्रहप्रियवैजि, सौभर और हर्यक्षने उस आर्ष (महाभाष्य) ग्रन्थको खण्ड खण्ड कर डाला था। उस समय उनके शिष्योंसे प्राप्त पतञ्जलिप्रणीत उस आगमका एक ग्रन्थ केवल दाक्षिणात्योंके मध्य था। पीछे भाष्यानुरागियोंने पर्वतसे उस आगमको पाया और फिर चन्द्राचार्यादिने उस आगमको ले कर अनेक खण्डोंमें विभक्त कर डाला। पीछे प्रसिद्ध न्यायशास्त्रवित् स्वदर्शनज्ञ हमारे गुरुने इस आगमका संग्रह प्रणयन किया।'

राजतरङ्गिणीमें भी लिखा है कि अभिमन्यु जब काश्मीरके सिंहासन पर बैठे, उस समय चन्द्राचार्य आदिने भिन्न देशोंसे आगम ला गुरु-मुखसे विद्यालाभ कर महाभाष्यका प्रचार किया था।

अभिमन्युके समयमें महाभाष्य प्रचारित होने पर भी फिर कुछ समय बाद महाभाष्यका पठन पाठन बन्द हो गया। कारण राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि [illegible]

पतञ्जलिके भाष्यका राज जयादित्यने विच्छिन्न महाभाष्य का उद्धार कर फिर अपने राज्यमें उसका प्रचार किया।

जो कुछ हो, अब यह अमूल्य महाग्रन्थ विलुप्त न होगा। मुद्रायन्त्रके प्रभावसे बम्बई और काशीधाममें कैयटकी 'भाष्यप्रदीप' नामक टीका समेत यह महाभाष्य मुद्रित हुआ है।

कैयट छोड़ कर शेष नारायण सुधि ... रामचन्द्र, ... शिवरामेन्द्र, सरस्वती सदाशिव प्रभृति रचित कुछ टीकाएं पाई गई हैं। कैयटके भाष्यप्रदीप के ऊपर भी अन्नम्भट्ट, ... ईश्वरानन्द, नागेश नारायण, नीलकण्ठ दीक्षित, प्रवर्त्तकोपाध्याय, राम चन्द्र सरस्वती और हरिराम आदि कुछ व्यक्तियोंने टिप्पणीकी रचना की है। नागेशके महाभाष्यप्रदीपो द्योतके ऊपर, फिर वैद्यनाथ गायगुण्डेने 'छाया' नाम की एक सुन्दर वृत्ति लिखी है।

पतत् (सं० त्रि०) पत-शतृ, बाहुलकात् अति वा। १ पतनकर्त्ता नीचेकी ओर जाने या गिरनेवाला। २ उड़ता हुआ। (पु०) ३ पक्षी, चिड़िया।

पतत्पतङ्ग (सं० पु०) डूबता हुआ सूर्य।

पतत्प्रकर्ष (सं० पु०) काव्यमें एक प्रकारका रसदोष।

पतत्र (सं० क्ली०) पत-अत्रन्। १ वाहन, सवारी। २ पक्ष, पंख, डैना।

पतत्रि (सं० पु०) पतति उत्पतति पत-अत्रिन् (अदेः त्रिन् च उण् ४।६८) पक्षी, चिड़िया, परिन्द।

पतत्रिकेतन (सं० पु०) पतत्री केतनं यस्य। गरुड़ध्वज विष्णु।

पतत्रिन् (सं० पु०) पतत्र अस्त्यर्थे इनि। पक्षी, चिड़िया।

पतत्रिराज (सं० पु०) पतत्रिणां राजा, टच् समासान्तः। पक्षिराज, गरुड़।

पतद्ग्रह (सं० पु०) पतत् मुखादिभ्यः स्खलत् यत्रादि गृह्यतेऽनेन पतत् ग्रह-अप्। १ प्रतिग्राह, पीकदान। २ वह बरतन जिसमें भिखारी भिक्षान्न लेते हैं, भिक्षा पात्र।

पतद्भीरु (सं० पु०) पतत् पक्षी भीरुर्यस्मात्। श्येन पक्षी, बाज नामक पक्षी।

पतन (सं० क्ली०) पत भावे ल्युट्। १ गिरने या नीचे आनेकी क्रिया या भाव, गिरना। २ नीचे जाने या धंसने या बैठनेकी क्रिया या भाव। ३ अवनति, अधोगति, ह्रास, जवाल। ४ नाश, मृत्यु। ५ पाप करनेसे ही पतन हुआ करता है, इसीसे पतन शब्दसे पापका बोध होता है। जो सब कार्य शास्त्रमें निर्दिष्ट हैं उनका नहीं करना तथा निन्दित कार्य करना और यथाशास्त्र इन्द्रिय-संयम नहीं करना, इन्हीं सब कारणोंसे पतन हुआ करता है। कारण इनमेंसे कार्य उत्पन्न होता है। विहित कार्यका अनुष्ठान आदि कारण रहनेसे कार्यका जो पतन होता है उसे कोई नहीं रोक सकता। ६ जातिच्युत। ७ उड़नेकी क्रिया या भाव, उड़ान, उड़ना। ८ किसी नक्षत्रका अक्षांश। (त्रि०) ९ गिरता हुआ या गिरनेवाला। १० उड़ता हुआ या उड़नेवाला।

नीचाभिगमन मद्यपान स्वामिद्वेष करनेवाली स्त्रीका अवश्य पतन होता है।

पतनशील (सं० त्रि०) जिसका पतन निश्चित हो, जो बिना गिरे न रह सके।

पतना (हिं० पु०) नौकाका तट भाग, नौकाका किनारा।

पतनारा (हिं० पु०) परनाला, नाबदान मोरी।

पतनीय (सं० त्रि०) पत अनीयर्। १ जिसका गिरना अथवा अधोगत होना सम्भव हो पतित होनेवाला गिरनेवाला। (क्ली०) २ वह पाप जिसके करनेसे जाति से च्युत होना पड़े पतित करनेवाला पाप।

पतनोन्मुख (सं० त्रि०) जो गिरनेकी ओर प्रवृत्त हो, जिसका पतन अधोगति या विनाश निकट आता जाता हो।

पतन्तक (सं० क्ली०) धान्यविशेष धानभेद।

पतपानी (हिं० पु०) १ प्रतिष्ठा, मान, इज्जत। २ लाज शरम।

पतम (सं० पु०) पतति अस्मात् ... पत अम। १ चन्द्रमा। २ पक्षी, चिड़िया। ३ पतङ्ग फतिंगा।

पतयालु (सं० त्रि०) पति-आलुच्। पतनशील गिरने वाला। इसका पर्याय पातुक है।

पतयिष्णु (सं० त्रि०) पति बाहुलकात् इष्णुच्, न णि लोप। पतनशील, गिरनेवाला।

पतयिष्णुक (सं॰ वि॰) इतस्ततः पतनशील, जो इधर उधर गिरता हो।

पतर (सं॰ वि॰) पत-बाहुलकात् अरन्। गन्ता, जानेवाला।

पतरा (हिं॰ पु॰) १ वह पत्तल जिसे तंबोली लोग पान रखनेके टोकरे या डलियामें बिछाते हैं। २ सरसोंका साग, सरसोंका पत्ता। (वि॰) ३ पतला देखो।

पतराई (हिं॰ स्त्री॰) सूक्ष्मता, पतलापन।

पतरिंग (हिं॰ पु॰) एक पक्षी जिसका सारा शरीर हरा और चोंच पतली तथा प्रायः दो अंगुल लम्बी होती है। इस प्रकारका पक्षी मकड़ियोंको पकड़ कर खाता है। इसकी गिनती गानेवाले पक्षियोंमें की जाती है।

पतरी (हिं॰ स्त्री॰) पत्तल देखो।

पतरु (सं॰ वि॰) पत बाहुलकात् अरु। पतनशील, गिरनेवाला।

पतला (हिं॰ वि॰) १ कृश, जो मोटा न हो। २ जिसकी देहका घेरा कम हो, जो स्थूल या मोटा न हो। ३ जिसका दल मोटा न हो, झीना, हलका। ४ अधिक तरल, गाढ़ेका उलटा। ५ अशक्त, असमर्थ, कमजोर, हीन।

पतलाई (हिं॰ स्त्री॰) पतलापन, पतला होनेका भाव।

पतलापन (हिं॰ पु॰) पतला होनेका भाव।

पतली (हिं॰ स्त्री॰) द्यूत, जुआ।

पतलून (हिं॰ पु॰) वह पाजामा जिसमें मियानी नहीं लगाई जाती और पायंचा सीधा गिरता है।

पतलो (हिं॰ स्त्री॰) १ सरकण्डा, सरपत। २ सरकण्डेकी पताई, सरपतकी पताई।

पतवर (हिं॰ क्रि॰ वि॰) पंक्तिक्रमसे, बराबर बराबर।

पतवा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका मचान जिस पर बैठ कर शिकार खेलते हैं। यह मचान लकड़ीका बनाया जाता है और चार हाथ ऊँचा तथा उतना ही चौड़ा होता है। लम्बा इतना होता है कि ८ आदमी बैठ कर निशाना मार सकें। इसके चारों ओर पतली पतली लकड़ियोंकी टट्टियां लगी रहती हैं जिनमें निशाना मारनेके लिये एक एक बित्ता ऊँचे और चौड़े सूराख बने रहते हैं। टट्टियोंके ऊपर हरी हरी पत्तियां समेत टहनियां रख दी जाती हैं जिसमें बाघ आदि शिकारियोंको न देख सकें।

पतवार (हिं॰ स्त्री॰) नावका एक विशेष और मुख्य अंग जो पीछेकी ओर होता है। इसीके द्वारा नाव मोड़ी या घुमाई जाती है। प्रायः आधा भाग इसका जलके नीचे और आधा जलके ऊपर रहता है। जो भाग जलके ऊपर रहता है उसमें एक चिपटा डंडा जड़ा रहता है। इस डंडे पर एक मल्लाह बैठा रहता है। पतवारको घुमानेके लिए वह डंडा मुठियेका काम देता है। यह डंडा जिस ओर घुमाया जाता है उसके विपरीत ओर नाव घूम जाती है, कन्हर, पतवाल।

पतवारी (हिं॰ स्त्री॰) १ ऊखका खेत। २ पतवार देखो।

पतवाल (हिं॰ स्त्री॰) पतवार देखो।

पतवास (हिं॰ स्त्री॰) पक्षियोंका अड्डा, चिक्कस।

पतस (सं॰ पु॰) पततीति पत-असच् (अत्यविचमीति। उण् ३।११७) १ पक्षी, चिड़िया। २ चन्द्र, चन्द्रमा। ३ पतङ्ग, फतिंगा।

पतखाड़ा (हिं॰ पु॰) अग्नि, आग।

पता (हिं॰ पु॰) १ किसी वस्तु या व्यक्तिके स्थानका ज्ञान करानेवाली वस्तु, नाम या लक्षण आदि, किसीका स्थान सूचित करनेवाली बात जिससे उसको पा सकें। २ अनुसन्धान, खोज, सुराग, टोह। ३ गूढ़ तत्त्व, रहस्य, भेद। ४ चिट्ठीकी पीठ पर लिखी हुई पतेकी इबारत। ५ अभिज्ञता, जानकारी, खबर।

पताई (हिं॰ स्त्री॰) किसी वृक्ष या पौधेकी वे पत्तियां जो सूख कर झड़ गई हों, झड़ी हुई पत्तियोंका ढेर।

पताकरा (हिं॰ पु॰) बङ्गाल, आसाम और पश्चिमी घाट में होनेवाला एक वृक्ष। इसकी लकड़ी सफेद रंगकी और मजबूत होती है तथा घर बनानेमें इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इसके फल खाये जाते हैं।

पताकांशु (सं॰ पु॰) पताका, झंडा।

पताका (सं॰ स्त्री॰) पत्यते ज्ञायते कस्यचित् भेदोऽनया, पत-आक प्रत्ययेन साधुः (बलाकादयश्च। उण् ४।१४) १ ध्वजा, निशान, झंडा। पर्याय—वैजयन्ती, केतन, ध्वज, पटाका, जयन्ती, वैजयन्तिका, कदली, कन्दूली, केतु, कदलिका, व्योममण्डल, चिह्न। इन सब शब्दोंमें केतन

और अन्त शब्द पताकाके दण्डमें व्यवहृत होते हैं। 'काकातपत्र' शब्दसे वा शोभा प्रकट करनेके लिये पताका का व्यवहार होता है। देवताओंके पूजनमें भी बीच पताका खड़ी करने या चढ़ाते हैं। देवप्रतिष्ठा तत्त्वमें पताकाका विषय जो लिखा है वह इस प्रकार है—

देवता मन्दिरमें जो पताका देनी होगी, उसका परिमाण ७ हाथ १० अङ्गुल विस्तृत और दण्ड १० हाथ होना चाहिए। इन सब पताकाओंको सिन्दूर कर्पूर, कुङ्कुम, कुसुम मेघवर्णिम, पाण्डु और अन्य इन आठ प्रकारके वर्णोंसे पूर्वोक्तिक्रमसे सुशोभित करना चाहिये ऐसी पताका शुभजनक मानी गई है। योगिन्यादिके उद्देशसे जो पताका चढ़ाती होगी वह उनके वर्ण तथा अस्त्रके अनुसार होनी चाहिए। जो सब वस्त्र त्रिकोणाकार होता है, उसे पताका और जो चतुष्कोणाकार होता है उसे ध्वज कहते हैं। २ सौभाग्य। ३ तीर चलानेमें उंगलियोंका एक विशेष न्यास या स्थिति। ४ दश खर्वकी संख्या। ५ पिङ्गलके ८ प्रत्ययोंमेंसे एक। इसके द्वारा किसी निश्चित गुरुलघु वर्णके छन्द अथवा छन्दोंका स्थान जाना जाता है। उद्दिष्टरीत्या प्रस्तार द्वारा यह मालूम हुआ कि ८ मात्राओंके कुल ३४ छन्दभेद होते हैं और मेरु प्रत्यय द्वारा यह भी जाना गया कि इनमेंसे ७ छन्द १ गुरु और ६ लघु वर्णके होंगे। अब यह जानना रहा कि वे सातों छन्द किस किस स्थानके होंगे। पताका की क्रियासे यह मालूम होगा, कि ११वें २१वें २४वें, २८वें ३१वें, ३२वें, ३३वें स्थानमें छन्द १ गुरु और ६ लघुके होंगे। ६ वह डण्डा जिसमें पताका बनाई हुई होती है। ७ नाट्यमें वह स्थल जहां किसी पात्रके चिन्तागत भाव या विषयका समर्थन या पोषण आगन्तुक भावसे हो। जहां एक पात्र एक विषयमें कोई बात सोच रहा हो और दूसरा पात्र आ कर दूसरे सम्बन्धमें कोई बात कहे पर उसकी बातसे प्रथम पात्रके चिन्तागत विषयका मेल या पोषण होता हो, वहां यह स्थल माना जाता है।

पताकाङ्क (सं० पु०) पताकास्थान देखो।

पताकादण्ड (सं० पु०) पताकाका डण्डा, झण्डेका डण्डा।

पताकास्थान (सं० क्ली०) नाट्याङ्गभेद। नाटकके मध्य पताकास्थान सन्निवेशित करना होता है। नाटकमें उत्तमरूपसे स्थानकी विवेचना कर अर्थात् ऐसे स्थानमें पताका सन्निवेशित करनी होगी जहां अर्थका चमत्कारित्व विशेषरूपसे बढ़े। इसका लक्षण इस प्रकार है,—

जब किसी एक अर्थ या विषयको मन चिन्ता की जाती है, तब यदि आगन्तुक भाव द्वारा अतर्कितभावसे आ कर वह अर्थ समर्थित या उपस्थित हो, तो पताका स्थान होता है। इसका एक उदाहरण दिया जाता है— रामचन्द्रजी मन ही मन चिन्ता कर रहे हैं, 'सीताविरह मेरे लिये एकमात्र दुःसह है।' ऐसे समयमें दुर्मुखने आ कर निवेदन किया, 'देव उपस्थित'। यहां पर रामकी इच्छा थी कि सीताविरह न हो। पर दुर्मुखके 'उपस्थित' ऐसा कहनेसे रामको दुःसह सीताविरह उपस्थित हुआ, यही सूचित होता है। अतएव यह स्थान पताकास्थान हुआ। राम, सीताका विरह न हो, इस प्रकारकी चिन्ता कर रहे थे, आगन्तुक भावसे सीताका विरह उपस्थित हुआ, यही सूचित होता है। नाटकमें ऐसे स्थान पर पताकास्थान होता है।

यह पताकास्थान ४ प्रकारका है जिसका लक्षण यथाक्रमसे नीचे दिया जाता है।

१। अतर्कितभावसे परम प्रीतिकारी अर्थसम्पत्ति लाभ हो, वहां प्रथम पताकास्थान होता है।

२। वाक्यके अत्यन्त श्लिष्ट और नाना प्रकार बन्धयुक्त होनेसे द्वितीय पताकास्थान होता है।

३। अव्यक्त कार्यकी सूचना और श्लिष्ट प्रत्युत्तर युक्त होनेसे तृतीय पताकास्थान होता है।

४। द्व्यर्थ एवं श्लिष्ट वचनविन्यास तथा प्रधानान्तरापेक्षी होनेसे चतुर्थ पताकास्थान होता है।

इन सबका उदाहरण विस्तारके भयसे नहीं दिया गया। साहित्यदर्पणके ६ठे परिच्छेदमें इनके उदाहरण दिये गये हैं।

पताकिक (सं० त्रि०) पताकाऽस्त्यस्य व्रीह्यादित्वात् ठन्। १ पताकायुक्त, जिसमें पताका हो। २ पताका धारक, झण्डाबरदार, फौजी झण्डेवाला।

पताकिन् (सं० त्रि०) पताका विद्यतेऽस्य, पताका इनि। १ वैजयन्तिक, पताकाधारी, झण्डी उठानेवाला।

२ रिष्टारिष्टबोधक चक्रविशेष । [illegible] वर्ष तक रिष्ट- की गणना करनी होती है, [illegible] हो, तब तक पताका प्रभृति [illegible] देखनी होती है । [illegible] चक्र बनानेमें पहले ऊर्ध्वभागमें तीन और [illegible] तीन रेखाकी कल्पना करना होता है । [illegible] रेखाओंको काटनेके लिये तिर्यग्भावमें [illegible] को और खींचना होता है । इस प्रकार [illegible] करनेसे पताकाका वेध जाना जायगा । [illegible] के अवस्थान द्वारा रिष्टका [illegible] पताका- चक्रमें ग्रहको सन्स्थापन करनेके ऊर्ध्वभाग [illegible] को मेषराशि मानते हैं । [illegible] रेखाओंको क्रमशः वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला आदि राशिकी कल्पना करते हैं । [illegible] रेखाओं अङ्कस्थापन करना होता है । मीन, कर्कट, तुला, कुम्भ, सिंह, वृश्चिक, मकर, [illegible] और धनमें क्रमशः ४।५। २०।३।८।६।१४।२।१० अङ्क यथाक्रम [illegible] ।

वसुन्धराके मतसे पताकावेध चार प्रकारका है । मेषादि द्वादश राशियोंको जो राशि लग्न होगी, उस राशिको सम्मुख राशि और दक्षिण तथा वामादिक [illegible] राशि उससे विद्ध हुआ करती है । वेध भी [illegible] ग्रह द्वारा होता है और [illegible] राशि [illegible] वर्ष, मास और दिन परिमित [illegible] रिष्ट होगा, यह जाना जा सकता है । यदि [illegible] ग्रहकर्त्तृक विद्ध हो, तो विद्धराशिको अङ्कसंख्या दिन- रूपमें और यदि मध्यग्रहसे विद्ध हो, तो मासरूपमें [illegible] भूत होता है । इस प्रकार [illegible] शुभग्रहके मतानुसार दिनादि परिमित कालमें बालककी मृत्यु होती है ।

यदि लग्नमें पापग्रह रहे अथवा शत्रु [illegible] पाप ग्रहसे दृष्ट हो तो विद्धराशिके परिमित अङ्कको दिन- संख्यामें बालककी अवश्य मृत्यु होती है । इस पताकी वेधमें किस राशिके साथ किस राशिका वेध है वह नीचे कहा जाता है,—धनु और मीनराशिके साथ कर्कट राशिका वेध, सिंहके साथ वृश्चिक और कुम्भराशिका, कन्याके साथ मकर और तुलाका, तुलाके साथ मीन और कन्याका, वृश्चिकके साथ कुम्भ और सिंहराशिका, धनुके साथ मकर और कर्कटका, मकरके साथ धनु और [illegible] कुम्भके साथ सिंह, [illegible] और [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible] मिथुनके साथ मकर, [illegible] और तुला राशिका वेध जानना होगा ।

[illegible] राशिमें मेषादि जो सब अङ्क अभिहित हुए हैं, उन [illegible] और [illegible] द्वारा वेध जाना जाता है । कर्कट राशिका १८, सिंहका १०, कन्याकी [illegible], तुलाका [illegible], वृश्चिकका १०, धनका १८ मकरकी [illegible], कुम्भका १०, मीनका [illegible], मेषका ११, वृषका १० और मिथुनका १८ संख्या निर्दिष्ट है । ज्योतिषशास्त्रके [illegible] पताकिचक्रमें [illegible] और [illegible] रेखा [illegible] [illegible] वेध [illegible] । [illegible] वह सब [illegible] [illegible] । लग्नसे शुभ- [illegible] वेध होने पर [illegible] और पापग्रहमें वेध होने पर [illegible] होता है । नीचे एक चक्र दिया जाता है ।

मिथुन वृष मेष

कर्कट ५ ४ मीन

सिंह ८ ३ कुम्भ

कन्या ३ १४ मकर

तुला वृश्चिक धनु
२० ६ १०

पहले [illegible] ज्ञान [illegible] मेटके [illegible] और यामार्द्धाधिपति स्थिर करना होगा । रविके शेष दो दण्ड, चन्द्रके आदि और शेष दण्ड, मङ्गलके शेष दण्ड, बुध और बृहस्पतिके प्रथम दो दण्ड और शुक्रका प्रथम दण्ड यामार्द्धाधिपतिका शुभदण्ड है । शनिके ४ दण्ड [illegible] भी समय प्रशस्त नहीं ।

पताकिचक्रमें लग्न, सम्मुख, वाम और दक्षिण ये ४ प्रकारके वेध अवधारित हुए हैं । मेषादि द्वादश राशि- के मध्य किस किस राशिके वाम वेध हैं वह नीचे लिखा जाता है । कर्कट, सिंह और कन्या इन तीन राशियों- के वाम वेध नहीं है, केवल दक्षिण, सम्मुख और लग्न वेध है । मकर, कुम्भ और मीन इनके दक्षिण वेध-

भिन्न भन्य तीन वेध हैं। तुला हविक और धनु इनके सम्मुख वेध नहीं है। मध्य तीन प्रकारके वेध हैं। मेष वृष और मिथुन इन तीन राशियोंके वाम दक्षिण सम्मुख और मध्य यही चार प्रकारके वेध होते हैं। इस कुम्भ सिंह और हविक से इनमेंसे वेधस्थान मानने गये हैं तथा इन सब राशियोंके ८।१४।१ यह हैं। इन सब ग्रहोंको परस्पर सम्मुख का ८।११।१।८ १० इन सब ग्रहपरिमित दिन या मास या वर्षमें बालकका पताकि रिष्ट होगा। यदि इनकाधिपति यह पूर्ण बलवान् हो, तो ८।१ इत्यादि दिनके किसी एक दिनमें बालकका विनाश होगा।

किसी किसीके मतानुसार जिस लग्नमें पापग्रहके रहनेसे पताकि-रिष्ट होता है। किन्तु यह रिष्ट प्रायः मारक न हो कर पीड़ादायक है। इस रिष्टका विस्तृत लिखित रूपसे निरूपण करना होता है—

जैसे वृष कुम्भ, सिंह और हविक ये चार राशि इनकी वेधस्थान हैं। इन चार राशियोंमेंसे किसी एक राशिमें यदि कोई पापग्रह रहे तो मतभेदसे पताकि रिष्ट हुआ करता है। मेष वृष और मिथुन ये तीन राशि चार प्रकारको वेधयुक्त हैं। अतएव इनके रिष्टविचारस्थल पर चार प्रकारकी वेधस्थान दृष्टि करके रिष्टका निरूपण करना होता है और जिस जिस राशिके वाम या सम्मुख वेध नहीं है उनका रिष्ट इस प्रकार निरूपण करना होगा। सिंह, कन्या और तुला इन राशियोंके वाम मेष मिथुन मध्य तीन वेध हैं। कर्कट धनु और मीन यही तीन राशि कर्कट राशिके वेधस्थान हैं। इनमेंसे किसी एक राशिमें यदि इनकाधिपति पापग्रह रहे, तो ३।२०।१४।८।१२।१९।१८ परिमित दिन, मास या वर्षमें बालकका रिष्ट स्थिर करना होगा। मकर, कुम्भ और मीन राशियोंके दक्षिण वेध नहीं है तथा तुला हविक और धनु राशिके सम्मुख वेध है। अतएव इनका रिष्ट विचार वेधस्थान ले कर करना होगा। (ज्योतिस्तत्त्व, जातकचन्द्र)

पताकीका विषय संक्षेपमें लिखा गया। इसका विशेष विवरण यदि जानना हो, तो पताकारा ज्योतिस्तत्त्व, रोहिणा, जातकमुक्तावली, ज्योतिःसार भादि ज्योतिर्ग्रन्थ देखो।

वैतुपताकीका विवरण वैतुपताकी शब्दमें लिखा है। वैतुपताको द्वारा वर्षाधिपति यह भादि जाने जाते हैं। वैतुपताको भवनामें एक एक यह एक एक वर्षका अधिपति होता है। जिस वर्षका अधिपति जो यह है उस वर्षमें उसी ग्रहकी दशा होती है।

पताकिनी (स० स्त्री०) १ एक देवी। २ सेना, ध्वजिनी।

"स प्रैषीद् बहवैश्वम्यानवेदृदिन।

रथवांशेरतुल्यरय कुल एव पताकिनी॥" (रघु ७।८२)

पतागत (स० त्रि०) पत यह सुख पत्र निपातनात् साधु। १ पतितग पताकायुक्त जिसमें बहुतसे झंडे हों। (क्ली०) २ वायुसे हुई पताकाका फटफुट शब्द।

पतागी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको माड़।

पतारी (हिं० स्त्री०) उत्तर भारतके प्रभायतोंके किनारे सिमवेदकमा बरसनको जानिका एक झाड़ल। ऋतुके अनुसार यह पत्ते रंग भी बदलते परिवर्तन करता रहता है। लोग इसका शिकार करते हैं।

पताल (हिं० पु०) पताल देखो।

पतालआँवला (हिं० पु०) एक पौधा जो पौधकी काम में आता है। यह बहुत बड़ा नहीं होता। पौधेके नीचे पत्तो छोटी निकलती है और इनी छोडीमें फल लगते हैं। वैद्यकके अनुसार यह कडुवा कसैला, मधुर शीतल वातकारक, प्यास खाँसी रक्तपित्त, कफ पाण्डु रोग क्षत और विषका नाशक तथा कुष्ठप्रदायक है। पर्याय—भूम्यामलकी, शिवा, ताली, वेताम्लको, तामलकी सुगमफला बहुफला, बहुपत्रिका आदि।

पतालकुम्हड़ा (हिं० पु० एक प्रकारका जङ्गली पौधा। इसका बेल विदारकन्दकी तरह जमीन पर फैलती है और शकरकन्द जैसी तरह इसकी जड़में गाँठ फूटती है। ये दोनों परिमाण एक सा नहीं होता, कोई छोटा और कोई बहुत बड़ा होता है। यह दवाके काममें आता है।

पतालदन्ती (हिं० पु०) वह हाथी जिसके दाँतका झुकाव भूमिकी ओर हो। ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है।

पतावर (हिं० पु०) पिहरे सूखे हुए पत्ते।

पतासी (हिं॰ स्त्री॰) बढ़इयोंका एक औजार, छोटी रुखानी।

पति (सं॰ पु॰) पाति रक्षतीति पा-रक्षणे डति। १ मूल। २ गति। ३ पाणिग्रहीता, दूल्हा, शौहर, खाविंद, स्त्री विशेषका विवाहित पुरुष जिसका उस स्त्रीमें स्वत्व रहता हो। संस्कृत पर्याय—धव, प्रिय, भर्त्ता, कान्त, प्राणनाथ, गुरु, हृदयेश, जीवितेश, जामाता, मनोरम, नर्मकील, रमणगुरु स्वामी रमण वर, परिणेता और गृही। विधिपूर्वक जो पाणिग्रहण करता है उसीको पति कहते हैं। पति चार प्रकारका होता है,—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ। इनके लक्षणादि रसमञ्जरीमें लिखे हैं। इन चार प्रकारके लक्षण नायक शब्दमें देखो।

स्त्रियोंके पति ही देवता हैं। सर्वदा अनन्यचित्तसे ही पतिकी सेवा करना उनका एकमात्र धर्म है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें प्रकृतिखण्डके ४३वें अध्यायमें स्त्रियोंके पतिके प्रति व्यवहारका विषय विस्तृत रूपमें लिखा है। पतिव्रता शब्द देखो।

"भार्याया भरणाद्भर्त्ता पालनाच्च पतिः स्मृतः॥"
(भारत १।४१।१८ श्लोक)

४ अधिपति, किसी वस्तुका मालिक। पर्याय—स्वामी, ईश्वर, ईशिता, अधिभू, नायक, नेता, प्रभु, परिवृढ और अधिप।

"ग्रामस्याधिपतिं कुर्यात् दशग्रामपतिं तथा।
विंशतीशं शतेशञ्च सहस्रपतिमेव च॥"
(मनु ७।११५)

५ प्रतिष्ठा, मर्यादा, इज्जत, लज्जा, मान। ६ पाशुपतदर्शनके अनुसार सृष्टि, स्थिति और संहारका वह कारण जिसमें निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति हो तथा ऐश्वर्यसे जिसका नित्य सम्बन्ध हो, शिव या ईश्वर।

पतिआना (हिं॰ क्रि॰) विश्वास करना, मानना।

पतिंवरा (सं॰ स्त्री॰) पतिं वृणोति या सा वृ अच् ततो मुम्, (संज्ञायां भृतॄवृजि। पा ३।२।४६) १ स्वयंवरा। जो स्त्री स्वयं पतिको वरण करती है, उसे पतिंवरा कहते हैं। क्षत्रिय-रमणियां पूर्व समय प्रायः इसी प्रकार विवाह करती थी। दमयन्ती, इन्दुमती प्रभृतिने स्वयं पतिवरण किया था। २ कृष्णजीरक, काला जीरा।

पतिक (हिं॰ पु॰) कार्षापण नामक एक प्राचीन सिक्का।

पतिकामा (सं॰ वि॰) पति-अभिलाषिणी, स्वामीको चाहनेवाली।

पतिघातिनी (सं॰ स्त्री॰) पतिं हन्ति हन-णिनि। १ पतिनाशिनी स्त्री, स्वामीको मारनेवाली औरत। २ पतिनाशक हस्तरेखाविशेष। स्त्रियोंके हाथमें एक प्रकारकी रेखा होती है जिसके रहनेसे उनके पतिका विनाश होता है। कर्कटलग्नमें या कर्कटस्थ चन्द्रमें और मङ्गलके तीसवें अंशमें जिस स्त्रीका जन्म होता है, वही स्त्री पतिघातिनी होती है। (बृहज्जातक) जिस स्त्रीके अङ्गुष्ठमूलसे ले कर एक रेखा कनिष्ठाङ्गुलिमूल तक चली गई हो, जिसकी आंखें लाल, नाकके ऊपर काला तिल हो और जिसका वक्षःस्थल अत्युच्च तथा विस्तृत हो, ऐसी स्त्री पतिघातिनी समझी जाती है।
(रेखा सामुद्रिक)

पतिघ्न (सं॰ वि॰) पतिं हन्ति पति हन-टक्, (लक्षणे जायापत्योष्टक्। पा ३।२।५२) पतिनाशसूचक लक्षणभेद। स्त्रियां ङीप्। पतिघ्नी, स्त्रियोंकी पतिनाशसूचक हस्तरेखा। स्त्री पतिघातिनी होगी या नहीं, विवाहके पहले ही इसकी परीक्षा करनी चाहिए। आश्वलायनगृह्यसूत्रमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—विवाहसे पहले खेत प्रभृति आठ स्थानोंसे मट्टी संग्रह कर उसे अलग अलग आठ भागोंमें रखे। बाद अभिमन्त्र-पूर्वक कुमारीको उनमेंसे एक भाग छूने कहे। यदि वह कुमारी श्मशानकी मिट्टीको छू ले, तो उसे पतिघातिनी समझना होगा।

पतिजिया (हिं॰ स्त्री॰) जीयापोता नामक वृक्ष।

पतित (सं॰ त्रि॰) पतित भ्रष्टो भवति स्वधर्मात् शास्त्रविहितकर्मणः, सदाचारादिभ्यो वा यः, पत-कर्त्तरि क्त। १ चलित, गया हुआ। २ गलित, गिरा हुआ, ऊपरसे नीचे आया हुआ। ३ आचार, नीति या धर्मसे गिरा हुआ नीतिभ्रष्ट, आचारच्युत। ४ जातिच्युत, जातिसे निकाला हुआ जाति या समाजसे खारिज। ५ स्वधर्म त्यक्त, अतिपातकी, नरकगमनसूचक कर्म।

"स्वधर्मं च समुत्सृज्य परधर्मं समाश्रयेत्।
अनापदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्त्तितः॥"

(मार्क० पु०)

जो मनुष्य अनापद्कालमें अर्थात् विपत्तिके उप स्थित नहीं होने पर भी अपना धर्म छोड़ दूसरे धर्मका आश्रय लेता है, पण्डित लोग उसीको पतित कहते हैं।

मत्स्यपुराणमें लिखा है कि जो ब्राह्मण वा क्षत्रियादि चण्डाल स्त्री गमन करते, उनके अन्नको खाता और ज्ञानपूर्वक उनसे मेल जोल करता है, वह पतित और अज्ञानपूर्वक करनेसे उनके समान होता है।

प्रायश्चित्ततत्त्वधृत ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि आग लगानेवाला, विष देनेवाला, पापक, कुबुद्धि और ब्राह्मणसे द्वेष रखनेवाला, अग्नि जल, उद्बन्धन आदिसे मर जानेवाला पतित माना जाता है। पतित व्यक्तिका दाह अन्त्येष्टिक्रिया अशौच, श्राद्ध, यहां तक कि उसके लिए आंसू भी बहाना अकर्त्तव्य है। पतितके संसर्ग, उसके साथ भोजन, शयन वा बातचीत करनेवाला भी पतित होता है।

वराहपुराणमें लिखा है, कि जो पतितके साथ बैठ कर खाते, सोते और बातचीत करते, वे पतित होते हैं। किन्तु पतितव्यक्ति प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो सकता है। वह व्यक्ति जब तक प्रायश्चित्त नहीं कर लेता तब तक उसे किसी धर्मकर्ममें अधिकार नहीं रहता और अन्तमें वह नरकगामी होता है। पतितके संसर्गसे जो पतित होते उनके उद्धारादिका विधान है।

पतितमात्र ही त्याज्य हैं, केवल माताके पतित होने पर उसे त्याग नहीं करना चाहिये।

"पतितं गुरुवस्त्यज्येन्न तु मातां कदाचन।
गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी॥"

(मत्स्यपुराण)

गुरु यदि पतित हों, तो उन्हें परित्याग कर सकते हैं पर माताको कभी भी नहीं। क्योंकि माता गर्भ धारण और पोषण द्वारा सबसे श्रेष्ठ है। मत्स्यपुराणमें लिखा है—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रजातिका स्वर्ग उद्देश्यसे गयामें पिण्ड देनेसे उद्धार हो सकता है। ब्रह्मपुराणमें भी इसका समर्थन किया है। पतितोंके उद्देश्यसे एक वर्षके बाद गयाश्राद्धादिका अनुष्ठान करना होता है।

हेमाद्रि और प्रायश्चित्तविवेक स्मृतिमें लिखा है—एक वर्षके बाद नारायणबलि दे कर पतितका श्राद्धादि हो सकता है। नारायणबलि देखो।

कोई कोई कहते हैं कि प्रायश्चित्त करनेसे पितासे पाप नाश होता पर इसका कोई प्रमाण नहीं है किन्तु शास्त्रकारोंने जगह प्रमाण है कि पुत्रके प्रायश्चित्तसे पिताका पाप नाश होता है।

पतितका उद्धार विषय—हेमाद्रिमें लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति पतितकी प्रति दया दिखला कर उसका सत्कार करना चाहे तो उसे सब लोगोंको बुला कर कुछ धर्म दे कर कहना चाहिये "तुम सूर्य ले कर तिल लाओ और सम्पूर्ण एक मकको ले कर दक्षिण मुँह कर वामचरण द्वारा भूमि छिन्न तथा बारबार पापकी निर्दान और पान करो।" इसपरसे व्यक्ति जो यह बात सुन कर यदि कोई दासी धर्म ले कर ऐसा आचरण करे तो पतितोंको मुक्ति होती है। इस प्रकारका कार्य सतोष किन करना होता है। मदन-रत्नमें लिखा है कि जो पातकी हैं उनके सम्बन्धमें यह विधान कहा गया है। कि किसीका कहना है कि उपपातकमें सभी पतितविषयोंमें यह नियम लागू है। (निर्णयसिन्धु ३ परि०)

पतितका विषय प्रायश्चित्तविवेकमें इस प्रकार लिखा है—ब्रह्महत्या सुरापान गुरुतल्पगामी और नास्तिक और निन्दित कर्माभ्यासी प्रभृति पतित हैं। मातापिताका जिन्होंने महापातक वा अतिपातकका अनुष्ठान किया है, वे भी पतित हैं।

पतित उधारन (हिं० वि०) १ पतितोंकी गति देनेवाला। (पु०) २ सगुण ईश्वर जो पतितोंके उद्धारके लिए अवतार लिया करता है। ३ ईश्वर परमात्मा।

पतितता (सं० स्त्री०) १ पतित होनेका भाव जाति या धर्मसे च्युत होनेका भाव। २ अपवित्रता। ३ अधमता नीचता।

पतितत्व (सं० पु०) पतित होनेका भाव।

पतितपावन (सं० वि०) १ पतितको शुद्ध करनेवाला

पतितको पवित्र करनेवाला। (पु०) २ ईश्वर। ३ सगुण ईश्वर।

पतितवृत्त (सं० त्रि०) पतित दशामें रहनेवाला, जातिच्युत हो कर जीवन बितानेवाला।

पतितव्य (सं० क्लो०) पत-तव्य पतनयोग्य गिरनेवाला।

पतितसावित्रीक (सं० त्रि०) १ सावित्री परिभ्रष्ट, जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो या विधिपूर्वक न हुआ हो। २ प्रथम तीन प्रकारके व्रात्योंमेंसे एक।

पतितस्थित (सं० त्रि०) भूपतित, पृथ्वी पर गिरा हुआ।

पतित्व (सं० क्ली०) पत्युर्भावः त्व। १ स्वामित्व स्वामी, प्रभु या मालिक होनेका भाव। २ पाणिग्राहकता, पाणिग्राहक या पति होनेका भाव।

पतित्वन (सं० क्लो०) यौवन।

पतिदेवता (सं० स्त्री०) पतिरेव देवता यस्याः। पतिव्रता, जिस स्त्रीका आराध्य या उपास्य एकमात्र पति हो।

पतिदेवा (सं० स्त्री०) पतिरेव देवो यस्याः। पतिव्रता स्त्री।

पतिद्विष् (सं० स्त्री०) पत्ये द्वेष्टि द्विष-क्विप्। पतिद्वेषिणी स्त्री, वह स्त्री जो अपने पतिके प्रति द्वेष करती है।

पतिधर्म (सं० पु०) पत्युर्धर्मः। १ स्वामीका धर्म। २ पतिके प्रति स्त्रीका धर्म।

पतिधर्मवती (सं० त्रि०) पति सम्बन्धी कर्त्तव्यका भक्तिपूर्वक पालनकरनेवाली, पतिव्रता।

पतिभुक् (सं० त्रि०) पतिको न चाहनेवाली।

पतियान (सं० त्रि०) स्वामि-पश्चानुवर्ती, पतिका पदानुसरण करनेवाला।

पतियाना (हिं० क्रि०) विश्वास करना, प्रतीत करना, सच मानना।

पतिराम—हिन्दीके एक कवि। सं० १७०१में इनका जन्म हुआ था। इनके बनाए पद्य हजारोंमें पाये जाते हैं।

पतिरिप् (सं० स्त्री०) पतिद्वेषिणी स्त्री, पतिसे द्वेष करनेवाली स्त्री।

पतिलोक (सं० पु०) पतिभोग्यो लोकः स्वर्गादिः, मध्यपदलोपी कर्मधा०। १ पतिके साथ धर्माचरण द्वारा प्राप्य स्वर्गादि लोक पतिव्रता स्त्रीको मिलनेवाला वह स्वर्ग जिसमें उसका पति रहता है। मनुने लिखा है, कि जो स्त्री कायमनोवाक्यमें संयत रह कर पतिको उल्लंघन नहीं करती और नारीधर्ममें अपना जीवन बिताती है, उसे इस लोकमें परमकीर्त्ति और परलोकमें गति होती है। (मनु ५।१६५—१६६) २ पतिके समीप।

पतिवती (हिं० वि०) सौभाग्यवती, सधवा।

पतिवत्नी (सं० स्त्री०) पतिर्विद्यते यस्याः, पति-मतुप् निपातनात् वत्व, नुग् गमश्च, ततो ङीप्। सभर्तृका, सधवा स्त्री।

पतिवेदन (सं० पु०) पतिं वेदयति विद-णिच्-ल्यु। १ पतिप्रापक, महादेव। २ जो पति प्राप्त करावे, पति लाभ करानेवाला।

पतिव्रत (सं० पु०) पतिमें निष्ठापूर्वक अनुराग, पातिव्रत्य।

पतिव्रता (सं० स्त्री०) पतिव्रतमिव धर्माय कार्येषु कायवाङ्मनोभिः सदोपास्योऽस्याः। साध्वी स्त्री, स्वामीके प्रति एकान्त अनुरक्ता स्त्री। पर्याय—सुचरित्रा, सती, साध्वी, एकपत्नी।

पतिव्रता स्त्रीका लक्षण—

आर्त्तार्त्ते मुदिता हृष्टे प्रोषिते मलिना कृशा।
मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्रीज्ञेया पतिव्रता॥"

(शुद्धितत्त्व)

जो स्त्री स्वामीके दुःखसे दुःखी और सुखसे सुखी होती है तथा स्वामीके विदेश चले जाने पर मलिना और कृशा तथा मरने पर अनुमृता होती है, उसीको पतिव्रता जानना चाहिये।

मनुने लिखा है, कि विवाहकालमें जो सम्प्रदान किया जाता है, उसीसे स्त्रीके ऊपर स्वामीका सम्पूर्ण स्वामित्व रहता है। उसी समयसे स्त्रियोंके लिये स्वामी-परतन्त्रता ही एक मात्र विधेय है। पतिव्रता स्त्रीको आजन्म पतिकी आज्ञाका अनुसरण करना चाहिये। कोई ऐसी बात न करनी चाहिये, जो पतिको अप्रिय हो। पति कितना ही दुःशील, दुर्गुण, दुराचार और पातकी क्यों न हो, पतिव्रताको सदा सर्वदा उसे अपना देवता

मानना चाहिये। जो बातें पतिको अप्रिय हों उनको मृत्युके बाद भी वे पतिव्रताके लिये अकर्त्तव्य हैं। पतिकी मृत्युके पश्चात् पतिव्रता स्त्रीको फल मूल आदि खा कर पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये।

जो सब स्त्रियां पातिव्रत्यका उल्लङ्घन कर पर पुरुषादि ग्रहण करती हैं, वे इस लोकमें निन्दिता होती हैं और मरनेके बाद शृगालयोनिमें जन्म लेती हैं तथा नरक तथा पापरोगोंसे आक्रान्त हो कर कष्ट भोगती हैं। (मनु ६ अ०) याज्ञवल्क्यने लिखा है, कि पतिव्रता स्त्रीको सभी कार्योंमें स्वामीकी आज्ञावर्त्तिनी होना चाहिये। पतिके विदेश होनेसे उसको इन सब शृङ्गार हास परिहास, क्रीड़ा, सैर तमाशोंमें वा दूसरेके घर जाना आदि कार्य त्याग देना चाहिये। (याज्ञवल्क्य० १ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें पतिव्रता स्त्रीधर्मका विषय इस प्रकार लिखा है। सती स्त्री प्रति दिन भक्तिभावसे पतिपादोदकका सेवन करे। सम्पूर्ण व्रत पूजा तपस्या और आराधना त्याग कर पतिसेवामें रत रहना ही पतिव्रताके लिये एकमात्र धर्म है। वह पतिको नारायणसे भी श्रेष्ठ समझे। पतिव्रता स्त्री स्वामीके वाक्य पर समान प्रत्युत्तर न करे। स्वामी यदि क्रोधसे आ कर उसे दण्ड भी दे तो भी क्रोध न करे, भूख लगने पर स्वामीको तत्काल भोजन करावे और निद्रा भङ्ग कदापि न करे। पुत्रकी अपेक्षा पतिको सौगुना अधिक प्यार करे। पति उसे सब पापोंसे छुड़ा देता है। पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं वे सब तीर्थ तथा देवताके तेज सतीके पादतलमें अवस्थित हैं। यहां नारायण शिव तथा मुनिगण आदि सतीसे भय खाते हैं। पतिव्रताके पदरेणुसे वसुन्धरा पवित्र होती है। सतीको नमस्कार करनेसे सभी पाप नाश हो जाते हैं।

पतिव्रता स्त्री यदि चाहे तो क्षण भरमें तीनों लोकोंका नाश कर सकती है। सतीके पति और पुत्र सर्वदा निःशङ्क रहते, उन्हें कहीं भी डर नहीं। जो पतिव्रता कन्या प्रसव करती है वे सतीके गुणसे ही सम्मान्य होते हैं तथा कन्याके पिता भी जीवन्मुक्त होते हैं।

पतिव्रता स्त्रीको प्रतिदिन स्वामीका पूजन करना चाहिये जिसका विधान इस प्रकार है—प्रातःकाल उठ कर रात्रिवासका परित्याग करे, पीछे स्वामीको प्रणाम और स्तव करके गृहकार्य कर डाले। तदनन्तर स्नान करके धौतवस्त्र चन्दन और श्वेत पुष्पादि ग्रहण कर अपने पतिको सम्यक्रूपसे स्नान करावे पीछे वस्त्र पहना कर पैर धो दे। बादमें आसन पर बिठा ललाटमें चन्दन गलेमें माला और गात्रमें अनुलेपन आदि दे कर भक्तिपूर्वक पतिको प्रणाम करे।

"ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा" मन्त्रसे पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, चन्दन, नैवेद्य, सुवासित जल और ताम्बूलादि दे कर पूजा करनी होती है। बादमें सती निम्नलिखित स्तवका पाठ करे।

"ॐ नमः कान्ताय भर्त्रे च शिरश्चन्द्रस्वरूपिणे।
नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च॥
नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च।
नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः॥
पञ्चप्राणाधिदेवाय चक्षुषस्तारकाय च।
ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्दरूपिणे॥
पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः।
पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते॥
क्षमस्व भगवन्! दोषं ज्ञानाज्ञानकृतं यत्।
पत्नीबन्धो दयासिन्धो दासीदोषं क्षमस्व च॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यादौ पद्मया कृतम्।
सरस्वत्या च धरया गङ्गया च पुरा व्रज।
सावित्र्या च कृतं पूर्वं ब्रह्मणे चापि नित्यशः।
मुनीनाञ्च सुराणाञ्च पत्नीभिश्च कृतं पुरा॥
पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतत् शुभावहम्।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं या शृणोति पतिव्रता।
नरोऽन्यो वापि नारी वा लभते सर्ववाञ्छितम्॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम्।
रोगी च मुच्यते रोगात् बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥
पतिव्रता च स्तुत्वा च तीर्थस्नानफलं लभेत्।
फलञ्च सर्वतपसां व्रतानाञ्च व्रजेश्वर॥
इदं स्तुत्वा नमस्कृत्य भुङ्क्ते या सा पतिव्रता।
इह पतिव्रतानां गृहिणी शुभदा व्रज॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्मख० ८३ अ०)

और भी दूसरे दूसरे पुराणोंमें अनेक पतिव्रताके नाम

लिये हैं। कुछके नाम इस प्रकार हैं—सूर्यकी स्त्री सुवर्चला, इन्द्रकी शची, वशिष्ठकी अरुन्धती, चन्द्रकी रोहिणी, अगस्त्यकी लोपामुद्रा, च्यवनकी सुकन्या, सत्यवानकी सावित्री, कपिलकी श्रीमती, सौदासकी मदयन्ती, सगरकी केशिनी, नलकी दमयन्ती, रामकी सीता, शिवकी सती, नारायणकी लक्ष्मी, ब्रह्माकी सावित्री, रावणकी मन्दोदरी, अग्निकी स्वाहादेवी, प्रभृति। ये सभी पतिव्रताओंमें अग्रणी हैं।

जितने पुराण हैं सभीमें पातिव्रत्यधर्मका विशेष विवरण लिखा है।

स्त्रियोंका पातिव्रत्य ही दान, यज्ञ, तपस्या आदि सभी कार्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसके साथ किसी यागादिकी तुलना नहीं हो सकती। जो सब स्त्रियां पातिव्रत्यसे स्खलित हैं वे नरकगामी होती हैं और उनकी अधोगतिकी परिसीमा नहीं रहती।

पतिष्ठ (सं॰ त्रि॰) अतिशयेन पतिता इष्ठन् ततस्तृणोलोपः। १ अतिशय पतनशील, गिरनेवाला। २ अतिशय पतिता।

पती (हिं॰ पु॰) पति देखो।

पतीयाली—आगरा विभागके अलीगञ्ज तहसीलके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह इटानगरसे ११ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। गङ्गाके पुरातन गर्भ पर प्राचीन ध्वंसावशेषके ऊपरकी ऊंची जमीन पर यह बसा हुआ है। यहां ग्यासुद्दीन बोरीका बनाया हुआ किला आज भी देखनेमें आता है। प्रवाद है कि यह नगर पहले मन्दिरादिसे परिशोभित था। विजेता ग्यासुद्दीनने उन सब मन्दिरोंको नष्ट भ्रष्ट कर उनके उपकरणोंसे उक्त दुर्गके चतुर्दिक्स्थ प्राचीर बनवाये थे।

पतीर (हिं॰ स्त्री॰) पंक्ति, कतार, पांति।

पतीरी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी चटाई।

पतील (हिं॰ वि॰) पतला देखो।

पतीली (हिं॰ स्त्री॰) तांबे या पीतलकी एक प्रकारकी बटलोई। इसका मुंह और पेट साधारण बटलोईकी अपेक्षा अधिक चौड़ा और दल मोटा होता है, देगची।

पतुरिया (हिं॰ स्त्री॰) १ वेश्या, रंडी, नाचने गानेका व्यवसाय करनेवाली स्त्री। २ व्यभिचारिणी स्त्री, छिनाल औरत।

पतुली (हिं॰ स्त्री॰) कानादिमें पहननेका एक आभूषण, जिसको अवध प्रान्तकी स्त्रियां पहनती हैं।

पतुही (हिं॰ स्त्री॰) मटरकी वह फली जिसके दाने रोग, आधिदैविक बाधा या असमयमें पहले तोड़ लिये जानेके कारण यथेष्ट पुष्ट न हो सके हों, सड़े' मड़े' दानोंवाली छीमी।

पतूख (हिं॰ स्त्री॰) पतोखी देखो।

पतेर (सं॰ पु॰ स्त्री॰) पतति गच्छतीति पत-एरक्। (पतिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्य एरक्। उण् १।५८) १ पक्षी, चिड़िया। २ आढ़क, परिमाण। ३ गर्त्त, गड्ढा। (त्रि॰) ४ गन्ता, जानेवाला।

पतैनीदेवी—मध्याटेशमें उचहरासे ८ मील उत्तर और पिथोरासे ४ मील पूर्व पर्वतके ऊपर अवस्थित एक मन्दिर। यह प्राचीन गुप्तमन्दिरादिके अनुकरणसे वृहत् प्रस्तरखण्ड द्वारा निर्मित और छत समतल एक खण्ड पत्थरसे बनायी गई है। देवीमूर्त्ति ३॥ फुट ऊंची तथा चतुर्हस्तविशिष्ट है। इसके अलावा यहां चामुण्डा, पद्मावती, विजया, सरस्वती प्रभृति पञ्चदेवी तथा वामभागमें अपराजिता, महामनसी, अनन्तमति, गान्धारी, मानस ज्वालामालिनी, मानुसी और दक्षिण भागमें जया, अनन्तमति, वैराता, गौरी, काली, महाकाली तथा बज्रांसकला आदि मूर्त्ति खोदित हैं और उनके नीचे नाम भी हैं।

डा॰ कनिंहमने लिखा है, कि यह मन्दिर निःसन्देह बहुत पुराना है और गुप्त राजाओंके समयका बना हुआ मालूम पड़ता है। अभ्यन्तरस्थ देवी मूर्त्तिके पादटेशमें खोदित जो लिपि है, वह सम्भवतः देवीमूर्त्तिके साथ साथ अथवा परवर्त्ती-समयकी लिखी गई है। पुष्ठपूरिका देवीके प्राचीन मन्दिर और पवित्र तीर्थ घरकी कहानियां जो सब ताम्रशासनमें लिखी हैं, वही प्राचीन पुष्ठपूरिकादेवी मन्दिरके परवर्त्तिकालमें पतैनीदेवीके नामसे जनसाधारणमें परिचित हुई हैं।

पतोई (हिं॰ स्त्री॰) वह फेन जो गुड़ बनाते समय खौलते रसमें उठता है।

पतोखद (हिं० स्त्री०) १ वह औषधि जो किसी वृक्ष पौधे या उसका पत्ता या फूल आदिका हो, घास पातकी दवाई, पत्रविटप। २ चन्द्रमा।

पतोखरी (हिं० स्त्री०) पतोखद देखो।

पतोखा (हिं० पु०) १ दोना, पत्तेका बना पात्र। २ एक प्रकारका बगला जो मझोले आकारमें छोटा और किलकिलासे बड़ा होता है। इसका पर खूब सफेद, चिकना, नरम और चमकीला होता है। टोपियों आदि के बनानेमें प्रायः इसीके पर काममें लाये जाते हैं, पनकुकड़ा।

पतोखी (हिं० स्त्री०) १ पतोखा जैसा छोटा बगला जोखी। २ एक पत्तेका दोना, छोटा दोना।

पतोर (हिं० पु०) पतोल देखो।

पतोल (हिं० स्त्री०) पतोह देखो।

पतोह (हिं० स्त्री०) पुत्रवधू, बेटेकी स्त्री।

पतोरा—अयोध्या प्रदेशके गोरखपुर जिलेका एक ग्राम। यहांसे १ मील उत्तर किस कुसमान नगरके समीप तक एक सुविस्तृत प्राचीन नगरका भग्नावशेष तथा मन्दिरादिका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

पथोरा—१ मध्यभारतके बघेलखण्डका एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २८ १४´ से २८ २२´ उ० और देशा० ७६ ४´ से ७६ ५२ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५२ वर्गमील और जनसंख्या ११८११ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ३० ग्राम लगते हैं। सरदार मुसलमान बना था यहांके सर्दार नवाब हैं। वे अपनेको नवाब कहते हैं। इनके पूर्वपुरुष अहमदखां ने दिल्लीके बादशाहसे विद्रोह किया था जिससे सिन्धियाने १८०९ में उनको इसी भूसम्पत्ति दान दी थी। यहां एक अस्पताल, डाकघर तथा चार प्राथमिक पाठशालाएं हैं। यहांकी कुल आय ७१११२ रु० है।

२ उक्त राज्यका शहर। यह अक्षा० २८ २०´ उ० और देशा० ७६ ४८ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३१०१ है। यह अकबर बादशाहके सिपाहियोंके ठहरनेके काममें बनाया गया है। यहां छोटेके नवाबका निवास स्थान और पासमें एक मस्जिद है।

पत्कर्षिन् (सं० त्रि०) पत्कर्षति तद्रूप अत्र णिन्,

मतः पादस्य पदादेशः। पाद द्वारा गमन, २ मार्ग गमनी बाधा।

पत्त (सं० पु०) पतत्यनेन पतनात्मकत्वात् आर्षे तन्। १ चार पैर, पांव। २ पद देखो।

पत्तङ्ग (सं० क्ली०) पतङ्ग पृषोदरादित्वात् साधुः। १ रक्तचन्दन, पतंग नामक लकड़ी बक्कम (Caesalpinia sappan)। इसे हिन्दीमें पतंग, तैलङ्गमें चोवन्ग और तामिलमें वत्तमो कहते हैं। संस्कृत पर्याय पत्राङ्ग, रक्तकाष्ठ सुरङ्ग, रजत पत्रङ्ग मायाङ्ग रञ्जन, लोहित रक्तकाष्ठ लोहकाष्ठ, कुचन्दन पत्ररञ्जक, रक्त। गुण—कटु, रस, रक्त शीत वातपित्तज्वर, विस्फोट, उन्माद और भूतनाशक है। (पु०) २ भूराज, भीमराज। ३ चित्रराज। ४ शालिधान्यविशेष, एक प्रकारका धान।

पत्तनम् (सं० अव्य०) पद-तसु। पादसे।

पत्तन (सं० क्ली०) पतन्ति गच्छन्ति जना यस्मिन्। पत-तनन् (उणादि० ३।१५०) १ नगर। २ मृदङ्ग।

पत्तन—पाटन देखो।

पत्तनवणिज (सं० पु०) पत्तनस्य नगरस्य वणिक्। नगर वणिक। पर्याय—कथावो।

पत्तना—मद्रास प्रदेशके मालाबार जिलान्तर्गत मदुरा तालुकाका एक प्राचीन नगर जिसे मदुर प्राचीन हिन्दू राजाने प्रतिष्ठित करवाया है।

पत्तनाधिपति (सं० पु०) पत्तनस्य अधिपतिः। राजपद।

पत्तनोमल—बम्बई प्रदेशवासी वणिक जातीय एक श्रेणी के आयल या प्रभोबोधो। बम्बई और गुजरात प्रदेशमें चार प्रकारके जातीयोंको प्रभु दिये जाते हैं, कायस्थ-प्रभु दमनप्रभु, धूतप्रभु और पत्तनप्रभु। इन चार श्रेणियोंमें प्रभु वा कायस्थोंके बीच पत्तनप्रभुगण ही धर्ममें श्रेष्ठ और विशुद्ध क्षत्रियवंशजात समझते हैं।

स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डमें लिखा है कि इनमें से 'शेष क्षत्रिय' नामसे प्रसिद्ध थे। किस प्रकार उनका पत्तनप्रभु नाम पड़ा इस विषयमें सह्याद्रिखण्डमें जो लिखा है वह इस प्रकार है—

"ब्रह्माके अश्वमेधयज्ञ करनेसे भगवानके पुत्र सूर्य, सूर्यके पुत्र वैवस्वतमनु, मनुके पुत्र दिलीप दिलीपके पुत्र रघु रघुके पुत्र अज अजके दशरथ दशरथके राम, रामके

कुश, तत्पुत्र अतिथि, तत्सुत निषध, तत्सुत नभ, तत्पुत्र पुंडरीक, तत्पुत्र चेमधन्वा, तत्पुत्र देवानीक, तत्पुत्र दामो, तत्सुत दल, तत्पुत्र शील, तत्पुत्र उनाभ, तत्पुत्र व्रजनाभ, तत्पुत्र खंडन, तत्सुत पुषित, तत्पुत्र विश्वमम, तत्सुत ब्राह्मख, तत्सुत हिरण्यनाभ, तत्सुत कौशल्य, तत्सुत सोम, तत्पुत्र ब्रह्मिष्ठ, तत्सुत पुष्य, तत्सुत सुदर्शन और सुदर्शनके पुत्र अनिवर्ण हुए। अनिवर्णके एक पुत्र थे जिनका नाम था अश्वपति। पहले राजा अश्वपतिके कोई पुत्र न था। पीछे उन्होंने भरद्वाज आदि बारह ऋषियोंको स्व स्व दक्षिणा दे कर पुत्रेष्टियज्ञ किया जिससे उन्हें अनुज प्रभृति १२ पुत्र हुए। इन १२ पुत्रोंके गोत्र १२ ऋषियोंके नाम पर रखे गए और इन बारह ऋषियोंकी आराध्यशक्ति इन बारह राजपुत्रोंकी कुलदेवी मानी गईं। एक समय राजा अश्वपति पुत्रोंके साथ पैठन नगरमें तीर्थयात्रा करनेको गये। वहां उन्होंने शास्त्र विधिके अनुसार तुलापुरुषादि अनेक सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया। भृगुऋषि राजदर्शनके लिये वहां पहुंचे। किन्तु घटनाक्रमसे मुनिको देख कर अश्वपति न उठे और न पाद्य अर्घ्य द्वारा उनकी पूजा ही की। इस पर ऋषि बड़े बिगड़े और राजाको इस प्रकार शाप दे चले, "तूने राज्यैश्वर्यसे मदोन्मत्त हो कर मेरी अवमानना की है, इस कारण तेरा राज्य और वंशनाश होगा।" राजा अश्वपतिने अपना अपराध समझ कर ऋषिके पैर पकड़े और कातरभावसे कहा, "प्रभो! मैं दानादि कार्यमें अन्यमनस्क था, इसी कारण यह अपराध हुआ है, कृपया क्षमा कीजिये।" राजाके कातर वचन सुन कर मुनिवर संतुष्ट हुए और बोले, "मेरा शाप तो वृथा हो नहीं सकता, तब तुम्हारा वंश रहेगा सही, लेकिन वे राज्यहीन हो कर निःशौर्य होंगे और लिपिकावृत्तिका अवलम्बन करेंगे। इस पैठन पत्तनमें मैंने क्रोधवश शाप दिया है, इस कारण ये प्रसिद्ध पाठारीयगण 'पत्तन' नामसे प्रसिद्ध होंगे और इन पत्तनवंशधरोंकी उपाधिमें 'प्रभु' पदयुक्त रहेगा (१)।" इतना कह कर भृगुमुनि चल दिये।

(१) "त्वं चेच्छरणमापन्नो वंशवृद्धिर्भविष्यति।
स्ववंशजाश्च राजानो निःशौर्या राज्यहीनतः॥
अद्यप्रभृति तेषां वै लिपिकाजीवनं भवेत्।
पैठने पत्तने शप्ता मया कोपवशात् किल॥
पाठारीयाः प्रसिद्धास्ते पत्तनाख्या भवन्तु वः।
प्रभुत्वपदं तेषां पत्तनप्रभवाश्च ये॥"
(सह्याद्रि १।२८।१३-१५)

वर्त्तमान सूर्यवंशीय पत्तनप्रभुगण अश्वपतिके उक्त १२ पुत्रोंको ही अपने आदिपुरुष मानते हैं। सह्याद्रिखण्डानुसार उक्त १२ जनोंके नाम, गोत्र और कुलदेवीका परिचय तथा प्रत्येकके वंशमें अभी जो पदवी चलती है, वह नीचे लिखी गई है—

नाम	गोत्र	कुलदेवी	देवीका स्थान	पदवी	वेद
१ अनुज	भरद्वाज	प्रभावती	महिम्	राणे	
२ देवक	पूतमाक्ष	कालिका	मुंबई	प्रधान	
३ पृथु	वशिष्ठ	चण्डिका	दभोल	कोठारे	
४ ऋतुपर्ण	काश्यप	महालक्ष्मी	कोलापुर	नवलकर	
५ जय	हारित	योगीश्वरी	योगीश्वरी	पत्तेराव	
६ सुश्मिभ्रु	वृद्धविष्णु	इन्द्राणी	विसवा	धुरन्धर	
७ सौराम	ब्रह्मजनार्दन	कामाक्षी	काञ्चीपुर	ब्रह्माण्डकर	
८ ससन्न	मोद्गल्य	एकवीरा	कालुंग्राम	देशाई	
९ कौण्डिन्य	कौण्डिन्य	अम्बिका	गुजरात	नायक	
१० मण्डव्य	माण्डव्य	महेश्वरी	मुम्बई	मानकर	
११ कुशिक	कौशिक	दुर्गा	कलकत्ता	वैलकर	
१२ मार्त्तण्ड	विश्वामित्र	त्वरिता	भगोवतुलजा	व्यवहारकर	

। माध्यन्दिन यजुःशाखा कात्यायनसूत्र ।

इसके सिवा एक श्रेणीके और भी पत्तनीप्रभु हैं जो अपनेको चन्द्रवंशीय क्षत्रिय कामपतिकी सन्तान बतलाते हैं। स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डमें कामपतिका परिचय इस प्रकार है—

कश्यप, तत्पुत्र अत्रि, अत्रिको आखसे चन्द्रमा, चन्द्रमाके पुत्र बुध, बुधके पुरूरवा, तत्सुत नहुष, तत्सुत ययाति, ययातिके पुत्र आयु, आयुके तपू, तपूके वास, वासके कुश, कुशके भानु, भानुके सोम, सोमके शिरा,

शिशाके पुत्रादिक्रमसे भगभूत माकृष्य, भामभान पुत्र रविरस्फुत्म रविके वंशमें सर्वजित् सर्वजित्से मधु पोके पुत्रादिक्रमसे वन्दुमुणाम, दृढ़, दुर्मना, धर्म, भाम कौशिक रत्नस्फुत्म रत्नसेनके वंशमें शिशिराज, शिशिरार्जो पुत्र वामनाथन इनके वंशमें भवनाम भवनामके पुत्र वन्दुम इन वन्दुम इनके वामग्राम, वामनाथके वंशमें मन्तिम मन्तिमके पुत्र धमम धमसके पुत्र भायो घोर भाजीके वंशमें भायपतिने जन्मग्रहण किया। इनके भायपतिके कोई सन्तान न थी। उन्होंने ऋषियोंको सभाकसे पुत्रेष्टियज्ञ किया जिससे उनके ५६ पुत्र उत्पन्न हुए।

सोमे भागपतिको ५ भवाया, उनके मोत्र घोर कुल देवोके नाम दिये जाते हैं—

पूर्वपुरुष।	कुलदेवी।	गोत्र।
१ दलराज	योगिमरो	पयास्य।
२ माम ०	महालक्ष्मी	च्यवन।
३ पद्म	पद्मबोरा	गौतम।
४ मोधर	कालिका	कौण्डिन्य।
५ बाघ	पद्मावती	धौम्य।
६ चम्पक	कुमारिका	चम्पक।
७ मोनराज	जगदम्बा	वशिष्ठ।
८ विद्युत्पति	सरस्वती	विश्वामित्र।
९ सुरथ	उमा	भृगु।
१० रघु	वागोश्वरी	अत्रि।
११ माधव	वागोश्वरी	अत्रि।
१२ भीम	मण्डिला	भरद्वाज।
१३ श्रीपति ०	चण्डिका	जारित।
१४ भेल	रेणुका	देवराज।
१५ नकुल	महालक्ष्मी	मुद्गल।
१६ दमन	तामसी	पद्मप।
१७ भीम	चन्द्रायो	गर्ग
१८ यदु	पद्मावती	मौनस्य।
१९ पौण्ड्रक ०	मोनारवा	पाराशर।
२० कमल	कौशाम्बा	प्रियपि।
२१ मधाव	चण्डा	इहस्पति।
२२ पारधि	वागोश्वरी	वैशम्पायन।
२३ पद्मक	रत्नाक्षी	भद्र।
२४ प्रदोप	महालक्ष्मी	ब्रह्म।
२५ दानराज	चण्डिका	मार्कण्ड।
२६ शशिराज	तामसी	भास्कर।
२७ साहु	मातृनन्दा	दालभ्य।
२८ मकरन्द ०	मौना	पुलिमार्ग।
२९ देवराज	अलम्बेख	आम्बोम।
३० मनोहर	मातृका	गौतम।
३१ चाणाम ०	मोहिनी	मैत्रेय।
३२ भामसाखो	शोभा	गर्ग।
३३ मयूरध्वज	भद्रा	गौतम।
३४ शूरसेन	धर्मिणी	जमदग्नि।
३५ सुरूरि	योगीश्वरी	भानु।
३६ भागप	चर्चिका	नागासि।
३७ सुयोध	तारामा	दुन्दुभि।
३८ ममतस्म	पालमालिनी	कृविध।
३९ केशराज	चन्द्रप्रभा	सोप।
४० धर्मराज	दुर्गा	कुमार।
४१ रिपुनाग	ईश्वरी	कुमार।
४२ शाल्मल	योगेश्वरी	मित्र।
४३ दानराज	पद्मगुप्ता	मदन।
४४ भौमसिंह ०	घण्टा	कमलागुप्त।
४५ जयवान्	सुरमा	रोमहर्ष।
४६ पामनाथ	सन्तानालिनी	सूर्य।
४७ विहर्म	सुभद्रा	सुकुमार।
४८ वपशन	माहेश्वरी	माधव।
४९ पार्थिव ०	कात्यायनी	मालिमत।
५० हुमन	ईश्वरा	मान्तरिष।
५१ भार्गव ०	नारिका	मुद्गल।
५२ सुपात्र	चण्डवी	पार्श्व।
५३ वासुदेव	नन्दिनी	अगस्त्य।
५४ पतिधार	मोहिनी	शाण्डिल्य।
५५ सुरेन्द्र	सुमना	पाराशर।
५६ दशरथ	भैरवी	मौनप।
५७ सुरथ ०	मालिनी	मधातप।
५८ आदित्य	आतिका	उपमन्यु।

५९ महाराज	सौमिनी	शांडिल्य।
६० अरिमेद	दलिनो	विभाडक।
६१ प्रीतिमान्	दैत्यनाशिनो	धार्मिक।
६२ चित्ररथ	शिलादेवी	ब्रह्मर्षि।
६३ सहस्रजित्	प्रभावती	सात्विक।
६४ सीमन्त	वगला	जनार्दन।
६५ गज *	भामिनी	विमल।
६६ महीधर	अमरा	त्राता।
६७ श्वेत *	चित्ररेपा	वारण।
६८ सुचेत्र	शक्ति	उग्र।
६९ स्वर्गवाह	सोमेश्वरी	प्रेम।
७० श्रीधर	महामारी	भावण।
७१ महाविद्वान्	तुलना	सोमर्षि।
७२ प्रजापाल	लाम्बलिका	नमः।
७३ सुविद्वान्	पन्नगेश्वरी	वायु।
७ कामद	त्रिपुरा	वामक।
७५ वेदवाद	अन्तभैरवी	प्रयाण।

सह्याद्रिखण्डमें जो ७५ धाराएं वर्णित हैं, वर्त्तमानकालमें चन्द्रवंशीय पत्तनीप्रभुके मध्य इनकी अधिकांश धारा ही नहीं हैं; जान पड़ता है, कि वे लोग भिन्न श्रेणी वा जातिके हो गए होंगे। दमनकी सन्तान दमनप्रभु नामसे मशहूर हैं, किन्तु वे लोग पत्तनीप्रभुके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखते। अभी पत्तनीप्रभुओंके मध्य कामपतिके वंशमें केवल १५ धाराओंका परिचय मिलता है जो दूसरे कालममें दिया गया है।

कामपतिके पुत्रोंके नाम	गोत्र	वर्त्तमान वंशधरोंकी उपाधि	कुलदेवी	कुलदेवीके जहां मन्दिर है
१ श्याम	च्यवनभार्गव	रणजित्	एकवीरा	काली
२ पृथु	गौतम	गोरक्षकर	वज्री	भाण्डी
३ ब्रह्म	शाण्डिल्य	राव	वज्रिणी	वज्रबाई
४ श्रीपति	देवदत्त	जयाकर	योगेश्वरी	योगाई
५ पुण्डरीक	मार्त्तण्ड	धाराधर	तारादेवी	काशी
६ वक्रदंष्ट्र	जामदग्नि	तनपड़े	योगेश्वरी	योगेश्वरी
७ श्रीपाल	नानाभि	कीर्त्तिकर	कनका	कनेरी
८ शाल्मली	सुद्गल	अजिह्म	घण्टेश्वरी	ठाना
९ पार्थिव	चनाश	धैर्य्यवान्	चण्डिका	दभोली
१० वासुकि	भार्गव	सेनजित्	वज्रिणी	वज्रबाई
११ सुरथ	उपमन्यु	विजयकर	जातिका	काशी
१२ गज	महेन्द्र	त्रिलोककर	वज्रिणी	वज्रबाई
१३ आनन्द	पुलस्त्य	प्रभाकर	जीवेश्वरी	जीवदान
१४ श्वेत	गर्ग	वजकर	एकवीरा	काली
१५ अंश	वैशम्पायन	आनन्दकर	हरदेवी	सूरत (१)

सह्याद्रिखण्डके अतिरिक्त कौस्तुभचिन्तामणि, बिम्बाख्यान, जनार्दन, गणेशका प्रभुचरित्र, ज्ञानेश्वरी, सेनोर-सैतन-दे-सुजाका महिम् 'इतिहास' (१) आदि ग्रन्थोंमें इस जातिका उल्लेख देखनेमें आता है। बिम्बाख्यान ग्रन्थमें लिखा है, कि यादववंशीय राजा रामराज १२८८ ई०में जब पैठनके निकट मुसलमानोंसे परास्त हुए, तब उनके पुत्र बिम्बदेव कोङ्कण देशको भाग गये। उनके साथ सूर्यवंशीय और चन्द्रवंशीय प्रभु अमात्यगण भी सपरिवार आए थे। उन प्रभुओंके नाम ये हैं, यथा—

सूर्यवंशमें भरद्वाज गोत्रमें विक्रम राणे और मधुसूदन प्रधान; पूतमाषगोत्रमें भीम, श्यामराय, शिव और श्रीपतराव प्रधान; वशिष्ठगोत्रमें विक्रमसेन, केशवराव, गोटाल, भीम, नारायण, विश्वनाथ, त्रिम्बकराव, शिवदास और दामोदर कोठारे; काश्यपगोत्रमें काशीश्वर, कृष्णराव, गोविन्दराव, चन्द्र, महादेव, भास्कर, त्रिम्बक, नारायण और केशव नवलकर; हारित गोत्रमें सेनजित्, श्रीपत्, राम और शङ्कर पत्नतेराव; हरविष्णु गोत्रमें मान्धाता, त्रिम्बक, दामोदर, सुरदास, शिवराम और केशव धुरन्धर, ब्रह्मजनार्दन गोत्रमें सहस्र-

* चिह्नित पुरुषोंकी धारा आज भी देखी जाती है, किन्तु गोत्र और कुलदेवीका अधिकांश जगह परिवर्तन हुआ है।

(१) Senhor Caitan De Souza's Mahim Historie

(१) History of the Pattana Prabhus, p. 6. Table II.

सेना, नवीन त्रिम्बकराव, शिव श्यामराव, पद्माकर और कर्वे ब्रह्माण्डकर; वोपण्णगोत्रमें पुरुषोत्तम, दादा शिव, गोविन्दराव और शिवराम देसाई; कौण्डिन्यगोत्रमें अनन्त कीर्त्ति, देव, सोम, शिव और गोविन्दराव भाग्य; सांख्यायनगोत्रमें वासुदेव गोविन्द नारायण, श्याम सोम, श्रीपतराव, भास्कर और नरहरि मानकर; कौशिकगोत्रमें सुमन्त, केशव, कृष्ण, त्रिम्बक गोपाल, भीम, सूर्य्याव और रघुनाथ देवकर, विश्वामित्रगोत्रमें अनन्त दामोदर, गोरक्ष, शिवराम और भीम अधिकारकर।

चान्द्रस प्रभु—अवमनमार्कण्डगोत्रमें दामोदर, शिव भीम, रघुविद्; गौतमगोत्रमें मधुसूदन और सोम भी रखकर; माण्डव्यगोत्रमें वासुदेव गोपति और कृष्णराव; दिवदत्तगोत्रमें केशव और दामोदर अवाकर; मार्त्तण्डगोत्रमें नारायण, गङ्गाधर और भीमसराकर; जमदग्निगोत्रमें नारायण और केशवतनय नाम्नि गोत्रमें सुरदास और मरदास कीर्त्तिकर; गुरुसगोत्रमें गोपाल धनीहर; धनञ्जयगोत्रमें सुमन्त, त्रिम्बक और रघुनाथ वैद्य भाग; मार्गमगोत्रमें रामदेवकाल; माण्डव्यगोत्रमें केशवराव और सुमन्त त्रिलोककर; कौत्सगोत्रमें रामप्रभाकर; कर्णगोत्रमें धर्मसेन बनकर, मैत्रायणगोत्रमें लक्ष्मी धर आनन्दकर और उपमन्यु गोत्रमें नारायण अधिकारकर।

राजा बिम्बदेवके आश्रयमें प्रभुगण उच्च राजकीय पद पर नियुक्त होने लगे। बिम्बदेवके प्रदत्त ताम्रशासन से जाना जाता है, कि प्रभुगण कोङ्कण प्रदेशके नाना स्थानोंमें महाशासक या शासनकर्त्ताके रूपमें नियुक्त थे। उनमेंसे किसी किसीने तो राजपद तक भी पा लिया था। इनमेंसे अधिकके प्रभुराजाओंका विवरण कालुम चिन्तामणि और पोर्त्तगीज लिखित अधिकार इतिहासमें पाया जाता है।

पोर्त्तगीजोंके आगमनकाल तक प्रभुगण काम्बेरी, बसाई, मश्चिम और बम्बई नगरके निकटवर्त्ती छोटे देशोंका शासन करते थे। १५१२ ई०में पोर्त्तगीजोंने इस स्थान पर अधिकार जमाया। इस समय प्रभुगण अपना पूर्वाधिकार खो बैठे। पोर्त्तगीजोंके दौरात्म्य और अत्याचारसे यहांका हिन्दूसमाज तङ्ग तङ्ग आ गया था। पोर्त्तगीजोंके निकट जातिविचार था नहीं। वे ब्राह्मणको पकड़ पकड़ कर पीटते और गठरी ढुमाते थे। राजभय लोग किसीको भी राहमें या हमेशे में उसे पकड़ कर ले जाते और नीच लोगोंके जैसा काम कराते थे। इस प्रकार वे हिन्दूसमाजको उच्चजातियोंके किसीके भी मान अपमानको और ध्यान नहीं देते थे। पोर्त्तगीज शासनकर्त्ताओंने प्रभुओंको कार्यकुशल और चतुर समझ कर उनमेंसे किसी किसीको ग्राम और नगरके उच्च राजकीय पदों पर नियुक्त किया था। उनको ये सब कार्य अपनी इच्छा नहीं रहने पर भी पोर्त्तगीज राजपुरुषोंके अत्याचार और भयसे वे कार्यग्रहण करनेको बाध्य होते थे। पोर्त्तगीजगण जब हिन्दू समाजके ऊपर जितना ही अत्याचार करते थे ब्राह्मणादि हिन्दू गण उतना ही समझते थे कि प्रभु लोग कारिन्दा हो करके ही ऐसा अन्याय और अत्याचार हो रहा है। इस विश्वास पर धीरे धीरे सभी ब्राह्मण प्रभुओंके ऊपर अत्यन्त विरक्त हुए और प्रभुगण नीच जाति हैं उनके साथ कोई भी सम्बन्ध रखना ब्राह्मणों को उचित नहीं है ऐसा मत तमाम प्रकाश करने लगे। जब तक प्रभुओं का राजकीय प्रभाव रहा, तब तक ब्राह्मण लोग उनका कुछ भी अनिष्ट कर न सके। शिवाजीके अभ्युदयकालमें महाराष्ट्र ब्राह्मणोंने प्रभुओंके सर्वनाश करनेकी चेष्टा की थी। किन्तु हिन्दूकुलतिलक शिवाजीने ब्राह्मणोंका मन्द अभिप्राय समझ कर प्रभुओं का अनिष्ट करनेमें उन्हें मना किया। इतना ही नहीं, शिवाजीने प्रभुओं को अपने सेनापतिके पद पर नियुक्त कर सम्मानित किया था। शिवाजीके इतिहासमें इन सब प्रभु सेनापतियों की कार्यदक्षता और वीर्यवत्ताका यथेष्ट परिचय मिलता है। शम्भाजी राजाराम और ताराबाईके समयमें भी प्रभुओं को सभामें प्रवेश करनेके लिये ब्राह्मणोंने कोई कसर उठा न रखी थी, पर इस समय भी उनका वह प्रयत्न निष्फल गया था। इस प्रकार दोनों जातिमें घोर विद्वेष भाव चलने लगा। महाराष्ट्र राजाओंके नाश चेष्टा करने पर भी विद्वेष वह्नि न बुझ सकी। प्रभुओंमें महाराष्ट्रपति शाहुके

पास यह अभियोग किया कि ब्राह्मण लोग उनके कल्प-विनाशमूलक सह्याद्रिखण्डमें तथा दूसरे दूसरे पुराणोंमें आधुनिक श्लोक प्रक्षिप्त कर उन्हें समाजसे हेय बतानेकी चेष्टा कर रहे हैं। नानाजी बालाजीरावके पास भी यह नालिश की गई। उन्होंने साहुको इसकी खबर दी। शिवाजीकी तरह साहू भी प्रभुओंको बहुत चाहते थे। उन्होंने आज्ञा दी, कि प्रभुलोग बहुत दिनसे जिस प्रकार क्षत्रियोचित संस्कारादि करते आ रहे हैं, आज भी उसी प्रकार करेंगे। उन्होंने खेड और माहुली ग्रामके ब्राह्मणोंको हुकुम दिया कि वे विजयपुरके राजाओंके समयसे जिस प्रकार पौरोहित्यादि कर्म करते आते हैं, आज भी उसी प्रकार करेंगे। साहुके ऐसा आदेश जारी करने पर भी उनके प्रतिनिधि जगजीवन राव पंडितने उनके आदेशको दबा रखा। इसी समय एक सम्पत्तिशाली प्रभुने बहुलेश्वरके निकट सिद्धिविनायक नामक एक गणेश-मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। उस प्रतिष्ठाके उपलक्षमें प्रभुओंके साथ चित्पावन और अपरापर ब्राह्मणोंका विवाद उपस्थित हुआ। चित्पावनोंने अपनेको बम्बईके प्रथम ब्राह्मण बतला कर प्रतिष्ठाकार्यमें अग्रणी होना चाहा। किन्तु प्रभु लोगोंने चेउलनिवासी वेदमूर्त्ति राजश्रीचिन्तामणि धर्माधिकारी प्रभृतिको बुला कर विनायकका अभिषेकादि सम्पन्न किया। इस पर बम्बई-निवासी ब्राह्मणगण बहुत बिगड़े और उन्होंने वहाँके सूबेदार राजश्री शङ्करजी केशवके पास जा कर इस प्रकार मिथ्या अभियोग किया, 'प्रभुगण राजा बिम्बदेवके अनुवर्त्ती राजपूत क्षत्रिय-सन्तान नहीं हैं, वे जैसे तैसे ब्राह्मणको बुला कर धर्म कर्म करते हैं। उनके द्विजोचित अधिकार नहीं रहने पर भी वे यज्ञसूत्र पहनते और गायत्री उच्चारण करते हैं। उनके प्रधान पुरोहित वेदमूर्त्ति विश्वनाथ नामक एक ब्राह्मणने प्रभुओंके उत्पत्तिसम्बन्धमें एक मिथ्या गल्प लिखा है। उस गल्पमें उन्होंने यह साबित करनेकी चेष्टा की है कि पत्तन वा पाठारीय प्रभुगण सूर्यवंशीय अश्वपति और चन्द्रवंशीय कामपतिकी सन्तान हैं।' सूबेदारसे उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि, 'हम लोगोंका मत ले कर आप पञ्चकलस, सोनार, भण्डारी और अन्यान्य नीच-जातिके धनी लोगोंको बुला कर प्रभुओंकी जातिका विचार जान सकते हैं।' इसके सिवा उन्होंने समाजच्युत कुछ प्रभुओंको बुला कर उनसे यह कहलाया कि प्रभुओंके मध्य बहुविवाह और विधवाविवाह प्रचलित है।

सूबेदारने तदनुसार प्रभुओंके विरुद्ध पेशवा नाना जी बालाजीरावके निकट एक अभियोग भेजा। १७४३ ई०में पेशवाने चेऊल, अलवाग प्रभृति नगर और ग्रामके प्रधान प्रधान ब्राह्मण और राजकर्मचारियोंको यह हुकुम दिया कि, 'कोई भी ब्राह्मण प्रभुओंके संस्कारादि काम नहीं कर सकते, करनेसे उन्हें दण्ड मिलेगा। प्रभु लोग गायत्री उच्चारण नहीं कर सकते और न यज्ञसूत्र ही पहन सकते हैं।' पेशवाके आदेशसे प्रभुओंका ब्राह्मण-पुरोहित बन्द हुआ। इस समय ब्राह्मण सूबेदारके आदेशसे सैकड़ों प्रभु-सन्तान निरुद्योग, लाञ्छित और दुःखसागरमें पतित हुई थीं। जिस प्रभुके घरमें उपनयन वा विवाह उपस्थित होता था, उसके कष्टकी परिसीमा न रहती थी। प्रचुर अर्थदण्ड दे सकने पर धनी लोग कष्टसे रक्षा पाते थे किन्तु जो गरीब थे वे फिर समाजमें मुख नहीं दिखा सकते थे। प्रभु लोगोंने इस प्रकार पांच वर्ष तक ब्राह्मणोंके हाथसे दारुण निग्रह भोग किया। पीछे षष्टि प्रदेशके सूबेदार रामजी महादेवने प्रभुसमाजके करुण आर्त्तनादसे विचलित हो पेशवाको यह जताया कि "प्रभुगण प्रकृत क्षत्रियसन्तान होने पर भी उन लोगोंके प्रति कोई सुविचार नहीं होता है, वरन् वे विशेषरूपसे उत्पीड़ित होते हैं। शङ्कराचार्य स्वामीने अपने सम्मति-पत्रमें इन जातिको क्षत्रिय बतलाया है।" इत्यादि।

इसके कई वर्ष बाद प्रभुओंके विपक्षगणने पूना जा कर पेशवाके निकट प्रभु जातिकी शिकायत की। पेशवाके आदेशसे प्रधान धर्माधिकारी रामशास्त्रीने बम्बई और माहिमवासी सभी महाराष्ट्रोंको यह सूचना दी कि, 'कोई भी ब्राह्मण प्रभुओंके घरमें किसी प्रकारका कर्मानुष्ठान नहीं कर सकते, यदि करेंगे, तो वह ब्राह्मण-जातिका विरुद्ध कर्म समझा जायगा।'

इस समय शृङ्गेरिके शङ्कराचार्य स्वामी बम्बई नगर पहुंचे। ऐसे सुयोगमें प्रभुओंने वहां जा कर उनको

ग्रहण की। बादमें इन्होंने महाद्रिखण्ड, कुलपञ्जिका, श्रीमापुरके शङ्कराचार्य स्वामीका अभ्यर्थितग्रन्थ, विप्र-निबन्ध, तामसार्चन आदि उपस्थित किया एवं इसे दिखा कर उनकी जाति और अधिकार निर्णय करनेकी प्रार्थना की। शङ्कराचार्य स्वामीने प्रभुसमाज की शोचनीय अवस्था सुन कर और उनके कुल सम्बन्ध पर आलोचना कर उन्हें पवित्र क्षत्रिय बतलाया और ऐसा ही सम्मतिपत्र दिया। इस समय स्वामीजीने प्रभुओंको पूर्वाधिकार देनेके लिये पेशवाको भी अनुरोधके साथ लिख भेजा। उस समय माधवराव (२य) पूनामें पेशवा पद पर अधिष्ठित थे। उनकी सभामें जब शङ्कराचार्यकी लिपि पढ़ी गई, तब उन्होंने वहांके निखालो ब्राह्मणोंको उसी समय सभामें निमन्त्रण जानेका हुक्म दिया। इतना ही नहीं प्रभुगण जिससे पूर्ववत् निर्विघ्नतासे अपने अपने धर्मका पालन कर सकें उसकी भी अनुमति दे दी।

अन्तिम नाना फड़नवीस पेशवाके कार्यमें उतने सन्तुष्ट न थे। उन्होंने पुनः पूनाके धर्माधिकारी राम-शास्त्री और प्रभुपक्षीय जगन्नाथशास्त्रीको अपने घर बुलाया और प्रभु जातिके सम्बन्धमें उनका अभिप्राय जानना चाहा। रामशास्त्रीने, प्रभुओंके क्षत्रियत्व सम्बन्धमें इनके पहले जितनी आलोचना हुई थी, सब फड़नवीसको कह सुनाई और प्रभु लोग भी प्रकृत क्षत्रिय हैं, यह भी बता दिया। प्रभुओंके प्रति दुर्व्यवहारकी कथा सुन कर नाना फड़नवीस भी विचलित हुए थे और भविष्यमें उनके प्रति ब्राह्मण लोग फिर किसी प्रकारका अत्याचार न कर सकें, इसकी भी घोषणा कर दी। इसके दिनोंके बाद ब्राह्मण और प्रभुका विवाद शान्त हुआ।

ये लोग कट्टर हिन्दू हैं। बम्बई आदि स्थानोंके ब्राह्मणोंने यद्यपि उनके प्रति यथेष्ट अत्याचार किया था, तो भी उनके हृदयसे ब्राह्मण भक्तिका जरा भी ह्रास न हुआ। वे आज भी शास्त्रीय विधानानुसार क्षत्रियोचित सभी संस्कारोंका पालन करते हैं। प्रभुओंमें सब विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रामण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन वा मौञ्जी-बन्धन, समावर्तन और अन्त्येष्टि ये सब संस्कार प्रधान हैं।

प्रभुओंके मध्य बाल्यविवाह आदरणीय है। कन्या और वरका एक गोत्र होनेसे विवाह नहीं होता। बालक १०से १६ और कन्या छसे ८ वर्षके भीतर ब्याही जाती है। पूर्वकालमें इनके मध्य दो प्रकारका विवाह प्रचलित रहने पर भी अभी केवल ब्राह्म विवाह ही प्रचलित देखा जाता है।

इन लोगोंके विवाहमें बहुत रुपये खर्च होते हैं तथा इतना अनुष्ठान और किसी जातिमें देखा नहीं जाता। पात्र जब पसन्द हो जाता है, तब कन्यापक्षीय पुरोहित जा कर वरपक्ष कर्त्ताके निकट इस बातकी चर्चा करते हैं। वरकर्त्ताका अभिमत होने पर वर और कन्याकी कोष्ठी मिलाई जाती है। दोनोंकी कोष्ठीके मिल जाने पर तथा देना पावना स्थिर हो जाने पर तिथि और लग्न स्थिर किया जाता है। तिथिनिश्चय वा वाग्दानका निर्वाहकार्य वरके घरमें पाठ की अग्नि रातको सम्पन्न होता है।

विवाहके दो सप्ताह पहले निमन्त्रण दिया जाता है। पहले जाति-कुटुम्ब स्त्रीपुरुष दोनों पक्षका ही निमन्त्रण होता है। जब विवाह दिवस एक सप्ताह रह जाता है तब कन्याकी माता अपने लड़के और नौकरको साथ ले वरकी माता और उनकी ज्ञाति कुटुम्बिनीको निमन्त्रण करने जाती है। विवाहके चार दिन पहले वरकी माता कन्याकी माताको 'रत्न पुत्र दान होगा' यह कहला भेजती है। दूसरे दिन वरकी माता एक बालकको सजा कर कन्याको लाने भेजती है। कन्या नाना अलङ्कार और बहुमूल्य वस्त्रोंसे विभूषित हो पालकी वा गाड़ी पर चढ़ कर प्रायः दो पहरको वरके घर आती है। वहां वरकी माता आदि रमणियां कन्याके पास जाती और उसे पीढ़े पर बिठा कर नीचे उतारती हैं। पीछे कन्याको अच्छे अच्छे अलङ्कारों और वस्त्रसे सजा कर ज्ञाति कुटुम्बिनियोंके पास दिखाने ले जाती हैं। रमणियें सुस्वरसे गान गाती हैं। पीछे उसी दिन सन्ध्याके बाद कन्या पिता-लय लौटी जाती है। दूसरे दिन वर भी कन्याके

तरह सज धज कर कन्याके घर जाता है। कन्यापक्षसे वर भी उत्कृष्ट वेशभूषा पा कर अपने घर चला आता है। दूसरे दिन आहार और व्यवहारोपयोगी पदार्थ संगृहीत होते और विवाहमण्डप बनाया जाता है।

विवाहके दो एक दिन पहले पावहरिद्रा होती है। पांच सधवा स्त्रियां मिल कर ओखलीमें हलदी कूटती हैं। पीछे एक छोटी चौकीके ऊपर वरको विठा एक सधवा स्त्री हल्दी तेल आदिको मिला कर वरके कपाल-में लगाती है। बादमें वे पांचों स्त्रियां हल्दी मिश्रित कुछ धनिया और गुड़ आपसमें खाती हैं। दूसरे जगह बरामदे पर एक चौकी रखी जाती है और उसके चारों कोनेमें चार कलसी रख कर उन्हें सूतेसे लपेट देती हैं। तदनन्तर वर वहां आता और चौकी पर बैठता है। इस समय वाद्यक लोग बाजा बजाते और बालिकाएं गान करती हैं। गान शेष हो जाने पर जिस बालिकाने पहले पहल शरीरमें हल्दी लगाई थी, वही वरको स्नान कराती है। स्नानके बाद वर नया कपड़ा पहनता और गलेमें माला डाल लेता है। बादमें बालिकाएं उसको आरती उतारती हैं। कन्याके घरमें भी ठीक उसी तरह होता है। अभीसे वर-कन्याकी 'नवरदेव' अर्थात् विवाहके देवतामें गिनती होती है और वे दोनों विवाहके चार दिन शेष नहीं होने पर घरसे बाहर नहीं निकलते हैं। इस दिन अपराह्णकालमें गणेश, विवाह-मण्डप, वरुणदेवता, पितृगण और नवग्रहकी पूजा होती है तथा कुम्हड़े और गूलरकी बलि दी जाती है। कुम्हड़ाबलिके उत्सवका नाम है "कहल्यामुहूर्त्त"। इस समय वरके भगिनीपति वा कोई विवाहित आत्मीय कुम्हड़ेको तलवारसे दो खण्ड कर डालते हैं। जो कुम्हड़ेको काटेगा उसके कन्धे पर शाल रहता है और पीछेमें उसकी स्त्री खड़ी रहती है। इसी भावसे वे दोनों विवाहमण्डपमें पहुंचते हैं। इस समय एक सधवा आती है और दम्पतिके शालके छोर ले कर गांठ बांध देती है। उसी समय पुरोहित उसके हाथमें तल-वार देता है और वह एक ही वारमें कुम्हड़ेको दो खण्डोंमें काट डालता है। स्त्री कुम्हड़े में हल्दी लगा कर पुनः पीछे आ खड़ी होती है। उसका स्वामी दो भागसे कुम्हड़ेको चार खण्ड कर डालता है, बादमें स्त्री उसकी आरती उतारती है।

गूलरबलिका नाम उदुम्बर वा 'उम्बर आमन्त्रण' है. यह उत्सव भी कुम्हड़ेबलिके जैसा समाप्त होता है। इसमें तलवारसे गूलरकी शाखा काटी जाती है। जो यह काम करता है वह स्त्री समेत शालका जोड़ा वा उसी तरहका अन्य बढ़िया कपड़ा उपहारमें पाता है।

इस दिन सन्ध्याके बाद वरपक्षकी कुछ आत्मीया गान करती हुई नाना प्रकारके मिष्टान्न, खिलौने और तेल पत्रादिके साथ कन्याके घर पहुंचती हैं। कन्याकी बहन आ कर वरकी बहनको वरण करती और अन्तःपुर ले जाती है। यहां वरकी बहन कन्याको अपने पास बिठा कर उसका जूड़ा बांधती और अच्छे अच्छे कपड़े पहना कर गलेमें फूलकी माला डाल देती है। अन्तमें उसकी आरती ली जाती है। पीछे कन्या कुछ मिष्टान्न मुखमें दे कर खिलौनेको हाथमें लेती और माता तथा आत्मीयों-के पास आ कर उसे दिखाती है। तदनन्तर वर पक्षवाले तत्त्वकी सामग्री ले कर चले आते हैं। उस दिन कन्यापक्षसे भी उसी प्रकार वरके घर उपहारादि भेजे जाते हैं। कन्याको जिस प्रकार वरपक्षसे अलङ्कार खिलौने आदि मिलते हैं उसी प्रकार कन्यापक्षसे वरको उत्कृष्ट पोशाकके साथ कुर्सी, अलमारी, डेस्क, पुस्तक, शतरंजका पासा, जूता, छाता और चाय पीनेके लिये चांदीके बरतन आदि मिलते हैं।

विवाहके दिन प्रधान अनुष्ठान ११ हैं-फलदान, तेल-उत्सर्ग, चौर, स्नान, पदप्रक्षालन, गूलरकी पूजा, वर-यात्रा, विवाह, निमन्त्रित व्यक्तियोंका आवाहन, विदाई और वरगृहमें पुनरागमन।

विवाहके दिन बहुत सबेरे वरपक्षीय कोई रमणी ज्ञाति कुटुम्बकी स्त्रियोंको बुला लाती हैं। ९।१० बजे दिन-को निम्नलिखित स्त्रियां, पुरोहित ठाकुर, वरका कोई विवाहिता भ्राता, भृत्य (वस्त्र अलङ्कार फलमूलादिको माथे पर रख कर) और वाद्यकर लोग बाजा बजाते हुए कन्याके घर पहुंचते हैं। कन्याको कोई आत्मीया आ कर वरकी बहनको वरण करती और उसे घरके भीतर ले जाती है। विवाहमण्डपमें वरका भाई पुरोहितकी सहायतासे

गणपति और मदनकी पूजा करता है। इस समय उसे कन्याको वस्त्रालङ्कार देना होता है। कन्या उस नवीन वस्त्रालङ्कारको पहन कर पिताके पास आ बैठती है। बादमें कन्याके पिता और वरके भाईके उत्सङ्गोंमें ५ पान रखते और कुछ सुपारियां बांध दी जाती हैं। इसके अनन्तर कन्याको उत्कृष्ट वस्त्रालङ्कारसे विभूषित कर विवाहमण्डपमें ले जाते हैं और उसको गोदमें कुछ पान दे कर एक सधवा वरण करती है। इस समय वरपक्षीय दो एक रमणियां पतरदान गुलाबपाश और एक टोकरी पान ले कर अन्तःपुरमें जा कन्यापक्षीय रमणियोंको इत्र लगाती हैं फिर उन पर केसर, चन्दन और गुलाबजल छिड़कती हैं तथा पान, सुपारी और नारियल आदिको देती हैं। इसके बाद उपस्थित सभी रमणियोंके बीच नारियल वितरण किया जाता है। वरपक्षवालोंके चले जाने पर कन्याकी माता नाना अलङ्कारोंसे विभूषिता हो आत्मीय रमणियों और नौकरोंके साथ वरके घर जाती हैं।

इस समय वर आ कर रमणियोंके बीच खड़ा होता है। कन्याको वहन करके लाते समय वे जाते हुए आती हैं और वरके दोनों हाथोंमें हल्दी लगा देती हैं। बादमें वर और कन्या दोनोंके मस्तकमें दो दो सधवा चावलके आशीर्वाद करती हैं। इस समय वरकी बहन दुलहको पगड़ी एक रेशमी कपड़ा बांध देती है।

कन्याकी माता आ कर वर और वरको सालाका पैर धोती है, इस समय चार सधवाओंको भी एक एक वस्त्र दिया जाता है। इसके बाद ही वरको बहन छिपके एक पत्तेमें हल्दी लाती और वरके हाथमें दे देती है। कन्याकी माता वरको जब कटोरेमें भर कर दूध देने जाती है तब वर उस हल्दीको उसके मुहमें लगा देता है। इस समय वरके अपरापर आत्मीय बन्धु ले कर आमोद-प्रमोद करते हैं। पीछे तीन बजे दिनको दोनों पक्षोंसे चार चार करके ८ मनुष्य कालिकामन्दिरमें नित्यकर्म करने जाते हैं।

बरयात्रा करनेके पहले कन्यापक्षवाले वरके घरमें उनके पैर धोने आते हैं। वरको एक चौकी पर बिठा कर कन्याका पितामह उसके पैर धोते और पोंछते इत्यादि ये बांध देते हैं। इसके सिवा वे वरके ललाटमें चन्दन लगा कर उंगलीमें सोनेकी अंगूठी पहना कर और गुलाबजल तथा इत्र दे कर चले जाते हैं। पैर धोनेके बाद दोनों ही पक्षमें दूसरेको बलि होते हैं। पीछे महा समारोहसे बारात निकलती है। वरके साथ उनके प्राप्ति कुटुम्ब पुरुष-रमणी सबके सब जाते हैं। राहमें गमनके निमित्तवाले और बीचमें नारियल बांटते जाते हैं। वर घोड़े पर चढ़ कर सबसे आगे चलता है। पहले हाथमें एक तलवार रखते थे, अभी उनके बदलेमें छड़ी रखते हैं।

जब बारात कन्याके दरवाजे पहुंचती है तब कन्याके लोगों आ कर वरण करते हैं और उनको कोठा पार विधि कर जाती है। अन्तमें कन्याका पिता वरके मुंहमें एक मिठाई दे देता और उसे अपनी गोदमें बिठा कर विवाहसभामें ले जाता है। ज्योतिषी जन्मपत्र दे कर विवाहका ठीक समय कह देते हैं। कन्या और वरपक्षीय दोनों पुरोहित मन्त्र उच्चारण करते हैं।

इधर कन्याकी माता आ कर पहले वरको पाद वन्दना करती, पीछे कन्यापक्ष रमणियोंके साथ उसे अन्तःपुर ले जाती है। बादमें वरको विवाह मेंडो पर लाया जाता है।

विवाहमें ये सब प्रधान अनुष्ठान हैं—मधुपाक, पद्मीलकरण, लाजाहोम, सुवर्णदान, दानग्रामको विधान अस्त्रपूजा, कन्यादान, सप्त सप्तपदीगमन और वरकन्याशीष। विवाहके पहले भी फिर कुछ विशेषता है—मातृकापूजाके साथ कुछ लक्ष्मीपूजा और ब्राह्मणोंके मङ्गलपाठ पाठ आदि।

कन्यादानादि मूल विवाहकार्य तथा निमन्त्रित व्यक्तियोंको आदर-अभ्यर्थना शेष होनेके बाद वर उसी रातको अपने घर चला आता है। विदाईके समय प्रत्येक निमन्त्रित व्यक्तिके कपाल पर चन्दनका तिलक लगाते और प्रत्येकको दो दो नारियल देते हैं। जब वर अपने घरके सामने पहुंचता है तब दो मुख वर और कन्याको अपनी अपनी गोदमें ले कर नाच गान करते हैं। पीछे कन्याको आगे करके वरके घरमें जाते हैं। प्रवेश-कालमें वरको बहन दरवाजे पर कुछ

पुरस्कार पानेके लिये खड़ी रहती है। बादमें वरकन्या दोनों ही देवस्थानमें जाते हैं। जब स्त्रीकी लोकाचार-विधि शेष हो जाती है, तब वरके मातापिता उनके ध्यानसे नववधूका नूतन नाम रख देते हैं। तदनुसार वर भी वधूके नामसे अपना नाम रख देता है। यह सब हो जानेके बाद निमन्त्रित व्यक्ति दूध और शरबत पी कर अपने अपने घर लौटते हैं। कन्या बालिकाओंके साथ और वर बालकोंके साथ रात्रियापन करता है।

इसके बाद भी चार दिन तक उत्सव रहता है। विवाहके बाद अर्थात् कन्याको उमर बारह वर्ष होनेके पहले 'सहर्त्त बाद' या ऋतुवस्त्रपरिधान होता है। वरका पिता शुभ दिन दिखा कर कन्याको नूतन वस्त्र और खाद्य सामग्री भेज देता है। पुरोहित कन्याके घर आ कर यथारीति पूजा करके कन्याको वह साड़ी और चोली पहनने कहते हैं। इस समय स्त्रियां नाना प्रकारके आमोद प्रमोद करती हैं।

पीछे 'पदरसाद' नामका उत्सव स्थिर होता है। इस दिन वधू घूंघट काढ़ कर वयस्का स्त्रियोंके जैसा कपड़ा पहनती है।

ऋतुमती नहीं होने तक कन्या पतिके साथ रात्रि-वास करने नहीं पाती, तब तक उसे पितृगृहमें ही रहना पड़ता है। ऋतुमती हो जाने पर कन्याको माता कौलिक स्त्री-आचारके बाद उसे ससुराल भेज देती है। वहां उसका ससुर उसे किसी पृथक् घरमें रहने देता है। चार दिन तक कन्याको माता और अपरापर रमणियां आ कर प्रथाके अनुसार उसे स्नानादि करा जाती हैं।

पांचवें दिन पतिपत्नीका प्रथम मिलनोत्सव और गर्भाधानकार्य सम्पन्न होता है। इस दिन पुरोहितके साथ और भी दस ब्राह्मण आ कर गणपति और सप्तमातृकाकी पूजा, नवग्रहहोम तथा भुवनेश्वरका आवाहन करते हैं। स्त्रियां दम्पतिको रमणीय वेशभूषासे सजा कर नृत्य गीतादि नाना प्रकारके आमोद प्रमोद करती हैं।

स्त्रीके गर्भ रह जाने पर पांचवें महीनेमें पञ्चामृत होता है। उसी समयसे गर्भिणीको उसकी इच्छानुसार खाने और पहननेको दिया जाता है। प्रसवके बाद ही नवजातशिशुको गरम जलमें धो डालते हैं। पीछे धाई शिशुको नाड़ी काटती है और सिर तथा नाककी कुछ ऊपर खींच कर ठीक कर देती है। गृहस्वामी जन्म-कालको लिख रखते हैं। ४० दिन तक प्रसूति सूतिका-गृहमें रहती है। इतने दिनोंके बीच उसे ठंढा जल पीने नहीं दिया जाता। नारियलको दग्ध कर जलमें उसे डुबो रखते हैं और वही जल प्रसूतिको पीनेके लिये दिया जाता है।

जन्मदिन अथवा उसके बादके दिन शिशुका पिता पुरोहित, ज्योतिषी और दो एक बन्धुबान्धवोंके साथ पुत्रमुख देखने आता है। ज्योतिषी गृहस्वामीसे जन्मका समय जान कर एक खाटके ऊपर खड़ीसे कोठा बनाते हैं और शिशुके शुभाशुभकी गणना करते रहते हैं। तद-नुसार पिता शुभलग्नमें पुत्रमुखदर्शन और जातकर्म करता है।

यदि शिशुके जन्मलग्नमें कोई दोष रहे, तो पिता पुत्र-मुख नहीं देखते, बल्कि उसके कल्याणके लिये ब्राह्मणों-को दान देते और स्वस्त्ययनादि कराते हैं। जन्मोत्सवके उपलक्षमें नर्त्तकी आ कर नाच गान करती है। मिष्टान्न बाँटा जाता है। पुरोहित और ज्योतिषी उपयुक्त विदाई पा कर अपने घर जाते हैं।

तीसरे दिन प्रसूति और शिशुको स्नान कराया जाता है। छठे दिन प्रसूति शिशुको प्रथम स्तन्यपान कराती है। पांचवीं रातको षष्ठीपूजा होती है। इस दिन धात्री शिशुको अपनी गोदमें ले कर रात भर जगी रहती है। दशवें दिन प्रसूति और शिशुको स्नान करा कर नया वस्त्र पहननेको दिया जाता है। इस दिन सभी घरोंमें गोबर और जल सींचते हैं। प्रसूतिके सभी गृहस्थ भी पञ्चगव्य पी कर परिशुद्ध होते हैं। इधर शिशुका पिता और पितृगृहवासी सभी सगोत्री यज्ञो-पवीत बदलते और पञ्चगव्य खाते हैं।

ग्यारहवें, बारहवें या तेरहवें दिन कुछ सधवा स्त्रियां आ कर हिंडोले पर पुत्रको झुलाती हुई उसका नाम-करण करती हैं। ४०वें दिन प्रसूति मातृघरका परि-त्याग करती और स्नान करके शुद्ध हो जाती है। इस दिन नवीन कांचकी चूड़ी पहननी पड़ती है और चूड़ी-वालेको इस उपलक्षमें कुछ पुरस्कार भी मिलता है।

पीछे तीसरे या पाँचवें मासमें मिष्ठ पिण्डमें भाया जाता, छठे १२ मासके भीतर कर्णवेध और दोलारोहण होता, दांत निकलने पर एक दिन दन्तोद्गम नामक उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता, पीछे चूड़ाकरण और चारसे दस वर्षके भीतर मौञ्जीबन्धन या उपनयन और विवाह होता है।

विवाहकी तरह मौञ्जीबन्धन भी इनका एक प्रधान संस्कार है। बालकका पिता ज्योतिषी द्वारा जन्मकोष्ठी दिखा कर शुभदिन स्थिर करता और तभीसे उपनयनका आयोजन होने लगता है। मौञ्जी होनेके एक सप्ताह पहले शुभदिनमें एक कटोरे हल्दी, सिन्दूर, धनिया, अन्न और सुपारी इन सब चीजोंको बाजारसे खरीद लाते और कुलदेवताके सामने रखते हैं। दो तीन दिन बाद परिवारके दो तीन ब्राह्मण दाणिका एक वाद्यकरको साथ ले आत्मीय कुटुम्बके घर जाते हैं और मौञ्जीके दिन सबोंको उपस्थित होनेके लिये निमन्त्रण कर आते हैं। इस समय एक मण्डप बनाया जाता है। दूसरे दिन बालककी देहमें हल्दी लगाई जाती और विवाहके पहले जो सब अनुष्ठान करने होते हैं, वही अनुष्ठान इस उपनीतसंस्कार उपलक्षमें भी किये जाते हैं। उस दिन दो पहरको निमन्त्रित सधवाओं और उस बालकको भोज दिया जाता है। सांझके पहले सभी रमणियों के पात्रसे चार चार घड़ा जल ले कर बालक और उसकी माताके माथे पर दिया जाता है। पीछे उसको नहाया जाता है। उस दिन रातको पुष्पभोज होता है। दूसरे दिन सबेरे मण्डपके चारों ओर साफ किया जाता है और उसके बीचमें दो पाटा रखा जाता है। बालक और बालिका उस पीढ़ा पर आ कर बैठती हैं। इसी तरह गीतवाद्य होने लगता है और कुछ सधवा आ कर दोनोंका उससे अभिषेक करती हैं बादमें वरण करके चली जाती हैं। मण्डपके एक पार्श्वमें जहां वेदिया रहता है, वहां चौकाके ऊपर बालक आ कर बैठता है और उसका मामा तथा पोती सामने खड़ी रहती है। पहले मामा बालकके दाहिने हाथकी अनामिकामें एक सोनेकी अंगूठी पहना देते हैं, पीछे देवीके सामनेमें बालोंका गुच्छा काट डालते हैं। बालककी चोटी उस बालकको ले कर एक कटोरेमें जो दूधसे भरा रहता है, रख देती है। बादमें नाई क्षिप्र कौर कर सिरके सभी बालोंको मुड़ देता है। इसके बाद सधवा स्त्रियां बालकको स्नान कराती और वरण करती हैं। तदनन्तर बालकका मामा अपनी भांजीको एक सफेद कपड़ेमें ढक कर गोदमें उठा लेते और मण्डपके पर आते हैं। यहां वरण होनेके बाद उसे गृहाग्निमें ले जाते हैं। इसके कुछ समय बाद बालक आठ उपनीत अथवा अविवाहित बालकोंके साथ एकत्र भोजन करता है। भोजन कर चुकनेके बाद शुचि हो कर और अलङ्कार पहन कर बालक देवगृहमें पिताकी बगल पूर्वमुखी हो बैठ जाता है। शुभमुहूर्तमें ज्योतिषी पुरोहित और दूसरे दूसरे ब्राह्मणगण स्तोत्र-पाठ करते हैं। ज्योतिषीके कथनानुसार ठीक समयमें सभी निस्तब्ध होते हैं। पुरोहित उत्तरमुख करके कपड़ेको खींच कर पकड़ते हैं। इस समय वाद्यकर जोरसे बाजा बजाता है और सभ्यागतगण करतलध्वनि करते हुए खड़े होते हैं। पुरोहित बालकके दाहिने और यज्ञसूत्र और मध्यकर्णसूत्रके साथ हस्तमालाको हाथ बांध देते हैं। बालक इस समय उठ कर पिताको प्रणाम करता और उसकी गोद पर आ बैठता है। आचार्य कानमें गायत्री मन्त्र कह देते हैं। उपस्थित स्त्रियां जिससे बालकोंका कोई अक्षर सुनने न पावें, उसके लिये पुरुष लोग उच्च स्वरसे स्तोत्रपाठ करते हैं। पीछे आत्मीय बन्धुगण बालकको स्वर्ण, रौप्य या कोई दूसरी अंगूठी अथवा रुपये दे कर आशीर्वाद करते हैं। बादमें पुरोहित होम करते हैं उस अग्निकी ज्वाला कमसे कम पांच दिन तक रहती है। पांच दिन तक किसीको भी बाहर नहीं कर सकता और न वह घरसे बाहर हो निकल सकता है। उपनयनके बाद मध्याह्नकालमें बालक भिक्षाकी झोली और दण्ड हाथमें ले कर देवीके पार्श्व खड़ा होता और भिक्षा मांगता है। आत्मीय कुटुम्ब स्त्री पुरुष दोनों ही भिक्षा देते हैं। इस दिन ज्ञातिकुटुम्बका भोज होता है। रातके ८ बजे बालक 'काशी जाता हूं' यह कह कर मामाके घर चला जाता है। उसके आत्मीय कुटुम्ब भी कुछ समय

बाद ही मामाके घर पहुंच जाते हैं। यहां सब कोई चीनी-मिश्रित पोठा और नारियल खा कर बालकको साथ लिए आते हैं। दूसरे दिन ब्राह्मणभोज हो कर मौञ्जी-उत्सव शेष होता है।

मृत्युकाल उपस्थित होने पर गो-पूजा, गो लाङ्गुल स्पृष्ट, जलपान, आचार्यको गोदान, गीतापाठ, मृत्युके बाद मृत व्यक्तिके मुखमें गङ्गाजल, तुलसीपत्र और एक खण्ड सुवर्णप्रदान, मृत्युके दिन मृतके पुत्र वा अति निकट आत्मीयका केशमुण्डन और श्वेतवस्त्र परिधान मृतकी विधवा रमणीका अलङ्कारादिमोचन, आत्मीय स्वजन एकत्र हो खाट पर शव ले कर (रामनाम करते हुए) श्मशानक्षेत्रमें गमन, श्मशानमें कर लेय मुखाग्नि-प्रभृति, अन्त्येष्टिक्रिया, १० दिन प्रेतके उद्देश्यसे केलेके पत्तेमें दुग्ध और जलप्रदान आदि कार्य सम्पन्न होते हैं। जो मुखाग्नि करता है, वह दश दिन घरसे बाहर नहीं निकलता। इतने दिनोंके मध्य परिवारस्थ कोई भी रन्ध नादि नहीं करता, केवल आर्त्तनाद और शोकप्रकाश करता है। आत्मीय कुटुम्ब उसके घर खाद्यपदार्थ भेज देते हैं और आ कर खिला भी जाते हैं। ११वें दिनमें श्राद्धाधिकारी किसी धर्मशालामें जा कर पुरोहितकी सहायतासे यथारीति श्राद्ध और दानादि सम्पन्न करते हैं। १२वें दिन भी प्रेतात्माकी क्षुधा-तृष्णा दूर करनेके लिये तिलतर्पण किया जाता है।

यदि किसी व्यक्तिका अति दूर देशमें देहान्त हो जाय अथवा किसीकी भी भार्या पतिको छोड़ उसके कुलमें कालिमा लगा कर चली जाय, तो उसके भी उद्देश्यसे यथारीति श्मशान जा कर अन्त्येष्टिक्रिया और श्राद्धादि करने होते हैं। ऐसी हालतमें वह पति पत्नीका फिर कभी मुख नहीं देखता।

अभी सभी प्रभुगण प्रायः शैव देखे जाते हैं। शृङ्गेरिमठके शङ्कराचार्यको ही ये लोग अपना सर्व-प्रधान धर्मगुरु मानते हैं और बचपनसे ही संस्कृत स्तोत्र पाठ और देवपूजा करना सिखते हैं। अधिकांश प्रभुके घरमें गणपति, महादेवका बाणलिङ्ग और शालग्राम शिला रहता है तथा प्रतिदिन उनकी पूजा की जाती हैं।

सभी प्रभुगण हिन्दूपर्वका पालन करते हैं। इसके सिवा उनके कई एक विशेष पर्व हैं, यथा—चैत्रशुक्ल प्रतिपद्‌को ध्वजदान, रामनवमी, हनुमान्‌पूर्णिमा, अक्षयतृतीया, कदलीपूर्णिमा, आषाढ़ी शुक्ल एकादशी, नागपञ्चमी और नारिकेल-पूर्णिमा, कृष्णको जन्माष्टमी, हरितालि तृतीय, गणेशचतुर्थी, महापञ्चमी, गौर्यष्टमी, वामनद्वादशी, अनन्तचतुर्दशी, महालया, दशहरा, कोजागरा, पूर्णिमा, दिवाली, यमद्वितीय, तुलसी-एकादशी, दीपसंक्रान्ति, होली वा दोलपूर्णिमा।

प्रभुओंके मध्य किसी प्रकारको पञ्चायत नहीं होती है।

पत्तर (हिं० पु०) १ धातुका ऐसा चिपटा लम्बोतरा टुकड़ा जो पीट कर तैयार किया गया हो और पत्ते-की तरह पतला होने पर भी कड़ा हो तथा जिसको तह या परत की जा सके, धातुकी चादर। २ पत्तल देखो।

पत्तरङ्ग (स० क्लो०) पट्टरङ्ग पृषो० साधुः। १ रक्तचन्दन, बक्कम। पाङ्ग वली।

पत्तल (हिं० स्त्री०) १ पत्तोंको सींकोंसे जोड़ कर बना हुआ एक पात्र। इससे थालीका काम लिया जाता है। पत्तल प्रायः बरगद, महुए या पलास आदिक पत्तोंका बनाई जाती है। इसकी बनावट गोल होती है। व्यास-का लम्बाई एक हाथसे कुछ कम या अधिक होती है। हिन्दुओंके यहां बड़े बड़े भोजोंमें इसी पर भोजन परसा जाता है। अन्य अवसरों पर भी इसका थालीके स्थान पर उपयोग किया जाता है। जङ्गली मनुष्य तो सदा इसीमें खाना खाते हैं। २ पत्तल भर दाल चावल या पूरी लड्डू आदि, परोसा। ३ पत्तलमें परसा हुई भोजन-सामग्री।

पत्तलक—अन्ध्रवंशीय एक राजा।

पत्तस् (सं० अव्य०) रश्मिसंज्ञक पाद द्वारा।

पत्ता (हिं० पु०) १ पेड़ या पौधेके शरीरका वह हरे रंगका फैला हुआ अवयव जो काण्ड वा टहनीसे निकलता है, पत्र, पर्ण, छदन। विशेष विवरण पत्र शब्दमें देखो। २ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है। ३ धातुकी चादर, पत्तर। ४ मोटे कागजका गोल या चौकोर खण्ड। (वि०) ५ बहुत हलका।

पत्ति (सं० पु०) पद्यते विपक्ष-सेनाप्रति पद्भ्यां गच्छ-

भोति पद ति (पत्तिप्रतिकर्त्री मित । मन ३।१८९) १ पदा तिक, पैदल सिपाही । २ वीर योद्धा बहादुर । (स्त्री०) पद-गामि सिन् । ३ गति, चाल । ४ प्राचीन कालमें सेनाका सबसे छोटा विभाग । इसमें १ रथ १ हाथी, ३ घोड़े और ५ पैदल होते थे । किसी किसीके मतसे पैदलोंकी संख्या ११ होती थी ।

पत्तिक (स० पु०) पत्ति-कन् । १ पदाति, पैदल सिपाही । २ प्राचीनकालमें सेनाका एक विशेष विभाग । इसमें १० घोड़े, १० हाथी १० रथ और १० प्यादे होते थे । ३ उपर्युक्त विभागका अफसर । (वि०) ४ पैदल चलने वाला ।

पत्तिकाय (स० पु०) पदातिक सैन्य, पैदल सेना ।

पत्तिगणक (स० त्रि) पत्ति गणयतीति गणि-ण्वुल् । पत्ति गणयिता प्राचीन सेनामें एक विशेष अधिकारी जिसका कर्त्तव्य पैदल सैनिकोंकी गणना करना तथा उन्हें एकत्र करना होता था ।

पत्तिप (स० त्रि०) पत्तीं निकति पिब सतो वा किप् । पाद द्वारा गमनशील पैदल चलनेवाला ।

पत्तिसंहति (स० स्त्री०) पत्तीनां संहतिः ६-तत् । पत्तिसमूह, सैन्यवृन्द ।

पत्ती (हि० स्त्री०) १ छोटा पत्ता । २ भाग, हिस्सा । ३ फूलकी पंखड़ी, दल । ४ भाँग । ५ पत्तीके आकारका लकड़ी, धातु आदिका कटा हुआ कोई टुकड़ा जो प्राय किसी चीजमें जड़ने लगाने या लटकाने आदिके काम में आता है पत्ती ।

पत्तीदार (हि० पु०) साझीदार, हिस्सेदार ।

पत्तूर (स० पु०) पतो बाहुलकादूर तस्य च द्वित्व । १ शालिञ्चशाक, शालिंच नामक साग । २ जलपिप्पली, जलगोपर, ३ पतंग नामक पेड़ । ४ शमोद्भव, शमीका पेड़ । ५ कुचन्दन । ६ पतङ्गकी लकड़ी । ७ मातृगमन ।

पत्थ (हि० पु०) पथ्य देखो ।

पत्थर (हि० पु०) १ पृथ्वीके कड़े स्तरका पिण्ड या खण्ड विशेष विवरण प्रस्तर शब्दमें देखो ।

२ सड़ककी नापसूचित करनेवाला पत्थर, मीलका पत्थर । ३ रत्न, जवाहिर, हीरा, लाल, पन्ना आदि । ४ उपलोपल, ओला । ५ बिलकुल नहीं कुछ नहीं खाक । ६ पत्थरकी तरह कठोर, भारी अथवा हटने मरने आदिके अयोग्य वस्तु ।

पत्थरकला (हि० पु०) पुरानी चालकी बन्दूक जिसमें बारूद सुलगानेके लिये चकमक पत्थर लगा रहता था । तोड़ेदार या पलीतेदार बन्दूक चाँपदार बन्दूक ।

पत्थरकुम (हि० पु०) सैनाकड़, बरोना ।

पत्थरचटा (हि० पु०) १ एक प्रकारकी घास जिसकी टह नियाँ नरम और पत्तों होती है । २ एक प्रकारका साँप जो पत्थर चाटता है । ३ एक प्रकारकी मछली जो प्रायः छिछ पहाड़ोंसे चिपटी रहती है । ४ कंजूस मक्खीचूस । (वि०) ५ जो घरकी चारदीवारोंसे बाहर न निकलता हो ।

पत्थरचूर (हि० पु) एक प्रकारका पौधा ।

पत्थरफोड़ (हि० पु०) हुदहुद पक्षी ।

पत्थरफोड़ा (हि० पु०) पत्थर तोड़नेका पेशा करनेवाला, संगतराश ।

पत्थरबाज़ (हि० पु) १ वह जो पत्थर फेंक कर किसी को मारता हो । २ वह जो प्रायः पत्थर या ढेला फेंका करे । ३ वह जिसे पत्थर फेंकनेका अभ्यास हो ढेल-बाज़ ।

पत्थरबाज़ी (हि० स्त्री०) पत्थर फेंकनेकी क्रिया, पत्थर फेंकाई, ढेलबाजी ।

पत्थल (हि० पु०) पत्थर देखो ।

पत्नी (स० स्त्री०) पत्युः यज्ञे सम्बन्धो यस्या इति नकारादेशः ङीप च (पत्युर्नो यज्ञसंयोगे । पा ४।१।३३) वैदिकालमें सुमार लड़का विवाहिता स्त्री । जो कन्या शास्त्रानुसार व्याही जाती है उसे पत्नी कहते हैं । पर्याय—पाणि गृहिती, सहधर्मिणी, भार्या, जाया, दारा सधर्मिणी, धर्मचारिणी दार गृहिणी, सहचरी पक्ष, देव, वधू, जनि, परिग्रह कलत्र, कलत्र ।

"पत्नीमूल गृहं पुंसां यदिच्छन्दोऽनुवर्तिनी ।
गृहाश्रमसमं नास्ति यदि भार्या वशानुगा ॥"

(दक्षसंहिता ।)

दक्षसंहितामें लिखा है कि पत्नी ही गृहधर्मकी जड़ है । यदि पत्नी पुरुषकी अनुवर्तिनी हो, तो गार्ह

स्याश्रम अतुलनीय है। पत्नी वशमें रहनेसे उसके साथ धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गका फल लाभ होता है। पत्नी यदि स्वेच्छाचारिणी हो और उसे यदि निवारण न किया जाय, तो वह व्याधिकी तरह क्लेशदायिका होती है। जो पत्नी स्वामीकी अनुकूला, वाक्य दोषरहिता, कार्यदक्षा, सती, मिष्टभाषिणी और पतिभक्तिमती है वह साक्षात् देवीके सदृश है। जिसकी पत्नी वशवर्त्तिनी नहीं है उसे इसी लोकमें नरक-वास होता है। पत्नी और पतिका परस्पर अनुराग रहना स्वर्गमें भी दुर्लभ है। गृहस्थाश्रममें वास केवल सुखके लिये है, किन्तु पत्नी ही इस गार्हस्थसुखकी जड़ है। जो स्त्री विनीता है और पतिका मनोगत भाव समझ कर चलती है वही स्त्री पत्नीशब्दवाच्य है। जिस पत्नीमें उक्त गुण नहीं है उससे केवल दुःख भोग होता है।

निन्दिता पत्नी जोंकके समान है; अलङ्कार वस्त्र प्रभृति द्वारा उत्तमरूपसे परिपालित होने पर भी वह हमेशा पुरुषोंके रक्त चूसती है और एक दण्ड भी स्वच्छन्दसे रहने नहीं देता। जब तक पति और पत्नीकी उमर थोड़ी रहती है, तब तक पत्नी सर्वदा शङ्कायुक्त रहती है। जो पत्नी सर्वदा हृष्टचित्ता है, गृहोपकरण द्रव्यसमूहके अवस्थान और परिमाण विषयमें जानकार है तथा अनवरत पतिके प्रीतिकर कार्य करती है, वही पत्नी प्रकृत पत्नी है। ये सब गुण जिसमें नहीं हैं, वह केवल शरीरक्षयकारिणी जरा है। पुरुषकी प्रथम विवाहिता जो स्त्री है, वही स्त्री धर्मपत्नी है। अपर विवाहिता पत्नी कामपत्नी मानी गई है। इन सब पत्नियोंसे दृष्टफल होता है, अदृष्टफल धर्म आदि कुछ भी नहीं होता। (दक्षसंहिता ४ अ०)

मनुमें लिखा है—पतिको पत्नीके प्रति नियत सद्व्यवहार करना चाहिये। जो श्रीवृद्धिकी कामना करते हैं, विविध सत्कार्यकालमें ही अथवा नित्य ही, अशन, वसन और भूषणादि द्वारा स्त्रियोंका आमोद विधान करना उनका कर्त्तव्य है। जिस परिवारके मध्य पति और पत्नी दोनों एक दूसरेके ऊपर नित्य सन्तुष्ट रहते हैं, निश्चय ही उस कुलका कल्याण होता है। वस्त्र और आभरण आदि द्वारा कान्तिमती नहीं होने पर नारीका पुरुष पर प्रेम नहीं हो सकता और जब तक स्वामी पर प्रेम नहीं होता, तब तक सुसन्तान हो ही नहीं सकती। पत्नी यदि भूषणादि द्वारा मनोहरभावसे सुसज्जित रहे, तो सभी घर शोभा पाते हैं अन्यथा वे शोभाहीन हो जाते हैं जिस कुलमें नारियोंका सम्यक् समादर है, वहां देवता भी प्रसन्न रहते हैं और जहां स्त्रियोंकी पूजा नहीं है, उस परिवारके यागादि क्रियाकर्म निष्फल होते हैं। जिस परिवारमें स्त्रियां सदा दुःखित रहती हैं, वह परिवार बहुत जल्द नाश हो जाता है। स्त्रियां जिस परिवारमें असत्कृत हो कर अभिसम्पात देती हैं, वह परिवार अभिचारकृतकी तरह विनष्ट हो जाता है। (मनु ३ अ०)

पत्नीत्व (सं० क्ली०) पत्नी भावे त्व। पत्नीका भाव वा धर्म।

पत्नीमन्त्र (सं० पु०) एक वैदिक मंत्र।

पत्नीयूप (सं० पु०) यज्ञमें देवपत्नियोंके लिए निश्चित स्थान।

पत्नीवत् (सं० त्रि०) स्त्रीकी तरह, स्त्रीके जैसा।

पत्नीव्रत (सं० पु०) अपनी विवाहिता स्त्रीके अतिरिक्त और किसी स्त्रीसे गमन न करनेका सङ्कल्प या नियम।

पत्नीशाला (सं० स्त्री०) पत्न्याः शाला। यज्ञकालमें पत्नीके लिये निर्मित गृहभेद, यज्ञमें वह घर जो पत्नीके लिये बनाया जाता है। यह यज्ञशालाके पश्चिम ओर होता है।

पत्नीसंयाज (सं० पु०) वैदिक कर्मभेद।

पत्नीसंयाजन (सं० क्ली०) पत्नीसंयाजरूप वैदिक कर्मविशेष, विवाहके पश्चात् होनेवाला एक वैदिक कर्म।

पत्नीसंहनन (सं० क्ली०) पत्न्याः संहननं ६-तत्। मेखला द्वारा पति-प्रस्थान यज्ञदीक्षाके लिये यजमान और पत्नीका बन्धनभेद।

पत्न्याट (सं० पु०) अटत्यत्र अट-आधारे घञ्, आटः, पत्न्याः आटः। पत्नीगृह, स्त्रीका घर।

पत्मन् (सं० त्रि०) १ शीघ्र गमन-साधन। २ वायुगमन सदृश गतिविशिष्ट। ३ वायु द्वारा अन्तरीक्षमें गमनशील। ४ पतननिमित्त वृष्टि।

पत्य (सं० क्ली०) पतिका भाव, जैसे सेनापत्य।

पत्यारा (हिं० पु०) पतिआरा देखो।

पसारी (हिं॰ स्त्री॰) पाँति कतार।

पसोरा (हिं॰ पु॰) एक पकवान जो अरुईके पत्तोंको पीठीमें लपेट कर घी या तेलमें तलनेसे तैयार होता है, एक प्रकारका रिकवच।

पत्र (सं॰ क्ली॰) पतति अधात् पत-ष्ट्रन् (सर्व्वधातुभ्यष्ट्रन्। उण् ४।१५८) १ वृक्षावयवविशेष, पत्ता। पर्याय—पलाश छदन, दल, पर्ण, छद पत्र, छादन, बर्ह बर्हण, पत्रक।

पत्तेके बीचको जो मोटी नस होती है वह पौधेकी ओर डंठलसे जुड़ी होती है। यह नस आगेकी ओर उत्तरोत्तर पतली होती जाती है। इस नसके दोनों ओर अनेक पतली नसें निकलती हैं। ये आड़ी और खड़ी नसें ही पत्तेका ढाँचा होती हैं। नसों नसोंका यह जाल हरे आच्छादनसे ढका होता है। बहुतसे पेड़ों और पौधोंके पत्तोंका अन्तिम भाग नोकदार अथवा कुछ कुछ गावदुम होता है पर कुछके पत्ते बिलकुल गोल भी होते हैं। नया निकला हुआ पत्ता ललाई लिये हुए लाल होता है। इस अवस्थामें उसे कोंपल कहते हैं। कुछ पेड़ोंके पत्ते प्रति वर्ष पतझड़के दिनोंमें झड़ जाते हैं उस समय वे प्रायः वर्णहीन होते हैं। इन दो अवस्थाओंके मध्यका सब समय पत्ता हरा ही होता है। पत्ता वृक्ष या पौधेके लिये बड़े कामका अङ्ग है। वायुसे उसे जो आहार मिलता है वह इन्हींके द्वारा मिलता है। निरिन्द्रिय आहारको सेन्द्रिय द्रव्यमें परिवर्तित कर देना इन्हीं का काम है। कुछ वृक्षोंके पत्ते श्वासका भी काम देते हैं। इनके द्वारा पौधे वायुमें उड़नेवाले कीड़ोंको पकड़ कर उनका रस चूसते हैं।

विष्णुके उद्देशसे पत्र निवेदन करनेसे अशेष पुण्य प्राप्त होते हैं। इन सब पत्रोंका विषय भविष्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है—अपामार्गका पत्र भृङ्गराजपत्र खदिर शमी, दूर्वा कुश, दमनक, बिल्व और तुलसी पत्र (पुष्पके साथ) विष्णुके विशेष प्रीतिकर हैं। जो पुष्पके साथ इन सब पत्रों द्वारा विष्णुकी अर्चना करते हैं, वे सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त होते हैं और अन्तमें वे विष्णुलोक जाते हैं। पूर्व पत्रकी अपेक्षा पर पत्र अधिक शुभजनक है।

कालिकापुराणमें लिखा है—अपामार्गपत्र भृङ्गराजपत्र, मल्लिकीपत्र, शताह्वा, खदिर, अर्जुन मरुबक, जोन्पुर, कुश, दूर्वाङ्कुर, शमी आमलक और आम ये सब यथाक्रमसे देवोंके अधिक प्रीतिकर हैं तथा इन सबकी अपेक्षा बिल्वपत्र अधिक है।
(कालिकापु॰ ६८ अ॰)

नारायणको तुलसीपत्र और शिव तथा दुर्गा आदिको बिल्वपत्रकी अपेक्षा और कोई वस्तु प्रिय नहीं है। किन्तु पूजनमें तथा शान्तिस्वस्त्ययन सभी कर्मोंमें विष्णुको तुलसीपत्र प्रदान करनेसे सभी प्रकारके विघ्न जाते रहते हैं। शक्ति पूजनमें भी बिल्वपत्र इसी प्रकार श्रेष्ठ माना गया है।

२ तेजपत्र तेजपत्ता। पर्याय—तेजपत्र तमालपत्र, पत्रक छदन, दल पलाश, वरुक वास, तापस, सुकुमारक वस्त्र तमालक, राम, लोमश वसन, तमाल, सुरभिगन्ध। गुण—कटु तिक्त, उष्ण, कफ, वात, विष, वस्ति और कण्ठ त्रिदोषनाशक।

३ वाहन। ४ गरुपत्र। ५ पालपत्र। पात्यते ज्ञाप्यते अर्थः अनेन पत करणे ष्ट्रन्। ६ लिखनाधार, धातुमय पत्राकृति द्रव्य। पात्यते व्याप्यते स्थानात् स्थानान्तर समाचारोऽनेन। ७ चिट्ठी। पत्र द्वारा सम्वाद एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भेजा जाता है।

नरपतिजय पत्रकौमुदीमें पत्र लिखनेका प्रकार और उसका अन्यान्य विषय विस्तृतरूपमें लिखा है। यहाँ पर बहुत संक्षेपमें लिखा जाता है—

पत्रको लिख कर रंगा देना चाहिये। जो पत्र सुवर्ण द्वारा रंगाया जाता है वह उत्तम, रौप्य द्वारा होनेसे मध्यम और रक्ताग्नि द्वारा होनेसे अधम होता है। एक हाथ या अङ्गुल प्रमाणका पत्र उत्तम, अर्द्धप्रमाण मध्यम और मुष्टि प्रमाण सामान्यतः माना गया है। पत्रभङ्गका विषय इस प्रकार लिखा है—पत्रको तीन समान भागोंमें करके मुड़ना होता है। इन तीन भागोंमेंसे दो भाग छोड़ कर शेष भागमें गद्य या पद्यादि न कुछ भी लिखना चाहिये।

पत्ररचनाका क्रम—राजा अपने शिष्यको पुत्रादि पत्ररचनाका आदेश करे। सिवाय गद्य या पद्यादि

पदयुक्त पत्र प्रस्तुत करके दो पण्डितोंके साथ दो या तीन दिन तक विचार करके जैसा स्वरूप होगा, वैसा ही पत्र पुस्तकमें लिखे और सामान्य पत्रमें लिख कर छिपके राजाको सुनावे। पीछे राजलेखक राजाके आज्ञानुसार शुभपत्र लिखे।

लिखनप्रकार -पत्रके पहले मङ्गलार्थ अङ्कुश, मध्यमें बिन्दु और सप्ताङ्क लिखना चाहिये। तदनन्तर स्वस्ति शब्दका प्रयोग और श्री-शब्द पूर्वक संस्कृत वा चलित भाषामें कुशल लिख कर शुभवार्त्ता लिखनी चाहिये।

कीर्त्ति और प्रीतियुक्त पद्य, पीछे 'किमधिकमित्यादि' लिख कर शेष करना चाहिये। इसके बाद पत्रलय-प्रेरण श्लोक और मत्यादिका अङ्क लिखना होता है। इस प्रकार पत्र लिखनेकी विधि जान कर जो पत्र लिखते हैं, वे स्वदेश और विदेशमें कीर्त्तिलाभ करते हैं। जो शास्त्र नियमको जाने बिना राजपत्र लिखते हैं, वे मन्त्रीके साथ महत् भयम पाते हैं।

पत्र लेनेका नियम—राजपत्र, गुरु, ब्राह्मण, यति, संन्यासी और स्वामी इनके पत्रको आदर पूर्वक मस्तक पर धारण करना चाहिये। मन्त्रीके पत्रको ललाट-देशमें, भार्या, पुत्र और मित्र इनके पत्रको हृदयमें और प्रवीरके पत्रको कण्ठदेशमें धारण करना होता है। इसके सिवा अन्य लोगोंके पत्रधारणमें कोई विशेष नियम नहीं है।

पत्रपाठका नियम—पहले पत्रको पकड़ कर नमस्कार करना चाहिये। पीछे राजाके समीप दक्षिण ओर फैला कर दो बार मन ही मन पढ़ लेना चाहिये, तीसरी बार परिस्फुट भावसे राजाको पढ़ कर सुना देना उचित है। गोपनीय पत्रको निर्जन स्थानमें और शुभपत्रको राजाके आज्ञानुसार सभामें पढ़ सकते हैं। पाठकको इस प्रकार पत्रार्थ सुन कर राजसमीपमें राजाज्ञाका प्रतिपालन करना चाहिये।

पत्र चिह्नका नियम—ऊर्ध्वदेशमें छः अङ्गुल स्थान छोड़ कर वर्त्तुल चन्द्रबिम्बके समान कस्तुरी और कुङ्कुम द्वारा चिह्न करके राजाको पत्र देना होता है। इसी प्रकार मन्त्रीका पत्र कुङ्कुम द्वारा, पण्डित और गुरुका चन्दन द्वारा, स्वामीका सिन्दूर द्वारा, भार्याका अलक्तक द्वारा, पिता, पुत्र और संन्यासीका पत्र चन्दन द्वारा, 'शत्रुओंका कुङ्कुम द्वारा और भृत्यका पत्र रक्तचन्दन द्वारा चिह्नित करना चाहिये। केवल शत्रुको जो पत्र दिया जाता है उसे रक्त द्वारा पत्रचिह्नित करते हैं। सभी पत्रोंके ऊर्ध्वदेशमें सुवर्त्तुल चिह्न करना आवश्यक है।

राजपत्रके कोनेमें छेद नहीं करना चाहिये। राजपत्रादिमें राजाको महाराजाधिराज, दानशौण्ड, सच्चरित्र और कल्पवृक्षस्वरूप इत्यादि यथायोग्य पदस्थान विधेय है। इसी प्रकार मन्त्रीके पत्रमें गुणानुसार प्रवर, प्राज्ञ और सच्चरितादिका उल्लेख, पण्डितके पत्रमें पदतलमें संख्यापूर्वक प्रणाम, शास्त्रार्थ निपुण इत्यादि; गुरुके पत्रमें चरणमें प्रणतिपूर्वक सांख्यसिद्धान्तनिपुणादि; स्वामिपत्रमें सनमस्कार प्राणप्रियादि पद; भार्याके पत्रमें साध्वी और सच्चरितादि तथा प्राणप्रिया प्रभृति पद; पुत्रके पत्रमें आशीर्वादपूर्वक प्राणपुत्र इत्यादि; पितृपत्रमें प्रभुचर्य्य नमस्कार और सच्चरितादि; संन्यासियोंके पत्रमें सकलवाञ्छाविनिर्मुक्त, सर्वशास्त्रार्थपारग इस प्रकार पदविन्यास करना होता है।

गुरुके पत्रमें ६ श्रीशब्द, स्वामीके पत्रमें ५, भृत्यके पत्रमें २, शत्रुके पत्रमें ४, मित्रके पत्रमें ३, पुत्र और भार्याके पत्रमें १ श्रीशब्दका प्रयोग करना चाहिये।

(वररुचिकृत पत्रकौमुदी)

पत्र शब्दसे पहले साधारणतः वृक्ष पत्रका ही बोध होता है, पीछे उस परके लिखित वस्तुका। वर्त्तमान समयमें जो मनोभाव कागज पर लिख कर पत्रके मध्य सन्निवेशित होता है, वही एक समय तालपत्र वा भोजपत्र पर लिख कर व्यवहृत होता था। पूर्व समयमें वृक्ष पत्रादि पर लिखा जाता था, इस कारण इस प्रकार लिखित मनोभाव 'पत्र' वा 'चिट्ठी' नामसे चला आ रहा है।

पूर्व समयमें जब इस लोगोंके देशमें कागजका प्रचार नहीं था, तब भोजपत्र, कदलीपत्र अथवा तालपत्र पर चिट्ठी लिख कर अपने आत्मीय स्वजनोंको मनोभाव जताते थे। आज भी पल्लिग्रामस्थ गुरुमहाशय-की पाठशालामें बालकगण पहले तालपत्रके ऊपर अक्षर

माना लिखना चोखने हैं। कोई कम्पाचर माल को जाने पर चटकीपत्रके ऊपर 'श्रेयस्तादि' पाठ (जिसे जमींदारी या महाजनी चाहि) लिखा करते हैं। पूर्व वयस्क होने पर अर्थात् जब प्रधान लिपकर्म में हस्तक्षेप करनेमें समर्थ हो जाते हैं तब वे कागजके ऊपर लिखना प्रारम्भ करते हैं। अभी प्रायः इस पत्रादिके ऊपर लिखन-प्रथा उठ गई है। वैष्णवमात्र उन्होंसा देशसे प्रेरित हो एक तालपत्र पर लिखित 'चिट्ठी (मात्रा पत्र) और प्राचीन पत्रादिको नकल लिख कर नाना देशोंमें भेजो जाती है। विवाहादि कार्य स्थिर हो जाने पर शुभ दिनमें शुभलग्नमें विवाहबन्धन दृढ़ करनेके लिये दस पाँच मनुष्योंके सामने एक कागज पर विवाहके पात्र और पात्री तथा वरकर्त्ता और कन्या कर्त्ता एवं विवाहके लग्न मास और दिन" लिखित कर जिस कागज पर लिखा जाता है उसे भी पत्र कहते हैं। यूरोप देशोंमें जिस प्रकार विवाहका Contract लिख कर रजिष्ट्री होती है उस लोगोंमें भी उसी प्रकार सामीप कुटुम्बोंके सामने उस पत्र पर चन्दन और रुपयेका छाप दे दिया जाता है। उसके बाद वह दो दे कर दोनों पक्षवाले यह स्वीकार करते हैं, कि हम दोनों इस सम्बन्धमें आबद्ध रहेंगे। चोठी देखो।

पत्रक (सं० क्लो०) पत्र स्वार्थे कन् तदिव कायति कै-क। १ वृक्षका पत्र, पत्ता। २ पत्रश्रेणी, पत्तीकी लड़ी। ३ तेजपत्र, तेजपत्ता। ४ शान्तिक शाक शान्ति शाक। ५ पत्रामलक, हाकका पेड़।

पत्रकल्प (सं० क्लो०) १ पत्रका कपड़ा सम्भवनाका दिया हुआ पत्तेका चूर। तिन पत्र आने पर गन्ध पत्रकोंमें मन्त्रको हटिके लिये जो कुछ दिया जाता है, उसे पत्रकल्प कहते हैं। २ महासुगन्धित तैल, सुगन्धदार तैल।

पत्रकाहला (सं० स्त्री०) पत्रकाणां काहला शब्दः। १ पत्रशब्द, पत्तोंके हिलनेसे होनेवाला एक प्रकारका शब्द। २ पिपीलिका।

पत्रकृच्छ्र (सं० पु०) पर्णै पत्र-साध्य साध्य कृच्छ्र। व्रतविशेष, एक व्रत जिसमें पत्तोंका काढ़ा पी कर रहा जाता है।

पत्रगुप्त (सं० पु०) पत्राणि गुप्तानि यस्य। स्नुही वृक्षभेद, तिधारा, थूहर।

पत्रघना (सं० स्त्री०) पत्रैर्घन घनं यस्याः पत्र बाहुल्यात् तथा त्व। सातला वृक्ष, थि वृक्ष।

पत्राङ्ग (सं० क्ली०) पत्रमङ्गमस्य पत्र-वापि यम् यत्र ग्यादित्वात् साधु। पत्राङ्ग रक्तचन्दन, बक्कम।

पत्रचारिका (सं० स्त्री०) मौक्तिक शिराभेद।

पत्रच्छेदक (सं० त्रि० पत्तको छेदनेवाला, जैसे कारीगर।

पत्रच्छेद्य (सं० त्रि०) जिसपत्र जिससे छेदने चाहें हो।

पत्रज (सं० पु०) तेजपत्र, तेजपात।

पत्रझावक (सं० पु०) चटोम और ताम्रपत्रोंका चाबक, वह मल जो परवल और ताड़के पत्तोंसे बुधाई जाय।

पत्रझङ्कार (सं० पु०) पत्रेषु झङ्कारस्तद्वत् शब्दोऽस्य। पुरोहीतक।

पत्रणा (सं० स्त्री०) पत्रैः बाणो वो निर्मित पत्र। शरपत्र रचना।

पत्रतण्डुली (सं० स्त्री) पत्रेषु तण्डुलवत् शिक्तो यस्याः मायं चादित्वादच्, ततो गौरादित्वात् ङीप्। यवतिक्ता लता।

पत्रतरु (सं० पु०) पत्रप्रधानस्तरुः। विट्खदिरवृक्ष, दुर्गन्ध खैर।

पत्रतालक (सं० क्ली०) सं पत्र हरिताल।

पत्रदारक (सं० पु०) पत्रवत् दारयति इत्यादि पति ए-ठिन् ण्वुल। करपत्र, करौतका पेड़।

पत्रद्रुम (सं० पु०) तालवृक्ष ताड़का पेड़।

पत्रनाडिका (सं० स्त्री०) पत्रस्य नाडिका। पत्रशिरा, पत्तेको नस।

पत्रनामक (सं० क्लो०) तेजपत्र, तेजपत्ता।

पत्रपरशु (सं० पु०) पत्रं चार्तुर्निर्मि तपत्राकारे परशुरिव, तच्छेदकत्वात् तथात्वं। स्वर्णकार प्रयुक्त यन्त्रभेद, सोनार लोहार आदिका एक औजार, छेनी।

पत्रपा (सं० स्त्री०) पत्रपत्रमिति पत्र-वप-घन् निपात नादकारलोपः। पत्रपा, चाकू।

पत्रपाल (सं० पु०) पत्रवत् पल्लते प्राप्यतेऽसौ पत्र-पाल घञ्। आयता छुरिका, लम्बा छुरा या कटार।

पत्रपाली (सं० स्त्री०) पत्रपाल-ङीप्। १ कतरनी,

कैंची, कतरनी। २ वाणका पिछला भाग।

पत्रपाश्या (सं० स्त्री०) पाशानां समूहः पाशा, पत्राणां पाश्या। स्वर्णादिरचित ललाटभूषण, टीका, तिलक।

पत्रपिशाचिका (सं० स्त्री०) पत्रैः पत्रेण वा पिशाचीव, इवार्थे कन्। १ जलवी, जलधारणसाधन यन्त्रभेद। पर्याय—खर्पर, वारिवा, मूर्द्धखोल। २ मस्तक पर पलाशपत्रबन्धन।

पत्रपुष्प (सं० पु०) पत्रं पुष्पमिव यस्य। १ रक्ततुलसी, लाल तुलसी। २ एक विशेष प्रकारकी तुलसी जिसकी पत्तियां छोटी छोटी होती हैं। ३ लघु उपहार, छोटी भेंट।

पत्रपुष्पक (सं० पु०) पत्रपुष्प इव कायते कै-क। भूर्ज-पत्र, भोजपत्र।

पत्रपुष्पा (सं० स्त्री०) पत्रपुष्प टाप्। १ तुलसी। २ छोटे पत्तोंकी तुलसी।

पत्रबन्ध (सं० पु०) पत्राणां बन्धो बन्धनं यस्मिन्। पुष्प-रचना, पत्र पुष्पादिकी सजावट।

पत्रबाल (सं० पु०) पत्रवत् बल्यतेऽस्मिन् बल-अधि-करणे घञ्। तुलावट, लेपनी, डाँड, बल्ली।

पत्रभङ्ग (सं० पु०) पत्राणां लिखितपत्राकृतीनां भङ्गो विचित्रता यत्र। १ स्तन और कपोलादिमें कस्तूरि कादि रचित पत्रावली, वे चित्र या रेखाएं जो सौन्दर्य-वृद्धिके लिये स्त्रियां कस्तूरी केसर आदिके लेप अथवा सुनहले रुपहले पत्तोंके टुकड़ोंसे भाल, कपोल, स्तन आदि पर बनाती हैं। पर्याय—पत्रलेखा, पत्रवल्ली, पत्र-लता, पत्राङ्गुली, पत्राङ्गुलि, पत्रभङ्गि, पत्रभङ्गी, पत्रक, पत्रावली। २ पत्रभङ्ग बनानेकी क्रिया।

पत्रभङ्गी (सं० स्त्री०) पत्रभङ्ग देखो।

पत्रभद्र (सं० पु०) एक प्रकारका पौधा।

पत्रमञ्जरी (सं० स्त्री०) पत्राणां मञ्जरी १ पत्रका अग्रभाग, पत्तेका अगला हिस्सा। २ पत्राकार मञ्जरी-युक्त तिलकभेद, एक प्रकारका तिलक जो पत्रयुक्त मञ्जरीके आकारका होता है।

पत्रमाल (सं० पु०) पत्राणां माला यत्र। वेतसवृक्ष, वेंतका पेड़।

पत्रमाला (सं० स्त्री०) पत्राणां माला। पत्रसमूह, पत्तों-की माला।

पत्रमूल (सं० क्ली०) पत्राणां मूलं। पत्रका मूल, पत्ते-की जड़।

पत्रयौवन (सं० क्ली०) पत्राणां यौवनं यत्र। पल्लव, नया पत्ता, कोंपल।

पत्ररचना (सं० स्त्री०) पत्रभङ्ग।

पत्ररथ (सं० पु० स्त्री०) पत्रं पक्षो रथो यानमिव यस्य। पक्षी, चिड़िया।

पत्ररेखा (सं० स्त्री०) पत्ररचना देखो।

पत्रल (सं० क्ली०) १ पतलदुग्ध, पतला दूध। २ द्रुघ्न, पतला दही।

पत्रलता (सं० स्त्री०) पत्राकारा लता यत्र। १ पत्राकार तिलकभेद। २ पत्रप्रधानलता, वह लता जिसमें प्रायः पत्ता ही पत्ता हो।

पत्रलवण (सं० क्ली०) पत्रविशेषेण पक्वं लवणं। सुश्रुतोक्त लवणभेद, एक प्रकारका नमक। यह एरण्ड, मोखा, अड़ूस, करंज, अमिलतास और चीतेके हरे पत्तोंसे निकाला जाता है। इन सब पत्तोंको खूब कूट कर घी या तेलके किसी बरतनमें रखते और ऊपरसे गोबर लीप कर आगमें जलाते हैं। यह नमक वात-रोगोंमें लाभकारक होता है।

पत्रलेखा (सं० स्त्री०) पत्राणां कस्तूरिकादिरचित-पत्राकृतीनां लेखा रचना। पत्रभङ्ग, साटी।

पत्रवर्ण (सं० पु०) मरवर्णवृक्ष।

पत्रवल्लरी (सं० स्त्री०) पत्रयुक्ता वल्लरीव। १ तिलक-भेद। २ पत्रभङ्ग।

पत्रवल्ली (सं० स्त्री०) पत्राणां रचितपत्राकृतीनां वल्ली लतेव। १ पत्रभङ्ग। २ रुद्रजटा। ३ पलाशी लता। ४ पर्णलता। ५ पान।

पत्रवाज (सं० पु०) १ पक्षी, चिड़िया। २ बाण, तीर।

पत्रवाह (सं० पु०) पत्रेण पक्षच्छेदेन उह्यते इति वह-घञ्। १ वाण, तीर। २ पक्षी, चिड़िया। ३ हरकारा, चिट्ठीरसां। (त्रि०) पत्रं लिपिं वहतीति वह-अण्। ४ लिपिवाहक।

पत्रवाहक (सं० पु०) पत्रवहनकारी, पत्र ले जानेवाला, चिट्ठीरसां, हरकारा।

पत्रविशेषक (सं० क्ली०) पत्रमिव विशेषो यत्र कप्। १ तिलक। २ पत्रभङ्ग, साटी।

पत्रविष (स० स्त्री०) पत्तोंमें जिसका विष हो, वह विष।

पत्रवृश्चिक (स० स्त्री०) पत्रस्थित वृश्चिक। पत्राकार वृश्चिकभेद, पतपिछिया पतबिछिया।

पत्रवेष्ट (स० पु०) पत्रमिव वेष्टते वेष्ट अण् कि यम। १ ताड़ङ्क, तरकी। २ करनफूल नामका कानमें पहनने का गहना।

पत्रव्यवहार (स० पु०) चिट्ठी लिखने और उत्तर पाने इत्यादिकी क्रिया या भाव, खतकिताबत।

पत्रशबर (स० पु०) प्राचीनकालकी एक असभ्य जाति।

पत्रशाक (स० पु०) पत्रप्रधानं शाकं शाकपार्थिवादि समास। मध्यपदलोपी समास। वह पौधा जिसके पत्तोंका साग बना कर खाया जाता हो।

पत्रश्रेणी (स० स्त्री०) पत्रस्य श्रेणि। १ पत्रमत्त झाड़ी। २ पत्रपंक्ति पत्तोंकी माला। ३ पत्रसमूह, पत्तोंकी भंस।

पत्रश्लिष्ट (स० स्त्री०) पत्रं श्लिष्टं मिव यस्या ङीष्। मुसिकपर्णिका, मूसाकानी नामकी लता।

पत्रश्रेणी (स० स्त्री०) पत्राणां श्रेणीव। १ द्रवन्तीलता, मूसाकानी। २ दन्तपङ्क्ति, पत्रावली।

पत्रश्रेष्ठ (स० पु०) पत्रं श्रेष्ठं यस्य। बिल्ववृक्ष, बेल का पत्ता। यह पत्ता महादेव और दुर्गाका अत्यन्त प्रीतिकर है इसीसे पत्तोंमें श्रेष्ठ माना गया है।

पत्रसुन्दर (स० पु०) पत्रं सुन्दरं यस्य। अप्रसिद्ध वृक्षविशेष।

पत्रसूचि (स० पु०) पत्राणां सूचि रिव। कण्टक काँटा।

पत्रहिम (स० पु०) पत्रेषु हिमं अस्मिन् दिने। हिम दुर्दिन।

पत्रा (हि० पु०) १ तिथिपत्र, जन्त्री पञ्चांग। २ पत्ता, पत्रं पन्ना।

पत्राङ्ग (स० क्ली०) पत्रमिव आङ्गं यस्य। १ रक्तपद्म, रक्तचन्दन। २ तालीशपत्र।

पत्राङ्गा—कामरूपके अन्तर्गत गोपीतके दक्षिण भाग स्थित एक नदी।

पत्राङ्ग (स० क्ली०) पत्रमिव अङ्गं यस्य। १ रक्तचन्दन, बावचन्दन। २ रक्तचन्दन सदृश काष्ठविशेष पतङ्ग। ३ भूर्जपत्र, भोजपत्र। ४ पद्मक, कमलगट्टा।

पत्राङ्गासव (स० पु०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पतङ्ग और खैरकी लकड़ी, वकुल और शिरसकी छाल, श्यामालता, गन्धमूल, वनतुलसीकी कोंपल, आमकी गुठलीका गूदा, दारुहरिद्रा, चिरायता, पलाशका फूल, जीरा, सोंठ, रसाञ्जन, अमूर, मुनक्का, कुल म लवङ्ग प्रत्येक एक पल। इन सब द्रव्योंको अच्छीभांति चूर कर किसी एक बरतनमें रखते हैं। पीछे उसमें द्राक्षा २० पल, धवका फूल १६ पल चीनी १२८ सेर, मधु ४ सेर, जल १२८ सेर डाल कर एक मास तक रख छोड़ते हैं। बाद पात्र बन्द करके हिम घरमें निक्षेप करतेसे श्वेत और रक्तप्रदर तथा ज्वर शूल वेदना ज्वर पाण्डु आदि रोग अच्छे हो जाते हैं।

पत्राड़्गि (स० स्त्री०) पत्रं पाड़ुनिरिव यस्य। पत्रमत्त झाड़ी।

पत्राञ्जन (स० क्ली०) पत्र लेखनयत्रमञ्जनमिव पत्र-पत्र करके व्यूह। मसी, काली स्याही।

पत्राढ्य (स० क्ली०) पत्रारात्य। १ पिप्पलीमूल, पिपरामूल। २ पर्वततृण पहाड़ पर होनेवाली एक घास। ३ गन्धद्रव्यविशेष एक प्रकारकी सुगन्धित घास। ४ पत्राङ्गचन्दन। ५ कमलगट्टा। ६ तालीश पत्र।

पत्राख्य (स० क्ली०) १ पतङ्ग, बक्कम। २ लालचन्दन।

पत्राट्या (स० स्त्री०) पत्रे पत्र यस्याः। तुलसिका पत्र-मोगीका नाम।

पत्राली (स० स्त्री०) पत्राणां आलीरिव। १ पत्रावली। २ पत्रश्रेणी।

पत्राह्व (स० पु०) पत्रं अश्वमें आह्वय। १ काशातृण। २ वकृदम।

पत्रावलि (स० स्त्री०) पत्राणां पत्राङ्गानोम् आवलि प ङ्क्तिरिव रचना यस्याः। १ गैरिक गेरू। २ पत्रश्रेणी।

पत्रावली (स० स्त्री०) पत्रावलि वाकृत्कारात् ङीष्। १ पत्रमत्त झाड़ी। २ पत्तोंकी पंक्ति। ३ नवदुर्गासम्बा दानक मधुमिश्रित यवचूर्णयुक्त नवायवन-पत्र। कोई चूर्णको मधुमें मिला कर जो पीपलके पत्तोंमें रख नवदुर्गा को दान करना होता है।

"अपाचो तिथि संघे तु पत्रे चाश्वत्थपंक्तके ।
कथाह पत्रावली देयं मधुना यवचूर्णकम् ॥"
(कैवरतन्त्र)

पत्रिका (सं० स्त्री०) पत्री एव, स्वार्थे कन्, ततो ह्रस्वः। १ पत्री, चिट्ठी, खत। २ कोई छोटा लेख या लिपि। ३ कोई सामयिक पत्र, समाचारपत्र, अखबार। प्रशस्त पत्रं विद्यते यस्याः, पत्र-ठन्। ४ कटली आदि नव-पत्रिका। ५ कर्पूरभेद एक प्रकारका कपूर।

पत्रिकाख्य (सं० पु०) पत्रिका आख्या यस्य। १ कपूर-भेद, एक प्रकारका कपूर, पानकपूर। २ पत्रिका-नामक।

पत्रिन् (सं० पु०) पत्रं पक्षो विद्यते यस्य। पत्र-इनि। १ वाण, तीर। २ पक्षी, चिड़िया। ३ श्येन, बाज। ४ रथी। ५ पर्वत, पहाड़। ६ वृक्ष, पेड़। ७ ताल, ताड़। ८ श्वेतकिणिहीवृक्ष। ९ गङ्गापत्री। (त्रि०) १० पत्रविशिष्ट, जिसमें पत्ते हों।

पत्रिणी (सं० स्त्री०) पत्रिन् स्त्रियां ङीप्। नवाङ्कुर, पल्लव, कोंपल।

पत्रिवाह (सं० पु०) पत्रवाहक, हरकारा, चिट्ठीरसाँ।

पत्री (सं० स्त्री०) पत्र-स्त्रियां ङीप्। १ लिपि, पत्र, चिट्ठी। २ दमनकवृक्ष, दौनेका पेड़। ३ महासुगन्धित तैल। ४ गङ्गापत्री। ५ दुरालभा। ६ खदिरवृक्ष। ७ तालवृक्ष। ८ जातीपत्री। ९ महाविजपत्र।

पत्री (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जिसे हाथमें पहनते हैं। इसे जहांगीरो भी कहते हैं।

पत्रोपस्कर (सं० पु०) पत्रमेव उपस्कर उपकरणं यस्य। कासमर्दवृक्ष, कसौंदी।

पत्रोर्ण (सं० क्ली०) पत्रजा ऊर्णा साधनत्वेनास्त्यस्य अर्श आदित्वादच्। १ धौतकौषेय, रेशमी कपड़ा। (पु०) पत्रेषु ऊर्णा यस्य। २ श्योनाकवृक्ष।

पत्त्य (सं० पु०) पत्रस्य हितं यत्। श्योनाकवृक्ष।

पत्मन् (सं० पु०) पत भावे मनिन्। १ पतन, नाश। २ पतनसाधन।

पत्वन् (सं० पु०) पतत्वत पत आधारे वनिप्। मार्ग, रास्ता।

पत्सल (सं० क्ली०) पतति गच्छति अस्मिन् पत-सरन् रस्य लश (पतेरश्च लः। उण् ३।७४) पन्था, मार्ग, रास्ता।

पत्सुतस (सं० अव्य०) पत्सु, तस्। पादमें।

पथ (सं० पु०) पथति गच्छति पथ-घञर्थे अधिकरणे-क। १ पन्थ, मार्ग, राह। २ व्यवहार या कार्य आदिकी रीति विधान।

पथ (हिं० पु०) पथ्य, रोगके लिये उपयुक्त हलका आहार।

पथक (सं० पु०) पथे कुशलः, पथ कन्। १ मार्ग कुशल, पथ जानने या बतलानेवाला। २ प्रान्त, मार्ग, रास्ता। ३ कपिलद्राक्षा।

पथकल्पना (सं० स्त्री०) इन्द्रजाल, जादूका खेल।

पथगामी (हिं० पु०) पथिक, रास्ता चलनेवाला।

पथत् (सं० पु०) पथति पथ-शतृ। १ गमनकर्त्ता, वह जो जाता हो। २ पथ, रास्ता, राह।

पथचारी (हिं० पु०) रास्ता चलनेवाला।

पथदर्शक (सं० पु०) राह दिखानेवाला, रास्ता बतलानेवाला।

पथनार (हिं० स्त्री०) १ गोबरके उपले बनाना या थापना, पाथना। २ पीटने या मारनेकी क्रिया।

पथप्रदर्शक (सं० पु०) मार्गदर्शक, रास्ता दिखानेवाला।

पथरकला (हिं० पु०) एक प्रकारकी बन्दूक या कड़ाबीन जो चकमक पत्थरके द्वारा अग्नि उत्पन्न करके चलाई जाती थी, वह बन्दूक जिसकी कल या घोड़ेमें पथरी लगी रहती हो। इस प्रकारकी बन्दूकका व्यवहार पहले होता था, अब नहीं होता है।

पथरचटा (हिं० पु०) १ पाषाणभेद या पखानभेद नामकी ओषधि। २ एक प्रकारकी छोटी मछली जो भारत और लङ्काकी नदियोंमें पाई जाती है। यह मछली एक बालिश्त लम्बी होती है।

पथरना (हिं० क्रि०) औजारोंको पत्थर पर रगड़ कर तेज करना।

पथराना (हिं० क्रि०) १ सूख कर पत्थरकी तरह कड़ा हो जाना। २ नीरस और कठोर हो जाना। ३ स्तब्ध हो जाना, जड़ हो जाना, सजीव न रहना।

पथरिया—मध्यप्रदेशके दमोह जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २३° ५३' उ० और देशा० ७९° १८' पू०के

मध्य अवस्थित है। यहां सरकारी विद्यालय, औषधालय और डाकघर गया है।

पथरी (हिं॰ स्त्री॰) रोगभेद मूत्रकृच्छ्र। इस रोगका संस्कृत नाम है अश्मरी।

सुश्रुतमें इस रोगका विषय इस प्रकार लिखा है— अश्मरी चार प्रकारकी है। श्लेष्मा ही उनका आधार है। श्लेष्मा, वायु, पित्त और शुक्रसे यह रोग उत्पन्न होता है। अपथ्यकारी व्यक्तिको श्लेष्मा कुपित हो कर जब वस्तिदेशमें आश्रय लेती है तब यह रोग होता है। यह रोग होनेसे वस्तिदेशमें पीड़ा, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, वस्ति, शिर, मुष्क और उपस्थमें वेदना, ज्वर, देहकी अवसन्नता और मूत्रमें बकरी सी गन्ध होती है। ये सब पूर्वलक्षण होने पर कारणसे दबे वेदना, मूत्रका वर्णदोष और आकुलता तथा आविलता होती है। रोग उपस्थित होने पर पेशाब निकलते समय नाभि, वस्ति सेवनी और उपस्थ इनमेंसे किसी न किसी स्थान पर वेदना अवश्य होती है। धावन, लम्घन, सन्तरण, अश्वादिकी पृष्ठ पर गमन या अधिक गमन द्वारा भी वेदना होती है। अति वेगसे श्लेष्मा वर्द्धित हो कर पक्वाशयसे वस्तिमुखमें अवस्थान करके स्रोतका मार्ग रोकती है जिससे मूत्र प्रतिहत हो कर मेढ़्र या मुष्क विदारणकी तरह पीड़ा उत्पन्न होती है। यह वस्तिदेश गुरु और शीतल हो जाता है। श्लेष्मजन्य अश्मरी श्वेत, स्निग्ध, वृहत् कुक्कुटाण्ड या मधूकपुष्पकी तरह वर्णविशिष्ट हो जाती है।

श्लेष्मा पित्तयुक्त होनेसे सञ्चित और पूर्वोक्तरूपसे वृद्धिप्राप्त हो कर वस्तिमुखमें अधिष्ठान पूर्वक स्रोत मार्गको रोकती है। इससे मूत्र प्रतिहत हो कर उष्णता दाह और पाक होनेसे अत्यन्त यन्त्रणा तथा वस्ति ऊष्म वायुयुक्त होती है। पित्ताश्मरी रक्तयुक्त और पीताभ तथा कृष्ण वर्णकी हो जाती है।

श्लेष्मा वायुयुक्त हो कर सञ्चित और पूर्वोक्तरूपसे वर्द्धित होती है। यह वायुयुक्त श्लेष्मा वस्तिमुखमें अधिष्ठान करके नाड़ीपथको रोकता है जिससे तीव्र वेदना उत्पन्न होती है। रोगी जब वेदनासे अत्यन्त कातर हो जाता है तब वह दन्तपेषण, नाभि और मेढ़्देशमर्दन तथा क्रन्दन करता है। ऐसा करनेसे रोगी पतितप्राय हो जाता है। वायुज-अश्मरी—श्यामवर्ण परुष खरस्पर्श, विषम और कदम्बपुष्पकी तरह कण्टकयुक्त होती है। दिवास्वप्न, अशन या अतिरिक्त आहार तथा शीतल, स्निग्ध और मधुरपाक द्रव्य खानेसे प्रायः मालूम पड़ता है, इस कारण पूर्वोक्त तीन प्रकारकी अश्मरी विशेषतः बालकको ही होती है। उनके शरीर और वस्तिदेशका परिमाण अल्प तथा शरीरमें मांस वृद्धि न होनेसे प्रायः पथरी वस्तिदेशसे सहजमें निकाली जाती है।

वयस्क लोगोंको शुक्रजन्य शुक्राश्मरी होती है। मैथुनके अभिघातसे या अतिरिक्त मैथुन द्वारा चलित शुक्र निःसृत न हो कर अन्य पथ हो कर बहने लगता है। पीछे वायु शुक्रको वह शुक्र इन सब स्थानोंमें संग्रहीत हो कर मेढ़ और मुष्क इनके मध्य संचित होता तथा ऐसे सूख जाता है। इससे मूत्रमार्ग आवृत हो कर मूत्रकृच्छ्र, वस्तिवेदना और दोनों मुष्कोंका शोथ होता है। यह स्थान दबानेसे पथरी मिल जाती है।

शर्करा सिकता और भस्माख्य भेद भी पथरीका विकृतिमात्र है। सुश्रुत और भावप्रकाश ग्रन्थका आशय यह है। जिस प्रकार नदी सागरकी ओर जल वहन करती हैं पक्वाशयगत मूत्रवहा नाड़ियां भी उसी प्रकार वस्तिके मध्य मूत्र वहन करती हैं। जो सब नाड़ी आमाशयके मध्यसे मूत्र वहन करती हैं उनके मुख अत्यन्त सूक्ष्म रहनेके कारण देखनेमें नहीं आते। जाग्रत् या स्वप्नावस्थामें मूत्र क्षरित हो कर मूत्राशयको परिपूर्ण कर देता है। किसी एक नूतन घड़ेको जलके मध्य डुबो कर रखनेसे जिस प्रकार चारों ओरसे जल आ कर घड़ेको भर देता है उसी प्रकार वस्तिदेश भी मूत्र द्वारा भर जाता है। इस प्रकार वातपित्त या कफ जब मूत्रके साथ मिल कर वस्तिमें प्रवेश करता है, तब पथरी रोग उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार नये घड़ेमें निर्मल जल रखनेसे भी क्रमशः उसकी पेंदीमें कीचड़ जम जाता है, उसी प्रकार वस्तिके मध्य पथरी जमती है। आकाशीय वायु अग्नि और विद्युत् अग्नि द्वारा जिस प्रकार जल संहत हो कर करकेके रूपमें परिणत हो जाता है, उसी प्रकार वस्तिको सञ्चालित श्लेष्मा वायु और उष्णता द्वारा संहत हो कर पथरी उत्पन्न

करती है। वायुके सरल रहनेसे वस्तिदेशमें मूत्रसञ्चारित होता है, इसका विपरीत होनेसे नाना प्रकारके विकार उपस्थित होते हैं। मूत्राघात आदि सबोंकी उत्पत्ति वस्तिदेशसे बतलाई गई है।

(सुश्रुत निदानस्था० ४ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि पथरी रोग चार प्रकारका होता है, वातज, पित्तज, कफज और शुक्रज। इन चार प्रकारकी पथरियोंके मध्य वातजादि त्रिविध श्लेष्माश्रित है। शुक्रज पथरी केवल शुक्रसे होती है। उपयुक्त चिकित्सा नहीं होने पर यह रोग कृतान्तकी तरह प्राणघातक हो जाता है। किसी किसीका कहना है, कि शुक्राश्मरी भी श्लेष्माश्रित होती है।

पथरीका निदान—जब वायु वस्तिस्थित शुक्रके साथ मूत्रको और पित्तके साथ कफको सुखा देती है, तब जो पित्तमें जिस प्रकार गोरोचना उत्पन्न होती है, उसी प्रकार पथरी रोग होता है। सभी प्रकारकी पथरी त्रैदोषिक है। इनमेंसे दोषकी प्रधानताके अनुसार वातजादि भेदसे नामकरण हुआ करता है।

पथरीका पूर्वलक्षण—पथरी होनेसे पहले वस्तिदेशमें आध्मान, वस्तिके निकटस्थ चतुःपार्श्वमें अत्यन्त वेदना, छागमूत्रकी तरह मूत्रमें गन्ध, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि होती है।

इसका सामान्य लक्षण—यह रोग उत्पन्न होनेसे नाभि, सेवनी और मूत्राशयके ऊपरी भागमें वेदना होती है। पथरीसे जब मूत्रद्वार बंद हो जाता है तब विच्छिन्न धारामें मूत्र निकलता है। मूत्ररन्ध्रसे पथरीके हट जाने पर बिना क्लेशके गोमेदककी तरह किञ्चित् लोहितवर्ण स्वच्छ मूत्र निकलने लगता है। यदि पथरी सञ्चरणके हेतु मूत्रवहा स्रोतमें क्षत हो जाय, तो रक्तसंयुक्त मूत्र निकलता है और कुन्थन करनेसे अत्यन्त वेदना होती है।

वातोत्पन्न अश्मरीका लक्षण—वातज पथरीमें पीड़ित व्यक्ति आर्त्तनादके साथ दाँत पीसता है और उसके शिश्न तथा नाभिदेशमें पीड़ा होती है। मूत्रत्यागके समय शब्दके साथ मल त्याग होता है और पीछे बुंद बुंदसे मूत्र निकलता है। यह वातज पथरी श्यामवर्ण रूक्ष और कण्टक परिवेष्टित होती है।

पित्तज पथरी रोगमें—मूत्राशयमें दाह और अग्नि द्वारा दग्ध होता है, ऐसा मालूम पड़ता है। यह भिलावेंके बीजके सदृश होती तथा इसका वर्ण रक्त, पीत या कृष्णवर्ण होता है।

श्लेष्माश्मरी रोगमें—रोगीका मूत्राशय शीतल, गुरु और सुई चुभाने सी वेदना होती है। यह पथरी बड़ी, चिकनी, सफेद वा कुछ पिङ्गलवर्ण होती है।

यह तीनों प्रकारकी अश्मरी प्रायः बचपनमें ही उत्पन्न होती है। बचपनमें मूत्राशय छोटा और अल्पमांसविशिष्ट होता है। इसासे शुक्रक्रियाके बाद पथरी सहजमें आकर्षण और ग्रहणकी जा सकती है।

शुक्राश्मरी—शुक्रवेग रोकनेसे वयःप्राप्त व्यक्तियोंको यह रोग होता है। बालकोंके शुक्रवेग धारण करनेसे अहितकी सम्भावना नहीं है। जब कामवेगवशतः स्वस्थानच्युत शुक्र स्खलित न होकर वायु कर्तृक शिश्न और मुष्कद्वयके मध्यगत वस्तिमुखमें धृत और शोषित हो जाता है, तब शुक्राश्मरी होती है। इस शुक्रज पथरीमें मूत्राशयमें वेदना और बहुत कष्टसे मूत्र निकलता है तथा दोनों मुष्क सूज जाते हैं। इसके उत्पन्न होनेसे ही शुक्र गिरने लगता है। शिश्न और मुष्कको दबानेसे पथरी भीतर घुस जाती है।

शर्करा और सिकतारोग पथरीका अवस्थान्तर मात्र है। पथरी जब वायु कर्तृक भिन्न अर्थात् चीनी-कणके सदृश होती, तब उसे शर्करा और इसी प्रकार जब वालुकाकण-सी होती है, तब उसे सिकता कहते हैं। शर्करा और सिकता इन दोनोंमें प्रभेद यह है, कि शर्कराकी अपेक्षा सिकताका रेणुसमूह सूक्ष्म होता है। वायुकर्तृक प्रभिन्न शर्करा और सिकतारोगमें यदि वायु स्वपथगामिनी हो, तो मूत्रके साथ वे रेणु निकल आते हैं और वायुके विपथगामी होनेसे वे निकलने नहीं पाते तथा मूत्रस्रोतके साथ संलग्न होनेसे दुर्बलता, शरीरकी अवसन्नता, कृशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पाण्डु, पिपासा, हृद्रोग और वमि आदि उपद्रव होते हैं। पथरीमें यदि रोगीकी नाभि और मुष्कद्वयमें शोथ तथा मूत्ररोध हो जाय, तो रोगीका जीवननाश होता है।

इसकी चिकित्सा—वातजन्य पथरीके पूर्व लक्षण

उपस्थित होनेसे स्नेहादि द्वारा चिकित्सा करनी होती है। कपूर, मदिरा, पाषाणभेदी, शोभाञ्जन, वरुण, गोक्षुर और गाम्भारी इनके काढ़े में शिलाजतु, यवक्षार और सैन्धव चूर्ण डाल कर पान करनेसे पथरी रोग प्रशमित होता है। यह अग्निप्रदीपक और पाचक है। इसका नाम कुष्ठादिकषाय है।

इलायची, पीपर, यष्टिमधु, पाषाणभेदी, रेणुका, गोक्षुर, अडूस और एरण्डका मूल, इनके काढ़े में १ या २ माशा शिलाजतु डाल कर पान करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। इसका नाम है एलादिक्वाथ। वरुण छालके काढ़े में सोंठचूर्ण, गोक्षुर, यवक्षार और पुराना गुड़ डाल कर पान करनेसे श्लेष्मज पथरी विनष्ट होती है। इसका नाम वरुणादिकषाय है। पाषाणभेदाद्य घृत भी इस रोगमें विशेष फलप्रद है।

पित्तजन्य पथरी। कुशाद्यघृत द्वारा वार वमन, दुग्ध या किसी प्रकारका कषायोक्त घृत पान कर सेवन करनेसे पित्तज पथरी और पित्ताश्मरी भी अच्छी हो जाती है।

श्लेष्मज पथरी। वरुणघृत और वरुणादिकषायका सेवन करनेसे श्लेष्मजन्य पथरी आरोग्य हो जाती है।

शर्कराश्मरीरोग। ८ तोला कुलथी को पकाया रस, १२ माशा यवक्षार और ४ माशा गुड़ इन सबको एकत्र मिला कर पान करनेसे शर्कराश्मरी जाती रहती है। इसी तरह औषध प्रायः सर्वमात्रामें ही व्यवहृत होती है। तिल, अपामार्ग, कदली, पलाश, यव और [illegible] इनका क्षार पान तथा मेढ़ाके [illegible] और [illegible] इनके समान भागके चूर्ण में गुड़ मिला कर [illegible] साथ पान करनेसे पथरी मूत्रके साथ बाहर निकल जाती है। पाषाणभेदी, गोक्षुर, एरण्डमूल, वृहती, कण्टकारी और कोकिलाक्ष मूल इनके समान भागके चूर्ण को दूधमें पीस कर दहीके साथ पान करनेसे पथरीरोग नष्ट होता है। त्रुटिचूर्ण दहीके साथ पान करने या दहीके साथ खानेसे भी यह पथरी दूर हो जाती है।

मोरैका बीज अथवा नारियलके फूलको कूट कर पीस कर पान करनेसे थोड़े ही दिनोंके अन्दर पथरी नष्ट हो जाती है। गोक्षुर वरुणत्वक और मयूरका क्षार मधुके साथ पान करनेसे तथा कुलथी को पकाया रस शिलाजतु और यवक्षार एकत्र कर सेवन करनेसे पथरी आरोग्य हो जाती है। कुलथीका काढ़, हरिद्रा, गोक्षुर, प्रियङ्गु, प्रवाल और जपापुष्प इन सब द्रव्योंको दुग्ध काञ्जिरस और [illegible] द्वारा मर्दन करके सेवन करनेसे पथरी नष्ट हो जाती है।

अश्मरीघ्नी क्षार, पाषाणभेदी सोंठ और गोक्षुर इनके काढ़ेमें यवक्षार और चीनी डाल कर पान करनेसे भी उपकार होता है। इसके सिवा वृहद्वरुणाद्य घृत, वरुणतैल और कुशाद्यतैलका व्यवहार करनेसे अश्मरी बहुत जल्द आरोग्य हो जाती है। वरुणत्वक् [illegible], तालमूली, क्षार [illegible], [illegible] इन सब द्रव्योंके साथ खानेसे यह रोग जाता रहता है। वरुणाद्यचूर्ण, वरुणगुड़, कुशाद्य घृत [illegible] और [illegible] आदि इस पथरी रोगमें विशेष फलप्रद है। (भावप्रकाश अश्मरीरोगाधि०) इन सब औषधियोंका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

रसेन्द्रसारसंग्रहको पथरी-चिकित्सामें पाषाणवज्र रस, त्रिविक्रमरस, [illegible] और अश्मरीनाशक ये सब औषधियां लिखी हैं। भैषज्यरत्नावलीके अश्मरी रोगाधिकारमें वरुणादि क्वाथ, वृहद्वरुणादि, कुशाद्य घृत, वरुणघृत, पाषाणभिन्न और आनन्दयोग आदि औषधियां बतलाई गई हैं। इन सब औषधोंका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

यह पथरीरोग महापातकसे हुआ करता है। जिसको यह रोग होता है, उसे प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति पथरीरोगसे मृत्युमुखमें पतित हो तो उसका प्रायश्चित्त किये बिना दहन, वहन और अग्निकार्यादि कुछ भी नहीं होता।

"मूत्रकृच्छ्राश्मरीकास अतीसारभगन्दरी।
दुष्टव्रण [illegible] महापापोद्भवाश्च ये॥
इत्येषामरणेऽपि महापापोद्भवाः स्मृताः॥"

(प्रायश्चित्तप्रक०)

पथरीरोग होनेसे ही पापशान्तिके लिये प्रायश्चित्त अवश्य कर्त्तव्य है। पापशान्ति हो जानेसे रोगका प्रशम-

पथिद्रुम (सं० पु०) पथि मार्गस्थो द्रुमः। खदिरवृक्ष, भर्पोद और।

पथिन् (सं० पु०) पथ गतौ इनि। मार्ग, पथ, रास्ता। पथ कहां किस प्रकारका होना चाहिये उस का विषय देवीपुराणमें इस प्रकार लिखा है। देव मार्ग १० धनु, ग्रामपथ २० धनु, सीमापथ १० धनु और राज पथ १० धनुका होना चाहिये। जो राह बनती है, उनमें सिंह, व्याघ्र, रजस्वला और सौहृमार्गादि नष्ट होते हैं। जिस समयसे शरीरमें तकलीफ मालूम न पड़े, ऐसा पथगमन इन्द्रियपोषक और आयु, बल, मेधा और अग्नि वृद्धिकारक होता है।

पथिमथ (सं० त्रि०) पथाश्रित, राह जानेवाला।

पथिमत् (सं० त्रि०) पथियुक्त।

पथिरक्षस् (सं० पु०) पन्थानं रक्षति रक्ष असुन्। १ यक्षभेद। (त्रि०) २ मार्गरक्षक।

पथिक (सं० त्रि०) पथति गच्छतीति पथ-कन्, (भिक्षिकादयश्च। उण् १।१२८) इति निपातनात् साधु। १ पथिक, राह चलनेवाला। २ मारणाङ्क, बोझ ढोनेवाला। ३ सार्वजनिक। ४ निठुर, कठोर।

पथिषद् (सं० पु०) यक्षभेद।

पथिष्ठा (सं० त्रि०) पथिवर्त्ति मेघ।

पथिस्थ (सं० त्रि०) पथि-तिष्ठति स्था-क। पथमें अवस्थित, जो राहमें स्थित।

पथी (हिं० पु०) पथिन् देखो।

पथीय (सं० त्रि०) १ पथ सम्बन्धी। २ सम्प्रदाय सम्बन्धी।

पथेरा (हिं० पु०) ईंटें पाथनेवाला, कुम्हार।

पथेष्ठा (सं० त्रि०) पथे मार्गे तिष्ठति स्था-क्विप्, अलुक समासः षत्वञ्च। मार्गमें वर्त्तमान, जो मार्गमें हो।

पथौरा (हिं० पु०) वह स्थान जहां उपले पाथे जाते हों, गोबर पाथनेकी जगह।

पथ्य (सं० पु०) पथोऽनपेतम् पथिन् यत् (धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते। पा ४।४।९२) १ हितविशिष्टादि, बढ़िया खाना। २ हितकारक औषधद्रव्यभेद, वह हलका और जल्दी पचनेवाला खाना जो रोगोंके लिये लाभदायक हो। पर्याय—वास्य, हित, आमोय, आयुष्य। ३ सैन्धव, सेंधा नमक। पथिमार्गः हितादित्वात् यत्। ४ हर्रेका वृक्ष छोटी हड़का पेड़। ५ तण्डुलीय शाक। ६ हित, मङ्गल, कल्याण।

पथ्यकारी (सं० स्त्री०) एकत्र शालि, एक प्रकारका शाक धान।

पथ्यका (सं० स्त्री०) मेथिका, मेथी।

पथ्यकारिन् (सं० पु०) वहिक भाण्ड, लाठी।

पथ्यभोजन (सं० क्ली०) पथ्य भोजन। हितभोजन, लाभदायक आहार।

पथ्यशाक (सं० पु०) तण्डुलीय शाक, चौराईका साग।

पथ्या (सं० स्त्री०) पथ्य टाप्। १ हरीतकी, हड़। २ चर्मिटि। ३ चिर्भिटा। ४ वन्ध्याकर्कोटकी वन-केकड़। ५ गङ्गा। ६ आर्याछन्दका एक भेद। इसके और कई अवान्तर भेद है।

पथ्यादि (सं० पु०) क्वाथभेद; हरीतकी, देवदारु, वच, मोथा, कचूर, पटोल इन सब द्रव्योंका क्वाथ। इस क्वाथके सेवन करनेसे आमातीसार प्रशमित होता है।

पथ्यादि—हरीतकी, मञ्जिष्ठा, पिठवन, कचूर, पटोल और देवदारु इन सब द्रव्योंका क्वाथ सेवन करनेसे गुल्मरोगीकी अग्नि प्रदीप्त होती है।

पथ्यादिक्वाथ (सं० पु०) भावप्रकाशोक्त क्वाथौषधभेद, मेघमें एक प्रकारका क्वाथ जो त्रिफला, गुड़ूच, हल्दी, चिरायता और नीम आदिको क्वाथ कर उसमें गुड़ मिलानेसे बनता है। इस क्वाथको नासिकारन्ध्रमें देनेसे भ्रू, कर्ण, चक्षु और शिरःशूल आदि प्रशमित होते हैं। (भावप्रकाश शिरोरोगा०)

पथ्यादिगुग्गुलु (सं० पु०) औषधभेद, एक प्रकारकी दवा।

पथ्यादिघृत (सं० पु०) घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—हरीतकी, कण्टकारक, श्वेतसर्षप, हरिद्रा, सोमराजी, सैन्धव तथा पिप्पली इनके बराबर भागोंको गो-मूत्रमें औटाते हैं। बाद शरीरमें उसका प्रलेप देनेसे कुष्ठरोग प्रशमित होता है।

पथ्यादिक्षीर (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कपूर, तिल और गुड़के समान भागको दूधमें औटा कर सेवन करनेसे परिणामशूल प्रशमित होता है। अथवा भस्मचूर्णको आध तोला गरम जलके साथ पीनेसे भी

परिणामशूल जाता रहता है। लौह, हरीतकी, पिप्पली और सोंठ इनका चूर्ण इनके बराबर बराबर भागोंको आध तोला घी और मधुके साथ सेवन करनेसे परिणामशूल बहुत जल्द आराम हो जाता है।

(भावप्र० परिणामशूलचिकित्सा)

पथ्याद्यचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—हरीतकी, कचूर और यवानीका बराबर बराबर भाग ले कर इसे आध तोला तक, उष्ण जल या कांजीके साथ सेवन करनेसे आमवात, शोथ, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय, आम, हृद्रोग, स्वरभेद और अरुचि नष्ट होती है।

पथ्यापथ्य (सं० क्ली०) पथ्यं रोगिणां हितकरं अपथ्यं अशुभकरं द्वयोः समाहारः। रोगके हित और अहित कारक द्रव्य। रोगमें जो वस्तु हितकर है, उसे पथ्य और जो अहितकर है, उसे अपथ्य कहते हैं। जिस रोगमें जो अपथ्य है, उसका सेवन करनेसे उस रोगकी वृद्धि होती है और जो पथ्य है, उसका सेवन करनेसे वह रोग जाता रहता है। इसका विषय पथ्यापथ्यविनिश्चयमें विस्तार रूपसे लिखा है, पर यहां अत्यन्त संक्षिप्त भावमें दिया जाता है।

नवज्वरमें पथ्य—वमन, अष्टाह लङ्घन, यवागु, स्वेदन, कटु और तिक्तरसका सेवन।

नवज्वरमें अपथ्य—स्नान, विरेचन, सुरतक्रीड़ा, कषाय, व्यायाम, अभ्यञ्जन, दिवानिद्रा, दुग्ध, घृत, वैदल, आमिष, तक्र, सुरा, स्वादु, गुरु और द्रवद्रव्य, अन्न, प्रवात, भ्रमण और क्रोध।

मध्यज्वरमें पथ्य—पुरातन षष्टिक, पुरातनशालि, वार्त्ताकु, शोभाञ्जन, कारवेल्ल, वेत्राग्र, आषाढ़फल, पटोल, कर्कोटक, मूलकपोतिका, मूंग, मसूर, चना और कुलथी आदिका जूस, सोनापाठा, अमृता, वास्तूक, सुपक्व अङ्गूर, कपित्थ, अनार और वैकङ्कत फल, लघु तथा सात्म्य भेषज।

पुराने ज्वरमें पथ्य—विरेचन, छर्दन, अञ्जन, नस्य, धूम, अनुवासन, शिरावेध, संशमन, अभ्यङ्ग, अवगाहन शिशिरोपचार, एण और कुलिङ्ग प्रभृतिका मांस, गाय और बकरीका दूध तथा घी, हरीतकी, पर्वतनिर्झर जल, रेंडीका तेल, लालचन्दन, ज्योत्स्ना और प्रियालिङ्गन।

अतीसाररोगमें पथ्य—वमन, लङ्घन, निद्रा, पुराना चावल, लाजमण्ड, मसूरका जूस, सब प्रकारकी छोटी मछली, शहो, तेल, छागघृत तथा दुग्ध, गोदधि और तक्र, गाय अथवा बकरीके दूध या दहीसे निकाला हुआ मक्खन, नवरम्भापुष्प और फल, मधु जम्बूफल, नीम, शालूक, कपित्थ, मौलसिरी, बिल्व, तिन्दुक, अनार, तिलक, गजपिप्पली, चाङ्गेरी, विजया, अरुणा, आद्र-फल, अफीम, जीरा, गिरिमल्लिका, सब प्रकारके कषाय-रस, दीपन, लघु अन्न और पान।

अतीसारमें अपथ्य—स्वेद, अञ्जन, रुधिरमोक्षण, अम्बुपान, स्नान, व्यवाय, जागरण, धूम, नस्य, अभ्यञ्जन, सब प्रकारके वेगधारण, रूक्ष, असात्म्य भोजन, विरु-द्धान्न, गोधूम, कलाय, जौ, माषयूष, काकमाची (मकोय), निष्पाव, कन्द, मधुशिग्रु, रसाल, पूग, कुष्माण्ड, अलाबु, बदर, गुरु अन्न और पान, ताम्बूल, इक्षु, गुड़, मद्य, अङ्गूर, अन्लवेतसफल, लहसुन, धात्री, दुष्टाम्बु, मस्तु, गन्धवारि, नारियल, स्नेहन, सब प्रकारके पत्रशाक, पुनर्णवा, दुर्वाशाक, लवण और अम्ल।

ग्रहणी रोगमें पथ्य—निद्रा, छर्दन, लङ्घन, पुराना चावल, लाजमण्ड, मसूर तथा मुद्गादिका जूस, निःशेषो-द्धृतसार गव्यदधि, गो वा छागीके दुग्धका नवनीत, बकरीका घी, तिलतैल, सुरा, मत्स्यक, शालूक, मौल-सिरी, अनार, कलका फूल और फल, तरुणबिल्व, लवा (बटेर) और खरगोश आदिके मांसका जूस, सब तरहकी छोटी मछलियां और सर्व कषायरस।

ग्रहणी रोगमें अपथ्य—रक्तस्राव, जागरण, अम्बु-पान, स्नान, वेगविधारण, अञ्जन, स्वेदन, धूमपान, श्रम, विरुद्धभोजन, आतप, गोधूम, निष्पाव, कलाय, जौ, आद्रक, कुष्माण्ड, तुम्बी, कन्द ताम्बूल, इक्षु, बदर, पूग फल, दुग्ध, गुड़, मस्तु, नारिकेल, पुनर्णवा, सब प्रकारके साग, दुष्टाम्बु, अङ्गूर, अम्ल, लवणरस, गुरु अन्न और पान तथा सब प्रकारके यूप।

अर्श रोगमें पथ्य—विरेचन, लेपन, रक्तमोचण, क्षार, अग्निकर्म, शस्त्रकर्म, पुरातनलोहितशालि, जौ, कुलथी, नेवले आदिका मांस, पटोल, घोल, नवनीत, तक्र, सर्षपतैल और वातनाशक अन्नपान।

अर्शरोगमें अपथ्य—आनूप आमिष मत्स्य, पिण्याक दधि, विरुद्ध भोजन निष्पाव बिल्व, तुम्बी, पक्का आम, आतप अनशन वमन वस्तिकर्म, मलरोधन पूर्व और को हवा, वेगरोध और हठयान।

अग्निमान्द्य और अजीर्णादिमें पथ्य—इनमें विशेष प्रकृतिमें पहले वमन पीछे लंघन, आतिशमें स्वेदन, नाना प्रकारके आसव, पुराना सूक्ष्म और लोहित शालि, लाजमण्ड, सुरा, यूष आदिका मांस अथवा नरम-की छोटी मछली, दालचीनी बेंगन, लहसुन, कच्चा कुष्माण्ड नवीन कदलीफल परवल वार्त्ताकु, अनार और अम्लबेतस, अजवाइन, नवनीत घृत, तक्र, तुषोदक, धान्याम्ल कटुतैल, लवणाद्रक, कच्ची मिर्च, मेथी धनिया जीरा, दही पान, कटु और तिक्त रस।

अग्निमान्द्य और अजीर्णादिका अपथ्य—विरेचन, विष्ठा, मूत्र और वायुवेगधारण, अतिरिक्त जल पान, जागरण, विषमाशन, रक्तस्रुतिमत्स्य मांस, जल पान विरुद्ध सर्व प्रकार, कुर्चिका और अधिक ताड़की गरी तथा पिष्टक, पिष्टक आदि गुरुपाक द्रव्य है।

क्रिमिरोगमें पथ्य—आस्थापन कायविरेचन, शिरोविरेचन धूम, पथ्यशाक कुलत्थयूष, पीली सरसोंका पुराना चावल, पटोल वैगन कडुआ तथा फूल कसौंदी, सोविर्चल, हिङ्गु, नितम्ब सर्वफल, गोमूत्र, ताम्बूल सुरा, यमानिका और कटु, तिक्त तथा कषाय रस।

क्रिमिरोगमें अपथ्य—वमि शरीरविधारण विरुद्ध पानाशन दिवानिद्रा, द्रवद्रव्य विदाह, पत्रशाक भोजन, घृत, माष, दधि पक्वान्न मांस, दुग्ध दक्ष और मधुर रस।

रक्तपित्तमें पथ्य—पथ्यसमें वमन ऊर्ध्वगमनमें विरेचन, लंघन ... पुराना शालि, मूंग, मसूर चना अरहर विरुद्ध और शमिधान्य, खरगोश आदिका मांस, कपोत, ... यूष, बकरीका दूध, परवल वैंगन मसाला पुराना कुष्माण्डक, पक्का अनार, खजूर, खोपड़ी नारियल, कदली, ताम्बूल पिपुमदपत्र, तुम्बी कलिका खजूर, गुड़ मिश्री शर्करा, पद्मक, हिमागिर, चंदन चन्दन, मनोऽनुकूल विविध कथा, चौक पवन, सुशीतोपचार विधान, धाराङ्गमानिहम और हिम बालुक।

रक्तपित्तमें अपथ्य—व्यायाम धर्माभिषेवन, रविकिरण, तीक्ष्ण कर्म, कोप, वैगधारण सपथना, दग्धमथ्यपान, स्वेद, धूमस्तुति धूमपान, सुरत, कोप, कुल्थी, गुड़, वार्त्ताकु, तिल, माष सर्षप दही पान मद्य, लहसुन विरुद्धभोजन कटु, अम्ल लवण और विदाहिद्रव्य।

राजयक्ष्मा रोगमें पथ्य—तुलसी बिल्व और सौरा दारा धनत्रधाव और तिक्तादि रस, गेहूं मूंग चना, छाग मांस, नवनीत भार घी, अमावस्या, मधुर रस, मेवा, पनस, पक्का आम चावी, खजूर, नारियल, गोचिक्कण, कच्चा ताड़की गरी, खजूर, मत्स्यपिण्डी, शिखरिणी मदिरा रसाला, कपूर, मृगमद, श्वेतचन्दन, अन्य स्नान सुरभि, मधुतैल, स्नान, वैद्यरचन, पथ्यमिश्रण, अनुलेपन, गीत, वाद्य हैमपूर्ण सुमानसि आदिका मूत्रधारण, होम, मदान, देव और ब्राह्मणपूजा तथा कृपापान।

राजयक्ष्मारोगमें अपथ्य—विरेचन वेगधारण, श्रम, कोप, स्वेद अञ्जन, प्रजागर, साहस कर्म दिवा, रक्तापान, विषमाशन ताम्बूल, हिङ्गु, कुलथी, कषाय, लहसुन बखाहर, पत्र, तिल कषाय सब प्रकारके कटुद्रव्य, पत्रशाक, क्षार, विरुद्धभोजन किसी, कर्कोटक और विदाहिद्रव्य।

कासरोगमें पथ्य—स्वेद, विरेचन, छर्दि, धूमपान आमिष, बकरी का दूध, कानपुरा मूंग और कुलथी का रस मांस, सुरा पुरानी चरवी बाणपुष्प और घृत, मावलीकार वार्त्ताकु वाजममूलम्, कण्टकारी, कामदद, जीवन्ती, खजूर, मालक, ऊर्ध्व, गोमूत्र लहसुन, मुस्ता, गरम पानी, क्षार, मधु, दिवानिद्रा और लघुपाक।

कासरोगमें अपथ्य—वस्ति, मद्य रक्तमोक्षण, व्यायाम दन्तवर्धन आतप, दुष्ट पवन माष निषेवन विरुद्धी, विदाही और विविध द्रव्य, मलमूत्रादिका वेगधारण, अम्ल कन्द सरसों, तुम्बी दुराम्ब, दुराचार, विरुद्ध भोजन, सुख और शीतलजल।

हिक्कारोगमें पथ्य—स्वेदन, वमन, नस्य धूमपान,

विरेचन, निद्रा, स्निग्ध और लघु अन्न, लवण, जीर्ण कुलत्थ, गोधूम, शालि और जौ, एणादिमांस, पक्व कपित्थ, लहसुन, पटोल, रुचिमूल, कृष्णतुलसी, मदिरा, उष्णोदक, माक्षिक, सुरभिजल, वातश्लेष्मनाशक, अन्नपान, शीताम्बुसेक, सहसा त्रास, विस्मापन, भय, क्रोध, हर्ष, प्रियोद्वेग, दग्ध और सिक्त मृदाघ्राण तथा नासिका ऊर्ध्व पीड़न।

हिक्कारोगमें अपथ्य -वात, मूत्र, उद्गार और काम इनके सतत् वेगधारण, रज, अनल, आतप, विरुद्धभोजन, विष्टम्भी, विदाही, रुक्ष और कफजनक द्रव्य, निष्पाव, पिष्टक, माष, आनूप, आमिष, दन्तकाष्ठ, वस्ति, मत्स्य, सर्षप, अम्ल, तुम्बी, कन्द, तैल, भ्रष्ट, गुरु और शीतान्नपान।

स्वरभेदमें पथ्य—स्वेद, वस्ति, धूमपान, विरेचक, कवलग्रह, नस्य, भालशिरावेध, जौ, लोहितशालि, हंसाटवी, सुरा, गोरक्षटक, काकमाची, जीवन्ती, कविमूला, अङ्कुर, पथ्या, मातुलङ्ग, लहसुन, लवणार्द्रक, ताम्बूल, मिर्च और घी।

स्वरभेदमें अपथ्य—कच्ची निर्गुण्डी, बकुल, शालुक, जाम्बर, तिन्दुक, कषाय, वमि, स्वप्न और प्रजल्पन।

छर्दि (सर्दी) में पथ्य—विरेचन, लङ्घन, स्नान, मूजा, लाजमण्ड, पुरातन षष्टिक, शालि, मुद्ग और कलाय, शीधु, जौ, मधु, सुरा, वेत्राग्र, कुकुम्बक, नारिकेल, हरीतकी, अनार, बीजपुर, जायफल, वास, गुड़, करिकेशर, कस्तूरिका, चन्दन, चन्द्रकिरण, हित और मनःप्रीतिकर, भक्त तथा स्वमनोऽनुकूलरूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श।

छर्दि (सर्दी) में अपथ्य—नस्य, वस्ति, स्वेद, स्नेहपान, रक्तस्राव, दन्तकाष्ठ, द्रवान्न, भीति, उद्वेग, रम्भा, बिम्बी, कोषवती, मधुक, चिञ्चा, सुञ्जन, सर्षप, देवदाली, व्यायाम, छविका और अञ्जन।

तृष्णामें पथ्य—शोधन, वमन, निद्रा, स्नान, कवलधारण, दीपदग्ध हरिद्रा द्वारा जिह्वाके अधःशिराद्वयका दाह, कोद्रव, शालि, लाजमक्तु, अन्नमण्ड, शर्करा, मूंग, मसूर और चनेका रस, रम्भापुष्प, तैलकूर्च, अङ्कूर, कपित्थ, कोल, मल्लिका, कुष्माण्ड, अनार, धात्री, ककटी जम्बीर, करमर्द, बीजपुर, गोदुग्ध, तिक्त और मधुर द्रव्य, नागकेशर, इलायची, जायफल, पथ्या, कुकुम्बक, टङ्कन, शिशिरानिल, चन्दनार्द्र, प्रियालिङ्गन, रत्नाभरणधारण और हिमानुलेपन।

तृष्णामें अपथ्य—स्नेह, अञ्जन, स्वेद, धूमपान, व्यायाम, नस्य, आतप, दन्तकाष्ठ, गुरुपथ्य, अम्ल, लवण, कषाय, कटु, स्त्री, खराब पानी और तीक्ष्णवस्तु।

मूर्च्छामें पथ्य—सेक, अवगाह, मणि, हार, शीत, व्यजनानिल, शीत तथा सुगन्धयुक्त पान, धारागृह, चन्द्रकिरण, धूम, अञ्जन, नावन, रक्तमोक्ष, दाह, नखान्तपीड़ा, दशनोपदंश, विरेचन, छर्दन, लङ्घन, क्रोध, भय, दुःखकर शय्या, विचित्र और मनोहर कथा, छाया, शतधौत, सर्पिः, तिक्त वस्तु, लाजमण्ड, मूंगका जूस, गव्यपयः, गुड़, पुराना कुष्माण्ड, पटोल, सोहिञ्जन, हरीतकी, अनार, नारियल, मधुकपुष्प, तुषोदक, लघु अन्न, लालचन्दन, कर्पूर-जल, अत्युग्रगन्ध, अद्भुतदर्शन, उत्कट गीत और वाद्य, श्रम, स्मृति तथा चिन्तन।

मुर्च्छामें अपथ्य—ताम्बूल, पत्रशाक, व्यवाय, स्वेदन, कटु, तृष्णा तथा निद्राका वेगरोध और तक्र।

मदात्ययमें पथ्य—संशोधन, संशमन, स्वपन, लङ्घन, श्रम, एणादिका मांस, हृद्य मद्य, पयः, गुड़, पटोल, अनार, धात्री, नारियल, पुरातन सर्पिः, कर्पूर, शिशिरानिल, धारागृह, मित्रसङ्गम, चामराचर, प्रियालिङ्गन, वद्धतगीतवादित्र, शीताम्बु, चन्दन और स्नान।

मदात्ययमें अपथ्य—स्वेद, अञ्जन, धूमपान, दन्तघर्षण और ताम्बूल।

दाहरोगमें पथ्य—शालिधान्य, मूंग, मसूर, चना, जौ, लाजमण्ड, लाजसक्तु, गुड़, शतधौत, घृत, दुग्ध, नवनीत, कुष्माण्ड, ककटी, सोहिञ्जन, पनस, स्वादु, अनार, पटोल, अङ्गुर, धात्रीफल, सब प्रकारके तिक्त सेक, अभ्यङ्ग, अवगाहन, उत्तमशय्या, शीतलकानन, विचित्रकथा, गीत, शिशिर, मीठी बोली, उशीर, चन्दनलेप, शीताम्बु, शिशिरानिल, धारागृह, प्रियास्पर्श, चन्द्रकिरण, स्नान, मणि और मधुररस।

दाहमें अपथ्य—विरुद्ध अन्नपान, क्रोध, वेगधारण, हाथी और घोड़ेकी सवारी, पन्था, क्षार, पित्तकर द्रव्य,

व्यायाम आतप, शक्र, ताम्बूल मद्य कषाय, तिक्त और क्षार।

वातरोगमें पथ्य—अभ्यङ्ग मर्दन, वस्ति स्नेह स्वेद अवगाहन संवाहन, संशमन, वातघ्नका चर्म, अपनाह मूत्रपान, घ्राण धारण, शिरोवस्ति नस्य आतप तर्पण, दुग्ध दधि, कुलथीका तैल, यथा मधुर स्वादु, पक्व और नवपक्व कुलथीका रस, सूप सामाहिका मांस, पटोल, वार्त्ताकु अनार, तथा लाल, जम्बीर, कन्द तथा गन्धर्वहस्त लिया।

वातरोगमें अपथ्य—चिन्ता प्रजागर, वेगधारण, छर्दि, श्रम, अनशन चना कलाय, मूंग, करीरशाक, शमीर, स्याम नीवारबीज, शालूक, कालशाक, पत्रशाक, विरुद्ध मद्य, क्षार, दुग्धपान, शमन स्तुति और कषाय कटु और तिक्तरस आकाश दुस्थपयान, वज्र मल वायु और दन्तघर्षण।

शूलरोगमें पथ्य—छर्दि, स्वेद, लङ्घन पाचक वर्ति, वस्ति स्निग्ध रेचन, पाचन, गमक्षीर पटोल सोहिञ्जन, वार्त्ताकु, पका आम खजूर कपित्थ, कन्दक पियाल, शालिधान्य आम्रक, मातुलुङ्ग, सोंचरनमक, हिङ्गु, विट, विड़, सैन्धव लवण, रेंड़ीका तेल, सूर्यमित्र, लहसुन जम्बीररस और कुटकी।

शूलरोगमें अपथ्य—विरुद्ध अन्नपान, जागरण, विषमाशन, वध, तिक्त, कषाय, शीतल शुष्क व्यायाम मैथुन मद्य, दन्त लवण, कटु वेगरोध शोक और क्रोध।

हृद्रोगमें पथ्य—स्वेद विरेक, वमन, लङ्घन वस्ति पुरातन रक्तशालि, जाङ्गल मांस और पक्षीका मूंग, मूंग और कुलथीका रस, पटोल, कटशीतल, पुराना कुष्माण्ड रसाल, अनार सम्भालपत्र, नवमलक, रेंड़ीका तेल, सैन्धव, खर्जूर, मद्य, पुराना गुड़, सौंफ, लहसुन हरी-तकी, कुष्ठ, कुरुम्बुर आर्द्रक, गोवार मधु, ताड़का रस, कस्तूरिका, चन्दन और ताम्बूल।

हृद्रोगमें अपथ्य—तृष्णा, छर्दि, मूत्र, वायु, शुक्र वेग, डकार, श्रम, श्वास, निद्रा और अश्रुवेगधारण दूषित जल, कषाय, विरुद्ध, उष्ण गुरु तिक्त, अम्ल, क्षार मधुर दन्तकाष्ठ और रक्तस्रुति।

मूत्रकृच्छ्रमें पथ्य—वातजन्य रोगमें अभ्यङ्ग, निरूह, वस्ति, स्नेह अवगाह उत्तरवस्ति और सेक पित्त जन्य रोगोंमें अवगाह, वस्तिविधि विरेचन, श्लेष्मज रोगोंमें स्वेद, विरेक, वस्ति क्षार, यथाक्रम तीक्ष्ण उष्ण, पुरातन लोहितशालि, गायका दूध, मक्खन और दहीका मट्ठा रस, गुड़ पुराना कुष्माण्डफल पटोल अदरख गोखुरू, कुमारी, गुमास, खर्जूर, नारियल और ताड़का जीवन ताड़का गरी, शीतपान शीतजल और हिमवालुका।

मूत्रकृच्छ्रमें अपथ्य—मद्य, श्रम, सुरत, गजवाजि यान, विरुद्धभोजन ताम्बूल मत्स्य लवण और आर्द्रक, हिङ्गु, तिल, सर्षप, वेगरोध कलाय, अतितीक्ष्ण, विदाही, रुक्ष और अम्ल।

अश्मरीमें पथ्य—वस्ति विरेक वमन, लङ्घन, स्वेद, अवगाह, वारिसेचन, जौ, कुलथी पुराना चावल, शराब पुरातन कुष्माण्ड, वारुण शाक, आर्द्रक, यवक्षार और पथ्यसमावर्त्तन।

अश्मरीमें अपथ्य—मूत्र और शुक्रका वेगधारण, अम्ल विदाही, रुक्ष और गुरु अन्नपान तथा विरुद्ध पान भोजन।

प्रमेहमें पथ्य—लङ्घन, वमन, विरेचन, प्रोत्सर्पण, प्रसन्न दीपन नीवार, यव श्यामाक, गोधूम शालि, चणक, मूंग आदिका सूप शाक, पुरातन सुरा, मधु तथा थोड़ा लहसुन, सोहिञ्जन, खर्जूर, गोखुरू, मूषिकपर्णी, शाक सम्प्रारण, त्रिफला, कपित्थ, जम्बू, कषाय, हाथी और घोड़ेकी सवारी, अतिभ्रमण, रविकिरण और व्यायाम।

प्रमेहमें अपथ्य—मूत्रवेग, धूमपान, स्वेद, रक्तमोक्षण, दिवानिद्रा, नवान्न दधि आनूपमांस निष्पाव, पिष्टान्न, मैथुन शोथोत्पन्न सुरा, अम्ल, तैल, क्षीर, घृत, गुड़ तुम्बी ताड़की गरी, विषमाशन, कुष्माण्ड, इक्षु, स्वादु अन्न, मत्स्य और अभिष्यन्दी।

कुष्ठरोगमें पथ्य—पक्ष पक्षमें वमन मास मासमें विरेचन, प्रत्येक तीन दिनमें नस्य, छः महीनेमें रक्त-मोक्षण सर्पिष्पान पुरातन यवादि शालिधान्य, जाङ्गला मिष, चापाकृपण मेंढ़ाक, पटोल, हरीतकी, कामलाच्ची, नीम, लहसुन, चित्रमोचिका, पुनर्नवा, मेघ-

गुग्गुल, भिलावाँ, पका ताड़, खदिर, चित्रक, नागपुष्प, गाय, गदही, ऊँटनी, घोड़ी और भैंसका मूत्र, कस्तूरिका, गन्धसार, तिक्त, वस्तु और चारकर्म।

कुष्ठरोगमें अपथ्य—पापकर्म, कृतघ्नभाव, गुरुनिन्दा, गुरुधर्षण, विरुद्ध पानाशन, दिवानिद्रा, चण्डांशुताप, विषमाशन, स्वेद, मैथुन, वेगरोध, इक्षु, व्यायाम, अम्ल, तिल, माष, द्रव, गुरु और नवान्न भोजन, विदाही, विष्टम्भीमूलक, आनूप, मांस, दधि, दुग्ध, मद्य और गुड़।

मुखरोगमें पथ्य—स्वेद, विरेक, वमन, गण्डूष, प्रतिसारण, कवल, रक्तमोक्षण नस्य, धूम, शस्त्र और अग्नि-कर्म, तृणधान्य, जौ, मूंग, कुलथी, जाङ्गलरस, पटोल, बालमूलक, कर्पूरनीर, ताम्बूल तप्ताम्बु, खदिर घृत, कटु और तिक्त।

मुखरोगमें अपथ्य—दन्तकाष्ठ, स्नान, अम्ल, मत्स्य, आनूपमांस, दधि, क्षीर, गुड, माष, रुक्षान्न, कठिनाशन, अधोमुख शयन, गुरु, अभिष्यन्दकारक और दिवानिद्रा।

कर्णरोगमें पथ्य—स्वेद, विरेक, वमन, नस्य, धूम, शिराविधन, गेहूं, शालि, मूंग, जौ, हरिणादि, ब्रह्मचर्या और अभाषण।

कर्णरोगमें अपथ्य—विरुद्धान्नपान, वेगविरोध, प्रजल्पन, दन्तकाष्ठ, शिरस्नान, व्यवाय, श्लेष्मन, गुरु द्रव्य, कण्डूयन और तुषार।

नासारोगमें पथ्य—निर्वात-निलयस्थिति, प्रगाढ़ोष्णीय धारण, गण्डूष, लङ्घन, नस्य, धूम, मर्दी, शिरावेध, कटुवर्गका नासारन्ध्र हो कर तीन बार प्रवेशन स्वेद, स्नेह, शिरोभङ्ग, पुरातन यव और शालि, कुलथी और मूंगका जूस, कटु, अम्ल, लवण, स्निग्ध, उष्ण और लघु भोजन।

नासारोगमें अपथ्य—विरुद्धान्न, दिवानिद्रा, अभिष्यन्दी, गुरु स्नान, क्रोध, शकृत्, मूत्र, अश्रुजलका वेगधारण, शोक, द्रव और भूशय्या।

नेत्ररोगमें पथ्य—पादप्रक्षालन, लङ्घन, अञ्जन, स्वेद, विरेक, प्रतिसारण, पूरण, नस्य, रक्तमोक्षण, शस्त्रक्रिया, लेपन, आज्यपान, सेक, मनोनिर्वृति, पादाभ्यङ्ग, मूंग, जौ, लोहित धान्य, कुलथी, रस, प्याज, लहसुन, पटोल, वार्त्ताकु, सोभिञ्जन, नवमूलक, पुनर्नवा, काकमाची, अङ्गूर, चन्दन, तिक्त और लघु।

नेत्ररोगमें अपथ्य—क्रोध, शोक, मैथुन, अश्रु, वायु, विष्ठा, मूत्र, निद्रा और वमि आदिका वेगधारण, सूक्ष्मदर्शन दन्तविघर्षण, स्नान, निशाभोजन, आतप, प्रजल्पन, छर्दन, अम्बुपान, मधूक, पुष्प, दधि, पत्रशाक, पिण्याक, मत्स्य, सुरा, अजाङ्गल-मांस, ताम्बूल, अम्ल, लवण, विदाही, तीक्ष्ण, कटु, उष्ण और गुरु अन्नपान।

शिरोरोगमें पथ्य—स्वेद, नस्य, धूमपान, विरेक, लेप, छर्दि, लङ्घन, शीर्षबस्ति, शालि, दुग्ध, पटोल, अङ्गूर, वास्तूक, आम्र धात्री अनार, मातुलुङ्ग, तैल, तक्र, नारियल, कुष्ठ, भृङ्गराज, मोथा, उशीर और गन्धसार।

शिरोरोगमें अपथ्य—अश्रु, जृम्भ, मूत्र, वाष्प, निद्रा, विष्ठा आदिका वेगधारण, अञ्जन, खराब पानी, विरुद्धान्न, दन्तकाष्ठ और दिवानिद्रा।

गर्भिणीका पथ्य—शालि, षष्टिक, मूंग, गेहूं, लाजशक्तु, नवनीत, घी, क्षीर, मधु, शर्करा, पनस, कदली, धात्री, अङ्गूर, अम्ल, स्वादु, शीतल, कस्तूरी, चन्दन, माला, कर्पूर, अनुलेपन, चन्द्रिका, स्नान, अभ्यङ्ग, मृदुशय्या, हिमानिल, सन्तर्पण, प्रियवाद, मनोरमविहार और भोजन।

गर्भिणीका अपथ्य—स्वेद, वमन, क्षार, कलह, विषमाशन, नक्तसञ्चार, चौर्य, अप्रियदर्शन, अति व्यवाय, आयास, भार, अकाल जागरण, स्वप्न, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, मद्य, वेगविधारण, उपवास, अध्वगमन, तीक्ष्ण उष्ण, गुरु और विष्टम्भिभोजन, नग्न, निरशन, मद्य, आमिष, उत्तानशयन और स्त्रियोंको अनीप्सित वस्तु।

प्रसूता स्त्रीका पथ्य—लङ्घन, मृदुस्वेद, विशोधन, अभ्यञ्जन, तैलपान, कटु, तिक्त, उष्ण, सेवन, दीपन, पाचन, मद्य, कुलथी, लहसुन, वार्त्ताकु, बालमूलक, पटोल, ताम्बूल, अनार, ७ दिनके बाद किञ्चित् बृंहण और १२ दिन बाद आमिष

प्रसूतिका अपथ्य—श्रम, नस्य, रुक्ष, मैथुन,

विषमाशन, विरुद्धाशन, वेगरोध, अतिभोजन, दिवानिद्रा अभिष्यन्दी विष्टम्भी और गुरु भोजन।

शिरोरोगमें पथ्य—परिषेकावगाहन, सम्यक्‌निद्रा, छर्दि, विरेचन, योनिमार्गाहृति, परिषेक, धूमपान, हृदयावरण, नस्य, पञ्चमूल प्रतिमारथ, रक्तमोक्षण, प्रधमन और प्रलेप, अग्निकर्म, उपवास, प्रतिविष, पूर्व संप्रायप्रयोजन, पियङ्गु, मूंग तेल, सर्पि, बालाकु धात्री, निष्पाव तण्डुलीय, तण्डुलपर्णी, मोथस्ते, काञ्जिक, लवण पनार, प्राचीनामलक, कपित्थ, मातुलुंग, गौ छाग और नर मूत्र तक्र, मोचाम्बु, शर्करा, कपित्थ, पटोल, मधु कुङ्कुम, पश्चिमोत्तर वात, हरिद्रा, रक्तचन्दन, मोथा, विराय, कस्तूरी तिल और मसूर।

शिरोरोगमें अपथ्य—क्षोभ विरुद्धाशन अध्यशन, व्यवाय ताम्बूल आघात, प्रभात, वर्षा, अवगाहन, निद्रा भय और पूर्वविधि।

नासिकारोगमें पथ्य—अभ्यङ्ग, परिसञ्चरण गमन, सन्धिरुण्ड द्रव्य स्वेद भोजन, वमन, स्नावन, नस्ति नस्य, प्रावरण, समीरण परिश्रम, अवगाह शिरोवस्ति शिरमरच पूर्वविरेचन स्नान विस्रावण, माणिमन्थ, यव, कुमुम्भा, कुलथीभात, मञ्जा तैल वसा, कुलथी, तिल, पीत्र कपर, मोथा, गोमूत्र दधि, कुचिका यवादिका मांस रोहितादिमत्स्य, बालाकु लहसुन, पक्व दाडिम मिश्रा पत्रताल, सकुन बालमूल, मन्दारदल ताम्बूल, शर्करा, मरिच लौह, यवुल, गुग्गुल, कुङ्कुम आदि प्रवृत्तिमें अमृतको मात्रा।

नासिकारोगमें अपथ्य—चिन्ता, जागरण, रक्तमोक्षण, वमि, स्नान, व्यायाम, गन्ध और नासिकादर्शनविधि, सम्भार मैथुन, आघात श्रमण, वातुमय भोजन मीम सञ्चय विरुद्धाशन, अम्लाशन, रक्तमोक्ष, अपराह्न मद, पन्नात तिल, कटु, क्षार, अत्यन्त शीत भोजिकामथन, तत्काल अरहर, कटु, उद्दाम, जो, श्यामक, मिश्री, कषाय चना, मूंग कुलथी, बिम्ब, मातुलुङ्ग निम्बुक नवताकका पूर्ण, नानाविधशाक, पिण्याक, मिश्रितराग, गदहाका दूध, पत्रशाक, विड्वत् मूर्च्छित, करीर, माषिक, धूम और अधःपतन।

पौत्तिकमें पथ्य—अविशेषानविधि, विरेचन, रक्तमोक्षण कोकिलाक्षि, शीघ्र, परवल, चना, मूंग मसूर, घी अनुचित सत्तू, पय, मालिका, लाज, घृत, मिताहार गोलोदक, नदन, मेवाप अपाटूका, अदोका, कुष्माण्ड तुम्बी अनार, आरो कोमलतालफल, अमला, खजूर, कषाय, तिक्त, मधुर, स्निग्ध विशद चन्दन, हिमममा गम, मुमोलप्रवाल, धाराग्र, चन्द्रिका, मूर्च्छा, क्षारा, भूमिधर विधायका मन्दानिल, अभ्युक्षण, काश्मीर स्वच्छ, उत्तम कुन्दनगन्ध कपूर और शीत जल।

पौत्तिकमें अपथ्य—धूम, स्वेद, आतप मैथुन, स्मारण, क्रोध, क्षार, अध्वा, नस्यादि आदानविधि, तीक्ष्णतम व्यायाम, धावन विरुद्धासन सन्धान, अस्त- हास्य रक्तमोक्षण, अध्यशन, प्रीति, मैथुनकर तिक्त, लहसुन, कषाय, कुलथी गुड़ निष्पाव मदिरा, अलसी, दधीन्ध जम्बीर, हिङ्गु, लकुच, मूंग, भिलावा ताम्र दधि सर्षप, बदर, तैलाशन, तिलकल्की, कटु, अम्ल, लवण और विदाही।

श्लैष्मिकरोगमें पथ्य—वमि, लङ्घन, धूम्रपान, निशु अम, स्वेदन, चिन्ता, जागरण श्रम, अनियमन, व्यवा- वेगधारण, मदत प्रतिसारण प्रथम, रक्तप्रधान, धूम, प्रावरण, निशुद, अतिशयोम, नस्य, मद्य पुरातन शालि, निष्पाव, तद्धान्य चना मूंग कुलथीका रस क्षार, सर्षपतैल, उष्णजल, राजिका, वैताप वार्ताकु, ओदुम्बर कण्टकारी, लहसुन, नौरिक्षण गजामन मूलन, शिग्रु, मूलपोतिका, वरुण, तिक्ता शिङ्घाट, माक्षिक, ताम्बूल पुराना मदिरा व्योष, क्षार तिक्त कटु माक्षिक, कटु और कषायरस।

श्लैष्मिकरोगमें अपथ्य—स्वेद, अभ्यञ्जन आसन दिवानिद्रा, स्नान विरुद्ध भोजन, शिशिर, वमनालम्बन, भुक्तमात्रसमय, ब्राह्म, नवनवकुल, मत्स्य, मांस, इक्षु विकृति, दुग्धविकृति, तालाभिसञ्जा दूध अमल, हला- आपानक, खर्जूर, मधुमेह, पय, पायस, स्वादु, अम्ल लवण गुरु तुहिन और सन्ताप।

वसन्त ऋतुमें पथ्य—वमन पूरक व्यायाम मद्य प्रमथ अग्निसेवा कटु, तिक्त विदाही, तीक्ष्ण, उद्वर्त्तन और सम्भोजन।

वसन्तऋतुमें अपथ्य—दिवानिद्रा, अम्लभक्षण, पायस,

चन्द्रसेवा, पिण्डालुक, स्वादु, गुरुदक्ष और अम्ल, पिष्टक, दधि, क्षीर तथा घृत।

ग्रीष्मऋतुमें पथ्य—चन्दन, शीतवात, छाया, अम्बु, कक्षाशयन, प्रसून और प्रियभोजन।

ग्रीष्म ऋतुमें अपथ्य—कटु, तिक्त, उष्ण, क्षार, अम्ल, रौद्र, भ्रमण, अग्निसेवा, उन्निद्रता, भास्कर-तप्त तोयस्नान, अतिपान, दधि, तक्र और तैल।

वर्षामें पथ्य—लवण, अम्ल, मिष्ट, सार, प्रिय, स्निग्ध, गुरु, उष्ण, वन्य, अभ्यङ्ग, उद्वर्त्तन, अग्निसेवा, तत्तावपान और दधि।

वर्षामें अपथ्य—पूर्व पवन, दृष्टि, घर्म, हिम, श्रम, नदीतीर, दिवानिद्रा, रुक्ष और नित्य मैथुन।

शरत्कालमें पथ्य—शीतरसाम्बुपान, तरुच्छाया, चन्दन, इन्दुसेवा, गुड़, मूंग, मसुर, गायका दूध, ईख और शाल्योदन।

शरत्कालमें अपथ्य—लवण, अम्ल, तीक्ष्ण, कटु, पिष्ट, अतसी, विदाही, सुरा, नाल, दधि, तक्र, तैल, क्रोध, उपवास, आतप और मैथुन।

हिमऋतुमें पथ्य—तप्तजल, उपनाह, पयः, मद्यपान, घृत, स्त्रीसेवा, वह्निसेवा, गुरु और यथेष्ट भोजन।

हिमऋतुमें अपथ्य—दिवानिद्रा, कुभोजन, अमोजन, लङ्घन, पुरातनान्न, लघुपाकी द्रव्य, शैत्य और शीत जलावगाहन।

शिशिरमें पथ्य—स्त्री और वह्निसेवा, मत्स्य, अज-मांस, दधि, दुग्ध और घृत।

शिशिरमें अपथ्य—तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, अम्ल, कषाय और तिक्त, सामुद्रक, आर्द्रभोजन, दिवानिद्रा, चन्दन, चन्द्रसेवा, ठंढे पानीसे स्नान आदि। (पथ्यापथ्यविनिश्चय)

अर्श, भगन्दर, उपदंश, शुक्रदोष, विसर्प, विस्फोट, मसूर, क्षुद्ररोग आदि रोगोंका इसी प्रकार पथ्यापथ्य लिखा है। विस्तारके भयसे यहां उन सब रोगोंका विषय नहीं लिखा गया।

जो सब वस्तु हितजनक हैं, वह पथ्य और जो अहितकर हैं, वह अपथ्य है। पथ्यापथ्यका विचार करके और ऋतु विशेषमें जो हितजनक है, उसे सेवन करनेसे शरीर सुस्थ और सबल रहता है।

पथ्यावक्त्र (सं० क्लो०) मात्रावृत्त भेद। इसके प्रतिपादमें आठ आठ अक्षर होते हैं।

इसके प्रथम चरणमें १,३,५,७वां वर्ण गुरु और शेष वर्ण लघु; द्वितीय चरणमें १,२,६,८ वां गुरु और अन्यवर्ण लघु; तृतीय चरणमें १,२,३,६,७,८ वां वर्ण गुरु और अन्य वर्ण लघु; चतुर्थ चरणमें १,२,३,६,८वां वर्ण गुरु और अन्यवर्ण लघु होते हैं।

पद् (सं० पु०) पद्यते गच्छत्यनेन पद्-क्विप्। १ पाद, चरण। कोई कोई कहते हैं कि पद् शब्द नहीं है, पाद शब्द है, पर यहां पाद शब्दको जगह पद् आदेश हो कर 'पद्' ऐसा शब्द हुआ है, लेकिन यह सङ्गत नहीं है।

पद (सं० क्लो०) पद घञ् (नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। पा ३।१।१३४) १ व्यवसाय, काम। २ त्राण, रक्षा। ३ स्थान, जगह। ४ चिह्न, निशान। ५ पाद, पैर, पांव। ६ वस्तु, चीज। ७ शब्द, आवाज। ८ प्रदेश। ९ पादचिह्न, पैरका निशान। १० श्लोकका पाद, श्लोक या किसी छन्दका चतुर्थांश। ११ किरण। १२ पुराणानुसार दानके लिये जूते, छाते, कपड़े, अंगूठी, कमण्डलु, आसन, बरतन और भोजनका समूह, जैसे ५ ब्राह्मणोंको पददान मिला है। १३ छः अङ्गुलका एक पद। १४ ऋक् वा यजुर्वेदका पद-पाठ। १५ सुप्‌तिङन्तचय वाक्य, जिस वाक्यके अन्तमें सुप और तिङ् विभक्ति रहती है, उसे पद कहते हैं।

यह पद तीन प्रकारका है—वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य। अभिधा शक्ति द्वारा अर्थबोध होनेसे वाच्यपद, लक्षणा द्वारा अर्थबोध होनेसे लक्ष्य पद और व्यञ्जना द्वारा अर्थावगति होनेसे व्यङ्ग्यपद होता है। योग्यता, आकाङ्क्षा और आसत्तियुक्त पदसमूह वाक्य कहलाता है। वाक्योच्चय ही महावाक्य है।

विभक्तियुक्त शब्द और धातुको पद कहते हैं। पद ही वाक्यमें व्यवहृत होता है, शब्द और धातुका व्यवहार नहीं होता। पद दो प्रकारका है, नाम और क्रिया। शब्द और धातुके उत्तर जब प्रत्यय लगता है, तब उसे पद और धातुको प्रत्ययान्त कहते हैं। प्रत्ययान्त होने पर भी वे शब्द वा धातु ही रहते हैं। तदुत्तर विभक्तियोग

व्यतीत वे पद नहीं होते और पद नहीं होनेसे वे वाक्यमें व्यवहृत नहीं होते।

इन्हीं प्रकार विभक्ति जोड़नेसे नाम-पद और धातुके उत्तर विभक्ति जोड़नेसे क्रियापद होता है। प्रातिपदिक और धातुका एक एक अर्थ है, पर विभक्तियुक्त अर्थात् पद नहीं होनेसे अर्थबोध नहीं होता 'कृ' धातुका अर्थ है करना, किन्तु धातुरूपमें इसका व्यवहार नहीं होता। दो या इससे अधिक पद मिल कर जब पूर्ण अर्थ प्रकाशित करता है, तब उस पदसमष्टिको वाक्य कहते हैं। यह पद पांच प्रकारका है—विशेष्य, सर्वनाम विशेषण अव्यय और क्रिया।

नैयायिकोंके मतसे—अर्थबोधक शक्तिविशिष्ट होनेसे उसे पद कहते हैं।

१६ योग्यताके अनुसार निर्दिष्ट स्थान, दर्जा। १७ मोक्ष, निर्वाण। १८ ईश्वरभक्तिसम्बन्धी गीत, भजन।

पदक (स॰ पु॰) पदं वेत्ति क पद-वुन् (क्रमादिभ्यो वुन्। पा ४।२।६१) १ पदपाठ वेदस्वरपदविभागज्ञ अध्येता, वह जो वेदोंका पदपाठ करनेमें प्रवीण हो। २ गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। ३ धातुनिर्मित आभूषण, एक प्रकारका गहना जिसमें किसी देवताके पैरोंके चिह्न अङ्कित होते हैं और जो प्रायः बालकोंकी रक्षाके लिये पहनाया जाता है। (क्ली॰) ४ पूजन आदिके लिये किसी देवताके पैरोंके बनाये हुए चिह्न।

वृहद्धर्मपुराणमें लिखा है, कि सोने चांदी या पत्थर पर गोविन्दका पदचिह्न अङ्कित करके पूजा करनी होती है। पदचिह्नकी पूजा करनेसे सब प्रकारकी सिद्धियां लाभ होती हैं। सुवर्णादिमें पदचिह्न अङ्कित करके दक्षिण पदाङ्गुष्ठमूलमें चक्र, मध्यमाङ्गुलिके मूलमें कमल, पदके पश्चाद्भागमें ध्वज, कनिष्ठामूलमें वज्र, पार्ष्णिमध्यमें अङ्कुश, अङ्गुष्ठपर्वमें यव और वामाङ्गुष्ठमूलमें शङ्ख आदि ये सब चिह्न देने होते हैं। (वृहद्ध॰ मध्यख॰ १४अ॰) ५ सोने चांदी या किसी और धातुका बना हुआ सिक्केकी तरहका गोल या चौकोर टुकड़ा। यह किसी व्यक्ति अथवा जनसमूहको कोई विशेष अच्छा या अद्भुत कार्य करनेके उपलक्षमें दिया जाता है। इस पर प्रायः दाता और ग्रहीताका नाम तथा दिये जानेका कारण और समय आदि अङ्कित रहता है। यह प्रायः सम्मान और योग्यताका परिचायक होता है।

पदकार (स॰ पु॰) पदविभाग करोति कृ-अण्। वेदका मन्त्रपदविभागका ग्रन्थकर्त्ता।

पदक्रम (स॰ पु॰) वेदका क्रम पदविभागक्रम।

पदक्षमता (स॰ स्त्री॰) पद क्षमते या वेत्ति वा तुन्। १ पद और क्षमता। २ तदुपयोग्यता।

पदग (स॰ पु॰) पदाभ्यां गच्छतीति गम-ड। १ पदातिक, पैदल चलनेवाला, प्यादा। (त्रि॰) २ पद द्वारा गमनकर्त्ता।

पदगति (स॰ स्त्री॰) पदस्य गतिः। पदसञ्चार।

पदगोत्र (स॰ क्ली॰) पदानां गोत्र। भारद्वाजादि वेदका गोत्र, भरद्वाज आदि चार ऋषियोंका गोत्र।

पदचतुरूर्द्ध (स॰ पु॰) छन्दोविशेष, विषमवृत्तोंका एक भेद। इसके प्रथम चरणमें ८, दूसरेमें १२, तीसरेमें १६ और चौथेमें २० वर्ण होते हैं। इसमें गुरु, लघुका नियम नहीं होता। इसके आपीड़, प्रत्यापीड़, मञ्जरी, लवली और अमृतधारा ये पांच अवान्तर भेद होते हैं।

पदचर (स॰ पु॰) पैदल, प्यादा।

पदचारी (स॰ त्रि॰) पैदल चलनेवाला।

पदचिह्न (स॰ पु॰) वह चिह्न जो चलनेके समय पैरोंसे जमीन पर बन जाता है।

पदच्छेद (स॰ पु॰) सन्धि और समासयुक्त किसी वाक्यके प्रत्येक पदको व्याकरणके नियमोंके अनुसार अलग अलग करनेकी क्रिया।

पदच्युत (स॰ त्रि॰) जो अपने पद या स्थानसे हट गया हो, अपने स्थानसे हटा या गिरा हुआ।

पदच्युति (स॰ स्त्री॰) अपने पदसे हटने या गिरनेकी अवस्था।

पदज (स॰ पु॰) १ पैरकी उंगलियां। २ शूद्र। (त्रि॰) ३ जो पैरसे उत्पन्न हो।

पदजात (स॰ क्ली॰) पदानां जातं। पदसमूह नाम निपात और उपसर्गरूप पदसमूह।

पदज्ञ (स॰ त्रि॰) पद जानाति ज्ञा-क। मार्गज्ञ, पद जाननेवाला।

पद[illegible] (स॰ पु॰) ऋषिभेद।

फल खाये जाते हैं और कहीं कहीं फकीर लोग उसको माला बना कर गलेमें पहनते हैं। यह फल शराब बनानेके लिये विलायत भी भेजा जाता है। इस पेड़की लकड़ीसे छड़ियां और आरायशी सामान बनाये जाते हैं। कहते हैं कि इसमें न रहता हो तो इसको लकड़ी घिस कर पीनेसे गर्भ रह जाता है और यदि गर्भ गिर जाता है तो स्थिर हो जाता है।

विशेष विवरण पद्मकाष्ठमें देखो।

पदमकाठ (हि॰ पु॰) पद्म देखो।

पदमचम्प (हि॰ पु॰) दैवज्ञ योगी।

पदमन (हि॰ स्त्री॰) पद्मो।

पदमनाभ (हि॰ पु॰) १ विष्णु। २ सूर्य।

पदमाकर (हि॰ पु॰) जलाशय, तालाब।

पदमाला (सं॰ स्त्री॰) पदानां माला। १ पदश्रेणी। २ मोहनमोहनविद्या।

पदमूल (सं॰ पु॰) पैरका तलवा।

पदमैत्री (सं॰ स्त्री॰) अनुप्रास वर्णमैत्री वर्णसाम्य। जैसे, अविकाम मधुर मलिन्द मतवारे जिसे मंद मंद गावत सुकोमल मनमा को है।

पदमो (हि॰ पु॰) गज हाथी।

पदयोजना (सं॰ स्त्री॰) कविताके लिये पदोंका जोड़ना पद बनानेके लिये शब्दोंको मिलाना।

पदयोपन (सं॰ त्रि॰) १ पदगतिरोध। २ पदस्खलन।

पदर (हि॰ पु॰) १ एक प्रकारका पेड़। २ घोड़ेकी पैरोंका स्थान।

पदरथी (सं॰ पु॰) पादुका, खड़ाऊं, जूता।

पदरमन एक प्राचीन जनपद। पाल देखो।

पदरिपु (हि॰ पु॰) कण्टक, कांटा।

पदम—दक्षिणाकोटकासो मोहम्मदको एक शाखा। इनको पठको, पठान या देखाई आदि कहे एक जातीय उपाधि है। जब ये मोहे गोड़ोंको धर्मोपदेश देना और भाटका काम करना था उनका प्रधान व्यवसाय है। इस जातिने उत्पन्न एक सिरकाली देखी जाती है जो भाथ पर और तम्बूराका काम करता है।

पदवाद्य (सं॰ पु॰) प्राचीन कालका एक प्रकारका ढोल।

पदवाना (हि॰ क्रि॰) पदानेका काम दूसरेसे कराना।

पदवाय (सं॰ त्रि॰) पदमर्दक, पाद निपातकारी।

पदवि (सं॰ स्त्री॰) पद्यते गम्यतेऽनया पद गतौ पद 'पद्य दिस्तामवि' इति अवि। १ पद्धति, परिपाटी, तरीका। २ पथ रास्ता। ३ उपनाम उपाधि। ४ पद प्रतिष्ठा या मानसूचक पद जो राज्य अथवा किसी संस्था आदि की ओरसे किसी योग्य व्यक्तिको मिलता है, उपाधि, खिताब। ५ नियोग।

पदविक्षेप (सं॰ पु॰) पदस्य विक्षेप। पदन्यास।

पदविग्रह (सं॰ पु॰) पदैन विग्रहो यत्र। समास, समासवाक्य।

पदविच्छेद (सं॰ पु॰) पदस्य विच्छेदः। पदका विच्छेद पदका भिन्न भेदन।

पदविद् (सं॰ त्रि॰) पद वेत्ति विद-क्विप्। प्रवीण, पटु।

पदवी (सं॰ स्त्री॰) पद्यते गम्यतेऽनया। १ पथ, राह, रास्ता। २ पद्धति परिपाटी तरीका। ३ पद उपाधि खिताब। ४ ओहदा, दरजा। ५ निर्दिष्ट पद।

पदशोध (सं॰ स्त्री॰) शब्दका अनुसन्धान।

पदवृत्ति (सं॰ स्त्री॰) पदद्वयका मध्यच्छेद।

पदव्याख्यान (सं॰ क्ली॰) पदस्य व्याख्यानं यत्र। १ वेदमन्त्रका विभाजक ग्रन्थभेद। तस्य व्याख्यानग्रन्थ तत्र भवो वा अध्ययनादित्वात्ठञ्। (त्रि॰) २ पद व्याख्यान ग्रन्थको व्याख्या या तत्र भव।

पदशस (सं॰ अव्य॰) प्रत्येक पद पदमें।

पदश्रेणि (सं॰ स्त्री॰) पदानां श्रेणि। पदश्रेणि, पद पङ्क्ति।

पदष्ठीव (सं॰ क्ली॰) पादौ च अष्ठीवन्तौ च तयोः समाहारः (अचतुर विचतुरेति। पा ५।४।७७) इति निपातनात् सिद्ध। पद और जानुका समाहार।

पदसाट (सं॰ पु॰) पदम पाठक ग्रन्थकर्त्ता या टीकाकार वह जो शब्द या पद भ पद करता हो।

पदसंहिता (सं॰ स्त्री॰) पदयोजना।

पदसन्धातु (सं॰ क्ली॰) गीतका प्रसरभेद।

पदसन्धि (सं॰ पु॰) व्याकरणमें पदसन्धि।

पदसमूह (सं॰ पु॰) १ पदश्रेणी। २ कविताखण्ड, पदपाठ।

दर्शनशास्त्रके मतभेदसे पदार्थ भी नाना प्रकारका है। किसी दर्शनमें छः पदार्थ किसीमें सात और किसीमें सोलह पदार्थ माने गये हैं। वस्तुमात्र ही पदार्थ कहलाता है। गौतमादि ऋषियोंने तत्त्वज्ञानके आकांक्षित मनुष्यको पहले कई एक पदार्थोंमें विभक्त किया है। किसी किसी दर्शनमें पदार्थ ही न कहा जो निरूपित हुए हैं उनका विषय बहुत संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है। पदार्थ तत्त्व का नाम एक ही पदार्थको किसी दर्शनमें पदार्थ और किसीमें तत्त्व बतलाया है। आधुनिक नैयायिकोंके मतसे पदार्थ ७ प्रकारका है।

"द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकं।
समवायस्तथा भावः पदार्थाः सप्तकीर्तिताः॥"

(भाषा परि० २)

द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य विशेष समवाय और अभाव यही सात पदार्थ हैं। प्राचीन नैयायिकोंने पदार्थको ७ भागोंमें विभक्त कर अन्तिम पदार्थको इन सात पदार्थोंसे अलग निर्दिष्ट किया है। वैशेषिकदर्शनकार कणाद सब पदार्थोंको नहीं मानते। अभाव भिन्न पूर्वोक्त छः पदार्थ ही उनका अभिमत है। वे अभाव को पृथक् पदार्थ नहीं स्वीकारते। परवर्ती नैयायिकोंने षट्पदार्थको भाव पदार्थ बतलाया है। केवल भाव पदार्थ स्वीकार करनेसे अभावकी उपपत्ति नहीं होती, इसीसे अभावको एक और पृथक् पदार्थमें स्वीकार कर उन्होंने सात पदार्थ निर्देश किये हैं।

इन सात पदार्थके अतिरिक्त और कोई पदार्थ ही नहीं है। इसीमें सब तावत् पदार्थ अन्तर्भूत होगा। कोई कोई इन सात पदार्थोंके सिवा तमः 'अन्धकार' को एक और पृथक् पदार्थ बतलाते हैं। किन्तु अन्धकारादि अलग पदार्थ नहीं है क्योंकि आलोकका अभाव ही अन्धकार है। इसके सिवा अन्धकार पदार्थमें और कोई प्रमाण नहीं है। किन्तु कोई कहते हैं 'नील तमश्चलति' अर्थात् नीलवर्ण अन्धकार चलता है, इस प्रकार जो व्यवहार हुआ करता है वह भ्रमात्मक है। सच पूछिये तो अन्धकार पृथक् पदार्थ हो ही नहीं सकता क्योंकि अभाव पदार्थमें नीलगुण और चलनक्रिया सम्भव नहीं है। सभी पदार्थोंका ज्ञान हो सकता है और उन्हें निर्देश तथा प्रमाणित कर सकते हैं, इस कारण सभी पदार्थ ज्ञेय वाच्य और प्रमेयरूपसे निर्देश किये जाते हैं।

पहले जिन सात पदार्थोंका जिक्र किया, उनका विषय इस प्रकार है—

द्रव्यपदार्थ ९ हैं। यथा—पृथ्वी जल तेज वायु आकाश काल दिक् आत्मा और मन।

गुणपदार्थ २४ हैं। यथा—रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाण, पृथक्त्व संयोग, विभाग परत्व, अपरत्व बुद्धि सुख, दुःख, इच्छा द्वेष, यत्न, गुरुत्व द्रवत्व स्नेह संस्कार धर्म और अधर्म।

नील पीतादि वर्णका नाम रूप है। यह रूप वर्णभेदसे कई प्रकारका है। तन्त्रान्तर ग्रन्थके मतसे शुक्ल, नील पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र ये सात प्रकारके रूप हैं। जिस वस्तुके रूप नहीं है, वह दृष्टिगोचर नहीं होती। इसीसे रूप ही दर्शनका कारण है।

रस छः प्रकारका है, कटु, कषाय, तिक्त, अम्ल लवण और मधुर। गन्ध दो हैं, सौरभ और असौरभ। स्पर्श तीन प्रकारका है—उष्ण शीत और अनुष्णाशीत। संख्या एकत्व द्वित्व और त्रित्वादि भेदसे नाना प्रकार की है। संख्या स्वीकार नहीं करनेसे किसी प्रकारकी गणना नहीं कर सकते। क्योंकि इस प्रकारकी गणना संख्यापदार्थके अवलम्बनसे ही होती है। परिमाण चार प्रकारका है—अणु, महत् ह्रस्व और दीर्घ। जिसका अवलम्बन करके घट पटसे पृथक् है, ऐसा व्यवहार हुआ करता है उसको पृथक्त्व कहते हैं। असंश्लिष्ट वस्तुद्वय मिलन और संश्लिष्ट वस्तुद्वयके विश्लेषको यथाक्रम संयोग और विभाग कहते हैं। परत्व और अपरत्व प्रत्येक दैशिक और कालिकके भेदसे दो प्रकारका है—दैशिक परत्व और दैशिक अपरत्व। दैशिक परत्वसे अमुक नगरसे अमुक नगर दूर है, इस दूरत्वका ज्ञान होता है और दैशिक अपरत्वसे अमुक स्थानसे अमुक स्थान निकट है यह समझा जाता है। इस प्रकार कालिक परत्व और अपरत्व यथाक्रम ज्येष्ठत्व और कनिष्ठत्व व्यवहारके उपयोगी है। बुद्धि शब्दसे ज्ञानका बोध होता है। ज्ञान दो प्रकारका है जिनमेंसे

यथार्थ ज्ञान प्रमा और अयथार्थ ज्ञान अप्रमापदवाच्य है। निश्चय और संशयके भेदसे भी ज्ञानको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। संशय नाना कारणोंसे हुआ करता है। सुख और दुःख यथाक्रम धर्म और अधर्म द्वारा उत्पन्न होता है। सुख सभी प्राणियोंका अभिप्रेत है और दुःख अनभिप्रेत। आनन्द भी नमस्कारादिके भेदसे सुख और कोशादि दुःख नाना प्रकारका है। अभिलाष को ही इच्छा कहते हैं। सुख और दुःखाभावमें जो इच्छा है, वह उन सब पदार्थोंका ज्ञान होनेसे होती है। जिस विषयसे दुःख होनेकी सम्भावना रहती है, उस विषयमें द्वेष उत्पन्न होता है और यदि उस विषयसे किसी प्रकारकी इष्टसिद्धिकी सम्भावना न रहे, तो भी द्वेष उपजता है। यत्न तीन प्रकारका है—प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि। जिस विषयमें जिसकी चिकीर्षा रहती है। उस विषयमें उसकी प्रवृत्ति होती है और जिसे जिस विषयमें द्वेष रहता है, वह उस विषयसे निवृत्त होता है। इसीसे प्रवृत्ति और निवृत्तिका यथाक्रम चिकीर्षा और द्वेष कारण है। जिस यत्नके रहनेसे प्राणी जीवित रहता है, उसे जीवनयोनियत्न कहते हैं। जीवनयोनियत्न नहीं रहनेसे प्राणी क्षण काल भी जीवित नहीं रह सकता। इसी यत्न द्वारा प्राणियोंके श्वास प्रश्वासादि निर्वाहित होते हैं। गुरुत्व पतनका कारण है। जिसमें गुरुत्व नहीं है, वह पतित नहीं होता, जैसे तेजः प्रभृति। द्रवत्व क्षरणका हेतु है, यह स्वाभाविक और नैमित्तिकके भेदसे दो प्रकारका है। जलका द्रवत्व स्वाभाविक और पृथिव्यादिका द्रवत्व निमित्ताधीन हुआ करता है। जलीय जिस गुणका सद्भाव होता है और जिसके द्वारा सक्तु प्रभृति चूर्ण वस्तु पिण्डीकृत होती है, उसे स्नेह कहते हैं। स्नेह उत्कृष्ट और अपकृष्टके भेदसे दो प्रकारका है। उत्कृष्ट स्नेह अग्निज्वलनका और अपकृष्ट स्नेह अग्नि निर्वापका कारण है। यथा—तैलान्तर्वर्त्ती जलीय भागका उत्कृष्ट स्नेह रहनेसे उसके द्वारा अग्नि प्रज्वलित होता है और अन्यान्य जलका अपकृष्ट स्नेह रहनेसे उसके द्वारा अग्नि निर्वापित होती है। संस्कार तीन प्रकारका है, वेग, स्थितिस्थापक और भावना। योग क्रियादि द्वारा उत्पन्न हुआ करता है। अदृष्ट धर्म और अधर्म है तथा शुभादृष्ट पुण्यादि पदवाच्य है। यह गङ्गास्नान और यागादि द्वारा उत्पन्न होता है। पापकर्मसे अशुभादृष्ट होता है। शब्द दो प्रकारका है, ध्वनि और वर्ण। मृदङ्गादि द्वारा जो शब्द उत्पन्न होता है, उसे ध्वनि और कण्ठताल्वादिसे जो शब्द उत्पन्न होता है, उसे वर्ण कहते हैं। गुण पदार्थ द्रव्यमात्रमें रहता है और क्रियामें नहीं। ये २४ गुण क्षिति प्रभृति द्रव्य पदार्थ है।

कर्म—क्रियाको कर्म कहते हैं। यह कर्म पदार्थ उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमनके भेदसे पांच प्रकारका है। ऊर्ध्वक्षेपको उत्क्षेपण, विस्तृत वस्तुओंके सङ्कोच करनेको आकुञ्चन और सङ्कुचित वस्तुओंके विस्तार करनेको प्रसारण कहते हैं। भ्रमण, ऊर्ध्वज्वलन, तिर्य्यग्गमन आदिके गमनमें ही अन्तर्भाव होता, यह स्वतन्त्र क्रिया नहीं है। पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन इन पांच द्रव्योंमें क्रिया रहती है।

जाति पदार्थ नित्य है और अनेक वस्तुओंमें रहता है। जैसे घटत्व जाति सभी घटमें है। पर और अपरके भेदसे जाति दो प्रकारकी है। जो जाति अधिक स्थानमें रहती है, उसे परजाति और जो अल्पदेशमें रहती है, उसे अपर जाति कहते हैं। सत्तानामक जाति द्रव्य, गुण और कर्म इन तीनोंमें है, इसीसे उसका परजाति नाम पड़ा है। घटत्व और गोत्व आदि जो जाति है, वह अपर जाति है।

विशेष पदार्थ नित्य है, आकाश और परमाणु आदि एक एक नित्य द्रव्यमें एक एक विशेष पदार्थ है। यदि विशेष पदार्थ न रहता, तो कभी भी परमाणुओंकी परस्पर विभिन्नरूपताका निश्चय नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार अवयवी वस्तुद्वयके परस्परकी अवयवगत विभिन्नता देख कर विभिन्नरूपताका निश्चय किया जाता है, उसी प्रकार परमाणु आदिके जब अवयव नहीं है, तब किस प्रकार उनकी विभिन्नताका निश्चय किया जा सकता? किन्तु विशेष पदार्थ स्वीकार करनेसे इस प्रकारका सन्देह नहीं रहता। कारण वैसा होनेसे इस

परमाणुमें जो विशेष है वह अन्य परमाणुमें नहीं है अतः यह परमाणु अन्य परमाणुसे भिन्न है और अन्य परमाणुमें जो विशेष है वह अपर परमाणुमें नहीं है। इस कारण अन्य परमाणु अपर परमाणुसे पृथक् है। इसी रीतिसे जितने परमाणु हैं सबोंको पर स्पर विभिन्नता निरूपित होती है।

समवाय—द्रव्यके साथ गुण और कर्मका द्रव्य, गुण और कर्मके साथ जातिका, नित्य द्रव्यके साथ विशेष पदार्थका और अवयवके साथ अवयवीका जो सम्बन्ध है उसे समवाय कहते हैं।

यही षट् पदार्थ है। इसके अलावा अभावपदार्थ को ले कर सप्तपदार्थ कल्पित हुआ है। अभाव दो प्रकारका है, संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव। घटसे पुस्तक भिन्न है, पुस्तक घट नहीं है, जो वस्तुओंमें घटका भेद है इत्यादि स्थलमें जो अभाव प्रतीयमान होता है, उसे संसर्गाभाव कहते हैं। अत्यन्ताभाव ध्वंसाभाव और प्रागभावके भेदसे संसर्गाभाव तीन प्रकारका है। जिस वस्तुकी जिससे उत्पत्ति होगी, उस वस्तुका उसमें पहले जो अभाव रहता है, उसे प्रागभाव कहते हैं। प्रागभावकी उत्पत्ति नहीं है, किन्तु विनाश है। विनाश को ध्वंस कहते हैं। नित्य संसर्गाभावका ही अत्यन्ता भाव है।

गौतमने षोड़श पदार्थ स्वीकार किये हैं। यथा—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्त, अवयव, तर्क निर्णय वाद जल्प, वितण्डा, हेत्वा भास, छल, जाति और निग्रहस्थान। गौतमके मतसे इनके अलावा और कोई पदार्थ नहीं है। जितने पदार्थ हैं वे सभी इन्हीं षोड़शके अन्तर्गत किये गये हैं। परवर्ती नैयायिकोंने कणाद और गौतमके मतको ले साम कर सात पदार्थ स्थिर किये हैं।

न्याय और वैशेषिकदर्शन शब्द देखो।

रामानुजने अपने दर्शनमें तीन प्रकारका पदार्थ बतलाया है, चित् अचित् और ईश्वर। चित् जीवपद वाच्य है। भोक्ता, असंकुचित, अपरिच्छिन्न, निर्मल ज्ञानस्वरूप और नित्य है; अनादिकर्मरूप अविद्यावेष्टित भगवदाराधना और तत्पदप्राप्त्यादि जीवका स्वभाव। केशाग्रको सौ भागोंमें विभक्त कर पुनः उसे सौ भाग करनेसे जितना सूक्ष्म होता है जीव उतना ही सूक्ष्म है।

अचित् भोग्य और दृश्य पदार्थ है अचेतन स्वरूप जड़ात्मक, जगत् और भोग्यत्वविकारास्पदत्वादि स्वभाव वाले हैं। यह अचित् पदार्थ तीन प्रकारका है—भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन। जिसका भोग किया जाता है उसे भोग्य; जिसके द्वारा भोग किया जाता है, उसे भोगोपकरण और जिसमें भोग किया जाता है उसे भोगायतन कहते हैं।

ईश्वर सबोंके नियामक तथा परिच्छेदशून्य हैं। वे जगत्के कर्ता हैं, उपादान हैं, सबोंके अन्तर्यामी हैं और अपरिच्छिन्न ज्ञान, ऐश्वर्य तथा वीर्यादि सम्पन्न हैं। चित् और अचित् उसी प्रभु अर्थात् ईश्वरके शरीर स्वरूप हैं। पुरुषोत्तम वासुदेव आदि इन्हींकी संज्ञाएं हैं। इस दर्शनके मतसे पूर्वोक्त तीन पदार्थोंके अतिरिक्त और कोई भी पदार्थ नहीं है।

शैवदर्शनके मतसे भी पदार्थ तीन प्रकारका है, पति, पशु और पाश। पतिपदार्थ भगवान् शिव हैं और पशुपदार्थ जीवात्मा। पाशपदार्थ मल, कर्म, माया और रोधशक्तिके भेदसे चार प्रकारका है। आत्माकी स्वाभाविक शक्तिको मल, धर्माधर्मको कर्म, प्रलयावस्थामें सभी पदार्थ जिसमें लीन हो जाते हैं और सृष्टिकालमें जिससे उत्पन्न होते हैं उसे माया कहते हैं। इसी पाशसमूहको बन्ध कहते हैं।

चार्वाकके मतमें पदार्थ या तत्त्वके विषयमें अनेक मतभेद हैं। किसीके मतसे तत्त्व दो हैं, जीव और अजीव। जीव बोधात्मक है और अजीव अबोधात्मक। किसीके मतसे पञ्चतत्त्व, किसीके मतसे सप्ततत्त्व और किसीके मतसे नवतत्त्व स्वीकृत हुआ है।

सांख्यदर्शनके मतसे—प्रकृति, प्रकृतिविकृति, विकृति और अनुभय ये चार प्रकारके पदार्थ हैं। मूल प्रकृति और महदादि प्रकृति, षोड़शविकृति तथा अनुभय पुरुष है। सांख्यके मतसे इसके अलावा और कोई पदार्थ नहीं है। पातञ्जलदर्शनमें भी ये सब पदार्थ हैं और इनके अतिरिक्त ईश्वर पृथक् पदार्थ माने गये हैं।

वेदान्तदर्शनमें केवल दो पदार्थ हैं, आत्मा और अनात्मा। अनात्मा माया पदवाच्य है।

विशेष विवरण वेदान्त शब्दमें देखो।

वैद्यकके मतसे पदार्थ पांच हैं—रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति।

"द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।
पदार्थाः पञ्च तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्म च॥"
(भावप्रकाश)

२ पुराणानुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ३ पदका अर्थ, शब्दका विषय। ४ वस्तु, चीज।

पदार्थवाद (सं० पु०) वह वाद या सिद्धान्त जिसमें पदार्थ, विशेषतः भौतिक पदार्थोंको ही सब कुछ माना जाता हो और आत्मा अथवा ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार न होता हो।

पदार्थवादी (सं० पु०) वह जो आत्मा या ईश्वर आदि-का अस्तित्व न मान कर केवल भौतिक पदार्थोंको ही सब कुछ मानता हो।

पदार्थविज्ञान (सं० पु०) वह विद्या जिनके द्वारा भौतिक पदार्थों और व्यापारोंका ज्ञान हो, विज्ञान-शास्त्र।

पदार्थविद्या (सं० स्त्री०) जिस शास्त्रमें पदार्थके गुणागुणका विचार कर उसके कार्यादि वर्णित हुए हैं उसे पदार्थ-विद्या वा Natural Philosophy कहते हैं। जागतिक पदार्थोंका विषय जाननेमें पहले पदार्थ क्या है, इसका जानना आवश्यक है। पदार्थ शब्दका अर्थ है, पदका अर्थ। पदकी अर्थ सङ्गतिहोनेसे जो ज्ञान उपलब्ध होतो है, उसीको पदार्थ कह सकते हैं। द्रव्य गुण या कर्म प्रभृति सभी पदके अर्थ द्वारा प्रकाश किये जाते हैं। सुतरां ये सभी पदार्थ पदवाच्य हैं। शुद्ध वस्तु या द्रव्य अर्थमें भी शब्दका प्रचार देखा जाता है। इस अर्थमें पदार्थ दो प्रकारका है, चित् और अचित् अर्थात् चेतन और अचेतन।

जिस पदार्थमें चैतन्य है वह चित् या चेतन और जिसमें चैतन्य नहीं है वही अचित् अर्थात् अचेतन पदार्थ है। एकमात्र परमात्मा ही चिन्मय, विशुद्ध और चैतन्य स्वरूप है। जीवोंका आत्मा चैतन्यमय है सही, पर वह जड़मय देहधारी है। सुतरां वह जड़ और चित यहां उभयभावापन्न है। फिर मिट्टी, पत्थर आदि जो सब वस्तु चेतनहीन हैं उन्हें अचेतन वा जड़पदार्थ कहते हैं। वृक्षादि उद्भिज्जको 'उद्भिद्' रूपमें कोई कोई स्वतन्त्र पदार्थ मानते हैं।

चक्षु, रसना, नासिका, त्वक् और श्रवण इन पांच ज्ञानेन्द्रिय द्वारा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द आदि प्रत्यक्ष ज्ञानकी अनुभूति होती है। इन सब प्रत्यक्ष ज्ञानके कारणस्वरूप चैतन्यशून्य पदार्थका नाम जड़-पदार्थ है। मूल, मिश्र और यौगिकभेदसे पदार्थ तीन प्रकारका है।

रासायनिकोंके मतसे जड़पदार्थको विश्लिष्ट करनेसे जो दो वा दोसे अधिक अन्य प्रकारके जड़पदार्थ पाये नहीं जाते, वही मूल जड़पदार्थ है। रसायनशास्त्रज्ञों के मतसे स्वर्ण, रौप्य, लौह, ताम्र पारद और गन्धक आदि द्रव्य ही मूलपदार्थ हैं। क्योंकि इन सब पदार्थोंको विश्लिष्ट करनेसे तत्तत् द्रव्यजात पदार्थ छोड़ कर अन्य प्रकारका कोई भी द्रव्य निकाला नहीं जा सकता। क्षिति, अप् और वायु विश्लेषणशील है, क्योंकि इन सब द्रव्योंसे अन्यविध पदार्थ निकाला जाता है। यूरोपवासी जड़विज्ञानविद्गण तेजको स्वतन्त्र पदार्थ नहीं मानते। व्योम शब्दसे शून्य आकाश पदार्थका ही बोध होता है, किन्तु उसका अर्थ शून्य वा नभोमण्डल नहीं है।

दो अथवा दोसे अधिक मूलपदार्थ एक दूसरेके साथ रासायनिक प्रक्रियायोगमें संयुक्त हो कर जो भिन्न धर्माक्रान्त पदार्थ उत्पादन करते हैं उसका नाम यौगिक पदार्थ है। फिर जहां दो वा दोसे अधिक भिन्नजातीय द्रव्य एक दूसरेके साथ रासायनिक संयोगमें संयुक्त न हो कर आपसमें संयुक्त अथवा मिल जाते हैं, वहां इस प्रकारके मिलनसे जो द्रव्य उत्पन्न होता है उसे मिश्र पदार्थ कहते हैं। मिश्रपदार्थमें उनके उपादानभूत पदार्थके अनेक गुण रहते हैं, किन्तु यौगिक पदार्थके गुणके साथ उनके उपादानभूत मूलपदार्थके गुणका कोई सादृश्य नहीं देखा जाता। जल यौगिक पदार्थ है। क्योंकि अम्लजन और जलजन (Hydrogen and Oxygen) वायु इसको उपादान है। दोनोंके रासायनिक संयोगसे जलकी उत्पत्ति है। इससे गुणके साथ उसके गुणका कोई सादृश्य नहीं देखा जाता। वायु

राशि मिश्र पदार्थ है क्योंकि वायुराशिका प्रधान उपादान अम्लजन है। अम्लजन और यवक्षारजन (Oxygen and Nitrogen) दोनों वायु रासायनिक संयोगसे संयुक्त न हो कर केवल मिली हैं। सुतरां वायुराशिमें उभयगुणका अस्तित्व पृथक् पृथक् रूपमें प्रत्यक्षीभूत होता है।

पदार्थके सूक्ष्मतम अंशको परमाणु कहते हैं। इस सूक्ष्म परमाणुसमष्टिके योगसे सभी जड़ पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई है। वैशेषिक दर्शनकारने सबसे पहले इस मतका प्रचार किया। वे कहते हैं 'जिसके और अवयव नहीं है, परन्तु जिन अवयवोंसे सभी अवयव है और यावत् जड़पदार्थका शेष सीमास्वरूप है, उसका नाम परमाणु है। सभी परमाणु आकर्षण और विकर्षण गुणसम्पन्न हैं।' परमाणुओंका नाश नहीं है।

अणु, परमाणु और वैशेषिक दर्शन।

कठिन तरल और वायवीय (Solid liquid and Gas)-के भेदसे जड़ वस्तुकी अवस्था तीन प्रकारकी है। कठिन अवस्थामें जड़ वस्तुके अणुओंका दृढ़ सम्बन्ध रहता है किन्तु तरल और वायवीय अवस्थामें अणु विरल विभिन्नभावसे परस्परमें विच्छिन्न हो जाते हैं। बर्फ आदि कठिन द्रव्य हैं, जल तरल और कठिन तथा तरल वस्तुमें तापके योगसे जो वायवीय द्रव्य उत्पन्न होता है उसे वाष्प कहते हैं। वायुराशिका वायवीय भाव स्वाभाविक है और जलीय वाष्प आदिका वायवीय भाव नैमित्तिक।

जड़पदार्थमात्र ही अचेतन है निश्चेष्ट, स्थानव्यापक और मूर्तिविशिष्ट है। सुतरां अचेतनत्व निश्चेष्टत्व, स्थानव्यापकत्व और मूर्तत्व जड़के ये कई एक स्वाभाविक धर्म हैं। जड़पदार्थमात्रमें ही ये सब गुण पाये जाते हैं। सूक्ष्म, स्थूल परमाणु, मूल मिश्र वा यौगिक कठिन, तरल आदि यावतीय पदार्थोंमें इन प्रकारके गुण नहीं हैं अथच जड़ पदार्थ है ऐसे पदार्थोंका अस्तित्व असम्भव है। जो गुण एक कठिन द्रव्यमें देखा जाता है वह कठिन द्रव्यका असाधारण वा विशेष धर्म है और पूर्वोक्त गुण निःशेष साधारण सभी द्रव्योंमें लक्षित होते हैं इस कारण वह कठिनादि जड़द्रव्यका साधारण धर्म है। विभाज्यता और सान्तरता गुण परमाणुका धर्म नहीं है, किन्तु परमाणु समष्टिरूप स्थूल पदार्थमात्रके जो कठिन तरल और वायवीय तीनों अवस्थाओंमें ये दो गुण लक्षित होते हैं। सुतरां ये दो जड़के स्वाभाविक धर्म नहीं होने पर भी कठिन, तरल और वायवीय साधारण धर्म हैं। स्थानव्यापकत्व, विभाज्यत्व और सान्तरत्व ये सब जड़ पदार्थके साधारण गुणोंमें प्रधान हैं। स्थानावरोधकत्व और मूर्तत्व स्थानव्यापकत्व गुणसापेक्ष है। यदि कभी द्रव्य स्थानव्यापक न होते तो वे स्थानावरोधक नहीं हो सकते और न उनके आकारकी कोई मूर्ति हो सकती। अचेतन गुणत्व और निश्चेष्टत्व ये दोनों ही गुण जड़त्व शब्द द्वारा सूचित होता है। फिर आकुञ्चनीयता, प्रसारणीयता, स्थितिस्थापकता और विभाज्यता आदि गुण सान्तरता गुणसापेक्ष हैं।

जड़पदार्थमात्र ही कुछ स्थानमें व्यापित हो कर रहता है। जिस गुणके कारण जड़ पदार्थ सभी स्थानोंमें व्यापित रहते हैं, उसका नाम है स्थानव्यापकता। इसी स्थानव्यापकता गुणसे सभी जड़द्रव्य लम्बे और विस्तृत हो कर स्थानको अधिकार करते हैं। इस प्रकार विस्तृत हो कर जड़ वस्तु जिस स्थानको अधिकार करती है, उसे 'आयतन' कहते हैं। जिन सब गुणोंसे सभी जड़द्रव्य अपने अपने अधिकृत स्थानमें अन्य द्रव्यकी अवस्थितिका प्रतिरोध उत्पन्न करते हैं उसका नाम स्थानावरोधकता है। जैसे किसी सम्पूर्ण पिचकारीका मुंह बंद कर यदि उसका पिष्टन दबाया जाय, तो पिचकारीके भीतर पिष्टन प्रविष्ट नहीं होता है क्योंकि पिष्टन और वायु एक समयमें एक स्थान पर नहीं रह सकता। यह स्थानावरोधकत्व गुण परमाणुनिष्ठ है। जड़द्रव्यके परमाणु जो आपसमें संलग्न रहते हैं सो नहीं, उनके मध्य कुछ कुछ अवकाश वा अन्तर रहता है। जड़वस्तुके परमाणु स्थानावरोधक हैं सही लेकिन उनके अन्तर्गत अवकाशका ह्रास तथा वृद्धि हुआ करती है और इसीसे परमाणुओंके अन्तर्गत अवकाश स्थानमें अन्यके परमाणु कभी कभी प्रविष्ट होते मालूम पड़ते हैं, लेकिन वास्तवमें ऐसा नहीं है।

जिस गुणके कारण जड़ वस्तु आकार वा मूर्त्ति धारण करती है, उसका नाम मूर्त्तत्व है। जड़-पदार्थ मात्र ही आकार और मूर्त्त पदार्थ हैं। ये स्थान पर फैले हुए रहते हैं, इस कारण इनके आयतन और आकृति हैं। जिसमें चैतन्य नहीं है, उसे हम लोग अचेतन या जड़ पदार्थ कहते हैं। शक्ति सम्पन्न नहीं होनेसे जड़ पदार्थ स्पन्दित नहीं होता—शवकी तरह प्रतीयमान होता है। जड़पदार्थरूप शवके ऊपर जब शक्ति नृत्य करती है, तभी यह जगत्कार्य हुआ करता है। शुद्ध जड़पदार्थसे कोई कार्य नहीं होता। सभी जड़पदार्थ आपसे आप नहीं चल सकते और चालित होने पर आपसे स्थिर भी नहीं हो सकते, इसीसे उनको निश्चेष्ट गुण सम्पन्न कहते हैं। इस प्रकार पदार्थादिकी विभाज्यता, सान्तरता, आकुञ्चनीयत्व, प्रसारणीयत्व, स्थितिस्थापकता, कठिनत्व, कठोरत्व कोमलत्व, भङ्गप्रवणता, घातसहत्व, तान्तवता और भारसहत्व आदि ये सब विभिन्न गुण किसी न किसी द्रव्यमें देखा जाता है। पदार्थादिकी आणविक शक्तिके सम्बन्धमें आणविक आकर्षण, संहति, संशक्ति, कौशिक आकर्षण वहिःप्रवाह और अन्तःप्रवाह गुणादि एवं द्रव्यादिका रासायनिक विश्लेषण और सम्मिलन आदि पदार्थविद्यामें मीमांसित हुए हैं। एतद्भिन्न मध्याकर्षण, द्रव्यादिका भाव, वायु, शब्द, आलोक जल, ताड़ित, गति वा वेग, अयस्कान्त और अयःकर्षणी शक्तिका विषयमें भी इस पदार्थविद्यामें विशेष रूपसे आलोचित हुआ है। स्वभावजात द्रव्य मात्रकी सविस्तार आलोचनाको ही वैज्ञानिक भाषामें Physic कहते हैं। जिस ग्रन्थमें पदार्थविद्याका तत्त्व अवगत होता है, उसे पदार्थविद्या कहते हैं।

पदार्पण (सं० पु०) १ किसी स्थानमें पैर रखने या जानेकी क्रिया। इस शब्दका प्रयोग केवल प्रतिष्ठित व्यक्तियोंके सम्बन्धमें ही होता है।

पदालिक (सं० पु०) पदस्य चरणस्यालिकमिव। चरणोपरिभाग।

पदावनत (सं० वि०) १ जो पैरों पर झुका हो। २ जो प्रणाम करता हो। ३ नम्र, विनीत।

पदावली (सं० स्त्री०) पदानां आवली। १ पद-श्रेणी, पदसमूह, वाक्योंकी श्रेणी। २ भजनोंका संग्रह।

पदावृत्ति (सं० स्त्री०) पदकी आवृत्ति।

पदाश्रित (सं० वि०) १ जिसने पैरों पर आश्रय लिया हो, शरणमें आया हुआ। २ जो आश्रयमें रहता हो।

पदास (सं० क्ली०) साममेद।

पदास (हिं० स्त्री०) १ पादनेका भाव। २ पादनेकी प्रवृत्ति।

पदासन (सं० क्ली०) पदः पादस्य वा आसनं। पादपीठ, वह जिस पर पैर रखा जाय।

पदासा (हिं० पु०) जिसको पादनेकी इच्छा या प्रवृत्ति हो।

पदि (सं० पु०) पद कर्मणि इन्। गन्तव्य, जाने लायक।

पदिक (सं० पु०) पादेन चरतीति पाद-ष्ठन् (पर्पादिभ्यः ष्ठन्। पा ४।४।१०) ततः पादस्य पदादेशः। पदाति सैन्य, पैदल सेना।

पदिका (सं० स्त्री०) रक्तलज्जालुका, लाल रंगका लजालू।

पदिन्याय (सं० पु०) जैमिनिसूत्रोक्त न्यायभेद।

पदिहोम (सं० पु०) पदि पादस्याने होमः अलुक्समासः। श्रुतिविहित होमभेद।

पदुम (हिं० पु० १ घोड़ोंका एक चिह्न या लक्षण जो आंखोंके पास होता है। भारतवासी इसे दोष नहीं मानते, पर ईरानके लोग मानते हैं। २ पद्म देखो।

पदुमिनी (हिं० स्त्री०) पद्मिनी देखो।

पदेन्द्राभ (सं० पु०) विष्किरपक्षिविशेष।

पदोड़ा (हिं० पु०) १ जो बहुत पादता हो, अधिक पादनेवाला। २ डरपोक, कायर।

पदोदक (सं० पु०) १ वह जल जिससे पैर धोया गया हो। २ चरणामृत।

पदोपहत (सं० वि०) पादेन उपहतः पादस्य पदादेशः। पाद द्वारा उपहत।

पदोक (हिं० पु०) बरमामें मिलनेवाला एक वृक्ष, इसकी लकड़ी मजबूत और कुछ लाली लिए सफेद रंगकी होती है।

पद्ग (सं० पु०) पद्भ्यां गच्छतीति पद-गम-ड। पदातिक, पादचारी।

पद्घोष (सं० पु०) पादस्य घोषः, पादशब्दस्य पदादेशः। पादशब्द।

पद्दू (हि॰ पु॰) पदोड़ा देखो।

पद्धटिका (स॰ पु) एक मात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १६ मात्राएं होती हैं और अन्तमें जगण होता है।

पद्धड़ी (हि॰ स्त्री॰) पद्धटिका देखो।

पद्धति (स॰ स्त्री॰) पद्भ्यां हन्ति गच्छतीति हन-क्तिन् (हिमकाषिहतिषु च। पा ६।३।५४) इति पादस्य पद्‌ादेशः, ततो ङीप्। १ मार्ग, पथ, राह। २ पङ्क्ति, कतार। ३ ग्रन्थार्थबोधक ग्रन्थ, वह पुस्तक जिसमें किसी दूसरी पुस्तकका अर्थ या तात्पर्य समझाया जाय। ४ पदवी, उपनामसूचक शब्द, ठाकुर, घोष आदि। ५ प्रणाली, रीति, तरीका, ढंग। ६ आचार पद्धति वह ग्रन्थ जिसमें किसी प्रकारकी क्रिया या कार्य प्रणाली लिखी हो। ७ कार्यप्रणाली, विधिविधान। ८ रीति रस्म रिवाज परिपाटी।

पद्धरि (हि॰ पु॰) पद्धटिका देखो।

पद्धिम (स स्त्री॰) पादयोः हिम, पादको पद्धाकर। पादकी शीतलता।

पद्दी (हि॰ स्त्री॰) खेलमें किसी लड़केका जीतने पर दांव लेनेके लिये हारनेवाले लड़केकी पीठ पर चढ़ना।

पद्म (स॰ पु स्त्री॰) पद्यते इति पद गतौ मन् (अर्तिस्तुसुहुसृधृक्षि। उण् ११३८) १ स्वनामख्यात कोमल क्षुप और तज्जात पुष्पविशेष, कमल। पर्याय-नलिन, अरविन्द, महोत्पल, सहस्रपत्र, कमल, शतपत्र कुशेशय, पङ्केरुह, तामरस, सारस, सरसीरुह, बिसप्रसून, राजीव, पुष्कर, अम्भोरुह, पङ्कज, पद्माक्ष, अम्बुज, सरसिज, श्रीवास, श्रीपर्ण, इन्दिरालय, जलजात, पङ्कज, नलिनी, नालिक, कमल, पद्मक, पुटक।

साधारणतः श्वेत लोहित पीत और नील इन चार वर्णोंके पद्म इस लोकमें नयनगोचर होते हैं। सर्व-साधारणमें पद्मका व्यवहार कई प्रकारसे होता है। प्राकृतिक भेदसे पद्मके अनेक नाम पड़े हैं। इस लोगोंके देशमें पद्मके अनेक पर्याय शब्द रहने पर भी वे भिन्न भिन्न जातिके हैं इसका सबको निश्चय नहीं हो सकता। श्वेत, रक्त और नीलोत्पलके विभिन्न जातियोंके पर्याय शब्द उत्पल शब्दमें लिखे गये हैं। उत्पल देखो।

भिन्न भिन्न स्थानोंमें पद्मके विभिन्न नाम देखे जाते हैं। हिन्दी—कमल, बङ्गाल—पद्म, पदम; तञ्जोर—पद्म, काश्मीर—पम्पोश, उत्तरपश्चिमप्रदेश—कँवल। पञ्जाब—पम्पोश, कन्वलगट्टा, सिन्धु—कमल, दक्षिणमें—कुछ पैवका गुच्छ, बम्बई—कमल, कांकड़ा; महाराष्ट्र—तवरिभिश्रा तवरि। मान्द्राज—दुमभिरापन्द पुना, कमलम, तामिल—थामरु-तामरपु, कमल। तैलङ्ग—एररा तामरपुव, बम्मद—तमर, सिङ्गापुर—नेलुम; ब्रह्म—ग्याकुम-मा, पारस—नीलुफर, बशनीलू फर; पारस्यनीलुफर, नीलूफ, बशनीलुफर; अंग्रेजी—The Sacred lotus (Pythagorian or Egyptian Bean) विज्ञानशास्त्रमें — Nelumbium Speciosum or Nymphea Asiaticum

साधारणतः पुष्करिणी झील और छोटे छोटे जलाशयों तथा नदी आदिमें पद्म उत्पन्न होता है। पद्म लता है या गुल्म या क्षुप इसका निश्चय करना कठिन है। पुष्करिणीके नीचेके कर्दम (कीचड़)में पद्म निकलता है। पद्मके जड़के सामने बीचमें और कन्द गठित होता है। पीछे वह बीचके परिवर्तित हो कर ऊपरकी ओर उठती है। ऊपर आ कर उन बीचोंमेंसे कोई पत्रमें और कोई पुष्पमें परिणत होती है। जिस दण्डसे पत्र या पुष्प निकलता है वह बहुत कोमल और कण्टक युक्त होता है जो नाल कहलाता है। पद्मकी जड़से पत्र या पुष्पकी नाल छोड़ कर एक और प्रकारका दण्ड निकलता है जो नालसे पतला होता, सफेद, कण्टक हीन और कोमल रहता है। इस दण्डको मृणाल कहते हैं। यह खानेमें सुमिष्ट और सुस्वादु होता है। इसको और कमलकन्द गृहस्थ जब किसी पद्मवनमें जाते हैं, तब किनार मृणाल तोड़ कर खाते हैं।

पद्मके पत्तियां कुछ गोल होती हैं। इनका ऊपरका भाग मोमकी तरह कोमल और नीचेका भाग चिकना होता है। इसीसे कविगण मानवजीवनको 'पद्मपत्र जलबिन्दु यथा' इस प्रकार उपमा दिया करते हैं अर्थात् पद्मपत्र पर जिस प्रकार जलबिन्दु स्थिर नहीं रहता, मानवजीवन भी उसी प्रकार क्षणस्थायी और नश्वर है। पद्मपत्रमें आकार और विभागके पार्थक्य

प्रदेशसे ले कर दाक्षिणात्य तक सारे भारतवर्षमें प्रायः उत्पन्न होता है। इसके अलावा यूरोप, अमेरिका, अफ्रिका और अष्ट्रेलियाद्वीपमें भी नाना जातीय पद्म पाये जाते हैं। प्रायः ग्रीष्म ऋतुमें ही पद्मका पुष्प निर्गत होता है और पुष्पके गर्भस्थानमें अर्थात् किञ्जल्क स्थानके मध्य जो बीज होता है वह साधारणतः वर्षागममें परिपक्व होने लगता है। कच्चा बीज खानेमें ठीक बादामकी तरह मालूम लगता है, अथवा पका बीज मोमनकी खोईकी तरह भून कर खाया जाता है। सबके बीजसे शक्तिमन्त्र-जपकी सुन्दर माला प्रस्तुत होती है। प्रत्येक फलमें १८।१८ बीज रहते हैं।

पद्मको नाल वा डंठलसे एक प्रकारका जलहाभ श्वेत वर्णका सूक्ष्म सूत निकलता है। इस सूत्रसे हिन्दू-देवमन्दिरादिमें प्रदीप जलानेके लिए एक प्रकारका पलीता प्रस्तुत होता है। वैद्यक मतसे उक्त सूत द्वारा निर्मित वस्त्रसे ज्वर दूर होता है। पद्मके बीच बालकी तरह बारीक अंश रहता है जिसे किञ्जल्क कहते हैं। इसमें धारकता शक्ति है और वह स्वभावतः शीतल होता है। अङ्गके प्रदाह, अर्शसे रक्तस्राव और रक्ताधिक्य रोगमें (Menorrhagia) यह विशेष उपकारी है। बीजका सेवन करनेसे वमनेच्छा निवारित होती है। बालक-बालिकाके प्रस्राव बन्द हो जाने पर यह मूत्रकारक और शैत्यकारक औषधरूपसे व्यवहृत होता है। गात्रचर्मके दाहसमन्वित पक्षरोगमें रोगीको पद्मपत्र पर सुलानेसे गात्रदाह उपशम होता है। कहीं कहीं देवमन्दिरादिमें पद्मपत्र पर नैवेद्यादि लगाया जाता है। साधारण मनुष्य पद्मपत्र पर भोजन करते हैं। पद्मकी नाल और पत्रसे दूधकी तरह एक प्रकारका रस निकलता है जो उदरामयरोगमें अमोघ औषध है। पुष्पके दलमें धारकता शक्ति है। डाक्टर इमरसनके मतसे इसकी जडको पीस कर दद्रुरोग अथवा अन्यान्य चर्मरोगमें प्रलेप देनेसे त्वक्रोग विमुक्त होता है। इस लताके रसको वसन्तरोगग्रस्त शरीर पर लगानेसे गात्रकी ज्वाला निवारित हो कर अङ्ग इतना शीतल हो जाता है, कि गात्रचर्म पर अधिक परिमाणमें गोटी निकलने नहीं पाती। गात्रकण्डू, विसर्प आदि सभी प्रकारके सस्फोटकरोगमें यह प्रलेप हितकर है।

Nelumbium Speciosum जातीय उपरके दलकी आकृति गोल है और इसे कमल कहते हैं। इसका फल बादामकी तरह नाशपातीके आकार, पिङ्गलवर्ण वा लोहिताभ श्वेतवर्ण होता है। इसमें कोई विशेष गन्ध वा स्वाद नहीं है। इसका पका दाना सुपारीकी तरह कठिन और काला तथा आकृति गोल वा डिम्बसी होती है। इसका सफेद गूदा सुस्वादु और तैलाक्त होता है, पदार्थतत्त्व और भैषज्यतत्त्वके सम्बन्धमें इसके दल, नाल और जडका गुण कुमुदपुष्प (Nymphaea Lotus) के समान है। डाक्टर एण्डारसन (Civil Surgeon J. Anderson M. B. Bijnor, N. W. P.)-ने लिखा है, कि इसका बीज स्नायवीय दौर्बल्यमें एक बलकारक औषध है। चीनी और जलके साथ अल्प मात्रामें ($\frac{1}{2}$ Drachm) पान करनेसे ज्वरमें शैत्यकारक होता है। अधिक ज्वरमें प्रयोग करनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है और पसीना निकलने लगता है। आतपदुष्ट (Solar fever) तथा दाहयुक्त ज्वरमें इसकी जड, नाल पत्र और पुष्प विशेष उपकारी है। पद्मपुष्पसे मधुमक्खी द्वारा आहृत जो मधु छत्तेमें पाया जाता है, उसे लवङ्गके साथ घस कर आँखकी पलक पर लगानेसे चक्षुरोग जाता रहता है। इसके गन्धविशिष्ट जडके अंशको मोटा तिल तैलमें सिद्ध कर मस्तक पर मालिश करनेसे चक्षु और मस्तिष्कका प्रदाह नष्ट हो जाता है। कभी कभी जडको चर कर उसके रसको मिलानेसे ही काम चल सकता है। सर्पदंष्ट व्यक्तिको इसका गर्भकेशर काली मिर्चके साथ पीस कर खिलानेसे तथा वहिस्थ क्षतस्थान पर प्रलेप देनेसे विष बहुत जल्द दूर होता है।

भारतवासी इसकी जड और मृणाल खाते हैं। आश्विनमासमें पत्र लगे हुए डंठलको तोड़ रखते हैं और जब तक उसकी पत्तियाँ सड नहीं जातीं, तब तक उसे छूते तक भी नहीं। बादमें उसे खण्ड खण्ड कर भूनते हैं अथवा अन्यान्य मसालेके साथ चटनी बनाते हैं। सिन्धु और बम्बईप्रदेशके नाना स्थानवासी इसकी जड़

जाते हैं। इसकी नाल और पुष्पको सूख कर बहुतसे पामनादि प्रस्तुत करते हैं। भीतरी शक्तिके इसकी जड़का मोरके स्वाद रस है साथ गरम बना कर पीते हैं।

पद्मपुष्प हिन्दुओंकी एक आदरकी वस्तु है। वैदिक कालसे पद्मका व्यवहार देखा जाता है। रामायणमें भोगवत श्रीमोहनमेज और पद्मको कथा सब मत मानते हैं विष्णुके नाभिपद्मसे ब्रह्माकी उत्पत्ति आदि उपाख्यान लिखी हैं। लक्ष्मीका बैठनेका स्थान पद्मके ऊपर बैठी हुई हैं और वे इन्द्रधनि लगनके बाहरी पद्मका पुष्प शोभायमान है। अनेक प्राचीन वस्तुओंमें इसका चक्र देखनेमें आता है, शिलालेख, मुद्रा, सिक्कोंमें आदि प्राचीन चीजें कवियोंके काव्यमें भी इसका प्रयोग है।

कमुद नामका एक प्रकारका कुमुदका श्वेतपद्म हाथीशुण्डमें हुए के पुष्पको जो बाद पर लगता है जिसे विज्ञानविद् Nymphaea alba (The White Waterlily) और भिन्न भिन्न स्थानकी लोगोंका और आस्वाद करते हैं। यूरोपके अनुसार, छोटे छोटे पत्र और अवयवोंके अनुसार यह पुष्प देखनेमें आता है। इसके मूलमें गालिक एसिड (Gallic acid) रहनेसे यह दवाइयाँ रखनेके काममें आता है। इसमें बहु उपाय तथा इनके समान उपयोगितायुक्त गुण रहनेके कारण आयुर्वेदमें इसको बहु विविध नाम दिया गया है। डाक्टर लिखते हैं इसमें यह कारकता और मादकता गुणयुक्त है। इसका पुष्प काम उत्पन्न माना गया है। उदरामय रोगमें तथा विषम ज्वरमें यह औषधरूपमें व्यवहृत होता है। इसके पुष्प और कलको अर्क (Infusion) सेवन करनेसे रोग शान्तित होता है। इसके मूलमें श्वेतसार (Starch) रहता है जिसके आमवातमें एक प्रकारका हितकर माना गया प्रयुक्त करते हैं।

इस कमलका नाम कमल न रख पद्म मानते एक और प्रकारका कुमुदका कमल पुष्प देखा जाता है जिसका विज्ञानविद् Nymphaea lotus नाम रखा है। इसको आर्द्रन न भाबुकी पर होती है; भिन्न भिन्न स्थानोंमें इसका नाम भिन्न भिन्न प्रकारका है, हिन्दी—लाल कमल, बङ्गाल—शालुक, नाल, रक्तकमल; उड़ीसा—आम्बाली, कुमुद; सिन्धु—कुमी, कुमो; तामिल—अल्लिताम; तेलुगु—अल्लि; दक्षिण—श्वेत कमल, कम्बल; सिंहल—ओल्लुपुस, हेल कमल, कोटिन, पद्मिनी; बम्बई—लालम कमल; कनाड़ी—नैदिलु; लङ्का—ओलु; अन्य—कमल कोकनद; लिङ्गायत—रोल; मलयाल—आम्बल, कुमुद कल्हार, नक्र, पम्पिन पद्म और ब्रह्म—कोक कर।

इससे अधिक पुष्प जाने हैं इस आलिका पर और भी पुष्प (N. pubescens) देखा जाता है जिसकी पत्तियों और अक्षीका आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है।

उदरामय, विसूचिका, ज्वर और बहुमूत्र आदि रोग हैं इस के मूल पत्तियाँ अग्नि-उद्दीपक है। पद्म, इसका मांस और पत्तोंके रोगमें इसका जड़का चूर्ण मिला कर औषधरूपमें व्यवहृत होता है। मूल, मधु आदि खाद्योंमें तथा अतिसारमें इसका बीज हितकर है। भारतमें जा अन्नकष्टमें उत्पन्न न होने पर अथवा अकालोंमें इसके पुष्प और नालके चूर्णको मिलानेसे रोटी बना ली जाती है।

लोग इसकी जड़को भी भी अथवा भून कर खाते हैं। बहुतसे इस पानीमें ही पका खाता है। पद्म-बीजको भून कर खा जाता है।

नीलपद्म नामसे प्रसिद्ध जो कमल पुष्करिणी आदिमें देखा जाता है वह कमल वास्तविक नहीं है। विज्ञान शास्त्रमें इसे Nymphaea stellata लिखते हैं नीलपद्म, बङ्गालमें सुन्दरवन जिलोंमें तथा भारतमें बहुत कमल, हिन्दीमें नीलकमल, मन्दमें निलू पद्म, मल्यालमें नीलाम्बल, उत्पल और इन्दीवर कहते हैं। इस श्रेणीके और भी तीन प्रकारके पुष्प देखे जाते हैं (१) N. Cyanea सम्पूर्ण नम्र और नीलवर्ण होता तथा पत्तोंमें और पुष्पवृन्तमें बहुत होता है। (२) N. parviflora अपेक्षाकृत छोटा होता है और (३) N. versicolor नीला, सफेद, लाल और बैंगनी रङ्गका होता है। इनके बहुत पुष्पमय रहते हैं।

इनके कमल आसाम, सौरिस्ट कामिरटा और कारोमण्डलके निकटवर्ती स्थानोंमें एक प्रकारका नील

पद्म (ymphoea aerulea or lwabrnelily) पाया जाता है। इसकी सुमधुर गन्धसे दृजिप्टवासिगण इतने प्रसन्न होते हैं, कि वह प्राचोनकालसे उन्होंने इस पद्मको पवित्र समझ कर प्रस्तरादिमें खोद रखा है। उत्तर अमेरिकाके कनाडासे ले कर केरोलिना तक विस्तृत स्थानोंमें एक प्रकारका सौगन्धयुक्त पद्म (N. Odorata) उत्पन्न होता है जिसका रंग लाल है। यह पूर्वलिखित पद्मके जैसा गुणविशिष्ट माना गया है।

डेमेरारा नामक स्थानमें Victoria rigia नामक एक प्रकारका बड़ा पद्म पाया जाता है। इस पद्मका व्यास १५ इञ्च और पत्रका व्यास ६॥ फुट होता है। पत्तोंकी आकृति थालोंकी तरह गोल होती है और चारों ओरका किनारा थालोंके जैसा ३से ५ इञ्च तक ऊपर उठा रहता है। अन्यान्य पत्तोंकी तरह इसका निचला भाग कटा नहीं होता। ऊपरी भाग सफेद, सब्ज और चिकना होने पर भी भीतरकी पीठ लाल और कण्टकयुक्त होती है। इस पृष्ठ पर पञ्जरास्थिकी तरह अनेक ऊंची नीची शिराएं पत्रके तल भाग पर देखी जाती हैं। पत्र और पुष्पको नाल तथा पत्रका तलदेश कण्टकाकीर्ण है। यह पुष्प नाना रंगोंका तथा असंख्य पत्तोंका होता है। उत्तर और पूर्व अष्ट्रेलिया द्वीपांशमें एक प्रकारका बड़ा नील पद्म पाया जाता है। ऐसे प्रस्फुटित पद्मका व्यास प्रायः १२ इञ्च देखा गया है। बीज और विकसित पुष्पको नालमें वैसी नहीं रहनेसे वह वहांके आदिम अधिवासियोंका एक उपादेय खाद्य पदार्थ समझा जाता है। अलावा इसके छोटा रक्त कमल (Nymphaea rosea) और चीन, रूप तथा खासिया पर्वत पर श्वाफक्षाउन मुद्राकी तरह एक प्रकारका क्षुद्र पद्म (Nymphaea Pygmia) उत्पन्न होते देखा जाता है।

पहले जिस पीत वा जरद वर्णके पद्मकी कथाका उल्लेख किया है, वह अक्सर भारतवर्षमें नहीं मिलता, उत्तर अमेरिका, साइबिरिया, उत्तर जर्मनी, लापलैण्ड, नौरवे, स्काटलैण्ड आदि स्थानोंमें मिलता है। Nuphar lutea or yellow water-lily, N pumila Dwarf yellow waterlily और फिला डेलफिया तथा कनाडा नामक स्थानमें N. advena नामका फुल लवणाक्त अथवा मिष्ट दोनों प्रकारके जलमें उगते देखा गया है।

हिन्दू और बौद्ध शास्त्रमें पद्मकी विशेष सुख्याति देखनेमें आती है। बौद्धशास्त्रमें पद्म 'पद्मपाणि' नामसे उल्लेख किया गया है। स्वस्तिककी आकृति पद्मसमा है। एतद्भिन्न पद्मके ऊपर दण्डायमान वा उपविष्ट हिन्दू और बौद्ध, जापानी तथा चीन देशीय देवदेवोंकी मूर्त्ति कल्पित और चित्रित होता देखी जाती है।

साधारणतः जो तीन प्रकारके पद्म देखे जाते हैं उनमेंसे श्वेत पद्म पुण्डरीक, लाल पद्म कोकनद और नीलोत्पल इन्दीवर नामसे प्रसिद्ध है।

समग्र वृक्ष पद्मिनी, फल कर्णिकार, पुष्पस्थित मधु मकरन्द, पत्र और पुष्प डंठल नाल, जलमध्यस्थ नाल मृणाल, पुष्पका गर्भस्थ सूक्ष्म सूक्ष्म सूत्रविशिष्ट स्थान किञ्जल्क, उसके ऊपरका भाग बीजकोष, उसके पार्श्वस्थ सूक्ष्म सूत्र पद्मकेशर, उसके ऊपरके छोटे छोटे सफेद बीजकी तरहका पदार्थ पुष्परेणु वा किञ्जल्क कहलाता है कविगण पद्मके साथ नर नारी अथवा देवदेवोंके चक्षु और मुखकी उपमा देते हैं।

वैद्यकके मतसे पद्म कषाय, मधुर, शीतल, पित्त, कफ और अस्रनाशक, पद्मबीज वमननाशक, पद्मपत्रकी शय्याशीतल और दाहनाशक तथा पद्मपुष्पगुरु-भ्रंशहर माना गया है।

२ पद्मक, हाथीके मस्तक या सूंड़ पर बने हुए चित्र विचित्र चिह्न। ३ व्यूहविशेष, सेनाका पद्मव्यूह।

"यतश्च भयमाशङ्केत् ततो विस्तारयेद्बलं।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयं।"

(मनु ७।१८८)

४ निधिभेद, कुबेरकी नौ निधियोंमेंसे एक निधि। ५ संख्याविशेष, गणितमें सोलहवें स्थानकी संख्या। ६ तत् संख्यात्, वह जिसमें उतनी संख्या है। ७ पुष्कर मूल। ८ पद्मकाष्टौषधि, कुट नामकी औषधि, ९ बौद्धके मतसे नक्षत्रभेद, बौद्धोंके अनुसार एक नक्षत्रका नाम। १० सीसक, सीसा। ११ कल्पविशेष,

पुराणानुसार एक कल्पका नाम। १२ शरीरस्थित षट्पद्म, तन्त्रके अनुसार शरीरके भीतरी भागका एक कल्पित कमल जो योगीके ध्यानका और प्रकृत को प्रकाशमान रक्खा जाता है। इसमें छः दल है। १३ वास्तुमें एक स्तम्भके ऊँचाईको कहते हाथ पद्मकेशरका जो बोध होता है। १४ हाथाग्रि। १५ नागविशेष एक नागका नाम। १६ पद्माकारव्यूह। १७ सम्भेद। १८ नौबन्ध प्रकारकी रचित चित्रविशेष एक।

"स्मरसम रूप तवाभिरूप मयो सर्वाभ्रोतमि।
नीरेन्द्रत नमाकृत काली ऽर्थे पद्मवर्धन॥" (रसिक॰)

१९ नरकभेद पुराणानुसार एक नरकका नाम। २० काश्मीरके एक हिन्दू राजा। इन्होंने ८४८से ८८० ई॰ तक राज्य किया था। इनके समयका तामशासन पाई गई है। २१ एक प्राचीन नगर। २२ सर्पभेद। २३ जम्बूद्वीपके दक्षिणपश्चिममें अवस्थित एक भूभाग। २४ मारवाड़ राज्यके एक राजा। इन्होंने जोधा और निरमान बहुवे प्रदेश जीता था। २५ सद्याका पुरनद। वस्त्र देखो। २६ एक राजा, जिनके समयमें मुनियोंमें इनका जन्म हुआ था। २७ कुमारानुचरभेद, कार्त्तिकेय एक अनुचरका नाम। २८ जैनोंके अनुसार भारतके नवें चक्रवर्तीका नाम। २९ काश्मीरके एक राजमन्त्री। इन्होंने पद्मस्वामी का मन्दिर और पद्मपुर नगर स्थापन किया था। ३० सामुद्रिकके अनुसार पैरका एक विशेष आकारका चिह्न। यह चिह्न भाग्यसूचक माना जाता है। ३१ किसी वस्तुके बालमें भागका नाम। ३२ विष्णुके एक आयुधका नाम। ३३ एक प्रकारका आभूषण जो गले में पहना जाता है। ३४ मल्लार रागका नर्तन राग। ३५ हाथीके कान पर बने हुए चित्र विचित्र चिह्न। ३६ एक पहाड़ी पर बना हुआ एक जो सिपाहीका आठ हाथ चौड़ा घर। ३७ एक पुराणका नाम। पुराण देखो। ३८ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक नगण, एक सगण और अन्तमें लघु गुरु होते हैं।

पद्म (सं॰ क्लो॰) पद्यमिव आकृतिर्यस्य वा पद्म प्रतिकृतिरस्य अस्मात् नगात्। १ पञ्जरचित पुष्पाकार चिन्हमुख। २ पद्मकाष्ठ। इसका गुण—तुवर, तिक्त, शीतल वातल, लघु विशद, दाह, विस्फोट, कुष्ठ, वीसर्प, रक्त और पित्तनाशक, गर्भस्थापक, रुचिकर, वमि, भ्रम और तृष्णानाशक। ३ कुष्ठौषधि, कूट नामकी औषधि। पद्मचार्थे अच्। ४ पद्म शब्दार्थ। ५ पद्मायतनभेद। ६ श्वेतकुष्ठ अर्थात् कोढ़। ७ मैनाका पद्मरूप।

पद्मकण्ठक (सं॰ पु॰) क्षुद्ररोगभेद, एक प्रकारका रोग।

पद्मकन्द (सं॰ पु॰) पद्मस्य कन्दः। १ कमलकन्द, कमलकी जड़, मुरार। पर्याय—शालूक, पद्ममूल, कटाह्वय शालूक, जलालूक। गुण—गुरु, विष्टम्भी। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—शीतल, वृष्य, पित्त, दाह रक्तदोषनाशक गुरु, मधुर। २ जलचरविशेष, पानीमें रहनेवाली एक प्रकारकी चिड़िया।

पद्मकर (सं॰ पु॰) पद्म करे यस्य। पद्महस्त विष्णु, पद्मपाणि।

पद्मकरवीर (सं॰ पु॰) पुष्पवृक्षविशेष।

पद्मकाष्ठ (सं॰ पु॰ क्लो॰) कमलकाष्ठ पद्मकोष।

पद्मकर्णिका (सं॰ स्त्री॰) १ पद्मके आकारमें सज्जित सेनाकी मध्य भाग। २ कमलकर्णिका।

पद्मकल्प (सं॰ पु॰) कल्पभेद, विशेष प्रकारका कल्प।

पद्मकामरूप (सं॰ स्त्री॰) पद्मदलोद्भव पद्मपुष्पभेद।

पद्मकाष्ठ (सं॰ क्लो॰) पद्मभिव गन्धवत् काष्ठ। औषधि-विशेष देशान्तरप्रसिद्ध सुगन्ध काठ। पर्याय—पद्मक, पीत, शालव, शीतल, हिम, शुभ, केदारज रक्त प्राटनापुष्पगन्धि मलयज। गुण—शीतल, तिक्त, रक्तपित्तनाशक, और दाह व्रण, भ्रान्ति, कुष्ठ विस्फोट और शान्तिकारक। विशेष विवरण पद्म शब्दमें देखो।

पद्मकाष्ठक (सं॰ क्लो॰) पद्मकाष्ठ, पदम नामक वृक्ष।

पद्मकिंजल्क (सं॰ पु॰) पद्मकेशर, कमलका केसर।

पद्मकिन् (सं॰ पु॰) पद्मक बिन्दुजालमस्त्यस्य इति भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका पेड़।

पद्मकीट (सं॰ पु॰) पक्षिमध्यतिकीटभेद, एक प्रकार का कनखजूरा।

पद्मकूट (सं॰ क्ली॰) प्राचीन प्रासादभेद, एक प्राचीन देश जहाँ भीमाका प्रासाद बनाया गया था।

पद्मकेतन (सं॰ पु॰) १ गरुड़ात्मजभेद, पुराणानुसार गरुड़के एक पुत्रका नाम

पद्मकेतु (सं० पु०) केतुभेद, वृहत्संहिताके अनुसार एक पुच्छल तारा जो मृणालके आकारका होता है। यह केतु पश्चिमकी ओर एक ही रातके लिए दिखलाई पड़ता है।

पद्मकेशर (सं० पु० क्ली०) पद्मस्य केशरः। किञ्जल्क, कमलका केसर। गुण—मलसंग्राहक, शीतल, दाहनाशक और अर्शका स्रावनाशक।

पद्मकोष (सं० पु०) पद्मस्य कोषः। १ पद्मका कोष, कमलका संपुट। २ कमलके बीचका छत्ता जिसमें बीज होते हैं।

पद्मक्षेत्र (सं० क्ली०) उड़ीसाके अन्तर्गत चार पवित्र क्षेत्रोंमेंसे एक।

पद्मखण्ड (सं० क्ली०) १. पद्मपरिवेष्टित स्थान। २ पद्म समूह।

पद्मगन्ध (सं० त्रि०) पद्मस्येव गन्धो यस्य। १ पद्मतुल्य गन्धयुक्त, जिसमें कमल-सी गन्ध हो। (क्ली०) २ पद्मकाष्ठ, पद्म नामका वृक्ष।

पद्मगन्धि (सं० पु०) पद्माख या पदम नामका वृक्ष।

पद्मगर्भ (सं० पु०) पद्मं गर्भः कुक्षिरिव यस्य विष्णुनाभि-कमलजातत्वात् तथात्वं। १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ सूर्य। ४ बुद्ध। ५ एक बोधिसत्त्व। ६ कमलका भीतरी भाग। ७ शिव, महादेव।

पद्मगिरि—नेपाल राज्यके काठमण्डू नगरसे दक्षिण पश्चिममें अवस्थित गिरिभेद। इस पर्वतके ऊपर स्वयम्भुनाथका मन्दिर है। पद्मगिरिपुराणमें इसका माहात्म्य वर्णित है।

पद्मगुणा (सं० स्त्री०) पद्मं गुणयति आसनत्वेन गुणक, टाप्। लक्ष्मी।

पद्मगुप्त – मालवराज वाक्पतिकी सभाके एक राजकवि। इन्होंने नवसाहसाङ्क-चरितकी रचना की। इस ग्रन्थमें मालवका बहुत कुछ ऐतिहासिक विवरण भी वर्णित है। परमार-राजवंश देखो।

पद्मग्राम—विन्ध्य प्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

पद्मगृहा (सं० स्त्री०) पद्मालया, लक्ष्मीका एक नाम।

पद्मचारटी (सं० स्त्री०) १ स्थलकमलिनी, स्थलपद्म। २ नवनीतखोटी।

पद्मचारिणी (सं० स्त्री०) पद्ममिव चरतीति चर-णिनि स्त्रियां ङीप्। १ उत्तरापथ प्रसिद्ध स्वनामख्यात लताभेद, स्थल-कमलिनी, गेंदा। पर्याय—अव्यथा, अतिचरा, पद्मा, चारटी। २ भार्गी, बरङ्गी। ३ शमीवृक्ष। ४ हरिद्रा, हलदी। ५ लाक्षा, लाख। ६ मुनि, तरुणी।

पद्मज (सं० पु०) पद्मात् विष्णुनाभिकमलात् जायते जन ड। ब्रह्मा, चतुर्मुख।

पद्मतन्तु (सं० पु०) पद्मस्य तन्तुः। मृणाल, कमलकी नाल।

पद्मतीर्थ (सं० क्ली०) पुष्करमूल।

पद्मदर्शन (सं० पु०) १ श्रीवास, लोहबान। २ सर्जरस।

पद्मधातु करुणापुण्डरीक नामक बौद्धग्रन्थवर्णित द्वीपभेद। अरनेमि नामक एक राजा यहां रहते थे।

पद्मनन्दी—१ प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्दका नामान्तर। कुन्दकुन्दाचार्य देखो। २ रावणपाण्डवीय टीकाके रचयिता।

पद्मनालिका (सं० स्त्री०) स्थलपद्मिनी।

पद्मनाभ (सं० पु०) पद्मं नाभौ यस्य, अच् समासान्तः (अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः। पा ५।४।७५) ब्रह्मोत्पत्तिकारिणी भूतपद्मस्य नाभिजातत्वादस्य तथात्वं। १ विष्णु। शयनकालमें पद्मनाभ विष्णुका नाम लेनेसे अशेष फल प्राप्त होता है।

"औषधे चिन्तयेद्विष्णुं भोजने च जनार्दनं।
शयने पद्मनाभञ्च विवाहे च प्रजापतिं॥"
(वृहन्नन्दिकेश्वर पु०)

२ महादेव। पद्ममिव वर्त्तुलाकृतिः नाभिर्यस्य। ३ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ४ नागविशेष, एक सर्पका नाम। ५ उत्सर्पिणीका जिनभेद, जैनोंके अनुसार भावी उत्सर्पिणीके पहले अर्हतका नाम। ६ स्तम्भनास्त्रविशेष। ७ शत्रुके फेंके हुए अस्त्रको निष्फल करनेका एक मन्त्र या युक्ति। ८ मार्गशीर्ष से एकादश मास।

पद्मनाभ—१ मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत भीमुलिपत्तन जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा० १७° ५८´ उ० और देशा० ८३° २०´ पू०के मध्य विजयनगरसे १० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। पद्मनाभ या विष्णुका पवित्र-

तीर्थ होनेके कारण यह स्थान प्रसिद्ध है। यहांके तीर्थ-माहात्म्यमें लिखा है, कि यहांके गिरिशिखर पर शान्ति मूर्त्त हो कर श्रीकृष्णने बलरामको उपदेश दिया था, "मैं अपना शङ्ख और चक्र यहीं छोड़ जाता हूं, तुम लोग इनकी पूजा करना।" इतना कह कर भगवान् शिखरदेश पर शङ्ख चक्र रख कर चले गये। उन्हींके नामानुसार इस गिरि और निकटवर्ती नगरका पद्मनाभ नाम पड़ा है।

पर्वतके शिखर पर अति प्राचीन शङ्खचक्र प्रतिष्ठित है और प्राचीन मन्दिरका भग्नावशेष भी देखनेमें आता है। इसके पास ही विजयरामराजने एक मन्दिर बनवा दिया है। मन्दिरके ऊपर जानेके लिये १२९० सीढ़ियां लगी हुई हैं। गिरि शिखर परसे भी सुविस्तृत बन्दर, राजपथ, विशाखपत्तन और विजयनगरका दृश्य नयन गोचर होता है। पर्वतके तराईमें कुन्तिमाधव स्वामीका मन्दिर, कुछ ब्राह्मण और सैकड़ों शूद्रके मकान हैं। इसके पास ही पुष्करिणीका मोटोतकी नामकी एक छोटी झील बन गई है। विजयरामराज अन्तिम समय तक पद्मनाभमें रहे थे। १७९४ ई०को १० वीं जुलाईको इनके साथ अंग्रेजोंकी सेनाका घोरतर युद्ध हुआ। युद्धमें विजयरामराजकी मृत्यु हुई।

पद्मनाभ दाक्षिणात्यवासीका एक पवित्र तीर्थ है। रामानुजस्वामी, श्रीपादादेव आदि इस तीर्थमें आये थे।

२ त्रिवाङ्कुर राज्यके अन्तर्गत एक अति पुरातन और प्राचीन नगर। अनन्तशायी विष्णुका तीर्थ होनेके कारण यह स्थान अनन्तशयन नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्माण्डपुराणके अन्तर्गत अनन्तशयन माहात्म्यमें इस स्थानका पौराणिक आख्यान वर्णित है।

पद्मनाभ—१ भास्कराचार्यकृत एक प्राचीन ज्योतिर्विद्। इनका बनाया हुआ बीजगणित 'पद्मनाभबीज' नामसे प्रसिद्ध है।

२ इन्दुमारचरितोत्तरपीठिकाके रचयिता।

३ मातान्द्रिनीय आचारत्न एवं दीपिकाके रचयिता।

४ अमोनाथके शिष्य, रामाद्वैताचार्यके पिता।

५ रत्नमालादीप महाकाव्यके रचयिता।

६ ब्रह्मदेवके पुत्र, एक विख्यात ज्योतिर्विद्।

पद्मनाभरचित निम्नलिखित ग्रन्थ पाये जाते हैं—नामंदो नामक करणकुतूहलटीका, यन्त्रपक्षपक्ष विचार, ज्ञानप्रदीप, ध्रुवभ्रमणाधिकार। इस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने नामंदानन्द नामसे अपना परिचय दिया है। भुवनदीपका दूसरा नाम प्रकाश, शिवामण्डन, सम्पाद, चमत्कार आदि।

७ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इनके पिताका नाम बलभद्र, माताका विजयश्री और भ्राताका गोवर्द्धनमिश्र तथा विश्वनाथ था। इन्होंने किरणावलीभास्कर, तत्त्वचिन्तामणिकी तत्त्वप्रकाशिकाटीका, राद्धान्तमुक्ताहार और वर्द्धमानकृत नामकी उसकी टीका और १५७८ सम्वत्में वीरभद्रदेव चम्पूकी रचना की।

पद्मनाभदत्त—एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने सुपद्म व्याकरण, सुपद्मपञ्जिका, प्रयोगदीपिका उणादिवृत्ति, धातुकौमुदी, यङ्लुक्वृत्ति, परिभाषा, गोपालचरित, आनन्दलहरीटीका, आचारचन्द्रिका और भूरि प्रयोग नामक संस्कृत अभिधान बनाये हैं। इन्होंने परिभाषामें अपने पूर्वपुरुषोंका इस प्रकार परिचय दिया है—

सर्वशास्त्रविशारद गणपति, इनके पुत्र अविमाध्याय तत्त्ववित् न्यायदत्त, न्यायदत्तके पुत्र पाणिनीयार्थतत्त्ववित् पुरन्दर, पुरन्दरके पुत्र मीमांसाशास्त्रपारग उमादित्य, उमादित्यके पुत्र सांख्यशास्त्रविशारद गणेश्वर (गणपति), गणेश्वरके पुत्र रसमञ्जरीकार भानुदत्त, भानुदत्तके पुत्र वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित् रत्नाकर, रत्नाकरके पुत्र स्मृतिशास्त्रार्थतत्त्ववित् श्रीदत्त, श्रीदत्तके पुत्र वैदान्तिक भवदत्त, भवदत्तके पुत्र काव्यकारक दामोदर, दामोदरके पुत्र पद्मनाभ।

पद्मनाभदीक्षित—एक विख्यात स्मार्त्त। इनके पिताका नाम था गोपाल, पितामहका नारायण और गुरुका शितिकण्ठ। इन्होंने कात्यायनसूत्रपद्धति, प्रतिष्ठादर्पण और प्रयोगदर्पणकी रचना की।

पद्मनाभबीज (सं० क्ली०) पद्मनाभरचित बीजगणित।

पद्मनाभि (सं० पु०) पद्म नाभौ यस्य, समासान्तविधेर् अनित्यत्वात् न अच्। पद्मनाभ, विष्णु।

पद्मनाल (सं० क्ली०) पद्मस्य नाल। पद्माल, कमलकी नाल।

पद्मनिधि (सं० स्त्री०) कुबेरकी नौ निधियोंमेंसे एक निधिका नाम।

पद्मनिभेक्षण (सं० त्रि०) पद्मसदृश चक्षुयुक्त, कमलके समान नेत्रवाला।

पद्मनिमीलन (सं० पु०) प्रस्फुटित पद्मका सङ्कोचन।

पद्मनेत्र (सं० पु०) १ बुद्धविशेष बौद्धोंके अनुसार एक बुद्धका नाम जिनका अवतार अभी होनेको है। २ एक प्रकारका पक्षी।

पद्मपण्डित—नागरसर्वस्व नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

पद्मपत्र (सं० क्ली०) पद्मस्य पत्रमिव, पद्मपत्रमाकृत्या दस्य तथात्वं। १ पुष्करमूल पुष्करमूल। पद्मस्य पत्र। २ कमलदल।

पद्मपर्ण (सं० क्लो०) पद्मस्य पर्ण पत्र । पद्मपत्र, पुष्करमूल।

पद्मपलाशलोचन (सं० पु०) पद्मस्य पलाशे पत्रे लोचने यस्य। विष्णु।

पद्मपाणि (सं० पु०) पद्मं पाणौ यस्य। १ ब्रह्मा। २ बुद्धमूर्त्तिभेद धर्म बोधिसत्त्व। अमिताभके देवपुत्र। नेपालके पौराणिक ग्रन्थमें पद्मपाणिके कुछ नामान्तर ये हैं—

कमली, पद्महस्त, पद्मकर, कमलपाणि, कमलहस्त, कमलाकर आर्यावलोकितेश्वर, आर्यावलोकेश्वर, लोकनाथ।

तिब्बतमें ये 'चेनरेसी' (अवलोकितेश्वर) 'चुगचिग 'सल' (एकादशमुख), 'चग तोङ्ग' (सहस्र र चक्र), 'चकन पद्मकर्पा' (पद्मपाणि) इत्यादि नामोंसे तथा चीनदेशमें 'क्वनसे इन' और 'क्वन-शी-यिन' (परमकारुणिक) इत्यादि नामोंसे पुकारे जाते हैं। बौद्ध समाजमें पद्मपाणिको उपासना और धारणाविशेष प्रचलित है। नेपालमें विशेषतः तिब्बतमें बौद्धगण दूसरे सभी बौद्धदेवदेवियोंसे पद्मपाणिकी पूजा और उनके प्रति अधिक भक्ति दिखलाते हैं। तिब्बतवासियोंका कहना है, कि पद्मपाणि ही शाक्यमुनिके प्रकृत प्रतिनिधि हैं। बोधिसत्त्वके निर्वाणलाभ करने पर लोग कहने लगे—अब जीवोंके प्रति कौन दया करेंगे? बादमें पद्मपाणि बोधिसत्त्वरूपमें आविर्भूत हुए। उन्होंने बुद्धमार्गको रक्षा, अपने मतका प्रचार और सब जीवों पर दया करनेके लिये आत्मोत्सर्ग कर दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मैत्रेय बुद्ध आविर्भूत न होंगे, तब तक वे निर्वाणलाभ करके सुखावतीधाम जानेकी चेष्टा नहीं करेंगे। बौद्ध लोग आपद् विपद्में पद्मपाणिका स्मरण किया करते हैं।

पद्मपाणिकी नानामूर्त्ति कल्पित हुई हैं, कहीं एकादशमुख, अष्टहस्त और कहीं कुछ। एकादशमुख चूड़ाकारमें थाक थाकमें विभक्त रहता है। प्रत्येक थाकका वर्ण भिन्न भिन्न है। कण्ठके निकट जो तीन मुख हैं वे सफेद हैं, पीछेके तीन मुख पीले, बाद तीन लाल, दशवां मुख नीला और ग्यारहवां मुख लाल है। तिब्बतमें इसी प्रकारकी मूर्त्ति देखी जाती है। जापानमें ये ११ मुख बहुत छोटे मुकुटाकारमें हैं, उनके मध्यमें दो पूर्ण मूर्त्ति देखी जाती है। ऊपरकी मूर्त्ति खड़ी और नीचेकी बैठी है।

नेपाल और तिब्बतमें दो हाथवाले पद्मपाणि देखे जाते हैं, एकके हाथमें श्वेतपद्म है। बोधिसत्त्व देखो।

तिब्बतवासियोंका विश्वास है, कि पद्मपाणिकी ज्योतिर्विकीर्ण हो कर कभी कभी दलईलामाके रूपमें अवतीर्ण होती है। ३ सूर्य। ४ पद्महस्तक।

पद्मपाद—शङ्कराचार्यके एक प्रधान शिष्य। माधवाचार्यको शङ्करविजयमें लिखा है—सनन्दन नामक एक शिष्य शङ्कराचार्यके बड़े ही भक्त और आज्ञानुवर्त्ती थे। शङ्कर उन्हें अपने पास रख कर सर्वदा परमात्मतत्त्वका उपदेश दिया करते थे और स्वरचित भाष्यसमूहको उन्हें तीन बार पढ़ा चुके थे। एक दिन शङ्करने गङ्गाके दूसरे किनारेसे उन्हें बुलाया। उनकी अचला गुरुभक्ति देख कर पार होते समय गङ्गा उनके पद पदमें पद्मसमूह विकसित करने लगीं। सनन्दन उन कमलकुसुमोंके ऊपर पैर रखते हुए किनारे पहुंचे। उनकी भक्तिकी तुलना नहीं है यह कह कर शङ्कराचार्यने उन्हें आलिङ्गन किया और उनका पद्मपाद नाम रखा। पद्मपाद हमेशा गुरुके पास ही रहते थे। उन्होंने कापालिकके कराल कवलसे गुरुका उद्धार किया था।

शङ्कराचार्य देखो।

मोक्षपुराणके ३८वें और ४०वें अध्यायमें ये पद्मपादुका चार्य और परम अद्वैततत्त्ववित् नामसे वर्णित हुए हैं। मण्डनाचार्य देखो।

पद्मपाद अनेक वेदान्तिक ग्रन्थोंकी रचना कर गए हैं जिनमेंसे सुरेश्वराचार्यकृत मधुराष्टकको टीका, आत्मानात्मविवेक, पञ्चपादिका और प्रपञ्चसार नामक ग्रन्थ पाए जाते हैं। पद्मपादके अनुयायो शिष्यों में जो दशनामियोंको 'तीर्थ' और 'आश्रम' शाखा निकली है।

पद्मपादाचार्य (स० पु०) आचार्यभेद। पद्मपाद देखो।

पद्मपुर—१ काश्मीरराज पद्मपतिके मन्त्रीका बसाया हुआ एक नगर। इसका वर्त्तमान नाम पाम्पुर है। यह काश्मीरको राजधानीसे श्रीनगरसे ४ कोस दक्षिणपूर्व झेलम नदीके किनारे अवस्थित है। आज भी यहां अनेक मन्दिरोंका नाम है। आजकल केवल जिरेके व्यापार प्रसिद्ध है। २ राजतरङ्गिणी-वर्णित यमुना तीरका एक पुण्यस्थान।

पद्मपुराण (स० क्लो०) व्यासप्रणीत अष्टादश महापुराणके अन्तर्गत महापुराणविशेष। नारदीयपुराणमें इसी पुराणका विषय इस प्रकार लिखा है—प्रथम सृष्टिखण्ड है। इसमें पहले सृष्ट्यादिक्रम नाना आख्यान और इतिहासादि द्वारा धर्मविस्तार पुष्करमाहात्म्य ब्रह्मयज्ञ विधान, वेदपाठादिलक्षण दान कीर्त्तन, व्रतविधान, तारकाख्यान, सोमाध्याय, कार्त्तिकादिदेवत, अधोका यजन और दान ये सब विषय वर्णित हैं। द्वितीय भूमि खण्ड—इसमें प्रथममें पितृमाता आदिकी पूजा, शिव शर्म्मका उत्तमस्थानकी कथा सुव्रत शुक्र और वेनका धर्माख्यान, पितृशुश्रूषाख्यान, नहुषका ययातिचरित गुरुतीर्थनिरूपण बहु आख्यान तथा अशोकसुन्दरीकी कथा, हुण्डदैत्यवधाख्यान, कामोदाख्यान, विहुण्डवध, कुञ्जलसम्वाद, सिद्धाख्यान, सूतशौनकसंवाद ये सब विषय वर्णित हुए हैं।

तृतीय स्वर्गखण्ड—इसमें ब्रह्माण्डोत्पत्ति, भूमण्डल संस्थान, तीर्थाख्यान, नर्मदोत्पत्ति कथन, कुरुक्षेत्रादि तीर्थोंकी कथा, कालिन्दीपुण्यकथन, काशीमाहात्म्य गया तथा प्रयागमाहात्म्य, वर्णाश्रमानुरोधसे कर्म्मयोगनिरूपण, व्यासजैमिनिसम्वाद, समुद्रमथनाख्यान, व्रतकथा ये सब विषय वर्णित हैं।

चतुर्थ पातालखण्ड इसमें रामका अश्वमेध और राज्याभिषेक, अगस्त्यादिका आगमन, पौलस्त्यवंशको त्तींन, अश्वमेधोपदेश हयचर्या, नानाराजकथा, जगन्नाथ वर्णन वृन्दावनमाहात्म्य, नित्यलीलाकथन माधव स्नानमाहात्म्य स्नानदान पूजन फल धराबराहसम्वाद यम और ब्राह्मणको कथा, राजदूतसम्वाद, कृष्णस्तोत्र, शिव शम्भुसमायोग, दधीच्याख्यान, भस्ममाहात्म्य, शिव माहात्म्य, देवरातसुताख्यान, गौतमाख्यान, शिवगीता कल्पान्तरीय रामकथा भरद्वाजाश्रमस्थिति ये सब विषय वर्णित हैं।

पञ्चम उत्तरखण्ड—प्रथम गौरीके प्रति शिवका पर्वताख्यान, जालन्धरकथा, श्रीशैलादिका वर्णन, सगरकथा, गङ्गा, प्रयाग और काशीका माहात्म्य, आम्रादिदानमाहात्म्य महाद्वादशीव्रत, चतुर्विंशति एकादशीका माहात्म्य कथन विष्णुधर्मसमाख्यान विष्णुनाम सहस्रक, कार्त्तिकव्रतमाहात्म्य, माघस्नानफल, जम्बुद्वीप और तीर्थमाहात्म्य साभ्रमतीका माहात्म्य नृसिंह उत्पत्तिकथन देवशर्म्मादि आख्यान, गीतामाहात्म्य वर्णन भक्त्याख्यान, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य इन्द्र प्रस्थका माहात्म्य, वसुओंकी कथा, मन्त्ररत्नाभिधान, त्रिपाद्भूत्युपवर्णन, मत्स्यादि अवतारकथा, रामनाम शत और तन्माहात्म्य, उत्तरखण्डमें यही सब वर्णित हुए हैं।

पद्मपुराणकी पांच खण्डोंमें विभक्त है। ये पांच खण्ड पद्मपुराणके श्री महिमाके वर्णन करते हैं, इसीसे पद्मपुराण नाम होता है। इस पद्मपुराणमें ५५ हजार श्लोक है। पुराण देखो।

दिगम्बर जैनियोंके भी इस नामसे दो पुराण हैं जिनमेंसे एक रविषेणविरचित है। जैन हरिवंशकार जिनसेनने इन्हीं रविषेणका इस पद्मपुराणका उल्लेख किया है। इनमेंसे अनेक पौराणिक आख्यायिका इस पद्म पुराणमें देखी जाती है। अधिकतर जैन लोग इस ग्रन्थको पद्मपुराण मानते हैं इस पुराणके सुनानेका आदि कुछ उपाख्यान हिन्दू पद्मपुराणमें भी दिये जाते हैं।

पद्मपुष्प (स० पु०) पद्मभिव पुष्पं यस्य। १ कर्णिकार वृक्ष, कनेरका पेड़। २ पिसाङ्गपक्षी, एक प्रकारकी चिड़िया। ३ पारिभद्रवृक्ष।

पद्मरथ (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

पद्मराग (सं० पु०) पद्मस्येव रागो यस्य। रक्तवर्ण मणिविशेष।

इसको भाषा चुन्नीको पद्मराग कहते हैं। चुन्नी शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। 'युक्तिकल्पतरु' नामक ग्रन्थमें लिखा है—

देवोंकी भलाईके लिए पुराकालमें जब इन्द्रने बलासुरको मारना चाहा, तब उन्होंने जिसमें उसका बिन्दुमात्र भी रक्त पृथ्वी पर गिरने न पावे, इस प्रकारसे सूर्यदेवको आदेश किया। किन्तु दशाननको देख कर सूर्य डर गये और वह रक्त विचलित हो कर सिंहलदेशमें रावण गङ्गानदीमें पतित हुआ। रातको उस नदीके दोनों किनारे तथा मध्यमें वह रुधिर खद्योतान्वित उज्ज्वल बना। उसीसे इस जातीय तीन प्रकारके पद्मरागकी उत्पत्ति हुई।

वराहमिहिरकी बृहत्संहिताके मतसे—सौगन्धिक, कुरुविन्द और स्फटिकसे पद्मरागमणिकी उत्पत्ति हुई है। इनमेंसे सौगन्धिकजात पद्मराग भ्रमर, अञ्जन, पद्म और जम्बुरसके जैसा शोभित; कुरुविन्दजात पद्मराग बहुवर्णयुक्त मन्दद्युतिसम्पन्न और धातुविद्ध तथा स्फटिकजात पद्मराग विविध वर्णयुक्त द्युतिमान् और विशुद्ध होता है।

अगस्त्यके मतसे पद्मराग एक जातिका होने पर भी वर्णभेदके अनुसार यह तीन प्रकारका है, सौगन्धिक कुरुविन्द और पद्मराग। पद्मराग देखनेमें पद्मपुष्पके जैसा खद्योतकी तरह प्रभायुक्त, कोकिल सारस वा चकोर पक्षीके चक्षुके जैसा और समवर्णयुक्त होता है। सौगन्धिक देखनेमें ईषत् नील, गाढ़ रक्तवर्ण, लाक्षारस, हिङ्गुल और कुङ्कुमके जैसा आभायुक्त है। कुरुविन्द देखनेमें मसारक, मोम, सिन्दूर, गुञ्जा, बन्धूक और किंशुकके जैसा अतिरक्त और पीतवर्णयुक्त होता है।

अगस्त्यके मतसे सिंहल, कालपुर, अन्ध्र और तुम्बुर नामक स्थानमें पद्मराग पाया जाता है। इनमेंसे सिंहलमें अतिरक्तवर्ण, कालपुरमें पीतवर्ण, अन्ध्रमें ताम्रतनु बहुवर्ण और तुम्बुरमें हरित् आभाकी तरह पद्मराग मिलता है।

मतान्तरसे—सिंहलमें जो रक्तवर्णका पद्मराग मिलता है वही उत्तम पद्मराग है। कालपुरोत्पन्न पीतवर्णको कुरुविन्द कहते हैं। तुम्बुरमें जो नील आभायुक्त मणि पाई जाती है, वही नीलगन्धि है। इनमेंसे सिंहलदेशोद्भव पद्मराग उत्तम, अन्ध्रजात मध्यम और तुम्बुरदेशोद्भव पद्मराग ही निकृष्ट माना गया है।

युक्तिकल्पतरुमें लिखा है—रावणगङ्गा नामक स्थानमें जो कुरुविन्द उपजता है वह खूब लाल और परिष्कार प्रभायुक्त होता है। अन्ध्रदेशमें एक और प्रकारका पद्मराग मिलता है जो रावणगङ्गाजात पद्मरागके जैसा वर्णयुक्त नहीं होता और उसका मूल्य भी उससे कम है। इसी प्रकार स्फटिकाकार तुम्बुरदेशोद्भव पद्मराग भी कम दामका है, किन्तु देखनेमें सुन्दर होता है।

कौन पद्मराग उत्कृष्ट जातिका है और कौन विजातीय है, इसका निर्णय करनेकी व्यवस्था युक्तिकल्पतरुमें इस प्रकार लिखी है—

कसौटी पर घिसनेसे जिसकी शोभा बढ़ती अथवा परिमाण भी नष्ट नहीं होता, वही जातपद्मराग है। जिसमें ऐसा गुण नहीं है उसे विजातीय समझना चाहिये। हीरक वा चाहे माणिक्य, स्वजातीय दो पद्मरागको छोड़ कर दूसरेसे अथवा एक दूसरेसे घिसनेसे यदि कोई दाग न पड़े, तो उसीको जातिपद्मराग जानना चाहिए। फिर भी, जिसमें छोटे छोटे बिन्दु हों जो देखनेमें उतना चमकीला न हो, मलनेसे जिसकी शोभा कम हो जाती हो, उंगलीमें धारण करनेसे जिसके पार्श्वमें कालो आभा दिखाई पड़ती हो वही विजाति पद्मराग है। इसके अलावा दो मणि ले कर वजन करनेसे जिसका वजन भारी होगा वह उत्तम और जिसका कम होगा वह निकृष्ट पद्मराग समझा जाता है।

प्राचीन रत्नशास्त्रविद् पद्मरागमें ५ प्रकारके दोष, ८ प्रकारके गुण और १६ प्रकारकी छायाके विषयका वर्णन कर गये हैं।

देखनेमें पद्मरागकी तरहका, ऐसा विजातीय पद्मराग पांच प्रकारका है—कलशपुरोद्भव, सिंहलोत्थ, तुम्बुरोत्थ, मुक्तामालीय और श्रीपर्णक। कलशपुरोद्भवके ऊपर तुषके जैसा दाग रहता है तुम्बरमें कुछ कुछ

ताम्रभाव और सिंहलीयमें कालो आभा लक्षित होती है। इसी प्रकार मुक्तामाला और व्यापार्ण करीं भी वे जातय-बोधक चिह्न देखा जाता है। चुन्नी और माणिक्य देखो।

पद्मरागमय (सं० त्रि०) पद्मराग-मयट्। पद्मरागविशिष्ट।

पद्मराज (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।

पद्मराजगणि—ज्ञानतिलकगणिके गुरु और पुण्यसागरके शिष्य। इन्होंने १६६० सम्वत्‌में गौतमकुलकवृत्तिकी रचना की।

पद्मरेखा (सं० स्त्री०) पद्माकारा रेखा। हस्तस्थित पद्माकार रेखाभेद, सामुद्रिकके अनुसार हथेलीको एक प्रकार-को प्राकृतिक रेखा जो बहुत भाग्यवान् होनेका लक्षण मानी जाती है।

पद्मरेणु (सं० पु०) पद्मकेसर।

पद्मलाञ्छन (सं० पु०) पद्मं चिह्नं कमलं वा लाञ्छनं यस्य। १ ब्रह्मा। २ सूर्य। ३ कुबेर। ४ नृप ५ बुद्ध। (स्त्री०) ६ तारा। ७ लक्ष्मी। ८ सरस्वती। त्रि०) ९ पद्म-रेखायुक्त।

पद्मलेखा (सं० स्त्री०) काश्मीरराजकन्याभेद।

पद्मवत् (सं० त्रि) पद्मं विद्यतेऽस्य, पद्म-मतुप्, मस्य व। १ पद्मयुक्त। (पु०) २ स्थलकमलिनी, गेंदा।

पद्मवर्ण (सं० पु०) पुराणानुसार यदुके एक पुत्रका नाम।

पद्मवर्णक (सं० क्ली०) पद्मस्येव वर्णो यस्य कप्। १ पुष्करमूल। २ कमलतुल्य वर्णयुक्त। ३ पद्मकाष्ठ।

पद्मवासा (सं० स्त्री०) पद्मे वासो यस्याः। पद्मालया लक्ष्मी।

पद्मविजय—एक प्रसिद्ध जैनयति। ये यशोविजयगणिके सतीर्थ थे। इन्होंने ज्ञानविन्दु प्रकाशकी रचना की है।

पद्मवीज (सं० क्ली०) पद्मस्य बीजं। कमलबीज, कमल-गट्टा। पर्याय—पद्माक्ष, गालोड्य, कन्दली, भेण्डा, क्रौञ्चादनी, क्रौञ्चा, श्यामा, पद्मकर्कटी। गुण—कटु, स्वादु, पित्त, छर्दि, दाह और रक्तदोषनाशक, पाचन तथा रुचिकारक।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—हिम, स्वादु, कषाय, तिक्त, गुरु, विष्टम्भि, बलकर, रुच और गर्भ संस्थापक।

पद्मवीजाभ (सं० क्ली०) पद्मबीजस्य आभा इव आभा यस्य। मखअफल, मखाना।

पद्मवृक्ष (सं० क्ली०) पद्मकाठ।

पद्मवृषभविक्रामिन्—भावी बुद्धभेद।

पद्मव्यूह (सं० पु०) १ समाधिभेद, एक प्रकारकी समाधि। २ प्राचीनकालमें युद्धके समय किसी वस्तु या व्यक्तिकी रक्षाके लिये सेनाको रखनेको एक विशेष स्थिति। इसमें सारी सेना कमलके आकारकी हो जाती थी।

पद्मशायिनी (सं० स्त्री०) जलचर पक्षिभेद, पानीमें रहनेवाली एक चिड़िया।

पद्मशाली—बम्बई प्रदेशवासी शाली जातिकी एक शाखा। शाली देखो।

पद्मश्री (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

पद्मषण्ड (सं० क्ली०) पद्मसमूह, कमलका ढेर।

पद्मसमासन (सं० पु०) पद्मसमं आसनं यस्य। १ ब्रह्मा। (त्रि०) २ जिसके पद्मतुल्य आसन हैं।

पद्मसम्भव (सं० पु०) पद्मं विष्णुनाभिकमलं सम्भव उत्पत्तिस्थानं यस्य। १ ब्रह्मा। २ एक विख्यात बौद्ध पंडित।

पद्मसुन्दर—एक विख्यात जैनपण्डित। ये पद्ममेरुके शिष्य और आनन्दमेरुके प्रशिष्य थे। हर्षकीर्त्तिके धातुपाठसे जाना जाता है, कि पद्मसुन्दर तपागच्छके नागपुरीय शाखाभुक्त थे। इन्होंने दिल्लीश्वर अकबरकी सभामें एक विख्यात पण्डितको परास्त किया था। इस पर सम्राट्‌ने प्रसन्न हो कर इन्हें एक ग्राम, वस्त्र और सुखासन पारितोषिकमें दिये थे। इन्होंने संस्कृत भाषा-में १६१५ सम्वत्‌को 'रायमल्लाभ्युदय महाकाव्य' और १६२२ सम्वत्‌को 'पार्श्वनाथकाव्य' तथा प्राकृतिभाषामें 'जम्बूस्वामिकथानक'की रचना की।

पद्मसरस् (सं० क्ली०) काश्मीरस्थ ह्रदभेद।

पद्मसागरगणि—एक जैनाचार्य, विमलसागरगणिके शिष्य। इन्होंने १६५७ सम्वत्‌में उत्तराध्ययन 'बृहद्वृत्तिकथाकी रचना की।

पद्मस्रज (सं० क्ली०) पद्मका स्रज या माला।

पद्मसूरि—बृहद्गच्छभुक्त एक जैनाचार्य। प्रासादरचित

विक्रमसम्वत्‌के आरम्भमें जो टीका रची थी, उस पर रिपि उमीका संशोधन किया था।

पद्मस्नुषा (सं॰ स्त्री॰) १ गङ्गा। २ दुर्गा।

पद्मस्वस्तिक (सं॰ पु॰) पद्मचिह्नयुक्त स्वस्तिकभेद, वह स्वस्तिकचिह्न जिसमें कमल भी बना हो।

पद्मस्पृश (सं॰ पु॰) प्राचीन कालकी पद्मार्द्र नामनीकी एक प्रकारकी नाप।

पद्मनाभ (सं॰ पु॰) विष्णु।

पद्मा (सं॰ स्त्री॰) पद्मं वासस्थानत्वेनास्त्यस्याः, पद्म अर्शआदित्वात्, टाप च। १ लक्ष्मी। २ लवङ्ग, लौंग। ३ पद्मचारिणीलता। ४ पद्मकी, मनसादेवी। मनसा देखो। ५ पद्मचारिणी, गेंदेका पेड़। ६ पर्वत् भारतमें द। ७ कुसुमपुष्प, कुसुमका फूल। ८ बृहद्रथराजकन्या। कल्किदेवके साथ इसका विवाह हुआ था। विवाहके बाद कल्किदेवने नवविवाहिता स्त्रीके साथ सिंहलद्वीपमें रहने लगे थे। कल्किपुराणके १०वें अध्यायमें इसका पूरा हाल लिखा है। कल्कि देखो। ९ बङ्गदेशमें प्रवाहित गङ्गाकी पूर्वी शाखा। इसी शताब्दीमें रचित जैनोंके हरिवंशमें यह पद्मावती-पुत्र नदके नामसे वर्णित है। गङ्गा देखो। १० भादों बदी एकादशी तिथि। ११ बलराम कमलका नाम। १२ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

पद्माकर (सं॰ पु॰) पद्मानां आकरः। १ पद्मयुक्त जलाशय, बड़ा तालाब या झील जिसमें कमल पैदा होते हों। पर्याय—तड़ाग, कासार, सरसी, सरस्। सरोजिनी, सरोवर तड़ाक, तड़ाग, सरस सर, सरक। २ हिन्दीके एक प्रसिद्ध कविका नाम।

पद्माकरदेव—भद्रपतिविजय नामक ज्योतिःग्रन्थके रचयिता।

पद्माकर भट्ट—१ निम्बार्क सम्प्रदायके एक महन्त। ये ब्रह्मभट्टके शिष्य और वल्लभभट्टके गुरु थे।

२ हिन्दीके एक कवि। आप बाँदा बुन्देलखण्डके वासी मोहनभट्टके पुत्र थे। सं॰ १८१० में आपका जन्म हुआ था। आप पहले आपका नागपुर रघुनाथ राव पेशवाके यहाँ रहते थे। आप एक कवितासे प्रसन्न हो कर आपा साहबने आपको एक लाख रुपये पारितोषिकमें

दिये। पुनः पीछे आप जयपुर गये और वहाँ महाराज जगत् सिंहके नाम जगद्विनोद नामक ग्रन्थ बनाया। इस ग्रन्थको बना कर आपने जयपुरके राजासे बहुत धन पाया। वृद्धावस्थामें आपने गङ्गासेवन किया था। उसी समयका बनाया आपका गङ्गालहरी नामक स्तुति ग्रन्थ विशेष आदरणीय है।

पद्माक्ष (सं॰ स्त्री॰) पद्मस्य अक्षीव समासे पच् समासान्तः। १ पद्मबीज, कमलगट्टा। पद्मे इव पद्मसदृशे अक्षिणी यस्य। २ पद्मनेत्र, कमलके समान आँख। ३ विष्णु।

पद्माचल—भारतके पश्चिम उपकूलस्थित गोकर्णके निकट वर्ती एक पवित्र गिरि। यहाँ पद्मगिरीश्वर नामक शिव और पद्मिनासी नामक उनकी प्रतिष्ठित एक मन्दिर है। पद्माचलमाहात्म्यमें इसका पौराणिक आख्यान वर्णित है।

पद्माट (सं॰ पु॰) पद्म पद्माकारम् अटति गच्छति अट अच्। १ चक्रमर्द, चकवड़। (स्त्री॰) २ चकवड़ का बीज। ३ महामरुवाक वृक्ष।

पद्मानाभ (सं॰ पु॰) विष्णु।

पद्मानन्द—पद्मानन्दशतकके रचयिता।

पद्माम्बर (सं॰ क्ली॰) पद्मपत्र, कमलके पत्ते।

पद्मालय (सं॰ पु॰) ब्रह्मा।

पद्मालया (सं॰ स्त्री॰) पद्मं एव आलयो वासस्थानं यस्याः। १ लक्ष्मी। २ लवङ्ग। ३ गङ्गा।

पद्मावती (सं॰ स्त्री॰) पद्म अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य वत्व, सं ज्ञायां दीर्घः। १ मनसादेवी। २ नदीविशेष, पद्मानदी। ३ पद्मचारिणी, गेंदेका पेड़। ४ प्रसिद्ध कवि जयदेवकी पत्नी। ५ पटना नगरका प्राचीन नाम। ६ पन्ना नगरका प्राचीन नाम। ७ एक मात्रिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १०, ८ और १४ के विरामसे ३२ मात्राएँ होती हैं और अन्तमें दो गुरु होते हैं। ८ भरतखण्ड आदिकी पत्नीका नाम, पद्मा। ९ पुराणानुसार उग्रसेनकी एक पत्नीका नाम। १० युधिष्ठिरकी एक रानीका नाम।

पद्मावती—१ पौराणिक जनपदभेद। विष्णु, मत्स्य आदि पुराणोंमें लिखा है—'पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरामें

नरवरगढ़ राज्य करेगा।" यह पद्मावती नगरी कहां है? इसके उत्तरमें भवभूतिने मालती माधवमें लिखा है—'जहां पारा और सिन्धुनदी बहती है, जहां पद्मावतीके उच्च सौधमन्दिरावलीकी चूड़ा गगनस्पर्श करती है, वहां लवणकी चञ्चल तरङ्गिणी प्रवाहित होती है।' विन्ध्यशैलमालाके मध्यमें अवस्थित वर्त्तमान नरवारका नलपुर दुर्गके पार्श्वमें आज भी सिन्धु, पारा, लवण व नूननदी तथा मधुवार वा मधुमती नामक स्रोतस्वती बहती है। इससे यह सहजमें अनुमान किया जाता है, कि वर्त्तमान नरवर ही पूर्वकालमें पद्मावती नामसे प्रसिद्ध था।

२ सिंहलराजकन्या। चित्तोरके राजा रत्नसेन उसे हर लाये थे और उनसे विवाह कर लिया था। गजनी-निवासी हुसेनने पारसी भाषामें 'किस्सा पद्मावत' नामक एक ग्रन्थमें उक्त उपाख्यानका प्रथम वर्णना की है। राव गोविन्द सुंगीने १६५२ ई०में 'तुफावत् उलव' नामसे उक्त उपाख्यानको पारसी भाषामें प्रकाशित किया। उक्त पद्मावतीका उपाख्यान जो कार उत्कलके राजकवि उपेन्द्रभञ्जने तथा प्रायः २५० वर्ष पहले आराकानके प्रसिद्ध मुसलमान कवि आलोयलने बङ्गालमें पद्मावतीकाव्यकी रचना की।

चित्तौरका पद्मिनी-उपाख्यान ही विकृतभावसे इस पद्मावती काव्यमें वर्णित है। चित्तौराधिप पद्मावतीके कवि द्वारा रत्नसेन नामसे विदित हैं। उपाख्यान विकृत होने पर भी इस काव्यके शेषमें अलाउद्दीनका पराजय प्रसङ्ग है। कवि आलोयलने आराकानराजके अमात्य मागन ठाकुरके आदेशसे पद्मावतीकी रचना की। यह ग्रन्थ यद्यपि मुसलमान कविसे बनाया गया है और उसमें मुसलमानी भाव अवश्य है, तो भी हिन्दू समाजका आचार व्यवहार और प्रकृत पारिवारिक चित्र अत्यन्त सुन्दर अङ्कित हुआ है। ग्रन्थ पढ़नेसे ग्रन्थकारकी संस्कृताभिज्ञताका यथेष्ट परिचय पाया जाता है।

पद्मावतीप्रिय (सं० पु०) पद्मावत्याः प्रियः स्वामी। १ जरत्कारु मुनि। २ जयदेव।

पद्मासन (सं० क्ली०) पद्ममिव पद्माकारेण बद्धं आसनं। १ योगासनविशेष। गोरक्षसंहितामें इस पद्मासनका विषय इस प्रकार लिखा है—वाम ऊरुके ऊपर दक्षिण जङ्घा रखते हैं और छाती पर अङ्गुष्ठ रख कर नासिकाके अग्रभागको देखते हैं। यह पद्मासन व्याधिनाशक है।

२ पूजाके निमित्त धातुमय पद्माकार आसन। पद्मं विष्णुनाभिकमलं आसनं यस्य। ३ ब्रह्मा, कमलासन। ४ शिव। ५ सूर्य। ६ स्त्रीके साथ प्रसङ्ग करनेका एक आसन।

पद्मासनदण्ड (सं० पु०) एक प्रकारका डंड जो पालथी मार कर और घुटने जमीन पर टेक कर किया जाता है। इससे दम बढ़ता है और घुटने मजबूत होते हैं।

पद्माह्वा (सं० स्त्री०) पद्मस्य आह्वा आख्या यस्याः। १ पद्मचारिणीलता, गेंदा। २ लवङ्ग, लौंग।

पद्मिन् (सं० पु०) पद्मानि सन्त्यस्मिन्, पुष्करादित्वात् इनि। १ पद्मयुक्तदेश। २ पद्मधारी विष्णु। विष्णु शङ्ख चक्रगदापद्मधारी हैं इसीसे वह पद्मिन् कहते हैं। (त्रि०) ३ पद्मधारिमात्र। ४ पद्मसमूह।

पद्मिनी (सं० स्त्री०) पद्मिन् स्त्रियां ङीप्। १ पद्मलता। पर्याय—नलिनी, बिसिनी, मृणालिनी, कमलिनी, पङ्केरुहिणी, सरोजिनी, नालीकिनी, नालीकिनी, अरविन्दिनी, अम्भोजिनी, पुष्करिणी, अब्जिनी, अब्जिनी।

इसका गुण—मधुर, तिक्त, कषाय, शीतल, पित्त, क्रिमिदोष, कफ, भ्रम और सन्तापनाशक है। पद्मस्य गन्ध इव गन्धो विद्यते शरीरे यस्याः। २ कोकशास्त्रके अनुसार स्त्रियोंकी चार जातियोंमेंसे सर्वोत्तम जाति। कहते हैं, कि इस जातिकी स्त्री अत्यन्त कोमलाङ्गी, सुशीला, रूपवती और पतिव्रता होती है। ३ सरोवर, तालाब। ४ पद्म, कमल। ५ मृणाल, कमलका नाल। ६ हस्तिनी, मादा हाथी।

पद्मिनी—भीमसेनकी प्रधान महिषी (पटरानी) और हमीरशङ्ककी कन्या। १२७५ ई०में लक्ष्मणसिंह मेवारके सिंहासन पर बैठे। नाबालिग होनेके कारण उनके चचा भीमसिंह राजकार्य की देखभाल करते थे। इसी भीमसिंहने भारतप्रसिद्ध पद्मिनीका पाणिग्रहण किया था।

रूपमें गुणमें ऐसी रानी बहुत कम देखी गई है। इस सौन्दर्यमयी अलौकसामान्या रमणीको लक्ष्य कर

देशीय और विदेशीय कितने ही कवि काव्य लिख कर प्रतिष्ठा लाभ कर गए हैं। यद्यपि ऐसा। राज-पूतनारत्न आज भी उनको राजपूत लगनो कर कर सम्बोधन करते और उनकी कीर्ति गाथा गा गा कर सर्वसाधारणको मुग्ध किया करते हैं।

पद्मिनीका रूप ही राजपूतजातिके पतनका कारण था। सुलतान अलाउद्दीनने पद्मिनीको पानेकी आशासे ही चित्तौरमें घेरा डाला था। बहुत दिन तक घेरे रखनेके बाद उन्होंने यह प्रचार कर दिया कि पद्मिनीको पा लेनेसे ही वे आसानीसे लौट कर चले जावेंगे।' परन्तु क्रोधी राजपूतोंने यह सुन कर प्रतिज्ञा की कि जब तक एक भी राजपूत बाकी बचा रहेगा, तब तक कोई भी मुसलमान चित्तौरकी रानी पर हाथ नहीं रख सकता। जब अलाउद्दीनने देखा कि उनका उद्देश्य सिद्ध होनेका नहीं है तब उन्होंने भीमसिंहको कहला भेजा, 'मैं उस अनुपमा सुन्दरीका प्रतिबिम्ब सिर्फ एक बार दर्पणमें देख कर दिल्ली लौट जाऊंगा।' भीमसिंह इस प्रस्ताव पर सहमत हो गये। पूर्व अलाउद्दीनने कुछ सैन्य ले कर चित्तौरमें प्रवेश किया। भीमसिंहने आतिथ्य सत्कारमें कुछ भी कसर उठा न रखी। यहां तक कि वे अलाउद्दीनको बिदाई करनेमें उनके साथ दुर्ग तक आये थे। पूर्व अलाउद्दीनने चिकनी चुपड़ी बातोंसे राजपूतोंको खुश किया। भीमसेन अलाउद्दीनके साथ शिष्टाचार कर रहे थे, कि इतनेमें एक दल सशस्त्र यवनसेना गुप्त स्थानसे निकल कर एकाएक भीमसिंह पर टूट पड़ी और उन्हें कैद कर लिया। अलाउद्दीनने यह घोषणा कर दी, कि जब तक पद्मिनी न मिलेगी तब तक भीमसिंह कभी नहीं छूट सकते।

इस दारुण संवादको सुन कर चित्तौरमें खलबली मच गई। बाद बुद्धिमती पद्मिनीने भीमसिंहके उद्धारके लिए एक नई तरकीब दूंढ़ निकाली। उन्होंने अलाउद्दीनको कहला भेजा, 'मैं आत्मसमर्पण करनेको तैयार हूं, किन्तु इसके पहले आपको यह वचन देना पड़ेगा। हम लोग सात सौ डोलियोंमें जितनी सखियां हमारे साथ जाना चाहती हैं, जिससे उनको मर्यादामें कोई हानि न पहुंचे, इसका भी आपको बन्दोबस्त करना होगा। हमारी जो सहेलियां हैं वे भी हमारे साथ दिल्ली तक जानेको तैयार हैं। इन सब सहेलियोंका सम्मान और सदाचारोंमें किसी कुछ त्रुटि न हो तथा जिससे कोई इन सब कुलमहिलाओंके निकटवर्ती हो कर अन्तःपुरविधिका व्यभिचार न करे, इसका भी आपको उचित प्रबन्ध करना होगा और अन्तिम बिदाई लेनेके लिये आपको भीमसेनके साथ हमारा मुलाकात कराना होगा।' अलाउद्दीन पद्मिनीके इन प्रस्तावों पर सहमत हो गये।

ठीक निर्दिष्ट दिनमें सात सौ आवरणयुक्त शिबिका आ गई। उनमें हर एकमें छः सशस्त्र राजपूत वीर छिप कर बैठ गये। वस्त्राच्छादित शिबिकाएं चारों और यवनशिबिरके सम्मुख पहुंचीं। बाद उसके पद्मिनीकी आत्मीयतासे मिलनेका आदेश हुआ। आधा घंटा तो भीमसेन यवनशिबिरमें रानीसे मुलाकात करने आये। यहां पहुंचने ही उनको कुछ बलवान राजपूतोंने शिबिकामें छिपा लिया और नगरकी ओर रवाना कर दी। पद्मिनीकी सहचरियां अन्तिम बिदाई ले कर लौट रही हैं, ऐसा समझ यवनोंमेंसे कोई भी कुछ न बोला। कुछ समय बीत गया और आखिर अलाउद्दीन आगबबूला हो उठे। पद्मिनीको लाने और अपने आदमियोंको हुक्म दे दिया कि वे सब शिबिकाएं जो अभी शिबिरके भीतर हैं उनका आवरण उतार डाला। किन्तु आवरण उतार लेने पर उन्होंने जो देखा उससे एक बार तो सन्नाटेमें और दूसरी ओर भयसे काम्प कर उनके हृदयमें त्रास छिपा। शिबिकासे निकल कर राजपूत वीरगण यवनों पर टूट पड़े। दोनों दलोंमें घमासान युद्ध हुआ। राजपूतोंके सब एक एक मारे गये, तब तक उन्होंने मुसलमान सैनिकोंको पद्मिनी राजपूतोंका पीछा करनेका मौका न दिया। इस प्रकार अलाउद्दीनकी आशा पर पानी फिर गया।

इधर भीमसिंह उस रातमें एक घोड़े पर सवार हो निरापद हो कर दुर्गमें प्रवेश किया। पीछे यवन सेनाने आ कर दुर्ग पर धावा बोल दिया। राजपूत वीरगण प्राणपणसे दुर्ग की रक्षा करने लगे। इस समय

पद्मिनीके चचा गोरेने और उनके बारह वर्षके भतीजे बादलने असामान्य वीरता दिखलाई थी।

पठानके बार बार आक्रमणसे ही चित्तौर ध्वंस-प्राय होता गया। एक एक राजपूतवीर बहुसंख्यक यवनसेनाको मार कर समरशायी होते गये। क्रमशः भीमसिंहको मालूम हो गया कि वे अब प्राणप्रियतमा पद्मिनी और चिरसुखके आवास चित्तौरनगरकी रक्षा किसी हालतसे नहीं कर सकते। उन्होंने फिर स्वप्नमें देखा, कि चित्तौरकी अधिष्ठात्रीदेवी नितान्त क्षुधातुर हो बारह राजपूतोंका शोणित चाहती हैं। तदनुसार एक एक कर ग्यारह राजपूतोंने जन्मभूमिके लिए रणस्थलमें आत्मोत्सर्ग किया। अब भीमसिंह स्थिर न रह सके। राजवंशका पिण्डलोप होनेकी आशङ्कासे अन्तमें वे स्वयं आत्मोत्सर्ग करनेको अग्रसर हुए। राजपूत महिलागण जहरव्रतका अनुष्ठान करनेके लिये अग्रसर हुईं। राजस्थानको प्रफुल्लकमलिनी पद्मिनीने सदाके लिये पतिचरणको चूमती हुई ज्वलन्त चितामें देह विसर्जन करके निर्मल सतीत्वरत्न और राजपूतकुल गौरवकी रक्षा की। राजपूत-महिलाओंने भी पद्मिनीका अनुमरण किया। भीमसिंह भी निश्चिन्त मनसे सैकड़ों वैरिहृदयको विदीर्ण कर आत्मीय स्वजनोंके साथ अनन्तशय्या पर सो रहे। चित्तौर वीरशून्य हुआ और अलाउद्दीनके हाथ लगा। किन्तु जिस पद्मिनीके लिए अलाउद्दीन इतने दिनोंसे लालायित थे, जिस पद्मिनीके लिए कितनी खून-खराबी हुई, वह पद्मिनी अलाउद्दीनके हाथ न लगी। जहां पद्मिनीने अपना शरीर विसर्जन किया था, उस स्थानको अलाउद्दीनने जा कर देखा, कि उस समय भी तमसाच्छन्न गह्वरसे धूमराशि निकल रही थी। तभीसे वह गह्वर एक पवित्र स्थानमें गिना जा रहा है।

पद्मिनीकण्टक (सं० पु०) पद्मिनीकण्टक इव आकृतिर्विद्यते यस्य। क्षुद्ररोगविशेष भावप्रकाशमें लिखा है—जिस रोगमें गोलाकार पाण्डुवर्ण कण्डुयुक्त अथच पद्मनालके कांटेकी तरह कण्टक द्वारा परिवृत मण्डल उदित होता है, उसे पद्मिनीकण्टक कहते हैं। इस रोगमें नीमके काढेसे वमन और नीम द्वारा घृत पाक कर मधुके साथ उसका सेवन विधेय है। घृतकी प्रस्तुत प्रणाली—गव्यघृत ४ सेर; कल्कार्थ निम्बपत्र और अमलतासपत्र दोनों मिला कर ८१ सेर, निम्बपत्रका क्वाथ ३६ सेर। यथानियम इस घृतका पाक कर ८ तोला परिमाणमें सेवन करनेसे ही पद्मिनीकण्टक रोग आराम हो जाता है। (भावप्र० क्षुद्ररोगा०)

सुश्रुतके मतमें पद्मके कण्टककी तरह गोलाकार और उसका मण्डल पाण्डुवर्ण, ऐसे व्रणको पद्मिनीकण्टक कहते हैं। यह वायु और कफ द्वारा उत्पन्न होता है।

पद्मिनीकान्त (सं० पु०) पद्मिन्याः कान्तः। सूर्य।

पद्मिनीवल्लभ (सं० पु०) पद्मिन्याः वल्लभः। सूर्य।

पद्मी (हिं० पु०) १ पद्मयुक्तदेश। २ पद्मधारी, विष्णु। ३ पद्मसमूह। ४ बौद्धोंके अनुसार एक लोकका नाम। ५ उक्त लोकमें रहनेवाले एक बुद्धका नाम जिनका अवतार अभी इस संसारमें होनेको है। ६ गज, हाथी।

पद्मेश—एक हिन्दीकवि। सम्वत् १८०३में इनका जन्म हुआ था। इनकी कविता सुन्दर होती थी।

पद्मेशय (सं० पु०) पद्मे शेते शी-अच्। (अधिकरणे शेते। पा ३।२।१५,शयवासवासिष्विति पा ६।३।१८ इति अलुक्।) विष्णु।

पद्मोत्तम (सं० पु०) कुसुम्भपुष्पवृक्ष, कुसुम फूलका पेड़।

पद्मोत्तर (सं० पु०) पद्मादुत्तरः, वर्णतो श्रेष्ठः। १ कुसुम्भ, कुसुम। २ कुसुम्भबीज, कुसुमका बीया। ३ एक बुद्धका नाम।

पद्मोत्तरात्मज (सं० पु०) पद्मोत्तरस्य आत्मजः पुत्रः जिन-चक्रवर्त्तिविशेष।

पद्मोद्भव (सं० पु०) पद्मं उद्भव उत्पत्तिस्थानस्य। ब्रह्मा।

पद्मोद्भवा (सं० स्त्री०) पद्मोद्भव टाप्। मनसादेवी।

पद्य (सं० क्ली०) १ जातिविशेष (सह्याद्रि ३।५।१८)। पदं चरणमर्हतीति पद-यत्। २ कविकृति, श्लोक। ३ श्रुति-मधुर शब्दविन्यासमें रचित कविता वा काव्य। तुलसीदासके रामायण तथा महाभारत आदि ग्रन्थोंकी जो भाषा है, वह पद्यमें ही लिखी गई है। हम लोग जिस भाषामें हमेशा बोल-चाल किया करते हैं, वह गद्य है। विशेष विवरण गद्य शब्दमें देखो।

पादलक्षणरहित पदसमूहको गद्य कहते हैं। किन्तु पादलक्षणयुक्त छन्दमात्र समन्वित पादसन्निवेश पद्य कहलाता है। काव्य देखो।

पंजाब भाषामें विभक्त छन्दोंमें पद्यादि लिखे जाते हैं। छन्दादिका प्रचार और वाक्यविन्यास छन्दशास्त्रमें तथा साहित्यदर्पणमें विशेषरूपसे लिखा है। वेदादि ग्रन्थोंकी भाषा पद्य या गद्य है, किन्तु उसका छन्द और मात्रादि अलग है। तत्परवर्त्ती पुराणयुगमें—रामायण अथवा महाभारतके समयमें—वैदकी भाषा विकृत हो कर या सर्वाङ्गीणता प्राप्त कर काव्यरूप नूतन आकारमें देखी गई थी। उस प्राचीन समयके हिन्दुओंके सभी ग्रन्थ लिखे हुए हैं उन सभी ग्रन्थोंकी रचना पद्यमें है। केवल प्राचीन हिन्दुगण ही अपनी भाषामें पद्यादिको रचना करते थे सो नहीं। होमर, भर्जिल, ओभिद, एसकाइलस, सफोक्लिस मिल्टन सेक्सपियर बाइरन आदि सुदूरवासी पाश्चात्य कविगण भी पद्य लिख कर जगत्‌में प्रसिद्ध हो गये हैं। उन सब ग्रन्थादिमें विभिन्न आख्यानपान भाषा शब्दयोजना और अभाव वर्णना देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। Ballad, Drama, Epic, Lyric, Ode आदि कई प्रकारके पद्योंका नमूना उन सब ग्रन्थोंमें देखा जाता है।

पुराणादि रचे जानेके पहले कालिदास, भारवि भवभूति, वररुचि, भट्टि, माघ, दण्डी प्रभृति विख्यात कवि श्रीहर्ष, भट्टनारायण, श्रीहर्ष आदि ख्यातनामा कवियोंकी बनाई हुई कविताएं जगत्‌में अतुलनीय और अपूर्वताका आदर्शस्थान है। इसके बाद जयदेव गोस्वामीका आविर्भाव हुआ। उन्हींके बनाये हुए गीतगोविन्द नामक ग्रन्थमें 'मधुरकोमलकान्तपदावली' 'ललितलवङ्गलता-परिशीलन और 'स्मरगरलखण्डनम् मम शिरसि मण्डनम्' आदि कविताएं रसमाधुर्यमें जैसी हैं उसकी तुलना नहीं हो सकती। चण्डीदास, ज्ञानदास गोविन्ददास कृष्णदास कविराज, नरोत्तमदास आदि वैष्णव कवियोंके पद मनोहर और प्रेमप्रकाशक हैं। उन सब वैष्णव कवियोंकी पदावली इतनी मनोरम है, कि उनके रचित पद्यादिका पाठ करनेसे अन्तःकरण पुलकित होता है। वर्त्तमान कवियोंमें माइकेल मधुसूदन दत्तने काव्य जगत्‌में नूतनयुग परिवर्त्तन किया है। उन महात्माने 'मेघनाद-वध' तथा 'तिलोत्तमासम्भव काव्यमें मिल्टन और होमर आदि यूरोपीय कवियोंके आदर्श पर कविता लिख कर युग नाम कमाया है। गीत श्लोक आदि साधारणतः पद्य भाषामें लिखे जाते हैं। इसमें पद्यका मतमनागायन भी कथा देवविषयवर्णना पद्यमें हो लिखी देखी जाती है।

पद्यकी मात्रादि और छन्दादिके विवरण, कवि, पाश्चात्य और वैष्णव कवि-कृत पद्यादिके उदाहरण उन्हीं सब शब्दोंमें तथा सब कवियोंके जीवनोंमें विशेषरूपसे आलोचित हुए हैं।

छन्दोमञ्जरीमें पद्यका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

> "पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
> वृत्तमक्षरसंख्यातं जातिर्मात्राकृता भवेत्॥"
>
> (छन्दोम०)

चार चरणविशिष्ट वाक्य पद्य है। यह पद्य दो प्रकारका है जाति और वृत्त। जिसके अक्षर समान हैं उसे वृत्त और जो मात्रानुसार होता है उसे जाति कहते हैं। समवृत्त अर्द्धसम और विषमवृत्तके भेदसे वृत्त भी तीन प्रकारका है। जिसके चार पद समान हैं उसे समवृत्त, जिसके प्रथम और तृतीय पाद तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद समान हैं उसे अर्द्धसम और जिसके चारपद विभिन्न हैं उसे विषमवृत्त कहते हैं। छन्दोबद्ध पदमात्र ही पद्य है।

४ शास्त्र। पद-यत् (पद्यत्रसिन् दृश्य। पा ४।४।८७) ५ नातिशुष्क कर्द्दम, वह कीचड़ जो सूखा न हो। (पु०) पद्भ्यां जात पद-यत्। ६ शूद्र। शूद्रने ब्रह्माके पद से जन्म ग्रहण किया है, इसीसे पद्य शब्दसे शूद्रका बोध होता है।

> "ब्रह्मण्येतत् मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
> ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥"
>
> (शुक्लयजु० ३१।११)

पद्यमय (सं० त्रि०) पद्य-स्वरूपे मयट्। पद्यस्वरूप।

पद्या (सं० स्त्री०) पद्भ्यां हिता पादं शरीरावयवात् यत्, ततः यान्त्य पद्भाव। (पद्यत्यदर्थे। पा ६।३।५२) १ शर्करा, शक्कर। २ पन्था राह, रास्ता। ३ [illegible] गुड़।

पद्यात्मक (सं० त्रि०) जो पद्यमय हो, जो छन्दोबद्ध हो।

पद्र (सं० पु०) पद्यतेऽस्मिन्निति पद-गतौ रक् (स्फायित

ज्यीति। उण् २।१३। १ ग्राम। २ ग्रामसमूह। ३ भूलोक, ४ देशभेद।

पद्य (सं० पु०) पद्‌ रथ इव गम्य। पदगामी, पादचारी।

पद्द (सं० पु०) पद्यते गम्यतेऽस्मिन्ननेन वा पद गतौ (सर्वनिघृष्वरिष्वेति। उण् १।१५३) इति निपातनात् सिद्धं। १ भूलोक। २ रथ। ३ पन्थ।

पद्दन् (सं० पु०) पद्यते गम्यते यत्र पद गतौ वनिप् (स्नामदिपद्यर्तीति उण् ४।११२) पन्था, राह।

पधरना (हिं० क्रि०) किसी बड़े, प्रतिष्ठित या पूज्यका आगमन।

पधराना (हिं० क्रि०) १ आदर पूर्वक ले जाना। २ किसीको आदरपूर्वक ले जा कर बैठानेकी क्रिया या भाव, पधारनेकी क्रिया।

पधारना (हिं० क्रि०) १ गमन करना, जाना, चला जाना। २ आ पहुंचा। ३ गमन करना, चलना। ४ आदरपूर्वक बैठाना, प्रतिष्ठित करना। इस शब्दका प्रयोग केवल बड़े या प्रतिष्ठितके आने अथवा जानेके सम्बन्धमें आदरार्थ होता है।

पनंग (हिं० पु०) सर्प, साँप।

पन (हिं० पु०) १ प्रतिज्ञा, संकल्प, प्रण। २ आयुके चार भागोंमेंसे एक। साधारणतः लोग आयुके चार भाग अथवा अवस्थाएं मानते हैं, पहली बाल्यावस्था, दूसरी युवावस्था, तीसरी प्रौढ़ावस्था और चौथी वृद्धावस्था।

पनकटा (हिं० पु०) वह मनुष्य जो खेतोंमें इधर उधर पानी ले जाता या सींचता है।

पनकपड़ा (हिं० पु०) वह गीला कपड़ा जो शरीरके किसी अंग पर चोट लगने या कटने या छिलने आदि पर बांधा जाता है।

पनकाल (हिं० पु०) अति वर्षाके कारण अकाल।

पनकुकड़ी (हिं० स्त्री०) पनकौवा देखो।

पनकुट्टी (हिं० स्त्री०) वह छोटा खरल जिसमें प्रायः वृद्ध या टूटे हुए दांतवाले लोग खानेके लिये पान कूटते हैं।

पनकौवा (हिं० पु०) एक प्रकारका जलपक्षी, जलकौवा।

पनखट (हिं० पु०) जुलाहोंको वह लचीली धुनकी जिस पर उसके सामने बुना हुआ कपड़ा फैला रहता है।

पनगाचा (हिं० पु०) पानीसे भरा या सींचा हुआ खेत।

पनगोटी (हिं० स्त्री०) गोटिका गोटला।

पनघट (हिं० पु०) पानी भरनेका घाट, वह घाट जहां से लोग पानी भरते हैं।

पनच (हिं० स्त्री०) प्रत्यंचा, धनुषकी डोरी।

पनचक्की (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको चक्की जो पानीके जोरसे चलती है। नदी या नहर आदिके किनारे जहां पानीका वेग कुछ अधिक होता है उसी जगह लोग कोई चक्की या दूसरी कल लगा देते हैं। उस चक्की या कलका सम्बन्ध एक ऐसे बड़े चक्करके साथ होता है जो बहते हुए जलमें प्रायः आधा डूबा रहता है। जब बहावके कारण वह चक्कर घूमता है, तब उसके साथ सम्बन्ध रहनेके कारण वह चक्की या कल चलने लगती है। सभी काम पानीके बहावके द्वारा ही होता है।

पनचो (हिं० स्त्री०) गेड़ीके खेलमें खेलनेके लिये पतली लकड़ी या गेड़ी।

पनचोरा (हिं० पु०) वह बरतन जिसका पेट चौड़ा और मुंह बहुत छोटा हो।

पनडुब्बा (हिं० पु०) १ वह जो पानीमें गोता लगाता हो, गोताखोर। ये लोग प्रायः कूएं या तालाबमें गोता लगा कर गिरी हुई चीज ढूंढ़ते अथवा समुद्र आदिमें गोते लगा कर सीप और मोती आदि निकालते हैं। २ पानीमें गोता लगा कर मछलियां पकड़नेवाली चिड़िया। ३ जलाशयोंमें रहनेवाला एक प्रकारका कल्पित भूत। इसके विषयमें लोगोंका विश्वास है, कि वह नहानेवाले मनुष्योंको पकड़ कर डुबा देता है। ४ मुरगाबी।

पनडुब्बी (हिं० स्त्री०) १ पानीमें डुबकी मार कर मछलियां पकड़नेवाली चिड़िया। २ पानीके अन्दर डूब कर चलनेवाली एक प्रकारकी नाव। इसका आविष्कार अभी हालमें पाश्चात्य देशोंमें हुआ है, सब मेरिन। ३ मुरगाबी।

पनपना (हिं० क्रि०) १ पुनः अङ्कुरित या पल्लवित होना, पानी मिलनेके कारण फिरसे हरा हो जाना। २ रोगमुक्त होनेके उपरांत स्वस्थ तथा हृष्ट पुष्ट होना।

अनमाइट (हिं॰ स्त्री॰) 'अन' 'अन' बोलनेका शब्द जो प्रायः बाघ बकरेके डरसे होता है।

अनगाना (हिं॰ क्रि॰) ऐसा कार्य करना जिससे कोई वस्तु बनती।

अनचर (अ॰ पु॰) ज्योतिषोक्त ग्रहावेध। हिन्दुस्तान के दूसरे दूसरे स्थल अर्थात् जन्मसे द्वितीय, पंचम षष्ठम और एकादश स्थानका नाम अनचर है।

अनसता (हिं॰ पु॰) पानीके भरी हुए घोड़े स्थानका छोटा हिस्सा।

अनबिछिया (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका कीड़ा जो पानीमें रहता है और डंक मारता है।

अनबुझा (हिं॰ पु॰) अनबूझा देखो।

अनमना (हिं॰ पु॰) बिना बनाये हुए चावल साधारण नाम।

अनसरी—कोलियोंकी एक श्रेणी। इनका दूसरा नाम मलवारी और मलहारी कोलि है। नासिकाके कई स्थानमें इनका नाम दिया जाता है। ये लोग प्राय कोलियोंको श्रम नहीं करते और नाम परिवार रखते हैं। अहमदपुरके निकट कई स्थानों में कोलि नाम इनका नाम करते हैं। नासिक और अहमदनगरमें इस श्रेणीके कोलि कहलाते हैं। पूनाके दक्षिण मलवारी कोलि व मराठा लोगोंके मुसलमान सिपाही, नायों और राजपूत सामन्त आदि सबसे दुःखको रक्षा करते आ रहे हैं।

कहते हैं कि पूर्व कालमें दाक्षिणात्यके पश्चिम प्रदेश किसी स्थानमें ये लोग वास करते थे। वादको नाना महादेवके राजपूत नायक थे। पीछे नायकियों (एक जातिका नाम) ने वहाँसे कोलियोंको खदेड़ दिया। उनका दमन करनेके लिये एक दल सेना भेजी गई। किन्तु वे बदल कर नायकियोंके साथ इकट्ठे होकर शामिल हुए। कोलियोंका देश पहले मुसलमानों और बादशाहोंकी सेनाके मारफत कोई भी उनका स्वाद गुड़ मर्दनको राजी न हुआ। बादमें दक्षिण नाम नायक एक महाराष्ट्रीयने दोनोंके बीचका मामला एक कोलिको महादेवके पास [illegible] कई तरह समझा और शान्त किया। नासिकका देश स्वतन्त्र हो गया। एक स्वतन्त्र हिन्दू सेनापति बहादुर बनकर किस विश्वासघातक अब जमींदार

महादेव पर्वतके कुछ कोलि नाम नहीं। नायकियोंमें जो सब रहे थे, वे अपना कोलियोंके साथ मिल गये। इस समय कोलि नाम दक्षिण भारतमें प्रधान हो उठे थे। १३४० ई॰में मलवार तुगलकके समय कि बाद एक कोलि सरदार प्रधान था। देवगिरि मार्दवके पश्चात् बादमें कोलियोंने भीतर प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया। बाहमनी और अहमदनगरके राजाओंके समय कोलि लोग प्रधान भावसे काम करते थे। इस समय अनसरियोंने पहले उन पर काम किये थे।

१७वीं शताब्दीके मध्यभागमें कोलि लोग बागी हो गये। १६१८ ई॰में अहमदनगर राज्य ध्वंस होनेके बाद दौलतमन्द अहमदनगरको अधीन लाने गये। जब कोलियोंका प्रमाण माना गया और तदनुसार राज्य भी निर्धारित हुआ, तब वे सबके सब विद्रोह कर उठे। पीछे मालब नायक एक कोलि सरदारने प्रधान्य कोलियोंको मुगलोंके विरुद्ध उत्तेजित किया, पीछे जिन्होंने बार बार मुसलमानोंको पराजित किया और इस कोलि लोग विद्रोही हो गये और यह विद्रोह बड़ा कठिनतासे शान्त किया गया। विद्रोहदमन हो जाने पर औरङ्गजेबने कोलियोंके प्रति दया दरसायी थी। पेशवाओंके आधिपत्यकालमें कोलि लोग राजभक्त हुए। अन्तमें विद्रोह पर हो गये थे। १८वीं शताब्दीके शेष भागमें बाद इङ्गलैण्डको आधीन अहमदनगरके पोषक तथा अधिकार करनेमें कोलि उसके भारी सहायक प्रधानी थे। १८१० ई॰में जब सिपाही विद्रोह आरम्भ हुआ, तब समय कप्तान नटाल (Captain Nuttal) के अधीन ४०० जवानी कोलि सेवाकार्यमें नियुक्त थे। वे लोग वाड़ पोलिटिकल अन्दर युद्धनिपुण हो उठे। इस समय इनमें इनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। इसलिए नाम इन्हीं पचोंको भारी सहायता पहुँचाई थी। १८५१ ई॰ तक ये लोग धनके अर्थी रह, पीछे इन्हें इस काम से दूर कर दिया गया। कोई कोई कोलि पु कार्य आज करता है किन्तु अधिकांश खेती बारी आदि करना मुनासिब समझते हैं। (कोलि देखो)

अनमर्दिका (हिं॰ स्त्री॰) अनमाइट का गुणयुक्त अन्न पुष्पके समान २४ मात्रोंकी छोटी वायुका नाम है।

पनरौती—दक्षिण आर्काटका एक नगर और रेलष्टेशन। यह अक्षा० ११° ४६' ४०" उ० और देशा० ७८° ३५' १६" पू०के मध्य अवस्थित है। यहां एक विस्तृत वाणिज्य स्थान है।

पनलगवा (हिं० पु०) खेतमें पानी सींचने या लगानेवाला मनुष्य, पनकटा।

पनलोहा (हिं० पु०) ऋतुके अनुसार रंग बदलनेवाला एक पक्षी।

पनवां (हिं० पु०) हमेल आदिमें लगी हुई बीचवाली चौकी जो पानके आकारकी होती है, टिकड़ा, पान।

पनवाड़ी (हिं० स्त्री०) १ वह खेत जिसमें पान पैदा हो, बरेजा। (पु०) २ वह जो पान बेचता हो, तमोली।

पनवारा (हिं० पु०) १ पत्तोंको बनी हुई पत्तल जिस पर रख कर लोग भोजन करते हैं। २ एक पत्तल भर भोजन जो एक मनुष्यके खाने भरका हो। ३ एक प्रकारका सांप।

पनवारी (हिं० स्त्री०) पनवाड़ी देखो।

पनवेल—कोलावा जिलेके अन्तर्गत एक प्रधान नगर। पहले यह थाना जिलेके अन्तर्गत था। यह अक्षा० १८° ५८' ५०" उ० और देशा० ७३° ८' १०" पू०के मध्य थाना शहरसे १० कोस दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। यहां भिन्न भिन्न प्रकारके द्रव्योंका वाणिज्य होता है। १५७० ई०में यूरोपीयगण यहांके बन्दरमें वाणिज्यार्थ आया करते थे। यहां सबजजकी अदालत, डाकघर आदि हैं।

पनस (सं० पु०) पनाय्यते स्तूयतेऽनेन देवः मनुष्यादिर्वेति, पन-असच् (अत्यविचमितीति। उण् ३।११७) १ फलवृक्षविशेष, कटहलका पेड़। पर्याय—कण्टकिफल, महासर्ज, फलिन, फलवृक्षक, स्थूल, कण्टफल, मूलफलद, अपुष्पफलद, पूतफल, चम्पकोष, चम्पालु, कण्टकीफल, रसाल, मृदङ्गफल, पानस।

इसके फलका गुण—मधुर, सुपिच्छिल, गुरु, हृद्य, बल और वीर्यवर्द्धक, श्रम, दाह तथा शोषनाशक, रुचिकारक, ग्राही, अतिदुर्जर है। बीजगुण—ईषद् कषाय, मधुर, वातल, गुरु, रुचिकर। भावप्रकाशके मतसे पक्व पनसका गुण—शीतल, स्निग्ध, पित्त और वायुनाशक, तर्पण, बृंहण, स्वादु, मांसल, श्लेष्मल, बलकर, शुक्रवर्द्धक, रक्तपित्त, क्षत और क्षयनाशक। अपक्वफल—विष्टम्भी, वातल, गुरु, दाहजनक, मधुर, बलकर, गुरु, मूत्रशोधक। पनसकी मज्जा—बलकर, वातपित्त और कफनाशक। गुल्म और अग्निमान्द्यरोगमें पनस विशेष निषिद्ध है। कटहल देखो। २ रामदलका एक बन्दर। ३ विभीषणके चार मन्त्रियोंमेंसे एक।

पनसखिया (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका फूल। २ इस फूलका वृक्ष।

पनसतालिका (सं० स्त्री०) पनसं दीर्घत्वेन तुल्यं यत्तालं, तद्वत् फलमस्त्यस्याः, ठन्। कण्टकिफल, कटहल।

पनसनालिका (सं० पु०) कटहल।

पनसला (हिं० स्त्री०) वह स्थान जहां पर राह चलतोंको पानी पिलाया जाता हो, पनसाल, प्याऊ।

पनसाखा (हिं० पु०) एक प्रकारको मशाल जिसमें तीन या पांच बत्तियां साथ जलती हैं। इसमें बांसके एक लम्बे डंडे पर लोहेका एक पंजा बंधा रहता है जिसकी पांचों शाखाओंको कपड़ा लपेट कर और तेलसे चुपड़ कर मशालकी भांति जलाते हैं।

पनसार (हिं० पु०) पानीसे किसी स्थानको सराबोर करनेकी क्रिया या भाव, भरपूर सिंचाई।

पनसारी (हिं० पु०) पंसारी देखो।

पनसाल (हिं० स्त्री०) १ वह स्थान जहां सर्वसाधारणको पानी पिलाया जाता है, पौसरा। २ पानीकी गहराई नापनेका उपकरण। ३ पानीकी गहराई नापनेकी क्रिया या भाव।

पनसिका (सं० स्त्री०) पनसवत् कण्टकमयाकृतिर्विद्यते यस्याः पनस-ठन्-टाप्। क्षुद्ररोगविशेष, कानमें होनेवाली एक प्रकारकी फुंसी जो कटहलके कांटेकी तरह नोकदार होती है।

चिकित्सकको प्रथमतः पनसिका रोगमें स्वेदका प्रयोग करना चाहिए। पीछे मनःशिला, कुट, हरिद्रा, हरिताल और देवदारु इन सबको पीस कर प्रलेप दे। यदि वे सब फुंसियां पक जांय, तो शस्त्रपात

खाने प्रभर्ड़ी तरह चिकित्सा करे। (भावप्रकाश)

सुश्रुतके मतसे—यह रोग वायु और श्लेष्माके कारण होता है। इस जातिके व्रण कर्ण और इसके चारों ओर फैल जाते हैं। यह रोग यत्नसे यापनाप्रद माना गया है। (सुश्रुत निदानस्थ०)

पनही (हि० स्त्री०) १ पदत्राणका काम। २ पनहिया।

पनसुइया (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी नाव। इस पर एक ही आदमी दो डाँड़ चला सकता है।

पनसूर (हि० पु०) एक प्रकारका बाजा।

पनसेरी (हि० स्त्री०) पंसेरी देखो।

पनसोई (हि० स्त्री०) पनसुइया देखो।

पनस्यु (स० त्रि०) पनस्य-उ। प्रशंसा या स्तोत्र स्तुतिका इच्छुक, जिसे प्रशंसित होनेकी इच्छा हो।

पनहड़ा (हि० पु०) वह कोठी जिसमें लोगोंके पीने अथवा हाथ धोनेके लिये पानी रखते हैं।

पनहरा (हि० पु०) १ पानी भरनेका ओसार, पनसरा। २ वह पत्थर जिसमें सोनार गहने धोने आदिके लिए पानी रखते हैं।

पनहा (हि० पु०) १ कपड़े या दीवार आदिकी चौड़ाई। २ गूढ़ आशय या तात्पर्य, मर्म, भेद। ३ वह जो चोरीका पता लगाता हो। ४ वह पुरस्कार जो चुराई हुई वस्तु लौटा या दिला देनेके लिये दिया जाय।

पनहारा (हि० पु०) वह जो पानी भरनेका काम करता हो, पनभरा।

पनहान—पश्चिमोत्तरप्रदेशके उन्नाव जिलेकी पुर्वा तहसीलका एक स्थान एक नगर और पनहान परगनेका सदर। यह उन्नाव शहरसे १२ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन हिन्दू-देवालय है। एक मुसलमान पीरके उपलक्षमें यहां वर्ष भरमें दो बार मेला लगता है जिसमें चार पांच हजारके करीब मनुष्य एकत्रित होते हैं।

पनहिया (हि० स्त्री०) पनही देखो।

पनहियाभद्र (हि० पु०) खल्वाट-प्रहार, सिर पर इतने जूते पड़ना कि बाल झड़ जाय, जूतोंकी वर्षा।

पनहो (हि० स्त्री०) उपानह, जूता।

पना (हि० पु०) एक प्रकारका शरबत जो आम इमली आदिके रससे बनाया जाता है। यह शरबत कच्चे पके दोनों प्रकारके आमोंसे तैयार किया जाता है। पके आमका रस या गूदा ही जो अलग कर लिया जाता है और कच्चेका गूदा अलग करनेके बाद उसे भूना या उबाला जाता है। बादमें उसको खूब मसल कर मीठा मिला देते हैं। नमक, कपूर और कभी कभी जीरा तथा लाल मिर्च भी इसमें मिलाई जाती है और हींग, जीरे आदिका बघार दिया जाता है। वैद्यकके अनुसार पना रुचिकारक, तत्काल बलवर्द्धक और इन्द्रियोंको तृप्ति देनेवाला माना गया है।

पनाती (हि० पु०) पुत्र अथवा कन्याका नाती, पोते अथवा नातीका लड़का।

पनार—पूर्णियां जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह नदी नेपालसे निकली है।

पनारा (हि० पु०) परनाला देखो।

पन्हाला—बम्बई प्रदेशके कोल्हापुर राज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह कोल्हापुर नगरसे ६ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। दुर्ग समतलसे ऊंचे स्थानमें है। इस अञ्चलके भागमें अनेक गुफाएं हैं, जिनमें अनेक उपाख्यान हैं। ११वीं शताब्दीमें भोजराज शिलाहार द्वारा यह दुर्ग बनाया गया है। इस राजाके नामानुसार दुर्गके ऊपरी भाग पर एक स्थान दिखलाया जाता है। यहां बहुत सी गिरिगुहाएं हैं जिनमेंसे पराशर ऋषि नामक गुहा इसकी पूर्वी सीमा पर अवस्थित है। इसके द्वार आदि सम्प्रदायोंके भी उनका आदर्श आज भी विद्यमान है। भोजराजकी मृत्युके पश्चात् यह मुसलमान राजाओंके हाथ पड़ा। ये बड़े बड़े अम्बरखाना निर्मित हुए थे। शोरशाहके राज्यमें ये सब गिरिगुहाएं आनिवारोंकी वासभूमिमें परिणत हो गई थी।

पनाला (हि० पु०) परनाला देखो।

पनासना (हि० क्रि०) पालन करना, पोसना, परवरिश करना।

पनासा—पन्हाला देखो।

पनाह (फा० स्त्री०) १ त्राण, बचाव या आड़में रक्षा पानेकी जगह या भाव, त्राण, बचाव। २ रक्षा पानेका स्थान, बचावका ठिकाना, शरण, आड़।

पनिक (हिं० पु०) जुलाहोंका एक बेंचोनुमा औजार जिस पर ताना फैला कर पाई की जाती है, कंडाल।

पनिख (हिं० पु०) पनिक देखो।

पनिघट (हिं० पु०) पनघट देखो।

पनिचम्वनपुरुषोत्तमसूनु—एक ग्रन्थकार इन्होंने धर्मप्रदीप नामक एक ग्रन्थकी रचना की।

पनिड़ी (हिं० स्त्री०) पण्डरीकवृक्ष, पुंडरिया।

पनियां (हिं० पु०) १ पानीके सम्बन्धका। २ पानीमें उत्पन्न। ३ जिसमें पानी मिला हो। ४ पानीमें रहनेवाला।

पनिया—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक नगर। पैना देखो।

पनियाला—१ पञ्जाब प्रदेशके डेराइस्माइल खां जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० ३२° १४´ ३०´´ उ० और देशा० ७०° ५५´ १५´´ पू०के मध्य डेराइस्माइल खां नगरसे १६ कोस दूर खागो उपत्यकाके प्रवेशपथ पर अवस्थित है।

२ युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिलेके भगवानपुर परगनेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां सोलानदीके किनारे विस्तीर्ण आम्रवन नयनगोचर होता है।

पनियाला (हिं० पु०) एक प्रकारका फल।

पनियासोत (हिं० वि०) जिसमें पानीका सोता निकला हो।

पनिला (हिं० पु०) पनुआं देखो।

पनिष्टम (सं० त्रि०) पन-कर्मणि इसुन्, अतिशयेन पनिः तमप्। स्तुततम।

पनिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन पनिता इष्ठन्, तृणोर्लोपः। स्तोतृतम।

पनिसिगा (हिं० पु०) जलपीपल देखो।

पनिस्पद (सं० त्रि०) स्पन्द-यङ् लुक्-अच् अभ्यासे निगागमः। अत्यन्त स्पन्दमान।

पनिहा (हिं० वि०) १ पानीमें रहनेवाला। २ जिसमें पानी मिला हो, पनमेल। ३ पानी सम्बन्धी।

पनिहार (हिं० पु०) पनहरा देखो।

पनीर (फा० पु०) १ फाड़ कर जमाया हुआ दूध, छेना। दूधको फाड़ कर यह बनाया जाता है। पीछे नमक और मिर्च मिला कर छेनेको सांचेमें भरा जाता है जिससे उसकी चकतियां बन जाती हैं। २ वह दही जिसका पानी निचोड़ लिया गया हो।

पनीरी (हिं० स्त्री०) १ फूल पत्तोंके वे छोटे पौधे जो दूसरी जगह ले जा कर रोपनेके लिये लगाये गये हों, फूल पत्तोंके बेहन। २ गलगल नीबूकी फांकोंके ऊपरका गूदा। ३ वह क्यारी जिसमें पनीरी जमाई गई हो, बेहनकी क्यारी।

पनीला (हिं० वि०) जिसमें पानी हो, पानी मिला हुआ।

पनु (सं० स्त्री०) पन-उ। स्तुति, प्रशंसा, तारीफ।

पनुआं (हिं० पु०) एक प्रकारका शरबत। यह गुड़के कड़ाहेसे पाग निकाल लेनेके पीछे उसे धो कर तैयार किया जाता है। पाग निकाल लेनेके बाद कड़ाहेमें तीन चार घड़े पानी छोड़ देते हैं। फिर कड़ाहेको उसमें अच्छी तरह धो कर थोड़ी देर तक उसे गरमाते हैं। उबलना शुरू होने पर प्रायः शरबत तैयार समझा जाता है।

पनेथी (हिं० स्त्री०) पानी मिला कर पोई हुई रोटी, मोटी रोटी।

पनेरी (हिं० स्त्री०) १ पनीरी देखो। २ पान बेचनेवाला, तंबोली।

पनेहड़ी (हिं० स्त्री०) पनहड़ा देखो।

पनेहरा (हिं० पु०) पनहरा देखो।

पनेला (हिं० पु०) एक प्रकारका गाढ़ा, चिकना और चमकीला कपड़ा जो प्रायः गरम कपड़ोंके नीचे अस्तर देनेके काममें आता है। जिस पौधेके रेशेसे यह कपड़ा बुना जाता है वह फिलिपाइन द्वीपपुञ्जमें होता है। इस द्वीपपुञ्जकी राजधानी मनीला है। सम्भवतः वहांसे चालान किये जानेके कारण पहले रेशेका और फिर उससे बुने जानेवाले कपड़ेका मनीला नाम पड़ा है।

पनौआ (हिं० पु०) एक पकवान जो पानके पत्तेको बेसन या चौरोठेमें लपेट कर घी या तेलमें तलनेसे बनता है।

पनौटी (हिं० स्त्री०) पान रखनेकी पिटारी, पानदान, बेलहरा।

पन्तोनीभट्ट—समयकल्पतरुके रचयिता। ये लक्ष्मणभट्टके पुत्र थे।

पन्त—महाराष्ट्रदेशमें अमात्य वा सचिव प्रभृति राजकीय कर्मचारियोंकी उपाधि।

पन्तग (सं० त्रि०) पाँव चलता जन्। पथिजात पयो-न्यस्त।

पन्तपिछावद्—पश्चिम मालवाके अन्तर्गत एक ठाकुरात सम्पत्ति।

पन्तप्रतिनिधि—राजाके प्रतिनिधि स्वरूप एक उपाधिधारी कर्मचारी (Viceroy)। महाराष्ट्रीय राजाओंके समयमें जो व्यक्ति राजाके प्रतिनिधि हो कर काम करते थे, उन्हें इस प्रकारकी आख्या मी पन्तप्रतिनिधि हुई है। इस पन्तप्रतिनिधिके अनेक कीर्त्तियाँ दाक्षिणात्य प्रदेशमें देखनेमें आती हैं। सतारा तालुकके अन्तर्गत माहुली नामक स्थानमें श्रीपतराव पन्तप्रतिनिधिप्रतिष्ठित भूतेश्वर और विश्वेश्वर आदि अनेक सुन्दर मन्दिर हैं।

पन्थकिका (सं० स्त्री०) अपरिसर पथ, सकरी गली।

पन्थी—अवधदेशवासी कुसलमान-सम्प्रदाय। ये लोग यूनान प्रदेशसे इस देशमें आ कर बस गये हैं। १८५७-१८५८ ई०के मध्य इन्होंने तस्किन् नामक स्थानमें अपना आधिपत्य विस्तार किया था। अवधदेशमें ये लोग पठि-कुल नामसे प्रसिद्ध हैं।

पन्दर (सं० पु०) मिरिभेद एक पहाड़का नाम।

पन्दाई—चम्पारणदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह सोमे-श्वर पर्वतसे निकल कर रामनगर राज्यके मध्य होती हुई नियतकोमाल्लमें श्रोरो नदी नाम पायी जाती है और पहले पश्चिममुखी और पीछे दक्षिण-पूर्वको ओर बहती हुई सिद्धारपुरके एक कोस पूर्व श्रीराम नदीमें आ मिली है।

पन्दारिया—१ मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलेकी मुंगेली तहसीलके अन्तर्गत एक छोटी जमींदारी। यहाँके सामन्त-राज राजगोंड़ कहलाते हैं। महमदखाँने गोंड़ राजाके तीन प्रतापसे पहले इस सम्पत्ति पूर्वपुरुषको यहाँका अधिकार स्वत्व दान किया था। इसमें कुल मिला कर ११२ ग्राम लगते हैं। भूपरिमाण ५८६ वर्गमील है।

२ मुंगेली तहसीलका प्रधान ग्राम। यहाँ सम्पत्तिके अधिकारी जमींदारका प्रासाद है।

पन्दोव—दरभङ्गा जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यहाँ राजा शिवसिंह ऐसी पुष्करिणियोंकी समस्तमें एक सोनेको मन है और दूसरो जगह तिरहुतके मध्य सुप्रसिद्ध गोविन्दजीका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

पन्नाका—मध्यप्रदेशके गीमा जिलेको खाण्डोवा तहसील के अन्तर्गत एक ग्राम। यह खाण्डवा नगरसे ३ कोस दक्षिण-पश्चिममें अक्षा० २१ ३२ उ० और देशा० ७६ १६ पू०के मध्य अवस्थित है।

पन्न (सं० त्रि०) पद-क्त। १ पतन, गिरा हुआ। २ गलित। (पु०) पन सूनो पन न (मृदृगृवृघि इत्यादि। उण् ३।१०) १ अधोगमन, नीचे गमन, सर कर नीचे चलना।

पन्नई (हिं० स्त्री०) पन्नेके रङ्गका, जिसका रङ्ग पन्नेका सा हो।

पन्नग (सं० पु०) पन्न अधोगमन पतित वा गच्छतीति गम ड पद्भ्यां न गच्छतीति वा। १ सर्प, साँप। यह पैरसे नहीं चलता, इसीसे इसको पन्नग कहते हैं। २ औषध-विशेष, एक बूटी। ३ पद्मकाष्ठ, पद्म।

पन्नगकेसर (सं० पु०) नागकेसर पुष्प।

पन्नगनाशन (सं० पु०) पन्नग नाश करने। गरुड़।

पन्नगमय (सं० त्रि०) पन्नग मयट्, सर्पस्वरूप साँपोंका समूह।

पन्नगारि (सं० पु०) पन्नगानामरिः। गरुड़।

पन्नगाशन (सं० पु०) पन्नग सर्प अश्नातीति अश-ल्यु। गरुड़।

पन्नगी (सं० स्त्री०) पन्नग जाती ङीष्। १ पन्नगपत्नी, नागिन साँपिन। २ मनसादेवी।

पन्नद्धा (सं० स्त्री०) पदि नद्धा बद्धा। चर्मपादुका, जूता।

पन्नद्धी (सं० स्त्री०) पदोबद्धत्वाकीन दृढी। चर्मपादुका, जूता।

पन्ना (हिं० पु०) १ उज्ज्वल हरिद्वर्ण मणिविशेष, पिरोजेकी जातिका हरे रङ्गका एक रत्न जो प्रायः स्फटिक और ग्रेनाइटको खानोंमें निकलता है। इसके संस्कृत नाम ये हैं—मरकत, गारुत्मत, अश्मगर्भ, हरि-न्मणि, राजनील, महाहरित, रौहिणेय सौपर्ण, गरुड़ो-द्गीर्ण, बुधरत्न, गरुड़ गरलारि। पन्ना सर्व प्रकारके पाप नष्ट करता, आयुष्कर और बुद्धिवर्द्धक होता है। इसका अभ्यास नहीं करनेसे परिपूरित माना

जाता है। किन्तु यह लक्षण सभी पन्नोंमें नहीं रहता।

पन्नेकी उत्पत्ति और आकारके सम्बन्धमें गरुड़-पुराणके ७२वें अध्यायमें इस प्रकार लिखा है,—

सर्पाधिपति वासुकि दैत्यपतिका पित्त ग्रहण करके जब आकाशपथ हो कर जा रहे थे, तब पक्षीन्द्र गरुड उन्हें प्रहार वा ग्रास करनेको उद्यत हुआ। वासुकिने उसी समय उस पित्तराशिको तुरुष्कदेशके पादपीठस्वरूप वा प्रत्यन्त पर्वतमें नासिकावन-गन्धोज्ज्वल उपत्यका प्रदेशमें फेंक दिया। इस पित्तके गिरते ही तत्समीपस्थ पृथिवीके समुद्रतीरवर्ती स्थानसमूह मरकत मणिके आकारमें पलट गया। (गरुड़पु०)

डाक्टर रामदास सेनका कहना है, 'कि पित्तका वर्ण सब्ज होनेके कारण पन्नाका रंग भी सब्ज है। इस उपमाको उपलक्ष्य करके रूपकप्रिय पौराणिकोंने असुरके पित्तसे पन्नाका जन्म हुआ है, ऐसा बतलाया है और तुरुष्कदेशके समुद्रतीरवर्ती पर्वत तथा उपत्यका पर उसका आकर है, यह भी निर्णय किया है।

पन्नाका गुण—जो सर्वविष औषध वा मन्त्रसे निवारित न हो, पन्नेसे उसका विष अवश्य दूर होता है। यह निर्मल, गुरु, कान्तियुक्त पित्तकारक, हरिद्वर्ण और स्वच्छ होता है। पन्ना धारण करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं। रत्नतत्त्व-विशारद पण्डितोंके मतसे पन्ना धन धान्यादि वृद्धिके विषयमें, युद्धमें और विषरोग नाश करनेमें अति प्रशस्त है।

पन्नेका दोष—रूक्ष वा अस्निग्ध पन्ना धारण करनेसे पीड़ा, विस्फोट पन्ना धारण करनेसे शस्त्राघात द्वारा मृत्यु, पाषाणखण्डयुक्त पन्ना धारण करनेसे दुर्घटना, मलिन पन्ना धारण करनेसे नाना व्याधिकी उत्पत्ति, कर्कशीला पन्ना धारण करनेसे पुत्रनाश, कान्तिहीन पन्ना धारण करनेसे जन्तु और वह्निभय तथा विरुद्धवर्णयुक्त पन्ना धारण करनेसे मृत्युका डर होता है।

पन्नेकी छाया पन्नेमें आठ प्रकारकी छाया देखी जाती है। यथा—मयूरपुच्छके सदृश, नीलकण्ठ पक्षीके सदृश, हरिद्वर्ण काचके सदृश, नवदूर्वादलके सदृश, शैवालके सदृश, खद्योत पृष्ठके सदृश, शुकशिशुके सदृश और शिरीषकुसुमके सदृश। उक्त आठ प्रकारकी छाया युक्त पन्ना ही सर्वश्रेष्ठ है।

पन्नेकी परीक्षा—रत्नतत्त्वविशारदका कहना है, कि पन्ना कृत्रिम है या अकृत्रिम, इसकी यदि परीक्षा करनी हो तो इसे पत्थर पर घिसे। घिसनेसे कृत्रिम पन्ना टूट जायगा, किन्तु जो अकृत्रिम पन्ना है वह कितना ही क्यों न घिसा जाय तो भी नहीं टूटता। दूसरी परीक्षा—तीक्ष्णाग्र लौहशलाका द्वारा घर्षित करके चूर्ण लेपन करनेसे अकृत्रिम पन्ना उज्ज्वल हो जायगा और कृत्रिम पन्ना मलिन। सोमवत् नर्म घिसनेसे पुखराजकी तरह वर्णविशिष्ट कृत्रिम पन्नेकी दीप्ति नष्ट हो जाती है। वजन द्वारा भी कृत्रिम पन्नेका निर्णय किया जाता है।

पन्नेका मूल्य—एक खण्ड पद्मराग और एक खण्ड पन्ना तौलमें समान होने पर पद्मरागसे पन्नेका मूल्य अधिक होगा।

प्राप्तिस्थान—यूरोपके यूराल और अलटाई पर्वत पर सर्वोत्कृष्ट पन्ना पाया गया है। १८३० ई०में पहले पहल यूराल पर्वतके उत्तरीभागमें पन्ना पाया गया था। इसके बाद यहां अनेक उत्कृष्ट पन्ना आविष्कृत हुआ। अष्ट्रियामें भी अनेक बड़े और उत्कृष्ट पन्ने पाये गये हैं।

एशिया महादेशमें साइबेरियाके उपकूल तथा ब्रह्मदेशमें कई जगह पन्नेकी खान है। अयोध्याके नवाबने महारानी विक्टोरियाको जो पन्ना दिया है, वह ब्रह्मदेशमें पाया गया था।

अफ्रिका महादेशके मिस्रदेशमें बहुमूल्य पन्ना मिलता है। जबरार पर्वत और पुरक्‌ नदीकी पन्नेकी खान सर्वत्र प्रसिद्ध है।

अमेरिका महादेशसे ही अभी सर्वोत्कृष्ट पन्नेकी आमदनी होती है। स्पेनवासियों द्वारा पेरु-जयके बादसे यहां पन्ना प्रचुर परिमाणमें आविष्कृत हुआ है।

प्राचीनकालके मनुष्य पन्नेको अच्छी तरह जानते थे और उसका यथेष्ट व्यवहार करते थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। भिन्न भिन्न देशोंमें यह विभिन्न नामसे प्रचलित है। अति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें मरकतका उल्लेख मिलता है। पम्पि और हरकुलेनियमके भूगर्भसे पन्नेका अलङ्कार पाया गया है। प्लिनि, थाइसिडेरस

मेलो, बेबीलोनपुर आदि प्राचीन पुरातत्त्वगण इस पन्नाका उल्लेख कर गये हैं। पारसके लोग अन्यान्य मणियोंसे इसका विशेष आदर करते थे। हिन्दू लोग अति प्राचीनकालसे इसका व्यवहार करते आ रहे हैं। अलंकार और सुन्दर सुन्दर मूर्त्तियोंमें यह पत्थर प्रचुर परिमाणमें व्यवहृत होता है। रत्नशिल्पि क सर्वोत्कृष्ट पन्ने। इसे बड़े पसन्द करते थे।

(पन्नेकी) मूर्त्ति—पन्नेको खोद कर सुन्दर सुन्दर मूर्त्ति बनाई जा सकती है। ब्रह्मदेशके बुद्धदेवके मन्दिरमें दो फुट ऊंची एक देवमूर्त्ति है। कहते हैं कि वह मूर्त्ति एक पन्नेकी बनी हुई है।

प्रसिद्ध पन्ना।—दिल्लीके मुगल सम्राट् जहांगीरके एक अंगूठी थी जो एक ठोस पन्ना काट कर बनाई गई थी और जिसमें आरा तथा दो छोटे छोटे पन्ने जड़े हुए थे। यह अंगूठी मान्टुआके डचेज़को उपहारमें दे दी थी। पीछे मदन र अमरने लाड साहबने नीलाममें उसे खरीद लिया। यह पन्ना कुमारी अनुपम आज है। इसके अतिरिक्त तीन इंच लम्बा दो इंच चौड़ा और एक इंच मोटा एक पन्ना था जिसका रंग अति सुन्दर तथा जिसमें बहुत कम दाग थे। मालूम पड़ता है, कि यही पन्ना १८५१ ई०में ल्याम्‌लोके प्रसिद्ध प्रदर्शनीमें प्रदर्शित हुआ था।

अष्ट्रियाके राजकोषमें २००० ग्रेनका और ड्यूक आव-डिवनशायरके पास ८ औंस (साढ़े आठ आम)-का एक पन्ना है। यह पन्ना अनुमानतः चालीस निकाला गया। पीछे उस पिट्रोस ड्यूक आव-डिवनशायरने इसे खरीदा। इसका व्यास दो इंच है और यह उत्तम वर्णविशिष्ट है।

वैद्यकमें पन्ना शीतल, मधुररसयुक्त, रुचिकारक, पुष्टिकर, वीर्यवर्द्धक और भूतबाधा, अम्लपित्त, ज्वर, वमन श्वास, मन्दाग्नि, बवासीर, पाण्डुरोग और विविध रूपके विषका नाश करनेवाला माना गया है।

२ पुस्तक आदिका पत्र, पन्ना, वरक। ३ अंग्रेजी ताशका एक चोड़ा साथ कहीं कहीं चढ़ाया जाता है। ४ दिया मूर्ति एक जगह मामला नाम लिये पान भी कहते हैं।

पन्ना—चित्तौड़ निवासी एक राजपूतरमणी, राणा संग्रामसिंहके पुत्र उदयसिंहकी धात्री। राणा संग्रामसिंहके मरने पर चित्तौरमें भारी गोलमाल उपस्थित हुआ। अन्तमें सरदारोंने उदयसिंहको नाबालिगीमें राजकार्य चलानेके लिये पृथ्वीराजके दासीपुत्र बनवीरको चित्तौरके शासन पर प्रतिष्ठित किया। सिंहासन पर बैठनेके कुछ समय बाद ही बनवीरको दुराकांक्षाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उन्होंने अपने समस्त प्रतिद्वन्द्वियोंको आत्मसात् करनेका संकल्प किया। उदयसिंहकी अवस्था उस समय केवल छः वर्षकी थी। इस नन्हें बच्चेका विनाश करनेके लिये बनवीर तैयार हो गये। एक रातको उदयसिंह खा पी कर सो रहे थे। धात्री पन्ना उनके सिरहाने बैठी थी। उसी समय अन्तःपुरमें घोर आर्त्तनाद सुनाई पड़ा। भय और विस्मयसे पन्नाका हृदय कांपने लगा। ठीक उसी समय अन्तःपुरका नापित राजकुमारका जूठा उठाने आया और पन्नासे बोला कि बनवीरने अभी तुरत राणा विक्रमजितको मार डाला है। इस हत्याकाण्डकी कथा सुन कर पन्ना ताड़ गई कि केवल इतनेसे बनवीरकी पिपासा निवृत्त न होगी, वह अपने प्रधान प्रतिद्वन्द्वी उदयसिंहका भी खून करने अवश्य आवेगा। अब एक पल भी वह विलम्ब न कर सकी और राजकुमारको बचानेका उपाय सोचने लगी। उसने फलमूलादि पुष्परक्षिकाके मध्य निद्रित राजकुमारको रख कर ऊपरसे कुछ निर्माल्य बिछावन बिछा दिया और नापितके हाथमें उसे समर्पण कर बहुत तेजीसे दुर्गके बाहर निकल जानेको कहा। नापितने बिना किसी तर्क वितर्कके ही उसी समय पन्नाके उपदेशका प्रतिपालन किया। इधर पन्नाने राजकुमारके बदलेमें अपने पुत्रको उसकी शय्या पर सुला दिया और आप पूर्ववत् सिरहानेमें बैठ गई। इसी बीच बनवीर आततायीकी तरह उस घरमें आ धमका और 'उदयसिंह कहां है', धात्रीसे पूछा। डरके मारे धात्रीके मुंहसे एक शब्द भी न निकला। उसने राजकुमारकी शय्याकी ओर अंगुलीका इशारा किया और तुरत ही बनवीरने तीक्ष्ण छुरिकाघातसे निज पुत्रका हृदयविदारण अपनी आंखों-से देखा। पुत्रशोकसे उसका हृदय विदीर्ण होने लगा

लेकिन डरके मारे वह फूट फूट कर रो भी नहीं सकती थी, कि शायद यह रहस्य खुल भी न जाय। तदनन्तर धैर्य धारण कर पन्नाने आँसू पोंछ लिया और अपने पुत्रकी अन्त्येष्टिक्रिया करनेके बहाने उदयसिंहकी तलाशमें चली गई। इस प्रकार पन्नाने अपने पुत्रको निछावर कर उदयसिंहकी जान बचा ली। अन्तःपुरचारिणी महिलाओंको इस अलौकिक आत्मत्यागके विषयमें कुछ भी खबर न थी। संग्रामसिंहका वंशलोप हुआ, यह समझ कर वे विलाप करने लगीं। इधर चित्तौरकी पश्चिम प्रान्तप्रवाहिनी वीरानदीके किनारे उदयसिंहको ले जा कर वह नापित पन्नाकी प्रतीक्षा कर रहा था। यथासमय पन्ना वहां पहुंच गई और देवलराज सिंहरावके यहां आश्रय ग्रहण करनेकी इच्छासे वे दोनों कुमारके साथ वहांसे चल दिये। लेकिन वहां जब उनका मनोरथ सफल न हुआ, तब वे डूंगरपुरको रवाना हुए। वहां भी आश्रय न पा कर वे मरुके सब रावल एगरणे नामक किसी सामन्तराजकी शरणमें पहुंचे। राजाने आश्रय देनेकी बात तो दूर रहे तुरत उन्हें राज्यसे निकल जानेको बाध्य किया। अन्तमें पन्ना दुर्भेद्य वनमय प्रदेश समूहको पार कर कमलमीरमें पहुंची और वहांके शासनकर्त्ता आशा-शाहके हाथ राजकुमारको अर्पण कर आप वहांसे रवाना हो गईं। इस प्रकार पन्नाने अति विश्वस्त भावसे अपने कर्त्तव्यकर्मका पालन किया। जो रमणी अपने पुत्रका जीवन उत्सर्ग कर इस प्रकार न्यस्त विषयकी रक्षा कर सकी थी, वह रमणी सामान्या नहीं। उसका यह अद्भुत आत्मत्याग सर्वथा अनुकरणीय है।

पन्ना (पर्णा)—१ मध्यभारतकी बुन्देलखण्ड एजेन्सीके अन्तर्गत एक सनद राज्य। यह अक्षा० २३° ४९´ से २४° ५३´ उ० और देशा० ७९° ४५´ से ८१° ३´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें अंग्रेजाधिकृत बांदा और चरखारी राज्य; पू०में कोठी, सुहावल, नागोद और अजयगढ़ आदि छोटे छोटे राज्य, दक्षिणमें दमोह और जब्बलपुर जिला तथा पश्चिममें छत्रपुर और अजयगढ़का सामन्तराज्य है। भूपरिमाण २५९६ वर्गमील और जनसंख्या १९२९८६ है जिनमेंसे अधिकांश हिन्दू हो हैं। यहांका अधिकांश स्थान विन्ध्य-अधित्यकाभूमिके ऊपर अवस्थित और जङ्गलसे परिपूर्ण है।

हीरक-खानके लिये यह स्थान चिरप्रसिद्ध है। पहले इस खानमें प्रचुर हीरक मिलता था और उसी समयसे पन्ना एक समृद्धिशाली नगरमें परिणत हुआ। आज कल यहां पहलेके जैसा स्वच्छ वर्णहीन हीरक (Diamond of the first water, of completely colourless) नहीं मिलता। अगर मिलता भी है, तो मुक्ताफलकी तरह सफेद, हरिताभ, पीताभ, लोहिताभ और श्यामवर्णका। अगस्त साहबने यहांके प्राप्त हीरकजातीय प्रस्तरके साधारणतः चार नाम बतलाये हैं,—१ 'मोतीचल' परिष्कार तथा उज्ज्वल, २ 'माणिक' हरिताभ, ३ 'पन्ना' कमला नीबूके जैसा रंगविशिष्ट और ४ 'गेंदपत' कृष्णवर्णविशिष्ट। यहां लोहेकी भी खान है।

महाराज छत्रसालके समय पन्ना उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था। छत्रसाल और बुन्देल वंशके थे। उनके समयमें भूषणत्रिपाठी, प्रतापशाही, शिवनाथ कवि, प्राणनाथी-सम्प्रदायके प्रवर्त्तक प्राणनाथ, निवाज, पुरुषोत्तम, विजयाभिनन्दन आदि प्रसिद्ध हिन्दी-कवि यहां रह कर अपने अपने कवित्वका परिचय देते थे।

छत्रसालने अपने बड़े बेटे हृदयशाहको पन्ना (पर्णा) राज्य दिया। हृदयशाह यहां उत्तम राजधानी बना कर रहने लगे। उनके राजत्वकालमें लालकवि विद्यमान थे। हृदयशाहके सभासिंह वा सभाशाह और पृथ्वीसिंह नामक दो पुत्र थे। पिताके मरने पर सभाशाह राजगद्दी पर बैठे। उनके समयमें रतनकवि तथा करणभट्ट नामक दो हिन्दी-कवियोंने राज-सभाको उज्ज्वल कर दिया था।

सभासिंहके तीन पुत्र थे,—अमानसिंह, हिन्दूपत और खेतसिंह। हिन्दूपतने बड़े भाई अमानसिंहको गुप्तभावसे मार कर और छोटे भाई खेतसिंहको बन्दी कर पितृराज्यका अधिकार किया। हिन्दूपत थे तो अत्याचारी, पर साहित्यकी ओर उनका विशेष प्रेम था। मोहनभट्ट रूपशाही और करण ब्राह्मण आदि हिन्दी-कविगण उनकी सभाको सुशोभित करते थे। महाराज हिन्दूपतके तीन पुत्र थे, ज्येष्ठ सरमेदसिंह ('सिताब

छत्रोंके पहले) और अनिरुद्धसिंह तथा धोकलसिंह (धौंकल सिंहको देखें)। इसी समय हिन्दूपत अनिरुद्धसिंहको जो समस्त राज्य सौंप गये थे। उनको भाइयोंमें रोजाना बेनीहुजूरी तथा कामताप्रसादके जिम्मे दार और बेनीभाव कायमजी चौबे राज्यकी देखरेख करते थे। दूसरी ओर कायमजी सहोदर भाई होने पर भी राज्यकी समस्त श्रेष्ठ अमला पानेके लिए आपसमें लड़ पड़े। यहां तक कि एक दूसरेके जानी दुश्मन हो गये।

इनमेंसे कायमजीने सरनेत सिंहका पक्ष ले कर उन्हें राजा बनाना चाहा। अतः दोनों दलोंमें कई बार घोरतर संग्राम छिड़ गया।

कुछ दिन बाद राजा अनिरुद्धसिंहकी मृत्यु हुई। अभी दोनों भाइयोंने अपना अपना अमला अक्षुण्ण रखनेके लिए धोकलसिंहको राजसिंहासन पर बिठाया। इस पर सरनेतसिंहने असन्तुष्ट हो कर बांदाराज गुमानसिंहके सेनापति नोने अर्जुनसिंहको बुलाया।

अर्जुनसिंहने आ कर धोकलसिंहको राज्यसे मार भगाया और आप बांदाराजके नामसे पन्नाराज्यका अधिकांश अधिकार कर बैठे तथा 'सिद्धोंसारके राजा मकरन्दसिंहका अभिमान चूर कर चैन उड़ाने लगे। इस प्रकार सरनेतसिंह दुःख संतप्त हो हिन्दुपतके राजनगर नामक स्थानमें जा कर रहने लगे। यहां वे मुसलमानोंके अत्याचार दरियावसिंह नामक एक पुत्रको छोड़ परलोक सिधार गये।

इधर धोकलसिंहने अनेक चेष्टाके बाद पैतृक राज्यका उद्धार तो किया, पर वे अधिक दिन तक उसका भोग न कर सके। किशोरसिंह नामक उनके एक अवैध पुत्रने सिंहासन प्राप्त किया।

अंग्रेजोंने जब बुन्देलखण्ड पर अधिकार जमाया, तब किशोरसिंह उनके साथ अच्छी तरह सन्धिसूत्रमें आबद्ध हुए। इङ्गलिश गवर्मेण्टने १८०७ ई०में उनको एक सनद दी। उनकी सभामें प्रबोध नामक एक हिन्दी-कवि रहते थे। किशोर सिंह धीरे धीरे बड़े ही अत्याचारी हो गये। अपने अन्याय कार्यके लिये उन्हें राज्यसे निर्वासित होना पड़ा। पीछे उनके लड़के राजगद्दी पर बैठे। १८३४ ई०में किशोर सिंहका निर्वासित अवस्थामें प्राणान्त हुआ। हरवंश राय अपने भाई नृपतिसिंहको महाराजाके राजकार्य चलाने लगे। नरपतिसिंह बड़े ही कवि-गुणग्राही और विद्याव्यसनी थे। इन्होंने जगमङ्गू मोहनसिंह, हरिदास आदि हिन्दी कवियोंको आश्रय दिया था। १८४८ ई०में हरवंश रायकी मृत्यु होने पर नृपतिसिंहने स्वयं राज्यका शासन सुशोभित किया। उन्होंने १८५७ ई० के गदरमें अंग्रेजोंको अच्छी सहायता पहुंचाई थी। इस उपकारमें इङ्गलिश गवर्मेण्टसे उन्हें २०००० रु० की एक पोशाक, आध्यपुर परगनेका अमला और ११ सलामी तोपें मिलीं। महाराज नृपतिसिंहकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के रुद्रप्रतापने सिंहासन पा कर बहुत सम्मान और विभूषण पाई। रानी विक्टोरियाके भारतेश्वरी उपाधि ग्रहण उपलक्षमें ये भी वहां उपस्थित थे। उनकी सम्मानार्थ ११ तोपोंकी सलामी बढ़ाई गई थीं। १८७६ ई०में ये के० सि० एस० आई० बनाये गये। १८७० ई०में ये इस असारसंसारको छोड़ सुरधामको सिधारे। पीछे लोकपालसिंह राजसिंहासन पर बैठे। इनके समयमें कोई विशेष घटना न हुई। अनन्तर माधोसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए। कुछ दिन बाद अपने चचा राव राजा खुमानसिंहको विषप्रयोगमें ये सिंहासनच्युत किये गये। तत्पश्चात् उस राजवंशके यादवेन्द्र राजगद्दी पर बैठे। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। इनका पूरा नाम है,—'एच० एच० महेन्द्र यादवेन्द्रसिंह साहब बहादुर। इन्हें ११ तोपोंकी सलामी मिलती है और १० घुड़सवार, १५० पदाति, १२ तोप दागने और १८ बन्दूक रखनेका अधिकार है। इस राज्यमें १ शहर और १००८ ग्राम बसते हैं। राज्यकी कुल आय पांच लाख रुपयेकी है। यहां १५ स्कूल, १ अस्पताल और ३ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी और प्रधान नगर। यह अक्षा० २४ ४३´ उ० और देशा० ८० १२´ पू०के मध्य गङ्गासे बनना जानेके राजपथ पर अवस्थित है। जन-संख्या प्रायः दस हजारसे ऊपर है। नगर परिष्कार परिच्छन्न और वाणिज्यादि परिशोभित है। यहां अनेक बड़े बड़े

मन्दिर हैं जिनमेंसे बलदेवका मन्दिर ही प्रधान है। नूतन प्रासादके एक कमरेमें सेजके ऊपर मूल्यवान जरीका कपड़ा बिछाया हुआ है और उसीके ऊपर प्राणनाथका ग्रन्थ रक्षित है। प्राणनाथ जातिके क्षत्रिय थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानोंका धर्मग्रन्थ पढ़ कर दोनों धर्मावलम्बियोंकी एक मतमें लानेकी चेष्टा की थी और इस कारण उन्होंने नवीन मतका प्रचार किया था। उनके मतावलम्बी उक्त गृहको बहुत पवित्र मानते हैं।

पन्नागार (सं॰ पु॰) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

पन्नि—मलबार उपकूलवासी एक जाति। खेतीबारी और दासत्व इनकी प्रधान उपजीविका है।

पन्निक (हिं॰ पु॰) पनिक देखो।

पन्निगाए—जातिविशेष। ये लोग चमड़ेके ऊपर सुनहलीका काम करते हैं।

पन्नियार—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा॰ २६° ६′ १२″ उ॰ तथा देशा॰ ७८° २′ २″ पू॰के मध्य ग्वालियर दुर्गसे ६ कोस दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। १८४३ ई॰को २९वीं दिसम्बरको यहां अंग्रेजी सेनाके साथ महाराष्ट्र सेनाका भीषण युद्ध हुआ था। मेजर जेनरल ग्रे आगरा नगरसे सर ह्यू गफ-परिचालित अंग्रेजवाहिनीके साथ मिलनेके लिये चांद-पुरके निकट सिन्धुनदी पार कर गये और जब वे दो कोस आगे बढ़े तब मङ्गोर ग्रामके निकट मराठी सेनाने उन पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजोंने पन्नियार आ कर छावनी डाली और उपर्युपरि आक्रमण तथा पूर्वयुद्धमें नष्ट कमानादिका उद्धार कर मराठी सेनाको पन्नियारसे मार भगाया।

पन्निष्क (सं॰ पु॰ क्ली॰) पादो निष्कस्य, एकदेशिस॰ वाहुलकात् पदादेशः। निष्कका चतुर्थ भाग। जहां पदादेश नहीं होगा, वहां पादनिष्क ऐसा पद होगा।

पन्नी (हिं॰ स्त्री॰) १ वह कागज या चमड़ा जिस पर सोने या चांदीका लेप किया हुआ रहता है, सुनहला या रुपहला कागज। २ रांगे या पीतलके कागजकी तरह पतले पत्तर जिन्हें सुन्दरता तथा शोभाके लिए छोटे छोटे टुकड़ोंमें काट कर दूसरी वस्तुओं पर चिप-काते हैं। ३ एक लम्बी घास जिसे प्रायः छप्पर छानेके काममें लाते हैं। ४ बारूदकी एक तौल जो आध सेरके बराबर होती है। (पु॰) ५ पठानोंकी एक जाति।

पन्नीसाज (हिं॰ पु॰) वह मनुष्य जिसका व्यवसाय पन्नी बनाना हो पन्नी बनानेवाला।

पन्नीसाजी (हिं॰ स्त्री॰) पन्नी बनानेका काम, पन्नी बनानेका धंधा या पेशा।

पन्नू (हिं॰ पु॰) एक पुष्पवृक्ष, एक फूलका पौधा।

पन्य (सं॰ त्रि॰) पनस्तुतौ अघ्न्यादित्वात् यत्। स्तुत्य, प्रशंसाके योग्य।

पन्यस् (सं॰ त्रि॰) पन-असुन् युगागमः। १ स्तोता, प्रशंसा करनेवाला। २ स्तुत्य, प्रशंसाके योग्य।

पन्यारी (हिं॰ स्त्री॰) मझोले कदका एक जंगली पेड़। यह पेड़ सदा हरा रहता है। मध्यप्रदेशमें यह अधिकतासे पाया जाता है। इसकी लकड़ी टिकाऊ और चमकदार होती है। उससे गाड़ियां, कुर्सियां और नावें बनती हैं।

पन्हारा (हिं॰ स्त्री॰) एक तृणधान्य जो गेहूंके खेतोंमें आपसे आप होता है।

पन्हैयां (हिं॰ स्त्री॰) पनही देखो।

पपटा (हिं॰ पु॰) १ पापड़ा देखो। २ छिपकली।

पपड़ा (हिं॰ पु॰) १ लकड़ीका रूखा करकरा और पतला छिलका, चिप्पड़। २ रोटीका छिलका।

पपड़िया (हिं॰ वि॰) पपड़ीसम्बन्धी, जिसमें पपड़ी हो, पपड़ीदार।

पपड़ियाकत्था (हिं॰ पु॰) श्वेतसार, सफेद कत्था। यह कत्था साधारण कत्थेसे अच्छा समझा जाता है और खानेमें अधिक स्वादु होता है। वैद्यकमें इसको कड़वा, कषैला और चरपरा तथा व्रण, कफ, रुधिरदोष, मुख-रोग, खुजली, विष, कृमि, कोढ़ और ग्रह तथा भूतकी बाधामें लाभदायक लिखा है।

पपड़ियाना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी चीजकी परतका सूख कर सिकुड़ जाना। २ अत्यन्त सूख जाना, तरी न रह जाना।

पपड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ किसी वस्तुकी ऊपरी परत जो तरी या चिकनाईके अभावके कारण कड़ी और सिकुड़ कर जगह जगहसे चिटक गई हो और नीचेकी वस्तु

तथा जिस तरहसे पहल मालूम होती हो। २ पत्थरके ऊपर मसालेके सूख जानेसे बना हुआ आवरण या परत, खुरंड। ३ लकड़ी आदिकी ऊपरी परत जिसमें सूखने और सिटकनेके कारण जगह जगह दरारें हो पड़ी हों। ४ छोटा पापड़। ५ सोहन पपड़ी या अन्य कोई मिठाई जिसकी तह जमाई गई हो।

पपड़ीला (हि॰ वि॰) जिसमें पपड़ी हो, पपड़ीदार।

पपनी (हि॰ स्त्री॰) पलकके बाल, बरौनी।

पपरियाकत्था (हि॰ स्त्री॰) पपड़ियाकत्था देखो।

पपरी (हि॰ स्त्री॰) १ एक पौधा जिसकी जड़ दवाके काममें आती है। २ पपड़ी देखो।

पपहा (हि॰ पु॰) धानको फसलका हानि पहुंचाने वाला एक कीड़ा। २ एक प्रकारका घुन जो जौ, गेहूं आदिमें घुस कर उनका सार खा जाता है और केवल ऊपरका छिलका ज्योंका त्यों रहने देता है।

पवि (स॰ पु॰) पाति रक्षति, पा-कि, द्वित्वञ्च। (अ॒त्यादृत्पन्न‍ किकिनौ लिट् च। पा ३।२।१७१) १ चन्द्रमा। (त्रि॰) २ पानकर्त्ता, पीनेवाला।

पपी (स॰ पु॰) पाति लोक पा-रक्षणे कर्ता डिसच (पापो पिबद् च। उण् ४।१५८) १ सूर्य। २ चन्द्रमा।

पपीहा (हि॰ पु॰) १ कोइड़े खानेवाला एक पक्षी। यह वसन्त और वर्षा ऋतुमें प्रायः आमके पेड़ों पर बैठ कर बड़े मीठे स्वरसे गान करता है। इसका दूसरा नाम है चातक। देखने में यह कई रंग, रूप, रंग और आकारका होता है। उत्तर भारतमें इसकी आकृति प्रायः श्यामा पक्षीके बराबर और इसका रंग काला या मटमैला होता है। दक्षिण भारतका पपीहा आकृतिमें इससे कुछ बड़ा और रंगमें चितकबरा होता है। अन्यान्य स्थानोंमें और भी कई प्रकारके पपीहे पाये जाते हैं जो कदाचित् उत्तर और दक्षिणके पपीहों के अन्तर्गत हैं। मादा पपीहेका रंग रूप प्रायः सब जगह एक सा होता है। यह पक्षी पेड़से नीचे प्रायः बहुत कम उतरता है और उस पर भी इस प्रकार छिप कर बैठा रहता है कि मनुष्यकी दृष्टि कदाचित् ही उस पर पड़ती है। इसकी बोली बहुत ही मीठी होती है और उसमें कई स्वरोंका समावेश होता है। कोई कोई लोग मानते हैं, कि इसकी बोलीमें कोयलकी बोलीसे भी अधिक मिठास है। हिन्दी-कवियोंने मान रखा है कि यह अपनी बोलीमें "पी कहां ?" "पी कहां ?" अर्थात् 'प्रियतम कहां है ?' बोलता है। वास्तवमें ध्यान देने से इसकी रागमय बोलीसे इस वाक्यके उच्चारणसे समान ही ध्वनि निकलती जान पड़ती है। कहते हैं, कि यह पक्षी केवल वर्षाकी बूंदका ही जल पीता है। यदि यह प्याससे मर भी जाय तो भी नदी, तालाब आदिके जलमें चोंच नहीं डुबोता। जब आकाश मेघाच्छन्न रहता है उस समय यह अपनी चोंचको बराबर ऊपरको आकाशकी ओर इस आशासे उठा कर रखता है, कि कदाचित् कोई बूंद उसके मुंहमें पड़ जाय। बहुतोंने तो यहां तक मान रखा है, कि यह केवल स्वाती नक्षत्रमें होनेवाली वर्षाका ही जल पीता है और यदि यह नक्षत्र न बरसे, तो साल भर प्यासा ही रह जाता है। इसकी बोली कामोद्दीपक मानी गई है। इसके अटल नियम, मेघ पर अनन्य प्रेम और इसकी बोलीकी कामोद्दीपकताको ले कर संस्कृत तथा भाषाके कवियोंने कितनी ही अच्छी अच्छी उक्तियां की हैं। यद्यपि इसकी बोली वसन्तसे भादों तक लगातार सुनाई पड़ती रहती है, परन्तु कवियोंने इसका वर्णन केवल वर्षाके उद्दीपनोंमें ही किया है।

वैद्यकमें इसके मांसको मधुर कषाय, लघु, शीतल कफ, पित्त और रक्तका नाश तथा अग्निको वृद्धि करने वाला लिखा है। २ सितारके छः तारोंमेंसे एक जो लोहेका होता है। ३ आल्हाके बापका घोड़ा जिसे मांडोके राजाने हर लिया था। ४ पपैया देखो।

पपीता (हि॰ पु॰) एक प्रसिद्ध वृक्ष जो प्रायः बगीचोंमें लगाया जाता है। इसका पेड़ ताड़की तरह सीधा बढ़ता है और प्रायः बिना डालियोंका होता है। यह १० फुटके लगभग ऊंचा होता है। इसकी पत्तियां अंडीकी पत्तियोंकी तरह कटावदार होती हैं। छाल का रंग सफेद होता है। इसका फल अधिकतर लम्बोतरा और कोई कोई गोल भी होता है। फलके ऊपर मोटा हरा छिलका होता है। गूदा कच्चा होनेका दशामें सफेद और पक जाने पर पीला होता है। फलके

ठीक बीचमें बीज होते हैं। बीज और गूदेके बीच एक बहुत पतली झिल्ली होती है जो बीज-कोष या बीजाधारका काम देती है। कच्चा और पक्का दोनों तरहका फल खानेके काममें आता है। कच्चे फलको अकसर तरकारी बनाते हैं। पक्का फल मीठा होता है और खरबूजेकी तरह यों ही या शक्कर आदिके साथ खाया जाता है। इसके गूदे, छाल, फल और पत्तेमेंसे भी एक प्रकारका लसदार दूध निकलता है जिसमें भाज्य द्रव्यों विशेषतः मांसके गलानेका गुण माना जाता है। इसीसे इसको मांसके साथ प्रायः पकाते हैं। कहते हैं, कि यदि मांस थोड़ी देर तक इसके पत्तेमें लपेटा रखा रहे, तो भी वह बहुत कुछ गल जाता है। इसके अधपके फलसे दूध जमा कर 'पपेन' नामकी एक औषध भी बनाई गई है। यह औषध मन्दाग्निमें उपकारक मानी जाती है। फल भी पाचनगुणविशिष्ट समझा जाता है और अधिकतर इसी गुणके लिए उसे खाते हैं।

दक्षिण अमेरिकासे पपीतेकी उत्पत्ति हुई है। अन्यान्य देशोंमें वहांसे गया है। भारतमें पुर्तगालियाके संसर्गसे आया और कुछ ही बरसोंमें भारतके अधिकांशमें फैल कर चीन पहुंच गया। इस समय विषुवत रेखाके समीपस्थ सभी देशोंमें इसके वृक्ष अधिकतासे पाए जाते हैं। भारतवर्षमें इसके दो भेद दिखाई पड़ते हैं। एकका फल अधिक बड़ा और मीठा होता है, दूसरेका छोटा और कम मीठा। प्रथम प्रकारका पपीता प्रायः आसामके गौहाटी और छोटानागपुर विभागके हजारीबाग स्थानोंमें होता है। वैद्यकमें इसको मधुर, स्निग्ध, वातनाशक, वीर्य और कफका बढ़ानेवाला, हृदयका हितकर और उन्माद तथा व्रण रोगोंका नाशक लिखा है।

पपु (सं० पुं०) पाति रक्षति पा कु द्वित्वञ्च (कुभ्रश्चेति। उण्, १।२३) १ पालक। (स्त्री०) २ धात्री।

पपुच्छिष्य (सं० वि०) सम्पर्काई, सम्पर्क योग्य।

पपुरि (सं० वि०) पृ-कि द्वित्वं। पूरणशील।

पपैया (हिं० पुं०) १ सीटी। २ एक प्रकारकी सीटी जिसे लड़के आमकी अंकुरित गुठलीको घिस कर बनाते हैं। ३ आमका नया पौधा, अमोला।

पपोटन (हिं० स्त्री०) एक पौधा जिसके पत्ते बांधनेसे फोड़ा पकता है। इसका फल मकोयका तरह होता है।

पपोटा (हिं० पु०) आंखके ऊपरका चमड़ेका पर्दा। यह ढकनेको ढका रहता है और इसके गिरनेसे आंख बन्द होती है तथा उठनेसे खुलती है, पलक।

पपोरना (हिं० क्रि०) अपना बांह ऐंठना और उसका भराव या पुष्टता देखना।

पपोलना (हिं० क्रि०) दांतोंका घुलाना, चबाना या मुंह चलाना।

पप्ता (हिं० स्त्री०) बात मकना, गुंगवहरा।

पप्रि (सं० वि०) प्र पूरणे कि, द्वित्वं। पूरणशील।

पफक्ष (सं० पुं०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

पपैई (हिं० स्त्री०) मैनाकी जातिका एक पक्षिक। इसकी बोली बहुत मीठी होता है।

पबलिक (अं० स्त्री०) १ सब साधारण, जनता, आमलोग। (वि०) २ सर्व साधारण सम्बन्धी, सार्वजनिक।

पबलिकवर्क्स (अं० पु०) १ निर्माण-सम्बन्धी वे कार्य जो सर्वसाधारणके लाभके लिए सरकारकी ओरसे किये जायंगे, पुल नहर आदि बनानेका काय। २ इसका निमराका मुहकमा।

पबे (हि० पु०) पवि देखो।

पभोस—इलाहाबाद जिलेके अन्तर्गत और यमुनाके दक्षिण किनारेमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यह प्रयागसे ३२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इसका प्राचीन नाम प्रभास है।

प्राचीन कोशाम्बी दुर्गसे २ मील उत्तर-पश्चिममें प्रसिद्ध पभासा शैल अवस्थित है। इस शैलके शिखर पर एक कालिम गुफा है जिसमें एक प्रवेशद्वार और दो झरोखे हैं। गुहाके दक्षिणभागमें किसी साधुके उद्देश्यसे पत्थरशय्या और प्रस्तरका उपाधान है। इसके गात्रमें शुङ्गाक्षरमें उत्कीर्ण १० शिलालिपियां हैं। गुहाकी पश्चिमी दीवारमें मौर्योंके समयके अक्षरमें उत्कीर्ण ३ शिलालिपि देखे जाते हैं। उन शिलालिपियोंसे जाना जाता है, कि आषाढ़सेनने उक्त गुहाका निर्माण किया। गुहाके प्रवेशद्वारके वाम ऊर्ध्वभागमें लिपियोंकी ७ पंक्ति है जिनमें आषाढ़सेनका परिचय और उनका निर्माणाके

किया है। पापादशैल पर विहार-सङ्घीय सोपान और गोपानोंके पुत्र राजू अध्यक्षके समयमें मालूम थे। प्रवाद है, कि इस गुफामें नाग रहता है। मृगचर्म, सुगन्ध आदि योगपरिव्राजक भी कुछ काल पर्यटन कर वर्णन कर गये हैं। इन योगिराजोंको बात मालूम(?) भी जाना जाता है कि पमार् पारोजनमें ४१२० फुट ऊँचा एक स्तूप बनवाया था। किन्तु अभी इस पाषाण बौद्धकीर्तिका कुछ भी निदर्शन नहीं पाया जाता। १८२४ ई०में गिरिशिखर पर जैनतीर्थङ्कर पार्श्वनाथ का एक मन्दिर बनाया गया है। गिरिके पाददेशके समीप देवकुण्ड नामक एक सरोवर और एक छोटा हिन्दूदेवालय देखा जाता है।

पमरा (हिं० स्त्री०) मनुकी नामक गन्धद्रव्य।

पमार (हिं० पु०) १ अग्निकुलके क्षत्रियोंकी एक शाखा, प्रमार, पवार। २ चक्रमर्द्द, चकवड़ पौधा।

पम्प—१ कर्णाटी भाषाके एक कवि। आप कविताकुल-वृषभ, पुराणकवि, सुकविजन मनोमानसोत्तंस, सुजनोत्तंस इत्यादि उपाधियोंसे भूषित थे। साधारणतः ये पम्पसुकवि नामसे ही प्रसिद्ध थे। इनके कनाड़ी-लिखित ग्रन्थका आद्योपान्त पढ़नेसे मालूम होता है कि इन्होंने ही सबसे पहले कनाड़ी भाषामें पुस्तककी रचना कर कनाड़ी भाषाका गौरव बढ़ाया। इन्होंने आदिपुराणमें स्वयं अपना परिचय दिया है वह इस प्रकार है—

वेङ्गीमण्डलके अन्तर्गत विमलपुर अग्रहारमें ब्राह्मण वंशमें माधव सोमयाजी उत्पन्न हुए। उनके पुत्र अभिमानचन्द्र, अभिमानके पुत्र कोमरय्य और कोमरय्यके पुत्र अभिरामदेवराय थे। अभिरामने जैनधर्म ग्रहण किया था। अभिरामके पुत्र कविताकुलवृषभ पम्प थे। इन्होंने ८२४ शकमें जन्मग्रहण किया था। जोलाधिपति चालुक्य अरिकेसरीके दरबारमें इन्होंने कनाड़ (पुरानी) भाषामें ग्रन्थरचना आरम्भ की। इनकी कवितासे मुग्ध हो कर राजाने इन्हें धर्मपुर नामक ग्राम दान किया। ये ८६३ शक (९४१ ई०)में पहले आदिपुराण और पीछे पम्पभारत वा विक्रमार्जुनविजय, पश्चात् लघुपुराण, पार्श्वनाथपुराण, परमागम प्रभृति काव्यग्रन्थ प्रकाशित कर विख्यात हुए।

२ एक दूसरे जैन-कवि। ये अभिनव पम्पनामसे प्रसिद्ध थे। ये कनाड़ी भाषामें राघवपाण्डवीय आदि कुछ काव्य लिख कर प्रसिद्ध हुए। ये १००८ शकके कुछ पहले विद्यमान थे।

पम्पा (सं० स्त्री०) पाति रक्षति जलपानादिना सुखप्रदत्वात् निपातनात् साधुः (उणादिकोषवृत्तौ उज्ज्वल पम्पा शब्द। उण् ३।१०८)। दक्षिणस्थ नदीभेद, दक्षिण देशकी एक नदी और उसीके समीपस्थ एक ताल तथा नगर जिसका उल्लेख रामायण और महाभारतमें इस प्रकार आया है—पम्पा नदीके पास ही ऋष्यमूक पर्वत है। ये दोनों कहाँ हैं इसका ठीक ठीक निश्चय नहीं हुआ है। विल्सन साहबने लिखा है, कि पम्पा नदी ऋष्यमूक पर्वतसे निकल कर तुङ्गभद्रा नदीमें मिल गई है। रामायणसे इतना पता तो और लगता है, कि मलय और ऋष्यमूक दोनों पर्वत पास ही पास थे। हनुमान्‌ने राम लक्ष्मणसे मलयगिरि पर जा कर रामके मिलनेका वृत्तान्त सुग्रीवसे कहा था। आज कल ट्रावनकोर राज्यमें एक नदीका नाम पम्बै है जो पश्चिम घाटसे निकलती है। इस नदीको कोई कोई पम्पा अनुमान करते हैं। परन्तु यदि यही नदी पम्पा है तो मानना पड़ता है और ऋष्यमूक पर्वत भी यहीं हो सकता है।

ऋष्यमूक देखो।

पम्पातीर्थ—तीर्थभेद। यह बेल्लारी जिलेकी तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणी किनारे हाम्पी नगरमें अवस्थित है।

पम्पापति देखो।

पम्पापति—शिवलिङ्गभेद। यह विजयनगर राज्यके अन्तर्गत हाम्पी नगरमें अवस्थित है। पम्पापतिके मन्दिरको कोई कोई विरूपाक्षदेवका मन्दिर कहते हैं।

पम्पापुर—एक प्राचीन नगर किष्किन्धा एक समय इसी नगरकी सीमाके अन्तर्गत था। यहाँ प्राचीन पम्पापुर नगरका ध्वंस और उसके ऊपरसे किष्किन्धाका भग्नावशेष दिखाई पड़ता है।

पम्बर—भारतवासियोंके मध्य दानवधर्मियोंकी एक प्रकारकी विवाहप्रथा। इस प्रकारके विवाहमें कोई बाप स्त्रीका कोई अधिकार नहीं रखता। नाम मात्रका विवाह करके स्वामी अपने स्थानको चला जाता है। इसलिये गर्भजात पुत्रगण कभी पिताके

जा ल्माते हैं। इस पुत्र और कन्याके ऊपर उक्त रमणीका एकमात्र अधिकार रहता है।

पय्वाई—मन्द्राजप्रदेशके त्रिवाङ्कुड राज्यमें प्रवाहित एक नदी। यह पश्चिमघाट पर्वतसे निकल कर अन्तमें भी नदीमें जा गिरी है।

पयान (हिं० पु०) एक प्रकारका गेहूं जो बड़ा और बढ़िया होता है, कठिया गेहूं।

पयःकन्दा (सं० स्त्री०) पयः कन्दे यस्याः। क्षीरविदारी, भूकुम्हड़ा।

पयःकुण्ड (सं० क्ली०) पयभाण्ड, दूध या जल रखनेका घड़ा।

पयःपयोष्णी (सं० स्त्री०) पयःप्रचुरा पयोष्णी, मध्यपदलो० कर्मधा०। नदीभेद, एक नदीका नाम।

पयःपान (सं० क्ली०) दुग्धपान।

पयःपुर (सं० पु०) पुष्करिणी वा ह्रद, छोटा तालाब।

पयःपालिनी (सं० स्त्री०) १ वालक। २ उशीर।

पयःपेटी (सं० स्त्री०) नारिकेल, नारियल।

पयःप्रसाद (सं० पु०) निर्मलीबीज।

पयःफेनी (सं० स्त्री०) पयो दुग्धमिव फेनं यस्याः गौरादित्वात् ङीष्। एक प्रकारका छोटा वृक्ष, दुग्धफेनी।

पयश्चय (सं० पु०) पयसं चयः समूहः। जलसमूह।

पयस् (सं० क्ली०) पय्यते पीयते वा पय गतौ पाने वा असुन्। १ जल, पानी। २ दुग्ध, दूध। ३ अन्न, अनाज। ४ रात्रि, रात।

पयःशल्य (सं० क्ली०) तक्र, मट्ठा।

पयस्य (सं० त्रि०) पयसो दुग्धस्य विकारः, तत्र हितं वा पयस-यत्। १ पयोविकार, दूधसे निकला या बना हुआ। २ पयोहित। (पु०) ३ पयः पिवतीति यत्। ३ विडाल। ४ दूधसे निकली या प्राप्त वस्तु, दुग्धविकार, जैसे घी, मट्ठा, दही आदि।

पयस्या (सं० स्त्री०) पयस्य-टाप्। १ दुग्धिका। २ क्षीरकाकोली। ३ अर्कपुष्पिका। ४ कुटुम्बिनी क्षुप। ५ आसिन्ना, पनार। ६ स्वर्णक्षीरि।

पयस्वत् (सं० त्रि०) पयस् अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य वः, सान्तत्वात्, न पदकार्यं। जलविशिष्ट।

पयस्वती (सं० स्त्री०) नदी।

पयस्वल (सं० त्रि०) पयोऽस्त्यस्य वलच्, सान्तत्वात् न पदकार्यं। १ जलयुक्त। (पु०) २ छाग।

पयस्वान् (हिं० वि०) पानीवाला।

पयस्विन् (सं० त्रि०) पयोऽस्त्यस्य विनि न पदकार्यं। १ पयोविशिष्ट, पानीवाला। (स्त्री०) २ नदी। ३ धेनु। ४ रात्रि। ५ काकोली। ६ क्षीरकाकोली। ७ दुग्धफेनी। ८ क्षीरविदारी। ९ छागी, बकरी। १० जीवन्ती। ११ गायत्रीस्वरूपा महादेवी।

पयस्विनी (सं० स्त्री०) पयस्विन् देखो।

पयस्वी (हिं० वि०) पानीवाला, जिसमें पानी हो।

पयहारी (हिं० पु०) वह तपस्वी या साधु जो केवल दूध पी कर रह जाता हो।

पया (सं० स्त्री०) शुण्ठी, कचूर।

पयाटा (हिं० पु०) प्यारा देखो।

पयान (हिं० पु०) गमन, यात्रा, जाना।

पयार (हिं० पु०) पयाल देखो।

पयाल (हिं० पु०) धान, कोदों, आदिके सूखे डंठल जिनके दाने झाड़ लिए गए हों, पुआल।

पयोगड़ (सं० पु०) पयसो गड़ इव। १ घनोपल, ओला। २ द्वीप।

पयोगल (सं० पु०) पयो गलति यस्मात् गल अपादाने कं। १ घनोपल, ओला। २ द्वीप।

पयोग्रह (सं० पु०) पयसो दुग्धस्य ग्रहः, आधारे-अच्। यज्ञीय पात्रभेद।

पयोघन (सं० पु०) पयसा घनः निविड़ः। पर्वात, ओला।

पयोज (सं० पु०) पद्म, कमल।

पयोजन्मा (सं० पु०) १ बादल, मेघ। २ मुस्तक, मोथा।

पयोद (सं० पु०) पयो ददाति दा-क। १ मेघ, बादल। २ मुस्तक, मोथा। ३ यदुवंशीय पुत्रभेद, एक यदुवंशी राजा। (स्त्री०) ४ कुमारानुचर मातृकाभेद, कुमारकी अनुचरी एक मातृका।

पयोदन (हिं० पु०) दूधभात।

पयोदा (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृकाभेद, कुमारकी अनुचरी एक मातृका।

पयोदेव (सं० पु०) वरुण।

पयोधर (सं० पु०) धरतीति धरः धृ-अच्, पयसो दुग्धस्य

जन्तुस्य वा धरः। १ कौशल्य। २ मेघ। ३ मुस्तक मोथा। ४ कोषकार। ५ नारिकेल, नारियल। ६ कशेरु। ७ महाम तालाव। ८ गायका थायन। ९ मदार, मकोय। १० एक प्रकारकी ऊख। ११ पर्वत पहाड़। १२ कोई दुग्धयुक्त। १३ दोहा छन्दका ११वां भेद। १४ समुद्र। १५ छप्पय छन्दका २०वां भेद।

पयोधरा—नदीभेद, एक नदीका नाम। यह बम्बईप्रदेशके अहमदनगर जिलेके अन्तर्गत कुक्कुड़ ग्राम अत्तरमें प्रवाहित है। अभी यह नदी पवरा नामसे प्रसिद्ध है।

पयोधस् (स॰ पु॰) पयो दधाति धा-असुन्। १ समुद्र। २ जलाधार।

पयोधा (हि॰ पु॰) पयोधस् देखो।

पयोधारा (स॰ स्त्री॰) पयसो जलानां धारा। १ जलधारा। पयसो धारा यत्र। २ नदीभेद।

पयोधि (स॰ पु॰) पयांसि धीयन्तेऽस्मिन् धा कि (कर्म-ण्यधिकरणे च। पा ३।३।९३) समुद्र।

पयोधिज (सं॰ क्ली॰) पयोधौ समुद्रे जायते जन-ड। इति वा। समुद्रफेन।

पयोनिधि (स॰ पु॰) पयांसि निधीयन्तेऽस्मिन् धा-आधारे कि। समुद्र।

पयोमुख (स॰ त्रि॰) दूधपीना दुधमुंहा।

पयोमुच् (स॰ स्त्री॰) पयो मुञ्चति मुच क्विप्। १ अम्बुमुच्, मेघ। २ मुस्तक, मोथा।

पयोऽमृततीर्थ (स॰ क्ली॰) तीर्थभेद।

पयोर (स॰ पु॰) पयो जलं राति ददाति रा-क। खदिर, खैरका पेड़।

पयोलता (स॰ स्त्री॰) क्षीरविदारी, दूधविदारीकन्द।

पयोवाह (स॰ पु॰) १ मेघ बादल। २ मुस्तक, मोथा,

पयोवृध (स॰ त्रि॰) जलप्लावित, जलपरिवर्द्धित।

पयोव्रत (स॰ पु॰) पयोमात्रभक्षणमात्रको व्रत। पयोमात्र-पान रूप व्रतविशेष।

"दुग्धं पिबेत् षडात्राय दुग्धसंप्रतिपादित।
पयोव्रतमिदं प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनम्॥"

(मत्स्यपुराण १५१ अ॰)

पुत्रकामनासे स्त्रियोंको या गुरुजनके पयोव्रत करना चाहिये। इस व्रतमें केवल दूध पी कर रहना होता है। यह व्रत दो प्रकारका है, प्रायश्चित्तात्मक और काम्य। २ यज्ञदीक्षित व्रतभेद। इस व्रतका विषय भाग-वतमें इस प्रकार लिखा है—फाल्गुनमासके शुक्लपक्षमें प्रतिपत्से ले कर त्रयोदशी तक अर्थात् १२ दिन इस व्रतका अनुष्ठान करना होता है। प्रातःकालको प्रातः-कृत्यादि करके समाहित चित्तसे भगवान् श्रीकृष्णकी यथा-विधान पूजा करनी चाहिये। इस व्रतमें केवल पयःपान करके रहना होता है इसीसे इसका नाम पयोव्रत पड़ा है। इस व्रतानुष्ठानके समय किसी प्रकारका अमृत भाषण या अन्य किसी प्रकारका निषिद्ध कर्म करना मना है। इस व्रतमें श्रीकृष्णकी पूजा ही प्रधान है। व्रत समाप्त हो जाने पर ब्राह्मणभोजन और ऋत्विगादि-तर्पण करना होता है। यह व्रत सभी व्रतों और यज्ञोंमें श्रेष्ठ है। इस व्रतमें निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करनी होती है—

"इदं देवदेवाहित व्रताय स्वामिसिद्धता।
चरुणार्पित भगवन् कल्याण मे प्रयच्छ॥"

भागवतके ८।१६ अध्यायमें इस व्रतका विशेष विव-रण लिखा है।

पयोष्णा—नदीभेद। यह तापी नदीमें मिली है।

(भागीर ७।१।४)

पयोष्णी (स॰ स्त्री॰) विन्ध्यपर्वतके दक्षिण दिशामें प्रवा-हित एक नदी। राजनिघण्टुके मतसे इस नदीका जल दक्षिण पवित्र तथा पाप और सब प्रकारका आमय-नाशक गुण बल और कान्तिप्रद तथा लघु माना गया है। इसका वर्तमान नाम पायस्नि है।

पयःप्रीजाता (स॰ स्त्री॰) पयोष्णी जाता यस्याः सृष्टा इत्यादिस्तात् साधु। सरस्वती नदी।

पर्रग (हि॰ अव्य॰) एक शब्द जो किसी वाक्यके साथ उससे कुछ अन्यथा स्थिति सूचित करनेवाला दूसरा वाक्य कहनेसे पहले लाया जाता है पर लेकिन।

पर्रा (फा॰ पु॰) १ पक्षी चिड़िया। २ एक प्रकारका धारदार भाल जो आसमानको छातीमें चलते हैं।

पर (स॰ क्ली॰) पृ मार्गं करोतीति वा पच् (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) १ केवल। २ मोक्ष। ३ ब्रह्मा। ४ ब्रह्म।

५ विष्णु। ६ ब्रह्माको आयु। ७ शत्रु। ८ शिव। (त्रि०) ९ श्रेष्ठ, आगे बढ़ा हुआ। १० दूर, जो परे हो। ११ अन्य, दूसरा। १२ उत्तर। १३ नैयायिकोंके मतसे द्रव्य, गुण और कर्मवृत्तिसत्ता, व्यापक सामान्य।

सामान्य दो प्रकारका है, पर और अपर। द्रव्य, गुण और कर्म इन तीनोंमें जो वृत्ति अर्थात् सत्ता है, उसे परजाति कहते हैं। परभिन्न जातिका नाम अपरजाति है। जाति देखो।

पर (हिं० अव्य०) १ पश्चात्, पीछे। २ एक शब्द जो किसी वाक्यके साथ उससे अन्यथा स्थिति सूचित करने वाला वाक्य कहनेके पहले लाया जाता है, परन्तु, किन्तु, लेकिन। (फा० पु०) ३ चिड़ियोंका डैना और उस परके रोएं, पत्न, पंख।

परःकृष्ण (सं० त्रि०) परः कृष्णात् पारस्करादित्वात् सुट्। कृष्ण से भिन्न।

परःशत (सं० त्रि०) शतात् परं। शताधिक संख्या, सौसे ज्यादा।

परःश्वस् (सं० अव्य०) श्वो दिनात् परम्। परः श्वः परः सहस्रात् पारस्करादित्वात् सुट्। परदिन, परसों।

परःषष्टि (सं० स्त्री०) परः षष्टेः निपातनात् सुटागमः। १ साठसे अधिकको संख्या। (त्रि०) २ जिसमें उतनी संख्या हो।

परःसहस्र (सं० त्रि०) सहस्रात् परं निपातनात् सुटागमः। सहस्राधिक संख्या।

परई (हिं० स्त्री०) दीएके आकारका पर उससे बड़ा मिट्टीका एक बरतन, पारा, सराव।

परउर्वी (सं० स्त्री०) उर्व्याः परं। उपसद्भेद।

परक (सं० पु०) केशराज।

परकाई—मन्द्राज प्रदेशके त्रिवाङ्कुड़ राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अगस्त्येश्वरसे ५॥ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहांके मन्दिरादिमें तामिलग्रन्थ और तुलु अक्षरमें लिखित १३ शिलालिपियां पाई जाती हैं।

परकटा (हिं० वि०) जिसके पर या पंख कटे हों।

परकना (हिं० क्रि०) १ परचना, हिलना मिलना। २ अभ्यास पड़ना, चसका लगना।

परकर्मन् (सं० क्ली०) परका कार्य, दूसरेका काम।

परकर्मनिरत (सं० त्रि०) परकार्यमें नियुक्त।

परकलत्र (सं० क्ली०) परस्त्री, दूसरेकी औरत।

परकलत्राभिगमन (सं० क्ली०) परस्त्रीगमन, दूसरेकी औरतके साथ मैथुन।

परकाजी (हिं० वि०) दूसरेका काम साधन करने वाला, परोपकारी।

परकान (हिं० पु०) तोपका कान या मुंह, तोपका वह स्थान जहां रञ्जक रखी जाती है या बत्ती दी जाती है।

परकाना (हिं० क्रि०) १ परचाना, हिलाना, मिलाना। २ कोई लाभ पहुंचा कर या कोई बात में रोक टोक करने से उसको ओर प्रवृत्त करना, धड़क खोलना, चसका लगाना।

परकायप्रवेश (सं० पु०) अपनी आत्माको दूसरेके शरीरमें डालनेकी क्रिया जो योगकी एक सिद्धि समझी जाती है।

परकार (फा० पु०) वृत्त या गोलाई खींचनेका औजार। यह सिरे पर परस्पर जुड़ी हुई दो शलाकाओंके रूपका होता है।

परकार्य (सं० क्ली०) अन्यका कार्य, दूसरेका काम।

परकाल (हिं० पु०) परकार देखो।

परकाला (हिं० पु०) १ सीढ़ी, जीना। २ चौखट, देहली, दहलीज। ३ खण्ड, टुकड़ा। ४ शीशेका टुकड़ा। ५ अग्निकण, चिनगारी।

परकास (हिं० पु०) प्रकाश देखो।

परकीय (सं० त्रि०) पराया, दूसरेका, बेगाना।

परकीया (सं० स्त्री०) परकीय-टाप्। नायिकाभेद। गुप्तभावसे जो पर-पुरुष पर प्रेम रखती है, उसे परकीया कहते हैं। यह दो प्रकारकी है, परोढ़ा और कन्यका। कन्यकागण पितादिके अधीन रहती हैं, इसीसे वे परकीया हैं।

गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना और मुदिता आदि नायिका परकीयाके अन्तर्गत हैं। गुप्ता-नायिका तीन प्रकारकी है, वृत्तसुरतगोपना, वर्त्स्यत्माणसुरतगोपना और वर्त्तमानसुरतगोपना। विदग्धा दो प्रकारकी है, वाग्विदग्धा और क्रियाविदग्धा।

परकृति (सं० स्त्री०) १ अन्यके कर्मकार्यका चरित्र

ध्यान दूसरेको अतिका बचन। २ दूसरेको अति दूसरेका किया हुआ काम। ३ कर्मकाण्डमें दो पद स्पर विरुद्ध बातोंकी स्थिति।

परेश्मरी—चोलवंशीय एक राजा। कन्नड़ भाषा शिलालेखमें इनका नामोल्लेख है। सम्भवतः ये ही मदुराके वीरराजेन्द्र थे।

परेश्वरोचतुर्वेदीमंगलम—कावेरी नदीके तीरवर्ती एक ग्राम। चोलवंशीय राजा किसी युवराजने यह ग्राम १५० ब्राह्मणोंको दान दिया था।

परकेसरीवर्मा—चोलवंशीय एक राजा। कोई इन्हें वीर राजेन्द्रदेव, और कुछ कुलोत्तुंग चोल १म कुलो-त्तुंग चोड़ मानते हैं।

परकोटा (हि॰ पु॰) १ किसी गढ़ या स्थानकी रक्षाके लिये चारों ओर उठाई हुई दीवार। २ पानी आदि-को रोकनेके लिये बना किया हुआ बंध, बाँध पुश्ता।

परक्रम (स॰ पु॰) परवर्ति क्रम।

परक्राथन् (स॰ पु॰) महाभारतोक्त एक वीर। महा-भारतकी लड़ाईमें ये कुरुवोंकी ओरसे लड़े थे।

परक्षान्तिका (स॰ स्त्री॰) दोषनाशिका क्षमा।

परक्षुद्रा (स॰ स्त्री॰) बैंदाहिने निकला छोटा खांसता।

परख (स॰ स्त्री॰) एक विरुद्ध कार्यादि। १ परखना, परीक्षा। २ परखनेकी शक्ति। ३ दूसरेका प्रहार।

परख (हि॰ स्त्री॰) १ गुण दोष स्थिर करनेके लिये अच्छी तरह देख भाल, जाँच पड़ताल। २ कोई वस्तु अच्छी है या बुरी, यह ज्ञान होनेकी शक्ति पहचान।

परखना (हि॰ क्रि॰) १ गुण दोष स्थिर करनेके लिये अच्छी तरह देखना भालना, परीक्षा करना, जाँच करना। २ भला और बुरा पहचानना, कौन वस्तु कैसी है यह ताड़ना। ३ प्रतीक्षा करना, इन्तजार करना, आसरा देखना।

परखवाना (हि॰ क्रि॰) परखाना देखो।

परखवैया (हि॰ पु॰) परखनेवाला, जाँचनेवाला।

परखाई (हि॰ स्त्री॰) १ परखनेका काम। २ परखनेकी मजदूरी।

परखाना (हि॰ क्रि॰) १ परखनेका काम दूसरेसे कराना, परीक्षा कराना या जँचाना। २ कोई वस्तु देते या सौंपते समय उसे गिन कर या उलट पलट कर दिखा देना, सहेजवाना या समझवाना।

परखाम—मथुरा जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह मथुरा नगरसे १२ मील और मथुरासे [illegible] मीलकी दूरी पर एक छोटे पहाड़के ऊपर अवस्थित है।

यहाँ मथुरादर्शनार्थ माघ्य मास और माघमासमें प्रति वर्षिकारका मेला लगता है। वर्तमानकालमें इस ग्राम को कोई विशेष उल्लेखयोग्य घटना नहीं रहने पर भी यहाँ शक राजाओंके समयकी पत्थरकी प्रस्तरमूर्ति पाई जाती है। इसमेंसे एक मनुष्यकी मूर्ति है जिसकी ऊँचाई ७ फुट है। यह मूर्ति अभी भग्नावस्थामें रहने पर भी इसका कुछ कारुकार्य और मस्तक आज भी ज्योंका त्यों बना है। इसके परिच्छदादि अलग हैं। परवर्ती शक राजाओंके शासनकालमें खोदित मूर्ति से परिच्छद भिन्न है। नीचे एक प्रकारकी माला लटक रही है। इसके नीचे जो लिपि खोदित है वही प्राकृत की जोड़ है। उसके अक्षर सम्राट् अशोकके समयकी लिपिके जैसे मालूम होते हैं। यह मूर्ति ४थी शताब्दी की बनी हुई है ऐसा जान पड़ता है। मूर्तिके दो हाथ टूट जानेसे यह किसकी मूर्ति है, इसका पता नहीं चलता।

परखुरी (हि॰ स्त्री॰) पखुड़ी देखो।

परखैया (हि॰ पु॰) परखनेवाला।

परगाँव—१ अहमदनगरके पूना जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह पाटससे ११ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। यहाँ तुलाई देवीका एक मन्दिर है। देवीकी मूर्ति तुलजापुरसे यहाँ लाई गई थी।

२ ग्वालियर जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। इसकी सीमा पर यह मन और स्त्री मूर्ति रक्षित है।

परगट (हि॰ पु॰) प्रगट, प्रकट।

परगत (स॰ त्रि॰) पर अन्य वितीयाश्रितातीतेति २ तत्। परगत अपरगत।

परगना (फा॰ पु॰) एक भूभाग जिसमें बहुतसे ग्राम हों। भाज कल एक तहसीलके अन्तर्गत कई

परगने होते हैं। बड़े परगने कई तप्पों या टप्पोंमें बंटे होते हैं।

परगनो (हिं॰ स्त्री॰) परगहनी देखो।

परगहनो (हिं॰ स्त्री॰) सुनारोंका एक औजार जो नलीके आकारका होता है और जिसमें बरछीकी तरह डांडी लगी होती है। इस नलीमें तेज टेकर उसमें चांदी या सोनेकी गुलिया ढालते हैं, परगनी।

परगाछा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका पौधा। यह गरम देशोंमें दूसरे पेड़ों पर उगता है, इसकी पत्तियां लम्बी और खड़ी नसोंकी होती हैं। इसमें सुन्दर तथा अद्भुत वर्ण और आकृतिके फूल लगते हैं। एक ही फूलमें गर्भकोश और परागकेशर दोनों होते हैं। पर गाछेकी जातिके बहुतसे पौधे जमीन पर भी होते हैं। लोग इसे फूलोंकी सुन्दरताके लिये बगीचोंमें लगाते हैं। ऐसे पौधे दूसरे पेड़ोंका डालियों पर उगते तो हैं, पर सब परिपुष्ट नहीं होते, परगाछेकी कोई टहनी या गांठ भी बीजका काम देती है। उससे भी नया पौधा अंकुर फोड़ कर निकल आता है। परगाछेको संस्कृतमें बदाक और हिन्दीमें बाटा भी कहते हैं।

परगाछी (हिं॰ स्त्री॰) अमरबेल, आकाशबौर।

परगामिन् (सं॰ त्रि॰) परं वाच्यं गच्छति लिङ्गेन समत्वात्, पर, गम णिनि। वाच्यलिङ्ग शब्द।

परगासना (हिं॰ क्रि॰) प्रकाशित होना या करना।

परगुण (सं॰ त्रि) उपकारी।

परग्रन्थि (सं॰ पु॰) परेण ग्रन्थिर्यत्र। पर्वावधि, उंगली की गिरह।

परघनी (हिं॰ स्त्री॰) परगहनी देखो।

परचंड (हिं॰ वि॰) प्रचण्ड देखो।

परचक्र (सं॰ क्ली॰) परस्य शत्रोश्चक्रं। १ शत्रुके राजा प्रभृति। २ शत्रुराज्यमें उत्पन्न ईतिभेद। ३ विपक्ष राजा।

परचक्रकाम (सं॰ पु॰) १ परराज्यपिपासु, वह जो दूसरेका राज्य लेना चाहता हो। २ नेपालराज २य जयदेवका एक नाम।

परचना (हिं॰ क्रि॰) १ घनिष्ठता प्राप्त करना, हिलना, मिलना। २ चसका लगाना, भड़क खुलना जो बात दो एक बार अपने अनुकूल हो गई हो या जिस बातको दो एक बार बे रोक टोक मनमाना करने पाए हों उसोकी ओर प्रवृत्त रहना।

परचर (हिं॰ पु॰) अवध प्रान्तके खोटो जिनमें पाई जानेवाली बैलोंकी एक जाति।

परचा (फा॰ पु॰) १ चिट्ठा, रुक्का, पुरजा। २ परीक्षामें आनेवाला प्रश्नपत्र। ३ कागजका टुकड़ा, चिट, कागज। ४ परिचय, जानकारी। ५ प्रमाण, सबूत। ६ परीक्षा, परख, जांच। ७ जगन्नाथजीके मन्दिरका वह प्रधान पुजारी जो मन्दिरकी आमदनी और खर्चका प्रबन्ध करता तथा पूजा सेवा आदिकी देख रेख रखता है।

परचाना (हिं॰ क्रि॰) १ परिचित करना, हिलाना, मिलाना, किसीसे इतना अधिक लगाव पैदा करना कि उससे व्यवहार करनेमें कोई संकोच या खटका न रहे। २ भड़क खोलना, चसका लगाना, टेव डालना।

परचार (हिं॰ पु॰) प्रचार देखो।

परचारना (हिं॰ क्रि॰) प्रचारना देखो।

परचित्तज्ञान (सं॰ क्ली॰) परचित्तस्य ज्ञानं। दूसरेका मनोभाव जानना।

परचित्तपर्यायज्ञान (सं॰ पु॰) अपने चित्तमें दूसरेके चित्तका भाव जानना।

परचून (हिं॰ पु॰) आटा, चावल, दाल, नमक, मसाला आदि भोजनका फुटकर समान।

परचूनी (हिं॰ पु॰) १ परचूनवाला, आटा, दाल, नमक आदि बेचनेवाला बनिया। (स्त्री॰) २ परचून या परचूनीका काम या भाव।

परचै (हिं॰ पु॰) परिचय देखो।

परच्छन्द (सं॰ त्रि॰) परस्य छन्दो यत्र। १ पराधीन। परस्य छन्दः ६-तत्। २ पराभिलाष।

परच्छन्दवत् (सं॰ त्रि॰) परच्छन्दः विद्यतेऽस्य मतुप, मस्य व। परच्छन्दयुक्त।

परछत्ती (हिं॰ स्त्री॰) १ घर या कोठरीके भीतर दीवारसे लगा कर कुछ दूर तक बनाई हुई पटन जिस पर सामान रखते हैं, टांड, पाटा। २ हलका छप्पर जो दीवारों पर रख दिया जाता है, फूस आदिकी छाजन।

परमहंसोंको 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यका श्रवण मनन कर सर्वदा आत्मज्ञानका अनुशीलन करना उचित है। 'सोऽहं शिवोऽहं' इत्यादि वाक्य कह कर इन्हें तत्त्वज्ञानावलम्बनका परिचय देना चाहिये।

उक्त चार प्रकारके उपासकोंको अन्त्येष्टिक्रिया भी एक सी नहीं है। निर्णयसिन्धुमें परमहंसके विषयमें जो लिखा है, वह इस प्रकार है—

परमहंसोंका देहावसान होने पर उनका शरीर न जला कर जमीनमें गाड़ देना चाहिये। किन्तु मालूम किसीके मतसे परमहंसके सिवा अन्य तीन प्रकारके संन्यासीको पहले जमीनमें गाड़ कर पीछे दाह करना चाहिये। केवल परमहंस ही को मृतदेहको जमीनमें गाड़ सकते हैं। उनको मृत्युमें अशौच नहीं होता और न कर्मक्रिया ही होता है।

साधारणतः परमहंस संन्यासी ही इस लोगोंके नयन-गोचर होते हैं, शेष तीन प्रकारके संन्यासी बहुत कम नजर आते हैं। प्रधानतः परमहंस दो प्रकारका है दण्डी और अवधूत। जिन्होंने दण्डका त्याग कर परमहंसाश्रम अवलम्बन किया है, वे दण्डिपरमहंस और जो अवधूत-दीक्षाका अनुष्ठान कर शिष्यों परमहंस हो गये हैं, वे अवधूत-परमहंस कहलाते हैं। उक्त दो प्रकारके परमहंस ही केवल प्रणवको उपासना किया करते हैं। शास्त्रोंका कहना है, कि परमहंसोंका ज्ञान हो एकमात्र दण्ड है। यद्यपि ये लोग ओंकारके उपासक और तत्त्वज्ञानके अवलम्बी हैं, तो भी बहुतेरे प्रकृति पर कोई कोई देवप्रतिमूर्त्तिको दर्शन करते हैं, किन्तु उन्हें नमस्कार नहीं करते। इनमेंसे भी कोई कोई सुरापान किया करते हैं। महावधूत दो प्रकारका है, पूर्ण और अपूर्ण। पूर्णमहावधूतको परमहंस और अपूर्णको परिव्राजक कहते हैं।

महानिर्वाणतन्त्रके अष्टमोल्लासमें लिखा है—

"तत्त्वमसि महावाक्य ह्रदि ध्यात्वा विचक्षणः।

शिष्यो निरहङ्कारः स्वात्मैव सुखं चर॥"

शिष्य इस प्रकार महामन्त्र श्रवण कर अपनेको आत्म-स्वरूप समझे। तत्पश्चात् अपर विहित आत्ममन्त्र उपदेश देनेको व्यवस्था है। किन्तु संन्यासी लोग उनका श्रवण कर इस प्रकार अर्थ-प्रतिपादक निम्नलिखित मन्त्रका सन्धान ग्रहण किया करते हैं।

"ओम् हंसः सोऽहं परमहंसः परमात्मा देवता।

चिन्मयः सच्चिदानन्दस्वरूपः सोऽहं ब्रह्म॥"

ओ! मैं वही हंस, परमहंस, परमात्मादेवता हूँ, मैं वही ज्ञानमय सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म हूँ।

इस मन्त्रको एक गायत्री भी है जिसका अभ्यास कर जप करना होता है। वह गायत्री यों है—"ओं हंसाय विद्महे परमहंसाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्।" अर्थात् जिससे हंसविषयक ज्ञान हो, परमहंसकी चिन्ता करें, वही हंस आत्मोंको प्रदान कीजिये।

जाबालोपनिषद्में संवर्त्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, दुर्वासा, ऋभु, निदाघ, जड़भरत, दत्तात्रेय और रैवतक आदि परमहंस नामसे वर्णित हुए हैं। ये लोग अव्यक्त लिङ्ग, अव्यक्ताचारी और उन्मत्त नहीं होते हुए भी उन्मत्तवत् आचरण करते हैं। (जाबालउ० ६) परमहंसका विस्तृत विवरण हंसोपनिषद्, जाबालोपनिषत्, स्कन्द संहिता, नारदपञ्चरात्र परमहंसवर्णन, निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें लिखा है।

२ परमात्मा। ३ तत्त्वप्रतिपादक उपनिषद्भेद।

परमा (सं० स्त्री०) शोभा, छवि।

परमा (हिं० स्त्री०) शोभा, छवि, सुन्दरता।

परमाक्ष (सं० त्रि०) परमा आत्मा यस्य। परमात्म।

परमाटा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका बढ़िया कपड़ा। २ एक प्रकारका चिकना चमकीला और दबीज कपड़ा। परमाटा आईनियामें एक स्थान है। प्राचीनकालमें वहांके जिस ऊनको इस्तेमाल होता था उससे एक प्रकारका कपड़ा बनता था। उस कपड़ेका ताना सूतका और बाना ऊनका होता था। उसीको परमाटा कहते थे। लेकिन अब परमाटा सूतका ही बनता है।

परमाणु (सं० पु०) परमः अणु कर्मधा० अण्ड। पृथ्वी आदि परिमाणयुक्त में प्रियकसत्तसिद्ध क्षिति जल तेज और वायुका सूक्ष्मांश अर्थात् पृथ्वी जल, तेज और वायु इन चार भूतोंका वह छोटेसे छोटा भाग जिसके फिर विभाग

* हंस शब्दका अर्थ शिव, सूर्य, विष्णु, परमब्रह्म इत्यादि है। इस सब अर्थोंमें हंस आत्मप्रतिपादक है।

नहीं हो सकती। यह परमाणु नित्य और निरवयव है। परमाणुसे सूक्ष्म और कोई पदार्थ हो नहीं है।

"नित्यानित्या च सा द्वेधा नित्या स्यादणुलक्षणा।
अनित्या तु तदन्या स्यात् सैवावयवयोगिनी॥"

(भाषापरि०)

परमाणु नित्य और अनित्य है। इनमेंसे अणुलक्षणा नित्या और सभी अनित्या है। यह अवयवयोगिनी है। गवाक्षमार्ग हो कर सूर्यकिरण पड़नेसे उसमें जो छोटे छोटे रजःकण देखनेमें आते हैं, उसके छठे भागका नाम परमाणु है।

"जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
भागस्तस्य च षष्ठो यः परमाणुः स उच्यते॥"

(सर्वोदय)

भाग करते करते जिसका फिर विभाग नहीं हो सकता, वही परमाणु है। परमाणु प्रत्यक्ष नहीं होता, परमाणुद्वय संयुक्त हो कर द्व्यणुक और त्रसरेणु होनेसे तब प्रत्यक्ष होता है। सावयव द्रव्यके अवयवोंको विभाग करते करते जहां विभागका शेष होगा, जिसका फिर विभाग नहीं किया जायगा अथवा जो फिर विभक्त नहीं हो सकता, उसका नाम परमाणु है। यह परमाणु चार प्रकारका है—भौम, जलीय, तैजस और वायवीय। जब जगत् सृष्ट होता है, तब प्रथमतः अदृष्ट कारणोंसे वायवीय परमाणुमें क्रिया उत्पन्न होता है, यह क्रिया वायवीय परमाणुको परस्पर संयुक्त करती है। इस प्रकार संयुक्त होनेसे द्व्यणुक उत्पन्न होता है। क्रमशः त्र्यणुक, चतुरणुक इस प्रकार वायुकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसी प्रणालीसे क्रमशः अग्नि, जल और पृथ्वी आदिकी सृष्टि होती है। प्रलयकालमें इस प्रकार परमाणुके विभक्त होनेसे ही सभी भूतोंका नाश होता है, केवल परमाणु मात्र रह जाता है। ऐसी अवस्थाको प्रलय कहते हैं। परमाणु परिमाणका कारणत्व नहीं है।

वैशेषिक दर्शनमें जो परमाणु नामसे व्यवहृत होता है, सांख्यदर्शनके मतमें वह तन्मात्रके जैसा अनुमित होता है। यह तन्मात्र वा परमाणु स्थूल भूतपञ्चक और भौतिक-जगत्का उपादान-कारण है। सांख्यका तन्मात्र शब्द यौगिक है, तत् + मात्र अर्थात् केवल वा वही। नैयायिक लोग जिस प्रकार पार्थिव परमाणुका जातीय परमाणु और सौगत परम अणुका विशेष विशेष नामोंसे व्यवहार करते हैं उसी प्रकार सांख्याचार्य भी शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र आदि विशेष विशेष नामोंको काममें लाते हैं। तन्मात्र शब्दकी तरह परमाणु शब्द यौगिक है, परम + अणु अर्थात् अति सूक्ष्म। परिमाण तीन प्रकारका है, अणु, मध्यम और महत्। इसका प्रथम सूक्ष्मताबोधक और तृतीय स्थूलत्वबोधक है। प्रथम परिमाण और महत् परिमाण यदि अत्युत्कर्षान्वित हो उठे, तो उसे जाननेके लिये उस अणु और महत् शब्दके पहले एक परम शब्दका प्रयोग होता है। इसीसे अत्युत्कर्षान्वित सूक्ष्म वस्तुका नाम परमाणु है, इसी प्रकार वृहत् परिमाणका नाम परममहत् है। परमाणुका दूसरा नाम है परिमण्डल और सन्धान। शास्त्रान्तरमें यह सूक्ष्मभूत नामसे परिभाषित हुआ है।

परमाणु और तन्मात्र यही दो अनुमेय पदार्थ हैं, परमाणुका अनुमान इस प्रकार है—स्थूल वस्तुमात्र ही विभाज्य है जो विभाज्य है, उसका अंश हुआ करता है। वस्तु विभक्त होनेसे उसे पत्थर, पटक, अंशोंमें स्थित होते देखा जाता है। यह भी देखा जाता है, कि प्रत्येक विभक्त अंश प्रत्येक भिन्न द्रव्यको अपेक्षा सूक्ष्माकार धारण करता है, इस प्रकार जहां सूक्ष्मताका शेष होगा, वह अविभाज्य और अवयवशून्य वस्तु ही परमाणु है।

नैयायिकोंके मतसे—आकाश जिस प्रकार असीम और अनन्त है, परमाणु भी उसी प्रकार अगणनीय, असीम और अनन्त है। महाप्रलयमें ग्रह, नक्षत्र तारका, सागर, शैल आदि समस्त विश्व विध्वस्त होने पर उनके परमाणु आकाशगर्भमें निश्चिन्त वा छिपे रहते हैं। वैशेषिक दर्शनके मतमें परमाणुसे जगत् उत्पन्न हुआ है। कणाद सृष्टिप्रक्रियाको लक्ष्य करते हैं, कि सभी परमाणु प्रलयावस्थामें निश्चल रहते हैं। जब सृष्टिका आरम्भ होता है, तब वे सब परमाणु जीवात्माके प्रभावसे सचल हो जाते हैं। वे ज्यों ही सचल होते हैं, त्यों ही संयुक्त होने लगते हैं। पीछे द्व्यणुक, त्र्यणुक आदि रूपोंमें समुदय

महत्परिमाण उत्पन्न होता है। इस मतमें क्षिति, जल, मरुत् रूपादिविशिष्ट वे सब विनाशके योग्य अवयव हैं। जिस हेतु सावयव है उसी हेतु इनका आद्यन्त है अर्थात् उत्पत्ति और प्रलय दोनों ही हैं। कार्यमात्र ही सकारण है बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता, परमाणुराशि ही जगत् का कारण है। कणादका कहना है कि क्षिति जल तेज और वायु ये चार मूल अवयव हैं। सुतरां परमाणु भी चार प्रकारका है। जिस कालमें यह पृथिव्यादि चरम विभागमें विभक्त होती है अर्थात् प्रलय हो जाता है उसी कालका नाम प्रलय है। प्रलयकालमें चरम अवयव समस्त परमाणु ही रहता है, उस समय फिर अवयवी नहीं रहता। सृष्टिकालमें उसी परमाणुसे जगत्‌की उत्पत्ति होती है। जिस समय दो परमाणुसे द्व्यणुक उत्पन्न होता है उसी समय परमाणुनिष्ठ रूपादि गुण-विशेष जो शुक्लादि नामसे प्रसिद्ध है वह अन्य शुक्लादि गुणविशेष उत्पन्न करता है। किन्तु परमाणुका अन्य गुण है—पारिमाण्डिल्य (परिमण्डल—परमाणु) परमाणु का परिमाण है। द्व्यणुकमें अन्य पारिमाण्डल्य नहीं उत्पन्न होता। द्व्यणुकका परिमाण अणु और ह्रस्व है। द्व्यणुकादि क्रमसे स्थूल भूतोत्पत्ति होती है। (वैशेषिक द०)

वेदान्तदर्शनमें परमाणु कारणवाद निराकृत हुआ है। भगवान् शङ्कराचार्य परमाणुसे जगत्‌की सृष्टि हुई है यह स्वीकार नहीं करते। उन्होंने कणादके इस मतको भ्रान्त साबित किया है। यहां पर बहुत संक्षेपमें इस विषयकी आलोचना की जाती है। भगवान् शङ्कराचार्य-का कहना है, कि परमाणुराशि या तो प्रवृत्तिस्वभाव है या निवृत्तिस्वभाव, या उभयस्वभाव अथवा अनुभय स्वभाव अर्थात् निःस्वभाव। वैशेषिकको इन चार प्रकारोंमेंसे एक प्रकार अवश्य ही स्वीकार करना होगा किन्तु इन चार प्रकारोंमेंसे किसी भी प्रकारका उत्पन्न नहीं होता। प्रवृत्तिस्वभाव होनेसे प्रलय हो ही नहीं सकता और फिर निवृत्ति स्वभाव होनेसे सृष्टि भी नहीं हो सकती। एकाधार पर प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दोनों रह नहीं सकतीं। निःस्वभाव होनेसे निमित्तवश प्रवृत्ति निवृत्ति तो हो सकती है, पर तत्पक्षमें निमित्त जो है अर्थात् काल, अदृष्ट और ईश्वरेच्छा, नित्य तथा नियत सन्निहित है। सुतरां उस पक्षमें भी नित्य-प्रवृत्ति और नित्य निवृत्तिकी आपत्ति हो सकती है। अदृष्टादि कारण निमित्तको अस्वतन्त्र अथवा अनित्य कहनेसे भी नित्य अप्रवृत्तिकी आपत्ति होती है। अतएव परमाणु कारणवाद सब तरह असंगत है। सावयव द्रव्यका शेष विभाग ही परमाणु है। वैशेषिकोंका यह कथन सिद्धान्त असंगत है क्योंकि उनका कहना है, कि रूपादिमान् परमाणु नित्य है और वे ही मूलभौतिक पदार्थ के आरम्भक हैं। रूपादि कहनेसे ही परमाणुमें स्थूलत्व और नित्यत्व इन दोनोंका वैपरीत्य पाया जाता है अतएव वैशेषिकोंके परमाणु, परम कारणकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य यही उपपन्न होता है, किन्तु यह उनके अभिप्रायके विपरीत है। रूपादि रहनेसे उसमें जो स्थूलत्व और अनित्यत्व रहता है वह लोकमें दृष्ट होता है। यह सब जगह देखा जाता है कि रूपादिमद्वस्तु अपने कारणकी अपेक्षा स्थूल और अनित्य है। वैशेषिकोंके परमाणु भी रूपादिमान् है। जिस हेतु रूपादिमान् है इसी हेतु उनका कारण (मूल) है और परमाणु उस कारणकी अपेक्षा स्थूल तथा अनित्य है, यह सहजमें प्रतीत होता है। वैशेषिकगणने जो अपनी नित्यता साधनके लिये 'अविद्या च' यह सूत्र कहा है, वह उनके मतसे अपनी नित्यताका साधक कारण है। यदि अणु नित्यताज्ञापक उक्त अविद्याशब्दकी ऐसी व्याख्या उचित हो कि स्थूलमात्र व्यक्तकार्य (प्रत्यक्ष)का मूलकारण प्रत्यक्षके द्वारा गृहीत नहीं होता अर्थात् वह अप्रत्यक्ष है तो उसी कारण उसका नाम अविद्या है। यह अविद्या अणु-नित्यताका अन्यतम हेतु है। 'अविद्या च' इस सूत्र का अर्थ कथित प्रकार होनेसे द्व्यणुक और नित्य हो सकता है। 'अविद्या परमाणुविषयकी नित्यता साधन करनेमें समर्थ है' ऐसी व्याख्या करनेसे भी निश्चितरूपसे अणु नित्यसिद्ध नहीं होता। कारण यह है, कि विनश्वर वस्तु उन्हीं दो कारणोंसे नष्ट होती है। अन्य प्रकारसे नष्ट नहीं होती, ऐसा कोई नियम भी नहीं है। यदि आरम्भ शब्दसे बहु अवयव संयुक्त हो कर द्रव्यान्तर उत्पन्न करता है, ऐसा अर्थ हो, तो उस नियमसे विनाशकी सिद्धि तो हो सकती है, पर निरवयवित

सामान्यात्मक कारणकी विशेष अवस्था उपस्थित होनेसे आरम्भ कहा जाय, तो घृतकाठिन्यविनाश-का दृष्टान्त घनीभूत अवस्थाके विनाशसे भी विनाश-का होना सङ्गत नहीं हो सकता। अतएव परमाणुके सम्बन्धमें वैशेषिकका जो गूढ़ अभिप्राय था, वह अभिप्राय इत्यादि स्वीकार करनेसे ही विपर्यस्त हुआ है। इससे परमाणु कारणवाद अयुक्त है अर्थात् परमाणु ही जो परम कारण है, सो नहीं। मन्वादि ऋषियोंने प्रधान कारणवादके किसी किसी अंशको वैदिक और सत्कार्यवादि अंशको उपजीवनार्थ माना है। किन्तु परमाणु कारण शब्दका कोई भी अंश किसी भी ऋषिने ग्रहीत नहीं किया है। इस कारण वेदवादियोंके निकट परमाणुवाद अत्यन्त आदरणीय है।

वेदान्तदर्शन, वैशेषिकदर्शन और अणु शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

परमाणुवाद (सं० पु०) न्याय और वैशेषिकका यह सिद्धान्त कि परमाणुओंसे जगत्‌की सृष्टि हुई है।

परमाणु देखो।

परमाणुवादी (सं० पु०) परमाणुओंके योगसे सृष्टिकी उत्पत्ति माननेवाला।

परमाण्वङ्गक (सं० पु०) परमाणुरङ्गं यस्य, ततः कप्। ईश्वर, विष्णु। परमाणु द्वारा जगत्‌की सृष्टि होती है, इसीसे परमाणु ईश्वरका अंग माना गया है।

परमात्मक (सं० वि०) परमात्मन् स्वार्थे-कन्। परमात्मा-स्वरूप।

परमात्मन् (सं० पु०) परमः केवल आत्मा। परब्रह्म, ईश्वर। पर्याय—आपोज्योति, चिदात्मा।

"परमात्मा परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः।
कारणं कारणानाञ्च श्रीकृष्णो भगवान् स्वयं॥"

(ब्रह्मवै० प्रकृ० २३ अ०)

परमात्मा-विषयमें दर्शनसमूहमें मतभेद देखा जाता है। उपनिषद् और दर्शनसमूहमें यह जिस भावसे आलोचित हुआ है, वही यहां पर संक्षेपमें लिखा जाता है।

परमात्माका विषय कहनेसे पहले आत्माके विषयकी पर्यालोचना करना आवश्यक है।

उपनिषदादि प्राचीन ग्रन्थोंमें केवलमात्र 'आत्म' शब्द द्वारा ही विभिन्न आत्माका विषय वर्णित हुआ है।

दार्शनिक लोग प्रधानतः जीवात्मा और परमात्मा यह दो आत्माको स्वीकार करते हैं। कई जगह वेदान्तिकोंने केवल 'आत्मा' शब्द द्वारा परमात्माको ही समझानेकी चेष्टा की है। परमात्मा ही वेदान्तिकोंके परब्रह्म हैं।

जीवात्माको जाने बिना परमात्माका स्वरूप जानना कठिन है। इस कारण पहले जीवात्माका स्वरूप ही लिखा जाता है।

सदानन्द योगीन्द्रने वेदान्तसारमें लिखा है, 'कौन कौन व्यक्ति किस किस वस्तुको जीवात्मा मानते हैं वह कहते हैं—

मूढ़ व्यक्ति श्रुतिका प्रमाण दिखा कर कहते हैं, "आत्मा ही पुत्र हो कर जन्म लेती है, अपनेमें जैसी प्रीति है पुत्रमें भी वैसी प्रीति होती है।" फिर उनका कहना है कि पुत्रकी पुष्टि होनेसे हमारी पुष्टि होगी अथवा पुत्रके नष्ट होनेसे हम भी नष्ट होंगे। इस प्रकार 'पुत्र ही आत्मा है' ऐसा वे कहते हैं।

कोई कोई चार्वाक 'अन्नरसका विकार पुरुष ही आत्मा है' इस श्रुतिका प्रमाण दे कर स्थूलशरीरको ही जीवात्मा मानते हैं। उनका कहना है, कि पुत्रको फेंक देने पर भी वह प्रदीप्त गृहसे भागते देखा जाता है। किन्तु सभी यह समझते हैं कि 'मैं स्थूल हूं' मैं कृश हूं' इत्यादि। फिर किसी चार्वाकका कहना है, 'मैं अन्ध हूं', मैं बधिर हूं, इत्यादि सभी समझते हैं।' फिर इन्द्रियोंके अभावमें शरीर अचल हो जाता है। इसके सिवा 'वे सब इन्द्रियां प्रजापतिके निकट गई थीं' इत्यादि श्रुतिप्रमाण भी है। इस युक्तिके बलसे इन्द्रियगण ही आत्मा हैं।'

फिर कोई चार्वाक 'शरीरादिसे भिन्न प्राणमय अन्तरात्मा है' इस श्रुतिप्रमाण द्वारा और 'प्राणके अभावसे इन्द्रियोंकी क्रियाका अभाव होता है' इस युक्ति द्वारा प्राणको ही आत्मा कहते हैं।

कोई चार्वाक मनको ही आत्मा बतलाते हैं। वे यह श्रुतिप्रमाण देते हैं, "शरीर इन्द्रिय और प्राणसे भिन्न मनोमय अन्तरात्मा है।" इसके सिवा यह भी युक्ति देते हैं, कि मनके सुप्त (निस्तत्त्व) होने पर प्राणादिका भी अन-

होता है। वे लोग, "मैं सद्गुणविशिष्ट हूं, मैं विज्ञप्ति विशिष्ट हूं" इत्यादि, ऐसा समझाते हैं।

कोई लोग विज्ञान या बुद्धिको ही आत्मा मानते हैं। उनकी युक्ति यह है 'कर्त्ताके अभावमें करणका अभाव होता है', इत्यादि।

प्रभाकर मतावलम्बी मीमांसकों और नैयायिकोंका कहना है, 'शरीरादिसे भिन्न आनन्दमय अन्तरात्मा है' इस श्रुतिप्रमाण द्वारा और 'सुषुप्तिकालमें अज्ञानताका बुद्धिका भी लय होता है' और "मैं अज्ञ हूं, मैं ज्ञानी हूं" इत्यादि अनुभव द्वारा अज्ञान ही आत्मा है।

फिर चार्वाकोंमेंसे कोई स्थूल शरीरको, कोई इन्द्रिय समूहको कोई प्राणको कोई "मैं अज्ञ हूं मैं ज्ञानी हूं" इत्यादि अनुभव द्वारा अज्ञानको ही आत्मा कहते हैं।

कुमारिल मतावलम्बी मीमांसकोंके मतसे अज्ञान द्वारा उपहित चैतन्य ही आत्मा है। वे युक्तिप्रमाण इस प्रकार देते हैं, 'प्रज्ञान घनस्वरूप आनन्दमय ही आत्मा है।' उनकी युक्ति यों है 'सुषुप्तिकालमें जब सभी लीन हो जाते हैं, तब अज्ञानोपहित चैतन्यका प्रकाश होता है।'

किसी किसी बौद्धके मतसे शून्य ही आत्मा है। वे यह श्रुतिप्रमाण देते हैं 'यह जगत् पहले असत् था' और युक्ति इस प्रकार [illegible] है 'सुषुप्ति कालमें सभीका अभाव होता है। उनका अनुभव है कि 'सुष निद्रामें मेरा अभाव हुआ था, सुषुप्तिसे उत्थित व्यक्तिमात्रको ही इस प्रकार उपलब्धि हुआ करती है।'

इस प्रकार विभिन्न मतावलम्बियोंका निर्दिष्ट पुत्र या इन्द्रिय या प्राण अथवा मन बुद्धि, अज्ञान वा अज्ञान द्वारा उपहित चैतन्य अथवा शून्यता इनमेंसे कोई भी जीवात्मा नहीं है। वेदान्तियोंके मतमें पुत्रादिसे ले कर शून्य तक सभीसे ही यथायथ भिन्न, शुद्ध बुद्ध मुक्त और सत्यस्वरूप प्रत्यक् चैतन्य है, वही जो जीवात्मा है।

नास्तिकोंका कहना है, कि स्थूल शरीर ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी आत्मा नहीं है। लेकिन यह अनात्मवाद अतिशय भ्रान्त है। सभी शास्त्रोंमें अनात्मवाद निन्दित और खण्डित हुआ है। अतः नास्तिकमत पूर्वोक्तरूपसे आत्माका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते।

रामानुजसम्प्रदायके मतसे चित् और ईश्वरको क्रमशः जीवात्मा और परमात्मा माना है। इस मतमें 'चित्' जीव शब्द, आत्मा अपरिच्छिन्न, निर्मल, ज्ञानस्वरूप, नित्य और अनादि कर्मरूप अविद्यावेष्टित, भगवदाराधना और तत्पदप्राप्त्यादि जीवका स्वभाव है। ईश्वर जगत्स्रष्टा, अन्तर्यामी और अपरिच्छिन्न ज्ञान, ऐश्वर्य और वीर्यादिगुण शाली हैं। परमात्माके साथ जीवका भेद, अभेद और भेदाभेद यही तीन हैं। 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इत्यादि श्रुतिमें जीवात्मा और परमात्माके शरीरात्मभावमें किसी किसीने अभेद बतलाया है, परन्तु इससे द्वारा अभेद प्रतीत नहीं होता। जो जीवात्मा और परमात्माको एक मानते हैं, वे नितान्त मूढ़ हैं। श्रुतिमें जहां ईश्वरको निर्गुण बतलाया है, उसका तात्पर्य यह कि वे प्राकृत जनकी तरह रागद्वेषादि गुणसम्पन्न नहीं हैं। रामानुजने मायोक्त युक्तका ऐसा मत संस्थापन कर संक्षिप्तभावसे एक भाष्यका प्रणयन किया है।

पूर्णप्रज्ञदर्शनके मतसे—जीवात्मा और परमात्मा ये दो हैं।

नकुलीशपाशुपतदर्शनके मतसे—परमकारुणिक महादेव ही परमेश्वर हैं और जीव पशु बन कर अभिहित हुए हैं। यहां परमेश्वर परमात्मा और जीव जीवात्मा पदवाच्य है।

शैवदर्शनके मतसे शिव ही परमेश्वर या परमात्मा हैं और जीवगण पशु। यही पशु जीवात्मा पदवाच्य है। नकुलीशपाशुपतदर्शनवालोंकी परमात्माके कर्मादिकी निरपेक्ष कर्त्ता नहीं मानते। उनका कहना है कि जीवगण जैसा कर्म करते हैं परमेश्वर उन्हें वैसा ही फल देते हैं।

प्रत्यभिज्ञादर्शनके मतसे जीवात्मा और परमात्मामें कोई भेद नहीं माना है। उनका कहना है, कि जीवात्मा ही परमात्मा है और परमात्मा ही जीवात्मा। लेकिन जो परस्पर भेदज्ञान हुआ करता है, वह भ्रममात्र है। जीवात्माके साथ परमात्माका जो अभेद है वह अनुमान-सिद्ध है। इस दर्शनके मतसे प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होनेसे जीवात्मा और परमात्माका अभेद ज्ञान हुआ करता है। इस मतमें परमात्मा स्वतः प्रकाशमान है

अर्थात् आपसे आप प्रकाश पाते हैं। कोई कोई इस मत पर आपत्ति करते हुए कहते हैं, कि जीवात्मा और परमात्माका यदि अभेद कल्पित हो और परमात्मा स्वतः प्रकाशमान हो, तो जीवात्मा भी स्वतः प्रकाशमान क्यों न होगा? इस प्रकार आपत्तिकी मीमांसा करते हुए उन्होंने जीवात्मा और परमात्माका अभेद इस मतमें संस्थापित किया है।

रसेश्वरदर्शनके मतमें भी महेश्वरको परमेश्वर और जीवात्माको परमात्मा माना है।

वैशेषिकदर्शनके मतसे आत्मा दो प्रकारकी है, जीवात्मा और परमात्मा। जिसके चैतन्य है, उसे आत्मा कहते हैं। यदि आत्माको स्वीकार न करें, तो किसी इन्द्रिय द्वारा कोई भी कार्य नहीं होता। मनुष्य, कीट, पतङ्ग आदि सभी जीवात्मा पदवाच्य हैं। परमात्मा एकमात्र परमेश्वर हैं। न्यायदर्शनमें भी यह मत समर्थित हुआ है।

सभी उपनिषद् और वेदान्तशास्त्रमें इसका विषय जिस प्रकार पर्यालोचित हुआ है, उसी पर थोड़ा विचार करना आवश्यक है। आत्मोपनिषत् कहते हैं कि पुरुष तीन प्रकारका है, बाह्यात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। त्वक्, अस्थि, मज्जा, लोम, अङ्गुलि, अङ्गुष्ठ, पृष्ठवंश, नख, गुल्फ, उदर, नाभि, मेढ्र, कटी, ऊरु, कपोल, भ्रू, ललाट, बाहु, पार्श्व, शिर, धमनी, नेत्रद्वय कर्णद्वय तथा जिसकी उत्पत्ति और विनाश है, वही बाह्यात्मा है।

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, काम, मोह और विकल्पनादि एवं स्मृति, लिङ्ग, उदात्त, अनुदात्त, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, स्खलित, गर्जित, स्फुटित, मुदित, नृत्य, गीत, वादित्र और प्रलयपर्यन्त, जो श्रवण करता है, जो घ्राण करता है, जो आस्वादन लेता है, जो समझता है, जो समझ बूझ कर काम करता है, वही अन्तरात्मा है।

जो प्रणव और उपासनाके योग्य हैं, प्राणायाम, प्रत्याहार, समाधि, योग, अनुमान और जो अध्यात्मचिन्ताका विषय है, वही परमात्मा है।

रामपूर्वतापनीयके मतसे आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा यही चार प्रकारकी आत्मा है। टीकाकार नारायणके मतसे आत्मा लिङ्ग, अन्तरात्मा जीव, परमात्मा ईश्वर और ज्ञानात्मा ब्रह्म अर्थात् ये चार बिन्दु, नाद, शक्ति और शान्तात्मक हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद्में परमात्माका विषय इस प्रकार लिखा है—आत्मा, परमात्मा या ब्रह्म ये सब एक ही अर्थमें व्यवहृत होते हैं। आत्माकी सर्वदा उपासना करो, आत्माका अन्वेषण करनेसे सबोंका अन्वेषण किया जायगा। आत्मतत्त्व सबोंसे अपेक्षा श्रेष्ठ है, इसीसे उसका अन्वेषण विधेय है। आत्मज्ञानलाभके लिये मैं ही ब्रह्म हूं, ऐसा समझना होता है।

'आत्मा सभी भूतोंमें निगूढ भावसे रहती है' इत्यादि ब्राह्मणवाक्य परमात्माका ही जीवत्व प्रकाश करता है। वाक् पाणि प्रभृति सभी इन्द्रिय सुखदुःखादि कर्मफल हैं और इन्द्रियाधिष्ठात्री सभी देवता हैं, यहां तक कि ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त समस्त प्राणी परमात्मासे उत्पन्न होते हैं। यह जो स्थावर जङ्गमादि समस्त जगत् है, अग्निस्फुलिङ्गकी तरह जिससे रात दिन निकलता है, जिसमें विलीन होता है और स्थितिकालमें जल-बिम्बवत् जिसमें जा कर रहता है, वही आत्मा है। इस आत्माकी सत्ताके बलसे ही प्राणकी सत्ता है, नहीं तो प्राण किसी भी चालनसे आत्मलाभ नहीं कर सकता। जो सर्वज्ञ हैं, विशेषरूपसे सर्वविद्, असङ्ग और सब प्रकारके संक्रमणोंसे रहित हैं, जिस अक्षरपुरुषके शासनसे सूर्य और चन्द्र रात दिन चलते हैं, जो अन्तर्यामिरूपमें सभी भूतोंमें रह कर सभी भूतोंका वहन करते हुए भी स्वयं उनके अतीत हैं, वे ही जन्ममरणादि शून्य सर्वव्यापी आत्मा हैं और सभी संसारके विधारक सेतुस्वरूप हैं। उसी आत्माने सभी संसारको वशीभूत कर रखा है और जो सबोंके ईश्वर तथा नियन्ता हैं, जो सब प्रकारके पाप, ताप, जरा और मृत्यु विहीन हैं, उन्होंने ही तेजकी सृष्टि की है। इस जगन्मण्डलकी सृष्टिके पहले एकमात्र आत्मा ही थी। उसी आत्मासे सभी उत्पन्न हुए हैं। (बृहदारण्यक)

कोई कोई कहते हैं "एतस्मादात्मनः" इस श्रुतिमें भी संसारी आत्मा (जीवात्मा)-से ही समस्त भूतोंकी उत्पत्ति बतलाई गई है। जो ऐसा कहते हैं,

उनका मत अभ्रान्त नहीं है। क्योंकि श्रुतिमें ही लिखा है 'स एषोऽन्तर्हृदय आकाश' यहां आकाश शब्दसे परमात्माका बोध हुआ है, अतएव यहां आकाशका अर्थ परमात्मा है। इसी परमात्मासे सभी उत्पन्न हुए हैं। यदि कहो कि आकाश शब्दका अर्थ परमात्मा न कर जिससे कहा जीव अर्थ ग्रहण किया जाय तो क्या दोष होता? इसके उत्तरमें श्रुतिने कहा है, 'जीव तदा अभूत्' जीव (जीवात्मा) उस समय अर्थात् सृष्टिकालमें कहां था? जब कुछ भी नहीं था, एकमात्र आत्मा ही तो थी। श्रुतिमें भी लिखा है "स एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिन् शेते" हृदयाभ्यन्तरस्थ जो आकाश है उसीमें उस समय निद्रित था। इसीसे जानना होगा कि जीव (जीवात्मा) कभी भी अपने ऊपर शासन नहीं कर सकता। सुतरां आकाश शब्दका अर्थ परमात्मा ही करना होगा। जीव सुषुप्तिकालमें सत्सम्पन्न हो कर मिल जाता है। श्रुतियोंकी पर्यालोचना करनेसे यह साफ साफ प्रतीत होता है कि यहां आकाश शब्दका अर्थ परमात्मा है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

संसारी जीव (जीवात्मा)से विभिन्न निरञ्जन सार को सृष्टि, स्थिति और संहार करनेकी शक्ति नहीं है। ब्रह्मविद्याको लक्ष्य किया है, "ब्रह्म ते ब्रुवाणि ब्रह्म ज्ञापयिष्यामि" के मर्ममें। तुम ब्रह्मका विषय कह कर ब्रह्म बतलाते थे। इसी लक्ष्य किया है, कि ब्रह्म (परमात्मा) सर्वलोकशास्तादिगुणविशिष्ट, नित्य शुद्धबुद्ध ज्ञानरूप और अप्रमेय हैं। कोई कोई इस पर आपत्ति करते हुए कहते हैं, कि ब्रह्म जब जीवसे अत्यन्त उत्कृष्ट है तथा जीव ब्रह्मकी अपेक्षा अत्यन्त निकृष्ट है तब 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ही सर्वशक्तिमान ब्रह्म हूं, ऐसा कहना या इसी भावमें उपासना करना किसी हालतसे जीवका सङ्गत नहीं हो सकता। इस प्रकारकी आपत्ति युक्तिसङ्गत नहीं है। कारण श्रुतिसे जाना जाता है कि 'परमात्माने' प्रथमतः क्षित्यप्तेजोमरुदादिका निर्माण कर उनमें अभ्यन्तर प्रवेश किया, वे अर्थ क्रमसे अनुरूप हुए।' 'परमात्मा सभी वस्तुओंकी सृष्टि और नाम धारण कर आप उनमें रहने लगे', इत्यादि मन्त्रोंमें सृष्टिविषयक वाक्य कहे गये हैं। परमात्माने इन सभीकी सृष्टि करके और आप उनमें प्रविष्ट हो कर जीव नाम धारण किया है। परमात्माने आकाशादि पञ्चभूतोंमें जीवरूपसे प्रविष्ट हो कर नाम (संज्ञा) और रूप (मूर्त्ति)का प्रकाश किया है।

जब प्रायः सभी श्रुतियोंने ब्रह्मको आत्मा बतलाया है, 'सर्वभूतान्तरात्मा' यहां भी आत्मा शब्दसे ब्रह्मका ही उल्लेख किया है और श्रुतिने अभिन्न भावसे जब परमात्मा अतिरिक्त संसारी आत्माके अभावकी सूचना की है, तब "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं यह कह कर आत्माकी उपासना करना असङ्गत नहीं है। ऐसे उत्तर पर कोई कोई आपत्ति करते हैं, कि जीव और ब्रह्म अर्थात् जीवात्मा और परमात्माका एकत्व ही यदि प्रकृत शास्त्रार्थ है, तो परमात्माको भी सांसारिक सुख दुःखादिका भोग करना होता है यह बात भी अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी। ऐसा होनेसे ब्रह्मज्ञानोपदेशक सभी शास्त्र निरर्थक हो जाते हैं। अग्निकी सुख दुःखादि द्वारा जीवात्मा लिप्त नहीं होती है स्फटिकमणिवत् स्वच्छरूप रहते हैं। इस विषय पर कोई कोई कहते हैं, कि परमात्मा सर्वभूतोंमें प्रवेश करते समय अथवा लिङ्ग आदि रूप परिणाम कर विज्ञानात्मा धारण करके जीवात्माको प्राप्त होते और वह जीवात्मा परमात्मासे भिन्न और अभिन्न उभयरूपोंमें प्रतीयमान होते हैं। इसलिये अभिन्न करनेसे तो 'अहं ब्रह्म' अर्थात् "मैं ब्रह्म ही हूं" यह ज्ञान नहीं होता और सांसारिक आत्मासे भी भिन्न करनेसे तो परमात्माकी उपासना की जाती है अभेद होनेसे उपासना नहीं हो सकती।

श्रुतिमें 'नेति नेति' अर्थात् यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है, यह कह कर सभी प्रकारके औपाधिक विविध धर्म परित्यागपूर्वक परमात्माका स्वरूप निर्णीत हुआ है। (बृहदारण्यकोपनि०)

श्रुतिमें जहां परमात्माका विषय उल्लिखित हुआ है वहां वह प्रायः सभी प्रधान ब्रह्मबोधक माने गये हैं, इस कारण इनका विषय और अधिक आलोचित नहीं हुआ। ब्रह्म देखो।

वेदान्तदर्शनमें लिखा है कि इन्द्रियाश्रित शरीरके अध्यक्ष और कर्मफलभोक्ता जीव नामक आत्मा है,

इसे भी जीवात्मा कह सकते हैं। यह जीवात्मा आकाशादिकी तरह ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है अथवा ब्रह्मकी तरह नित्य है, इस प्रकार संशय हो सकता है। कारण एतदर्थप्रतिपादक विभिन्न श्रुति देखनेमें आती है। किसी किसी श्रुतिने अग्निस्फुलिङ्गका दृष्टान्त दे कर कहा है, कि जीवात्मा परब्रह्म (परमात्मा)-से उत्पन्न हुआ है। फिर अन्य श्रुतिका कहना है, कि अविकृत परब्रह्म ही स्वसृष्टशरीरमें प्रविष्ट हैं और जीवभावसे विराजित हैं तथा श्रुतिसे जाना जाता है कि एक विज्ञानसे सभी विज्ञान होते हैं। सभी वस्तु ब्रह्मप्रभाव नहीं होनेसे एक विज्ञानमें सभी विज्ञान नहीं हो सकते। अविकृत परमात्मा ही जो शरीरमें जीवभावसे विराजित हैं, इसका जाननेका कोई उपाय नहीं है। क्योंकि परमात्मा और जीवात्मा सम लक्षणके हैं। परमात्मा निष्पाप, निष्क्रिय निर्धर्मक हैं। जीव उसके सम्पूर्ण विपरीत हैं। विभाग रहनेसे ही जीवका विकारत्व (जन्ममरण) जाना जाता है। आकाशादि जो कुछ विभक्त वस्तु हैं वे सभी विकार अर्थात् जन्य-पदार्थ हैं। जीव पुण्यपापकारी, सुखदुःखभोगी और प्रति शरीरमें विभक्त है, इसीसे जीवकी भी जगदुत्पत्ति कालमें उत्पत्ति हुई थी, ऐसा कहना ही सङ्गत है। फिर भी देखो, जैसे अग्निसे छोटे विस्फुलिङ्ग निकलते हैं, वैसे परमात्मासे भी जीवात्मा उत्पन्न होता है, फिर प्रलयकालमें उसीमें लीन हो जाता है। इस प्रकार अर्थप्रतिपादकश्रुति द्वारा यह जाना जाता है, कि भोगात्मा अर्थात् जीवात्माकी सृष्टि उपदिष्ट हुई है। फिर सैकड़ों श्रुतियोंसे जाना जाता है, कि जिस प्रकार प्रदीप्त पावकसे पावकरूपी सहस्र सहस्र स्फुलिङ्ग जन्म लेते हैं, उसी प्रकार एक परमात्मासे परमात्मसमानरूपी विविध पदार्थ उत्पन्न होते और फिर उसी परमात्मामें लीन हो जाते हैं। इस श्रुतिमें समानरूपी यह शब्द रहनेसे जीवात्माकी उत्पत्ति और विनाश कहा गया है, ऐसा समझना होगा। स्फुलिङ्ग अग्नि समानरूपी हैं, जीवात्मा भी परमात्मा समानरूपी है अर्थात् दोनों ही चेतन हैं, सुतरां समान-रूपी हैं। इन सब श्रुतिप्रभृति द्वारा परब्रह्म (परमात्मा)-से जीव (जीवात्मा)की उत्पत्ति मानी गई है।

परमात्मा निर्लेप और निर्गुण हैं। जिस प्रकार पद्म-पत्र पर जल रहनेसे भी वह जलमें लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार गुणातीत परमात्मा भी कर्मफलमें लिप्त नहीं होते। जो कर्मात्मा अर्थात् कर्माश्रय जीव हैं, उन्हींका बन्धन और मोक्ष हुआ करता है। जलमें सूर्य प्रतिबिम्ब जिस प्रकार बिम्बभूत सूर्यका आभास (प्रतिबिम्ब) है, उसी प्रकार जीव भी परमात्माका आभास है, ऐसा जानना होगा। जिस हेतु आभास है, उसी हेतु जीव साक्षात् परमात्मा नहीं है, पदार्थान्तर भी नहीं है।

विस्फुलिङ्ग जिस प्रकार अग्निका अंश है, जीव (जीवात्मा) भी उसी प्रकार परमात्माका अंश है। परमात्मा साकार है या निराकार? इसके उत्तरमें वेदान्तने कहा है, कि परमात्मा निराकार या रूपादि-रहित हैं। कारण, इस परमात्मप्रतिपादक श्रुतिनिचय-ने यही अर्थ समर्थन किया है। वे स्थूल नहीं हैं, सूक्ष्म नहीं हैं, ह्रस्व वा दीर्घ भी नहीं हैं, अशब्द, अस्पर्श, अरूप और अव्यय हैं, प्रसिद्ध आकाश नाम और रूपके निर्वा-हक हैं, नाम और रूप जिनके भीतर हैं वे ही पर-मात्मा हैं। वे दिव्य, मूर्त्तिहीन पुरुष, अर्थात् पूर्ण हैं। सुतरां बाहर और भीतर विराजमान हैं, वे अज (जन्मरहित) हैं, वे अपूर्व, अनपर, अनन्तर और अबाह्य हैं। श्रुतिने यह भी कहा है, कि परमात्मा निर्विशेष, एकाकार और केवल-चैतन्य हैं। जैसे, लवण-खण्ड अनन्तर, अबाह्य, सम्पूर्ण और रसघन है, उसी प्रकार परमात्मा भी अनन्तर, अबाह्य, पूर्ण और चैतन्य घन (केवल चैतन्य) हैं। इसमें यही कहा गया, कि परमात्माके अन्तर्बाह्य नहीं है, चैतन्य भिन्न अन्यरूप वा आकार नहीं है। निरवच्छिन्न चैतन्य ही परमात्मा-का सार्वकालिक रूप है।

श्रुतिसे जाना जाता है, कि परमात्माके दो रूप हैं, मूर्त्त और अमूर्त्त। परमार्थ रूपमें वे अरूप हैं और उपाधिके अनुसार उनका आरोपित रूपमूर्त्त और अमूर्त्त है। मूर्त्त मूर्त्तिमान अर्थात् स्थूल है और अमूर्त्त तद्रहित अर्थात् सूक्ष्म। पृथिवी, जल और तेज ये भूतत्रय ब्रह्मके मूर्त्तरूप हैं और वायु तथा आकाश ये दोनों

अमूर्त्तरूप। मूर्त्तरूप मर्त्य अर्थात् मरणशील है और अमूर्त्तरूप अमृत अर्थात् अविनाशी।

श्रुतियोंमें परमात्माके अतिरिक्त जीव अर्थात् जीवात्माका विषय उल्लिखित है और अद्वैतबोधक श्रुति भी है। महामति शङ्कराचार्य परमात्मातिरिक्त पृथक् जीवात्माका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। (वेदान्तदर्शन)

शङ्कराचार्यने आत्मबोधमें लिखा है—जो सूक्ष्म स्थूल, ह्रस्व और दीर्घ नहीं हैं, जिनके जरा व्यय रूप गुण और वर्ण नहीं है वे ही परमात्मा हैं। जिन के किसी प्रकारका आकार नहीं है, जिनकी ज्योतिसे ज्योतिष्मान् हो कर सूर्यादि ज्योतिष्क प्रकाश पाते हैं, जिन्हें सूर्यादि कोई भी प्रकाशित नहीं कर सकते और जिनसे यह अखिल ब्रह्माण्ड दीप्ति पाता है वही परमात्मा है। जिस प्रकार प्रतप्त लौहपिण्ड अन्तर और बाह्यमें प्रदीप्त हो कर आलोक प्रदान करता है उसी प्रकार परमात्मा बाह्य और अभ्यन्तरमें सभी जगत्को प्रकाशित करते और स्वयं प्रकाशित होते हैं। परमात्मा भिन्न इस अनन्त ब्रह्माण्डके प्रकाशक और कोई भी नहीं है। परमात्मा जगत्के अतीत हैं, अतएव परमात्मा भिन्न और कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार मरुभूमिमें मरीचिका होनेसे जलका भ्रमज्ञान होता है, किन्तु वह जल जिस प्रकार मिथ्या है, उसी प्रकार परमात्माभिन्न जो कुछ है वे सभी मिथ्या हैं। हम लोग जो कुछ देखते और सुनते हैं, वही परमात्माका स्वरूप है, परमात्मा भिन्न और कुछ भी नहीं है। तत्त्वज्ञान होनेसे ही उस सच्चिदानन्दमय अद्वय परमात्माका लाभ होता है। तत्त्वज्ञान भिन्न परमात्मप्राप्तिका कोई उपाय नहीं। जिनके ज्ञानचक्षु उन्मीलित हुआ है वे ही परमात्माको देख सकते हैं। जिस प्रकार सुवर्णको अग्निमें उत्तप्त करनेसे उसका मल निकल जाने पर वह उद्दीप्त हो कर स्वयं प्रकाश पाता है, उसी प्रकार जीव भी श्रवणमननादि द्वारा ज्ञानाग्नि उद्दीप्त हो कर अज्ञानरूप मलके विनाश होने पर जो वह स्वयं प्रकाशित होता है। उसी समय जीव परमात्मस्वरूप प्राप्त करता है। (आत्मबोध)

परमात्मतत्त्वनिर्णय अति दुरूह है, क्योंकि श्रुतिमें कहा है "यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" अर्थात् वाक्य जहां जा नहीं सकता और मनके साथ लौट आता है, इस कारण वाक्यसे परमात्माका निर्णय नहीं किया जा सकता।

मनीषियोंने श्रुतिसमूहका जैसा अर्थ समझा है, परमात्मविषयमें भी वैसा ही अवधारण किया है।

जीवात्मन् और ब्रह्म शब्द देखो।

परमाचार्य—षट्पूजनपद्धतिके रचयिता।

परमाद्वैत (सं॰ पु॰) परम अद्वैत ब्रह्म। १ भेदरहित परमात्मा। २ विष्णु।

'नमस्ते ज्ञानरूपाय नमस्ते ज्ञानदायक।

नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम॥' (गरुड़पुराण)

परमानन्द (सं॰ पु॰) परमः सर्वोत्कृष्ट आनन्दः। ब्रह्मानन्दीय उत्कृष्ट आनन्दात्मक परमात्मा। परमानन्द ही परमात्मा है। "परमानन्दमाधव।" (गीत०) उपनिषदादिमें ब्रह्मको ही परम आनन्दस्वरूप माना है।

परमानन्द—इस नामके कितने संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम पाये जाते हैं। यथा—

१ अमरकोषमालाके रचयिता।

२ कृष्णमल्लन नामक स्वरचित काव्यप्रकाशके टीकाकार।

३ मकरन्दकारिका नामक ग्रन्थके रचयिता।

४ मेघदूतटीकाके प्रणेता।

५ वेदान्तसारटीकाकर्त्ता।

६ सांख्यतत्त्वटीकाके प्रणेता।

७ एक जैन ग्रन्थकार। इन्होंने मलप्रणीत 'कर्मविपाक' नामक ग्रन्थकी एक संस्कृत टीका प्रणयन की है। ये अपने ग्रन्थके आदिमें गुरुका इस प्रकार परिचय दे गये हैं—उदयी मलधारिसूरि उनके शिष्य शान्तिसूरि और अभयदेवसूरि, अभयदेवसूरिके शिष्य परमानन्द। लोग इन्हें यशोदेव कहा करते थे।

८ एक क्षत्रिय राजा। इन्होंने सम्राट् अकबरशाहसे मालवप्रदेशका शासन-भार पाया था।

९ मेघोदयके पुत्र। इन्होंने प्रयमाधिकमाला नामक एक ग्रन्थकी रचना की है।

परमानन्दघन—एक विख्यात पण्डित, चिदानन्द ब्रह्मेन्द्र सरस्वतीके शिष्य। इन्होंने प्रयोगरत्नावली, ब्रह्मसूत्रवृत्ति और स्मृतिमहोदधि नामक तीन ग्रन्थ बनाये हैं।

परमानन्द चक्रवर्ती—१ काव्यप्रकाशविस्तारिका नामक काव्यप्रकाशकी टीकाके रचयिता। इन्होंने इस ग्रन्थमें ईशान नामक अपने गुरुका परिचय दिया है।

२ सर्वानन्दके पुत्र और देवानन्द तथा भयानन्दके भ्राता। इन्होंने महिम्नस्तवटोका नामक एक टीका प्रणयन की है।

परमानन्ददास—व्रजवासी एक हिन्दी-कवि। कृष्णानन्द व्यासदेवकृत रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम नामक ग्रन्थमें इनका नामोल्लेख देखा जाता है।

परमानन्ददास—श्रीचैतन्यसम्प्रदायी वैष्णव कवि कर्णपूरका प्रकृत नाम परमानन्ददास था। गौराङ्ग महाप्रभु इन्हें पुरोदास कहा करते थे। इनका जन्म १४४६ सम्वत्‌को हुआ था। इनके पिताका नाम था शिवानन्द सेन जो गौराङ्गदेवके एक परमभक्त थे। परमानन्दकी उम्र जब सात वर्षकी थी, उसी समय वे अपने पिताके साथ महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये चले गए थे। महाप्रभुने कृपा दरसा कर अपने श्रीचरणका अङ्गुष्ठ बालकके मुखमें दिया था। परमानन्दने गौराङ्गदेवका पदाङ्गुष्ठ चाट कर अपूर्व कवित्वशक्ति पाई थी। चैतन्यचरितामृतग्रन्थमें लिखा है, कि इस समय महाप्रभुने परमानन्दसे कृष्णलीलाका वर्णन करने कहा। कहते हैं, कि बालक परमानन्दने प्रभुका आदेश पाते ही आर्य्याछन्दमें एक श्लोककी रचना कर महाप्रभुको सुनाया था।

इनके बनाये हुए अनेक संस्कृत ग्रन्थ वैष्णवसमाजमें प्रचलित हैं, यथा—आर्याशतक, चैतन्यचरितामृत-महाकाव्य, चैतन्यचन्द्रोदयनाटक, आनन्दवृन्दावनचम्पू, कृष्णलीलोद्देशदीपिका, गौरगणोद्देशदीपिका और अलङ्कारकौस्तुभ।

परमानन्ददेव—संस्कृतरससागर नामक ग्रन्थके प्रणेता।

परमानन्दनाथ—भुवनेश्वरीपद्धति नामक ग्रन्थके रचयिता।

परमानन्दपाठक—कर्पूरस्तवदीपिका नामक ग्रन्थके प्रणेता।

परमानन्दभट्टाचार्य—महाभारत टीकाके प्रणेता।

परमानन्दमिश्र—१ योगवाशिष्ठसारोद्धारके रचयिता। २ तन्नामक मेलको प्रकृति। मेल देखो।

परमानन्दयोगीन्द्र—परमानन्दलहरीस्तवके रचयिता।

परमानन्दराय—चन्द्रद्वीप देखो।

परमानन्दलक्षापुराणीक—एक हिन्दी-कवि। बुन्देलखण्डके अन्तर्गत अजयगढ़में १८३० ई०में इनका जन्म हुआ था। नायक-नायिकाका प्रणयघटित 'नखशिख' नामक ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ है।

परमान्न (सं० क्ली०) परमं देवपितृप्रियत्वात् श्रेष्ठं अन्नं। पायस, खीर। यह देवता और पितरोंका अत्यन्त प्रिय है, इसीसे इसको परमान्न कहते हैं। इसको प्रस्तुत प्रणाली भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखी है,—दूध पाक हो जाय, तब उसमें धुला हुआ तण्डुल डाल दे। पीछे उसमें घृत और शर्करा मिलानेसे परमान्न तैयार होता है। गुण—दुर्जर, बल और धातुपुष्टिकर, गुरु, विष्टम्भी, पित्त, रक्त, कफ, अग्नि और वायुनाशक।

परमापूप (सं० क्ली०) परमं अपूपं। स्वर्गादिकम-मावन अपूपभेद।

परमामुद्रा (सं० स्त्री०) त्रिपुरादेवीको पूजाङ्ग मुद्राभेद। तन्त्रसारमें इस मुद्राका विषय इस प्रकार लिखा है—दोनों हाथोंकी मध्यमाको मध्यमामें रख कर दोनों हाथोंकी कनिष्ठाद्वयको मध्यमाद्वय द्वारा आबद्ध करते हैं और दोनों तर्जनीको दण्डाकारमें करके मध्यमाद्वयके ऊपरी भाग पर रखनेसे यह मुद्रा बनती है। यह परमामुद्रा सब संक्षोभकारिणी है। इस मुद्रासे त्रिपुरादेवीका आवाहन करना होता है।

त्रिपुराकी पूजामें एक और प्रकारको परमामुद्रा लिखी है जिसे योनिमुद्रा भी कहते हैं। इसका प्रकार यों है—दोनों मध्यमाको वक्र कर उसके ऊपर तर्जनी रखनी होती है। पीछे अनामिका और कनिष्ठाको मध्यगत करके अङ्गुष्ठ द्वारा परिपीड़न करनेसे यह मुद्रा होती है।

परमायु (हिं० स्त्री०) परमायुस् देखो।

परमायुष (सं० पु०) परमं आयुर्यस्य, पृषोदरादित्वात् अच् समासान्तः। असनवृक्ष, विजयसारका पेड़।

परमायुस (सं० क्ली०) परमं आयुः कर्मधा०। जीवित-काल। "शतायुर्वै पुरुषः" (श्रुति) मानवकी परमायु सौ वर्ष है। शब्दमालामें परमायुकाल इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है,—१२० वर्ष ५ दिन मानवका परमायुकाल और हाथीका भी उतना ही, ३२ वर्ष अश्वका, १२ वर्ष कुक्कुरका, २५ वर्ष गर्दभ और करभका, २४ वर्ष वृष और महिषका, छाग और शूकरका परमायुकाल तब तक माना गया है जब तक उनके छः दाँत न निकलें। ज्योतिःशास्त्रमें लिखा है—

"अज्ञानादायुषः सर्वं विफलं कीर्तितञ्च तत्।
तस्मादानयनं तस्य स्फुटार्थमभिधीयते॥" (कोष्ठिप्रदीप०)

मानवका जीवितकाल यदि न जाना जा सके, तो सभी निष्फल होते हैं, इस कारण सबसे पहले आयुका परिमाण जानना आवश्यक है। मनुष्यका ऐहिक और पारत्रिक सभी कार्य परमायुके ऊपर निर्भर करते हैं।

मनुष्यकी परमायुकी गणना चार प्रकारसे की जाती है यथा—अंशायु, पिण्डायु, निसर्गायु और जीवायु। जिसका लग्न बलवान् है उसके लिये अंशायुकी गणना, इसी प्रकार सूर्य बलवान् होनेसे पिण्डायुगणना, चन्द्र बलवान् होनेसे निसर्गायु और जिसके तीनों ही दुर्बल हैं उसकी जीवायुगणना की जाती है। यह गणना करनेमें ग्रहोंकी उच्च और नीच राशि, मित्र और शत्रुगृह जानना आवश्यक है। अंशायु यथा, इस गणनमें ग्रहोंके अपनी अपनी नक्षत्रयोग्य गुणक अङ्क द्वारा उन उन अंशायुगणक अङ्कको गुणा करनेसे जो अङ्क लब्ध होगा उसे १०से भाग देना होगा, पीछे भागफलको १२००से भाग देनेसे जो उत्तर आवेगा वही उस ग्रहका दण्डायुर्दाय होगा।

पलविपलादिको १२से गुणा करके उसे १२००० द्वारा भाग देनेसे जो उत्तर आवेगा वह मास होगा। अंशपिण्डांकको १०से गुणा करनेसे जो गुणनफल होगा उसे १२०००से भाग दो, भागफल दिन होगा। भागावशिष्ट अङ्कको १०से गुणा करके १२०० द्वारा भाग देनेसे जो उत्तर आवेगा उसे दण्ड समझो, इसी नियमसे गणना करनेसे दण्ड और विपल जाना जाता है।

यदि लग्नका अंश सबसे अधिक हो, तो लग्न स्फुटकी राशिका अङ्क जितना होगा, उतने वर्षका अङ्क लग्न दण्ड आयुर्दायके साथ योग करो। उससे आयुकी वर्षवृद्धि जानी जायगी।

अंश कला और विकला सबोंको १२ से गुणा करके उसे तीन स्थानोंमें रखना होता है। प्रथमतः विकलादि अङ्कको ६०से भाग दो और भागफलको कलाके अङ्कमें जोड़ दो। भागावशिष्ट अङ्कको एक स्थानमें रख देना होता है, पीछे उस योगज कलाके अङ्कको ६० से भाग देकर भागफलको अंशाङ्कके साथ जोड़ देना होगा। अवशिष्टाङ्कको कलाङ्कके बाईं ओर रखना होता है। पीछे उस योगज अंशाङ्कको ३०से भाग देनेसे जो लब्ध होगा तथा उसका अवशिष्टाङ्क जो रहेगा उसे पूर्व स्थापित कलाङ्कके बाईं ओर बाईंमें उस १० कलाङ्कको भी उसकी बाईं भागमें रखो। उन अङ्कोंके द्वारा क्रमशः मास, दिन दण्ड और पल आदि जाने जायँगे। उन मासादिको लग्नस्फुटके मासादिके साथ जोड़नेसे लग्नस्फुटका वर्ष, मास, दिन दण्ड और पल होगा तथा सूर्य आदि सप्तग्रह और लग्नकी दशायुका वर्ष, मास दिन, दण्ड और पलादि सभी योग करनेसे जितना वर्ष मास दिन और दण्ड पलादि होगा, उतनी उस व्यक्तिकी अंशायुगणनानुसार परमायु होगी।

पिण्डायुके जाननेके उपायकी विवेचना।—जन्मकालमें सूर्य जिस जिस राशिके जिस अंशादिमें रहते हैं, उस उस राशि और अंश, कला तथा विकलाङ्कको पृथक् पृथक् स्थानमें रखो। पीछे एक एक ग्रहस्फुटकी राशिके अङ्कको ३०से गुणा करके गुणनफलको उस ग्रह स्फुटके अंशके साथ जोड़ दो। पीछे उस योगज अङ्कको ३० से भाग दे कर अवशिष्ट अङ्कको ६०से गुणा करो। यह गुणनफलको उसके बादके विकलाङ्कके साथ योग करनेसे जो अङ्क लब्ध होगा, उसीका नाम उस ग्रहका आयुःफल है। इस प्रकार प्रत्येक ग्रहस्फुट और लग्नस्फुटकी राशि, अंश, कला और विकलाङ्कको इसी प्रकारकी प्रक्रिया करनेसे जो अङ्क लब्ध होगा वही उस उस ग्रह और लग्नका आयुःफल हुआ। पिण्डायुगणना करनेमें निसर्गायु शब्दके ऊपर जो आयुफल निकालनेका विषय लिखा गया है उसीके अनुसार आयु फल निकाल करके जो अङ्क होगा उसे तीनसे भाग दो और भागफलको स्थानमें रखो। पीछे उसके एक अङ्कको २०से भाग दे कर जो भागफल हो उसे द्वितीय अङ्कमें वियोग करो। अब जितनी कला विकला अवशिष्ट रहेगी उतना दिन और दण्ड इत्यादि पिण्डायु होगा। चन्द्रका आयुःफल निकाल कर जो अङ्क मिलेगा उसे ५से गुणा करो और गुणनफलको १२से भाग दो। अब भागफलमें कला-विकलादिका जितना अंश रहेगा, उतना दिन और दण्डादि चन्द्र ग्रहका पिण्डायु होगा।

मङ्गल और बृहस्पतिका आयुःफल पृथक् कर उसे ४से भाग दो, भागफल जितनी कला विकला होगा, उतना दिन और दण्डादि मङ्गल तथा बृहस्पतिका दत्त पिण्डायु होगा। शुक्रका आयुःफल पृथक् कर उसे ११से

भाग करनेसे जितनो मास-दिनादि भागफल आवेगो, उतना दिन और दण्डादि बुधको प्रदत्त आयु समझो। शुक्रका आयुःपल ग्रहण करके उसे ६० गुणा करनेसे गुणनफल जितना होगा, उसे ७०वें भाग देनेसे भागफल-में जितनो मास दिनादि प्राप्त होगा, उतना दिन और दण्डादि शुक्रप्रदत्त परमायु होगा। शनिका आयुःपल ग्रहण कर उसे ३० भाग देनेसे जितनो मास दिनादि भागफल होगा, उतना दिन और दण्डादि शनिप्रदत्त परमायु होता है। निसर्गायु ऐसो।

परमायुःशक्तिके विषयकी इस प्रकार गणना की जाती है। जातव्यक्तिका लग्नस्फुट स्थिर करके उसको राशिके अङ्कको ३०से गुणा करो, गुणनफल जो होगा उसे अंशादिके साथ जोड़ दो। पीछे उस गुणाङ्कको ६०से गुणा करके गुणनफलको पाववें कलादिके साथ जोड़ दो, योगफल जो होगा उसे एक स्थानमें रखो। पीछे पूर्व प्रणालीके अनुसार एक एक ग्रहको दत्त आयु स्थिर कर उसे उस स्थापित अङ्क द्वारा गुणा करो। अब गुणनफल को २१६००से भाग देनेसे जो वत्सरादि भाग-फल होगा उसे अपने अपने ग्रहकी प्रदत्त आयुके वत्स-रादिसे वियोग करो, वियोगफल जो होगा उसीको पर-मायु समझो। यदि लग्नमें पापग्रह रहे, तो इसी प्रकार स्थिर करना होगा। यदि पापग्रहयुक्त लग्नमें किसी शुभग्रहकी दृष्टि पड़ती हो, तो अपने अपने ग्रहको प्रदत्त आयुमेंसे उक्त भागफलका आधा वियोग कर आयु स्थिर करो। दो या तीन शुभग्रह लग्नमें रहनेसे उनके मध्य जो ग्रह शुभफल प्रदान करेगा, उस ग्रहके भागफल द्वारा ग्रहप्रदत्त आयुको गुणा करके पहलेके जैसा कार्य करना होता है। लग्नमें यदि दो वा तीन पापग्रह रहें, तो उनके मध्य जो ग्रह बलवान रहेगा उसके भाग फल द्वारा ग्रहप्रदत्त आयुको गुणा करो, बाद गुणनफल ले कर पूर्ववत् कार्य करना होगा। लग्नमें यदि पाप ग्रह रहे और वह पापग्रह यदि लग्नाधिपति हो, तो आयुर्हानिकी गणना नहीं करनी होगी।

इस प्रकार समस्त ग्रहों और लग्नोंकी आयुकी पृथक् पृथक् गणना कर एकत्र योग करनेसे जितने वत्सरादि होंगे, उतना ही जातव्यक्तिकी परमायु समझो।

आयुःकी गणना करके जिसकी जितना वर्ष परमायु होगी, उस अङ्कको दो स्थानमें रखो। पीछे एक अङ्कको ७०से भाग दे कर जितना होगा उसमें उसका १२८वां भाग वियोग करनेसे जो अवशिष्ट रहेगा उसे स्थापित द्वितीय अङ्कमें वियोग करो। यह वियोगफल जो होगा वही प्रकृत परमायु है। जो व्यक्ति पवित्र, स्वधर्मानुरक्त, सत्यवान, जितेन्द्रिय, हित और देवार्चनारत हैं, उन्हींको इस प्रकार प्रकृतपरमायु प्राप्त होगी।

जो सब मनुष्य पापी, क्रूर, [illegible], दैव और ब्राह्मण निन्दक हैं तथा जन्तुओं और गुरुजनोंसे द्वेष रखते हैं, वे सब मनुष्य शास्त्रोक्त निर्दिष्ट आयु न पा कर [illegible] अल्पायुमें पतित होते हैं।

जातकाभरणमें योगज आयुका विषय इस प्रकार लिखा है। जिसके जन्मकालमें लग्नाधिपति पूर्ण बल-वान हो कर केन्द्रस्थित शुभग्रहसे देखा जाय, वह अति दीर्घ जीवन लाभ करता है। जन्मकालमें शुभग्रह केन्द्र-स्थित या त्रिकोणस्थित तथा अष्टम स्थान ग्रहरहित होनेसे यदि लग्नाधिपति बलवान हो कर लग्नस्थित हो, तो जातव्यक्तिकी आयु ६० वर्ष की होती है। जिसके जन्म कालमें बृहस्पति लग्नमें रहे और लग्न या चन्द्रसे केन्द्र अर्थात् प्रथम, चतुर्थ, सप्तम या दशम स्थानमें शुभग्रह तथा इन सब शुभग्रहोंके प्रति अष्टम स्थानस्थित पापग्रह-की दृष्टि न पड़ती, तो उस मनुष्यको ८० वर्ष की पर-मायु होती है। जन्मकालमें मूलत्रिकोणमें शुभग्रह और तुङ्ग स्थानमें शुभग्रहके रहनेसे यदि लग्नाधिपति बल-वान् हो, तो जातव्यक्तिकी परमायु ८० वर्षकी समझनी चाहिये। जिसके जन्मकालमें बुधग्रह बलवान् हो कर केन्द्र अर्थात् लग्नमें चतुर्थ, सप्तम या दशम स्थानमें रहे और अष्टम स्थानमें यदि पापग्रह न रहे, तो वह व्यक्ति ३० वर्ष तक जीता है। उस अष्टम स्थानमें शुभग्रहकी दृष्टि पड़नेसे उसकी परमायु ४० वर्ष की होती है। जन्मकाल में बृहस्पतिके अपने क्षेत्र या द्रेक्काणमें रहनेसे जात-व्यक्तिको २७ वर्ष परमायु होती। जिसके जन्मकालमें चन्द्रमा अपने क्षेत्र या लग्नमें रहे और सप्तम स्थानमें शुभ ग्रह हो, तो उसको ६० वर्ष की परमायु होती है। जन्म-कालमें पञ्चम या नवममें शुभग्रहके रहनेसे यदि बृहस्पति कर्कटमें रहे, तो जातव्यक्तिकी परमायु ८० वर्ष होगी।

यदि वृश्चिक जन्मलग्न हो और उस जन्मलग्नमें बृहस्पति रहे तो ८० वर्ष उसकी परमायु मानी जाती है। जिसके जन्मकालमें अष्टमाधिपति सप्तमस्थान और सप्तमाधिपति अष्टमस्थानमें रहे तथा उस सप्तमाधिपतिके प्रति पाप ग्रहकी दृष्टि पड़ती हो, तो उसकी परमायु २४ वर्ष होगी ऐसा जानना चाहिये। जन्मकालमें लग्नाधिपति और अष्टमाधिपति ये दोनों ग्रह यदि अष्टम स्थानमें रहें तो जातव्यक्तिकी परमायु २७ वर्षकी होती। जिसके जन्मकालमें कोई पापग्रह और बृहस्पति ये दोनों यदि लग्नस्थित हों तथा उस ग्रहके प्रति यदि चन्द्रकी दृष्टि पड़ती हो तो उस व्यक्तिकी परमायु २२ वर्षकी होती है। जन्मकालमें शुक्र और बृहस्पति यदि केन्द्रस्थानमें अर्थात् लग्नमें, चतुर्थमें, सप्तममें वा दशममें रहें, तो जातबालककी सौ वर्ष परमायु होगी। जन्मकालमें कर्कटमें बृहस्पति और केन्द्रस्थान शुक्र रहनेसे जातबालककी सौ वर्षकी आयु होगी। जिसके जन्मकालमें लग्न वा नवम स्थानमें चन्द्रमा रहते हैं उसको भी आयु सौ वर्षकी मानी गई है। लग्न, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम वा दशम स्थानमें यदि कोई पाप ग्रह न रहे और धनु वा मीन जन्मलग्न हो तथा केन्द्रस्थानमें बृहस्पति वा शुक्र रहे एवं लग्नसे अष्टम और नवममें शुभग्रहकी दृष्टि पड़ती हो, तो उसकी भी सौ वर्षकी परमायु होती है। लग्न और चन्द्रसे अष्टमस्थानमें यदि कोई पाप ग्रह न रहे तथा बृहस्पति और शुक्र बलवान् हों, तो उस व्यक्तिकी परमायु ११० वर्ष होगी। जन्मकालमें बृहस्पति और शुक्र केन्द्रस्थानमें तथा एकादशमें चन्द्र रहे, तो जातबालकको १२० वर्ष परमायु होती है। जन्मकालमें मीनलग्नमें शुक्र, अष्टम स्थानमें चन्द्र और केन्द्रमें बृहस्पतिके रहनेसे तथा चन्द्रके प्रति शुभग्रहकी दृष्टि पड़नेसे जात व्यक्तिकी सौ वर्ष परमायु होती है। इत्यादि प्रकारसे परमायुका निर्णय करना होता है। फिर भी लिखा है, कि ज्योतिर्विद्गण* स्थिर चित्त हो पञ्चाङ्ग अनुमान विचार कर ग्रहके प्रति दृष्टि रखते हुए आयुर्दायका उपदेश देते हैं इत्यादि। यही परमायु बनानेकी विधि है जो संक्षेपमें कहा गया। विशेष विवरण बृहज्जातक और मानसागर आदि ज्योतिष ग्रन्थोंमें लिखा है।

ज्योतिषमें हस्तिप्रभृतिकी परमायुके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है। मनुष्य और हाथीकी परमायु १२० वर्ष ५ दिन, व्याघ्र और घोड़ेकी परमायु ३२ वर्ष, गो और महिषकी परमायु २४ वर्ष, बकरे और गर्दभकी परमायु २५ वर्ष, कुक्कुरकी परमायु १२ वर्ष और पक्षीकी परमायु १८ वर्ष है।

इस प्रकार जन्मसमयके लग्न और ग्रहस्थिति द्वारा उक्त आयुर्गणनाकी प्रणालीके अनुसार आयुके वर्षादि स्थिर करके उसे हस्ती आदिकी अपनी अपनी निर्दिष्ट आयु द्वारा गुणा करे। पीछे उस गुणनफलको १२०से भाग दो। भागफल जो होगा, वही उस हस्ती आदिकी परमायु है।

चराचर मानवादि जितने जन्तु हैं, उनकी परमायु माना गया है। किन्तु १२० वर्ष यहां तक कि १५१ वर्ष तक भी मानवका नाम सुना जाता है, किन्तु ऐसा बहुत कम है। योगबलसे किसी किसीने तीन चार सौ वर्ष तक जीवनरक्षा की है, ऐसा भी सुना जाता है।

---

* "जन्मकालाद्यमुना [illegible] ...
[illegible] सूर्यो ग्रह।
[illegible] परम [illegible] ...
[illegible] ॥" (ज्योतिष)

द्वादश भाग समाप्त